

वीर सेवा मन्दिर  
दिल्ली



क्रम संख्या

2525

काल नं०

10/10/2020

खण्ड

35/24/3







ॐ

भीषीताराम्यां नमः  
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये

# श्रीरामायणाङ्क



सहृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥

संयुक्त संपादक—

ज्वालाप्रसाद कानोविदा

हनुमानप्रसाद पोद्दार

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥

रघुपति राघव राजा राम । पतिवपावन सीतागम ॥

जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

[ संस्करण - १९२५० ]

कौटुम्बिक मज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावै ।  
'कल्याण' बाह्यक विज्ञापन नहीं लायता ।

वार्षिक मूल्य	जय पावकर विचन्द्र जयति जय । मन् चित् आनन्द भूमा जय जय ॥	रामायण भाग १०० ॥ =
भारतमें ४०)	जय जय विश्वरूप हरि जय । जय अम्विलात्मन् जगमय जय ॥	विदेशमें ३)
विदेशमें ५०)	जय विराट जग जगन्पते । गौरीपति जय रमापते ॥	मन्त्राख्या प्रति ॥ = विदेशमें ॥)

ॐ

यत्तु सर्वाणि कर्माणि सन्ति सन्त्यस्य कथराः  
अनन्येनैव योगेन मां श्यायन्ते इति

# कल्याण



विराटः भद्रं प्रीतिं सन्निवृत्तमागच्छ  
अस्मिन् रात्रिपर्वणि जन्मोवासीति विदुषां

न ७५  
कल्याणः

१९४७  
१९४८



आह्वारः

## पाठक-पाठिकाओंमें प्रार्थना

कई कारणोंसे 'रामायणांक' के निकलनेमें कुछ दिनोंकी देर हो गयी है, इसके लिये प्रेमी पाठक-पाठिकागण कृपापूर्वक क्षमा करें।

पहले चारसी पृष्ठ और १०० चित्रोंका ही विचार था, परन्तु अब यह ५१२ पृष्ठ और १५० से अधिक चित्रोंका निकल रहा है। कीमत पहलेकी सूचनाके अनुसार २॥=) ही है। धर्मार्थ वांटने, इनाममें देने, उपहार देने, संग्रहमें रखने आदिके लिये यह एक सुन्दर निर्दोष और शिक्षाप्रद अमूल्य वस्तु है।

इस बार केवल १५२५० प्रतियाँ ही छापी गयी हैं, अतः रामायणांकका जल्दी बिक जाना सम्भव है।

चार रुपये दो आने देकर ग्राहक बननेवालोंको यह अंक पांचवें वर्षके पहले अङ्कके तौरपर यों ही मिल रहा है। ग्राहक बनने और बनानेवालोंको जल्दी करनी चाहिये।

इस अङ्ककी तैयारीमें कितना खर्च और परिश्रम हुआ है इसका कुछ अन्दाजा आपलोग कर सकते हैं। देश-विदेशोंमें अनेक लेख भेगाये गये हैं, चित्रादिका संग्रह किया गया है। लेखोंके अनुवाद करवाये गये हैं, इस अङ्कमें जितने चित्र हैं, उनमें चित्र भी २॥=) में नहीं मिल सकते। इस स्थितिमें हर एक ग्राहक-अनुग्राहकमें यह प्रार्थना करना हमारी समझसे अनुचित नहीं होगा कि वे कृपापूर्वक कम-से-कम दो-दो ग्राहक और बना दें। पाठक-पाठिकागण यदि कृपापूर्वक थोड़ा-सा प्रयत्न करें, तो ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं है।

'कल्याण' के ग्राहक बढ़ानेके लिये जिन प्रेमी सज्जन और देवियोंनि निष्काम और निःस्वार्थ भावसे प्रयत्न किया और जो कर रहे हैं, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। 'कल्याण'के ग्राहक बढ़ानेवाले सज्जनोंका न तो नाम छपा जाता है, न उन्हें पैसे ही मिलते हैं, न उन्हें मान-सम्मानकी आशा है, ऐसी स्थितिमें आजकलके ज़मानेसे विरुद्ध केवल परमान्माकी सेवाकी भावनासे 'कल्याण' के प्रचारकी चेष्टा करनेवाले सज्जनोंके हम बड़े ही आभारी हैं।

यह याद रखना चाहिये कि कल्याणमें विज्ञापन आदिकी कोई आमदनी नहीं है। यह केवल ग्राहक-संख्यापर ही निर्भर करता है अतएव प्रेमियोंको ग्राहक बढ़ानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

## ग्राहकोंकी सेवामें सूचना

● (१) जिन सज्जनोंने अभीतक आगामी वर्षका मूल्य नहीं भेजा है उनकी सेवामें शीघ्र ही बी० पी० डांग रामायणांक भेजा जायगा, परन्तु कामकी बहुत अधिकता होनेके कारण बी० पी० भेजनेमें सम्भवतः महीनेतककी देर होसकती है। अतएव जिनका जल्दी हो वे इस सूचनाकी पढ़ते ही ४=) मनिआर्डरमें तुरन्त भेज दें—

(२) जिन सज्जनोंके नाम बी० पी० भेजा जायगी, उनमेंसे सम्भव है कि कोई सज्जन मनिआर्डर भी भेज दें, ऐसी हालतमें उनसे प्रार्थना है कि वे बी० पी० लौटावें नहीं। भ्रमसेक वहाँपर दूसरा ग्राहक बनाकर बी० पी० छुड़ा लें और उनका नाम लिखनेकी कृपा करें। रुपये मिलते ही उनके नाम अंक अलग भेज दिया जायगा।

व्यवस्थापक 'कल्याण'

## आवश्यक सूचना

गत वर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्क 'भगवद्गीताङ्क' में गीता-सम्बन्धी ग्रन्थोंकी एक विस्तृत सूची छपी थी। उस सूचीके प्रायः सभी ग्रन्थ गीता-पुस्तकालयमें संग्रहीत हो चुके हैं।

'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध किया जाता है कि उस सूचीमें संग्रहीत ग्रन्थोंके अतिरिक्त किसी भी भाषाके हस्तलिखित या मुद्रित गीता-सम्बन्धी ग्रन्थ उनकी जानकारीमें हों, उनकी सूचना-गीता-पुस्तकालय, ३० बाँसतला गली, कलकत्ताके पतेसे भेजनेकी कृपा करें।

इसीप्रकार सर्व प्रकारकी रामायण और रामचरित्रसम्बन्धी ग्रन्थोंका भी एक सुन्दर संग्रह होना आवश्यक है। यदि सब रामायणाचार्यों और रामप्रेमी सज्जनोंकी सहानुभूति हो तो यह कार्य होना सहज ही है। इसके लिये सब भाषाओंके हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंकी पृरे विवरणसहित सूचना और अपनी सम्मतियाँ भी उपयुक्त पतेपर भेजनेकी कृपा करें।

आशा है सब धर्म-प्रेमी सज्जन आवश्यक सूचनाएँ भेजकर हमें ग्रन्थ-संग्रहमें सहायता देंगे।

भगवद्गीत

सम्पादक—'कल्याण'

## श्रीगीता-परीक्षा

गीता-परीक्षा आगामी कार्तिक बदी १० ता० १७ अक्टूबरमें आरम्भ होगी। केन्द्रोंमें अभीन्ने तैयारी होनी चाहिये। भाद्रपदके अन्ततक परीक्षार्थियोंके आवेदनपत्र कार्यालयमें आ जाने चाहिये।

इसबाग विशेष उत्साहसे इस कार्यमें भाग लेनेके लिये देशवासियोंमें प्रार्थना की जाती है।

संयोजक,

श्रीगीता-परीक्षा-समिति,

बरहज (गोरखपुर)

\* यह विस्तृत 'गीता-सूची' अलग पुरतकाकारमें भी छप रही है।

## कल्याणके नियम

### उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

### प्रबन्ध सम्बन्धी नियम

(१) यह प्रतिमासकी कृष्ण एकादशीको प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांक सहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४=) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ५=) नियत है। एक संख्याका मूल्य १=) है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता; नमूना १=) मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षमें कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम अंकमें १२ वें अंकनकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बाँचके किन्हीं अङ्कसे दूसरी सालके उस अङ्क तक नहीं बनाये जाते। 'कल्याण'का वर्ष आरम्भमें शुरू होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखापढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहले तक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जबाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बड़ी अवधान होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी कृष्ण प्रतिपदाके पहले पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम पता साफ साफ लिखना चाहिये। महीने दो महीनों-के लिये बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

### लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आशेष रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। असुदृष्ट लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।

### आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्द्रा मनिआर्डर द्वारा भेजना चाहिये क्योंकि बी० पी० के रुपये प्रायः देरीसे पहुँचते हैं। कभी कभी तो डेढ़ दो महीनोंतक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि बी० पी० छूटी या नहीं। रुपये न मिलने तक ग्राहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। नवरा दोनोंमें एक ही है परन्तु पहला अत्यन्त सुविधाजनक और दूसरा असुविधा है। जिनका रुपया आता है उन्हींको कल्याण पहले भेजा जाता है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग समझकर अलग अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या चित्रोंका मूल्य या और अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजनी चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कूपनपर, रुपयोंकी तादात, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'व्यवस्थापक 'कल्याण' गोरखपुर' के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक 'कल्याण' गोरखपुर' के नामसे भेजने चाहिये।



## कल्याणकी तीसरे वर्षकी फाइल

४०० से ऊपर लेख और कविताएँ, सुन्दर ७२ चित्र और ११२८ पृष्ठ, इसमें प्रसिद्ध भक्तांक भी शामिल है, मूल्य डाक महसूलसहित केवल अजित ४=) यह फाइल कितनी उपादेय है लेखकों के नाम देखनेसे ही इस बातका पता लग सकता है—

### तीसरे वर्षके कुछ लेखक

महात्मा श्रीगौधीजी, काका कालेलकर, आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, हिन्दू युनिवर्सिटी काशी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीभूषेन्द्रनाथजी सन्ध्याल, दीनबन्धु श्री सी० एक० एन्डरुज महोदय, श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी, हरिभक्त श्रीयादवजी महाराज बम्बई, जगद्गुरु श्रीधनन्ताचार्यजी महाराज प्रतिवादी मथुरा मठ बम्बई; सेठ श्री-कन्हैयालालजी पोद्दार, बाबा राजवदासजी, श्रीसदानन्दजी सम्पादक 'सेसेज' स्वामीजी श्रीभोलेशास्त्रीजी, श्रीधरो श्री-रघुनन्दनप्रसादसिंहजी, स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजी, स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी, श्री वी वी० अलुर बी० ए०, एल० एल० बी०, विद्याभार्तृहृदय० श्रीसीतारामजी शास्त्री, श्रीअनिलवरणराय पायडीचेरी, भिक्षु श्रीगौरीशंकरजी, श्रीअरविन्द घोष, रा० ब० अबधशस्त्री लाजा श्रीसीतारामजी बी० ए०, गोस्वामी सार्वभौम श्रीअच्युतमुनिजी महाराज, व्याख्यानवाचस्पति श्रीदीनदयालजी शर्मा, बाबूभूषण पं० श्रीनन्दकिशोरजी शुक्ल, श्रीहरिभाऊजी उपाध्याय सम्पादक 'ध्यानभूमि', श्रीज्वालामुखाजी कानोदिया, श्रीरामचन्द्रकृष्ण कायल, श्रीरामदामजी गौड़ एम० ए०, श्रीनलिनीकान्त गुप्त पायडीचेरी, पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी आदि ।

इसके सिवा अनेक कवियोंकी सुन्दर रचनाएँ भी हैं । स्थान कम होनेके कारण चित्रोंके अलङ्कार अलग नाम नहीं लिखे गये ।—बड़ा सुन्दर संग्रह है, बिना जानेपर फिर छपना कठिन है । सबके कामकी चीज है । केवल भक्तांक १॥=) मात्र ।

## कल्याणकी चौथे वर्षकी फाइल

पाँच सौ लेख, डेढ़ सौ कविताएँ और १=१ सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित, पृष्ठ १३८६ । इसमें सुप्रसिद्ध गीतांक भी शामिल है । मूल्य डाकमहसूलसहित ४=) (अजित)

'कल्याण' और उसके समय-समयपर निकलनेवाले विशेषांकोंसे पुस्तक-प्रेमी अनेक मञ्जन पहुँचित ही होंगे । इसपर देश-विदेशमें जितनी सम्मानियाँ लिखी गयी हैं उनमेंसे जो हमारे पास संगृहीत हैं उन सबको छापनेसे एक बहुत बड़ा पोथा बन सकता है । अपने कामके लिये हमारा अधिक कहना नीतिके विरुद्ध होगा । हाँ, हमना कह सकते हैं कि यह हमना लोकप्रिय हुआ कि काश्मीरसे मद्रास और कंठसे शिवसागर तककी तो बात ही क्या विदेशोंके भी कई ग्राहक हो गये । प्रादक-संख्या, ८००० से १३००० हो गयी । विहार और उड़ीसा, सी० पी० अराविक सरकारी शिक्षा विभागने अपने स्कूल और कालेजके उपयोगके लिये स्वीकृति दी है । हिन्दी संसारमें हमना बड़ा हमनी अधिक संख्यामें दूसरा कोई भी विशेषांक नहीं निकला ।

इसमें केवल हिन्दी भाषाके विद्वानोंके ही नहीं बरन बंगला, उड़िया, गुजराती, मराठी, काश्मीरी, पंजाबी, उर्दू, संस्कृत, मद्रासी, अंग्रेजी, अमेरिकन, जर्मनी आदिके अनेक विद्वानोंके लेख हैं । मुकवियोंकी सुन्दर रचनाएँ हैं । भाव पूर्ण मनोहर चित्र हैं । और क्या क्या है सो देखनेसे ही जाना जा सकता है । केवल गीतांक २॥=)

### पुरानी फाइलें और विशेषांक

- |  |   |
|--|---|
| १ प्रथमवर्षके १० अंक अजित ... २॥=)                     | २ तृतीयवर्षकी फाइल भक्तांक सहित मूल्य ... ४=)               |
| (तीसरा व १२ वां अंक चुक गया, पूरी फाइल नहीं है)        | ६ चतुर्थवर्षकी फाइल गीतांक सहित मूल्य ... ४=)               |
| २ प्रथमवर्षके छठे अंकसे बारहवें अंक तक अजित ... २=)    | ७ भगवन्नामांक पृष्ठ ११० रत्न विरङ्गे ४१ चित्र मूल्य ॥=)     |
| ३ द्वितीयवर्षकी फाइल भगवन्नामांक सहित अजित ... ३॥=)    | ८ भक्तांक, पृष्ठ २४६ चित्र २२ सू० १॥=) स० २=)               |
| ४ द्वितीय वर्षके भगवन्नामांक सहित ११ अंक अजित ... २॥=) | ९ 'गीतांक' पृष्ठ २०० से अधिक तिरङ्गे एकरङ्गे १७० चित्र २॥=) |
| (१२ वां अंक नहीं है)                                   | १० हालहीका प्रकाशित रामायणांक (बापके हाथमें है) २॥=)        |

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

श्रीहरिः

## विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

१ श्रीरामायण-माहात्म्य । ...	२	२०-श्रीरामप्रेमी दशरथ महाराज ।	
२-तेरी हँसी : ('तेरा ही') ...	३	(दशरथकुमार-पद्म-रज) ...	८८
३-श्रीरामायण-तत्त्व-रहस्य । (गोवर्धनपीठाधीश्वर		२१ विदेह-भक्त राजा जनक ।	
जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्री ११०८		(श्रीकृष्णानागयणजी चौधरी) ...	११
श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज ) ...	४	२२-श्रीवशिष्ठजीकी महत्ता ।	
४-रामोपदिष्ट-भक्ति । (स्वामीजी श्रीभोलेश्वरजी)	५०	(पण्डितवर श्रीनय्यरामजी शर्मा, गुजरात) ...	६०
५-श्रीरामायण-रहस्य ।		२३ श्रीहनुमान्जीके चरित्रमे शिक्षा ।	
(श्रीकाशी-प्रतिवादिभयङ्कर मठार्थेश्वर जगद्गुरु		(पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी) ...	६५
श्रीभगवद्रामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८		२४-विभीषण । (श्रीरघुनाथप्रसादसिंहजी) ...	१०३
श्रीग्रन्थाचार्य स्वामीजी महाराज)	२०	२५-रावणके जीवनसे शिक्षा ।	
६-रामायणका नित्य पाठ करो ।		(पं० उपेन्द्रनाथजी पाठक) ...	१००
(महामना पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय) ...	२८	२६ गोधराज जटायुकी थलौकिक भक्ति ।	
७-रामायणका स्मरण ।		(च्यौहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी) ...	१०६
(भाबु श्री टी० एल० चारुवर्माजी) ...	२८	२७ भगवान् श्रीराम ।	
८-श्रीरामचरितमानस । (म० श्रीरूपकलाजी) ...	२९	(श्रीज्वालाप्रसाद कानोदिया) ...	१०८
९-रामायणकी रामायणकी विशेषता ।		२८ श्रीरामका प्रणतस्त-प्रण । (प्रण-जन-शरण) ...	१०९
(विद्वत् पं० श्रीबालकृष्णजी मिश्र) ...	३५	२९-श्रीरामावतारके विविधभाव और रहस्य ।	
१०-श्रीरामायण ।		(विद्वत् पं० श्रीभवानीशङ्करजी) ...	१००
(श्री १०८ स्वामी पं० रामधनभास्करजी		३० रामायणका रहस्य । (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी) ...	१०८
महाराज, श्रीजनकदास, श्रीश्यामाजी)	३६	३१ श्रीरामचन्द्रजीका कथमेध यज्ञ और उग्रता	
११-मर्यादा-पुनर्पोषण श्रीराम ।		महत्त्व । (डा० आर० राम गान्धीजी एम० ए०,	
(रावबहादुर श्रीनिधामणि विनायक वैद्य		पी० एच० डी०, मेसोर) ...	१०९
एम० ए०, एल० एल० बी० )	३२	३२-रामायणमें आदर्श गृहस्थ । (महामहोपाध्याय	
१२ मर्यादा पुनर्पोषणकी मर्यादा ।		पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण, काशी) ...	११०
(रावबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी, जावली)	३५	३३-हिन्दू समाजपर रामपूजाका प्रभाव ।	
१३ श्रीरामाके चरित्रमें आदर्श शिक्षा ।		(स्वामीजी श्रीदयानन्दजी, काशी) ...	११३
(श्रीनय्यदयालजी गायन्दका) ...	५२	३४ कौन बड़ा है? (स्वामी कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती) ...	११८
१४-रामायणमें भरत ।		३५-श्रीरामायणमें मांसाहार ।	
(स्वाहि-याचार्य पं० श्रीशालग्रामजी शास्त्री) ...	५७	(विद्यावाचस्पति पं० श्रीबालचन्द्रजी शास्त्री) ...	११८
१५ लक्ष्मण और भरतकी भक्ति । (श्री'ब्रजवल्लभ')	६१	३६ श्रीसीताजीका वनवास । (महामहोपाध्याय	
१६ महारानी कौसल्या । (कौशिलाकुमारशरण)	७४	डा० श्रीगंगानाथजी झा एम० ए०, लि० लि०	
१७-रानी सुमित्रा ।		वाहुस चैन्सलर, प्रयाग-विश्वविद्यालय) ...	११९
(पं० श्रीजानकशङ्करजी याज्ञिक एम० ए०) ...	७५	३७ दाम और परमपद ।	
१८-सद्गुणयती कैकेयी । (कैकेयानन्दन-पदवन्दन)	८२	(पं० श्रीरामशङ्करजी मिश्र 'श्रीपति') ...	१२०
१९ श्रीशत्रुघ्नजी । (गिहुदन-दासानुदास) ...	८७		

- ३८-निपादका प्रेम । (आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी, वृन्दावन) ... १४४
- ३९-दशरथके समयकी अयोध्या । ... १४५
- ४०-श्रीरामायणका महत्त्व ।  
(पं० श्रीश्यामसुन्दरजी याज्ञिक) ... १४६
- ४१-अभियोग । (श्रीसियारामशरणजी गुप्त) ... १४७
- ४२-रामायणमें हिन्दुसंस्कृति । (साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध') ... १४८
- ४३-रामचरितमानस सभ है ।  
(पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी) ... १४९
- ४४-रामायणमें क्रोध-शान्तिका उपाय ।  
(पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार एम० ए०, सम्पादक 'उत्सव') ... १५०
- ४५-रामचरितमानसके लोकप्रिय होनेका कारण ।  
(रायबहादुर भवभवासी लाला श्रीमीलारामजी बी० ए० साहित्यरत्न) ... १५१
- ४६-श्रीरामकी पुनः लङ्कायात्रा और सेतुबन्ग ।  
(‘रामकिंकर’) ... १५२
- ४७-गोस्वामीजीकी निष्काम भक्ति ।  
(पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र बी० ए०, बी० एल) १५३
- ४८-गुप्तार्हजी और सानावनवाम ।  
(व्याहार श्रीराजेंद्रसिंहजी) ... १५४
- ४९-रामायणीकथा । (पं० श्रीविधुशेखरजी अष्टाग्य एम० ए०, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन) ... १५५
- ५०-तुलसीकृत रामायण और इसमें संस्कारका उपकार । (श्रीदधीप्रसादजी गुप्त, ‘कुसुमाकर’ बी० ए०, एल-एल० बी०) ... १५६
- ५१-चन्दो मर्धाह रामके नाते ।  
(श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र ‘साधव’ बी० ए०) ... १५७
- ५२-श्रीबाल्मीकीय सुन्दरकाण्डम् ।  
(श्रीहरिधररूपजी जौहरी एम० ए०) ... १५८
- ५३-श्रीसीताहरण-रहस्य । श्रीजनकमुनाशरण श्रीमल्लान्ध्यायजी गवन्त, बी० ए०, एल-एल० बी०, सम्पादक ‘सानसर्पाधूप’) ... १५९
- ५४-रामायणकालीन शपथ-विधि ।  
(पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री, वेदनाथ) ... १६०
- ५५-रामायणकालमें परदाय्या । (साहित्यभूषण चतुर्वेदी पं० श्रीहजारकाप्रसादजी शर्मा एम० आर० ए० एम) ... १६१
- ५६-सतीके मरणान्त प्रायश्चित्तका गुप्त कारण ।  
(श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत) ... २०२
- ५७-श्रीरामचरितमानसका दार्शनिक सिद्धान्त ।  
(श्रीज्वालाप्रसादजी सिंहल एम० ए०) ... २०७
- ५८-रामायणमें आदर्श पातिव्रत-धर्म । (श्रीयुक्त सैयद कामिसअली, विशाख, साहित्यालङ्कार) २११
- ५९-तुलसीरामायणमें भक्त-श्रेणी ।  
(पं० श्रीजीवनशङ्करजी याज्ञिक एम० ए०) ... २१३
- ६०-श्रीशुकदेवजी और रामायण । (श्री पी० एन० शङ्करनारायण अय्यर बी० ए०, बी० एल) ... २१८
- ६१-श्रीरामजीका शूर्पणखाके साथ व्यवहार ।  
(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, बी० ए०) ... २२१
- ६२-रामायणमें सत्याग्रह । (श्रीमन्त यादवशङ्करजी जानदार, रिटायर्ड सबज्जम, गोरखपुर) ... २२३
- ६३-श्रीमद्भारतमायणका महत्त्व । (एम० श्रीचाल्किराम विनायकजी, कनकभवानी अयोध्या) ... २२४
- ६४-रामायणमें राजनीतिक उद्योगमें सहायता ।  
(रायबहादुर सरदार माधवराव विनायक किं० एम० ए०, एम० आर० ए० एल०, रि० प्रो० प्रो० मिनिस्टर होल्कर मंत्र) ... २२५
- ६५-मानसमें ज्ञान और भक्ति ।  
(पं० श्रीलक्ष्मीधरजी पाटय) ... २२६
- ६६-मुपलम्भान्त रामायण ।  
(श्रीचमुनाप्रसादजी श्रीवास्तव) ... २२८
- ६७-रामायणका महत्त्व ।  
(स्वामीजी श्रीविद्यानन्दजी) ... २४४
- ६८-रामचरितमानसके निर्देश शृङ्गारकी विशेषता ।  
(मेड श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार) ... २४८
- ६९-श्रीरामचरितमानसकी कतिपय विशेषताएँ ।  
(पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी ‘आन्त’ और श्रीमुखारजी दीक्षित ‘आन्त’) ... २४९
- ७०-श्रीरामायणोपदेश ।  
(श्रीयुक्त चोपरा रघुनन्दनप्रसादसिंहजी) ... २६२
- ७१-सबसे बड़ा रामनाम । (श्रीयुक्त के० बीर अन्ना) २६५
- ७२-राजनीतिज्ञ वाल्मीकि । (श्रीयुक्त ‘महाराष्ट्रीय’) २६६
- ७३-ज्ञानदीपका स्पर्शिकरण ।  
(साहित्यरत्न पं० श्रीविद्यानन्दजी त्रिपाठी) २७२

- ७४-विवाहके समय सीतार्जीकी अवस्था ।  
(पं० श्रीराजेंद्रनाथ विद्याभूषण) ... २८२
- ७५-श्रीरामचरितमानस-पात्रपरिचय ।  
(श्रीज्वालाप्रसाद कानोडिया) ... २८७
- ७६-सूर्यवंश । (श्री बी० एच० वडेर, एम० ए०  
एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एम०) ... २८८
- ७७-भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया ।  
(मेहता पं० श्रीलज्जारामजी शर्मा) ... २९६
- ७८-गोस्वामीजी और महिला-समाज ।  
(पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी) ... ३००
- ७९-भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी दिनचर्या ।  
(श्रीयुत बी० एच० वडेर, एम० ए०,  
एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एम०) ... ३०२
- ८०-अन्तरामायणके अनुसार रामायणका तिथिपत्र ।  
(श्रीयुत बी० एच० वडेर, एम० ए०,  
एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एम०) ... ३०४
- ८१-वनवासन और रावणवधकी तिथियाँ ।  
(पं० श्रीराजेंद्रनाथ मिश्र) ... ३०६
- ८२-राम-नाम । (पं० श्रीयन्त्रदेवप्रसादजी मिश्र  
एम० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एम०) ३१०
- ८३-रामकालामें सुधार । (श्रीयुत राजवहागुजी  
लमरोदा, एम० ए०, एल-एल० बी०) ... ३१३
- ८४-रावणकी लड़ा कहीं थी ?  
(श्री बी० एच० वडेर, एम० ए०, एल-एल० बी०,  
एम० आर० ए० एम०) ... ३१७
- ८५-श्रीरामनामकी महिमा ।  
(आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वं०  
दर्शनतीर्थ, भागवतपुर) ... ३२३
- ८६-र और ग की रमणीयता ।  
(पं० श्रीमुखरामजी चौबे 'गुणकर') ... ३२४
- ८७-रामायण और उसकी शाखाएँ ।  
(पं० श्रीललितमोहन कार एम० ए०  
बी० एल०, काव्यतीर्थ) ... ३२६
- ८८-राम-नाम-साहाय्य ।  
(स्वामीजी श्रीद्योतिर्मयानन्दजी पुरी, बम्बई) ३२९
- ८९-वालिबधका औचित्य । (श्रीजनकमुताशरण  
शीतलसहायजी सावन्त बी० ए०,  
एल-एल० बी०, सम्पादक 'मानसपीथ') ... ३३३
- ९०-तुलसीकृत रामायणकी समीक्षा ।  
(रैवरेश्वर श्रीण्डविन श्रीवप, मेलचन, ईंग्लैण्ड) ३४०
- ९१-रामायण संसारका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है ।  
(डा० श्री एच० डब्ल्यू० बी० मोरिस,  
एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रेसिडेंट 'एंग्लो  
इन्स्टीटयुट लीग') ... ३४३
- ९२-रामायणके कुछ राजनीतिक सिद्धान्त और  
शासनमस्यौदाएँ । (श्रीयुक्त बी० आर० रामचन्द्र  
दीनितार एम० ए०) ... ३४५
- ९३-यूरोपके सामान्य पाठकोंके लिये रामायणका  
स्वरूप । (श्रीयुत एच० जी० डी० टर्नबुल,  
एम० ए० वेस्त्रिज, ईंग्लैण्ड) ... ३४७
- ९४-महाकाव्योंमें राजस । (श्रीयुत एम० ए०  
नाडपत्रीकर एम० ए०, प्राग्प्रविद्यालंकार  
भारदारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुना) ... ३४९
- ९५-आदर्श पुरुष श्रीराम ।  
(श्री साई० जी० एम० तारापुरवाला बी० ए०,  
पी-एच० डी०, बार-एंट-ला, प्रिंसपल  
M. E. Ganga Athornam Institute) ३५३
- ९६-रामायणके राजस ।  
(पं० श्रीगोविन्दशास्त्रीजी दुर्गाकर) ... ३५४
- ९७-रामायणके वानर जल । (श्रीरामायण-प्रेमी) ३५८
- ९८-रामायण और महाभारत । (डा० श्रीमन्मलदेवजी  
गाम्भी, एम० ए०, डी० एल०) ... ३६३
- ९९-रामायणकी प्राचीनता । (एक रामायण-प्रेमी) ३६७
- १००-वाल्मीकीय रामायणसे अवतारवादकी सिद्धि ।  
(साहित्याचार्य श्रीरघुवर मिश्रदलालजी  
शारंग काव्य-वेदान्त-तीर्थ एम० ए०,  
एम० डी० एल०) ... ३६९
- १०१-उदासी साधु भगवान् श्रीराम । (स्वामी  
श्रीहरिनाददासजी उदासीन, महन्त, श्रीलाधुवेला, ३८८)
- १०२-फारसीमें रामायण ।  
(श्रीमहेशप्रसादजी मौलवी, थालिम-फाजिल) ३७९
- १०३-मराठीमें रामायण । (पं० लक्ष्मण रामचन्द्र  
पाडारकर जी० ए०, सम्पादक 'मुमुक्षु') ... ३८३
- १०४-बंगलामें रामायण ... ३८६
- १०५-उत्कल-रामायण ।  
(पं० श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डेय) ... ३८८

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या
१०६- गुजरातीमें रामायण । (श्रीयुक्त प्रह्लाद चन्द्रशेखर दीवान) ... ३६८	१२४-रामायणमें आदर्श पितृभक्ति । (राजाबहादुर राजा श्रीलक्ष्मीनारायण हरिचन्द्रन जगदेव विद्यावाचस्पति, पुरातत्व-विशारद, टेकली राज्य) ... ४६५
१०७-हाड़ोतीभाषामें रामायण । ( श्रीनन्दकिशोरजी सक्सेना ) ... ३६६	१२५-रामकथामें एक अद्भुत पाठान्तर । (श्री जी०एन० बोचनकर एम० ए०, एल-एल० बी०) ... ४६६
१०८-द्रविड़-रामायण ... ३६६	१२६-श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी स्वकथित जीवनी ! (साहित्यरत्न पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी) ४७३
१०९-रामायण और राजनीति । (काव्यतीर्थ प्रो० लौट्टिसिंहजी गौतम एम०ए०, एल० टी०, एम० आर० ए० एम०) ... ४०१	१२७-श्रीहनुमानजीका महत्त्व । (श्रीरामचन्द्र शंकर टकी महाराज पी० ए०) ४७६
११०-बालिवधका राजनीतिक कारण । (पं० श्रीराजेन्द्रनाथजी विद्याभूषण) ... ४०६	१२८-रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन । (श्री बी०एच०वठेर, एम०ए०, एल-एल०बी०, एम० आर० ए० एम०) ... ४८३
१११-रामायण और आद्धतर्पण । (पं० श्रीआशारामजी शास्त्री, साहित्यभूषण, व्याकरणाचार्य, वेदान्तपथिक) ... ४०६	१२९-रामायणकालीन स्थानपरिचय । ( , ) ... ४८०
११२-रामायणमें सत्य और प्रेम । (श्रीमदानन्दजी सस्पादक 'मेमेज') ... ४११	१३०-रामायण-रहस्य । (श्रीमोनीलाल रविशंकर बोन्ना श्री० ए०, एल-एल० बी०) ... ४८७
११३-रामायणी प्रज्ञा । (श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, गुजरातविद्यापीठ अहमदाबाद) ... ४१३	१३१-श्रीरामनामकी महत्ता । (विश्व-विद्या-विशारद पं०मानन्दधनरामजी ताम्गावकर) ... ४८६
११४-रामायणी शक्ति । (श्रीमलिनीकान्त गुप्त, भरविन्द-आश्रम-पाण्डिचेरी) ४१५	१३२-श्रीमानसकी चौपाइयोंका विनादी अर्थ । (पद्यार्थ- वाचस्पति कविसम्राट् पं० आशुरामजी शुक्ल) ४०२
११५-श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महत्त्व । (उर्मिला-पद-रत्न-रत्न) ... ४१७	१३३-तुलसी-रामायण । (श्रीबिनोबाजी भावे) ... ४१३
११६-पशु-पत्थियोंका रामप्रेम । (श्रीरामेश्वर बाजोरिया) ४१८	१३४-रामायण हमें क्या भिखाती है । ४०६
११७-रामायणके कुछ रत्न । (श्रीयुक्त रामायणशरणजी 'रामायणी') ... ४२०	१३५-चित्रपरिचय । ४०७
११८-केवटका अद्भुत प्रेम । (पं०श्रीरामनारायणजी शुक्ल 'साहित्यरत्न') ... ४०२	१३६-रामायणचर्चा । (सम्पादक) ४११
११९-केवटका सर्वाङ्गपूर्ण प्रेम । (पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी) ... ४२६	१३७-हे राम ! (टाइटलके नीसरे पृष्ठपर)
१२०-मानस और व्याकरण । (पं०श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी) ... ४२६	
१२१-रामायण-सम्बन्धी चर्कित । (पं०श्रीभाबरमल्लजी शर्मा) ... ४३०	
१२२-रामायणमें आदर्श आनृप्रेम । (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ... ४३४	
१२३-रामचरितमानसका महाकाव्यत्व । (श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी, कनकभवन, अयोध्या) ४६३	

### कविता

१३८- श्रीराम-भक्ती । (श्रीमस्थाचरणजी 'मत्थ' बी० ए० विशारद) १६	१३९-तुलसी-मन्त्रन । (पं०श्रीरामसेवकजी त्रिपाठी, सम्पादक 'माधुरी') १६
१४०-राम-विरहके आँसू । (श्रीअमृतलालजी माधुर) ३२	१४१-शंकर और राम । (श्रीअर्जुनदासजी केडिया) ३२
१४२-हृष्टदेव रामसे बिनय । (श्रीरामवचनजी द्विवेदी 'भरविन्द') ... ४४	१४३-रामचरितमानस । (श्रीसर्वानन्दसिंहजी 'सर्वेश') ५६
१४४-सङ्ग रामनाम है। (श्रीगोविन्दरामजी अग्रवाल) १३४	

१४५-आह्वान । (पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, एम०ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एम०) ...	१७१
१४६-राम-चरित्र शिक्षासार । (श्रीनन्दकिशोरजी भा 'किशोर' काव्यतीर्थ) ...	१७६
१४७-वैदेही-विलाप । (पं० रमाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति') ...	२०१
१४८-आराध्य राम । (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा) ...	२१२
१४९-राम नाम । (श्रीमोतीलालजी ओमरे) ...	२१७
१५०-श्रीरामचरितमानस-महिमा । (श्रीलोकनप्रसादजी पायडेय) ...	२४४
१५१-तुलसीदाससे । (श्रीमोहनलालजी महतो 'वियोगी') ...	२४५
१५२-रामायण । (श्रीरामपलटसिंह 'मधुर' एम० ए०, एम० आर० ए० एम०) ...	२६५
१५३-रघुवर भजो । (श्रीनागवन्ताचार्यजी शास्त्री वेदान्तभूषण) ...	२७६
१५४-राज्य । (श्रीमयिलीशरणजी गुप्त) ...	२८०
१५५-आदिकवि वात्सीकि । (पं० श्रीरामचरितजी उपाध्याय) ...	२८५
१५६-कैसे आऊँ द्वार । (श्री'तरङ्गी') ...	३०१
१५७-तुलसी । (श्रीअवन्तविहारीजी माधुर 'अवन्त') ...	३०५
१५८-भक्तभावना । (श्री'रसिकेन्द्र' जी) ...	३१३
१५९-तुलसीवन्दना । (श्री योगेन्द्र शर्मा) ...	३२१
१६०-रामायणके रचयिता । (कु० श्रीप्रतापनारायणजी पुरोहित कविरत्न) ...	३२२
१६१-तुलसीस्मृति । (पं० श्रीशान्तिप्रियजी द्विवेदी) ...	३२५
१६२-रामकथा सुरलोक-नैनी । ( पं० लक्ष्मीचन्द्रजी श्रोत्रिय ) ...	३३०
१६३-पतितोद्धारक तुलसी । (पं० श्रीप्रेमनागयणजी त्रिपाठी 'प्रेम' ) ...	३३६
१६४-राम । (पं० गंगाविष्णुजी पायडेय, विद्याभूषण 'विष्णु') ...	३४७
१६५-रामचरितमानस-कवि तुलसी । (श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी ) ...	३४६
१६६-मानसकी महत्ता । (विद्यार्थी श्रीमहेशप्रसादजी मिश्र 'रसिकेश') ...	३६५
१६७-राम । (पं० भगवतीप्रसादजी त्रिपाठी विशारद एम० ए०, एल-एल-बी०) ...	३६४

१६८-रामजन्मकी प्रतीक्षा । ( श्रीमातादीनजी शुक्ल, साहित्यशास्त्री, काव्यभूषण ) ...	४१७
१६९-रसने (भक्ति-गान) । (कवीन्द्र 'रसिकेन्द्रजी') ...	४२४
१७०-तुलसी-काव्य । (श्रीदामोदरसहायसिंहजी 'कविकर्कर' एल० टी०) ...	४३३
१७१-दोनों लोंकोंका पन्थ । (श्रीअजुनदासजी केडिया) ...	४५०
१७२-बरसाये देत । (पं० जगन्नाथप्रसादजी द्विवेदी) ...	४६८
१७३-तुझे अर्पण करे । (श्रीताराचन्द्रजी पण्ड्या बी० ए० 'चन्द्र' ) ...	४७२
१७४-प्रार्थना (अकिंचन) ...	४०५

## संग्रहीत

१७५-रामायण । (महात्मा गाँधीजी) ...	२८
१७६-रामचन्द्र संगल करे । (स्व० पं० माधवप्रसादजी मिश्र, सुदर्शन-सम्पादक) ...	३२
१७७-रामायणकी विशेषता । (कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर) ...	१६८
१७८-रामायणसे स्वार्थपरनाका नाश । (स्व० श्रीब्रह्मचन्द्र चट्टोपाध्याय) ...	१८६
१७९-रामायणमें ऐतिहासिक तथ्य । ( डा० एच० डब्ल्यू० वेल्स, सी० एम० आई० ) ...	१९३
१८०-रामायण सबोंका महाकाव्य है । (गोरीसिंह) ...	२१०
१८१-रामायणसे उक्त भावोंका प्रादुर्भाव । ( प्राफिथ—रामायणके अनुवादक ) ...	२३५
१८२-रामायणमें रस । (वेबर) ...	२५३
१८३-रामायणमें परम्पर सहायभूतिकी वृद्धि । (ब्राउस) ...	२७०
१८४-रामायणसंस्कारतन्माला पद्य । ...	२८५
१८५-संचित रामचरितमाला पद्य । (श्रीमच्छंश्वर योगीन्द्रजी) ...	२९१
१८६-रामायणकी ओर अधिक आकर्षण । (नेलसन-विरवकोप रचयिता) ...	२९४
१८७-रामायण नैसर्गिक काव्य है । (ओमन-इण्डियन एपिक्सके रचयिता) ...	३६६
१८८-रामायणमें सगुण ईश्वर । (डा० सर जार्ज ग्रियर्सन) ...	३१०
१८९-अमर काव्य । (स्वर्गीय जस्टिस टी० बी० शेपमिरि चार्ल्स) ...	३०८
१९०-राम अटल रहे । (महात्मा गाँधीजी) ...	४१०
१९१-रामचरितमानस । ( " ) ...	४०५
१९२-श्रीराम-नाम । ( " ) ...	४६७

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
<b>गो० तुलसीदासजीके उपदेश-रत्न</b>		२००-जाँचना हो तो रामको ही जाँचो ।	२२६
११३-जीवनका फल ।	१	२०१-रामायण-पञ्चदशी ।	२७१
११४-रामके हृदयमें कौन बसते हैं ?	७८	(सं० श्रीरघुनन्दनमसावसिहजी)	२७१
११५-ज्ञानी पण्डित आदि कौन है ?	१३८	२०२-सन्तके लक्षण ।	२७१
११६-रामके चार निवासस्थान ।	१४०	२०३-सुवेत पहाड़पर श्रीरामजीकी काँकी ।	३४६
११७-दुःखकी भागमें कौन नहीं जलता ?	१४४	२०४-श्रीरामचरितमानसकी नवधा भक्ति ।	३५७
११८-सन्त कौन हैं ?	१६२	२०५-श्रीरामका आदर्श विजयरथ ।	४००
११९-शुभीरके सखे सेवक कौन हैं ?	२२२	२०६-अहल्याका श्रीराम-पद-वन्दन ।	४७३

## चित्र-सूची

	वृहत् संख्या		वृहत् संख्या
<b>वृहत् संख्या</b>		२४-विरवामित्रकी रामभिक्षा ।	२२४
१-उद्धारकर्ता भगवान् ।	अन्दरका मुखपृष्ठ	२५-श्रीरामजन्म । (प्राचीन चित्र)	२३६
२-श्रीरामपञ्चायतन । (सुनहरी)	१	२६-रामायण-गान-शिखा ।	२६६
३-परशुराम-राम ।	३६	२७-गोसाई तुलसीदासजी ।	३३०
४-पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीताकी गुप्त मन्त्रणा ।		२८-रामायणद्रुम ।	३८८
(सुनहरी)	४५	२९-अजय रथ ।	४००
५-श्रीरामके चरणोंमें भरत	६६	३०-श्रीराम और केवट ।	४२६
६-कैकेयीकी समा-याचना ।	८५	३१-राम-विलाप ।	४४५
७-श्रीराम-प्रतिज्ञा ।	११३	३२-अहलीदार ।	४७३
८-श्रीसीता-राम ।	१५२	३३-लंका जलानेके बाद हनुमान्जी सीताजीकी	
९-शिव-परिचय ।	१७६	चरण-वन्दना कर रहे हैं ।	४८७
१०-राम-शबरी ।	१८८	३४-हनुमान्जीका द्रोणगिरि जाना ।	४८७
११-श्रीसीता-अनसूया ।	२११	३५-गङ्गा-गर्भ-हरण ।	४८७
१२-श्रीराम-पादुका पूजन । (सुनहरी)	२४८	३६-ठार तोड़ना और हृदय चीरना ।	४८७
१३-मदाप्रसन्न श्रीराम ।	२८०	३७-श्रीरामका ज्ञानोपदेश ।	४८९
१४-भगवान् श्रीराम और काकभुशुण्डि ।	३०४	३८-पार्थके रथपर हनुमान्जी ।	४८९
१५-सुवेत पहाड़पर श्रीरामकी काँकी ।	३४६	३९-हनुमान्पर इन्द्रका वज्रपात ।	४८९
१६-श्रीसीताजीके गहने ।	४१७	४०-सीताका पाताल-प्रवेश ।	४९०
१७-कौसल्या-भरत ।	४४५	<b>माननीय काशीनरेशकी रामायणके</b>	
१८-सीताकी अग्नि-परीक्षा ।	४६०	४१-पार्वतीकी तपस्या	१२
१९-मानस-सरोवर ।	४७३	४२-शिव-विवाह	१२
<b>सादे</b>		४३-कपट-मुनि और राजा प्रतापभानु	१३
२०-श्रीरामगीता ।	४	४४-महाराजा जनकका प्रथम रामदर्शन	१३
२१-सोहे राम-सिपाही जोरी ।	२०	४५-जयमाला	२८
२२-सीता-वनवास ।	४५	४६-जनकपुरमें दशरथजी	२८
२३-भक्तवर रामाजी प्रेममग्न नाच रहे हैं ।	१२४	४७-जनकपुरसे विदा	२९

	प्रसंख्या		प्रसंख्या
४८-शिव-धनुष-भंग	२६	८३-लक्ष्मणजीके मन्दिरकी भाँकी ( भीतरसे )	२३७
४९-महाराजा दशरथजीका दरबार	७४	८४-लक्ष्मण-किला ( सामनेका दृश्य )	२३७
५०-गुरु बशिष्ठजीका आगमन	७४	८५-,, ,, ( पिछला दृश्य )	२३७
५१-श्रीराम और केवट	७५	८६-सूरज-कुण्ड	२५६
५२-दशरथ-सरण	७५	८७-,, जनानाघाट	२५६
५३-भरद्वाज आश्रममें श्रीराम	८४	८८-वशिष्ठकुण्ड	२५६
५४-लक्ष्मणका क्रोध	८४	८९-दुग्ध-कुण्ड	२५६
५५-चित्रकूटमें भरत	८५	९०-तुलसीचौरा	२५७
५६-चित्रकूटमें महाराजा जनक	८५	९१-गोस्वामी तुलसीदासजीकी कुटी	२५७
५७-विराट-वध	१०२	९२-मणि-पर्वत	२५७
५८-जयन्तकी दुष्टता	१०२	९३-मल-गजेन्द्र	२५७
५९-कपट-मृग	१०३	९४-भाँकी सर्गुरु-सदन	२६६
६०-सीता-हरण	१०३	९५-स्वर्गद्वारघाट	२६६
६१-ऋष्यमूकपर श्रीराम-लक्ष्मण	१३२	९६-मन्दिर राजद्वार	२६६
६२-किष्किन्धामें लक्ष्मण	१३२	९७-दुद्रवा राजमहल पाँरो मन्दिर श्रीदर्शनेश्वरनाथ	२६६
६३-अशोकवाटिकामें रावण	१३३	९८-मन्दिर दशरथ-यज्ञ-भवन	२६७
६४-सेतुबन्ध रामेश्वर	१३३	९९-धर्महरि	२६७
६५-लंकापर चढ़ाई	१४०	१००-त्रेताके ठाकुर	२६७
६६-रावणको मन्दोदरीकी स्तुति	१४०	१०१-राजशर्हीदाँ	२६७
६७-लक्ष्मण-मूर्त्ति	१४१		
६८-कुम्भकर्ण-युद्ध	१४१		
६९-भरत-हनुमान्-मिलाप	१६२		
७०-श्रीराम पुनः अयोध्यामें	१६२		
<b>अयोध्यापुरीके</b>			
७१-अयोध्या-नगर-दृश्य (१)	१८६		
७२-,, ,, (२)	१८६		
७३-मन्दिर बनक-भवन (बाहरी दृश्य)	१८६		
७४-,, ,, (भीतरी दृश्य)	१८६		
७५-मन्दिर श्रीनागेश्वरनाथ	१८७		
७६-मन्दिर शीशमहल	१८७		
७७-हनुमानगढ़ी (१)	१८७		
७८-,, (२)	१८७		
७९-जन्मस्थान, कसौटीका खम्भा	२३६		
८०-मन्दिर जन्मभूमि	२३६		
८१-जन्मस्थान	२३६		
८२-लक्ष्मणजीका मन्दिर लक्ष्मणघाट (बाहरी)	२३७		
		<b>जनकपुरधामके</b>	
		१०२-श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर ।	३२८
		१०३-श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका	
		मिह्रासन ।	३२८
		१०४-श्रीजानकी-मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके	
		मन्दिरका पूर्वी दृश्य ।	३२८
		१०५-धनुषक्षेत्रमें श्रीरामजीके मन्दिरका सामनेका	
		पूर्वी दृश्य ।	३२८
		१०६-श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दृश्य ।	३२८
		१०७-श्रीरामजीके मन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ ।	३२८
		१०८-श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर ।	३२८
		<b>शृंगवेरपुरके</b>	
		१०९-शान्तादेवीका मन्दिर ।	३२९
		११०-शृंगविष्णुकी समाधि ।	३२९
		१११-श्रीरामके स्नानेका स्थान रामचौरा ।	३२९
		११२-श्रीगौरीशंकर पाठशाला ।	३२९



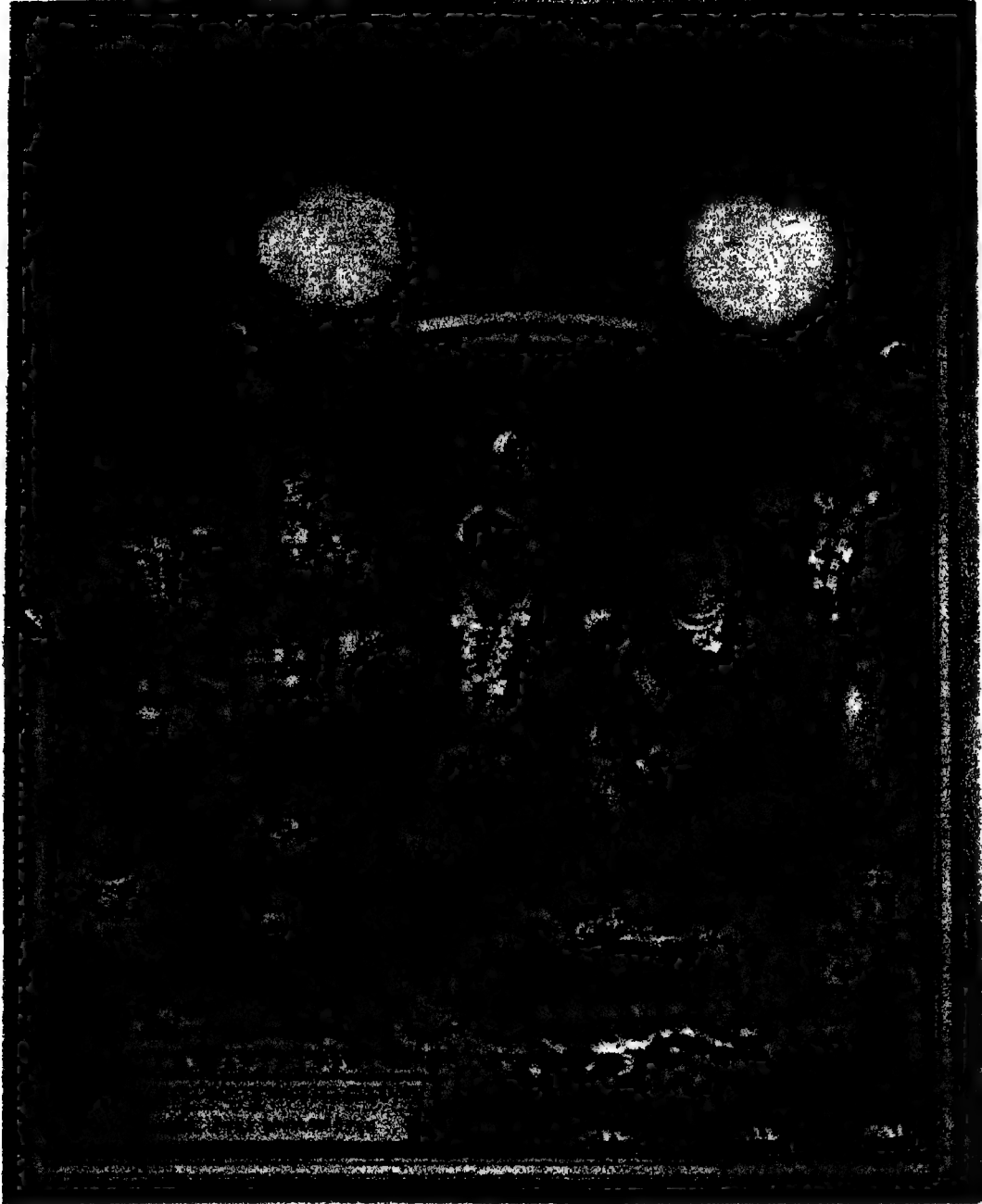
चित्रकूटके	पृष्ठसंख्या	नाशिक पञ्चवटीके	पृष्ठसंख्या
११३-मत्त-गजेन्द्र-मन्दिर (राघवप्रयाग) ।	... ३५८	१३६-नासिक-गोदावरी-दृश्य (१) ।	... ४०६
११४-मन्दाकिनीघाट ।	... ३५८	१३७- " " (२) ।	... ४०६
११५-राघवप्रयाग (संगम) ।	... ३५८	१३८-ताडका नाला ।	... ४०६
११६-पर्यंकुटी । (१)	... ३५८	१३९-पञ्चवटीमें श्रीराममन्दिर ।	... ४०६
११७- " (२)	... ३५९	१४०-गोदावरीपर नारायणेश्वरका मन्दिर ।	... ४०७
११८-परिक्रमामें तुलसीदासजीका मन्दिर ।	... ३५९	१४१-श्रीवृन्धकेश्वरमन्दिरका बाहरी दृश्य ।	... ४०७
११९-जानकीकुण्ड ।	... ३५९	१४२-गोदावरीका पुल ।	... ४०७
१२०-तुलसीदासजीका मन्दिर रामघाटके पास ।	... ३५९	१४३-रामकुण्ड और गंगामन्दिर ।	... ४०७
१२१-फटिकशिला ।	... ३६६	<b>मेतुवन्ध रामेश्वरके</b>	
१२२-जानकीकुण्ड (मन्दाकिनीका दृश्य) ।	... ३६६	१४४-रामेश्वर मन्दिरका स्तंभ ।	... ४१२
१२३-फटिकशिलाके सामनेका दृश्य ।	... ३६६	१४५-रामेश्वर मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार ।	... ४१२
१२४-कामतानाथ (पहाड़) ।	... ३६६	१४६-रामेश्वर मन्दिरका एक बाहरी प्रवेशद्वार ।	... ४१२
१२५-चरण-चिह्न (परिक्रमामें) ।	... ३६७	१४७-रामेश्वर मन्दिरकी प्रदक्षिणा ।	... ४१३
१२६-रामशय्याके ऊपर बना हुआ मन्दिर ।	... ३६७	१४८-राम-भक्तोष्ठा ।	... ४१३
१२७-राम-शय्या ।	... ३६७	१४९-लक्ष्मण-तीर्थ ।	... ४१३
१२८-भरत-कूप ।	... ३६७	<b>तुलसीदासजीके जीवन सम्बन्धी काशीके</b>	
१२९-भरत-मन्दिर ।	... ३६६	१५०-प्रह्लादघाट काशी ।	... ४१६
१३०-सीताकी रसोई ।	... ३६६	१५१-पं० गंगाराम जोशीका घर (बाहरी दृश्य) ।	... ४१६
१३१-हनुमानधारा । (१)	... ३६६	१५२-विनयपत्रिका लिखनेका स्थान 'बाहरी भाग' ।	... ४१७
१३२- " (२)	... ३६७	१५३-तुलसीघाट ।	... ४१६
१३३-अनसूयाजी ।	... ३६७	१५४-श्रीहनुमानजीका मन्दिर ।	... ४१६
१३४-कामतानाथगिरि । (२)	... ३६७	१५५-गोसाईजीका चित्र ।	... ४१७
<b>प्रयागके</b>		१५६-संकटमोचनका भीतरी दृश्य ।	... ४१७
१३५-भरद्वाज-आश्रम ।	... ३६७	१५७-संकटमोचनका बाहरी दृश्य ।	... ४१७

इनके अतिरिक्त दो हंडिंग-चित्र, छः मार्गचित्र, और दो लिपिचित्र हैं ।





कल्याण



श्रीराम पञ्चायतन ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णतत्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



मायानीतं माधवमाद्यं जगदादि, मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।  
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥

वर्ष ५  
खण्ड १

श्रावण १०८७ जुलाई १९३०

संख्या १  
पूर्ण संख्या ४९

## जीवनका फल

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप विलांचन-मीननकां जल है ।  
श्रुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिये पुनि रामहिको थल है ॥  
भाति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रनि रामसों, रामहिको बल है ।  
सबकी न कहैं, तुलसीके मते इतनो जग-जीवनको फल है ॥

—गोसार्थजी महाराज

## श्रीरामायण-माहात्म्य

सनत्कुमारके प्रति दैवर्षि नारदके वचन—

रामायणमहाकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम् । रामचन्द्रगुणोपेतं सर्वकल्याणासिद्धिदम् ॥

आदिकवि-कृत रामायण महाकाव्य सर्ववेदार्थ-सम्मत और सब पापोंका नाश करनेवाला तथा दुष्ट ग्रहोंको निवारण करनेवाला है। यह दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला, भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला, श्रीरामके गुणोंसे युक्त सब प्रकारके कल्याण और सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला रामायण धन्य है।

आदिकाव्य रामायण स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

जिसके पूर्व-जन्मके पाप निश्चयपूर्वक नष्ट हो जाते हैं उस मनुष्यको अवश्य ही रामायणमें अटल महाप्रीति उत्पन्न होती है। -

मानव-शरीरमें पाप तभीतक रह सकते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्रामायणकी कथा सम्यक् प्रकारसे नहीं सुनता।

रामायण सब दुःखोंका नाश करनेवाला, सब पुण्योंका फल प्रदान करनेवाला और सब यज्ञोंके फल देनेवाला है।

जो द्विज रामनाम-रत होकर रामायणमें लवलीन रहते हैं इस घोर कलियुगमें वे ही कृतकृत्य हैं।

जो मनुष्य नित्य रामायणमें लवलीन रहते हैं, गंगा-स्नान करते हैं और धर्ममार्गका उपदेश करते हैं वे मुक्त ही हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

जो जितेन्द्रिय और शान्त-चित्त हो रामायणका नित्य पाठ करता है वह उस परम आनन्दधामको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर उसे कभी शोक नहीं सताता।

क्षमाके समान कोई सार पदार्थ नहीं, कीर्तिके समान कोई धन नहीं, ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं और श्रीरामायणसे बढ़कर कुछ भी नहीं है।

जगत्का हित करनेवाले जो सज्जन रामायणमें लगे रहते हैं वे ही सर्वशाल्कार्थमें पण्डित हैं और धन्य हैं।

जिस घरमें नित्य रामायणकी कथा होती है, वह घर तीर्थरूप है और दुष्टोंके पापका नाश करनेवाला है।

रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।

संसारविषयान्धानां नराणां पापकर्मणाम् ॥

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

रामनाम ही मेरा जीवन है, नाम ही मेरा जीवन है। इस कलियुगमें संसारके विषयोंमें अन्धे हुए पापकर्मा मनुष्योंके लिये दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। ( स्कन्द पुराण )

भगवान् शिवजी कहते हैं—

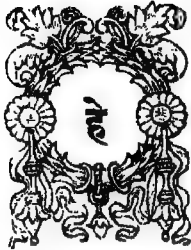
मुनि-दुर्लभ हरिभगति नर, पावहिं विनुहि प्रयास ।

जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि बिस्वास ॥

राम-चरन-रति जो चहै, अथवा पद-निर्बान ।

भावसहित सो यह कथा, करहिं सवन-पुट पान ॥

## तेरी हँसी



मेरे माथाराम राम ! तू बड़ा ही लीलात्मक है, तू खूब खेल खेलता है। मन-माना नाच भी नचाता है और अलग बैठा टुक-टुक देखता हुआ हँसा भी करता है। वह खिड़ तेरे हास्यका ही तो विकास है, परन्तु तेरा हँसना नित नये-नये रंग खाता है, तेरी एक हँसीमें सृष्टिका उदय होता है, दूसरीमें उसकी स्थिति होती है और तीसरीमें वह तेरे अन्दर पुनः विखीन हो जाती है। पर तू तीनों ही अवस्थामें हँसता है, इतनी उधेक-धुन हो जाती है, परन्तु तेरी हँसीमें कहीं विषमता नहीं आती। जोग तेरी हँसीके नाचा अर्ब करते हैं, उनका बैसा करना अनुचित भी नहीं है, क्योंकि जोगोंको भिन्न भिन्न रूप भासते भी हैं। वही तो तेरी हँसीकी विजयव्यता है, इसीमें तो तेरी मौजूका अजब नजारा है। किसीका जन्म होता है, तू हँसता है, वह खाता-खेलता और रंग-रागमें मस्त रहता है, तू हँसता है, फिर हाथ फेजाकर वह सदाके लिये सो जाता है—कन्दनकी करुण-ध्वनिसे विरापें रो उठती हैं, तू वहाँ भी हँसता ही है। तेरी हास्यलीला अनादि और अनन्त है !

जोग तेरे इस हास्यकी थाह लेना चाहते हैं, अपने परिमित और विकास-विषम-प्रस्तुत बुद्धिबलसे तेरी हँसीका रहस्य जानना चाहते हैं, वह बुद्धिका सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते-होते सर्वथा विरुद्ध हो जाना नहीं तो क्या है ? जबका जरा-सा गगन कण सब ओरसे परिपूर्ण पारावारहीन अल-निबिका अन्त जानना चाहता है, वह असम्भव भावना नहीं तो क्या है ? जबतक वह अलग सदा देखेगा तबतक सो पता लगेगा कैसे ? और कहीं पता लगानेकी जगनमें अन्दर चला गया तब तो उसकी अलग सत्ता ही नष्ट हो जायगी फिर पता लगायेगा ही कौन ? जो हँसने गया था, वही खो गया ! अतः हे महासहिस बुद्धि-मन मोहन मायिक-मुकुट-मखिराम ! मेरी समझसे तो तेरे इस हास्यके मर्म जाननेकी सामर्थ्य जगत्के किसी भी प्राणीमें नहीं है। हाँ, कोई तेरा खास प्रेमी तेरी कृपासे रहस्य समझ पाता है, परन्तु उसका

समझना व समझना हमारे लिये एक-सा है, क्योंकि वह फिर तुझसे अलग रहता ही नहीं—

सो जाने जेहि देहु ननाई। जानत तुमहि तुमहि होइ जाई ॥

जो तेरी मधुर मुसुकानपर मोहित होकर तेरी ओर चौकता है, और तेरे समीप पहुँच जाता है, उसे तो तू अपनी गोदसे कभी नीचे उतारता नहीं, और जो विषय-विमोहित हैं उनको तेरे रहस्यका पता नहीं !

आश्चर्य है कि इसपर भी हम तेरी लीलाओंके रहस्यो-द्घाटनका दम भरते हैं और जो बात हमारी स्थूल बुद्धिमें नहीं जँचती, उसे तेरे लिये भी असम्भव ही मान बैठते हैं ! हमारी इस बुद्धिपर—हमारे इस बाह्य-बापत्यपर तुझे क्या तो आती ही होगी क्यामय !

महर्षि बालमीकि, महर्षि वेदव्यास और गोसाईं तुलसीदासजी प्रभृति धन्य हैं, जिनकी बाणीसे तूने क्याकर अपनी कुछ लीलाएँ जगत्को सुनायीं। तेरी इन लीलाओं-के दिव्यालोकसे असंख्य प्राणियोंका तनोमय मार्ग प्रकाशित हो उठा, जिसके सहारे वे अनायास ही अपने गन्तव्य स्थान-पर पहुँचकर सदाके लिये सुखी हो गये ! परन्तु तेरी ये लीलाएँ हैं बड़ी ही विचित्र, अद्भुत और मोहिनी, नये-नये तार्किक विद्वानोंकी बुद्धि इनकी मोहकतामें पड़कर चकरा जाती है। अवरण ही जो जोग अज्ञा-भक्तिपूर्वक बुद्धिका प्यथाभिमान जोड़कर तेरी शरण हो जाते हैं, उनके विषेक-चपुओंके सामनेसे तेरी दुस्तर भाषाका आवरण हट जाता है !

प्रभो ! आज 'कल्याण'के पाँचवें वर्षके प्रारम्भपर तूने जो अपनी उन लीलाओंका कुछ गुणगान करवाया है, तेरी सबपर सदा रहनेवाली अपार कृपाके एक कणिका अनुभव ही इसमें कारण है। नाथ ! ऐसा कर दे, जिससे प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक समय, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक चेष्टामें तेरी नित्य अनन्त कृपाकी पूर्ण अखण्ड माधुरी मूर्तिके दर्शन होते रहें और फिर वह पूर्ण कृपाविग्रह कभी आँसोंसे ओझल न हो। सुना है, तेरी हँसीका रहस्य सभी जाना जा सकता है !

'तेरा ही'

## श्रीरामायण-तत्त्व-रहस्य

( गोवर्धनपीठाधीश्वर पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज )

शंकाकुटारायितवीक्षणाम्नां शंकारकत्वप्रदपूजनाभ्याम् ।

लंकाविपारातिरतिप्रदाभ्यां नमोनमः श्रीगुरुपादुकाम्भ्याम् ॥

पवनजरविमुक्तपद्मप्रमदजमुखविनुतांगिम् ।

त्रिभुवनजनततिपालं दिनमणिकुलमणिमीडे ॥



खिल संसारके डेवल समस्त मनुष्योंके ही नहीं, सभी जीवोंके मनमें स्वाभाविक यही एक इच्छा सर्वदा हुआ करती है कि हमें किसी भी समय, किसी भी स्थानमें, किसी भी अवस्थामें, किसी भी कारणसे, किसी प्रकारका भी तनिक-सा भी दुःख न हो। सब समय, सभी स्थानोंमें और सभी अवस्थाओंमें केवल सब प्रकारसे सुख ही हो। इसी स्वाभाविक इच्छासे प्रेरित होकर समस्त जीव अपनी अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, दैशिक, सामयिक आदि योग्यता तथा अनुकूलताके अनुसार अनेक प्रकारके प्रयत्नोंमें प्रवृत्त रहते हैं।

सुखकी इच्छाके साथ ही दुःख दूर करनेकी इच्छा अर्थात् केवल शुद्ध सुखकी चाह होना स्वाभाविक ही है। कारण, मनुष्यादि सभी जीवोंके मनका- तो यही स्वभाव है कि थोड़ेसे भी दुःखके प्राप्त होनेपर वह अपने अनुभवमें आये हुए और आते रहनेवाले अनेकानेक और बड़े-बड़े सुखोंका ज्ञानमात्र भी अनुभव न कर, उसी एक छोटे दुःखका अनुभव करता है और दुखी होकर एकमात्र उसी दुःख-निवृत्तिकी चिन्तामें पड़ जाता है।

मनका यह अनुभव और वृत्ति युक्तियुक्त भी है। कारण, दुःख इतनी बुरी वस्तु है कि जैसे एक जोटेमें भरकर रखे हुए दूध या जलमें एक दो बूँद विष डाल देनेपर वह सबका सब दूध या जल विष ही बन जाता है, उसमें बहुत-से दूध या जलका जल-सा भी प्रभाव नहीं रहता, वैसे ही अनेक तथा अनेक प्रकारके बड़े-बड़े सुखोंमें जब थोड़ा-सा भी दुःख मिल जाता है तो वे सारे सुख दुःखमय ही बन जाते हैं, फिर उन बड़े बड़े सुखोंका तनिक-सा भी प्रभाव नहीं रह जाता। इसीलिये यह अनुभवकी बात हुआ करती है कि जबतक वह दुःख दूर नहीं होता तबतक मनमें शान्ति नहीं रह सकती और भगवद्गीतामें आनन्दकन्द

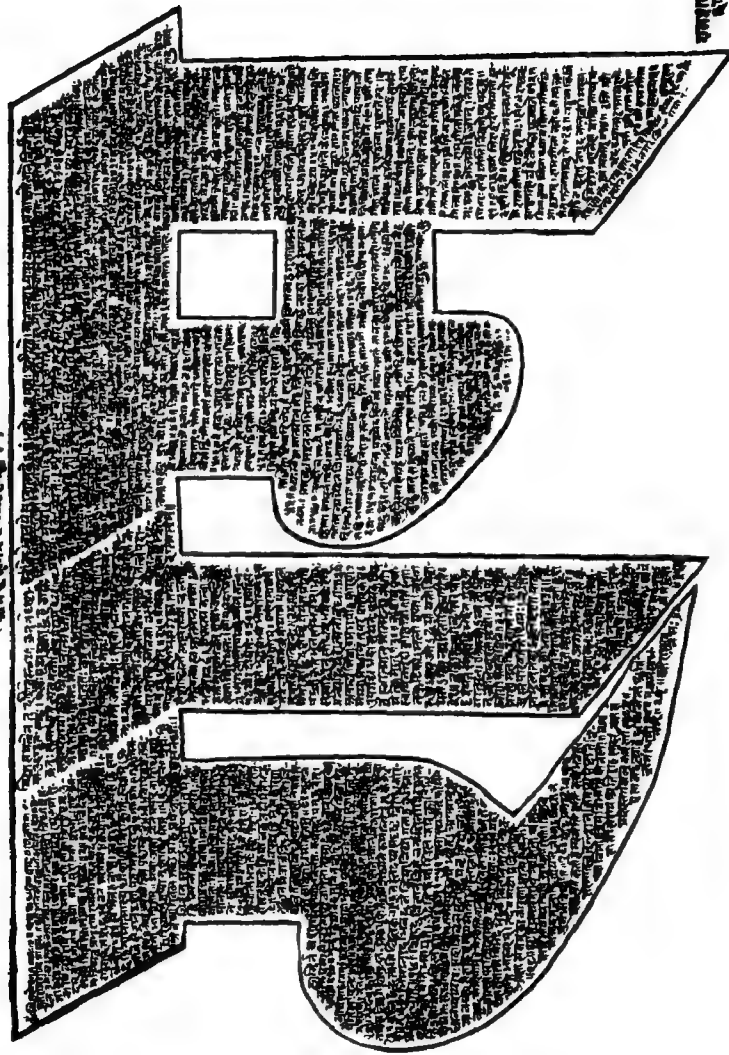
परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीमुखसे निकले हुए 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' इस वाक्यानुसार जहाँ अशान्ति है, वहाँ सुख कभी नहीं हो सकता।

इस विषयपर विचार करना चाहिये कि हमजोग मनुष्य-योनियोंमें आकर अपनी मनुष्यजातिको पशु, पक्षी आदि सबसे श्रेष्ठ क्यों मानते हैं? जबसभी जीव मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि और कीट-समानरूपसे ही दुःख दूर करना और सुख प्राप्त करना चाहते रहते हैं, अर्थात् जब सबका ध्येय तथा लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है, तब उन सब जातियोंकी अपेक्षा मनुष्य जाति किस अंशमें श्रेष्ठ है, जिनके आधारपर मनुष्य अपनेको सर्वश्रेष्ठ माना करता है। यह केवल भ्रमानी मनुष्योंका ही अभिमानजनित कथन नहीं है कि मनुष्ययोनियोंमें सर्वश्रेष्ठ है, जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य भगवान् ने भी अपने 'विवेकचूडामणि' ग्रन्थमें मङ्गल श्लोकके पश्चात् प्रथम श्लोकमें ही 'जन्तूनां नरजन्म दुर्लभम्' इत्यादिसे सर्वप्रथम यही विषय बतलाया है और भीमज्जागवतके पञ्चम स्कन्धमें तो मनुष्ययोनिको देवयोनिकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ बतलाया गया है। पर हमजोगोंका इननेसे ही समुद्र न होकर कि हमारी मनुष्यजाति सर्वश्रेष्ठ है, यह विचार भी करना चाहिये कि यह क्यों श्रेष्ठ है और हमें उस श्रेष्ठताको किसप्रकारसे सफल करना होगा?

इस विचारमें उतरनेपर यह तो स्पष्ट है कि शारीरिक बल आदि बाह्य अंशोंमें मनुष्य अपनी श्रेष्ठताका दावा नहीं कर सकता, क्योंकि इन अंशोंमें तो उससे श्रेष्ठ बहुत-सी योनियाँ पशु पक्षी आदिमें भी पायी जाती हैं। कदाचित् मनुष्य यह समझें कि हम सुख-दुःखके सम्बन्धमें, अन्य जीवोंके सदृश विचार करते हुए भी बन्धनकी निवृत्ति वा मोक्ष चाहनेमें विशेषता रखते हैं ( जैसे आजकल बहुतसे लोग यह दावा करते हैं कि परराज्यकी निवृत्ति या स्वायत्तता खयाल करना पाश्चात्योंकी विशेषता है इत्यादि ) तो यह भी बड़ी खूब ही है, क्योंकि सुखचा तो जन्तुमात्रकी

कल्याण

श्री  
राम-गीता ।  
(संस्कृत-प्रकरणम्) ।



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

G. P. GORAKHPUR.



इसी परमावरण कार्यमें हम लोगोंको सहायता देनेके लिये, सर्वज्ञ महर्षियोंने अपनी विशाल तपस्याके बलसे अनुभव किये हुए बड़े-बड़े तपोंको हमारे सामने, अधिकार-भेदके अनुसार, अनेक तथा मिश्र-मिश्र प्रकारके शास्त्र-ग्रन्थोंके रूपमें रचकर, महान् उपकार तथा अनुग्रह किया है। इन ग्रन्थोंमें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भारत आदि अनेक ग्रन्थरत्न जगद्विख्यात हैं जो अत्युत्तम ज्ञानीसे लेकर अति पात्र और अधमाधम मनुष्य तक सब प्रकारके अधिकारियोंके अपनी-अपनी योग्यता और अधिकारके अनुसार, कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों मार्गोंपर कुछ-न-कुछ प्रकार काजकर, इहलोक तथा परलोकमें परम कल्याणकी प्राप्तिमें अत्यन्त सहायता देने-वाले हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने उपदेश दिया है। गीताके प्रथमाध्यायमें अर्जुनरूपी नरके विषादयुक्त रहनेसे तथा उस अध्यायके 'अर्जुन-विषाद-योग' नामसे यह स्पष्ट है कि सहस्रों प्रकारके भ्रमोंमें पड़े हुए, आगे पीछेकी परस्पर विरुद्ध बातोंका समन्वय न कर सकनेके कारण दुःखी होकर रोते रहना ही नरका लक्षण है। भगवान् श्रीकृष्णरूपी नारायणके समस्त उपदेशसे तथा 'भगवद्गीता' शब्दमें भी यह स्पष्ट है कि सुख-दुःख, कामाकांक्ष तथा जय-विराजयकी चिन्ता छोड़कर निष्काम-भावसे अपने कर्तव्यको केवल कर्तव्य-बुद्धिसे ही करते हुए, नाचते-खेलते-गाते रहना, अर्थात् सभी अवस्था और क्रियाओंमें सभी शान्ति और आनन्दमें निमग्न रहना ही नारायणका लक्षण है, अतएव यदि किसी मनुष्यको सब दुःखों तथा बन्धनोंसे मुक्त होकर, अपने लक्ष्यरूपी नित्य, शुद्ध, शुद्ध, सुख, सच्चिदानन्दधनस्वरूपी परमात्मरूप परमार्थस्वरूपमें पहुँचना हो, अर्थात् यदि किसी नरको नारायण बनना हो, तो उसे भी, अर्जुनरूपी नरकी तरह श्रीकृष्णरूपी नारायणको ही अपने रथका सारथि बनाकर, उससे यह कहना चाहिये कि—

'यच्छ्रेयः स्यात्सिद्धिर्वा ब्रूहि तन्मै

विश्वस्येऽहं शायि मां नाना प्रपन्नम् ॥'

'मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरण हूँ, मेरे लिये जो कुछ निश्चित श्रेय हो वही बतलाइये।' तदनन्तर नारायणसे यह केवल अपने लिये बलिष्ठ भगवद्भारवागत भक्तमात्रके लिये यह अद्वितीय अमय दान प्राप्त करना योग्य है, कि—

'सर्ववर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापभ्यां मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'

'कौन्तेय ! प्रतिजानीहूँ न मे भक्तः प्रणश्यति ।'

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'

'समस्त कर्मोंके आश्रयको त्याग केवल एक मुक्तसच्चिदानन्द-धन बाहुदेवकी शरण हो जा । 'मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता न कर ।' 'हे कौन्तेय ! यह निश्चयकर कि मेरे भक्तका नाश नहीं होता ।' 'जो अनन्य भक्त मुझे चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन नित्य मुझमें खगे हुए पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ ।'

इसप्रकार उसीके उपदेशानुसृतका अवयव करके अन्तमें उसके—

चिद्विद्वत्पुत्रं पार्थ त्वयैकाग्रिणं चेतसा ।

चिद्विद्वानसंमोहः प्रनश्यति धनंजय ॥

—इस प्रश्नको सुनकर हृद निश्चयके साथ उसको यह जवाब देते हुए कि—

नमो माहः स्मृतिर्लब्धा त्व-प्रसादा-मथाच्युत ।

स्थिताऽस्मि गतरजोदहः करिष्ये न चन तन ॥

'हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्थिति प्राप्त हो गयी, मैं सन्देशरहित होकर स्थित हूँ, अब आपकी ही आज्ञाका शासन करूँगा।' अज्ञा-भक्ति-प्रेमके बलसे निर्भय तथा मिश्रित होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी जगाम छोड़कर, उसीकी आज्ञानुसार अपने वर्णाश्रमादि अधिकारसिद्ध कर्तव्यकर्मोंको पूरा करके, इस निबन्धके अनुसार कि—

भक्त्यभ्यसनाः पार्थ यदा युत्तमदाश्रयः ।

प्रसज्य सज्य भां यथा प्राप्यसि तन्मृणु ॥

भक्तिसमेत कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा संशय, विकल्प, विपरीतभावनारूपी दोषजवरहित और अज्ञानविज्ञानको पाकर मोक्षकी प्राप्ति करनेमें दिव्य प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि—

यत्र योगश्चरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीव्रिजयो भूतिधुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

—जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्णरूपी नारायणको अपने सारथि-रूपसे आगे करके धनुर्धारी पार्थरूपी नर पीछे रहकर युद्ध

करता हो, वहाँ लक्ष्मी, जय, विभूति और भीति आवश्यक ही रहेंगे। यही गीतोंक उपदेशका सारांश है।

इसी प्रकारसे नर होकर नारायण बननेके लिये, अर्थात् रोना छोड़कर गाते रहनेके लिये, नारायणको ही करने शरीरादि रूपी रथका सारथि बनाकर, अज्ञा, भक्ति और प्रेमके बलसे निर्भय तथा निश्चिन्त होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी लगाम सौंपकर, उसीकी आज्ञानुसार अपने बर्णोष्मादि अधिकारसिद्ध कर्तव्योंको निःस्पृहता और केवल कर्तव्य-बुद्धिसे पूरा करके, भक्तियुक्त कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा ज्ञान और मोक्ष प्राप्त करनेमें बिजली होना होगा।

श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान्ने श्रीकृष्णचन्द्रादि रूपसे इसी तरहको अपने इतिहास तथा जीवनचरित्रसे दिखाया है कि नारायणका यही लक्ष्य है जो ऊपर बताया गया है।

श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान्ने श्रीरामचन्द्ररूपसे पधार कर प्रत्येक व्यवहारमें अपनी आदर्शभूत जीवन-प्रणालीसे मनुष्यजातिको यह बखलाया है कि मनुष्यमात्रको किस-प्रकार संसारके अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करते हुए धर्मका पालन करना है। कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों कायकोंकी दृष्टिसे भी भगवान् श्रीरामचन्द्रका इतिहास हमलोगोंके लिये अत्यन्त आवश्यक और उपयुक्त शिक्षा देता है।

अनेक प्रकारके सम्बन्धियोंके साथ व्यवहारमें यथोचित सदाचरणकी दृष्टिसे देखें तो भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपने गुरुजन, माता, विमाता, पिता, भ्रातृगण, सहायक, सेवक, सर्वसाधारण प्रजा आदि सभी सम्बन्धियोंके साथ यहाँतक कि शत्रुओंके साथ भी ऐसा सुन्दर आदर्श व्यवहार किया है जो बात-बातमें हम लोगोंके लिये अत्युत्तम रीतिसे शिक्षाप्रद है और जिसके विशेष विस्तारपूर्वक वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीरामचन्द्र-सम्बन्धी ये सभी बातें जगत्प्रसिद्ध हैं।

परन्तु इस प्रसंगमें इस बातके लिये विशेष रूपसे ध्यान देना होगा कि भगवान्की दया तथा प्रेमके पात्र बननेके लिये प्रेम तथा भक्तिके अतिरिक्त और अन्य किसी भी प्रयोजक लक्ष्यकी आवश्यकता नहीं है। इस विषयमें श्रीरामचन्द्रजीके माता, पिता, गुरु आदि खास सम्बन्धियोंके अतिरिक्त, अनागरिक अरथववासी गृह, पशुरूपमें आये हुए मझावीरादि वानरगण और राजस जात्यन्तर्गत विभीषण

आदिका व्यवहार कराना पर्याप्त है। विस्तृत वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं।

कर्मकायके अन्तर्गत चरित्र-धर्मकी खास दृष्टिसे देखा जाय तो उसमें अपने सुख-दुःखादिकी परवा न करते हुए, केवल धर्म-बुद्धिसे तथा बिना ही द्वेष शत्रुनिवर्हण करना और प्रजापालन करना ही मुख्य है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनों अंशोंमें भी अनुपम ही थे।

शत्रुनिवर्हणमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी वाक्यावस्थामें किये हुए ताडकासंहारसे लेकर अन्तमें रावणादिके संहारतक इतरहित हो केवल धर्मबुद्धि और सत्यप्रतिज्ञाके साथ अद्वितीय शूरता और पराक्रमसे युद्ध करनेवाले ही थे। इस बातका पता इसीसे लगता है कि जब श्रीलक्ष्मणजी इन्द्रजित्को किसी प्रकार किसी भी अस्त्र-शस्त्रादिसे परास्त न कर सके तब उन्होंने देन्द्राक्ष हाथमें लेकर कहा कि—

धर्मात्मा मरुमन्त्रश्च गतो दशरथिर्महि ।

शरीरं चाप्रतिहृन्मम औन जहि गर्जनाम् ॥

‘यदि दशरथनन्दन श्रीराम धर्मात्मा, सत्यसन्ध और रणमें प्रतिद्वन्द्वी न रहनेवाले हों तो यह बाण इन्द्रजित्का बंध करे।’ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मात्मता, सत्यप्रतिज्ञा और अद्वितीय युद्धवीरतापर मन्त्ररूपी शपथ करके छोड़े हुए एक ही बाणसे उसी शपथके बलसे उन्होंने इन्द्रजित्को मार डाला था। भगवान् पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्रजीने भी श्रीभगवद्गीताके दशमाध्यायमें अपनी विभूतियोंके वर्णनके प्रसंगमें ‘रामः शस्त्रयुतामहम्’ कहकर स्पष्ट किया है कि शस्त्र-धारियों अर्थात् युद्धवीरोंमें श्रीरामचन्द्रजी सर्वोत्तम थे।

प्रजापालनके विषयमें तो ये जगत्प्रसिद्ध बात है कि श्रीरामचन्द्रजीने प्रजाके मनमें शंकाकी सम्भावनासे भी उसे दुःख न होने देनेके उपायसे, उस भगवती श्रीसीतादेवीके वियोगकी परम असह्य दुःखवेदनाको सहा, जो अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी और जिसके लिये अरथव तथा लङ्कामें भगवान्ने भयंकर कष्ट उठाये थे।

श्रीरामचन्द्रजीका शासन इतना धर्मपूर्ण था कि उनके राज्यमें प्रजाको दुर्मिष्ट, अकालवृष्ट्यु आदि आज-कलकी दृष्टिसे तो अतिसाधारण दुःख भी कभी नहीं हो सकते थे।

जब इस नियमके एकमात्र अपवादस्वरूप एक ब्राह्मण बाणकी कृत्य हुई और उसका पिता भगवान्के राजभवनके

द्वारपर पहुँचकर खरी-खोटी सुनाने लगा कि राजाके अधर्मसे ही हमारे बालककी अकालमृत्यु हुई है इत्यादि, तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको राजनिन्दा करनेवाला राजद्रोही समझकर न तो दण्ड दिया और न उसका कोई खयडन या प्रतिबाद ही किया बल्कि अत्यन्त नम्रताके साथ वह स्वीकार किया कि 'यद्यपि हमने स्वयं ऐसा कोई पाप नहीं किया है, तो भी यदि हमने अपने राज्यमें ऐसा कुछ कुकर्म होने दिया हो जिससे इस ब्राह्मणके बालककी यह अकालमृत्यु हुई है, तो यह अनर्थ भी हमारे ही दोषसे हुआ है, क्योंकि राजाकी हैसियतसे हमारा ही यह कर्तव्य है कि हम स्वयं न्यायाचारी रहते हुए राज्यमें भी पापाचरण न होने दें। अतएव हम प्रत्येक दिशामें घूमकर पता लगायेंगे कि राज्यमें कहाँ क्या पाप हुआ है जिसके कारण हमारे राज्यमें एक बार भी अपवादरूपसे भी एक अकाल-मृत्युका प्रसंग आया।' तदनन्तर भगवान्ने उस पापका पता लगाकर उसे दूर भी कर दिया, इस विषयपर विशेष बिस्मयकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके समयके बाद त्रेता और द्वापर इन दोनों युगोंकी समाप्ति होकर तीसरे युगमें पाँच हजार एकतीस वर्षके बीच जानेपर भी, अब भी, जय-जय तथा जहाँ-जहाँ आदर्श राज्यशासन तथा प्रजाके सुखका जिक्र करनेकी आवश्यकता होती है, तब-तब और तहाँ-तहाँ सारे भारतवर्षमें यही प्रथा है कि लम्बे-लम्बे वर्णन न करके, आदर्श आदि छोटें शब्दोंसे भी काम न लेकर, केवल 'रामराज्य' शब्दसे ही बल्कि अपने पूरे तात्पर्यको स्पष्ट कर देते हैं और श्रोता भी उसका अर्थ समझ लेते हैं।

आचार-व्यवहार, युद्धवीरता, धार्मिक शासन आदिके पश्चात् जब उपासना और ज्ञानकाण्डकी दृष्टिसे देखते हैं, तो श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा केवल पुराणोंसे ही सिद्ध नहीं है, (जिनपर आजकलके सुधारक अभद्राके साथ कटाघ किया करते हैं) सीतोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, रामतापिन्युपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद् आदि वेदान्तकी खास-खास मूल श्रुतियोंसे भी प्रसिद्ध है।

उपासनाकाण्डकी दृष्टिसे भी श्रीरामचन्द्रजीका माहात्म्य पुराणोंसे तथा उपर्युक्त उपनिषदोंमें यहाँ तक स्पष्ट है कि भगवान् श्रीशंकर भी स्वयं सर्वदा राम-नाम रटते हुए श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं—

राम रामति रामिति रमे रमे ममोदये ।

सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

—और मुक्तिपुरी श्रीकारीचेत्रमें श्रीविधनाथरूपसे अधिष्ठाता होकर, वहाँ मरनेवालोंके दक्षिण कर्णमें अपने श्रीमुखसे ही रामतारक-मन्त्रोपदेश देकर उनको मुक्ति देते हैं इत्यादि। ये सभी बातें इतनी प्रख्यात हैं कि इनका केवल उल्लेख ही पर्याप्त है, वर्णनकी आवश्यकता नहीं।

अब कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्डकी सम्मिश्रित दृष्टिसे अर्थात् अत्यन्त उपयोगी आध्यात्मिक दृष्टिसे भी विचार करना चाहिये कि श्रीरामावस्थाका बताया हुआ आध्यात्मिक तत्त्व कौन-सा है? परम लक्ष्य क्या है? और उसके साधन क्या क्या हैं? इस विषयपर भगवान् जगद्गुरु श्रीआदिशंकराचार्य महाराजजीने अपने 'आत्मबोध' नामक छोटे परन्तु अति सुन्दर वेदाभ्युपनिषद्-ग्रन्थमें इस एक ही श्लोकसे दिग्दर्शनमात्र करा दिया है। यथा—

नीलो मोहार्णवं हृत्वा कामक्रोधादिराक्षमानः ।

शान्तिमेता समायुक्तः परमार्थमा विराजते ॥

श्रीमद्भगवद्गीताके

यश्चात्मनि निवेष्टः शान्तिं प्राप्नुयति तत्र मानसः ।

शान्तिमेव न मनसुः ..... ॥

इन लक्षणोंके अनुसार जो आत्माराम बना हो, वही आत्मारामरूपी श्रीराम अज्ञानरूपी समुद्रसे पार होकर काम-क्रोधादिरूपी राक्षसोंका बध कर, शान्तिरूपी सीताजीके साथ विराजता है। इसके तात्पर्यका निम्नलिखित विवरण है—

सीतोपनिषद्में बतलाया गया है कि श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीरूपी श्रीसीताजी सखिदानन्दकन्द परमात्मस्वरूपी भगवान्की चिद्रूपिणी महाशक्ति हैं। वह महाशक्ति आनन्दस्वरूपी भगवान्के साथ रहनेवाली शान्तिस्वरूपिणी महाशक्ति होती है। इस शान्तिस्वरूपिणी सीताजीको यदि काम-क्रोधादिरूपी राक्षसोंका अधिपतिरूपी अहंकार-स्वरूपी रावण अपनाना चाहे और ठठाकर ले भी जाय, तो भी शान्तिस्वरूपिणी श्रीसीताजीका तो आत्मारामरूपी श्रीरामजीके ही साथ रहना सम्भव है, अन्य किसीके साथ कदापि नहीं। अतः काम-क्रोधादि राक्षसोंके राजा अहंकाररूपी रावणके साथ मिलकर उसकी होकर रहना शान्तिरूपिणी सीताजीके लिये सर्वथा असम्भव और असम्भव है। इसीलिये शान्तिरूपिणी सीताजी रावणका खोर तिरस्कार ही किया करती हैं क्योंकि वह तो—'रावणो लोकरावणः' है, अर्थात् सारी दुनियाको जगातार दुःख-

पर दुःख देता हुआ, उसे हटाते ही रखनेवाला अहंकाररूपी राक्षसेश्वर है जिसके साथ शान्ति कदापि ठहर नहीं सकती ।

अतएव श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धके रासपञ्चाध्यायीमें ऐसा एक प्रसंग आता है कि अपनेको भूलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ नाचती, खेलती और गाती हुई आनन्दमें निमग्न हुई श्रीकृष्णके दिव्य दर्शन करनेवाली गोपियोंके मनमें जब अहंकार आ गया, तब भगवान् एकदम अन्तर्धान हो गये । क्योंकि अहंकार और परमात्म-दर्शन एक साथ कभी नहीं हो सकते, परन्तु जब भगवान् के गुण हो जानेपर गोपियाँ बड़े दुःखमें पड़कर उनकी खोजमें लगती हैं और—तन्मनस्कास्तदात्मिकाः उन्हींके सतत ध्यानसे पुनः अपनेको सर्वथा भूलकर तद्रूप बन जाती हैं, तब—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

—भगवान् हँसते-हँसते फिर प्रत्यक्ष हो जाते हैं, क्योंकि अहंकारके छूट जानेपर परमात्माका दर्शन निर्विघ्नतासे हो सकता है !

इसीलिये श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धमें यह बात भी हुई कि परमात्म-रूपी भगवान् अवतीर्थ होनेके बाद अहंकार-रूपी कंससे कभी मिलते ही नहीं और जब मिलते हैं तब उसे मार डालनेके लिये ही मिलते हैं । अतएव शान्ति-रूपिणी सीताजी अहंकाररूपी रावणसे मिल ही नहीं सकती !

अब यह देखना है कि शान्तिरूपिणी सीताजी आत्मारामरूपी श्रीरामके साथ किसप्रकारसे मिलती हैं ? पहले तो श्रीहनुमान्जीके द्वारा सीताजीका पता लगाया जाता है । आध्यात्मिक दृष्टिसे यह हनुमान् कौन-से तत्त्व है ?

हनुमान्जी जिज्ञासा या विचाररूपी आध्यात्मिक तत्त्व हैं, विचारके द्वारा आत्मारामको यह पता लग सकता है कि शान्ति कहाँ रहती है ? हनुमान्जी (विचार) से ही पता लगता है कि सीताजी (शान्ति) को लंकामें (अर्थात् लीयते यस्मिन्कर्मणि तद्यथा भवति तथा लं, कः=आनन्दः, आ=वृत्तिः, अर्थात् नश्वर आनन्दकी वृत्तिमें) रावणने (अहंकारने) रख छोड़ा है । वहाँ (लंकामें) रखे जानेपर भी सीताजी (शान्ति) किसी विपरीत स्थानमें नहीं रखी जाती, वह केवल 'अशोक' वनमें (अर्थात् दुःखलेशरहित और सन्तत-धाराप्रवाहरूपी स्वरूपभूत आनन्दमें ही) स्थित रहती है, इसका कारण यह है कि अन्य अर्थात् विकाररूपी ('यज्जन्यं

तदनित्यम्', इस न्यायसे) नश्वर आनन्दमें यथार्थ शान्ति कभी नहीं रह सकती, क्योंकि उसका तो वास्तविक स्थान अशोक (आनन्द) का वन ही है ।

इसके सिवा श्रीमद्भागवतमें यह भी बतलाया जाता है कि जिस सीताजीको रावण ले गया था वह तो ज्ञाया-सीता ही थी । असली सीताजी तो श्रीरामजीकी अग्निमें छिप गयी थी । इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि जिस शान्तिको अहंकाररूपी रावण ले जाकर नश्वर आनन्दरूपी लंकामें रखकर देखता है, वह तो शान्तिकी ज्ञाया वा आभासमात्र है । असली शान्ति तो आत्मारामरूपी श्रीरामकी ज्ञानरूपी अग्निमें ही छिपी रहती है । अहंकाररूपी रावणको वह जरासी भी नहीं मिल सकती । उठाकर ले गयी हुई उस ज्ञाया-सीताको भी जब लंका (अर्थात् नश्वर आनन्दवृत्ति) में विचाररूपी हनुमान्जी देखते हैं तो वह ज्ञाया-सीता (अर्थात् शान्तिकी ज्ञाया वा आभास) भी बाहरकी वस्तुओंमें न होकर लंकामें भी (अर्थात् नश्वर आनन्दमें भी) अशोकवनमें अर्थात् भीतरके मूलस्वरूप-रूपी सच्चिदानन्दके वन या भवदारमें ही दिखायी पड़ती है भगवती श्रुति भी कहती है—

तस्यैव मात्रामुपजीवन्ति ।

इसप्रकार विचाररूपी हनुमान्जीने शान्त्याभासरूपी ज्ञाया-सीताके रहनेके स्थानका पता लगाकर आत्मारामरूपी श्रीरामको बतलाया । अतएव हनुमान्जीका यह प्रसिद्ध सूत्र आध्यात्मिक दृष्टिसे भी ठीक है कि—

अजनानन्दनं वीरं जानकीशोकनारानम् ।

कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लंकाभयङ्करम् ॥

अज्ञाना = बुद्धि (अनक्ति, अज्यते चेति कर्तरि कर्मणि च ल्युट्) । बुद्धिका पुत्र तथा बुद्धिको आनन्द देनेवाला तो विचार ही होता है । जो काम अविचारसे किये जाते हैं, उनसे बुद्धिको उस समय कितना भी आनन्द हो, परन्तु पीछे तो भयङ्कर पश्चात्तापका दुःख ही भोगना पड़ता है ।

वीरं अर्थात् (वि+ईर) प्रेरक । विचारसे ही यथार्थ हितके लिये प्रेरणा होती है । विचार ही वास्तवमें वीर होता है । अविचारसे यद्यपि तात्कालिक विकाररूपी वीरता होती है पर अन्ततः रहनेवाली यथार्थ वीरता नहीं होती ।

जानकी अर्थात् (जायते इति जनः, जनश्चासौ कश्च अर्थात् आनन्दश्च जनकः) अन्य आनन्दसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि-

वृत्ति। अन्य आनन्दसे उत्पन्न हुई वृत्तिमें जो दुःख होता रहता है, उसका भी विचारसे ही नाश हो सकता है।

कपीश अर्थात्—(कं आनन्दं पिबन्तीति कथयः, अर्थात् दश इन्द्रियाणि मनश्च, तेषां ईशः) इन्द्रियोंको तथा मनको अपने वशमें रखनेवाला। यदि इनको वशमें न रखा जाय, तो विचार हो ही नहीं सकता, फिर तो विकारोंका ही राज्य हो जाता है। अथवा (कपिः आनन्दपाथी तत्त्वतः परमेश्वरः स एव ईशो नियन्ता यस्य सः) केवल परमात्माका शासन माननेवाला विचार चाहिये, और किसी पदार्थके वशमें आ जाय तो भी यथार्थ विचार नहीं हुआ।

अक्ष शब्दका एक अर्थ तो इन्द्रिय है। अतः 'अक्षहन्ता' शब्दका अर्थ कपीश शब्दके पहले बताये हुए अर्थमें ही आ गया है। 'अक्ष' शब्दका दूसरा अर्थ (घृत-क्रीडामें साधनरूपी अक्षोंसे लड़ना करके) होता है संशयात्मक। अतः अक्षहन्ता जाने संशय (और उसके साथ उपलब्धविधया विकल्प और विपरीत भावना) का नाशक विचार तबतक पका नहीं हो सकता, जबतक संशयादिका मूलसे ही निर्मूलक न हो जाय। बल्कि श्रीमन्नगवद्गीतामें तो श्रीभगवान् ने यहाँतक कहा है कि—

‘संशयात्मा विनश्यति’

इसीलिये विचाररूपी हनुमान्जीको सबसे पहले अहंकाररूपी राक्षसके पुत्र संशय (विकल्प और विपरीत भावना) रूपी अक्षकुमारको मार डालना पड़ता है।

लड़का यानी नश्वर आनन्दवाली चित्तवृत्ति। इसका तो विचारसे अवश्य ही नाश हो जाता है और शारवत (स्वरूप भूत) सच्चिदानन्दवाली बुद्धिवृत्तिमें पहुँचनेका यही साधन है। अतएव विचाररूपी हनुमान्जी नश्वर आनन्दवाली चित्तवृत्तिके भयङ्कर शत्रु होते हैं।

अब स्पष्ट हो गया कि उपर्युक्त लड़क्यावाले विचारसे (जिसका नाम हनुमान्जी है) ही शान्तिका (जिसका नाम सीताजी है) पता लगाया जा सकता है। अन्य किसी साधन, उपाय या युक्तिके नहीं। और उस विचारके लिये भी, जिससे शान्तिका पता लगाना हो, सर्वप्रथम रागद्वेषादि मनोमांसिकत्वसे रहित होना अर्थात् अज्ञानरूपी समुद्रसे पार होना पड़ता है, क्योंकि रागद्वेषादिके साथ किये हुए विचारसे शान्तिका पता नहीं लग सकता। इसलिये हनुमान्जीको सबसे पहले समुद्र पार होना पड़ता है।

परन्तु यह अवस्था केवल विचार-व्यापी बात है, इसलिये हनुमान्जी अन्तरिक्षमें ही कूद पड़ते हैं, पक्षे पुच्छसे नहीं जाते, परन्तु जब सीताजीका पता लगनेपर उसकी प्राप्तिके लिये जाना होता है, तब तो साधनरूपी पक्षी सेतुसे ही जाना होता है। अर्थात् पहले मनोरूपी अन्तरिक्षसे ही विचाररूपी हनुमान्जी चढ़ते हैं परन्तु जब शान्तिरूपी सीताजीका पता लग जाता है और उसकी प्राप्तिके लिये आत्मारामरूपी रामजीका जाना होता है तब साधनरूपी पक्षी सेतु बाँधकर उससे ही जाते हैं, क्योंकि उक्त लड़क्यावाले विचाररूपी हनुमान्जीसे शान्ति सीताजीका पता लगानेसे ही, आत्मारामरूपी रामजीका कार्य पूरा नहीं हो जाता, अर्थात् केवल इस सिद्धान्तके ज्ञान (Theoretical knowledge) से ही,—कि, ‘शान्तिरूपी सीताजीका आभास भी अशोकवनमें रहा करता है’ काम पूरा नहीं हो जाता। आत्मारामरूपी रामजीको स्वयं आकर, पक्षी साधनरूपी सेतुसे अज्ञानरूपी समुद्र पारकर काम-क्रोधादि परिवार समेत अहंकाररूपी राक्षसका वध करके, शान्तिरूपी सीताको प्राप्त करना पड़ता है।

श्रीरामायणकी कथामें इसी प्रकारसे अन्यान्य सब पदार्थोंके भी आध्यात्मिक तत्त्वरूपी अर्थ होते हैं (जैसे श्रीमन्नगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीमन्महाभारत आदिमें धतराष्ट्र सञ्जय, द्रोण, भीष्म कृप, पाण्डु, कुन्ती, माद्री, कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रुपद, द्रौपदी, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, श्रीकृष्ण, देवकी, बसुदेव, सुभद्रा, अमिमन्यु, अश्वत्थामा, जयद्रथ, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, झारका, बिराट्, हरिहार, इषिकेश, शङ्ख, चक्र आदि सब पदार्थोंके सुन्दर-सुन्दर आध्यात्मिक तत्त्वरूपी अर्थ होते हैं)। परन्तु विस्तार-भयसे उन सबका उल्लेख नहीं किया जाता। यहाँ जो बातें ऊपर बतायी हैं, वे तो केवल स्थानीयुक्ताकन्यायसे दिग्दर्शनमात्रके लिये हैं।

इसप्रकार सिद्ध हो गया कि आचार, व्यवहार, शूरता, प्रजापालन, कर्मकाय, उपासनाकाय, ज्ञानकाय, आध्यात्मिक तत्त्वादि सभी दृष्टिोंसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हमजांगोंके लिये सरल-नामोच्चारणादिजन्य अनन्त पुण्य देनेके अतिरिक्त, अवश्य ही शिखण्डी और बड़े-बड़े गहन-से-गहन जौकिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वोंसे भरी हुई है।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे श्रीरामायण और श्रीरामचन्द्रजीके साथ हमलोगोंका क्या सम्बन्ध होना चाहिये ।

श्रीमद्रामायणके साथ हमारा अद्भुत भक्ति और नम्रतासे शिष्या होनेवालोंका ही सम्बन्ध होना चाहिये और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ तो वही सम्बन्ध होना चाहिये कि हम अपने हृदयको विष्कुल साखी और शुद्ध करके, भगवान्को हृदय-सिंहासनपर बिठाकर अद्भुत, भक्ति, प्रेम और आत्मसमर्पणके भावसे उनको सेवा करनेवाले बन जायें ।

इस सम्बन्धमें भगवती श्रीराधाजीका एक महान् उपाख्यान सर्वदा स्मरणीय है । यद्यपि श्रीराधाजी भगवान्की लब्ध प्रेमेसे सेवा करती थीं तथापि अपने अहंकारमें एक दिन भगवान्की मुगलीसे पूछती हैं कि 'हे मुगली, तुमने जन्मान्तरोंमें ऐसा क्या बड़ा पुण्य किया था जिससे इस जन्ममें अचेतन बंशीरूपमें आकर अद्भुत, भक्ति, प्रेम आदि न करती हुई भी, नित्य भगवान्के अचराधृत पीनेका सौभाग्य प्राप्त करती हों ।' मुरली जवाब देती है कि 'राधाजी ! मुझे तो पता ही नहीं कि जन्मान्तरमें मैं क्या थी, और क्या करती थी । हाँ इसी जन्मकी एक खास बात मेरे ध्यानमें है वह यह कि मेरे अन्दर तो कुछ है ही नहीं, भगवान् मुझको अपने मुलमें लगाकर अपनी मरजीके अनुसार जो स्वर या राग-रागिणी देते हैं वही मेरा स्वर, राग और मेरी रागिणी है, मेरी कोई भी स्वतन्त्र इच्छा या क्षयाल नहीं है । सम्भव है कि भगवान् इसी कारणसे मुझपर प्रसन्न हों ।' मुरलीके इन मार्मिक वचनोंसे श्रीराधाजी समझ जाती हैं और मुरलीकी भाँति अपने हृदयको विष्कुल साखी तथा शुद्ध बनाकर, उसके भीतर सिंहासनपर भगवान्को विराजित कर देती हैं । उसीका यह परिणाम है कि आजतक भी दुनियाँमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके नामके साथ श्रीराधाजीका नाम इतने स्थायीरूपसे जुड़ा हुआ है जितना किसी भी अन्य (गोपी या रानी)का नहीं जुड़ा ।

यह तो हुआ भगवान्के लिये अपने हृदयको साखी और शुद्ध बनाकर सिंहासन बनानेका फल । अब और एक दृष्टान्तसे ( जिसमें शब्दरत्नसे चमत्कार है ) पता लगाया जा सकता है कि भगवान्के लिये ऐसा (अद्भुत, भक्ति, प्रेम, दासता और आत्मसमर्पणका) भाव न रखनेपर क्या फल मिलता है ? जब नखके हाथसे फेंके हुए पत्थर आदिसे समुद्र पर सेतुके बन सकनेकी आशा

होने लगती है और भगवान्को यह खबर मिलती है, तब भगवान् स्वयं जाकर उस अशुभ दृश्यको देख नखसे पूछते हैं कि 'हे नख ! तुमको यह महिमा कहाँसे मिली ?' वह कहता है कि 'भगवान्, आपहीके नामोच्चारणके प्रतापसे यह काम हो रहा है' तब भगवान्ने अपने ही हाथसे एक पत्थर समुद्रमें फेंका और जब वह डूबने लगा तो भगवान्ने फिर पूछा कि 'हे नख ! मेरे नामके प्रभावसे जो कार्य तुमसे हो सकता है और हो रहा है, वह मेरे हाथसे क्यों नहीं होता ?' तब नखने शब्द-रत्नसे बड़ा ही चमत्कारी उत्तर दिया, कि 'हे भगवान् ! आप तो त्रिलोकीके नाय हैं, पत्थरकी तो बात ही कौन-सी है साधारण देवेन्द्र भी अगर आपके हाथसे फेंक दिया जायगा तो वह तो अवश्य डूबेगा ही, जिसको आपने हाथसे फेंक दिया, वह कैसे बच सकता है ?'

यस्तु रामं न पदयेत्तु यं च रामो न पश्यति ।

निन्दितः स मेवेहोके स्वार्माप्येन विगर्हति ॥

अर्थात् जो ( भक्ति और प्रेमके भावसे ) रामको नहीं देखता तथा जिसको ( दयाके साथ ) राम नहीं देखते वह तो दुनियाँमें और अपने हृदयमें भी पृथित ही होगा ।

इस उपाख्यानमें यद्यपि 'डूबने' शब्दपर किये हुए शब्द-रत्नके चमत्कारसे ज्ञान उठाया गया है, तो भी सात्वत्य तो सिद्धान्तरूपसे ही निकलता है कि जो मनुष्य भगवान्को अपने हृदयसे फेंककर भगवान्के हाथमें ( या बशमें अर्थात् सेवामें ) नहीं रहता, वह तो भगवान्के हाथसे छूट जानेपर, भगवान्के हाथसे छोड़े हुए पत्थरकी भाँति ( संसाररूपी या अज्ञानरूपी ) महासमुद्रमें एकदम डूब ही जायगा, वह कभी बच नहीं सकता ।

अतएव हमलोगोंको चाहिये कि हम अपने हृदयरूपी सिंहासनको विष्कुल साखी तथा शुद्ध करके, उसपर भगवान्को बिठा दें, फिर भगवान् जो केवल भक्तवत्सल ही नहीं हैं, बल्कि स्वयं अपनेको भक्त-भक्त और भक्तपराधीन बतलाते हैं, वह तो अपनी ही—

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।'

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

"तेषां योगक्षेमं वहाम्यहम्" इत्यादि

—प्रतिज्ञाओंको अवश्य पालेंगे और स्वयमेव ही हमारे पापों तथा तज्जन्य दुःखोंको दूर करके, हमारे योग-

चेमके भारको अपने कंधोंपर बैसे ही डठा लेंगे जैसे उन्होंने प्रह्लाद, द्रौपदी, मीराबाई आदि अपने भक्तोंके भारको बारम्बार उठाया था ।

हम सभी दुःखोंसे मुक्त होकर शान्ति और आनन्दमें रहना चाहते हैं परन्तु शान्तिरूपिणी सीताजी आत्माराम-रूपी रामको छोड़कर दूसरे किसीके साथ कभी नहीं रह सकती और—

‘अशान्तस्य कुतः सुखम् ।’

—बिना शान्तिके आनन्द भी नहीं रह सकता, इसलिये हम संस्कृत और हिन्दीके एक अतिसरल शब्द-छेपसे काम उठाते हुए, इस लेखका उपसंहार करते हैं कि ‘हे कल्याण-पाठको और कल्याण-कांछी सज्जनो, यदि तुम आराम चाहते हो, तो मनसे, वाणीसे और अपने कामसे खूब

जोरसे कहो ‘आ राम !’ अभी तो ‘आ राम’ ‘आ राम’ कहते रहते हो, अर्थात् अपने हृदयके भीतर रामके लिये स्थान नहीं देते हो तो राम कैसे आ सकता है ? अर्थात् ‘आराम’ कैसे हो सकता है ?

अतएव अगर चाहते हो आराम, तो मनसे चाहो ‘आ राम’, वाणीसे कहो ‘आ राम’ कामसे भी कहो ‘आ राम’ और फिर पाते रहो ‘आराम’—

जय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की ।

तीर्त्वा मोहमहार्णवं स्थिरनिजानन्देऽसया रात्रिं

हत्वा काममुखासुरव्रजवृताहंकारलंकाधिपम् ।

भूयः प्राप्य विचाररूपहनुमत्पूर्वोक्षितां प्रेयसीं

सीतां शान्तिनिष्कृतिं विजयते ह्यात्माभिरामो हरिः ॥

## रामोपदिष्ट-भक्ति

( लेखक—स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी )

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यमे ।

रामचन्द्रमहं बन्दे तच्चिदानन्दविग्रहम् ॥



यदि अयोध्यावासी प्रभुके पार्षद नित्य मुक्त और सदा शुद्ध हैं, तो भी प्रकृति-मण्डलमें रहनेसे कदाचित् विषयोंका किञ्चित् वायु लग गया हो, तो उसको मिटानेके लिये अथवा अयोध्या-वासियोंके ध्याजसे संसारके जीवोंका सुख करके कलियुगी प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये एक बार श्रीरघुनाथजीने सब पुरवासियोंको बुलाया । भगवान्की आज्ञा सुनकर गुरु वशिष्ठजी, अन्यान्य मुनिजन और ब्राह्मणादि चारों बर्योंके लोग राज-सभामें आये एवं यथोचित मस्तक नवा, आशीर्ष दे प्रभु-आज्ञा या गुरु वशिष्ठजी तथा अनेक मुनि और ब्राह्मण तथा अन्य उत्तम वर्णोंके जितने सज्जन थे वे सब सभामें भगवान्के समीप बैठे और अन्य सब लोग बाहर बैठे, सब भक्तोंके जन्म-मरणादि भव-दुःखोंको मिटाने-वाले श्रीरघुनाथजी इसप्रकार कहने लगे—

‘हे पुरवासियो ! आप सब मेरी बात सुनिये, यह सबके हितकी वाणी है, इसलिये सुनकर अङ्गीकार कीजिये,

क्योंकि मैं अपने किसी स्वार्थके लिये नहीं कहूँगा, सबके कल्याणके हेतु परमार्थके वचन ही कहूँगा, इन वचनोंमें किसी प्रकारकी अनीति भी नहीं होगी, सब लोकमर्षा-सहित वेदप्रमाणित सन्तोंके मतानुसार कहूँगा, यह बात मैं ऐश्वर्य दिखलानेके लिये रजोगुण चारण करके नहीं कहूँगा, किन्तु सतोगुणसहित शान्तचित्त होकर कहूँगा, इसलिये चित्त लगाकर सुनिये । यदि मेरे वचन आपको भावें—अच्छे लगे तो उनका आचरण कीजिये, मेरे कथनानुसार चलिजिये ।’

वचन तीन प्रकारके होते हैं, एक प्रभुसम्मित, जैसे—राजालोग प्रजापर शासन करते हैं, दूसरे सुहृद्-सम्मित, जैसे—मित्रसे मित्र मन मिलाकर कहता है और तीसरे कान्तासम्मित, जैसे—स्त्री नम्रतासहित पतिसे वार्तालाप करती है । यहाँपर भगवान्ने प्रथम मित्रके समान सबको समझा कर प्रिय वचन कहे । अब प्रभु-सम्मित कहते हैं—

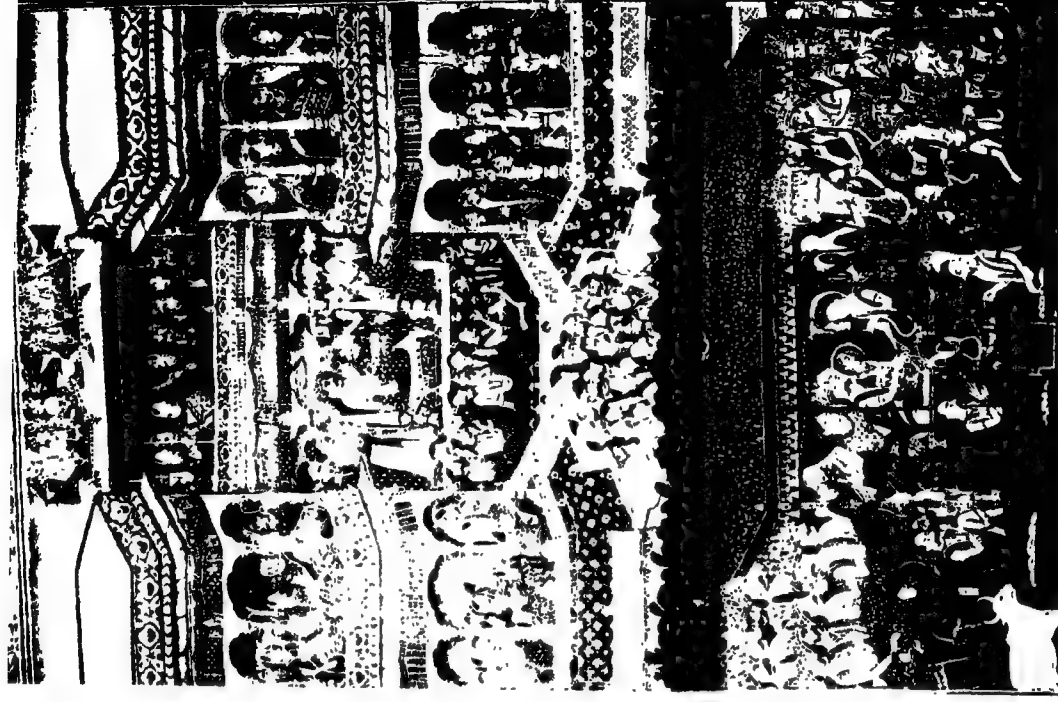
‘हे पुरवासियो ! मेरा लेखक वही है और मेरा प्रियतम भी वही है, जो मेरा अनुशासन मानता है अर्थात् वेद, वेदान्त आदि शास्त्र, संहिता, पुराण, रामायण आदिमें जितनी भी मुक्तभाषित आज्ञायें हैं, उनको मानकर, उन के





पार्वतीकी तपस्या ।

जनम कोटि हनि रगि हमारी । बरउँ संभु न तु रहों कुअँ तरी ॥



शिव-विवाह ।

गहि गिरीस कुस कन्या-पानी । सिवहि समरपी जानि भवानी ॥





जनक का रामदण्डन ।  
मूर्ति मधुर : वास्तु श्रेष्ठ : भयः विह्वल विस्मयः



कपट मूर्ति छोर राजा प्रणयमान ।  
मूर्ति नाथः मधुर चोखान्तः मूर्ति मधुर चोखान्तः

अनुसार आचरण करता है, वही मेरा प्रियतम सेवक है, मैं उसीकी सर्वप्रकारसे रक्षा करता हूँ और जो मेरी आज्ञासे प्रतिकूल चलते हैं, वे अपनी कर्तव्यता वैसा ही फल भी भोगते हैं, इसलिये यदि तुम मेरी आज्ञाके अनुसार चलाओगे, तब तो मैं सब प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करूँगा, और यदि न मानोगे, तो अपने कियेके अनुसार सुख-दुःख भोगोगे, उसमें मेरा कुछ दोष नहीं।'।

तदनन्तर भगवान् कान्तासम्मित वचन कहते हैं— 'भाइयो! यदि मैं कोई अन्याय वचन कहूँ, मेरे जिस वचनमें भावधर्मनीति, वेद-प्रमाण, साधुमत इत्यादि सबकी सम्मति न मिले, ऐसे वचनको सुन भय छोड़कर मुझे रोक देना, अर्थात् राजाशा-भंगका डर मत मानना, क्योंकि सत्पुरुषोंकी सभामें सत्पुरुषके लिये असत्य कहना उचित नहीं है वही नीतिशास्त्रका मत है।

'भाइयो! विचार करो! वह मनुष्य-शरीर बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है। जब जीवके अनेक जन्मोंका पुण्य उदय होता है, तब वह मनुष्य-शरीर पाता है। यह शरीर सुर-दुर्लभ है, अर्थात् देवताओंको भी मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति दुर्घट है। यह बात छिपी नहीं है। वेद, शास्त्र, संहिता, पुराण, रामायण, रहस्य, नाटकादि सभी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है कि मनुष्य-शरीर मुक्तिका द्वार है।

'देखो! यह मनुष्य-शरीर सब साधनोंका धाम है। इस शरीरमें सभी साधन हो सकते हैं—प्रथम कर्मके साधन—ब्रह्म, होम, पूजा, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दानादि; दूसरे ज्ञानके साधन—विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन और तार्क-पदार्थ शोधन; तीसरे योगके साधन—धर्म, नियम, आसन, मत्थाहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधिपूर्व चौथे भक्तिके साधन—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन हैं। इसप्रकार जितने साधन हैं वे सब मनुष्यदेहसे स्वाभाविक ही हो सकते हैं, इसलिये यह देह सब साधनोंका घर है, सब साधन इसी देहमें रहते हैं—अन्य देहोंमें नहीं रहते। पशु, पक्षी, कीट, पतंगोंमें तो साधन करनेका ज्ञान ही नहीं है, वेच्योनिमें ज्ञान तो है परन्तु वे ऐश्वर्य-सुख-भोगमें भूखे होनेके कारण साधन कर नहीं सकते, क्योंकि अमरत्वोक्तों होनेसे वे जन्म-मरण और गर्भवासका भय नहीं मानते। मनुष्य मनुष्यत्वमें होनेसे जन्म, मरण, गर्भवास, नरक, चौरासी आदिका भय

मानते हैं। मनुष्योंमें ऐश्वर्य भी अचल नहीं है, इसलिये वे विषय-आशा, लौकिक-सुख त्यागकर मुक्ति-मार्गपर आरुढ़ हो जाते हैं। इसप्रकार मनुष्य-शरीर मोक्षका द्वार है, क्योंकि इस शरीरमें मुक्ति प्राप्त होना सुगम है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो परलोक नहीं सुधारते, मुक्तिमार्गमें आरुढ़ नहीं होते और विषय-भोगके बराबर दुःख, इन्द्रिय-सुखोंके साधनमें लगे रहकर अनेक कुकर्म करते हैं, वे अनेक दुःख भोगते हैं। काम-वश-पर-स्त्री-हरण, क्रोध-वश दूसरोंकी हिंसा, लोभ-वश चोरी, ठगी, पर-धन-हरण, ईर्ष्या-वश पराया अपवाद करना, इत्यादि कुकर्म करनेमें तो नहीं डरते हैं परन्तु जब उन्हीं कर्मोंके फलरूप अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं, तब शिर पीट-पीटकर पछताते हैं। आग जलना, चोरी होना, राजाद्वारा लूटा जाना, चप, रबास, पीनस, बाई, बवासीर, कुछ आदि किसी कराँल रोगका होना, बन्धु, स्त्री, पुत्र आदिका वियोग होना, बँधुबा होना, दरिद्र होना इत्यादि अनेक प्रकारके कष्ट जब पाते हैं, तब पछताते हैं और काल कर्म एवं ईश्वरको कृपा ही दोष देते हैं।'

'यहाँ शंका होती है कि जब जीवोंकी व्यवस्था काल, कर्म और ईश्वरके अधीन है, तो कृपा दोष कैसे हुआ? इसका समाधान सुनिये—जीवोंकी व्यवस्था काल, कर्म और ईश्वरके अधीन है—यह ठीक है। अवश्य ही ईश्वर सबपर प्रधान है, परन्तु जीव भी तो ईश्वरका ही अंश है, वह सब प्रकारसे चैतन्य है क्योंकि वह अपना गुण, स्वभाव सब जानता है और वेद-पुराणोंद्वारा काल-कर्मको भी जानता है क्योंकि वेद उसी ईश्वरकी आज्ञा है। वेदका सिद्धान्त स्मृतिद्वारा आचार्य सुनाते हैं। जैसे कि सरोजसुन्दर धर्म-शास्त्रमें कहा है—'आहार, मैथुन, निद्रा, अभ्यसन, ज्ञान देना और ज्ञेय वे सब सन्ध्याकालमें वर्जित हैं। 'कैसेका पात्र, मसूर, चने, कोहों, शाक, शहद, पराया अन्न, दो बारका भोजन और मैथुन आदि एकादशी, विदग्धातिथि और दशमीको वर्जित हैं।' इस प्रकार कालका प्रभाव बताया है। स्वाभाविक वर्जित कर्म इसप्रकार बताये हैं कि 'जो अपनी सम्बन्धिनी नारीको कष्ट देता है, वह दिन-प्रति-दिन ब्रह्म-बधादि पापोंको प्राप्त होता है।' और भी कहा है कि 'तेल मजनेके बाद, घृतकके साथ जानेके बाद, और बनबानेके बाद और मैथुनके बाद मनुष्य जबतक स्नानसे शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक वह पापघातके समान

है।' इत्यादि कर्म श्रुति-स्मृतिद्वारा प्रसिद्ध हैं। चोरी, हिंसा, परकीर्णमन, धनहरण, परनिन्दा अपवादादि महापापोंको तो सभी जानते हैं। इसप्रकार जान-बूझकर भी जोग न पुरुषकाज मानते हैं, न तीर्थादि पुरुषदेश मानते हैं और न ईश्वरके दण्डका भय करते हैं। सब काजमें, सर्वत्र हर्षसहित महापाप तो करते हैं परन्तु जब उनका कल भोगना पड़ता है, तब कालको मिथ्या दोष लगाते हैं कि हमारे लिये आजकल बड़े नष्ट दिन हैं या हमारे दिनोंका फल है इसीलिये हमें ये दुःखदायी भोग प्राप्त हुए हैं। कर्मोंको भी मिथ्या दोष लगाते हैं और कहते हैं कि हमको कर्म दुःख देते हैं। इसीप्रकार ईश्वरको मिथ्या दोष देते हैं कि ईश्वर हमको दुःख देता है। हमारे पड़ोसीको तो लूट-धन दे रक्खा है, वह दिन-रात दूध-मलाई खाता है और हमको रूखी-रोटी भी समयपर नहीं मिलती। सारांश यह कि काज, कर्म और ईश्वरका हर तो मानते नहीं, दुष्ट-स्वभाव-वश देह-सुखके लिये, स्वार्थ-हेतु अनेक कुकर्म करते हैं, परन्तु फलभोगके समय अपना दोष काज-कर्म अथवा ईश्वरके शिर मँढ़ते हैं। इसलिये हे पुरवासिभो ! देखो, जैसा मुग्धद्वारा शरीर है, वैसा ही हमारा भी है। जैसे हमने विषय-भोग त्याग रखे हैं, वैसे तुमको भी त्याग देने चाहिये। विषयोंमें आसक्त नहीं होना चाहिये।'

'हे माहयो ! यह मनुष्य-शरीर विषय-भोगके लिये नहीं प्राप्त हुआ है, इसलिये इन्द्रियोंके स्वाप आदि देह-सुखके साधनोंमें मनको आसक्त करना उचित नहीं है, क्योंकि श्रुत्युक्तोंमें सुख तो थोड़े हैं पर शोक, विषोग, रोग, कलह, भय विशेष हैं। अन्तमर वहाँ बने रहनेका निश्चय भी नहीं है। अणुमज्जुर शरीर है, दम आयेगा या नहीं, इसकी भी खबर नहीं है, फिर यहाँ सुख कैसा ? जो जोग ब्रह्म, तपस्या, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, व्रत, दानादि सकाम कर्म करते हैं वे उनका फल सुख भोगनेके लिये स्वर्गलोकको जाते हैं। परन्तु स्वर्गमें भी सुख थोड़ा ही है, जबतक सुकृतरूप पूर्वी रहती है, तबतक तो सुख भोगते हैं, पर पुरुष चीया होते ही श्रुत्युक्तोंमें गिरा दिये जाते हैं। इसलिये स्वर्ग भी दुःखदायी है। यहाँ आकर फिर इन्द्रिय-सुख-साधनमें लगे, तो पौरासीको चले जाते हैं। जैसा कि गीतामें कहा है 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विनष्टि' और सत्योपाख्यानमें कहा है—

'स्वर्गवासस्तु तैः पुण्यैः पुण्यान्ते च पतत्यचः ।'

'हे माहयो ! मनुष्य-शरीर पानेका कल यह है कि इन्द्रियोंके विषय त्यागकर सत्संगमें मन लगावे, सन्तोंकी कृपा और सत्सङ्गके प्रभावसे जब मन शुद्ध हो जाय, तब परलोकसाधनमें मन लगावे अर्थात् भक्त्या, कीर्तन, करण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदनादि भक्ति करे, इसप्रकार भक्तिके द्वारा भव-बन्धनसे छूटकर हरिसमीपतारूप मुक्तिपद प्राप्त करे ! जो मूढ़ नर-शरीर पाकर मुक्तिपदके साधन त्याग इन्द्रियोंके विषय—देह-सुखके साधन—में लग जाते हैं, वे शठ सुधा बानी अमृतसे विष बदल लेते हैं अर्थात् भक्तिरूप अमृतके बदलेमें विषयरूप विष ले लेते हैं। विषय-संगसे कामना बढ़ती है, कामना-हानिसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है, मोहसे वेद-धर्म भूले जाते हैं, वेदधर्म भूल जानेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जानेसे जीवका सर्वनाश हो जाता है यानी वह अयोगतिको प्राप्त हो जाता है।'

अब भगवान् अतिशयोक्ति रूपकाञ्कारसे केवल उपमानसे उपमेयका बोध कराते हैं—

'हे माहयो ! पारसमणि तो सब जनोंकी मूल है परन्तु गुआ बानी घोंघची किसी कामकी नहीं। जो जोग सब धनोंकी मूल पारसमणिको खोकर बदलेमें निकम्मी घोंघचीको उठा लेते हैं, वे मूढ़ हैं। पारसमणिके छू जानेसे कुचातु कोहा भी सुवर्ण हो जाता है। उससे रुपये-अशरफी, मणि-मुक्ता, चरखी-धाम, भूषण-बसन और भोजन-वाहनादि सभी कुछ हो सकते हैं। ऐसी पारसमणि किसी मूर्खको मिल गयी, उसको चाहिये था कि वह उसके गुण विचारता परन्तु उसने उसके गुणोंका विचार न कर उसे बदसूरत देखकर फेंक दिया। फिर उसे घोंघची मिली, सुहाबनी सूरत देखकर मूर्खने उसको उठा लिया। घोंघची देखनेमात्रको ही सुहाबनी होती है, वह किसी कामकी नहीं होती। उसमें जो देखनेको छलामी होती है, वह भी आधी होती है, आधा अंग तो श्याम होता है, भीतरसे वह सर्वथा कड़वी ही होती है। यहाँ पारसके स्थानपर हरिमणि है, जो कुचातुरूप पतित जीवोंको भी उत्तम हरि-सम्बन्धी बना देती है। यदि कोई दुराचारी भी मुझे अनन्यभावसे भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि वह सम्मार्गपर चल रहा है। इससे वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है, मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता (गीता)। हे पुरवासिभो ! भक्ति समता, सम्तोष,

विवेक, विराग, ज्ञान, विज्ञानादि सब गुणोंको उत्पन्न करनेवाली है। वासुदेवकी भगवती भक्ति मनुष्योंमें ज्ञान, वैराग्य, वीर्य उत्पन्न करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ऐसी परम उपयोगी भक्तिको त्यागकर मूढ़ मनुष्य गुणारूप विषयोंको ग्रहण कर लेते हैं, जो देखनेमात्रको सुख देनेवाले और सुहावने लगते हैं। यह सुख भी निरा सुख ही नहीं होता। बितना सुख होता है, उतना ही उसमें दुःख भी होता है और विचारनेसे तो विषय सर्वथा दुःखरूप ही हैं। इसप्रकार भक्तिरूप पारसको त्यागकर विषयरूप गुण लेनेवालोंको कौन भला कहेगा? कोई भी नहीं! भेद, पुराण, सन्त, महात्मा सभी उसकी निन्दा करेंगे।

‘हे आइयो! मनुष्य-शरीर पाकर जो भक्तिका त्याग कर विषयोंमें आसक्त होते हैं, उनकी दुर्दशाका वर्णन सुनिये!

ज्ञानि—‘आकर बानी ज्ञानि चार हैं, प्रथम जरायुज जो भिह्नीमें बैठे उत्पन्न होते हैं, दूसरे अयवज जो अयवेसे उत्पन्न होते हैं, तीसरे उज्जिज जो भूमिको फोड़कर उत्पन्न होते हैं और चौथे स्वेदज जो पसीनेसे उत्पन्न होते हैं। मनुष्यादि जरायुज हैं, पक्षी आदि अयवज हैं, वृक्षजता आदि उज्जिज हैं और मच्छर, डाँसादि स्वेदज हैं, इनकी चौरासी जाल धोनियाँ हैं। उनमें भीमादि जलचर धोनि नौ जाल हैं, वृषादि स्थलचर धोनि बीस जाल हैं, कृमि कीटादि धोनि ग्यारह जाल हैं, पक्षी-धोनि दश जाल हैं, पशु धोनि तीस जाल हैं और मनुष्य-धोनि चार जाल हैं।

‘आइयो! यह जीव ईश्वरका अंश होनेके कारण अविनाशी है परन्तु हरिभक्ति त्यागकर विषयोंके वश होनेसे चार ज्ञानि और चौरासी जाल धोनियोंमें भ्रमता रहता है अर्थात् जीवरूप पक्षी शुभाशुभ कर्मरूप पक्षोंके बलसे अनेक धोनियोंमें उड़ा-उड़ा फिरता है। आदिकल्पमें इन जीवोंमें जो सत्तोगुणी होते हैं, वे मुनि होते हैं, रजोगुणी होते हैं, वे देवता होते हैं, और जा तमोगुणी होते हैं, वे वैश्य होते हैं। यह सत्त्वयुगका प्रभव है। पश्चात् ज्यों-ज्यों काल बदलता जाता है, त्यों-त्यों गुण-स्वभाव बदलता रहता है। जीव ज्यों-ज्यों असत् कर्म करते हैं, त्यों-ही-त्यों नीच धोनिधोंमें जन्मते जाते हैं।

भ्रमणका आधार—‘पूर्वमें जब जीव विषयको ग्रहण करता है, तब उसे मायाकी प्रेरणासे काल कर्म, स्वभाव और गुण घेर लेते हैं। उनके जन्ममें पड़कर जीव सब धोनिधोंमें भ्रमता फिरता है अर्थात् गुणके अनुसार जीवका स्वभाव

होता है, फिर काल और कुसंग पाकर स्वभाव बदल जाता है इसलिये जीव असत् कर्म करके नीच धोनिमें जाता है। जैसे कि सत्तोगुणके प्रभावसे प्रथम मुनि हुआ, फिर काल पाकर तमोगुणी स्वभाव हो गया, तो असत् कर्म करके नीच मायावा हुआ। फिर असत् कर्म करके वज्रिय हो गया, वैश्य हो गया, शूद्र हो गया, फिर श्लेष्य हुआ, चायवाज हुआ, बड़ा पशु हुआ, छोटा पशु हुआ, पक्षी, कीट जलचर हो गया, फिर अन्तमें वृक्ष तृक्ष पर्यन्त हो गया। फिर कभी काल पाकर नर हो गया। इसप्रकार सब धोनिधोंमें भ्रमता है और उनमें जन्मता मरता, दुःसह दुःख और जरा व्याधि वियोगादि अनेक कष्ट पाता है। यही जीवोंकी स्वाभाविक गति है।

ईश्वरका प्रभाव—‘ईश्वर जीवका परमसुहृद्-विना हेतु स्नेही है यानी वह जीवोंपर स्वार्थरहित स्नेह करता है, यह ईश्वरका दयारूप गुण है, कहा है—

रक्षणे सर्वमूतानामहमेव परो विभुः।

इति दृष्टानुसन्धानं कृपा सा परमेश्वरी॥

(मगवद्गुणवर्णन)

अर्थात् मृतमात्रके पालन करनेको मैं ही समर्थ हूँ, इस प्रकारका उद् अनुसन्धान रक्षता हूँ, इसप्रकारका अनुसन्धान रखनेसे ईश्वर विना हेतु स्नेही है। आगवतमें दूसरा गुण कल्याण कहा है—

परदुःखानुसन्धानदिहली मवनं विभो।

कारुण्यमगुणस्त्वेष आर्तानां भीतिहारकः॥

अर्थात् जीवोंका दुःख देखकर स्वयं भी दुखी होकर, उनके दुःख मिटानेके लिये उपाय करनेका नाम कल्याण है। विना हेतु स्नेही ईश्वर इस कल्याणके वश किसी भी जीवका दुःख देखकर, उसे दुःखसे छुड़ानेके लिये कल्याण करके कभी मनुष्य देह दे देता है अर्थात् चौरासीका भोग पूरा होनेसे पूर्व बीचमें ही साधनका धाम, मुक्तिका द्वार जानकर मनुष्य शरीर दे देता है। क्योंकि इस शरीरमें सब वस्तुओंका ज्ञान हो सकता है।

मनुष्य शरीरका माहात्म्य—यह शरीर जीवोंको भवसागर-से पार ले जानेके लिये बेड़ा है। जब सांख्य, सीसम आदिके जड़ोंको नदीद्वारा देशान्तरमें ले जाना होता है, तो मल्लाह पक्षीस-तीस जड़ोंको मिला उनपर पाँच बेंदी जकड़ी रख सबको रस्सोंसे एकमें ही बाँध देते हैं और उसके ऊपर बाँसका ठाठ घर देते हैं। इसको बेड़ा कहते हैं, यह बेड़ा किसी भी विप्लवे कभी नहीं डूबता, इसी प्रकार नर-शरीरमें

तीर्थ, व्रत, कथा, भवण, कीर्तन, पूजा, पाठ, जप और दावादि सत्कर्म कहे हैं। ये बुद्धि, विचार, धैर्य, दया और कर्मादिरस्सों-से बँधे हुए हैं। इनके ऊपर सुख-दुःखका स्वरूप ठाठ बँधा हुआ है, इसप्रकार नर-शरीर संसाररूप सागरमें डेढ़ा है, इसपर बैठकर मनोरथरूप जलके वेगमें पड़ा हुआ जीव बहा जाता है। यदि जीव किनारेपर जाना चाहता है और अद्वारूप बरदवान चढ़ा होता है तो बहते हुए बेचेको फेर देनेके लिये मेरा अनुग्रह पानी जीवोंपर सदा दयारूप जो समुल्ल पवन रहती है वह उसे किनारे जगा देती है। अर्थात् नर-तनुमें यदि जीव मेरी किञ्चित् भी अद्वार करे तो उसे मेरा अनुग्रह सहज ही भवसे पार कर देता है।

‘भाइयो ! यह मनुष्य-शरीररूप डेढ़ा डूबने योग्य नहीं है, यह सुख नाम है, इसमें जब मनुष्य अद्वारूप बरदवान जगाता है, तब उसको मेरा अनुग्रहरूप वायु उठेखता है और सद्गुरुकर्म कर्मधार—खेनेवाला उसको घाटपर लगा देता है। इन सब सामग्रियोंका प्राप्त होना जीवोंके लिये दुर्लभ है—ये सब परिश्रमसे प्राप्त होती हैं। इन सब सामग्रियोंके प्राप्त होनेपर तर जाना कुछ कठिन नहीं है। पर ऐसी सामग्रियोंको पाकर भी जो निर्बुद्धि मनुष्य भवसागरसे नहीं तरते और विषयोंमें आसक्त होकर फिर भवसागरमें ही चले जाते हैं वे कृतनिन्द्य हैं अर्थात् यदि कोई उनके साथ भलाई करता है, उसका आभार मानना तो अलग रहा, उल्टी उसीकी निन्दा करते हैं। जिस निर्हेतु स्नेही ईश्वरने कल्याणकरके नर-शरीर दिया है और सदा दया रखता है, उसका स्नेहसहित नाम तो भूलकर भी नहीं खेतें और जब अपने किये हुए पापोंका फल दुःख भोगते हैं तो उसको गाझियाँ देते हैं। ये ऐसे कृतज्ञ हैं। जैसे महावनमें एक चिगारी जगा देनेसे दावाशिकी सीमा नहीं रहती कि कहाँ तक बढ़ जायगी, वैसे ही कृतज्ञताके थोड़े ही कर्मसे असंख्य पाप बढ़ जाते हैं। एक दृष्टान्त सुनिये—

### कृतज्ञीकी कथा

एक इतिहास है कि कोई कुटुम्बी दरिद्री विप्र बुधानिवारणार्थ महावनको गया, वहाँ एक पक्षीने उसकी व्यवस्था पूरी तब उसने धनकी मूल बतायी। पक्षी उसे वास देकर और भोजन कराकर बोला कि उत्तर वनमें एक दैत्य मेरा मित्र है, मैं उसके पास प्रतिदिन जाता हूँ, वृ. वहाँ जा। मेरा नाम खेनेसे वह तुझे बहुत-सा धन देगा। ब्राह्मणने जाकर दैत्यसे

सब हाथ कहा, दैत्यने धन देकर ब्राह्मणको विदा कर दिया। जब ब्राह्मण लौटकर महावनमें आया तो मार्गके भोजनके लिये उसी पक्षीको मारकर बाँध ले चला। दैत्यने यह जानकर उसे पकड़वा मँगाया और दूसरे दैत्योंसे कहा कि इसको खा जाओ, दैत्योंने कहा कि इस कृतज्ञको हम नहीं खाएँगे। तब दैत्यने उसे मरवाकर डबवा दिया और गीधोंसे कहा कि इसको खा जाओ। गीधोंने भी कहा कि इस कृतज्ञका मांस हम कभी नहीं खाएँगे। तदनन्तर ब्रह्मादि देवताओंने वहाँ आकर पक्षीको परोपकारी जानकर उसे जिला दिया। तब पक्षी बोला कि ‘महाराज ! इस ब्राह्मणके लबके-बाले भूखे मरते होंगे, इसको भी जिला दीजिये।’ इसप्रकार आग्रह करके पक्षीने ब्राह्मणको भी जिला दिया और धन दिलाकर विदा किया। पश्चात् जब पक्षीने शरीर त्यागा तो वह हरि-जोकको गया और कृतज्ञी विप्र मरनेके बाद यमपुरमें जाकर रौख नरकमें पड़ा। यह तो लौकिक कृतज्ञताकी गति है, जो ईश्वरसे कृतज्ञता करते हैं, उनकी तो न मालूम क्या दशा होगी ? जिसमें सुख-दुःख, बन्ध-मोक्ष आदि सब वस्तुओंका ज्ञान होता है ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर मुक्तिमार्गको त्याग जो विषयोंके बरा हो अवसागरके मार्गपर चलेँगे, वे अवश्य ‘आत्महा’ गतिको प्राप्त होंगे। जो जहर खाकर, पानीमें डूबकर अथवा गला काटकर मरते हैं, और जो अपने हाथ ही अपने आत्माका घात करते हैं, उनको आत्महा कहते हैं। ऐसे आत्महा जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसी गतिको वे कृतज्ञी प्राप्त होंगे। कहा है—

‘नृदेहमाद्यं सुकर्मं सुदुर्लभं

ह्रवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।

मयानुकूले नभस्वते रितं

पुमान् भवान्निब न तंरस आत्महा ॥’

ईश्वरकी विसुखता तो लोक-परलोक दोनोंमें दुःखरूप है, यह बात ऊपर दिखाकर अब भगवान् सुखका मार्ग दिखाते हैं—

‘हे पुरवासिन्धो ! यदि तुम परलोकमें शुभ गति और इस लोकमें यश, कीर्ति, आनन्दसहित जीवन-सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उनका सिद्धान्त हृदयमें धारण करो। हे भाइयो ! जिसका प्रभाव वेद-पुराण गाते हैं, मेरी वह भक्ति सुखद मार्ग है अर्थात् भक्ति-पन्थ परिश्रम बिना ही सब प्रकारका सुख देनेवाला है। कर्म, योग, ज्ञानादिके साधनोंकी तरह इसमें कायाके अनेक प्रकारके

छेरा, परिश्रम आदि करने नहीं पड़ते। भक्तिके अवस्था, कीर्तनादि सभी साधन सुलभ हैं।

ज्ञानकी कठिनाई—यद्यपि ज्ञान भी जीवका कल्याण करता है परन्तु ज्ञानमार्ग अगम है। विषयी, विमुख, म्लोच्छ-आयुषाकादि पतित जीवोंकी तो उसमें गति ही नहीं है, केवल सुकृती मुमुक्षुओंकी ही गति है। उनके लिये भी अनेक प्रयत्न बानी विघ्न हैं, साधन तो कठिन हैं ही पर साथ ही स्वभावसे सहज चञ्चल मनको स्थिर रखनेका कोई ऐसा आचार भी नहीं है, जिसमें मन टिका रहे। साधनमें कठिनता और विघ्न इसप्रकार हैं—

प्रथम साधन है वैराग्य, अर्थात् ब्रह्मलोकात्तकके भोग-सुखोंको मुक्छ जानकर त्याग देना, यही कठिन है, इसमें जोर अनेक विघ्न करता है। दूसरा साधन है विवेक अर्थात् देह-सम्बन्ध—लोकज्वलहार असार जानकर त्याग करे, आत्मसार जानकर ग्रहण करे, यह महाकठिन है, इसमें मोह-अमता अनेक विघ्न करते हैं। तीसरा साधन वृत्तसम्पत्ति है, इसमें प्रथम शम अर्थात् वासना-त्याग, द्वितीय दम अर्थात् इन्द्रियोंको विषयसे रोकना, तीसरी उपरामता अर्थात् विषयों-से मुक्त मोह लेना, चौथी तितिक्षा अर्थात् दुःख-सुख समान जानना, पाँचवीं अज्ञा अर्थात् गुरु, वेदान्त-वाक्यमें विश्वास होना और छठी समाधान, मनकी स्थिरता है। ये सब अत्यन्त कठिन हैं, इनमें काम-क्रोध आदि अनेक विघ्न करते हैं। चौथा साधन है मुमुक्षुता अर्थात् मुक्तिकी उत्कट इच्छा होना, यह सबसे कठिन है क्योंकि सब साधनोंकी कठिनता और विघ्न इसी-के अन्तर्गत हैं। इसप्रकार ज्ञानका पन्थ अगम है। यद्यपि माया किसीसे जीती जानेवाली नहीं है, परन्तु जीव भी तो ईश्वर-का ही अंश है, इसलिये जीवमें भी महान् शक्ति है। अपनी उस शक्तिको सँभालकर यदि कोई मनको बरबस स्वाधीन कर ले, लोक-जनोंके संगको विघ्नोका कारण जानकर उससे अलग हो, पहाड़, गुफा आदिमें अलग रहकर बहुत कष्ट करके वैराग्य शमादि साधन प्राप्त कर ले और आत्म-अनुभवको प्राप्त हो जाय, तो वह भी भक्तिके हीन रुखा ज्ञानी मुझे प्रिय नहीं है अर्थात् मैं उसकी रक्षा नहीं करता, इसलिये उसका स्वतन्त्रता निबाहना दुर्घट है क्योंकि जीवमें एकरस ज्ञान नहीं रह सकता, इसलिये जीव स्वतन्त्र नहीं है।

भक्तिकी मूलमता—‘हे पुरवासियो ! समता, शान्ति, सम्बोध, वैराग्य, विवेक, ज्ञान-विज्ञानादि सबकुछ गुणोंकी

सांगि मेरी भक्ति स्वतन्त्र है अर्थात् भक्तिके होनेपर ज्ञानादि गुण आप ही आ जाते हैं। भक्त-सन्तोंका संग करनेसे वे सहजमें ही प्राप्त हो जाते हैं, सत्संग बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, अनेक जन्मोंका पुण्य उदय हुए बिना सन्तोंका संग नहीं मिलता और सन्तोंका संग तुरन्त ही भवसे पार करनेवाला है, सत्संगसे भक्ति होती है और भक्ति भवसे पार करनेवाली है।

‘हे पुरवासियो ! मन, कर्म और वचनसे ब्राह्मणोंके चरखोंकी पूजा करना सबसे बड़ा पुण्य है। मनसे ब्राह्मणको बड़ा माने, कर्मसे साष्टांग प्रणाम करे, ऊँचे आसनपर बैठावे, बोधरोपचारसे पूजन करे, भोजन-दान दे और वचनसे स्तुति करे। वेदके वचन हैं कि गाँवमें (पुरोहित), तीर्थोंमें (पंच गंगापुत्र), वनमें, कथापारायणमें, आश्रमों और श्रुतकर्ममें विप्र पूज्य हैं। पुण्यमात्रमें दानका पात्र ब्राह्मण ही है।’

इसप्रकार अगवान्ने विप्र-पद-पूजाको उत्तम पुण्य बताया, फिर आगे कहने लगे—

‘हे पुरवासियो ! जो पुरुष कपट त्यागकर भीतर-बाहरकी समान प्रीतिसे ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, उसपर सब मुनि और देवता प्रसन्न होते हैं। विप्रोंकी पूजामें देवता, मुनि, पितृ इत्यादि सभीको पूजाका भाग मिलता है। इस-लिये ब्राह्मणोंकी पूजा महापुण्य है, इस पुण्यके प्रभावसे सत्संग प्राप्त होता है और सत्संगके प्रभावसे भक्ति प्राप्त होती है।’

‘हे माहयो ! एक गुप्त मत और भी है अर्थात् विप्र-पद-पूजारूप पुण्यमें तीन ही वयोंका अधिकार है, ब्राह्मणोंका विशेष अधिकार नहीं है, क्योंकि स्वजातीय होनेके कारण वे बराबरी, छोटाई-बड़ाईके मानापमानका लयाव रक्खेंगे, इस-लिये सभी भेद रक्खेंगे, ब्राह्मणमात्रको कोई बड़ा करके नहीं मानेगा, इस कारण वह पुण्यमत ब्राह्मणोंको अधिक-दायक नहीं है, केवल तीन वयोंके लिये ही है परन्तु समाजमें चारों वय हैं अतः वह गुप्त मत सभीसे कहता हूँ। अब-तक तीनों वयोंसे पुण्य-मत कहा, अब विशेषकरके ब्राह्मणोंके लिये कहता हूँ। यहाँ ब्राह्मणोंमें वशिष्ठादि एकसे एक महान् हैं आपुर्णमें मैं चित्रि हूँ और ऐश्वर्यमें भी ब्रह्मव्यदेव कहलाता हूँ, इसलिये हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरकी भक्ति किये बिना कोई मेरी भक्ति नहीं पाता। अर्थात् जप, तप, व्रत, हवन, शौच, आचार आदि करनेसे भक्ति नहीं मिलती, केवल



भक्तजनोंकी—महात्माजनोंकी सेवा करनेपर उनकी कृपासे ही मिलती है। कहा है—

‘रहूगैतत् तपसा न यान्ति  
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।  
न छन्दसा नैव जलाग्निसूयै-  
र्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥’  
( श्रीमद्भागवत ५।१२।१२ )

शंकर भक्तोंमें सर्वोत्तम महात्मा हैं इसलिये प्रथम उनकी भक्ति करनी चाहिये, फिर वे मेरी भक्ति देते हैं।

‘हे पुरजनों ! ज्ञान-पथका परिश्रम मैंने तुम जोगोंको बताया। भक्तिमें कुछ भी परिश्रम नहीं है। केवल दो चार बड़ी सन्तोंके पास बैठकर सत्संग करनेमें क्या परिश्रम है ? विप्र-सेवामें भी परिश्रम नहीं है, वे तो केवल मधुर भोजनमें प्रसन्न हो जाते हैं और शिवकी सेवामें तो कुछ भी परिश्रम नहीं है, वह तो नेत्रपत्र और घट्टके फूलोंसे प्रसन्न हो जाते हैं, ये सब कर्मसुगम हैं। साधनोंमें भी न अष्टांग योग करना है, न मन्त्र-जाप या पुरस्चरण करना है, न पञ्चाग्नि आदि तप करना है, न राजसूय अरक्मेधादि यज्ञ करना है और न चान्द्रायणादि व्रत ही करना है।’

‘हे पुरवासियों ! केवल इतनाही करना है कि सरल स्वभाव रहे, किसीसे न प्रीति करे, न वैर। सहज ही सबसे प्रिय बचन बोले, क्रोध, ईर्ष्या, परुषवचन, मान, मद, कल, कपट आदि कुटिलता मनमें न रखे। शुद्ध मनको मेरे सम्मुख करवे, जीविकार्थ जो व्यापार करे, उसमें जो कुछ लाभ हो, उसीमें सन्तोष रखे, लोभ न बढ़ावे।’

‘हे भाइयो ! मेरा भक्त कहलाकर मनुष्यकी आशा करना बड़ी मारी भूल है। जो अँधला, आँखबन्द जगा, काठ-कमबल्लु लेकर, त्यागी साधुका वेप बना सेठ साहूकारादि धनियोंके द्वार-द्वारपर द्रव्यार्थ याचना करता है वह मेरा भक्त कहाँ है ? वह तो मायाका ही दास है ! अथवा मनुष्य मेरा दास कहाकर यज्ञ, पूजा-पाठ, इत्यादि सकाम कर्म करके देवताओंसे फल माँगे, तो उसे मेरा विश्वास कहाँ है ? मैं चराचरकी पालना करता हूँ, फिर मेरा दास होकर दूसरेसे क्यों याचना करे ? कहा है—

मोक्षनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।  
योऽसौ विश्वम्भरो देवो स भक्तान् किमुपेक्षति ॥

और भी कहा है—

यावदन्याश्रयस्तावत् भगवानपि तं जनम् ।  
बिलोकयेत् कृपया ह्यनन्यजनवत्सला ॥

शिवसंहितामें कहा है—

महं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवान्छया ।  
तस्मादनन्यसेवी सन् सर्वकामपराङ्मुखः ॥  
जितेन्द्रियमनःकार्या रामं ध्यायेदनन्यधीः ।

‘हे भाइयो ! अधिक क्या कहूँ, उपर्युक्त आचरणसे मैं प्रसन्न होता हूँ। जो ऐसा करता है, उस सन्तके मैं आधीन हो जाता हूँ। वह जो कहता है, बड़ी करता हूँ, हे भाइयो ! किसीके हितकी हानि करना ही वैरका मूल विग्रह है और धरणी, धन, धाम, वाहन, भूषण, वसन, भोजन, पान, गन्ध, स्त्री, पुत्र, पौत्र, राज्य एवं स्वर्गादिकी चाहमें मन लगाना आश है तथा शत्रु, चोर, सर्प व्याघ्रादिका भय रखना त्रास है। जो भक्त या सन्त वैर, विग्रह, आश, त्रास आदि एक भी नहीं रखता और सबसे समभाव रखता है, उस सज्जनके लिये दशों दिशाएँ सुखमय हैं, वह जहाँ जाय वहीं आनन्द है।’

‘हे भाइयो ! जो जोग कर्ता बनकर किसी शुभाशुभ कार्यका आरम्भ नहीं करते यानी जो ऐसा नहीं मानते कि ‘आज हम यह कर्म करेंगे’ किन्तु ऐसा मानते हैं ‘जैसी हरि-इच्छा होगी, वही कार्य उस कालमें होगा।’ ऐसा समझकर आप कर्ता नहीं बनते और घर भी नहीं बनाते अर्थात् घरको अपना नहीं मानते, सिर्फ निर्वाहसे प्रयोजन रखते हैं। जाति, विद्या, धन, रूप, बढाई, इन सबमें मन जँचा (अभिमान) नहीं करते, नीचे ही बने रहते हैं। जीव-हिंसादि यावत् पापकर्मोंसे दूर रहते हैं। काँई कैसा भी क्रोध करे आप क्रोध नहीं करते। वेद, वेदान्त, शास्त्र, संहिता, स्मृति, उपनिषद्, काव्य, पुराणादिका सिद्धान्त जाननेमें प्रवीण होते हैं और विज्ञानी होते हैं यानी अपना स्वरूप, मायाका स्वरूप और ईश्वरका स्वरूप अलीभाँति जानते हैं, ऐसे सन्तोंका सदा संग करे क्योंकि इनकी संगतिले ये गुण आप ही आ जाते हैं। सज्जनोंके साथ प्रीति करनेसे त्यागी-स्वभाव उत्पन्न होता है, त्यागी स्वभाव होनेसे मनुष्य इन्द्रिय-विषय-सुख, स्वर्ग-सुख, अपवर्ग मोक्ष—तिनकेके समान त्याग देता है, फिर साधन करनेका प्रयोजन ही नहीं है।’

‘हे भाइयो ! भक्ति-पथका आग्रह रखो, जैसे चन्द्रपर चकोर, जलपर मीन, स्वाती-बिन्दुपर चातक हठ रखते हैं,

इसी प्रकार इष्ट-उपासनाकी दृढ़ताके लिये अनन्यताव्रत धारण करे। जैसे उत्तम पतिव्रता अपने ही पतिको, पुरुष मानती है, दूसरे पुरुषको जानती ही नहीं, इसी प्रकार अपने इष्टके सिवा न दूसरे इष्टपर दृष्टि करे और न दूसरेका नाम ले। उपासनाकी दृढ़ताके लिये भक्तिपक्षका इष्ट रखे परन्तु शठता भी न करे अर्थात् किसी भी रूपकी निन्दा न्यूनता भी न करे और दुष्ट तर्कोंको जैसे कि 'जानकी रावणके यहाँ रही फिर राम उसे घर ले आये' इत्यादि तर्कों दुष्टोंकी हैं, इनको दूर बहा दे, कभी मनमें आने न दे।'

उपर्युक्त गुण तो साधन करनेपर भी दुर्घट हैं, फिर स्वाभाविक कैसे आ जायेंगे ? इसपर भगवान् कहते हैं—

'हे पुरवासियो ! शक्ति, वीर्य, तेज, बल, कृपा, दया, वात्सल्यना, करुणा, सौहार्द, सौख्य, शील, उदारता आदि मेरे गुणोंका मन लगाकर अवयव-कीर्तन करे, मेरे नाममें रत हो यानी प्रेमसे मेरा नाम स्मरण करे। इसके प्रभावसे ममता, मद, मोह आदि भाग जाते हैं, और मेरे रूपमें अनुराग

होता है। मेरे रूपमें अनुराग होना ही पराभक्ति है। इस पराभक्तिके अपूर्व सुखको वही जानता है, जिसको वह प्राप्त है। उसके आनन्दमें देह-व्यवहारमें मन नहीं लगता, इसलिये जीव निर्विघ्न रहता है।'

भगवान्‌के अमृत-सम वचन सुनकर सब पुरवासियोंने प्रणाम किया और भगवान्‌के वचन शिर-माथेपर धारण कर लिये !

प्रिय पाठक ! इस आपके बावले अनुचरकी इतनी प्रार्थना है कि आप भी भगवान्‌के वचन अंगीकार करके सर्वदाके लिये सुखी हो जाइये—

कु०—जैसे कैसे भी बने, काँजै भगवद्भक्ति।

तनसे मनसे वचनसे, जैसा होवे शक्ति॥

ऐसी होवे शक्ति, भक्ति कर भवसे तरिये।

जन्म-मृत्युसे कूट, राज्य निष्कण्टक करिये॥

भेला हरिसे प्यार, करें भगवजन ऐसे।

प्यासा जलसे करे, अन्नसे भूखा जैसे॥

## श्रीराम-भाँकी

( लेखक—श्रीमत्याचरणजी 'मन्य' बी० प०, विशारद )

( १ )

उज्ज्वल मयङ्क रथ मञ्जुल सुरङ्गमय  
बाजी कल कल्पनाका जोड़ चढ़ जायेंगे।  
जुन जुन चारु हार हीरक बनाने हेतु  
जगमग ज्योतिषुत तारे तोड़ लायेंगे॥  
हंसवाहिनीके सङ्ग मानस तरङ्गणीपै  
बैणाके सहस्र रसवार ही बहायेंगे।  
एक बार क्षितिजपै रास भी मचा दें हम  
मनहर रामजूकी शौकी यदि पायेंगे॥

( २ )

भूधरके शृङ्गपर गन्धवाहके समान  
चलदल-नृत्य नित्य नूतन दिखायेंगे।  
पकड़ चपल छवि चञ्चला मनोहरकी  
अम्बरके छोरपर केतु फहरायेंगे॥  
एक ही हुमङ्कमें समस्त विश्व-मण्डलमें  
प्रलयकी क्रान्ति-चिनगारी-सी समायेंगे।  
दिग वो दिगन्त को कैपादे क्षण क्षण हम  
मनहर रामजूकी शौकी यदि पायेंगे॥

## तुलसी-स्तवन

( लेखक—प० आरामसेवकजी त्रिपाठी, सम्पादक 'माधुरी' )

( १ )

आन आड़े वक्तमें बचाई तुलसीने खूब,  
हास हो रहा था हिन्दू-धर्मके सुमर्मका।  
हो रहे थे प्रबल प्रहार यवनोके रोज़,  
नाम मिटना ही चाहता था वर्ण-धर्मका।  
छोटी और चन्दन बना था जुर्म हिन्दुओंका,  
'बेटी और रोटी था बनाम बोटी-धर्मका।'  
'मानस'की ढाल दे स्व-बन्धुओंको तुने तब—  
अमर बनाया, बतलाया ज्ञान कर्मका।

( २ )

ऐसा मंल फूँका रामनामका विमुग्ध होकर,  
लाखों मृतकोंमें फिरसे ये जान आ गई।  
तेरी भक्ति-भावनासे, भव्य-भारतीकी मूर्ति-  
अंकित हुई जो, वह दिलमें समा गई।  
मटक रहे थे भ्रमसे जो भव-सागरमें,  
'मानस'की नौका पार उनको लगा गई।  
सुयस-पताका स्वर्गमें भी फहराती आज,  
अचल सुकीर्ति विश्वमें है तेरी छा गई।



## श्रीरामायण-रहस्य

( श्रीकाशी-प्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीमगवद्रामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीजनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज )

स्वयं आदि लौकिक प्रमाणोंसे अनेक अर्थोंके  
प्र जाननेका एकमात्र उपाय वेद है, इसीलिये  
उसका नाम वेद पड़ा है।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

यत्तं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

अर्थात् प्रत्यक्ष वा अनुमितिले जो उपाय नहीं जाना  
जाता, ऐसे उपायको वेदसे जाननेके कारण उसका वेदत्व है।

कर्म-ब्रह्म-कायकालिक वेदके अर्थोंको समझनेके लिये  
स्मृतीतिहासपुराणोंकी सहायता लेना आवश्यक होता है।  
उनकी सहायताके बिना वेदार्थ-निर्याय करना असम्भव है।  
अतएव कहा गया है कि—

प्रायेण पूर्वभागार्थो धर्मशास्त्रेण कथ्यते।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदान्तार्थः प्रकाशयते॥

अर्थात् वेदके पूर्वभागके अर्थ प्रायः धर्मशास्त्रोंमें वर्णित  
हैं, वेदान्तका अर्थ इतिहास-पुराणोंसे प्रकाशित होता है।  
अस्पष्टार्थक वेदोंके अर्थोंका स्पष्टीकरण स्मृतीतिहासपुराणोंमें  
किये जानेके कारण उनकी सहायता लेकर ही वेदार्थनिर्याय  
करना योग्य माना गया है। वेदोत्तरभागरूप वेदान्तके अर्थ  
निर्याय करनेमें तो इतिहासपुराणोंकी सहायता लेना  
अत्यावश्यक माना गया है, अन्यथा जोला खानेकी सम्भावना  
रहती है। इसी आशयको लेकर बार्हस्पत्य स्मृतिमें कहा गया है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।

विभेत्त्यल्पश्रुताद्धेतो मामयं प्रतर्प्यति॥

अर्थात् इतिहास-पुराणोंसे वेदोंका उपवृंहय करना  
चाहिये, क्योंकि वेद अल्पश्रुत पुरुषसे करता है कि कहीं  
यह हमारी बखला न कर दे, अतिविस्तृत नाना-शाखा-  
विभक्त वेदका एककथनसे अर्थ निर्याय करना बहुश्रुत  
नाना-शाखाभिन्न पुरुषका ही काम है, अल्पश्रुत पुरुष यह  
काम करने लगे तो सम्भव है कि मूलसे अर्थका अनर्थ कर  
दे। ऐसे पुरुष इतिहास-पुराणोंकी सहायतासे तदालोक्येन  
अर्थ निर्याय करें तो अल्पश्रुतताकी कमी पूरी हो जानेसे  
विपरीतार्थ करनेका भय नहीं रहता।

इतिहास और पुराण ये दोनों स्मृतिबोधसे भेद हैं, इनके  
लिये ब्रह्मदोम्य उपनिषद्में 'इतिहासपुराणं पञ्चमम्' इसप्रकार  
पञ्चम वेदके नामसे उल्लेख पाया जाता है। यह महत्त्व वेदमें  
सारभूत ब्रह्मकायकके उपवृंहय होनेके कारण है। इतिहास  
और पुराण इन दोनोंमेंसे इतिहास प्रबल है, क्योंकि  
पुराणोंके समान देवतापक्षपात इतिहासोंमें नहीं है।  
सार्विक, राजस, तामस-भेदसे भिन्न षट्कत्रय-विभक्त पुराण  
भिन्नदेवता-महत्त्व-प्रतिपादक माने जाते हैं। यथा—

अंग्रदिशवस्य माहात्म्यं तामसंषु प्रकीर्त्यते।

राजसेषु तु कल्पेषु माहात्म्यं ब्रह्मणो विदुः॥

सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥

यस्मिन्कल्पे तु यत्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा।

तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते॥

( मन्व्यपुराण )

पुराण मुख्यतया पाँच विषयोंके प्रतिपादक होते हैं।  
सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पुराणोंके  
मुख्य विषय हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशा मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्च लक्षणम्॥

यह पुराणोंके लक्षण हैं। इतिहासोंमें इसप्रकार  
प्रतिपाद्य विषय सीमाबद्ध नहीं हैं। नानार्थप्रतिपादक  
इतिहास होते हैं। पुराणापेक्षया इतिहासका महत्त्व  
'इतिहासपुराणं पञ्चमम्' 'इतिहासपुराणाभ्याम्' इसप्रकारके  
नामनिर्देशोंसे ही मालूम हो जाता है। इतिहासपुराण  
यह समस्त पद है, इतिहास-शब्दकी अपेक्षा पुराण शब्दमें  
कम 'अच्' अक्षर है। अतएव 'अल्पाक्षरपूर्वम्' इस  
व्याकरण-विधिके अनुसार कम अक्षरवाला पुराण शब्द  
इतिहास शब्दसे पहले आना चाहिये, परन्तु आया है पीछे,  
इसका कारण इतिहासका श्रेष्ठत्व है, क्योंकि 'अभ्यर्हितं  
पूर्वम्' इस दूसरी व्याकरण-विधिके अनुसार अधिक  
अक्षरवाला होनेपर भी अभ्यर्हित (श्रेष्ठ) का नाम पहले  
का सकता है। इसी विधिके अनुसार 'इतिहासपुराणम्'



‘सोहे राम-सियाकी जोरी’ ।



इसप्रकार निर्वैरा हुआ है, इससे सिद्ध है कि पुराणकी अपेक्षा इतिहास श्रेष्ठ है।

आर्योंके इतिहास-ग्रन्थ मुख्यतया दो माने गये हैं, एक श्रीरामायण और दूसरा महाभारत। इन दोनोंमेंसे श्रीरामायणका स्थान ऊँचा है। महर्षि वाल्मीकिका तपः-प्रभाव लोकप्रसिद्ध है। वे आदिकवि कहलाते हैं, महाजी तक उनको बहुमानकी दृष्टिसे देखते थे।

वाल्मीकये महर्षये सन्दिदेशासनं ततः ॥

श्रीरामायणका यह रहस्योक्त इसका प्रमाण है। महाजी जब वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे थे, तो उन्होंने वाल्मीकिजीको आसन-दानसे सम्मानित किया था। उनको महाजीका यह वरदान मिला था कि श्रीरामायणमें वे जो जिलेंगे, उसमेंसे एक बात भी मिथ्या न होगी।

न ते बागनुता काव्ये काण्डिदत्र भविष्यति ॥

इससे यह सिद्ध है कि श्रीरामायण सत्यार्थप्रतिपादक है।

श्रीरामायणका जितना अधिक लोकप्रसिद्ध है उतना दूसरे किसीका नहीं, यह बात आज भी अनुभवसे सिद्ध होती है। नाना-फल-सिद्धिके लिये लोग श्रीरामायणका पाठ किया करते हैं। विद्वानोंको इसके अनेक प्रकारके प्रयोग मालूम हैं। वक्तु-वैलक्षण्य, अधिक लोक-प्रसिद्ध, अवतार-वैलक्षण्य इन सबसे श्रीरामायणका महत्त्व अधिक है। श्रीरामायणका अवतरणक्रम भी विचित्र है। यह श्रीरामायणके प्रारम्भमें वर्णित है। माध्याह्निक-ज्ञानके लिये जाते हुए श्रीवाल्मीकिजीके सामने व्याधका बाणसे क्रीड-पक्षीको मारना, क्रीडी (की-पक्षी) का विलाप, इस दृश्यके देखनेसे कल्याण-हृदय श्रीवाल्मीकिजीके मुखसे श्लोकका निकलना, थोड़ी ही देरके पश्चात् महाजीका वाल्मीकिके आश्रममें आकर यह कहना कि 'मच्छन्दादिव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तये सरस्वती'। महाजीका श्रीरामायण रचनेकी आज्ञा वाल्मीकिजीको देना, भूत, भविष्यत् समस्त शमचरित-ज्ञान-ज्ञाभका वरदान, रामायणमें वर्णित किसी भी विषयके मिथ्या न होनेका वर, यह सब रामायणावतरणके पूर्व कालकी घटनाएँ हैं। इनके विचारसे श्रीरामायणका महत्त्व इदंशत हो जाता है।

श्रीरामायणका महत्त्व इस बातसे स्पष्ट होता है कि इसको वेदका रूपान्तर कहकर प्राचीनोंने प्रशंसा की है। जैसे महाभारतको पञ्चम वेद कहकर महत्त्व दिया जाता है, वैसे ही इसको वेदका रूपान्तर कहकर दिया जाता है। यथा—

वेदवेद्ये परे पुंति जते दशरथात्मजे ।

वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

अर्थात् वेदप्रतिपाद्य परम पुरुष जब दशरथके पुत्र हुए, तब वेद भी प्राचेतस-वाल्मीकिके द्वारा रामायणके रूपमें प्रकट हुआ।

श्रीरामायण केवल इतिहास ही नहीं है, किन्तु काव्य भी है, आदिकाव्य होनेका गौरव इसीको प्राप्त है—

आदिकाव्यमिदं त्वार्ष पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।

यह आदिकाव्य इसलिये है कि इसके पूर्व वेदको छोड़ कर संस्कृतकी व्यावहारिक भाषामें छन्दोबद्ध कोई ग्रन्थ ही नहीं था। महर्षि वाल्मीकिके मुखसे ही चतुर्मुख महाजीकी इच्छासे संस्कृतका छन्दोबद्ध श्लोक सर्वप्रथम निकला था।

इसप्रकार श्रीरामायण इतिहास सुहृत्सम्मित होनेके साथ ही कान्तासम्मित भी होकर पाठकोंका महान् उपकार करता है। श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण सुहृत्के समान पाठकोंको 'रामादिवद्विस्तृत्यं न रावणादिवत्'—उपदेश देकर जो उपकार करता है, रमणीयार्थप्रतिपादक ध्वनिलङ्कार-प्रचुर सुन्दर काव्यरूप होनेके कारण कान्ताके समान रञ्जन करता हुआ अभिमानी मनुष्योंको भी सम्मार्गमें लाकर महान् लाभ पहुँचाता है।

श्रीरामायणमें नाना छन्दके श्लोक नाना प्रकारके शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार स्थान-स्थानपर सन्निविष्ट हैं। वर्णनशैली अत्यन्त सुन्दर है। सुन्दरकाव्यमें इस बातका अनुभव हम लोगोंको मिलता है।

श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण वेदान्त-भागका उपबृंहणरूप है, यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। अतएव वेदान्तप्रतिपाद्य अर्थोंका इसमें वर्णन होना आवश्यक है। यह बात—'वेदोपबृंहणार्थाय तावदावयत प्रभुः'—इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है। यहाँ हम रामायणप्रतिपाद्य अर्थोंमेंसे कुछ मुख्य अर्थोंका वर्णन करेंगे।

वेदान्त अर्थात् वेदका ब्रह्मकाव्य परतत्त्वका प्रतिपादक है, यह सबको मालूम है। लक्षणपुरस्सर परब्रह्मका निरूपण वेदान्त-भागमें है। श्रीरामायणमें वह परब्रह्म कौन-से देवता हैं ? इसका निर्णय किया गया है।

शास्त्र-सात्पर्य-निर्णयके लिये सात जिज्ञ माने गये हैं, जिस अर्थमें वे सातों जिज्ञ अनुकूल हों वही शास्त्र-सात्पर्य विषयभूत माना जायगा।

उपक्रमोपसंहाराव्याप्तोऽपूर्वता फलम् ।

अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

शास्त्र-तात्पर्य-निर्णयके लिये उसका प्रारम्भ और अन्त देखा जाता है । वहाँ जिस अर्थका वर्णन हो वह तात्पर्यार्थ माना जाता है । जिस शास्त्रमें बारम्बार जिस अर्थका वर्णन आया हो, वही उसका तात्पर्यार्थ है । जो अर्थ अपूर्व हो, जिसका फल कहा गया हो, जिसकी प्रशंसा की गयी हो, जिसमें सर्व प्रकारकी उपपत्तियाँ हों, वही तात्पर्यार्थ है ।

श्रीरामायणके आदिमें बालकाण्डके पन्द्रहवें सर्गमें श्रीविष्णु भगवान्‌के परस्वका वर्णन आया है—

पतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाश्रुतिः ।

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतबासा जगत्पतिः ॥

इस श्लोकमें महाश्रुतिः 'पातन, माः' और 'जगत्पतिः' ये तीन शब्द परस्वके सूचक पड़े हुए हैं । परज्योतीरूपत्व, पीतवासस्त्व और जगत्पतित्व ये परमात्माके असाधारण धर्म हैं ।

तमनुवन्सुरास्सर्वे समभिष्टूय सज्जताः ।

इस श्लोकमें समस्त देववन्द्यत्व समस्त देवस्तुत्यत्व ये परमात्मधर्म कहे गये हैं ।

अवध्यं दैवतैस्सर्वैस्समरे जहि रावणम् ॥

इस श्लोकमें सर्वदेवाञ्जय रावणवध-सामर्थ्य विष्णु भगवान्‌का बताया गया है ।

वधार्थं जयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ।

सिद्धशन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥

सर्वदेवशरण्यात्वरूप परमात्मधर्म बताया गया है । इस प्रकार उपक्रममें विष्णु-परस्वका वर्णन आया है ।

उपसंहारमें उत्तर-रामायणके अन्तमें—

अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

सर्वैः परिवृता देवैः ऋषिभिश्च महात्मभिः ॥

आयमौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गीय समुपस्थितः ॥

इन श्लोकोंमें सब देवाभिमन्यत्व बताया गया है ।

आगच्छ विष्णो मद्रं तं दिष्ट्या प्राप्तोसि राघव ।

भ्रातृभिः सह देवभिः प्रविशस्वा स्वकान्तनुम् ॥

यामिच्छसि महाबाहो तान्तनुं प्रविश स्वकाम् ।

देष्णवीं तां महत्तंजो यद्वाकाशं सनातनम् ॥

ब्रह्माकी इस उक्तिमें श्रीरामरूप विष्णुका आकाश-शब्दवाच्य परब्रह्ममें प्रवेश बताया गया है ।

त्वं हि लोकगतिवीर न त्वां केचित्प्रजानते ।

ऋते मायां विशालार्क्षी तव पूर्वपरिग्रहाम् ॥

त्वामचिन्त्यं महद्भूतमश्रयं चाजरं तथा ॥

पितामहकी इस उक्तिमें सर्वलोकगतित्व, अज्ञेयत्व, अचिन्त्यत्व, महाभूतत्व ये परमात्मासाधारण धर्म रामरूपी विष्णुके बताये गये हैं । अतएव विष्णुका परस्व सिद्ध होता है ।

युद्धकाण्डके अन्तमें भी—

ततो वैश्रवणो राजा यमश्चामित्रकर्शनः ।

सहस्राक्षो महेन्द्रश्च नरुणश्च परंतपः ॥

षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो नृषध्वजः ।

कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥

पते संवे समागम्य त्रिमानैस्सूर्यसंनिभैः ।

आगम्य नगरीं तङ्काममित्रमुदच राघवम् ॥'

इन श्लोकोंमें राघव-विष्णुका सर्वदेवाभिमन्यत्व बताया गया है ।

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ।

देवताओंकी इस उक्तिमें सर्वलोक-कर्तृत्वरूप जगत्कारणत्व ब्रह्मासाधारण धर्म राघवरूपी विष्णुमें बताया गया है ।

त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयम्भुवः ।

इस श्लोकमें भी सर्वलोककर्तृत्व बताया गया है ।

अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परंतप ।

इस श्लोकमें भी रामका परब्रह्म-सत्त्व जगत्कारणत्व बताया गया है ।

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।

इस क्तुर्लुक्की उक्तिमें स्पष्ट ही रामको अक्षरब्रह्म बताया गया है ।

'प्रभवश्चाव्ययश्च त्वम्' 'शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः' 'त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता' 'स्वयम्भुवः' 'पूर्वजः' न विदुः को भवानिति' 'दृश्यसे सर्वभूतेषु' 'त्वं धारयसि भूतानि' 'संस्कारास्तंऽभवन्वेदाः' 'न तदस्ति त्वया विना' 'जगत्सर्वं शररं ते' इन वाक्योंमें परब्रह्मासाधारण धर्म-सर्व-जगत्कारणत्व, सर्वशरण्यत्व, स्वयम्भुत्व, अज्ञेयत्व,

सर्वभूतान्तर्यामिण्य, सर्वधारकत्व, देवसंस्कारकत्व, अनन्तत्व, सर्वशरीरकत्व आदि श्रीरामरूपी विष्णुमें बताये गये हैं।

इस बातका भी रामायणमें बारंवार अभ्यास यानी कथन है। बालकाण्डमें 'अधिकम्मेनिरे विष्णु देवासर्षिगयास्तथा' इसमें सर्वाधिकत्व कहा गया है। अयोध्याकाण्डके—“अयितो मानुषे लोके जन्मे विष्णुस्सनातनः” इस श्लोकमें सनातनत्व बताया गया है। आरण्यकाण्डके 'अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकारमजा' इस श्लोकमें अप्रमेय तेजोरूपत्व बताया गया है। किष्किन्धाकाण्डके—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च ।

अक्षय्यकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षिति क्षमावानक्षतजोपमाक्षः ॥

—इस श्लोकमें अप्रमेयत्व क्षतजोपमात्त्व ये दो असाधारण ब्रह्मलक्षण बताये गये हैं। सुन्दरकाण्डके—

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा

रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।

इन्द्रो महेन्द्रस्तुरनायको वा

त्रातु न शक्ता युधि रामबध्मम् ॥

—इस श्लोकमें सर्वसंहर्तात्व मुखेन परब्रह्मत्व बताया गया है।

विष्णुका परत्व प्रमाणान्तरावेद्य होनेसे अपूर्वता भी है। श्रीराम-भक्तोंका भगवत्सालोक्य मिलता है, यह बात रामायणके अन्तमें कही गयी है, अतएव फल भी है।

बाल-काण्डमें—'इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे' इत्यादिसे अर्धचाद कहा गया है। 'जन्मिमतं तदनुदृष्ट्वा शिवं विष्णुपराक्रमः । अर्षिर्वा मेनिरे विष्णु देवासर्षिगयास्तथा ।' इत्यादि ग्रन्थमें विचारपूर्वक विष्णुके श्रेष्ठत्वका निर्णय देवताओंने किया है, अतएव उपपत्ति भी वर्तमान है।

इसप्रकार पञ्चविध तात्पर्य जिक्रोंसे श्रीरामायणमें विष्णु-यत्त्व प्रतिपादन होनेसे वेदान्त-वेद्य परब्रह्मका स्वरूप निश्चय होता है।

इसप्रकारका परतत्व किस उपायसे प्राप्त होता है, यह बात भी श्रीरामायणमें वर्णित है। वह उपाय है शरणागति। परब्रह्म परमात्माकी प्रासिका उपाय वेदान्तोंमें शरणागति ही बताया गया है। यथा—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वो यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रसादं मुमुक्षुर्वै शरणमर्हं प्रपद्ये ॥

(भेताश्वतर उ० ६।१८)

इस रवेतारवतरोपनिषत्के मन्त्रमें मुमुक्षु-पुरुषोंको शरणागति कर्तव्य बताया गया है। इसी शरणागतिका वर्णन श्रीरामायणमें है। शरणागति सर्वफलसाधन है। इसके अधिकारी भी अनेक प्रकारके होते हैं। आरम्भसे लेकर अन्ततक श्रीरामायणमें शरणागति-उपायका वर्णन कई स्थलोंमें आया है।

बालकाण्डमें—

देवगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ।

इस श्लोकमें रावण-रथरूप फलार्थी देव-जातियोंकी शरणागतिका वर्णन है।

त्रिशकुके वृत्तान्त और शुनःशेपके वृत्तान्तसे शरणागत-रक्षण परमधर्म बताया गया है और गुण्यीके विषयमें शरणागति करनेसे फल अवरय मिलता है, यह बात भी बतायी गयी है।

अयोध्या-काण्डमें—

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीब्य रघुनन्दनः ।

सीतामुवाचातिथशा राघवं च महाब्रतम् ॥

इस श्लोकमें लक्ष्मणकी शरणागति कही गयी है।

शिद्वये पुरस्ताच्छालाया यावन्मे न प्रसीदति ॥

इस श्लोकमें भरतकी शरणागतिका वर्णन है।

आरण्य-काण्डमें—

ते वयं भवता रक्षया भवद्विषमवासिनः ।

नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा वयं प्रजाः ॥

इस श्लोकमें महर्षियोंकी शरणागतिका वर्णन है।

स तं निपतितं भूमौ शरण्यश्शरणागतम् ।

वधाहमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥

स पित्रा च परित्यक्तस्सुरैश्च परमर्षिभिः ।

तीन्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः ॥

इस श्लोकोंमें काककी शरणागतिका वर्णन है।

किष्किन्धाकाण्डमें—

कृतापराधस्य हि ते नान्यःपश्याम्यहं हितम् ।

अन्तरेणाज्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥

इस श्लोकमें सुग्रीवकी शरणागतिका वर्णन है।

सुन्दर-काण्डमें—

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामस्थानं परीप्सता ।

बधं चानिच्छता घोरं त्वयासौ पुरुषर्षभः ॥

विदितस्त हि धर्मज्ञदशरणागतवत्सलः ।

तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥

इन श्लोकोंमें जानकीजीका उपदेश रावणको शरणागति करनेके विषयमें हुआ है ।

युद्धकायदमें—

सोहं परधितस्तेन दासवन्धवमानितः ।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥

इस श्लोकमें विभीषणकी शरणागतिका वर्णन है ।

ततस्सागदेलायां दर्मानास्तार्य राघवः ।

अर्जुनं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिष्ये महोदधेः ॥

इस श्लोकमें श्रीरामचन्द्रकी शरणागतिका वर्णन है । इसप्रकार नाबाबिध फलापेक्षी पुरुषोंकी शरणागतिका वर्णन करते हुए उन लोगोंकी फलसिद्धिका वर्णन करनेसे मोक्ष रूपी फलके लिये भी शरणागति ही मुख्य उपाय है—यह बात सूचित हुई ।

उपाय दो प्रकारके होते हैं—सिद्धोपाय और साध्योपाय । मोक्षके लिये सिद्धोपाय ईश्वर है और साध्योपाय भक्ति आदि हैं । ईश्वर सिद्ध उपाय होनेपर भी उनका उपायत्वेन हड़ अजबवसायके साथ वरण करना आवश्यक है—यही शरणागति है । शरणागतिमें प्रधान शरय्य बलु है, शरणागतिकी सफलताके लिये पुरुषकारकी आवश्यकता है, अतएव यह अङ्गभूत है ।

मोक्षरूप परम पुरुषार्थ—सिद्धिके लिये जो शरणागति की जाती है, वह यदि आवश्यक समस्त गुणपूर्ण व्यक्तिके विषयमें की जाय, सभी सफल होती है, अन्यथा श्रीरामचन्द्रजीकी समुद्रदेव-शरणागतिके समान निष्फल होती है । श्रीराम-कृत समुद्र-शरणागतिके निष्फल होनेका कोई कारण है तो यही है, और कोई नहीं ! श्रीरामचन्द्र भगवान् ने जो समुद्रकी शरणागति की थी, उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं दिखायी जा सकती उसमें करनेवालेकी ओरसे कोई अभाव नहीं बतलाया जा सकता । शरय्यमें जिन गुणोंका होना अत्यावश्यक है, समुद्रमें उन गुणोंके अभावके कारण ही, वह शरणागति निष्फल हुई । अतएव मोक्षार्थ-शरणागति जिन परमात्माके विषयमें करनी चाहिये, उनका समस्त गुणपूर्णत्व श्रीरामायणमें विस्तारके साथ वर्णित हुआ है । श्रीरामरूपसे अवतीर्थ परमात्मा श्रीमन्नारायणके गुणोंका वर्णन श्रीरामायणभरमें सर्वत्र ही मिलेगा ।

वात्सल्य, सौशील्य, सौमन्य, ज्ञान, शक्ति आदि जिन मुख्य गुणोंकी आवश्यकता शरय्यमें होती है उनका श्रीरामचन्द्र भगवान् में होना श्रीरामायणमें अनेक स्थलोंमें स्पष्ट वर्णित है ।

वात्सल्यगुण—दोषभोग्यत्व या दोषवर्शित्वको कहते हैं, दूसरोंके दोषोंको गुणके रूपसे ग्रहण करना अथवा दोषोंको न देखना यही वात्सल्य है । युद्धकायदके १८ वें सर्गमें श्रीरामचन्द्र भगवान् कहते हैं—

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।

दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥

अर्थात् जो मित्रभावसे आये, उसको मैं किसी हालतमें नहीं छोड़ सकता, उसका चाहे कोई दोष ही क्यों न हो, सत्पुरुषोंके लिये वह निन्दनीय नहीं है । यह उक्ति श्रीरामचन्द्र भगवान् के वात्सल्य-गुणका प्रमाण है ।

महान् पुरुषका अपनेसे छोटे पुरुषोंके साथ अभिन्न भावसे मिलनसार स्वभावका नाम सौशील्य है । यह गुण श्रीरामचन्द्रजीमें वर्तमान था । इसके कई प्रमाण हैं । अयोध्याकायदमें श्रीरामके गुणोंका वर्णन करते हुए अयोध्या-वासी जन दशरथके सामने कहते हैं—

संग्रमात्पुनरागम्य कुञ्जरेण ग्धेन वा ।

पौरान् स्वजनवर्जित्यं कुशलं परिपृच्छति ॥

व्यसनेषु मनुष्याणां मृगं भवति दुःखितः ।

उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥

अर्थात् श्रीराम जब दण्डयात्रासे लौटकर आते हैं तब नगरवासियोंसे स्वजनके समान कुशल-प्रश्न करते हैं । नगरवासियोंके दुःख देखकर स्वयं दुःखित हो जाते हैं । उनके उत्सवमें जैसे पिता पुत्रके उत्सवमें सन्तुष्ट होता है वैसे सन्तुष्ट होते हैं ।

निषाद गुहके साथ श्रीराम किसप्रकार मिलते थे यह बात—‘भुजाभ्यां साधुपीनाभ्यां पीडयन्वाक्यमनवीत्’ इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाती है । अपनी भुजाओंसे गुहको आखिजन करते थे । श्रीविभीषणको अङ्गीकार करनेके पश्चात् उनके साथ भगवान् रामचन्द्र इसी प्रकार मिले थे—‘इति ब्रूवाणं रामस्तु धारिष्वज्य विभीषणम् ।’ विभीषणका भी आखिजन रामचन्द्रने किया था । यह सुरीलताका ही कार्य है ।

श्रीरामचन्द्रका सौमन्यगुण सब विदित है । ‘सर्वदा-मिगतस्सद्गिरदोनात्मा विचक्षणः ।’ यह श्लोक सौमन्यगुणका

प्रमाण है। इसमें कहा गया है कि सत्पुरुष सर्वदा उनके पास पहुँचते रहते थे।

भगवान् श्रीरामचन्द्रका ज्ञान 'बुद्धिमत्प्रतिमान्वाग्मी' 'यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः' 'वेदवेदाङ्गतत्त्वतः' 'सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः' 'स्थितिमान्प्रतिमानवान्' इत्यादि स्वर्णोंमें उल्लिखित हुआ है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शक्ति-अचदितघटनासामर्थ्य उनके चरित्रमें यत्र-तत्र देखने योग्य है। काकासुरको प्राण-दान करना, सुग्रीवकी रक्षा करना, अहल्याका उद्धार, जटायुको मोक्ष देना अयोध्यावासी जन्मुमात्रको सान्त्वानिक झोक पहुँचाना, सुसुप्तको प्रबुधित करना इत्यादि कार्य उनकी शक्तिके निर्वर्णन हैं।

शरणाग्रगुणवर्णनके साथ पुरुषकार-स्वरूपका भी वर्णन श्रीरामायणमें हुआ है। सुसुप्तोंकी भगवत्प्रवृत्तागतिमें श्रीमहालक्ष्मीजी ही मुख्य पुरुषकार होती हैं। श्रीरामायणमें श्रीजानकीजीके पुरुषकारत्वोपयुक्त गुणोंका वर्णन विशेषरूपसे हुआ है। पुरुषकारमें रचय और रचक दोनोंके साथ विशेष सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। जानकीजीके रूपमें अवतीर्ण श्रीमहालक्ष्मीजीमें भगवान्के साथ पक्षीत्व-सम्बन्ध और चेतनोंके साथ मातृत्व-सम्बन्ध वर्तमान है। अतएव महालक्ष्मी अत्यर्थ पुरुषकार मानी गयी हैं। उनके पुरुषकारत्वोचित गुणोंका वर्णन श्रीरामायणमें है।

जैसे श्रीरामायण श्रीरामचरित्र-वर्णनपर है वैसे ही श्रीसीता-चरित्र-वर्णनपर भी है। अतएव इस कान्यका नाम सीताचरित भी है। बाह-कायके चौथे सर्गमें—

कान्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितममहत् ।

समग्र रामायणको सीताका चरित बताया है। पुरुषकार होनेमें कृपा, परतन्त्रता, अनन्यार्हत्व इन तीन गुणोंकी आवश्यकता होती है। श्रीजानकीजीमें ये तीनों गुण विशेषरूपसे वर्तमान थे। इस बातका वर्णन श्रीरामायणमें है।

श्रीजानकीजीका जङ्गलमें अशोकवनिकामें बन्दिनीके रूपसे बस महीने रहना ही उनकी कृपाका सूचक है। जैसे भगवान्का रामावतार देवताओंके कष्ट-निवारणार्थ हुआ और उनकी वनवास दुखी महर्षियोंके दुःख-निवारणार्थ हुआ, इसी प्रकार श्रीमहालक्ष्मीजीका अवतार भी चेतनोद्धारके लिये ही हुआ था, और अशोकवनिकावास बन्दीकृत देवादि स्त्रियोंके उद्धारके लिये ही हुआ। कृपा या दया दूसरोंके दुःखको देख स्वयं दुःखी होनेकी कहते

हैं। देवस्त्रियोंके दुःखसे दुखिनी हो स्वयं तत्समान भावसे बन्दिनी बन उनके दुःखोंके निवारणके लिये अशोकवनिकामें वास करना आपकी कृपाका ही कार्य है। श्रीजानकीजी असमर्थताके कारण बन्दिनीके रूपमें अशोकवनिकामें वास करती थीं—ऐसा कहना उनके सामर्थ्यसे अनभिज्ञोंकी उक्ति है। श्रीजानकीजी चाहतीं तो रावणको भस्म कर सकती थीं। श्रीजानकीजीने रावणके प्रति इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें कहा भी है—

असन्देशात्तु रामस्य तपसद्बानुपालनार् ।

न त्वा कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्माहतेजसा ॥

अर्थात् 'श्रीरामकी आज्ञा न पाने और तपस्याके रक्षाकी इच्छासे ही मैं तुमको अपने तेजसे भस्म नहीं करती हूँ।' इससे ध्वनित है कि 'नहीं तो कर देती।' श्रीहनुमान्के पूँछमें जलते हुए अग्निको शीतल करनेके लिये जो जानकीजी अग्निको 'शीतो भव हनुमतः' कहकर आज्ञा देनेका सामर्थ्य रखती थीं, क्या उनमें 'भरभी कुरु दशग्रीवम्' कहनेका सामर्थ्य नहीं था? जानकीजीका बन्दीवास ही उनके दया भावि गुणोंका सूचक है।

संसारी चेतनोंके दुःखोंको देख असहिष्णु हो, उनके दुःखोंके निवारण करनेके लिये स्वयं पुरुषकार बन ईश्वरसे प्रार्थना कर समस्त अपराधोंकी क्षमा करवाकर उनके उद्धारका प्रयत्न करनेके लिये कृपाकी आवश्यकता होती है।

स्वतन्त्र परमात्माको अपने वशमें कर उनसे चेतनोंका कार्य करा लेनेके लिये ईश्वरानुवर्तन करनेकी आवश्यकता होती है। अतएव भगवत्परतन्त्रतारूप गुणकी भी आवश्यकता पुरुषकारमें है। भगवान् इनके वचनसे चेतनोंका उद्धार कर दें, इसके लिये अर्थात् इनके वचनानुसार कार्य करनेके लिये अनन्यार्हताकी भी आवश्यकता होती है। भगवान् जिनको अपने परतन्त्र समझें और अनन्यार्ह समझें उनके वचनोंके अनुसार कार्य करना उनके लिये आवश्यक हो जाता है। अतएव परमात्माको वशमें करनेके लिये पारतन्त्र्य और अनन्यार्हत्व इन दो गुणोंका पुरुषकारमें होना आवश्यक है। श्रीजानकीजीके ये दोनों गुण श्रीरामायणमें दो घटनाओंके द्वारा प्रकटित हुए हैं।

द्वितीय बार जब जानकीजीको श्रीरामविभोग हुआ, अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीका परित्याग किया, तब लक्ष्मणजीके द्वारा वनमें छोड़ी जानेके बाद अत्यन्त शोककुल श्रीजानकीजी शरीर त्याग करनेका इच्छा होनेपर



भी केवल भर्तृ-परतन्त्रताके कारण ही जीवित रहें।  
लक्ष्मणके प्रति श्रीजानकीजी कहती हैं—

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले ।  
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मा परिहास्यति ॥  
पतिर्हि दैवतं नार्याः पतिर्वन्धुः पतिर्गतिः ।  
प्रणैरपि प्रियं तस्माद्भर्तुः कार्यं विशेषतः ॥

अर्थात् 'हे लक्ष्मण ! अभी मैं गंगाजलमें डूबकर प्राण छोड़ देती, किन्तु मेरे पति का राजवंश नष्ट हो जायगा, इसलिये मैं ऐसा नहीं करती। लीके लिये पति देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गति है, अतएव प्राण देकर भी पत्नीको अर्थात् प्रिय-साधन विशेषरूपसे करना चाहिये।' इससे यह बात स्पष्ट है कि जानकीजी इतनी पति-परतन्त्र थीं कि अपने दुःख दूर करनेके लिये प्राण भी नहीं छोड़ सकती थीं।

तीसरी बार जब सर्वथा भूलोकसे ही जानकीजी अन्तर्हित हो गयीं, उस समयकी जानकीजीकी उक्तिसे उनकी अनन्याहता स्पष्ट हो जाती है। भरी सभामें श्रीरामचन्द्रजीके सामने श्रीजानकीजी खड़ी हैं, श्रीवाल्मीकिजीने जानकीजीके शुद्धताके विषयमें शपथ की, तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'भगवान् श्रीवाल्मीकि जानकीको शुद्ध बता रहे हैं, उनके वचनसे मुझे इनकी शुद्धतामें पूरा विश्वास है, किन्तु सर्वसाधारण जनसमुदायके सामने जानकी अपनी शुद्धताका परिचय दें, जिससे कि लोगोंको विश्वास हो जाय।' इसके बाद श्रीजानकीजी हाथ जोड़े हुए नीचे देखती हुई शपथ करने लगीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥  
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥  
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वैशि रामात्परं न च ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥

अर्थात् 'यदि मैं राघवसे अन्यका मनसा चिन्तन भी नहीं करती होऊँ तो माधवी देवी मुझे जगह दें। यदि मैं मन, वाणी, शरीरसे रामकी अर्चना करती होऊँ तो माधवी देवी मुझे जगह दें, रामसे अन्यको मैं जानती ही नहीं, मेरी यह बात यदिसत्य है तो माधवी देवी मुझे जगह दें।' श्रीजानकीजीकी इन शपथोक्तियोंमें कैसी अचान्यता भरी हुई है, यह स्पष्ट है।

इसप्रकार उपायभूत परमात्मा रामरूप श्रीमन्नारायण

और पुरुषकारभूता जानकीरूप श्रीमहालक्ष्मीजीके उपायत्वोपयुक्त और पुरुषकारत्वोपयुक्त गुणोंके वर्णनके द्वारा शरणागति-की प्रधान दो वस्तुओंका प्रतिपादन श्रीरामायणमें होनेके कारण वेदान्तके उस भागकी व्याख्या भी हो गयी।

मुमुक्षुओंको वेदान्तोदित उपायके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, उसका भी वर्णन श्रीरामायणमें है। कर्मबन्धनसे छूटनेके बाद शुद्ध मुक्त जीवात्माओंको भगवद्बुभुक्षन्प्राप्त्यन्तः प्राप्त होता है। उस आनन्दसे प्रेरित होकर वे यथोचित भगवत्परिचर्यामें लगते हैं, उससे उनको विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है, बड़ी तृप्ति होती है। भगवत्परिचर्या काविक वाचिक और मानसिक भेदसे भिन्न-भिन्न होती है। 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवां च चक्षुराततम्। तद्विष्णोः विपन्यवो जागृवांसस्समिन्धते। विष्णोः परमं पदम्' 'एतत्साम गायत्रास्ते' 'येन येन भाता गच्छति तेन तेन सहगच्छति' 'रसं शेषायं लब्धवानन्दी भवति' इत्यादि श्रुतिधर्मोंमें भगवान्के सदा दर्शन करनेवाले, स्तोत्र करनेवाले, सामगान करनेवाले, परमात्माके पीछे-पीछे फिरनेवाले, परमात्माका अनुभव करनेवाले मुक्त जीवोंका उल्लेख है, इससे मुक्त जीवोंके प्राप्त फलका बोध हो जाता है। परमात्म-परिचर्याजन्यान्न्द ही मुक्त पुरुषोंके लिये प्राप्त मुख्य फल है। भगवत्छरणागत पुरुष जबतक यहाँ जीते रहते हैं तबतक यहाँ भी उसी भगवत्परिचर्याको अपना कर्तव्य समझते हैं, उसीमें उनको आनन्द मिलता है। इसी भगवत्कर्मके लिये श्रीलक्ष्मणजीने भगवान् रामचन्द्रजीसे प्रार्थना की थी कि—

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते ।  
अहं सर्वकरिष्यामि जाग्रतस्स्वपतश्च ते ।  
भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते ॥

अर्थात् 'मुझे आप अपना अनुचर बनाइये। आपके जागते और सोते समयमें कोई काम बाकी न रहेगा। आप जानकीजीके साथ पर्वतसानुओंमें विहार करेंगे, मैं आपके सब काम करूँगा।' सुग्रीव, विभीषण आदिने भी भगवत्-शरणागतिकर भगवत्परिचर्यारूपी फलको पाया, राज्यलाभ तो उनके लिये गौणफल ही था।

जीवात्माका स्वरूप ईश्वरके प्रति सर्वप्रकार परतन्त्रता और दासत्व है। इसका निरूपण श्रीलक्ष्मणजी और भरतजीके चरित्रद्वारा श्रीरामायणमें हुआ है। मरत सर्वथा परमात्माके आज्ञाकारी थे, श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार चलना ही उनका मुख्य उद्देश्य था, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको जबसे

वापस जानेके लिये जाकर भी उनकी आज्ञाके बराबरी होकर पादुकाको ले वापस अयोध्या पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार राज्यकार्य चलाते रहे। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीके सिंहासनारोहणके बाद भी उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए युवराज बने। श्रीलक्ष्मणजी तो उनकी परिचर्याको ही प्रधान मानकर यौवराज्यको उस सेवाका विरोधी समझ कर श्रीरामचन्द्रजीके हजार समझानेपर भी यौवराज्य स्वीकार करनेमें सहमत नहीं हुए। परन्तु भरतजी केवल भगवान्-परतन्त्रताको प्रधानता देनेवाले होनेके कारण सेवामें विरोधको जानते हुए भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे युवराज बने।

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो

यदा न सौमित्रिरुपैति योगम्।

नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये

ततोऽभ्यषिञ्चद्रतं महात्मा ॥

अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रके सर्व प्रकारसे समझानेपर भी आज्ञापित होनेपर भी लक्ष्मण जब यौवराज्य स्वीकार करनेको राजी नहीं हुए तब भरतको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीलक्ष्मणजी केवल सेवानिष्ठ थे और भरतजी आज्ञाकारी थे। दोनों ही दोनों स्वरूपके पालक थे, किन्तु एक एकको मुख्य स्थान देते थे तो दूसरे दूसरेको मुख्य स्थान देते थे। श्रीलक्ष्मणजीकी सेवानिष्ठा उस समयकी घटनासे भी स्पष्ट हो जाती है, जब कि भगवान् श्रीरामचन्द्र बनवासके लिये तैयार हो रहे थे। उस समय भी भगवान् श्रीरामचन्द्रने श्रीलक्ष्मणजीको अयोध्यामें रहकर मातृ-पितृ-शुश्रूषा करनेकी आज्ञा दी थी, किन्तु श्रीलक्ष्मणजी वनमें साथ रहकर श्रीराम-जानकीकी सेवा करना ही अपना प्रधान स्वरूप समझते हुए, बारंबार प्रार्थना करके श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति प्राप्त कर वधेष्ट सेवामें लग गये।

वेदान्त-शास्त्रमें अनेक अर्थोंका निरूपण होनेपर भी प्रधान तीन अर्थ माने जाते हैं। पहला परतत्त्व, दूसरा साधन और तीसरा फल। वेदान्तदर्शन-ग्रन्थसूत्रके चार अध्याय हैं, उनमें दो अध्याय तो ब्रह्मस्वरूप निरूपणपर हैं, एक साधन निरूपणपर है, और एक फलनिरूपणपर है। प्रथमाध्याय समन्वयाध्याय कहलाता है। उसमें किस प्रकार समस्त वेदान्त-भाग एक ब्रह्मतत्त्वका निरूपण करता है यह बात बतलायी गयी है। दूसरा अध्याय

अविरोधाध्याय कहलाता है, उसमें प्रथमाध्यायमें कही हुई बातोंपर जो विरोध उद्घाटित हुए, उनका निराकरण करते हुए उसको हट किया गया है। जीवतत्त्वका निरूपण तो प्रसङ्गवश किया गया है। तीसरे साधनाध्यायमें मोक्ष-साधनोपायोंका निरूपण हुआ है। चौथे फलाध्यायमें मुक्तात्माओंके प्राप्त फलका निरूपण हुआ है।

वेदान्तशास्त्रके उपर्युक्त अर्थोंमें भी उन्होंने अर्थोंको चरित्ररूपमें निबद्ध किया है, मुख्य पात्रोंके अनुष्ठानोंके द्वारा उनका स्पष्टीकरण हुआ है। परतत्त्वका निरूपण विस्तारके साथ और साधनका निरूपण भी विस्तारके साथ हुआ। फलका निरूपण संक्षेपमें हुआ। जीवस्वरूप आदिका वर्णन भी ब्योचित हुआ।

हमने श्रीरामायणके मुख्य प्रतिपाद्य अर्थोंमेंसे कुछका ही यहाँपर स्पष्टीकरण किया है। श्रीरामायणके प्रतिपाद्यार्थ अठारह माने जाते हैं। उन सबके वर्णन करनेसे निबन्ध बहुत बड़ा हो जाता, इसलिये छोड़ दिया है।

चौबीस हजार ग्रन्थोंवाला श्रीरामायण चौबीस अक्षरों-वाली सावित्री गायत्रीके आधारपर रचित हुआ है। गायत्रीके प्रथमाक्षरसे श्रीरामायणका प्रारम्भ और अन्तिम अक्षरसे समाप्ति हुई है। गायत्रीका प्रथम अक्षर 'त' है, श्रीरामायणके प्रारम्भके श्लोक 'तपस्स्वाध्यायनिरतम्' में तकार आद्यक्षर है। गायत्रीका अन्तिम अक्षर 'त्' है, श्रीरामायणका अन्तिम श्लोक-का अन्तिम अक्षर भी 'त्' है। उत्तररामायणके ११० वें सर्गके अन्तमें, जहाँ कि श्रीरामायणकी कथा समाप्त हो जाती है वह श्लोक है—

ततस्तमागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि।

दृष्टैः प्रमुद्दितैर्देवैर्जगाम त्रिदिवग्महत् ॥

इसमें अन्तिम अक्षर 'त्' है। इसके आगे जो एक सर्ग है, वह केवल फलश्रुतिरूप है। प्रत्येक हजार ग्रन्थोंके अन्तमें गायत्रीके अक्षर क्रमसे पड़े हुए हैं। ग्रन्थ बत्तीस अक्षरोंका होता है। उसी हिसाबसे देखना होगा। अतएव गायत्री-प्रतिपाद्यार्थ और रामायण-प्रतिपाद्यार्थ एक ही होना चाहिये। गायत्रीमन्त्रमें जगत्कारणभूत सविता—परमात्माके तेजोमय स्वरूपकी उपासनाका वर्णन है, जो समस्त प्राणियोंकी बुद्धियोंकी प्रेरणा करते हैं, अतएव वही परमात्मा रामरूपी श्रीमन्नारायण भगवान्ही श्रीरामायणके प्रधान प्रतिपाद्य हैं—यह स्पष्ट है।

## रामायण

गीता और तुलसीदासकी रामायणके संगीतसे जो स्फूर्ति और उत्तेजना मुझे मिलती है वैसी और किसीसे नहीं मिलती। हिन्दूधर्ममें तो यही दो ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके विषयमें कहा जा सकता है कि मैंने देखे हैं।

तुलसीदासजीकी अद्वा अलौकिक थी। उनकी अद्धाने हिन्दू-संसारको रामायणके समान ग्रन्थरत्न भेंट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु उसकी अधिक प्रभावके मुकाबिले उसकी विद्वत्ताका कोई महत्त्व नहीं रहता। अद्वा और बुद्धिके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। अद्वासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिये अन्तःशुद्धि तो होती ही है। बुद्धिसे बाह्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है। परन्तु उसका अन्तःशुद्धिके साथ कार्य-कारण-जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिराली लोग अत्यन्त चरित्रभ्रष्ट भी पाये जाते हैं। मगर अद्वाके साथ चरित्रशून्यताका होना असम्भव है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि एक बालक अद्वाकी पराकाष्ठातक पहुँच सकता है और फिर भी उसकी बुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य वह अद्वा कैसे प्राप्त करे? इसका उत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। भक्तिके, सत्संगसे अद्वा प्राप्त होती है। जिन्हें सत्संगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, उन्होंने—'सत्संगतिः कथं किं न करोति पुंलाम्' वचनाश्रुतका अनुभव अवश्य किया होगा।

मैं तुलसीदासजीके रामायणको भक्तिमार्गका सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। (नवजीवनसे) —महात्मा गाँधीजी

## रामायणका नित्य पाठ करो

( महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय )

रामायण और महाभारत हिन्दुओंकी अतुल सम्पत्ति है। मुझे इनके अध्ययनसे बहुत सुख मिलता है। रामायणमें हिन्दू-सभ्यताके जिस ऊँचे आदर्शका इतिहास है, वह सदा पढ़ने और मनन करने योग्य है। रामायणको काव्य कहना उसका अपमान करना है। उसमें तो अकिरसका प्रवाह बहता है जो जीवनको पवित्र कर देता है। रामायणमें हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आदर्श बतलाया गया है। मैं चाहता हूँ सब लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक रामायणका पाठ करें और उसमें बतलाये हुए मार्गपर चलकर हिन्दू-जातिको पुनः रामराज्यके सुख भोगनेवाली बना दें।

## रामायणका सन्देश

( साधु टी० एल० चव्वाणीजी )

वद्यपि महाभारतके समान रामायण विश्वकोष नहीं है, तथापि वह महाभारतकी भाँति ही, एक महान् सांस्कृतिक धर्म-ग्रन्थ है। महाभारतके समान रामायण केवल विशिष्ट भारतीय साहित्य ही नहीं अत्युत्तम वह एक मानव-धर्म-शास्त्र है।

सुदूर अतीतकी एक निम्नग्रास कथाकी भाँति नहीं, वरं एक नूतन सभ्यता, नवीन भारतके पुनर्निर्माणके लिये, एक सन्देश और एक सत्ता रखते हुए, जीवन-व्यथके रूपमें इसका नये सिरेसे अध्ययन करना चाहिये।

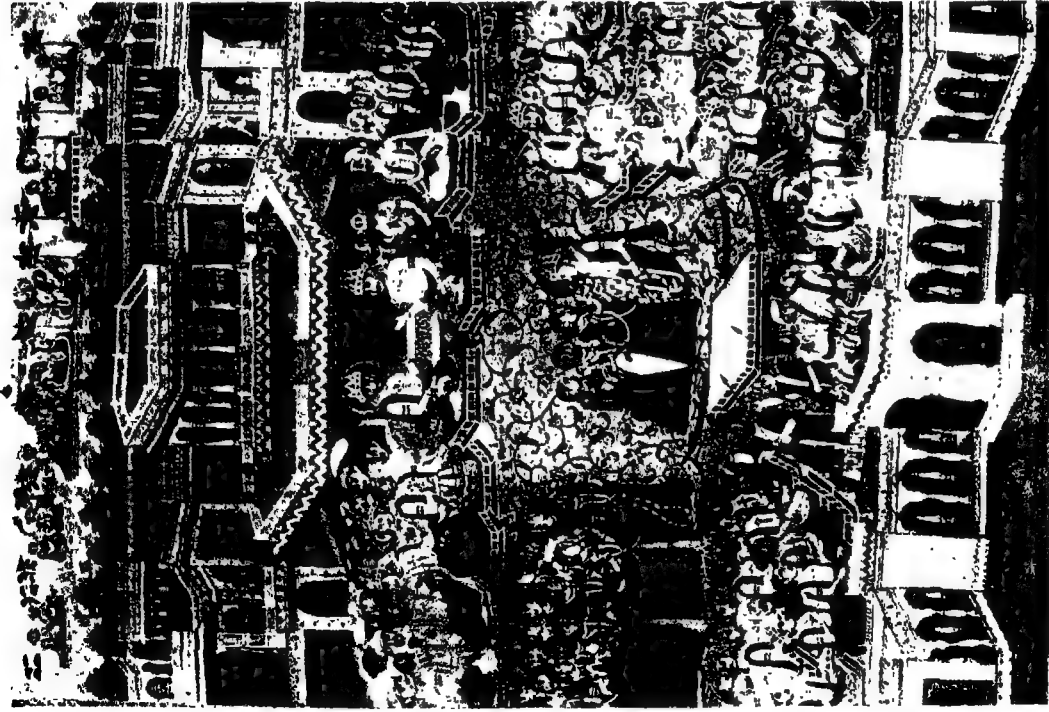
श्रीरामजी तभी अपनी प्यारी अयोध्या—अपने घर बिलखी होकर लौटते हैं जब वर्यो तपोवनमें व्यतीत करते हैं। उन्होंने तप किया और बिलखी हुए। अतः इस पुरातन धर्मशास्त्रका सन्देश है—तपसः विजयम् (तपस्यासे विजय प्राप्त करो)।

बड़ी बड़ी कजोंमें, मशीन गनोंमें, काञ्चनकामनामें तथा विज्ञासितामयी सभ्यताके उपकरणोंमें नहीं, केवल तपस्याकी त्रिव्यात्मक शक्तिमें ही संसारके नवयुगकी आशाएँ निहित हैं।

भारत पतितാവस्थामें है किन्तु तब भी मेरा उसमें विश्वास है। उसका अधःपतन उसी दिन हुआ जब उसने अपनी तपस्याकी आन्तरिक भावना, अपने आदर्श तथा अपने आपको विस्मृत कर दिया।

किसी पाश्चात्य राष्ट्रके अनुकारणसे नहीं, किन्तु इस चेतनासे—मगवान् रामकी इस चेतनासे ही हम मुक्त होंगे।

श्रीरामकी चेतना नष्ट नहीं हुई है। अब भी हमारे हृदयमें उसकी आवाज सुनायी देती है—हिंसा नहीं, पराचकार नहीं, केवल तपस्या ही हमें मुक्त करेगी!



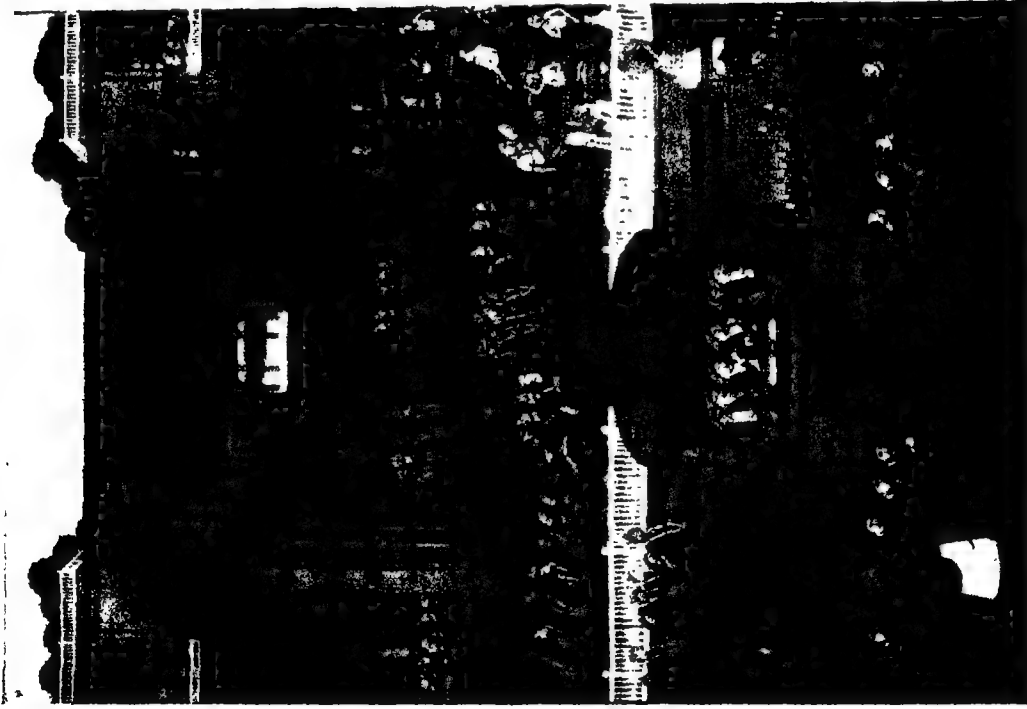
### जयमाल ।

सुनत जुगलकर माल उठाई । प्रेम विक्स पहिराई न जाई ॥



### जनकपुरमे' दशरथजी ।

नृप समीप सोहहि' सुत चारी । अनु धन-धर्मादिक तनु धारी ॥  
मतन्ह समेत दशरथहि देखि । मंदित नगर-नगरि बिसेली ॥



जनकपुरसे विदा ।

पाव असीस यहुरि सिर नाई । भाइन्ह सहित बले रघुराई ॥



धनुष-भङ्ग ।

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । मरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

## श्रीरामचरितमानसपर श्रीरूपकलाजीके वचनामृत

- १-विरक्ति और अनुरक्ति प्राप्त किया चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- २-श्रीमद्भगवद्गीताके गूढ़ तत्त्वोंका व्यास समास समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ३-श्रीविष्णुपुराणका रहस्य समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ४-महर्षि मनु प्रभृतिकी स्मृतियोंका पण्डित हुआ चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ५-श्रीरामानन्द-भट्टाञ्ज-भास्करका तत्त्व समझना हो तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।

### वाल्मीकीय रामायणकी विशेषता

( लेखक-विद्वद् ५० श्रीबालकृष्णजी मिश्र )

कूजन्तं रामगमेति मधुरं मधुराक्षरम् ।  
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिः कोकिलम् ॥  
वाल्मीकिर्मुनिसिंहस्य कविता वनचारिणः ।  
शृण्वन् रामकथानादं को न याति पराङ्मतिम् ॥

१-वाल्मीकीय रामायण आदिकार्य है। इसकी रचना किसी अन्य काव्यकी छाया लेकर नहीं की गयी है। इससे पूर्व लौकिक छन्दका ही अस्तित्व नहीं था, फिर काव्यकी तो बात ही क्या है ?

‘आज्ञायादन्यत्र नूतनचन्द्रसामवतारः’

—उत्तरचरित

२-काव्यके निर्माण करने तथा समझनेके लिये तीन बातें आवश्यक हैं,—(१) शक्ति । (कवित्वबीजसंस्कारविशेष अर्थात् जन्मसे ही हृदयमें कविता करनेका एक विशेष संस्कार होता है; यह संस्कार अथवा शक्ति अर्जित नहीं अपितु ईश्वरप्रदत्त होती है) (२) स्थावर-जङ्गमात्मक संसारके समस्त विषयोंका बोध तथा काव्यशास्त्र इतिहासादि ग्रन्थोंके अध्ययनसे उत्पन्न हुई ‘व्युत्पत्ति’ (इसी व्युत्पत्ति अथवा आलोचनात्मक शक्तिके काव्यके बोध-गुणका ज्ञान प्राप्त होता है) और (३) काव्यशास्त्रके मर्मज्ञोंसे शिक्षा ग्रहण कर तत्पुनसार काव्य-रचनाका अभ्यास। इन्हीं तीन विषयोंके सम्बन्धमें अलङ्कारशास्त्रके उद्भट पण्डित तथा काव्य-प्रकाशके रचयिता श्रीमम्मटाचार्य कहते हैं—

शक्तिर्निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणम् ।  
काव्यशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवम् ॥

—काव्यप्रकाश

इस श्लोकमें यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसमें तीनों शक्तियोंके लिये ‘हेतवः’ शब्दका प्रयोग न करके ‘हेतुः’ शब्दका ही प्रयोग किया गया है। इस एकवचनान्त ‘हेतुः’ शब्दका प्रयोग ठीक है क्योंकि इसका तात्पर्य तीनों शक्तियोंके सामञ्जस्यसे है। काव्य-निर्माणके लिये इन तीनों शक्तियोंकी

एक साथ ही आवश्यकता है। इसीलिये मम्मटाचार्यने लिखा है—

इति त्रयः समुदिता न तु व्यस्तास्तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे सखुल्लासे च हेतुः न तु हेतवः ।

—काव्यप्रकाश

किन्तु वाल्मीकीय रामायणकी रचना तो बिना ही किसी प्रसिद्ध सामग्रीसे हुई है। इसकी कथा इसप्रकार है, एक समय मध्याह्न कृत्यका सम्पादन करनेके लिये तपस्वी वाल्मीकि तमसा नदीके तटपर गये थे, वहाँ इडात् उनकी दृष्टि, व्याघ्रद्वारा निहत एक काममोहित कौश्र पचीके ऊपर पड़ी, उसे देख महर्षिको शोक हुआ और वही शोक अनुष्टुप्छन्दके श्लोकरूपमें परिणत होकर उनके मुखकमलसे प्रकट हो गया। जम्बालोकमें लिखा है—

सहस्रविरहकातर कौश्र्याक्रन्दजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः ।

अर्थात् अपने सहस्रके विरोगसे कातर कौश्र पचीके रुदनसे उत्पन्न हुआ शोक ही श्लोकके रूपमें परिणत हो गया। श्लोक इसप्रकार है—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत् कौश्रमियुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

—वाल्मीकीय

भगवती सरस्वतीने यह वरदान दिया कि जो इस श्लोकका सर्वप्रथम पाठ करेगा, उसे ‘सारस्वत-कवित्व’ प्राप्त होगा। यथा—

यः प्रथममेनमध्वेष्यते स सारस्वतकविः सम्पत्स्यते ।

—काव्यमीमांसा

उसी समय भगवान् चतुराननने आकर आज्ञा दी कि ‘हे ऋषे! आदिकवे! आप शब्दालम्बना प्रकाशमान् ब्रह्मतत्त्वके पूर्ण ज्ञाता हैं। अतः श्रीरामचन्द्रजीके चरितकी रचना कीजिये; आपकी दृष्टि अप्रतिहत प्रकाशसम्पन्न हो जायगी -

‘तत्सर्वं मत्प्रसादेन विदितं ते मविष्यति ।’

इतना कहकर प्रजाजी अन्तर्हित हो गये। इसके अनन्तर महर्षि वाल्मीकिने रामायणकी रचना की। अतः यह समस्त अपेक्षणीय गुणोंसे सर्वोच्च पदपर आरुढ़ है। होना भी वही चाहिये।

१-रामायणमें जिन विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, उनमें एक भी विषय अतात्त्विक नहीं है। बोगट्टिसे समस्त वस्तुओंका व्यापोग्य निरीक्षण करके ही सबका वर्णन किया गया है। कहा भी है—

‘वाल्मीकिर्वचनं सर्वं सत्यम्’

४-वाल्मीकीय रामायण परिभाषा में बहुत बड़ा ग्रन्थ है, तथापि उसमें प्रसादगुण प्रायः सर्वत्र व्याप्त है। भाषा तो अत्यन्त ही मधुर है। प्रसादगुणकी व्याख्या करते हुए साहित्यदर्पणकार कहते हैं—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं गुणैश्चनमिवावतः ।

सः प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनायु च ॥

—साहित्यदर्पण

अर्थात् जैसे सूखे ईंधनमें अग्नि तत्काल व्याप्त हो जाता है वैसे ही जो गुण समस्त रसों और रचनाओंमें अतिशीघ्र व्याप्त हो जाय उसे प्रसाद कहते हैं।

बिलायतसे कौटनेपर डाक्टर श्रीहरिश्चन्द्र शास्त्री आई० ई० १९०० कहते थे कि वाल्मीकीय रामायणको पढ़ते समय अंग्रेजोंकी भाँखोंसे अशुकी धारा बहने लगती है। फिर अन्त लोगोंकी तो बात ही क्या है?

५-वाल्मीकि-रामायण काबिदास प्रभृति महाकवियोंका उत्कृष्ट आदर्श है

मधुमय भणतीनां मार्गदर्शी महर्षि ।

अर्थात् मधुर वचनोंके पथ-प्रदर्शक महर्षि वाल्मीकि हैं।

इसी महाकाव्यके ‘हनुमत्सन्देश’ नामक वर्णनाके आधारपर जैचतुर्थी रचना हुई है। कवि किसीका अनुकरण अवश्य करता है। कहा भी है—

‘कविरनुहरतिच्छायाम्’

वाल्मीकिमें है—

‘छायेवानुगता पतिम्’

उपमेय बदलकर रसुवशमें भी वही अर्थ लिया गया है, यथा—

‘छायेव तां मूपतिरन्वगच्छत्’

वाल्मीकिमें है—

‘अहिरेव अहेः पादान् निजानाति न संशयः’

ठीक इसीका प्रतिबिम्ब जेकोत्पलझारके सम्बन्धमें कुबलबानन्दमें इसप्रकार दिया गया है—

भुज्ज एव जानति भुज्जचरणं सखे ।

६-वाल्मीकीय रामायणमें ‘गीतगोविन्द’के ‘विगलित-वसनं परिहृतसने पटय जघनमपिधानम् ।’ की भाँति प्रधान नायिकाका श्रृङ्गारवर्णन नहीं है। इसमें प्रधान नायिकाका वर्णन अति दिव्य है, उससे भावध्वनिमें किसी प्रकारका अवरोध नहीं होता प्रत्युत भावकी पुष्टि ही होती है।

७-प्रधान-जन-पद्धतिका प्रतिपादन तो इसमें सीमासे भी आगे बढ़ गया है। यहाँतक कि एक अति साधारण मनुष्यके वचन मात्रपर श्रीरामने परम पतिव्रता, साध्वी तथा अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हुई अतिप्रसिद्ध जीवन्मुक्त जनक महाराजकी अयोनिजा पुत्री महारानी सीताका परित्याग कर दिया। यह क्या साधारण बात है? मुझे तो जब इस बातका स्मरण होता है तो हृदय जलने लगता है।

गमो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।

रामभूतं जगद्भूतं रामे राज्यं प्रशासति ॥

रामायणमें असंख्य गुणोंका समावेश है, निम्नलिखित गुणोंके चित्रणसे तो यह ग्रन्थ संसारके लिये परम उपकारी हो गया है।

पिताका आज्ञा-पावन, सत्यशीलता, एकपत्नीव्रत, आश्रितोंकी रक्षा, प्रतिज्ञाकी पूर्ति, बर्णाश्रमकी मर्यादाके अनुसार आचरण, स्वामी, देवता तथा गुरुजनोंकी सेवा, मधुरभाषण, अनुकनीय पातिव्रत, बड़े भाईके समान सुख एवं दुःखका अनुभव, न्यायानुकूल मार्गका अनुसरण, प्रत्युत्पन्नमतिव्य, समीक्ष्यकारिता और प्रभु-भक्ति आदि।

८-इस रामायणको वेदरूपता भी प्रामाणिक है—

वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ।

९-इस महाकाव्यके पठनसे महापातककी निवृत्ति और परम कल्याणकी प्राप्ति होती है—

‘एकैकमध्वरं पुंसं महापातकनाशनम् ।’

‘पठन् द्विजोवाग्मन्त्रमीयात्

स्मात् सत्रियो मूमिपनिवमीयात् ।’ इत्यादि—

—वाल्मीकीय रामायण

स्कन्दपुराणमें पुररचरककी सामान्य विधि दी गयी है, उक्त कार्य साधनके निमित्त विशेष विधि विद्वानोंसे जाननी चाहिये।



१०—अष्टादशपुराणोंके प्रयोक्ता महर्षि-व्यासने भी रामायणकी बड़ी प्रशंसा की है। व्यासजी महर्षि वाल्मीकिके विषयमें कहते हैं—

यदुक्तिमुद्रामुहदर्यवीथी,  
कथारसो यश्चुलुकैश्चुलुम्बः ।  
तथाऽमृतस्यन्दि च यद्ब्रजंति  
रामायणं तत्कवित्वमुनाति ।  
—वाल्मीकि

वाल्मीकीय रामायणमें सर्वप्रधान ध्वनि बीररस है। अन्यान्य रसोंका भी अङ्गरूपसे बयास्थान प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा इतनी प्राञ्जल है कि उसके प्रभावसे पढ़नेके साथ-ही-साथ उन रसोंकी प्रतीति होने लगती है। इस महाकाव्यके प्रधान नायक, धीरोदात्त, अनुकूल, मर्यादापुरुषोत्तम, पार्थिववंशावतंस, आदर्श तथा औपनिषद् पुरुष भगवान् रामचन्द्रजी हैं।

राम एव परं ब्रह्म राम एव परन्तपः ।  
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥  
—रामरहस्योपनिषद्

यो ह वै श्रीरामचन्द्रः समवानंदितपरमानन्दआत्मा ।  
—रामोत्तरतार्पणी उपनिषद्

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः ।  
स्थाने रामायणकविदैवीं वाचमवीवृधत् ॥  
—उत्तरचरित

धीरोदात्तके लक्षण—

महासर्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान्विकत्यनः ।  
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥  
—दशरूपक

महान् धीर, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान्, आत्मश्लाघाले हीन, धीर, आत्माभिमानी और दृढव्रती होना—ये धीरोदात्तके लक्षण हैं।

किसी भी स्थलपर श्रीरामचन्द्रमें आत्म-प्रशंसाका बोध भी नहीं दिखलायी पड़ता। श्रीरामकी उक्तिको देखिये—

‘कृतापराधस्य हिते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम् ।  
अन्तरेणालंकि बध्ना लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ॥’  
नो चेच्छमणमुक्तमार्गमणच्छेदोच्छलच्छोणित-  
च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि ॥  
—हनुमत्कांड

दिग्वैरिन्द्रजिदब्रह्मणशैरलोकान्तरं प्रापितः  
केनाप्यत्र मृगाक्षि । राक्षसपतेः कृतं च कण्ठाटवी ॥  
—वाल्मीकीय रामायण

हाँ, श्रीरामने जहाँ तहाँ निन्दाके प्रसङ्गोंमें तो अपना नाम अवश्य लिया है। यथा—  
रामस्य बाहुरसिनिर्भरगर्भेक्षित सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।  
—उत्तरचरित्र

बल तथा क्रमाकेतो प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। उनके सम्बन्धमें लिखना ही व्यर्थ है। अब रह गयी गम्भीरता, उसका भी विवर्णन कराता हूँ।

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य बनाय च ।  
न मया लक्षितस्तस्य स्वरूपाऽप्याकार विभ्रमः ॥  
—वाल्मीकीय रामायण

प्रतिनायकके बर्णनसे प्रधान नायकके उत्कर्षकी वृद्धि होती है। इसका भी सुन्दर तथा युद्धकाण्डमें बड़ी सूचीके साथ बर्णन किया गया है। यथा—

यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः ।  
स्यादयं सुरलोकस्य स शक्रस्यापि रक्षिता ॥  
—वाल्मीकीय रामायण

महाकाव्यके लक्षणके अनुसार इसमें प्रतिसर्गके अन्तमें छन्दोंका परिवर्तन तथा निम्नलिखित विषयोंका बड़ी कुशलताके साथ चित्रण किया गया है—

प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या, रात्रि, जल, चन्द्र, सूर्य, शैल, वन, नदी, समुद्र, ऋषि, आश्रम, यज्ञ, नीति, युद्ध आदि। उपर्युक्त रेखांकित विषयोंके सम्बन्धमें नीचे लिखी सूक्तियाँ पढ़नेसे पाठकोंको अन्ततः बर्णन-शैलीका पता तो अवश्य लग जायगा।

अश्वच्छन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ।  
अनुरागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥  
शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपक्तिभिः ।  
कुटजार्जुनमालाभिरलङ्कितुं दिवाकरः ॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति  
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समादवसन्ति ।  
नद्यो घनामत्तगजावनान्ताः

प्रियाविहीनाः शिखिनः प्रवहन्माः ॥

दर्शयन्ति शरज्जघः पुलिनानि शनैः शनैः ।  
नवसङ्गमसग्रीवा जघनानीव योषितः ॥

सारांश किं श्रीवाल्मीकीय रामायण महाकाव्यके समस्त लक्षणोंमें आदर्श है।



## श्रीमद्रामायण

( श्री १०८ स्वामी पं० रामचन्द्रमाशरणी महाराज, श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी )

अथर्वणवेदीय तापिनीयोपनिषत्के 'धर्ममार्ग चरित्रेण' इस वाक्यसे श्रीमद्रामायणमें सर्व-धर्म-समन्वय पूर्णतया अवगत है । मानव-जीवनको सार्थक बनानेके उपायोंको सुगमताके साथ जाननेके लिये रामायण ही सर्वोत्तम साधन है । इसी एक कारणसे केवल भारतीय विद्वन्मण्डली ही नहीं, किन्तु इंग्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देशोंके समाजतत्त्वविद् पण्डितों तथा दार्शनिकोंने भी मुक्तकण्ठ होकर इसकी महिमा गायी है । ईश्वरके सभी आविर्भाव सर्व-कल्याणगुणपूर्ण तथा सबके निःश्रेयसार्थ ही हुए हैं, परन्तु रामायण काव्यके नायक परब्रह्म श्रीरामजीमें सर्वगुणोपलब्धि को कुछ विशेषरूपेण सबने स्वीकार किया है । एक कविकी बड़ी ही हृदयङ्गमा सक्ति है—

अकर्णमकरोच्छेषं विधिर्ब्रह्माण्डभङ्गधीः । गुणानाकर्ण्य रामस्य शिरः सञ्चालयेदिति ॥

अर्थात् सृष्टिरचयिता विधिने शेषजीको इसलिये बिना कानके बनाया कि यदि कान रहेंगे तो श्रीराम-गुण सुनकर ये शिरःचालन करेंगे, अतः ब्रह्माण्ड भङ्ग हो जायगा ।

## राम-विरहके आँसू

बार-बार बूझत कहा ? अरे मीत ! कुसलात ।

जग-जीवन जोये बिना, जीवन बीतो जात ॥

राम-विरह-रस दूग बहैं, हेनर ! आँसुआ हैं न ।

निरखि नेह करि नेह भरि, नेह त्रिवेनी नैन ॥

रहे अपावन क्यों मिलैं, जग-पावन सुख-ऐन ।

राम-दरस भावत इन्हैं, नित न्हावत यों नैन ॥

सुकृत सुमन विकसित करन, राम-दरस फल लैन ।

सौँचत लता सनेहकी, निस-दिन माली नैन ॥

मुकता मनि आँसुआ अमल, कत ढरकत दिन रैन ।

हरि उर पहरावन अहो ! हार बनावत नैन ॥

हरि-दरसन-हित सब तजे, अञ्जन, रञ्जन, चैन ।

आँसुआ-कन-मुकतानको, दान करत नित नैन ॥

विरह अगन धूनी तपै, राम-नाम सुख देन ।

आँसुआ-कन माला लिये, जपैं जोगिया नैन ॥ — श्रीअमृतनाथ माधुर

## रामचन्द्र मंगल करे

(लेखक—स्व० पं० माधवप्रसादजी मिश्र सुदर्शन-सम्पादक)

कौशल्याके सुत दशरथके प्राणाधिकवर,

बन्धु भरतके वीर सुमित्रा-सुतके प्रियवर ।

मुनि वशिष्ठके शिष्य जनकजाके मनभावन,

आञ्जनेयके देव विभीषणके प्रभु-पावन ।

जो दश-कपालके काल हैं, सञ्चारक शुभकर्मके,

सो रामचन्द्र मंगल करे नाथ सनातन धर्मके ॥

## शंकर और राम

(लेखक—श्रीअर्जुनदासजी केडिया)

शंकर छबीले रामहीसे रमणीय-रूप,  
शंकरसे राम कमनीय छबि-धाम हैं ।

राम अनुहार एक औदर-उदार ईस,  
ईससे उदार राम पूरे सब काम हैं ॥

राम-नाम हेतु-उपराम सिव-नाम ही सो,  
राम-नाम ही सो अभिराम सिव-नाम है ।

पोषक प्रजाके प्राण पोषक सुरारिनके,  
रामके समान संभु संभु सम राम है ॥

## मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

( लेखक—राव बहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल०एल० बी० )



शु श्रीरामचन्द्रको मर्यादा-पुरुषोत्तम और श्रीकृष्णको लीला-पुरुषोत्तम कहते हैं। यह संज्ञा उत्तर हिन्दुस्तानमें ही प्रसिद्ध है, महाराष्ट्र या दक्षिणमें कम है। पुरुषोत्तमका अर्थ है—परमात्मा—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

× × × ×

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।

( गीता )

परमात्माके अनेक अवतारोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र अत्यन्त सरल, नीति-शुद्ध और प्रत्येक बातमें मर्यादा-को लिये हुए है। श्रीकृष्णचरित्र बहुत कठिन और गुदार्य-युक्त है। उससे बोध प्राप्त करना सामान्यबुद्धि मनुष्यके लिये कठिन है। प्रभु श्रीकृष्णको अग्र्यश्र राक्षसोंसे लड़ना पड़ा था, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रत्यश्र राक्षसोंसे लड़े थे। इसीसे श्रीकृष्ण-चरित्र लीलारूप है और श्रीरामका चरित्र मर्यादारूप है। श्रीराम-चरित्रकी मर्यादाबोधकताको मैं इस छोटसे लेखमें बयामति निवेदन करूँगा। चरित्र अगाध है, परन्तु अपनी शक्ति-प्रनुसार अगाध विषयमें भी प्रत्येक प्राणी थोड़ा-बहुत तैरना चाहता ही है।

संसारमें प्रत्येक मनुष्यको पुत्र, बन्धु, मित्र, शत्रु, पति आदि सङ्गनोंका व्यवहार करना पड़ता है और कुछ धन्य-पुरुषोंको राज्य भी करना पड़ता है। उत्तम पुत्र, उत्तम बन्धु-उत्तम मित्र, उत्तम शत्रु, उत्तम पति और उत्तम राजा आदि सभी बातोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र मर्यादास्वरूप है और आज हजारों वर्षोंसे वह आर्य-जातिका आदर्श होकर हमलोगोंके आचरणोंपर थोड़ा-बहुत प्रभाव डाल रहा है। यही हिन्दू-समाजकी धन्यता है कि उसमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका आदर्शभूत चरित्र परियामकारक हुआ है। इसीलिये हिन्दू समाज इस विषयमें अन्य समाजोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस विषयपर मैं बयामति कुछ वर्षोंन करना चाहता हूँ।

प्रभु श्रीरामचन्द्र उत्तम पुत्र थे। वह तो सभी जानते हैं कि पिताकी आज्ञा पाकन करना पुत्रका परम धर्म है, परन्तु धर्मकी परीक्षा विपत्तिकाळमें हुआ करती है, स्वर्णकी

परीक्षा अग्निमें होती है तो हीरेकी हथौड़ेकी चोटमें। कुछ श्रीरामकी युवराजके पदपर प्रतिष्ठा होगी। इस घोषणासे सभी उत्सवमें आनन्दमग्न थे, परन्तु प्रातःकाल ही वह आज्ञा हुई कि श्रीरामको १४ वर्षतक वनवास होकर रहना पड़ेगा। प्रभु श्रीरामचन्द्रने इस आज्ञाको भी पहलीकी भाँति ही आनन्दसे स्वीकार किया। 'पिताकी कठोर आज्ञाका भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये' यह हमारे समाजकी मर्यादा है। यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ है, अतः उस पिताकी आज्ञानुसार बर्तना पुत्रका कर्तव्य है; परन्तु साधारण लोग तो पिताका धन लेना चाहते हैं, पितासे धन-प्राप्तकी आज्ञा नहीं लेना चाहते। वे धन बाँटनेके लिये अदा-रुतमें दावा दावर करनेको तैयार हो जाते हैं। रामायणमें लक्ष्मणको क्रोधी बतलाया है। लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं, 'बड़े बाप कामान्ध होकर सौतेली माके फन्धमें कैसे गये हैं, आप उनको कैद करके राजगद्दीपर बैठिये। भरतसे मैं निपट लूँगा।' उत्तम और मध्यम पुत्रका यही भेद दिखाया गया है। प्रभु श्रीरामचन्द्रने आईकी यह सलाह नहीं मानी बल्कि जाकर माता केकेपीसे बोले, 'मैं आपकी आज्ञासे ही वनवासके लिये चला जाता, आपने मेरे पिताजीको बीचमें क्यों डाला?' तात्पर्य यह कि सौतेली माताके साथ भी प्रभु श्रीरामचन्द्रने अपना उत्तम पुत्रभाव निभाया।

भरत और श्रीरामचन्द्रके सम्भावणसे उत्तम-बन्धुका आचरण सिद्ध ही है। भरतको राजा बनाते हुए या वनसे लौटाते समय प्रभु श्रीरामचन्द्रने उत्तम पुत्र और उत्तम बन्धु इन दोनों विषयोंमें आदर्श बताव किया है।

शुश्रीव और विभीषणके सङ्गन्धमें उत्तम मित्रका भी आदर्श आचरण दिखलाया है। स्वार्थ छोड़कर मित्रका कार्य करना पड़ता है और प्रतिशतार्थके उसको निषाहना पड़ता है। रावण अन्ततक प्रभु श्रीरामचन्द्रसे शत्रु बनकर लड़ता रहा परन्तु जब वह युद्धमें मारा गया तब प्रभु श्रीरामने विभीषणसे कहा—'मरणान्तानि वैराणि' 'बस, वैर मृत्युतक ही था। अब शत्रुता समाप्त हो गयी। अब तो वह जितना तुमको प्रिय है उतना ही मुझको है। अतएव बयावैभव उसकी उज्ज्वलिता करो।' अक्लीकके द्वारा वसिष्ठसे जानेकी भाँति हैक्टरकी लासकी तरह श्रीरामचन्द्रजीने रावणकी आशको

रथके साथ रस्सीसे बाँधकर तमाम जंकाभरमें नहीं बसिदवाया। ऐसी व्याव्रता और नीतिज्ञता कहाँ मिल सकती है ?

अब प्रभु श्रीरामचन्द्रके उत्तम पतिके बर्तावको देखिये। संसारमें लाखों मनुष्य पति होते हैं और सभी व्यावहारिक नीतिके अनुसार बर्तनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र तो परमोत्तम और अद्वितीय है। उन्होंने राजा होकर भी आजीवन एकपत्नीव्रतका पाठन किया। साधारण लोग इस उत्तमता तक नहीं पहुँच सकते। वनवासकी आज्ञा होनेपर उन्होंने सीताजीको दुःख और कष्टोंकी भीतिसे अलग रखना चाहा, परन्तु श्रीसीता-चरित्रभी प्रभु श्रीरामचन्द्रके समान ही उत्तमोत्तम बल्कि उससे बढ़कर है। हिन्दू-संसारमें स्त्रियोंका आचरण अन्य समाजोंकी अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है और यह सीताजीके उदार चरित्रके आदर्शको लेकर ही है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। सीताजीने कहा—

यस्त्वया सह स स्वर्गो, निरयो यस्त्वया विना।

( बा० रा० २।३०।१८ )

‘आपके साथ जिस स्थानपर रहना हो वही स्वर्ग है और आपके बिना जहाँ रहना हो वह नरक है। जब पतिके साथ राज्य-भोग भोगे हैं तब पतिके साथ वनवास क्यों नहीं भोगना चाहिये ? सती स्त्रीको पतिके साथ सुख और दुःख दोनों ही भोगने उचित है।’ यह मर्यादा सीताजीने ही स्थापित की। श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको साथ लिया और परियामस्वरूप सीताहरण हुआ। श्रीरामने पतिका कर्तव्य पालनकर रावणको मार सीताजीको छुड़ाया परन्तु किसी सन्देहसे उन्होंने ग्रहण करना अस्वीकार किया। सीताजीने परीक्षा देकर अपनी शुद्धता सिद्ध की। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र उनको साथ लेकर आनन्दसे अयोध्या लौटे और सीताके साथ राज्याभिषिक्त हुए। आधुनिक सुशिक्षित विद्वान् प्रायः ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि ‘इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके साथ जो बर्ताव किया वह क्या उत्तम पतिके योग्य है ?’

‘मालोकवादप्रवणदहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुरुतः।’

ऐसा प्रश्न काजिदासने भी सीताके मुखसे करवाया है। अतएव इस विषयमें कुछ अधिक लिखना पड़ेगा। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि यह बर्ताव प्रभु श्रीरामचन्द्रने राजधर्मके अनुसार किया था, पतिके सम्बन्धमें नहीं। सीताजी एक वर्षतक शक्तिसे घरमें रही थीं। इसी दुर्निवासपर प्रवाद चला था और अयोध्याकी प्रजाके अन्तःकरणमें राजाके

सम्बन्धमें कुछ अश्लील फैलने लगी थी। उस समय श्रीरामचन्द्रने विचार करके यह निश्चित किया कि राजाका कर्तव्य पतिके कर्तव्यसे भी श्रेष्ठ है। राजाका कुल निष्कर्षक होना चाहिये। Caesar's wife must be above suspicion. भवभूतिने इस विषयमें बहुत ही उदात्त विचारप्रकट किये हैं। प्रजाराजन राजाका परम कर्तव्य है—

‘क्षेहं दयां च प्राणं च अपि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥’

‘मुझे सीता प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है परन्तु लोकाराधन उससे भी अधिक प्रिय और अधिक श्रेष्ठ कर्तव्य है। इसलिये प्राण और प्राणसे भी प्रिय जानकीका भी मैं त्याग करूँगा।’ इस चरित्रसे यह राजाका मर्यादारूप कर्तव्य प्रतीत होता है अर्थात् यहाँ प्रभु श्रीरामचन्द्र किस प्रकार ‘उत्तम राजा’ थे, यह बतलाया गया है।

‘उत्तम’ राजाका कर्तव्य जैसे लोकाराधन है वैसे ही ‘सत्यप्रतिज्ञ’ होना भी है। यह अन्य चरित्रभागसे ज्ञात होता है। श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूटपर मुनिवृत्तसे रहने लगे, भरतने वहाँ पहुँचकर वनवासकी प्रतिज्ञा त्याग कर देनेके लिये उनसे अत्यन्त आग्रह किया और कहा, ‘पिताजीने आपको मेरे लिये ही यह आज्ञा दी थी परन्तु मैं राज्य नहीं चाहता, आप ही राज्य कीजिये।’ प्रभु श्रीरामचन्द्रने इसको इन्कार कर दिया। उस समय वसिष्ठ आदि अनेक लोगोंने कहा कि ‘जब भरत राजा है तो प्रतिज्ञा पालनेकी आवश्यकता नहीं।’ तब भगवान् श्रीरामने भरतसे कहा, ‘तुम मुझे राज्य करनेके लिये ले जाते हो परन्तु जो सत्यप्रतिज्ञ नहीं है वह राज्य करने योग्य भी नहीं है, क्योंकि राज्यकी प्रतिष्ठा ही सत्यपर है ‘मत्स्य राज्यं प्रतिष्ठितम्’ असत्य बोलनेवाला अच्छा राजा नहीं हो सकता।’ महारानी विक्टोरियाका घोषणापत्र अनहोनी सनद है। यों कहनेवाला कर्जन हमारे रामराज्यके आदर्श (Ideal) से कितना गिरा हुआ है। इस बातको पाठक सोच सकते हैं। प्रजाराधन और सत्यप्रतिज्ञत्व इन दो गुणोंपर ही रामराज्य प्रतिष्ठित था फिर यह सुखी क्यों नहीं होता। यदि कभी प्रजाको दुःख हो तो उसका भी भार राजापर आता है, वह प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी उच्च भावना थी। तत्पर्य, इस उदात्त राज-कर्तव्यकी कल्पना अन्य किसी भी राजा या राज्यमें दिखायी नहीं देती। इसीकारण प्रभु श्रीरामचन्द्रको हम ‘उत्तम राजा’ कहते हैं और सुराज्यका उच्चतम आदर्श (Highest ideal) रामराज्य बताते हैं।

इस थोड़ेसे विवरणसे यह मालूम होगा कि हम प्रभु श्रीरामचन्द्रको 'मर्यादापुरुषोत्तम' क्यों मानते हैं ? इतिहासमें इससे सार्वथा विरुद्ध दिशाका उदाहरण औरंगजेब है। अचम पुत्र, अचम बन्धु, अचम मित्र और अचम राजा आदि सभी विरोधी गुण उसमें वर्तमान थे। पिताको कैदकर, जेष्ठ बन्धु वाराको मार और मुरादका पहले मित्र बनके पीछेसे उसका घात कर, उसने राज्य किया। अनेक शत्रुओंको उसने धोखेसे मारा। महाराज शिवाजीको शत्रु बनाया और उसके मरनेके बाद उसके राज्यपर आक्रमण किया।

सत्यप्रतिज्ञताका विरोध तो बर्हातक किया कि शिवाजीके साथ पहले यह प्रतिज्ञा की कि तुम्हारे बालकोंके साथ भी कभी खोला नहीं होगा। फिर दरबारमें बुलाकर उन्हें कैद कर लिया। प्रजारजनका विरोध इतना बढ़ा कि हिन्दू मात्र ही पीड़ित हो गये। हिन्दुओंके परमपूज्य स्थान तोड़े गये। तात्पर्य यह है कि औरंगजेबका राज्य रामराज्यसे अत्यन्त विरुद्ध था। इस विरोधी दृष्टान्तसे पाठकोंको श्रीरामचन्द्रके 'मर्यादा पुरुषोत्तमत्व' की कुछ कल्पना होगी।

## मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा

( लेखक—रायबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी )



अवधेश-कुमार, कौशल्या-प्राणाधार, जानकी-जीवन, दैत्य-भिपीडन, भक्त-जन-रञ्जन, दुष्ट-निकन्दन, जग-हितकारी, शरणागत-भय-हारी, भगवान् श्री-रामचन्द्र महाराजके परम मङ्गलमय, श्रीजनकदुलारी-हृदय-कज-भृङ्ग, श्री सौमित्रि-कर-सरोज-जालित, पतित-पावनीश्री सुरधुनी-प्रसूति-धाम पद्-पद्मोंसे जो इस देव-दुर्लभ वसुधराको पावन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा-स्थापनद्वारा कर्त्तव्यकर्त्तव्य-विमूक्त संसारको पथ-प्रदर्शन कराना था और इसी कारण श्रीभगवान् 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' के शुभनामसे अलंकृत किये जाते हैं।

इस महत्वपूर्ण और आदर्श अवतारका यह निमित्त प्रसिद्ध है और इसके मुख्य-मुख्य कल्याणप्रद चरित्रोंमें भी, जो मर्यादा प्रतिष्ठार्थ उदाहरणीय समझे जाते हैं, स्थूल रूपसे गुप्त नहीं हैं। जैसे—साधुओंके परित्राण और दुष्टोंके विनाशद्वारा धर्मकी संस्थापना, गुरु-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, मातृ-प्रेम, एक पत्नीव्रत, वर्याश्रमधर्मपालन, राजनीति और प्रजा रक्षा, इत्यादि। परन्तु प्रत्येक चरित्रका क्या रहस्य है, और उसके भावोंकी सीमा कहाँतक है जो आदर्शरूपसे मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ ग्रहण किये जा सकें, इसका परिचय बहुत थोड़े लोगोंको है, अतः मुख्य मुख्य चरित्रोंपर अनुक्रमसे किञ्चित् प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जायगा।

( १ ) ऐसे उदाहरणीय पावन चरित्रोंका अंगवशेष उस लोकहितशीला छीलासे होता है जिसमें उस प्रतिज्ञाकी

पूर्तिका आरम्भ हुआ है जो आपके प्रत्येक अवतारके लिये अनादि कालसे चली आ रही है। अर्थात्—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।  
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'

इसीके साथ इससे प्रजारक्षाका आदर्श भी प्रकट होगा।—

जब श्रीविश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये दोनों मधुर-मूर्ति आनाओंको साथ लिये आश्रमकी ओर यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें तादिका नामकी विकराल राक्षसी अपने घोर रौद्र-भावसे समस्त वनको सज्जादित करती हुई इनकी ओर भपटी। उस समय श्रीभगवान्के सम्मुख धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक ओर अपने उपास्य साधु महात्माओंका भक्षण और प्रजाका चर्वण करनेवाली आत-तायिनी पिशाचिनी—जिसके द्वारा देशके चौपट होनेकी कथा श्रीविरवामित्रजीसे अभी सुन चुके हैं—के वधका प्रसंग और दूसरी ओर स्त्री-जातिपर हाथ उठानेके लिये दोष-प्राप्ति-का प्रतिबन्ध, जिसका आज भी पूर्ण प्रचार देखनेमें आ रहा है। किन्तु साधु महात्माओंके परित्राण और प्रजाकी रक्षा-के भावका उस समय भगवान्के हृदयमें इतना आवेश हुआ कि उन्होंने उसी क्षण उस दुष्टाके संहारका कर्त्तव्य अग्रान्त-रूपसे निश्चित कर लिया। श्रीविश्वामित्रजी महाराजके निम्न-लिखित उपदेशसे भगवान्के निश्चयकी पुष्टि भी हो गयी—

नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम !

चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्त्तव्यं राजसूनुना ॥

( वा० रा० १२५।१७ )

'हे नरोत्तम ! तुमको स्त्रीवध करनेमें ग्लानि करना

उचित नहीं। राजपुत्रको चारों बगोंके कल्याणके लिये सम-  
परा (आततायिनी) खीका वध भी करना चाहिये।'

नृशंसमनृशंस वा प्रजारक्षणकारणात्।

पातकं वा सदेवं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा ॥

(बा० रा० १।२५।१८)

'प्रजा-रक्षणके लिये क्रूर, सौम्य, पातक्युक्त और दोष-  
युक्त कर्म भी प्रजा-रक्षकको सदा करने चाहिये।'

जब साधु महात्मा सताये जायें और प्रजा पीड़ित की  
जाय तब उस सतानेवाली और पीड़ा देनेवाली खीका वध  
भी आवश्यककीय है। पुरुष आततायी हो तो उसके लिये  
किसी विचारकी भी आवश्यकता नहीं।

इस चरित्रमें एक और गहरा रहस्य भरा हुआ है—श्री-  
भगवान् ने जो प्रथम ही खीका वध किया, इसने उन्होंने  
संसारको यही शिक्षा दी कि जो कोई भी प्राणी मनुष्य जन्म  
धारण करके जगत्में धार्मिक जीवन निर्वाह करनेका  
संकल्प करे, उसके लिये प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य यही है कि  
वह स्वयंभूके सङ्प्रयोगद्वारा यथाशक्य मायाका दमन करे,  
क्योंकि मायाके जालमें कैसनेके बाद धर्मकी वेदीपर  
अपने जीवनकी आहुति दे सकना मनुष्यके लिये असम्भव-  
सा है।

(२) कात्र-धर्मका क्या रहस्य है, इसका आदर्श इस  
विचित्र चरित्रमें प्रकट होगा। परम मातृलिक विवाहोत्सवके  
पश्चात् जब श्रीविदेहराजने विदा लेकर श्रीकौशल-नरेश  
अपने दक्षबलसहित अपनी राजधानी जगत्-पावनी अयोध्या-  
पुरीको पधार रहे हैं तो रास्तेमें क्या देखते हैं कि प्रज्वलित  
नेत्र और फड़कते हुए होठोंवाले भयङ्कर वीरवेधधारी ब्रह्मकुल-  
बिम्बात श्रीपरशुरामजी उग्ररूप धारण किये श्रीरामके शीष-  
धनुषमग्न करनेपर अपना तीव्र क्रोध प्रकट करते हुए  
श्रीरामसे कहते हैं कि 'यदि तुम इस वैष्णव-धनुषमें शर  
चढ़ानेको समर्थ हो तो तुमसे मैं इन्द्रयुद्ध करूँगा।'

यहाँ भी विषट् परिस्थिति उपस्थित है। एक ओर तो  
ऐसे पुरुषकी ओरसे—जिसने इकौस बार पृथ्वीको कृत्रिमहीन  
कर दिया था और इस समय भी वैसे ही उग्रकर्मके लिये  
जिसकी प्रवृत्ति हुई है—इस प्रकारका युद्धाह्वान कि जिसको  
तनिक भी कृत्रिम-तेजवाला पुरुष एक क्षण भी सहन नहीं  
कर सकता और दूसरी ओर ब्राह्मण-वंशके प्रति हृदयमें पूज्य-  
भाव। अब यहाँ यदि एक भाव दूसरेको दबाता है जगत्  
यदि युद्धाह्वानको स्वीकार कर उनसे इन्द्रयुद्ध कर अथवा

उनपर प्रहार कर उनके प्राण लिये जाते हैं तो पूज्यभाव  
नष्ट होता है और यदि पूज्यभावके विचारसे युद्धाह्वानके  
उत्तरमें उनके चर्योंपर मरका रक्खा जाता है तो कृत्रिम-  
तेजकी हीनता होती है। अतः यहाँ ऐसी विचित्र क्रिया  
होनी चाहिये जिससे दोनों भावोंका साम्य रहकर दोनों  
पक्षोंका महत्त्व स्थिर रहे और एक भावका इतना आवेश न  
हो जाय कि जो दूसरेको दबा दे। अतः सर्वशक्तिमान्  
श्रीभगवान् ने इस जटिल समस्याके समाधानरूपमें कहा—

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव।

अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥

(बा० रा० १।७६।३)

'हे भृगुवंशी ! आपने एक वीर्यहीन और कात्र-धर्ममें  
असमर्थ मनुष्यकी तरह जो मेरे तेजकी अवज्ञा की है इसके  
लिये आज मेरा पराक्रम देखिये।' इतना कहकर श्रीरामने  
उनसे धनुष ले उसी क्षण चढ़ा दिया। तदनन्तर क्रोधयुक्त  
होकर कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यां मे विश्वामित्रकृतेन च।

तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्षं प्राणहरं शरम् ॥

इमां वा त्वद्वृत्तिं राम तपोबलसमर्जितान्।

लोकानप्रतिमान्नापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥

(बा० रा० १।७६।६, ७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं, विश्वामित्रजीकी  
बहिन सत्यवतीकी पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण हरण  
करनेवाला शर नहीं छोड़ सकता। किन्तु, मैं आपकी गतिका  
अथवा तपोबलसे प्राप्त होनेवाले अनुपम लोकोंका विनाश  
करूँगा।'

इस अमित प्रभावान्वित चरित्रका मुख्य उद्देश्य यही है  
कि जब हृदयमें दो भावोंका एक ही साथ संघर्ष हो तब  
दोनोंको इसप्रकारसे समझानेमें ही बुद्धिमानी है जिसमें  
एकका दूसरेके द्वारा पराभव न हो जाय, दोनोंकी रक्षा हो,  
साथ ही धर्मका भी नाश न होने पावे। यहाँ सामान्यतया  
सब बगोंके लिये और विशेषतया कृत्रिमोंके लिये इस मर्यादा  
की रक्षाका उपदेश है। वह यह है कि चित्तमें कितने भी  
उग्रभाव उत्पन्न हों, कितनी ही क्रोधाग्नि बधके, किन्तु इससे,  
जिनमें पूज्य वा आदरबुद्धि है वह नष्ट नहीं होनी चाहिये,  
साथ ही अपना कात्रतेज भी बच रहना चाहिये। इस  
मर्यादाका अनुकरण किसी अंशमें महाभारत युद्धमें भी हुआ  
था। वहाँ शंका उत्पन्न होती है कि रावण भी तो ब्राह्मण



परशुराम-राम ।

जडां कृते तदालोके गमे वरप्रवृत्तरे । निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुद्देशत ॥



ही था, फिर श्रीभगवान् ने उसको कुलसहित क्यों मार डाला ? उसने तो केवल धर्मपत्नीका ही हरण किया था, श्रीपरशुरामजीने तो इन्हींस बार सजातियोंका विनाश किया और इस समय भी वह स्वयं भगवान् का संहार करनेकी बुद्धिसे ही वहाँ आये थे। इन्द्रयुद्धका वही तो प्रयोजन था।

इस शंकाका समाधान करनेके लिये श्रीपरशुरामजीके चरित्रका कुछ परिचय आवश्यक है। एक बार श्रीपरशुरामजीके पिता अरुणसेवी ब्रह्मानन्द तपस्वी श्रीजमदग्निजीकी सर्वस्वरूपा हविर्बानी गौको सहस्रबाहु अशुन जबरदस्ती छीनकर ले गया। परशुरामजीने युद्धमें उसका वधकर अपनी गौ छुड़ा ली। तदनन्तर सहस्राशुनके पुत्रोंने एकान्त पाकर जमदग्निका वध कर डाला। पूज्य पिताकी इसप्रकार हत्या होनेपर परशुरामजीकी क्रोधाम्नि भट्ठक उठी और इन्होंने इन्हींस बार पृथ्वीको निःशत्रिय करनेका संकल्प कर लिया।

परशुरामजी भी श्रीभगवान् के ही अवतार थे, अतएव इस कार्यको करके उन्होंने दुष्कृतियोंको ही दण्ड दिया था, अतः दुष्कृति राखके साथ इनकी तुलना नहीं हो सकती। इन दोनोंके आचरण परस्पर सर्वथा विपरीत थे। हाँ, यह अवश्य है कि श्रीपरशुरामजीका संकल्प क्रोधावेशमें सीमासे बाहर चला गया था परन्तु इस प्रकारके आदेशके निरोधकी शक्ति केवल श्रीमर्यादा-पुरुषोत्तममें ही थी, जिन्होंने किसी भी भाव या आदेशको मर्यादासे बाहर नहीं जाने दिया।

(३) धर्मयुक्त युद्ध राजनीति क्या है, इसका चित्र भी श्रीभगवान् की इस धर्मशीला लीलाके द्वारा पूर्णरूपसे प्रकट होता है।

जब महारानी श्रीकैकेयीने कोपभवनमें प्रवेशकर श्री-वराह्य महाराजको दो वरदानरूपी बज्रोंसे छेदकर मूर्छित कर दिया, तब भगवान् ने वहाँ उपस्थित होकर इसका कारण पूछा, तो कैकेयीने यह सन्देह करके कि, श्रीराम इतना स्वार्थत्याग सहजहीमें कैसे करेंगे, उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर न देकर पहले उनसे प्रतिज्ञा करवानेका प्रयत्न किया। उत्तर-में श्रीभगवान् ने ये सतत आरक्षीय आदर्श वचन कहे—

तद्गृहि वचनं देवि ! राज्ञां यदमिकाक्षितम् ।

करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिमाषते ॥

(वा० रा० २।१८।३०)

‘माता ! महाराजसे तुमने जो कुछ माँगा है सो मुझे बतला दो। मैं उसे सम्पादन करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

रामका यह सिद्धान्त स्मरण रखो, राम दो बात नहीं कहता अर्थात् उसने जो कुछ कह दिया सो कह दिया फिर वह उसके विरुद्ध नहीं करता।’

कैसी महत्त्वपूर्ण वचन-पालनकी प्रतिज्ञा है। विचारिये, एक ओर अनेक भोग-विलासोंसे पूर्ण विस्तृत विशाल राज्य-के सिंहासनकी अभिरुचि और दूसरी ओर शीत, आतप, अवचट मार्ग, राक्षस, हिंसक पशु आदि अनेक विघ्न-बाधाओं-से युक्त कल्पनातीत क्लेश सहन करते हुए एककी अरुण-सेवन। इस जटिल समस्यामें जिस राजनीतिके बलपर अनेक रचनाएँ रची गयीं और आजकल भी कहीं उसको पालिसी (Policy) और कहीं डिप्लोमसी (Diplomacy) कहते हैं जो केवल कुलप्रधान होती है और जिसमें प्रकट कुछ और ही किया जाता है तथा भीतर कुछ और ही रहता है। यहाँ उसके द्वारा साम, दान, दण्ड और भेदरूप चतुर्विध नीतिके प्रयोगकर युक्ति और चतुराईने काम लेनेका प्रयोजन कोई ऐसी उपाय सोच निकालना ही होता कि जिससे सिंहासनका स्वार्थ हाथसे नहीं जाता। किन्तु श्रीरामके परम पवित्र हृदयमें राजनीति और धर्म दो रूपमें नहीं थे ? वहाँ तो राजनीतिका अर्थ ही ‘धर्मसे अविरुद्ध’ निमित्त था, धर्मकी दृष्टिसे तो एक अयोध्याका तो क्या, चौदह भुवनका साम्राज्य भी सुग-मरीचिका ही है। इससे सिद्ध होता है कि स्वधर्मको नष्ट करके स्वार्थसाधन करना मनुष्यमात्रके लिये निषिद्ध है, जिसमें राजापर तो नराधि-पति होनेके नाते उसकी सर्वप्रकारकी रक्षा करनेका दायित्व है। धर्मात्मा राजा कभी स्वार्थमें लिस नहीं हो सकता। यथार्थ राजनीति वही है जिसने धार्मिक सिद्धान्तोंका खण्डन न होकर व्यवहारकी सुकरता हो जाय। अर्थात् साम, दान, दण्ड और भेदरूप नीतिके द्वारा ऐसी युक्ति और निपुणताने काम लिया जाय, जिससे व्यवहार भी न बिगड़ने पावे और धर्मकी विरुद्धता भी न हो सके। कुल-प्रतारणादि-प्रधान दुष्ट-बुद्धिसे किसी व्यवहारको सिद्ध भी कर लिया तो वह वस्तुतः कूटनीतिका कार्य, पापमें परिणत होकर मनुष्यको नरकमें ले जाता है। इसके लिये अयुधिष्ठिर महाराजका उदाहरण प्रसिद्ध है : जिनकी आजन्म दृढ़ सत्य-निष्ठा रही, उन्हें युद्धके अवसरपर दूसरोंके अनुरोधसे केवल एक बार, और वह भी दूधे हुए शब्दोंमें, अन्यथा बोलनेके कारण दुःखप्रद नरकका द्वार देखना पड़ा !

(४) भ्रातृ-भ्रमकी पराकाष्ठा देखना चाहें तो इस कथा-श्रुतका पान कीजिये।



जब चित्रकूटमें वह सूचना पहुँची कि श्रीभरतजी चतु-  
रंगिणी सेना लिये भूमधामसे चले चारहे हैं तब लक्ष्मणजी-  
ने क्रोधावेशमें भरतजीको बुद्धमें पराजित करनेकी प्रतिज्ञा  
कर डाली। भगवान् श्रीराम तो उसको सुनते ही सन्न-  
में आगये। बड़ी विकट परिस्थिति है। एक ओर वह प्यारा  
सरल भाई है जो सर्वस्व त्याग करके अनन्यभावसे सेवामें  
तत्पर है और इसक्षणा भी सान्निध्यमें ही उपस्थित है और दूसरी  
ओर वह प्रिय भ्राता है जो समीप नहीं हैं और जिसकी  
माताकी क्रूरताके कारण ही आज बनवासका दारुण दुःख  
सहन पड़ रहा है परन्तु जिससे परस्पर परम गूढ़ और  
अनिर्वचनीय प्रेम है। सामान्यरूपसे जगत्-भावहारानुकूल अप-  
रोक्षपर ही विशेष ध्यान दिया जाता है किन्तु श्रीभगवान्का  
हृदय ऐसी मुँहदेखी बातोंको कब स्पर्श कर सकता था ?  
वहाँ तो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही समान हैं। ऐसी दशा  
में अपने प्रेमीके विरुद्ध श्रीरामको एक शब्द भी कैसे सहन  
हो सकता था ? विरुद्ध शब्दोंके कानमें पड़ते ही प्रेमावेशमे  
तत्काल उत्तेजित होकर श्रीरामने प्यारे भाई श्रीलक्ष्मणके  
लिख होनेकी कुछ भी परवान कर ये वचन कह ही डाले—

‘भाई लक्ष्मण ! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी जो कुछ भी  
मैं चाहता हूँ वह सब तुम्हों लोगोंके लिये। यह तुमसे मैं प्रतिज्ञा-  
पूर्वक कहता हूँ, भरतने तुम्हारा कब क्या अहित किया है  
जो तुम आज ऐसे भयाकुल होकर भरतपर सन्देह कर रहे  
हो ? तुमको भरतके प्रति कोई अप्रिय या झूठ वचन नहीं कहना  
चाहिये। यदि तुम भरतका अपकार करोगे तो वह मेरा हो  
अपकार होगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसा कह रहे हो तो  
भरतको जाने दो, मैं उससे कह दूँगा कि तुम लक्ष्मणको  
राज्य दे दो। भरत मेरी बातको अवश्य ही मान लेंगे।’

यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि श्रीभगवान्का  
श्रीलक्ष्मणजीमें उतना प्रेम नहीं था, उनको तो प्राणीमात्रमें  
प्रेम है, फिर अपने अनन्य सेवक प्यारे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण-  
के लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है सो  
वास्तवमें लक्ष्मणजीपर नहीं है, उनके हृदयमें विकृति उत्पन्न  
हो गयी थी, उसीको निकालनेके लिये श्रीभगवान्का यह  
फटोर यत्न है। भगवान्के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मणजीका  
मनोविकार नाश हो गया। इस प्रकार अन्य प्राणियोंके  
साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान्को किसीसे तनिक भी  
द्वेष नहीं है। सबके आत्मा होनेके कारण वे तो सबके आत्म-  
रूप हैं। केवल अंकुरित विकृतियोंको ही बयोचित दण्डादि  
विधियोंके द्वारा नष्ट किया करते हैं।

(५) अब नास्तिकवादको किसी प्रकार भी न सह  
सकनेका एक अभ्रान्त दृष्टान्त सुनिये—श्रीभरतजीने जब  
चित्रकूट पहुँचकर श्रीभगवान्को अवधपुरी लौटाकर राक्ष्या-  
भियेक करनेके अनेक यत्न किये, अनेक प्रार्थनाएँ कीं और  
श्रीवशिष्ठजी आदि ऋषियोंने भी अपनी अपनी बुद्धिके  
अनुसार परामर्श दिया। तब उन ऋषियोंमें जाबालि ऋषिका  
मत सनातनधर्मसे नितान्त विरुद्ध प्रकट हुआ। नमूनेके लिये  
एक श्लोक लीजिये—

तस्मान्मतापिता चेति राम सजेत यो नरः ।

उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्विद कस्यचित् ॥

(वा० रा० २।१०८।४)

‘हे राम ! अतएव यह माता है यह पिता है यों समझ-  
कर जो इन सम्बन्धोंमें लिप्त होता है उसे उन्मत्त जानना  
चाहिये, क्योंकि कोई किसीका नहीं है।’ ऐसे ही और भी  
धर्मविरुद्ध बातें थीं। श्रीभगवान्के लिये यह अतिशय जटिल  
प्रसङ्ग था। एक पक्षमें था घोर नास्तिकवाद और दूसरेमें उसको  
प्रकट करनेवाले अपने कुलपूज्य ऋषि। श्रीभगवान् बड़े ही  
ब्रह्मण्य थे, फिर जाबालि ऋषि तो कुलके आदरणीय एवं  
उपास्य हैं ऐसे महानुभावके प्रति श्रीरामके अगाध हृदयमें  
विकृतभाव कब उत्पन्न हो सकते थे ? परन्तु धर्मके नितान्त  
विरुद्ध शब्दोंने—जिनका आशय, श्रीभगवान्को सत्यमे विच-  
लित करनेका था—हृदयमें परिवर्तन कर दिया। श्रीभगवान्ने  
उस समय मर्यादारक्षार्थ नास्तिकवादका तीव्र विरोध  
करना ही उचित समझा और तिरस्कारपूर्वक उन्हें जो कुछ  
कहा, उसका एक वचन यह है—

निन्दाभ्यहं कर्म कृतं पितुस्तथा-

स्वामिगृहणाद्विषमस्थबुद्धिम् ।

बुद्धधान्यवैविध्याच्चरन्तं

मुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥

(वा० रा० २।१०९।३३)

इसप्रकारकी बुद्धिसे आचरण करनेवाले तथा परम  
नास्तिक और धर्म-मार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने  
पालक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ।  
क्योंकि आप अवैदिक दुर्मागस्थित बुद्धिवाले हैं।’ आखिर  
जाबालिके यह कहनेपर कि ‘मैं नास्तिक नहीं हूँ, केवल आप-  
को लौटानेके लिये ऐसा कह रहा था’ और वशिष्ठजीके द्वारा इस-  
का समर्थन किये जानेपर भगवान् शान्त हुए। धर्म और  
सत्यके उत्कट भावोंके आवेशमें नास्तिकवादकी अवज्ञाकी परा-  
काष्ठा यहाँतक पहुँची कि पितृमर्फीमें बैठे हुए श्रीरामने जो

पूज्य पिताके सत्यकी रक्षार्थ आज अनेक संकट सहन कर रहे हैं, उन्होंने पिताके कार्यमें भी अग्रदत्ता प्रकट की। इससे जो मर्यादा स्थिर की गयी, उसका प्रत्यक्ष उद्देश्य यही है कि मनुष्यको अन्य सब विचार त्यागकर नास्तिक भावोंका उग्र विरोध करना चाहिये।

(१) अब गुरुभक्तिके गंग-तरंगवत् पावन प्रसंगपर विचार कीजिये।

यों तो कुल-उपास्य श्रीवशिष्ठ महाराजका महत्त्व तो स्थान स्थानपर प्रकट है। प्रत्येक धार्मिक और व्यावहारिक कार्यमें उनकी प्रधानता रही है, जो यह गुरुभक्तिका पूर्ण प्रमाण है। परन्तु देखना तो यह है कि विषय समस्या उपस्थित होनेपर अन्य उदाहरणीय चरित्रोंकी तरह गुरुभक्तिके प्रबल भावोंका ही हृदयमें साम्राज्य होकर उसकी अन्यन्यता किस विशेष चरित्रके द्वारा सिद्ध हो सकती है।—

लेखके कहना पड़ता है कि श्रीवाल्मीकि-रामायण, मर्यादा-रक्षाके इस एक मुख्य अंगकी पूर्तिमें असमर्थ रही। उसमें कहीं भी ऐसा प्रसङ्ग नहीं है, जिसके द्वारा इसको सिद्ध किया जा सके, प्रत्युत चित्रकूटमें तो उपर्युक्त प्रसङ्गमें जब श्रीगुरु महाराजने बड़े प्रबल हेतुवादके द्वारा श्रीभरतजीके पक्ष-समर्थनकी चेष्टा की तो दूसरोंकी भाँति उनका कथन भी भगवान्ने स्वीकार नहीं किया।

श्रीमानस-रामायणने अपनी सर्वाङ्गपूर्णता सिद्ध करते हुए चित्रकूटकी लीलामें ही इस मर्यादाकी भी वयेष्ट रचा की है—

श्रीवशिष्ठजी महाराज भरतजीका पक्ष लेकर भगवान्से कहते हैं—

सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाव कुभाव।

पुरजन जननी भरत हित, होइ सो करिय उपाव॥

इसपर भगवान्ने जो उत्तर दिया वह गुरुभक्तिकी पराकाष्ठा है—

मुनि मुनि वचन कहत रघुराज। नाथ तुम्हारे हि हाथ उपाऊ॥

सब कर हित रख राउर राखे। आयसु किये मुदित पुर भाखे॥

प्रथम जो आयसु मो कहँ होई। माये मानि करौ सिख सोई॥

विचारिये, कहीं तो पितृभक्तिके पालनार्थ वनवासके लिये आप इतने दृढ़ हो रहे थे कि यदि कोई उसके विरुद्ध कहता या तो उसे गुरन्त उचित उत्तर दे दिया जाता था परन्तु आज गुरुदेवकी आज्ञाके सम्मुख श्रीभगवान्ने अपना

वह संकल्प सर्वथा डील कर दिया। गुरुभक्तिकी इससे अधिक क्या मर्यादा हो सकती है?

(७) मातृभक्तिकी परम सीमाका यह उच्च उदाहरण सुननेयोग्य ही है—

पञ्चवटीमें श्रीजानकीजीसहित दोनों आता सुखपूर्वक बैठे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे हैं। जब श्रीलक्ष्मणजीने श्रीभरतजीकी स्थावा करते हुए कहा—

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।

कथं नु साम्ना कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥

(वा०ग० १।१६।३५)

जिसके पति श्रीदशरथजी महाराज और पुत्र साधु स्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी क्रूर स्वभाववाली कैसे हुई?

यहाँ भी एक ओर वही प्राणपणसे सेवामें तत्पर 'अलीक-वचन बोलनेवाले' कनिष्ठ आता हैं और दूसरी ओर वही विमाता जिसके कारण यह सारा उत्पात और विग्रह हुआ। परन्तु कुछ भी हो, मातृभक्तिके भावोंने हृदयमें इतना उत्कट रूप धारण किया कि माताके विरुद्ध एक भी वचन उन्हें सहन नहीं हुआ। श्रीभगवान्ने कहा—

न तेऽम्भा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।

तामेवेश्वाधुनायस्य भरतस्य कथां कुरु॥

(वा०ग० १।१६।३७)

'हे भाई! तुमको मैं भली माताकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकु-कुल-भेद भरतजीकी ही बातें कहनी चाहिये। इससे अधिक मातृभक्तिकी मर्यादा और क्या हो सकती है?

(८) मित्र-धर्म और स्वामिधर्म दोनोंकी पराकाष्ठाके विचित्र चित्रका दर्शन इस एक ही मर्मस्पर्शी लीलामें हो जाता है?

भगवान्के निर्मल, विशिष्ट और मर्यादा-पूर्ण चरित्रोंमें तीन ऐसे हैं जिनमें उनके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञताके कारण अबोध मनुष्य प्रायः आक्षेप किया करते हैं। इन तीनोंमें एक बालि-वधकी लीला है।

अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या, स्वयं बालिने भी श्रीभगवान्को अधिक्षिप्त किया है। उसके आक्षेपोंके उत्तरमें अनेक प्रकारसे समाधान हुआ है किन्तु इसमें सबसे मुख्य हेतु यह है—

जिस समय सुग्रीवसे मित्रता कर श्रीभगवान्ने प्रतिज्ञा की थी उसी समयके बचन हैं—

प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसन्निधौ ।

प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनान्वेक्षितुम् ॥

(वा० रा० कि ४।१८।२८)

‘मैंने सुग्रीवको जो बचन दिया था, उस प्रतिज्ञाको अब कैसे टाक सकता हूँ ?’

विचारिये, बाजिने साक्षात् श्रीभगवान्का कोई अपराध नहीं किया था, किन्तु बाजि अपने मित्र सुग्रीवका शत्रु था। अतः उसको अपना भी शत्रु समझकर उसके संहार की तत्काल प्रतिज्ञा की गयी। यही तो मित्र-धर्म की पराकाष्ठा है। मित्रका कार्य उपस्थित होनेपर अपने निजके हानि-हानिकार सब विचार छोड़ उसका कार्य जिस प्रकार भी सम्भव हो, साधना चाहिये। इसीलिये मित्रके सुख-सम्पादनार्थ उसके शत्रुरूप आताका बच किया गया। इस बातके समझनेमें तो अधिक कठिनाता नहीं है किन्तु जिस बातपर मुख्य आश्रय होता है वह यह है कि ‘बाजिको बुढ़ाहान द्वारा सम्मुख होकर धर्मपूर्वक क्यों नहीं मारा ?’ इस शंकाका समाधान श्रीवाल्मीकीय या मानस दोनों रामायणों के मूलसे नहीं होता। टीकाओंके निर्णय-अनुसार यथार्थ बात यह थी कि बाजिको एक मुनिका वरदान था कि सम्मुख युद्ध करनेवालेका वह उसमें भा जायगा, जिसने उसके बचकी वृद्धि हो जायगी। इस दशमें भगवान्के लिये एक अटल समस्या आ खड़ी हुई। बाजिको प्रतिज्ञा-पावनार्थ अवश्य मारना है। यदि अपनी पेरवर्ग शक्तिके काम लेते हैं तो उस वरदानकी महिमा घटती है जो आपकी ही अक्तिके बख्तर मुनिने दिया था। और यदि वरदानकी रक्षा की जाती है तो धर्मपूर्वक युद्ध न होनेसे पापकी प्राप्ति और अगममें निम्ना होती है। इस समस्याके उपस्थित होते ही स्वामिधर्मके भावोंने हृदयमें इतनी प्रबलता की कि भगवान् अपने धर्माधर्म और निम्नास्तुति-के विचारको हृदयसे तत्काल निकाल, अपने जनका मुख रौंका करना ही मुख्य समझ उस सुग्रीवसे कहते हुए बाजिको बाणसे मारकर गिरा ही तो दिया।

इससे यही मर्यादा निश्चित हुई कि स्वामीको कोई ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये जिससे अपनी स्वार्थ-सिद्धिके द्वारा अपने दास या सेवकका महत्त्व घटे। इस विषयपर सत्यव्रत और निष्यञ्जद्विसे विचार करना चाहिये कि

श्रीभगवान्का धर्मयुक्त कार्य वरदानकी महिमाको क्षीय करते हुए सम्मुख धर्मयुद्ध करना होता था अब हुआ है जिसमें अपने निष्कल विचार हृदयसे निष्कलकर केवल अपने जनके बरकी प्रतिष्ठा रखी गयी ?

(६) अब शरणागत-वत्सलताके महत्त्व निरूपणका प्रसंग देखिये—

जिस समय विभीषणकी अपने भ्राता रावणसे तिरस्कृत होकर श्रीरामद्वयमें आये उस समय श्रीभगवान्ने अपने सभी समीपस्थोंसे सम्मति ली। उसमें किसीका मत विभीषणके अनुकूल नहीं हुआ। बात भी ऐसी ही थी, अकस्मात् आये हुए साक्षात् शत्रुके आईका सहसा कैसे विश्वास हो ? किन्तु इन सब विचारोंको हृदयमें किञ्चित् भी स्थान न दे शरणागत-वत्सलताके भावसे श्रीरामने सहसा अपना निश्चय इस बचनके द्वारा प्रकट कर दिया, जो महा-वाक्य समझा जाता है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अमयं सर्वमूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतमम ॥

(वा. रा. ६।१८।२६)

(१०) लोकमतका क्या मूल्य है और राजाको लोक-हितकी कितनी आवश्यकता है, इस प्रमुख विषयपर यह दृढ़ इच्छाशक्ति कीजिए पूर्ण प्रकाश डालेंगी—इसी चरित्रसे पातिव्रत धर्म और एकपत्नीव्रतका आदर्श भी सिद्ध होगा। बाजि-वध-कीलामें कहा गया था कि भगवान्की तीन कीलाओंपर आश्रय होता है। उनमें दूसरी यह है। किन्तु यह आश्रय ऐसे मनुष्योंके द्वारा होते हैं जिनमें इस प्रकार कावक के कारण पूर्ण विकृतिर्चा आ गयी है। इस परम संकीर्णताके युगमें ऐसे राजाओंके दर्शन तो कहाँसे हों जो प्रजाके आन्तरिक भाव जाननेका यत्न करके उनके कष्ट-केश वा अववादाँको ब्यापारका दूर करनेकी चेष्टा करें, किन्तु ऐसे भी तो नहीं हैं जो सुबोद्धसे धर्मपूर्वक आम्बोक्षणके द्वारा प्रकट होनेवाले लोकमतका भी आदर करें। आजकल तो ऐसे प्रवासोंका उल्टा दमन होता है। आजकलकी नीतिके अनुसार तो न्यायका पात्र यही समझा जाता है जो अपने प्रबल संगठनद्वारा राज्यको बाध करे। बस, ऐसी ही कुछ नीतियोंका अनुभव कर लोग इन उदार चरित्रों पर तुरन्त कुतर्क करनेको सज्ज हो जाते हैं, और वह नहीं सोचते कि उस रामराज्यमें लोकमतके आदरकी सीमा इतनी ऊँची थी कि वह आजकलके संकीर्ण विचारवालोंको कल्पना तकमें भी नहीं आ सकती। प्रत्युत वे तो उसमें

उल्टे दृष्य लगाते हैं। उस समय प्रजाके सबे हितके लिये कैसा भी कठिन साधन बचाकर नहीं रक्खा जाता था। इसीका एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है। एक दिवस कुछ हास्यकार पुरुष हास्यादिद्वारा श्रीभगवान्‌को रिक़ा रहे थे। उसी प्रसङ्गमें श्रीभगवान्‌ने उनसे पूछा कि 'नगरमें हमारे सम्बन्धकी क्या बातें हुआ करती हैं? उत्तरमें निवेदन किया गया कि 'सेतुबन्धन, रावणवधादि अद्भुत कार्योंकी पूर्ण प्रशंसा है किन्तु इसप्रकारकी चर्चा भी नगरमें हो रही है कि रावणने जिन श्रीसीताजीको अङ्गमें लेकर उनका हरण किया और जिन्होंने उसके घरमें निवास किया उनको जब महाराजने स्वीकार कर लिया तो अब हम भी अपनी स्त्रियोंके ऐसे कार्योंको सहन करेंगे।'।

श्रीभगवान्‌को यह सुनकर परम खेद हुआ। उन्हें अपनी आदर्श पतिव्रता सहधर्मिणीकी पूर्ण पवित्रताका अटल निश्चय था, बल्कि रावणके विजय करनेके अनन्तर उसको अपने समीप बुलाने पर कठिन अभिपरीक्षा भी करा ली गयी थी और उसमें वह सबके समक्ष होकर डंके उतरीयां हुई थी। यह सब कुछ सूर्यवत् निष्कल सिद्ध होते हुए भी केवल लोकमतका महत्त्व बढ़ानेके लिये अपनी उस प्राणप्रियाके—जिसका वनवासमें क्षिप्त-कालीन वियोग ही सबैधा असह्य हो गया था—परित्यागका ही निश्चय करके अपने तीनों भाताओंके सम्मुख श्रीरामने यह वचन कहे—

'पुरजन और देशवासियोंके द्वारा ( मेरे विषयमें ) यह बहुत बड़ा अपवाद है। संसारमें उत्पन्न होनेवाले जिस किसीकी निन्दा की जाती है वह निश्चय जबतक वे अकीर्तिके शब्द कहे जाते हैं तबतक नीचे लोकोंमें गिरता है। निन्दाकी गुराई देवता भी करते हैं और कीर्तिका संसारमें आदर होता है। सब बड़े महात्माओंकी संसार व्यवहारमें कीर्तिके लिये ही प्रवृत्ति है। हे पुरुषभेदो ! मैं अपने प्राण और तुम सबको भी ( प्रजामें कीर्ति-रक्षाके लिये ) त्याग सकता हूँ।'

कहिये, लोकमतका इससे अधिक आदर क्या हो सकता है? और इसी कारण ऐसा त्याग किया गया कि जिससे अधिक सम्भव ही नहीं। परन्तु इसमें मुख्य तथा विचारणीय बात यह है कि यहाँ कोरे पोले लोकमतका ही आदर नहीं किया गया है, इसमें परम लोकहित भी अभिमत था, क्योंकि संसारकी दृष्टि अन्तर्धर्मी हेतुओंके तल तक न पहुँच केवल परिधामपर रहती है। अतः जैसा श्रीजानकीजीका शुद्ध चरित्र

था, उसकी सर्वथा उपेक्षा करके स्थूलदृष्टिके द्वारा यही प्रसिद्ध हो गया कि, जब राजाने राजसोंके वशमें प्राप्त हुई पत्नीको ग्रहण कर लिया तो प्रजा भी राजाका ही अनुकरण करेगी। विचारिये, यदि श्रीभगवान्‌ अपने हृदयको पाषाण बनाकर श्रीजानकीजीका त्यागरूप उग्र कार्य न करते तो सदाचारको कितना भयानक धक्का पहुँचता? सभी स्त्रियाँ श्रीजानकीजीके तुल्य ऐसे कठिन पातिव्रतधर्ममें हथ नहीं रह सकती विशेषकर कलियुग-सरीखे समयमें। सच पूछा जाय तो यह आदर्श आजकेसे समयके लिये नहीं था क्योंकि आज तो सदाचारका सर्वथा लोप होकर संसारमें धर्मविरुद्ध विचारोंकी यहाँतक प्रबलता है कि लोग विवाह-संस्काररूप मुख्य संस्कारके बन्धनोंको भी क्षिप्त भिन्न करवानेके लिये राजासे कानून बनवा रहे हैं। इस कराल कालमें योनि-पवित्रता तो कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके कारण देश योदे ही समयमें वर्णसंकर-सृष्टिसे व्याप्त हो जायगा। श्रीभगवान्‌के इस दूर-दर्शितापूर्ण चरित्रसे पातिव्रतधर्म और एकपत्नीव्रतकी भी पूर्ण पराकाष्ठा प्रमायित हुई, श्रीजानकीजीकी जबतक वे श्रीभगवान्‌के साथ रहीं, पूर्ण अनुरक्तता प्रकट ही है और अन्तमें भी उन्होंने स्वामीकी आज्ञा पालन करते हुए ही बोर यातना सहकर शरीर त्याग दिया। साथ ही श्रीभगवान्‌ने भी कभी अन्य स्त्रीका संकल्प भी हृदयमें नहीं किया और वियोगके पश्चात् ब्रह्मचर्यमें ही अपनी लीला समाप्त की।

(११) अन्तमें एक ऐसे पवित्र चरित्रका निरूपण होगा जिससे वर्णाश्रम-धर्म-रक्षा और न्यायपरायणताकी पराकाष्ठा सिद्ध होती है।

वस्तुतः यह विषय गहन है और इसकी गहनताको न समझकर ही लोगोंकी दृष्टिमें वह अधिक आश्चर्यपूर्ण समझा गया है। यह आश्चर्यजनक तीसरी लीला है।

एक समय एक ब्राह्मणका इकलौता बालक मर गया। उसने मृत पुत्रको लाकर राजद्वारपर डाल दिया और विलाप करते हुए आक्रोश किया कि 'इस बालककी अकालमृत्युका कारण राजाका महान् दुष्कृत है।' अधिमुनि आदिकी परिषद्-के द्वारा विचार किया गया तो योगश्रुतिसे या दिव्यदृष्टिसे यह निश्चित हुआ कि कोई शूद्र अनधिकार तप कर रहा है। उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई। जहाँ ऐसा अनाचार होता है वहाँ जन्मका अभाव हो जाता है और वहाँका राजा नरकगामी होता है।

यह सुनते ही श्रीभगवान् किसी अधिकारी या कर्मचारी-

को अनुसन्धानकी आज्ञा देकर अथवा कोई गुप्तचर (सी० आई०बी०) लगाकर दायित्वसे मुक्त नहीं हुए, तत्काल पुण्य विमानमें विराजित हो स्वयं उसकी खोजमें निकले। जब दक्षिण-दिशामें पहुँचे तो देखा कि एक पुरुष कठोर तपमें प्रवृत्त है। उससे प्रश्न करनेपर उसने स्पष्ट और सत्य उत्तर देते हुए कहा कि 'मैं मिथ्या कभी नहीं बोलूँगा। मैं शम्भुक नामक शूद्र देवलोककी प्राप्ति के लिये तप कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही श्रीभगवान् ने खड्गसे उसका मस्तक छेदन कर दिया। इधर इसका वध हुआ और उधर वह बालक सजीव हो उठा।

संक्षिप्तरूपसे क्या इतनी ही है, किन्तु इसमें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल दृष्टि-सृष्टिवादपर ही तुले हुए हैं अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि प्रत्यक्ष के बाहर जाती ही नहीं उनको कैसी भी युक्ति और प्रमाणाँसे समझाया जाय, वे उस तत्त्व पर पहुँच ही नहीं सकते। इसी एक बातको जीविते कि आज जो स्थान स्थानपर इदं विदीर्य करने-वाले दृश्य देखनेमें आ रहे हैं—पिता पितामह अपने बेटे पोते सबको स्मशानभूमि के अर्पणकर पूर्वजन्म के घोर अनिष्ट संस्कारोंको भोगते हुए अपना शेष दुःखद जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें अकालमृत्यु ही नहीं होती थी अर्थात् प्राची अपनी पूर्ण आयु समाप्त करके ही कालको प्राप्त होते थे और ऐसा अबसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुत्र मरे। तो यह बात परम आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है। वर्तमान नयी सभ्यताकी चकाचौंधसे विह्वल हुई दृष्टिवाले भले ही इसपर दिव्यगी उदाँबें किन्तु जिनको चारों युगोंके भिन्न भिन्न धर्मोंका ज्ञान है उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। हम सम्बन्धमें सामान्य आस्तिक बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें भी जो प्रयत्न शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणने बालकके मृतक शरीरको राजद्वारपर लाकर डाला और वहाँ उसका निर्णय होकर वह राजाके न्यायवे जीवित हो गया। आज ऐसा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिकारमें हो तो आज तो राजद्वारों-पर मृतक शरीरोंके ढेर लग जायें और राजद्वारका नाम परिवर्तन होकर वह मृतकभवन ही हो जाय।

(ख) तप करना तो पवित्र काम है, उसको सदोष क्यों समझा गया? और ऐसा हो भी तो उस शूद्रके तप करनेसे

ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध? कोई मनुष्य तप करे कहीं और कोई मरे कहीं। यह बात कुछ समझमें नहीं आती।

(ग) यदि दूसरी शंकाका कुछ समाधान हो भी जाय तो ऐसा उग्र दण्ड क्यों दिया गया जो अति वृथित या निर्व्ययतापूर्ण कार्य समझा जा सकता है?

आधुनिक युगमें—जब कि धर्मपर अज्ञाकी पूर्ण शिथिलता हो रही है—ये शंकाएँ अनुचित नहीं समझी जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार क्रमसे इनका समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (स्मृतिधर्मों) से यह बात सिद्ध है कि धर्म वस्तुतः दृष्टादृष्टार्थ साधक है—अर्थात् उसके दो विभाग हैं। एक दृष्ट अर्थसाधक और दूसरा दृष्ट अर्थसाधक। यद्यपि दोनों ही धर्मानुशासनके अन्तर्गत हैं और दोनोंका ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति है एवं दोनोंकी रक्षाका दायित्व भी राजापर ही है किन्तु जो भाग दृष्टार्थसाधक है उसमें प्रधानता योगबलविशिष्ट और दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि, ऋषि, राजर्षि आदि परमोच्च आत्माओंकी है, पर दूसरे दृष्ट-अर्थ-साधक भागका—जिसका पृथक् नाम व्यवहार हो गया है—सम्पादन मनुष्य-जातिके अधिकारी कर्मचारी-गणोंके द्वारा भी हो सकता है और वही राजतन्त्र कहलाता है। दृष्टार्थ भागसे ऐसे विषयोंका सम्बन्ध है जिनका परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीखता। इसी भागके साधनार्थ प्रकृति नियमानुसार वर्ण और आश्रमोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी थी। उस समय वैसी उच्च आत्माओंके विद्यमान रहनेसे दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था और राजद्वारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं जाते थे किन्तु दैवी अनिष्ट घटनाओंद्वारा होनेवाले कष्टोंकी भी पुकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय किया जाता था। वही रामराज्यका महत्त्व था। आज वह पवित्र और दिव्य सामग्री नहीं है। न वैसी उच्च आत्माएँ ही हैं और न वैसे राजा ही हैं जो दृष्ट विभागका पूर्ण नियन्त्रण कर सकें। इसी कारण वर्ण और आश्रम-धर्मका वेगसे लोप होता चला जा रहा है। अब तो केवल दृष्ट भाग (व्यवहार) शेष रह गया है। किन्तु उसकी दशा भी स्वार्थियोंके हाथमें आ जानेसे परम शोचनीय है। जब व्यवहारसम्बन्धी न्यायोंकी ही दुर्बुद्धि है तो दृष्टविभागके

द्वारा न्याय कहाँ सम्भव है ? इसी कारण अब राजद्वारपर सूतक ले जानेसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ।

(ख) तप करना पवित्र ही नहीं वह तो परमोच्च कथाका साधन है, जिसका सृष्टिके आदिमें श्रीभगवान् ने ब्रह्माजीको उपदेश किया था । किन्तु, इसके साधनके लिये चाहिये अधिकारी । वह शूद्र अधिकारी नहीं था, क्योंकि श्रीभगवान् के 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' वचनानुसार प्रत्येक वर्णकी उत्पत्ति कर्म और गुणके आधारपर हुई है । तदनुकूल इस वर्णमें उच्चगुणविशिष्टता नहीं होती, जिससे उसमें उच्च कर्मकी योग्यता हो सके और यदि अहङ्कारपूर्वक कोई उच्च कर्मका संकल्प कर ले तो वह अनधिकार चेष्टा है । उदाहरणके लिये समझ लीजिये कि राजतन्त्रमें यदि कोई कनिष्ठ अधिकारी उच्च अधिकारीका आसन झपटकर स्वयं आरूढ़ हो जाय तो कितनी अस्तव्यस्तता होकर दृष्टार्थसाधक धर्मविभागमें अर्थात् राजतन्त्रमें हलचल मच जाय । वस, इसीप्रकार यदि कनिष्ठ अधिकारी ऊँचे अधिकारका कर्म करने लगे तो अदृष्टार्थसाधक धर्मविभागमें भी पूर्ण हलचल मचकर उनके परिणामभूत उत्पात और विषय आ उपस्थित हों । राजापर दोनोंका दायित्व है । इसलिये राजाका कर्तव्य है कि दोनों ही अनधिकार चेष्टाओंके अपराधियोंके लिये यथोचित दण्डविधान करे । आज यद्यपि दृष्टार्थसाधक धर्मविभागका तो ठपरा जैसे तैसे चल रहा है परन्तु अदृष्टार्थ धर्मविभागके नियन्त्रणका सर्वथा अभाव है और देश वर्णसंकर-सृष्टिके कारण अनधिकार क्रियाओंसे व्याप्त हो रहा है । मुख्यतया इसी कारण अतिवृष्टि, अनावृष्टि, हिम, आतप, शलभा, महामारी आदि उपद्रवोंका वेग पूर्णरूपसे बढ़ रहा है ।

यहाँ यह आक्षेप अवश्य प्राप्त होता है कि ऐसी दशामें शूद्रके लिये आत्मोन्नति या आत्मोद्धार करनेका अवसर ही नहीं है । यद्यपि देखनेमें यह आक्षेप प्रबल दीखता है किन्तु वास्तवमें बात यह है कि ऊपर जो वर्णव्यवस्था प्रदर्शित की गयी है वह केवल प्रकृतिके नियमानुकूल है और इसके यथार्थ पालन करनेपर अवश्य क्रमशः उन्नति होती है । इसीके द्वारा उसका उद्धार पूर्णतया हो जाता है । परन्तु इन सबके ऊपर सद्यःफलप्रदाता भक्ति और प्रेमका दूसरा मार्ग है, जहाँ सारे नियम और बन्धन अस्त हो जाते हैं । यहाँ शूद्र ही क्या, उससे भी नीचे अन्यत्र भी उस गतिको प्राप्त होते हैं जिसको ऋषिमुनिगण तरसा करते हैं । यहीं देखिये, जिन श्रीरामके हाथसे इस शूद्रका वध हुआ, उन्होंने ही शबरी और निषाद-जैसे अन्यजनोंसे असीम

प्रेम किया । उसीके प्रभावसे उनका यशगान आज अनेक पतितोंके उद्धारका परम साधन बना हुआ है । भगवान् ने केवल इन्हींसे प्रेम किया हो सो नहीं, पशु वानरोंके दलोंके दल आलसता कर लिये, जिनमें कई तो प्रातः स्मरणीय हैं और एककी महिमा तो यहाँतक बढ़ी हुई है कि श्रीभगवान् के पवित्र नामके साथ उनका भी नाम संयुक्त हो गया है । यदि 'पवनसुत हनुमान्जीकी जय' न बोली जाय तो 'सियावर रामचन्द्रकी जय' फीकी-सी लगाने लगती है । आज कूताकूतका प्रसंग उठाकर जो लोग वर्णव्यवस्थाको नष्ट अट करनेपर तुल्य हुए हैं, वे यदि अपनी सुशुद्धिको काममें लाकर श्रीभगवान् के इस सिद्धान्तको यथार्थरूपसे समझ लें तो किसी उत्पातको अवसर ही नहीं मिले ।

अब यह शंका रही कि शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी सृष्ट्युका क्या सम्बन्ध है ? इसके समाधानमें उपर्युक्त कथनानुसार अनधिकाररूपसे तप करनेपर कोई-न-कोई उत्पात होना ही था । सो वह इस ब्राह्मण बालककी सृष्ट्युरूपमें परिणत हुआ । अब एक तो यह रहा कि तप करने-वाला कहाँ और बालक कहाँ और दूसरे यह कि अन्धादिके प्रहारपे ही किसीका वध हुआ करता है परन्तु बालककी सृष्ट्युका हेतु तप क्योंकि समझा जा सकता है । वस्तुतः तप करना और उसका दृष्टान्ति परिणाम होना, इन सबका अदृष्टार्थ धर्मविभागसे सम्बन्ध होनेके कारण यह लोकोत्तर सूक्ष्म जगत्का व्यवहार है । जो अवयवरहित अरूप या अरट है । यह जो विस्तार या विशालता देखनेमें आ रही है सो तो केवल स्थूल जगत्का दृश्य है । इसके सूक्ष्मरूपका दृष्टान्त बरगवके बीजसे समझना चाहिये । अर्थात् इतना विस्तृत वृक्ष एक राई-से बीजमें समाया हुआ रहता है । अतः सूक्ष्म जगत्में वैसा अन्तर नहीं रहता जैसा स्थूलमें दीखता है और वध होनेमें भी जैसे स्थूल जगत्में अन्धादिका प्रहार नेत्रका विषय होता है वहाँ वैसा नहीं होता । वहाँ इस प्रकारकी घटनाएँ अवयवरहित गुणोंके व्यतिक्रमसे होती हैं, जो चर्मचक्षुका विषय नहीं है । आजकल विज्ञानको इस परमोन्नतिके कालमें तो ऐसी शंकाओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये, क्योंकि जब हम भौतिक जगत्में भी बिना तारके सहस्रों कोसकी दूरीपर क्षणमात्रमें समाचार पहुँचानेका सूक्ष्मभूतोंका चमत्कार देखते हैं,—जो चक्षु-इन्द्रियका विषय नहीं है तो अज्याल जगत्के चमत्कारोंपर हमें क्यों सन्देह होना चाहिये ? अब यह कि, उस बालककी ही सृष्ट्यु क्यों हुई, अन्य उपद्रव क्यों नहीं हुए ? इसके

लिये अधिक दूर न जाइये। यह बात प्रसिद्ध है कि अनेक रोगोंके कीटाणु सदैव आकाश-मण्डलमें फिरा करते हैं, किन्तु न सब रोगोंकी ही उत्पत्ति एक साथ होती है और न सब मनुष्य ही किसी रोगमें एक साथ ग्रस्त होते हैं। विशेष देश, काल और पात्र ही उनके आह्वानके हेतु होते हैं। वस, यही वशा सूक्ष्म जगत्की है। अतः ऐसी ही विशेषताओंसे उस क्षणमें वह बालक ही अनिष्ट परिणामका पात्र हुआ।

इस उपर्युक्त परिस्थितिपर दृष्टि डालनेसे यह प्रकट होगा कि उस समय भी श्रीभगवान्‌के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उपस्थित थी ! एक ओर जिस बालक-बालकका मृतक शरीर उसके मा बापने द्वारपर डाल रक्खा है उसके लिये न्याय करनेकी उत्कट चिन्ता और दूसरी ओर एक पवित्र कार्यमें प्रवृत्त मनुष्यका बध, जिसका हृदयमें संकल्प आते ही इसप्रकारकी शंकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका निरूपण ऊपर किया गया है किन्तु वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा और न्यायपरायणताके भावोंके सम्मुख श्रीरामने अन्य किसी भी विचारको स्थान नहीं दिया। \*

(ग) अब रही ऐमे उग्र दण्डवाली तीसरी शक्ता, सो यह एक बात तो प्रत्यक्ष ही है, आजकी न्याय-यद्धतिमें भी देखा जाता है कि किसीका बध करनेपर अपराधीको बधका ही दण्ड दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जिन राजाके प्रत्येक प्रान्तमें परम शान्तिका डंका बज रहा हो और समस्त प्रजा पूर्ण सुख और आनन्दका भोग कर रही हो, वहाँ यदि किसीका उस शान्तिमें बाधक होना सिद्ध हो जाय तो न्याय यही चाहता है कि उसे ऐसा उदाहरणीय दण्ड दिया जाय कि जिससे पुनः किसीको ऐसा अपराध करनेका साहस ही न हो और उस शान्तिके साम्राज्यमें अन्तर न पड़े।

(१२) उपर्युक्त न्याय पवित्र चरित्रोंसे जो मर्यादा स्थिर की गयी है उसका बयामानि दिग्दर्शन कराया गया।

अन्तमें इतनी बात और प्रदर्शित करनी आवश्यक है

\* भगवान् श्रीरामने मर्यादा-रक्षाके लिये शम्भुका बध किया परन्तु उसका सत्कामनाका फल भी उसे दे दिया। वह स्वर्गके लिये तप कर रहा था अतएव भगवान्‌ने उसका बध करके उसे परमोत्तम स्वर्गमें भेज दिया। आध्यात्मरामायणमें कहा गया है कि 'शुद्धस्व ददौ स्वर्गमनुत्तमम्।' शुद्धको परम उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इससे मर्यादारक्षाके साथही भगवान्‌की दयालुता और उसके तपकी सफलता भी प्रकट होती है। —सम्पादक

कि सामूहिकरूपसे इस लेखमें प्रतिपादित समस्त चरित्रोंसे या अर्थोंसे भी, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है, यह परमअनुकरणीय मर्यादा और निमित्त होती है कि प्रारब्ध-वशात् कितनी भी आपत्तियोंके आनेपर भी मनुष्यको पुरुषार्थहीन होकर क्षणच्युत नहीं होना चाहिये। विचारिये, श्रीरामकी परम दारुण आपत्तियाँ राज्यसिंहासनके त्याग या वनवासमें ही समाप्त नहीं हुईं किन्तु यहाँतक पीछे पड़ीं कि प्राणसे प्यारी धर्मपत्नीका भी विभोग हो गया और वह भी सामान्यरूपसे नहीं, एक विफट और प्रवल राक्षसके हरबाद्वारा, परन्तु जितनी जितनी अधिक भीषण आपत्तियाँ आयीं उतने ही उतने अधिकधिक पुरुषार्थके लिये उत्साह होता गया। अतः प्राणीमात्रके जीवनकी सफलताके लिये श्रीभगवान्‌के द्वारा यह सर्वोच्च शिक्षारूप मर्यादा स्थिर की गयी है कि जितनी अधिक आपत्तियाँ आवें, उतना ही अधिक पुरुषार्थ किया जाना चाहिये।

## इष्टदेव रामसे विनय !

मन मन्दिरकं इष्टदेव !  
इस जीवनके आधार !  
हे मयुकर ! वरमुमन कलीके  
स्नेह-रत्ना रत्नवार ! !

बहुत दिनोत्तक खोज-खोजकर  
हाय ! तुम्हें हम ढूँढे ।  
किन्तु नहीं कुछ लभा पता  
हा ! बही नयन-जल-धारे ॥

आज हुआ सौभाग्य प्राप्त  
हम पहुँचे पाम तुम्हारे ।  
हुए अहा ! कृतकृत्य देखकर  
दोनों नयन हमारे ॥

आयें हैं हम यहाँ तुम्हारे  
दर्शन हेतु दुखारे !  
हृदय आज यह अर्पण करने  
प्रेम चोटके मारे ॥

हम चातक हैं, स्वातिनुन्द तुम,  
चलो हमारे द्वारे ।  
करा पुण्यमय हे प्रियवर !  
चल गृहको आज हमारे ॥

श्रीरामचन्द्रन द्विवेदी "अरविन्द"







### मीता-वनवास ।

अहं तु नादृशोऽस्मि मयि शर्गं नरपथम् ।  
पतिर्ह देवता नार्याः पतिर्नृभ्युः पतिर्गुरुः ।  
प्राणैर्गपि प्रियं तस्मान् भक्तुं कार्यं विशेषतः ।

## श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)



इ कहना श्रुति नहीं होगा कि अखिल विश्वके स्त्री-चरित्रोंमें श्रीरामप्रिया जगज्जननी जानकीजीका चरित्र सबसे उत्कृष्ट है। रामायणके समस्त स्त्रीचरित्रोंमें तो सीताजीका चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और पद पद पर अनुकरण करने योग्य है ही। भारतवर्षल्लनाओंके लिये सीताजीका चरित्र सन्मार्गपर चलनेके लिये पूर्ण मार्गदर्शक है। सीताजीके असाधारण पातिव्रत, त्याग, शील, अभय, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्म-परायणता, नम्रता, सेवा, संयम, सह्यवहार, साहस, शौर्य आदि गुण एक साथ जगत्की विरली ही महिलामें मिल सकते हैं। श्रीसीताके पवित्र जीवन और अप्रतिम पातिव्रत-धर्मके सदृश उदाहरण रामायणमें तो क्या जगत्के किसी भी इतिहासमें मिलने कठिन है। आरम्भसे लेकर अन्ततक सीताके जीवनकी सभी बातें—केवल एक प्रसङ्गको छोड़कर—पवित्र और आदर्श हैं। ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे हमारी मा-बहिनोंको सन्तुष्टि न मिले। संसारमें अनेक जिनकी स्त्रियाँ हो चुकी हैं, श्रीसीताको पातिव्रत-धर्ममें सर्व-शिरोमणि कहा जा सकता है। किसी भी ऊँचीसे ऊँची स्त्रीके चरित्रकी सूक्ष्म आलोचना करनेसे ऐसी एक-एक बात मिल ही सकती है जो अनुकरणके योग्य न हो, परन्तु सीताका ऐसा कोई भी आचरण नहीं मिलता।

जिस एक प्रसङ्गको सीताके जीवनमें दोषयुक्त समझा जाता है, वह है मायासृगको मारनेके लिये श्रीरामके चले जाने और मारीचके मरते समय 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की पुकार करने पर सीताजीका ध्वषाकर लक्ष्मणके प्रति यह कहना कि 'मैं समझती हूँ कि तू मुझे पानेके लिये अपने बड़े भाईकी मृत्यु देखना चाहता है। मेरे लोभसे ही तू अपने भाईकी रक्षा करनेको नहीं जाता।' इस बर्तावके लिये सीताने आगे चलकर बहुत पश्चात्ताप किया। साधारण स्त्री-चरित्रमें सीताजीका यह बर्ताव कोई विशेष दोषयुक्त नहीं है। स्वामीको संकटमें पड़े हुए समझकर आतुरता और प्रेमकी बाहुल्यतासे सीताजी यहाँपर नीतिका उल्लंघन कर गयी थीं। श्रीराम-सीताका अवतार मर्यादाकी रक्षाके लिये था, इसीसे सीताजीकी यह एक गलती समझी गयी और इसीलिये सीताजीने पश्चात्ताप किया था।

नैहरमें

प्रेम-व्यवहार

जनकपुरमें पिताके घर सीताजीका सबके साथ

बड़े प्रेमका बर्ताव था छोटे बड़े सभी स्त्री-

पुरुष सीताजीको हृदयसे चाहते थे। सीताजी

आरम्भसे ही सलज्जा थी। लज्जा ही स्त्रियोंका भूषण है। वह प्रतिदिन माता-पिताके घरोंमें प्रणाम किया करती थी, घरके नौकर-चाकर तक उसके व्यवहारसे परम प्रसन्न थे। सीताजीके प्रेमके बर्तावका कुछ दिव्यदर्शन उस समयके वृद्धनसे मिलता है जिस समय सीताजी ससुरारके जिघे विदा हो रही है—

पुनि धीरज धरि कुँअरि हँकारी। बार-बार भेंटहि महतारी ॥

पहुँचावहिं फिर मिलहि बहारी। बड़ी परसपर प्रीति न योरी ॥

पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई ॥

प्रेम-बिबस नर-नरि सब, सखिन्ह सहित रनिवास।

मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करना-बिरह-निवास ॥

मुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरहि राखि पड़ाए ॥

ब्याकुल कहहि कहाँ बँदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही ॥

भये बिकल खगमृग एहि माँति। मनुजदसा कैसे कहि जाती ॥

बंधु संमत जनक तब आए। प्रेम उमँगि लोचन जल छाए ॥

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहं कहावत परम विरागी ॥

लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिठी महामरजाद ग्यानकी ॥

जहाँ ज्ञानियोंके आचार्य जनकके ज्ञानकी मर्यादा मिट जानी है और पिंजरेके पखेरू तथा पशु-पक्षी भी 'सीता सीता' पुकारकर व्याकुल हो उठते हैं, वहाँ कितना प्रेम है, इस बातका अनुमान पाठक कर लें! सीताके इस चरित्रसे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि स्त्रीको नैहरमें छोटे बड़े सभीके साथ ऐसा बर्ताव करना उचित है जो सभीको प्रिय हो।

माता-पिताका

आज्ञा पालन

सीता अपने माता-पिताकी आज्ञा पालन

करनेमें कभी नहीं चूकती थी। माता-पितासे

उसे जो कुछ शिक्षा मिलती, श्रीसीता

उसपर दृढ़ अमल करती थी। मिथिलासे विदा होते समय और चित्रकूटमें सीताजीको माता-पितासे जो कुछ शिक्षा मिली है, वह स्त्रीमात्रके लिये पाखण्ड है—

होयेहु संतत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी॥  
सासु-ससुर-गुरु-सेवा करेहु। पति-रुख लखि आयसु अनुसरेहु॥

पतिसेवाके लिये श्रीरामको राज्याभिषेकके बदले यकायक बन-  
प्रेमाग्रह वास हो गया। सीताजीने यह समाचार

सुनते ही तुरन्त अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया। नैहर-ससुरार, गहने-कपड़े, राज्य-परिवार, महल-बाग, दास-दासी और भोग-राग आदिपे कुछ मतलब नहीं। छायाकी तरह पतिके साथ रहना ही पत्नीका एकमात्र कर्तव्य है। इस निश्चयपर आकर सीताने श्रीरामके साथ वनगमनके लिये जैसा कुछ व्यवहार किया है, वह परम उज्जवल और अनुकरणीय है। श्रीसीताजीने प्रेमपूर्ण विनय और हठसे वनगमनके लिये पूरी कोशिश की। साम, दाम, नीति सभी वैध उपायोंका अवलम्बन किया और अन्तमें वह अपने प्रयत्नमें सफल हुई। उसका ज्येष्ठ था किसी भी उपायसे वनमें पतिके साथ रहकर पतिकी सेवा करना। इसी-को वह परम धर्म समझती थी। इसीमें उसे परम आनन्द-की प्राप्ति होती थी। वह कहती है—

मातु पिता भगिनी प्रिय माई। प्रिय परिवार सुदृढ़-समुदाई॥  
सास-ससुर-गुरु-सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील मुखदाई॥  
जहँलगे नाथ नेह अरु नते। पिय बिनु तिथहि तरनिहुँ ते ताते॥  
तन-वन-धाम-धरनि सुरराजू। पतिबिहीन सब सोक-समाजू॥  
भोग रोग सम, मूचन मारू। जम-जातना सरिस संसारू॥

बनके नाना कुंशों और कुटुम्बके साथ रहनेके नाना प्रलोभनोंको सुनकर भी सीता अपने निश्चयपर अडिग रहती है। वह पति-सेवाके सामने सब कुछ तुच्छ समझती है। नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद विमल बिभु बदन निहारें॥

यहाँपर यह सिद्ध होता है कि सीताजीने एकबार प्राप्त हुई पति आज्ञाको बदलाकर दूसरी बार अपने मनो-जुक्त आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रेमाग्रह किया। यहाँतक कि, जब भगवान् श्रीराम किसी प्रकार भी नहीं माने तो हृदय विदीर्ण हो जानेतकका सङ्केत कर दिया—

पेंसेउ बचन कठोर मुनि, जो न हृदय बिलगान।  
तौ प्रभु निवम बियोग-दुख, सहिहहि पॉवर प्रान॥

अध्यात्मरामायणके अनुसार तो श्रीसीताने यहाँतक स्पष्ट कह दिया कि—

रामायणानि बहुशः श्रुतानि बहुमिर्दिजैः।  
सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रचिद्वद॥  
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी।  
यदि गच्छति मांत्यक्त्वा प्राणास्त्यक्ष्यामि तेऽग्रतः॥

( अ० रा० )

‘मैंने भी ब्राह्मणोंके द्वारा रामायणकी अनेक कथायें सुनी हैं। कहीं भी ऐसा कहा गया हो तो बतलाइये कि किसी भी रामावतारमें श्रीराम सीताको अयोध्यामें छोड़कर वन गये हैं। इस बार ही यह नयी बात क्यों होती है? मैं आपकी सेविका बनकर साथ चलींगी। यदि किसी तरह भी आप मुझे नहीं ले चलेंगे तो मैं आपके सामने ही प्राण त्याग दूंगी।’ पतिसेवाकी कामनासे सीताने इसप्रकार स्पष्टरूपसे अवतारविषयक अपनी बढ़ाईके शब्द भी कह डाले।

वाल्मीकि-रामायणके अनुसार सीताजीके अनेक रोने, गिड़गिड़ाने, विविध प्रार्थना करने और प्राण-त्यागपूर्वक परलोक-में पुनः मिलन होनेका निश्चय बतलानेपर भी जब श्रीराम उन्हे साथ ले जानेको राजी नहीं हुए तब, सीताको बड़ा दुःख हुआ और वह प्रेमकोपमें आँखोंमें गर्म-गर्म आँसुओंकी धारा बहाती हुई नीतिके नाते इसप्रकार कुछ कठोर वचन भी कह गयी, कि—‘हे देव! आप सरीखे आर्यपुरुष मुझ जैसी अनुरक्त, भक्त, दीन और सुख-दुःखको समान समझनेवाली सहचरिणी-को अकेली छोड़कर जानेका विचार करें, यह आपको शोभा नहीं देता। मेरे पिताने आपको पराक्रमी और मेरी रक्षा करनेमें समर्थ समझकर ही अपना दामाद बनाया था।’ इस कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीराम लक्ष्मणसे अत्यन्त अग्र पराक्रमी समझे जाते थे। इस प्रसङ्गमें श्री-वाल्मीकिजी और गो० तुलसीदासजीने सीता-रामके संवादमें जो कुछ कहा है सो प्रत्येक स्त्री-पुरुषके ध्यानपूर्वक पढ़ने और मनन करने योग्य है।

सीताजीके प्रेमकी विजय हुई, श्रीरामने उसे साथ ले चलना स्वीकार किया। हम कथानकसे यह सिद्ध होता है कि पत्नीको पतिसेवाके लिये—अपने सुखके लिये नहीं—पतिकी आज्ञाको दुहरानेका अधिकार है। वह प्रेमसे पति-सुखके लिये ऐसा कर सकती है। सीताने तो यहाँतक कह दिया था ‘यदि आप आज्ञा नहीं देंगे तब भी मैं तो साथ चलींगी।’ सीताजीके इस प्रेमाग्रहकी आज्ञातक कोई भी किन्दा नहीं करता, क्योंकि सीता केवल पतिप्रेम और पति-सेवाहीके लिये समस्त सुखोंको त्यागजि देख

वन जानेको तैयार हुई थी, किसी इन्ग्रिय-सुखरूप स्वार्थ-साधनके लिये नहीं ! इससे यह नहीं समझना चाहिये कि सीताका व्यवहार अनुचित या पतिव्रत-धर्मसे विरुद्ध था। स्त्रीको धर्मके लिये ही ऐसा व्यवहार करनेका अधिकार है। इससे पुरुषोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सहधर्मिणी पतिव्रता पत्नीकी बिना इच्छा उसे त्यागकर अन्यत्र चले जाना अनुचित है। इसीप्रकार स्त्रीको भी पति-सेवा और पति-सुखके लिये उसके साथ ही रहना चाहिये। पतिके विरोध करनेपर भी कष्ट और आपत्तिके समय पति-सेवाके लिये स्त्रीको उसके साथ रहना उचित है। अवश्य ही अवस्था देखकर कार्य करना चाहिये। सभी स्थितियोंमें सबके लिये एकसी व्यवस्था नहीं हो सकती। सीताने भी अपनी साधुताके कारण सभी समय इस अधिकारका उपयोग नहीं किया था।

वनमें जाकर सीता पतिसेवामें सब कुछ मूख-पतिमिवामें कर सब तरह सुखी रहती है। उसे राजपाट, सुख महल-बगीचे, धन-दौलत और दास-दासियोंकी कुछ भी स्मृति नहीं होती। रामको वनमें झोंढ़कर लौटा हुआ सूत सीताके लिये विलाप करती हुई माता कौशल्यासे कहता है— 'सीता निर्जन वनमें घरका भाँति निर्भय होकर रहती है, वह श्रीराममें मन लगाकर उनका प्रेम प्राप्त कर रही है। वनवाससे सीताको कुछ भी दुःख नहीं हुआ, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि (श्रीरामके साथ) सीता वनवासके सर्वथा योग्य है। चन्द्रानना सती सीता जैसे पहले यहाँ बगीचोंमें जाकर खेलती थी, वैसे ही वहाँ निर्जन वनमें भी वह श्रीरामके साथ बालिकाके समान खेलती है। सीताका मन राममें है, उसका जीवन श्रीरामके अधीन है, अतएव श्रीरामके साथ सीताके लिये वन ही अयोध्या है और श्रीरामके बिना अयोध्या ही वन है।' अन्य पतिव्रत ! अन्य !

सास-सेवा श्रीसीता पतिसेवाके लिये वन गयी, परन्तु उसको इस बातका बड़ा खोम रहा कि सासुओंकी सेवासे उसे अलग होना पड़ रहा है। सीता सासके पैर छूकर सच्चे मनसे रोती हुई कहती है—

× × × । सुनिय माय मैं परम अमायी ॥  
सेवा-समय देव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥  
तजब छोम जनि छाँड़िअ छोडू । करम कठिन कछु दोस न मोडू ॥

सास-पतोडूका यह व्यवहार आदर्श है। भारतीय बालनाएँ यदि आज कौशल्या और सीताका-सा व्यवहार

करना सीख जायें तो भारतीय गृहस्थ सब प्रकारसे सुखी हो जायें। सास अपनी बधुओंको सुखी देखनेके लिये व्याकुल रहें और बहूएँ सासकी सेवाके लिये कूटपटावें तो दोनों ओर ही सुखका साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

सीताकी सहिष्णुताका एक उदाहरण देखिये। सहिष्णुता वन-गमनके समय जब कैकेयीजी सीताको वनवासके योग्य वस्त्र पहननेके लिये कहती है तब वशिष्ठ-सरीको महर्षिका मन भी क्षुब्ध हो उठता है, परन्तु सीता इस कथनको केवल चुपचाप सुन ही नहीं लेती, आज्ञा-नुसार वह वस्त्रधारण भी कर लेती है। इस प्रसंगसे भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सास या उसके समान नाते-में अपनेसे बड़ी कोई भी स्त्री जो कुछ कहे या बर्ताव करे, उसको सुधीके साथ सहन करना चाहिये और कभी पतिके साथ विदेश जाना पड़े तो सच्चे हृदयसे सासुओंको प्रणाम-कर, उन्हें सन्तोष करवाकर, सेवासे वञ्चित होनेके लिये हार्दिक पश्चात्ताप करते हुए जाना चाहिये। इससे बधुओंको सासुओंका आशीर्वाद आप ही प्राप्त होगा।

सीता अपने समयमें लोकप्रसिद्ध पतिव्रता निरभिमानता थी, उसे कोई पतिव्रतका क्या उपदेश करता ? परन्तु सीताको अपने पतिव्रतका कोई अभिमान नहीं था। अनुसूयाजीके द्वारा किया हुआ पतिव्रतधर्मका उपदेश सीता बड़े आदरके साथ सुनती है और उनके चरणोंमें प्रणाम करती है। उसके मनमें यह भाव नहीं आता कि मैं सब कुछ जानती हूँ। बल्कि अनुसूयाजी ही उससे कहती हैं—

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नरि पतिव्रत करहि ।  
तोहि प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित ॥

इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि अपनेसे बड़े-बड़े जो कुछ उपदेश दें उसे अभिमान झोंढ़कर आदर और सम्मानके साथ सुनना चाहिये एवं यथासाध्य उसके अनुसार चलना चाहिये।

सीताजीकी अतिथि-सेवाका भाव देखिये। अतिथि-सेवा वह अपने द्वारपर आये हुए अतिथि-अभ्यागत-की सेवा करनेसे कभी नहीं चूकती थी। कपटवेष्टमें द्वारपर खड़े हुए रावणको भी सीताने बड़े आदरसे भिचा देना चाहा था। इससे स्त्रियोंको यह सीखना चाहिये कि द्वारपर आये हुए अतिथिक प्रेमके साथ यथाशक्ति सत्कार करना उचित है।

गुरुजन-सेवा बड़ोंकी सेवा और मर्यादामें सीताका मन और कितना जगा रहता था, इस बातको समझनेके मर्यादा बिने महाराज जनककी चित्रकूट-यात्राके प्रसङ्गको याद कीजिये। भरतके वन जानेपर राजाजनक भी रामसे मिलनेके लिये चित्रकूट पहुँचते हैं। सीताकी माता श्रीरामकी माताओंसे सीताकी, सासुओंसे मिलती है और सीताको साथ लेकर अपने डेरेपर आती है। सीताको तपस्विनीके बेपमें देखकर सबको विषाद होता है, पर महाराज जनक अपनी पुत्रीके इस आचरणपर बड़े ही सन्तुष्ट होते हैं और कहते हैं—  
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥

माता-पिता बड़े प्रेमसे हृदयसे जगाकर अनेक प्रकारकी सीख और असौख देते हैं। बात करते-करते रात अधिक हो जाती है। सीता मनमें सोचती है कि सासुओंकी सेवा छोड़कर इस अवस्थामें रातको यहाँ रहना अनुचित है, किन्तु स्वभावसे ही अजायबी सीता सङ्कोचका मनकी बात मा-बापसे कह नहीं सकती—

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ नसब रजनी भल माहीं॥

अतः माता सीताके मनका भाव जान लेती है और सीताके शीघ्र-स्वभावकी मन-ही-मन सराहना करते हुए माता-पिता सीताको कौशल्याके डेरेमें भेज देते हैं। इस प्रसङ्गसे भो स्त्रियोंको सेवा और मर्यादाकी शिक्षा लेनी चाहिये।

सीताका तेज और उसकी निर्भयता देखिये।  
निर्भयता

जिस दुर्दान्त रावणका नाम सुनकर देवता भी काँपते थे, उसीको सीता निर्भयताके साथ कैसे कैसे बचन कहती थी। रावणके हाथोंमें पड़ी हुई सीता अति क्रोधसे उसका तिरस्कार करती हुई कहती है 'अरे दुष्ट निराचर, तेरी आयु पूरी हो गयी है, अरे मूर्ख ! तू श्रीराम-चन्द्रकी सहचरिणीको हरबाकर प्रज्वलित अग्निके साथ कपड़ा बाँधकर जलना चाहता है। तुझमें और रामचन्द्रमें उतना ही अन्तर है जितना सिंह और सिंघारमें, समुद्र और नालेमें, अमृत और काँजीमें, सोने और लोहेमें, चन्दन और कीचड़में, हाथी और बिजावमें, गरुड और कौएमें तथा इस और गोधमें होता है। मेरे अमित प्रभाववाले स्वामीके रहते तू मुझे हरण करेगा तो जैसे मक्खी चीके पीते ही झुकने का हो जाती है, वैसे ही तू भी काँझके गाँझमें चला जावगा।' इससे यह सीखना चाहिये कि परमात्माके बलपर किसी भी अवस्थामें मनुष्यको डरना उचित नहीं। अन्ध-ब-

का प्रतिवाद निर्भयताके साथ करना चाहिये। परमात्माके बलका सच्चा भरोसा होगा तो रावणका बध करके सीताको उसके कंगुलसे छुड़ानेकी भाँति भगवान् हमें भी विपत्तिसे छुड़ा देंगे।

धर्मके लिये  
प्राण-त्यागकी  
तैयारी

विपत्तिमें पड़कर भी कभी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। इस विषयमें सीताका उदाहरण सर्वोत्तम है। लङ्काकी अशोक-वाटिकामें सीताका धर्मनाश करनेके लिये दुष्ट रावणकी ओरसे कम चेष्टाएँ नहीं हुई, राक्षसियोंने सीताको भय और प्रलोभन दिखलाकर बहुत ही तंग किया, परन्तु सीता तो सीता ही थी। धर्मत्यागका प्रश्न तो वहाँ उठ ही नहीं सकता, सीताने तो जलसे भी अपने बाहरी बर्तोंमें भी विपत्तिसे बचनेके हेतु कभी दोष नहीं आने दिया। उसके निर्मल और धर्मसे परिपूर्ण मनमें कभी डरी स्फुरणा ही नहीं आ सकी। अपने धर्मपर अटल रहती हुई सीता दुष्ट रावणका सदा तीव्र और नीतियुक्त शब्दोंमें तिरस्कार ही करती रही। एक बार रावणके वाग्बाणोंको न सह सकनेके समय और रावणके द्वारा मायासे श्रीराम-लक्ष्मणको मरे हुए दिखला देनेके कारण वह मरनेको तैयार हो गयी परन्तु धर्मसे डिगनेकी भावना स्वप्नमें भी कभी उसके मनमें नहीं उठी। वह दिनरात भगवान् श्रीरामके चरणोंके ध्यानमें लगी रहती थी। सीताजीने श्रीरामको हनुमान्के द्वारा जो संदेशा कहलाया, उससे पता लग सकता है कि उनकी कैसी पवित्र स्थिति थी—

नाम पाहुरु दिवस निरसि, ध्यान तुम्हार कषाट।

लांचन निज पद-जन्त्रिका, प्राण जाहि कंहि बाट ॥

इससे स्त्रियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पतिके वियोगमें भीषण आपसियाँ आनेपर भी पतिके चरणोंका ध्यान रहे। मनमें भगवान्के बलपर पूरी वीरता, वीरता और तेज रहे। स्वधर्मके पालनमें प्राणोंकी भी आहुति देनेको सदा तैयार रहे। धर्म जाकर प्राण रहनेमें कोई लाभ नहीं, परन्तु प्राण जाकर धर्म रहनेमें ही कल्याण है 'स्वधर्मं निधनं श्रेयः।'।

सावधानी

सीताजीकी सावधानी देखिये। जब हनुमान्-जी अशोकवाटिकामें सीताके पास जाते हैं तब सीता अपने बुद्धिकौशलसे सब प्रकार उनकी परीक्षा करती है। जबतक उसे यह विश्वास नहीं हो जाता कि हनुमान् वास्तवमें श्रीरामचन्द्रके दूत हैं, वह विश्वास नहीं है और मेरी

कोजमें ही वहाँ भावे हैं तबतक चुलकर बात नहीं करती है।

जब पूरा विश्वास हो जाता है तब पहले दाम्पत्य-प्रेम स्वामी और देवकी कुशल पूछती है, फिर आँसू बहाती हुई कहती है—'हनुमान्! रघुनाथजीका चित्त तो बड़ा ही कोमल है। कृपा करना तो उनका स्वभाव ही है। फिर मुझसे वह इतनी निष्ठुरता क्यों कर रहे हैं? वह तो स्वभावसे ही सेवकको सुख देनेवाले हैं, फिर मुझे उन्होंने क्यों बिसार दिया है? क्या श्रीरघुनाथजी कभी मुझे वाद भी करते हैं? हे भाई! कभी उस स्वाम-सुन्दरके कोमल मुखकमलको देखकर मेरी ये आँखें शीतल होंगी? अहो! नाथने मुझको बिल्कुल भुला दिया! इतना कहकर सीता रोने लगी, उसकी बाबी रुक गयी!

बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ! मोहि निपट बिसारी ॥

इसके बाद हनुमान्जीने जब श्रीरामका प्रेम-सन्देश सुनाते हुए यह कहा कि माता! श्रीरामका प्रेम तुमसे दुगुना है। उन्होंने कहलवाया है—

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ॥

सो मन सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरस पतनहि माहीं ॥

यह सुनकर सीता गद्गद हो जाती है। श्रीसीता-रामका परस्पर कैसा आदर्श प्रेम है। जगत्के स्त्री-पुरुष यदि इस प्रेमको आदर्श बनाकर परस्पर ऐसा ही प्रेम करने लगे तो गृहस्थ सुखमय बन जाय!

सीताजीने जयन्तकी घटना बाद दिखाते हुए पर-पुरुषसे परहेज कहा कि, 'हे कपिवर! तू ही बता, मैं इस अवस्थामें कैसे जी सकती हूँ? शत्रुको

तपानेवाले श्रीरामलक्ष्मण समर्थ होनेपर भी मेरी सुधि नहीं लेते, इससे मालूम होता है अभी मेरा दुःखभोग शेष नहीं हुआ है।' यों कहते-कहते जब सीताके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी तब हनुमान्ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि 'माता! कुछ दिन धीरज रक्खो। शत्रुओंके संहार करनेवाले कृतात्मा श्रीराम और लक्ष्मण थोड़े ही समयमें वहाँ आकर रावणका वधकर तुम्हें अवधपुरीमें ले जावेंगे। तुम चिन्ता न करो। यदि तुम्हारी विशेष इच्छा हो और मुझे आज्ञा हो तो मैं भगवान् श्रीरामकी और तुम्हारी वधासे रावणका वधकर और लंकाको नष्टकर तुमको प्रभु श्रीरामचन्द्रके समीप ले जा सकता हूँ। भयवा हे देवि! तुम मेरी पीछपर बैठ जाओ, मैं आकाशमार्गसे होकर महासागरको काँच

जाऊँगा। वहाँके राक्षस मुझे नहीं पकड़ सकेंगे। मैं शीघ्र ही तुम्हें प्रभु श्रीरामचन्द्रके समीप ले जाऊँगा।' हनुमान्के बचन सुनकर उनके बल-पराक्रमकी परीक्षा लेनेके बाद सीता कहने लगी—'हे वानरभेद! पतिभक्तिका सम्यक् पालन करनेवाली मैं अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रको छोड़कर स्वेच्छासे किसी भी अन्य पुरुषके संगका स्पर्श करना नहीं चाहती—

मर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।

नाहं स्पृष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥

(बा० रा० ५। ३७। ६२)

बुद्ध रावणने बलात्कारसे हरण करनेके समय मुझको स्पर्श किया था, उस समय तो मैं पराधीन थी, मेरा कुछ भी बचा नहीं चलता था। अब तो श्रीराम स्वयं वहाँ आँ हैं और राक्षसों सहित रावणका वध करके मुझे अपने साथ ले जावें, तभी उनकी ज्वलन्त कीर्तिकी शोभा है।'।

भला विचारिये! हनुमान्-सरीखा सेवक, जो सीताजीको सबेरे हृदयसे मातासे बढ़कर समझता है और सीता-रामकी भक्ति करना ही अपने जीवनका परम ध्येय मानता है, सीता पतिव्रतधर्मकी रक्षाके लिये, इतने घोर विपत्तिकालमें अपने स्वामीके पास जानेके लिये भी उसका स्पर्श नहीं करना चाहती! कैसा अद्भुत धर्मका आग्रह है! इससे यह सीखना चाहिये कि भारी आपत्तिके समय भी स्त्रीको यथासाध्य परपुरुषके संगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये!

भगवान् श्रीराममें सीताका कितना प्रेम था वियोगमें और उनसे मिलनेके लिये उनके हृदयमें व्याकुलता

कितनी अधिक व्याकुलता थी, इस बातका कुछ पता हरणके समयसे लेकर लङ्का-विजयतकके सीताके विविध वचनोंसे लगता है, उस प्रसंगको पढ़ते-पढ़ते ऐसा कौन है जिसका हृदय कसबासे न भर जाय? परन्तु सीताजीकी सभी व्याकुलताका सबसे बढ़कर प्रमाण तो यह है कि श्रीरघुनाथजी महाराज उसके लिये विरहव्याकुल झैण मनुष्यकी भाँति विह्वल होकर उन्मत्तवत् रोते और विलाप करते हुए, अचि-कुमारों, सूर्य, पवन, पशु-पक्षी और जड़ वृक्षलताओंसे सीताका पता पूछते फिरते हैं—

आदित्या! मो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।

मम प्रिया सा क गता इता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम् ॥

लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किञ्चिद्यत्तेन नित्यं विदितं भवेत्तत्।

शंसस्व वायो। कुलयाक्षिनीं तां मृता इता वा पथि वर्तते वा ॥

कोकोंके कृत्वाकृत्यको जाननेवाले हे सूर्यदेव! तू सत्य

और असत्य कर्मोंका साक्षी है। मेरी मिथाको कोई हर जे गया है या वह कहीं चली गयी है इस बातको तू भलीभाँति जानता है। अतएव मुझ शोकपीडितको सारा हाऊ बतला ! हे बाबुदेव ! तीनों लोकोंमें तुझसे कुछ भी छिपा नहीं है, तेरी सर्वत्र गति है। हमारे कुलकी हृदि करनेवाली सीता मर गयी, हरी गयी या कहीं मार्गमें अटक रही है। जो कुछ हो सो बयार्थ कह।

हा गुनखानि जानकी सीता । रूप-सील-व्रत-प्रेम पुनीता ॥  
लछिमन समुद्रायें बहु भौंती । पूँछत चले लता अरु पाती ॥  
हे खग-मृग ! हे मधुकर सेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनेनी ॥

× × ×

एहि निधि बिलपत खोजत स्वामी । मनहुँ महानिरही अतिकामी ॥

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् श्रीराम 'महा विरही और अलिकामी' थे। सीताजीका श्रीरामके प्रति इतना प्रेम था और वह श्रीरामके लिये इतनी व्याकुल थी कि श्रीरामको भी वैसा ही बर्ताव करना पड़ा। भगवान्‌का यह प्रथम है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

श्रीरामने 'महाविरही और अलिकामी' के सट्टा लीला कर इस सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिया। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि हम भगवान्‌को पानेके लिये व्याकुल होंगे तो भगवान् भी हमारे लिये वैसे ही व्याकुल होंगे। अतएव हम सबको परमात्माके लिये इसी प्रकार व्याकुल होना चाहिये।

राखणका वच हो गया, प्रभु श्रीरामकी आश्रयसे अभि-परीक्षा सीताको खान करवाकर और बन्धायुष्य पहनाकर विभीषण श्रीरामके पास लाते हैं। बहुत दिनोंके बाद प्रियपति औरबुवीरके पृथ्वीसाके चन्द्रसदृश मुखको देखकर सीताका सारा दुःख भाग हो गया और उसका मुख निर्मल चन्द्रमाकी भाँति चमक उठा। परन्तु श्रीरामने यह स्पष्ट कह दिया। 'मैंने अपने कर्तव्यका पालन किया। राखणका वचकर तुमको दुष्टके चंगुलसे मुदाया परन्तु तू राखणके घरमें रह चुकी है, राखणने तुमको डूरी नजरसे देखा है, अतएव अब मुझे तेरी आवश्यकता नहीं। तू अपनी इच्छानुसार जाहे जहाँ चली जा। मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।'।

नास्ति मे त्वयमिच्छन्तो यथेष्टं मम्यतामिति ।

(वा० ग० ६।११५।२१)

श्रीरामके इन अनुत्पूर्व कठोर और भयङ्कर वचनोंको सुनकर विष्णुसती सीताकी जो कुछ दशा हुई उसका वर्णन नहीं हो सकता ! स्वामीके वचन-बाणोंसे सीताके समस्त अङ्गोंमें भीषण घाव हो गये। वह फूट फूटकर रोने लगी। फिर कल्याणको भी कल्याणसागरमें डुबो देनेवाले शब्दोंमें उसने धीरे धीरे गद्गद वाणीसे कहा—

'हे स्वामी ! आप साधारण मनुष्योंकी भाँति मुझे क्यों ऐसे कठोर और अनुचित शब्द कहते हैं ? मैं अपने शीलकी शपथ करके कहती हूँ कि आप मुझपर विश्वास रखें। हे प्राणनाथ ! राखणने हरण करनेके समय जब मेरे शरीरका स्पर्श किया था, तब मैं परवश थी। इसमें तो दैवका ही दोष है। यदि आपके वही करना था, तो हनुमान्‌को जब मेरे पास भेजा था तभी मेरा त्याग कर दिया होता तो अबतक मैं अपने प्राण ही खोख देती !' सीताने बहुतसी बातें कहीं परन्तु श्रीरामने कोई जवाब नहीं दिया, तब श्रीसीताजी हीनता और चिन्तासे भरे हुए लक्ष्मणसे बोली—'हे सौमित्रि ! ऐसे मिथ्यापवादसे कलङ्कित होकर मैं जीना नहीं चाहती। मेरे दुःखकी निवृत्तिके लिये तुम वहीं अग्नि-चिता तैयार कर दो। मेरे प्रिय पतिने मेरे गुणोंसे अप्रसन्न होकर जनसमुदायके मध्य मेरा त्याग किया है, अब मैं अग्निप्रवेश करके इस जीवनका अन्त करना चाहती हूँ।' बैदेही सीताके वचन सुनकर लक्ष्मणने कोपभरी लाज-लाज आँखोंसे एक बार श्रीरामचन्द्रकी ओर देखा, परन्तु रामकी हृदिके अर्धवत् रहनेवाले लक्ष्मणने आकार और संकेतसे श्रीरामकी हल समझकर उनकी इच्छानुसार चिता तैयार कर दी। सीताने प्रज्वलित अग्निके पास जाकर देवता और माझणोंको प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर कहा—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

यथा मां शुद्धचारित्र्यां दुष्टां जानाति राघवः ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

(वा० ग० ६।११६।२५-२६)

'हे सर्वलोक-साक्षी अग्निदेव ! यदि मेरा मन कभी भी श्रीरामचन्द्रसे चलायमान न हुआ हो तो तुम मेरी रक्षा करो। मेरा चरित्र शुद्ध होनेपर भी श्रीरामचन्द्र मुझे पुष्ट मानते हैं। यदि मैं बाल्यमें शुद्ध हूँ तो हे देव ! तुम मेरी रक्षा करो।'।

इतना कहकर अग्निके प्रवर्धिणा कर सीता निःशोक



इससे अग्निमें प्रवेश कर गयी। सब ओर हाहाकार मच गया। ब्रह्मा, शिव, कुबेर, इन्द्र, धर्मराज और वरुण आदि देवता आकर श्रीरामको समझाने लगे। ब्रह्माजीने बहुत कुछ रहस्यकी बातें कही।

इतनेमें सर्वलोकोंके साथी भगवान् अग्निदेव सीताको गोदमें लेकर अकस्मात् प्रकट हो गये और वैदेहीको श्रीरामके प्रति अर्पण करते हुए बोले—

एषा ते राम ! वैदेही पापमस्यां न दिक्षते ॥  
नैव बाष्पा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।  
मुमुक्षा वृत्तशौटीयं न त्वामत्यचरन्मुखा ॥  
रावणेनापनीतैषां वीर्योत्सिकेन रक्षसा ।  
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनात् ॥  
क्रुद्धा चान्तःपुरं गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ।  
रक्षिता राक्षसीमिश्रं घोरामिघोरैर्बुद्धिभिः ॥  
प्रलोक्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली ।  
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्रतेनान्तरात्मना ॥  
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीस्व मैथिलीम् ।  
न किञ्चिदभिधानव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥

( वा०ग० ६।११।६-११ )

'राम ! इस अपनी वैदेही सीताको ग्रहण करो। इसमें कोई भी पाप नहीं है। हे चरित्राभिमानि राम ! इस शुभलक्षणा सीताने वाणी, मन, बुद्धि या नेत्रोंसे कभी तुम्हारा उत्सर्जन नहीं किया। निर्जन वनमें जब तुम इसके पास नहीं थे तब यह बेचारी निरुत्साह और निवश थी। इसीसे बलगर्वित रावण इसे बलात्कारसे हर ले गया था। यद्यपि इसको अन्तःपुरमें रक्षित किया था और क्रूरसे क्रूर स्वभाववाली राक्षसियाँ पहरा देती थीं। अनेक प्रकारके प्रलोभन दिये जाते थे और तिरस्कार भी किया जाता था, परन्तु तुम्हारेमें मन लगानेवाली, तुम्हारे परायण हुई सीताने तुम्हारे विवाह दूसरेका कभी मनसे विचार ही नहीं किया। इसका अन्तःकरण शुद्ध है, यह निष्पाव है, मैं तुम्हें आशा देता हूँ, तुम किसी प्रकारकी भी शंका न करके इसको ग्रहण करो।'।

अग्निदेवके वचन सुनकर अर्थादायुषकोत्तम भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए, उनके नेत्र हर्षसे भर आये और उन्होंने कहा—

'हे अग्निदेव ! इसप्रकार सीताकी शुद्धि आवश्यक थी, मैं यों ही ग्रहण कर लेता तो लोग कहते कि दशरथपुत्र

राम मूर्ख और कामी है। ( कुछ लोग सीताके शीलपर भी सन्देह करते जिससे उसका गौरव घटता, आज इस अग्निपरीक्षासे सीताका और मेरा दोनोंका मुख उज्ज्वल हो गया है ) मैं जानता हूँ कि जनकमन्दिनी सीता अनन्यद्वेषा और सर्वदा मेरी इच्छानुसार चलनेवाली है। जैसे समुद्र अपनी अर्थादाका त्याग नहीं कर सकता, उसीप्रकार यह भी अपने तेजसे अर्थादामें रहनेवाली है। दुष्टात्मा रावण प्रदीप्त अग्निकी आवाजके समान अप्राप्त इस सीताका स्पर्श नहीं कर सकता था। सूर्यकान्ति-सपश-सीता मुझसे अमिश्र है। जैसे आत्मवान् पुरुष कीर्तिका त्याग नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं भी तीनों लोकोंमें विशुद्ध इस सीताका बालबमें कभी त्याग नहीं कर सकता।'।

इतना कहकर भगवान् श्रीराम प्रिया सती सीताको ग्रहणकर आनन्दमें निमग्न हो गये। इस प्रसंगसे यह सीखना चाहिये कि किसी भी हासतमें पतिपर नाराज न हो और उसे सन्तोष करानेके लिये न्याययुक्त उचित चेष्टा करे।

सीता अपने स्वामी और देवके साथ अयोध्या गृहस्थधर्म खूब आती है। बड़ी बूढ़ी स्त्रियों और सभी सासुओंके करणोंमें प्रणाम करती है। सब ओर सुलझा जाता है। जब सीता अपनी सासुओंकी सेवामें लगती है और उनकी ऐसी सेवा करती है कि सबको सुख हो जाना पड़ता है। सीताजी गृहस्थका सारा काम सुचारुरूपसे करती हैं जिससे सभी सन्तुष्ट हैं। इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि विदेशसे लौटते ही सास और सभी बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंको प्रणाम करना और सास आदिकी सच्चे मनसे सेवा करनी चाहिये, एवं गृहस्थका सारा कार्य सुचारुरूपसे करना चाहिये।

श्रीसीताजी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न समान व्यवहार इन देवोंके साथ पुत्रवत् बर्ताव करती थीं, और खानपान आदिमें किसी प्रकारका भी भेद नहीं रखती थीं। स्वामी श्रीरामके लिये जैसा भोजन बनता था ठीक वैसा ही सीताजी अपने देवोंके लिये बनाती थी। देखनेमें यह बात छोटीसी मालूम होती है किन्तु इसी बर्तावमें दोष आजानेके कारण केवल खानेकी वस्तुओंमें भेद रखनेसे आज भारतमें हजारों सम्मिश्रित कुटुम्बोंकी बुरी दशा हो रही है। सीताजीके इस बर्तावसे स्त्रियोंको खानपानमें समान व्यवहार रखनेकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

एक समय भगवान् राम गुप्तचरोंके द्वारा सीता-परित्याग

सीताके सम्बन्धमें जोकायपाद सुनकर बहुत



ही शोक करते हुए लक्ष्मणसे कहने लगे कि 'भाई ! मैं जानता हूँ कि सीता पवित्र और बशस्विनी है, लङ्का में उसने तेरे सामने जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अपनी परीक्षा दी थी और सर्वलोकसाक्षी अग्निदेवने स्वयं प्रकट होकर समस्त देवता और ऋषियोंके सामने सीताके पाप-रहित होनेकी घोषणा की थी तथापि इस लोकापवादके कारण मैंने सीताके त्यागका निश्चय कर लिया है। इसलिये तू कल प्रातःकाल ही सुमन्त सारथीके रथमें बैठाकर सीताको गंगाके उस पार तमसा-नदीके तीरपर महात्मा वाल्मीकिके आश्रमके पास निर्जन वनमें छोड़कर चला आ। तुझे मेरे चरखोंकी और जीवनकी शपथ है, इस सम्बन्धमें तू, मुझसे कुछ भी न कहना। सीतासे भी अभी कुछ न कहना।' लक्ष्मणने दुःखभरे हृदयसे मौन होकर आज्ञा स्वीकार की और प्रातःकाल ही सुमन्तसे कहकर रथ जुड़वा लिया।

सीताजीने एक बार मुनियोंके आश्रमोंमें जानेके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की थी अतएव लक्ष्मणके द्वारा वन जानेकी बात सुनकर सीताजीने यही समझा कि स्वामीने ऋषियोंके आश्रमोंमें जानेकी आज्ञा दी है और वह ऋषि-पत्नियोंको बाँटनेके लिये बहुमूल्य गहने कपड़े और विविध प्रकारकी वस्तुएँ लेकर वनके लिये बिदा हो गयी। मार्गमें अशकुन होते देखकर सीताने लक्ष्मणसे पूछा—'भाई ! अपने नगर और घरमें सब प्रसन्न तो हैं न ?' लक्ष्मणने कहा—'सब कुशल है।' यहाँतक तो लक्ष्मणने सहन किया, परन्तु गंगाके तीरपर पहुँचते ही मर्मवेदनासे लक्ष्मणका हृदय भर आया और वह दीनकी भाँति फूट फूटकर रोने लगा। संयमशील धर्मज्ञ लक्ष्मणको रोते देखकर सीता कहने लगी—'भाई ! तुम रोते क्यों हो ? हमलोग गंगातीर ऋषियोंके आश्रमोंके समीप आ गये हैं, वहाँ तो हर्ष होना चाहिये तुम उफ्टा खेद कर रहे हो। तुम तो रात-दिन श्रीराम-चन्द्रजीके पास ही रहते हो, क्या दो रात्रिके बियोगमें ही शोक करने लगे ? हे पुरुषभेद ! मुझको भी राम प्राणवधिक प्रिय है, पर मैं तो शोक नहीं करती, इस लक्ष्मणको छोड़ो और गंगाके उसपार चलकर मुझे तपस्विनोंके दर्शन कराओ। महात्माओंको भिन्न भिन्न वस्तुएँ बाँटकर और बयापोन्य उनकी पूजाकर एक ही रात रह हम लोग वापस लौट आवेंगे। मेरा मन भी कमलनेत्र, सिंहसदृश बलःस्थलवाले, आनन्ददाताओंमें ओह श्रीरामको देखनेके लिये उतावला हो रहा है।'।

लक्ष्मणने इन बचनोंका कोई उत्तर नहीं दिया और सीताके साथ नौकापर सवार हो गंगाके उस पार पहुँचकर फिर उच्च स्वरसे रोना शुरू कर दिया। सीताजीके बारम्बार पूछने और आज्ञा देनेपर लक्ष्मणने सिर नीचा करके गङ्गा बाड़ीसे लोकापवादका प्रसंग बर्णन करते हुए कहा—'सीते ! तुम निर्दोष हो, किन्तु श्रीरामने तुमको त्याग दिया है। अब तुम श्रीरामको हृदयमें धारण करके पतिव्रतधर्मका पालन करती हुई वाल्मीकि मुनिके आश्रममें रहो।'।

लक्ष्मणके इन वाक्य बचनोंको सुनते ही सीता मूर्छित-सी होकर गिर पड़ी। बोधी देर बाद होश आनेपर रोकर विलाप करने लगी और बोली—'हे लक्ष्मण ! विधाताने मेरे शरीरको दुःख भोगनेके लिये रचा है। मालूम नहीं, मैंने कितनी जोड़ियोंको बिभुकाया था जिससे आज मैं शुद्ध आचरणवाली सती होनेपर भी धर्मात्मा प्रियपति रामके द्वारा त्यागी जाती हूँ। हे लक्ष्मण ! पूर्वकालमें जब मैं वनमें थी तब तो स्वामीकी सेवाका सौभाग्य मिलनेके कारण वनके दुःखोंमें भी सुख मानती थी, परन्तु हे सौम्य ! अब प्रियतमके बियोगमें मैं आश्रममें कैसे रह सकूँगी ? जन्म-दुःखिनी मैं अपना दुखड़ा किसको सुनाऊँगी ? हे प्रभो ! महात्मा, ऋषि, मुनि जब मुझे यह पूछेंगे कि तुमको श्रीरघुनाथजीने क्यों त्याग दिया, क्या तुमने कोई बुरा कर्म किया था ? तो मैं क्या जवाब दूँगी। हे सौमित्रे ! मैं आज ही इस भागीरथीमें डूबकर अपना प्राण दे देती, परन्तु मेरे अन्दर श्रीरामका वंश-बीज है, यदि मैं डूब सकूँ तो मेरे स्वामी का वंश नारा हो जायगा। इसीलिये मैं मर भी नहीं सकती हे लक्ष्मण ! तुमको राजाज्ञा है तो तुम मुझ अभागिनी को यहीं छोड़कर चले जाओ परन्तु मेरी कुछ बातें सुनते जाओ।

'मेरी ओरसे मेरी सारी सासुओंका शय जोड़कर चरख-बन्दन करना और फिर महाराजको मेरा प्रणाम कहकर कुशल पूछना। हे लक्ष्मण ! सबके सामने सिर नचाकर मेरा प्रणाम कहना और धर्ममें सदा सावधान रहनेवाले महाराजसे मेरी ओरसे यह निवेदन करना—

जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्वेन राघव !

यकथा च परया युका हिता च तव नित्यशः ॥

अहं त्यक्ता च ते वीर अयशो भीरुणा जने ।

यच्च ते वचनीयं स्यादपवादः समुत्थितः ॥

मया च परिहर्तव्यं त्वं हि मे परमा गतिः ।  
वक्तव्यश्चैव नृपतिर्धर्मेण सुसमाहितः ॥  
यथा आतृषु वर्तयास्तथा पौरेषु नित्यदा ।  
परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥  
यत्तु पौरजनं राजन् धर्मेण समवाप्नुयान् ।  
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥  
यथाऽपवादः पौराणां तथैव रघुनन्दन ।  
पतिर्हि देवता नार्य्याः पतिर्वन्धुः पतिर्गुरुः ॥  
प्राणैरपि प्रियं तस्मात्परीः कार्यं विशेषतः ।

(बा० रा० ७।४८।१२-१८)

‘हे राघव ! आप जिस प्रकार मुझको तत्त्वसे शुद्ध समझते हैं उसी प्रकार नित्य अपनेमें भक्तिवाली और अनुरक्तचित्त-वाली भी समझियेगा । हे वीर ! मैं जानती हूँ कि आपने लोकापवादको दूर करने और अपने कुलकी कीर्ति कायम रखनेके लिये ही मुझको त्याग दिया है परन्तु मेरे तो आप ही परमपति हैं । हे महाराज, आप जिस प्रकार अपने भाइयोंके साथ बर्ताव करते हैं, प्रजाके साथ भी वही बर्ताव कीजियेगा । हे राघव, वही आपका परम धर्म है, और इसीसे उत्तम कीर्ति मिलती है । हे स्वामिन् ! प्रजापर धर्मयुक्त शासन करनेसे ही पुण्य प्राप्त होता है । अतएव ऐसा कोई बर्ताव न कीजियेगा जिससे प्रजामें अपवाद हो, हे रघुनन्दन ! मुझे अपने शरीरके लिये तनिक भी शोक नहीं है, क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम देवता है, पति ही परम बन्धु है और पति ही परम गुरु है । नित्य प्राणाधिक-प्रिय पतिकी प्रिय कार्य करना और उसीमें प्रसन्न रहना, स्त्रीका वह स्वाभाविक धर्म ही है ।’ क्या ही मार्मिक शब्द हैं ! धन्य सती सीता, धन्य धर्मप्रेम और प्रजावत्सलता ! धन्य भारतका सतीधर्म, धन्य भारतीय देवियोंका अपूर्व त्याग ।’

सीताजी कहने लगी—‘हे लक्ष्मण, मेरा वह सन्देश महाराजसे कह देना । भाई ! एक बात और है, मैं इस समय गर्भवती हूँ, तुम मेरी ओर देखकर इस बातका निश्चय करते जाओ, कहीं संसारमें लोग यह अपवाद न करें कि सीता वनमें जाकर सन्तान प्रसव करती है ।’

सीताके इन वचनोंको सुनकर दीनचित्त लक्ष्मण व्याकुल हो उठे और सिर झुकाकर सीताके पैरोंमें गिर फुफकार मार-कर झोर झोरसे रोने लगे । फिर उठकर सीताजीकी प्रवृत्ति की और दो बड़ीतक ध्यान करनेके बाद बोले—‘माता, हे पाचरहिता सीते, तुम क्या कह रही हो ? मैंने आजतक

तुम्हारे चर्योंका ही दर्शन किया है, कभी स्वरूप नहीं देखा । आज भगवान् रामके परोक्षमें तुम्हारी ओर कैसे ताक सकता हूँ ।’ तदनन्तर प्रणाम करके वह रोते हुए नावपर सवार होकर बौट गये और इधर सीता,—दुःखभारसे पीड़िता आदर्श पतिव्रता सती सीता—अरबबमें गला काढ़कर रोने लगी । सीताजीके रुदनको सुनकर वाल्मीकिजी उये अपने आश्रममें ले गये ।

इस प्रसंगसे जो कुछ सीखा जा सकता है वही भारतीय देवियोंका परम धर्म है । सीताजीके उपर्युक्त शब्दोंका नित्य पाठ करना चाहिये और उनके रहस्यको अपने जीवनमें उतारना चाहिये । लक्ष्मणके बर्तावसे भी हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पदमें माताके समान होनेपर भी पुरुष किसी भी स्त्रीके अङ्ग न देखे । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने अङ्ग किसीको न दिखावें । वाल्मीकिजीके आश्रममें सीता अधिकी आशासे अन्तःपुरमें अचिपत्नीके पास रही, इससे यह सीखना चाहिये कि यदि कभी दूसरोंके घर रहने का अवसर आवे तो स्त्रियोंको अन्तःपुरमें रहना चाहिये और इसी प्रकार किसी दूसरी स्त्रीको अपने यहाँ रखना हो तो स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें ही रखना चाहिये ।

जो स्त्री अपने धर्मका प्राणपनसे पालन करती है, अन्तमें उसका परिणाम अष्टा

ही होता है । जब भगवान् श्रीरामचन्द्र अरबमेघ यज्ञ करते हैं और लव-कुशके द्वारा रामायणका गान सुनकर मुग्ध हो जाते हैं तब लव-कुशकी पहचान होती है और श्रीरामकी आशासे सीता वहाँ बुलायी जाती है । सीता श्रीरामका ध्यान करनी हुई सिर नीचा किये हाथ जोड़कर वाल्मीकि अधिके पीछे-पीछे रोती हुई आ रही है । वाल्मीकि मुनि सभामें आकर जो कुछ कहते हैं उससे सारा लोकापवाद मिट जाता है और सारा देश सीतारामके जयजयकारसे ध्वनित हो उठता है । वाल्मीकिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहते हुए यहाँतक कह डाला कि ‘मैंने हजारों वर्षोंतक तप किया है, मैं उस तपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि सीता दुष्ट आचरणवाली हो तो मेरे तपके सारे फल नष्ट हो जायें । मैं अपनी दिव्यदृष्टि और ज्ञानदृष्टिद्वारा विश्वास दिलाता हूँ कि सीता परम शुद्धा है ।’ वाल्मीकिकी प्रतिज्ञाको सुनकर और सीताको सभामें आयी हुई देखकर भयवान् श्रीराम गदगद हो गये और कहने लगे कि ‘हे महाभाग, मैं जानता हूँ कि जानकी शुद्धा है, लव-कुश मेरे ही पुत्र हैं, मैं राजधर्म-पालनके लिये

ही प्रिया सीताका त्याग करनेको बाध्य हुआ था। अतएव आप मुझे बसा करें !

उस सभामें ब्रह्मा, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वदेव, वायु, साध्य, महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्ध आदि बैठे हुए हैं, उन सबके सामने राम फिर यह कहते हैं कि 'इस जगत्में वैदेही शुद्ध है और इसपर मेरा पूर्ण प्रेम है— 'शुद्धायां जगते मध्ये वैदेहां प्रीतिरस्तु मे ।' इतनेमें कायायक धारय किन्ने हुए सती सीता नीची गर्दनकर श्रीरामका ध्यान करती हुई भूमि की ओर देखने लगी और बोली—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥  
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥  
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेत्ति रामात्परं न च ।  
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥

(बा० रा० ७।९७।१५-१७)

'यदि मैंने रामको छोड़कर किसी दूसरेका कर्मी मनसे भी चिन्तन न किया हो तो हे माधवी देवी, तू मुझे अपनेमें ले ले, हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे । यदि मैंने मन, कर्म और वाचीसे केवल रामका ही पूजन किया हो तो हे माधवी देवी, मुझे अपनेमें ले ले, हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे । यदि मैं रामके सिवा और किसीको भी न जानती होऊँ यानी केवल रामको ही भजनेवाली हूँ वह सत्य हो तो हे माधवी देवी, मुझे अपनेमें स्थान दे और हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे ।'

इन तीन शपथोंके करते ही अकस्मात् धरती फट गयी, उसमेंसे एक उत्तम और दिव्य सिंहासन निकला, दिव्य सिंहासनको दिव्य देह और दिव्य वस्त्राभूषणवारी नागोंने अपने मस्तकपर उठा रक्खा था और उसपर पृथ्वी देवी बैठी हुई थीं। पृथ्वीदेवीने सीताका दोनों हाथोंसे आखिजन किया और 'हे पुत्री तेरा कल्याण हो' कहकर उसे गोदमें बैठा लिया। इतनेमें सबके देखते-देखते सिंहासन रसातलमें प्रवेश कर गया। सती सीताके अवतरणकरसे त्रिभुवन भर गया !

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'भगवान् श्रीराम सीता-परित्यागके हेतु बड़े दयालु और न्यायकारी थे, उन्होंने निर्दोष जानकर भी सीताका त्याग क्यों किया।' इसमें प्रधानतः निम्नलिखित तीन कारण हैं, इन

कारणोंपर ध्यान देनेसे सिद्ध हो जायगा कि रामका यह कार्य सर्वथा उचित था—

१-रामके समीप इसप्रकारकी बात आयी थी—

अस्माकमपि दारिण्यं सहनीयं भविष्यति ।

यथा हि कुस्ते राजा प्रजा तमनुवर्तते ॥

-कि 'रामने रावणके घरमें रहकर आयी हुई सीताको घरमें रख लिया इसलिये अब यदि हमारी जियाँ भी दूसरोंके यहाँ रह आवेगी तो हम भी इस बातको सह लेंगे, क्योंकि राजा को कुछ करता है प्रजा उसीका अनुसरण करती है।' प्रजाकी इस भावनासे भगवान्ने यह सोचा कि सीताका निर्दोष होना मेरी बुद्धिमें है। साधारण लोग इस बातको नहीं जानते। वे तो इससे यही शिका लेंगे कि परपुरुषके घर बिना बाधा की रह सकती है, ऐसा होनेसे की-धर्मबिस्तृत किगड़ जायगा, प्रजामें वर्णसङ्करताकी वृद्धि होगी, अतएव प्रजाके धर्मकी रक्षाके लिये प्राणधिका सीताका त्याग कर देना चाहिये। सीताके त्यागमें रामको बड़ा दुःख था, उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था। उनके हृदयकी दशाका पूरा अनुभव तो कोई कर ही नहीं सकता, किन्तु वाल्मीकि रामायण और उत्तररामचरितको पढ़नेसे किञ्चित् विद्वान् हो सकता है। श्रीरामने यहाँ प्रजाधर्मकी रक्षाके लिये व्यक्ति धर्मका बलिदान कर दिया। प्रजारंजनके यज्ञानलमें आत्म-स्वरूपा सीताकी आहुति दे डाली ! इसने उनके प्रजाप्रेमका पता लगता है। सीता राम हैं और राम सीता हैं, शक्ति और शक्तिमान् मिलकर ही जगत्का नियन्त्रण करते हैं, अतएव सीताके त्यागमें कोई आपत्ति नहीं। इस लोकसंग्रहके हेतुसे भी सीताका त्याग उचित है।

२-चाहे थोड़ी ही संख्यामें हो सीताका कृत्रिम अपवाद करनेवाले लोग थे। यह अपवाद त्यागके बिना मिट नहीं सकता था और यदि सीता वाल्मीकिके आश्रममें रहकर वाल्मीकिके द्वारा प्रतिज्ञाके साथ शुद्ध न कर्दी जाती और पृथ्वीमें न समाती तो शायद यह अपवाद मिटता भी नहीं, सम्भव है और बढ़ जाता, और सीताका नाम आज जिस भावसे लिया जाता है शायद वैसे न लिया जाता इस हेतुसे भी सीताका त्याग उचित है।

३-सीता श्रीरामकी परमभक्ता थी, उनकी आज्ञिता थी, उनकी परम प्यारी अर्द्धाङ्गिनी थी, ऐसी परमपुनीता सतीको निष्ठुरताके साथ त्यागनेका दोष भगवान् श्रीरामने अपने ऊपर इसीलिये ले लिया कि इससे सीताके गौरवकी वृद्धि हुई, सीताका कृत्रिम कलह भी मिट गया और सीता





पुण्ड्रिकाक्षं शरणागतम् ।

एकदा कीदृशितं स्वभोगं समन्वितम् । एकान्तं दिव्यं भवते सुखाभासं स्वत्तमम् ॥

नीलमार्जक्य-संकाशं दिव्याभरणं धृतिमम् । प्रमत्त-वन्दनं शान्तं त्रिदशैश्वर्यं निभावरम् ॥

सीता कमलपद्मा श्रीमन्महाभारतम् ॥

जगत्पूज्या बन गयी। भगवान् अपने भक्तोंका गौरव बढ़ाने-के लिये अपने ऊपर दोष ले लिया करते हैं और यही वहाँ-पर भी हुआ।

४-अवतारका लीलाकार्य प्रायः समाप्त हो चुका था, देवतागण सीताको इस बातका सङ्केत कर गये थे। अथात्म-रामायणमें लिखा है कि 'वराहज्जर वर्षतक माया-मनुष्यरूप-धारी भगवान् विधिपूर्वक राज्य करते रहे और सब जोग उनके चरणकमलोंको पूजते रहे। भगवान् श्रीराम राजर्षि परमपवित्र एकपत्नीव्रती थे और लोकसंग्रहके लिये गृहस्थके सब धर्मोंका यथाविधि पालन करते थे। पतिप्राणा सीताजी प्रेम, अनुकूल आचरण, नम्रता, इन्द्रियोंका दमन, सजा और प्रतिकूल आचरणमें भय आदि गुणोंके द्वारा भगवान्का भाव समझकर उनके मनको प्रसन्न करती थी। एक समय श्रीराम पुष्प-वाटिकामें बैठे हुए थे और सीताजी उनके कोमल चरणोंको दबा रही थीं। सीताने एकान्त देखकर भगवान्से कहा कि हे देवदेव ! आप जगत्के स्वामी, परमात्मा, सनातन, सच्चिदानन्दचन और आदिमध्यान्तरहित तथा सबके कारण हैं। हे देव, उस दिन इन्द्रादि देवताओंने मेरे पास आकर स्तुति करते हुए यह कहा कि 'हे जगन्माता, तुम भगवान्की चित्-शक्ति हो, तुम पहले वैकुण्ठ पधारनेकी कृपा करो तो भगवान् राम भी वैकुण्ठ पधारकर हम लोगोंको सनाथ करेंगे।' देवताओंने जो कुछ कहा था सो मैंने निवेदन कर दिया है। मैं कोई आज्ञा नहीं करती आप जैसा उचित समझें वैसा करें।' वृणभर सोचकर भगवान्ने कहा कि—

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते ।  
कल्पयित्वा मिसं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम् ॥  
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद्वीत इवापरः ।  
अविष्यतः कुमारौ द्वौ बल्मीकेराश्रमान्तिके ॥  
इदानीं हृदयते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ।  
लोकानां प्रत्यर्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात् ॥  
भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यासि द्रुतम् ।  
पश्चादहं गमिष्यामि एव एव सुनिश्चयः ॥

(अध्यात्मरामायण)

'हे देवि, मैं सब कुछ जानता हूँ और तुमको एक उपाय बतलाता हूँ। हे सीते, मैं तुम्हारे लोकापवादका बहाना रखकर साधारण मनुष्यकी तरह लोकापवादके भयसे तुमको वनमें त्याग दूँगा। वहाँ बाल्मीकिके आश्रममें तुम्हारे दो पुत्र होंगे, क्योंकि इस समय तुम्हारे गर्भ है। तदनन्तर तुम मेरे पास आ

लोगोंको विश्वास दिलानेके लिये बड़े आदरसे-शपथ का पृथ्वीके विवरमें प्रवेशकर तुरन्त वैकुण्ठको चली जाओगी और पीछेसे मैं भी जा जाऊँगा। यही निश्चय है।' यह भी सीताके त्यागका एक कारण है।

५-पूर्वकावमें एक समय युद्धमें देवताओंसे हारकर भागे हुए वैद्य ऋगुजीकी स्त्रीके आश्रयमें चले गये और ऋचि-पत्नीसे अभय प्राप्तकर निर्भय हो वहाँ रहने लगे थे। दैत्योंको ऋगुपत्नीने आश्रय दिया।' इस बातसे कुपित होकर भगवान् विष्णुने उसका चक्रसे सिर काट डाला था। पत्नीको इसप्रकार मारे जाते देखकर ऋगुपत्नीने क्रोधमें हतज्ञान होकर भगवान्को शाप दिया था कि 'हे जनार्दन ! आपने कुपित होकर मेरी अव्यय पत्नीको मार डाला इसलिये आपको मनुष्यलोकेमें जन्म लेना होगा और दीर्घकालतक पत्नी-वियोग सहना पड़ेगा।' भगवान्ने लोकहितके लिये इस शापको स्वीकार किया और उसी शापको सत्य करनेके लिये अपनी अभिन्न शक्ति सीताको लीलासे ही वनमें भेज दिया।

इत्यादि अनेक कारणोंसे सीताका निर्वासन रामके लिये उचित ही था। असली बात तो यह है कि भगवान् राम और सीता साक्षात् नारायण और शक्ति हैं। एक ही महान् तत्त्वके दो रूप हैं। उनकी लीला वे ही जानें, हम लोगोंको आलोचना करनेका कोई अधिकार नहीं। हमें तो चाहिये कि उनकी दिव्य लीलाओंसे लाभ उठावें और अपने मनुष्य-जीवनको पवित्र करें।

मानवलीलामें श्रीसीताजी इस बातको प्रमाणित कर गयी कि बिना दोष भी यदि स्वामी स्त्रीको त्याग दे तो स्त्रीका कर्तव्य है कि इस विपत्तिमें दुःखमय जीवन बिताकर भी अपने पातिव्रतधर्मकी रक्षा करे, परिणाम उसका कस्याण ही होगा।

उपसंहार सत्य और न्याय अन्तमें अवश्य ही शुभ फल देंगे, सीताने अपने जीवनमें कठोर परीक्षाएँ

देकर जीमात्रके लिये वह मर्यादा स्थापित कर दी कि जो स्त्री आपत्तिकालमें सीताकी भाँति धर्मका पालन करेगी उसकी कीर्ति संसारमें सदाके लिये प्रकाशित हो जायगी। सीतामें पतिभक्ति, सीताका अरत-लक्ष्मण और शत्रुमके साथ निर्दोष वात्सल्य-प्रेम, सासुराज्योंके प्रति सेवाभाव, सेवकोंके साथ प्रेमका वर्ताव, नैहर और ससुरालमें सबके साथ आदर्श प्रीति और सबके सम्मान करनेकी चेष्टा, ऋचियोंकी सेवा, लव-कुश जैसे वीर पुत्रोंका मातृत्व, उनको शिक्षा देनेकी

पटुता, साहस, चैर्य, तप, वीरत्व और आदर्श धर्मपरायणता आदि सभी गुण पूर्णविकसित और सर्वथा अनुकरणीय हैं। हमारी जो माताएँ और बहनें प्रमाद, मोह और आसक्तिको त्यागकर सीताके चरित्रका अनुकरण करेंगी उनके अपने कल्याणमें तो शङ्का ही क्या है, वे अपने पति और पुत्रोंको भी तार सकती हैं। अधिक क्या, जिसपर उनकी क्या हो जायगी उसका भी कल्याण होना सम्भव है। ऐसी सती-शिरोमणि पतिव्रता की दर्शन और पूजनके योग्य है। मनुष्यों-के द्वारा ही नहीं बल्कि देवताओंके द्वारा भी वह पूजनीय है और अपने चरित्रसे त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली है।

यद्यपि श्रीसीताजी साक्षात् भगवती और परमात्माकी शक्ति भी तथापि उसने अपने मनुष्य जीवनमें लोकशिक्षा-

के लिये जो चरित्र किये हैं वे सब ऐसे हैं कि जिनका अनुकरण सभी किया कर सकती हैं। संसारकी सर्वाङ्गके लिये ही सीता-रामका अवतार था। अतएव उनके चरित्र और उपदेश अलौकिक न होकर ऐसे व्यावहारिक थे कि जिनको काममें लाकर हमलोग लाभ उठा सकते हैं। जो भी या पुरुष यह कहकर कर्तव्यसे छूटना चाहते हैं कि 'श्रीसीता-राम साक्षात् शक्ति और ईश्वर थे हम उनके चरित्रोंका अनुकरण नहीं कर सकते।' वे कायर और अभक्त हैं। वे श्रीरामको ईश्वरका अवतार केवल कथनभरके लिये ही मानते हैं। सबे भक्तोंको तो श्रीरामसीताके चरित्रका यथार्थ अनुकरण ही करना चाहिये।

## रामचरित-मानस

( १ )

मुर और अमुरोंको सङ्गरमें लीन देखि,  
कौकिला कन्यानिधि औ परियाँ सुरेशकी ;  
द्राक्षा रसाल मधु, मिष्ट स्वादु सर्पिषादि ,  
सुर-नर-नारियाँ औ बाँमुरी ब्रजेशकी ।  
भारती सुकवियोंकी मनुहार दम्पतिकी ,  
सम्पति उदारचेता निपुण नरेशकी ;  
कण्ठके परस्पर विमर्श उक्त मण्डलीने ,  
लूट ली पिबूष-सी मुमम्पदा जनेशकी ।

( २ )

बारि-निधि-मन्थनके बाद यहि भौंति अहो ,  
अवलोकि दयनीय दुर्दशा रसेशकी ;  
भरि आर्यो अँखें करुणाकी मञ्जु मातियोंसे ,  
दयासिन्धु विद्यानिधि तुरुमी द्विजेशकी ।  
मुधाको एकत्र करनेकी भव्य-भावनासे -  
प्रेरित हो पाकर मु-आशिस मंहेशकी ;  
'मानस-मरोवर' में रस बरसाने लगे ,  
लेकर करोंमें वर वर्णिका गणेशकी ।

( ३ )

कौयलकी काकली सुरीले स्वर परियोंके ,  
कैकीके मधुर नृत्य चन्द्रिका निशेशकी ;  
बंशीके मोहन गुण मुधा नारि अधरकी ,  
शागदाके सदनकी सम्पति धनेशकी ।  
जननीके क्षिप्र-झंझ दाताकी उदारतादि ,  
सकल सकेलि अमी-मूरत विशेषकी ;  
भव-निधि-पोत सोई रचना है मानसकी ,  
तुलसीकी कृतिपै है स्वीकृति उमेशकी ।

सुधानन्दसिंह 'सर्वेश'

## रामायणमें भरत

( लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्रामजी शास्त्री )



रामायणमें भरतका एक विशेष स्थान है। यदि यह कहा जाय कि रामायणके पात्रोंमें भरतका चरित्र सबसे अधिक उज्ज्वल है तो कोई आपत्ति नहीं। भरतने जितनी प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना किया—और जिस धैर्य तथा साहसके साथ किया—उतना कोई दूसरा कर सकता, इसमें सन्देह ही है। जितनी परीक्षाएं भरतने दी उतनी यदि किसी दूसरेके सामने आयी होतीं तो होश मारे जाते। भरतके चरित्रका मनन करनेसे प्रतीत होता है कि वह विपत्तियोंके महासागरमें अविकम्पितरूपसे स्थिर रहनेवाले महाशैल हैं। भरतके मनको बिगानेके लिये संसारकी बड़ीसे बड़ी शक्ति बेकार सिद्ध होती है और भरतको लुभानेके लिये मायाके ऊँचेसे ऊँचे सम्मोहन अथ निकम्मे ठहरते हैं। दुनियाँ एक ओर है और भरत एक ओर हैं। एक ओर प्रलोभनोंके विराट् शैलकी चकाचौंध है और दूसरी ओर विपत्तियोंका अपार सागर है। घरके सब सगेसम्बन्धी उन्हें उनका हित सुझा रहे हैं। उनके जन्मसे ही पहले, उनकी माता कैकेयीके विवाहसे भी पूर्व, उनके नानाने महाराज दशरथसे प्रतिज्ञा कराही थी कि कैकेयीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा। इसी शर्तपर कैकेयीका विवाह हुआ था। दशरथने अपने कामीपनके कारण यह शर्त मंजूर कर ली थी। आज उनका वह मनोरथ सफल हुआ था। मन्थराके उपदेशसे कैकेयीने इस विरोधित मनोरथके लिये घरमें 'महाभारत' मचा दिया था। एक प्रकारसे भरतके मार्गके काँटे—राम—को जड़से उखाड़ फेंका था। नाना, मामा आदि सबके सब राज-कार्यके तबुर्बेकार और भरतके हठरहसे मददगार थे। १४वर्षका समय भी कम नहीं होता। इतने समयमें भरत प्रजाको अच्छी तरह काबूमें कर सकते थे। यदि कोई अड़चन होती तो उनके सहायक भी कम नहीं थे। यदि कोई दोष देता तो दशरथको देता जिन्होंने अनुचित शर्तपर शाही की थी। आखिर भरतका इसमें क्या दोष था? वह अपने 'जन्म-सिद्ध अधिकार' को कैसे छोड़ें? फिर कैकेयीको मिले वरदान भी तो कम न थे!

माना कि राम, लक्ष्मणको महर्षि विश्वामित्रने जो

दिव्यास्त्र दिये थे वे भरतके पास नहीं थे। हम थोड़ी देरके लिये यह भी मान लेते हैं कि यदि राम-लक्ष्मणके साथ भरतका संग्राम किए जाता तो शायद भरत हार जाते, परन्तु इस संग्रामका अवसर ही कैसे आ सकता था? राम लड़ते भी कैसे? भरतको राज्य देकर पिता दशरथने अपनी प्रतिज्ञा—चाहे अनिच्छापूर्वक ही सही—पूरी की थी इसीके कारण, सबके समझानेपर भी रामने राज्य छोड़कर बनका रास्ता लिया था। धर्मात्मा रामने पिताको अधर्म और असत्यसे बचानेके लिये राज्य छोड़ा था। फिर राम किस बहाने इस राज्यके लिये युद्ध लड़ सकते थे?

शायद कोई कहे कि १४ वर्ष वनवासके अनन्तर राम अपने राज्यके लिये लड़ सकते थे, परन्तु यह ठीक नहीं है। १४ वर्षके समयकी शर्त 'राम-वनवास' के साथ लगायी गयी थी, भरत-राज्यके साथ नहीं। कैकेयीने जो दो वरदान माँगे थे, उनमें यह नहीं था कि भरत १४ वर्ष राज्य करें और बादमें आफ्न राम राज्य ले लें। उसने साफ कहा था कि 'भरतका राज्य हो—बिना किसी शर्तके—और राम १४ वर्ष वनमें रहें' यदि १४ वर्षके बाद राम चाहते तो नगरमें आ सकते थे, लेकिन राज्य वह कभी नहीं ले सकते थे। कैकेयीकी राजनीतिक गुरु मन्थरा इतनी भोली नहीं थी जो ऐसी कभी बात सिखाती, और न कैकेयीके पिताने ही ऐसी कमजोर शर्त की थी। वात्सीकिने मन्थराकी उक्ति इसप्रकार लिखी है—

तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।

प्रजाजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥

चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रजाजिते वनम्।

प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति॥

( वा० रा० २।९।२०-२१ )

'भरतका राज्य और रामका १४ वर्षका वनवास वरदानमें माँगे। १४ वर्षतक जब राम वनवासी रहेंगे तो इतने दिनोंमें 'पुत्र'—भरत—प्रजाका स्नेह-भाजन हो जायगा और प्रजाके हृदयमें स्थान पा लेनेपर वह—भरत—स्थिर हो जायगा। फिर उसका राज्य किसीके हिलाये न हिलेगा।' इससे स्पष्ट है कि १४ वर्ष वनवासकी शर्त सिर्फ इसलिये की गयी थी कि इतने समयमें भरतका राज्य



स्थिर हो जाय, वह प्रजाका हृदय अपने वशमें कर सके और उनके विरोधी राम इतने समबलक प्रजाकी छाँसोंके आगे से एकदम हटा दिये जायें—जिससे जोगोंका स्नेह उनके ऊपरसे एकदम हट जाय। १४ वर्षके बाद रामको राज्य सौदा देनेकी न कोई बात थी, न हो ही सकती थी। इस वशमें भरतको रामसे या उनके दिव्याङ्गोंसे कोई बर नहीं था। रामको यदि क्रोध करना या खड़ना या तो अपने पितासे निवृत्तते, जिन्होंने उनका अधिकार नष्ट किया। भरतका इसमें क्या दोष था ? उनसे राम किस बुनियादपर बचक सकते थे ?

फलतः यह सिद्ध है कि भरतका राज्य निष्कण्टक था। उनके नाना ही इसका बीज बो रक्खा था। मन्थराने उसे अङ्कुरित और पल्लवित किया था, कैकेयीने उसे पुष्प-कल-सम्पन्न बनाया था और भरत—केवल भरत—उसके उपभोग-के अधिकारी थे। माता उन्हें राज्य दे रही थी, पिताने उन्हें राज्य देनेकी बात कहकर ही प्राण छोड़े थे, वशिष्ठ आदि समस्त ऋषिगण और मन्त्रिगण उनके राज्याभिषेककी तैयारी किये बैठे थे, तमाम सूत, मागध, बन्दी तैयार थे। सम्पूर्ण सामन्तलोग जुपचाप यह दरय देखनेको प्रस्तुत थे और सारीकी सारी आबाजबृद्ध प्रजा इसीकी आशामें थी।

यह ठीक है कि प्रजा रामको राजा देखना चाहती थी, परन्तु यह भी ठीक है कि प्रजा भरतका बहिष्कार शायद ही कर सकती जब उसे पुराने इतिहासका पता चलता—जिसके कारण भरत-को राज्य मिला था—तब वह भरतको उतना दोषी कदापि न समझती। हाँ, दशरथको भले ही दोष देती। फिर यही तो भरतका कर्तव्य था। प्रजाका रञ्जन ही तो राजाका धर्म है। उन्हें यहीपर अपनी प्रजारञ्जनात्मक समस्त शक्तियोंका परिचय देना था। यदि वह इतना भी न करते तो राज्य क्या चला सकते थे ? इसके अतिरिक्त बहुत कुछ मार्ग तो उनकी माताने ही रामको वनवास देकर साफ कर दिया था और बाकीके लिये उनके नाना-मामा कभर कसे तैयार थे। वे सब सम्हाल लेते, यदि भरत राज्याहीपर बैठकर गये होते।

इससे स्पष्ट है कि भरतने किसी राजनीतिक कारणसे राज्यका परित्याग नहीं किया। राजनीतिक कारण तो उनके राज्य खेनेके ही अनुकूल थे। अपनी दुर्बलता या अशोभ्यता-के कारण भी उन्होंने राज्य-त्याग नहीं किया था। किसीके डरसे, लोकप्रवादके भयसे, साधियोंके विरोधसे या और किसी ऐसे ही कारणसे उन्होंने राज्य नहीं छोड़ा था। वस्तुतः

भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंकी खोज करना एकप्रकार-से उनका अपमान करना है। भरत विशुद्ध भक्ति और प्रेम-के अवतार हैं। पवित्रताकी सीमा और निःस्पृहताकी जागती ज्योति हैं। उनका हृदय सत्यका केन्द्र और धैर्यका भाकर है, उनकी बुद्धि दृढ़ता और संयमकी बान है। भरत समुद्र-की भाँति अगाध और हिमालयकी भाँति अटल हैं। अपने पवित्र और निःस्पृह अन्तःकरणसे जो निष्पन्न भरत एक बार कर चुके हैं, उसे उलट देना ईश्वरके भी सामर्थ्यसे बाहर है। स्वयं रामने भी बीसों प्रकारसे भरतको राज्य खेनेके लिये बाध्य किया। पिताकी आज्ञाकी बात बताकर, धर्मकी कथा सुनाकर, प्रजाके हितकी दुहाई देकर, कैकेयीके विवाहके समय की हुई पिताकी प्रतिज्ञा और देवासुर-संग्रामके वरदानोंकी याद दिलाकर, मतलब यह कि हर तरह हिलाझुलाकर स्वयं राम भी उद्योग करके थक गये, पर भरत जो एक बार राज्य छोड़नेका संकल्प कर चुके तो फिर अपनी हठ प्रतिज्ञासे किसीके भी हठाने न हटे, न हटे, न हटे।

भरतके रोम-रोमसे प्रेम-पीयूषकी धारा बहती है। उनके अक्षर अक्षरसे भक्ति-रसका प्रवाह उमड़ने लगता है। भरत-के प्रत्येक निश्वासमें 'राम-राम'की रट है। 'मेरे तो एक राम नाम दूसरा न कोई' इस, यही भरतका मन्त्र हो रहा है। माता छोड़ी, मातृपृष्ठ छोड़ा, प्रजा छोड़ी, राज्य छोड़ा, धन दौलत छोड़ी, सुख सम्पत्ति छोड़ी, एक रामनामके पीछे भरतने सब संसार छोड़ा, अपना पराया छोड़ा, यदि न छोड़ा तो एक रामनाम। इसीसे हम कहते हैं कि भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंको हँदना उनके चरित्रका अपमान करना है। पवित्र गंगाकी धारामें शेरकी मौँद हँदना है और गन्नेके भीतर गोखरू तलाश करना है। दशरथने कैकेयीको समझाते बल्ल बहुत ठीक कहा था कि 'रामादपि हिमं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्' अर्थात् 'धर्ममें भरतको मैं रामसे भी बढ़कर समझता हूँ।' रामके बिना भरत कभी राज्य स्वीकार न करेंगे इत्यादि रामके चरित्रमें राजनीति और धर्मनीतिकी गङ्गा-यमुना मिल कर बहती है, परन्तु भरतका चरित्र तो पवित्र प्रेमकी गङ्गोत्तरी है। भरतके चरित्रको लक्ष्य करके यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं कि—

मुघातः स्वादीयश्चरितमिदमातृसिपिवतां

जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्।

हम कह चुके हैं कि जितनी प्रतिद्वन्द्व परिस्थितियोंका सामना—जिस धैर्यके साथ—भरतने किया, उस तरह—

उतनी सफलताके साथ—रामायणका कोई दूसरा पात्र कर सकता था नहीं, इसमें सन्देह ही है। कैकेयीने संसार भरका अपयश अपने सिर क्यों ज़ादा? केवल भरतके राज्यके लिये। उसने वैधव्यतकमी परवा नहीं की। समस्त प्रजा, सम्पूर्ण ऋषिमण्डल, तमाम रत्नवास, सब सामन्त कैकेयीको धूँय़ करते रहे, परन्तु उसने सबकी उपेक्षा की, क्यों? केवल भरतके लिये। सब संसारको अपना बैरी बनाया और अपने भायेपर अमिट कलंकका टीका लगाया, किस-लिये? सिर्फ़ इसीलिये। यदि राजनीतिक दृष्टिसे देखा जाय तो कैकेयीके सिवा भरतका कोई हितैषी नहीं था। उनके सगे पितातक उनके शत्रु थे। छिपकर रामका राज्याभिषेक करनेके लिये ही उन्होंने उस समय भरतको कपटसे उनके नानाके यहाँ भेजा था। दशरथने रामने साफ़ ही कहा था कि—

‘विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः ।  
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ॥’

(वा० रा० २।४।२५)

अर्थात् ‘जबतक भरत इस नगरसे बाहर हैं तभीतक तुम्हारा (रामका) राज्याभिषेक हो जाना मैं उचित समझता हूँ।’ इससे स्पष्ट है कि दशरथने भरतके साथ घात की थी और उसी का जबाब मन्थरा और कैकेयीका वह आचरण था। कौशल्याने रामके अभिषेककी बात सुनकर ‘हतास्तं परिपन्थिनः’ कहकर भरतपक्षको रामका शत्रु बताया था। इस दशामें भरतका हितचिन्तक यदि कोई था तो कैकेयी आदि ही। परन्तु इन सबको भरतकी ओरसे क्या पुरस्कार मिला, यह आगे देखिये और फिर सोचिये कि भरतके चरित्रमें कहीं राजनीतिक गन्ध भी है, या वह विद्युद्धार्मिक ही है? भरत जब नानाके यहाँसे बुलवाये गये तो सीधे कैकेयीके पास पहुँचे। नगर और राजमहलके शोकमिश्रित सन्नाटेको देखकर वह कुछ खटक तो गये ही थे, जाते ही उन्होंने दशरथ, राम आदिके सम्बन्धमें पूछताछ शुरू की।

अभिषेक्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्षयति ।  
इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयाशिषम् ॥  
तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम ।  
पितरं यो न पदयामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥  
यो मे आता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।  
तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याङ्घ्रिकर्मणः ॥  
पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।  
तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स ह्रीदानीं गतिर्मम ॥

(वा० रा० २।७२।२७-२८, ३३-३३)

अर्थात् मैं तो यह सोचकर चला था कि या तो राजा (दशरथ) श्रीरामका अभिषेक करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे। परन्तु यहाँ तो मैंने कुछ और ही देखा, जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। आज मैं अपने प्रिय और हितचिन्तक पिताजीको नहीं देख रहा हूँ। जो मेरे भाई, पिता, बन्धु आदि सब कुछ हैं, जिनका मैं दास हूँ, उन श्रीरामका पता मुझे शीघ्र बताओ। बड़ा भाई पिताके सदृश होता है, मैं रामके पैरों पड़ूँगा, आज बही मेरे लिये सब कुछ हैं।’

जब कैकेयीने कहा कि रामको बनवास दे दिया गया, तो भरत खर गये। उन्हें सन्देह हुआ कि रामसे कोई अनुचित कार्य तो नहीं हो गया जिसका यह दृष्टि मिला। लेकिन कैकेयीने बताया कि ‘यह सब कुछ मैंने तुम्हारे लिये किया है। तुम अब राजगद्दीपर बैठो’ इत्यादि। इसके उत्तरमें भरतने जो कुछ कहा है, उसमें आप भरतके हृदयका सच्चा चित्र देख सकेंगे और भरतके पवित्र चरित्रका अविकलरूप पा सकेंगे। सुनिये—

दुखी होकर भरत बोले कि ‘शोक-सन्ताप मेरे जैसा अभागा राज्य लेकर क्या करेगा, जो आज पितासे भी हीन है और पित्रतुल्य बड़े भाईसे भी हीन है। कैकेयी, तूने मुझे दुःखपर दुःख दिया, तूने मेरे कटेपर नमक छिड़का, जो राजाको मारा और रामको बनवास दिया।’

मैं समझता हूँ कि तुम्हें यह मालूम नहीं है कि मेरा रामके प्रति कैसा भाव है, इसी कारण तूने राज्यके जोभसे बह अनर्थ किया। मैं राम जन्मवाक्यके बिना किसीके बलपर राज्य करूँगा? अच्छा, यदि बुद्धि और नीतिके बलपर मैं राजकाज चला सकता हूँ तो भी मैं तेरा मनोरथ पूरा न होने दूँगा। तू अपने पुत्रको राजा देखना चाहती है, लेकिन मैं तुम्हें बह न देखने दूँगा। यदि राम तुम्हें सदा माताके तुल्य न समझते होते तो आज तुम जैसी पापिनीका त्याग करनेमें भी मुझे कोई संकोच न होता। कैकेयी, तू राज्यसे अट हो, खरी दुष्टा, क्रूर! तू धर्मसे पतित है, ईश्वर करे, मैं मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोषा करे। तू माताके रूपमें मेरी शत्रु है। तूने राज्यके जोभसे पतिकी हत्या की है। तू मुझसे बात न कर। तू बाद रख, पिता और भाईके प्रति जो तूने पाप किया है, मैं उसका पूरा प्रायश्चित्त करूँगा और अपना यश भी बड़ाऊँगा। रामको राज्य देकर मैं अपना पाप धोऊँगा और तब अपनेको कृतकृत्य समझूँगा।’

इस बर्तनमें आप देखेंगे कि कैकेयीके हृदयसे भरतको

मर्यादितक वेदना हो रही है। वह अपने राजनीतिक हितैषी-को सीधे शत्रु कहकर पुकार रहे हैं। उनका हृदय धार्मिक भावनासे परिपूर्ण है। उनको राज्य दिलानेके लिये उनकी माताने जो कार्य किया है उसे वह घोर पाप समझ रहे हैं एवं इसके प्रायश्चित्तके लिये अपनी मृत्यु तथा अपनी माताके कल्याणन्दन तककी आकाङ्क्षा कर रहे हैं। धर्ममूर्ति भरतके निष्कलमय हृदयका यह सच्चा चित्र है। इसमें धर्म, प्रेम और भक्ति जैसे पवित्र भावोंके सिवा और किसी दुर्भावकी स्थान ही नहीं है। भरतका निष्कण्ट प्रेम, निःस्वार्थ भक्ति और दम्भहीन धर्म उनके प्रत्येक वाक्यसे प्रकट होता है। वह रामके ऊपर अपनेको न्योछाकर कर चुके हैं। रामकी विरोधी अपनी माँ भी आज उनकी दृष्टिमें शत्रु है। उन्हें रामकी गद्दीपर बैठनेमें घोर दुःख और रामके चरखोंपर लोटनेमें परम आनन्द प्राप्त हो रहा है। आज वह प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि मैं माताके पापोंका प्रायश्चित्त करके बराबरी बँटूँगा। कहना नहीं होगा कि भरतने इस प्रतिज्ञाको अपनी जानपर खेलकर पूरा किया और खूब पूरा किया।

भरतने इस अवसरपर सबका सब दोष माताके ऊपर ही रक्खा है। पिता दशरथके विरुद्ध उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। वह भी भरतके चरित्रकी एक विशेषता है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नने तो बड़े स्पष्ट शब्दोंमें—चाहे परोक्षमें ही सही—दशरथको खरी-खोटी सुनायी हैं, परन्तु भरतके मुँहसे उनके लिये एक भी कटु शब्द नहीं निकला। यों तो रामकी भी पितृभक्ति आदर्श है। उचित अनुचितका विचार छोड़कर, पिताकी आज्ञाका पालन जैसा रामने किया वैसा कोई क्या करेगा ! परन्तु रामके पीछे दशरथने भी तो अपने प्रायश्चित्त गँवा दिये थे। अपनी प्राणाधिक प्रियतमा कैकेयीको भी उन्होंने रामके पीछे ही तिलाञ्जलि दी थी। यह बात कही जा सकती है कि दशरथ रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे, परन्तु भरतके सम्बन्धमें यही बात नहीं कही जा सकती। भरतके विरुद्ध दशरथने बह-यन्त्र रचा था। भरतको राज्यसे अछ करनेके लिये उन्हें कपटसे बाहर भेजा था और उनकी अनुपस्थितिमें—उनके नाना, मामा-को सूचना तक न देते हुए—घरमें चुपके चुपके रामके राज्याभिषेक की कपट-पूर्व आयोजना की थी। इससे भरतका मन मलीन हो सकता था। रामकी और उनकी दशरथमें बहुत भेद था। पिताका व्यवहार दोनोंके प्रति समान नहीं था। राम और भरतके प्रति दशरथके व्यवहारमें आकाश-पातालका अन्तर था। इस दशरथमें भरतका भाव भी बहिःकृत जाता तो

कुछ आश्चर्य न होता। आश्चर्य तो यही है कि इन सब बातोंके होते हुए भी भरत रामके समान ही पितृभक्त बने रहे। इसे देखते हुए यदि यह कहा जाय कि भरत रामसे भी बड़कर पितृभक्त थे तो कोई अत्युक्ति नहीं।

भरत रामके प्रेममें सराबोर थे। उनके सर्वस्व राम ही थे। रामके पसीनेकी जगह भरतका खून गिरनेको तैयार हो जाता था। रामका प्रेमी ही उनका प्रेमपात्र था और रामका विपक्षी उनका घोर शत्रु था। यही कारण है कि रामके प्रेममें प्राण देनेवाले पिताका कोई दोष भरतकी दृष्टिमें आया ही नहीं। उन्होंने उन सब दोषोंकी उपेक्षा कर दी, परन्तु रामका विरोध करनेवाली माँ कैकेयी उनकी आँखोंमें शुद्धी तरह लटकने लगी। भरतको राज्यकी आकाङ्क्षा कभी थी ही नहीं। वह तो रामके प्रेमके भूले थे। नानाके यहाँसे आते हुए उन्होंने यही समझा था कि शायद रामका राज्याभिषेक होगा, उसीके लिये मुझे बुलाया है। वह अपने-को राज्यका अधिकारी समझते ही नहीं थे। कैकेयीके विवाहके समय की हुई दशरथकी प्रतिज्ञाका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य ही नहीं था। वह उसे काम-अवरका प्रलाप-मात्र समझते थे और वरदानके नामपर कैकेयीका राज्य माँगना उनकी नजरमें कपट-पूर्ण अवधर्म था। वह ज्येष्ठकी राज्य-प्राप्तिको ही धर्म समझते थे। यही उन्होंने अनेक जगह कहा है। उन्हें कभी यह ध्यान ही नहीं था कि लोग—और खासकर उनके पिता ही—उन्हें रामका विरोधी समझेंगे और वह भी अधर्मपूर्वक राज्य लेनेके लिये। किः ! धर्मशास्त्रकी दृष्टिमें इसप्रकार कामावेशकी प्रतिज्ञाओंका कोई मूल्य नहीं और धर्मात्मा भरतकी दृष्टिमें भी वह प्रतिज्ञा दो कौड़ी—बल्कि उससे भी कम—की थी। पिता इसके लिये ऐसा ‘अकायड तावडव’ करेंगे इसकी उन्हें कोई सम्भावना ही नहीं थी। इन्हीं कारणोंसे धर्मात्मा भरतकी दृष्टिमें दशरथका कोई दोष नहीं आया और वह रामके समान ही पितृभक्त बने रहे। हाँ, रामकी विरोधिनी माता-को वह शत्रु समझने लगे। मन्थराको उमीनमें घसीटते हुए शत्रुघ्नका क्रोध शान्त करते समय उन्होंने यहाँतक कह डाला था कि—यदि मुझे यह डर न होता कि धर्मात्मा राम मातृघातक समझकर मेरा त्याग कर देंगे तो मैं आज इस दुष्ट कैकेयीका बध कर डालता।

हृन्ध्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।

यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥

(बा० रा० २।७।२२)

इन बातोंसे स्पष्ट है कि भरतका पवित्र हृदय रामकी भक्तिमें तल्लीन और रामके प्रेममें मग्न था। उनका यही मन्त्र था कि 'मेरे तो एक रामनाम दूसरा न कोई'।

अच्छा, अब प्रकृत बातपर ध्यान दीजिये। कैकेयीसे मिलनेपर जब भरतको सब बातें मालूम हुईं और भरतके जानेकी खबर कौसल्याके कानतक पहुँची तो वह भी सुमित्राके साथ रोती, कलपती और काँपती हुई वहीं पहुँची। अब वहींसे भरतकी कठोर परीक्षाएँ आरम्भ होती हैं। भरत इन्हें किस धैर्य और कितनी दृढ़तासे पार करते हैं, यह आप आगे देखेंगे—

भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥  
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकष्टकम् ।  
सम्प्राप्तं नत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥  
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ॥  
अथवा स्वयमेवाऽहम् ... ..  
कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि ।  
इदं हि तत्र विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् ।  
हस्त्यश्वरथसम्पूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥  
इत्यादिबहुभिर्वाक्यैः क्रूरैः संभर्म्मिनोऽनघः ।  
विव्यथे भरतस्तीव्रं त्रणे तुद्यन् सृजिना ॥  
पपात चरणौ तस्यास्तदा सम्भ्रान्तचेतनः ।  
विलम्ब बहुवाऽसंशं लम्भसंस्तदाभवत् ॥

(वा० रा० २।७५)

राम-वनवाससे व्याकुल कौसल्याकी दयनीय दशा देख कर भरतका कोमल-हृदय दुःखसे कातर हो उठा। उनका काँपना, कलपना और बिलखना देखकर भरत घबरा गये और जब उन्होंने देखा कि कौसल्या राम-वनवासका कारण उन्हीं (भरत) को समझ रही हैं तब तो उनके दुःखका पाराबार न रहा। कौसल्याके कठोर आक्षेपोंमें भरतका निष्कस्मय चित्त विचलित हो गया और वह मूर्छित होकर कौसल्याके चरणोंपर गिर पड़े। जब होशमें आये तो आँसूभरे नेत्र और गहवूँ कण्ठसे 'हा राम' 'हा राम' कहकर इधर उधर पागलोंकी भाँति ताकने लगे। उन्होंने कौसल्याको किन्नास दिखानेके लिये सैकड़ों शपथें—ऐसी ऐसी कहीं शपथें की जिनसे पत्थरका भी कल्लेजा बहल जाय—खार्ची। जिसकी अनुमति या जानकारीमें रामको वनवास हुआ हो, वह रणमें भागता हुआ मारा जाय, धोरसे धोर पापका फल उसे भोगना पड़े इत्यादि।

भरतकी इस दशाको देखकर कौसल्याके हृदयपर गहरी चोट लगी। उन्होंने स्पष्ट देखा कि भरतको रामके विशेषका दुःख उनके (कौसल्यासे) कम नहीं है और उनके अनुचित आक्षेपोंने भरतके निरपराध हृदयको व्याकुल कर दिया है। इससे कौसल्या भी घबरा गयीं और भरतको गोदमें बिठाकर स्वयं रोने लगीं। उन्होंने कहा—

मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।  
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपकरण्ति मे ॥  
दिष्टया न क्षितो धर्मादारमा ते सहलक्षणः ।  
नत सत्यप्रतिज्ञां हि सतां लोकानवाप्स्यसि ।  
इत्युक्त्वा चाङ्गमानीय भरतं आनुवत्सलम् ।  
परिव्रज्य महानाहुं करोद भृशदुःखिता ॥

(वा० रा० २।७५।६०-६२)

यह भरतकी सबसे प्रथम और सबसे कठिन परीक्षा थी। यदि उनके हृदयमें रामके प्रति अनन्त प्रेम न होता, यदि उनके व्यवहारमें विशुद्ध चार्मिकताको छोड़कर कहीं ज़रा भी राजनीतिक चालोंकी गन्ध होती तो रामकी माता-के हृदयको इतनी जल्दी दयाग्र कर लेना उनके लिये सम्भव ही नहीं था। भरतके चरित्रकी यह सर्वोत्तम विजय हुई।

कुछ तो दशरथकी प्रतिज्ञाके कारण और कुछ राम-वनवासके कारण भरतकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। बच्चा बच्चा उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगा था। पद-पदपर लोग उन्हें रामका विपक्षी समझने लगे थे। रामके एक अनन्य भक्तको इससे बढ़कर दुःख क्या हो सकता था कि एक निषादसे लेकर बड़ेसे बड़े महर्षितक, बच्चेसे लेकर बृद्धतक सभी स्त्री-पुरुष उसे शत्रुकी दृष्टिसे—रामविरोधीकी दृष्टिसे—देखने लगे।

सबसे पहले कौसल्याने उनकी परीक्षा की, उसके बाद सूत, मागध आदिका गच्छर आया, फिर सामन्त राजाधोंकी और अनन्तर वसिष्ठ आदि ऋषियोंकी बारी आयी। सभी प्रकृतियों और प्रजाने भी भरतको परखा। इन लोगोंसे जब निबटे और रामको लौटानेके अभिप्रायसे गङ्गाकिनारे पहुँचे तो निषादराज गुहने डबड़ा सन्हासा। उन्होंने जवा देखाते ही समझ लिया कि वह भरतकी सेना है और गङ्गाके उस पार अपने सब अनुचरोंको फौजी हुकूम सुना दिया। देखिये—

गुह कहते हैं, 'देखो, वह समुद्रके समान उमड़ती हुई

सेना गङ्गाके उस पार दीख रही है। रथमें कोविन्दारकी ध्वजा है। इससे स्पष्ट है कि दुर्बुद्धि भरत स्वयं आया है। अपना राज्य निष्कण्टक करनेके लिये आज यह दुष्ट रामके वधकी इच्छासे सेनासहित इधर आ रहा है। रामके बाद यह दुष्ट हमलोगोंको या तो रस्सियोंसे बाँधेगा या मरवा ही डालेगा। राम तो मेरे स्वामी भी हैं और सखा भी हैं। आज उनका काम आ पड़ा है। इस पुण्य-यज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिये हम सबलोगोंको तैयार हो जाना चाहिये। रामके काममें प्राण देनेसे बढ़कर और कौनसा पुण्य होगा ? सब कैवर्त (निषाद) लोग गङ्गाके मुहानोंको रोककर बट जाओ। पाँच सौ नावोंसे सब मार्ग रोक लो। एक-एक नावपर सौ-सौ जवान सब शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर तैयार रहो। मैं जाकर भरतका मन टडोखता हूँ। यदि उसके मनमें कोई पाप न हुआ तब तो उसकी सेना पार उतार दी जायगी, अन्यथा पहले हम सब लोग यहाँ मर मिटेंगे तब फिर रामपर आँच आयेगी। हमारे जीतेजी कोई रामका बाढ़ बाँका न कर सकेगा।'

देखा आपने ? यह माना कि निषादराज रामके अनन्य प्रेमी और भक्त थे, परन्तु देखना तो यह है कि भरतके भावको उन्होंने कितना उल्टा समझा है ? यह ठीक है कि निषादराज रामके ऊपर अपने प्राण देनेको तैयार हैं, परन्तु सोचना तो यह है कि क्या भरत भी उनके प्राण लेनेको तैयार हैं ? हमें देखना पड़ी है कि आज परिस्थिति भरतके कितनी प्रतिकूल हो उठी है। आज उनके अश्रुतमय हृदयको एक जंगली भी विषमय समझने लगा है। भरतने इसी प्रतिकूल परिस्थितिको सर्वथा अनुकूल बनानेका भीड़ा उठाया है।

निषादराज गुह भी बड़े अच्छे राजनीतिज्ञ थे। भरतकी जितनी खोद-खोदकर परीक्षा इन्होंने की उतनी किसीने नहीं की। इनकी हर एक चाखसे राजनीतिज्ञता टपकती है। अभी आप देख चुके हैं कि यह अपने अनुचरोंसे क्या कह रहे थे। अब आगे देखिये कि भरतके सामने सेंट पेश करते हुए हज़रत कैसे 'मीठी विन्नी' बने बैठे हैं—

आगम्य भरतं प्रहो गुहो वचनमब्रवीत् ॥  
निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चिताश्चापि ते वयम् ॥  
निवेदयाम ते सर्वं स्वके दासगृहे वस ।  
अस्ति मूलफलं चैतत् निषादैः स्वयमर्जितम् ॥

× × ×  
आशसे स्वाशिता सेना वस्तत्येनां विभावरीम्

( बा० रा० २।८४ )

'भरतके पास आकर बड़ी गज्रतासे 'गुह'ने कहा कि इस जङ्गलको आप अपने घर-आँगनका बगीचा समझिये। आपने हमलोगोंको सेवा करनेसे वञ्चित कर दिया। भला आपको यहाँ ठहरनेकी क्या आवश्यकता थी ? 'दासगृह'—निषाद-स्थान—सब आपहीका तो है। वहीं ठहरना चाहिये या। आपके दासोंका लाया हुआ कन्द, मूल, फल सब मौजूद है और भी जङ्गलकी छोटी बड़ी चीजें उपस्थित हैं। मैं समझता हूँ, उससे आपकी सेनाका खाना-पीना आजकी रातमें आरामसे चल सकता है' इत्यादि।

देखा आपने ? यह एक राजनीतिज्ञकी बात-चीत है। क्या इससे पता चलता है कि अभी गुह अपने घरमें क्या इन्तजाम करके आ रहे हैं ? इसी बात-चीतमें जब भरतने कहा कि 'यह जङ्गल तो बड़ा दुर्गम मालूम होता है। गङ्गाका मुहाना भी बड़ा अमानक है। तुम यह बताओ कि हम भरद्वाज मुनिके आश्रमको किस ओरसे जायें ?' इसपर गुहने कहा कि 'इस देशसे जानकारी रखनेवाले सैकड़ों निषाद तुम्हारे साथ जायेंगे। मैं भी तुम्हारे साथ चलेगा, परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारा हृदय तो शुद्ध है न ? कहीं तुम दुष्ट-भावसे भर्मात्मा रामके पास तो नहीं जा रहे हो ? तुम्हारी यह इतनी बड़ी सेना देखकर मुझे सन्देह होता है। यदि तुम्हारा हृदय दोषरहित है तो थोड़ेसे आधमी लेकर ही रामके पास जा सकते थे। इस इतनी बड़ी फौजका यहाँ क्या काम ?'

कश्चिज्ज दुष्टो ब्रजसि रामास्याह्लिष्टकर्मणः ।

इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ॥

( बा० रा० २।८५।७ )

इसपर —

तमेवमभिमाषन्तमाकाश इव निर्मलः ।

भरतः श्रुण्वा यात्रा गुहं वचनमब्रवीत् ॥

मा भूत्स कालो बत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि ।

राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः ॥

तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् ।

बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते ॥

( बा० रा० २।८५।८-१० )

स्वच्छ आकाशकी तरह निर्मल—रागद्वेषके बादलोंसे रहित भरतने बड़ी शान्तिपूर्वक मधुर भाषामें—उत्तर दिया कि 'निषादराज, वह समय न आये—मैं उस समयके लिये जीता न रहूँ—जिस अनिष्टकी तुम आशंका कर रहे हो। राम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, मैं उन्हें पिताके तुल्य समझता हूँ। उन्हें बनवाससे वापिस जानेके लिये जा रहा हूँ। मैं सत्य कहता हूँ, तुम मेरी बातको अन्याया न समझो।'।

रामके वियोगसे अति दुखी, दीन, मलीन भरतकी बातचीतसे और उनके हृत्तिसन्वेदितसे जब गुहृको निश्चय हो गया कि भरतके मनमें कोई पाप नहीं है तब वह बोले—

वन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पदयामि जगतीतले ।

अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥

शाश्वती सखु ते कीर्तिलोकाननु चरिष्यति ।

यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥

( ना० रा० २।८५।१२-१३ )

'भरत, तुम अन्य हो, तुम्हारे समान धर्मात्मा पृथ्वीपर दूसरा नहीं है जो बिना यज्ञके ही मिले हुए राज्यका त्याग कर रहे हो। तुम्हारी यह कीर्ति संसारमें अमर रहेगी जो आज तुम बनवासी रामको कहते छुड़ानेके लिये जा रहे हो।'।

यहाँ आप देखेंगे कि निषादकी कठोर बात सुनकर भी भरत अधीर नहीं हुए। उन्हें ज़रा भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने इस जंगलीकी घृष्टतासे अपना अपमान नहीं समझा। भला एक मामूली मझाहकी यह मजाज कि वह चक्रवर्तीके पुत्र भ्रातृवत्सल भरतपर सन्देह करे और तपाकसे पूछ बैठे कि 'क्योंजी, तुम्हारे मनमें कोई पाप तो नहीं है?' फिर राजकुमार इस बेहूदगीपर ज़रा भी न बिगड़े। उन्होंने इस जंगलीको 'डैमफूल' (Damfool) 'नामाकूल' आदि कुछ भी न कहा। प्रत्युत एक साधारण आदमीकी तरह गिढ़गिढ़ाकर अपनी सफ़ाई देने लगे।

भरतको सुमन्तने बता दिया था कि निषादराज रामका मित्र है। उन्होंने उसे (गुहृको) 'मम गुरोः सखे'—मेरे गुरु—राम—के मित्र कहकर सम्बोधन किया था। फिर वह उसका आचर क्यों न करते? इसके अतिरिक्त भरत अपनी परिस्थिति समझते थे। वह जानते थे कि एक गुहृ ही नहीं, बल्कि प्रजाका बचाव-बचा उन्हें सन्वेदकी दृष्टिसे देख रहा है। इसी प्रतिकूल भावनाको

बदलनेके लिये तो उनका यह प्रयास था। क्या वह काम किसीको 'डैमफूल नामाकूल' कहनेसे बन सकता था?

निषादने इतनी परीक्षासे ही भरतका पीछा नहीं छोड़ा। उसने उनकी और भी कड़ी जाँच की। लक्ष्मणके साथ इसी जगह जो गुहृकी बातचीत हुई थी और रामको पार उतारते समय जो-जो घटनाएँ घटी थीं, उनका गुहृने ऐसे मार्मिक शब्दोंमें बखान किया कि उसे सुनकर भरत भूविर्त हो गये। यदि भरतका प्रेम दिखावटी होता और उनके हृदयमें रामके प्रति ज़रा भी दुर्भाव होता तो वह निषादकी इस परीक्षामें अवश्य फेल हो जाते और चतुर राजनीतिज्ञ गुहृ इनकी असलियतको तुरन्त ताब जाता !

इसके साथ ही गुहृने इसी अवसरपर बड़ी कुशलतासे भरतको अपनी शक्तिका भी परिचय करा दिया था, उसने साफ सूचित कर दिया था कि इस घोर जङ्गलकी चप्पा-चप्पा भर जमीन मेरी मँझाई हुई है। मैं चाहूँ तो बड़ीसे बड़ी सेनाको इसमें भटका-भटकाके मार सकता हूँ। इत्यादि

यह सब बताने और सब तरह भरतकी परीक्षा कर लेनेके बाद भी गुहृने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसे इस बातसे सन्तोष नहीं हुआ कि भरतको रास्ता बतानेके लिये कुछ आदमी उनके साथ कर दे या थोड़े-से आदमी लेकर स्वयं हो चला जाय। वह अपनी समस्त फौज लेकर भरतके साथ अन्तिम स्थान तक गया।

माना कि उस समय भरतका भाव ठीक था, परन्तु ये तो वह कैकेयीके ही पुत्र। रामसे बातचीत होते होते ही कहीं मनमुटाव हो गया और किसी बातपर वहाँ खटक गयी तब ? तब क्या वह अपने 'स्वामी और सखा'—राम—को अकेले ही सेनासहित भरतसे भिड़ने देगा ? यह कैसे हो सकता है ? यह जंगलका जीव अपनेको जंगलका मालिक और आचार्य समझता है। उसके घरमें उसके मित्रकी ओर भला कोई आँख उठाकर देख सकता है ? पहले वह अपनी बोटी-बोटी फटवायेगा, बड़ी-से-बड़ी सेनाके झुके झुकायेगा, तब कहीं रामपर जाँच आयेगी। इसीलिये तो दल-बल-सहित निषादराज बड़ी सतर्कतासे भरतका पीछा कर रहे हैं। वस्तुतः निषादके चरित्रमें राजनीति-कुशलताके साथ साथ मित्र-प्रेम और स्वामि-भक्तिका सच्चा चित्र देखने को मिलता है। इसीसे तो हम कहते हैं कि भरतकी परीक्षा निषादने अितनी खोद-खोदके की उतनी किसीने नहीं की,

परन्तु भरतका चरित्र जितना-जितना अभि-परीक्षामें तपता गया, उतना ही उतना कुन्दनके समान वमकता गया।

और तो और, दूर ही बैठे बैठे सबके हृदयको परखनेकी शक्ति रखनेवाले, ऋद्धि-सिद्धि-सम्यक्, त्रिकालवर्षी महर्षि भरद्वाज भी बेचारे भरतपर चोट करनेसे न शूके। वह भरतसे पूछते हैं—

किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ।  
पतदाचक्ष्व सर्वं मे नहि मे शुच्यते मनः ॥  
सुषुप्ते यममित्रघ्नं कौसल्यानन्दवर्धनम् ।  
भ्रात्रा सह सभायोज्यं चिरं प्रव्राजितो वनम् ॥  
नियुक्तः स्त्रीनिमित्तेन पित्रा योऽसौ महायशः ।  
वनवासी भवेतीह समाः किल चतुर्दश ॥  
कश्चित् तस्याऽपापस्य पापं कर्तुमिहेच्छसि ।  
अकण्ठकं भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥

(वा० रा० २।९।१०।१२)

‘तुम तो राज्यका शासन कर रहे थे, भन्ना तुम्हारे वहाँ जानेका क्या मतलब ? मुझसे साफ साफ कहो। मेरा मन विश्वास नहीं करता। जिन बेचारे रामको खीके कहनेसे तुम्हारे पिताने भाई और खीके साथ १४ वर्ष-का वनवास दे दिया है। उन्हीं पापरहित रामके प्रति तुम अपने मनमें कुछ पाप तो नहीं रखते हो ? कहीं निष्कण्टक राज्य भोगनेकी इच्छासे उनका बच करनेके लिये ही तो तुम इतनी बड़ी सेना लेकर चढ़ाई नहीं कर रहे हो ?’

वज्रसे भी कठोर और बाणकी नोकसे भी पैने इन शब्दोंको सुनकर आतृवल्लभ भरतके कोमल मनकी क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर लें। कैसी अमानक अवस्था है ? एक सर्वज्ञ महर्षिका पवित्रात्मा भरत-पर ऐसा अनुचित सन्देह !! पूछी कट जाय, आकाश गिर पड़े, पर्वत चूर चूर हो जायें, समस्त विशाखें जल उठें और भरत उसमें समा जायें। इससमय जो दुरा भरतके हृदयकी हुई होगी उसका अन्धाका कौन लगा सकता है ? परन्तु धन्य, महात्मा भरत !! वह इस अति विक्षोभकारी विपत्ति-के समय भी उसीप्रकार दृढ़ रहे जैसे बड़ी-से-बड़ी आँधीको गंगाधिराज हिमालय धीरेसे सह लेते हैं। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि—

पवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह ।  
पर्यधुनयनो दुःखाद्वाचा संसजमानया ॥  
इतोऽस्मि यदि मांभवं भगवानपि मन्तं ।

(वा० रा० २।९।१४-१५)

भरद्वाज मुनिकी बातें सुनकर भरत दुःखसे कातर हो उठे। उनकी आँखोंमें आँसू आ गये और गला रँध गया। वह सिर्फ इतना कह सके कि ‘यदि ‘भगवान्’—त्रिकाल-वर्षी आप—भी मुझे ऐसा ही समझते हैं, तब तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं। मैं हतभाग्य बेमौत मारा गया।’

माना कि भरद्वाजने उक्त बातें सच्चे हृदयसे नहीं कही थीं। उन्होंने रामके प्रेममें आकर यह पूछा था। वाल्मीकि-ने इसका साफ निर्वेश किया है, परन्तु भरतको इसकी क्या खबर थी ? जिस आसानीसे महर्षि भरतके मनको देख सकते थे उसी आसानीसे भरतके लिये महर्षिका भ्रम परल खेना सम्भव नहीं था। हम तो समझते हैं कि भरतकी यह अति कठिन परीक्षा थी। जब वे उसमें पूरे उतरे तो महर्षि भरद्वाजने प्रसन्न होकर कहा कि—

उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतं वचः ।  
त्वमेतत्पुरुषव्याध युक्तं गघववंशजे ।  
गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥  
जाने चैतन्मनःस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति ।  
अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्तिं समभिवर्धयन् ॥

(वा० रा० २।९।२०-२१)

हे भरत ! तुम रघुवंशी हो। तुममें ऐसे सज्जब होने ही चाहिये। बड़ोंकी भक्ति, इन्द्रियोंका दमन और सज्जनों-का अनुगमन यह सब तुममें होने ही चाहिये। मैं तुम्हारे मनकी ये सब बातें पहचने ही जानता था, परन्तु तुम्हारे भावोंको दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिये मैंने तुमसे यह प्रश्न किया था।

बात ठीक है, हमारी सम्मतिमें यह परीक्षा भरतके ही योग्य थी और भरत ही इस परीक्षाके योग्य थे एवं भरद्वाज-जैसे महर्षि ही इस कठिन परीक्षाके परीक्षक होने योग्य थे। हम तो भरतके इस पवित्र चरित्रका स्मरण करनेमें ही अपना धन्यभाग्य समझते हैं।

भरद्वाजके पूर्वजनेपर जब भरतने अपनी सब माताओं-का परिचय उनको दिया और उस समय दुःखावेशमें आकर कैकेयीको कुछ सख्त-सुख कहा तब महर्षिने रामवनवास-के दैवी कारणोंकी ओर भी इशारा कर दिया था। उन्होंने साफ कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत तया ।  
रामप्रजानं ह्येतत्सुखोदकं भविष्यति ॥

(वा० रा० २।९।२९)



हे भरत, तुम रामवनवासमें कैकेयीका दोष न समझो।  
रामके बन जानेसे संसारका कल्याण होगा।

भरतकी परीक्षाओंका यहाँ अन्त हो गया हो सो बात नहीं है। भरद्वाजके आश्रमसे जब वह सेनासहित चित्रकूटके पास पहुँचे तो इतनी बड़ी सेनाकी कल-कल और आकाशमें उठी धूलको देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि जरा देखो तो यह किसकी सेना है। लक्ष्मणने एक ऊँचे-से साखड़खपर चढ़कर भरतकी सेना देखनेके बाद जो कुछ कहा उसे सुनिये—

शशंस सेनां रामाय वचने चेतमव्रीत् ॥

अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम् ।

सज्यं कुर्वन् चापं च शरांश्च कवचं तथा ।

( बा० रा० २।१६।१३-१४ )

‘आप (राम) जल्दीसे आग बुझा दीजिये। सीताको किसी गुफामें भेज दीजिये, कवच पहन लीजिये और धनुष-बाण लेकर तैयार हो जाइये।’ जंगलमें धुँआ उठता देखकर वहाँ रहनेवाले मनुष्योंका पता शीघ्र लग जाता है, इसीसे लक्ष्मणने आग बुझानेको कहा है।

जब रामने कहा कि जरा यह तो देखो कि यह सेना है किसकी, तब बधकती हुई अश्विनी तरह कोषमें अरे लक्ष्मण बोले—‘मातृम होता है कि राज्याभियेक हो जानेके बाद अपने राज्यको निष्कण्टक बनानेके निमित्त कैकेयीका पुत्र भरत हम दोनोंको मारनेके लिये आ रहा है। रथमें कोविदारकी ध्वजा है। आज यह हमारे काबूमें आवेगा। जिस भरतके कारण इतना दुःख मिला है, उसे मैं आज समझूँगा। जिसके कारण आप अपने पैतृराज्यसे प्युत हुए हैं वह शत्रु (भरत) तो अवश्य ही वधके योग्य है। भरतके वधमें कोई दोष नहीं है। अपने पुराने अपकारीको मारनेमें पाप नहीं लगता। राज्यकी जो अभि कैकेयी आज देखेगी कि उसका पुत्र मेरे द्वारा उसी प्रकार मरोड़ा जा रहा है जैसे कोई भूल हाथी किसी वृक्षको तोड़-मरोड़कर फेंक दे। आज पृथ्वी बड़े भारी पापसे मुक्त होगी। आज सेनासहित भरतका वध करके मैं धनुषबाणसे उन्मत्त होऊँगा।’

लक्ष्मणको क्रोधान्ध देखकर रामने उनका मित्राज ठण्डा किया और भरतकी एक और अभि-परीक्षा होते होते रह गयी। राम बोले कि ‘देखो लक्ष्मण, जब भरत स्वयं आवे हैं तो फिर धनुष-बाण और ठाक-तलवारकी क्या आवश्यक-

कता है? जब मैं पिताके सामने राज्य छोड़नेकी प्रतिज्ञा कर चुका तब फिर भरतके वधसे कलङ्कित राज्य लेकर मैं क्या करूँगा? मैं चाहूँ तो यह समस्त पृथ्वी मुझे दुर्लभ नहीं है, परन्तु मैं अधर्मके द्वारा इन्द्रासन भी नहीं चाहता। जो सुख मुझे तुम्हारे, (लक्ष्मणके) भरतके और शत्रुघ्नके बिना मिलता हो वह भय हो जाय। मुझे उसकी अपेक्षा नहीं।’

‘लक्ष्मण, भरत किसी दुर्भावसे नहीं आ रहे हैं। उन्होंने जब मेरे तुम्हारे और सीताके वनवासकी बात सुनी होगी तब स्नेह और शोकसे व्याकुल हो उठे होंगे। वह हमलोगोंसे मिलने आ रहे हैं, किसी बुरी नीयतसे नहीं। माता कैकेयीसे अग्रसन्न होकर पिताको प्रसन्न करके भरत मुझे राज्य देनेके विचारसे आ रहे हैं। भरतके मनमें कभी हम-जोगोंकी बुराई नहीं आ सकती। क्या उन्होंने कभी तुम्हारे साथ कोई बात की है? फिर आज तुम्हारे मनमें ऐसी शङ्का और भय क्यों उठ रहे हैं? खबरदार, भरतके लिये कोई कटु-वाक्य न कहना। उनके प्रति कहा हुआ तुम्हारा अप-शब्द मुझे लगेगा। यदि राज्यके लिये तुम ये बातें कह रहे हो तो भरतको आने दो, मैं उनसे कहकर राज्य तुम्हें दिला दूँगा। यदि मैं भरतसे कहूँ कि लक्ष्मणको राजगद्दी दे दो तो यह निश्चय है कि वह ‘बहुत अण्ठा’ के सिवा और कुछ न करेंगे।’

रामकी इन बातोंने लक्ष्मणको पानी-पानी कर दिया। वह जजाके मारे जमीनमें गड़ गये। फिर उन्होंने भरतके विरुद्ध कभी आँख न उठायी।

उधर लक्ष्मणका तो ऐसा भाव था और इधर भरतको देखिये कि उनकी क्या दशा थी—

यावत्त रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम् ।

वैदेहीं वा महामाणां न मे शान्तिर्भविष्यति ॥

( बा० रा० २।१८।६ )

भरतको बराबर यही रट थी कि जबतक मैं राम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन न कर लूँगा तबतक मेरे व्याकुल हृदयको शान्ति नहीं मिल सकती। जिन भरतके सम्बन्धमें लक्ष्मण समझते थे कि वह हमें मारनेको आ रहे हैं, कुत्र, चामर चारण करके राजा भरत हमारा वध करनेके लिये सेना लेकर वहाँ पहुँचे हैं, वही भरत जब रामके सामने पहुँचे तो उनकी क्या दशा थी—



जटिलं चौरवसनं प्राजलिं पतितं मुनि ।

ददर्श रामो दुर्दशी युगान्ते भास्करं मया ॥

( बा० रा० २।१००।१ )

दुःखामित्तो भरतो राजपुत्रो महानलः ।

उन्मत्तार्येति सकृदीनं पुनर्नोवाच किञ्चन ॥

( बा० रा० २।११।२८ )

जटावस्त्रधारि, पर्यभुषण, गङ्गद्वकण्ड, वीर्यदेह, वीन, हीन, मलीन, दुःखसे व्याकुल भरत एक अपराधीकी भाँति हाथ जोड़े बबराते तथा काँपते हुए रामके पास पहुँचे और पहुँचते पहुँचते ही मूर्छित होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े । उस समय भरतके मुँहसे 'हा आर्य' के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं निकल सका ।

रामने झपटके भरतको उठाया, प्रेमपूर्वक गोदमें बिठाया और इसके बाद जो जो बातचीत हुई वह सभी जानते हैं । जब भरत किसी प्रकार राज्य लेनेको राजा न हुए तो रामने इतना मंजूर किया कि—

अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः ।

भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥

( बा० रा० २।१११।२१ )

'बनसे लौटकर मैं धर्मात्मा भाई भरतके साथ राज्य स्वीकार करूँगा ।' इधर ऋषियोंने देखा कि रामके ऊपर धीरे धीरे भरतका रंग चढ़ रहा है । उन्हें भय हुआ कि कहीं हमारा उद्देश्य ही नष्ट न हो जाय । इस कारण इसी समय ऋषिलोग बीचमें वृद्ध पड़े और उन्होंने भरतसे कहा कि 'बस हो चुका, अब और ज्यादा जिद न करो । यदि तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाये रखना चाहते हो तो रामकी बात मान लो । इन्हें १४ वर्षतक बनमें रहने दो । बादमें तुम और वह मिलकर राज्य कर लेना ।'

ततस्तृषिणाः क्षिप्रं दशग्रीववधैषिणः ।

भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः ॥

प्राज्ञं रामस्य वाक्यं ते पितरं गद्यवेक्ष्यसे ॥

( बा० रा० २।११२।५ )

यदि भरतके कहनेमें आकर राम उसी समय राज्य स्वीकार कर लेते तब तो फिर रामके द्वारा रावणका वध करानेकी जो स्त्रीम ऋषियों और देवताओंने मिलकर तैयार की थी, वह सब धूलमें मिल जाती । जिसके लिये विद्यामित्र-

ने वृषारथसे राम-जन्मको माँगकर सुबाहु, मारीच, ताकका आदिवा शिकार कराया था, दिव्य अस्त्र और बला अति-बला आदि विद्याएँ सिखायी थीं, जिसके लिये जनकपुरीमें ही सीताको वनवासकी शिक्षा दी गयी थी, आगेके लिये भी अगस्त्य आदि ऋषियों और इन्द्र आदि देवताओंने बड़ी बड़ी पेशबन्दिर्वाँ कर रखी थीं वे सब मंसूखे नष्ट-भष्ट हो जाते, इसीलिये राम-भरतके इस संवादमें ऋषिलोग अचानक फट पड़े और भरतको उन्होंने रोक दिया ।

यह सब कुछ होनेपर भी भरत अपनी हठसे नहीं हटे । उन्होंने कहा कि मैं अकेला इतने बड़े राज्यकी रोक-बाम नहीं कर सकता । सब प्रजा आपहीको राजा बनाना चाहती है । आप इस राज्यको स्वीकार करके इसकी स्थापना कर दीजिये । मैं आपके सेवककी हैसियतसे आपके वनवास-से लौटनेतक काम चलाता रहूँगा । दूरदूरी भरत शायद इसी आशयसे सुवर्ण-पादुकायें तैयार कराके अपने साथ लेते गये थे, वही उन्होंने पेश की और कहा—

अधिरोगार्थपादाम्बां पादुके हेममूषिते ।

पते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विचास्यतः ॥

सोऽधिकं नरन्माघः पादुके व्यवमुच्य च ।

प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मे ॥

( बा० रा० २।११२।२१-२२ )

हे आर्य ! आप इन लड़ाउओंको पहनिबे । वही आपकी प्रतिनिधि होकर आपका राज्य सम्हालेंगी । रामने लड़ाई पहनी और फिर उतारकर भरतको दे दीं ।

स पादुके संप्रणम्य राम वचनमब्रवीत् ।

चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचौरघरो ह्वहम् ॥

फलमूलशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।

तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद्बहिः ॥

तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप ।

चतुर्दशे हि सम्पूर्णं वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥

न द्रक्ष्यामि यदि त्वातुं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।

( बा० रा० २।११२।२३-२५ )

भरतने पादुकाओंको प्रणाम किया और रामसे बोले कि 'चौदह वर्षतक मैं एक वनवासी तापसके समान जटा-चौर-वारी होकर नगरसे बाहर रहूँगा और आपके आनेकी प्रतीक्षामें फल-मूलसे ही जीवन निर्वाह करूँगा । आपकी



श्रीरामके चरणेमें भरत ।

“जटिलं नीचस्वर्नं प्रोज्जलिं पतितं भुवि ।” “आर्येभ्येवाभिर्मर्कश्य व्याहृतं” नाशकत्तदा ।”



पादुकाओंको राजसिंहासनपर स्थापित करके समस्त राज-शासनका कार्य, इन्हींके लिये, १४ वर्षतक कर्हूँगा। चौदह वर्ष बीतनेके बाद पहले ही दिन यदि मुझे आपके दरान न मिले तो वह निश्चय जानिये कि उसी दिन मैं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर्हूँगा। फिर आपको मेरे इस पापी शरीरके दर्शन न हो सकेंगे।'

धन्य भरत, और धन्य उनकी प्रतिज्ञा। भरतका चरित संसारमें अद्वितीय है। इतिहासमें ऐसा दूसरा उदाहरण ही नहीं। धन्य हैं राम जिन्हें भरत-जैसे भाई मिले। भरतका पवित्र चरित्र भारतके लिये, नहीं नहीं,—संसारके लिये—अयोतिःस्म्भका काम वे सकता है।

'स पादुके ते भरतः स्वलेह्यते

महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मेवित्।

प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं

चकार चैवोत्तमनाममूर्धनि ॥

( बा० रा० २।११२।२९ )

ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा।

छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ ॥

( बा० रा० २।११५ )

राघवाय च संन्यासं दत्त्वेमे वरपादुके।

राज्यं चेदमयोध्यायां धृतपापां भवाम्यहम् ॥

( बा० रा० २।११५।२० )

भरतने पादुकायें ली, उन्हें अपने सिरपर रखी, राम-की प्रदक्षिणा की और उन पादुकाओंको हाथीपर रखवाया। लोगोंको आज्ञा दी कि इन पादुकाओंपर छत्र धारण कराओ। इन्हें भगवान् रामका प्रतिनिधि समझो। वह रामकी चरोहर है। जिस दिन ये पादुकायें और अयोध्याका राज्य—जो मेरे पास चरोहरके समान सुरक्षित रहेंगे—मैं भगवान् श्रीरामको वापिस दूँगा उसी दिन अपनेको पापसे मुक्त समझूँगा।

भरतकी इन बातोंपर टीका टिप्पणी करना हम अनावश्यक समझते हैं। हम तो पहले ही कह चुके हैं कि भरतका चरित पवित्र प्रेम और निर्मल भक्तिका प्रशान्त महासागर है। विशुद्ध चार्मिकताका आधार है। यहाँ किसी नीतिको स्थान नहीं। यहाँ तो सरलता, पवित्रता और निर्मलताके साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्तिकी धारा बहती है। हम इस लेखको यहीं समाप्त करते हैं।

## लक्ष्मण और भरतकी भक्ति

( लेखक—श्री 'मजबलम' )



वरय ही अति शुभ मुहूर्तमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरित-मानसकी रचना आरम्भ की थी। जान पड़ता है इंसवाहिनी, वीणापाणि माँ सरस्वतीको उस समय पूर्ण सावकाश था। माँ निश्चिन्त थी, प्रफुल्लित थी, आनन्दोन्मत्त थी। कविता-कलापकी तरङ्गें उनके हृदय-सरोवरमें खूब ही लहरा रही थीं। नवरत्नकी बाढ़ हृदयमें उमड़ आयी थी। तान-तरङ्गसे वीणा कँकरीत हो रही थी। माँ आप ही गा रही थी, बजा रही थी, अलाप रही थी। अपने परम भक्तका काव्य-रचनाकी ओर मुकाब देख लीला-प्रिय, भक्त-व्रजल भगवान्की आज्ञा हुई। गोस्वामीजीके 'उर-अजिर' में आकर माँ स्वतन्त्र स्वच्छन्द नाचने लगी। या यों कहिये कि लीलामय 'उनके उर-अजिर' में वाणीको नचाने लगे।' अब क्या बा—

बानी जू के बरन युग, सुबरन-कन परिमान।

श्रीकवि-मुख कुखेत परि, होत सुमेरु समान ॥

अब चला सिलसिला। सचमुच सुमेलकी सट्टि हो गयी। असंख्य रत्नखानि उनकी रचनाके भीतर भर गयी। जिन्हें 'भरामी स्मृति सुमति कुदारी लिये' आज तक खोज रहे हैं, और परिश्रमसे खोद खोदकर निकाल रहे हैं।

इनकी रचनाको देखकर साहित्य-रसिक, मर्मज्ञ, कवि, विश्व, कोविद चकित हो गये और हो रहे हैं। भूमण्डलके साहित्य-जगतमें इनके मानसको एक अद्वितीय स्थान प्राप्त है। विद्वानोंका मत है कि संसारमें जितने ग्रन्थोंकी रचना हुई है उनमें जर्मन-नाटककार 'गोटी' का 'फोस्ट' और गोस्वामीजीकी रामायण, ये दो ही ग्रन्थ ऐसे हैं कि इन एक एकके पाठसे मनुष्य इतना ज्ञान लाभ कर सकता है जितना सैकड़ों पुस्तकोंके अध्ययनसे भी कदाचित् ही प्राप्त हो सके। यथार्थ ही रामचरित्र अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पदार्थोंका देनेवाला है।

कवि, शायी, विज्ञानी, भक्त, रसिक, जिज्ञासु सभी इसके समीप आकर अपना अभीष्ट पाते हैं और कृतार्थ हो जाते हैं।

श्रीगोस्वामीजीने तो इस अमूल्य गाथाकी रचना 'स्वान्तः-सुखाय' की थी। किन्तु इसमें आप ऐसे सफल हुए कि आज यह ग्रन्थरत्न, करोड़ों सन्तस हृदयोंको सुख-शान्ति दे रहा है। कितने भूले-भटककोंको सन्मार्गपर ला रहा है। साधकोंको सिद्धि देता है। फकीरोंको उनके 'मंजिले-मकसूद' तक पहुँचाता है, व्यथित हृदयको शीतल करता है। विमुखोंको सम्मुख करता है। पर शर्त यह है—

जो यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुप्ति सचेता ॥  
हेहहिं राम-चरन अनुरागी। कलि-मल-रहित सुमंगल भागी ॥

स्नेहके साथ पढ़ना-सुनना और रचेत होकर समझना-फिर क्या? बस, बेका पार है। दोनों लोक बन जायेंगे। हिन्दी भाषा-भाषियोंमें चाहे वे साधु हों या गृहस्थ, आज जो धर्म-कर्म, मजहबका ज्ञान, भक्तिका प्रचार, पूजा-पाठ देखा जाता है उन सबका उद्ग्रेक इस रामायणसे ही है। यदि रामायण नहीं होती तो सनातन-धर्मकी क्या परिस्थिति होती, यह कहना कठिन है।

कल्याणकारिणी, मोहहरिणी, भ्रमनाशिनी, शान्ति-प्रदायिनी, आनन्द-वर्धिनी, भक्ति-मुक्ति-दायिनी रामायणके पठन-पाठनने जो नृस हो जाय, 'रम विशेष जाना सो नाहीं।'।

इस ग्रन्थकी एक खूबी और है। साक्षरसे लेकर पण्डित तक इसके पढ़नेसे समान आनन्द पाते हैं। यह ऐसा सुधा-तन्मय है कि अपठित बाल पक्षीवत् कोई एक घूँट भी पी लेनेपर उतना ही आनन्दित होता है जितना अगाध पण्डित इसके 'वरस परस मज्जन अह पान' से होता है। देश-विदेशमें कितने विद्वान् पण्डित ज्ञानी ऐसे हुए हैं और हैं, जो आजन्म इसका परिभ्रम और अन्तर्पूर्वक अध्ययन कर अमृत ही रह गये हैं।

यदि रामायणके विषयमें विचारके साथ लिखा जाय तो एक अलग पोथी तैयार हो सकती है। गोस्वामीजीने इसे समास-रूपमें लिखा है। एक एक चौपाईको छोड़कर विचार करने और उसका भाष्य लिखनेपर सैकड़ों पन्ने होंगे जा सकते हैं, किन्तु इसकी व्याख्याका अन्त नहीं हो सकता।

'कल्याण' के पाठकोंके चित्तविनोदार्थ मानसके आचारपर श्रीलखनवाली तथा श्रीभरतजीके भक्तिभावके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश डालनेका यत्न किया जाता है। श्रीगोस्वामीजीने रामायणमें एक एक भावका उत्कृष्ट उज्ज्वल उदाहरण दिया है, एवम् उनका स्विस्तर परम सुन्दर चित्रण किया है।

परब्रह्म परमात्माके साकार तथा निराकार रूपके अनु-रूप जीवात्माविशेषका उनके साथ तीन प्रकारका सम्बन्ध है। एक है वैदिक-बुद्धिके अनुसार अपने इष्टदेवके साथ जीव स्वामी, पिता, सखा, मित्र आदि कोई एक भाव जोड़ कर उसके अनुकूल अपने विचार तथा आचारको हठ एवं अभ्यासद्वारा परिमार्जित तथा संस्कृत कर परमपदको प्राप्त करना। इसके उदाहरण रामायणमें हनुमान्जी, अज्जबजी, विभीषण, केवट, लक्ष्मणजी, भरतजी प्रभृति हैं। दूसरा है, जीवबुद्धिके अनुसार आचरण। जिसके अनुकूल जीवविशेष अपनेको उनका अंश मानता है। इसीको आराशीभाव भी कहते हैं। इसीकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजीने कहा है—

'ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥'

तीसरा है आत्मबुद्धिका सम्बन्ध। जिसमें जीव अपनेको भगवान्ने प्रयुक्त नहीं मानता और जानता है कि मेरे समेत 'सत्त्वाचर रूपराशि भगवान्' हैं। जीव एवं ब्रह्मका सम्बन्ध अक्षिप्त अनादि है। मायाके चक्रमें पड़ा रहनेके कारण यह भगवान्से कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहता। उनसे कोई नाता नहीं जोड़ता, वरं उनके अस्तित्वहीको भूले बैठा रहता है। यदि उनका होना मानता भी है तो अपनेको उनसे अलग, दूर, स्वतन्त्र जानता है। गोस्वामीजी कहते हैं—

'सो मायावस भयउ गुसाईं। बँध्या कीर मरकटकी नाई ॥

जड़ चेतन हि ग्रन्थि परि गई ॥ यदपि मृषा दूटत कठिनई ॥'

किन्तु परम पदको प्राप्त करनेके लिये, अपने मानव-जीवनको मार्गक बनानेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि जीव प्रभुके साथ कोई एक सम्बन्ध जोड़कर उसीको प्रौढ बनानेमें दृष्टिपित्त हो जाय। मनन, चिन्तन, अनुशीलनद्वारा उसकी पुष्टि करे। अनेक भावोंमें स्तब्ध एवं दास्यभाव भी हैं। भावोंमें वे दोनों प्रधान माने जाते हैं।

श्रीलखनवालीका प्रभुके साथ स्तब्धभाव और श्रीभरत-जीका दासभाव था। 'स्तब्ध' में 'मर्मवासी' वे मेरे हैं और दाम्ने में 'तन्यवासी' मैं उनका हूँ, यही भावनाएँ बख्तवान रहती हैं। दूसरे भावोंके अनुसार स्तब्धभावमें भी सेवा-धर्म बना रहता है। क्योंकि भक्तिका प्रधान अङ्ग सेवा ही है। वह हृदयमें भी था 'सेवाई लखन कम-मन-बानी।' किन्तु इसमें माधुर्य तथा प्रेमकी प्रगाढ़ता अधिक होती है। इस भावमें ऐश्वर्यकी ओर भक्तका ध्यान नहीं जाता। अतएव एकताकी

मात्रा बहुत बड़ी रहती है। वह सकलभाव अधिक शुद्ध एवं निष्काम है। मायुर्य तथा प्रेम्णकी मात्रा जितनी बढ़ती है त्यागकी मात्रा भी उसीके अनुरूप अधिकाधिक बढ़ती जाती है। त्याग एवं कष्ट इस भावके भाविकको विचलित नहीं करते वरं उसके आनन्दको उत्तरोत्तर बढ़ावा करते हैं। अपने उपास्यदेवके आदेशानुसार सेवामें लीन रहना, जो मिल जाय उसीमें सन्तोष करना—इस भावका उपासक इसीको अपना एकमात्र कर्तव्य—परम धर्म मानता है।

परमात्मा एवं जीवात्माके शुद्ध स्वरूपके विचारसे यह सत्यभाव अनादि है। अतोऽन्तरोपनिषत्में कहा है 'वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिपस्वजते' (१.१.४.६०) इस देहरूपी वृक्षपर सुन्दर पक्षवाले दो विहङ्गम एक साथ सखाकी भाँति वास करते हैं यहाँ दो विहङ्गमोंसे परमात्मा तथा जीवात्माका तात्पर्य है। इससे सिद्ध होता है कि जीव तथा भक्तमें अटूट सम्बन्ध है। किन्तु प्रभुकी कृपा बिना जीवको इसका ज्ञान नहीं होता, न इस ओर हमका ध्यान ही जाता और न प्रवृत्ति ही होती है।

जीव दो प्रकारके होते हैं, एक नित्यमुक्त और दूसरा साधारण। नित्यमुक्तको अपने निज स्वरूपका ज्ञान सदा-सर्वदा बना रहता है। वह कभी अपने लक्ष्यसे विचलित नहीं होता। साधारणको इष्ट, अभ्यास तथा अनुरीत्यद्वारा सहजका ज्ञान होता है। तत्पश्चात् वह अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, किन्तु उसे उसका दैहिक ज्ञान जाना रहता है।

श्रीलक्ष्मण तथा भरतजी प्रथम श्रेणीके जीवोंमें हैं।  
अतएव—

‘जो आनन्दसिन्धु मुखगामी। सीकरसे त्रयलोक सुपासी ॥  
सो सुखभाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक विश्रामा ॥’

—जो भगवान् हैं, उनके साथ श्रीलक्ष्मणका अपना सख्य भावका अटूट सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इनका यह सम्बन्ध अनाविकालका है। इसीसे इसके विकास होनेमें कुछ विलम्ब नहीं लगा। और—

‘बारहि ते निज हित पति जानी। लछमन राम चरन रति मानी ॥’

—इनका यह सम्बन्ध अन्ततक बना रहा। एक बख्शके लिये भी आप अपने इष्टदेवसे अलग नहीं हुए। उनकी सेवासे विचलित नहीं हुए। जिसका परिणाम यह हुआ कि उस अवतारमें शरीर धारण करनेके कारण आपको कोई चिन्ता न हुई। किसी प्रकारका मानसिक दुःख नहीं

हुआ। सरकारके समीप रहकर उनकी रुचिका पालन करना ही इनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्यसे यह कभी अट नहीं हुए।

शरीर धारण करनेके कारण ही प्रत्येक मनुष्यमें कोई-न-कोई दुर्बलता अवश्य ही रहती है। क्योंकि काल, कर्म, स्वभाव, गुण तथा संसर्ग-वशा जीव विवश ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके अक्रोरोंमें पड़ा रहता है। जिसमें जिसकी मात्रा अधिक रहती है, वह उसीके अनुसार लोभी, क्रोधी, आदि विशेषणोंसे विभूषित किया जाता है। भक्तमें भी ये दुर्बलताएँ रह जाती हैं। क्योंकि यह जीवका सहज स्वभाव है। किन्तु भक्त अपनी इस दुर्बलताको भी प्रभुके ही काममें लगाता है। भक्तका भी यह सहज स्वभाव है।

श्रीलक्ष्मणजी सरोच शेषके अंश होनेके कारण लीससे भरे रहते थे। क्रोधकी मात्रा इनमें प्रबल थी। किन्तु सारी रामायण देखनेसे ज्ञात होता है कि इन्होंने अपने लिये कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। आदर्श भक्त होनेके कारण इन्हें प्रभुको छोड़कर निजकी कोई रुचि, लालसा, वासना थी ही नहीं और जब आप आशा-निराशाकी परिधिसे बाहर ही थे तब इन्हें क्रोध ही क्यों होता, किसीपर अपने लिये लीकते ही क्यों? आप तो प्रभुकी केवल आज्ञामात्र थे, उनके प्रतिबिम्ब-स्वरूप थे। यही भक्तका स्वरूप है।

अपने लिये तो नहीं, पर जब कहीं या कभी इन्हें ज्ञात होता या अथवा भ्रम हो जाता था कि कोई प्रभुके प्रति अपमानसूचक कुछ कह रहा है अथवा कर रहा है तब आप उबल पड़ते थे। पात्रापात्रका विचार इनके मनसे जाता रहता था। फिर किसकी सामर्थ्य थी कि इनके सामने अपना सिर उठा सके, इनके सम्मुख खड़ा रह सके? श्री-जनकराजके ‘बार-विहां मही मैं जानी।’ कहते ही आप कैसा प्रचण्ड रूप धारण करते हैं! पर अपने लिये नहीं! इन्हें ज्ञात हुआ कि इसमें मर्यादा-पुरुषोत्तमका अपमान हुआ है। कहने लगे—

‘रघुवंसिन्हमहँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई ॥

कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥

सुनहु मानु-कुल-पंकज-भानू। कहउँ सुभाव न कहु अभिमानू ॥

जो तुम्हार अनुसासन पावौ। कन्दुक इव ब्रह्मांड उठावौ ॥

काँचे घट जिमि डारौ फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी ॥

तब प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना ॥

नाथ जानि अस आयसु होऊ । कौतुक करौ बिलोकिय सोऊ ॥

कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावौ । जोजन सत प्रमान लै धावौ ॥

तोरो छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बल नाथ ।

जौ न करौ प्रभु-पद-सपय, पुनि न परो वनु हाथ ॥

परिचाम यह हुआ कि—

‘लपन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥

सकल लोक सब मूप डेराने ॥’

रामायणभरमें कहीं भी इनकी अपनी बात नहीं है। प्रभु क्या कहते हैं? क्या चाहते हैं? क्या करते हैं? इन्हीं बातोंकी ओर इनका सतत ध्यान रहता था। इनकी बुद्धि, तेज, बल, प्रताप, पौरुष, पुरुषार्थका परिचय पाठकोंको मज़ीभाँति धनुर्धरमें ही मिल जाता है! वहाँ इन्होंने परशुरामजीके साथ साथ उपस्थित नरेशोंपर भी अपनी पूरी चाक जमा दी तथा उन्हें हर प्रकार परास्त कर दिया।

वनवासके समय अपनी अलौकिक शक्ति प्रगाढ़ प्रेम और शुद्ध अनुरागपूर्ण त्यागका अद्भुत अभूतपूर्व परिचय दिया है। श्रीरामचन्द्रजीके वनवासका संवाद पा आप व्याकुल हो गये। मारे क्रोधके आपसे बाहर हो गये। रह रहकर इनके मनमें उदय होने लगा कि बलपूर्वक अबबके राज्यपर अपना अधिकार कर अपने बड़े भाईको सिंहासनासद किया जाय, और जो उनके विरुद्ध लड़ा हो उसे उचित दण्ड दिया जाय। किन्तु जब देखा कि यह बात भाईकी इच्छाके प्रतिफल पड़ेगी तब आप निरस्त हो गये, क्षुप हो गये। पर अपना कर्तव्य निश्चित करनेमें इन्हें देर न लगी। ठान लिया कि जब प्रभु नहीं चाहते तब इस क्षम्य-व्यसेमें कौन पड़े। जब सुलसे प्रभुके साथ वनमें स्वच्छन्द विचरना करें। सांसारिक बासनाओंसे मन हटा, माता, पिता, पत्नी, राज्य, सुख, परिवार, देश, कोष सबका त्याग छोड़, जगत्से मुँह मोड़, आपने अपने मनको प्रभुकी ओर लगाया। आपमें जागृति आयी। ये जाग उठे। इन्हींके शब्दोंमें बीजिये—

‘जलिय तबहि जीव जग जगा। जब सब विषय-विलास विरागा ॥

होइ विवेक मोह-भ्रम भागा। तब ग्धुवीर-चरन अनुरागा ॥’

और ‘सबकर ममता नाग बटोरी’ आपने अपनेको प्रभुके चरणोंमें सुदृढ़ बाँध दिया।

देखिये आगे क्या गुल लिखता है? जब श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि ‘देह गेह सब सन तन तोरे’ कर ओरे आदेशकी

प्रतीक्षा किने आप सम्मुख लड़े हैं तब आप इन्हें गार्हस्थनीति, राजनीति और वात्र-धर्म सिखाने लगे। स्वर्ग-नरकका लोभ तथा भय दिकाने लगे। कहने लगे—

‘जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥’

पर वहाँ तो सभी लगन थी। प्रेमके आनेशमें आप सब धर्मोंको परित्याग कर प्रभुकी शरणमें आ चुके थे। इनपर इन बातोंका क्या असर होता? बोले—

‘नरवर वीर चरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी ॥

मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाल। मंदरु भ्रू कि लेहि मराला ॥

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहाँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥

जँह लगी जगत सनेह सगई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गार्ई ॥

मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर-अन्तरजामी ॥

हाँ! यही प्रेमाभक्ति है। सभी कुछ प्रभु ही है और कोई कुछ नहीं। हानि-लाभ, मान-अपमानका ध्यान नहीं।

धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥

मन-क्रम-बचन चरनरत होई। कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ॥

इनके ‘प्रेम-परो’ अटपटे बचन सुनकर प्रभु चक्रमें पड़े, इनके प्रेमके सामने मर्षादापुरुषोत्तमकी नीति तथा धर्मको हार माननी पड़ी। लाचार आप श्रीलक्ष्मणको वनमें साथ ले गये। लखनलाल संकोच-बश साथ नहीं जाते हैं, वरं प्रफुल्ल-चित्त आह्लादपूर्ण हृदयसे जाते हैं। जैसे—

‘बागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागवत ॥’

वनमें रहकर परोक्षभावसे आपने जो सरकारकी सेवा की, उसका उल्लेख भला कभी हो सकता है? बारह वर्षोंतक वीरामनसे धनुष-बाण लिये सारी रात बैठे बैठे जागकर बिताया क्या सहज तपस्या थी? ये आत्मविश्मृत, प्रेम-पूर्ण, तेजस्वी, उत्साही, संयमी, सच्चे संन्यासी थे। इनका स्नेह मौन रहनेके कारण अतल था। प्रभुके साथ साथ डोलना, उनको देखना और देख-देखकर अलखदानन्द अनुभव करना यही इनका काम था।

इनमें आपा नहीं था। उसे यह एकदम लो बैठे थे। प्रभुकी नींद सोना, उन्हींकी नींद जगना। भक्तिकी यही पराकाष्ठा भी तो है। ‘जाहि न चाहिय कबहुँ कसु, प्रभुसन सहज सनेह’ ऐसे भक्तको तो अवश्य ही भगवान् आप भी भजते हैं। क्योंकि यह तो विनियम है ‘भुमकिन नहीं कि वरं

इधर हो उधर न हो' और इधर आप ठहरे 'स्वारथ-रहित सखा सनहीके।' अतएव वनवास-कालमें राघवेन्द्र—

'सीय-लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥'

और—

'जुगवाहे प्रभु सीय-अनुजहि कैसे। पलक बिलोचन-गोलक जैसे॥'

वनवासके कारण श्रीसरकारको जो कष्ट हुआ, उसका दुःख जो भूषण कभी इनके मनसे नहीं हटा। अपने लिये नहीं, अपने अग्रजके लिये रह-रहकर यह डबल पढ़ते थे। सुमन्तके द्वारा कटु सन्देश भेजना, चित्रकूटमें यह सन्देश होनेपर कि श्रीभरतजी अपने माईसे बैर साधने आ रहे हैं और 'प्रभु हृदय खंभाक' लखकर आप कैसे बेताब हो जाते हैं? उनमें यह निश्चय होते ही कि भरतजी "निदरे राम जानि असहार्" सोता हुआ बीर-रस जाग उठा। अब क्या था?

'बौधि जटा सिर कसि कटि माया। साजि सरासन सायक हाथा॥

आप सिंहबद्ध नादसे कहने लगे—

'आजु राम-सेवक जस लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥  
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर-सेज दोड भाई॥  
आइ बना भल सकल समाजु। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजु॥

पहले राज-भक्तके अवसरका खीस बना हुआ था। इनकी प्रबल प्रतिज्ञाका असर क्या हुआ?

'समय लोक सब लोकपति, चाहत भरि भगान॥'

दृष्टिमें डलट-फेरकी नौबत आगयी। प्रलयका सामान जुट गया। किन्तु प्रभुकी सान्त्वना-सूचक वाणी सुनकर आपने सुमन्त अपनेको समझा लिया।

कहीं भी देखिये आप प्रभुकी ही रुचिकी ओर ध्यान रखते हुए उसीके अनुकूल सदा करते दृष्टि आवेंगे। इसके द्वारा आप प्रभुके स्वरूप हो गये। किन्तु कब? पञ्चवटीकी तपस्याके बाद। इसके पहले इनके और प्रभुके बीच एक अन्तर था, श्रीमतीजीका। कैसी पूर्ण उपमा गोस्वामीजीने दी है—

'आगे राम लखन पुनि पाछे।

उभय मध्य सीय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव निच माया जैसी॥'

जीवकी यथार्थ अवस्था यही है। वह प्रभुसे दूर नहीं है। एक दूसरेके सन्निकट ही हैं। बस, यही मायाका आवरण देखने नहीं देता। जीवसे प्रभुको अदृश्य करनेवाली यही प्रचण्ड वैषम्यही मुग्धकरी, मोहिनी, माया है। सच है—

'मायालज न देखियत जैसे निर्मल ब्रह्म॥'

देखिये, पम्पा-सरोवरपर मायाके दूर हो जाते ही इस जीवविशेष तथा 'पूर्ण काम राम सुखरासी' में कितनी अधिक चनिष्ठता बढ़ गयी। दोनोंके आचार-विचारमें अन्तर ही नहीं रह गया। 'एक जान दो काखिब' की बात हो गयी।

प्रभुने अपने जीवा-विस्तारमें इनसे पूरी सहायता ली। परिणाम यह हुआ कि आप इस अवतारमें कभी प्रभुसे जुदा नहीं हुए। इस अवतारका ध्यान इनके बिना पूरा हो ही नहीं सकता। अतएव भक्तोंने जहाँ-जहाँ सरकारसे बर माँगा है, वहाँ यही कहा है कि—

'भरे हृदय सदन सुख दायक। बसहु लपन-सीय सह रघुनायक॥'

'भरे मन मन्दिर बसहु, सीय सहित दोड अत॥'

अब अर्चा-विग्रहमें भी हर स्थानपर प्रभुके साथ सख्य-भावके प्रधान भक्त श्रीलखनलालजीकी बराबर सेवा हो रही है। इसीसे कहा जाता है कि समय पाकर भक्त भगवान् बन जाता है।

सरकारके सदा साथ रहने एवं सहज सनेह तथा प्रतिपालित होनेके कारण आपमें लवकपन सदा बना रहा। बाल-सुखभ सहज सरल स्वभाव रहने और साहसी, पुरुषार्थी होनेके कारण आप निर्भीक किन्तु चञ्चल-बपल थे। निरङ्कुल हृदय होनेसे आपके जीमें जब जो आता था, कह बैठते थे। किसीका भय संकोच नहीं करते थे। सरकारकी राय भी जब इन्हें पसन्द नहीं आती थी तब बेकाक अपने मन्त्रियों, मनोगत भावोंको कह बैठते थे। स्वावलम्बन आपमें पूरा था। सागरसे पथ माँगनेका परामर्श सुनकर आपने साक शब्दोंमें कह दिया—

नाथ दैव कर कवन मरोसा। सोखिअ सिन्धु करिअ मन रोसा॥

कादर कर मन एक सहारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

श्रीलक्ष्मणजीके मनसे ममता एकदम हट गयी थी। इन्द्रजीतपर विजय प्राप्तकर श्रीरामचन्द्रके सम्मुख आप उसी प्रकार उपस्थित हुए, जैसे प्रतिदिन हुआ करते थे।

श्रीलखनलालजीके सख्यभावका दिग्दर्शन आप सज्जनों-को बयासाध्य कराया गया। अब श्रीभरतजीके अतल विलुप्त गम्भीर दास्यभावको देखिये।

इनके विषयमें थोड़ा लिखना भी कठिन है। इन्हींका भाव तथा चरित्र लेकर श्रीगोस्वामीजीने सम्पूर्ण अयोध्या काव्यका निर्माण किया है।



वासभाव स्वाभाविक होनेपर भी इसका पावन अत्यन्त कठिन है। श्रीभरतजीने स्वयं ही कहा है—

‘सन्ते सेवक धर्म कठोरा ।’

भरतजीकी भाव-गम्भीरता, नम्रता, सरलता, निरङ्कुशता, धीरता, बुद्धि-विचक्षणता, सभाचातुरी, वाक्प-पटुता, त्याग, सेवा, धर्मधुरीणता देखकर बुद्धि चकित हो जाती है। इनका बर्णन क्योंकर हो सकता है ?

भरत-सील-गुण-विनय-बड़ाई । भायप-भगति-भरोस-भलाई ॥  
कहत सारदहुँकी मति हीचै । सागर सोंपकी जाहिं उलीचै ॥

साधारण मनुष्यकी क्या बात है जब राजर्षि जनकजीने इनके विषयमें कहा है—

धर्म राजनय ब्रह्मनिचारू । इहाँ यथामति मोर प्रचारू ॥  
सो मति मोर भरत महिमाहीं । कहौं काह छल दुअति न छाहीं ॥  
भरत अमति महिमा सुनु रानी । जानहिं राम न सकहिं बसानी ॥

इनका चरित्र अपार है। गोस्वामीजीने सत्यही कहा है—

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन विमल बिभूती ॥  
बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गम नाहीं ॥

इनके आबकी अगमताके विषयमें भी श्रीजनकराजे आप ही कहा है कि—

देवि परन्तु भरत रघुबरकी । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥  
भरत अबधि सनेह ममताकी । जद्यपि राम सीम समताकी ॥  
परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनहुँ मनहुँ निहारे ॥  
साधन सिद्धि राम-पग-नेह ।

ठीक है सच्चा भक्त भी तो वही है जिसे भगवान् स्वयं भर्षे । इनका ध्यान श्रीरामचन्द्रके हृदयसे कभी नहीं हटा—

जग जपु राम गम जपु जेही ।

परिचाम हुआ—

जड़ चेतन जग जीव धनेरे । जे चितयें प्रभु जिन प्रभु हेरे ॥  
ते सब मये परम पद जोगू । भरत दरस भेषज भव-रोगू ॥  
यह बड़ि बात भरतकी नाहीं । सुमिरत जिनहिं राम मन माहीं ॥

और मनहीमें क्यों ? कुलकर भी तो सरकारने श्री-मुखसे कहा है—

सुनहु लपन भल भरत सरीखा । विधि प्रपद्य महुँ सुना न दीखा ॥  
लपन तुम्हार सपथ पितु आना । सुधि मुबन्धु नहिं भरत समाना ॥

जिन्होंने—

निज जस जगत कीन्ह उजियारी ।

सुमिरन ही क्यों आप इनकी सेवा भी तो करते थे । देखिये राज्याभिषेकके पूर्व—

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे । निज कर जटा राम निरवारे ॥  
नहवाये प्रभु तीनिहुँ भाई । भक्तबछल रूपाल रघुराई ॥

जिसे देख गोस्वामीजी कहते हैं—

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेस कोटि-सत सकहिं न गाई ॥

इधर भरतजीको भी किसी बातकी चिन्ता नहीं थी । उन्हें दीन-दुनियाका खयाल भी नहीं था । अपने-परायेकी सुधि रखते हुए भी आपने अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य प्रभुकी प्रसन्नता ही रक्खा था । अबधमें जब इन्हें गद्दी देनेकी बात चली तब आपने कहा था—

डर न मोहि जग कहहिं कि पोचू । परलोकउकर नाहिंन सोचू ॥  
एकड़ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगे मे सियराम दुखारी ॥

आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहिं सिरनाइ ।

देखे बिनु रघुनाथ-पद, जियकी जगनि न जाय ॥

भरतजीके गुणोंका बर्णन किसीसे कदापि नहीं हो सकता ‘कविकुल अगम भरत गुनगाथा ।’ जब प्रभुके प्रादुर्भावके प्रधान कारण ही यही माने जाते हैं तब और कहाँ तक कहा जा सकता है ?

होत न भूतन भाव भरतको । अचर मचर चर अचर करत को ॥

प्रेम अमिय मन्दर बिरह, भरत पयोधि गँधीर ।

मधि प्रगटे सुर-साधु-हित, कृपासिन्धु ग्युबीर ॥

इनके त्यागका क्या पूछना है ? देखिये, प्रयागमें इनकी पहुँचनेके लिये मुनिकी आज्ञा पा चन्द्र-सिद्धिने जब ‘विधि-विस्मयदायक’ विभव प्रस्तुत किया तब इन्होंने उनकी ओर भ्रूपात भी नहीं किया । भोगकी सामग्री पास रहते हुए भी उसे भोग न करना ही तो सच्चा त्याग है ।

सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार ।

तेहि निमि आश्रम पीजरा, राखा भा भिनुसार ॥

सेवा-धर्मकी ओर इनका पूर्ण ध्यान बना रहा । आपका कथन था कि—

सेवक हित साहेब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ॥

प्रभुकी चरब-पादुका पानेपर आप पूर्यरूपसे सन्नुष्ट हो जाते हैं और कहते हैं—

नाथ भयठ सुख साथ गयेको । लहेउ लाम जग जन्म भयेको ॥

‘शम, दम, नियमके आचरण’ से आप ‘बन्ध-जनिह विचारों’ से रहित हो गये थे । माताकी कुटिला करनीको सुन आपने अपनेको कितना सम्हालकर क्रोधको ग्लानिसे दबा दिया । हार मानकर आपने कहा कि—

जोहसि सोहसि मुँह मसि लाई । अँखि ओट उठि नैठसि जाई ॥

राम-निरोधी हृदय ते, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।

मो समान को पातकी, नादि कहहुँ कछु तोहि ॥

इतना मनमें आते ही आप तटस्थ हो गये । अतएव मन्थराको जब शत्रुहृन्जी ‘रुगे घसाँटन धरि धरि श्रोटी’ तब दयानिधि भरतने झुका दिया । मद तो इनके बाँटे पड़ा ही नहीं था । सरकारने आप ही कहा है—

भरतहिँ होय न राजमद, निधि-हरि-हर पद पाय ।

भरतजीके वैराग्यका पता तो अयोध्याकायके अन्तमें चकता है, जहाँ गोस्वामीजीने इनके आचरणके विषयमें कहा है—

अवधराज सुरराज सिहाहीं । दसरथ धन लखि धनद लजाहीं ॥

तेहु पुर बसत भरत बिन रागा । चञ्चरीक जिमि चम्पक नागा ॥

कहा है कि—

चम्पामें गुन तीन हैं, रूप रंग अह नास ।

पर इतनोही खोट है, अमर न आवत पास ॥

और—

लखन-राम-सिय कानन बसहीं । भरत भवन बसि तप तनु कसहीं ॥

परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मंजु मृदु मंगलकरनू ॥

भरतजीका भाव अपार अगम अपूर्व है । उसका उल्लेख होना कठिन ही नहीं असम्भव है । गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है—

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन

होत जनम न भरतको ।

मुनि मन अगम जम नियम

सम दम निषम व्रत आचरत को ॥

हुक दाह दारिद दंभ दूषन

सुजस मिस अपहरत को ।

कलिकाल तुलसी से सठहि

हठि राम सनमुख करत को ॥

और गोस्वामीजी ऐसा कहेँ क्यों नहीं ? क्योंकि आपका तो सिद्धान्त था ‘सेवक सेव्यभाव बिन, भव न तरे उरगारि’ और इस भावके श्रीभरतजी आदर्श भक्त थे ।

अब देखिये, दोनों भाइयोंका प्रभुके साथ एक सम्यन्ध और आपसमें भावपका इद बन्धन रहनेपर भी अपने अपने भिन्न भिन्न भावोंके कारण दोनों महानुभावोंका कर्तव्य श्रीशमचन्द्रजीके साथ भिन्न रहा और उसकी वृद्धि एवं पुष्टि अपने अपने स्वभावके अनुकूल भिन्न भिन्न रीतिकी हुई । प्रभुकी रुचि-पालनमें दोनों समान थे । किन्तु श्रीलखनछाल सरकारके निजकी सेवासे सन्नुष्ट रह अपनपा-अहंवृद्धि एक-दम गँवा बैठे थे । अपने लिये प्रभुसे उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा—कभी कुछ नहीं जाँचा, प्रभुको छोड़ संसारमें किसीको नहीं जाना । प्रभुकी रुचि-पालन तथा सेवाके अतिरिक्त अपना निजका कोई धर्म नहीं माना । निजका सुख-दुःख, मान-अपमान इन्हें कभी विचक्षित नहीं कर सका । और भरतजी सरकारके नाते प्रजा, परिजन, माता, गुरु, पुरोहित, कुटुम्ब, परिवार, राज्य, और कोषकी सेवामें सम्राटसे प्रवृत्त रहे । किन्तु प्रेम-सरोवरमें सदा निमग्न रहते हुए भी ये सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोगकी आँचसे सन्तप्त एवं शीतल होते रहे । पर दोनोंकी तपस्याका फल हुआ एक ही परमपदकी प्राप्ति, प्रभुके पादपद्ममें पूर्य विशुद्ध प्रेम, हृदयमें अनपायिनी भक्तिका सर्वोपरि विकास, और अखण्डानन्दका सतत उल्लास ! इन दोनोंके हृदय-सरोवरमें राम सदा कमलवत् विफसित रहे, उसीके चारों ओर इनका मन-अमर सदा मँडराता रहा ।

सोअत जागत स्वप्नमें, रस रिसचैन कुचैन ।

सुरत स्यामघनकी सुरति बिसराये बिसै न ॥

संसारमें ऐसा प्रेम, ऐसी भक्ति अलभ्य है । ये दोनों महानुभाव स्वार्थ-त्याग तथा आत्म-त्यागके आदर्श चित्र हैं । प्रेमकी वेदीपर इन दोनोंने अपना तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण किया किन्तु बदलेमें कुछ नहीं चाहा । इसीका नाम निष्काम धर्म है । इसीको निष्काम प्रेम कहते हैं । ऐसे ही भक्त अनन्त दिव्य आनन्दसागरमें आनन्दरूप होकर सदा निमग्न रहते हैं ।

## महारानी कौसल्या



मायबनमें महारानी कौसल्याजीका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है। यह महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जननी थी। प्राचीन कालमें मनु-शतरूपाने तप करके श्रीभगवान्को पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका बरदान पाया था, बड़ी मनु-शतरूपा वहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए हैं। श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकायस्थले होता है। भगवान् श्रीरामका राज्यारम्भ होनेवाला है। नगरभरमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है, वह रामकी मङ्गल-कामनासे अनेक प्रकारके वस्त्र, दान, देवपूजन और उपवास-व्रतमें संलग्न है, श्रीसीता-रामको राज्यसिंहासनपर बैसनेकी निश्चित आशासे उसका रोम-रोम खिल रहा है परन्तु श्रीराम दूसरी ही बीजा करना चाहते हैं। सौन्दर्योपासक महाराज दशरथ कैकेयीके साथ बचनबद्ध होकर श्रीरामको बनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं।

धर्मके लिये त्याग  
प्रातःकाळ श्रीराम माता कैकेयी और पिता दशरथ महाराजसे मिलकर बनगमनका निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये उसके महलमें पधारते हैं। कौसल्या उस समय ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन करवा रही है और मन-ही-मन सोच रही है कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ छत्र किस समय है?' इननेहीमें नित्य प्रसन्नमुख और उत्साह-पूर्वक हृदयवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप आ पहुँचते हैं। रामको देखते ही माता थकावट उठकर जैसे ही सामने जाती है जैसे छोटी बच्चेके पास जाती है। राम माताको पास आवी देख उनके गले लग जाते हैं और माता भी मुजाबोंसे पुत्रको आखिन्न कर उनका सिर खूँबने लगती है।

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।

अभिवक्राम संदृष्टा किशोरं नडवा यथा ॥

स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः ।

परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवप्रतप्तश्च मूर्धनि ॥

( ना० रा० २ । २० । २०-२१ )

इस समय कौसल्याके हृदयमें वात्सल्य-रसकी बाढ़ आ गयी, उसके नेत्रोंसे प्रेमाशुओंकी धारा बहने लगी। कुछ देरतक तो वही अवस्था रही, फिर कौसल्या रामपर निजावर करके बहुमुख बकाशूयक बाँटने लगी। श्रीराम चुपचाप लदे थे। अब स्नेहमयी माँसे रहा नहीं गया। उसने हाथ पकड़कर पुत्रको नन्हेसे शिशुकी भाँति गोधूम बैठा ठिथा और लगी प्यार करने—

बार बार मुख चूमति माता । नयन नेह जल पुलकित गाता ॥

जैसे रंक कुँवरके पदको प्राप्त कर फूला नहीं समाता, आज बड़ी दशा कौसल्याकी है। इतनेमें स्मरण आया कि दिन बहुत चढ़ गया है, मेरे प्यारे रामने अभी कुछ खाया भी नहीं होगा। अतएव माँ कहने लगी—

तात जाई बलि बेगि अन्हाहू । जो मन आव मधुर कलु खाहू ॥

माता सोच रही है कि 'जगनमें बहुत देर होगी, मेरा राम इतनी देर भूखा कैसे रह सकेगा, कुछ मिठाई ही ला ले, दो-चार फल ही ले ले तो ठीक है।' उसे यह पता नहीं था कि राम तो दूसरे ही कामसे यहाँ आये हैं। भगवान् रामने कहा—'माता-पितासे मुझको बनका राज्य दिया है। जहाँ सभी प्रकारसे मेरा क्या कल्याण होगा, तुम प्रसन्नचित्तसे मुझको बन जानेके लिये आज्ञा दे दो, चौदह साल वनमें विवासकर पिताजीके वचनोंको सत्य कर पुनः इन चरखोंके द्यौन करेंगे। माता तुम किसी तरह दुःख न करो।'।

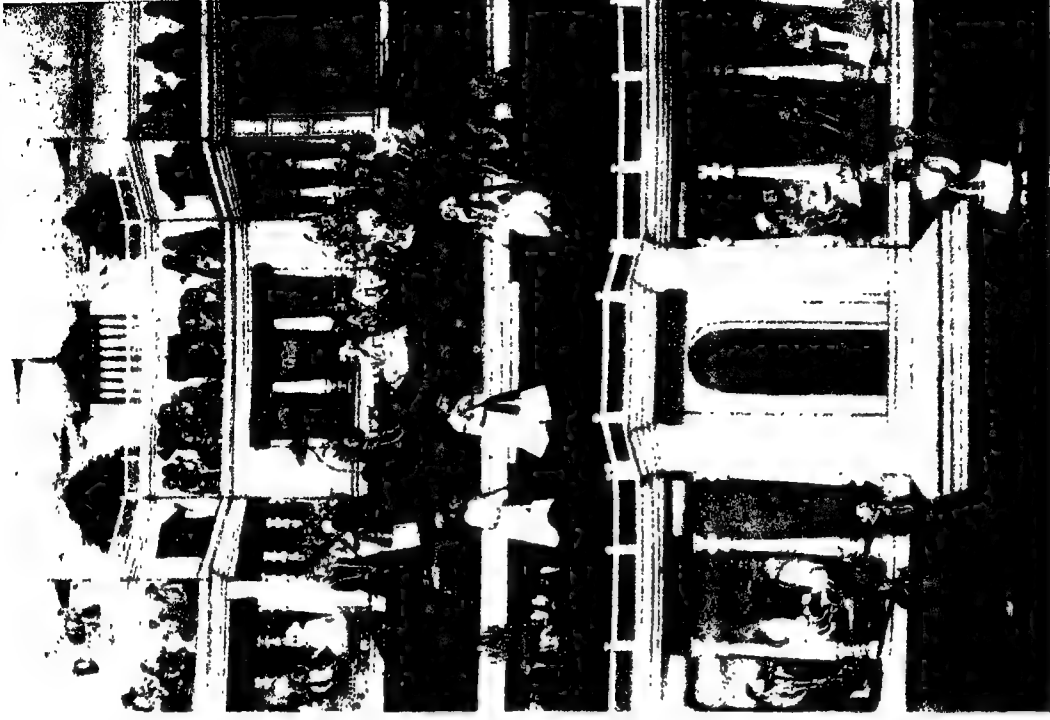
रामके ये वचन कौसल्याके हृदयमें झूझकी भाँति बिँध गये। हा! कहाँ तो चक्रवर्ती साजराजके ऊँचे सिंहासनपर बैठनेकी बात और कहाँ अब प्राणाराम रामको बन जाना पड़ेगा। कौसल्याजीके हृदयका विषाद कहा नहीं जाता, यह सृजित हो पड़ी और थोड़ी देर बाद जगकर भाँति भाँतिसे विज्ञाप करने लगी।

कौसल्याके मनमें आया कि पिताकी अपेक्षा माताका स्थान ऊँचा है, यदि महाराजने रामको बनवास दिया है तो क्या हुआ, मैं नहीं जाने दूँगी। परन्तु फिर सोचा कि 'यदि बहिन कैकेयीने आज्ञा दे दी होगी तो मेरा रोकनेका क्या अधिकार है, क्योंकि मातासे भी सौतेली माताका दर्जा ऊँचा माना गया है। इस विचारसे कौसल्या श्रीरामको रोकनेका भाव छोड़कर मार्मिक शब्दोंमें कहती है—



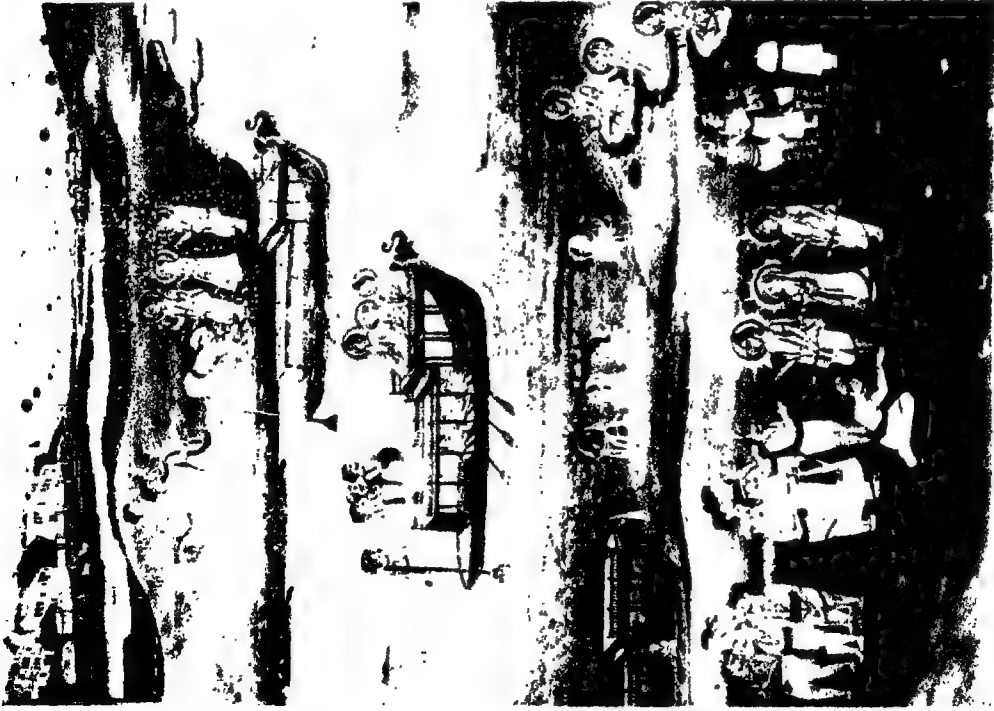
### दशरथजीका दरबार ।

‘जो पंचहि मत लागइ नीका । करहु हरणि हिय रामहिं टीका ॥’



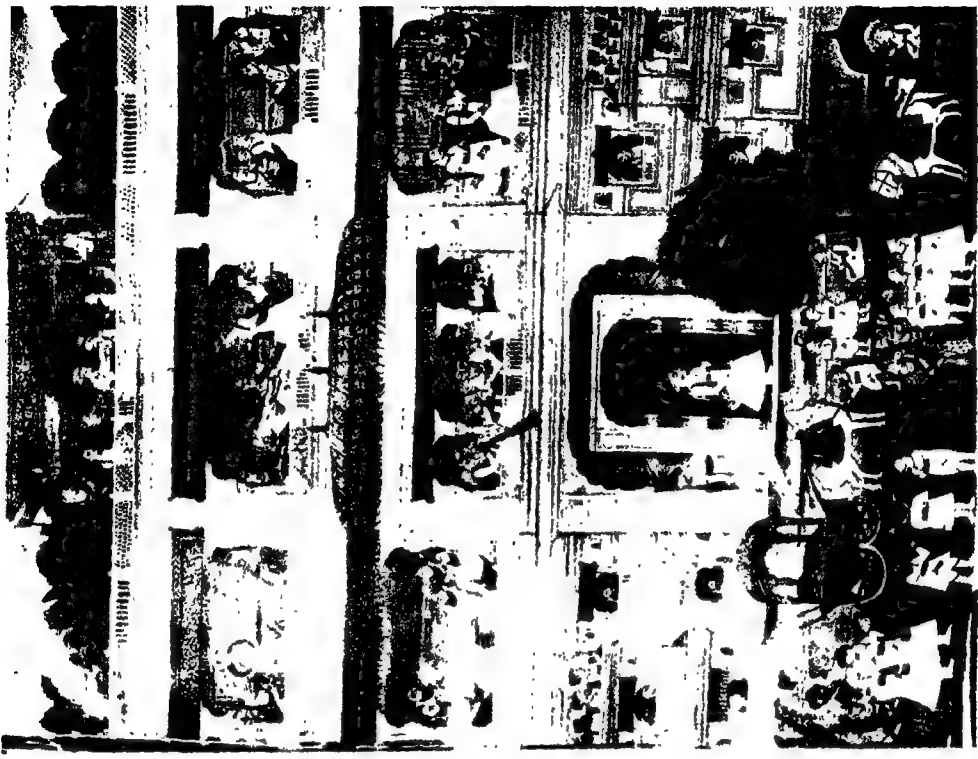
### गुरु बसिष्ठजी ।

तब नरनाह बसिष्ठ बोलाये । रामधाम सिख देन पठाये ॥



### राम और केवट ।

अति आनन्द उमंगि अनुगमा । चान्तसरोज पवामन त्यागा ॥  
कपि सुमन सुर सकल सिंहाहा । एहि मम पुन्यगुंज कोउ नाहो ॥



### दशरथ-मरण ।

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।  
तनु गहिहि रघुबर निरह, राउ गढ़उ सुरधाम ॥

जो केवल पितु आयसु ताता । तो जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥

जो पितु-मातु कहेउ बन जाना । तो कानन सत अवध समाना ॥

मातासे कहा गया कि 'पिताकी ही नहीं, माता कैकेयी-की भी बड़ी सम्मति है।' बहाँपर कौसल्याने बड़ी बुद्धि-मानीके साथ यह भी सोचा कि यदि मैं 'श्रीरामको हठपूर्वक रखना चाहूँगी तो धर्म तो जाचगा ही, साथ ही दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध भी हो सकता है।

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू । धर्म जाइ अरु बन्धु विरोधू ॥

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मपरायणा साखी कौसल्या-ने हृदयको कठिन करके रामसे कह दिया कि 'बेटा ! जब पिता-माता दोनोंकी आज्ञा है और तुम भी इसके धर्म-सम्मान समक्षते हो तो मैं तुम्हें रोककर धर्ममें बाधा नहीं देना चाहती, जाओ और धर्मका पावन करते रहो। एक अनुरोध अवश्य है—

मानि मातुके नात बलि, सुरति बिस्तरि जनि जाय ।

कह तो दिया, परन्तु फिर हृदयमें दुःखान् पातिव्रतधर्म थाया । अब कौसल्या साथ से चलनेके लिये आग्रह करने लगी और बोली—

कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।

अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यति ॥

(वा० रा० अ० २।२४।९)

'बेटा ! जैसे गाय अपने बछड़ेके पीछे वह जहाँ जाती है वहीं जाती है वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ जाओगे वहीं जाऊँगी।' इसपर भगवान् रामने माताको अवसर जानकर पातिव्रत-धर्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया, जो श्रीमात्रके लिये मग्न करने योग्य है। भगवान् बोले—

भर्तुः पुनः परित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः ।

स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥

यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे अग्रतीपतिः ।

शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः ॥

जीवन्त्या हि स्त्रिया मर्ता दैवतं प्रभुरेव च ।

भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ॥

न ह्यनाथा वयं राजा लोकनाथेन धीमता ।

भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ॥

भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ।

यथा मयि तु निष्कान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः ॥

धर्मं नावानुयातिक्रिदप्रमत्ता तथा कुरु ।

दाक्षणाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् ॥

राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ।

व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥

मर्त्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्मवेत् ।

भर्तुः शुश्रूषया नारी रुमते स्वर्गमुत्तमम् ॥

अपि या निर्भयस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ।

शुश्रूषामेव कुर्वति भर्तुः प्रियहिते रता ॥

एव धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ।

(वा० रा० २।२४)

'हे माता ! पतिको परित्याग कर देना स्त्रीके लिये बहुत बड़ी क्रूरता है, तुमको मनसे भी ऐसा सोचना नहीं चाहिये, करना तो दूर रहा। जबतक काकुत्स्थवंशी मेरे पिताजी जीते हैं तबतक तुमको उनकी सेवा ही करनी चाहिये, यही सनातन धर्म है। जीवित स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है और पति ही प्रभु है। महाराज तो तुम्हारे और मेरे स्वामी राजा हैं और माझिक हैं। माई भरत भी धर्मात्मा और प्राचीमात्रके साथ प्रिय आचरण करनेवाले हैं, वह भी तुम्हारी सेवा ही करेंगे, क्योंकि उनका धर्ममें नित्य प्रेम है। हे माता ! मेरे जानेके बाद तुमको बड़ी सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे महाराज दुखी होकर दाक्ष्य शोकसे अपने प्राण न त्याग दें। सावधान होकर सर्वदा बृद्ध महाराजके हितकी ओर ध्यान दो। व्रत, उपवासादि नियमोंमें तयार रहनेवाली धर्मात्मा स्त्री भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती है तो वह अचम गतिको प्राप्त होती है, परन्तु जो देवताओंका पूजन नमस्कार आदि बिल्कुल न करके भी पतिकी सेवा करती है उसको उसीके फलस्वरूप उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये श्रुति स्मृतिमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है।'

साखी कौसल्या तो पतिव्रता-शिरोमणि थी ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थी, अब पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका महत्त्व सुनते ही पुनः कर्त्तव्यपर डट गयी और श्रीरामको वन गमन करनेके लिये उसने आज्ञा दे दी। कौसल्याके पातिव्रतके सम्बन्धमें निम्नलिखित

उदाहरण और भी ध्यान देने योग्य है—जिस समय श्री-सीताजी स्वामी श्रीरामके साथ चल जानेको तैयार होती है उस समय कौसल्याजी उत्तम आचरणवाली सीताको हृदयसे लगाकर और उसका सिर सूँघकर निम्नलिखित उपदेश करती है—

‘पुत्री ! जो स्त्रियाँ पतिके द्वारा सब प्रकारसे सम्मान पानेपर भी गरीबीकी हालतमें उनकी सेवा नहीं करती, वह असती मानी जाती हैं। जो स्त्रियाँ सती हैं वे ही शीलवती और सत्यवादिनी होती हैं, बड़ोंके उपदेशके अनुसार उनका वर्ताव होता है, वे अपने कुलकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करतीं और अपने एकमात्र पतिको ही परमपूज्य देवता मानती हैं। बेटी ! आज मेरे पुत्र रामको पिताने वनवासी बना दिया है, वह धनी हो या निर्धन तेरे लिये तो वही देवता है अतः कभी उसका तिरस्कार न करना।’

यद्यपि परम सती सीताजीको पातिव्रतका उपदेश करना सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके बचनोंसे कुछ भी बुरा नहीं माना या अपना अपमान नहीं समझा और उसकी अर्त्त धर्मार्थयुक्त समझ हाथ जोड़कर कहा—‘माता ! मैं आपके उपदेशानुसार ही करूँगी, पतिके साथ जिस प्रकारका वर्ताव करना चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके द्वारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप अस्वाधी स्त्रियोंके साथ मेरी तुलना न करें—

धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥

नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचकां विद्यते रथः ।

नापतिः सुखमंथेत या स्यादपि शतारमजा ॥

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।

अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयत् ॥

(वा० रा० २।३९।२८-३०)

‘मैं कदापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिसप्रकार चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती। जिसप्रकार बिना तारके वीणा नहीं बजती, जिसप्रकार बिना पहियेके रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार स्त्री चाहे सौ पुत्रोंकी भी माँ क्यों न हो जाय, परन्तु पति बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकती। पिता, माता, भाई और पुत्र वगैरह जो कुछ सुख देते हैं वह परिमित होता है और केवल इन्हीं लोकके लिये होता है परन्तु पति तो मोक्षरूप अपरिमित सुखका दाता है, अतएव ऐसी कौन दुष्ट स्त्री है जो अपने पतिकी सेवा न करे ?’

जब राम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ बुझी होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं तब आवेशमें आकर वह उन्हें कुछ कठोर बचन कह बैठती है, इसके उत्तरमें जब बुझी महाराज आर्त्तभावसे हाथ जोड़कर कौसल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब तो कौसल्या भयभीत होकर अपने झुकपर बसा भारी पश्चात्ताप करती है, उसकी आँखोंसे निर्मल तरह आँसू बहने लगते हैं, और वह महाराजके हाथ पकड़ उन्हें अपने मस्तकपर रख बबराहटके साथ कहती है—‘हे नाथ ! मुझसे क्या भूल हुई, मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं पुत्र-वियोगसे पीड़िता हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव, आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी तो मैं आज पातिव्रत-धर्मसे अट हो गयी हूँ। आज मेरे शीलपर कलंक लगा गया है। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करने योग्य बुद्धिमान् स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके छोक्-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन् ! मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ासे बबराकर कहा है।’ कौसल्याके इन बचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँखें लगी गयीं।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह पता लगता है कि कौसल्या पातिव्रत-धर्मके पालनमें बहुत ही भागे बड़ी हुई थी। स्त्रियोंको इस प्रसङ्गसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

दशरथजी रामके वियोगमें व्याकुल हैं, त्याग-कर्तव्यनिष्ठा पान छूट गया है, शत्रुके चिह्न प्रत्यक्ष हीस पढ़ने लगे हैं, नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है, ऐसी अवस्थामें धीरज धारण कर अपने दुःखको भुला श्रीरामकी माता कौसल्या जिसका प्राणधार पुत्र बधूसहित वनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समझती हुई महाराजसे कहती है—

नाथ समुत्ति मन करिय विचारू । रामवियोग पयोषि अपारू ॥

करनधार तुम अवध जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥

धीरज धरिय तो पाइय पारू । नाहित बूझिहि सब परिवारू ॥

जो जिय धरिय विनय प्रिय मोरी । रामलबनसिय मिलहि बहोरी ॥

धन्य ! रामजयनी देवी कौसल्या ऐसी अवस्थामें तुम्हीं ऐसे आदर्श बचन कह सकती हो, धन्य तुम्हारे धैर्य, साहस, पातिव्रत, विरवास और तुम्हारी आदर्श कर्तव्यनिष्ठाको !



बधू-प्रेम कौसल्याको अपनी पुत्र-बधू सीताके प्रति कितावा वास्तव्य-प्रेम था, इसका विवरण नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है, जब सीताजी रामके साथ बन आना चाहती है तब रोती हुई कौसल्या कहती है—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूपराशि गुण सील सुहाई ॥  
नयन पुतरि इव प्रीति नदाई। राखहुँ प्राण जानकिहि लाई ॥  
पल्लव पाठ तजि गोद हिंडोरा। सिम न दीन पगु अवनि कठोरा ॥  
जिवनमूरि जिमि जुगवति रहेऊँ। दीप नाति नहिं टारन कहेऊँ ॥

जब सुमन्त श्रीसीता-राम-लक्ष्मणको बनमें छोड़कर अयोध्या आता है, तो कौसल्या अनेक प्रकार चिन्ता करती हुई पुत्रबधूका कुशल-समाचार पूछती है। फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती है तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती है 'बेटी! भूपसे तुझे हुए कमलके समान, मसले हुए कुसुमके समान, धूलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा वह मखिन मुख देखकर मेरे हृदयमें जो दुःखरूपी अरणीसे उत्पन्न शोकाग्नि है वह मुझे जला रही है।'

यदि आज सभी सासोंका बताव पुत्रवधुओंके साथ ऐसा हो जाय, तो घर-घरमें सुखका स्रोत बहने लगे।

राम-भरतमें कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर समानभाव नहीं मानती थी। उसका हृदय विशाल था। और प्रजाहित जब भरतजी ननिहालसे आते हैं और अनेक प्रकारसे बिलाप करते हुए एवं अपनेको चिन्तारते हुए, सारे अनर्थोंका कारण अपनेको मानते हुए जब माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा उठकर भाँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा लेती है और ऐसा मानती है मानो राम ही लौट आये। उस समय शोक और स्नेह उसके हृदयमें नहीं समाता, तथापि वह बेटे भरतको धीरज बैधाती हुई क्रोमक्षणाधीसे कहती है—

अजहुँ बन्धु बलि धीरज धरहु। कुसमय समुक्षि सोक परिहरहु।  
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करमगति अघटित जानी।

× × ×  
राम प्रानतें प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्रानतें प्यारे ॥  
बिधु बिब चवइ सवइ हिम आगी। होइ बारिचर नारि विराली ॥  
अये ग्यान बर मिटइ न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥  
मत तुम्हार इह जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥  
अस कहि मातु भरत हिय लाये। यन पथ सबहिं नयन जल छाये ॥

कैसे आदर्श वाक्य हैं रामकी माता ऐसी न हो तो और कौन हो ?

महाराजकी वाहकियाके उपरान्त जब बसिहजी और नगरके लोग भरतको राजगद्दीपर बैठाना चाहते हैं और जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते तब माता कौसल्या प्रजाके सुखके लिये धीरज धरकर कहती है—

× × × । पूत पथ्य गुरु आयसु अहरै ॥  
सां आदरिय करिय हित मानी। तजिय विषाद काल-गति जानी ॥  
बन रघुपति सुरपुर भरनाहू। तुम्ह यहि मौति तात कदराहू ॥  
परिजन प्रजा सचिव सब अम्ना। तुम्हही सुत समकहूँ अवलम्बा ॥  
लखि बिधि नाम कालु कठिनारै। धीरजु धरहु मातु बलि जारै ॥  
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहु। प्रजा पालि परिजन दुख हरहु ॥

प्रजाहितका इतना ध्यान श्रीराम-माताको होना ही चाहिये। माताने रामके बन जाते समय भी कहा था 'मुझे इस बातका तनिक भी दुःख नहीं है कि रामको राज्यके बदले आज बन मिल रहा है, मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि रामके बिना महाराज दशरथ, पुत्र भरत, और प्रजाको महान् ह्दय होना—

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेसु।  
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहिं प्रचण्ड कलेसु।

पुत्र-प्रेम कौसल्याकी पुत्रवत्सलता आदर्श है। रामके बनवाससे कौसल्याको प्राधान्य ह्दय है परन्तु प्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मरक्षाके लिये कौसल्या उन्हें रोकती नहीं, बरं कहती है—

न शक्यसे नारनीतुं गच्छेदनि रघूत्तम।  
शीघ्र च विनिवर्त्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥  
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।  
स वै राघवशार्ङ्गल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥

(वा० रा० २। २५। २-३)

बेटा ! मैं तुम्हें इस समय बन जानेसे रोक नहीं सकती। तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ। ससुरर्योंके मार्गका अनुसरण करता रह। तू प्रेम और निबन्धनके साथ जिस धर्मका पालन कर रहा है वह धर्म ही तेरी रक्षा करे। इस-प्रकार धर्मपर दृढ़ रहने और महात्माओंके सन्मार्गका अनुसरण करनेकी शिक्षा देती हुई माता पुत्रकी मंगलरक्षा करती है और कहती है—



पितु बन्देव मातु बन्देवी । लग्न-भृगु चरन-सरोरुह सेवी ।  
अन्तहु उचित नृपहि बनबासू । नय बिलोकि हिय होत हरासू ॥

कर्तव्यपरायणा धर्मशीला त्यागमूर्ति माता कौसल्या इसप्रकार पुत्रको सहर्ष बनमें भेज देती है । विभोगके वाधानलसे हृदय दग्ध हो रहा है परन्तु पुत्रके धर्मकी टेक और उसकी हर्ष-शोकरहित सुख-दुःख-शून्य आनन्दमयी मन्थुल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित समझती है । यह है सच्चा प्रेम ! यहाँ मोहको तनिक भी गुंजाइश नहीं । भरतजीके सामने कौसल्या गौरवके साथ प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती है,— 'बेटा, महाराजने तेरे बड़े भाई रामको राज्यके बड़े बनबास दे दिया परन्तु इससे रामके मुखपर कुछ भी झानता नहीं जाती—

पितु आयसु भूषन-वसन तात ! तंज रघुवीर ।  
बिसमय हरष न हृदय कलु पहिरे बलकल बीर ॥

मुख प्रसन्न मन राम न रोषू । सबकर सब बिधि करि परितोषू ॥  
चले बिपिन सुनि सिय सँग लगी । रहइ न राम-चरन अनुरागी ॥  
सुनतहि लखन चले उठि साया । रहहि न जतन किये रघुनाथा ॥  
तब रघुपति सबही सिर नाई । चले संग सिय अरु लघु भाई ॥

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका मजुर मुखका देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है । चौबह साज बड़ी ही कठिनतासे श्रीरामके ध्रुव सत्य वचनोंकी आशापर बीतते हैं । लज्जा विजयकर श्रीराम जब अयोध्या छोड़ते हैं और जब माताको यह समाचार मिलता है तो वह सुनते ही इसप्रकार दौबली है, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब चार्ड । निरलि बत्स जनु धेनु लवार्ड ॥  
जनु धेनु बालक बत्स तजि  
गृह, चरन बन परबत्स गई ।  
दिन अन्त पुर रुख स्रवत यन  
हुंकार करि वावति मई ॥

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-समुद्रकी मर्यादा टूट जाती है, वह पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार सिर घँघती है और कोमल मस्तक और मुखमण्डल पर हाथ फेरती एवं टफटकी लगाकर देखती हुई मनमें बहुत ही आश्चर्य करती है कि मेरे इस कलके कोमल कमनीय बराले बच्चेने रावण-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे मारा होगा ।

मेरे राम-जन्मन तो बड़े ही सुकुमार हैं, वे महाबली राक्षसोंसे कैसे जीते होंगे ?

कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि । चितबहि कृपासिन्धु रनधीरहि ॥  
हृदय निचारति बारहि बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ॥  
अति सुकुमार जुगुल मम वारे । निसिधर सुमट महाबल मारे ॥

माता ! क्या तुम इस बातको भूल गयीं कि ये तुम्हारे 'सुकुमार वारे बालक' लीलासंकेतसे ही त्रिभुवनको बनाने बिगाड़नेवाले हैं । इन्हींकी आयासे सब कुछ हो रहा है । वे तो तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर जगत्का कल्याण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं । माता तुम धन्य हो !

कौसल्याको अपने धर्मपालनका फल मिलता है, उसका शेष जीवन सुखमय बीतता है और अन्तमें वह श्रीरामके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्तकर—

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्वा संसारबन्धनम् ।  
अतिक्रम्य गतिस्तिष्ठोऽप्यवाप परमां गतिम् ॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धन-को छिन्न कर सात्विक, राजस, तामस तीनों गतिषोंको लाँचकर परमपदको प्राप्त हो जाती है !

## रामके हृदयमें कौन बसते हैं ?

ताजि मदमोह कपट छल नाना ।

करौ सद्य तोहि साधु-समाना ॥

जननी जनक बंधु सुत दारा ।

तनु धन भवन सुहृद परिवारा ॥

सबकै ममता-ताग बटोरी ।

मम पद मनहि बाँध बटि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।

हरष सोक मय नहि मन माहीं ॥

जस सज्जन मम उर बस कैसे ।

लोभी-हृदय बसै धन जैसे ॥

## रानी सुमित्रा

(लेखक—पं० श्रीजीवनशङ्करजी यादविक पय० प०)



स्वामी मुकुन्दीदासजीने अपनी रामायण-में कई आदर्श चरित्रोंका चित्रण कर अपनी अमूल्य काव्य शक्तिका परिचय दिया है। महापुरुषोंके लिये चित्रपट भी विशाल होना चाहिये, इसीलिये महाकाव्यके बिना उनका गुल्गुलान नहीं हो सकता। परन्तु कुछ पात्र रामायणमें ऐसे भी हैं जिनका प्रदर्शन बड़ी सूक्ष्मरीतिले किया गया है। ताबीजी तख्तीरोंमें चित्रकारकी चतुराई बारीकीमें होती है। कला-प्रवीण कौरव दिखानेके लिये अपना काम जान-बूझकर कठिन बना होता है, और फिर अपने प्रयासमें सफलता प्राप्तकर कृतकार्य होता है। गोस्वामीजीने रानी सुमित्राका वर्णन बहुत ही संक्षेपमें किया है परन्तु उसमें कोई बात छूटने नहीं पायी। चित्रपट बहुत ही छोटा है, इसीलिये बड़ी बारीकीसे काम लिया गया है। अत्यन्त अल्प सामग्रीका आश्रय लेकर कौरव दिखाना साधारण कवियोंका काम नहीं है।

सुमित्रा कौसल्याकी नाना पटरानी नहीं है और न कैकेयीकी तरह राजा दशरथकी प्रियतमा है। तिसपर भी वह माननेका कोई कारण नहीं कि राजा उसके प्रति उदासीन है। रानी ही स्वभावसे मित-भाषिणी है और सांसारिक प्रपंच और संकटोंसे अलग रहना पसन्द करती है। सारे नगरमें राम-जनवासकी बात फैल गयी, हाहाकार मच गया परन्तु उसको कैकेयीके कौतुकका हाव ही नहीं मालूम ! उसको सब बातें लक्ष्मणजीसे मालूम होती हैं जब वे स्वयं श्रीरामके साथ बन जानेकी आज्ञा माँगने आते हैं। लक्ष्मणजीसे हाव सुनकर—

गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि अनु देव चहुँओरा ॥

बात बहुत बड़बुकी थी और सुमित्राको अच पता चला। उसकी दशा उस हरिणीकी-सी हो गयी जो चारों ओर जंगलकी आगमें घिर गयी हो और आगका पता भी खूब कैसे जानेपर लगा हो। स्वभावतः सुमित्रा कोई उपाय सोचने लगी कि कैकेयीकी खगायी हुई आगसे परिवार और पुरजनोंकी किसी प्रकार रक्षा हो सके। अवाक् होकर सोचने लगी और तुरन्त ही परिस्थितिको समझ गयी और आधीका चित्र उसकी आँखोंके सामने आ गया। गोस्वामीजीने सुमित्राके मनोभावों-

के उमड़ते समुद्रको एक ही दोहेमें कह दिया है। गागरमें सागर भर दिया है—

समुद्रि सुमित्रा राम-सिय, रूप सुसील सुभाव ।

नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिन कीन्ह कुदाव ॥

राम-जानकीकी युगल मूर्ति बन जाने योग्य नहीं। उनकी सुकुमारता, माधुर्य और रूपराशि साधारण नहीं है। उनका सौन्दर्य ऐसा है—

सुन्दरता कहँ सुन्दर करहीं ।

इनको बन भेजना मानो कमलको भाड़में भूजना है, वह भी नहीं कि केवल शरीरकी सुकुमारता ही हो, मनकी भी कोमलता अतुलनीय है। उनसे कोई अपराध गुल्लनोंके प्रति बन ही नहीं सकता। क्योंकि भाइयोंमें—

चारिउ सील रूप गुनधामा । तदपि अधिक सुख-सागर रामा ॥

और श्रीरामजीको सभी जानते हैं कि वे हैं—

विद्या विनय निपुन गुन सीला ।

तो सुमित्राके लिये यह आशा करना तो व्यर्थ ही है कि श्रीराम स्वयं बन जानेको मना कर दें। और फिर उनका स्वभाव भी कैसा है—

जासु सुमाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करहि मातु प्रतिकूला ॥

और—

करुणामय मृदु राम सुभाऊ ।

कैकेयीका जरासा इशारा पावेंगे तो कौरव बन को प्रसन्न होकर चले देंगे। इस प्रकार सुमित्राके विचारकर देख लिया कि श्रीराम-जानकीका सौजन्य ही कैकेयीको सहायक हो गया है। श्रीरामजी कैकेयीसे कह चुके हैं—

सुन जननी सोइ सुत बड़ मागी । जो पितु-मातु बचन अनुरागी ॥

फिर कौन उपाय काम दे सकता है ? इसका परिणाम यह होगा कि राजा दशरथ जो बिना राम-दर्शनके जी नहीं सकते, प्रायः छोड़ देंगे। रानियोंको वैधव्य दुःख प्राप्त होगा। वह समझकर सुमित्रा और भी व्याकुल हो उठी।

एक तबदीर सूख गयी, यदि सुमित्रा और कौसल्या दोनों मिलकर श्रीरामको आज्ञा दें कि वनको नहीं जाना तो क्या होगा ? श्रीरामको दोनों मिलकर रोक सकेंगी, कैकेयीबिमाता है वैसे ही सुमित्रा बिमाता है ? दोनों समान हैं। यदि दशरथ बन जानेको कहते हैं और कौसल्या रोकती

है तो नीतिके अनुसार श्रीरामको माताकी आज्ञा विशेषरूपसे पाबनीय होगी। बचन है—

पितुर्देशगुणामाता गौरवेणातिरिच्यते ।  
मातुर्देशगुणामन्या विमाता धर्मभीरुणा ॥

यही विचारकर कौसल्याने भी श्रीरामसे कहा था—

ओ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जहु जानि बड़ि माता ॥  
ओ पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥

यदि दशरथकी आज्ञा बन जानेकी है तो कौसल्या उसका विरोध कर सकती है और दशरथ तथा कैकेयी दोनों की राय है तो श्रीरामका बन-गमन सर्वथा उचित है।

इसी प्रकारका भाव सुमित्राके मनमें आया कि कौसल्या और वह स्वयं श्रीरामको जानेसे रोक दे और यह तरीका सफल भी हो सकती थी। सुमित्राको सूझी तो सही परन्तु इसमें भी अड़चन आ पड़ी। राजपरिवार कैकेयीकी कृपासे फूला फूला है। जब कैकेयीने अपनी उँगलीसे रथचक्रको सँभाला था और राजा दशरथके प्राण जवाईंमें बचाये थे तो सब रानियोंके सौभाग्यकी भी उसीने रक्षा की थी। कैकेयीके कारण ही उनको पुत्रवती होनेका समय आया था। तो फिर कैकेयीको पूर्य अधिकार है कि उसकी कृपासे जो वस्तु दूसरोंको प्राप्त है उसपर अपना पुनः अधिकार कर ले। सुमित्रा यह सोचकर विचर हो जाती है और समझ लेती है कि श्रीरामको बन-गमनसे रोकनेका कोई उपाय नहीं, वैधव्य-दुःख अवश्यगर्भावी है, राजा दशरथ प्राण छोड़ ही देंगे और उसकी अपनी दशा वास्तवमें—

मुगी देखि दब जनु चहुँ ओरा—

—की सी है। क्योंकि कैकेयी पापिनने बचनेका कोई अवसर ही नहीं छोड़रक्खा। ऐसा बार किया है कि उसका जवाब ही नहीं, उसीका नाम कुदाव है जिसमें चालाकी हो और जिसका उतार न बन सके। कैकेयी अपने पुरुषानका ऐसा बड़का खेती यह बात किसीकी कल्पनामें नहीं आ सकती थी।

सुमित्राके मनमें ये सब बातें विजलीकी तरह दौड़ गयीं। अपनी बेबसीको वह अबीर्माँति समझ गयी। लक्ष्मणजीकी ओर उसका ध्यान भी अभी न आने पाया था। परन्तु लक्ष्मणजी जख्मीमें थे। उनको तो बिदा माँगकर श्रीरामके पास दौड़ जानेकी पुन खगी हुई थी। माताकी अवाक्य-अवस्था और मनके मार्गोंको वे समझ न

सके। अन्याय-पूर्य अर्थ लगाकर उसकी चिन्तामस्त-अवस्थाका कारण लक्ष्मणजी समझे—

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। यदि सनेह बस करब अकाजू ॥  
माँगत बिदा समय सकुचाहीं। जाइ संग निधि कहहि कि नाही ॥

धन्य है लक्ष्मणजी, तुम भी अपनी माताके गम्भीर स्वभावको नहीं पहचान सके और उसपर झूठा दोष मन-ही-मन खगाने लगे। 'सनेहबस' तो वह अवश्य है परन्तु इस समय राम-आनकीका ध्यान है, दुम्हारा नहीं।

सुमित्रा धीर गम्भीर कृपावी है। जब कोई उपाय नहीं सूझा तो—

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मुहु नानी ॥

यही धैर्य आर्यमहिलाओंकी शोभा है। लक्ष्मणजीने माँपर व्यर्थ सन्देह किया। जब श्रीरामने साथ ले चलनेकी अनुमति दे दी थी तो कहा था—

माँगहु बिदा मातुसन जाई। आनु बेगि चलहु बन भाई ॥

अर्थात् लक्ष्मणजीके लिये बन जाना निश्चय हो ही गया था। मातासे आज्ञा लेना एक ज्ञातेकी काररवाई रह गयी थी। माता रोकती भी तो वे कब माननेवाले थे? परन्तु सुमित्रा लक्ष्मणजीसे भी अपने आवर्ष चरित्रमें बड़ गयी। लक्ष्मणजी तो संकोच ही करते रहे और उसने बिना माँगे उनको बन जानेकी आज्ञा दे दी और लक्ष्मणजीको उपदेश भी दिया।

सुमित्राका उपदेश अजौकिक है। नीति, धर्म, भक्ति और वात्सल्यभाव उसमें सभी मलक रहे हैं। एक एक शब्दमें उच्च भावना, सहृदयता टपक रही है। कैकेयीके लिये एक भी अपशब्द वह नहीं कहती। 'पापिन कीन्ह कुदाव' केवल मनका भाव है। लक्ष्मणजीके सामने यदि कैकेयीके लिये कटु वाक्य बोलती तो उसको उपदेश करनेका अधिकार ही क्या रहता? बिमाता तो मातासे अधिक मान्य है।

सुमित्रा नीतिमें खूब निपुण है। समयपर उचित वाक्य बोलना और उचित कार्य करना उसका स्वभाव है। वह जानती है कि यदि लक्ष्मणजी अयोध्यामें रह गये और श्रीरामके साथ बनको न गये तो भरतजीके आनेपर बहुत विरोध होनेकी पूर्य सम्भावना है। लक्ष्मणजी तीखे हैं, उनको जख्मी क्रोध आ जाता है और सिवा श्रीरामके उनको कोई सहजमें दबा नहीं सकता। ऐसी अवस्थामें लक्ष्मणजी-

का वन जाना नीतिकी दृष्टिसे आवश्यक है। यह भी एक कारण है कि सुमित्रा स्वयं उनको आज्ञा दे रही है।

सुमित्राने उपदेश बड़े संक्षेपमें किया है। उसमें राम-महिमा वर्णित है और सेवक-धर्म भी बताया है। परन्तु उसमें सुमित्राके चरित्रका जो दिग्दर्शन होता है वही विशेष रीतिसे देखने योग्य है। एक एक शब्दसे सुमित्राके हृदयके भीतरी-भाव कविने व्यक्त किये हैं। जो श्रीराम वन जा रहे हैं तो अयोध्यासे भी बढ़कर रहने योग्य स्थान वन ही है।

जो पै राम सीय वन जाहीं। अवध तुम्हारा काज कछु नाहीं ॥

और वन जाना है सो केवल राम-जानकीके लिये ही नहीं, बल्कि—

—लेहु तात जग जीवन लाहु

यह अवसर तो लक्ष्मणजीको बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है जो सहजमें सेवा-कार्य वन सकेगा। सुमित्राजी तो यहाँतक कहती हैं—

तुम्हरेहि भाग राम वन जाहीं। दूसरा हेतु तात कछु नाहीं ॥

राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोहके त्यागनेकी शिक्षा माता देती है। अपने कल्याणके लिये नहीं, बल्कि हस्तक्षेप कि इनके रहते सेवा-धर्म ठीक नहीं निभ सकता।

सकल प्रकार विकार बिहार्ह। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥

लक्ष्मणके हितके लिये इससे बढ़कर और कोई उपदेश माताकी समझमें नहीं आता।

जेहि न राम वन लहाहि कलेसू। सुत सोह करेहु इहै उपदेसू ॥

यही आदिसे अन्ततक आदेश दिया। यह नहीं समझना चाहिये कि राम-भक्तिके कारण लक्ष्मणजीके प्रति सुमित्राका वात्सल्य-भाव जाता रहा है। सुमित्राको लक्ष्मणजीकी चिन्ता क्यों होने लगी जब राम-जानकी उनके साथ हैं। वे धर्मधुरीण हैं सुमित्राको सब प्रकारसे शान्ति है। वनके कष्टोंकी वह चर्चातक नहीं करती, क्योंकि—

तुम कहँ वन सब भाँति सुपासू। संग पितु-मातु राम-सीय जासू ॥

कैकेयी और सुमित्राके स्वभाव और आदर्शकी तुलना गोस्वामीजीने बड़ी खूबसूरतीसे लक्षित की है, दोनोंहीमें वात्सल्य-भाव बड़ा प्रबल है। एक श्रीरामका निर्वासन कर

और पतिव्रतिनी वन कर भी अपने पुत्रको राज्य दिलानेकी चेष्टा करती है, दूसरी अपने पुत्रको जीवन सफल करनेका अवसर पाकर स्वयं निर्वासित करती है और श्रीरामकी सेवाके लिये उसे न्यौछावर कर डालती है, दोनों रानियाँ नीतिमें बड़ी निपुण हैं। कैकेयीने अपना कार्य साधनेमें बड़ी कुटिल नीति और बुद्धिमानीसे काम लिया और सुमित्रा गम्भीरभावसे सोच-समझकर जो नीतिपूर्ण बात है उसके करनेमें तनिक भी नहीं शिथिल होती। एक अत्यन्त निदुर है परन्तु भरत-जैसे साधुकी जननी है। दूसरी स्वयं शान्त स्वभाव है पर जन्म देती है तीखे स्वभाववाले लक्ष्मणजीको। दोनों अपनी अपनी धुनकी पक्षी हैं। कैकेयीको कोई समझा-बुझाकर अपनी बातसे टला नहीं सकता और सुमित्राको भी अपने कर्तव्य-पालनमें किसीकी अपेक्षा नहीं। उसका विश्वास दृढ़ है और कर्तव्य-पथ निर्दिष्ट है। कैकेयी अपने स्वार्थ और वात्सल्य-भावके बेगको रोक नहीं सकती। परिणाम कुछ भी हो, उसकी बात होकर रहे, यही उसका लक्ष्य है। सुमित्रा धर्म, नीति और अतिके सामने वात्सल्य-भावको ऊँचा दर्जा नहीं देती। पुत्र-प्रेमकी मर्यादा धर्म और नीति है। जिस स्नेहके कारण धर्म डूबे, वह स्नेह नहीं। इसीलिये लक्ष्मणजीको वन भेजकर सुमित्राने मानो कैकेयीके पापका प्रायश्चित्त कर लिया।

सुमित्राके उपदेशमें एक बात क्री-समाजके लिये बड़ा जोर देकर कही गयी है। और वही बात सारभूत भी है। सुमित्राका हृदय कहता है—

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुवर भगत जासु सुत होई ॥

जैसी माताएँ होंगी वैसी सन्तान और उसीके अनुसार जाति। यदि माताएँ अपनी सन्तानको बाल्यकालसे ही धर्मकी शिक्षा देती रहें तो वह आगे चलकर सहजमें धर्माचरणमें प्रवृत्त हो जाया करे। भगवान्की भक्तिमें मन लगाना कठिन न मालूम हो। पापोंसे बचना भी सुगम हो जाय। माताएँ यदि अपना यह कर्तव्य याद रखें और उसका आचरण करें तो संसारमें सुख-शान्तिकी विशेष वृद्धि हो।

## सद्गुणवती कैकेयी



मायणमें महारानी कैकेयीका चरित्र सबसे अधिक बढनाम है। जिसने सारे विश्वके परमप्रिय प्राणाराम रामको बिना अपराध बनमें भिजवानेका अपराध किया, उसका पापिनि, कलङ्किनि, राक्षसी, कुलबिनाशिनी कहलाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। समस्त सद्गुणोंके आधार, जगदाधार राम जिसकी आँखोंके कटि हो गये, उसपर गालियोंकी बौद्वार न हो तो किसपर हो ? इसीसे लाखों वर्ष बीत जानेपर भी आज जगत्के नरनारी कैकेयीका नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं और मौका पानेपर उसे दो चार कैकेयीके शब्द सुनानेसे बाज नहीं आते। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कैकेयी सर्वथा दुर्गुणोंकी ही खानि थी, उसमें कोई सद्गुण था ही नहीं। सभी बात तो यह है कि यदि श्रीराम-वनवासमें कैकेयीके कारण होनेका प्रसंग निकल लिया जाए तो कैकेयीका चरित्र रामायणके प्रायः सभी खी-चरित्रोंमें शायद बढकर समझा जाय। कैकेयीके राम-वनवासके कारण होनेमें भी एक बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसका उद्घाटन होनेपर यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामके अनन्य और अनुकूल भक्तोंमें कैकेयीजीका स्थान सर्वोच्च है। इस विषयपर आगे चलकर यथामति विचार प्रकट किये जायेंगे। पहले कैकेयीके अन्य गुणोंकी ओर दृष्टि डालिये।

कैकेयी महाराज कैकयकी पुत्री और दशरथजीकी छोटी रानी थी। यह केवल अप्रतिम सुन्दरी ही नहीं थी, प्रथम श्रेणीकी पतिव्रता और वीराङ्गना भी थी। बुद्धिमत्ता, सरलता निर्भयता, दयालुता आदि सद्गुणोंका कैकेयीके जीवनमें पूर्ण विकास था। इसने अपने प्रेम और सेवाभावसे महाराजके हृदयपर इतना अधिकार कर लिया था कि महाराज तीनों पटरानियोंमें कैकेयीको ही सबसे अधिक मानते थे। कैकेयी पति-सेवाके लिये सभी कुछ कर सकती थी। एक समय महाराज दशरथ देवताओंकी सहायताके लिये शम्बरपुर नामक राक्षससे युद्ध करने गये। उस समय कैकेयीजी भी पतिके साथ रथाङ्गणमें गयी थी, आराम या भोग भोगनेके लिये नहीं, सेवा और शूरतासे पतिदेवको सुख पहुँचानेके लिये। कैकेयीका पतिव्रत और वीरत्व इसी-

से प्रकट है कि उसने एक समय महाराज दशरथके सारथिके मर जानेपर स्वयं बड़ी ही कुशलतासे सारथिका कार्य करके महाराजको संकटसे बचाया था। उसी युद्धमें दूसरी बार एक घटना यह हुई कि महाराज घोर युद्ध कर रहे थे इतनेमें उनके रथके पहियेकी धुरी निकलकर गिर पड़ी। राजाको इस बातका पता नहीं लगा। कैकेयीने इस घटनाको देख लिया और पतिकी विजयकामनासे महाराजसे बिना कुछ कहे सुने तुरन्त धुरीकी जगह अपना हाथ बाल दिया और बड़ी धीरतासे बैठी रही। उस समय वेदनाके मारे कैकेयीके आँखोंके कोये काळे पड़ गये, परन्तु उसने अपना हाथ नहीं हटाया। इस विषयमें यदि कैकेयीने बुद्धिमत्ता और सहनशीलतासे काम न लिया होता तो महाराजके प्राण बचने कठिन थे।

शत्रुओंका संहार करनेके बाद जब महाराजको इस घटनाका पता लगा तो उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उनका हृदय कृतज्ञता तथा आनन्दसे भर गया। ऐसी वीरता और त्यागपूर्ण क्रिया करनेपर भी उसके मनमें कोई अभिमान नहीं, वह पतिपर कोई एहसान नहीं करती। महाराज बरदान देना चाहते हैं तो वह कह देती है कि मुझे तो आपके प्रेमके सिवा अन्य कुछ भी नहीं चाहिये। जब महाराज किसी तरह नहीं मानते और दो बार देनेके लिये हठ करने लगते हैं तब दैवी-प्रेरणावश 'आचरयक होनेपर माँग-लूँगी' कहकर अपना पिच्छ छुड़ा लेती है। उसका यह अपूर्व त्याग सर्वथा सराहनीय है।

भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये हैं। पीछेसे महाराजने चैत्रमासमें श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारी की, किसी भी कारणसे हो, उस समय महाराज दशरथने इस महान् उत्सवमें भरत और शत्रुघ्नको बुलानेकी भी आचरयकता नहीं समझी, न कैकयराजको ही नियन्त्रण दिया गया। कहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय महाराज दशरथने इसीके द्वारा उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका अधिकारी मान लिया था। परन्तु रघुवंशकी प्रथा और श्रीरामके प्रति अधिक अनुराग होनेके कारण पुत्रवाप पुत्रराजपद प्रदान करनेकी तैयारी कर ली गयी। यही कारण था कि रानी कैकेयीके महलोंमें भी इस उत्सवके समाचार पहलेसे नहीं पहुँचे थे। रानी कैकेयी अपना स्वत्व जानती थी, उसे पता था कि भरतको मेरे पुत्रके नाते राज्याधिकार मिलना चाहिये

परन्तु कैकेयी इस बातकी कुछ भी परवा न कर राम-राज्याभिषेककी बात सुनते ही प्रसन्न होगयी। देव-मेरित कुबकी मन्थराने आकर जब उसे यह समाचार सुनाया तब वह आनन्दमें डूब गयी। वह मन्थराको पुरस्कारमें एक दिव्य उत्तम गहना देकर 'दिव्यमामरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्' कहती है—

इदं तु मन्थरं मममाख्यातं परमं प्रियम् ।  
पतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ॥  
रामं वा भरते बाहं विशेषं नोपलक्ष्ये ।  
तस्मानुद्वास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्यति ॥

न मे परं किञ्चिदितो वरं पुनः  
प्रियं प्रियाहं सुवचं वचोऽमृतम् ।  
तथा ह्यनोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं  
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥  
( बा० रा० २।७।३४ से ३६ )

'मन्थरे ! तूने मुझको यह बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है, इसके बदलेमें मैं तेरा और क्या उपकार करूँ ? (यद्यपि भरतको राज्य देनेकी बात हुई थी) परन्तु राम और भरतमें मैं कोई भेद नहीं देखती, मैं इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ कि महाराज कल रामका राज्याभिषेक करेंगे। हे प्रियवादिनी ! रामके राज्याभिषेकका संवाद सुननेसे बढ़कर मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है। ऐसा अमृतके समान सुखप्रद वचन सब नहीं सुना सकते। तूने यह वचन सुनाया है, इसके लिये तू जो चाहे सो पुरस्कार माँग ले, मैं तुम्हें देती हूँ।'

इसपर मन्थरा गहनेको फेंककर कैकेयीको बहुत कुछ उल्टा सीधा समझाती है, परन्तु फिर भी कैकेयी तो श्रीरामके गुणोंकी प्रशंसा करती हुई यही कहती है कि 'श्रीरामचन्द्र धर्मज्ञ, गुणवान्, संयतेन्द्रिय, सत्यव्रती और पवित्र हैं, वह राजाके ज्येष्ठ पुत्र हैं, अतएव (हमारी कुलप्रथाके अनुसार) उन्हें युवराज-पदका अधिकार है। दीर्घायु राम अपने भाइयों और सेवकोंको पिताकी तरह पालन करेंगे। मन्थरा ! तू ऐसे रामचन्द्रके अभिषेककी बात सुनकर क्यों दुखी हो रही है। यह तो अभ्युदयका समय है ऐसे समयमें तू जल क्यों रही है ? इस आवी कल्याणमें तू क्यों दुःख कर रही है ?

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ।  
कौस्त्यतोऽतिरिक्तं स तु शुश्रूषते हि माम् ॥

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा ।  
मन्यते हि यथात्मानं यथा आर्तुस्तु राघवः ॥

मुझे भरत जितना प्यारा है, राम उससे कहीं अधिक प्यारे हैं, क्योंकि राम मेरी सेवा कौसल्यासे भी अधिक करते हैं। रामको यदि राज्य मिलता है तो वह भरतको ही मिलता है, ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि राम सब भाइयों-को अपने ही समान समझते हैं (बा० रा० २।८।१४-१५)

इसपर जब मन्थरा महाराज वृषारथकी निन्दाकर कैकेयी को फिर उभाड़ने लगी, तब तो कैकेयीने उसको बड़ी बुरी तरह फटकार दिया—

इदानीं यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता ।  
जिह्वायाश्छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनि ॥

पुनि अस कबहु कहसि परफोरी। तौ वरि जीभ कढ़ावउँ तोरी ॥

इस प्रसंगसे पता लगता है कि कैकेयी श्रीरामको कितना अधिक प्यार करती थी और उसे रामके राज्याभिषेकमें कितना बड़ा सुख था। इसके बाद मन्थराके पुनः कहासुनी करनेपर कैकेयीके द्वारा जो कुछ कार्य हुआ, उसे यहाँ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। उसी कुकार्यके लिये तो कैकेयी आज तक पापिनी और अनर्थकी मूलकारणरूपा कहलाती है। परन्तु विचार करनेकी बात है कि रामको इतना चाहने-वाली, कुलप्रथा और कुलकी रक्षाका इमेशा फिक्र रखनेवाली, परम सुरीला कैकेयीने राज्यको भले ऐसा अनर्थ क्यों किया ? जो थोड़ी देर पहले रामको भरतसे अधिक प्रिय बतलाकर उनके राज्याभिषेकके सुसंवादपर दिव्याभरण पुरस्कार देती थी और राम तथा वृषारथकी निन्दा करनेपर, भरतको राज्य देनेकी प्रतिज्ञा जाननेपर भी, मन्थराको 'वरफोरी' कहकर उसकी जीभ निकलवाना चाहती थी, वही जराली देरमें इतनी कैसे बदल जाती है कि वह रामको चौदह सालके लिये बनके दुःख सहन करनेके लिये भेज देती है और भरत-के शील-स्वभावको जानती हुई भी उसके लिये राज्यका वरदान चाहती है ?

इसमें रहस्य है, वह रहस्य यह है कि कैकेयीका जन्म भगवान् श्रीरामकी लीलामें प्रधान कार्य करनेके लिये ही हुआ था, कैकेयी भगवान् श्रीरामको परमव्यक्त परमात्मा समझती थी और श्रीरामके लीलाकार्यमें सहायक बननेके लिये उसने श्रीरामकी सच्चे अनुसार यह जहरकी घूँट पीयी थी। यदि कैकेयी श्रीरामको बन भिजवानेमें कारण न होती तो श्रीरामका लीला-कार्य ही सम्पन्न न होता।

न सीताका हरण होता और न राक्षसराज रावण अपनी सेनासहित मरता। रामने अवतार धारण किया था 'दुष्टतोंका विनाश करके साधुओंका परित्राण करनेके लिये।' दुष्टोंके विनाशके लिये हेतुकी आवश्यकता थी। बिना अपराध मर्णादापुरुषोत्तम श्रीराम किसीपर आक्रमण करने क्यों जाते? आजकलके राज्यलोभी लोगोंकी भाँति वे जबरदस्ती परस्वापहरण करना तो चाहते ही नहीं थे। मर्णादाकी रक्षा करके ही सारा काम करना था। रावणको मारनेका कार्य भी दयाको लिये हुए था, मारकर ही उसका उद्धार करना था। दुष्टकार्य करनेवालोंका बध करके ही साधु और दुष्टोंका दोनोंका परित्राण करना था। साधुओंका दुष्टोंसे बचाकर सनुपदेशसे और दुष्टोंका कालमूर्ति होकर मृत्युरूपसे—एक ही बारसे दो शिकार करने थे। पर इस कार्यके लिये भी कारण चाहिये, वह कारण था सीताहरण। इसके सिवा अनेक शाप-व्रदानोंको भी सत्ता करना था, पहलेके हेतुओंकी मर्णादा रक्षनी थी, परन्तु वन गये बिना सीताहरण होता कैसे? राज्याभिवेक हो जाता तो वन जानेका कोई कारण नहीं रह जाता। महाराज दशरथकी मृत्युका समय समीप आ पहुँचा था, उसके लिये भी किसी निमित्तकी रचना करनी थी। अतएव इस निमित्तके लिये देवी कैकेयीका पुनाव किया गया और महाराज दशरथकी मृत्यु, एवं रावणका बध, इन दोनों कार्यों के लिये कैकेयीके द्वारा राम-वनवासकी व्यवस्था करायी गयी।

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

ब्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्राकृद्भानि मायया ॥

‘भगवान् सबके हृदयमें स्थित हुए समस्त भूतोंको मायासे यन्त्राकृद्की तरह घुमाते हैं’ इसी गीतावाक्यके अनुसार सबके नियन्ता भगवान् श्रीरामकी ही प्रेरणासे देवताओंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवी कैकेयीकी बुद्धि फेर गयी ❁ और जब उसका पूरा असर हो गया, ( भावीवश प्रतीति उर आर्द्र ) तब भगवद्विष्णुनुसार बरतनेवाली कैकेयी

\* देवताओंने सरस्वतीको यह कहकर भेजा था कि—

‘मन्थरां प्रविशस्वाद्यौ कैकेयी च ततः परम्।

ततो विघ्ने समुपशान्ते पुनरेहि दिवं शुभे ॥’

पहले मन्थरामें प्रवेशकरके फिर कैकेयीकी बुद्धिमें प्रवेश करना और रामके अभियेकमें विघ्नकरके वापस लौट आना।

( अघ्यात्मरामायण )

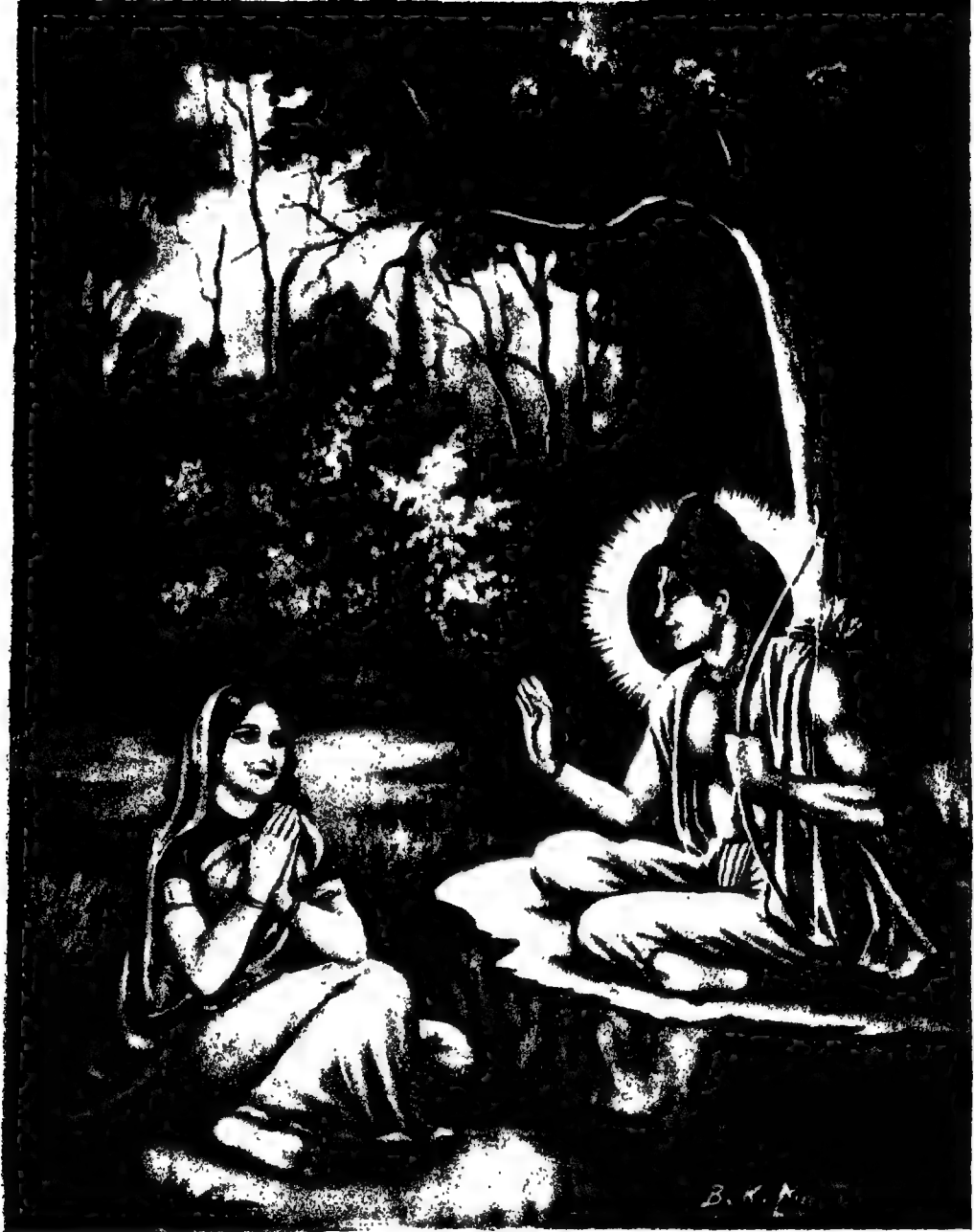
भगवान्की मायावश ऐसा कार्य कर बैठी,† जो अत्यन्त क्रूर होनेपर भी भगवान्की लीलाकी सम्पूर्ण ताके लिये अत्यन्त आवश्यक था।

अब प्रश्न यह है कि ‘जब कैकेयी भगवान्की परम भक्त थी, प्रभुकी इस आभ्यन्तरिक गुणलीलाके अतिरिक्त प्रकारमें भी श्रीरामसे अत्यन्त प्यार करती थी, राज्यमें और परिवारमें उसकी बड़ी सुख्याति थी, सारा कुटुम्ब कैकेयीसे खुश था, फिर भगवान्ने उसीके द्वारा यह भीषण कार्य कराकर उसे कुटुम्बियों और अवधवासियोंके द्वारा तिरस्कृत, पुत्रद्वारा अपमानित और इतिहासमें सदाके लिये लोक-निन्दित क्यों बनाया? जब भगवान् ही सबके प्रेरक हैं, तो साध्वी सरला कैकेयीके मनमें सरस्वतीकेद्वारा ऐसी प्रेरणा ही क्यों करवायी, जिससे उसका जीवन सदाके लिये दुखी और नाम सदाके लिये बदनाम हो गया? इसीमें तो रहस्य है। भगवान् श्रीराम साक्षात् सच्चिदानन्द-परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुरागिणी सेविका थी। जो सबसे गुण और कठिन कार्य होता है उसको सबके सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है, और न हर कोई उसे करनेमें ही समर्थ होता है। वह कार्य तो किसी अत्यन्त कठोरकर्मी, घनिष्ठ और परम प्रेमीके द्वारा ही करवाया जाता है। खास करके जिस कार्यमें कत्ताकी बदनामी हो, ऐसे कार्यके लिये तो उसीको चुना जाता है, जो अत्यन्त ही अन्तरंग हो। रामका लोकापवाद मिटानेके लिये श्रीसीताजी वनवास स्वीकार करती हुई सन्देश कहलाती हैं कि, मैं जानती हूँ, कि मेरी शुद्धतामें आपको सन्देह नहीं है, केवल आप लोकापवादके भयसे मुझे त्याग रहे हैं। तथापि मेरे तो आप ही परमगति हैं। आपका लोकापवाद दूर हो, मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी शोक नहीं है।’ यहाँ सीताजी ‘रामकाज’ के लिये कष्ट सहती हैं परन्तु

† कैकेयीके ऐसा करनेका एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि ‘कैकेयी जब लड़कपनमें अपने पिताके घर थी, तब वहाँ एक दिन एक कुरूप ब्राह्मणको आया देखकर कैकेयीने उभकी दिलगी उड़ायी थी और निन्दा की थी। इसमें क्रुद्ध होकर उस तपस्वी ब्राह्मणने कैकेयीको यह शाप दिया था कि ‘तू अपने रूपके अभिमानमें अन्धी होकर मेरे कुरूप वदनकी निन्दा करती है, इसलिये तू भी कुरूप स्त्रीकी बातें आकर ऐसा कर्म कर बैठेगी जिससे जगत्में तेरी बड़ी भारी नीच निन्दा होगी !







कंकेयौकी श्रमा-याचना ।

क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासाराहि साधवः ।

त्वं साक्षात् विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ॥

उनकी बदनामी नहीं होती, प्रशंसा होती है। उनके पातिव्रतकी आज्ञातक पूजा होती है परन्तु कैकेयीका कार्य इससे अत्यन्त महान् है। उसे तो 'रामकाज' के लिये राम-चिरोधी मशहूर होना पड़ेगा। 'बावन्धुप्रदिवाकरौ' गालियाँ सहनी पड़ेंगी। पापिनी, कलङ्किनी, कुलघातिनीकी उपाधियाँ ग्रहण करनी पड़ेंगी, वैधव्यका दुःख स्वीकारकर पुत्र और नगरनिवासियोंद्वारा तिरस्कृत होना पड़ेगा। तथापि 'रामकाज' जरूर करना पड़ेगा ! यही रामकी इच्छा है और इस 'रामकाज' के लिये रामने कैकेयीको ही प्रधान पात्र चुना है। इसीसे यह कलङ्कका चिर टीका उसीके सिर पोता गया है। यह इसीलिये कि वह परमेश्वर श्रीरामकी परम अन्तरंग प्रेमपात्री है, वह श्रीरामकी लीलामें सहायिका है, उसे बदनामी-सुशानामीसे कोई काम नहीं, उसे तो सब कुछ सहकर भी 'रामकाज' करना है। रामरूपी सूत्रधार जो कुछ भी पार्ट दें, उनके नाटककी सांगतके लिये उनकी आज्ञानुसार इसे तो वही खेल खेलना है, चाहे वह कितना ही कुरबयों न हो। कैकेयी अपना पार्ट बड़ा अच्छा खेलती है। राम अपने 'काज' के लिये सीता और लक्ष्मणको लेकर सुरी-सुरी बनके लिये बिदा होते हैं। कैकेयी इस समय पार्ट खेल रही थी, इसलिये उसको उस सूत्रधारसे—नाटकके स्वामीसे—जिसके इंगितसे जगन्नाटकका प्रत्येक परदा पड़ रहा है और उसमें प्रत्येक क्रिया सुचारु रूपसे हो रही है—एकान्तमें मिलनेका अवसर नहीं मिलता। इसीलिये वह भरतके साथ वन जाती है और वहाँ श्रीरामसे—नाटकके स्वामीसे—एकान्तमें मिलकर अपने पार्टके लिये पूछती है और साधारण स्त्रीकी भाँति लीलासे ही लीलामयसे उनको दुःख पहुँचानेके लिये चमा चाहती है परन्तु लीलामय भेद खोलकर साफ कह देते हैं कि 'वह तो मेरा ही कार्य था, मेरी ही इच्छासे, मेरी मायासे हुआ था, तुम तो निमित्तमात्र थी, सुखसे भजन करो और मुक्त हो जाओ।' वहाँका प्रसंग इस प्रकार है—जब भरत श्रीरामको खोटा ले जानेका बहुत आग्रह करते हैं, किसी प्रकार नहीं मानते, तब भगवान् श्रीरामका रहस्य जाननेवाले मुनि वशिष्ठ श्रीरामके सङ्केतसे भरतको अलग ले जाकर एकान्तमें समझाते हैं—'पुत्र! आज मैं तुम्हें एक गुप्त रहस्य सुना रहा हूँ। श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इनसे रावण-वचके लिये प्रार्थना की थी, इसीसे इन्होंने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लिया है। श्रीसीताजी साक्षात् योगमाया हैं। श्रीलक्ष्मण शेषके अवतार हैं, जो

सदा श्रीरामके साथ उनकी सेवामें लगे रहते हैं। श्रीरामको रावणका वध करना है, इससे वे जरूर वनमें रहेंगे। तेरी माताका कोई दोष नहीं है—

कैकेयावरदानादि यद्यन्निष्ठुर भाषणम् ॥

सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयत्कथम्

तस्मात्तज्जाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तते ॥

(अध्यात्म रा०)

'कैकेयीने जो वरदान माँगे और निष्ठुर वचन कहे थे, सो सब देवका कार्य था (रामकाज था) नहीं तो भला, कैकेयी कभी ऐसा कह सकती? अतएव तुम रामको अबोध्या लौटा ले चलनेका आग्रह छोड़ दो।'।

रास्तेमें भरद्वाजमुनिने भी संकेतसे कहा था—

न दांषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया ।

राम प्रत्राजनं ह्येतत्सुखोदकं भविष्यति ॥

देवानां दानवानां च ऋषीणां भवितात्मनाम् ।

हितमेव भविष्यद्भि रामप्रत्राजनादिह ॥

(वा० रा० २।१२।२९-३०)

'हे भरत, तू माता कैकेयी पर दोषारोपण मत कर। रामका वनवास समस्त देव दानव और ऋषियोंके परम हित और परम सुखका कारण होगा।' अब श्रीवसिष्ठजीसे स्पष्ट परिचय प्राप्त कर भरत समझ जाते हैं और श्रीरामकी चरण-पादुका सादर लेकर अबोध्या लौटनेकी तैयारी करते हैं। इधर कैकेयीजी एकान्तमें श्रीरामके समीप जाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाती हुई व्याकुल हृदयसे—

प्राञ्जलिः प्राह हं राम ! तव राजविघातनम् ।

कृतं मया दुष्टधिया मायामोहितचिंतसा ॥

क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासाराहि साधवः ।

त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ॥

मायामानुषरूपेण मोहयस्वस्त्रिं जगत् ।

त्वयैव प्रेरितो लोकः कुस्ते साध्वसाधुवा ॥

त्वदधीनमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करंति किम् ।

यथा कृत्रिम नर्तक्यो नृत्यन्ति कुहकेच्छया ॥

त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ।

त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यता ॥

पाहि विश्वेश्वरानन्त ! जगन्नाथ नमोस्तु ते ।

छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ॥

त्वज्ज्ञानामलख्मणेन त्वामहं शरणं गता ॥

(अध्यात्म रा०)

—हाथ जोड़कर बोली 'हे श्रीराम ! तुम्हारे राज्याभिषेकमें मैंने विघ्न किया था । उस समय मेरी बुद्धि देवताओंने बिगाड़ दी थी और मेरा चित्त तुम्हारी भाषासे मोहित हो गया था । अतएव मेरी इस दुष्टताको तुम क्षमा करो, क्योंकि साधु क्षमाशील हुआ करते हैं । फिर तुम तो साक्षात् विष्णु हो । इन्द्रियोंसे अन्धकार सनातन परमात्मा हो, भाषासे अनुप्यरूप-धारी होकर समस्त विश्वको मोहित कर रहे हो । तुम्हींसे प्रेरित होकर लोग साधु-असाधु कर्म करते हैं । यह सारा विश्व तुम्हारे अधीन है, अस्वतन्त्र है, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं कर सकता । जैसे कठपुतलियाँ नशेवालेकी इच्छानुसार ही नाचती हैं, वैसे ही यह बहुरूपधारिणी नर्तकी भावा तुम्हारे ही अधीन है । तुम्हें देवताओंका कार्य करना था अतएव तुमने ही ऐसा करनेके लिये मुझे प्रेरणा दी । हे विश्वेश्वर ! हे अनन्त ! हे जगन्नाथ ! मेरी रक्षा करो । मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । तुम अपनी तत्त्वज्ञानरूपी निर्मल तीक्ष्णधार तलवारसे मेरी पुत्र-वित्तादि विषयोंमें ज़ेहुरूपी फाँसीको काट दो । मैं तुम्हारे शरण हूँ'

कैकेयीके स्पष्ट और सरल वचन सुनकर भगवान्ने हँसते हुए कहा—

यदाह मां महाभाग नानृतं सत्यमेव तत् ।  
मयैव प्रेरिता बाणी तव वक्ताद् विनिर्गता ॥  
देवकार्यार्थं सिद्धयर्थमत्र दांपः कुतस्तव ।  
गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिनानिशम् ॥  
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्षयसेऽचिरात् ।  
अहं सर्वत्र समदृक् द्वेष्यो वा प्रिय पद वा ॥  
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम् ।  
मन्माया मोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम् ॥  
सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः ।  
दिष्टया मद्रोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥  
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः ।

(अध्यात्म रा०)

हे महाभाग ! तुम जो कुछ कहती हो सो सत्य है इसमें किञ्चित् भी निष्ठा नहीं । देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये

मेरी ही प्रेरणासे उस समय तुम्हारे मुखसे वैसे वचन निकले थे । इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं । (तुमने तो मेरा ही काम किया है ।) अब तुम जाओ और हृदयमें सदा मेरा ध्यान करती रहो । तुम्हारा जेहपास सब ओरसे दूट जायगा और मेरी इस भक्तिके कारण तुम शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी । मैं सर्वत्र समदृष्टि हूँ । मेरे न तो कोई द्वेष्य है और न मित्र । मुझे जो भजता है, मैं भी उसको भजता हूँ । परन्तु हे माता ! जिनकी बुद्धि मेरी भाषासे मोहित है वे मुझको तत्त्वसे न जानकर सुख-दुःखोंका भोक्ता साधारण अनुप्य मानते हैं । यह बड़े सौभाग्यका विषय है कि तुम्हारे हृदयमें मेरा यह भव-नाशक तत्त्वज्ञान हो गया है । अपने घरमें रहकर मेरा स्मरण करती रहो । तुम कभी कर्मोंसे लिप्त नहीं होओगी ।'

भगवान्के इन वचनोंसे कैकेयीके स्थितिका पता लगाता है । भगवान्के कथनका सार यही है कि 'तुम महाभाग्यवती' हो, लोग चाहे तुम्हें अभागिनी मानते रहें । तुम निर्दोष हो, लोग चाहे तुम्हें दोषी समझें । तुम्हारे द्वारा तो यह कार्य मैंने ही करवाया था । जिन लोगोंकी बुद्धि भाषा-मोहित है, वही मुझको मामूली आवामी समझते हैं, तुम्हारे हृदयमें तो मेरा तत्त्वज्ञान है, तुम धन्य हो !

भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर कैकेयी आनन्द और आश्चर्यपूर्ण हृदयसे सैकड़ोंबार साष्टाङ्ग प्रणाम और प्रदक्षिणा करके सानन्द भरतके साथ अयोध्या लौट गयी ।

उपर्युक्त स्पष्ट वर्णनसे यह अलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि कैकेयीने जान-भूलकर स्वार्थबुद्धिसे कोई अनर्थ नहीं किया था । उसने जो कुछ किया सो श्रीरामकी प्रेरणासे 'रामकाज' के लिये ! इस विवेचनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि कैकेयी बहुत ही उच्चकोटिकी महिला थी । वह सरल, स्वार्थहीन, प्रेममय, जेह-वास्तव्य-युक्त, धर्मपरायणा, बुद्धिमती, आदर्श पतिव्रता, निर्भय वीरांगना होनेके साथ ही भगवान् श्रीरामकी अनन्य भक्त थी । उसकी जो कुछ बदनामी हुई और हो रही है, सो सब श्रीरामकी अन्तरंग प्रीतिके निर्वरानरूप ही है । जिस देवीने जगत्के आचार, प्रेमके समुद्र अनन्य रामभक्त भरतको जन्म दिया, वह देवी कदापि तिरस्कारके योग्य नहीं हो सकती, ऐसी प्रातःस्मरणयोग्य देवीके चरणोंमें बारम्बार अनन्त प्रणाम है ।

—कैकेयी-नन्दन-पद-नन्दन

## श्रीशत्रुघ्नजी



हामना श्रीशत्रुघ्नजी भगवान् श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण तीनोंसे छोटे थे। श्रीसुमित्राजीके पुत्र्यवान् पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें रामायणमें जो कुछ वर्णन आया है, उससे यही पता लगता है कि श्रीशत्रुघ्नजी बहुत थोड़ा बोलनेवाले, अत्यन्त तेजस्वी, धीर, सेवापरायण, रामदासानुवास, पुत्रचाप काम करनेवाले, सच्चे सत्यव्रत थे। श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न दोनों ही भाइयोंने अपना जीवन परम पवित्र सेवामें बिताया परन्तु लक्ष्मणकी सेवासे भी शत्रुघ्नकी सेवाका महत्त्व एक प्रकारसे अधिक है। श्रीलक्ष्मण श्रीरामके सेवक हैं, परन्तु शत्रुघ्न तो श्रीराम-सेवक भरतजीके चरण-सेवक और साथी हैं। ज्ञानकी भाँति उनके साथ रहते और पुत्रचाप आज्ञानुसार सेवा किया करते हैं। ये बड़े संकोची हैं, अपनी ओरसे कभी किसी कामके बीचमें नहीं बोलते। किसीपर क्रोध नहीं करते, अपनी ओरसे आगे होकर कुछ भी नहीं करते। सेवकोंके सेवकका यही तो धर्म है।

श्रीशत्रुघ्नजीके अपनी ओरसे बोलनेके विशेष अवसर दो मिलते हैं। प्रथम, जब श्रीभरतजी ननिहालसे आकर माता कैकेयीसे मिलते हैं और कैकेयी पाषाण-हृदया बनकर महाराज दशरथकी मृत्यु और श्रीराम-लक्ष्मणके वन जानेका विवरण सुनाती है और कहती है कि 'बेटा ! यह सब मैंने तेरे ही लिये किया है—

तत ! बात में सकल सँवारी । मह मन्थरा सहाय निचारी ॥

तब भरत शोककुल होकर विज्ञाप करते और आवेश में आकर माताको भलाबुरा कहने लगते हैं। शत्रुघ्न भी माताकी कुटिलतापर अत्यन्त क्रुद्ध हैं, शरीरमें आग लग रही है, परन्तु उनका तो बोलनेका कुछ अधिकार है ही नहीं।

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई । जराहिं गात रिसि कलु न बसाई ॥

इसी समय कुबरी मन्थरा सज्जनकर वहाँ जाती है वह भरतको अपनी ही प्रकृतिके अनुसार स्वार्थी और राज्य-लोभी समझती है। वह समझती है कि भरतके लिये राज्यका सारा सामान मैंने ही बनाया है, वह मुझे इनाम देगा, इसीलिये बनठन कर जाती है।

ईसती-उछलती सजीवजी कुबरीको देखकर शत्रुघ्नजी क्रोधको नहीं सहाज सकते—

लखि रिसि भरेठ लषण लघु भाई । बरत अनल घृत आहुति पाई ॥  
हुमुकि ललत तकि कूबर मारा । परि मुँह भरि महि करत पुकारा ॥  
कूबर टूटेठ फूट कपारु । दलित दसन मुख रुधिर प्रचारु ॥  
पुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी । लगे घसीटन धीर धीर सोटी ॥

उपयुक्त इनाम मिल गया। दयामय भरतजीने मन्थराको धुका दिया।

दूसरे, श्रीराम ज्योष्याके सिंहासनपर आसीन हैं, तीनों भाई सेवा और धर्मयुक्त शासनमें सहायता करते हैं। एक समय तपस्विणोंने आकर श्रीरामचन्द्रसे लवणासुरके अत्याचारोंका वर्णन करते अपना दुखड़ा सुनाया और उसे मारनेके लिये प्रार्थना की। दुष्टदर्पहारी शिष्टरत्न भगवान् श्रीरामने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और दरबारमें पूछा कि 'लवणासुरको बध करनेका श्रेय तुम लोगोंमें कौन लेना चाहते हैं? वहाँकी समृद्धिका अधिकारी कौन होना चाहते हैं? भरत या शत्रुघ्न?'

श्रीभरतने कहा कि 'मैं लवणासुरका बध कर सकता हूँ, इसपर शत्रुघ्नजीने प्रार्थना की कि 'प्रभो ! श्रीभरतजी बहुत काम कर चुके हैं। आपके वनवासके समय इन्हींने ज्योष्याका पालन किया, अनेक प्रकार दुःख सहें, नन्दी-ग्राममें कुशकी शय्यापर सोये, कल-मूलका आहार किया, जटा-रक्खी, वस्त्र पहने, सब कुछ किया। अब मेरी प्रार्थना है कि मेरे रहते इन्हें युद्धके लिये न भेजकर मुझे ही आज्ञा दीजिये।'

शत्रुघ्नजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामने उनका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा 'भाई, तुम्हीं जाकर वैश्य-वध करो, मैं तुम्हें मधुदैत्यके सुन्दर नगरका राजा बनाता हूँ।' श्रीराम जानते थे कि शत्रुघ्न दुष्ट राजसका बध करना चाहते हैं, उन्हें राज्यका लोभ नहीं है। इसलिये पहलेसे ही कह दिया कि 'श्रीवशिष्ठ आदि ऋषि मन्त्र और विधिपूर्वक तुम्हारा अभियेक करेंगे। मैं जो कुछ कहूँ सो तुम्हें स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि बालकोंको गुरु-जनोंकी आज्ञाका पालन करना ही उचित है।'

इसपर वीर्य-सम्पन्न श्रीशत्रुघ्नजीबड़े ही संकोचमें पढ़कर धीरेसे कहने लगे। 'महाराज ! बड़े भाइयोंके रहते राज्य-गद्दीपर बैठना मैं अधर्म समझता हूँ, जब भरतजी महाराज लवणासुरको मारनेके लिये कह रहे थे तब मुझे बीचमें नहीं बोलना चाहिये था। मेरा बीचमें बोलना ही मेरे लिये

इस दुर्गति का कारण हुआ। अब आपकी आज्ञा का उल्लंघन करना भी मेरे लिये कठिन है। क्योंकि आपसे मैं यह धर्म कई बार सुन चुका हूँ।'

इसके बाद शत्रुजयी लवणासुर पर चढ़ाई करते हैं, रास्ते में श्रीवाल्मीकिजी के आश्रम में ठहरते हैं, उसी रात को सीता के दोनों कुमारों का जन्म होता है, जिससे शत्रुज को बड़ा हर्ष होता है। फिर जाकर लवणासुर का वध करके वहाँ

बारह वर्ष रहकर श्रीराम-वर्णनार्थ लौटते हैं। आते समय पुनः श्रीवाल्मीकि के आश्रम में ठहरते हैं और लवकुश के द्वारा सुनि-रचित रामायण का गान सुनकर आनन्द में लोटपोट हो जाते हैं, अयोध्या आकर सबसे मिलते हैं, पुनः श्रीराम की आज्ञा से मधुपुरी लौटकर धर्मपूर्वक शासन करते हैं।

इनके जीवन से भी मर्यादा की बड़ी शिक्षा मिलती है।

—रिपुहन-दासानुदास

## श्रीरामप्रेमी दशरथ महाराज



नके यहाँ भक्तिप्रेमवशात् साक्षात् सच्चिदानन्द-वन प्रभु पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए। उन परम-भान्यवान् महाराज श्रीदशरथ की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? महाराज दशरथजी मनु के अवतार थे, जो भगवान् को पुत्ररूप से प्राप्त कर अपरिमित आनन्द का अनुभव करने के लिये ही जराधाम में पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवन का परिष्कार और मोक्षतत्त्व का संन्यास करके श्रीराम-प्रेम का आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनुमहाराज की भाँति ही प्रजा की रक्षा करने वाले थे। वे वेद के ज्ञाता, विराट् सेना के स्वामी, वृद्धशी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियों के मित्र, महान् यज्ञ करने वाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियों के सचरा सद्गुणों वाले, राजर्षि, त्रैलोक्य-प्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रों वाले, जितेन्द्रिय, अतिरथी, धन-भान्य के सङ्ग्रह में कुबेर और इन्द्र के समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा काम का शास्त्रानुसार पालन करने वाले थे। (वा० रा० १।६।१ से ५ तक)

इनके मन्त्रिमण्डल में महामुनि बशिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, छटि,

जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राह्वर्चन, अक्रोप और धर्मपाल आदि विद्याविनयसम्पन्न, अनीति में लजाने वाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र-हृदय, शाकज्ञ, शकज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञा का अनुसरण करने वाले, तेजस्वी, ब्रह्मवान्, कीर्तिमान्, ईशमुख, काम-क्रोध और लोभ से बचे हुए पूर्ण सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे। (वा० रा० १।७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डल के प्रभाव से प्रजा सब प्रकार से धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथ की सहायता देवता लोग भी चाहते थे। महाराज दशरथ ने अनेक यज्ञ किये थे। अन्त में पित्र-मातृ-भक्त अक्षयकुमार के वध का प्रायश्चित्त करने के लिये अश्वमेध तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आसोर्धाम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञों में दशरथ ने अम्याप्य वस्तुओं के अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोने की मुहरें और चालीस करोड़ चाँदी के रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्ति के लिये ऋष्यशृङ्ग को अश्विज बनाकर राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना अपना भाग लेने के लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनिऋषियों की प्रार्थना पर भगवान् श्रीविष्णु ने दशरथ के यहाँ पुत्ररूप से अवतार

\* यद्यपि रामवनवास का घटना के कारण कहीं कहीं दशरथजी को कामुक बतलाया गया है। परन्तु ऐसी बात नहीं थी, यदि वे कामपरायण होकर कैकेयों के वश में होते तो यक्षपुरुष की स्त्री का आधाभाग कौसल्या को और केवल अष्टमांश ही कैकेयी को नहीं देते। यद्यपि उन्होंने बहुविवाह किये थे, जो अवश्य ही आदर्श नहीं है परन्तु यह उस समय की एक प्रथा-सी थी। भगवान् श्रीराम ने इस प्रथा को तोड़कर आदर्श सुधार किया।

† जो दसहजार धनुर्धारियों के साथ अकेला लड़ सकता है, उसे महारथी कहते हैं और जो ऐसे दसहजार महारथियों के साथ अकेला लोहा लेता है, वह अतिरथी कहलाता है।

खेना स्वीकार किया और वशपुरुषने स्वयं प्रकट होकर पावसात्रसे भरा हुआ सुवर्णपात्र देते हुए दशरथसे कहा कि 'हे राजन् ! यह खीर अत्यन्त श्रेष्ठ आरोग्यवर्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करने-वाली है, इसको अपनी कौसल्या आदि तीनों रानियोंको खिला दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समझकर उसे खीरका आधा भाग, मैकली सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग दिया। सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये बचा हुआ अष्टमांश राजाने फिर सुमित्राजीको दे दिया। जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए। इसप्रकार भगवान्ने चार रूपोंसे अवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परमप्रिय थे, परन्तु इन सबमें श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये, क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म-धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की गयी थी ! वे रामका अपनी आँखोंसे घणभरके लिये जी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी पञ्चरत्नार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामकी उम्र पन्द्रह वर्षसे अधिक थी, परन्तु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वशिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए। श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तब तक प्रायोंको रक्खा और आपके वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिबुधते ही राम-प्रेमानन्दमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली !

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा केकयके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिविक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ-पुत्रके अभिषेककी रघुकुलकी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आशावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परन्तु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम।

(२) श्रीरामके वनगमनद्वारा राक्षस-व्यादिरूप कार्योंके द्वारा दुष्ट-दहन।

(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श आत्-प्रेम।

(४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग।

(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-धर्म।

(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्म-प्रेम और राजनीति-कुशलता।

(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता।

(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'राम-काज' करना।

(९) श्रीहनुमान्जीकी निष्काम-प्रेमाभक्ति।

(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय प्राप्ति।

(११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता।

(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश।

यदि भगवान् श्रीरामको बनवास न होता, तो इन मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। वे सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-खीजा समाप्त कर प्रेमकी टेक रख ली।

जिजन-मरन-फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा ॥

जियत राम-बिधु-बदन निहारा। राम-विरह मरि मरन सँबारी ॥

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहपै प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य भावसे राम-परायण हो, रामके लिये, राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया ?

श्रीरामायणमें लङ्का-विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठा हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिंगन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि 'हे सुमित्रा-सुलवर्चन लक्ष्मण ! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्र-

सहित तीनों लोक, सिद्धपुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिषेक कर उनकी पूजा करते हैं—  
‘वेदोंमें जिन अत्यन्त अचर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है वे परम तपस्वी राम वही हैं।’ (वा० रा० ६।११९।२७-३०)

यहाँपर शङ्का होती है कि जब शुद्ध सच्चिदानन्दधन श्रीराममें मन जगाकर ‘राम-राम’ कीर्तन करते हुए दशरथ-ने प्रायोंका त्याग किया था, तब फिर उनकी मुक्ति कैसे नहीं हुई? यदि श्रीरामनामके प्रतापसे मुक्ति नहीं होती तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि अन्तकाळमें श्रीरामनाम लेनेसे समस्त बन्धन कट जाते हैं और नाम लेनेवाला परमात्माको प्राप्त होता है? और यदि राममें मन जगाकर मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती तो फिर गीताके उस भगवद्-वचनकी व्यर्थता होती है जिसमें भगवान् ने यह कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।

यः प्रयाति स मद्भावे याति नस्त्यक् संशयः ॥

(८।५)

‘जो पुरुष अन्तकाळमें मुझको स्मरण करता हुआ शरीर छोड़कर जाता है, वह निःसन्देह ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।’

इन प्रश्नोंका उत्तर तो गीताके इससे अगले श्लोकमें ही मिल जाता है। जिस प्रकारकी भावना करता हुआ मनुष्य प्राण छोड़ता है, उसीप्रकारकी गतिको प्राप्त होता है। ज्ञानमार्गी साधक अद्वैत अक्षर परब्रह्ममें चित्तकी वृत्तियोंको बिलीन कर देह त्याग करता है तो उसकी अवस्था ही ‘सायुज्य’ मुक्ति होती है परन्तु ऐसा हुए बिना केवल श्रीरामनामके जपसे ‘सायुज्य’ मुक्ति नहीं होती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीराममें मन जगाकर ‘राम-राम’ कीर्तन करते हुए प्राण-त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है, सब तो यह है कि बिना मन जगाये भी श्रीरामनामका अन्त-काळमें उच्चारण हो जानेसे ही जीव मुक्तका अधिकारी हो जाता है, इसीसे सन्तोंने अन्तमें श्रीरामनामको दुर्लभ बताया है—

जनम जनम मुनि जतन करहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥

परन्तु मुक्ति होती वैसी ही है, जैसी वह चाहता है। ‘तो क्या मुक्ति भी कई प्रकारकी है? यदि कई प्रकारकी मुक्ति हैं तो फिर मुक्तिका महत्त्व ही क्या रह गया?’ इस

प्रश्नका उत्तर यह है कि ‘तत्त्वबोधरूप’ मुक्ति तो एक ही है। परन्तु केवल तत्त्वबोध होकर ‘सायुज्य’ मुक्ति भी हो सकती है, जिसमें जीवकी भिन्न सत्ता पदार्थ स्व-स्वरूप परमात्म-सत्तामें अभिन्नरूपसे विलीन हो जाती है। और तत्त्वका पूरा बोध होनेके साथ ही साथ सगुण साकार, सौन्दर्य और माधुर्यकी पराकाष्ठा अनुप-रूप भगवत्-स्वरूपमें परम प्रेम होनेके कारण वह मुक्तपुरुष (सायुज्य मुक्तिरूपी घनका स्वामी होनेपर भी) भगवान् की सामीप्य, सावोक्त्य, साधि और साकृष्य-मुक्तिकारसमय सुख भोगता है। केवल तत्त्वबोधद्वारा प्रायोंका उच्छेदन न होकर परमात्मामें मिला जाना, यह अभेद मुक्ति, और अभेद ज्ञान-पूर्वक साकार ईश्वरकी सेवार्थ व्यवहारमें भेद रहना, यह अद्वैत भेदमुक्ति, ये दोनों बालवमें एक ही मुक्तिके दो स्वरूप हैं। परन्तु शुद्ध प्रेमीभक्त इन दोनों प्रकारकी मुक्तियोंसे भी अलग रहकर केवल भगवत्सेवामें धृष्ट रहता है और जैसे भगवान् नित्य, मुक्त, भव, अविनाशी होते हुए भी जीवासे अवतार-शरीर धारण करके विविध कर्म करते हैं, ऐसे ही वह भक्त भी उन्हींका अनुसरण करता हुआ उन्हींकी भाँति भगवान् की पवित्र जीवामें जीवासे ही जगा रहता है। वह मुक्ति नहीं चाहता। अतएव जब उसे भगवद्विष्णुसे, भगवदर्थ, भगवदाज्ञानुसार निर्लेपभावसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है तब वह भगवत्स्मरण और भगवत्ज्ञान-गुण-कीर्तन करता हुआ ही जाता है। दूसरा काम तो उसको कोई रहता ही नहीं, क्योंकि उसकी स्थिति हृद अन्नन्व विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेममय परमात्मामें ही रहती है। इतना होनेपर भी उपर्युक्त कारणसे ऐसे भक्तकी अभेद मुक्ति नहीं होती। इसीलिसे भगवान् शिकजी जगजननी उमासे दशरथके सम्बन्धमें कहते हैं—

ता तें उमा मोच्छ नहि पावा। दसरथ भेद-भगति मन लावा ॥

सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्हकहँ राम भगति निज देहीं ॥

अतएव वह नहीं समझना चाहिये कि अन्तमें श्रीरामनामका जप-कीर्तन करनेसे और श्रीराममें मन जगानेसे मुक्ति नहीं होती और इसी कारण दशरथजीकी भी मुक्ति नहीं हुई। समझना यह चाहिये कि दशरथजीको उस मुक्तिकी कोई परवा नहीं थी। वे तो रामरसके रसिक थे। इसीलिसे उस रसके सामने उन्होंने मोक्षका भी जान-भूक-कर ही संन्यास कर दिया। ऐसे मोक्ष-संन्यासी प्रेमी भक्तों-



की चरख-सेवाके लिये मुक्ति तो पीछे पीछे धूमा करती है ।  
भगवान् ने तो अपने श्रीमुखसे बर्हातक कह डाला है—

न पारमेष्ठ्यं न मेहन्द्रधिष्यं  
न सार्वभौम न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धिरपुनर्मेवं वा  
मय्यर्पितत्मेच्छति मद्दिनान्मत् ।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिरं शङ्करः ।

न च सङ्ख्येणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।

अनुब्रज्याम्यह नित्यं पूजयेत्यहधिरिणुभिः ॥

(श्रीमद्भागवत ११।१४।१४-१६)

जिस मेरे भक्तने अपना आत्मा मुझको अर्पण कर दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, चक्रवर्ती राजाका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धिर्वाँ और मोक्ष भी नहीं चाहता । हे उद्धव ! मुझे आत्मस्वरूप शिवजी, सङ्कर्षण, प्रिया लक्ष्मीजी और अपना स्वरूप भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने मुझ-जैसे अनन्य भक्त प्रिय हैं । ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदर्शी भक्तोंकी चरख-रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके पीछे पीछे फिरता हूँ । कैसी महिमा है ?

यद्यपि भक्त अपने भगवान् को पीछे पीछे फिरानेके लिये मुक्तिका तिरस्कार कर उसे नहीं भजते, उनका तो भगवान् के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे भगवान् के सिवा दूसरी ओर ताकना ही नहीं जानते । बस, यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर वे मुक्तिका निरादर कर भक्ति करते हैं ।

असंविचारि हरिभगतसंयाने । मुक्ति निरादरि भगति कुभाने ॥

क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं—जिनको देखकर आत्माराम मुनिर्षोंको भी उनकी अहैतुकी भक्ति करनी पड़ती है ।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्मे ।

कुर्वन्त्यऽहैतुकीं भक्तिं इत्थंभूत गुणो हरिः ॥

दशरथकुमार-पद-रज

## विदेह-भक्त राजा जनक

(लेखक—श्रीकृपानारायणजी चौधरी)

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्मे ।

कुर्वन्त्यऽहैतुकीं भक्तिं इत्थंभूत गुणो हरिः ॥

(श्रीमद्भागवत)

नकी माया-ग्रन्थियाँ टूट गयी हैं, ऐसे आत्मा-  
जि राम, आसकाम, जीवन्मुक्त मुनिगण भी  
भगवान् श्रीहरिकी अहैतुकी भक्ति करते हैं,  
क्योंकि हरिमें ऐसे ही गुण हैं ।

विदेहराज तिरहुति-नरेश जनकजीको कौन नहीं जानता ? आप सर्वगुणसम्पन्न और सर्वसन्नावाधार, परम तत्त्वज्ञ, मर्मज्ञ, असाधारण ज्ञानी, धर्म-धुरन्धर और नीति-कुशल महान् पंडित थे । आपकी विमल कीर्ति विविध भाँतिले गायी गयी है, परन्तु आपके प्रकृत महत्त्वका पता बहुत थोड़े ही लोगोंको लग सका है । श्रीगुसाईजी महाराज आपको प्रणाम करते हुए करते हैं—

प्रनवौं परिजन सहित विदेहू । जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू ॥

जोग भोग महँ रखैठ गोई । राम-बिलाकंत प्रगटेठ सोई ॥

पृथ्वराज सच्चिदानन्दचन, श्रीरघुनाथस्वामी महाराजके साथ श्रीजनकरायजीका जो अत्यन्त 'गूढ़ सनेह' और निष्ठा 'भोग' (प्रेमका अभेद सम्बन्ध) है, सो सर्वथा अनिर्वचनीय है । कहना तो दूर रहा, कोई उसे सम्यक् प्रकारसे जान भी नहीं सकता । उस प्रेमतत्त्वको तो बस आप ही दोनों जानते हैं । दूसरे बेचारे जानें भी कैसे ? आपने तो उस अकथनीय अनुपम अनन्त प्रेम-धनको पूरे लोभीकी भाँति इन्द्रिय-व्यवसायरूप प्रयत्नोंमें खिपा रक्खा है और एक धन-प्राण विषयी मनुष्यके सदृश उसी परमधनके चिन्तनमें निरन्तर निमग्न रहते हैं । लोग आपको एक महान् ऐश्वर्यपरायण राजा, नीतिकुशल प्रजारज्जक नरपति समझते हैं, कुछ लोग ज्ञानिर्षोंका आचार्य भी मानते हैं, परन्तु आपके अन्तःस्थल-के निगूढ़ प्रेमका परिचय किसीको नहीं है ।

प्यारी-दुजारी श्रीसीताजीके स्वयम्बरकी तैयारी हुई है, देश-विदेशके राजा-महाराजाधियोंको निमन्त्रण दिया गया है । पराक्रमकी परीक्षा देकर सीताको प्राप्त करनेकी लालसासे बड़े-बड़े रूप-गुण और बलवीर्य-सम्पन्न राजा-महाराजा मिथिला-में पधार रहे हैं ।



इसी अवसरमें गाबि-तनय मुनि विरवामित्रजी अपने तथा अन्यान्य ऋषियोंके यज्ञकी रक्षाके लिये अवधाराज महाराज दशरथजीके प्रायाधिक मिय पुत्ररूप श्रीराम-लक्ष्मण-को माँगकर आश्रममें लाये थे। यह कथा प्रसिद्ध है, वहाँ विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीविरवामित्र मुनि भी महाराजा जनकका निमन्त्रण पाते हैं और दोनों राज-कुमारोंको साथ लेकर मिथिलाकी ओर प्रस्थान करते हैं। रास्तेमें शपथस्ता मुनि-पत्नी अहल्याका उद्धार करते हुए परम-कृपालु श्रीकौसलकिशोरजी कनिष्ठ-भ्रातासहित गंगा-स्नान कर वनोपवनके प्राकृतिक सौन्दर्यको देखते हुए जनक-पुरीमें पहुँचते हैं और मुनिसहित नगरसे बाहर मनोरम बगीचेमें उतरते हैं।

मिथिलेश महाराज यह शुभ संवाद पाकर ओष्ठ-समाज सहित विरवामित्रजीके दर्शन और स्वागतार्थ आते हैं और मुनिको साष्टांग प्रणाम कर आज्ञा पाकर बैठ जाते हैं, इतनेमें ही फुलबारी देखकर—

स्याम-गौर मुहु बयस किसोरा। लोचन-सुखद विश्व-चित्त-चोरा ॥

—श्याम-गौर वदन, किशोर बयबाली, नेत्रोंको सुख देने-वाली अखिल विश्वके चित्तको चुरानेवाली 'जुगल जोषी' वहाँ आ पहुँची, ये थे तो बालक, परन्तु इनके आते ही ऐसा प्रभाव पड़ा कि सब लोग उठ खड़े हुए, 'उठे सकल जब रूपति आये।' विरवामित्र सबको बैठाते हैं। दोनों प्रभु शील संकोचके साथ गुरुके चरणोंमें बैठ जाते हैं। वहाँ जनकराजजीकी बही ही विचित्र दृशा होती है। उनकी प्रेमरूपी सूर्य-कान्तमयि, रामरूपी प्रत्यक्ष प्रथयत् सूर्यकी रश्मियोंको प्राप्त कर प्रबलित होकर बह उठती है। गुप्त प्रेम-धन श्रीरामकी कृति देखते ही सहसा प्रकट हो गया। युगोंके सञ्चित-धनका खजाना यकायक खुल पड़ा।

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ निदेह निदेह बिसेखी ॥

प्रममगन मन जानि नृप, करि निबेक धरि धीर।

बोलैउ मुनिपद नाइ सिर, गदगद गिरा गँभीर ॥

कहहु नाथ सुन्दर दाँठ बालक। मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुल-पालक।

ब्रह्म जो निगम नेति कीह गावा। उमय बेध धरि की सोइ आवा ॥

सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।

तत प्रभु पृष्ठौ सतिमाज। कहहु नाथ अनि करहु दुराज ॥

जनकजी कहते हैं 'मुनिनाथ ! छिपाइये नहीं, सच

बतलाइये, वे दोनों कौन हैं ? मैं जिस ब्रह्ममें लीन रहता हूँ क्या वह वेदबन्धित ब्रह्म ही दो रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं। मेरा स्वाभाविक ही बैरागी मन आज चन्द्रमाको देखकर चकोरकी भाँति थका जाता है। जनकजीकी इस दशापर विचार कीजिये।'।

जनकका मन बलात्कारसे रामरूपके गम्भीर मधुर-सुधा-समुद्रमें निमग्न हो गया।

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

जो मन-बुद्धि अपनेसे अगोचर ब्रह्मका सुख भोगनेमें लगे हुए थे, उन्होंने आज उस अगोचरको प्रत्यक्ष नयनगोचर देखकर तुरन्त त्याग दिया। 'गोद'का झोड़कर पेटवालेकी उम्मीद कौन करे ? ऐसा कौन समझदार होगा जो 'नयन-गोचरके मिलजाने पर 'अगोचर'के पीछे लगा रहे ? धीर-बुद्धि महाराजा जनकके लिये यही उचित था। अभेद भक्ति-निष्ठ विदेहराजकी पराभक्ति संशयरहित है।

इसीप्रकार वे बारातकी विदाईके समय जब अपने जामातासे मिलते हैं, तब भी उनका प्रेमसागर मर्यादा तोड़ बैठता है, उस समयके उनके बचनोंमें असीम प्रेमकी मनोहर झलक है—जरा उस समयकी भाँकी भी देखिये। बारात बिदा हो गयी। जनकजी पहुँचानेके लिये साथ-साथ जा रहे हैं। दशरथ लौटाना चाहते हैं, परन्तु प्रेमवश राजा लौटते नहीं। दशरथजीने फिर आग्रह किया तो आप रथसे उतर पड़े और नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहाते हुए उनसे विनय करने लगे। इसके बाद मुनियोंसे स्तुति-प्रार्थनाएँ कीं, तदनन्तर रामके—अपने प्यारे जामाता रामके—समीप आये और कहने लगे—

राम करौं कहि भाति प्रसंसा। मुनि-महेस-मन-मानस-हंसा ॥

करहि जोग जंगी जेहि लागी। काह-मोह-ममता-मद त्यागी ॥

व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानन्द निरगुन गुनरासी ॥

मन समेत जहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी ॥

महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई ॥

नयनविषय मो कहँ भयेउ, सो समस्त-मुख-मूल।

सबइ लाम जग जीव कहँ, भए ईस अनुकूल ॥

सबहि भाँति मोहि दीन्ह बढ़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥

होहि सहस दस सारद सेखा। करहि कलपकोटि भरि लेखा ॥

मोर माग्य राउर गुनगाथा । कहि न सिराहिं मुनिहु रघुनाथा ॥  
मैं कलु कहौ एक बल मोरे । तुम्ह रीसहु सनेह सुठि थोरे ॥  
बार बार माँगौ कर जेरे । मन परिहरै चरन जनि मोरे ॥  
धन्य जनकजी ! धन्य आपकी गुप्त प्रेमाभक्ति !  
यही दया चित्रकूटमें होती है ।  
इससे जनकजीकी अवस्थाका पता लगता है । जनक-

जी वरम ज्ञानी थे, परन्तु परमज्ञानकी अवधि तो बड़ी है  
कि ज्ञानमें स्थित रहते हुए ही परम ज्ञानस्वरूप भगवान्-  
की मूर्तिमान् माधुरीको देखकर उसपर रीक जाय । ज्ञानका  
प्रेमके पवित्र द्रवरूपमें परिणत होकर अपनी अजल सुधा-  
चारासे जगत्को प्लावित कर देना ही उसकी महानता है !  
जनकजीने बड़ी प्रत्यक्ष दिखला दिया !

## श्रीवशिष्ठजीकी महत्ता

( लेखक—पण्डितवर श्रीनत्थूरामजी शर्मा, गुजरात )



दिकर्ता भगवान् ब्रह्माके पुत्र और प्रसिद्ध  
इक्ष्वाकुवंशके गुरु श्रीवशिष्ठजी महाराज  
अपकारी मनुष्यके घोर अपकारको प्रसन्नता-  
पूर्वक सहनेवाले, अपनेको शत्रु समझनेवाले  
मनुष्यके भी शुभगुणोंकी प्रशंसा करनेवाले,  
व्यवहार-कुशल, दैवीसम्पत्तिसे युक्त, अन्त-  
रात्मासे अभिन्न ब्रह्मस्वरूपको भलीभाँति जाननेवाले और  
साधन-सम्पन्न अधिकारी पुरुषोंको ब्रह्मका स्वरूप और  
उसकी प्राप्तिसे साधन बतलानेवाले थे ।

ध्रमा और  
गुण-प्राप्तकता

सौ पुत्रोंको राज्यद्वारा बिना ही कारण  
मरवा डालनेवाले विश्वामित्रपर न तो आपके  
मनमें तनिक-सा क्रोध उपजा और न सर्वथा  
समर्थ होनेपर भी शापादिद्वारा आपने उनका कुछ भी अनिष्ट  
किया । 'पुत्रोंकी मृत्यु उनके प्रारब्ध-कर्मोंकी समाप्ति या  
कर्म-फल-प्रदाता परमेश्वरकी इच्छासे हुई है, इसमें विश्वामित्र  
और राज्य तो निमित्तमात्र हैं ।' यों समझकर उन्होंने  
मनको शान्त रक्खा । इतनी भयानक बुराईको कुछ भी-  
प्रतिकार किये बिना—आपने प्रसन्नतापूर्वक सह लिया ।  
इससे उनकी आदर्श सहिष्णुता और समाधानकी अनुपम  
शक्तिका पता लगता है ।

जब विश्वामित्रने उग्र तपस्याकेद्वारा दिव्याम्बोंको प्राप्त  
कर उनसे आश्रम और शिष्योंसहित वशिष्ठके विनाशके  
लिये तीव्र प्रयत्न किया, तब आप शाप या अन्य किसी भी  
दिव्यादिव्य उपायसे उनका प्रतिकार करनेकी चेष्टा न कर  
शान्त-चित्तसे ब्रह्मदण्ड धारण किये अपने आश्रमके सामने  
खड़े हो गये और विश्वामित्र-प्रेरित समस्त दिव्यादिव्य  
अम्बोंको अपने ब्रह्मदण्डमें लीन कर डाला । विश्वामित्रके

कुल अन्न वशिष्ठका कुछ अनिष्ट न कर ब्रह्मदण्डमें प्रवेश कर  
गये । इस महान् कार्यमें उन्होंने क्षत्रिय और राजर्षिके बलसे  
ब्राह्मण या ब्रह्मर्षिके बलकी अति अछूता सिद्ध कर विश्वामित्रको  
यह बतला दिया कि उनका क्षात्रबल ब्रह्मबलसे सदा ही  
निम्न श्रेणीका है । ऐसे विकट प्रसङ्गमें भी श्रीवशिष्ठजीने  
अपने इक्ष्वाकु चैर्य, सतर्कता और जमासे च्युत नहीं होने  
दिया । इससे उनके इक्ष्वाकु अत्यन्त उन्नत अवस्थाका पता  
लगता है ।

व्यवहारमें विश्वामित्र श्रीवशिष्ठजीके शत्रु हैं, तो भी  
श्रीवशिष्ठजीने अपनी प्रिया साध्वी पत्नी अरुण्यतीके सामने  
बातों-ही-बातोंमें विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा की ।  
इससे उनके इक्ष्वाकु निर्मलता, निर्वैरता, शुभ गुणप्राप्तकता  
सिद्ध होती है । ऐसी शुभ गुणप्राप्तकता साधारण मनुष्योंमें  
कदापि सम्भव नहीं । यह तो केवल असाधारण मतिमान्  
पुरुषमें ही सम्भव है । अपने शुभगुणोंको गुप्त रखना और  
दूसरोंके शुभ गुणोंको प्रकट करना बड़ी ही टेढ़ी खीर है ।  
इस विषयमें एक प्राकृत कविने ठीक कहा है—

जो गुण गोवड़ अपना, पर्यङ्क करइ परस्म ।

तासु कलिजुगि दुल्लह दु, बलि किजछ सुयणस्सु ॥

‘जो अपने सद्गुणोंको छिपाकर दूसरेके सद्गुणोंको  
प्रकट करता है, कलियुगमें ऐसे दुर्लभ पुरुषपर मैं बलिहारी  
जाता हूँ ।’

एक दूसरे कविने भी शुभ-गुणानुरागकी खूब महिमा  
गायी है—

कि बहुणा भणियेणं, कि तव मयेणं किं वा दाणेणं ।

इदं गुणाणुरागं, सीरुस्सु सुखाणं कुरुमवणं ॥

‘बहुत पढ़ने, तप करने और दान देनेसे कौन-सा महाव फल मिलता है ? सुखसमूहके स्थानरूप केवल शुभ गुणोंके प्रति अनुराग करना सीखो, इसीसे महाव फल होगा ।’

व्यवहार-कुशलता  
शशिष्ठजी बड़े ही व्यवहार-कुशल पुरुष थे, इनकी व्यवहारकुशलताके कुछ उदाहरण देखिये ! जिस समय विश्वामित्रजी अपने बन्धकी रक्षाके लिये महाराज दशरथके समीप श्रीरामको माँगने आते हैं उस समय पहले तो दशरथ यह प्रण कर लेते हैं कि आप जो मरिगें, वही दूँगा । परन्तु अपने साथ श्रीरामको भेजनेकी बात कहनेपर दुःखके साथ दशरथ अस्वीकार कर देते हैं । विश्वामित्रको क्रोध होता है । उस समय श्रीवशिष्ठजी दशरथ-जीको बड़ी ही बुद्धिमान्नीके साथ उचित कारण दिखाकर श्रीराम-लक्ष्मणको विश्वामित्र मुनिके साथ भिजवा देते हैं ।

श्रीरामचन्द्रके वनवासकी भावी जानते हुए भी आप व्यवहारानुसार श्रीरामचन्द्रके युवराजपदके लिये अनुमति देते हैं । निमित्त मूहूर्तकी पहली रातको श्रीराम-सीतासे अनेक प्रकार पूजा-पाठादि योग्य विधि करवाते हैं, और आगे चलकर कैकेयीको भूल-भरा रामवनवासका वरदान वापस लेनेके लिये समझाते हैं । इन प्रसङ्गोंमें आपकी व्यवहार-पटुताका खूब पता लगता है । इसके अतिरिक्त श्रीराम-विषोगमें शोकाभिभूत महाराज दशरथको सान्त्वना देने और श्रीभरतजीको उसीके अनुसार समझानेमें भी आप बड़ी कुशलतासे काम लेते हैं ।

श्रीवशिष्ठजीके तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें तो ब्रह्मज्ञान कहना ही क्या है ? गुजरातके भक्त-कवि अल्लाजीने ‘अखेगीता’में उसकी महिमा इसप्रकार गायी है—

विधि वशिष्ठ कही कथा, रघुनन्दनं जेह ।

अर्णव ब्रह्मविद्यातणां, देखाव्यो छे तेह ॥

विश्वामित्रजीकी प्रेरणासे श्रीवशिष्ठजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रति ब्रह्मज्ञानका बड़ा ही सुन्दर उपदेश किया है, जिसका वर्णन श्रीवाल्मीकिजीने योगवासिष्ठ-महारामायणमें किया है । उसके ‘वैराग्य’ नामके पहले प्रकरणमें यह दिखलाया है कि श्रीरामचन्द्रजीके अन्तःकरणमें जिस विमल वैराग्यकी उत्पत्ति हुई थी वैसा ही विमल वैराग्य मुमुक्षुको प्राप्त करना चाहिये । तदनन्तर ‘मुमुक्षु’ या ‘मुमुक्षु व्यवहार’ नामक दूसरे प्रकरणमें मुमुक्षुके कर्तव्य बतलाये गये हैं । ‘उपसि’ नामक तीसरे प्रकरणमें ब्रह्मसे

जगत्की उत्पत्तिका रहस्य और ‘स्थिति’ नामक चौथे प्रकरणमें ब्रह्ममें जगत्की स्थितिका तत्त्व समझाया गया है । उपर्युक्त नामक पाँचवें प्रकरणमें प्रतीतमान जगत्को ब्रह्ममें शान्त करनेके उपायोंका और ‘निर्वाण’ नामक छठे प्रकरणमें ब्रह्ममें जगत्के शान्त हो जानेके अनन्तर जीवसमूह और जगत्की स्थितिका निरूपण किया गया है ।

आज्ञानीके अज्ञानको पूरकर उसे आत्मस्वरूपमें स्थित कर देना ही आत्मज्ञानीका कर्तव्य है । इसके सिवा उसका अन्य कोई भी कर्तव्य नहीं; यही विद्वानोंका मत है । इसीके अनुसार श्रीवशिष्ठजीने अधिकारीवर्गको अपने स्वरूपके उपदेशद्वारा स्वरूपमें भलीभाँति स्थिर करनेका प्रयत्न किया है । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति दृढ जगतमें दृढ़ वैराग्य रखने और प्राप्त व्यवहारको आसक्तिरहित होकर करनेके सम्बन्धमें जो सहुपदेश दिया है, वह मनन करने योग्य है ।

‘जैसे गीध मांसके टुकड़ेपर दूट पड़ता है, इसी प्रकार मनुष्यका मन मिथ्या आसक्तिके वश व्यर्थकी रमणीयता मानकर भोगोंपर दूट पड़ता है । (वास्तवमें ये विषय हैं ही नहीं) बाह्यदृष्टिसे प्रतीत होनेवाला दृश्य यथार्थमें नहीं है । इस ज्ञानके द्वारा जिस मनुष्यके मनसे दृश्य-संसर्ग-जनित मल दूर हो गया है उसको मोक्षरूप उत्कृष्ट परमानन्दकी प्राप्ति होती है । दृश्यकी इच्छाओंके भलीभाँति शान्त हो जानेपर आत्मप्राप्ति अवश्य ही हो जाती है । परन्तु जिसका मन सांसारिक सिद्धियोंकी प्राप्तिमें आसक्त है उसको उस आत्माकी प्राप्ति कैसे हो ? इसीलिये—

नामिवांछाम्यसम्प्राप्तं सम्प्राप्तं न त्यजाम्यहम् ।

स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यन्ममास्ति तदस्तु मे ॥

इति संचिन्त्य जनको यथाप्राप्तं क्रियामसौ ।

असक्तः कर्तुमुत्तस्यौ दिनं दिनपतिर्यथा ॥

राजर्षि जनक विचार करते हैं—कि मैं विधिवत् अप्राप्त पदार्थको पानेकी इच्छा नहीं करता और विधिवत् प्राप्त पदार्थका द्वेषपूर्वक त्याग नहीं करता । मैं अपने स्वभावसे स्थित आत्मामें स्थिर रहता हूँ । जो मेरा माना जाता है वह भले ही मेरा होकर रहे । श्रीवशिष्ठजी कहते हैं कि, जो विचारकर जैसे सूर्य, दिन उगानेकी प्राप्त-क्रियामें आसक्तिरहित होकर प्रवृत्त होता है वैसे ही राजर्षि जनक प्राप्त क्रियाको यथायोग्य आसक्तिरहित होकर करनेमें प्रवृत्त हुए । हे रामचन्द्रजी, तुम भी वैसे ही प्रवृत्त होओ ।



### भरद्वाज आश्रम ।

सुफल सकल सुम साधन-साज् । राम तुरहीं अवलोकत आज् ॥



### सहमणका क्रोध ।

वडि करजोरि रजायसु मांग । मनहुं बोरस सोवत-जागा ॥



### चित्रकूटमें भरत ।

भैंसी शम्भुवर मान्नु मव, करि प्रबोध गतिनोप ।  
अम्ब ईस आबाने जग, काहु न देखे दानु ॥



### चित्रकूटमें जनकजी ।

गिरिगर दंगल जनकपति जवहां, करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं ॥

अविष्यं नानुसन्धते नातीतं चिन्तयत्यसौ ।

वर्तमान निमेषन्तु हसन्नेवानुवर्तते ॥

राजर्षिजनक भूत और भविष्यकी घटनाओंका बारम्बार स्मरण न कर केवल वर्तमान समयका हँसते हुए अनुसरण करते थे । हे रामचन्द्र ! तुम भी इसी स्थितिको प्राप्त करो ।

अन्तःकरवाको अलखदैकरस और निरतिशय आनन्द-रूप ब्रह्ममें स्थित कर, बाहरसे नाटकके पात्रकी भाँति प्राप्त-

व्यवहारको सुचारुरूपसे करनेवाले श्रीवशिष्ठजीके अन्तः-करवाकी वास्तविक महत्ता तो उनके जैसे आर्य्य ब्रह्मवेत्ता ही भलीभाँति समझ सकते हैं । दूसरे लोगोंको तो उनकी महत्ताका साधारण-सा ज्ञान होता है । पुरोहितका कार्य करनेवाले ब्राह्मणोंको श्रीवशिष्ठजीके विचारों और वतावों-का अनुसरण कर अपने जीवनको कृतार्थ करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

## श्रीहनुमान्जीके चरित्रसे शिक्षा

( लेखक—पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी )



रामचरितमानसमें श्रीहनुमत्-चरितका आरम्भ किष्किन्धाकावडके आदिमें 'मारुति-मिलन' प्रसङ्गसे हुआ है, वहाँ आप ऋष्यमूक-पर्वतपर सुग्रीवके सचिवरूपमें दर्शन देते हैं । वस्तुतः श्रीरामावतारकी भाँति आपका भी वानर-वपु भगवान् शिवका रूपावतार था । गोस्वामीजीने दोहावलीके निम्नलिखित दोहोंमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है—

जहि सरीर रति रामसों, सो आदरहि सुजान ।

रुद्र-देह तजि नेहबस, बानर मे हनुमान ॥

जानि राम-सेवा सरस, समुक्षि करब अनुमान ।

पुरखा ते सेवक भये, हरते मे हनुमान ॥

( दोहा १४२ । १४३ )

रामायणमें इस गूढ़ तथ्यको मङ्गलाचरणके श्लोकोंमें बड़ी विचित्रताके साथ ऊलकाया है । बालकावडसे अरव्य-कावडतक भगवान् शङ्करकी वन्दना पहले करके पीछे रघुनाथ-जीकी वन्दनाके श्लोक रखले गये हैं । परन्तु जब किष्किन्धा-कावडमें स्वयं शङ्करजी हनुमान्-रूपसे श्रीरामकी सेवामें व्यवहृत हो जाते हैं, तब वहाँसे उत्तरकावडपर्यन्त श्रीराम-वन्दनाके श्लोकोंको प्रथम स्थान दिया गया है और दास-भावानुसार शिव-वन्दना पश्चात् की गयी है । अङ्का और उत्तर कावडमें तो यह बात स्पष्ट वीक्ष्य पड़ती है, किन्तु सुन्दरकावडमें तो शङ्करके स्थानमें श्रीहनुमान्जीकी ही वन्दना की गयी

है । इस वन्दना-क्रमके द्वारा और किष्किन्धाकावडमें श्रीराम-नामकी वन्दनान्तर्गत—

पुनि तुम राम-राम दिन राती, सादर जपहु अनंग अराती ।

—के प्रमाणसे श्रीहनुमान्जीका शङ्करावतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध होता है । इसके सिवा आपका बल, पराक्रम और आश्चर्यमयी घटनाओंसे पूर्ण चरित्र ही आपको एक प्राकृत कपिले सर्वथा भिन्न बता रहा है । अतः रामायणमें आपका चरित्र भी सर्वाङ्गसे ज्येष्ठ, शिक्षणीय तथा अनुकरणीय है । उपर्युक्त वर्णनके अनुसार श्रीहनुमान्जीका चरित्र—'तहँ रह सचिव सहित सुग्रीव'-सुग्रीव-सचिवत्वसे आरम्भ होता है ।

सचिव कैसा होना चाहिये और उसे सचिव-धर्मका पालन किस भाँति करना चाहिये, इसका उत्तम उदाहरण श्रीहनुमान्-जीने दिखाया है । महाबली बालिके दुरत्यय आघातके कारण सुग्रीवको त्रैलोक्यमें कहीं ठिकाना नहीं रहा । ऐसे दीन, निराश्रय-जनका साथ देकर महाबली बालिके बँर मोल लेना मामूली बात नहीं थी । ऐसी दुरवस्थामें भी आप उनके मन्त्रित्व-पदपर दृढ़ रहकर सदा सहायता करनेमें लगे रहे । यह परम साहसिकता और सच्ची प्रीतिकी पहली शिक्षा है । इतना ही नहीं, अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीसे सुग्रीवकी मित्रता करवा आपने उसको निर्भय कर दिया और इसप्रकार नीतिके एक उच्च सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करके दिखा दिया कि राजाके सात अङ्गोंमेंसे यदि एक सर्वप्रधान अङ्ग मन्त्री बचा रहे तो शेष सब नष्ट हो जानेपर भी राज्यको पुनः प्राप्त कर सकना असम्भव नहीं है । रामायणमें सुग्रीव और बिभीषण दोनों ही दीन पात्रोंके केवल मन्त्री ही बच रहे थे,

‘तहाँ रह सचिव सहित सुग्रीवा ।’—‘सचिव संग छै नमपथ गयल ।’ इससे अन्तमें दोनोंके मनोरथ सफल ही हुए ।

श्रीहनुमान्जी जब सुग्रीवके सङ्केतसे वटुरूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलते हैं और उनसे बातचीत करते हैं, तब आपकी ज्ञान गरिमा तथा अनन्य भक्तिका बड़ा सुन्दर शिक्षणीय परिचय प्राप्त होता है। आप तपस्वीरूप भगवान् श्रीराम-लक्ष्मणसे पूछते हैं—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्रीरूप फिरहु ‘वन’ वीरा ॥  
कठिन भूमि कोमलपदगामी । कवन हेतु बिचरहु ‘वन’स्वामी ॥  
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह ‘वन’ आतपवाता ॥

इन तीनों चौपाइयोंमें ‘वन’ शब्द एकमें भी नहीं छूटने पाया है। बारबार ‘वन’ शब्दका मुँहसे निकलना इस बातका प्रमाण है कि आपके हृदयमें उन कोमल-चरणोंसे स्वाभाविक प्रेम है और उन कोमल चरणोंका या कोमल-चरणबाजेका ‘वन’ में फिरना आपके हृदयमें गूँज-सा खटक रहा है। कहाँ वह ‘मृदुल मनोहर सुन्दर गाता’ और कहाँ वनके ‘दुसह आतप बात’ को सहनेका कष्ट ! कैसा असामञ्जस है ? कुछ इसीप्रकार श्रीभरतलालजीके मनमें भी उन कोमल-चरणोंका ‘बिनु पनहीं’ वनमें भटकना खटका था। उन्होंने भी कहा था—

राम-रत्नन-सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनिबेष फिरहिं ‘वन’ वन’हीं ॥  
यह दुःख दाह दहै नित छाती । भूख न बासर नौदन राती ॥

यहाँ भी ‘वन-वन’ शब्द असंख्य दुःखका सूचक है। चरण-सेवक श्रीहनुमान्जीने इस मिलनके पश्चात् भगवान्को कभी ‘वन-वन’ नहीं फिरने दिया। उन्होंने सेवक-भावका उच्च आदर्श दिखाया। लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई। दोनों भाइयोंको अपने कन्धेपर उठाकर सुग्रीवके पास ले गये। यही तो उनके प्रगाढ़ गूढ़ प्रेमका उल्लसित प्रमाण है। प्रभुकी लज्जाकी यात्रा भी श्रीमालतिके कन्धोंपर विराजित होकर ही हुई थी।

हनुमान सम नहिं बड़भागी । नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥

उपर इसी कार्यके द्वारा संकेतसे सुग्रीवको भी भगवान्के अपने मित्र होनेका प्रमाण दे दिया, क्योंकि, शत्रु होते तो कन्धेपर कैसे चढ़ाते ? दोनों प्रभुओंको पीठपर चढ़ाकर श्रीराम-चरण-निष्ठाका निर्वाह तो किया ही गया, जब आपका भक्तिपूर्ण दूसरा चमत्कार देखिये ! जब आप श्रीराम-लक्ष्मणकी ‘जुगल-जोड़ी’ से पहचने मिलते हैं तो

उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये कैसे समानार्थक विकल्पोंका प्रयोग करते हैं, ‘आप दोनों क्षत्रिय ही नहीं हैं, किन्तु क्षत्रियरूपमें आप या तो त्रिदेवोंमेंसे कोई हैं, या नरनारायण हैं, या अखिल-भुवन पति ( साक्षात् परमेश्वर ) हैं।’ यदि विचार किया जाय तो हनुमान्जीके तीनों अनुमान अवतार-अवतारी-भेदसे ईश्वरके सम्बन्धमें ये। तात्पर्य, श्रीरघुनाथजी जिस परमेश्वरके अवतार हैं, उसी पर-स्वरूपके अवतार नरनारायण भी हैं। उन्हीं परवासुदेवके अंश गुणावतार त्रिदेव हैं। इस प्रकार तीनों स्वरूप परमेश्वरके ही हैं और तीनों ही पूज्य और नमस्कारके योग्य हैं। इसीलिये—माथ नाथ पूछत अस भयक का व्यवहार किया गया था। क्योंकि वेष बदले हुए वैभव-वान्, पुरुषको जानने-बाले तो उसके वैभवके अनुसार ही उसका सम्मान किया करते हैं। बजरङ्गबलीकी यथार्थ पहुँचसे हमें उनके परम योगी होनेका परिचय मिलता है और साथ ही यह पता लगता है कि योगियोंके अन्तःकरण सत्यकी किस तह तक पहुँच जाते हैं ! रामायणमें इस विषयके और भी उदाहरण मिलते हैं। सबे जौहरी श्रीजनकजीने भी इसी प्रकार इस राम-रत्नको परखा था—

जह्नु जो निगम नेति कहि गावा । उभय बेध धरि की सोई आवा ॥

—भक्ताराज विभीषणजीने भी श्रीमालतजीसे ऐसा ही कहा था—

को तुम्ह हरिदासन महे कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥

को तुम्ह राम दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन बड़भागी ॥

विभीषणजीने विप्र-वेश-धारी हनुमान्के सम्बन्धमें दो ही अनुमान किये, कि या तो आप राम हैं या रामके दास ! अस्तु ।

श्रीहनुमान्जीने भगवान् श्रीरामको उन्हींके दिये हुए बुद्धिबलसे ही पहचाना था। सतत प्रेमपूर्वक भजन करने-वालेको भगवान् बुद्धियोग देते हैं ( गीता १०।१० ) गीताके इस सिद्धान्तको श्रीहनुमान्जीने प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया !

सबे अधिकारी भक्तके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए श्रीरघुनाथजी महाराज अपने नाम, रूप और धामका निर्देश करते हुए कहते हैं—

कोसलस दसरथके जाए । हम पितु बचन मानि जन आए ॥

नाम राम-लछिमन दोउ मारि । संग नारि सुकुमार सुहार् ॥

इहाँ हरी निसिचर बैदेही । निप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥

इसमें ‘नाम राम लक्ष्मण दोउ मारि’ से नाम; ‘कोसलेश



वशरके जाए' इसमें काम तथा रूप पूर्व 'हम पितु वचन मानि बन जाए' और 'इहाँ हरी नितिवर वैदेही' से जीजाका बचन किया है। तदनन्तर भगवान् भक्तवर श्रीहनुमान्जीसे पूछते हैं—

आपन चरित कहा हम गार्ह। कहहु विप्र निज कथा नुसार्ह ॥

'हमने तो अपना हाथ सुना दिया, अब हे बिप्रवर ! आप कौन हैं सो तो बताइये ?' इस मर्म-वचनके उत्तरमें श्रीहनुमान्जीने जो कुछ किया और कहा, उससे उनकी सच्ची दीनता, बचार्थ शरणागति, अलौकिक अनुरक्ति, असाधारण निर्भरता और गम्भीर ज्ञानका पता लगता है। स्वामी श्रीरामको पहचानकर मासुविजी चरबोंमें गिरकर परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। शिवजी कहते हैं—सो सुख उमा जाइ नहि बरना। इसके बाद उनके व्यवहार और वचनोंका आदर्श देखिये—

पुलकित तनु मुख आव न बचना। देखत कबिरे बेवकै रचना ॥  
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नायहि चीन्ही ॥  
मोर न्याउ मैं पूँछा सार्ह। तुम कस पूँछहु नरकी नार्ह ॥  
तब मायाबस फिरउँ मुलाना। ताते मैं नहि प्रभु पहिचाना ॥

एक मन्द मैं मोहबस, कुटिल हृदय अग्यान।  
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान ॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि मोरे ॥  
नाथ जीव तब माया मोहा। सो निस्तरे तुम्हारेहि छोहा ॥  
तापर मैं रघुवीर दोहाई। जानौ नहि कछु भजन उपाई ॥  
सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहै असोच बने प्रभु पोसे ॥  
अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस स्तुतिमें श्रीहनुमान्जीने पाँचों स्वरूपोंका रहस्य बड़ी विवक्षणातासे खोज दिया है। जीवस्वरूप, परस्वरूप, विरोधस्वरूप, उपायस्वरूप और फलस्वरूप—इन पाँचोंका ही निचोड़ इसमें आगया, जो सर्व शास्त्रोंका सार-रूप है और जिसको जानना अत्यन्त आवश्यक है। कहा है—

'प्राणस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्नुश्च प्रत्ययामनः।

प्राप्त्युपायं फलप्राप्ति तथा प्राप्ति विरोध च ॥

वदन्ति सकला वेदा सेतिहास पुराणकाः।

मुनयश्च महात्मनो वेदवेदान्त वेदितः ॥'

समस्त वेद, इतिहास, पुराणादि और वेद-वेदान्तके

ज्ञाता मुनि महात्माओंका सिद्धान्त है कि जबतक इन पाँचोंका बोध नहीं होता तबतक जीव संसारसे पार नहीं हो सकता। 'मोर न्याउ मैं पूँछ सार्ह' से 'जीवस्वरूप' का बोध होता है, जिसका ज्ञान स्वामीजीने 'इधं विषाद ग्यान अग्यान। जीव धर्म अहमिति अमिमाना ॥' बतलाया है। 'तुम पूँछहु कस नरकी नार्ह' 'तब मायाबस फिरौ मुलाना' 'सो निस्तरे तुम्हारेहि छोहा' 'पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबन्धु भगवान' इत्यादिसे वहाँ 'ईश्वर स्वरूप' प्रकट होता है, जैसा कहा है—'ग्यान अखण्ड एक सीतावर।' 'बन्ध मोच्छप्रद सर्वपर माया प्रेरक जीव।'।

'नाथ जीव तब माया मोहा !' से 'विरोधस्वरूप' धानी, मायाको दिसलाया, जो अस्मिन् बाधक हो रही है। 'सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहे असोच बने प्रभु पोसे ॥' से 'उपाय-स्वरूप' अर्थात् दास और छोटे बच्चेकी भाँति सब साधनों-से रहित होकर केवल प्रपत्तिसे ही उद्धार होना बतलाया। 'अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।' से 'फलस्वरूप'—भगवत्-चरणाकी प्राप्ति तथा प्रेमाभक्ति ही परम फल है, वह दिसलाया है। इत्तीप्रकार 'तापर मैं रघुवीर दोहाई। जानौ नहि कछु भजन उपाई ॥' कहकर सबे भक्तोंकी दीनतारूप मुख्य चारणाका मर्म भी समझा दिया। सबे भक्तोंके हृदयमें यह भाव कदापि स्वप्नमें भी नहीं आता कि 'मैं भी कुछ हूँ या मुझमें भी कुछ गुण हैं।' श्री-भरतजी कहते हैं—

× × × मैं सठ सदा सदास।  
आपन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुवीर भरोस ॥

प्रेमीवर सुतीक्ष्णजी महाराजने कहा है—

'भगति न विरति ग्यान मन माहीं ॥

नहि सतसंग जोगजप जागा। नहि दृढ़ चरन-कमल अनुरागा ॥

एक बानि करुनानिधानकी। सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥

गोस्वामीजी तो शपथ ही खा रहे हैं कि—

कवित विनेक एक नहि मोरे। सत्य कहौ लिखि कागद कोरे ॥

सारांश यह, कि भगवान्के सबे शरणागतजन 'अर्ध-मम' आदि समस्त सम्बन्धोंको निश्चितरूपसे प्रभुकी वस्तु समझ लेते हैं। वह अपनेको भी अपना नहीं समझते। भक्तवर श्रीप्राणानन्दजीने कहा है—

'मम नाथ वदस्ति वोऽस्त्यह

सकलं तद्धि तवैव मायन।



नियत स्वमति प्रनुद्धीरयवा  
किन्तु समर्पयामि ते ॥'  
(आकनन्दार)

‘हे माधव ! हे मेरे नाथ ! मेरा जो कुछ है वह, और जो कुछ मैं हूँ सो, सब तेरा ही है। मेरी मति और प्रबुद्ध बुद्धि अथवा अन्ध जो कुछ है सो सब तुमको समर्पण करता हूँ।’

जब स्वामीके प्रति मन-बचन-कर्म तीनोंसे शुद्ध प्रपन्नता हो जाती है, तभी प्रभु उसे स्वीकार करते हैं—

अस कहि परेठ चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस चौपाईमें श्रीहनुमान्जीने शुद्ध प्रपत्ति सिद्ध कर दी। ‘अस कहि’ से बचनकी प्रपन्नता, ‘प्रीति उर छाई’ से मनकी प्रपन्नता, तथा ‘परेठ चरन अकुलाई’ से तनकी प्रपन्नता सिद्ध हुई। इतना ही नहीं बटु-नेचरूपी कपटको दूरकर ‘निज तनु’ भी प्रकट कर दिया। अब तो भगवान्से नहीं रहा गया, उठाकर हृदयसे लगा लिया और प्रेमाशु-बाराभों-से बने अभिवेक करने !

‘तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज-लोचन-जल सीन्धि जुड़ावा ॥’

श्रीहनुमान्जी कृतार्थरूप हो गये ! स्वयं ही कृतार्थ नहीं हुए, इसके बाद सुग्रीव-विभीषण आदि जिन जिन लोगोंने आपसे सम्बन्ध रक्खा या किया, उन सबको भी प्रभुकी प्राप्तिद्वारा कृतार्थ करा दिया। यही तो सन्तोंकी महिमा है !

श्रीहनुमान्जीके संगसे उपलब्ध श्रीरामकृपासे सुग्रीवजी राज्यासनपर विराजते हैं, परन्तु जब राजमर्दके कारण ‘रमाविलास’में रम जाते हैं तब श्रीहनुमान्जी बड़ी ही वृद्धशिक्षितासे आदर्श विनयपूर्वक सुग्रीवको सब प्रकारसे सचेत कर देते हैं।

इहाँ पवनसुत हृदय विचारा । रामकाज सुग्रीव विसारा ॥

निकट जाइ चरनन्हि सिर नावा । चरिहु निधि तेहि कहि समुसावा

इस काममें आपकी बुद्धिमत्ता, सुग्रीवके प्रति हितैषिता और ‘रामकाज’ की चिन्ता तथा मन्त्रिण्यके नाते कर्तव्य-परायणता और नम्रता सभी एक साथ प्रकट हो जाते हैं। आप इतना ही करके शान्त नहीं हो जाते। सुग्रीवकी अनुमति लेकर स्वयं दूतोंको सम्मानपूर्वक बुलाते हैं और भय तथा प्रीति दिखाकर जानरोंको बुलानेके लिये उन्हें तुरन्त भेज देते हैं। यदि आपने ऐसा न किया होता तो सुग्रीवपर कितना बड़ा कोपाक्रमण होता !

जब जानरभूय इकट्ठे हो गये और श्रीसीताजीकी खोजमें भेजे जाने लगे तब आपका दल भी दक्षिण दिशा-की ओर चला। उस समय सबसे पीछे आपने श्रीरघुनाथजी-के चर्योंमें शिरसा प्रणाम किया। श्रीरामजीने इनको निकट बुलाकर अपने भक्तभयहारी कोमल कर-कमल इनके मस्तकपर रख दिये और अपना ही जन जानकर सहिदानके निमित्त मुद्रिका दे दी। फिर श्रीरघुनाथजी बोले—

बहु प्रकार सीतहि समुसायेहु । कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयहु ॥

आज श्रीहनुमान्जीका जीवन सफल हो गया। उन्होंने सोचा कि मेरे समान कब-भागी कौन होगा जिसके मस्तक-पर मेरे नाथने आज पाप ताप और माया तीनोंको एक साथ मिटा देनेवाले कर-कमल रख दिये। कहा है—

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनाथक, परिही नाथ ! सीस मेरे ।

जेहि कर अमय किये जन आरत नाक निबस नाम टेरे ॥

सीतल मुखद छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया ।

निसि-नासर तेहि कर-सरोजकी चाहत तुलसीदास छाया ॥

बस्तुतः जङ्गाचात्रांमें श्रीहनुमान्जीको तीनों ही फल प्राप्त भी हो गये। तीनोंका पृथक् पृथक् विवेचन सुनिचे। श्रीहनुमान्जी जङ्गा दहन करते हैं। वहाँ चारों तरफ हाहाकार मच जाता है। अगणित जीव जलकर भस्म हो जाते हैं। इनकी गर्जनाको सुनकर अनेक राक्षस-नारियोंके गर्भपात हो जाते हैं। यह सब हुआ परन्तु आजतक किसीने स्वप्नमें भी ऐसी शक्का नहीं की कि हनुमान्जीको ऐसा करनेमें कोई पाप लगा। करते भी कैसे ? जिसके मस्तकपर परम कालयिकका अभय हस्त फिर गया, उसमें पाप कहाँ ? यह तो हुई पापकी बात, अब तापकी बात सुनिचे। यों तो आप स्वाभाविक ही त्रिभिध तापसे मुक्त हैं, परन्तु यहाँ उस तापके सम्बन्धमें कहना है जिससे आपने सारी जङ्गाको तप्त कर दिया था। आपकी दूँखमें लगायी हुई अग्नि जिस समय करोड़ों लाख-लाख लपटोंसे जङ्गाको दग्ध कर रही थी उस समय प्रज्वालि या बकवानल भी उसके सामने तुच्छ थे। अग्निशिक्षायें मानो काज-रसनाके सहस्र सबको चाट रही थीं। मूसलधार वृष्टि भी उस समय घृताहुतियोंके सहस्र अग्निको अधिकधिक प्रचण्ड कर रही थी। समुद्रका जल उबल रहा था, ऐसी विकट स्थितिमें आप सहज ही एक मन्दिरसे दूसरे मन्दिरपर उड़क रहे हैं, सारा शरीर रोमसे आवृत है, परन्तु अग्निकी आँचसे आपका बाज भी बाँका नहीं होता। कैसा आश्चर्य

है ! बात यह है 'शोषद सिन्धु जनल सितलार्'—की प्रभुतावाले प्रभुका अमय इस जिनके सिरपर रक्सा गया, उनके लिये तापकी सम्भावना ही नहीं रहती !

अब रही मायाकी बात; श्रीहनुमान्जीको तीनों प्रकारकी गुणमयी मायाका सामना करना पड़ा, परन्तु आप सबका परामय करते हुए आगे बढ़े हैं। सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीनों ही मायासे सामना करना पड़ा। देवलोकसे आयी हुई सुरसा सतोगुणी, अधोनिवासिनी सिंहिका जो उड़ते हुए पक्षियोंकी जायाको पकड़कर उन्हें खींच लेती थी, तमोगुणी, और मध्यलोक जंका-निवासिनी जङ्घिनी रजोगुणी थी। उच्च, मध्य और नीचस्थानोंमें रहनेवाली होनेके कारण उपनिषद्मयी गीताके सिद्धान्तानुसार इनका क्रमशः लायिकी, राजसी और तामसी होना सिद्ध है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्थाः अधो गच्छन्ति तमसाः ॥

इनमें सुरसा तो देवलोकसे श्रीहनुमान्जीके बुद्धिबलकी परीक्षाके लिये आयी थी।

जात पवनसुत देवन्ह देखा । जाना चह बल-बुद्धि-विसेखा ॥  
सुरसा नाम अहिन्हकी माता । पठइन्हि आई कही तेहि बता ॥  
आज मुरन्ह मोहिं दीन्ह अहारा । सुनि हँसि बोला पवनकुमारा ॥  
रामकाज करि फिरि मैं आवाँ । सीताकै सुधि प्रभुहि सुनावौ ॥  
तब तब बदन पैठिहौं आई । सत्य कहाँ मोहि जान दे माई ॥  
कबन्हु जतन देहि नहि जाना । असति न मोहि कहेउ हनुमाना ॥

सुरसाने कहा—आज तो देवोंने खूब भोजन भेजा। इसपर श्रीहनुमान्जी हैंसे। इस ईंसमुख मुद्रासे यह सूचित होता है कि आपको सुखह स्वीकार है। इसके बाद मारुतिजीने 'राम' शब्द का उच्चारण किया। क्योंकि श्रीराम-नाम सर्व विघ्न-विनाशक और शत्रुको भी अनुकूल करनेमें समर्थ है। यथा—

धार्ष्ट्यं धारि फिरिकै गोहारि हितकारी होति

आर्षि मीचु मिटति रटत रामनामक ।

पर इस राम-नामसे भी सुरसाने मार्ग नहीं जोड़ा। यहाँ यह राझा होगी कि हनुमान् सरीले नामनिष्ठका यह प्रयोग निष्फल क्यों हुआ ? इसका उत्तर यह है कि सुरसा तो प्रतिकूल थी ही नहीं जो अनुकूल होती। वह तो प्रारम्भसे ही अनुकूल थी, जो योग्यताकी जाँचके लिये आयी थी। इसीलिये वह नहीं हटी। इसके बाद आपने

यह सूचित किया कि मैं 'राम-काज' से जा रहा हूँ। बड़ेका काम सुनकर मामूली जोग भय खा जाते हैं (राम रजाह सीस सबहीके)। इसका भी कोई फल नहीं हुआ, क्योंकि अभी परीक्षाके बहुतसे विषय बाकी थे। अब हनुमान्जीने सोचा कि जीजातिकी जीजातिके प्रति स्वाभाविक सहानुभूति होगी, इससे, 'सीताकै सुधि' प्रभुको सुनानेकी बात कही। इसपर भी सुरसा नहीं हटी। तब प्रतिज्ञा करके समय लेना उचित समझा और 'तब तब बदन पैठिहौं आई' कहा, इसपर भी जब वह नहीं मानी, तब उसे 'माता' (माई) कहकर सम्बोधन किया। शिवोंमें अपत्य-स्नेह स्वाभाविक होता है। कहीं मातृभावसे बालक समझकर ही जोर दे। हनुमान्जी किसी प्रकार भी 'रामकाज' करनेकी चिन्तामें मग्न थे, उन्हें दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं थी। इसपर भी जब वह न मानी तब आपने कहा कि फिर ला क्यों नहीं डालती (असति न मोहि) इतना सुनते ही सुरसाने एक योजनाका मुँह फैलाया, श्रीहनुमान्जी 'रा' 'म' रूपी दो अक्षरोंके बलसे उससे दूने बढ़ गये। तब सुरसाने नारी प्रकृतिके अनुसार उनसे अश्रुगुना सोलह योजनमें मुखका विस्तार किया। मारुतिजीको तो ('प्रीति प्रतीत है आखर 'दू' की' 'तुलसी दुलसे बल आखर दूँ का') दो अक्षरोंका ही भरोसा था इसीलिये वे फिर दूने बत्तीस योजन बढ़े। तब तो सुरसाने किसी नियमको न मानकर तौ योजनमें मुँह फैलाया। श्रीहनुमान्जीने सोचा कि सौ ही योजन समुद्र पार करनेकी बात थी, अबधि आ पहुँची अतएव अब इसे भी पार करना ही चाहिये। तब—अति लघुरूप पवनसुत कीन्हा—झोटासा रूप बनाकर उसके मुँहमें घुस गये और चटपट बाहर निकलकर आज्ञा माँगी—

बदन पैठि पुनि बाहेर आवा । माँगी बिदा ताहि सिर नावा ॥

श्रीहनुमान्जीके बुद्धिबलका मर्म समझकर तन्तुट हो सुरसाने आशीर्वाद दिया—

'रामकाज' सब करिहु तुम बलबुद्धि निधान ।

आसिष देइ गई सो हरषि जले हनुमान ॥

श्रीहनुमान्जीने अपने बुद्धिकौशलसे बाधकको साधक बनाकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। कर्तव्यपथमें विघ्न करने-वालेके साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस बातकी हमें इससे खूब शिक्षा मिलती है। इसके बाद क्रमशः सिंहिका और जङ्घिनीको स्वभावानुसार पुरस्कृत कर आप लड़ा पहुँचे।

आध्यात्मिक दृष्टिसे इस लज्जा-वात्राका अभिप्राय यह है कि जब जीव भक्ति की खोजमें परमार्थ-व्यपार चलाता है तो उसे तीन प्रकारकी मुख्यमयी माया बाधक होती है। इन तीनोंसे श्रीहनुमान्जीके सदा व्यवहार करना चाहिये। सतोगुणोंसे विशेष विरोध न करे क्योंकि शुभकर्मोंकी प्रवृत्तिसे विरोध करना उचित नहीं और निवृत्ति होनेके लिये भजनके हेतुसे उसका सङ्ग निवाहना भी असम्भव है। अतः उसके अनुकूल होते हुए भी अपनेको छोटा बनाकर उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करे, प्रवृत्त न हो, क्योंकि शुभाशुभ दोनों ही प्रकारकी प्रवृत्तिका त्याग करना ही भगवत्-प्रेमियोंके लिये श्रेयस्क है।

त्यागहि कर्म सुभासुमदायक। भजहि मोहि सुर नर मुनि नायक ॥

भुति कहती है—

‘न कर्मणा न प्रजया न धनेन

त्यगेनैकेन अमृतत्वमानशुः’

इस प्रकार सतोगुणी मायासे बचे।

तमोगुणी मायाको सिंद्धिकाकी भाँति जानसे मार डाले। तात्पर्य यह कि उसे निःशेष त्याग दे क्योंकि पापकर्मोंका लेश भी परमार्थके लिये दिन और रातकी तरह विरोधी है।

अतः ‘भूल न देहि कुमारण पाकं।’ तमोगुणी माया बड़ी ही घातक और तीव्र होती है, इससे उसको काया भी नहीं छुने देनी चाहिये, नहीं तो वह छायामात्रको पकड़कर ही हमारा जीवन नष्ट कर देगी। इससे सदा सचेत रहना चाहिये और जहाँ किञ्चित भी सन्देह हो, वहीं—‘ताड्य कपट कपि तुरतहि चीन्हा’ के अनुसार तुरन्त पहिचान कर कटपट उसका काम तमाम कर ही डालना चाहिये। ‘रिपु रिन रंच न राखव काउ।’

रजोगुणी मायाको अवमरी करके छोड़ दे, क्योंकि इसका सर्वथा निराकरण करनेसे शरीररक्षार्थ अवलम्बन-हीन हो जाना पड़ेगा। शरीरयात्रा भरके लिये जड़-वस्तु ग्रहण करना धर्म है, परन्तु उसना ही जितना प्रारब्धबलुसार प्राप्त हो ‘यदृच्छ लभ सन्तुष्टः’। अतः रजोगुणी मायाको लङ्किनीकी भाँति न प्रबल रहने दे और न नष्ट ही करे, बल्कि कमजोर बना, अपने काष्ठमें कर उससे काम निकासे, ‘नात्यदनतस्तुयोगोस्ति न चैकान्तमनहनतः’ (गीता ६।१६) जिससे वह बाधक न होकर साधक ही रहेगी। इसप्रकार त्रिगुणमयी मायासे छुटकर सीतारूपी भक्ति-माताकी खोजमें आगे बढ़ना चाहिये।

इसके बाद श्रीहनुमान्जी अब लङ्कामें जाकर विभीषण जीसे मिलते हैं और उनको अन्तर-बाहरसे भक्त समझ उनके बतलावे हुए मार्गसे अरोकवाटिकामें पहुँच माता सीताका साक्षात्कार करते हैं।

भक्ति-माताकी खोजमें निरत साधकको सङ्ग रह चाहिये। यहाँ हनुमानरूपी जीवको विभीषणरूप सद्गुरुकी प्राप्ति हुई तदनन्तर भक्तिरूपी सीताके दर्शन हुए। इस प्रसङ्गमें वह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि मायासे छुटकारा पानेपर भी सन्त-समागमके बिना क्यार्थ भक्ति की प्राप्ति नहीं होती। इसके सिवा साधकको छोटा-छोटा भक्तीभाँति पहचानकर ही किसीको गुरु बनाना चाहिये। इसकी विधि भी यहीं बतला दी है। वरके बाहर श्रीराम-नाम अङ्कित और तुलसीका वृक्ष चेलकर ही हनुमान्जीने तुरन्त विरवास नहीं कर दिया। जब विभीषण जाकर ‘राम राम’ कहने लगे, तब विरवास किया, क्योंकि रामायणान्तर्गत प्रतापभावकी कथासे ही यह प्रकट है कि जगत्में साधुत्वमें वीर असाधु भी स्वार्थ-साधनके निमित्त निवास करते हैं। कहा है—

तुलसी देखि मुवष, भूलाहि मूढ, न चतुर नर।

सुन्दर केकी पोखि, बचन सुधा-सम असन अहि ॥

अतः जिस प्रकार श्रीहनुमान्जीने विभीषणके बाहरी और भीतरी सब लक्षणोंको चेलकर ही उन्हें सन्त समझा तथा उनपर विरवास किया, सन्त-समागमके अभिलाषी भक्तोंको वैसे ही परीचा करके विरवास करना चाहिये। शास्त्र-सम्मत सन्तोंके लक्षण यथातथ्य मिल जानेपर उस पुरुषसे कार्यहानिकी शङ्का नहीं रह जाती।

तब हनुमन्त कही सब राम-कथा निज नाम।

सुनत जुगल-तनु पुरुष मन भगन सुमिरि गुन-प्राप्त ॥

दो सन्तोंका सतसङ्ग हुआ। दोनों रामाभिरुचिओंका तन, मन, बचन एकाकार हो भगवान्के गुणानुवादमें लीन हो गया। परन्तु इस अवस्थामें भी साक्षात्कार किन्ने बिना पूर्ण शान्ति नहीं। तभी तो वे बोले—‘देखा चरहुँ जानकी माता। फिर विभीषणोपदिष्ट मार्गसे अरोकवाटिकामें पहुँचे। अक्षराज विभीषणकी शिवासे सीताजीकी सन्निधि प्राप्त कर आपने स्वामीकी मुद्रिका माताको प्रदान की।

मुद्रिका-प्रदानमें भी एक रहस्य है। भक्तिके लिये जो कुछ साधक खँट करता है वह वस्तु होती क्या है? केवल प्रभुकी ही हुई ही! अन्यथा बेचारा जीव प्रभु-मसादके अतिरिक्त किसी वस्तुको कहाँसे पता? इसीलिये तो

‘लदीवं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्’ का विधान है। इस प्रकार जब भक्तिके निमित्त प्रभु-भक्त वस्तु समर्पित की जाती है और राम-पराकी पुण्यालक्षि चढ़ने लगती है—रामचन्द्र यद्य वर्णन लगा।’ तब तुरन्त ही स्वयमेव आह्वान होता है।

श्रवणामृत जेहि क्या सुनाई। कहि सो प्रगट होत किन माई ॥

यहाँ बड़ा रहस्यपूर्ण प्रसङ्ग है। श्रीहनुमान्जीके निकट जानेपर माताजी पूरी परीक्षा देनेका विचार कर चुँह केर बैठ गयीं। फिर बैठी मन विसमत्त भवत।

तदनन्तर जब हनुमान्जीने रामभक्त होनेके परिचयमें सहिदानी मुद्रिकाका वक्ष्य कराते और ‘कल्याणनिधान’ का नामकी सत्य शपथ करते हुए उनका दास होनेकी शपथ उठाकर पूर्ण रूपसे विश्वास दिलाया—

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुनानिधानकी ॥

यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥

तब उन्हें मन, कर्म, वचनसे ‘कृपासिन्धु, का दास जान परम प्रसन्न हुई और पुलकित होकर सन्नुष्ट मनसे आशीर्वाद प्रदान किया।

जाना मन क्रम वचन यह कृपासिन्धु कर दास।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥

आसिष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ॥

अजर अमर गुननिधि सुत होहु। सदा करहि रघुनायक छोहु ॥

अच्छने विमल वरदान पाया। हनुमान् प्रेममें तन-मनकी सुधि भूल गये।

करहु कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्मल प्रेम भगन हनुमाना ॥

—यही निष्काम भक्तोंका परम धन है।

यहाँ श्रीहनुमान्जीने यह प्रमाणित कर दिया कि भगवत्-प्रेमियोंको प्रभुकी कृपाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिये।

अब कृतकृत्य भयउँ मैं मत्ता। आसिष तब अमोघ विरूपता ॥

इसके बाद लङ्कासे विदा होते समय हनुमान्जी कोई सहिदानी माँगते हैं और माता चूड़ामणि उतारकर देती है।

● श्रीमाताजी सरकारको सदा ‘कल्याणनिधान’ शब्दसे सम्बोधन करती थीं, हनुमान्को इस मर्मका शाता जानकर ही विश्वास किया।

मुद्रिकाके बदले चूड़ामणि प्रदान करनेमें भी गुरु रहस्य है। भगवान्ने जो अपने हाथका भूषण ‘मुद्रिका’ दी, इसका अभिप्राय यह है कि ‘हे सीते ! तुम कहीं भी हो, मेरे कर-कमलकी छाया सदा तुम्हारे सिर पर मौजूद है, तुम अभय इसके आश्रयमें अभय हो।’ और उसके बदलेमें सिरका गहना चूड़ामणि देनेका अभिप्राय यह है कि ‘हे नाथ ! यह शीश आपके कर-कमलकी छाया छोड़कर दूसरा अवलम्बन नहीं रखता।’ इस अभीष्ट सिद्धान्तकी शिक्षा प्राप्त कर श्रीरामकी जल्दी छौटनेकी आज्ञानुसार श्रीहनुमान्जी माताको जेब दिखाकर छौट चले।

सारा काम श्रीहनुमान्जीके कौशलसे ही हुआ था तथापि आप सङ्कोचवश स्वामी श्रीरामजी और सुग्रीवके पास बमबदले सामने सीना करके नहीं गये, बरं सिर झुकाये ही गये और जाकर भी पीछे ही झिपे रहे। सम्भवतः यह भी लम्बाक रहा होगा कि स्वामीकी आज्ञा बिना ही प्रसन्नवस लङ्का-बहन और राक्षस-वच करना पड़ा, इसके लिये कहीं प्रभु अप्रसन्न तो नहीं होंगे ? तदनन्तर आपकी सारी कहानी भगवान्को जम्बवन्तने सुनायी। इतना महान् कार्य करके भी हनुमान्जीके हृदयमें अभिमानका झङ्कुर न बसा। अभिमान-का अत्यन्त अभाव होनेके कारण ही आप अपना बल भूले रहते थे। इससे शिक्षा मिलती है कि बड़ेसे बड़ा कार्य करके भी कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। श्रीहनुमान्जीने यह सत्य सिद्धान्त बतला दिया—

सो सब तब प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरी प्रभुताई ॥

‘सारी सिद्धियाँ केवल प्रभु-कृपासे ही प्राप्त होती हैं।’ साधकके लिये यह अत्यन्त शिक्षाप्रद विषय है। श्रीहनुमान्जी की नम्रताका वर्णन प्रसंगवश गोस्वामीजीने रावण-अङ्गद-संवादके प्रकरणमें किया है। जब रावण श्रीरघुनाथजीकी सेनामें सबके बलकी निन्दा तथा श्रीहनुमान्जीकी प्रशंसा करता है, तब अङ्गदजी वस्तुस्थितिको प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

अब जानेउ पुर दहेउ कपि, बिनु प्रभु-आयसु पाइ।

पुनि न गयेउ निज नाथ पहुँ, तेहि भय रहेउ लुकाय ॥

तथा—

रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस वचन सत्य को कहई ॥

‘हे रावण ! अब मुझे यह रहस्य माखस हुआ, बिना प्रभुकी आज्ञा लिये उस वाग्वरने लङ्का-बहन किया तभी तो

वह भगवान्‌के सामने नहीं गया, मयके मारे चिप रहा। अथवा तुम्हारी बात ही सच्ची नहीं है। भक्षा, वह नन्हा-सा सीधा सादा बानर क्या इतने विराट्‌ नगरको जला सकता है ?' अज्ञवृत्तीके इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीहनुमान्‌-जीकी अत्यन्त नम्रता, निरभिमानताके कारण अज्ञानने भी उनको इतना काम करनेवाला नहीं समझा था। कोई समझता भी कैसे ? श्रीहनुमान्‌जी तो अपने दुँहसे अपनी बड़ाईकी कोई बात कभी कहते ही नहीं थे, वे तो चुपचाप सेवामें लगे रहते थे। वे कपि-समाजके गर्जन-तर्जनमें कभी भाग नहीं लेते थे।

गोस्वामीजीने इनकी वन्दना 'महावीर विनवां हनुमाना' 'बन्दी पवनकुमार' इत्यादि बड़े ही अच्छे शब्दोंमें की है, और इनका ऐसा स्वभाव देखकर इनके विनयातुल्यज्ञानकी स्पष्टताके लिये एक जगह तो इनके नामके 'मान्' शब्दको हटा ही देना अच्छा समझा है। जिसने जीवन भर 'मान' की उपेक्षा की, उसके नामके अन्तर्गत 'मान'का रहना गोस्वामीजीको कैसे नहीं लटकता ?

उभय भौति तोहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत ।

जय कृपागु कहि कपि चले अंगद 'हनु' समेत ॥

कैसा अच्छा प्रसङ्ग है। विभीषणजी राक्षससे विमुक्त हो भगवान्‌की शरणमें आ रहे हैं, उन्हें लिखा जानेके लिये कपिसमाज जाता है। सन्त मिलनका शुभ अवसर है। ऐसे अवसरपर श्रीमालतिजी 'मान्' लेकर क्या करते ? यही कारण है कि श्रीतुलसीदासजीने 'हनु' मात्रका प्रयोग कर स्वाभाविक वर्णनकी पराकाष्ठा दिखला दी।

इसी नम्रताके कारण हनुमान्‌जी भक्ति और शक्तिके समान अधिकारी हुए, जिसके कारण अन्तमें श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे भी ये उद्गार निकल पड़े—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी॥

प्रति उपकार करी का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखउँ करि निचार मन माँहीं ॥

इतना ही नहीं, श्रीहनुमान्‌जीने, शक्ति प्रकरसे श्री-रामचन्द्रजीको, विजय-सम्प्रेषसे श्रीबानकीजीको, और अच

आत्मन-सम्प्रेषसे श्रीभरतजीको तथा समस्त अयोध्याको बचावा लिखा। यही कारण है कि श्रीरामपञ्चावतनमें आपको भी स्थान प्राप्त है।

भरत दीन्ह निज बसन इसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥

मास्त-सुत तब मास्त करई। पुलक बपुष होचन जल मरई ॥

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निजमुख गाई ॥

भगवान्‌ स्वयं ऐसे भक्तका गुणानुवाद अपने श्रीमुखसे करते हैं ॥ आपका जीवन सेवा और पुरुषार्थका नमूना है और इससे हमें यह अन्यतम शिक्षा प्राप्त होती है कि भगवान्‌की सेवाके साथ साथ पुरुषार्थ करनेसे भगवान्‌की कृपापट्टि होती है और जीवन सफल हो जाता है।

बन्दी पवनकुमार, खल-बन पावक ग्यान-धन ।

जासु हृदय-आगार बसहिं राम सर-चापधर ॥

अन्य हनुमान्‌ तुमको और तुम्हारे लोकपावन चरित्रको !

\* वाल्मीकीय रामायणमें भगवान्‌ श्रीरामने हनुमान्‌जीसे कहा है—

चरित्र्यनि कथा यावदेषा लोके च मामिका ॥

तावत्ते भविता कीर्तिः शरीरेऽप्यमवस्तथा ।

लोका हि यावत्स्यास्यान्ति यावत्स्यास्यति मे कथा ॥

एकैकस्योपकारस्य प्राणान्द्रास्यामि ते कपे !

शेषस्येहोपकाराणां भवाम काणिनो वयम् ॥

मदंगे जीर्णतां यातु यत्स्वयोपकृतं कपे ।

नरः प्रत्युपकाराणामापन्नायाति पात्रताम् ॥

( वा०रा० ७।४१।२१ से २४ )

'हे हनुमान्‌ ! इस लोकमें जबनक मेरी कथा रहेगी तबतक तेरी कीर्ति और तेरा जीवन रहेगा । और जबनक जगत्‌ रहेगा तबनक मेरा कथा रहेगी । हे बानर, तूने मुझपर बड़े बड़े उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी तेरा बदला नहीं चुका सकता, फिर शेष उपकारोंके लिये तो तेरा कृण कैसे चुका सकता हूँ ? तेरे उपकार मेरे ही शरीरमें जाँघ हो जायँ, ऐसा अवसर ही न आवे जब तुझे उपकारोंका बदला पाने योग्य पात्र बनना पड़े। क्योंकि जब मनुष्यपर विपत्ति आता है तभी वह प्रत्युपकारका पात्र होता है, अतएव तुझपर कभी आपत्ति ही न आवे।' इन वचनोंसे पता लगता है कि श्रीहनुमान्‌जी भगवान्‌को कितने प्यारे थे !—सम्पादक।



### विराध-वध ।

तुस्तहिं रचिर रूप तेहिं पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥



### जयन्तकौ दुष्टता ।

सीता चरन जौन हति भागा । मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥



### कपट-सूय ।

‘प्रातः वज्रतः प्रगटंति निजं देशं । रुमिरिति राम समेत सनेहा ।



### सीता-हरण ।

कोधवन्तं तत्र रावतं लोन्हेसि रयं बैठार ।  
चला गगनपथं अतुरं मय रयं ह्रींकि न जाह ॥



## विभीषण

( लेखक—भीरुनाथप्रसादसिंहजी )



सारिक, राजनीतिक, पारिवारिक दृष्टि-से विभीषणका चरित्र निम्नवीच कहा जानेपर भी आध्यात्मिक विचार-की दृष्टिसे विभीषण एक उच्च कोटिके जीव हैं, क्योंकि संसारमें जन्म जारण करनेका फल उन्हें पूरा मिला गया। अपने जीवनको उन्होंने पूर्ण-तया सार्थक किया। श्रीमुखके बचन हैं कि साधन-धाम, मोक्षका द्वार नरवेह बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। इसे पाकर जो परलोक नहीं लँघार सकता, वह—

सां परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताय ।

कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिरया दोष लगाय ॥

विभीषणने विषयोंमें मन न लगाकर भवसागरसे पार होनेका यत्न किया। 'सकल सुख ज्ञानि' स्वतन्त्र भगवन्नृत्तिक-का अवलम्बन कर इसलोक पूर्व परलोकमें यथेष्ट सुख प्राप्त किया।

विभीषणजीका मुकाब तो भगवान् की ओर पहलेसे ही था, वह भगवत्-प्राप्तिके लिये उत्सुक जरूर थे किन्तु बिना सन्त-कृपाके सच्ची भक्ति प्राप्त हो नहीं सकती, भक्तिके रहस्यका भेद मिल नहीं सकता। पर सन्त-समागम भी तो बिना पुण्य-पुंज नहीं होता।

'पुन्य-पुंज बिनु मिलहि न सन्ता। सत-संगति संसृति कर अन्ता ॥

विभीषणका पुण्य पूरा था। स्वतन्त्रमन्यवलीमें रहनेपर भी वह अपना धर्म निभाहते थे। तभी तो निशिचरनाथ रावण की राजधानीमें भी हरि मन्दिरमें राम-रामका सुमिरन करते हुए वह सज्जनवत् निवास करते थे। इन्हींके भाग्यसे श्री-हनुमान्जी संकामें गये।

प्रभुके लिये हवकी उत्कण्ठा उत्सुकतातो इसीसे जाहिर होती है कि यह विप्रकल्पमें हनुमान्जीका बचन सुनते ही और पूछने लगे कि 'आप हरि हैं कि हरिदास ? क्योंकि आपको देखते ही मुझे प्रतीति होती है कि मैं जिसकी छायामें बैठा हूँ वह आप ही हैं।'।

भक्त-सुखम नम्रता, दीनता और सन्तोंमें स्नेह आदि-को इनमें थे ही। जिस बातकी कमी भी उसकी पूर्ति भी

श्रीहनुमान्जीके दर्शन और उपदेशसे हो गयी। मास्तनन्दन एक आदर्श भक्त थे। इनकी दीक्षाके बाद आत्मविकास होनेमें आश्चर्य ही क्या है ?

पहले तो वह रावणके मंत्री, उसके दरबारी, उसकी प्रजा और उसके बन्धु होने और सांसारिक वासनाओंके हृदयमें रहनेके कारण दबते थे, संकोच करते थे, पर जब हृदय-सरोवरमें वैराग्य-सञ्चल भर गया, मनपर अनुरागका अनोखा रंग चढ़ गया तब फिर धर्म झोककर अधर्मकी ओर जाना आपके लिये सर्वथा कठिन हो गया। जिस रावण-के भयसे उसके सम्मुख होते भी संकोच करते थे, अबसर पाकर उसीको सदुपदेश देनेके कारण आपने उसका पाद-प्रहार सहन किया। अब क्या था, इस विस्तृत संसारमें इन्हें अपने डहरनेका कोई ठौर नहीं दीख पड़ा !

वह तो निश्चय ही है कि जब मनुष्यका सब बल हट जाता है, सारे सहारे छूट जाते हैं, दुनियासे प्रतापित और पीड़ित होने लगता है तब उसे भगवान् सूझते हैं। श्रीसूरदास-जीने इसीलिखे 'निरबलके बल राम' गाया है।

लंकासे विभीषण अर्थात् होकर चले। पुण्य-पुंजने जोर दिया। मन निश्चल हो गया। भगवान् श्रीरामचन्द्रके शिबिरमें पहुँचे। बुद्ध-नीतिके अनुसार वृत्तोंने राक्षस जान इन्हें पकड़ लिया, सेनापतिके पास बह लाये गये। प्रभुको संवाद दिया गया। दुःखी होकर संसारमें कहीं डहरनेका ठौर न पाकर विभीषण आया है, प्रभुने सहजमें ही इस बातको जान लिया। वास्तवमें, उस समय बलशाली रावणके वैरीको अपने पास रखने और रावणके क्रोधानलसे उसको बचानेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। इसीलिखे विभीषणने श्रीरामका आश्रय ग्रहण करना चाहा क्योंकि इस समय तक संसारमें यह राष्ट्र हो गया था कि दशरथ-तनय श्रीराम भगवान् के अवतार हैं। अतएव राहमें विभीषण मन-ही-मन सोचता आता था—

देखिहौं जाइ चरण-जल-जाता। अरुन-मृदुल सेवक सुख-दाता ॥

जे पद परसि तरी रिषि-नारी। दंडक-कालन-पावन कारी ॥

जे पद जनक-सुता उर लाये। कपट-कुरंग-संग धरि-धाये ॥

हर-उर-सर सरोज पद जेई। अहो आग्य मैं देखिहउँ तेई



मिन्ह पायन्ह कै पादुकिन्ह भरत रहे मन लाइ ।

ते पद आज बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ॥

प्रभुने जान लिया कि विभीषण शरणा आया है । शरणागतकी रक्षाका प्रबन्ध सरकार कभी भूलते नहीं । विभीषण बुझाया जाता है और प्रभुके दर्शन मात्रसे वह पवित्र हो जाता है । वह किसी भी बातको नहीं छिपाता । निष्कपट भावसे कहता है कि, 'मैं तो आपके समीप आने योग्य पात्र नहीं हूँ क्योंकि आप सुर-ब्राह्मण हैं और मेरा जन्म 'निशिचर वंश' में है, तिस पर आपके प्रबन्ध शत्रु रावणका मैं आई हूँ । किन्तु बात यह है कि—

अवन सुजसु सुनि आयेऊँ, प्रभु भजन भव-भीर,  
ब्राहि । ब्राहि । आरति-हरन, सरन-सुखद रघुभीर ॥  
वही प्रभुका मन्तव्य है कि—

सरनागत कहँ जेतजहिं निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥

कोटि निमेष लगहि जाहूँ । आप सरन तजउँ नहिं ताहूँ ॥  
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥  
पापबन्त कर सहज सुमाऊ । भजन मेर तेहि भाव न काऊ ॥  
जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई । मेरे सनमुख आव कि सोई ॥  
निरमल मन जन तो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न मावा

प्रभुकी प्रतिज्ञा है—

सङ्केद प्रपन्नाय तवास्मीति न माचते ।

अभय सर्वभूतेभ्यो ददास्येतद्भ्रतं मम ॥

श्रीभगवान्के इस रहस्यको विभीषण श्रीहनुमान्जीसे सुन चुका था और उसीके बलपर वह आया था । प्रभुने अपने प्रबन्धको रक्खा, उसकी शरणागति स्वीकृत हुई ।

वहाँ लंकाका राज्य मिला, वहाँ परमपदकी प्राप्ति हुई । विभीषणके दोनों लोक बन गये । इसीसे कहा जाता है कि शरणागति आजानेसे पर प्रभु पत्रापात्रका विचार नहीं करते । शरणागत जीवको वह अक्षरबही अपनाते हैं । आत्म-समर्पण कर अपनेको अपने इच्छामय प्रेमदेवकी इच्छा पर जोड़कर 'मैंपन' की सर्वथा आहुति दे देनेका नामही शरणागति है । प्रभुके धार्मिक और किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं, प्रभुको जो भावे, वही किया जाय, और उन्हींकी इच्छाको अपनी इच्छा समझा जाय वही शरणागति है । वही भक्ति रहस्य है ।

## रावणके जीवनसे शिक्षा

( लेखक—पं० उपेन्द्रनाथजी पाठक )

जड़ चेतन गुण-दोषमय, निश्च कीन्ह करतार ॥



स ठिके अनुसार प्रकाशकी सृष्टिमें मायाकी भाँति गुण और दोष, पूर्ण रूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं । अतः किसी वस्तुको सर्वथा सर्वोप-  
अथवा निर्वोप कहना बहुत कठिन है किन्तु फिर भी कल्याणकर प्रभुने सांसारिक मनुष्यों-  
के हृदयमें, इस विडम्बनामय संसारके अवगुणोंसे बचकर अमर सुख प्राप्त करनेके

निमित्त, विवेकरूपी मखिको प्रदीप्त कर महान् कल्याण किया है । इसी विवेकके द्वारा मानव समाज ऐहिक और पारलौकिक सुखोंका भोग कर परमधाम प्राप्त करनेके योग्य बन जाता है । जिस मनुष्यकी विवेकरूपी मखि विषय-वासनाओंके मोहमय अन्धकारसे प्रमाहीन हो जाती है, वह नाना प्रकारके कष्टोंका लक्ष्य बन जाता है । उसके हृदयसे भले-बुरेकी पहिचान करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है और वह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य-भक्षी बन जाता है । यह बात उतनी ही सत्य है जितना कि दो और दो बार अथवा दिनके बाद रातका होना है । हिन्दू-संस्कृति और सम्बन्धके इतिहासमें इस विषयके समर्थनमें प्रचुर प्रमाण उपलब्ध होते हैं । महाभारत तथा रामायणादि इतिहास-ग्रन्थोंमें विवेक-अन्ध राजाओंकी दुर्दशा तथा पतनका ऐसा विशद वर्णन मिलता है कि जिसे पढ़कर आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती । उन्हीं अविवेकी राजाओंमें पुलस्त्य-कुल-सम्भूत राक्षस-राज रावण भी था, जिसने उग्र तपस्याके द्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न कर देव एवं दानव दोनों ही से पुण्ड्र काष्ठ देनेतककी सेवा करवायी थी, जिसने अपने प्रबन्ध मुजर्दोंके प्रबन्ध प्रतापसे काजामि, इन्द्र और बल्यको भी अपना क्रीत-दास बना रक्खा था, जिसने अपने जीवनमें पराजयका कभी दर्शन तक नहीं किया था, जिसकी स्वर्णमयी लंकाको देलकर अमरेन्द्र भी सज्जित हो जाता था, जिसके अन्तः-  
पुरमें असंख्य चन्द्रमुखियाँ अपनी सुलचन्द्रिकाकी उज्ज्वल क्योस्ता सदा सर्वदा झिड़काया करती थीं, जिसकी सेना चक्रवर्त्य, मेघनाद और कुम्भकरणके समान अद्वितीय बलवान् योद्धाओंसे पूर्ण थी, तथा जो स्वयं भी प्रकाण्ड विद्वान्, प्रबल पराक्रमी, अद्वितीय राजनीतिज्ञ तथा महान् ऐश्वर्य-

शास्त्री था, ऐसे राक्षस-राज रावणका भी हृदयकी विवेकमयि पर अहंकार और अविवेकका पदों पद जानेसे पतन होते कुछ भी देर न लगी। विष्णोपभोग और मद्य-मांसादि अभक्ष्य पदार्थोंके निरन्तर सेवनसे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अतएव उसने प्रभुको विस्मृत कर कामिनी और कांचनको ही संसारका सर्वोत्कृष्ट पदार्थ समझा, सुन्दरी नारियोंके अपहरणका वृथित कार्य उसके राज्यमें एक साधारण-सी बात समझी जाने लगी। अनेक कुल-कामिनीयोंको उसकी अप्रतिहत काम-वासनाकी वृत्ति-के लिये विवश हो अपना सतीत्व नष्ट कर देना पड़ा। इस जघन्य व्यापारका व्यव प्रजापर बढ़े बढ़े कर जगाकर निकाला जाने लगा। करका बोझ इतना बढ़ गया कि जिनके पास खाने तकके लिये भी पैसे न थे, उन्हें अपना रक्त करके रूपमें देनेके लिये विवश होना पड़ा। ऐसा बोर अनाचार अधिक दिनोंतक भक्त-वत्सल भगवान्से सहा नहीं जाता। जब रावणके पापका घड़ा लबाजब भर गया, तब उस कररूप ऋषिरक्तसे जनक-मन्दिनी महारानी सीता-ने जन्म ग्रहण किया। समय पाकर जगज्जननीकी सौन्दर्य-की क्वालि चारों ओर फैल गयी। रावण तो कामिनी कांचनका दास था ही, उसने भी जनकमन्दिनीको प्राप्त करनेकी चेष्टा की, पर सफल न हो सका। क्योंकि उस समयतक उसके पापका घड़ा एकदम भरा न था, जब उसका समय सन्निकट आगया तब उसने जानकीको चुरा कर, परिग्रामस्वरूप स्वर्ण-मयी लंकाके साथ अपनेको भी नष्ट कर डाला। अतएव रावणके चरित्रसे हमें जो शिक्षा मिलती है, वह बड़ी गम्भीर तथा मननीय है। रावण सर्वगुण सम्पन्न विद्वान् नृपति था किन्तु कुसंग और अभिमानसे उसका सदाचार तथा विवेक नष्ट हो गया था। विवेकभ्रष्ट मनुष्योंका शतधा पतन होता है, अतएव उसका भी सर्व-भाश हो गया।

इससे यह सीखना चाहिये कि सदाचार, चिनच, धर्म-परायणता, ईश्वरमें श्रद्धा आदि गुणोंसे ही मनुष्यका अशुद्ध और परम कल्याण होता है, इसके विपरीत ऊँचेसे ऊँचे पद, ऐश्वर्य और बलको प्राप्त करनेपर भी सदाचारविहीन मनुष्यका अन्तमें सर्वनाश हो जाता है। इसलिये जमबद

और दुःखरित्रताको छोड़कर सदैव ही धर्मपालनमें ही तत्पर रहना चाहिये।

\* शुभाली राक्षसकी कन्या कैकसीके गर्भ और पुलस्त्य-पुत्र मुनिवर विश्रवाके औरससे रावणका जन्म हुआ था। पिताकी आज्ञानुसार कैकसी विवाहार्थ मुनि विश्रवाके पास गयी थी। मुनिने उसके मनकी बात जानकर उससे कहा कि 'तू पुत्रेच्छसे मेरे पास आयी है, तेरे पुत्र होंगे परन्तु तू प्रदोषके समय आयी इससे तेरे दारुण स्वभाव, दारुण स्वरूप और दारुण संगवाले क्रूर-कर्मा राक्षस पुत्र होंगे। कैकसीने डरकर कहा कि 'भगवन् ! मैं आपके सट्टश ब्रह्मवादोंके औरससे ऐसे निष्ठुर पुत्र नहीं चाहती, कृपा कीजिये।' इसपर मुनिने प्रसन्न होकर कहा कि 'हे शोभने ! तेरे सबसे छोटा पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा।' इसी कैकसी-के रावण, कुम्भकरण और विभीषण नामक तीन पुत्र, और विभीषण से बड़ी शूर्पणखा नामक एक कन्या हुई। रावण और कुम्भकरणने महातप करके ब्रह्माजीसे मनुष्यादि प्राणियोंके सिवा पक्षी, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देव आदि किसीके हाथसे न मरने, तथा इच्छानुसार मनमाना स्वरूप धारण कर सकनेका वरदान प्राप्त किया। तदनन्तर बलगर्हित रावणने देव-दानव सबको जीत लिया। इसके उपद्रवों और अत्याचारोंसे पीड़िता होकर अनेक सती देवियों-ने इसको भीषण शाप दिये थे। रावणने अपने सौतेले भाई कुबेरको लङ्कासे निकालकर उसपर अधिकार कर लिया था।

कहा जाता है कि रावण परम विद्वान्, बुद्धिमान, बली और चतुर था। वैदिक अनुष्ठान करता था और वेदोंपर उसने भाष्य भी रचे थे। भगवान्के प्रति भी मन-हां-मन बड़ी भक्ति करता था। इसीलिये श्रीगुप्तार्जुनीने, खरदूषणके मरनेपर सीताहरणका निश्चय करनेके पूर्व रावणके मनमें कैसे विचार आये थे और उसने किस उद्देश्यसे सीता-हरणका निश्चय किया था, इस बातको निम्नलिखित चौपाइयोंमें बड़ी खूबीसे व्यक्त किया है—

सुर नर असुर नाग खग माहीं । मेरे अनुचर सम कोउ नहीं ॥  
खर दूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारे बिनु भगवंता ॥  
सुर-रंजन मंजन महि मारा । जौ जगदीस लीन्ह अवतारा ॥  
तो मैं जाइ बैर हठि करउँ । प्रभु-सर प्रान तजे भव तरउँ ॥  
होइहि भजन न तामस देहा । मन क्रम बचन मन्त्र दह पहा ॥

—सम्पादक

## गीधराज जटायुकी अलौकिक भक्ति

( लेखक—ज्यौहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी )



यद्यपि गुसाईजीने श्रीभरत, हनुमान् आदि अनेक भक्तोंके प्रेमका वन्दन किया है किन्तु गीधकी प्रीति रामायणमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है गीध रावणसे लड़कर पायल होता है—

फिरत न बारहिं बार पचारयो ।  
चपरि चाँच चंगुल हय हति रय,  
खंड-खंड करि डारयो ॥  
विरय बिकल कियो, छीनि लीन्हि सिय,  
घन घायनि अकुलान्यौ ।  
तब आसि काढ़ि काटि पर पाँवर  
लै प्रभु-प्रिया परान्यौ ॥  
राम-काज खगराज आजु लख्यो  
जियत न जानकि त्यागी ।  
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत  
घन्य बिहँग बड़भागी ॥  
वह सीताको न छुड़ा सकनेके कारण परचात्ताप कर रहा है,  
इतनेमें ही श्रीराम-लक्ष्मण वहाँ पहुँच जाते हैं—  
मेरे एकौ हाथ न लागी ।  
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों  
कलप-लता दव दागी ॥  
दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यौ  
हुतो जो सकल जग साखी ।  
बरबस हरत निसाचरपति सों  
हठि न जानकी राखी ॥  
मरत न मैं रघुबीर बिलोंके  
तापस नेष बनाए ।  
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु  
भिय-सुधि प्रभुहि सुनाए ॥  
बारबार कर मीजि, सीस धुनि  
गीधराज पछिताई ।  
तुलसी प्रभु कृपाळु तेहि औसर  
आइ गए; दोउ भाई ॥

श्रीरामजी भी गीधराजकी यह दशा देखकर उसे गोद-में लेकर बिलाप करने लगते हैं:—

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।  
नैन-सरोज सनेह-सलिल सुधि  
मनहुँ अरध-जल दीन्हों ।  
श्रीराम कहते हैं कि मैं गीधराजके मिलनेसे पिताकी  
सृष्ट्युके दुःखको भूल-सा गया था किन्तु विधाताको मेरा  
यह सुख भी नहीं सुहाया ।

सुनहु लखन ! खग-पतिहिं मिले बन  
मैं पितु-मरन न जान्यौ ।  
सहि न सक्यो सो कठिन विधाता  
बड़ो पछु आजहुँ भान्यौ ।  
श्रीराम गीधके प्रेमको देखकर 'सीता-विभोग'को भी  
भूल जाते हैं और कुछ दिन जीवन-धारण करनेके लिये  
उससे बड़ा आग्रह करते हैं—

मेरे जान तात कलू दिन जीजे ।  
देखिय आपु सुवन-सेवा-सुख  
मोहिं पितुको सुख दीजै ।  
दिन्य-देह, इच्छा-जीवन जग  
बिधि मनाइ मैनि लीजै ॥

यहाँ श्रीरामजीने गीधराजको अपने पिताका पद प्रदान किया जो दूसरे किसीको नहीं दिया जा सकता । उसे दिव्य देह, इच्छा-भरण आदि सभीकुछ देनेका वचन दिया, यहाँ-तक कह दिया कि 'अपने लिये नहीं तो संसारको कृतार्थ करनेके लिये जीवन धारण कीजिये' किन्तु गीधने इनमेंसे कोईसा प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किया । उसने सोचा कि रामकी गोदमें मरनेके समान सुख और परमपदका साधन और क्या हो सकता है ? इस सृष्ट्युके सामने उसने चारों फलोंको कुछ समझा ।

बोल्यो बिहँग बिहँसि 'रघुबर बलि  
कहाँ सुभाव पतीजै ।  
मेरे मरिने सम न चारि फल  
होहि तौ क्यों न कहीजै ?'

उसने कहा 'राम'

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमहूँ मुकुति होइ श्रुति गावा ॥  
सो मन लोचन गोचर आगे । राखौ देह नाथ केहि लागे ॥

मृत्यु-समय जिसका नाम भी दुर्लभ हो जाता है स्वयं उसकी उपस्थितिमें, उसीके वचन सुनते हुए, उसीका नाम जेते हुए तथा उसीका रूप सतत आँखोंसे देखते हुए, और उसीकी गोदमें सिर रखकर शरीर झोढ़नेके समान अन्य क्या सौभाग्य हो सकता है ?

नीकै कै जानत राम हियो हौ ।

प्रनतपाक, सेवक-रूपाल-चित

पितु पटतरहि दियौ हौ ।

त्रिजग जोनि-गत गीध जनमभरि

साह कुजंतु जियो हौ ॥

महाराज मुकुती-समाज सब-

ऊपर आज कियो हौ ।

सवन वचन, मुख-नाम, रूप-बस

राम उछंग लियो हौ ।

तुलसी मो समान बड़भागी

को कहि सकै बियो हौ ॥

गीधराजने कहा 'इस नश्वर शरीरके दीर्घजीवन या इच्छा-भरणकी आशामें पढ़कर मैं इस दुर्लभ अवसरको नहीं छोड़ सकता । मौत तो बहुत मिलेगी पर उस समय तुम कहाँ मिलोगे ?

तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगे

समय न वोखो सेहौ ।

जाको नाम मरत मुनि-दुर्लभ

तुम्हहि कहाँ पुनि पैहौ ? ॥

( पं० १३ )

कितनी ऊँची भावना है ! गुसाईजीने अपनी प्रसिमासे इस प्रसंगको बहुत ही ऊँचा बना दिया है ।

दोहावलीमें भी गुसाईजीने बड़े अच्छे शब्दोंमें गीधके स्वर्गीय प्रेम और दुर्लभ मृत्युकी प्रशंसा की है—

विरत, करमगत, भगत, मुनि, सिद्ध, ऊँच अह नीच ।

तुलसी सकल सिद्धांत मुनि, गीधराजकी मीच ॥

उन्होंने यहाँतक कह दिया है कि गीधराजके समान मृत्यु संसारमें किसीको भी नहीं प्राप्त हो सकी ।

मुप, मरत, मरिहैं सकल, घरी-पहरके बीच ।

लही न काहू आज लौं गीधराजकी मीच ॥

मुप मुकुत, जीवन मुकुत, मुकुत मुकुत हू बीच ।

तुलसी सबहा ते अधिक गीधराजकी मीच ॥

( दोहा० १३४-१३५ )

सबमुच यदि ध्यानपूर्वक विचारा जाय तो मालूम होगा कि आजतक किसी भी भक्तको ऐसी मौत नसीब नहीं हुई । आजीवन परम भक्तिमय जीवन बिताकर मरनेवाले हुए हैं, रामकाजमें ही शरीरका बखिदान देनेवाले हुए हैं, जन्मभर पाप करके अन्तमें 'राम-नाम' से मुक्त होनेवाले हुए हैं, किन्तु इसप्रकार रामके काजमें, रामका दर्शन करते हुए, रामके वचन सुनते हुए और रामकी ही गोदमें जेते हुए प्राण त्यागनेवाला तो बड़भागी गीधके अतिरिक्त और कोई नहीं हुआ ।

फिर उसकी अन्वेषि क्रिया भी तो 'निजकर कीन्हौ राम' । ऐसा सौभाग्य तो दशरथको भी नहीं बदा था ।

गुसाईजीने जिस मृत्युकी कामना की थी, वह है—

समर मरन, पुनि सुरसरि तीरा । रामकाज छनमंगु सरिरा ॥

परहित लागि तजै जे देही । संतत संत प्रसंसत तेही ॥

इनमेंसे एक 'सुरसरि-तीर' को छोड़कर गीधको शेष सभी बातें मिलीं । परन्तु सुरसरिके बख्शेमें वे पावन चरण मिल गये, जिनसे सुरसरीजी प्रकट हुई थी ।

गुसाईजीने विनय-पत्रिका, मानस आदि ग्रन्थोंमें स्थान स्थानपर रामजीकी इस बातके लिये बड़ी प्रशंसा की है कि उन्होंने गीध, शबरी आदि नीच पतित और अधमोंको तार दिया ।

गीध अधम सग आमिष भोगी । गति दीन्हौ जेहि जाँचत जोगी ॥

पर विचारनेकी बात यह है कि क्या सबमुच गीध अधम था ? अवश्य ही भक्तोंके लिये तो यही उचित है कि वे अपनी मुक्तिमें राम-रूपाको ही कारण मानें और अपनी करनीको सर्वदा तुच्छ समझें । हनुमान्जीको तो यही कहना शोभा देता है कि—

सो सब तब प्रताप रघुराई । नाथ न कलुष मोरि प्रभुताई ॥

किन्तु भगवान् उनकी करनीको अपनी तरह समझते हैं और यहाँ तक कहते हैं कि—

‘प्रतिउपकार करों का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥’

यहाँ भी श्रीरामजी स्वयं गीधराजसे कहते हैं कि ‘तुम्हारी मुक्ति का कारण मेरी कृपा नहीं है, इसमें कारण है निःस्वार्थ प्रोपकारमें तुम्हारा सुखसे प्राप्तत्वाग कर देना।

जल भरि नयन कहत रघुराई। तात करम निज तें गति पाई॥

परहित बस जिनके मन माहीं। तिनकहँ अग दुरलभ कछु नाहीं॥

महाराज रघुराजसिंहजीने तो रामकृपा और अपनी करनी दोनों ही को मिला दिया है—

कलुक दूर आगे चलि रघुपति निकल बिहंग निहारयो।

कृपानिधान जटायु अंग-रज निज जटानसों शारयो॥

प्रभु-पद परसि गोघ तनु त्याग्यो, निज हाथनि करि करनी।

गीधराज कहँ दई राम गति वेद-पुराननि बरनी॥

अन्तोंको अपनी करनीको भी तो प्रभु-कृपाका ही फल मानना चाहिये !

## भगवान् श्रीराम

( लेखक—श्रीबालाप्रसादजी कानाविया )

### प्रजावत्सल श्रीराम

कौसल-पुर-वासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।

प्राणहुँ तें प्रिय लागही सब कहँ राम कृपाल॥

उमा अवधवासी नर नारि कृशार्थ रूप।

ब्रह्म सच्चिदानन्द धन रघुनाथक जहँ भूप॥



राजमें अनेक राजा हो चुके हैं और होंगे पर रघुकुलभूषण अवधेश श्रीरामके समाज न कोई हुआ, न होगा। आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है तो सर्वोच्च प्रशंसामें वह यही कहता है कि यहाँ तो ‘रामराज्य’ है। इससे सिद्ध है श्रीरामका राज्यशासन ही आदर्श था। कालमें यदि कोई सब इतिहासोंका तुलनात्मक अध्ययन करे तो उसे यही कहना होगा कि श्रीरामराज्यके सशश सुशासन और किसीके भी राज्यकाजमें नहीं हुआ। रामराज्यकी इतनी प्रशंसा क्यों है ? इस बातको यदि कोई जानना चाहते हों तो देखिये—एक समय दशरथ महाराजके हृदयमें यह इच्छा हुई कि मैं बुढ़ हो गया हूँ, श्रीराम राज्यके सर्वथा योग्य हैं इनको युवराज पदपर अभिषिक्त किया जाय। अपने इस मनोरथको महाराजने सभामें सबको सुनाया और सभीने सुनकर अति हर्ष प्रकट किया एवं सभी महाराज दशरथसे अनुरोध करने लगे कि श्रीरामको शीघ्र ही युवराज-पद दिया जाना चाहिये। इस समय राजा दशरथ प्रजाका भाव

जाननेके उद्देश्यसे अवधवासी प्रजा तथा अन्याय राजाओंसे प्रश्न करते हैं —

‘आप लोग मेरे कहनेसे ही श्रीरामको क्यों राजा बनाना चाहते हैं ? जब मैं चर्माजुसार राज्यशासन कर रहा हूँ तब आपलोग श्रीरामको क्यों राजा देखना चाहते हैं ? मुझे सन्देह हो रहा है, इसे आप दूर कीजिये।’ उत्तरमें लोगोंने कहा ‘हे राजन् ! आपके पुत्र श्रीराममें अनन्त गुण हैं, उन गुणोंके कारण ही हम सबलोग उनपर सुस्थ हैं और इसीलिये हम श्रीरामको अपना राजा देखना चाहते हैं—

‘श्रीराम सत्य व्यवहारके कारण सत्य-पुरुष कहलाते हैं। शोभा-धर्म श्रीरामसे ही है, श्रीरामके बिना सभी अशोभन है। जिस प्रकार चन्द्रमा सब प्राणियोंको आनन्द देनेवाला है उसी प्रकार श्रीराम सब प्रजाको आनन्द देनेवाले हैं। जगत्में श्रीराम पृथ्वीके समान हैं। बुद्धिमें श्रीराम बृहस्पतिके समान हैं। वीर्यमें श्रीराम साक्षात् इन्द्रके समान हैं। श्रीराम धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और शीलवान् हैं। श्रीराम किसीकी निन्दा नहीं करते। श्रीराम सब प्राणियोंसे सत्य और प्रिय बोलनेवाले हैं। श्रीराम समझानेवाले, चतुर, कृतज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। श्रीराम बहुश्रुत, बुद्ध-ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले हैं। श्रीराम, देवता मनुष्य और असुरोंके सब अन्धोंमें निपुण हैं। श्रीरामने समस्त विद्याओंको विषमिन्त ब्रह्मचर्यके साथ अध्ययन करके व्रत-स्नान किया है। श्रीराम वेदोंको अंग और उपान्यों सहित अपनी प्रकार जाननेवाले हैं। श्रीराम गन्धर्व-राक्षसोंके जाननेवाले हैं श्रीराम कन्यायके भाग्य हैं। श्रीराम परम विनयी हैं।

श्रीराम संग्राममें जाकर बिना विजय पाये नहीं लौटते । श्रीराम संग्रामसे लौटकर सब पुरवासियोंसे अपने परिवार-के लोगोंके समान, पुत्र, स्त्री, शिष्य, भृत्य और अग्निहोत्री आदिका कुशल समाचार पूछते हैं । श्रीराम ब्राह्मणोंसे पूछते रहते हैं कि आपके क्षात्र-शिष्य आपकी सेवा तो करते हैं ? श्रीराम जब किसीपर आपत्ति देखते हैं तो दुखी होते हैं और उसको दूर करते हैं । श्रीराम दूतोंकी सेवा करनेवाले हैं । श्रीराम सत्यवादी वीरोंकी उन्नति देखकर पिताके समान प्रसन्न होते हैं । श्रीराम धर्मका पाखन करनेवाले हैं । श्रीराम सुलकारकर बोलनेवाले हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं । श्रीरामकी किसीके साथ खवाई-भगावा करनेकी रुचि नहीं होती । श्रीराम किसी भी विषयमें आसक्त नहीं हैं । श्रीराम व्यर्थ क्रोध या हर्ष नहीं दिखाते । श्रीराम थोड़े भी उपकारसे प्रसन्न हो जाते हैं और अनेक अपकार करनेपर भी किसीसे द्वेष नहीं करते और श्रीराम प्रमाद-विहीन आलस्यशून्य हैं ।'

ऐसे सत्यपराक्रमी लोकपालके सदृश महान् गुणी श्रीरामको समग्र पृथ्वी अपना स्वामी बनाना चाहती है ।

बालकमें रामराज्यमें प्रजाको जितना सुख था, उसना सुख और किसीके राज्यमें नहीं हुआ । निःसन्देह यह अति सौभाग्यकी बात हो यदि श्रीरघुनाथजी-जैसे राजाकी प्राप्ति हो । श्रीरामके बाल्यावस्थाके ही स्वाभाविक गुणोंसे प्रजा अत्यन्त मुग्ध थी, राज्याभिषेकके पूर्वसे ही बालक श्रीरामने अवधवासियोंके मनको सुरा जिया था । गोस्वामी-जी महाराज दिखाते हैं—

अनुज सखा संग भोजन करहीं । मातु पिता आग्या अनुसरहीं ॥  
जहि निधि सुखी हाँहि पुर-लोगा । करहि कृपानिधि सोइ संगेगा ॥

महाराज दशरथके मुखसे राम-राज्याभिषेककी बात सुनकर प्रजाके हर्षका पार नहीं रहा ।

राम-राज अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर-नारि ।  
लगे सुमंगल सजन सब, निधि अनुकूल निचारि ॥

इधर श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं उधर प्रभुकी इच्छा कुछ और ही थी और हुआ भी वही । अवधके राज्य-शासनके स्थानमें बनका शासन और रक्षण श्रीरामको मिला । श्रीरामकी बनयात्राके समय प्रजाकी व्याकुलता देखिये—

सजि बन-साज-समाज सब, बनिता बन्धु समेत ।  
बन्दि निग्र-गुरु-चरन प्रभु, चले करि सवीह अचेत ॥  
चढ़ि रथ सीम-सहित दोठ भाई । चले हरषि अवधहिँ सिर नाई ॥  
चलत राम लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लगे साथ ॥  
कृपासिन्धु बहुविधि समुझावहिँ । फिरहिँ प्रेमबस पुनि फिरि आवहिँ ॥  
सहि न सके रघुबर बिरहागी । चले लोग सब व्याकुल मागी ॥  
सबहिँ निचार कीन्ह मनमाहीं । राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं ॥  
जहाँ राम तहँ सब सुख-साजू । बिनु रघुबीर अवध नहिँ काजू ॥

बालक नृप विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ ॥

तमसा-तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरघुवंशभूषणके साथ वन गमनके लिये तैयार हो गयी । पर अपनी प्रजाको सुख देनेवाले प्रजावत्सल राम सोचते हैं कि वनमें प्रजाको अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे, वहाँ अवधके समान आराम नहीं है, अतः आप प्रजाको अनेक प्रकारसे समझाते हैं—

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सद्य हृदय दुख भयेउ बिसेखी ॥  
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए । बहुनिधि राम लोग समुझाए ॥  
किये धरम-उपदेस धनेरे । लोग प्रेमबस फिरहिँ न फेरे ॥

जब इसप्रकार बहुत समझानेपर भी अवधवासी प्रजा श्रीरामका संग नहीं छोड़ती, तब श्रीरामको बाध्य होकर रात्रिके समय प्रजाको सोई हुई छोड़कर वन-गमन करना पड़ता है ।

तदनन्तर जब श्रीभरतजी श्रीरामसे मिलनेको जानेकी इच्छा प्रकट करते हैं । उस समय पुरवासियोंके आनन्द और उत्साहको देखिये—

भरत बचन सबकहँ प्रिय लगे । राम-सनेह-सुधा जनु पागे ॥  
अवसि चलिअ बन रामपहँ भरत मंत्र भल कीन्ह ।  
सोक-सिन्धु बूड़त सबहिँ तुम अवलम्बन दीन्ह ॥  
कहहिँ परसपर भा बड़ काजू । सकल चले कर साजहिँ साजू ॥  
जहि राखहिँ धर रहू रखवारी । सो जानै जनु गरदनि मारी ॥  
कोउ कह रहन कहिय नहिँ काहू । को न चहै जग जीवन-लाहू ॥  
नगर लोग सब सजि सजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरामसे मिलनेको व्याकुल होकर चित्रकूट जाती है और वहाँ प्रभुके दर्शन करती है ।

जब रघुनाथजीके वनवासकी अवधि समाप्त हो गयी है और वे अवध लौटकर आते हैं, उस कालमें प्रजाकी उत्सुकता देखिये—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग ।  
जहँ तहँ सोचहि नारि-नर कस-तनु रामनिभोग ॥  
समाचार पुरवासिन्ह पोय । नर अरु नारि हरषि उठि धाये ॥  
जो जैसेहि तैसेहि उठि धावहि । बाल बृद्ध कोउ संग न लावहि ॥  
एक एकसन बूझहि धाई । तुम देखे दयालु रघुराई ॥

श्रीराम इसप्रकार लोगोंके हृदयके आकर्षणके हेतु अवधनगरीमें पधारते हैं । श्रीरामका बनसे लौटकर अयोध्यामें आना राज्यके लिये नहीं था, वह था—प्यारे भाई भरतके लिये और अवधवासी प्रजाके प्रेमके लिये । और फिर उनकी तीव्र प्रीतिके कारण ही आप राजसिंहासनपर बैठे थे ।

दयालु श्रीरामका स्वभाव था कि वे दूसरेके दुःखको सहन नहीं कर सकते थे और इसी स्वभाव-वश भाई भरत और प्रजाके दुःखको मिटानेके लिये आपने राज्यशासन स्वीकार किया था ।

अब श्रीरामके प्रजापालन-कालकी अवस्थाका कुछ वर्णन करते हैं । महामुनि वाल्मीकिजी कहते हैं—

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें स्त्रियोंको वैधव्य-दुःख नहीं था । सर्प-भय और व्याधियोंका भय नहीं था । संसार शत्रुओंसे शुन्य हो गया था । कोई अनर्थ नहीं करता था । बड़ोंको अपनेसे छोटाका प्रेतकार्य नहीं करना पड़ता था अर्थात् बाल या युवा-मृत्यु कभी नहीं होती थी, सब प्राणी प्रसन्न और धर्मपरायण रहते थे । रामकी वृत्तिको देखकर कोई किसीकी हिम्मा नहीं करता था, प्रजा रोग तथा शोकरहित थी, वीर्यायु भोगती और अनेक सन्ततियुक्त होती थी । सब वृक्ष पुष्प तथा फल-फूल प्रदान करते । प्रजाको आवश्यकतानुसार वर्षाद्वारा जलकी प्राप्ति होती । सुखदायक वायु बहती, मनुष्य अपने अपने कर्मोंमें सन्तुष्ट रह उसीमें प्रवृत्त रहते । और प्रजा सत्यपरायण रहती । सारांश यह कि प्रजा सर्व सुखअण-समग्रा थी । गोस्वामीजी महाराज रामराज्यका वर्णन करते हैं—

राम राज बैठे त्रयलोका । हर्षित भए गए सब सोका ॥  
नैन न कर काहू सन कोई । रामप्रताप विषमता खोई ॥

बरनास्रम निज निज धरम निरत बेद-पथ लोग ।

चलहि सदा पावहि सुख नहि भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहि काहुहि व्यापा ॥

सब नर करहि परसपर प्रीती । चलहि स्वधर्म निरत धृति रीती ॥

चारिहु चरन धरम जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अब नाहीं ॥  
राम-भगति-रत नर अरु नारी । सकल धरम गतिके अधिकारी ॥  
अल्प-मृत्यु नहि कबनिउँ पीरा । सब सुन्दर सब निरुज सरीरा ॥  
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥  
सब निर्दम धर्मरत धुनी । नर अरु नारि चतुर सुभ-गुनी ॥  
सब गुणगय पंडित सब ग्यानी । सब कृतगय नहिं कपट सयानी ॥

प्रजावत्सल श्रीरामकी अवध और अवधवासियोंपर कितनी कृपा थी, इसका भगवान्की अपनी उक्तिसे ही पता लग जायगा । श्रीराम अयोध्या पहुँचनेपर पुष्पक-विमानमें बैठे हुए अपने मित्र विभीषण और सुग्रीवादिसे कहते हैं—

सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी खचिर यह देसा ॥  
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना । बेद-पुरान-विदित जग जाना ॥  
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ । यह प्रसंग जनै कोउ कोऊ ॥  
जनमभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥  
अति प्रिय मोहि इहाँके बासी । मम वामदा पुरी सुखरासी ॥

### दीनवत्सल श्रीराम

दीनका दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।

जाहि दीनता कहौ, हाँ देखौ दीन सोऊ ॥

जगत्में दीन-दुखी और अनाथोंके सच्चे हितैषी और मित्र अधिक नहीं मिलते । साधारणतः लोग धनवान्, सम्यक्, सबल और सुखी लोगोंकी ओर ही दौड़ते हैं । ऐसे सत्-पुरुष कोई कोई ही मिलते हैं जो दीन और आतंक दुःखोंसे दुखी होते हों । हमारे चरित्र-नायक श्रीरामका सम्पूर्ण हृदय केवल दीन-दुखी अनाथोंके लिये ही था । इसीलिये दयालु राम आदर्श दीनवत्सल माने जाते हैं और उनका चरित्र सत्-पुरुषोंके लिये मार्ग-प्रदर्शक समझा जाता है । बाल्यावस्थासे ही श्रीरामका हृदय स्वभावतः दयालु और पर-दुःख-कातर रहा । शास्त्रोंमें श्रीरामके हृदयको कठोरसे कठोर और कोमलसे भी कोमल बतलाया है—

कुलिशहुँ चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि ।

चित खगेस रघुनाथ कर समुक्षि परे कहु काहि ॥

जो धन-जन-बलके मद्दे गर्वित हैं, उनके लिये उनका हृदय 'बल्लादपि कठोर' है; पर दीन अनाथ आतोंके लिये तो वह जवनीतसे भी अधिक कोमल है । बाल्यावस्थामें भी श्रीरामका वही स्वभाव था, वे किसी भी बालकको न तो कभी अप्रसन्न देख सकते थे और न किसीको रोने देते थे । जिस

किसी प्रकारसे सबको प्रसन्न रखते और हँसाया करते। खेलमें स्वयं स्वेच्छासे हारकर दूसरे बालकोंको जिता देते और उन्हें वस्त्र भूषण तथा अपना स्वादिष्ट भोजन-पदार्थ देकर प्रसन्न रखते। भवभके आत्मवान् बालकोंकी भी ऐसी ही वृत्ता थी, उनका चित्त भी जन-मन-मोहन श्रीरामके बिना चञ्चल नहीं लगता। पूज्यपाद गोस्वामीजी गाते हैं—

सुनि सीतापति सील सुभाठ ।

मोद न मन तन पुरुष नयन जल सो नर खेहर खाठ ॥  
सिसुपतनै पितु मानु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाठ ।  
कहत राम-विशु-वदन रिसाहैं सुपनेहुँ लख्यो न काठ ॥  
खेळत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाठ ।  
जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाठ ॥

जानकीबल्लभ श्रीरामका शील-स्वभाव सुनकर जिस पुरुषका मन प्रसन्न नहीं होता, शरीर पुलकित नहीं होता और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु नहीं आते, उसका इधर-उधर धूल फाँकते भटकना ही अच्छा है। बचपनसे ही पिता, माता, भाई, गुरु, दास, मन्त्री और सखा कभी किसीने श्रीरामके मुख-चन्द्रको स्वप्नमें भी कुपित नहीं देखा। वे सदा ही प्रसन्न-मुख रहते थे। भाई और दूसरे बालक जो उनके साथ खेलते, उनकी हार और अन्याय श्रीराम सदा देखते रहते थे। परन्तु अपनी जीतपर भी (उनको प्रसन्न करनेके लिये) हार जाते थे। उन लोगोंको पुचकार-पुचकारकर प्रेमसे दाँव देते और दूसरोंसे भी दिलाते थे।

दशरथनन्दन श्रीरामकी दीनवत्सलता सार्वभौम है। वह न तो देश और कालसे परिच्छिन्न है और न व्यवहार और व्यक्तिसे ही। उनका सब काल, सब देश, और सभीके साथ समान वात्सल्य-भाव है। उनके शत्रु-मित्र, उच्च-नीच वा धनी-दरिद्र भावसे कुछ भी व्यवहार-भेद नहीं है। आवश्यकता है केवल दीन और आर्त-भावकी।

कोसलकुमार रघुनाथजीकी दीनवत्सलताके कुछ उदाहरण पाठकोंके सम्मुख संक्षेपमें उपस्थित किये जाते हैं। देखिये—

दीनभावापन्न राजा जनकको श्रीरामने कैसा सम्हाला। जनकने अपनी अयोधिया कन्या श्रीसीताजीका स्वयम्बर रथा और निश्चय किया कि सीताको वही ग्रहण कर सकेगा जो बल-वीर्य और पराक्रमसे सम्पन्न होगा, उसपर निर्बल और अशक्तका अधिकार नहीं होगा। इस बल-वीर्य और पराक्रमकी परीक्षा होगी विशाल शम्भु-चापकी प्रत्यक्षा

चढ़ानेसे। महाराज जनकके इस प्रकारके प्रणकी घोषणा सुनकर जनकपुरमें अनेक राजा आये, परन्तु कोई भी इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सके, यहाँतक कि—

न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेपि वा ।

उस धनुषको कोई न तो उठा सका, और न हिला ही सका।

तमकि तमकि तकि सिव-धनु धरहीं। उठे न कोटि भँति बल करहीं॥  
जिन्हके कलु बिचार मनमाहीं। चाप समीप महीप न जाहीं॥

तमकि बरहिँ धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिँ लजाइ ।

मनहुँ पाइ भट-बाहु-बल अधिक अधिक गरुआइ ॥

ढिगे न संभु-सरासन कैसें। कामी-बचन सती मन जैसे ॥

सब नृप भए जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराम सन्यासी ॥

इस अवस्थामें मिथिलापतिकी कैसी दीन और आन्त वृत्ता होगी थी, तनिक उसका चित्र अवलोकन कीजिये—

नृपन्ह बितांकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोष जु साने ॥

अब जनि कोठ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी ॥

तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखान बिधि बंदेहि निआहू ॥

सुकुत जाइ जो पन परिहरै। कुँआरे कुँआरे रहै का करै ॥

जो जन्तउँ बिनु भट महि भाई। तौ पन करि करतेउ न हँसाई ॥

जनक महाराजकी ऐसी दीनताको भला दीनवत्सल कब सहन करनेवाले थे ?

‘सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिलाको।’

तौ सिव-धनु मृनालकी नाई। तोरहिँ राम गनेश गोसाई ॥

इसप्रकार श्रीरामने दीन हुए जनक महाराजके शोकको दूरकर शम्भु-चाप तोड़ सीताको वरण कर लिया।

दूसरी माँकी देखिये ! निषाद दरिद्र है, नीच जाति है, परन्तु भगवान् उसे अभिमानरहित और दीनभावयुक्त देखकर अपना सखा बना लेते हैं एवं उसका बड़ा ही मान तथा आदर करते हैं।

हिंसारत निषाद तामस बपु पसु-समान बन-चारी ।

भेंट हृदय लगाइ प्रेमबस नहिँ कुल जाति बिचारी ॥

श्रीरघुवीरकी यह बानि

नीचहूँसों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥

परम अधम निषाद पाँवर कौन ताकी कानि ।

लियो सो उर लाइ सुत ज्यो प्रेमको पहिचानि ॥



निवाइको अपना सखा बनाकर श्रीरामने इतना अधिक आवर दिया कि परम ज्ञानी श्रीवशिष्ठ-सदृश मुनि भी उसको गले लगाकर मिलने लगे—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरिते दंड प्रनामू ॥  
राम-सखा रिषि बरबस भेटे । जनु महि लुटत सनेह सभेटे ॥

मनुष्योंको अपनानेकी तो बात ही कौन-सी है ? श्रीराम ने पामर पशु-पक्षियोंको भी अपना लिया और ऐसा अपना लिया कि जिसकी कहीं तुलना नहीं है । रामके लिये प्राणियों की बलि चढ़ानेवाले भक्त राज गोधके वरान कीजिये ! जगत् जननी सीताको रावण हरकर ले जा रहा है । गीधराज जटायु जब यह सुनते हैं तो चटपट दौड़कर सीताको रावणके हाथसे छुड़ानेके लिये मार्गमें ही उसके रथको रोक डेते हैं । रावणके साथ जटायुका युद्ध होता है । 'राम काज' लड़ते हुए जटायुके दोनों पंख रावण काट झलता है और इससे घायल होकर साधार जटायु जमीनपर गिर पड़ते हैं । जटायुकी असमर्थताके अवसरमें रावण सीताजीको लेकर चला जाता है । इधर रघुकुलभूषण श्रीराम लक्ष्मण-सहित सीताकी खोज करते करते जटायुके पास पहुँचते हैं । वहाँ जटायुके साथ श्रीरामके व्यवहारको देखिये—

दीन मलीन दयालु निहंग  
परमो महि सोचत सिद्ध दुखारी ।  
राघव दीन-दयालु कृपालुको  
देख दुखी कटना भइ भारी ॥  
गीधको गोदमें राखि कृपानिधि  
नैन-सरोजनमें भरि बारी ।  
बारहि बार मुधारहि पंख  
जटायुकी धूरि जटानसों झारी ॥

दयालु राम गीधकी दीन-दशा देख दुःखित हो गये और उसको अपने गोदमें लेकर कुछ दिन जीवन चारक करनेके लिये प्रार्थना करने लगे ।

परन्तु उसने जीना स्वीकार नहीं किया और करता भी कैसे ? वह कहने लगा—

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमठ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥  
सो मम लोचनगोचर आगे । राखउँ देह नाय । केहि लागे ॥

मरनेका इससे अधिक अच्छा अवसर फिर कब मिलनेको था ? अन्तमें जटायु श्रीरामकी मुनिदुर्लभ

सुकुलमज गोदमें ही सदाके लिये शान्त हो जाते हैं ।

श्रीराम कहते हैं—

परहित बस जिनके मनमाहीं । तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कहु नाहीं ।  
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देउँ कहा तुम पूरनकामा ॥

इसके बाद जटायुकी क्रिया भगवान् स्वयं अपने हाथसे करते हैं—

अनिरल भगति भोगि बर गीध गयेउ हरिधाम ।  
तेहि कै क्रिया जयोचित निज कर कीन्ही राम ॥  
पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति  
अपने धाम पठायो ।  
ऐसो प्रभु निसारि तुलसी सठ  
तू चाहत सुख पायो ॥

इससे भी आगे बढ़िये, हमारे दीनवत्सल श्रीरामके दरबारमें बेलन मनुष्य और पशु-पक्षी ही नहीं, जब पाषाण-को भी बही स्थान मिलता है । देखिये—

गौतम-पत्नी अहल्या पतिके शापसे पाषाण होकर गौतम-आश्रममें स्थित है । उसमें न सेवाकी योग्यता है और न श्रीरामको डुलानेका सामर्थ्य ही है । है केवल दीनता और जड़ता । दयालु रामने इस जड़की उपेक्षा नहीं की । मिथिलापुरी जाते समय मार्गमें जनशून्य गौतम-आश्रममें उस पाषाणको देखकर प्रभु श्रीरामकी विरवामित्र मुनिसे पूछने लगे—

बंद पढ़ै न कहँ द्विजवृन्द  
बनी यह कैसी नदावत भैसी ।  
सूखे रमाल तमालके तरु,  
जान परं कहु नाति अनैसी ॥  
कूजँ नहीं खग गुँजँ न भौर  
लखी ललिते नहि आजु लौं ऐसी ।  
कीजै कृपा कहिये मुनि-नाथजू  
मारग माँस शिला यह कैसी ?

विरवामित्र मुनि उत्तर देते हैं—

गौतमनारी आपवस, उपरु-देह धरि धीर ।  
चरन-कमल-रज चाहती, कृपा करहु रघुवीर ॥

अनाथ-नाथ दयामय दीनबन्धु इयाके वश हो शिलाको चरकसे छूते हैं और उनके चरकका स्पर्श पाते ही अहल्या



कल्याण



श्रीराम-प्रतिज्ञा

निमिष हीन कर्गें मरिह भुञ्ज उडाह गल कीन्ह ।

उसी वन अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाती है—

परसत पद पावन सोक-नसावन

प्रगट भई तप-पुंज सही ।

देखत रघुनायक जन-सुख-दायक

सनमुख होइ कर जोरि गही ॥

श्रीरामकी वधालुताका कहाँतक वखन किया जान ?  
बबक वनमें विचरते हुए श्रीराम एक जगह इन्डियोंका डेर  
देखकर मुनियोंसे पूछते हैं कि 'यह क्या' है ?—

अस्थि-समूह देखि रघुराया ॥ पूछा मुनिन्ह लागि अति दाय ॥

मुनियोंने उत्तर दिया—

निसिचर-निकर सकल मुनि खण । मुनि रघुनाथ नय जलन छान ॥

मुनियोंके दुःखको देखकर स्वामी रघुनाथजीके नेत्रोंमें  
जल आ गया, भगवान्ने उनके दुःख दूर करनेकी उसी वन  
प्रतिज्ञा की—

निसिचर-हीन कगौं मही, भुज उठाय पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

इसप्रकार श्रीरामके प्रतिज्ञा करनेके बाद एक समय  
श्रीमती सीता प्रभुको राक्षसोंके बधरूप हिंसात्मक कर्मसे  
विरत करनेके उद्देश्यसे प्रभुसे कहने लगी—'स्वामिन् ! इस  
संसारमें कामजन्म व्यसन तीन प्रकारके होते हैं—एक  
मिथ्याभाषण, दूसरा पर-स्त्री-सेवन और तीसरा शत्रुताके  
बिना हिंसा करना । हे रावण ! आपने न तो कभी आज्ञातक  
मिथ्या शब्द उच्चारण किया है और न कभी अभिव्यक्त आप  
कर ही सकते हैं । अधर्मदायक परस्त्री-गमन-रूप व्यसन भी  
आपमें नहीं है । आपको स्वप्नमें भी पर-स्त्रीकी अभिलाषा  
नहीं होती । आप पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले,  
धार्मिक और सत्यपरायण हैं । आपमें धर्म और सत्य पूर्ण-  
रूपसे विराजमान हैं । आप इन्द्रिय-विजयी हैं, यह बात  
सभी जानते हैं—परन्तु आप शत्रुता न होनेपर भी राक्षसों-  
के बधरूप हिंसा-कर्मको क्यों करना चाहते हैं ?' इसप्रकार  
भगवान्के प्रति श्रीसीताजीने प्रेम और नम्रतासे अनेक  
बातें कहीं । तब रघुकुलमणि श्रीरामने उत्तर दिया । 'हे  
धर्मेश जनकालम्बे ! तुमने सभी हितकर और मित्र बातें  
कही हैं । तुमने स्वयं यह बात भी स्वीकार की है कि  
शत्रुत्वको धनुष इसीलिये धारण करना चाहिये जिससे  
किसी भी आर्तक शब्द कभी सुनायी न दे । हे सीते ! इस

बबककाराव्यवासी सीख व्रतोंके पालन करनेवाले मुनिगण  
मुझे अपना रक्षक मानकर मेरी शरण हो गये हैं । वे क्रूर कर्म  
करनेवाले राक्षसोंसे उत्पीड़ित हो रहे हैं, अत्यन्त दुखी  
हैं । यह सब बातें मुनियोंने मुझसे कही हैं । मैंने उनसे  
पूछा 'क्या करना चाहिये'—तब मुनियोंने कहा कि 'ये  
राक्षस सदा ही हम लोगोंके वध, व्रत, तपादि अनुष्ठानमें  
विघ्न करते हैं और बिना ही कारण हमलोगोंको सताते हैं ।  
अथवा हमलोग तपके बलसे इन राक्षसोंको नष्ट कर सकते  
हैं किन्तु ऐसा करनेसे हम अपने तप और साधनसे गिरते हैं  
अतएव हे राम ! आप हमारी रक्षा कीजिये ।' हे सीते !  
इसप्रकार उनके दीन वचनोंको सुनकर मैंने प्रतिज्ञा कर ली  
है और अब मैं प्राण रहते कभी प्रतिज्ञाके प्रतिकूल  
नहीं चल सकता । मैं चिरकालसे सत्यको अपना इष्ट  
समझता हूँ ।' इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

अस प्रभु दीनबन्धु हरि कारन-रहित कृपाल ॥

तुलसिदास सठ ताहि भजु छँडु कपट-जंगल ॥

प्रभुकी वधालुताका दूसरा उदाहरण देखिये ! सुग्रीव  
अपने ज्येष्ठ भ्राता बालिके द्वारा निगृहीत हो, घरसे निकल  
पड़ता है और बालिके भयसे कहीं भी आश्रय न  
पाकर जम्बूद्वीप पर्वतपर आश्रय लेता है । इस पहाड़पर  
बालि आपके भयसे नहीं जा सकता था । बालिने सुग्रीवकी  
सम्पत्ति तथा उसकी स्त्रीको हर लिया था । ऐसी दीन दशामें  
पदा हुआ सुग्रीव जब भगवान् श्रीरामका आश्रय ग्रहण  
करता है, तब वे उसके दुःखोंको सुनकर प्रतिज्ञा करते हैं—

सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहिं एकहि बान ।

ब्रह्म-रुद्र-सरनागत गण न उबरिहिं प्रान ॥

सुग्रीवके दुःखसे श्रीराम यहाँतक व्यथित होते हैं कि  
उस दुर्दशाग्रस्त दीनको अपना मित्र मानकर उसके सारे  
दुःखोंको अपने ऊपर ले लेते हैं । मित्रधर्मका निरूपण करते  
हुए आप कहते हैं—

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी । तिन्हहिं बिलोकत पातक नारी ॥

निज-दुख-गिरि-सम रज करि जाना । मित्रक दुख-रज मरु समाना ॥

देत लेत मन संक न धरई । बल अनुमान सदा हित करई ॥

निपतिकाल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन पहा ॥

सखा सोच त्यागहु बल मोरे । सब विधि करव काज मैं तोरे ॥

कितनी वधालुता है ? श्रीराम बलगवित बालिका  
बध करते हैं, उसके अपराधका यथोचित दण्ड देते हैं

परन्तु जब बालि के बल और गर्वका नाश हो जाता है, तब मुरन्त ही उसी दीन कातर बालिके प्रति ऐसी दयालुता दिखाते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं—

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि-सीस परसेउ निज पानी॥

अचल करौ तनु राखहु प्राणा।

मित्रके प्रति जैसी दयालुता है, वैसी ही शत्रुके प्रति भी है। श्रीरामकी दृष्टिमें कोई भी शत्रु नहीं, वे सभीके निज जन हैं। हाँ, अभिमानी, गर्वी, दुराचारीके लिये वे साक्षात् काल-सदृश हैं, परन्तु दीनके लिये तो वे परम मधुर, रमणीय, मनमोहन और अति चनिष्ठ आत्मीय हैं।

जगत्में सच्चा दीनवत्सल एक पतितपावन श्रीरामके सिवा और कौन हो सकता है? प्राकृत मनुष्य कैसा भी क्यों न हो—राजा हो या अति बलवान, साधु हो या विद्वान्, चमाशील हो या दयावान्, कोई कितना भी ऊँचा क्यों न हो, फिर भी उसकी शक्ति और सामर्थ्य परिमित ही है। कहा है—

एकै दानि सिरोमनि साँचो

जेह जाँच्यो सोह जाँचकता-वस फिरि बहु नाच न नाच्यो ॥

इसके सिवा यह बात भी है कि प्राकृत जीवकी दया भी तभी प्राप्त होती है, जब उसपर जगत्-पतिकी दया होती है। कहा है—

मुनि सुर नर नाग असुर साहेब तौ घनरे।

पै तौलौ जौलौ रावेर न नेकु नयन फेरे ॥

इसके अतिरिक्त जगत्में प्राकृत जनकी उदारता किसी-न-किसी स्वार्थको लेकर ही होती है। गोस्वामीजी कहते हैं—

ऐसो काँ उदार जग माहीं।

बिनु सेवा जाँ द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं ॥

ऐसे राम दीन हितकारी।

अति कोमल करुनानिधान, बिनु कागन पर-उपकारी ॥

एक बात और है, यदि दूसरे किसीसे भीख मिल भी गयी तो उससे सदाके लिये भिक्षुमंगापन नहीं मिटता। उससे एक काल या कुछ कालके लिये कृत्रिम सुख होता है, दुःखका आत्यन्तिक नाश नहीं होता। पर श्रीरामका दान तो कुछ विलक्षण ही है।

और काहि माँगिए को माँगिनो निवारै?

अमिमत-दातार कौन दुख दरिद्र दारै?

इन सबके अतिरिक्त एक बात और भी है, स्वामीको छोड़कर अन्य किसीके भी सामने हाथ फैलाना बड़े कलहकी बात है। परन्तु अपने स्वामीसे माँगनेमें आपत्ति नहीं। यहाँ तो अपना वैसा ही अधिकार है जैसा पिताकी सम्पत्तिपर पुत्रका और स्वामीकी सम्पत्तिपर लीका अधिकार होता है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

‘तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।’

‘जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाप।’

यह बात अवरय है, कि प्रभुकी कृपासे प्रभुकी ही शक्तिको प्राप्तकर प्रभुके दास चाहे जैसे दयालु बन जाते हैं। उन दासोंमें उनका अपना कोई प्रभाव और बल नहीं रहता। जो कुछ है, सब प्रभुका है। प्रभु जो चाहें, वही कार्य उनसे करा सकते हैं और उनका चाहे जितना गौरव भी बढ़ा सकते हैं, यह सब प्रभुकी इच्छा है। अतएव कृष्ण-कपट त्यागकर अद्वितीय दीनवत्सल जानकीवल्लभ श्रीरामके चरणोंमें दीन होकर उपस्थित होनेसे सदाके लिये दीनताका नाश हो सकता है—

कोमलचित्त अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥

### भक्तवत्सल श्रीराम

नान्यास्पृष्टा रघुपते हृदये मदीये,

सत्यं वदामि च भवानखिलान्तर्गताम्।

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्मरां मे,

कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥

अखिल भुवनपति भगवान् जब अपने भक्तोंके हृदयमें मिलनेकी उत्कट उत्कण्ठा देखते हैं, अथवा जब अपने भक्तोंको विपत्ति-ग्रस्त समझते हैं, तब भक्तोंकी प्रीति और सुखके लिये वे स्वयं इस जराधाममें पधारते हैं—

फिरत घाम बैकुंठ तजि, भक्त-जननके काज।

जोड़ जोड़ जन मन भावई, धारत सोइ तन साज ॥

यद्यपि भगवान्ने श्रीगीतामें अपने अवतरणका कारण यह बतलाया है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्टताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

‘हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने रूपको प्रकट करता हूँ। साधुपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और दूषित धर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।’ तथापि अधिक विचारनेसे भगवान्‌के अवतारका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि वे अपने प्रिय भक्तोंसे साक्षात् मिलनेके लिये और अपनी रमणीय लीलाओंमें उन्हें सम्मिलित करके उनकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये ही प्रकट होते हैं। यदि कहें कि फिर अन्यान्य कारण क्यों बतलाये गये हैं ?—तो इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि अन्यान्य कारण भी होते हैं पर वे सब गौण होते हैं। मुख्य कारण उसे समझना चाहिये जिसके लिये स्वयं अवतार धारण करनेके अतिरिक्त दूसरे उपायोंसे काम ही नहीं चल सकता और गौण कारण वह है जिसमें इच्छा हो तो स्वयं भले ही पथारें अन्यथा अन्यान्य उपायोंसे भी काम चल सकता है। यदि हम ‘अधर्मको दूर करके धर्मकी स्थापना’ को ही मुख्य कारण मानें तो यह असंगत है, क्योंकि धर्म-स्थापनके अन्य उपाय भी हैं। भगवान् अपने भक्त और साधुओंके द्वारा भी यह कार्य करवा सकते हैं। दुष्टोंके विनाशको मुख्य कारण मानें तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि अपने भक्तोंको शक्ति देकर सहज ही भगवान् यह कार्य भी करा सकते हैं। इस स्थलमें इस शंकाको स्थान नहीं है कि भगवद्भक्त भगवान्‌की शक्ति पाकर उपर्युक्त कार्य नहीं कर सकेंगे, भगवत्-शक्तिले तुच्छसे तुच्छ जीव भी महान्‌से महान् बनकर सब कुछ कर सकता है और अत्यन्त समर्थ भी तुच्छ बन जा सकता है—

जो चेतनकहँ जड़ करै जड़हि करै चैतन्य ।  
अस समर्थ रघुनाथहिं भजहिं जीव ते धन्य ॥  
ताकहँ जग कछु अगम नहिं, जापर हरि अनुकूल ।  
तिहि प्रताप बड़वानलहि, जारि सकै खल तूल ॥  
मसकहिं करहिं बिरांचि सम, अजहिं मसक ते हीन ।

भगवत्-रूपाले सब कुछ सम्भव है, इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं। यह सब होते हुए जब भक्तके हृदयमें अपने प्रभुसे मिलनेकी चाह जागृत होती है और जब उस चाहका स्वरूप ऐसा उत्कट बन जाता है—

देह गेहकी सुधि नहीं दूट गयी जग-प्रीत ।  
‘नारायण’ गावत पिने प्रेम-मेरे रसगीत ॥

प्रेमसहित गद्गद् गिरा, कदत न मुखसे बात ।  
‘नारायण’ महबूब बिन और न कछु सुहात ॥  
मनमें लगी चटपटी कब निरखूँ श्रीराम ।  
‘नारायण’ भूत्यो सभी खान पान विश्राम ॥

इसप्रकारकी अवस्थामें जब वह मिलनाकांक्षी भक्त परम व्याकुल होकर हृदयेशको पुकारता है, तब उसके पास किसी प्रतिनिधिको भेजनेसे काम नहीं चल सकता। इस अवस्थामें भगवान्‌को स्वयं भक्तोंके इच्छानुरूप स्वरूपमें जाना पड़ता है क्योंकि अनन्य भक्तोंकी यह भी एक विशिष्टता है कि वे भगवान्‌के जिस एक रूपके उपासक होते हैं, उसके सिवा उसी भगवान्‌के अन्य रूपके दर्शनसे उन्हें तृप्ति नहीं होती, यद्यपि वे उनमें कोई भेद नहीं मानते। जब श्रीराम दण्डकारण्यमें पधारते हैं और सुतीक्ष्ण मुनिको पता लगता है कि श्रीराम वहाँ आये हैं, तब वह उनके दर्शनार्थ व्याकुल हो उठते हैं। सुतीक्ष्णजी अबधेश-कुमारके उपासक थे और उनसे मिलनेके लिये श्रीरामको उनके आश्रममें जाना भी था परन्तु श्रीरामके आगमनकी खबर पाते ही मुनिकी क्या दशा होती है—जरा ध्यानसे देखिये !

प्रभु आगमन श्रवण मुनि पावा । करत मनोरथ आतुर भावा ॥  
हे विधि दानबन्धु रघुराया । मो-सं सठपर करिहहिं दाया ॥  
सहित अनुज मोहि राम गोसां । मिलिहहिं निज संवककी नाई ॥  
एक बानि करुनानिधानकी । सो प्रिय जके गति न आनकी ॥

सुतीक्ष्ण मुनि भगवान्‌के प्रेममें इतने विह्वल हो गये कि उनको अपने तन मनकी और मार्गकी भी सुध-बुध नहीं रही—

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥  
दिसि अह बिदिसि पंथ नहिं सूझा । कां मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा ॥  
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करै गुन गाई ॥

सुतीक्ष्ण मुनिकी यह दशा थी। इतनेमें ही रघुकुलभूषण श्रीरामजी वहाँ पहुँच गये और अपने प्यारे भक्तकी प्रेम-दशा पेड़की ओटसे देखने लगे।

अनिरु प्रेम मगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई ॥

अक्तवत्सल श्रीराम अब अपने भक्तसे दूर नहीं रह सके—

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदय हरन भवभीरा ॥

शत्रुको अपने भक्तके हृदयमें प्रकट होकर भी सन्तोष

नहीं हुआ, अतः भगवान् अपने भक्तों को ध्यानसे जगानेके लिये आगे बढ़े—

मुनिमग मौक्ष अचल होइ बैसा । पुरुष शरीर फनस-फल जैसा ॥  
तब रघुनाथ निकट चलि आए । देखि दसा निज जन मन भाए ॥

कमललोचन श्रीराम सुतीक्ष्णके पास आकर मुनिको ध्यानसे जगाने लगे ।

मुनिहिं राम बहु भौंति जगावा । जग न, ध्यानजनित सुख पावा ॥  
भूप रूप तब राम दुरावा । हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा ॥

मुनिके हृदयसे अवधेशकुमार श्रीराम-रूपको हटकर आप चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें प्रकट हो गये, तब—

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे । बिकल दीन फनि मनि विनु जैसे ॥

यहाँ श्रीरामोपासक सुतीक्ष्णजी विष्णुरूपसे सन्पुष्ट नहीं हैं, यद्यपि श्रीराम और विष्णुमें भेद नहीं है तथापि भक्तों को अपने इप्सित रूपकी ही चाह रहती है—

सुतीक्ष्ण मुनिका ध्यान टूट जाता है और वह सामने प्रत्यक्ष श्रीसीतारामको देखकर प्रणाम करने लगते हैं—

अगे देखि राम तनु स्यामा । सीता-अनुज सहित सुखचामा ॥  
परेउ लकुट इव चरननिह लागी । प्रेम भगन मुनिबर बड़भागी ॥

यहाँ सुतीक्ष्णके लिये भगवान् को श्रीरामरूपसे स्वीकारना ही पड़ता है, प्रतिनिधिकी बात तो दूर रही, अपने ही अन्यरूपसे भी काम नहीं चलता ।

यदि यह कहा जाय कि भगवान् भक्तोंको ज्ञान प्रदान कर ऐसी चाहसे मुक्त क्यों नहीं कर देते अथवा मुक्ति प्रदान करके उन्हें सन्तोष क्यों नहीं करा देते?

इसका उत्तर यह है कि ऐसे रूप धाम और जीवाके उपासक भक्त आरम्भसे मोक्षकी चाह न रखकर ही साधन करते हैं । उन्हें मुक्तिकी परवा ही नहीं होती वह तो केवल अपने उपास्यको ही चाहते हैं । ऐसे भक्तोंके भावको स्वयं भगवान् इस प्रकार बतलाते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रविष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।  
न योगसिद्धिर्न पुनर्भवो मय्यर्पितस्तेच्छति मद्विनाऽन्यत् ॥

मुक्तमें आत्मसमर्पण करनेवाला भक्त एक मेरे सिवा ब्रह्माके पदको, इन्द्रके पदको, सार्वभौम राज्यको, पाताळके राज्यको, योगसिद्धिको, अथवा मोक्षको भी नहीं चाहता । अनन्य भक्त वे ही होते हैं जो मुक्तिमें भी स्पृहा रहित हैं—

‘ये मुक्तापि निस्पृहः’ और जिनको भगवान् के सिवा अन्य कोई भी अभिलाषा नहीं ‘अन्याभिलषिता शून्यं ।’ भक्त तो चाहते हैं—केवल एक अपने प्यारे प्रभुको, जो सबका आधार और सब कुछ देनेवाला है । पर वे भक्त उससे कोई अन्य दानको न चाहकर स्वयं दाताको ही चाहते हैं । अन्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या है—

‘त्रिभुवनविभवेहतवेऽप्यकुण्डसमृति-

रजितात्ममुरादिभिर्बिभृम्यात् ।

न चलति भगवत्पदारविन्दान्,

लजनिमिषार्द्रमपि यः स वैष्णवाश्च ॥

(श्रीभागवत ११।२।५३)

आगे निमेषके लिये भगवत्-चिन्तन छोड़नेसे यदि त्रिलोकीका समस्त ऐश्वर्य भी प्राप्त होता हो तो भी भगवत्-चरण-कमलोंका प्रेमी भगवत्-चिन्तनका त्याग नहीं करता ।

यामस्थाय समस्त मस्तकमणिं कुर्वन्ति यं स्ववशे ।

इसी भक्तिका आश्रय लेकर भक्त सारे ब्रह्माण्डके शिरोमणि भगवान् को अपने वशमें कर लेते हैं ।

बतलाइये, इस भावके भक्तोंको भगवान् मुक्ति या ज्ञान देकर उनसे कैसे छूट सकते हैं ? ऐसे भावकोंकी इच्छा-पूर्तिके लिये ही तो उन्हें स्वयं इस मर्त्यलोकमें आना पड़ता है । यहाँ प्रतिनिधिद्वारा काम नहीं चलता । यदि कोई कहे कि ऐसे भक्तोंको तो कुछ भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये ? इतनी इच्छा भी उनमें क्यों होती है ? हाँ, ठीक है, उन्हें और कुछ भी इच्छा नहीं होती परन्तु वे अपनी प्रभु-सेवाकी चाह नहीं छोड़ सकते । इसीसे वे—

‘मुक्ति निरादरि भगति तुभाने’

अतएव भगवान् के अपना नित्य शाश्वत असृतधामसे आकर यहाँ अवतीर्थ होनेका मुख्य कारण भक्तोंका ध्यान-वर्द्धन, उनसे प्रत्यक्ष मिलन तथा उनकी सेवाग्रहण ही होता है । यह अवश्य है कि अवतार ग्रहण करनेपर भगवान् लोकहितकर अनेक कार्य करते हैं । बहुतसे जीवोंका उद्धार कर देते हैं और शेषके लिये तथा अनिष्टवर्त्म होनेवालोंके लिये अपने धामका मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं ।

यदि कोई यह कहे कि भगवान् अवतार न लेकर जब जब भक्तोंकी इच्छा हो तब तब उन्हें दूर न देकर अन्तर्धान हो जानेसे भी तो काम चल सकता है । इसका उत्तर यह

है कि कहीं कहीं देसा भी होता है, भक्त ध्रुवजीके लिये वही हुआ था। परन्तु बात यह है कि भगवान्‌के भक्तगण अनोखे और विचित्र भाववाले होते हैं। मनु-सत्‌रूपाने उनको पुत्ररूपसे ही प्राप्त करना चाहा। भगवान्‌के साथ मनुजीका वार्तालाप सुनिये ! मनुजी कहते हैं—

दानि-सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहाँ सतभाउ ।  
चाहौं तुम्हहि समान सुत, प्रभुसन कवन दुराउ ॥  
देखि प्रीति मुनि बचन अगोलें । पवमस्तु करुनानिधि बोलें ॥  
आपु सरिस खोजौ कहैं जाई । नृप तब तनय होब मैं आई ॥

जब भगवान् कौशल्याजीके यहाँ चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए, तब भी माता कौशल्या भगवान्‌से प्रार्थना करती है कि—  
माता पुनि बांली सो मति डोली तजहु तत यह रूपा ॥  
कीजै सिसु-लीला अति-प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥  
मुनि बचन सुजाना रोदन ठाना है बालक सुरमूपा ॥  
भक्त काकभुशुण्डिजीकी चाह देखिये—

जब जब राम मनुज-तनु घरहीं, भक्त-हेतु लीला बहु करहीं ॥  
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ, बाग-चरित बिलोकि हरषाऊँ ॥  
जनम-महोत्सव देखौं जाई, बरष पाँच तहँ रहौं तुभाई ॥  
इष्टदेव मम बालक गमा, सोमा बपुष कोटि-सन-कामा ॥  
निज-प्रभु-बदन निहारि निहायी, लोचन सफल करौ उरगारी ॥  
लघु बायस बपु धरि हरिसंगा, देखौं बालचरित बहुगंगा ॥  
लरिकारि जहँ जहँ फिरहि, तहँ तहँ संग उडाउँ ॥  
जूठन परै अजिर महँ, सोइ उठाइ पुनि खाउँ ॥

भक्तिमयी शबरीजीकी आशाका आनन्द लट्टिये—

जब भगवान् श्रीशबरीके आश्रममें आये हैं, तब शबरी कहती है मेरे गुरु मतंग ऋषि कह गये थे कि—

रामो दाशरथिर्जातः परमान्ना सनातनः ।  
आगमिष्यति चैकाग्रध्याननिष्ठास्थिरा भव ॥

सनातन परमात्मा दशरथके पुत्र राम यहाँ आवेंगे, तू एकाग्र चित्तसे ध्यानपरायण होकर यहाँ स्थिर रह ।

शबरीजीको अनेक कालसे श्रीरामदर्शनकी लालसा लगी थी, वह प्रभु श्रीरामको खिलानेके लिये निष्प स्वादिष्ट फलोंका संग्रह किया करती थी—आज वही स्वादभरे सरस संग्रहीत फल श्रीरामके भेंट करती है—

कन्द मूल फल सरस अति दिए रामकहँ आनि ।  
प्रेमसहित प्रभु खाए बारहिं बार बक्षानि ॥

भगवान्‌ने श्रीशबरीके दिये हुए फलोंको निःसंकोच प्रेम-से खाया और फलोंकी बकाई करते करते नहीं थके, अन्तमें शबरीने श्रीरामके सम्मुख अपने प्राण त्याग दिये, तब श्रीरामने अपने हाथसे माताकी भाँति शबरीका अन्त्येष्टि संस्कार और उसकी ऊर्ध्व-क्रिया की। श्रीरामकी भक्त-वत्सलताका कहाँतक वखन किया जाय ?

इसप्रकार उनके भक्त अनेक प्रकारकी आशा लगाये रहते हैं, कोई सख्य-रसके आस्वादनकी इच्छा करते हैं, तो कोई दास्य-रसकी। कोई माधुर्य-रसकी, तो कोई वात्सल्य-रसकी और कोई शान्त-रसकी। ऐसे सभी भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् श्रीरघुनाथजीका अवतार है। प्रभुके साथ सम्बन्ध केवल भक्तिद्वारा ही होता है, चाहे वह किसी भी भाववाली हो। भगवान् श्रीशबरीके प्रति कहते हैं—

कह रघुपति मुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगतिकर नाता ॥  
जाति पाँति कुरु धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥  
भगतिहीन नर सोहहि कैसे । बिनु जल बारिद देखिय जैसे ॥

भक्तिद्वारा मनुष्य भगवान् श्रीरामका आत्मीय बन जाता है। देखिये, वनवासी पशुजाति वानरोंने अपने भक्तिबलसे श्रीरामके हृदयपर कैसा अधिकार कर लिया। गुरु बशिष्ठके प्रति स्वयं श्रीराम अपने वानर भक्तोंके लिये कहते हैं—

ये सब सखा सुनिय मुनि मेरे । भए ममर-सागर कहँ बेरे ॥  
मम हित लागि जनम इन हारं । भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे ॥

पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

प्रभु तत्पर कपि डारपर, ते किय आपु समान ।  
तुलसी कहूँ न रामसों साहेब सील-निधान ॥  
जे ग्यान-मान-बिमत्त तब भव-हरनि भगति न आदरी ।  
ते पाइ सुर-दुर्लभ-पदादपि परत हम देखत हरी ॥  
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे ।  
जपि नाम तब बिनु श्रम तरहिं भव, नाथ सोइ स्मराम हे ॥

शरणागत-वत्सल श्रीराम

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि,  
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।  
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि,  
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥



शरणागति समस्त साधनोंकी पराकाष्ठा है, सबका फल है और इस शरणागतिका फल है परम ध्येयकी प्राप्ति। वास्तवमें शरणागतिका फल अवर्णनीय है। फल कहनेसे तो शरणागतिभावकी लज्जता होती है। अवधेशकुमार भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागत-व्यस्तता भुवनविख्यात है, जिस समय रावणसे निगृहीत होकर विभीषण श्रीरामके शरण आता है, उस समयका श्रीरामका भाव देखिये—

विभीषण अपने चार अनुचरों सहित श्रीरामके शिविरमें आकाश-मार्गसे आता है और सुग्रीवादि बानरोंको अपना परिचय देकर सर्वलोक-शरण्य श्रीरामके आश्रयमें ले चलनेके लिये अनुरोध करता है। वह कहता है—

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महत्प्रभे ।  
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥

‘सर्व लोकोंको शरण देनेवाले महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मेरे आनेकी सूचना आप दे दें।’

विभीषणके वचनोंको सुन और उसको वहीं छोड़कर सुग्रीवादि बानर श्रीरघुनाथजीको उसके आगमनकी सूचना देते हैं। श्रीराम सब बानरोंकी सम्मति चाहते हैं इसपर सुग्रीव कहता है ‘भगवन् ! शत्रुसेनासे अकस्मात् यह शत्रु विभीषण अपनी सेनामें आया है, मौका पाकर अपनी सेनाका नाश कैसे ही कर देगा जैसे उल्लू कौबोंका नाश कर देता है। वह शक्तिशाली और कपटी है, अन्तर्धान हो सकता है और इच्छानुरूप स्वरूप धारण भी कर सकता है। इसका विश्वास नहीं करना चाहिये। वह रावणके गुप्तचररूपसे हमारा भेद देने आया है।—

जानि न जाइ निसाचरि माया । कामरूप केहि कारन आया ॥  
भेद लेन हमार सठ आवा । राखिय नाँवि मोहि अस माना ॥

इसको रावणका भेजा हुआ समझिये। इसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। यह पहले विरक्त भाव दिखा कर पीछेसे मौका पाकर धोखा देगा। अतः इसे मन्त्रियों समेत मार ही डालना चाहिये।’

अक्रुद् कहता है—‘विभीषण शत्रुके वहाँसे आता है, उसपर सन्देह अवश्य करना चाहिये। अवसर पाकर वह प्रहार कर सकता है। हित-अहितका विवेचन करके वह संग्रह करना चाहिये। जिसमें अधिक दोष हो, उसको त्यागना चाहिये और जिसमें अधिक गुण हो उसीका संग्रह

करना चाहिये। यदि आपको विभीषणमें अधिक दोष प्रतीत हों तो त्याग दें और अधिक गुण प्रतीत हों तो ग्रहण करें।’

जाम्बवन्त कहता है—‘जब यह युद्धके समय आया है, तब अवश्य ही रावणका भेजा हुआ है।’

मेण्डू बानर कहता है—‘यह रावणका छोटा भाई है। मयूर वचनोंसे इससे सब समाचार पूछने चाहिये। फिर यह सद्-बुद्धि है या असद्-बुद्धि, इसका भी यथोचित विचार करना चाहिये।’

पवनकुमार श्रीहनुमान्जी कहते हैं—‘हे प्रभो ! आप सब शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, शक्तिशाली, सर्वसमर्थ हैं। आपको मैं क्या मन्त्रणा हूँ ? आपके विचारके सामने साक्षात् वृहस्पति-की भी मन्त्रणा गुच्छ है; मैं स्वेच्छासे, आसक्तिसे या तर्कसे कुछ भी नहीं कहता। केवल आज्ञानुरोधसे अपना विचार आपके चरणोंमें निवेदन करता हूँ। विभीषणको वहाँ बुलाकर उससे सब कृतान्त जानना चाहिये। सहसा वहाँ बुलाना भी अनुचित है, पर दूत भेजकर सब बातें जानना भी ठीक नहीं जँचता। विभीषण यदि आपको रावणसे अधिक पराक्रमी और गुणवान समझकर आया है तो उसने बड़ी बुद्धिमानोंका काम किया है। यदि दूत भेजकर परीक्षा की जायगी तो वह शंका करेगा और दुखी भी होगा। उसकी बोलचालमें कोई दुष्ट भाव नहीं दीखता। उसका मुख प्रसन्न है इसलिये विभीषणपर सन्देह नहीं होता। यदि वह भूत होता, तो शंकाशून्य स्वस्थ-चित्तसे आपके पास नहीं आ सकता। रावणको बलगर्बित, पाप-पराधय देखकर उसका नाश करानेके लिये तथा राज्यकी कामनासे वह वहाँ आया है। अतः आपको विभीषणका संग्रह करना चाहिये।’

हनुमान्के इन नीति, धर्म, भक्ति और रहस्ययुक्त अपने मनकेने वचन सुनकर जानकीवल्लभ श्रीरामने कहा—‘मित्रो ! आप सबने मेरे हितके लिये ही परामर्श दिया। अब मेरी इच्छा सुनिये—

मित्रभावेन संप्राप्त न त्यजेयं कथंचन ।

रांभो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥

( बा० रा० ६।१८।३ )

मित्र-भावसे आये हुए विभीषणको मैं कभी नहीं त्याग सकता। यदि कुछ दोष भी हो तो भी ऐसे आगत जबको नहीं त्यागना चाहिये। वही सत्पुरुषोंकी स्तुत्य सम्मति है।’

तदन्तर सुग्रीवने फिर कहा—‘श्रीराम ! विभीषण दुष्ट हो या शिष्ट, पर वह राक्षस तो है ही । आपसिके समय जब उसने अपने भाईको त्याग दिया है तो फिर वह किसका त्याग नहीं कर सकेगा ? जातिवाले और समीपवर्तीलोग कभी कभी शत्रुओंकी सहायता किया करते हैं, परन्तु जब आपसि आती है तब उनपर ही ग्रहार करने लगते हैं, यह भी इन्हीं सब कार्योंसे आया होगा । इसके सिवा राक्षसों में भी शत्रुके बलका ग्रहण करना दोषयुक्त बतलाया है, क्योंकि इसमें धोखा ही होता है ।’ इसप्रकार सुग्रीवने भगवान् श्रीरामके सामने अनेक युक्तियुक्त तर्क उपस्थित किये, श्रीरामने इन विचारयुक्त तर्कोंको सुन, प्रसन्न हो सुग्रीवकी बड़ी प्रशंसा की, और कहा ‘मित्र ! वह राक्षस दुष्ट हो या शिष्ट, मेरा कुछ भी अपकार नहीं कर सकता, क्योंकि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने राक्षस, पिशाच, दानव और यक्ष हैं, सबका अङ्गुलीके अग्रभागसे ही विनाश कर दूँ । जब कपोत-सरीखे पक्षीने भी शरब आये शत्रुका अपना मांस देकर सत्कार किया था, तब भला, मैं इसका कैसे त्याग कर सकता हूँ ?

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।  
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥  
आर्तां वा यदि वा दसः परेषां शरणं गतः ।  
अग्निः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥  
स चेत् भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति ।  
स्वया शक्त्या यथा न्यायं तत् पापं लोकगर्हितम् ॥  
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।  
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥  
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ।  
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥

( बा० रा० ६ । १८ । २७-३१ )

‘हे परन्तप ! जब शत्रु दीनतासे हाथ जोड़कर शरणागती याचना करता हुआ प्रणाम करने लगे तो वह नृपस बुद्धिवाला होनेपर भी उसको न मारे । शत्रु दुःखमें पड़ा हो, गर्बसे भरा हो तथा दूसरोंके भयसे शरणागतिमें आया हो, तब भी कृतात्मना पुरुष प्राणियोंकी कुछ भी परवा न कर उसकी रक्षा करे । जो पुरुष भय, मोह या कामसे शरणागति आये हुए शत्रुकी अपनी शक्ति-के अनुसार रक्षा नहीं करता, वह पापका भागी होता है और संसारमें उसकी निन्दा होती है । रक्षा चाहनेवाला

पुरुष यदि रक्षा न पाकर रक्षककी आँखोंके सामने मारा जाता है तो रक्षकके सब पुण्य भरनेवालेको मिलते हैं और वह स्वर्गको चला जाता है । इसप्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें बड़ा भारी दोष है और उनकी रक्षा न करना स्वर्गसे अष्ट करनेवाला, अपयश देनेवाला और बलवीर्यको नष्ट करनेवाला है ।’

सरनागत कहूँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥

सत्-पुरुषोंके व्यवहारको विस्मयकर शरणागतवत्सल भगवान् श्रीराम अपने मतकी अर्थात् निबन्धकी घोषणा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तनास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥

‘वह मेरा मत है कि जो एक बार भी मेरी शरणागति आकर ‘मैं तुम्हारा हूँ’ ऐसा कह मुझसे शरणागती याचना करता है, मैं उसको सर्व प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ ।’

मम पन सरनागत-भय-हारी ॥

कोटि विप्र-बन्ध लागहि जाहूँ । आप सरन तजौं नहिं ताहूँ ॥

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

तदन्तर भगवान् आज्ञा देते हैं कि—‘हे सुग्रीव !

आनयैनं हरिश्चेष्ट दत्तमस्मामयं मया ।

विभीषणो वा सुग्रीव यदि वारावणः स्वयम् ॥

( बा० रा० ६ । १८ । ३४ )

वह व्यक्ति विभीषण हो चाहे स्वयं रावण हो, तुम उसको जिना लाओ, मैंने उसे अभय दान दे दिया ।

जो समीत आवा सरनाई । रक्षिहौं ताहि प्रानकी नाई ॥

प्रभुकी इसप्रकारकी घोषणाको जो पुरुष जानता है और जो उसपर विश्वास करता है वह अन्य समस्त आश्रयोंको त्यागकर एकमात्र शरणागत-भय-हारी भगवान्के ही शरण चला जाता है, वह कभी डर उचर नहीं भटकता । भगवान्की शरणागतिसे वह सदाके लिये निर्भय हो जाता है । अक्त भट्टहरिजी महाराज अपने चित्तको उपदेश देते हुए कहते हैं—

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्रति नाथो यदि,

स्थित्वा द्रव्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु मेघां वचः ।

भेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विशेषितु-

निर्दौवारिक निर्दयोक्त्य परं निःसीम शर्मप्रदम् ॥

रे चित्त ! देख, यदि तू किसी साधारण राजा या धनीके दरबारमें जाता है तो उनके दरवाजेपर पहुँचते ही द्वारपाल तुझसे कहता है—‘अभी मिलनेका समय नहीं है, स्वामी एकान्तमें हैं।’ फिर दूसरे समय जाता है तो कहता है कि ‘स्वामी सोते हैं। मुलाकात न होगी।’ यदि भिचुक वहीं द्वारपर बैठ रहता है तो वह कहता है ‘यहाँ मत बैठो, स्वामी देखेंगे तो नाराज होंगे।’ अतएव रे चित्त ! अब भी साधधान हो और सांसारिक लोगोंके आश्रयकी आशा त्यागकर उस जगत्-पति प्रभुके दरबारकी शरण ले, जहाँ न तो द्वारपर रोकनेवाला द्वारपाल है और न कोई कठोर वचन ही सुनावेवाला है, प्रत्युत जो उसी क्षण अनन्त आनन्दको देनेवाला है।

भगवान् श्रीरामकी आज्ञा पाकर सुग्रीव और हनुमदादि अनुचर विभीषणको प्रभुके सम्मुख ले आते हैं और विभीषण जब भगवान्‌के सम्मुख आता है तो भगवान्‌की

रूप-भाङ्गुरी देखकर वह विचित्र हो जाता है—

बहुरि राम छवि-वाम बिलोकी । रहेउ ठठुकि इकटक पल रोकी ॥

और वह कहता हुआ प्रभुके चरणोंमें बिज मूक वृचकी भाँति गिर पड़ता है—

श्रवन सुजस सुनि आयेउँ, प्रभु भंजन भव-भीर ।

त्राहि त्राहि आरतिहरन, सरन-मुखद रघुबीर ॥

भगवान् श्रीरामकी शरणागत-वत्सलता अनुपमेय है। प्रभुपाद श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

नाहिन और कोऊ सरन लायक दूजो

श्रीरघुपति सम विपति निवारन ।

काको सहज स्वभाव सेवकबस

काहि प्रनतपर प्रीति अकारन ॥

जन-गुन अल्प गनत सुमेख करि

अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन ।

परम कृपालु भगत-चिन्तामनि

बिरद पुनीत पतित-जन-तारन ॥

## श्रीरामका प्रणत-रक्षा प्रण



भगवान् श्रीरामकी शरणागतवत्सलता सुप्रसिद्ध है। जब राक्षसराज विभीषण भगवान्‌के शरण आता है और जब सम्मति प्ले जानेपर सेनापति सुग्रीव विभीषणको बाँध रखनेकी राय देता है तब भगवान् श्रीराम, नीतिके हिसाबसे सुग्रीवकी सम्मतिका सम्मान करते हुए अपना प्रण सुनाते हैं—

सखा ! नीति तुम नीकि बिचारी । मम पन सरणागत-भय-हारी ॥

इसके बाद विभीषण सादर श्रीरामके सामने लाया जाता है और श्रीराम उसकी सखी शरणागतपर मुग्ध हो—अब इच्छा न रहनेपर भी—उसे लङ्काधिपति बना देने हैं। केवल मुँहसे ही ‘लङ्केश’ नहीं कहते परन्तु ‘मम दरसन अमोघ जगमाहीं’ कहकर अपने हाथसे उसके राजतिलक भी कर देते हैं। सुग्रीवको यहाँ बड़ा आश्चर्य होता है। वह सेनापतिकी हैसियतसे सोचता है कि अभी लङ्कापर विजय तो मिली ही नहीं, पहले ही विभीषणको ‘लङ्केश’ बनाकर श्रीरामने बड़ी भारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली

है। इससे सुग्रीव राजनीतिकुशलतासे बड़े ही विनम्रभावसे श्रीरामसे एकान्तमें पूछता है ‘नाथ ! विभीषणको तो शरणागतिका फल मिल गया, परन्तु हे स्वामी ! यदि कल इसीप्रकार रावण शरण आ जाय तो फिर क्या होगा ? क्या लङ्काका राज्य उसे नहीं दिया जायगा ? दिया जायगा तो स्वामीके वचन कैसे रहेंगे और यदि नहीं दिया जायगा तो रावणको सन्तोष कैसे होगा ?’ भगवान् श्रीराम सुग्रीवका आशय समझकर हैंसते हुए कहते हैं, ‘मित्र ! रामका मत यही है कि वह जो कुछ एकबार कह देता है उसे पलटता नहीं। लङ्का तो विभीषणकी ही होगी, यदि रावण आवेगा तो उसके लिये अवध तैयार है—

बात कही जो कही सो कही,

जो कही सो कही फिर फेरि न आनन ।

जो दसकन्धर आन मिले,

गढ़ लंक विभीषण, अवध दसानन ॥

भगतहि बन्धु समेत कलाप करूँ,

निज बास मैं हूँ गिरि-कानन ।

ये नहीं भवहिं ठंक-अवास,

कहौ सतिमाव नरेस दसामन ॥

रावण शरणा नहीं आया, उसने तो श्रीरामके हाथसे मरनेमें ही अपना सौभाग्य समझा और वही उसके लिये उचित था। विभीषणको जो एक बार भगवान्ने अपना लिया तो फिर कभी उसको नहीं भुलाया, आप उसकी सदा सुधि लेते रहे और उसे विपत्तियोंसे बचाते रहे।

श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध हो रहा है, रावण बहुत क्रुद्ध होकर इतने बाध छोड़ता है कि श्रीरामका रथ एक बड़ीके लिये बैठे ही ठक जाता है जैसे कुहरसे सूर्य। इसके बाद रावण एक सेल विभीषणपर छोड़ता है, इस सेलके लगते ही विभीषणका मरण निश्चित है, क्योंकि यह असमर्थ है। भगवान् श्रीराम इस रहस्यको जानते थे। शक्ति छूटते ही श्रीरामने अपना विरह सहाया—

भान्त देखि सकि अति भारी। प्रनतारत हरि विरद समारी ॥

तुरत विभीषण पाछे मला। सनमुख राम सहेउ सो सेला ॥

शरणागतकी आर्त्तिका नाश करनेवाले श्रीराम शरणागत भक्तका अनिष्ट कैसे देख सकते थे ? जो सब ओरसे ममता हटाकर श्रीरामके चरणोंको ही ममताका एकमात्र केन्द्र बना लेता है और अपने आपको सर्वतोभावेन उनके प्रति अर्पण कर देता है, उसके रक्षणावेष्टाका सारा भार, लोगचेमकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। इसलिये भगवान्ने तुरन्त विभीषणको पीछे कर लिया और भीषण सेलका प्रहार सहनेके लिये छाती सामने करके स्वयं खड़े हो गये। धन्य नाथ ! ऐसे शरणागतकसल श्रीरामको भूलकर जो आपात-रमणीय लोगोंने रमते हैं, उनके समान दयनीय और कौन होगा ?

एक घटना और सुनिये। एक समय श्रीरामको सुनियोंके द्वारा यह समाचार मिलता है कि लङ्काधिपति विभीषण ग्रन्थि देशमें कैद हैं। भगवान् श्रीराम अब नहीं ठहर सके, वे विभीषणका पता लगाने और उसे छुड़ानेके लिये निकल पड़े। खोजते-खोजते विप्रघोष नामक नौकमें पहुँचे, विभीषण वहाँ कैद थे। वहाँके लोगोंने श्रीरामको दिसवाया कि विभीषण जमीनके अन्दर एक कोठरीमें खंजीरोंसे बँधा हुआ पड़ा है। श्रीरामके पूछनेपर ब्राह्मणोंने कहा—‘राजन् ! विभीषणने ब्रह्महत्या की थी, एक अति आर्त्तिक दुःख ब्रह्मण निर्जन उपवनमें तप कर रहा था,

विभीषणने वहाँ जाकर उसे पदव्रित्त करके मार डाला। ब्राह्मणकी मृत्यु होते ही विभीषणके पैर वहाँ रुक गये, वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका, ब्रह्महत्याके पापसे उसकी चाल बन्द हो गयी। हम लोगोंने इस दुष्ट राक्षसको बहुत मारा-पीटा परन्तु इस पापीके प्राण किसी प्रकार नहीं निकले। अब हे श्रीराम ! आप पधार गये हैं, आप चक्रवर्ती राजराजेश्वर हैं। इस पापात्माका बच करके धर्मकी रक्षा कीजिये।’ यह सुनकर श्रीराम असमञ्जसमें पड़ गये। एक ओर विभीषणका भारी अपराध है और दूसरी ओर विभीषण श्रीरामका ही एक गुलाम है। यहाँपर श्रीरामने ब्राह्मणोंसे जो कुछ कहा सो बहुत ही ध्यान देने योग्य है। शरणागत भक्तके लिये भगवान् कदाँतक करनेको तैयार रहते हैं, इस बातका पता भगवान्के शब्दोंसे लग जायगा। भगवान् श्रीराम स्वयं अपराधीकी तरह नम्रतासे कहने लगे—

वरं ममैव मरणं मङ्गलं हन्यते कथन् ।

राज्यमायुर्मया दत्तं तथैव स भविष्यति ॥

मृत्यापराधे सर्वत्र स्वामिनो दण्ड इष्यते ।

रामवाक्यं द्विजः श्रुत्वा विस्मयादिदमद्भुवन् ॥

( पद्मपुराण पातालखण्ड )

‘हे द्विजवर ! विभीषणको तो मैं अखण्ड राज्य और आयु दे चुका, वह तो मर नहीं सकता। फिर उसके मरनेकी ही क्या जरूरत है ? वह तो मेरा भक्त है, भक्तके लिये मैं स्वयं मर सकता हूँ। सेवकके अपराधकी जिम्मेवारी तो वास्तवमें मालिकपर ही होती है। नौकरके दोषसे स्वामी ही दण्डका पात्र होता है, अतएव विभीषणके बदले आप लोग मुझे दण्ड दीजिये।’ श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणमण्डली आश्चर्यमें डूब गयी। जिसको श्रीरामसे दण्ड दिलवाना चाहते थे वह तो श्रीरामका सेवक है और सेवकके लिये उसके स्वामी श्रीराम ही दण्ड ग्रहण करना चाहते हैं। ब्रह्माहा ! स्वामी हो तो ऐसा हो। भान्त मनुष्यो ! ऐसे स्वामीको बिसारकर अन्य किस साधनसे सुखी होना चाहते हो ? अस्तु !

ब्राह्मण उसे दण्ड देना भूल गये। श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणोंको वह चिन्ता हो गयी कि विभीषण जल्दी छूट जाय और अपने घर जा सके तो अच्छी बात है। वे विभीषणको ढोव तो सकते

ये परन्तु छोड़नेसे क्या होता, महात्माके पापसे उसकी तो गति रुकी हुई थी। अतएव माछाणोंने कहा—‘राम ! इस प्रकार बन्धनमें पड़े रहना उचित नहीं है। आप बशिष्ठ प्रभृति मुनियोंकी रायसे इसे बुझानेका प्रयत्न कीजिये।’ अनन्तर श्रीरामने प्रधान प्रधान मुनियोंसे पूछकर विभीषणके लिये तीन सौ साठ गोदानका प्रायश्चित्त बतलाकर उसे बुझा लिया। प्रायश्चित्तद्वारा विशुद्ध होकर जब विभीषण भगवान् श्रीरामके सामने आकर साष्टर प्रणाम करने लगा तब श्रीरामने उसे सभामें ले जाकर बैठते हुए यह शिक्षा

दी—‘ऐसा कार्य कभी नहीं करना चाहिये। जिसमें अपना हित हो, वही कार्य करना चाहिये। हे राक्षसराज ! तुम मेरे सेवक हो, अतएव तुम्हें साधुशील होना चाहिये, सर्वत्र दयालु रहना चाहिये।’ सारांश, ऐसा कोई कार्य भक्तको नहीं करना चाहिये जिससे उसके स्वामी भगवान् पर आम्बुन आवे !

भगवान् श्रीराम एक बार विभीषणको सम्हालने और उसे उचित शिक्षा देनेके लिये फिरसे लड़ा भी गये थे !

प्रणत-जन-शरण

## श्रीरामावतारके विविध भाव और रहस्य

( लेखक—विद्वत् ५० श्रीभवानीशंकरजी )

### उद्देश्य



रामके अवतारमें प्रधानतः दो उद्देश्य थे। प्रथम, संसार-दुःखके यथार्थ मूल कारण अधर्मका नाश करना और दूसरा, धर्मकी वृद्धि और रक्षाके लिये एक परम पावन चरित्र-वान् आदर्श महापुरुषका नमूना संसारके सामने पेश करना। जब समस्त देवताओंने एकत्र होकर प्रेमपूर्वक अवतार चारणके लिये परमात्माने सम्मिलित प्रार्थना की थी, तभी उसको परमात्माने स्वीकार किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि सार्वजनिक लोक-हित-कर कार्यकी सिद्धिके लिये अनेक पवित्रात्मा पुरुषोंका मिलकर प्रेमके साथ एकी-भावसे सम्मिलित हो उपासना और प्रार्थना करना आवश्यक है। श्रीशिवजीने कहा है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेमते प्रगट होहिं मैं जाना ॥

भग-जग-मय सबरहित निरागी। प्रेमते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥

पर-दुःखसे कातर हो पर-हितार्थ श्रीभगवान्की सेवाके भावसे, निःस्वार्थ होकर सच्चे हृदयसे जो त्यागरूप कर्म किया जाता है, वही यथार्थ भगवत्-प्रेम है। इसी प्रेमके कारण भगवान्ने अवतार ग्रहण किया। दूसरे उद्देश्यमें यह विशेषता थी कि मनुष्यके चरित्रसंगठनके लिये, उसके जीवनमें ईश्वरीय दिव्य गुण, कर्म और ऐश्वर्यका अधि-काधिक विकास करनेके लिये,—जो मनुष्य-जीवनका मुख्य

लक्ष्य है—एक ऐसे आदर्श परम पवित्र जीवनका संसारमें साक्षात् प्रकट होना था, जिसको इष्ट और आदर्श मानकर समस्त मनुष्यसमाज अपना चरित्र संगठन करे और अपनेमें ईश्वरीय दिव्य गुणोंका विकास करे। इसीलिये इस पावन अवतारकी जीजाएँ मनुष्योंके द्वारा हो सकनेवाले कर्मोंके सदृश ही हुईं, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य उनको आदर्श मानकर ग्रहण कर सके।

### जन्म

महाराज दशरथने जो श्रीराम-जन्मके लिये पूर्वजन्ममें तपस्या और इस जन्ममें पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था, उससे वही तात्पर्य समझना चाहिये कि यदि कोई पुरुष किसी विशेष आत्माको अपने वहाँ जन्म-धारण करनेके लिये आह्वान करना चाहे तो उसको उस कार्यके लिये उपयुक्त तपस्या और यज्ञ करना चाहिये।

### बाल-भाव

बाल्यकालमें प्रायः बालक स्वभावसे ही परम सुन्दर, शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कपट, सत्यवादी, समदर्शी और प्रेमी होते हैं। इसीसे बालकका पवित्र स्वरूप स्वाभाविक चित्ताकर्षक हुआ करता है। पवित्र और सुन्दर-सरल बालकोंमें भगवान्का विशेष प्रकाश विद्यमान सम्झकर पूज्य ईश्वरभावसे उनका ध्यान करनेपर किसी अंशमें साधकोंको उपासनाके समान ही फल लाभ हुआ करता है। जब साधारण बालकोंमें ऐसा होता है तब श्रीभगवान्के बाल-भावकी उपासनाका महत्त्व तो कौन बखान कर सकता है !

श्रीरामावतारके एक मनोहर बाह्यस्वरूपकी उपासना श्रीरामस्वराजमें बतलायी है जिसमें भगवान् अपने पिताकी गोदमें बैठे हैं। भक्त राज काकमुष्टुषिडजी भी बाह्यरूपके ही उपासक थे। श्रीभगवान् के बाह्य-वेषमें ही उनको विश्वरूपके दर्शन हुए थे। इस रूपके उपासकको विशेषकर परम शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कपट, सत्यवादी, समदशी, निर्विकार और प्रेमी होना चाहिये। इस भावका धाम श्रीअयोध्याजी हैं और इसमें बाह्यस्वरूपकी प्रधानता है।

### कुमार-भाव

इस भावमें भगवान् श्रीरामके ब्रह्मचारी-वेषकी उपासना की जाती है। इसके दो भाग हैं। एक गुरु श्रीवशिष्ठके द्वारा श्रीअयोध्यामें विद्या ज्ञान आदि की शिक्षा-दीक्षा और दूसरा, गुरु श्रीविश्वामित्रके द्वारा प्रवास और अमरत्वमें विद्या, ज्ञान और शस्त्रादिकी शिक्षा-दीक्षा।

माता-पिता और गुरुकी कठिनसे कठिन आज्ञाका विशेषकर धर्मरक्षाके लिये, सहर्ष पालन करना ब्रह्मचारीका परम धर्म है। श्रीभगवान् ने पिताकी आज्ञासे विश्वामित्रके साथ जाकर तथा फिर विश्वामित्र गुरुकी आज्ञासे उनके यज्ञकी रक्षा और सीता-स्वयंवरमें धनुष भंगकर इस धर्मका अखंड-भौति पालन किया। धनुषभंग करनेके पश्चात् भी श्रीभगवान् ने अपने पिताकी आज्ञा बिना श्रीजानकीजीका पावि-ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया (बा० २।११६।२१)

### मधुर मिथिला-भाव

यह परम मधुर और मनोहर भाव श्रीविदेह-नगरमें पदार्पण करनेके समयमें आरम्भ होता है। इस भावमें ब्रह्मचर्यकी पराकाष्ठा है, जिसके कारण श्रीभगवान् का सौम्यरूप अधिकाधिक तेजोमय, विज्य, सुन्दर और रम्य हो जाता है। श्रीरामकी रूपमाधुरीको देखकर जानिभ्रेष्ठ जनकजी कहते हैं—  
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा ॥  
सहज विरागरूप मन मोरा। शक्ति होत जिमि चन्द चकोरा ॥

जनकपुरकी भाग्यशालिनी नारिणी कहती हैं—

वय किसोर सुखमा-सदन, स्वाम-गौर सुखधाम।

अंग अंगपर बरियहि, कोटि-कोटि-सत काम ॥

नगरके बाह्यकोंकी वृथा देखिये—

सब सिसु पहि मिस प्रेमदस, परसि मनोहर गात।

तनु पुलकहि अति हरष हिय, देखि देखि दोठ आत ॥

इस भावमें मुख्य घटना पुष्पवाटिकामें श्रीगिरिजाजीके स्थान पर श्रीभगवान् और श्रीजानकीजीका परस्पर साक्षात्कार है, जहाँ श्रीजानकीजीके भौतिक सौन्दर्यका वर्णन है—

जनु बिरचि सब निज निपुनाई। बिरचि विश्व कहँ प्रगट देखाई ॥

सुंदरता कहँ सुंदर करई। छनि-गृह दीप-सिखा जनु नरई ॥

श्रीमतीजीको देखकर श्रीभगवान्, लक्ष्मणजीसे कहते हैं—

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥

प्रत्येक जीवात्मा अपने इष्टका अंश होनेके कारण उनकी शक्ति है। निर्मम और निरहंकार होकर प्रेमपूर्वक सेवा-भक्ति करनेसे ही उस इष्टका दर्शन और उसके साथ सम्बन्ध हो सकता है। यह सम्बन्ध सांसारिक सम्बन्धकी दृष्टिसे एक प्रकार विवाहके समान है, परन्तु यह तो जीवात्मा और परमात्माका आध्यात्मिक सम्बन्ध है, शारीरिक कदापि नहीं। आर्योंका विवाह भी यथायथं दो जीवात्माओंका सम्बन्ध है। जिसमें वरको विष्णु समझ कर कन्याका अर्पण किया जाता है।

प्रत्येक उपासकको अपने इष्टदेवकी प्राप्तिके लिये गावत्री शक्तिके प्रकारसे आभय और जीवन्मुक्त सद्गुरुकी छावरबद्धता है। इस रामचरित्ररूप आध्यात्मिक नाटकमें श्रीजानकीजीको परम कृपापात्री साधिका समझिये और विदेह जनकको इस आध्यात्मिक विवाहमें सम्बन्ध जोड़ने-वाले सद्गुरु! परन्तु इष्टरूप वरकी प्राप्तिके लिये विद्या-शक्तिको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। इसी मर्यादाके अनुसार श्रीजानकीजीने श्रीभगवान् की प्राप्तिके लिये श्रीगिरिजाजीका आराधन कर उनसे वरकी प्राप्ति की, तभी उनका श्रीरामके साथ विवाह हुआ।

इस मधुर मिथिला भावमें श्रीभगवान् का वृष्टारूपमें और उनकी विज्य परा आनन्दमयी शक्ति श्रीजानकीजीकी दुलहिनके रूपमें युगल उपासनाकी जाती है। इस भावके उपासक भक्तकी दृष्टिमें श्रीभगवान् का यह विवाह आध्यात्मिक और रहस्यमय होनेके कारण नित्य है, अतएव यह परम मधुर 'युगल जोड़ी' सदा सर्वदा श्रीमिथिला नगरीमें रहती है। इस विवाहोत्सवके भावकी उपासना अत्यन्त मधुर और रहस्यमयी है। इसीसे विवाहके समय देवलोकमें भी परम उत्सव हुआ था। (बा० १।६३।२६—३७)

जगत् के व्यवहारमें भी विवाहोत्सवसे बढ़कर आनन्दप्रद घटना दूसरी नहीं है क्योंकि विवाहमें दो आत्माओंका एकिकरण किया जाता है। इस भावमें श्रीभगवान् अपने प्रिय

यन्त्र और सत्ताओंसे परिवेष्टित हैं एवं श्रीजानकीजी अपनी त्रिव सरल आमीय लक्ष्मियोंसे सेवित हैं। महलके अन्दर और बाहर दोनोंकी सेवा हो रही है। विविध गीत वाद्य, नामा प्रकार स्तुति-प्रार्थना आदिकेद्वारा ध्वनिरूप रसका नित्य प्रवाह बहता है। इस प्रकार इस भावमें पवित्र मधुर रसकी बयेष्ट सामग्रियाँ वर्तमान हैं। जैसे वृन्दावनका रासोत्सव नित्य है, वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा बिराजमान हैं 'वृन्दावनं परित्यज्य पदमेकं न गच्छति।' जैसेही वह मधुर मिथिला विवाहोत्सव भी नित्य है, जहाँ वह अपूर्व, युगल जोड़ी, सदा वर्तमान रहती है। इस भावका धाम श्रीजनक नगरी है, जनक नगरी अब भी धर्मिष्ठ हिन्दू राज्य नेपालमें है, जहाँ वर्तमान पार्थिव सभ्यताकी सुराह्वर्ष प्रवेश नहीं कर पायी है। श्रीमतीजीकी कृपासे उस धामके और उस प्रांतके निवासी अब भी प्रायः सुखी और स्वस्थ हैं। श्रीरामोपासकको जनकपुर और उसमें श्रीगिरिजाजीके स्थानका दर्शन अति-भावसे अवश्य करना चाहिये।

इस मधुर भावके एक परम भावुक महात्माको किसीने श्रीभगवान्की वनयात्राका संवाद सुना दिया, जिसे सुनकर वह परम आकुल होकर विन्नकृत गये। वहाँ जब श्रीमती और श्रीभगवान्ने दर्शन और आश्वासन दिया, तभी वह वहाँसे लौटे। छपरा जिलाके सिवानके पास रहनेवाले स्वनाम-धन्य श्रीरामाजी इसी भावके उपासक थे। वे जहाँ कोई पीतवस्त्रधारी कूल्हा देखते, वहीं भगवत्-भावसे उसका आदर और सेवा करने लगते। विवाहोत्सव तकही रामायणकी कथा कहते और मधुर विवाहोत्सव प्रायः किया करते। उनका भगवान्में अर्पित जीवन बहुतही विशुद्ध और गाढ़ प्रेमसे प्लावित था। वह यथार्थ ही भगवान्के सच्चे कृपापात्र थे। उनकी सत्संगतिले अनेक लोग सुचरे और ईश्वरानुरागी बने !

### तापस-भाव

इस भावका प्रारम्भ वनयात्रासे होता है। इसमें दया और वैराग्यकी प्रधानता है। श्रीभगवान्को न तो राग्याभिवेकके समाचारसे हर्ष हुआ और न वन-वासके संवादसे शोक। वह दोनोंमें ही सम रहे। समता वैराग्यसे होती है। (वा० २। १६। २२-२३)

श्रीभगवान्के वनगमनमें कैकेयीही कारण थी, परन्तु भगवान् कभी कैकेयीसे नाराज नहीं हुए, बल्कि उन्होंने बड़ी कहा कि 'माता ! मैं केवल आपकी आज्ञासे ही सब का

सकता था। सुमन्त्र सारथिने वनसे लौटकर माता कैकेयी को श्रीरामका सम्बोधन सुनाया कि 'माता ! मेरी आज्ञासे बड़ी मार्चना है कि आप राधा कृष्णजीको कैकेयी देवीकी ओर अनुरागी बनायें' (वा० २। २८। १३) श्रीभगवान्ने भरतसे कहा कि 'आई ! माता कैकेयी मेरे वनवासमें कारण है, इस बातकी उपेक्षा करके तुम उनके सेवा करो।' इसी तरह पहले श्रीकृष्णजीसे कहा था कि 'मैं माता कैकेयीकी निन्दा सहन नहीं कर सकता।' वनसे लौटने पर सबसे पहले भगवान् कैकेयीके गृहमें ही पधारें थे। इससे यह सिद्ध होता है कि अपने साथ बुराई करनेवाले पर भी भगवान्ने बड़ी दया की !

श्रीभगवान्का बाल्यकालमें राजभवनके सुखोंको छोड़ गुरु विश्वामित्रजीकी अधीनतामें ब्रह्मचर्यमत्तका पाखन करते हुए वीरताके साथ उनके वस्त्रकी रक्षा करना और इस वनवासमें मुनिव्रतधारण-पूर्वक बधिरूप परमौपचसे असुरोंको भयभोग-से मुक्तकर श्रमियोंकी एवं धर्मकी रक्षा करना, इस विषय अवतारकी त्यागद्वारा सम्पन्न होनेवाली परम पावनी कीर्ति है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी इसी नीतिके अनुसार अपने माता-पितासे पृथक् हो साधारण गोपवेष्टसे वनमें गाव चराते हुए बधिरूप द्वापूष' क्रियासे असुरोंका भय विनाश कर धर्मकी रक्षा की थी। इस दृष्टिले राग्याभिवेकमें एकादश बालकर माता कैकेयीने जगत्का बड़ा ही कल्याण किया। इस एकादशमें वह तो केवल निमित्त थीं, यथार्थमें तो यह कार्य देवताओंका किया हुआ था। (वा० २। ६२। ३०-३१) श्रीभगवान् यदि वनवासको स्वीकार न करते और श्रीसीताजी वनके विविध कष्टोंका एवं रावणके द्वारा हरण होनेका भीषण संकट स्वीकार न करती तो शर, दूषण, रावण, कुम्भकरण आदि महाबली राक्षसोंका बध नहीं होता।

यह तो ऊपर कहा ही जा चुका है कि इस बध-लीलासे असुर और संसार दोनोंका ही मंगल हुआ। असुर मरकर मुक्त हो गये और संसारमें असुरोंके अभावसे धर्मकी रक्षा और वृद्धि हो गयी। श्रीभगवान्, श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी इन तीनोंका वनवासरूपी त्याग संसारके हितके लिये ही हुआ था। त्यागका परिचयाम अन्तमें आनन्द और कल्याण, एवं भोगका परिचयाम दुःख और बन्धन होता है। श्रीभगवान्को वनयात्रामें विविध मनोहर प्राकृतिक दृश्य, अधि-समागम, सरल ग्रामीणोंके विशुद्ध प्रेम और वनके कल-मृदादि भोजनसे जो आनन्द मिला,





भक्तवर्ग रामाजी प्रेममग्न नाच रहे हैं





वह राजमासावर्मे कदापि सम्भव नहीं था। (बा० २।३५।१२ से १५) इसीसे भगवान् ने श्रीकैकेयीसे कहा था—

मुनिगन मिलनु निसेवि वन सबहि भौति हित मोर।

तेहि महुँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

माता कौसल्यासे भी यही कहा—

पिता दीन्ह मोहि काननराजू। जहुँ सब भौति मोर बड़ काजू ॥

श्रीभगवान् के वनगमनके समय उनके स्वरूपको देखकर नगर और ग्रामनिवासी नरनारियोंका चित्रवत् मुग्ध होना, चित्रकूटमें कोल-किरातोंका उनकी सेवा करना, नीचवर्ग के गुह-निषाद, वानरजातिके सुधीव और राजस विभीषणका हार्दिक मैत्री करना आदि उदार और सुखमयी घटनाओंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् सर्वात्मा होनेके कारण समस्त प्राणियोंके परम प्रिय हैं और उनको भी अपना अंश होनेके कारण चराचर जीवमात्र प्रिय हैं। श्रीवशिष्ठजीने वनगमनके समय कैकेयीसे कहा कि 'तू अभी यह देखेगी कि श्रीरामचन्द्रके वन जाते समय पशु, पक्षी, रुग, सर्प और स्थावर वृक्ष आदि भी उनके साथ जाना चाहेंगे। (बा० २।३७।३३) भगवान् के वनगमन करनेपर इस शोकका प्रभाव केवल वृक्ष, नदी, पशु, पक्षी आदि पर ही नहीं, वायु, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि, चन्द्र और सूर्य आदि पर भी पड़ा। (बा० २।५३।४-५ एवं २।४१।३-१७) इससे पता लगता है कि वे सबको कितने प्रिय थे।

श्रीभरतजीका चित्रकूट आकर श्रीभगवान् को राज्यार्यथ करना और उनके बदले स्वयं वनवासी बननेकी प्रार्थना करना वैराग्यका परमोच्च उदाहरण है। श्रीभगवान् का इन दोनों प्रस्तावोंको ही अस्वीकार कर देना उससे भी उच्च वैराग्य है। भगवान् के अस्वीकार करनेपर भी दूसरी तरहसे श्रीभरतजीका उपर्युक्त दोनों ही प्रस्तावोंका पालन करना अर्थात् राज्यके स्वामी श्रीभगवान् को मानकर स्वयं उनके दास बनकर सारा कार्य करना तथा भगरसे बाहर मुनिवेषमें विविध व्रत-नियमोंका पालन करते हुए कठिन तपस्यामें प्रवृत्त रहना, वैराग्य और त्यागकी उच्चतम सीमा है—न भूतो न भविष्यति। इस प्रकार श्रीभरतजीने निष्काम कर्मयोगका परमोच्च उदाहरण दिखला दिया। इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि प्रत्येक आत्माको अपना सर्वस्व श्रीभगवान् के अर्पणकर, भगवत्प्रेम और अहङ्कारके त्यागपूर्वक केवल परमात्मा श्रीभगवान् को अपनी वस्तु मान, अपनेको उनका निष्काम

दास समझ, प्रत्येक सांसारिक व्यवहारिक कर्म, उनके निमित्त उनकी इच्छानुसार ही करना उचित है। श्रीभरतजी श्रीभगवान् की चरख-बाहुकाशोंको सिंहासनपर आरुढ़ करवा कर राज्यशासनका सारा कृतान्त उनको निवेदन कर उनकी आज्ञानुसार सब काम करते थे (बा० २।११।१२२) इसी प्रकार कर्मयोगीको उचित है कि वह अन्तरात्मा श्रीभगवान् को प्रभु मान उनको निवेदन करके उनकी आज्ञानुसार समस्त कर्म करे। योग्य आत्माको भगवान् की अनुमति मिलेगी। गीता कहती है कि श्रीभगवान् ऐसे आत्माके अनुमन्ता हैं। 'जो कर्म या साधन भगवान् के मनोनुकूल हो और जिस कर्मके फलमें आसक्ति न हो तथा परिश्राममें एकरस—समान भाव रहे, वही कर्म भगवदाज्ञानुसार होता है।' ऐसा समझना चाहिये। यही निष्काम कर्मकी कसौटी है।

स्त्रियोंका परम आभूषण और विशेष गुण लज्जा है, जो इस गुणका परित्याग कर देती है वह (सती) की नहीं है। सूर्यजलाने लज्जाको सर्वथा त्यागकर श्रीभगवान् के सामने अनुचित प्रस्ताव किया और सीताको भक्षण कर डालना चाहा था, इसीलिसे श्रीभगवान् ने उसको विरूप करके उचित दण्ड दिया।

प्रेमकी परीक्षा और उसका विशेष विकास प्रियतमके वियोगकालमें होता है, वह संयोगमें कदापि संभव नहीं। श्रीभरतजीके प्रेमका विकसित स्वरूप श्रीरामके वियोगसे ही विश्वमें प्रकाशित हुआ था। श्रीसीताजीका वियोग भी इसी कारण हुआ। इसीकारण गोपियोंका भी भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रसे वियोग हुआ। श्रीराम-वियोगसे श्रीजानकीजीकी जो अवस्था हुई थी, वही भक्तिकी पराकाष्ठा है—

नाम पाहरु दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपट।

लोचन निज पद जंत्रित, प्रान जाहिं केहि बाट ॥

हृदय-मन्दिरके अन्दर श्रीभगवान् के चरख-कमलमें दिव्य आन्तरिक चक्षुओंको जगाकर उनका ध्यान करना और सतत नाम स्मरण करते रहना ही उपासनाकी परमोच्च अवस्था है।

श्रीभगवान् का अथम पक्षी जटाशुका प्रेतकार्य अपने हाथों करना उदारता और अनुकम्पाका परमोच्च उदाहरण है। इससे सिद्ध है कि श्रीभगवान् की दृष्टिमें ऊँच-नीच सब समान थे।

श्रीशबरीजी तापस-भावकी प्रधान और आदर्श उपासिका थीं। जिस प्रकार शबरीजीने समस्त बाह्य सुखोंको त्याग, परम तपस्विनी बन, अहोरात्र केवल एक श्रीभगवान्‌में ही अपना प्रेम-प्लावित-चित्त पूर्णरूपसे लगा दिया था और वह उन्हें अर्पण करनेके लिये प्रेमोपहार संग्रह करनेमें ही प्रवृत्त रहती थी। इसीप्रकार आधुनिक चित्त भी सदा सर्वदा केवल श्रीभगवान्‌में ही संलग्न रहना चाहिये और उसके समस्त कर्मोंका लक्ष्य श्रीभगवान्‌की सेवा होना चाहिये तथा श्रीभगवान्‌की परम मुष्टिके लिये ही उन सबका अर्पण होना चाहिये।

बानरराज बालिने अपने छोटे भाई सुग्रीवकी स्त्रीका, जो उसके कन्या-सदृश थी, बलात्कारसे सतीस नाश कर दिया, इसीसे वह आततायी था। आततायीका बध धर्म है। श्री भगवान्‌ने स्पष्ट ही कहा था कि, सनातन धर्मकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले दुष्ट प्राणियोंके संहारक श्रीमान्‌ भरत धर्मपूर्वक शासन करते और युद्ध जैसे कामासक्त अधर्मियोंको दण्ड देते हैं, मैंने भी उन्हींकी आज्ञासे युद्ध मर्यादा-रहितको दण्ड दिया है। (वा० ४।१८।२४-२५) श्रीभगवान्‌ने बालिने यह भी ठीक ही कहा था कि धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। जो एकके लिये कर्तव्य है वही दूसरोंके लिये अकर्तव्य है। इदमस्य अन्तरात्मा ही धर्मकी सुक्ष्मताको जानते हैं (वा० ४।१८।२५)। यह आततायी-धमनका आदर्श है। इतना होनेपर भी उसके प्रार्थना करने-पर दया दिखाते हुए श्रीभगवान्‌—अपनी स्वाभाविक उदारतावश—उसे प्राण रखनेको कहते हैं। इससे बढ़कर क्या दया होगी ?

शत्रुके सहोदर भाई विभीषणको सबके मना करनेपर भी भगवान्‌ आश्रय देते हैं, इतना ही नहीं, उसे मित्र बनाकर लङ्काका राज्य भी दे डालते हैं, यह श्रीभगवान्‌की उच्चतम उदारता है। इसका परिणाम भी परमोत्तम होता है। यहाँपर श्रीभगवान्‌ने शरणागतको अभय देनेकी जो जोषणा की है वह भक्ति-भावके महावाक्य हैं। (वा० ६।१८।२२)

श्रीभगवान्‌ने समुद्रपर सेतु निर्माण करवा यहाँ श्री-शिवजीकी स्थापना की, इसका रहस्य यह है कि श्रीरामोपासक या अन्य देवोपासकको अपने इष्टकी प्राप्ति श्री-शिवजीकी कृपा बिना नहीं हो सकती, क्योंकि श्रीशिवजी जगद्गुरु हैं। श्रीमुखके वचन हैं—

जेहि पर कृपा न करहि पुरारी। सोन पाव पुनि भगति हमारी॥  
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देखहि॥

अठरठ एक गुप्त मत सबहि कहहुँ कर जोरि।  
संकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

इस तापस-भावमें श्रीभगवान्‌ने जगत्‌को यह उपदेश दिया कि 'जो पुरुष धर्मकी रक्षा और संसारका हित करना चाहता है उसे त्याग और कष्टोंको सहर्ष स्वीकार करना चाहिये। क्योंकि इनके बिना महत्‌ कार्य कभी सम्पन्न नहीं हो सकते।' इसमें आभ्यन्तरिक त्याग ही मुख्य है, बाह्य नहीं। श्रीभगवान्‌ने मुनिव्रतमें रहनेपर भी धर्म-रक्षाके लिये असुरोंका विनाश किया। इसी नीतिके अनुसार गीता-ज्ञानका भी बही परिणाम हुआ कि श्रीकृष्णको युद्धमें प्रवृत्त होकर अधर्ममें रत कौरव पक्षका विनाश करना पड़ा। निष्कामभावसे कर्तव्यका पालन अवश्य करना चाहिये। श्रीजानकीजीके मना करनेपर भी श्रीभगवान्‌ने असुरोंका ध्वंस करनेके संकल्पको नहीं छोड़ा और खरवृक्ष-से लेकर रावणतक असुरोंका ध्वंस किया। परन्तु मुनिव्रती भगवान्‌ने राजसोंके साथ आत्मरक्षाके लिये ही युद्ध किया था, उनको लुटने-खसोटनेके लिये नहीं! अपराधीपर ही अन्न-ग्रहण किया गया था। इसीसे रावणको यह संदेश भेजा गया था कि सीताको लौटा देनेपर दोष क्षमा कर दिया जायगा, परन्तु जब उसने नहीं माना, तभी चढ़ाई-की गयी।

इस तापस-भावमें सत्य और ब्रह्मचर्यका पालन भी प्रधान है। श्रीभगवान्‌का सत्य-पालन तो अनिवर्चनीय है ही, उनका एकपत्नी-व्रत और ब्रह्मचर्य भी प्रसिद्ध है (वा० ५।१५।२२)। शास्त्र कहता है कि 'जो गृहस्थ केवल सन्तानार्थ ऋतुकालमें यज्ञकी भाँति (कामासक्त होकर नहीं) की-समागम करता है वह ब्रह्मचारी ही है। श्रीभगवान्‌की किसीके साथ आसक्ति नहीं थी, यह भी ब्रह्मचर्यका मुख्य कारण है।

श्रीलक्ष्मणजीके ब्रह्मचर्यके तो क्या कहने हैं। प्रथम करनेके लिये प्रतिदिन श्रीसीताजीके सामने जानेपर भी उन्होंने उनके चरणोंके सिवा अन्य किसी भी अङ्गपर दृष्टिपात नहीं किया (वा० ४।६।२२)। वनमें सीता-त्यागके समय भी सीताके अङ्ग देखना अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मणजीके इस वर्णनसे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये

कि पुरुषको माता आदि पदमें बड़ी स्त्रियोंके चर्योंको छोड़कर अन्य किसी भी पर-स्त्रीका कोई भी अन्न कदापि नहीं देखना चाहिये ।

श्रीहनुमानजी वैदिक ब्रह्मचारी थे । जंगलमें रावणके महलमें रावणकी स्त्रियोंको विचका सोती हुई देखने पर भी उनका स्वाधीन मन रती भर भी विचलित नहीं हुआ (बा० २।११।४२-४३) । स्त्रीके दर्शनसे मनमें विकार हो जाना भी मैथुन है । अतएव ब्रह्मचर्यकी सिद्धिके लिये मनका ऐसा निग्रह होना चाहिये कि कारखवाश पर-स्त्रीके दर्शन, स्मरण, स्पर्श या भाषण आदि हो जानेपर भी उसमें कदापि विकार उत्पन्न न हो । श्रीहनुमानजी इसके आदर्श थे ।

श्रीसीताजी तो परम आदर्श पतिव्रता थीं । उन्होंने श्रीरामके पास जानेके लिये सेवक-श्रेष्ठ श्रीहनुमान्का भी अंग स्पर्श करना नहीं चाहा ।

वनमें प्रवासित होनेपर भी श्रीसीताजी चिन्तित नहीं हुई, प्रत्युत स्वामीको यह संदेशा कहलाया कि आप अपने भाइयोंके सदृशही पुरवासियोंकी रक्षा करें (बा० ७ । २८ । १४-१५) श्रीसीताजीने सोचा कि मेरी मिथ्या निन्दा करनेके कारण श्रीराम कहीं प्रजा पर रुष्ट न हो जायें । इस कथनसे श्रीसीताजीने अपने कष्टोंकी कुछ भी परवा न करके मिथ्यापवादी और दुःख देनेवाले लोगोंके प्रति कृपा और पतिकी प्रतिष्ठाके लिये परम उत्सुकताके दोनों ही उज्ज्वल भाव दिखलाये, जो सर्वथा आदर्श और अनुकरणीय हैं ।

इस भावका मुख्य भाग चित्रकूट है और उसका ध्यान यह है—

ध्यायेदाजानु बाहुं धृतशरधनुषं बद्धपञ्चासनस्थं,  
पीतं वासोवसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।  
वामाङ्गाकूट सीता मुखकमलमिलल्लोचनं नीरदामं,  
नानालङ्कारदीप्तं दधतमरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

### राज-भाव

यह श्रीराम-चतुष्टय अथवा पञ्चायतनका भाव है । इसमें राज्याभिषेकके बाद राज्यसिंहासन पर श्रीभगवान्,

वाममें श्रीसीताजी, पहले भागमें श्रीलक्ष्मण और सामने श्रीहनुमान्जीका ध्यान है । अथवा राजसिंहासनपर श्रीभगवान् और वामाङ्गमें श्रीजानकीजी हैं, श्रीहनुमान्जी चरख सेवा कर रहे हैं । श्रीलक्ष्मणजी दाहिनी ओर तथा श्री-भरतजी बाईं ओर हैं, बही पञ्चायतनका ध्यान है । श्रीभरतजीके साथ बायीं ओर शत्रुघ्नजीके रहनेसे यह पञ्चायतन हो जाता है । इस भावका स्थान श्रीअयोध्या है । इसमें सभी भावोंका समावेश है । राज्यारूढ़ होनेपर भी श्रीभगवान्का स्वभाव बालकोंसे भी अत्यन्त कोमल और सरल था । उन्होंने सदा ही आदर्श गृहस्थ ब्रह्मचारी-व्रतका पालन किया । इस भावमें श्रीभगवान्का सुन्दर वक्ष और अलङ्कारोंसे आच्छादित मनोहर रूप है, आदर्श धर्मपत्नी श्रीजानकीजी अर्धाङ्गिनी हैं । श्रीराम ऋषियोंसे वेदित, परम नम्र एवं दीनों पर अत्यन्त अनुकम्पा करनेवाले हैं, परम आशा-कारी तीनों भाई सेवामें रत हैं । परम सुरक्षित और पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट प्रजाका एकाधिपत्य है । राज्यमें आपव-विपदका एकान्त अभाव है । अयोध्याजी परम रमणीय हैं, जहाँ परम पुनीत और सौम्य सरयुजी बह रही हैं । श्रीहनुमान् आदि निष्काम दास सेवामें संलग्न हैं । ये सभी पवित्र और आदर्श सामग्रियाँ यहाँ वर्तमान हैं ।

लोकहितके लिये श्रीभगवान् दुराचारीको दण्ड देनेमें अवश्य ही कठोर थे, जिससे दुराचारीका भी हित होता था । राजाके लिये यह गुण उसकी परम शोभा है ।

स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षामें कभी कोई बाधा न आये, इसके लिये मिथ्यापवादपर भी आदर्श सती श्रीसीताजीका त्याग और सत्यकी रक्षाके लिये सेवा-परायण श्रीलक्ष्मणजीके त्यागका परमोज्ज्वल उदाहरण है । ब्रह्मचर्य, त्याग और सत्यका पालन महत्त्वपूर्ण है । अन्तमें श्रीभगवान्का लोकहितार्थ यज्ञ करना और तपस्वी व्रतका अवलम्बन करना क्या और वैराग्यसे परिपूर्ण है ।

भगवान् श्रीरामके आदर्श जीवनसे हम सबको लाभ उठाना चाहिये ।



## रामायणका रहस्य

( लेखक—स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी )



माययाका रहस्य है—मनको वशमें करके जीवन्मुक्ति प्राप्त करना। जड़ोंके दशानन राययाके बंधका तात्पर्य है—दस कुटुंबियोंका नाश करना। ये कुटुंबियाँ निम्नलिखित हैं—

१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मात्सर्य, ७ दम्भ,

८ ईर्ष्या, ९ राग और १० द्वेष।

पात्रोंमें श्रीसीताजीको 'मन', श्रीरामको 'मन्त्र', श्रीहनुमान्जीको 'सत्सङ्ग' और श्रीभरतजीको 'रथाग' समझना चाहिये।

सीताजीके अपने पति श्रीरामजीसे मिलनेका प्राध्यात्मिक अर्थ 'मनका मन्त्रमें लय कर देना' है। यह उसी समय सम्भव है जब कि हम राममें एकाग्र चित्त होकर उनका अनवरत ध्यान करें। यही रामायणकी गूढ़ शिक्षा है।

चित्तकी पूर्ण एकाग्रता एवं शुद्ध सात्विक भावनासे दो अक्षरवाले राम ( रा + म ) मन्त्रका सर्वदा आप करनेसे मन वशमें होता है। तदनन्तर समाधिनिष्ठा अर्थात् सर्वव्यापक रामके साथ तन्मयता हो जाती है। फिर विचारक तथा विचार्य, ज्ञाता तथा ज्ञेय, पूजक तथा पूज्य, उपासक तथा उपास्य सभी मिलकर एक हो जाते हैं। मन श्रीरामसे पूर्ण हो जाता है। यह 'अमर-कीट-न्याय' के अनुसार तदाकार, तद्रूप, तन्मय, तदीय एवं तल्लीन हो जाता है।

यह असिद्ध है कि हम जैसा विचार करेंगे वैसे ही बन जायेंगे। मन जिस वस्तुपर अधिक ध्यान रखता है वह वैसा ही बन जाता है। रामके ध्यानसे मन रामके साथ पूर्णभावको प्राप्त हो जाता है। उसकी हृद्धा जगद्गुरुपति-कलां रामकी चिरलेखामें विधीन हो जाती है। उस समय जीवत्त्वका कोप हो जाता है। जैसे कीट अमरके साथ रहने एवं उसका सतत ध्यान करनेसे अमरके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, ठीक वैसे ही, मन भी सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे रामरूप बन जाता है।

यह दो अक्षरोंका राम-मन्त्र सब मन्त्रोंमें सर्वोत्कृष्ट है। इसके दो कारण हैं। राममन्त्रकी रचना पञ्चाक्षर एवं अष्टाक्षर-मन्त्रोंके संघटनसे हुई है। 'रा' शब्द

'ॐ' नमो नारायणाय' से तथा 'म' शब्द 'ॐ' नमः शिवाय' से लिया गया है। अतः यह महान् शक्ति-सम्पन्न है। मन्त्र जितना छोटा होता है उससे उतनी ही अधिक चित्तकी एकाग्रता होती है। राम-मन्त्र बहुत छोटा है अतः इससे सरलतापूर्वक चित्तकी महान् एकाग्रता हो सकती है। पूजा, ध्यान अथवा श्रीराम-मन्त्रके आपसे मन वास्तवमें पूर्ण वस्तु श्रीरामके ही आकारका बन जाता है और लक्ष्यकी शुद्धताके कारण वह शुद्ध भी हो जाता है। सतत अभ्यासके द्वारा मन अन्य सब वस्तुओंको छोड़कर केवल अपने लक्ष्य एक श्रीरामसे ही परिपूर्ण हो जाता है। वह शुद्धतामें स्थिर हो जाता है फिर कभी अशुद्धताकी ओर नहीं भटकता। जबतक मनका अस्तित्व है, तबतक उसको कोई वस्तु अवश्य चाहिये। अतः साधनाका उद्देश्य मनके समस्त पवित्र वस्तुओंका उपस्थित करना है।

मन्त्र-आपके समय समरूपसे शब्दोंकी पुनरावृत्ति होनेके कारण ध्यानमें आपके अधिष्ठातृ देवताका आगमन होता है।

संस्कारके बलसे मन्त्रोंकी पुनरावृत्तिके कारण क्रियात्मक गतियाँ उत्पन्न होती हैं।

मन्त्रमें 'समकारपूर्ण' तेज अथवा शक्ति होती है। यह एक विशिष्ट विचार-धाराको प्रकाशित कर मायसिक तत्त्वमें परिवर्तन कर देता है। मन्त्र-आपसे तात्कालिक स्फुरण अथवा कम्पनका ( Rhythmical Vibrations ) प्रादुर्भाव होता है और इसीके द्वारा पञ्चकोशोंसे उत्पन्न दुष्का स्फुरण नियमित होता है। यही अन्यान्य वस्तुओंकी ओर आकृष्ट होनेवाले मनकी गतिका भी दबरोध करता है। जिस समय साधनाशक्ति अपूर्ण अथवा कठिनाइयोंसे अवरोध हो जाती है उस समय यह मन्त्र-शक्ति ही उसको बल प्रदान करती है। जिस समय मन्त्र-वैतन्य (प्रसुप्त चैतन्यता) जाग्रत होता है उस समय उसके द्वारा अलौकिक सिद्धियोंका उदय होता है।

राम-मन्त्रका अब तीन प्रकारका है, (१) मानसिक (२) उपांशु और (३) ओरसे उच्चारणपूर्वक। उच्चारणकी अवज्ञा उपांशु अब हजारगुणा तथा मानसिक अब करोड़गुणा अधिक शक्तिशाली है।

इस कलियुगमें हठ एवं राजयोगका अभ्यास असम्भव कठिन है। केवल एक भक्तिका मार्ग ही सबके लिये सर्वथा उपयुक्त है और यही सरल भी है। इसमें इष्टदेवतासे सहायता मिलती है। भगवन्नाम-जपका अधिकारी प्रत्येक मनुष्य है। मन्त्र-शक्तिके द्वारा साधना-शक्ति पुष्ट होती है। परमात्माकी प्रार्थना एवं उसका गुणगान प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। यह बहुत सुरक्षित मार्ग भी है। जिस समय भक्ति पूर्णतया परिष्कावस्थाको प्राप्त हो जाती है, उस समय ज्ञान अपने आप ही आ जाता है। भक्तिके द्वारा ही अधिकांश मनुष्योंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। हृदयके अन्तस्सलसे प्रार्थना कीजिये। शुद्ध भावसे राम-मन्त्रका सर्वथा जप कीजिये। राम-भक्तोंका सत्संग, रामायणका स्वाध्याय एवं नित्य कुछ व्रत श्रीराम-संकीर्तन कीजिये। ऐसा करनेसे आपको भी श्रीरामके दर्शन होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

#### राम-नाम संकीर्तन॥

राम राम राम राम राम राम रामने ।  
राम राम राम राम राम राम रामने ॥  
माधव गोविन्द हरि केशव हरि नारने ।  
नाद-गीत वेद-मन्त्र राम राम रामने ॥

यहाँपर राम-भक्तोंके संगके विषयमें कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। सत्संग मनुष्यके कार्यक्रमको उलट देता है। इसीके द्वारा विषय-संस्कार सात्त्विक संस्कारोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं तथा मनुष्यके हृदयमें सात्त्विक भावनाओंकी वृद्धिके कारण उसमें हृदय भक्तिका साम्राज्य हो जाता है। इसमें मनुष्यकी सांसारिक प्रवृत्तिको बदल देनेकी अद्भुत शक्ति है। गोस्वामी गुलसीदासजीने भी कहा है—  
बिनु सत्संग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुख न सोई ॥

\* कीर्तनकी यह धुन मद्रास-प्रान्तकी है। केवल महोदय मद्रास है। इसीसे यह लिखी गयी है। सम्पादक

## श्रीरामचन्द्रजीका अश्वमेध-यज्ञ और उसका महत्व ।

(लेखक—डा० आर० शाम शास्त्रीजी एम० ए०, पी एच० डी०, मैसोर)



जय, क्षत्रिय एवं वैश्योंके लिये जिन जिन कर्तव्योंके पालन करनेका आदेश दिया गया है उन सबमें विद्याके पश्चात् वैदिक यज्ञका महत्व सबसे अधिक है। क्षत्रियोंके लिये राजसूय, अश्वमेध तथा विश्वजित्—इन तीनों यज्ञोंका करना सबसे अधिक महत्त्व रखता है। अतः ऐसा सुना जाता है कि वेदोंकी शिक्षामें विश्वास तथा प्राचीन राजाओंके कार्योंका अनुसरण करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीने भी उपर्युक्त तीन यज्ञोंमेंसे अश्वमेध यज्ञ किया था।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'श्रीरामचन्द्रजीने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान क्यों किया? उनका उद्देश्य स्वर्गको प्राप्त कर वहाँके विशाल सुखोंका प्राप्त करना था या अपनी प्रजाका हित-चिन्तन अथवा साधारण मनुष्योंके लिये एक आदर्श उपस्थित कर उन्हें कर्मपथपर आलोकित करना था?

१३

इनमें स्वर्ग-प्राप्तिका उद्देश्य तो सम्भव नहीं, क्योंकि उस समय ऋषिगण कर्मकी अपेक्षा उपनिषदोंके ज्ञानकाण्डको अधिक महत्त्व देते थे। महर्षि भरद्वाज, गौतम तथा अन्य विशिष्ट साधु लोगोंके जीवनसे यह ज्ञात होता है कि वे वैदिक यज्ञोंके अनुष्ठानकी अपेक्षा तपस्यामें अधिक रत रहते थे। श्रीरामचन्द्रजीने किष्किन्धा और खंका जाते समय मार्गमें ऐसे अनेक साधुओंका संग किया था और स्वयं भी वे उपनिषदोंकी शिक्षासे पूर्ण परिचित थे। उपनिषदोंकी शिक्षा ग्रहण करनेमें असमर्थ लोगोंके सामने एक आदर्श उपस्थित कर उन्हें कर्ममें प्रवृत्त करना भी उनका उद्देश्य नहीं हो सकता। ऐसा होता तो बहुद्रव्य-साध्य अश्वमेध न करके उन्होंने अन्वान्य साधारण कर्मोंका अनुष्ठान किया होता। अतः यही सिद्ध होता है कि श्रीरामने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान अपनी स्थितिके उपयुक्त एवं विशेषतः प्रजाके हित-साधनार्थ किया। इस अनुष्ठानके द्वारा आर्थिक अभ्युदयरूप प्रजाहित करना ही प्रतीत होता है। प्रजाकी उन्नति एवं सुख स्पष्टतः दो

बातोंपर निर्भर हैं—(१) अनुकूल ऋतु तथा (२) उपार्जन करनेके लिये आवश्यक साधन। यज्ञ करनेका विचार इन दोनों बिषयोंको प्राप्त करना है। उस समय यह विश्वास किया जाता था कि साधारण स्वर्गीय देवताओंको सन्तुष्ट करनेसे अनुकूल ऋतुकी प्राप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त यज्ञके द्वारा मजदूरी, पुरस्कार एवं दानके रूपमें मजदूरों, सैनिकों, ऋत्विजों तथा भिक्षुओंको प्रचुर धन मिल जाता था, जिससे वे धनकी वृद्धि कर सकते थे।

उपयुक्त विषयकी पूर्णतया पुष्टि उन नियमोंसे हो जाती है जो कि काम्य यज्ञोंके सम्पादनके लिये बनाये गये हैं। वेदमें तीन प्रकारके कर्मोंका उल्लेख है। (१) नित्यकर्म—इसमें अर्थ-व्ययकी कोई बात नहीं है। (२) नैमित्तिक कर्म—इसमें थोड़ेसे धनकी आवश्यकता पड़ती है। (३) काम्य-कर्म—इसमें सोने एवं चाँदीका व्यय बहुत होता है। मनुके अनुसार तीनों उच्च वर्गोंको अपने एवं अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके निमित्त अल्पधन रखकर अपनी स्थितिके अनुसार शेष धनसे बहुव्ययसाध्य यज्ञोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है। यदि वे लोग अपने भरण-पोषणसे बचे हुए अधिक धनको यज्ञानुष्ठान अथवा अन्य पुण्य-कार्योंमें नहीं व्यय करते तो राजाका यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह उनके अवशिष्ट धनको जम्मा कर उन लोगोंको दे दे जो यज्ञ अथवा अन्य पुण्यकार्य करनेके योग्य हैं। निम्नवर्गके लोगोंका सञ्चित धन भी, जिसका किसी पुण्य-कार्यके निमित्त उपयोग नहीं होता था, जम्मा कर लिया जाता था और वह परोपकारके पुण्यकार्यमें लगा दिया जाता था। यह नियम प्रजाके लिये ही नहीं था, बल्कि राजा भी इस नियमके बन्धनसे मुक्त नहीं समझा जाता था। राजाका यह धर्म होता था कि वह किसी अर्जनशील कर्म अथवा शत्रुओंपर विजयप्राप्तिद्वारा धन संग्रह करके यज्ञानुष्ठान या अन्य पुण्य-कार्योंमें उसे लगा दे। काशिकासने रघुवंशके तृतीय सर्गमें इस विषयका बड़ा ही विशद वर्णन करते हुए कहा है कि दिल्लीप-पुत्र महाराजा रघुने विश्वजित्-यज्ञमें राजभवन-में अपने उपयोगके लिये कुछ मिट्टीके बर्तनोंको ढाँककर शेष सोना चाँदी आदि सर्वस्व दान दे दिया था। इस दानसे जब रघु सर्वथा धनहीन हो गये तब उनके पास एक कौत्स नामक बिहान् ब्रह्मचारी अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये धन माँगने आये थे। कहा जाता है कि ऐसी अवस्थामें रघुने ऋषिकुमार कौत्सको सन्तुष्ट करनेके लिये धनपति

कुबेरसे धन प्राप्त किया था। भारतीय इतिहासके विद्यार्थियोंसे यह दात झिपी नहीं है कि महाभाग्यके रचयिता महर्षि पतञ्जलिके समयमें राजा पुण्यमित्रने अश्वमेध-यज्ञ किया था जिसमें उन्होंने मनु आदि स्मृतियोंके नियमानुसार समस्त अवशेष महान् धनराशिका वितरण कर दिया था।

यद्यपि देखनेमें तो यह एक धार्मिक नियम जान पड़ता है किन्तु वास्तवमें है यह आर्थिक। इस नियमका निर्माण बड़ी बुद्धिमत्तासे किया गया है। इसके उपयोगसे सभी लोगोंके पास बराबर बराबर धन बँट जाता है। प्रत्येक मनुष्यमें किसी विषयको सीखने एवं उपार्जन करनेके लिये आन्तरिक शक्ति भिन्न भिन्न होती है। चाहे इसका कारण पैतृक हो या पूर्व जन्मके प्रारब्ध-कर्म हों। कुछ लोगोंमें अमुक धनराशि-उपार्जन करनेकी अद्भुत शक्ति होती है। साथ ही वह भी देखा जाता है कि दस व्यक्तियोंमेंसे नौ ऐसे होते हैं जिनको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति न कर सकनेके कारण दारुण दुःखोंका शिकार बनना पड़ता है। यही लोगोंका भाग्य है।

प्राचीन भारतमें हमें सदाचारपूर्ण मितव्ययिताके तीन विभिन्न आदर्श मिलते हैं। मीमांसकगण कहते हैं कि सदाचारसे उपार्जन किये हुए धनद्वारा यज्ञ करनेकी आवश्यकताके सम्बन्धमें वैदिक आश्रमाका पालन करना मनुष्य-का धर्म है। उनके मतानुसार आज्ञा ही धर्म कहलाता है। वैदिक कार्योंमें वैदिक आज्ञा और सामाजिक कार्योंमें सामाजिक आज्ञा या नियम ही उपयुक्त हैं। वैदिक ग्रन्थोंमें अथवा कौकिक उपदेशों एवं लेखोंमें जिस कार्यके लिये आज्ञा दी गयी हो, उसीको धर्म समझना चाहिये। इसके अनुसार जो मनुष्य वेदोक्त उपदेश अथवा अपनी जातिकी रीति-नीतिके अनुसार कार्य करता है वह नैतिक मर्यादाके भीतर ही है। इस नियमके अनुसार एक बुद्धिमान् पुरुष मनमाना धन कमाकर अपनी इच्छानुसार धार्मिक एवं पुण्यके कार्योंमें व्यय कर सकता है। इसीलिये स्मृतिकारोंने यह नियम बनानेकी आवश्यकता समझी कि प्रत्येक मनुष्यको अपने पास उतना ही धन रखना चाहिये जो तीन वर्षके उसके अपने एवं कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये पर्याप्त हो। इससे अधिक रखना न्याय-विरुद्ध था। कुछ स्मृतियोंमें तो तीन वर्षकी जगह तीन महीनेकी ही अवधि बतलायी है। इस नियमको अव्यवहारिक समझकर श्रीमन्नगवद्गीता एवं

अन्य ग्रन्थोंमें निष्काम भावसे धार्मिक तथा लौकिक कार्य करनेके लिये आज्ञा दी गयी है। मनुष्यको कर्म अथवा करना चाहिये किन्तु करना चाहिये फलकी कामनाको त्याग कर। सदाचारपूर्ण मितव्ययिताकी स्पष्ट व्याख्या श्रीमद्भागवतके ७ वें स्कन्धके चौदहवें अध्यायमें की गयी है। वहाँ महाराज युधिष्ठिर एवं श्रीनारदजीका संवाद है।

श्रीनारदजीने कहा है कि मैं जिस सिद्धान्त (सदाचार-पूर्ण मितव्ययिता) के सम्बन्धमें तुमसे कहता हूँ वह अजागर ऋषिने प्राचीन कालमें भक्त प्रह्लादको बतलाया था। संवाद इसप्रकार है—

युधिष्ठिर—हे देवर्षि ! मुझे उस पथका निर्देश कीजिये जिसको ऋषि अजागरने मेरे सद्यः गृहस्थके कर्तव्योंसे अनभिज्ञ मनुष्यको उच्चपदकी प्राप्तिके निमित्त बतलाया है।

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाजसा।

याति देवक्रमे । ब्रूहि मादशो गृहमूढधीः ॥

( भागवत ७।१४।१ )

नारद—हे राजन् ! प्रत्येक गृहस्थको प्रभु नारायणकी प्रसन्नताके लिये अन्य किसी भी फलकी इच्छा न रखकर महर्षियोंकी सेवा करनी चाहिये। धनोपाजनके निमित्त कार्य करते हुए प्रत्येक मनुष्यको समझ रखना चाहिये कि उसे उतना ही धन अपने पास रखना उचित है जितना उसकी उदर-पूर्तिके लिये पर्याप्त हो। जो इससे अधिक धन रखनेकी इच्छा करता है वह चोर है।

‘अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।’

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दू समस्त लौकिक कर्म अपने स्वार्थके लिये न करके केवल समाज-हितके उद्देश्यसे ही किया करते थे।

सदाचारपूर्ण मितव्ययिताके जाननेवाले अद्वैतवादियोंकी दृष्टिसे संसार तथा सांसारिक कार्योंका संन्यास ही सबसे उत्कृष्ट धर्म है। जैनों तथा बौद्धोंने भी संन्यासको ही मनुष्यका सर्वप्रधान कर्तव्य बतलाया है।

यदि किसी मनुष्यको इसप्रकारकी शिक्षा न मिली हो जिसके कारण वह कुमार्गी और आकर्षित हुए बिना ही अपने

मन एवं इन्द्रियोंको बशमें रखकर संसारका त्याग न कर सके, तो वह चाहे राजा हो या रक्ष, उसे अपने कर्मोंका फल समाज-के हितार्थ उत्सर्ग कर देना चाहिये। प्राचीन भारतके राजा तथा समृद्ध पुरुष अपना सञ्चित धन, कर्मके इसी सिद्धान्तके अनुसार, यज्ञानुष्ठान एवं अन्यान्य पुण्य-कार्योंमें लगाया करते थे।

मगबाधू रामचन्द्रजीने जट्टासे झूटकर देखा कि साधु आता भारतके मितव्ययितायुक्त राजप्रबन्धसे राजकीय कोष धनसे पूर्ण है, तब उन्होंने उस सञ्चित धनको अपने सुखके निमित्त खर्च करने अथवा अन्धाधुन्व छुटा देनेकी अपेक्षा एक वैदिक यज्ञका अनुष्ठान कर उसीमें उत्सर्ग कर देना उचित समझा। उनके यज्ञानुष्ठानका उद्देश्य केवल लोगोंके सामने आत्म-त्यागका एक जीता-जागता आदर्श रखना तथा निष्काम कर्मके सिद्धान्तमें अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करना था।

लोगोंकी विभिन्न क्रियाओंको नियमितरूपसे चलाने तथा प्रत्येक व्यक्तिकी नैतिकताकी रक्षा करनेके लिये भारतवर्षके प्राचीन ऋषियोंने तीन नियमोंकी रचना की थी ( १ ) वैदिक अथवा सामाजिक आज्ञाके अनुसार कर्म ( २ ) निष्काम भावसे किये जानेवाले कर्म, और ( ३ ) कर्म एवं संसार दोनोंका त्याग।

इस प्रकारके सदाचारके नियम लोगोंके आर्थिक एवं राजनैतिक जीवनको ऐसे साँचेमें ढाल देते थे जिससे मनुष्य-जातिका कल्याण होता था। अनहङ्कारता ही इन नियमोंका तत्त्व था और किसी भी मनुष्यको अपने मानसिक एवं शारीरिक सुखोंके लिये द्रव्य-भ्रम्य करनेकी स्वतन्त्रता नहीं थी।

अतः श्रीरामचन्द्रजीने जिस अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया, वह एक बहुमूल्य-साध्य धार्मिक कार्य था, जिसका अनुष्ठान किसी स्वार्थके लिये नहीं अपितु सर्व-साधारणके कल्याणार्थ किया गया था। इसीप्रकारके इन्हीं निष्काम कर्मोंके प्रभावसे उन्होंने राजर्षिका पद प्राप्त किया। श्रीरामचन्द्रजीके सामने रघु, जनक तथा अन्य राजर्षियोंके उदाहरण उपस्थित थे। उनका जीवन देवताओं तथा मनुष्योंकी भलाईके लिये था, अपने लिये नहीं।



## रामायणमें आदर्श गृहस्थ

( लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण )

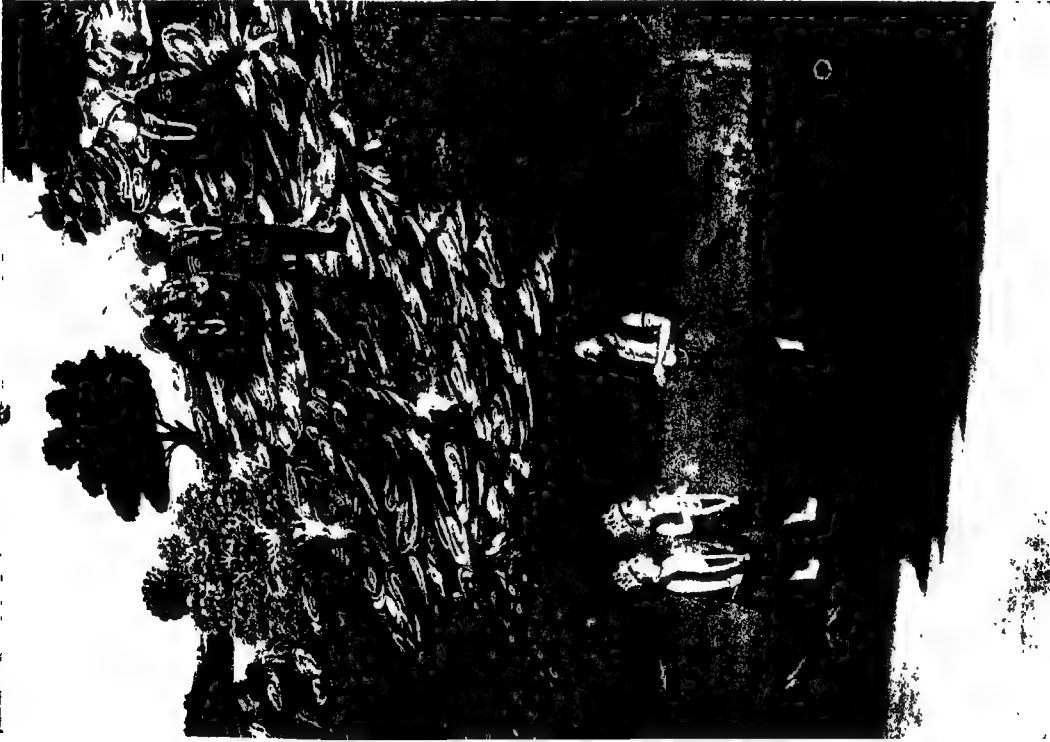


त्म-स्वरूपकी सम्यक् उपलब्धि किये बिना इस संसारमें कोई भी सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवनमें स्थिति और उन्नति नहीं कर सकता। यह सिद्धान्त जैसे व्यक्तिके लिये असंख्यनीय सत्य है, जातिके लिये भी वैसे ही अनुपेक्षणीय जाव्यवस्थमान सत्य है। व्यक्ति और जातिके इस आत्म-स्वरूपकी अनुभूति आजकल भारतमें क्रमशः क्षीयावधि क्षीयतर होती चली जा रही है और इसीके परिणामस्वरूप आज हम अपनेको भुलाकर, 'हमारे आत्माका स्वरूप क्या है? हमारी जीवनी-शक्ति कहाँ है? और हमारे जीवन-संप्रभामें विजय पूर्व भी प्राप्त करनेका असाधारण साधन क्या है? इन बातोंकी खोजके लिये हम पाश्चात्य सभ्यताका अनुकरण करनेके निमित्त व्याकुल होकर भटक रहे हैं, पद-पदपर व्यर्थसंकल्प होकर देश विदेशमें अपमानित और क्षान्धित हो रहे हैं। जीवन भाररूप हो रहा है, और मोहमयी आशाका क्षीण प्रकाश भी क्रमशः अन्धकारके रूपमें परिणत होता जा रहा है। इस सर्वतोमुखी विपत्तिके काल कबलसे छूटनेका जो सर्वप्रधान साधन है उसीका नाम है 'रामायण'। सनातनधर्मी हिन्दूके आत्मस्वरूपको पहचाननेके लिये प्रत्येक हिन्दूको रामायणका पाठ करना ही होगा। वेद, श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र, महाभारत, पुराण, तन्त्र, ज्योतिष, काव्य और नाटक आदिमें जिसका विस्तार है, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा और वेदान्तमें जिसकी अत्यन्त कठिनतासे समझमें आनेवाले पारिभाषिक शब्दोंके द्वारा अलोचना की गयी है, हिन्दू-धर्मके उसी भूमात्म तत्त्वको सरल भाषामें विविध रसोंकी सहायतासे सबके मनःप्राप्तको प्रभावितकर, जीवनके अनुभवोंके साथ मिश्रित कर और आनन्दमय आत्मादानके योग्य बनाकर रामायण हिन्दुओंके जातीय जीवनके संगठनका सर्वप्रधान साधन बन गयी है। यह रामायण ही हमारे विश्वज्ञ और उद्देश्यहीन जातीयजीवनको फिरसे संगठित करेगी। यही विश्वास और यही आशा आज भी देशके सनातनधर्मी नेताओंको उनके गन्तव्य-पथमें पूर्ण सहायता दे रही है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि भविष्यत्में यह विश्वास ही हमारी समस्त संगठन-शक्तियोंका केन्द्र-स्थान बनेगा।

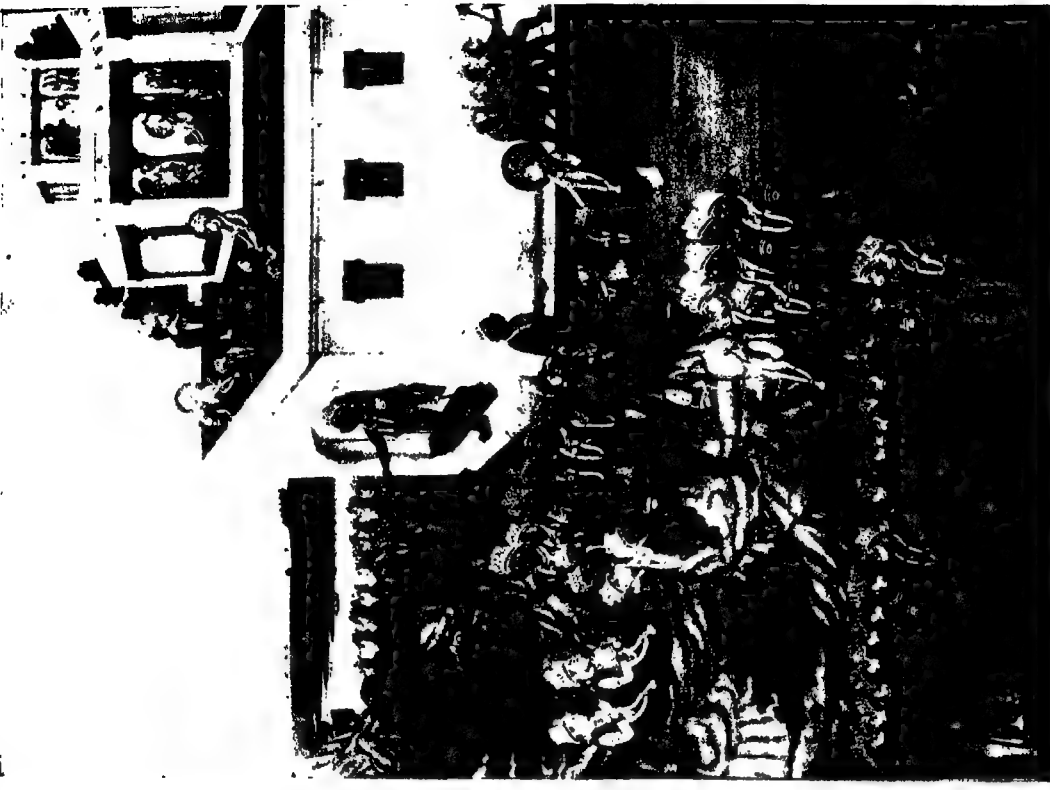
गृहस्थ-जीवन ही जातिके इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदयका अनिवार्य साधन है। इस गृहस्थ-जीवनकी धर्मके उपर स्थापना करना और व्यक्तिगत भोग-कामना-रूपी पिशाचिनीके काल गालसे मुक्तकर इसको ऐसा बना देना कि जिससे घर घरमें शिवेक, आत्म-त्याग, प्रसाद, शान्ति और कर्तव्यपरायणताके अखण्ड सुधासागरकी आनन्दमयी बाढ़ आ जाय। महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत रामायणका मूल उद्देश्य यही है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये निष्कलंक महान् आदर्शोंकी बड़ी भारी आवश्यकता थी। मर्यादा महापुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्र भारतीय आदर्शोंमें सर्व-शिरोमणि हैं, अतएव आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने उन्हींको नायक बनाकर कवि-कल्पनाके सर्वोच्च और सर्वोत्तम कीर्ति-सम्भरूप जिस महाकाव्य रामायणकी रचना की है, उसकी तुलना जगत्में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। सारे हिन्दू-भारतमें अनेक युगोंसे विद्वान् साधुओंका यही स्थिर सिद्धान्त है और यह अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता कि इस सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा अखण्ड सत्यके आधारपर हुई है।

हिन्दूका गृहस्थाश्रम आनन्द, सरलता, त्याग, परार्थ-परता और विश्व-प्रेमका लीला-निकेतन है। इस आश्रमकी सफलतापर ही प्रज्ञाचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासकी पूर्णता अवलम्बित है। इसके विपरीत इस आश्रमकी असफलता ही शेष तीनों आश्रमोंकी असफलताका कारण है। जिस दिनसे हिन्दूजातिने इस सत्यको भुलाना आरम्भ किया उसी दिनसे उसका अधःपतन होने लगा। इस गृहस्थाश्रमके सर्वाङ्गसुन्दर सरस चित्रको प्रत्येक हिन्दूके घरमें सुप्रतिष्ठित करनेके लिये ही महर्षि वाल्मीकिने युग-युगान्त-व्यापिनी कठोर तपस्या की थी। उसी तपस्याके अमृत फलका नाम है 'रामायण'। जिन मर्यादापुरुषोत्तमका आश्रय पाकर इस गृहस्थ-धर्मके समस्त अंग असाधारण पूर्णताको प्राप्त होकर सजीव हो उठते हैं, उसी मर्यादा-पुरुषोत्तमकी खोजमें सारा जीवन तपस्यामें बितानेकर अन्न-इवयसे जीवन-सम्भारपर उपनीत महाकवि वाल्मीकि आत्मशक्तिके अद्वितीय होकर



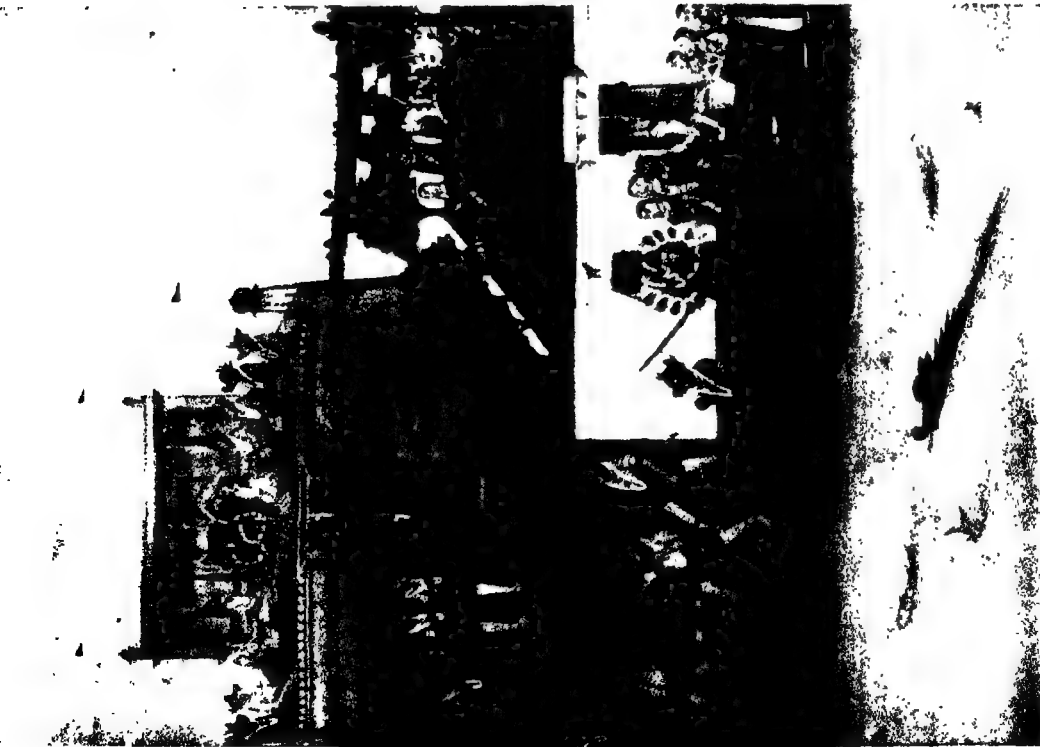
### ऋष्यमृक पर रामजी

विप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ । साथ नाइ पृछत अस भयऊ ॥



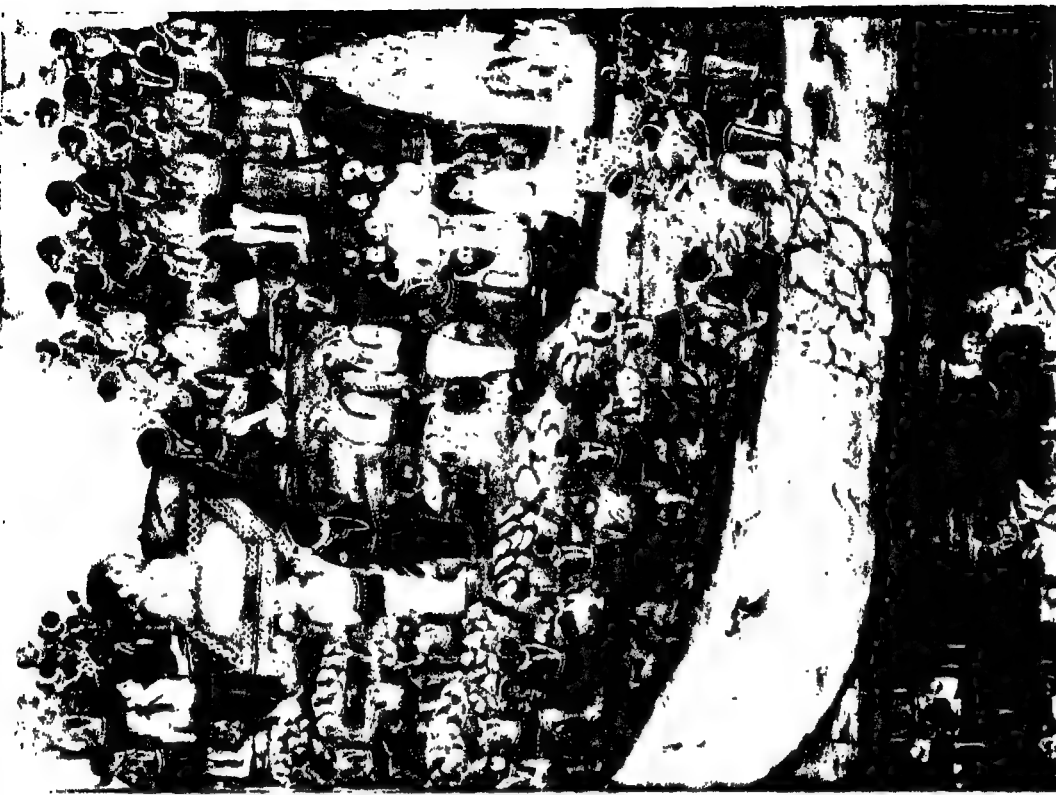
### किष्किन्धा में लक्ष्मणजी

तारा सहित जाइ हनुमाना । बरन बंदि ग्रभु सुजसु बलाना ॥



### अशोक-वाटिकामें रावण ।

नेहि अवसर रावनु तहें अवा मंग नाहि बहु किण, चनावा ।



### सेतु-बन्धन ।

मंग विमाल अनि कणि देहां । कंदुक इव नल नील ते लेहां ॥

रोते हुए पूर्णमानवताके एकनिष्ठ सेवक महर्षि नारदकी शरण्य होकर उनसे पूजने लगे—

कोन्नस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।  
चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ॥  
आत्मवान्को जितक्रोधो धृतिमान्कोऽनसूयकः ।  
कस्य विन्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥  
पतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।  
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञानुमेवंविधं नरम् ॥

( बा० रा० १।१ )

‘हे महर्षे ! इस समय इस भूमण्डलपर ऐसा कौन पुरुष है जो पुरुषोचित समस्त गुणोंका आचार हो, बल और चरित्रसे सम्पन्न हो, प्राणीमात्रका हितकारी हो, इन्द्रिय-विजयी, जितक्रोधी और तेजस्वी हो एवं जो किसीके प्रति असूया न करता हो तथा युद्धक्षेत्रमें जिसके रोषको देखकर देवता भी डरते हों। यदि ऐसे कोई महापुरुष हों तो आप उन्हें जानते होंगे। मैं अत्यन्त कौतूहलसे उनकी बातें सुनना चाहता हूँ।’

मर्यादा-पुरुषोत्तमके अनुसन्धानमें व्याकुल तपःविजट महर्षि वास्मीकिके द्वारा इस प्रकारके गवीन विश्व-हितकर प्रश्नको सुन देवर्षि नारदने जो कुछ कहा था, सो इसप्रकार है—

बहवो दुर्लभाश्चैव यं त्वया कीर्तिता गुणाः ।  
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥  
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।  
नियतात्मा महावीर्यो धृतिमान्धृतिमान् वशी ॥  
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमान्छत्रुनिबर्हणः ।  
आजानुबाहुः सुशिराः सुखलाटः सुविक्रमः ॥  
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।  
पीनवक्त्रा विशालाक्षो लक्ष्मीवान्छुभलक्षणः ॥  
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।  
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्विदयः समाधिमान् ॥  
प्रजापतिसमः श्रीमान्घाता रिपुनिबूदनः ।  
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥  
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।  
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिमानवान् ।  
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनप्रताप विचक्षणः ॥  
सर्वदाभिमतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।  
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥  
स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः ।  
समुद्र इव गाम्भीर्यं धैर्येण हिमवानिव ॥  
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।  
कालाग्रिसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥  
धनदेन समस्तलोके सत्ये धर्म इवापरः ।

( बा० रा० १।१।७ से १९ )

‘हे मुने ! आपने जिन अति दुर्लभ गुणोंका नाम लिया है उन सब गुणोंसे युक्त एक पुरुष है, मैं विशेष-रूपसे समझकर उनके सम्बन्धमें आपको बतलाता हूँ, ज्ञान देकर सुनिये। उनकी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पत्ति हुई है और वे रामनामसे सबमें प्रसिद्ध हैं। वे महावीर होनेपर भी जितेन्द्रिय हैं, धृतिमान् हैं, धीर हैं और मनको वशमें किये हुए हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिपरायण, वक्ता, बड़े ही सुन्दर और अपने शत्रुओंको परास्त करनेवाले हैं। उनकी सुजायें जानुतक लम्बी हैं, सुन्दर सिर है, प्रशस्त खलाट है और उनका पदविन्यास अत्यन्त मनोहर है। उनके सभी अंग सुसंगठित और सुविभक्त हैं। शरीरकी कान्ति नेत्रोंको स्निग्ध करनेवाली है। वे प्रतापी हैं। उनका वक्त्रःस्थल विशाल है, आँखें बड़ी बड़ी हैं, वे अत्यन्त सौन्दर्यशाली और शुभ लक्षण-सम्पन्न हैं, वे धर्मके रहस्यको जाननेवाले और सत्यपरायण हैं। प्रजाका हित करना ही उनके जीवनका प्रधान कार्य है। वे यशस्वी, पूर्ण ज्ञानी, शुद्ध और साधुओंके वशीभूत हैं, वे समाधि-सम्पन्न, प्रजापतिकी भाँति सबैव शुभ कार्योंके विधाता और शत्रुओंका दमन करने वाले हैं। वे प्राणिनोंके और समस्त धर्मोंके रक्षक हैं, अपने धर्मकी और स्वजन बान्धवोंकी रक्षा करनेवाले हैं। वे समस्त वेदवेदाङ्गोंके रहस्यको जाननेवाले हैं और धनुर्वेदमें भी पूर्ण प्रवीण हैं। वे सब शास्त्रोंके गूढ़ तत्त्वको पूर्णरूपसे जानते हैं। उन्हें किसी विषयकी विस्मृति नहीं होती। वे असाधारण प्रतिभावाले हैं। सबके प्रिय और साधु प्रकृति हैं। झीन नहीं हैं, साधु लोग उनसे प्यार करते हैं। वे बुद्धिमान् हैं और सभीके सम्मान्य हैं। जिस तरह समुद्र नदियोंमें प्रधान है उसी प्रकार वे भी सबमें प्रधान हैं। वे सबके

साथ समान भावसे व्यवहार करते हैं। सर्वदा प्रियदर्शन हैं। समुद्रके समान गम्भीर और हिमालयके समान धीर हैं। साक्षात् विष्णुके समान पराक्रमी और चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर हैं। क्रोधमें वे प्रलयकालकी अग्निके समान और जमानमें पृथ्वीके समान हैं तथा त्यागमें कुबेरके समान और सत्यमें तो साक्षात् धर्म ही हैं।'

उपयुक्त श्लोकोंमें जो कुछ कहा गया है वही समस्त रामायणका बीज है। सातों काण्डोंमें इन्हीं सब दुर्लभ गुणोंसे सम्पन्न महावापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके त्रिलोकपावन-चरित्रोंकी विचित्र घटनाओंका वर्णन है। इस वर्णनके वैचित्र्य और माधुर्यसे आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने रामायण-में जिस उच्चाल भाव-तरङ्ग-माखा-संकुल अगाध-रस समुद्रकी सृष्टि की है, उसीके तरंग-विक्षिप्त कणोंके कमनीय स्पर्शसे आज भी भारतके असंख्य नर-नारियोंके संसार-ताप-दग्ध हृदय शीतल होते हैं, नेत्रोंमें प्रेमाशुओंकी बाढ़ आ जाती है, शोक, ताप और वारिद्र्यसे विबुध आत्मामें नवीन निःस्वायं कर्तव्यमिहाका विमल प्रवाह बहने लगता है।

वाल्मीकिने बाढ़ भी भारतमें बड़े बड़े महाकवि हो गये हैं, और श्रीरामके चरित्रका अवलम्बन कर अपनी असाधारण कवित्व-शक्ति और अलौकिक सृष्टि-निपुणताके द्वारा सङ्क्षिप्त समाजको आश्चर्यसे पुलकित कर रहे हैं। यह बात जितनी उज्ज्वल सत्य है, इसकी अपेक्षा अधिकतर आज्ञाव्य-मान सत्य यह है कि इन समस्त पूर्ववर्ती महाकवियोंमेंसे किसीने श्रीरामायण-वर्णित चरित्रोंकी छायाका अनुकरण करनेके सिवा कुछ भी नवीन रचना नहीं की। महाकविके

रामायणरूप मन्दन-काननमें जो अनन्त सुरमित पुष्प-समुदाय खिले हुए हैं, उसीमेंसे चुन चुनकर कुछ कुसुमोंका संग्रह करके राजशेखर, काञ्चिदास, भक्तभूति, जयदेव और मुरारि आदि अगणित मालाकाररूप महाकवियोंने एक एक सुन्दर नवीन हार गुंथ दिया है, इन हारोंमें नाना रस और नाना प्रकारके सुगन्धिवाले पुष्पोंके समावेशकी शैलीमें उत्कृष्ट तारतम्य होनेके कारण उनके काव्योंकी सुन्दरतामें तारतम्य होखता है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि मूल चरित्रके अङ्कित करनेमें इनकी कोई विशेष कृति नहीं है।

गृहस्थके सामाजिक सुलोंके लिये जो कुछ स्वाभाविक साधन हैं, महर्षि वाल्मीकिने उन सभीको एक रामचरित्रका प्रधानरूपसे अवलम्बन करके, अपनी रामायणमें सुन्दर और निष्कपट भावसे विकसित कर दिया है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श मित्र, आदर्श सहचर, आदर्श अनुचर, आदर्श मन्त्री, आदर्श पुरोहित, आदर्श सेवक और आदर्श पड़ोसी आदि हिन्दू-गृहस्थ-जीवनके सभी सार-साधनोंसे महाकवि वाल्मीकिने साधना-सृष्ट आदर्श-गृहस्थ अपरिमितरूपसे नित्य परिपूर्ण है। इस आदर्श हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आनन्द न छोड़ आज जो हिन्दू पाश्चात्य गृहस्थ-जीवनके अनुकरणमें प्रवृत्त है, इस पुच्छ भारतमें उसके लिये गृहस्थाश्रमके पालनकी चेष्टा विवशनाके सिवा और क्या हो सकती है? हिन्दू जातीय-जीवनके सार-सर्वस्व रामायणका यथार्थ रस त्रिताप-तप्त वर्तमान हिन्दूसमाजपर विशेषरूपसे बरसानेके लिये 'कल्याण' के सञ्चालकोंने 'रामायणाङ्क' निकालनेका जो यत्न किया है, इसके लिये वे प्रत्येक हिन्दू-हृदयसे कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद प्राप्त करनेके पात्र हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

## खड्ग राम नाम है

रावण निशङ्कपर धीर रघुवीर जिमि

कौरव-कठोरन पै पार्य बलवाम है ॥ १ ॥

काली महिषेश हेतु भीम जरासन्धपर

घोर बलशाली नाम कालीपर दयाम है ॥ २ ॥

कुम्भज जलेशपर चक्र शिशुपाल शीश

दानव विदारनको अञ्जनी ललाम है ॥ ३ ॥

पाप तम पुञ्ज सबै नास्त दिनेश जिमि

त्रास बमदूतनको खड्ग रामनाम है ॥ ४ ॥

गोविन्दराम अग्रवाक

# हिन्दू समाज पर रामपूजाका प्रभाव

( लेखक—स्वामीजी श्रीदयानन्दजी )



रीर, मन, और प्राणसे पूज्यपुरुषमें लक्ष्मी होकर क्रमशः तद्गुण-प्राप्ति, तदाकारभाव और तद्रूपताकी सिद्धि ही पूजाका क्रमोन्नत लक्ष्य है। अतः मानवको पूज्य मानव तथा गृहस्थको आदर्श गृहस्थ बनानेके लिये इस युगमें श्रीराम-पूजा ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है। ऐसा पूज्य मनुष्य कौन है, जिसके आदर्शको देखकर प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवनको पूज्य जीवन बना सकता है तथा प्रत्येक चरित्र अपने राजधर्मके पूर्वानुष्ठानद्वारा लोक-परलोकमें कृतकृत्य हो सकता है। महामुनि वाल्मीकिने इसप्रकार प्रशस्ति देनेपर देवर्षि नारदने श्रीभगवान् रामचन्द्रको ही ऐसे पूज्यमानवके आदर्शरूपसे वर्णन किया था।

श्रीरामचन्द्र संयतात्मा, महावीर्यवान्, कान्तिमान्, धृतिमान्, जितेन्द्रिय, समुद्रतुल्य गम्भीर, हिमालयतुल्य घोर, विष्णुतुल्य वीर्ययुक्त, चन्द्रतुल्य प्रियदर्शन, कालाभि-तुल्य रणतेजयुक्त, पृथिवीतुल्य समायुक्त, कुबेरतुल्य धनदाता, धर्मराजतुल्य सत्यव्रत, कर्तव्यपालनमें अश्रुतुल्य कठोर, स्वभावतः कुसुमसे भी कोमल—इत्यादि सभी आदर्श-गुण एक ही साथ श्रीभगवान् रामचन्द्रमें प्रकट होनेके कारण ही वे पूज्य आदर्श पुरुष माने जाते हैं और उनकी हार्दिक पूजाद्वारा उपासक क्रमशः उनमें तन्मय होकर उनकी अलौकिक गुणावलीका लाभ कर सकते हैं। यही हिन्दू-समाज पर श्रीरामपूजाका परम प्रभाव है।

अब इन अलौकिक गुणों पर कुछ विवेचन किया जाता है। श्रीरामचन्द्र एकाकी ही पूर्वावतार नहीं थे। चारों भाई मिलकर पूज्य थे। यही वाल्मीकि रामायणमें प्रमाण है।

कौसल्याजनमद्रागं दिव्यलक्षणसंयुतम् ।  
विष्णोरर्धं महामागं पुत्रमैकवाकुनन्दनम् ॥  
भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।  
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥  
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ ।  
वीरौ सर्वलोकशुलौ विष्णोरर्धसम्मित्रौ ॥

( बा० १।१८ )

अवतार-विवेचनमें श्रीरामचन्द्र भगवान् विष्णु के अर्धांश, भरत चतुर्थांश तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न प्रत्येक अष्टमांश थे। चारों मिलकर पूज्य थे। गृहस्थाश्रममें सम्मिलित रहना, एकप्राण एक-हृदय रहना ही पूज्यता तथा गार्हस्थ्य-सुख-शान्तिका लक्ष्य है, यही सत्य आदर्श इस अवतार-रहस्यके द्वारा प्रकट हुआ है। क्या उपासक इस रहस्यको रामपूजा द्वारा इष्टपञ्चम करके गृहस्थाश्रममें आतृप्रेमका उच्च आदर्श स्थापन न करेंगे? 'विदारयन्ति कुलमिति दाराः' स्त्री भाई भाईमें कलह कराकर कुलको फोड़फाड़ देती है, इसी लिये संस्कृत-भाषामें स्त्रीको 'दारा' कहा जाता है। किन्तु चारोंके मिलकर पूज्य होनेके कारण 'दारा' शब्दकी यह चरितार्थता रामगृहमें कदापि नहीं हुई थी। यह सभी लोग जानते हैं कि श्रीरामचन्द्र सीताकी अपेक्षा भाई लक्ष्मणपर अधिक प्रेम करते थे। इसी कारण शक्ति-शैल-सूचित लक्ष्मण-के लिये सकल विद्याप करते हुए श्रीरामचन्द्रने कहा था—

शक्या सीतासमा नादी मर्त्यलोके विचिन्विता ।

न लक्ष्मणसमो आता सचिवः सम्परायिकः ॥

परित्यक्त्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम् ।

यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥

'संसारमें सीता-सदृश स्त्री मिल सकती है। किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई नहीं मिल सकता। यदि लक्ष्मणके प्राण न रहे तो मैं भी प्राण त्याग दूँगा।' इस बातको श्रीरामचन्द्रजी-ने सार्थक, करके भी दिखा दिया। प्रजापतिस्वरूप श्रीराम-चन्द्र प्रजारजनके लिये निर्दोष सहधर्मिणी सीताको वनवास देकर भी जीवित थे, किन्तु दैवकारणसे अब भाई लक्ष्मणको उन्हें परित्याग करना पड़ा तो फिर श्रीरामचन्द्र जीवन धारण न कर सके और लक्ष्मण-वर्जनके कुछ ही दिनों बाद आपने अपनी लीला संवरण कर ली। उनके जीवनमें पत्नी-प्रेम, आतृप्रेम आदि सब प्रेमोंसे धर्मप्रेम विशेष रूपसे था, इसका भी अवलम्ब प्रमाण उन्हींके इन शब्दोंसे प्राप्त होता है—

विसर्जये त्वां सौमित्रे मामूद्धर्मविपर्ययः ।

'तुम मेरे अति प्रिय होनेपर भी धर्मके लिये मैं तुम्हें परित्याग करता हूँ।' क्या रामोपासक रामपूजाके द्वारा इस अलौकिक शिक्षाका लाभ नहीं कर सकेंगे?

भगवान् श्रीरामचन्द्र किसके मित्र नहीं थे ? वे नरके मित्र थे, बानरके मित्र थे, देवताके मित्र थे, राक्षसके मित्र थे, प्रेतके मित्र थे, भीलके मित्र थे, चारुवालके मित्र थे, निषादके मित्र थे, महाहके मित्र थे, कोलके मित्र थे और किरातके मित्र थे। सभीके मित्र होने पर भी वे अपनी पूणं मर्यादापर पूणं प्रतिष्ठित थे। वर्षाअम मर्यादाका उल्लङ्घन जरा भी नहीं करते थे। भगवद्गीताके सिद्धान्तानुसार 'ब्राह्मणे गवि हस्तिनी शुनि वैव स्वपाके च' अभिन्न ब्राह्मणके विचारसे 'समदर्शी' थे किन्तु 'समवर्ती' नहीं थे। कठोर परशुरामके प्रति उनकी उक्ति द्वारा यह स्पष्ट प्रमाणित है।

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।

तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥

( बा० रा० १।७६।६ )

'आप ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय हूँ, इस कारण मैं आपके ऊपर अश्रमहार नहीं कर सकता।'

अबोध पक्षपाती मनुष्य श्रीरामपर शबरीके जूठे बेर लानेका बुरा ही दोष लगाते हैं। वाल्मीकि, तुलसीदास आदि किसीके भी प्रामाणिक ग्रन्थमें इसका प्रमाण नहीं मिलता है। अतः यह बात सर्वथा निर्मूल है। हो सकता है कि शबरीने एक बेर चखकर देख लिया हो कि इस पेड़के बेर भीठे हैं या नहीं, किन्तु सभी बेर चखकर उसने श्रीभगवान्को लिखाये थे, यह सम्पूर्ण सिध्दा कल्पनामात्र है।

भगवान् श्रीकृष्ण 'मदनमोहन' और श्रीभगवान् रामचन्द्र 'मदन-दहन' थे। मदन-मोहन होनेके कारण ही श्रीभगवान् कृष्णने गोपियोंकी रमयच्छाको दग्ध नहीं किया था, किन्तु उसी भावसे उन्हें अपनेमें तन्मय करके उनकी कामादि वृत्तियोंका नाश कर दिया था। उन्होंने स्वयं ही कहा है—

न मय्यर्वाशतधिया कामः कामाय कल्पते ।

वर्जितः कथितो धानः प्राया बीजाय नेप्यते ॥

'कामभावसे भी भगवान्के प्रति अनुराग करनेपर-वह काम काम नहीं रहता है, जिस प्रकार भूँजा हुआ धान फल उत्पन्न नहीं कर सकता, उसी प्रकार भगवान्में अर्पित काम भी निर्बीज हो जाता है।' किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम होनेके कारण 'मदनमोहन' नहीं हो सकते थे। उनके लिये मदनअसह्यारी-

महादेवकी तरह 'मदनदहन' होना ही मर्यादानुकूल था। 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामने काम-भिलारिणी सूर्ययात्राको काम न देकर उसके नाक-कान कटवा दिये थे और संसारकी क्षियोंको यह शिक्षा प्रदान की थी कि पर-पुरुष रमयच्छा-खोलुप व्यभिचारिणी क्षियोंकी ऐसी ही दुर्दशा होनी चाहिये। 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामचन्द्र राजाओंके लिये प्रायः अति कठोर एकपक्षी-व्रतका पूणं पालन कर सके थे और रावणके हाथसे सीताको छुड़ाकर अग्निमें उनका प्रवेश कराया था तथा केवल प्रजारजनार्थ ही सीताको वनवास देकर उनसे कठोर तपस्या और ब्रह्मचर्यका पालन करवाया था। यह अलौकिक आदर्श प्रत्येक गृहस्थके लिये अवश्य पालनीय है।

एक-पक्षीव्रत तथा एक-पतिव्रतको पक्षपर चढ़ा देना गृहस्थ नर-नारीके लिये सर्वोत्तम आदर्श है और इसी आदर्शका अवलम्ब उदाहरण श्रीराम-सीताके जीवनमें मिलता है। बालि-बधके लिये जब सुग्रीवसे श्रीरामचन्द्रको यह मालूम हुआ कि एक बाणसे ससताल बेध करनेवाले वीर ही बालिको मार सकते हैं, तब श्रीभगवान्ने धनुषमें बाण चढ़ा कर उसी समय यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि सीताके सिवा अन्य किसी क्षांमें मेरी कभी क्षां-बुद्धि नहीं है तो मेरा बाण ससताल बेधकर लौट आवेगा।' इस प्रकार पक्षपर चढ़ा हुआ एक-पक्षी-व्रत पूरा ही उतरा था। ऐसेही लंकापुरीमें जब महावीरको दग्ध करनेके लिये उनकी पूँछपर बल लपेटकर रावणने आग लगावा दी थी तब पूँछ जलनेका संवाद सुन सीतादेवीने भी एक-पतिव्रतको पक्षपर चढ़ाया था और उसीकी महिमासे उसके लिये अग्नि चन्दनवत् शीतल हो गयी थी। जिस समाजके नर-नारियोंमें यथार्थतः राम-सीताकी पूजा प्रचलित होगी, वहाँ इस अनुपम आदर्शका अवश्य अनुकरण होगा, जिससे गृहस्थाश्रम साक्षात् मन्दनकाननके रूपमें परिणत हो जायगा, वहाँ प्रेमकी मधुर मन्दाकिनी सदाके लिये प्रवाहित होती रहेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनको मधुमय बनानेवाली-आत्मिकता, तिलिआ, इन्द्र-सहिष्णुता, वैराग्य, पित्रुभक्ति, मातृभक्ति, आतृ-भक्त्यरसज्ञता, शरणागत-पराधनता, ज्ञानस्पृहा, सच्चरित्रता आदि सभी गुणावली श्रीराम-जीवनमें पूणं परिष्कृत हुई थी, जिनका सत्य अनुकरण अन्त-जीवनको भी अवश्य ही मधुमय बना सकेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।



‘अष्टानां लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः ।’

इन्द्र, कुबेर, वरुण, चन्द्र, सूर्य, यम, अग्नि, पवन,—इन अष्ट लोकपालोंके अंशसे राजाका निर्माण होता है, यही आर्यशासकका सिद्धान्त है। इन्द्रका अंश रहनेके कारण राजामें प्रभुत्व करनेकी शक्ति आती है। कुबेरका अंश रहनेसे धन एकत्रित करनेकी शक्ति और वरुणका अंश रहनेसे आवश्यकतानुसार प्रजाको धन-दानकी शक्ति आती है। चन्द्रके अंशसे प्रजाको सुखी रखनेकी शक्ति और सूर्यके अंशसे प्रजामें ज्ञानविद्या-प्रसारकी शक्ति आती है। यमके अंशसे न्यायानुकूल विचार-शक्ति, अग्निके अंशसे पवित्रता और पवनके अंशसे गुप्तचरद्वारा प्रजाको कुशल जाननेकी नीति राजाको प्राप्त होती है। इसप्रकारसे अष्टगुणविभूषित राजा ही वास्तवमें प्रजारजक राजा हो सकते हैं। शुक्रनीतिमें लिखा है—

यो हि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम् ।

अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत् ॥

धर्मपरायण राजामें ही उपर्युक्त आठ देवताओंके अंश होते हैं, अधार्मिक राजामें असुर तथा राक्षसोंके अंश होते हैं, ऐसा राजा प्रजारजक न होकर प्रजापीडक होता है और प्रजाका सर्वनाश करके ही अपना स्वार्थसाधन करता है। इसप्रकार प्रजापीडनका अन्तिम परिणाम क्या होता है, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यके शब्दोंमें सुनिये—

प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः ।

राज्यं कुलं श्रियं प्राणाद्गन्ध्वा विनिवर्तते ॥

प्रजापीडनरूपी सन्तापसे उत्पन्न दावानल (विद्रोहाग्नि) राजाके राज्यको, वंशको, लक्ष्मीको और प्राणको जलाये बिना निवृत्त नहीं होती। आज समस्त भारतवर्ष इसी धोर सन्तापसे सन्तप्त है। किन्तु रामराज्यमें ठीक इससे विपरीत था। श्रीभगवान् रामचन्द्र अत्यन्त प्रजावत्सल थे, प्रजारजन ही उनका एकमात्र व्रत था, प्रजाके सुखके लिये ही उनका जीवन धारण था। संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं था, जो केवल प्रजारजनार्थ वे नहीं कर सकते थे। उनके समस्त प्राण, समस्त सुख, समस्त पुरुषार्थ प्रजारजनरूपी होमाग्निसमें पवित्र हवकी तरह होमे जा चुके थे। संसारमें ऐसा कोई नरपति नहीं मिलेगा जो केवल प्रजारजनके लिये पूर्ण निर्दोष, परमप्रिया, पतिव्रता सीता-सी अपनी सहधर्मिणीका

भी परिष्ठाग कर दे। किन्तु श्रीरामचन्द्रके जीवनमें ऐसा हुआ था। उन्होंने सब ओरके कर्तव्यको तिलाजलि देकर, यहाँतक कि अपने इष्टके शुद्ध ज्ञानका भी गला घोटकर, पूर्ण पवित्र ज्ञाननेपर भी केवल प्रजारजनके लिये ही परम सती, परम प्रेमवती निर्दोषा सीताको वनवास दे दिया था। ये सब उनके अपूर्व जीवनमें अलौकिक मर्यादा-स्थापनके दृष्टान्त हैं, उन्होंने एक समय अन्य राजाओंसे भी कहा था—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपालाः ,

नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः ।

मद्वन्द्वोऽयं धर्मसेतुर्नराणाम् ,

कांठं कांठं पालनीयां भवद्भिः ॥

श्रीरामचन्द्रने अत्यन्त विनयके साथ राजाओंसे प्रार्थना की कि वे उनके द्वारा निर्मित धर्मसेतुकी सुरक्षा सदा करते रहें। इस धर्मसेतुकी सुरक्षाका ही प्रत्यक्ष फल एकादश-सहस्रवर्षव्यापी रामराज्यमें आर्यप्रजाको प्राप्त हुआ था, जिसकी मयूर स्मृतिको आजतक भी आर्यप्रजा नहीं भूल सकी है। रामायणके शुद्धकाण्डमें कहा है—

श्रीरामचन्द्र महाराजके राज्यकालमें क्षत्रियोंको वैधव्य-दुःख नहीं देखना पड़ता था और किसीको भी सर्पभय तथा रोगका भय नहीं था। चोर, दस्यु आदिका अत्याचार नहीं था, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं था। वृद्ध माता-पिताको कभी अपने जीवनमें मृतपुत्रका आदर नहीं करना पड़ता था। सभी लोग आनन्दपूर्ण तथा धर्मपरायण थे। श्रीरामचन्द्रके धार्मिक भावका आदर्श पाकर कोई भी परस्पर हिसामें लिस नहीं होता था। सहस्रों पुत्रोंके साथ सहस्रों वर्षों तक रोग और शोकशून्य होकर मनुष्य जीवित रहते थे। वृद्ध सदा ही फल-फूलोंसे सुशोभित रहा करते थे, इच्छामात्रसे ही मेघ जल बरसाते और शीतल, मन्द, सुगन्ध, सुखस्पर्शी वायु बहा करती थी। अपने कर्मसे तृप्त होकर प्रजा अपने कर्ममें ही तत्पर रहती थी। सभी लोग धर्मपरायण थे, कहीं भी मिथ्या व्यवहारका प्रचार नहीं था और सभी सुलक्ष्णसम्पन्न थे। यदि राजा-प्रजामें सच्ची रामपूजा प्रचलित होगी तो पुनः भारतमें आदर्श क्षत्रिय नरपति और आदर्श राजसक्त प्रजा उत्पन्न हो जायगी जिससे सबको रामराज्यका विमल सुख पुनः प्राप्त हो सकेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। यही हिन्दू-समाजपर रामपूजाके प्रभावका कथञ्चित् विवर्णन है।



## कौन बड़ा है ?

( लेखक—रघामी श्रीकृष्णानन्दजी चक्रवर्ती )



य हम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी जीवन-घटनाओंपर दृष्टि डालते हैं तो आनन्दकन्द श्रीकृष्णजी हमारे सम्मुख एक महान् योगिराज, अद्भुत राजनीतिज्ञ तथा चोकर कलासे पूर्ण अजेय योद्धाके रूपमें आते हैं। और पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी विकटसे विकट परिस्थितिमें कर्त्तव्य-मार्गसे अविचलित, महान् तपस्वीके रूपमें दर्शन देते हैं। भगवान् रामके जीवन रथको बड़ी बड़ी दुर्बल और प्रतिकूल स्थितियोंमेंसे पार होना पड़ता है। उनके जीवनसे मनुष्यमात्रको कठिनाइयोंका सामना करनेकी असंख्य शिक्षा मिलती है। उदाहरणस्वरूप—प्रतिकूल परिस्थितियोंमें शान्तभावसे सामना करनेकी उस शक्तिकी कल्पना हम इस समय भी राम-नाम-प्रेमी, जगद्गुरु महाराम गान्धीके जीवनमें पढ़-पढ़पर देख सकते हैं। अब जोग कभी कभी यह प्रश्न करते हैं कि इन दोनोंमें बड़ा कौन है? जैसे तो जिसका चित्त जिसमें रम जाय वही उसके लिये सब कुछ होता है। हम चाहे जिस रूपमें उसे भजें, रूपमेव होनेसे कलाफल बड़ा-छोटा नहीं हुआ करता। ऐसे भी भगवान् श्रीकृष्णको १६ कलाका अवतार मानते हैं और श्रीरामको १२ का। इसको हम चाहे यह कहें कि रूपका १६ आनेके बराबर होता है अथवा रूपका १२ माशेका होता है, बात एक ही है। ध्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि श्रीकृष्ण चन्द्रवंशी थे और श्रीराम सूर्यवंशी। चन्द्र १६ कलाओंमें पूर्ण होता है और सूर्य १२ राशियोंमें। अतः इन दोनों अवतारोंमें किसी भी प्रकार कोई छोटा बड़ा नहीं है।

## ज्ञानी-पण्डित आदि कौन हैं ?

सोइ पण्डित सोइ पारस्वी, सोई संत सुजान ।  
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान ॥  
सोइ ज्ञानी सोइ गुनीजन, सोई दाता ध्यानि ।  
तुलसी जाके चित भई, रागद्वेषकी हानि ॥

## श्रीरामायणमें मांसाहार

( लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीवाङ्मन्दजी शास्त्री )



इ तो सर्वसम्मत है कि भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और उनका चरित्र परम विशुद्ध एवं आदर्श है। जिस प्रकार संसारी पामर जीव मद्यपान तथा मांस-मद्यन्त्रादि-जैसे घृणित कर्मोंमें लगे हुए हैं, उस प्रकार ऐसे निन्द्य-कर्मोंमें जब भगवान् के भक्तजनोंका भी मिरत होना सर्वथा असम्भव है, तब साक्षात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें उक्त निन्द्याचरित्रकी कल्पना करना महा अनर्थके सिवा क्या कहा जा सकता है। कुछ लोग अमवश श्रीरामके चरित्रमें मांस-मद्यन्त्राका आरोप करते हैं और इसके प्रमाणमें वे श्रीवाल्मीकीच रामायणके उन श्लोकोंका आश्रय लेते हैं जिनमें अर्थाभाससे इन कर्मोंकी प्रतीति होती है, पर खेद है कि वे भगवान् रामचन्द्रजीके उन अटल और अखण्डनीय प्रतिज्ञाओंपर ध्यान नहीं देते।

अच्छा, अब सर्वप्रथम यह देखना चाहिये कि भगवान् की वे प्रतिज्ञाएँ कौन-सी हैं, जिनमें मांसादिसे विरत होनेके विषयमें कुछ कहा गया है। देखिये, वन-गमनके समय महाराजा दशरथ और महारानी कैकेयीके प्रति भगवान् क्या कहते हैं—

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने ।

कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम् ॥

( बा० रा० २ । २०।२९ )

अर्थात् विजने वनमें मैं चतुर्दश वर्षतक कन्दमूल फलोंसे जीवन व्यतीत करता हुआ मुनिजनोंकी तरह मांसको त्यागकर निवास करूँगा। और भी कहा है—

फलानि मूलानि च मद्भयन् वने

गिरिश्च पश्यन् सरितः सरांसि च ।

वनं प्रविश्येद विचित्रपादपं

सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृत्तिः ॥

( बा० २ । २४।५९ )

फिर शुनिराज भरद्वाजजीके प्रति भी भगवान् ने इसी वाक्यको कहा है—

धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ।

वे भगवान्की प्रतिज्ञाएँ हैं। इसके साथ वह भी ध्यान देने योग्य है कि अर्थादा-पुरुषोत्तमकी सामान्य प्रतिज्ञा अपने कथनके विषयमें क्या है—रामो हिर्नामिभाषते—रामचन्द्र दो बार नहीं कहते अर्थात् एक बार जो कुछ कह दिया सो कह दिया, उसके विपरीत वे कदापि कुछ मनसा, भाषा, कर्मणा नहीं करते।

अच्छा, अब इन प्रतिज्ञाओंके विरुद्ध वाल्मीकीय रामायणके कुछ श्लोकोंकी, जिनमें अर्थाभास प्रतीत होता है, यथार्थ व्याख्यापर ध्यान दीजिये। चित्रकूटकी पर्वशालाके वास्तुकर्म-सम्पादनके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मणजीको इसप्रकार आज्ञा दी है—

ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् ।

(वा० २।५६।२२)

इसमें स्पष्टतया मांसकी प्रवृत्ति-सी प्रतीत अवश्य होती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इसकी यथार्थ व्याख्या इसप्रकार करना उचित है कि 'ऐये' शृगशालापर बैठकर, 'सं' (यो वायौ इति मेदिनी) प्राणायाम करके, 'मां' (लोकमाता मा इत्यमरः) लक्ष्मीरूप सीताको, 'समाहृत्य' सम्बद्ध बैठकर, 'वयं' हम, 'शालां यक्ष्यामहे' शालाका यजन करेंगे। अथवा (दूसरा अर्थ) 'ऐ' हे लक्ष्मण, 'खे' (यः पानीयकलश इति मेदिनी) जल-कलशके समीप, 'यं' मल्लवान् अर्थात् वास्तुदेवको, 'मां' दुर्गाको, 'सं' संपंचारी गणेशजीको, 'आहृत्य' उनके मन्त्रोंसे आवाहन करके, 'वयं' हम शालाका यजन करेंगे। फिर श्रीरघुनाथजीका वाक्य है—

मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह गुमेक्षण ।

(वा० २।५६।२३)

'शृग' नाम यहाँ गजकन्दक है। मदनपाद-निबन्धमें कहा है—(शृगः पशौ कुरंगे गजे च' इति शब्दस्तोमः।) इस स्थानपर 'कन्द'का खोप हो जाता है (विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वाच्यः—महामाध्य) तात्पर्य यह है कि हे लक्ष्मण, गजकन्दको उखाड़कर शीघ्र ले आओ। यहाँ 'क्षिप्र' पदपर ध्यान दीजिये। क्या यहाँ शृग बध होनेके लिये लक्ष्मण को मारकर शीघ्र ला दिये जाते। 'गुमेक्षण' सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग श्रीलक्ष्मणजीके गजकन्द पहचाननेके आतुर्यको लक्ष्यमें रखकर किया गया है। भगवान् बार बार कहते हैं कि 'कस्यः शाकपट्टो हि विविधव्ययनुरक्त' उस समय भगवान् श्रीराम वानप्रस्थ-व्रतका पालन कर रहे

हैं। शालाओंमें वानप्रस्थाव्रतीके लिये केवल कन्द-मूल-फलोंके ही खानेकी आज्ञा दी गयी है। इसीलिये भगवती सीताका शब्दको फल-मिष्टा ही देनेका वर्यन आता है। आगे लिखा है—

स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेघं प्रतापवान् ।

(वा० २।५६।२६)

यहाँ भी कालीत्वचावाले गजकन्दके लिये ही 'कृष्णमृग' पदका प्रयोग है। फिर इसके आगे कहा गया है—

अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवदसि ॥

तनु पक्वं समाज्ञाय निष्टं छिन्नशोणितम् ।

(वा० २।५६।२६-२७)

लक्ष्मणजीने गजकन्दको अग्निमें डाल दिया। यहाँ 'निष्ट' पदपर ध्यान दीजिये। 'निस् तस' पदमें एक बार एकतेसे ही 'स' के स्थानपर 'ष' होकर 'निष्ट' पद बन जाता है। वारम्बार अग्नि देनेसे 'ष' नहीं हो सकता। भगवान् पाणिनिका सूत्र है—'निसस्तपतावनासेवने' कन्द ही शीघ्र एक बारकी अग्निसे पक जाता है। शृग-मांस शीघ्र नहीं पक सकता। 'छिन्नशोणित'का अर्थ है—नष्ट होता है रुधिर-विकार जिससे। गजकन्दके विषयमें वैद्यकशास्त्रमें लिखा है—'त्वग्दोषादिः कुटहन्ता' इति मदनपालः। इसके आगे यह श्लोक आता है—

'अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगो मया ।

देवता देवसंकाशं यजस्व कुशले ह्यसि ॥'

'सम्यग् भवन्ति अस्तानि अंगानि येन स समस्ताङ्गः'

अर्थात् लक्ष्मणजी कहते हैं कि सब सम्यक् अच्छे हो जाते हैं अङ्ग जिससे, ऐसा यह कृष्णमृग-काली त्वचावाला गजकन्द प्रसूत है, आप यजन कीजिये। यहाँ 'शृग' पदके अर्थमें यह भी विरोध है कि 'समस्ताङ्ग शृग' को अग्निमें नहीं डाला जाता है। पुनः भगवान् विष्णुको मांस-बलि देनेका कहीं विधान नहीं है और यहाँ विष्णुको भी बलि देनेका वर्णन है। अच्छा, यह तो चित्रकूटस्थ पर्वशालाके विषयका उल्लेख है, किन्तु आगे चलकर पञ्चवटीके प्रसंगमें पूजकोंकी बलि चढ़ानेका स्पष्ट विधान प्राप्त होता है। अतः यदि चित्रकूटमें मांस-बलिका विधान होता तो इससे भिन्न पञ्चवटीमें पुष्प-बलिका वर्णन क्यों किया जाता ? फिर देखिये, भगवान्ने दशरथजीको बदरपिण्याकका पिण्ड ही अर्पण किया है। पिण्डदानके समय भगवान्ने निम्नरूपसे कहा है—

इदं भुंक्व महाराज प्रीतो यदराना वयम् ।

यदन्नः पुरुषो तदन्नास्तस्य देवताः ॥

इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीराम फल-मूलका ही भक्षण करते थे ।

रोहिमांसाणि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः ।

शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाद्वले ॥

( वा० रा० ३ । ६८ । ३३ )

यदि उपर्युक्त श्लोकके विषयमें यह शङ्का की जाय कि जटाशुके लिये मांसपिण्ड क्यों दिया गया तो इसका उत्तर यह है कि यहाँपर इसका अर्थ मांसपिण्ड नहीं है। 'रोहि' नाम बीजका है उनका 'मांस' अर्थात् गुदा निकालकर 'पेशी' यानी गोली बनाकर खी गयी है। मृगका नाम 'रोहिण्य' अकारान्त है 'रोहि' नाम मृगका कहीं नहीं पाया जाता। यदि 'मृग' का अर्थ लिया जाय तो बहुवचनमें इसका अर्थ बहुतसे मृगोंका मांस होगा, पर वहाँ तो पिण्ड ही दिया गया है। यद्यपि रामाभिरामीय टीकामें रोहि शब्दका अर्थ मृगवाची ही लिखा है, पर वहाँ कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। शब्दस्तोममें—'रोहिशब्दो वृक्षे बांजे चेति' लिखा है। और 'मांस'का अर्थ गुदा भी है। मदनपाल निघण्टुमें 'बेर' के बारे लिखा है 'स मांसं मधुरं प्रोक्तं' मांस-सहित बेर मीठा होता है। अब 'पम्पा'का प्रकरण भी देखिये—

घृतपिण्डोपमानस्यूतांस्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथ ॥

रोहिताश्चक्रतुण्डाश्च नटमानाश्च राघव ।

पम्पायामिषुभिर्मत्स्यास्तत्र राम बरान्हतान् ॥

निस्तवक् पक्षानयस्तप्तानकृशानेककण्टकान् ।

तव भक्त्या समायुक्तो लक्ष्मणः संप्रदास्यति ॥

भृशं तान्त्रादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसख्ये ।

पद्मगन्धिं शिवं वारि सुगन्धीतमनामयम् ॥

अंसां पुष्करपण्णं लक्ष्मणः पाययिष्यति ॥

( वा० रा० ३ । ७३ । १३-१७ )

यह उक्ति श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कवचकी है। आप दोनों आता घृतपिण्डके समान कोमल स्यूत कटहल आदि फलोंके गूदेको 'तान् द्विजान्'—उन पम्पा-सरोवरके आसपास वास करनेवाले पक्षियोंको भक्षण करावेंगे। हे राम, पम्पामें इषुभिः—( इवेगंतिकर्मणः इति निरुक्तम् ) अपनी चालोंसे, 'वर'—सुन्दर, 'हतान्'—अर्थात् संहतान्, यहाँ 'सं'का लोप हो

गया है, उसी महाभाष्यके वार्तिकसे 'विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तरयोः पदयोर्लोपो वक्तव्यः ?' इकट्ठे हुए, स्वर्णापहरित, 'अयस्स' (अय इव तस्य) अर्थात् जालरंगकी मछलियाँ और रोहित, चक्रतुण्ड, नलमीनोंको भी आपकी भक्तिसे लक्ष्मणजी फलोंके गूदे खावेंगे। 'मृशं' अत्यन्त फल डालनेपर 'मत्स्यान् खावत्' 'खादनं खावयस्व' अर्थात् मछलियोंको भोजन डालनेवाले श्रीलक्ष्मणजी आपको कमलपत्रोंके दोनोंमें जलपान करावेंगे। यहाँ 'स्यूत' पदके अर्थपर ध्यान देनेके कारण ही टीकाकारों-ने इस रहस्यको नहीं समझा है। यदि यह कहा जाय कि महर्षि वाल्मीकिजीने ऐसा संदिग्ध वचन क्यों किया तो श्रुति प्रमाण है—'परोक्षमिया देवाः प्रत्यक्षद्विषः।' देवताओंको परोक्ष ही प्रिय है, इसीके अनुसार आर्ध-ग्रन्थोंको भी समझना चाहिये। सबसे बढ़कर हमारे इस लेखके प्रमाणमें 'रामो दिनांभिमापते' यह भगवद्-वाक्य है। इस बातको लक्ष्यमें रखकर ही विचार करना चाहिये कि जब श्रीरामकी प्रतिज्ञा फल-मूल भक्षण करनेकी है तब उनके विषयमें मांसका व्यवहार करना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। हमने ऊपर जिस बातकी स्पष्ट विवेचना की है यदि उसके अतिरिक्त किसी विद्वान्को और भी वाल्मीकीय रामायणके किसी प्रकरणमें इस विषयमें कुछ पूछना हो तो वे 'कल्याण' पत्रद्वारा ही अपनी शङ्का प्रकट करें। उसका यथावत् समाधान किया जायगा।

## रामके चार निवास-स्थान

( १ )

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।

मुकुताहल गुनगन चुनै राम बसहु हिय तासु ॥

( २ )

सब कर माँगाहि एक फल राम-चरित-रति हांउ ।

तिन्हके मन-मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥

( ३ )

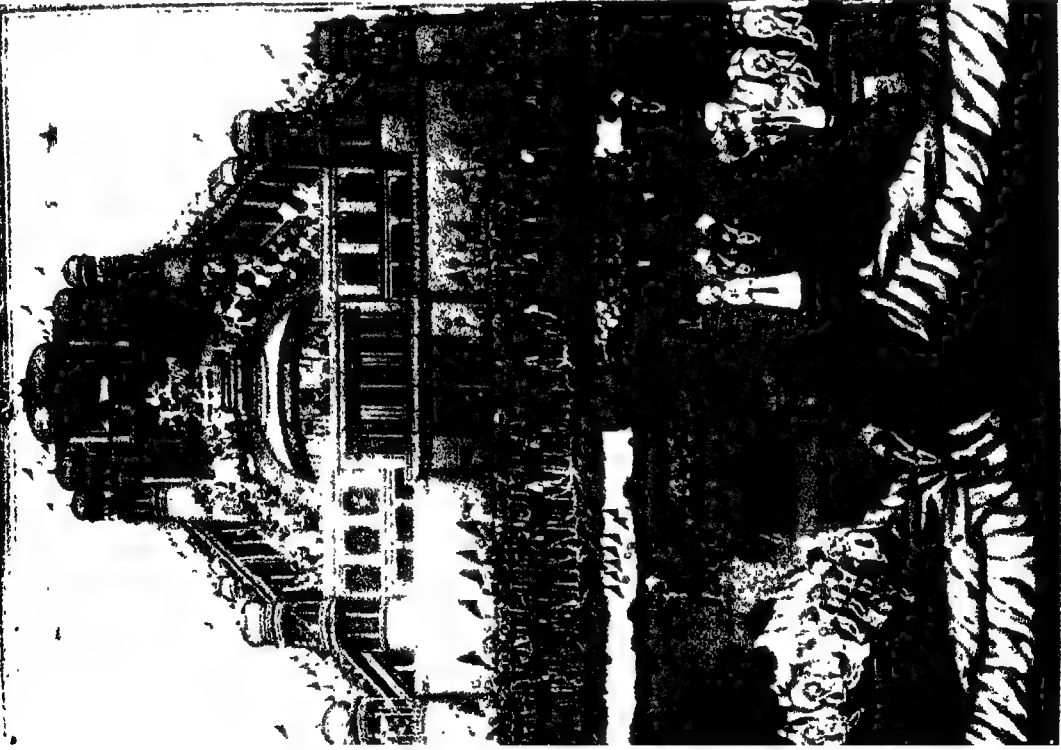
स्वामि-सत्वा-पितु-मातु-गुरु जिन्हके सब तुम तात ।

मनमन्दिर तिन्हके बसहु सीय-साहित दोउ आत ॥

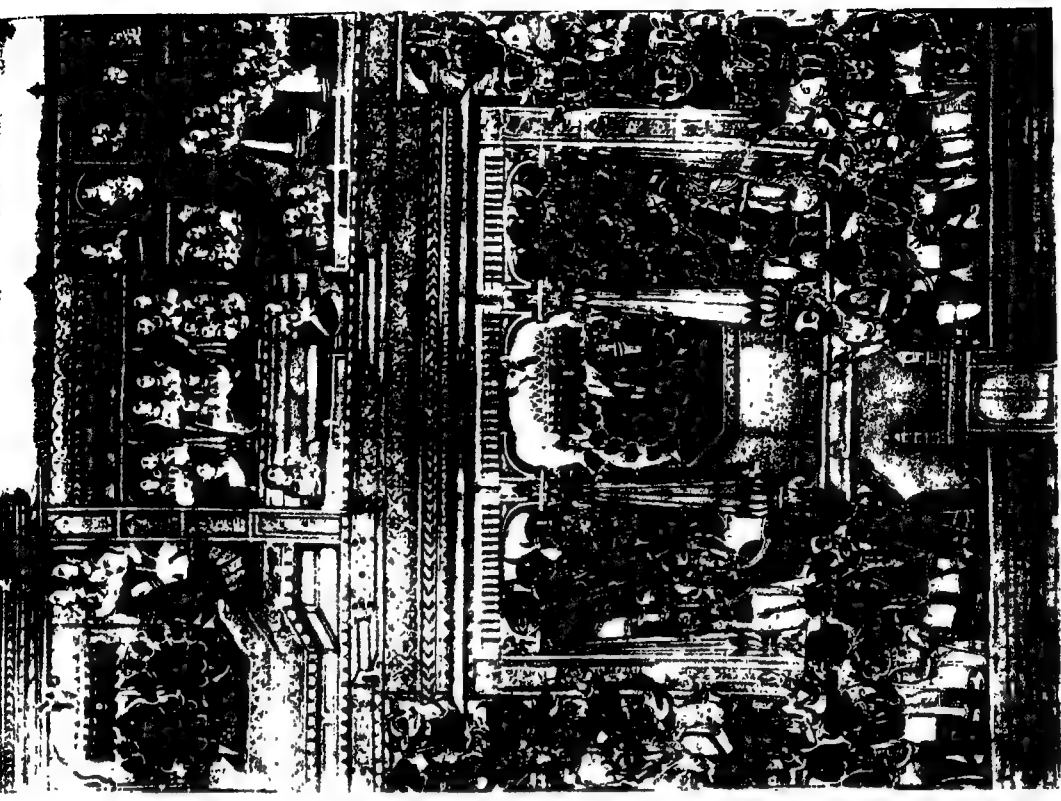
( ४ )

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्हसन सहज सनेह ।

बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेह ॥



लङ्का पर चढ़ायौ ।  
जानत परमदुर्ग अति लंका । प्रभुप्रताप कपि चले अर्लंका ॥



रावण-मन्दोदरी ।  
नारि-वचन सुनि बिसिल-समाना । सभा गयेउ उठि होत बिहाला ॥



तव रत्नि लेउ आयउ हनुमानः अनुज देवि प्रभु अनिद्वय माना  
**लक्ष्मण-मूर्त्ति ।**



कुम्भकर्णे-युद्ध ।  
 'नाथ भूधरा-कार-सारा कुम्भकरन् आवत रनधीरा ॥'

## श्रीसीताजीका वनवास

( लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए०  
डि० लिट्, वाइस चैंसलर, प्रयाग विश्वविद्यालय )



रामचन्द्रजीके चरित्रपरीक्षकोंने श्रीसीता-वनवासके प्रसंगको लेकर दोषारोपण किया है। 'पर ये परीक्षक इस बातको भूल जाते हैं कि रामायणमें जितने चरित्र-चित्रण हैं प्रायः सभी आदर्शरूपके हैं। अयोध्या आदर्श नगरी, दशरथ आदर्श पति, आदर्श पिता, श्रीराम आदि चारोंभाई-आदर्शपुत्र, श्रीसीता आदर्श पत्नी—बर्हातक कि रावण भी आदर्श रात्रु है। श्रीरामजीको वाल्मीकिने आदर्श राजा भी बतलाया है। इसी आदर्श राजाके चित्रणमें उनको साधारण मनुष्यसे अकरणीय श्रीसीताजीका परित्यागतक भी करवाना पड़ा। इसका कारण यह था कि राजाको जनश्रुतिद्वारा सीताजीके प्रति जब शङ्का का पता लगा तब उनको यह सन्देह हुआ कि इस शङ्काके उठनेपर भी यदि मैं मोहवश सीताको घरमें रहने देता हूँ तो इस बातका डर है कि साधारण जनतापर इसका बुरा असर पड़े। बस, प्रजामें इस प्रकारकी उच्छृङ्खलताकी शंका होते ही आदर्श राजाका जो कर्तव्य हो सकता है वही श्रीरामने किया। अपने आदर्शको उन्होंने स्वयं बतलाया है—

स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदिवा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

यहाँ 'आराधनाय' पदसे 'प्रसन्न करके लिये' विवक्षित नहीं है—विवक्षित है 'रक्षणाय' रक्षाके लिये—'प्रतिपालनाय'—प्रतिपालनके लिये।

महापुरुषोंके चरित्र-परीक्षणमें यह अरुण रखना आवश्यक है कि वे 'महापुरुष' थे। साधारण पुरुषोंमें जो नियम लागू होते हैं, वे उनमें नहीं हो सकते, न साधारण पुरुषोंमें ऐसे उच्छकोटिके चरित्रको समझनेकी शक्ति ही हो सकती है।

**दुःखकी आगमें कौन नहीं जलता ?**

दास रता एक नामसों उभय लोक सुख त्यागि ।

तुलसी न्यारे हवै रहै दहै न दुखकी आगि ॥

## दास और परम-पद

( लेखक—पं० श्रीरामाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति' )



श्व-ध्यापिनी, भुवन-मोहिनी, मनोहर-भाषाके रूप और लावण्यपर मुग्ध हो जानेकी मधुर जालसा किसके हृदयमें नहीं होती? सांसारिक ऐश्वर्यके सुख-भोगकी प्रबल पिपासा किसे व्याकुल नहीं बना देती? मिय पदार्थको प्राप्त करनेकी कामना और

जीवनको सदैव आनन्दमें व्यतीत करनेकी आकांक्षा किसे आकुल नहीं किया करती? मनुष्यमात्र जब स्वार्थ-रक्षाके लिये उत्सुक रहते हैं, सभी जन्म, मृत्यु, जरा और रोगके भयसे बचना चाहते हैं तब दास ही अकेला क्यों अपने अस्तित्वको मिटाकर आत्म-त्यागका अद्भुत आख्यान सुना करे? दासका ही अन्तःकरण क्यों अनेक सात्विक भावनाओंका समारोह-स्थल बनता रहे? कुछ महानुभाव तो यहाँ तक कह डालनेके लिये तैयार हैं कि इस दास-भाषने ही, स्वामिमानपर कुठार चलाकर, स्वावलम्बन एवं स्वाधीनताके विचारोंको समूल नष्ट कर डाला है और देशको अधःपतनके मार्गपर पहुँचा दिया है।

सत्य ही दासता बुरी है, इसलिये कि उसमें और विषय-वासनामें पारस्परिक विरोध है। दासको अपना शीश देकर पराये शीशकी रक्षा करनी पड़ती है। मन, वचन और कर्मसे सदा स्वामीके अनुकूल ही अपने आचरण बनाने पड़ते हैं। यश-अपयश, मान-अपमानके भेदभावको भुलाकर घरबार, परिवारसे विरक्त होकर, अन्यकी दासतामें ही अपनी जीवन-ज्योत्स्नाको नष्ट कर देना पड़ता है। हँसते-हँसते प्राणोंकी आहुति चढ़ानी होती है।

**दासकी निधियाँ**

पूर्ण सन्तोष, त्याग, क्षमा और उदासीनता दासकी निधियाँ हैं। रागद्वेषके स्थानपर उसके हृदयमें अज्ञाकी निधि भरी होती है। चिन्ताको दूर करनेके लिये अनुरागका चारु-चिन्तामणि दासके पास ही होता है। मद्, मान, मत्सरकी मरुभूमिमें उसे अपार आनन्दका कल्पद्रुम लहलहाता दिखायी पड़ता है। त्रितापहारी कल्याणका कौस्तुभ तो उसकी निजी सम्पत्ति है और आत्मसमर्पणका अक्षय-भण्डार कुवेरके कोचसे कहीं बड़ा-बड़ा अपना कमाया हुआ मूलधन है।

## दास और प्रभु

बल, बुद्धि, विद्या और विवेक अहंकारकी घाटियाँ हैं । जिनमें पड़कर जड़-जीव, जड़-पदार्थों में ही वास्तविक सुखका अनुभव करने लगता है । एक ही जन्म क्यों, वरन् अनेक जन्मों तक यदि अपने स्वरूपको भूला हुआ वह माया-मरीचिकामें भटकता रहे तो कोई विचित्र बात नहीं । इसीलिये इदं निश्चयवाले निष्काम सेवाको ही सर्वश्रेष्ठ समझ कर स्वामीकी सेवामें ही मन लगानेमें अपना परम कल्याण समझते हैं ।

उमासे शंकरजी कहते हैं—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।  
रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ कहि सिब नायड माथ ॥

भूतभावन भगवान् शंकर भी किसी औरको अपना स्वामी मानकर दास होनेमें गौरव समझते हैं । तत्त्व है, गौरवका प्रभु वहाँ कोई मृत्यु नहीं रखता, क्योंकि दास जहाँपर प्रभुकी सेवामें ही सुख मानता है वहाँ प्रभु स्वयं दासकी पूजा करनेके लिये उद्यत हो जाते हैं । यथा—

लिङ्ग यापि विधिवत करि पूजा । सिब समान प्रिय मोहि न दूजा ॥  
सिब द्रोही मम दास कहावा । सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

सच्चे दास, भय और शोकसे मुक्त होकर सच्चे प्रभुकी सेवा करनेके लिये अपना सर्वस्व छोड़ बैठते हैं । पवनसुतसे कंकेरकरका भाई प्रभु करता है—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाया । करिहहि कृपा मानु-कुल-नाया ॥  
तामस तनु कछु साधन नाही । प्रीति न पद सरोज मनमाही ॥

प्रभु ऐसे दासका स्वागत किस प्रकार करते हैं—

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ॥  
जो सम्पत्ति सिब रावनहि दीन्ह दिखे दस माथ ।  
सोइ सम्पदा विभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥

## दास और शक्ति

दासको उत्कर्षकी उत्कृष्ट दीक्षा कौन देता है ? उसमें अपरिमित शक्तिक्रम प्रादुर्भाष कहाँसे होता है ? उग्रता, आत्मनिग्रह और परोपकार-परायणता कहाँसे आ जाती है ? जड़त्वसे जीवत्वका विनिमय और जीवत्वसे स्वामीके कार्य-साधनका अद्भुत साहस कहाँसे उत्पन्न हो जाता है ? क्या वह सब दास-भावकी महत्वाकांक्षाका मीठा फल नहीं है ?

जटाबु तो जरठ, अचम, आभिनभोजी पचो था, फिर भी दसकच्छ जैसे प्रबल पराक्रमी सुभटको विरथ कर हावनेकी शक्ति उसमें आ चुकी थी । शस्त्रधारी न था तो भी रावणको असह्यस्त करनेका पर्याप्त बल उसकी चोंचमें ही भर चुका था । अनेक पीढ़ाओंसे पीड़ित होनेपर दासका मन जब अधीर हो उठता है, शरीर व्यथाओंसे व्यथित हो जाता है, और कष्ट-सहिष्णुता पथान कर जाती है तब दीनहितकारी, दासको वह अपूर्व शक्ति देते हैं जिसके प्रभावसे वह भय-बन्धन तोड़कर परम शान्तिको प्राप्त होता है—

करसरोज सिर परसेठ कृपासिन्धु रघुवीर ।  
निरखि राम-छवि-धाम-मुख बिगत भई सब पीर ॥

## दास और तप

पुराण साक्षी हैं, अनेक तपस्वी अपने तपसे विचलित हुए, अनेक ज्ञानी मोहमें पड़कर अधोगतिको प्राप्त हुए और परित्याग-स्वरूप उन्हें कठिनसे कठिन कष्ट और कठोरसे कठोर दुःख भोगने पड़े, वरन् दासके तपमें उसके रक्षक स्वयं भगवान् हुआ करते हैं । कैसे ही प्रलोभन क्यों न आवें, दासको विचलित होनेसे प्रभु ही बचाया करते हैं ।

पद न सही, पादुकाओंकी भी सेवा दास उसी दृष्टिसे करते हैं, उन्हींमें मन लगाये हुए अपनी तपस्या पूर्ण करते हैं और मनको योग-विलाससे कहीं दूर रखते हुए उस पदको प्राप्त होते हैं जिसके लिये सुर, नाग, किन्नर और गन्धर्व सभी लाक्षापित रहते हैं ।

अवधराजु सुरराजु सिहार्ह । दसरथ धन मुनि चन्द लजार्ह ॥  
तेहि पुर बसत भरत विनु रागा । चञ्चरीक जिमि चम्पक बागा ॥  
रमाबिलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़मागी ॥  
भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति विरति गुन बिमल विमूती ॥  
वरनत सकल सुकवि सकुचार्ह । सेस-गनेस गिरा गमु नाही ॥

वह है दासकी, तपस्या जिसका बन्धन कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है । फिर उस तपस्याका बन्धन प्रभु किन शब्दोंमें करते—

तात भरत तुम धरम-धुरीना । लोक बेदबिद प्रेम प्रबैला ॥  
करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।  
गुरु समाज लघु बन्धु गुन कुसमय किमि कहि जात ॥  
उक्त प्रार्थनाकी पूर्ति विवेककी कर देते हैं—



भरत-राम-गुन-ग्राम-सनेहू । पुलकि प्रसंसत राठ निदेहू ॥  
सेवक स्वामि सुमाठ सुहावन । नेमु त्रेमु अति पावन पावन ॥

### दास और दीनबन्धु

दीनबन्धु सदा दासकी रूचि रखते हैं । प्राणोंसे प्यारा जानकर हृदयसे लगाते हैं और सखा एवं बन्धुके समान मानते हैं । श्रीरामजीने नीच निषादको अपना सखा बनाया था, जिसे गुह किस गर्वभरी बाणीसे कह रहा है—

कपटी कायस कुयति कुजाती । लोक बेद बाहेर सब भौंती ॥  
राम कीन्ह आपन जनहीते । भयउँ भुवन भूषन तबहीते ॥

ऐसे कपटी और कुजातिवाले दासको कैसा आदर मिलता है, वह इन पंक्तियोंसे प्रमाणित होता है—

राम सखा सुनि स्पन्दनु त्यागा । चले उत्तरि उमगत अनुरगा ॥  
लोक बेद सब भौंतिहि नोचा । जासु छाँह लुह लेह्य सींचा ॥  
तेहि भरि अंक राम-रघु-भ्राता । मिलत पुलक परि पूरित गाता ॥  
कहहि लहेउ पहि जीवन लाहू । मेटेउ रामभद्र भरि बाहू ॥

### दासका श्रम

पितृ-श्राव्य, गुरु-श्राव्य और देव-श्राव्यसे उन्मत्त होना सरल है किन्तु दासके श्रावसे उन्मत्त होना अत्यन्त कठिन है । दास प्रत्युपकार वा फल नहीं चाहता । वह तो प्रभुपर और अधिक श्राव्य लादनेके लिये जन्म-जन्म पद-सरोज-सेवाका ही बरवान माँगा करता है । उसे सेवामें ही परमानन्दकी उपलब्धि एवं सेवा करनेमें ही सच्चे सुखका लाभ मिलता है । ऐसी दशामें प्रभुको बड़ा सझोच होता है । उस समय दासको अपना लेने और अपना सर्वस्व उसे सौंप देनेके अतिरिक्त प्रभुको और कोई उपाय नहीं सूझता । पवनकुमारसे प्रभु कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहि कोउ सुर नर मुनि तनुघारी ॥  
प्रतिउपकार करउँ का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥  
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि निचार मनमाहीं ॥

ऐसी दशामें स्वामीको श्रावसे उन्मत्त करनेके लिये दास फिर उन्हीं चरखोंकी शरख जाता है । ब्याज समेत मूलधनसे मुक्त कर देनेके लिये प्रभुको उन चरखोंकी याद दिलाता है जो सहज ही पापावकी भी प्रतिमाको तार दिया करते हैं ।

बार बार प्रभु चहहि उठावा । प्रेममगन तेहि उठनु न गावा ॥  
प्रभु-कर-पंकज कपिके सीसा । सुमिरि सो दसा भगन गौरीसा ॥

### दास और कर्त्तव्य

सेवा-धर्म ही दासका परम कर्त्तव्य बन जाता है । ब्रह्म, तप, व्रत, विद्यानादि सभी सेवाके स्वरूपमें परिणत हो जाते हैं । स्वामीकी जब कभी जो इच्छा हुई उसे वहीं पूर्ण करना पड़ता है । इच्छा न भी हो तो भी सेवासे मुक्त मोक्षनेकी बहाँ गुंजाइश नहीं रहती । लक्ष्मणजी श्रीरामकी सेवा किस प्रकार करते हैं—

सेवहि लषन सीय रघुनीरहि । जिमि अविनेकी पुरुष सरीरहि ॥  
सेवहि लषन करम मन बानी । जाय न सील सनेहु नसानी ॥

कभी कभी प्रभुकी आज्ञा कहुई हो जाती है, उसमें ब्रह्मकी-सी कठोरता, विष्णुकी-सी जलन और बाणकी-सी मार्मिक व्यथा भरी होती है । दासका मन तिलमिलता उठता है, मस्तक घूम जाता है और कर्त्तव्यपरायणता काँप जाया करती है । जिन जनक-नन्दिनीके लिये असंख्य बानरोंको प्राण बिलजित करने पड़े थे, लक्ष्मणको हृदयपर सेल सहनी पड़ी थी और रावणके वंशका विनाश किया गया था, उन्हींका अपमान स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम करते हैं और अभिमें जीवित जलावे जानेके लिये चिता जुलनेका आदेश लक्ष्मण-सरीखे सुकुमार-हृदयको देते हैं । क्या लक्ष्मणके हृदयमें जगत्-जननीजानकीके प्रति काफी मातृ-भक्ति न थी ? यी अवश्य ! किन्तु प्रभुकी आज्ञाके सम्मुख, इच्छाके विरुद्ध, दासको सिवा इच्छापूर्ण करनेके और कोई चारा नहीं रह जाता ।

सुनि लछिमन सीताकै नानी । बिरह-बिनेक-वरम-नय-सानी ॥  
लोचन सजल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन कहु कहि सकत न ओऊ ॥  
देखि रामरुख लछिमनु घाप । पावक प्रगटि काठ बहु लाप ॥

यह है दासकी सेवा और इतना है कठिन कर्त्तव्य !

### दास और आत्मसमर्पण

अहङ्कारपूर्वक व्यक्तित्वको छोड़कर जिस समय जीवात्मा प्रभुके चरखोंमें आत्मसमर्पण कर देता है और आध्यात्मिक हृदयस्थ उपास्यदेवमें जब उसका मन पूर्णतया स्थिर होकर लग जाया करता है, उसी समय त्रिगुण-तरङ्गमयी-मोहात्मक प्रकृतिका आवरण बीचसे हट जाया करता है और दास उस असंख्य अविनाशी शक्तिके अचरखोंमें लीन हो जाता है । योगी, यती इसी सुयोगके लिये बल किया करते हैं, किन्तु उनका उत्तरदायित्व दाससे कहीं अधिक हुषा करता



है। कारण, दासका उत्तरदायित्व अधिकारमें प्रभुपर ही हुआ करता है और वे अपने सेवकपर प्रीति भी करते हैं—

सुनहु विभीषण प्रभु कह रीती। कहि सदा सेवकपर प्रीति ॥

जहाँ आत्मसमर्पण हुआ, प्रभु शत्रुको भी अपनाते हैं और अपने धामका अधिकारी बनाते हैं। बाबू दुष्ट, दुराचारी और पतित था, किन्तु—

राम बाबू निज धाम पठावा।

विराध असुर था। श्रीरामसे युद्ध ठानकर सम्मुख आया था। उसे भी उन्होंने अपनाया—

तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा ॥

कहातक कहा जाय। अन्त समयमें भी जो प्रभुके समीप आकर अपनेको सौंप देते हैं, वे दास परमपदके अधिकारी बन जाते हैं।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुक्त निसाचर सारी ॥

खल-मल्लघाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन ॥

अन्तमें इतना ही अलख होगा कि जिन चरब्योंकी—

जे चरन सिद्ध-अज-पूज्य रज सुम परसि मुनि-पत्नी तरी।

नखनिर्गता मुनि बन्दिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी ॥

ध्वज-कुलिस-अंकुस-कज-युत बन फिरत कण्ठक किन लहे।

पद-कज-द्वंद्व मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे ॥

—शरण जानेपर समस्त प्राणी आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दुःखोंसे मुक्त होकर परम शान्ति एवं परम-पदको प्राप्त होते हैं, उन्हींकी सेवासे, उन्हींका दास बनकर अनुप्य सच्चा कर्तव्यपरायण और सफल सैनिक बन सकता है। वासनाका दास बनकर नहीं, वरन् प्रभुका दास बनकर ही परम-पदका अधिकारी हो सकता है।

## निषादका प्रेम

(लेखक—आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी)

ततो निषादाविपत्तिं दृष्ट्वा दूरादुर्गस्थितम्।

सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहेन सह ॥

(वा० रा० २।५०।३५)



धुर्यमय सख्य-प्रेममें शान्त और दास्य—दोनों प्रकारकी—उपासनाओंकी अपेक्षा अधिक आस्वादन है। इसके रससे अधिक मिठास गुड़ या राबमें होता है। सख्य-रसमें शान्त-रसका आस्वादन एकनिष्ठा और दास्यका सेवा-सुख, यह दोनों तो होते ही हैं, किन्तु इसमें निःसङ्कोच 'प्रेम' विशेष होता है।

निषादराज बिना छल-कपटके सीधे-सादे शब्दोंमें निःसङ्कोच-भावसे कहते हैं—

नहि रामात्प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।

(वा० रा० २।५१।४)

यह मधुर 'प्रियतम' शब्द प्रेमी निषादके मुँहसे ही नहीं, हृदयसे, कण्ठसे और प्रत्येक जोम-कूपसे, बीयाके तारोंकी तरह झनकार रहा है।

वनवासी शिकारी निषादके भाषोंमें कोमलता, व्यवहार-में सरलता और श्रीराममें ममताका कारण प्रेम ही है।

सम्यङ्ममृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाद्धितः।

भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

जिस भावसे हृदय कोमल होता है, जिससे अत्यन्त ममता उत्पन्न होती है उसीको बुधजन 'प्रेम' कहते हैं।

निषादराज और श्रीराम, अर्जुन और श्रीकृष्ण, गदाधर और श्रीचैतन्य, भक्त और भगवान्की जोड़ी प्रशंसनीय है।

इससे उत्कृष्ट प्रेमावस्था और कौन-सी हो सकती है? प्रेमी निषाद राजीवलोचन श्रीरामके मुखसे जब यह सुनता है। जिसकी आशा उसे स्वप्नमें भी न थी—कि,

आपास्याप्युदितं सत्यं नास्त्यं राममावितम्।

(अ० रा० २।६।१६)

श्रीराम, प्यारे निषादसे मिलनेकी सप्रभाव प्रतिज्ञा कर उसे हृदयसे खगा बारबार समझाते हैं। निषादराज चुप हैं, बोझें भी तो क्या? कबल गम्रद् हो गया है; आँखोंसे मरकर प्रेमाशु डलक रहे हैं, हृदयमें हाहाकार हो रहा है।

'हा हा कदानु भवितासि पदे दशोर्मे।'।

(कृष्णकर्णामृत)

प्रेमीके इक्ष्वाकु भाव कौन जाने। इक्ष्वाकुको उसने सब प्रकारसे इक्ष्वाकुमें रखवा, पर प्यास न मिटी। मृति इसीको सत्य-सम्बन्ध कहती है, वही परम रस है। 'रसो वै सः।'

निषादके निष्कपट, निस्वार्थ प्रेमपर जितना भी खिला

जा सके, बोका है। जो इस प्रेमीमें पहुँच जाते हैं उनके बाह्य धर्म-कर्म कुछ नहीं रहते। यदि मनुष्य इस उज्ज्वल प्रेममें मग्न हो जाय तो संसारसे कुछ विकारोंका समूल नाश हो जाय। पवित्र प्रेमाग्नि सबके इक्ष्वाकुमें जल उठे। ❀

## दशरथके समयकी अयोध्या

यह महानगरी बारह बोजन लम्बी थी। इसमें सुन्दर लम्बी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं। नगरीकी प्रधान सड़कें तो बहुत ही लम्बी चौड़ी थीं, जिनपर रोज जलका छिड़काव होता था, सुगन्धित फूल बिखेरे जाते थे, दोनों ओर सुन्दर वृक्ष लगे हुए थे। नगरीके अन्दर अनेक बाजार थे, सब प्रकारके यन्त्र (मशीनें) और युद्धके सामान तैयार मिलते थे। बड़े बड़े कारीगर वहाँ रहते थे। अदारियोंपर पञ्जाएँ फहराया करती थीं। नगरकी चारदीवारीपर सैकड़ों शतभि (तोपें) लगी हुई थीं, बड़े मजबूत किवाड़ लगे हुए थे। नगरके चारों ओर शालवृक्षकी दूसरी चारदीवारी थी। राजाके किलेके चारों ओर गहरी खाई थी। अनेक सामन्त, राजा और शूरवीर वहाँ रहा करते थे। व्यापारी भी अनेक रहते थे। नगर इन्द्रकी पुरीके समान बड़े सुन्दर ढंगसे बसी हुई थी। उसके आठ कोने थे। वहाँ सब प्रकारके रत्न थे और सात-संजिले बड़े बड़े मकान थे। राजाके महलोंमें रत्न जड़े हुए थे। बड़ी सघन बस्ती थी। नगरी समतल-भूमिपर बसी हुई थी। खूब धान होता था और अनेक प्रकारके और पदार्थ होते थे। हजारों महारथी नगरीमें रहते थे। वेदवेदाङ्गके ज्ञाता, अग्निहोत्री और गुणी पुरुषोंसे नगरी भरी हुई थी। महर्षियोंके समान अनेक महात्मा भी वहाँ रहते थे।

उस समय उस रम्य नगरी अयोध्यामें निरन्तर आनन्द-में रहनेवाले, अनेक शास्त्रोंको अवलम्ब करनेवाले धर्मात्मा, सत्यवादी, लोभरहित और अपने ही धनमें सन्तुष्ट रहनेवाले मनुष्य रहते थे। ऐसा एक भी गृहस्थ नहीं था जिसका धन आवश्यकतासे कम हो, जिसके पास इहलोक और परलोक-के सुखोंके साधन न हों। सभी गृहस्थोंके घर गौ, घोड़े और धनधान्यसे पूर्ण थे। कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक

तो हूँ भी नहीं मिलते थे। वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा इन्द्रिय-निग्रही, हर्षयुक्त, सुशील और महर्षियोंके समान पवित्र थे। सभी स्नान करते, कुण्डल-मुकुट-माला धारण करते, सुगन्धित वस्तुओंका लेपन करते, उत्तम भोजन करते और दान देते थे। परन्तु वह सभी आत्मवान् थे, सभी अग्नि-होत्र और सोमयाग करनेवाले थे। बुद्ध विचारका, चरित्रहीन, चोर और बन्धुसङ्कर कोई नहीं था। वहाँके जितेन्द्रिय ब्राह्मण निरन्तर अपने नित्यकर्मोंमें लगे रहते थे। दान देते थे, विद्याध्ययन करते थे, परन्तु निषिद्ध दान कोई नहीं लेता था। अयोध्यामें कोई भी नास्तिक, झूठा, ईर्ष्या करनेवाला, अशक्त और मूढ़ नहीं था। सभी बहुश्रुत थे। ऐसा कोई न था जो वेदके छः अङ्गोंको न जानता हो, व्रत-उपवासादि न करता हो, दीन हो, पागल हो या दुखी हो। अयोध्यामें सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा राजाके भक्त थे। चारों बग्योंके स्त्री-पुरुष देवता और अतिथिकी पूजा करनेवाले, दुर्लभोंको आवश्यकतानुसार देनेवाले, कृतज्ञ और शूरवीर थे। वे धर्म और सत्यका पालन करते थे। दीर्घजीवी थे और स्त्री-पुत्र-पौत्रादिसे युक्त थे। वहाँके सभी ब्राह्मणोंके अनुयायी, वैश्य क्षत्रियोंके अनुयायी और शूद्र तीनों बग्योंके सेवारूप सुकर्ममें लगे रहते थे। नगरी राजाके द्वारा पूषारूपसे सुरक्षित थी। विद्या-बुद्धि-निपुण अग्निके समान तेजस्वी और शत्रुके अपमानको न सहनेवाले योद्धाओंसे अयोध्या उसी प्रकार भरी हुई थी जैसे गुफाएँ सिंहोंमें भरी रहती हैं। अनेक प्रकारके घोड़े और बड़े बड़े मत्तवाले हाथियोंसे नगरी पूर्ण थी। उसका अयोध्या नाम इसीलिये पद गया था कि वहाँ कोई भी शत्रु युद्धके लिये नहीं आ सकता था।

अब आजके भारतसे इसका मिलान कीजिये !

\* निषादराजके प्रेमेक सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो इसी पं० श्रीशालग्रामजी शास्त्रोंका कल देखिये। —सम्पादक

अङ्क पृष्ठ ५७ में प्रकाशित 'रामायणमें भरत' शीर्षक साहित्याचार्य

## श्रीरामायणका महत्त्व

( लेखक—पं० श्रीश्यामसुन्दरजी यादविक )

यत्पूर्वं प्रमुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् ।  
श्रीमद्रामपदान्जमक्तिमनिशं प्राप्यै तु रामायणम् ॥  
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतस्त्वान्तस्तमः शान्तये ।  
भाषान्दमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ॥१॥  
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदम् ।  
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाग्न्युपूरं शुभम् ॥  
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्याऽवगाहन्ति ये ।  
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दहन्ति नो मानवाः ॥२॥

श्रीरामायणजीके महत्त्वपर मैं कुछ लिखने-योग्य नहीं,  
परन्तु नभचरनाथ गुरुके समान ही एक तुच्छतर  
मच्छर भी अपनी शक्तिभर आकाशमें उड़ता है। उसकी  
कोई निन्दा नहीं करता, इसीके अनुसार वह तुच्छ  
लेखक भी श्रीरामायणजीके महत्त्वपर कुछ निवेदन करनेका  
साहस करता है।

श्रीगोस्वामीजीके बचनोंसे, श्रीरामायणजी,  
'श्रीरामतनु' हैं—

बालकाण्ड प्रभु पाँयें, अयोध्या कटि मन मोहै ।  
उदर बन्यो आरण्य, हृदय किष्किन्धा सोहै ॥  
सुन्दर श्रीव मुखारविन्द लंका कहि गाये ।  
जहि महुँ रावन आदि निशाचर सर्व समाये ॥  
उत्तर मस्तक मान हरि—यहि विधि तुलसीदास मनु ।  
आदि अन्त लौं देखिये—(श्री) 'रामायण'—'श्रीरामतनु' ॥  
जिस प्रकार परमात्मा श्रीरामजीका अवतार चतुर्व्यूह  
होता है—

तिनके गृह अवतरिहों जाई । रघुकुल-तिलक सुचारिहु भाई ॥

ठीक उसी तरह चतुर्व्यूह श्रीभक्ति-महाराजीका उद्भव भी  
धाम, धाम, लीला तथा रूपके स्वरूपमें होता है। श्रीरामायण-  
जी—नाम धामादिमयी होनेसे श्रीभक्तिका भी स्वरूप हैं।

श्रीरामायणजीके प्रेमीजनको इस विश्वासकी दृढ़तामें अविचल रहना चाहिये कि पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजीके बचन निगमागम-  
सम्मत ही हैं। उनकी बाणी प्राकृतिक नहीं, किन्तु वह जलौकिक, दिव्य बाणी है ( To err is human ) 'मनुष्यमे  
भूल हो जाती है'—इस नीतिमय वाक्यका उन्हें निज हृदय-देशमें इस जगह सम्यक् वाहिकार कर देना होगा।

जब श्रीगोस्वामीजीके समयमें विद्यमान पण्डित-मण्डलीके सम्राट् यतिराज श्रीमधुसूदन-सरस्वतीजीका यह सिद्धान्त था कि  
श्रीगोस्वामीजीका समस्त रामायण तो निगमागम-सम्मत है ही, किन्तु उनके दूमेरे बचनोंको भी तथैव मानना उचित है। तब  
हमलोग उनके बचनोंमें अश्रद्धा करनेवाले कौन ?

'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक'—प्रथम  
उनको श्रीराम-तनु सूचित किया, अब भक्ति-स्वरूपा कहा।  
दोनोंका वपु एक है। श्रीरामतनु कहिये अथवा श्रीभक्ति-  
स्वरूपा बोलिये, बोलीमें भेद है, बात-एकही एक ही है।  
श्रीरामायणजीके भक्तिरूपका अर्थात् नाम, धाम, लीला,  
रूपमय रूपका भी वर्णन कर लीजिये—

'नाम'—प्रहमहं रघुपति नाम उदारा ।' अर्थात् श्री-  
रामायणजीमें श्रीनाम-महाराज, सूत्रमें मणिकी नाई  
ओतप्रोत हैं।

'धाम'—श्रीरामजीका अवन (धाम) तो है ही।

'लीला'—श्रीरामायणजी, श्रीसरकारी-चरित्र (लीला)  
से तो परिपूर्ण ही हैं अतः वे लीला-मयी स्वयंसिद्ध हैं।

'रूप'—'रामायण 'श्रीरामतनु' से रूप भी प्रकट है।

'रघुबरभगति प्रेम परिमित-सी'

भक्ति-भगवन्त उभय कारण-कार्य भी हैं और तादात्म्य  
भी। यही दोनों लक्ष्य हैं। गुरु और भक्त इनको प्राप्त कराने,  
करनेवाले हैं। वास्तवमें परिणामतः चारों एक हो जाते हैं।  
अतः श्रीरामायणजी गुरुरूप भी हैं—'सद्गुरु ग्यान विराग  
योगके।' भक्त-रूपा भी हैं—'जग हित निरुपधि साधुलोक'—  
इत्यादि। तात्पर्य यह कि श्रीरामायणजी वास्तविक 'श्रीराम-  
तनु' हैं। 'राम अनंत अनंत गुणानां'—अतः उनके महत्त्वकी  
थाह तीनों कालमें कोई कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

कर्म दो प्रकारके हैं। सकाम और निष्काम। सकाम—  
लौकिक सुखदायक, निष्काम—पारलौकिक (निर्वाण)  
दाता है। 'रवि-रजनी' सम्येखनकी भाँति सकाम और  
निर्वाणका संयोग असम्भव ही कहा जायगा। किन्तु

श्रीरामायणजीका अवलम्ब इस 'असम्भव' पर भी हृष्टताका पोश देता है।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं, सुख सम्पति नाना बिधि पावहिं ॥  
सुर दुरलभ सुखकरि जगमाहीं, अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं ॥  
जग-मंगल गुनग्राम रामके। दानि मुक्ति घन धर्म घायके ॥  
समन पाप सन्ताप सोकके। प्रिय पातक परलोक लोकके ॥  
मंत महामणि बिषय न्यालके। मेटत फठिन कुजंक भालके ॥

हमारे कर्मों भाई, कदाचित् इन शब्दोंको कविकी अतिशयोक्ति मानें और नयी सम्भत्ताकी तेज रोशनीमें तो श्रीरामायणजीके महत्त्वका दर्शन शायद निपट ही असम्भव हो। हमें उनसे कहने-सुननेका अवकाश नहीं। हमारा तो नम्र-निवेदन केवल श्रीरामजीके जनोंसे ही है।

श्रीरामायणजी एक कविकी केवल कविता ही नहीं हैं, वह अलौकिक दिव्य शक्तिके परिपूरित हैं। श्रीगोस्वामीजी स्वयं कह रहे हैं—

'भणित मोरि सिव-रूपा बिभाती।' 'सुमिरि सिवासिव पाइ पसाऊ।'  
'तस कहिहीं हिय हरिके प्रेरे।'

उनकी प्रत्यक्ष फल दिखानेवाली बात भी सुन लीजिये—

मपनेउँ सौंजेउ मांहिपर जो हर-मोरि पसाऊ।  
तौ पुर होउ जे कहँ सब माथाभनित प्रमाऊ ॥

अतः श्रीरामायणजीको कविता न समझिये। वह वह मानस है जो मन्त्रमय सुन्दर वारिके जवालाव भरा है। इसपर एक आत्म्याविका सुनिये—

एक बार श्रीसूरदासजी बादशाहके दरबारमें विराज रहे थे। उनसे पूछा गया कि 'कविता' सर्वोत्तम किसकी है? निरपेक्षभावसे बताइये। उत्तरमें श्रीसूरदासजीने कहा— 'कविता मेरी सर्वोत्तम है।' इसपर बादशाहको सन्तोष न हुआ, उन्होंने आश्चर्यान्वित होकर कहा कि—'मैं समझा नहीं। आपने अपने मुँहसे अपनी कविताको सर्वोत्तम कैसे कहा? क्या इसमें कोई रहस्य है? गोस्वामीजीकी कविताके लिये आप क्या कहते हैं?'

श्रीसूरदासजीने मुसकुराकर कहा—'श्रीगोस्वामीजीकी कविताको आप कवितामात्र जानते हैं! मेरी भावनामें तो वह कविता नहीं, महामन्त्र है। मैंने जो अपने काव्यकी रक्षाया की, सो तो इसीलिये कि, उसमें 'भगवत्-यश' अंकित है।'

सब गुनरहित कुकवि कृत बानी। राम नाम-जश अंकित जानी ॥

सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। × × ×

इतना कहकर सूरदासजीने बादशाहको श्रीगोस्वामि-पावका वास्तविक स्वरूप बतला दिया।

खेसका कजेवर बड़ रहा है, इस भयसे वह मतिहीन भीत है। अब केवल श्रीवेणीमाधवजी अंकित श्रीरामायणजीके परत्वर दिग्दर्शन करा देना शेष है, सो भी संछेपसे ही। चमा कीजिये!

'श्रीरामचरितमानस' कैसे, कब, और कहाँ बना और वह किस महत्त्वका है? इसका उत्तर हम श्रीवेणीमाधवजीके मूल काव्यसे ही श्रीरामकिशोरशरणजीद्वारा अनुवादित शब्दोंमें प्रकट किये देते हैं—

'शुभावसरमें श्रीमहतिनन्दनने एक दिवस प्रसन्न होकर श्रीगोस्वामीजीसे कहा—'अब तुम वहाँसे श्रीमधवजीको जाओ और वहीं कुछ दिन निवास करो।''

इसकी आज्ञा पाकर वे चले और तीर्थराज-प्रयागमें ठहरे। उस समय मकर-जानके लिये योगी-तपस्वी, संन्यासी-सन्तुरुष एवं चतुर और मूर्ख सभी श्रेणीके लोग आये हुए थे। पर्व भीत जानेपर ऋतु-दिनके बाद उन्होंने देखा कि सुन्दर अच्युतकी सुलव-बाषामें दो मुनि बैठे हुए हैं। दोनों तपके पुत्र हैं और दोनोंकी मुख-कान्ति ऐसी प्रदीप्त है कि उसके सामने चन्द्रमाकी छवि भी छिप जाती है। दूरहीसे दृष्टवत्-प्रणाम करके वहाँ हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनमेंसे एक मुनिने इशारेसे उन्हें बुला लिया और अपने निकट आसन दिया। उस श्रेष्ठ आसनको हटाकर गुसाईजी पृथ्वीपर ही बैठ गये। उन्होंने अपना परिचय दिया और उनका परिचय प्राप्त किया। उन महात्माओंके एकान्त सत्संगमें उसी श्रीराम-

\* ये महात्मा श्रीगोस्वामीजीके समकालीन थे। श्रीअवधवासी सन्त-शिरोमणि श्रीमान् पं० रामवल्गुभाषणजीके परम कृपापात्र भक्तप्रवर श्रीरामकिशोरजी वकीलने हालमें अपनी ओरसे प्रकाशित श्रीरामचरितमानसमें उक्त पं० श्रीवेणीमाधवजी-कृत अतुलसीदासजीकी जीवनी शामिल कर दी है। अच्छा होता, यदि यह 'जीवनी' पृथक् प्रकाशित हो जाती! निस्सन्देह श्रीगोस्वामीजीकी जीवनी इससे अधिक प्रामाणिक क्या होगी, जिसमें उन्हींके समयमें स्थित एक महात्माने अपनी आँखों देखी बातें लिखी हैं। संवत् १६८७ कार्तिक शुद्ध नवमीको उक्त महात्माजीने इसको लिखा था। सौभाग्यवश उसकी 'भूल्लिखि श्रीवकीलसाहबको मिल गयी। उसीको उन्होंने निबन्धकाशित श्रीरामायणजीमें प्रकट कर जगत्का परम उपकार किया है।

कथाकी चर्चा हो रही थी जिसे इनके गुरु (जीनरहर्षानन्दजी) ने बाल्यपनमें शूकर-लेतमें बर्णन किया था। आश्चर्यचकित होकर श्रीगोस्वामीजीने उसका गुप्त रहस्य उनसे पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यजीने उत्तरमें कहा—‘देवदेव महादेवजीने इसकी रचना की, पीछे समय पाकर इसे भवानीको सुनाया। फिर श्रीभुशुयिज्जीको इसका उपदेश किया। मैंने जाकर श्रीभुशुयिज्जीसे इसे प्राप्त किया और ऋषि-भरद्वाजजीको सुनाया।’

इसप्रकार मुनिराजसे गुप्त रामचरितमानस-तत्त्वकी परम्परा सुनकर वे चरणोंमें पड़ गये, युगल मुनीश्वर बहुत प्रसन्न हुए। तब सावधानतापूर्वक युगल-मुनिवरोंका विमल संवाद उन्होंने श्रवण किया।

दूसरे दिन जब वे उस स्थानपर गये, तब उसे सूना पाया। न युगल मुनि थे, न वह बट बौंह और न पणकुटी ही। वे विस्मयकी बाढ़में बह चले। अस्तु।

युगल मुनिवरोंके शील-स्वभावको अरुण करते हुए वे वहाँसे चले। परन्तु भगवदिष्णाले कारीकी और निकल पड़े। कुछ दूर चले जानेपर उन्हें विदित हुआ कि मार्ग भूल गये। तब यह विचारने लगे कि अब क्या करें? लौट चले या इसी मार्गका अवलम्बन करें? अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि जो हुआ सो हुआ, अब इसी मार्गसे चलें, कारीमें भगवान् शंकरका दर्शन करके श्रीअक्षर चले जायेंगे। यह सोचकर वे आगे बढ़े और चलते-चलते गंगा-तटपर पहुँचे। फिर किनारे-किनारे चलते रहे। जहाँ सन्ध्या हो जाती वहाँ टिक जाते। तदनन्तर वे बारिपुर और दिगपुरके बीच अवस्थित श्रीसीतामढ़ी पहुँचे। वहाँ आसन जगाते ही उनकी चित्त-वृत्ति केन्द्र-व्युत् हो गयी। न भूष, न व्यास और न निद्रा। विचित्र-की-सी दशा होगयी। साथ ही उनके पूर्वजन्मके संस्कार जागृत हो उठे। वहाँ श्रीसीतामढ़ीके नीचे तीन दिन रह गये और कुछ सुन्दर कवित (जो श्रीकवितावलीमें वर्णित हैं) बनाकर, मानसिक-उद्गार निकाल आगे बढ़े।

मार्गमें विन्याचल (चुनारगढ़) के राजाको बन्दीगृहसे छुवाते हुए मुनिराज (श्रीगोस्वामीजी) कारी पहुँचे। वहाँ प्रह्लाद-घाटपर एक ब्राह्मणके घर टिके। अनन्तर उनके हृदयमें उमङ्गकी तरंगें उमड़ीं और वे श्रीराम-चरितका वर्णन करने लगे, परन्तु दिनमें रची हुई कविता सावधानता पूर्वक सुरक्षित रखनेपर भी रातको खोप हो जानी थी।

प्रतिदिन यह खोप-क्रिया होती रही। इस कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़े। क्या करना चाहिये, कुछ समझमें नहीं आता था। आठवें दिन श्रीमहादेवजीने स्वप्नमें आज्ञा दी कि—‘तुम अपनी मातृ-भाषामें काव्य रचना करो।’ निद्रा भंग हुई और वे उठकर बैठ गये। मनमें बड़ी स्वप्नकी ध्वनि गूँज रही थी। तत्क्षण भगवान् भूतनाथ भवानीजीसहित प्रकट होगये। गोसाईंजीने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिवजीने कहा—‘तुम अपनी मातृ-भाषाहीमें काव्यकी रचना करो। देववाणी संस्कृतके पीछे क्यों पड़े हो? जिसमें सबका कल्याण हो, वही करना चाहिये। केवल पूर्व प्रथा अथवा रुढ़िका आदर करनेके नाते सबके कल्याणकी उपेक्षा करना कोई बुद्धिमानकी कार्य नहीं है। अब तुम श्रीअयोध्याजीमें जाकर वास करो और वहाँ अपने काव्यकी रचना करो। मेरे प्रसादसे यह काव्य-रचना सामवेदकी ऋचाके समान सफल होगी।’

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीउमा-महेश्वर अन्तर्हित हो-गये। अपने भाव्यकी सराहना करते हुए गुसाईंजी श्रीअयोध्यापुरीको चले। जिस दिन बादशाही-दरबारमें उदयसिंहको सम्मान प्राप्त हुआ, उसी दिन श्रीगोस्वामिपाद श्रीअक्षर पहुँचे।

अपरान्हमें विमल श्रीसरयू-बारामें स्नान करके सरयू-पुलिन, बन-वाटिका और वीथियोंमें विचरने लगे। एक सन्तसे मेंट हुई। वे कहने लगे—‘चलिये श्रीहनुमान्गढ़ीके निकट मैं आपको एक सुरम्य स्थान दिखलाऊँ।’ वे सन्त श्रीगोस्वामीजीको वहाँ ले गये और उन्होंने वह रमणीय-स्थल दिखलाया। उस स्थानपर सुन्दर बट-वृक्षोंकी विटपावली थी। उन वृक्षोंमें एक सुविशाल बट-वृक्ष था। उसकी जड़में एक सुन्दर वेदिका बनी हुई थी। उस वेदीपर अग्निके समान तेजस्वी एक सुप्रसिद्ध सिद्ध-सन्त सिद्धासनसे बैठे हुए थे। उस मनोहर स्थलको देखकर गुसाईंजीका मन लुभा गया। उनके मनमें वहाँ कुटीर बनाकर बसनेकी इच्छा जागृत हुई। जब वे टहलते टहलते उम सिद्ध-सन्तके निकट पहुँचे तब उसने आसन छोड़कर जय-जयकार किया और कहा—‘मेरे गुरुने मुझे आज्ञा दी थी और उसीके अनुसार मैंने वहाँ निवास किया था। श्रीगुरुदेवजीने इसका भ्रम भी मुझे बतलाया था और उसे मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। श्रीगुरु भगवान्ने कहा था कि—‘कुछ दिन बीतनेपर गोस्वामी तुलसीदासजी वहाँ जाकर श्रीरामचरित

वर्षान करेंगे। वे आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीके अवतार होंगे और श्रीपद्मकुमारजीकी सहायतासे वे यह महान् कार्य करेंगे। यही जानकर राजराज कुबेरने इस स्थानपर बट-बट लगाकर इसकी सर्वोत्तम मर्यादा बाँध दी है। अब तू मेरी आज्ञा मानकर इस स्थानको परिष्कृत करके यहीं भजन कर। जब इस स्थानपर गोस्वामीजी उस महान् कार्यके लिये आवें, तब कुटी और आसन उन्हें सौंपकर तन त्याग करके मेरे पास चले आना।' गुरुजीका उपदेश सुनके अण्डा लगा और मेरे अनेक अन्मार्जित पुण्यका उद्वेग हो गया। यहाँ निवास करके, यहाँके सुखका अनुभव करते हुए तपस्या-पूर्वक मैं आपके आगमनकी बात देख रहा था। अतएव हे स्वामी! आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। अब मैं अपने गुरुके पास जाता हूँ।'

ऐसा कहकर वे सिद्ध सन्त बंदिकाले उत्तर पड़े और नमन करते हुए कुछ दूर आगे चले गये। वे वहाँ आसन लगाकर ध्यानावस्थित हो गये और योगाग्निके द्वारा अपने शरीरको भस्म करके परम धामको चले गये। इस लीलाको देखकर गुसाईंजीने कहा—'हे धनुर्धर! तेरी बलिहारी है।'

गुसाईंजी सुख-सुपास पाकर वहाँ बस गये। इद संवत्पूर्वक समय बिताने लगे। एक समय थोड़ा-सा कृत्रवी लिया करते थे। उन्हें केवल श्रीरघुनाथजीका भरोसा था और किसीका भी डर नहीं था। इस तरह दो वर्ष बीत गये, परन्तु उनकी वृत्ति नहीं ढिंगी और संवत् १६३१ का आरम्भ हो गया।

प्रेता-युगमें श्रीराम-जन्मकी तिथिपर जो ग्रह, राशि, लग्न, योग आदि पड़े थे, ठीक वही संवत् १६३१ की राम-नवमीको भी पड़े। उस दिन प्रातःकाल भौमवारको

श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए और संसारके कल्याणके निमित्त सबसे पहले उन्होंने गोस्वामीजीको अभिषिक्त किया। अनन्तर उमा-महेश्वर, गणेशजी, सरस्वतीजी, नारदजी, शेषजी, सूर्यभगवान्, शुक्राचार्य और बृहस्पतिजीने मंगल-मंत्र आशीर्वाद दिये। इस विधिसे विमल रामचरितमानस-का आरम्भ हुआ। जिसके अवलोकनसे मद, दम्भ, कामादि समस्त विकार और सब प्रकारके संशय मिट जाते हैं।

दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिनोंमें अर्थात् सं० १६३३ के मार्गशीर्ष मासमें श्रीराम-विवाहके दिन भवसागरसे पार उतरनेके लिये सात जहाज बनकर तैयार हो गये। पाखण्ड-प्रपञ्चको दूर बहाने, पवित्र सात्त्विक धर्मके चखाने, कलिकालके पाप-कलापका नाश करने, हरिभक्तिकी कृपा दिखलाने, मतमनान्तरके बादविवादको मिटाने, प्रेम-पाठ पढ़ाने, सन्तोंके चित्तमें भजनकी लगन उत्पन्न करने, सज्जनोंके हृदयमें प्रभोत्व बढ़ाने, 'हरि-भक्ति शिवजीके हाथमें है'—इस रहस्यको समझाने और वैदिक भक्ति-मार्गको सुझानेके लिये सप्त सोपान-युक्त दिव्य सद्ग्रन्थ बनकर तैयार हो गया। भौमवारको मध्याह्नके समय 'शुभमिति'—'हरिः ॐ तत्सत्' लिखा गया अर्थात् ग्रन्थ समाप्त हुआ। देवताओंने जयजयकारकी ध्वनि की और फूल बरसाये।

वास्तवमें यह ग्रन्थ तो उसी दिन बनकर तैयार हो गया था जिस दिन इसका आरम्भ हुआ था, परन्तु मनुष्यकी निर्बल लेखनीने उसे लिखनेमें इतने दिन लगा दिये।

श्रीगणेशजीने उसी समय इम ग्रन्थकी पाँच प्रतियाँ दिव्य लेखनीसे लिखकर तैयार कीं और वे तत्काल सत्यलोक, कैलाश, नागलोक, सुलोक एवं दिग्पाललोकमें पहुँच

\* इस सम्बन्धमें स्वयं बकील साहबने मुझसे श्रीअवधमें यह कहा था कि—'यद्यपि श्रीगोस्वामीजीके परम कृपापात्र सखा श्रीवर्णमाधवजीका लेख सर्वथा प्रामाणिक माननीय है, किन्तु फिर भी इस विषयमें जब तब मेरे हृदयमें सन्देहाभास हो जाता था। परमात्माको धन्यवाद है कि अब वह निपट दूर हो गया। बात यह हुई कि श्रीमान् नीलकण्ठजी (जो मेरे परम मित्र हैं और श्रीरामायणजीके अनन्य प्रेमी हैं)ने स्वयं निज मुखसे मुझसे कहा, कि—'प्रायः मेरी साध्वी स्त्रियोंके भरे एक वर्ष हो चुका था। एक रात्रि मैंने स्वप्नमें उस दिव्यलोकमें देखा। वह मेरा हाथ पकड़कर अपने स्थानमें ले गया। वहाँका अलौकिक रचना देख मैं विस्मित और चकित हो गया। मैंने कहा तुम्हें परम दिव्यलोक प्राप्त हुआ! यह बड़े सुखकी बात हुई। किन्तु यह तो कबो यहाँ भी कुछ भजन होता है? उसने दिव्याक्षरोंमें लिखी हुई श्रीगोस्वामीकृत श्रीरामायणजी दिखलायी और कहा—'यही हमारा इष्ट है। हम सब इसकी उपासना करते हैं। श्रीगणेशजीने इसे यहाँ भेजा है।' मैं बड़े ही आश्चर्य व सुखमें मग्न था। मेरी स्त्रियोंने कहा कि 'तुम भी यहाँ अमुक समयमें आओगे।' इस स्वप्नको सुनकर और नीलकण्ठजीकी निर्धारित परमधाम-यात्राको देखकर हाँ बकीलसाहबका वह सन्देह दूर हो गया था।

गयीं। यह रचना सबको पसन्द आयी। सबके मनमें श्रीराम-चरितमानसने अपना स्थान प्राप्त कर लिया। देवताओं-तकने उसे प्रेमसे अपनाया। अमर, नर, नाग सभी सम्प्रदायके उदारचेता महात्माओंने इसे शिरोधार्य किया। सबने शुद्ध मन, वचन और कर्मसे श्रीगुसाईजीके चरक-कमलोंकी वन्दना की।

परम मधुर पावनि करनि चार पदारथ दानि।

गुल्सीकृत रघुबर-कथा के मुरसारे सुखसानि॥

अनन्तर श्रीहनुमानजी प्रकट हुए। उन्होंने अथसे इतितक सब कथासुनी और सुन्दर कर दिया कि—‘यह कीर्ति त्रिभुवनको बस करनेवाली हो।’

तत्परचात् श्रीरघुनाथजीकी आज्ञासे आप कारीपुरीमें गये और उमा-महेस्वरको अपनी कृति सुनायी। पाठ समाप्त करके आपने रातको शिषलिङ्गके पास पोथी रख दी। सबेरे जब मन्दिरका पट खुला, तब वहाँ पण्डित, मूर्ख, तपस्वी, सिद्ध और भगवत्-दास सभी पोथीके दरानके लिये जमा हुए। सबने सतृष्ण रहिते देखा कि श्रीभगवान् शंकरने पुस्तकपर ‘सही’ कर दी है और दिव्याचरोंमें उसपर ‘सत्यं, शिवं, सुन्दरं’ लिखा हुआ है। साथ ही मन्दिर खुलते ही उन्हें इसी प्रकारकी दिव्य आकाश-वाणी भी सुनायी पड़ी।

इस अमृत घटनाका वृत्तान्त घर-घर फैल गया। सब नर-नारी प्रसन्न मन दीवे हुए गुसाईजीके पास आये, चरक-वन्दना करके उनकी जयजयकार करने और बलीर्षा लेने लगे। परन्तु पण्डितमवबली चिन्ताग्रस्त हो गयी। उन्होंने समझा कि अब तो हमारा मान और माहात्म्य उठ जायगा और जीविकामें भी बाधा पड़ेगी, क्योंकि जब इस प्रसादमयी पोथीको लोग पढ़ेंगे तब कोई भी हमें नहीं पूछेगा। अस्तु, वे दल बाँधकर उसकी निन्दा करने लगे और देव-वाणीकी महिमा गाने लगे एवं प्राचीन रुढ़िकी दुहाई देने लगे। उन्होंने उस ग्रन्थको पुरानेके लिये पङ्कज रखा। अन्ततोगत्वा निषुआ और सिन्धुआ नामक दो चोर रातके समय पोथीको चुरानेके लिये भेजे गये। वे श्रीगुसाईजीके स्थानपर गये और वहाँके रक्षक त्रिभुवनधनीका दरान करके मिहाल हो गये। दूसरे दिन उन्होंने पूछा—‘गुसाईजी! आपके स्थानमें धनुष-बाण धारण किये हुए दो श्याम-गौर किशोर अवस्थावाले कौन थे, जो रात्रिभर पहरा दे रहे थे?’ यह सुनकर सज्जन-नयन-पुलकित होकर श्रीगोस्वामीजीने

कहा—‘तुम चम्ब हो, जो तुम्हें उनके दरान हुए।’ यह कहकर आपने श्रीरामचरितमानसकी मौखिक प्रति (जिसपर श्रीशंकर भगवान्के हस्ताक्षर थे) अपने प्रेमी टोडरमलके घर बलपूर्वक सुरक्षित रख दी।

श्रीगोस्वामीजीने उसकी एक दूसरी प्रति तैयार की और उसीसे अनेक प्रतियाँ लोगोंने लिखीं लिखायीं। उसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता गया। मूर्ख पण्डितोंने मारयादि अनेक प्रयोग और प्रपञ्च रचे किन्तु वे सर्वदा असफल हुए।

अब सभी ग्रन्थ विफल हुए तब वे अपना दल बाँधकर श्रीमधुसूदन सरस्वतीके मठपर गये, उन्होंने उक्त स्वामीजीसे कहा ‘महादेवजीने श्रीरामचरितमानसको प्रामाणिक ग्रन्थ माना है सही, परन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि यह किस कोटिका है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहासमेंसे यह किसके समकक्ष है, इस बातका निश्चय हो जाना चाहिये।’ इसके उत्तरमें बतौराजने कहा—‘मैं उस पुस्तकको मँगाकर पहले देख लूँ, तब बताऊँ।’ उन्होंने उस ग्रन्थको गुसाईजीसे माँगकर पढ़ा और परमानन्दको प्राप्त हुए। उसको झौटाते हुए स्वामीजीने निम्नलिखित रूपसे उसपर लिख दिया—

‘जयति सच्चिदानन्दः’

आनन्दकानने हस्मिन् जगमस्तुत्सीतरः।

कविता मञ्जरी भाति रामभ्रमर मृषिता॥

अब पण्डित लोग फिर आये और उन्होंने निश्चयार्थ प्रार्थना की तब स्वामीजीने उनसे कहा कि—‘इस बातको सदाशिवजीसेही क्यों न पूँछ लीजिये।’ तब, सबके ऊपर वेद, उसके नीचे शास्त्र, फिर पुराण और सबके नीचे ‘मानस’ रखकर मन्दिरमें शिवजीके सामने रख दिया गया।

प्रातःकाल मन्दिरका पट खुला। सबलोग देखनेके लिये दूट पड़े। परम पुनीत वेदके ऊपर ‘मानस’ (श्रीरामायणजी) को देखकर पण्डितगण बहुत क्षणित हुए। वे गोस्वामीजीके चरकोंमें गिर पड़े, अपराध क्षमा कराया और उनका चरकोदक लेकर अपने अपने घर गये।

कहाँतक कहा जाय, कोई भी लौकिक वा पारमार्थिक कार्य ऐसा नहीं, जो इस ग्रन्थसे सिद्ध न हो सके। अण्डे आस तथा तपस्व निर्मलसर सजनोंका तो यह निश्चय है कि जैसे सत्ययुगमें श्रीमहाजी आचार्य थे और वेदसे सब धर्मोंका निश्चय होता था, तथा त्रेतामें वाल्मीकिजी आचार्य थे और श्रीमद्रामायणसे धार्मिक व्यवहारका प्रचार



होता था 'रामायण सत कोटि अपारा' 'चरितं रघुनाथस्य सत-  
कोटि प्रविस्तरं' हापरमें अगवान कृष्णहैपावन आचार्य ये और  
पुराणोंसे धर्मकी प्रवृत्ति होती थी। इसी तरह कलियुगमें  
श्रीगोस्वामीजी आचार्य हैं और श्रीरामचरितमानस एवं  
गोस्वामीजी कथित अपर सब ग्रन्थ ही धार्मिक प्रवृत्तिके कारक हैं।

एक क्षुरा-सी बात और सुन लीजिये। श्रीरामचरित-  
मानसके इस अपूर्व आश्चर्यमय महत्त्वको तो विचारिये कि  
जो ग्रन्थ प्रकारमें साढ़े तीनसौ वर्षकी आयुवाला ही समझा  
जा रहा है, उसके माहात्म्य और नवाहिक पाठके 'अथ'  
और 'इति' में श्रीमानसान्तर्गत गुसाईंजीके ही शब्दोंका  
उल्लेख अति प्राचीन श्रीमद्भारमयय तथा महाकाल-  
संहितामें, श्रीपार्वतीजीके प्रश्न करनेपर स्वयं भगवान् शंकर-  
ने इसप्रकार किया है—

वाल्मीकिस्तुलसीदासो भविष्यति कलियुगे ।  
शिवेनात्र कृतो ग्रन्थः पार्वती प्रतिबोधितुम् ॥ १ ॥  
रामभक्तिप्रवाहार्थं भाषाकाव्यं करिष्यति ।  
रामायणं मानसाख्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ २ ॥  
भाषारामायणस्यैव पठनाच्छ्रवणात्त्रिये ।  
सद्यः पुनन्ति वै सर्वे चिरकालात्तयान्यतः ॥ ३ ॥  
(श्रीमद्भारमयय)

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं च तथोत्तमम् ।  
श्रोतव्यं च तथा भक्त्या रामायणरसामृतम् ॥ १ ॥  
ऊर्जं मासे सिद्धे पक्षे चैत्रे च द्विजसत्तम ।  
नवाह्ना स्तुतु श्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥ २ ॥  
अथवा माघे विप्रं मार्गशीर्षे च श्रावणे ।  
आश्विने फाल्गुने चैव शुक्लपक्षे विशेषतः ॥ ३ ॥  
श्रुत्वा रामायणं पुण्यं परमं पदमानुयात् ।  
वर्णानामिति चारभ्य उवाच करुणानिधिः ॥ ४ ॥  
प्रथमे दिवसे पाठं कुर्याच्चैव विचक्षणः ।  
द्वितीये दिवसे विप्र शतानन्दस्य वन्दनम् ॥ ५ ॥  
तृतीये कृतशौचान्तं चतुर्थे वारिजेक्षणः ।  
पञ्चमे रामशैलान्तं शोकस्थितिं च षष्ठे ॥ ६ ॥  
सप्तमे मास्तेवर्षे चन्द्रे रामस्य संस्थितिः ।  
अष्टमे गुरुवाक्येन राज्यसंभारसंस्मृतिः ॥ ७ ॥  
नवमे पतङ्गकिरणैर्नैव दहन्ति मानवाः ।  
एवं क्रमेण श्रोतव्यं नवाह नवभिः दिनैः ॥ ८ ॥

देखा आपने श्रीरामचरित-मानसका दिव्य—

अलौकिक ! आई ! अब खूबकर भी भाषा भाषा कहकर कभी  
इसका अपमान न करना। जाने दो उनको जो—'वातुल  
यूत विवस मतवारे' हैं हमारा निवेदन तो आपसे है, कि—  
तिनकर कहा करिब नहि काना। जिन कृत महा मोह मद पाना ॥

श्रीगोस्वामीजीके शब्दोंको अथसे इतितक नवाहिक  
पाठ-क्रमसे मिळान लीजिये। उनके शब्द प्राकृतिक नहीं—दिव्य  
हैं, निश्चय दिव्य हैं !! उनकी दिव्यताकी साक्षी श्रीमद्भ-  
रामायण और महाकालसंहिता पुकार पुकारकर दे रही हैं।

रावनारि जस पावन, गावहिं मुनिहि ज लोग ।

रामभगति दठ पावहिं, निनु बिराम जप जोग ॥

रामचरन रति जो चहै, अथवा पद निरवान ।

भावसहित सो यहि कथा, करै अवन पुटपान ॥

## अभियोग

(लेखक—श्रीसियारामशरणजी गुप्त)

बालक चन्द्रकेतुने श्रीरामचन्द्रके पास आकर लीकके  
स्वरमें कहा—'ताऊजी, आप काकाजीसे न बोला करें !'

बालकको गोदमें उठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए  
उन्होंने कहा—'क्यों बेटा, हुआ क्या ?'

थोड़ी दूरपर लक्ष्मण खड़े थे। दूसरी ओर मुँह करके  
वे मुसकुराये। बालकने उनकी ओर उँगली उठाकर  
कहा—'वे और तो सबसे बोलते हैं, मुझसे ही नहीं बोलते।  
छोटे काकाजीके धोखेमें उनकी पीठपर चढ़ गया तो उन्होंने  
डकेलकर मुझे पीछे हटा दिया। वे मुझे प्यार नहीं करते।  
आप उनसे न बोला करें !'

श्रीरामचन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़े। बालकका मुँह  
खूमकर उन्होंने कहा—'बेटा, इस तरह नहीं कहा जाता।  
वे तेरे पिता हैं। उनके प्यार करनेका डंग यही है।'

चन्द्रकेतुने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, ऐसे पिताकी  
जरूरत नहीं है। इनसे तो छोटे काकाजी अच्छे पिता हैं।  
आप इनसे न बोला करें !' ❀

\* इस गद्यमें सम्मिलित कुटुम्बमें रहनेवाले ऐसे पिताका  
उल्लेख है जो बच्चोंके सामने अपने पुत्रसे बोलना सभ्यताविरुद्ध  
समझता है। हो सकता है, बहुतसे लोग इस प्रथाको ही  
सभ्यताके विरुद्ध समझें। लेखकको इस झगड़ेसे प्रयोजन  
नहीं है। उसने तो अपने आस-पास रहनेवाले पिताओंमें श्रीराम  
और लक्ष्मणको देखनेका ही प्रयास किया है।—लेखक



## रामायणमें हिन्दू-संस्कृति

( लेखक—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' )



वरास-प्रान्तके लक्ष्मणप्रतिष्ठ विद्वान् और वक्ता श्रीयुत शिवस्वामी देवरने एक बार अपने एक प्रसिद्ध व्याख्यानमें कहा था, 'हमारा राज्य खिन जावे, ऐश्वर्य धूलमें मिले, विभव पदवर्जित हो, समस्त सगति हर ली जावे, हम सर्व प्रकार निःसम्बल हो जावें, सर्वस्व गँवा दें, तो भी हम निःस्व न होंगे, यदि रामायण और महाभारत-जैसे हमारे अलौकिक रत्न सुरक्षित रह सकें।' इस कथनका रहस्य क्या है? बालबचें बात यह है कि जातिकी संस्कृति ही उसका जीवनसर्वस्व होती है। कोई जाति अपनी संस्कृति खोकर जीवित नहीं रह सकती, संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे जाति-जीवनका विशाल प्रासाद निर्मित होता है। जिस दिन वह आधारशिला स्थानच्युत होगी, उसी दिन पुष्टे पुष्ट प्रासाद भी भहरा पड़ेगा। संसारमें कुछ निर्जीव जातियाँ अब भी जीवित हैं, किन्तु अपनी संस्कृतिको खोकर वे कष्टगत-प्राण हैं, उनको मरी ही समझिये, चाहे आज मरें, चाहे कल। कारण यह है कि संस्कृति ही किसी जातिके अस्तित्वका पता देती है, यही वह चिन्ह है, जो उसके पूर्वगौरव, महान् आदर्श, और लोकोत्तर कार्यकलापद्वारा संसारकी अन्य जातियोंसे उसको पृथक् करता है। जिस समय चारों ओर अन्धकार होनेके कारण वह अवनति-गर्तकी ओर अग्रसर होती रहती है, उस समय उसीके आलोकसे आलोकित होकर वह उचित पथ ग्रहण करनी है, और उस समुन्नति सोपानपर चढ़ने लगती है, जो उसको उत्थानके समुच्च शिखरपर आरुढ़ कर देता है। भारतमें यवन, शक, हूण आदि बड़ी बड़ी बलवान् जातियाँ आयीं। परम पराक्रान्त वह मुसल्मान जाति आयी, जिसने जहाँ शासन किया, वहीं अपने धर्मकी वह विजय-दुन्दुभी बजायी, जिसके द्वारा देशका देश उसके धर्ममें दीक्षित हो गया। किन्तु रामायण और महाभारत-की पवित्र संस्कृतिके बलसे हिन्दूधर्म आज भी जीवित है, जीविन ही नहीं, उसने अपनी वह अलौकिक महत्ता दिखलायी है कि जिसके बलसे संसार-विजयिनी करवाल भी

टुकड़े टुकड़े हो गयी। जिस समय भारतव्यापी मुसल्मान साम्राज्य उत्तरोत्तर वृद्धि पा रहा था, और उसकी गुरु गर्जनासे भारत-वसुन्धरा कम्पित हो रही थी। जब वह अचगत्त हो रहा था, कि अब भारतीयताकी समाप्ति हो जायगी, हिन्दू-धर्म विच्छिन्न हो जायगा, हिन्दू-जाति नाम-शेष रह जायगी, और भारतभूमिका अपार विभव मुसल्मान जातिके विशाल उदरमें समा जायगा। उस समय कतिपय महान् आत्माओंमें कुछ ऐसी संस्कृति जागृत हुई, जिन्होंने भारतवर्षकी काया ही नहीं पलट दी, हिन्दू-जातिका पुनरुज्जीवन भी कर दिया, यह बात इतिहास जाननेवालोंको अबिदित नहीं। यह कौन संस्कृति थी? वही रामायण और महाभारतकी। उस रामायण और महाभारतकी जो हिन्दू-संस्कृतियोंके आधार हैं। मैं समझता हूँ, अब मदरास-प्रान्तके विद्वान्के कथनका रहस्य आप लोगोंकी समझमें आ गया होगा।

भारतमें समय समयपर विभिन्न विचारके बड़े बड़े प्रवाह आये, कुछ काज्जत उनके प्रबल वेगके सामने वह आत्मविसर्जन करना दिखलायी पड़ा, परन्तु उसके धैर्यका पाँव स्थानच्युत कभी नहीं हुआ। वह मदा सँभला, और अपनी भारनीयता-धारामें उसने सबको बिलीन कर लिया। उसकी महान् संस्कृति ही उसकी इस सफलताका कारण है। कविकुल-पुंगव वात्समीकिकी महिमामयी लेखनी जिस प्रकार इन आर्य संस्कृतियोंका उल्लेखकर धन्य हुई है, उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासकी कवामयी कवितामें भी उनका अलौकिक समकार दृष्टिगत होता है। गोस्वामीजीकी वर्णना सामयिकता लिये है, इसलिये उन्हींके रामायणसे कुछ ऐसी संस्कृतियोंका वर्णन यहाँ किया जाता है जो हमारे सामाजिक जीवनकी सञ्जीवनी शक्तियाँ कही जा सकती हैं। गोस्वामीजीकी रामायण आर्यसम्बन्धता और संस्कृतिका अलौकिक कोष है, जहाँ देखिये, वहाँ उनकी लेखनी, इस विषयमें बड़ी ही मार्मिकतासे चकती दिखलायी पड़ती है। उनकी रामायण-का गेह गेह, जने जने प्रचार क्यों है? इसीलिये, कि हिन्दू-इदय जिन आदर्शोंको देखकर पुजकित होता है, जिन आदर्शोंद्वारा उद्बलित और रससिक्त बनता है, उसमें उन्हीं आदर्शों और आर्षोंका बड़ा ही इक्षुप्राप्ती चित्रण है। गोस्वामीजीकी

श्रीमतीता गम



मत्ता वत्तितः दीनः गतः समः सुखदः श्रवणः । नेतुमर्हसि काकुत्थः । समानमुखदः चित्तमः ।



कोकनीका चमत्कार नहीं है, कि वह मूर्तिमत्ता आर्यसंस्कृति है, वह मूर्तिमत्ता कहीं कहीं इतनी भगोहर और सुन्दर है, इतनी प्राञ्जल और सरस है, कि उसकी मर्मांसा नहीं हो सकती। उनकी अद्भुत रचनाओंके पढ़ते समय कभी कभी इतनी सम्भवता हो जाती है, कि महाभारत-युद्धका अनुभव होने लगता है। वही कविता मर्मस्पर्शिणी होती है, जिसमें वे ही दरब सुन्दरतासे सामने आते हैं, जिनको हम प्रायः देखते रहते, अथवा जिनका अनुभव प्रतिदिन करते रहते हैं, गोस्वामीजी इसी प्रकारकी कविताओंके आचार्य हैं। वे न तो 'क' पुण्य तोड़ते हैं, न अगम अगोचरका व्यापार करते हैं, न अक्षरमें प्रासाद-निर्माण ही। वे मानवचरित्रमें ही आत्माकी महत्ताका प्रदर्शन करते हैं, और मित्यके कार्य-कलापमें ही 'सत्यं शिषं सुन्दरम्' की कल्पना। इसीलिये वे जो कुछ कहते हैं, उनको हृदय स्वीकार कर लेता है, कुछ इसी प्रकारकी कृतिर्वा आपके सामने उपस्थित की जाती हैं।

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर भगवान् श्रीरामचन्द्र वन-पात्रके लिये प्रस्तुत हैं, भीमती कौशल्यादेवीकी सेवामें उपस्थित होकर उनसे अनुभव-विनय कर रहे हैं, इसी समय व्यवहितहृदया विवेक-नन्दिनी वहाँ आयीं। गोस्वामीजी लिखते हैं—

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाह।

जाइ सासु-पद-कमल-युग बंदि बैठि सिरु नाह॥

दोहेके द्वितीय भागमें कुलकावनाकी कितनी मर्मादायीलता अंकित हुई है, वह अविदित नहीं। भगवती जानकी सीधे आकर भगवान् रामचन्द्रके सामने नहीं खड़ी हो गयीं, जन्हींसे कथोपकथन नहीं प्रारम्भ किया, क्यों ? इसलिये कि इससे भीमती कौशल्यादेवीका तिरस्कार होता। आर्य-जातिकी यह संस्कृति है, कि वहाँकी उपस्थितिमें बहुतें जजा त्यागकर पतिसे सम्भाषण नहीं करती, उनसे जोखती तक नहीं। आज भी कुलीनोंमें यह परम्परा प्रचलित है। फिर आदर्श गृहिणी सीतादेवी ऐसा क्यों करती ? वे आयीं और सासकी चरब-बन्धना करके, सिर नीचा करके बैठ गयीं, कितना सज्जन भाव है। 'बैठि सिरु नाह' लिखकर गोस्वामीजीने जो मार्मिकता दिखायी है, वही उनकी विशेषता है। यह 'बैठि सिरु नाह' जानकीजीके हृदयका प्रतिबिम्ब है। इस कार्यद्वारा उन्होंने अपनी मर्मादायीलता, अपनी आकुलता, और अपनी अशक्तताका ही मदर्शन नहीं किया, बल्कि दिखलाकर सहायताकी भिषा भी माँगी। सम्भव है कि आजकलकी गिञ्जिता

कावनाएँ, इसको पराधीनताकी कुत्सित बेटी समझें, किन्तु यह मर्मादायीलताकी वह मौखिक भाषा है, जिसको चारखर अनेक कुल-बाह्याकी अपूर्व शोभा हो सकती है। आर्यसंस्कृतिर्वा अत्यन्त उदात्त हैं, उनमें स्वायंभरताका उत्तम स्थान नहीं, जितना सदाशयताका। वह अपने सुख-विधासमें ही जीवनकी सार्थकता नहीं समझती, वह सभी कृतकृत्य होती हैं, जब गुणजन, आत्मीयजन, अथवा अन्य उपकार-कामुक जनोंकी सेवाकर आत्म-उत्सर्ग कर पाती हैं। वे उच्छ्वङ्गलता एवं निर्लज्जतासे मर्मादायीलताको, और संकीर्ण हृदयता एवं मदान्धतासे सङ्कटताको उत्तम समझती हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें ऐसे आदेश हैं, कि जिनसे इसप्रकारके संस्कारोंका उद्भव हो।—कुत्र नीचे लिखे जाते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विधायशोबलम्॥

भगवान् अनु कहते हैं—

जो अभिवादनशील और मित्य वृद्धसेवा-तत्पर हैं, उनकी आयु बढ़ती है, और उन्हें विद्या, धन और बल प्राप्त होता है।

विवाहकाकालके समय ससुराजीमें भी यह प्रतिज्ञा करती है—

कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा तं मम्युभाषिणी।

दुःखे धीरा सुखे हृष्टाः द्वितीये सा ब्रवीद्वचः॥

कुटुम्बकी रक्षा करूँगी, सदा ममुरभाषिणी रहूँगी, दुःखमें धीर और सुखमें आनन्दित रहूँगी।

(१) गुरुषु सखिषु भृत्ये बन्धुवर्गे च मर्तुर्व्ययं गतमदमाया वर्त्तयेत् एवं यथाईम्—

(२) मर्यादकारिणी गृहविश्रममादेववर्त्तयतिमानुकूल्येन वर्त्तेत, तन्मतेन कुटुम्बचिन्तामत्यनि सन्निवेशयेत्।

(३) अश्रुश्रुश्रुपरिचर्यां तत् पारतन्त्र्यमनुसरवादितापरिमिता प्रचण्डालापकरणमनुचैरहासः तत् प्रियाप्रियेभ्य स्वप्रियाप्रियेभ्यश्च वृत्तिः। (वात्स्यायन।)

(१) पतिसे, गुरुसे, सखियोंसे और बन्धुवर्ग एवं सेवकोंसे निरभिमान रहकर यथायोग्य वर्त्ताव करे।

(२) आर्थोंको चाहिये, पतिको देवता-समान जाने, उसकी इच्छाके अनुसार जीवन व्यतीत करे और उसकी सम्पत्तिके अनुसार कुटुम्बीजनकी चिन्तामें लीन रहे।

(३) कुलबन्धु सास-ससुरकी सेवा करे, उनकी आज्ञाओं में रहे, उनकी परतन्त्र बने, उनकी बातोंका अनाप न दे,

मिह भाष्य करे, जोरसे न हँसे । उनके मित्र-अभिषेको  
अपने मित्र-अभिषेके समान समझे ।

जिस समय श्रीमती जनकनन्दिनी सिर नीचा करके  
चरणोंके समीप बैठ गयीं—उस समय—

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥

इस पक्षमें बयावसर 'सुदुबानी' शब्दका कितना  
सुन्दर प्रयोग है । यदि दोहेका 'पद्-कमल बंदि वैठि सिन्हा-  
नाह' श्रीमती जानकीके विनय-मग्न हृदयका सूचक है, तो  
यह 'सुदुबानी' शब्द कौशल्यादेवीके कोमल वात्सल्यपूर्ण  
हृदयका परिचायक । इसके उपरान्त श्रीमती कौशल्यादेवी-  
के हृदयकी क्या अवस्था हुई, इसकी सूचना यह अर्थांकी  
देती है 'अति सुकुमारि देखि अकुलानी' कितनी स्वभाविकता  
है ! वे कितना शीघ्र अपनी पुत्रवधूके हृदयमें प्रवेश कर गयीं ।  
श्रीजानकीजी सासके समीप सिर नीचा करके बैठ तो गयीं,  
परन्तु मुहँ न खुला, वे कुछ कह न सकीं, कैसे कहतीं,  
संकोचने सब बन्द कर रक्खा था । यही नहीं, हृदयमें दुःखकी  
एक विचित्र धनधोर बसा उठ रही थी, वे सोच रही थीं—

वैठि नमित मुख सोचति सीता । रूपरासि पति-प्रेम-पुनीता ॥  
चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृतीसन होइहि साधू ॥  
कौतनु प्रान कि केवल प्राना । विधि करतव कहु जाइ न जाना ॥

चाह चरन-नख लेखति चरनी ।

देखा आपने, सामयिक अवस्थाकी कितनी सुन्दर  
वर्णना है ?—'वैठि नमित मुख' से 'चाह चरन नख लेखति  
चरनी' तक कैसे आबमय शब्द-विन्यास हैं, उनसे श्रीमती  
जानकीदेवीकी संकोचमय दशा, उनके चिन्ता-माय, उनके  
हृदय विचार, पवित्र प्रेम आदिपर कितना सुन्दर प्रकाश  
पड़ता है । हृदयमें जो घटा घूमसे उठ रही थी, नेत्रोंके  
सहारे वह चरस भी पड़ी—गोस्वामीजीने लिखा—

मंजु बिलोचन मोचति नारी—

कौशल्यादेवी पहले ही सब समझ गयी थीं, नेत्रोंके  
जखने उनको और आर्द्र कर दिया, इसलिये दूसरी अर्थांकी  
यों लिखी गयी—

नेली देखि राममहतारी ॥

'राममहतारी' का कितना सार्वक प्रयोग है—पुत्रपर  
माताका अधिकार तो सूचित हुआ ही, साथ ही उनके  
हृदयकी महत्ता और प्रबलशीलता भी उससे विदित हुई ।  
राम-महतारी क्या बोलीं, अब उसे भी सुनिचे—

तख सुनहु सिय अतिसुकुमारी । सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी ॥

पिता जनक भूपाल-मनि, ससुर मानु-कुल-भानु ।

पति रविकुल-कैरव विपिन विप्र-गुन-रूप-निधानु ॥

मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई । रूप-रासि गुन सीतु सुहाई ॥  
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥  
करुपवेति जिमि बहु विधि लाली । सीमि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥  
पूरत फलत भवेउ विधिनामा । जानि न आइ काह परिनामा ॥  
पल्लोपीठ तजि गोद हिंदोरा । सिय न दीन्ह पगु अननिकोरा ॥  
जियनमूरि जिमि जोगवत रहेऊँ । दीपनाति नहिं टारन कहेऊँ ॥  
सोइ सियचलन चहति बन साया । आयसु काह होइ रघुनाथा ॥  
चंद-किरन रस-रसिक-चकोरी । रविरुख नयन सकै किमि जोरी ॥

करि, केहरि, निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि ।

विषवाटिका कि सोह सुत सुमग सजीवन-मूरि ॥

बनहित कोल किरत किहोरी । रची विरांचि विषय-सुख-मोरी ॥  
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ॥  
कै तापसतिव काननजोगू । जिन्हतप हेतु तत्रा सब भोगू ॥  
सिब बन बसिहि तत केहि भंती । भित्रलिखित कपि देखि डेरती ॥  
सुर-सर-सुमग बनज-वन-चारी । बाबर-जोग कि हंसकुमारी ॥  
अस बिचारि जस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई ॥  
जौ सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥

श्रीमती कौशल्यादेवी भावार्थ माता ही नहीं, भावार्थ  
सास भी हैं । सासका पतोहूके प्रति वह सच्चा और पवित्र  
स्नेह जो गृहको स्वर्ग बनाता है, गार्हस्थ्य धर्मको उज्जत कर  
कुटुम्बको सुख-शान्तिमय कर देता है, वे उसकी मूर्ति थीं ।  
आबमय शब्दोंमें उनके हृदयका प्रेम जिस प्रकार व्यक्तित  
हुआ है, वह बड़ा ही गम्भीर, उदात्त एवं दायक है ।

'नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥'  
करुपवेति जिमि बहु विधि लाली । सीमि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥'  
जियनमूरि जिमि जोगवत रहेऊँ । दीपनाति नहिं टारन कहेऊँ ॥'

इन पंक्तियोंमें कितनी ममता भरी है, इनमें कितना  
आदरभाव और प्यार है, कितना प्रेम और वात्सल्य है,  
कितनी कद्रवा और प्रबलशीलता है, क्या यह बलवाना  
होगा ! कौन सहज है, जो इन भावोंको इनमें व्यक्तता  
न पावेगा । अब कौशल्यादेवी कहती हैं, 'पल्लोपीठ तजि  
गोद हिंदोरा । सिय न दीन्ह पगु अननिकोरा ॥ बनहित कोल

किरात किसोरी । रबी विरचि विषय-मुख-मेरी ॥ कै तापस-  
तिथ कानन-मोगू । जिन्ह तपहेतु तजा सब मोगू ॥ सिव बन  
बासिहि तात केहि भौंती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ।'  
साथ जानकी देवीकी सरलता, कोमलता, उनके स्वभावका  
भोकापन, और उनकी भीड़ प्रकृति आँखोंके सामने फिर  
जाती है, साथ ही हृदयमें एक ऐसा वेदना होने लगती है,  
जो चित्तको विह्वल कर देती है । यदि कौशल्यादेवी  
सांताजीका सुँह न जोइती रहती, उनके मुखसे रहनेका  
ध्यान न रखती होती, तो उनके मुखसे इस तरहकी बातें  
न निकलती । इन पंक्तिमें उनकी व्याधा ही मूर्तिमन्त  
होकर बिराजमान नहीं है, उनकी वह बाण्वा भी झलक रही  
है, जो पुत्रवधूके साधारण कुशोंको देखकर भी विचलित  
होती है । 'चंद-किरण-रस-रासिक चकोरी । रविरत्न नयन  
सकै किमि जोरी ॥ सुर-सर-सुभग बनब-बन-चारी । टावर-जोग  
कि हंसकुमारी ॥ विषवाटिका कि सोह झत सुभग सजीवन-मूरि ॥'  
किसी पुत्र-वधूके पक्षमें अपने पुत्रसे कोई सास इससे अधिक  
और इससे उत्तमतासे क्या कह सकती है ? इन पंक्तिमें  
एक कुल-बाबाका हृदय खोलकर उसके प्रियतमको  
दिलखाया गया है, और साथ ही यह भी सूचित किया  
गया है, कि एक पति-प्राणाके विभोग-विधुरा बननेपर उसका  
जीवन कैसा संकटापन्न हो सकता है । इनमें कौशल्यादेवी-  
की गम्भीरता जितनी सुन्दरतासे स्फुटित हुई है उतनी ही  
उनकी आधुक्ता, सहृदयता, और मार्मिकता भी । एक  
ओर वे पुत्र-वधूकी गम्भीर अनोखेदना, उसकी वन-नामनकी  
असमर्थता आदिका आवरण हटाती हैं, और दूसरी ओर  
पुत्रकी आँखें लोखती हैं, और उसे उचित कर्तव्यके लिये  
सावधान करती हैं । ऐसे अवसरपर वे अपने उत्तरदायित्वको  
भी नहीं भूलती, वे पुत्रके महान् कर्तव्यों, उनके असीम  
संकटों और वैशुविपाकको समझती हैं ।

अतएव यह भाशा नहीं देती, कि अपनी स्त्रीको अवरण  
साथ लेते जाओ, केवल इतना ही कहती है—

सोइ सिय चलन चाहति बन साथ । आयसु काह होइ रघुनाथ ॥

अस निचारि अस आयसु होई । मैं सिख देउँ जानकिहि सोई ॥

फिर व्यथित और विरहकातरा होकर यह कह पड़ती है—

जौं सिय मदन रहे कह अंता । मोहि कहँ होइ बहुत अनठंठा ॥

यह अन्तिम पक्ष उनके व्याथामय आन्तरिक आघात  
सूचक है, पुत्र जाय तो जाय, किन्तु दिनबारीका पुत्रवधूके

बह नहीं लगाना चाहती । फिर भी कबजेपर पत्थर रख-  
कर उन्होंने आत्मसुखको तिलांजलि दी, और जानकी-  
देवीकी मर्म-व्याधाओंकी ही मरहम-पट्टी करनेकी पूरी चेष्टा  
की; वही है उनकी महत्ता और महानुभावता, वही 'राम-  
महतारी' पदकी पूरी सार्थकता हुई । आर्यसंस्कृति की ही  
यह उदात्त करुणा है, और आर्यसंस्कृति ही है वह अपूर्व  
आदर्श ।

आजकल सासकी बड़ी कुत्सा हो रही है, उसे मानवी  
नहीं मानवी कहा जाता है । पुत्र-वधूओंका बच्चे तो वे  
उनका गला घोट दें, पर क्या करें, कई कारकोंसे विवश हैं ।  
फिर भी उनके विरुद्ध खेसनी भूमसे बख रही है, अधिकतर  
पत्र-पत्रिकाओंमें वे बड़े अच्छे शब्दोंमें कारण की जाती हैं ।  
यह वर्तमानकालिक कुछ आन्दोलनोंका फल है, मुख्यतः  
से सब प्रकारकी स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही कतिपय नव्य-  
वादियोंका मत है, उन्हींके हाथों जहाँ माता-पिताकी झीझ-  
जेवर हो रही है, वहाँ स्वभूदेवीकी भी । मेरा निवेदन है कि  
जितनी नवज्योतिर्मयी पुत्रवधुएँ हैं, क्या वे बिल्कुल दूधकी  
पुखी, और साफ सुथरी हैं, और जितनी संसारकी काखिमार्य  
हैं, वे सासोंके मुँहपर ही पुती हुई हैं ? क्यापि नहीं,  
अभी भी आर्यसंस्कृति जीवित है, भारतवर्षकी अधिकतर  
कुल-खजनाएँ आज भी उसीके शासनमें हैं । नगरोंमें  
विरोधकर आमोंमें अभी अनेक सास-पतोडुएँ ऐसी हैं,  
जिनको हम मूर्तिमती कौशल्या और जानकी न कह सकें  
तो मानवी तो अवश्य कह सकते हैं । उन्हींके पुण्यप्रतापसे  
आज भी भारतमाताका मुख उज्ज्वल है, मेरा विश्वास  
है, सदाही उज्ज्वल रहेगा, क्योंकि 'सत्यमेव जयते नानृतम्' ।  
मैं यह नहीं कहता कि कुछ सास नहीं हैं, हैं, अवश्य हैं, किन्तु  
जहाँ दो चार दुष्ट हैं, वहाँ दस पाँच भली भी हैं । कुत्सा  
करते समय भली सासोंको क्यों सुना दिया जाता है ?  
कारण रक्सा जाय जो आज बधुएँ हैं, कल वे भी सास होंगी ।  
मेरा विचार है कि सास भली होनेके लिये पुत्रवधूका भी  
भली होना आवश्यक है । बिना कारण कोई किसीको नहीं  
सताता, सतानेके कारण होने चाहिये । फल भीष्मका  
परिग्राम होता है । बिना कुचीज बोये फुल्ल नहीं फल  
सकता । तापी दोनों हाथोंसे बजती है । पतोडू सास-  
का आवरण करेगी, तो कोई कारण नहीं है कि सास उबका  
ओकर सीधी हो । गृहकलह जहाँ नहीं होता, किन्तु संभाव-  
नेसे ही सब सँभल जाता है, बनावेसे विगयी बात भी  
बन जाती है । सहिष्णुता और चमा बड़ी चीज है,

सेवा और आत्मोत्कर्षसे पत्थर भी पिघल जाता है। भगवान् करे, घर घर श्रीमती कौराव्या-जैसी सास और श्रीमती जानकी जैसी पुत्रवधुएँ बिजलायी पड़ें, जिससे हमारे पवित्र गृहमें पाश्चात्य कलुषित प्रभावोंका पदार्पण न हो सके।

माताकी बातें सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्र चिन्तित हुए, पहले तो विवेकमय ध्यान करके उन्होंने उनको समझाया, इसके उपरान्त जानकीजीसे कुछ कहना चाहा, परन्तु मर्षादा बाधक हुई, माताका संकोच हुआ, किन्तु समय देखकर उन्हें उनसे कुछ कहना ही पड़ा, गोस्वामीजी लिखते हैं—

मातु समीप कहत सकुचार्ही। बोलै समउ समुक्ति मन माहीं।

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्षादापुरुषोत्तम हैं, परन्तु प्रबल काहसे उनकी भी न चली। श्रीमती जानकीदेवीसे उन्होंने जो कहा, उसे सुनिये—

राजकुमारि सिखावन सुनहू। मान भौति जिय अनि कछु गुनहू ॥  
आपन मोर नीक जो बहहू। नचन हमार मानि गृह रहहू ॥  
आयसु मोरि सास-सेवकाई। सब बिधि मामिनि भवन भलाई ॥  
पहिलैं अधिक घरमनहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा ॥  
जब जब मातु करहिं सुधि मोरी। होइहि प्रेम-विकल मतिमोरी ॥  
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदुबानी ॥  
कहाँ सुभाव सपथ सत मोही। सुमुक्ति मातुहित राखौ तोही ॥

कैसी उचित और मार्मिक बातें हैं, भगवान् रामचन्द्र जैसे बिनय-मग्न और मर्षादारीक पुत्रके मुखसे दूसरी कौन बात निकलनी? उन्होंने यह भी कहा, जो कुछ मैं कह रहा हूँ, वह गुरु एवं भुक्ति-सम्मत है, अतएव इस धर्म-कलको, बिना कहका अनुभव किसे लाभ करना चाहिये—

गुरु श्रुति संमत धरमफल पाइअ बिनहिं कहेस।

श्रुति कहती है—‘मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य-देवो भव।’

शास्त्र कहता है—‘प्रत्यक्षदेवतामाता’ ‘जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसा।’

स्मृति कहती है—

संयतोपस्कराः दक्षाः हृष्टा न्यबपराह्मुखी।

कुर्वाण शत्रुरयोः पादबन्दनं मर्तृतपरा ॥

(याज्ञवल्क्य)

उपाध्यायान् दशाचार्य्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

(मनु)

माता, पिता और आचार्य देवता हैं। माता प्रत्यक्ष देवता है। जननी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है। श्रीको संयतोपस्कर, दक्ष, हृष्ट और न्यब-पराह्मुखी होना चाहिये। पतिमें रत रहकर सदा सास-ससुरकी सेवा करना उसका धर्म है। उपाध्यायसे दशगुण आचार्यका, आचार्यसे शतगुण पिताका, और पितासे सहस्रगुण गौरव माताका है।

इस प्रधान धर्मकी शिक्षा देनेके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्रने उनकी अथङ्करताओं और कर्हाकी असुविधाओंका बड़ा ही विशद वर्णन किया है, पाठक रामायणमें उसको देख सकते हैं। अधिकांश वर्णन बड़ा ही भावमय और सुन्दर है, कवित्व तो उसमें छूट-छूटकर भरा है—कुछ पंक्तियाँ देखिये—

डरपहि धीर गहन सुधि आप। मृगलांचनि तुम्ह मीर सुमाण ॥  
हंसगबनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देखि लोंगू ॥  
मानस-सलिल-मुधा प्रतिपाली। जिअइ किलवनपयोधि मराली ॥  
नव-रसाल-वन विहरनसाला। सोह कि कोंकिल बिपिन कराला ॥

इन पंक्तियोंमें कितनी स्वाभाविकता और भावुकता है, सहृदयजन स्वयं उसका अनुभव करें। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि श्रीमती जनकनन्दिनीका चरित्र जिस रूपमें भारतीय कवियोंने व्यक्त किया है, वह कल्पित है, उसमें वास्तविकताका छेरा नहीं। ‘उनपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ता है, परन्तु उस अवस्थामें भी उनको कुछ कहते नहीं देखा जाता, शांत होता है उनके मुखमें जीभ ही नहीं, या किसीने उनके मुँहपर झुहर लगा दी है। वह बड़ेसे बड़ा दुःख सह लेती हैं, परन्तु उल्लू भी नहीं करती। बस टूट पड़ता है, किन्तु हिलतीं तक नहीं। ऐसी प्रस्तर-प्रतिमा हो सकती है, कोई जीव-चारिणी नहीं।’ ऐसी ही ऐसी तर्कनार्थ करके, वे विद्वाने फनोखे कोबले हैं, और इसप्रकारकी और कितनी ही ऊटपटांग बातें कहते रहते हैं। वास्तव बात यह है कि जिस बातावरणमें उनके दृढ़पका विकास हुआ है, जो दरप उनके नेत्रोंके सामने उपस्थित होते रहते हैं, पति-पत्नीके जिन पारस्परिक व्यवहारोंका उनको अनुभव है, कैसी ही उनकी विचारपरम्परा और मनमौजी है। योरपकी

स्त्रियोंमें आत्मपरायणता अधिक होती है। वे उतनी पति-प्रेमिका, और स्नेहमयी नहीं होतीं, जितनी पश्चिमाशियेतः भारतकी कुल-कलनाई होती हैं। वे पतिपरायणता तभीतक रहती हैं, जबतक उनके स्वार्थोंकी पूर्ति होती रहती है, स्वार्थमें व्याघात उपस्थित होनेपर वे तत्काल उनको त्याग देती हैं, आजकल यह प्रवृत्ति बहुत ही प्रबल हो गयी है। पतिकी आज्ञामें रहना, उनकी सेवाके लिये आत्मोत्सर्ग करना, उनकी दृष्टिमें आत्मविक्रय है। विवाह-बन्धन उनकी दृष्टिमें उतना पवित्र नहीं, वे बातकी बातमें उसे तोड़ सकती हैं। उनका स्वभाव उग्र, असंयत, और प्रायः उच्छृंखल होता है, इसप्रकारकी प्रवृत्तिको वे तेजस्विता कहती हैं। उनकी स्वतन्त्रताकी कामना इतनी तीव्र होती है, कि पतिके सामने यदि थोड़ा भी झुकना पड़े, तो वे उसे परतन्त्रता मान बैठती हैं। जिस देश, जिस समाजके ऐसे आदर्श हों, उस देश और समाजमें पला, यदि सीता-देवीको अधिक धीर, गम्भीर, संयत, आत्मत्यागकी मूर्ति, और पति-प्राप्ता देखकर उनके विषयमें तयाकथित विचार प्रकट करे तो क्या आश्चर्य ! मेरे कथनका यह मतलब नहीं, कि योरपमें पतिपरायणता क्षीय होती ही नहीं, ऐसा कहना, और सोचना, अभ्यास होगा। मिश्टनने एक स्थानपर 'ईव'के मुखसे इन शब्दोंको कहलाया है— वे शब्द उन्होंने आदमसे कहे हैं—

“What thou bidd'st Unargued I beg, so God ordains, God is thy law, thou mine.”

‘जो आपकी आज्ञा होती है, उसे मैं बिना कुछ कहे खुने स्वीकार करती हूँ। ईश्वरीय इच्छा यही है। आपके नियन्त्रा ईश्वर हैं और मेरे आप।’

संसारमें जितनी सती साध्वी स्त्रियाँ होंगी, प्रायः सबके हृदयका भाव ऐसा ही होगा। यदि योरपकी स्त्रियोंमें ऐसा भाव न पाया जाता, तो मिश्टनकी लेखनीसे ऐसे शब्द निकलते ही नहीं, अभावमें भाव नहीं होता। योरपकी स्त्रियोंमें रजोगुण और तमोगुण ही होता है, सतोगुण नहीं, ऐसा कहना अस्वाभाविक होगा। वहाँ स्वभाविकताका खोप हो गया है, कृत्रिमता ही शेष है, वह भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह परम सत्य है कि आजकल धार्मिकताका स्थान स्वेच्छाचारिता ग्रहण कर रही है, इसी-लिये वहाँका नापुनःपुनः विरोध कल्पित हो गया है। योरपमें सती-साध्वी स्त्रियोंका अभाव नहीं, किन्तु वे

उगखिचोंपर गिनी जा सकती हैं। चेतन प्रायः वैसी ही स्त्रियोंके हाथमें है, जिनका चित्रण ऊपर हुआ है। अतएव उन्हींके प्रभावोंसे खोग प्रभावित हैं, और वैसे ही असंगत विचार भारतकी पुनीत सम्बन्धतामें पली स्त्रियोंके विषयमें प्रकट करनेके लिये बाध्य हैं, किन्तु इसप्रकारकी निम्न बातोंका मूल्य ही क्या ?

सीतादेवी भारतकी सती-साध्वी स्त्रियोंकी शिरोमणि हैं, उनको आर्यसंस्कृतिकी दिव्य मूर्ति कह सकते हैं। उनके मुखमें जिज्ञा है, किन्तु बड़ी ही संयत। उनके मुँहपर मुहर कभी नहीं लगी, वे समयपर बोलती हैं, किन्तु उनके शब्द तुल्य हुए और गम्भीर होते हैं, उन शब्दोंमें महानुभावता भरी होती है पर साथ ही हृदयकी विशालता भी। कटु वचन कहना, उद्धत बन जाना, उनके स्वभावके विरुद्ध है। जैसी मर्षादाशीलता और सदाशयता उनमें दृष्टिगत होती है, अन्यत्र नहीं। और बातोंकी तरह सम्बन्धता-के भी स्तर होते हैं, पहले वह उतनी उदात्त, संयत और गम्भीर नहीं होती, जितनी उन्नतावस्थामें। सांसारिक अन्य पदार्थोंकी तरह उसका भी क्रमशः विकास होता है। जो जातियाँ पहले पशुओंके समान जीवन व्यतीत करती थीं, आज वे ऊँचे ऊँचे महलोंमें रहती हैं और वैज्ञानिक आविष्कारों-द्वारा जगत्को चकित करती हैं, यह उनकी सम्बन्धताके क्रमशः विकासका ही फल है। आर्य-सम्बन्धता संसारकी सब सम्बन्धताओं-से प्राचीन है, और लगभग पूर्णताको पहुँच गयी है, इसलिये वह अधिकांश उदात्त गुणोंका आधार है। भगवती जानकी सतीत्वके विषयमें इसका प्रमाण है। जी-जातिके हृदयका चरमोत्कर्ष उनमें देखा जाता है, उनकी महानुभावता, संसारकी सती साध्वी स्त्रियोंका आदर्श है। विभिन्न हाथोंमें पड़कर विचार-वैचित्र्यके कारण कहीं कहीं उनका चरित्र विकृत हो गया है, किन्तु उनकी महत्ता कहीं खरब नहीं हुई। दिङ्नाग बौद्ध विद्वाद् या, उसने कुन्दमाला-नामक एक नाटक लिखा है। प्रकरण उसका ‘वैदेही-वनवास’ है। विपिनमें पहुँचाकर लौटते समय लक्ष्मणजी जनकनन्दिनीसे सन्देशकी प्रार्थना करते हैं—उस समय नाटककार उनके मुखसे वे वाक्य कहलाते हैं—

‘तथा निष्ठुरो नाम सन्दिश्यत इति प्रतिहत वचनतैषा लक्ष्मणस्य, न सीताया धन्यत्वम्।’

‘अहो अनिश्चसनीयता प्रकृत निष्ठुरभावानां पुरुष-हृदयाणाम्।’



‘ऐसे निष्ठुरके खिचे मैं जो सम्प्रेष देना चाहती हूँ, इसमें कष्टसह्यके वचनकी दृढ़ता है, सीताका सौभाग्य नहीं।’ ‘श्रीमावहीसे निष्ठुरभावपूर्ण’ पुरुष-दृष्टकी अविचलसनीयता विचित्र है।’ ऐसे ही एक अवसरपर भवभूति कौन-सा पद्य ग्रहण करते हैं, उसे भी देखिये—उत्तररामचरितमें एक स्थलपर वे श्रीमती सीता देखीकी सखी वासन्तीके मुखसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके विषयमें यह वाक्य कहलाते हैं—

‘अपि देव ! किं परं दारुणः स्त्रियसि।’

‘देव ! आप सत्यमुख बड़े निष्ठुर हैं।’

यह सुन सीतादेवी अपनी पतिप्राणसाका परिचय देते हुए क्या कहती हैं, उसे भी सुनिये—

‘सखि वासन्ति ! किं त्वमेवमादिनी भवसि, पूजार्हः सर्वस्वार्थपुत्रो, विशेषतो मम प्रियसख्याः।’

‘सखी वासन्ती ! तुम ऐसा क्यों कहती हो, आर्यपुत्र सबके पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।’

दिक्नागकी जनकनन्दिनी, देवी नहीं मानकी हैं, उनमें वैयंभुति है, वे वैयंभुत होकर पतिदेवको निष्ठुर कहती हैं, साथ ही पुरुषजाति मात्रको स्वभावहीसे निष्ठुरदृष्ट कह लाती हैं। इस कथनमें स्वाभाविकता है, किन्तु चित्तकी वह विराजता नहीं, जो मनुष्यको देवता बना देती है। विपत्ति ही मनुष्यकी कसौटी है, इसपर दिक्नागकी सीतादेवी कसनेपर ठीक नहीं उतरतीं। भवभूतिकी सीता देवी वास्तवमें देवी हैं, वे आत्मचिन्ताशून्य हैं, सखी पतिप्राणा हैं, वे ‘विपदि ज्यैः’ का आदर्श हैं, उन्होंने स्वाभाविकता पर विजय प्राप्त कर ली है, उनमें प्रतिहिंसा-वृत्ति है ही नहीं, वे स्वयं तो भगवान् श्रीरामचन्द्रको देखकर कुछ कहती ही नहीं, किन्तु सखीके कटु वचनको भी नहीं सह सकतीं, उनका वह वाक्य बड़ा ही मार्मिक है, ‘आर्यपुत्र सबके पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सखीके।’ यह सीतादेवीका वास्तविक रूप है, यह रूप कुधजन ही नहीं, विदुष-जन-बन्धनीय है। उनका यही रूप आर्यसंस्कृतिका सर्वस्व है। गोस्वामीजी उनके इसी रूपके उपासक हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बातोंको सुनकर सीतादेवीने क्या कहा, अब उसको उन्हींके शब्दोंमें सुनिये।

कौशल्यादेवीके सामने जनकनन्दिनीको सीधे पतिते बातचीत करनेमें मर्यादा बाधक थी, अतएव उन्होंने उन्हींका सहारा रूपा, किन्तु इसमें उनको सकलता न हुई।

भगवान् रामचन्द्रने ऐसी बातें कहीं, कि उन्हें बोलनेकी नौबत आयी। इसलिये पहले उन्होंने—

‘लगि सासुपग कह कर जोरी। उमवि देवि बड़ि अविनय मोरी॥’

इस पद्यमें कितनी मर्यादा-शीलता है, ‘उमवि देवि बड़ि अविनय मोरी’ में उनके सरल और विनम्र दृष्टकी कितनी सुन्दर प्रतिष्ठाया है। साससे अविनयकी उमा माँगकर उन्होंने पतिदेवसे जो कुछ कहा, उसमें पति-भ्रमका प्रवाद उमका पड़ता है—उसका एक एक शब्द बड़ा ही भावमय है—उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

मैं पुनि समुप्ति दीख मन माहीं। पिय-वियोग-सम दुखु जग माहीं॥

तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरकसमान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुखद समुदाई॥

सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥

जहँ लगि नाथ नेह अरु नते। पिय बिनु तिरहि तरनिहुँ ते तते॥

तनु धनु बामु धरनि सुरराज। पतिबिहीन सब संकसमान॥

भोग रोगसम भूषन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥

प्रातनाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मोरुहँ सुखद कतहुँ कटु माहीं॥

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

नाथ सकल मुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे॥

विचाहकाळमें ससपदीके समय पत्नी प्रतिज्ञा करती है—

आतें आर्ता भविष्यामि सुखदुःखविमोहिनी।

तवाज्ञा पालयिष्यामि पञ्चम सापदे बदेत्॥

‘आतें होनेपर आतें हूँगी, सुख-दुःख-भागिनी हूँगी, और तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी।’ कहा जा सकता है इस प्रतिज्ञाके अनुसार उनको वही करना चाहिये था, जो पतिने आज्ञा दी थी, किन्तु उन्होंने दुःख मिश्रित करना प्रारम्भ किया, क्या यह अमर्यादा नहीं? पहली बात यह कि ‘आपत्काले नियमो नास्ति’ दूसरी बात यह कि उन्होंने अज्ञा क्या की? कोई आज्ञा होनेपर उसके पालन करनेमें जो बाधाएँ उपस्थित होंगी, क्या उनका मिश्रित करना आज्ञा न मानना है। आज्ञा माननेकी अपेक्षा पतिकी दुःख-सुखसंगिनी होना, उनके खिचे जीवन उत्सर्ग करना क्या अधिक संगत नहीं? सीतादेवीकी चेष्टा यही तो है। अधिक सर्वस्व पति ही तो है, फिर वहाँ तो प्राणकी बाधा उपस्थित है—

राक्षस अवय जो अमवि लमि रहत जानिअहि प्राण।

ऐसी अवस्थामें उन्होंने जो कुछ निवेदन किया, उसमें विप्रतिपत्ति क्या ! जो श्री-धर्म है, जो शाकलगत बात है, वही वो वे कह रही हैं—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यशो न व्रतं नाप्युपोषितम् ।  
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वयं महीयते ॥  
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ।  
पतिलोकमनीषन्ती नाचरतिश्चिदप्रियम् ॥  
(मनु)

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।  
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥  
(व्यास)

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।  
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत्सदा ॥  
(शिवपुराण)

‘पतिरेको गुरुस्त्रीणाम् । (चाणक्य)

‘स्त्रीको न तो कोई पक्ष करनेकी आवश्यकता है, न व्रत-उपवासकी, पतिकी सेवा करनेसे ही वह स्वयंमें आरत होती है। पतिशोककी कामना करनेवाली साध्वी स्त्री चाहे जीवित पति हो चाहे मृत किन्तु उसका अभिय कभी न करे। भार्या वही है जो गृह-कार्यमें दक्ष हो, सम्मानवाली हो, पतिप्राणा और पतिव्रता हो। पिता, भ्राता, पुत्र छोड़ा देनेवाले हैं, सब कुछ देनेवाला पति ही है, इसलिये वह सदा सत्कार-योग्य है। स्त्रियोंका गुरु एक पति ही है।’

श्रीमती जानकीदेवीके निवेदनमें इन्हीं आर्य सिद्धान्तोंकी ज्ञानि शोक और क्या है ! हाँ, उनके हृदयके समान उनकी उत्तिर्मा उदास अवस्था है। इस कथनमें कितनी सत्यता है, ‘पिय-वियोग-सम दुख जग नाहीं’ इसीलिये ‘तनु धनु धातु धरानि सुरराज्’। पतिविहान सब लोकसमाज्’ है, और ‘भोग रोगसम, भूषण भारू’ है। जब ‘रघुकुल-कुमुद-विशु विना ‘सुरपुर नरक-समान’ है, तो ‘जम-जातना-सरिस संसार’ का होना क्या आश्चर्य ! फिर वे क्यों न कहतीं ‘प्राननाथ मुन्द विनु जग माहीं । मो कहैं सुन्दर कतहुं कछु नाहीं ॥’ जब वे ‘मातु पिता भगिनी , इत्यादि बड़े बड़े सम्बन्धियोंका नाम सुन्दर विशेषणोंके साथ गिनाकर, यह कहती हैं ‘जहँ लगि नाथ नेह अर नाते । पिय विनु तियाहि तरनि ते ताते ॥’ तब वे किस ग्वाहाकी ओर संकेत करती हैं, क्या यह वतखाना होगा ! बिरहग्वाहाकी बातें कौन नहीं जानता-बिरहिलीको

कौन नहीं बजाता। चाहे वह उसकी मानसिक आधिका ही पक्ष हो, किन्तु उसको अनुभव ऐसा ही होता है। उसको सुषाकर-किरबों भी अभिमयी ज्ञात होती हैं, और मलयसमीर शेष-वास, और अधिक क्या कहें, उन्होंने यह बात कितनी दूरकी कही, जिस विनु देह ‘नर्दा विनु नारी । तैसिज नाथ पुरुष विनु नारी ॥ सत्य है, पुरुष, स्त्री-देहका प्राण है, और कामिनी कल्लोलिनीका सखि, किन्तु इस बातको सीतादेवी-सदृश पतिप्राणा देवी ही समझ और कह सकती हैं।

इसके उपरान्त उन्होंने यह कहा—

लग मृग परिजन नगर बन बलकल निमल दुकूल ।

नौथ साथ मुर-सदन-सम परनसारु सुखमूल ॥

बनदेवी बनेदेव उदारा । करिआई साधु-ससुर-सम सारा ॥

कुस-किसलय-साथरी सुहाई । प्रभु-संग मंजु मनोजनुराई ॥

कंद मूल फल अमिल अहारू । अवध-सौध-सत-सरिस पहारू ॥

आवकज ‘लाओ, पीओ, आराम करो’ का वज्र-निर्घोष ही सुनायी पड़ रहा है, ऐसी अवस्थामें सीतादेवीकी बातोंको कौन सत्य स्वीकार करेगा ! लग-रुगको परिजन, बनको नगर, बलकलको निमल दुकूल, पण्यशाखाको सुरसदन-समान सुखमूल कौन मानेगा ! क्या ऐसा माना जा सकता है यह तो चिकनी-नुपही बातें हैं। बनदेव, बनदेवी, सास-ससुर नहीं बन सकते, कुस-किसलय साथरी, मनोजनुराई नहीं कही जा सकती, न तो कंदमूलफल, अमृतमय आहार हो सकते हैं और न अवधके सैकड़ों सौंयोंके समान पहाड़, एवं न कोई बुद्धिमती स्त्री ऐसा कह ही सकती है। हाँ, यह कविकल्पना हो सकती है।

हृदय सबके पास है, जीम सबके मुहमें है, जो जिसके मनमें आवे वह कह सकता है, जो चाहे सोच सकता है, परन्तु यह अश्ररशः सत्य है कि जो कुछ श्रीजानकी देवीने कहा वह आर्षलक्षणाके हृदयका सच्चा उद्गार है। यदि हम विवेककी आँखें खोल दें, तो भारतीय कुलवालाके मानस-दर्पणमें यह भाव बहुत ही स्पष्टरूपमें प्रतिबिम्बित दिखायी पड़ेगा। श्रीमती सीतादेवी स्वयं इसके लिये प्रमाण हैं, जिन्होंने एक दो दिन नहीं, लगभग चौदह वर्ष अगवान् श्रीरामचन्द्रके साथ इसी भावसे व्यतीत किये। उनके उद्गारोंका प्रतिपादन निम्नलिखित पद्य वही ही उदात्त करते हैं—

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद-बिमल-विभु-नदनु निहारे ॥  
छिनु छिनु प्रभु-पद कमल बिलोकी । रहिहौ मुदित दिवस जिमि कोकी  
मोहि भग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन-सरोज निहारी ॥

वास्तविक सुखका सम्बन्ध हृदयके भावोंसे है, किसी पदार्थ अथवा वस्तुविशेषसे नहीं, इन पदार्थोंको पकड़ इस बातको सत्यप्रेमका अधिक भलीभाँति समझ सकता है। प्रेम प्रेमके लिये होता है, सुख-उपभोगके लिये नहीं। जो प्रेम सुख-कामनापर उत्सर्गीकृत है, वह प्रेम नहीं, प्रेमका आढम्बरमात्र है। सच्चे प्रेममें कष्टकी अनुभूति होती ही नहीं। सीतादेवी कहती हैं—

बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विषाद परिताप घंभरे ॥  
प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना । सब मिलि होहि न कृपानिधाना ॥

सत्यप्रेममें अहं-भाव नहीं होता, उसमें सेवा-भाव ही प्रबल होता है। सत्यप्रेम सूर्य है, उसके सामने अहं-भाव अन्धकार छहर ही नहीं सकता, उसको अबलोकनकर सेवा-भाव-सरस्वति अवरज विकसित होता रहता है। भगवती जानकीमें वह भाव कितना जागृत है, देखिये—

सबहि भाँति पिय-सेवा करिहौं । भारगजनित सकल सम हरिहौं ॥  
पाय पखारि बैठ तरछाहीं । करिहौं बाढ मुदित मन माहीं ॥  
सम-कन सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुख समठ प्रानपति पेखे ॥  
सम महि तृन-तरु-पङ्कज दासी । पाय फ्लोटिहि सब निजि दासी ॥

इन पंक्तियोंमें कितना आत्मनिवेदन है, कितनी अभाविकता और सरलता है, कितनी हितकामना और सहायुभूति है, वह निर्बल-हृदयकी अवतारया नहीं, सबल चित्तकी उदात्त भावमयी सुन्दर प्रकाशना है। प्रवक्ष्यनामक भावसकी प्ररोचना नहीं, 'मनस्वैकं, बचस्वैकं, क्रियास्वैकं' का सत्यतामयी विभावना है। स्वार्थसाधनकी कष्टभरी आशयोजना नहीं, कर्तव्यज्ञानकी अधिकभरी साधना है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने विधिनकी अर्थकरताका क्या विराट् वर्णन किया था, और वह भी कहा था—

‘नर अहार रजनीचर करहीं । कष्टनेष विधि कोटिक करहीं ॥

सीतादेवी इसका कितना सुन्दर और गम्भीर उत्तर देती हैं, सुनिये—

बार बार मृदुमूर्ति जोही । लागिहि तासि बयारि न मोही ॥  
को प्रभुसँग मोहि चितबनिहारा । सिंह-बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥

इस उत्तरमें कितना आत्मविश्वास और कितनी पति-निर्भरता है, कितनी प्रीतिवराचक्षता और तेजस्विता है, इसका अनुभव प्रत्येक सहृदय कर सकता है—

श्रीरामचन्द्रजीने यह भी कहा था, ‘इंसगवनि तुम्ह नहि बनजोगू । इसका उत्तर क्या ही हृदयमाही, और मर्मस्पर्शी है। कहीं भी जानकीदेवीने ध्वंगसे काम नहीं लिया था। बहुत भीर-भावसे संवत उत्तर ही देती चली गयी हैं, किन्तु इस पंक्तिका उत्तर क्या ही ज्वलनामय है, साथ ही उसमें इतनी स्वाभाविकता है, कि पढ़कर चित्त छोटपोट हो जाता है। उत्तर यह है—

‘मैं सुकुमारि, नाथ बनजोगू । तुम्हहि उचित तप, मो कहँ भोगू ॥

इस वचन-रचनाकी बलिहारी! इसीको कहते हैं, ‘कागज-पर रख दिया है कसेजा निकालकर’ कितनी मीठी चुटकी है, साथ ही किननी प्रेमभरी।

खेल हृदयसे अधिक लग्ना हो गया। मैंने पाँच प्रसंग खेल जिलनेके लिये चुने थे, किन्तु एक ही प्रसंग अधिक विलुप्त हो गया, इसलिये एक प्रसंग और खिलाकर अब इस खेलको समाप्त करूँगा। शास्त्रोंमें स्त्रीको सहधर्मिणी कहा गया है, सहधर्मिणीका अर्थ है समान धर्मवाली। सच्ची गृहिणी वही है, जो पतिके भावोंको समझती है और बिना कहे उसकी पूर्ति करती है। पतिने जब मुँह खोलकर कुछ कहा, और तब कीने कोई कार्य किया, तो वह सहधर्मिणी कहाँ रही। जिस जीने पतिके हृदयको नहीं पहचाना, उसके कर्तव्यको नहीं समझा, जो उसकी जीवनयात्राके अनुकूल अपनेको नहीं बना सकी, किसी स्थल-विशेषपर पतिका क्या चर्म है, जो इसकी मर्मज्ञ नहीं, वह सहधर्मिणी होनेका दावा नहीं कर सकती। विवाहके समय वर कन्यासे कहता है—

मम त्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचितं ते अस्तु ।

मम वाचमेकमना जुवस्व, प्रजापतिपुत्रा नियुक्तु मङ्गम् ॥ ४

मेरे स्तनकी ओर तुम्हारा हृदय लिखे, मेरे चित्तके अनुकूल तुम्हारा चित्त हो, एकमना होकर मेरी बात मानो, प्रजापति तुमको शुभसे सम्बन्धित करे।

विवाहके अन्तमें कन्याको प्रुक्का दर्शन कराया जाता है, वह प्रुक्को देखकर कहती है,—‘भुवमसि भुवं त्वां पश्यामि’ ‘अबि प्रुक्, तुम अत्यन्त ज्येष्ठ हो, मैं तुम्हें देखती हूँ।’ इसका भाव यह है कि विवाहकार्यमें पतिके द्वारा शुभसे जो

प्रतिज्ञाएँ कराबी गई हैं अथवा मैंने स्वयं जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनपर मैं भ्रूष-समान अपराध जटल रहूँगी। सप्तपदी के समय वह यह भी कहती है—

यजे होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह ।

धर्मार्थकामकायं वधूः षष्ठे पदे वदेत् ॥

यज्ञ, होम और दानादिमें—धर्म, अर्थ, और काममें मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। इसीलिखे 'अर्थं मायां मनुष्यस्य' है। इसीलिखे श्री अर्धाङ्गिनी है, और इसीलिखे सहधर्मिणी। रामायणमें इस संस्कृतिका एक बड़ा ही उत्तम निदर्शन है। गोस्वामीजी लिखते हैं—

उत्तरि ठाढ़ भये सुरसरि-रेता। सीय राम गुह लखन समेता ॥

कंवट उत्तरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच पहि नहिं कछु दीन्हा ॥

पिय-हियकी सिय जाननहारी। मनि-मुंदरी मन-मुदित उतारी ॥

गोस्वामीजी की इस उक्तिमें कि 'प्रभु' शब्दका प्रयोग कितना सार्थक है, साधारण जन होते तो इस विषयमें वे कुछ जापरवाही कर भी सकते, किन्तु 'प्रभु'का ऐसा करना बड़ा ही अनुचित था। बड़ी ही मर्यादाविरुद्ध बात थी। फिर उसके साथ, जो जीभ भी नहीं हिला सकता। बड़े जोगोंके लिये दीनों अकिञ्चनोंकी सहायता करनेके लिये, इसप्रकारके अवसर बड़े ही सुन्दर होते हैं। सेवा करनेवाला बड़ोंसे बड़ी आशा रखता भी है। कमसे कम भगवान्‌को निषादकी मूठी अवश्य भर देनी चाहिये थी, किन्तु कहाँ, वे तो कुछ न दे सके। तापस-वेषमें उनके पास था ही क्या? फिर उनके जीको चोट क्यों न लगती, और वे क्यों न संकुचित होते। सीतादेवी सतीशिरोमणि हैं, सच्ची सहधर्मिणी और अर्धाङ्गिनी हैं, उन्होंने पतिदेवके हृदयकी बात जान ली, और तत्काल मुदित मनसे मण्डित मुँदरी उतार दी। गोस्वामीजीके शब्दोंकी मार्मिकता देखिये—'पिय-हियकी-सिय जाननहारी। मनि-मुंदरी मन मुदित उतारी।' कैसी मुँदरी उतारी? मण्डित। कैसे उतारी? मुदित-मनसे। स्त्रियोंको गहना बड़ा प्यारा होता है, उनको उसे अलग करते बड़ी कठिनायता होती है, पीड़ा भी होती है, वे आसानीसे उसे किसीको देना नहीं चाहतीं, ज़रूर करके कोई भले ही ले ले। यह साधारण गहनोंकी बात है, और मण्डित गहना! वह तो कलेजेमें छिपाकर रखनेकी चीज़ है, उसका तो नाम ही न लीजिये! किन्तु सीता-देवीने वैसी ही झँगूठी उतारी, और वह भी मुदित मनसे,

ज़रा-सा तेवर भी नहीं बदला, पेशानीपर शिकन तक नहीं आया। क्योंकि उनका सर्वस्व तो उनका जीवनधन है, उनका सौन्दर्य तो उनके हृदयका सौन्दर्य है। जो पति-प्रेमके आभूषणसे आभूषित है, उसको भूषणोंकी क्या आवश्यकता? जिसे पतिकी अनुकूलता बान्धनीय है, जो पतिमर्यादाकी भूखी है, गहनोंपर उसकी ज़ार नहीं टपकती। यह चिरसञ्चित आर्यसंस्कृति है, भगवती जनकनन्दिनी इसकी उच्चतम आदर्श हैं।

आधुनिक कालमें भी इसप्रकारके आदर्शोंका अभाव नहीं, एक प्रसंग आपलोगोंको सुनाता हूँ। देशपूज्य, वृथासागर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका पवित्र नाम आप-लोगोंने सुना होगा। उनकी श्री बड़ी साध्वी थीं। विद्यासागर महोदयकी उदारता लोकविश्रुत है। एक बार एक ब्राह्मण उनकी सेवामें उपस्थित हुआ, और उसने विनय की कि 'मैं कन्यादायसे आकुल हूँ, यदि आपने कृपा नहीं की तो मेरा निर्वाह होना कठिन है।' उसने दो सौ रुपयेकी आवश्यकता बतलायी। उस समय उनके पास कुछ नहीं था, वे चिन्तित हुए। ब्राह्मणको बाहर बैठाया, और आप अन्दर गये। सामने उनकी सहधर्मिणी आ गयीं, उन्होंने उनके मुखकी ओर देखा, और पूछा आप चिन्तित क्यों हैं? उन्होंने कहा 'एक ब्राह्मण कन्यादायप्रलू है, और दो सौ रुपयेकी उसको आवश्यकता है, परन्तु इस समय तो मैं बिल्कुल रिक्तहस्त हूँ।' साध्वीके नेत्रोंमें जल आया, उन्होंने कहा, 'मेरे हाथके सोनेके कड़े किस काम आयेंगे।' यह कहकर उन्होंने अपने कड़े उतारे, और पतिदेवके हाथपर उनको रख दिया। अपनी पत्नीकी यह उदारता देखकर उनके अभ्युपात होने लगा, वे अभ्यु-विसर्जन करते ही बाहर आये, और उत्फुल्ल हृदयसे उन्होंने कड़े ब्राह्मणदेवको सावर देकर कहा, इन्हें मेरी जीने आपको अर्पण किया है।

रामायणकी संस्कृतिकी बातें सुनाते सुनाते एक अन्य प्रसंग भी मैंने आपलोगोंके सामने उपस्थित कर दिया। केवल इस विचारसे कि जिसमें आपलोग आर्यसंस्कृतिकी व्यापकताका अनुभव कर सकें। आर्यसंस्कृति बहुत उदात्त है, और आज भी वह बहुत व्यापक है। हिन्दू-जातिपर तो उसका प्रभाव है ही, यहाँकी मुसलमान-जाति, और ईसाइयों पर भी उसका असर देखा जाता है, कारण इसका यह है कि उनमें अधिकांश हिन्दू-सन्तान ही हैं। चिरकालिक संस्कार-नाश होते होते होता है, तत्काल अथवा थोड़े समयमें

उसका नाश नहीं होता। वह सब है कि समयकी प्रति-  
कूलताका सामना उसे करना पड़ रहा है, पाश्चात्य विचार भी  
उसे दबा रहे हैं, किन्तु सूर्य कबसक बादलोंमें छिपा रहेगा।  
काज पाकर बादल टलेंगे, और वह फिर वैसा ही जगमगाता  
दिलखायी पड़ेगा। दूसरी बात यह कि आर्यसंस्कृतिके  
भाव उदात्त और सर्वदेशी हैं, एकदेशिता उनमें कम  
है। इसलिये पञ्चभूतके समान ही वे उपयोगी हैं, आवश्यक-  
तानुसार उनका कुछ रूप बदल सकता है, वे सर्वथा परित्यक्त  
वहीं हो सकते। रामायण और महाभारतके अनेक अंश और  
अनेक उपदेश जैसे हिन्दू-जातिके उपकारक और शिक्षक हैं,  
वैसे ही संसारकी अन्य जातियोंके लिये भी हैं। बोरपमें भी  
उनके अनुवाद आदरसे पढ़े गये हैं, और विजातीय सहृदयोंने  
भी उसकी दिल लोलकर प्रशंसा की है, ऐसी अवस्थामें  
उनकी उपयोगिता अप्रकट नहीं। रामायणकी संस्कृतियोंका  
संकलन कर यदि उनपर प्रकाश डाला जाये, और उनपर  
मननपूर्वक लेख लिखे जायें तो मेरा विचार है कि वर्तमान-  
कालमें उसने बड़ा काम हो सकता है। अन्तमें अपनी निम्न-  
लिखित सवैयाद्वारा गोस्वामीजीका गुणगान करते हुए मैं  
इस लेखको समाप्त करता हूँ।

बन राम-रसायनकी रमिका रसना रसिकोंकी हुई सफला ।  
अवगाहन मानसमें करके जन-मानसका मल साटा टला ॥  
बनी पानन भावकी भूमि भली हुआ भावुक भावुकताका भला ।  
कविता करके तुलसी तलसे कविता लसी पा तुलसीकी कला ॥

## सन्त कौन है ?

आकिंचन, इन्द्रिय दमन, रमन राम इकतार ।  
तुलसी ऐसे सन्तजन बिरले या संसार ॥  
अहंवाद 'मैं' 'तैं' नहीं, दुष्ट संग नहीं कोइ ।  
दुख ते दुख नहीं ऊपजै, सुख ते सुख नहीं होइ ॥  
सम कंचन काँचै गिनत, सद्गु मित्र सम दोइ ।  
तुलसी या संसारमें, कहत सन्त जन सोइ ॥  
बिरले बिरले पाइये, माया-त्यागी सन्त ।  
तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी काक अनंत ॥  
'मैं' 'तैं' भेटयो मोह-तम, उगो आतमा-भानु ।  
संतराज सो जानिये, तुलसी या सहिदानु ॥  
कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पपान ।  
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान ॥

## रामचरितमानस मधु है

( लेखक—पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी )



जैसे तीन सौ वर्ष पहले तुलसीदास-  
रूपी मधुपने संस्कृतके अनेक  
रामायण, पुराण, काव्य, इतिहास,  
नाटक, स्मृति, उपनिषद् और  
संहितारूपी अत्यन्त सुन्दर फूलोंका  
मधुर रस एकत्र करके रामचरित-  
मानसरूपी जो मधु तैयार किया  
था, वह आजतक हिन्दुओंके घर-घरमें मौजूद है, और  
जितना ही वह पुराना होता जाता है, उतना ही उसका  
स्वाद अधिक मधुर होता जाता है। जैसे मधु अनेक  
शारीरिक व्याधियोंको नाश करनेमें औषधियोंको सहायता  
पहुँचाता है, वैसे ही रामचरितमानसरूपी मधु अनेक  
मानसिक व्याधियोंको नाश करनेमें सहायक होता है।

केवल अयोध्याकायहीकी रचनामें तुलसीदासने  
बड़े सौ से अधिक संस्कृत-ग्रन्थोंका रस ग्रहण किया है।  
यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

आनन्द रामायण—

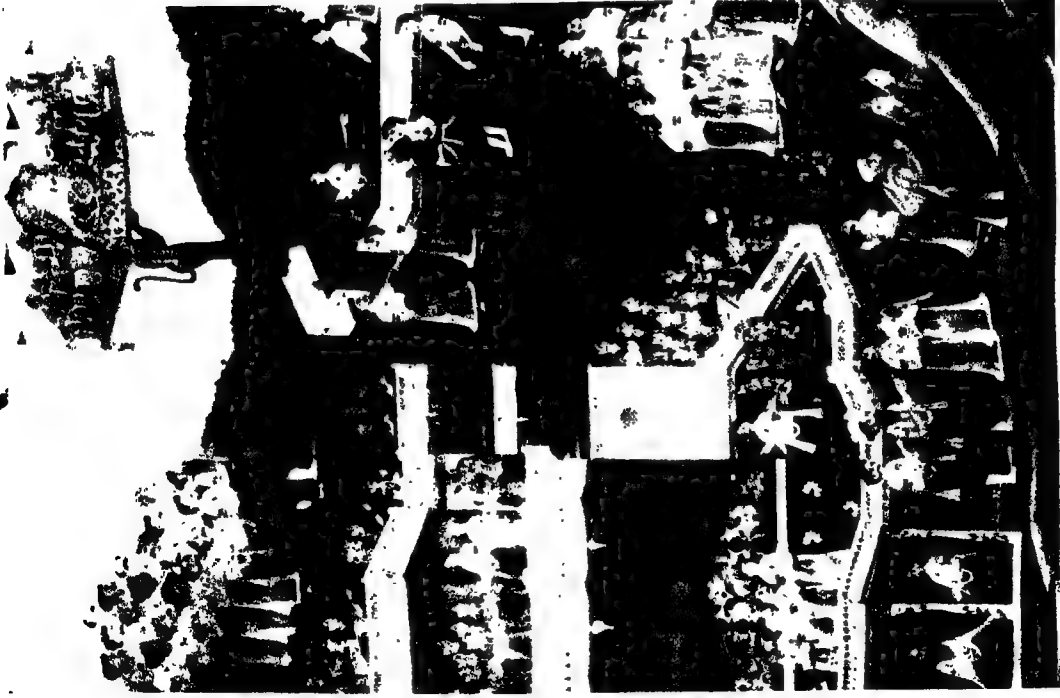
पर्वतश्रेणयो राजन् भुवनानि चतुर्दश ॥  
तेषु चोत्तमकर्माणि मेघा मूत्वा स्थले स्थले ।  
पूर्णांनन्दपयोवृष्टिं कुर्वन्ति वसुधातले ॥  
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि समस्तमुल्लसम्पदः ।  
नद्यो मूत्वा त्वयोध्याग्निं मिलन्त्यवधवासिनः ॥  
नरा नार्यश्च सम्पूर्णाः सदा मुक्तकारिणः ।  
बहुमूल्यानि रत्नानि पवित्राणि पराणि च ॥

रामचरितमानस—

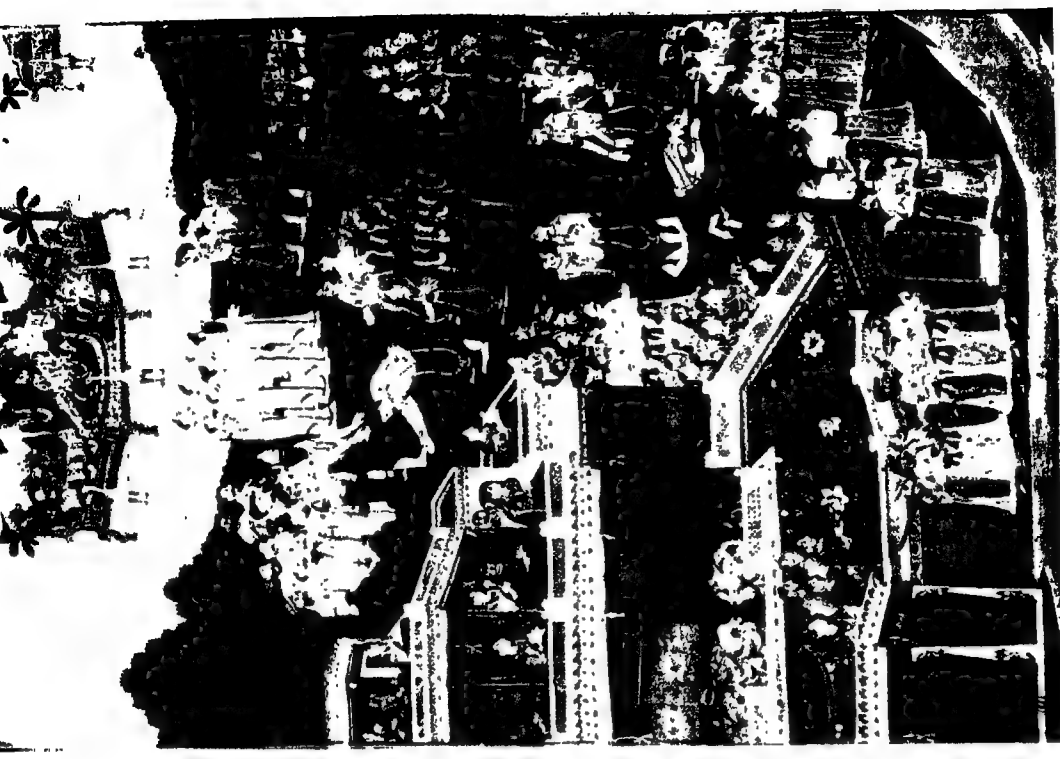
भुवन चारिदस मूषर भारी । सुकृत मेघ बरषहिं सुख भारी ॥  
निधि सिधि संपत्ति नदी मुहार्ह । उमंगि अवध अंबुधि कहँ आई ॥  
मुनिमन पुर-नर-नारि-सुजाती । सुधि अमोल सुंदर सब भाँती ॥

अगस्त्य रामायण—

सर्वेषां हृदये ह्यासीदेव पव मनोरथः ।  
स्वजीवने सुदयया तव शङ्कर बुद्धिमान् ।  
गुवराजपदं राजा रामचन्द्राय यच्छतु ॥



भरत-हनुमान मिलाप ।  
दीनबंधु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेटेउ अति सादर ॥



राम पुनः अयोधामें ।  
घाए धरे गुरु-चरन-सरोखे । अनुजसहित अति-पुलक-तनोखे ॥



रामचरितमानस—

सबके डर अभिलाषु अस कहहि मनाइ महेस ।  
आपु अछत जुबराज-पद रामहिं देखि नरेस ॥

वशिष्ठ रामायण—

मे धारयन्ति गुरुपादरजः स्वशीर्षे  
ते कौ विमूतिमक्षिलां वशयन्ति नूनम् ॥

रामचरितमानस—

जे गुरुचरन रेनु सिर घरहीं । तं जनु सकल बिभव बस करहीं ॥

उत्तर रामचरित—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।  
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥

रामचरितमानस—

राजन राठर नामु जसु सब अभिमत-दातार ।  
फल अनुगामी महिषमनि मन-अभिलाषु तुम्हार ॥

रवैतकेनु रामायण—

रामाभिषेकवृत्तान्तं श्रुत्वायोध्यापुरे शुभे ।  
वाद्यानां धनवोरस्तु शब्दो जातः सुखप्रदः ॥

रामचरितमानस—

सुनत रामअभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ॥

मंगल रामायण—

ग्रामदेव्याः सुराणां च शेषनागस्य पूजनम् ।  
चकारानन्दयुक्ता सा कौशल्या प्राह निर्जरान् ॥  
पुनर्बलिं प्रदास्यामि वरक्षायं प्रदीयताम् ।  
श्रीरामचन्द्रकल्याणं भवत्वं निवेदनम् ॥

रामचरितमानस—

भूजी ग्रामदेवि सुर नागा । कहउ बहोरि देन बलिमागा ॥  
जेहि बिधि होइ राम-कल्याण । देहु दया करि सो बरदान ॥

बृहस्पति संहिता—

दासस्य भवने विद्वन् गुरोरागमनं मुने ।  
मंगलानां महन्मूलं कर्मवर्षसकं तथा ॥

रामचरितमानस—

सेवकसदन स्वामि आगमनू । मंगलमूल अमंगल दखनू ॥

रघुवंश—

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीन्यस्ततामिति ।  
कैकेयीशंकभेवाह पलितच्छन्ना जरा ॥

रामचरितमानस—

सवनसमीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥  
नृप जुबराजु रामकहुँ देहू । जीवन-जनम लाहु किन लेहू ॥

वाल्मीक्य रामायण—

कामलं वचनं श्रुत्वा कुमतिर्ज्वलिता सती ॥  
अब्रवीत् केकयी तेऽत्र माया नैव चलिष्यति ।  
दीयतामयवा कृत्वा नकारमयशो नृप ॥  
गृह्यतां शीघ्रमेवाऽत्र प्रपञ्चा नैव मे प्रियाः ।  
स्वभावसरलो रामो राममाता भवानपि ॥  
मया परिचिताः सर्वे स्वभावसरला जनाः ।  
विचारितं राममात्रा यथा मम हितं तथा ॥  
प्रदास्यामि फलं तस्यै सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

रामचरितमानस—

सुनि मूढ वचन कुमति असि जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥  
कहहु कहै किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहिं राउरि-भाया ॥  
देहु कि लेहु अजसु करि नहिं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाही ॥  
रामु साउ तुम्ह साधु सयाने । राममानु भलि सब पहिचाने ॥  
जस कौसिला मार भरु ताका । तस फलु उन्हहिं देउँ करि साका ॥

पुष्पस्थ रामायण—

विनिर्मिताः कोलकिरातकन्याः  
पितामहेनैव रसैर्विहीनाः ।  
कठोरशीला इव बज्रकीटा  
अदुःखिताः काननवासहतोः ॥

रामचरितमानस—

बनहित कोल किरात किसोरी । रची बिरांचि बिषय-सुख-भोरी ॥  
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ ॥

अरुण रामायण—

तपस्विनार्यो ह्ययवा वनयोग्या भवन्ति हि ।  
वाक्सिक्त्यकास्तपः कर्तुं सर्वे भोगाः सुखात्मकाः ॥



रामचरितमानस—

कै तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥

महारामायण—

वसिष्ठ्यति वने सीता कथं कथय पुत्र माम् ।

या चित्रलिखितं दृष्ट्वा भीता भवति वानरम् ॥

रामचरितमानस—

सिय बन बसिहि तात केहि भौंती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥

मूर्तवद संहिता—

मातुः समीपं गदितुं न च क्षमः

विचार्य चित्ते भगवानुवाच ह ।

शिक्षां मदीयां शृणु राजकन्यके

न चान्यथा त्वं हृदये स्म मन्यथाः ॥

रामचरितमानस—

मानु समीप कहत सकुचाहीं । बोलै समउ समुझि मन माहीं ॥

राजकुमारि सिखावन सुनहु । आन भौंति जिय जनि कछु गुनहु ॥

कपिल संहिता—

मनोहारि वचो मिष्टं श्रुत्वा भर्तुः प्रियस्य च ॥

जानक्या ललिते नेत्रे ह्यश्रुपूर्णं बभूवतुः ।

जानक्या दाहिका जाता सुसिद्धान्त्यन्तशीतला ॥

चक्रवाकी यथा रात्रौ शारदी चन्द्रिका तथा ।

दहत्येव वियोगेन चक्रवाकस्य सुन्दरि ॥

रामचरितमानस—

सुनि मृदु बचन मनोहर पियके । लोचन ललित भरे जल सियके ॥

सीतल सिख दाहक भै कैस । चकइहि मरद चंद निसि जैस ॥

पुरुषोत्तम संहिता—

समादवात्य प्रियां वारिमः प्रियाभी रघुनन्दनः ।

स्वमानुश्वरणौ नत्वा आशिषं प्राप्य हर्षितः ॥

आगन्तव्यं त्वया शीघ्रं प्रजादुःखक्षयाम च ।

निष्ठुरा जननी तात विस्मर्तव्य न च त्वया ॥

रामचरितमानस—

कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई । लगे मानुपद आसिष पाई ॥

बेगि प्रजादुख भेटव आई । जननी निष्ठुर बिसरि जनि जाई ॥

इनुमजाटक—

पयि पाथिकवधूभिः सादरं पृच्छमाना ।

कुवलयदलनीलः कोऽयमार्यो तवेति ॥

रामचरितमानस—

सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ।

अध्यात्म रामायण—

अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धरः ॥

आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः ॥

रामचरितमानस—

अगे राम लखन पुनि पाछे । तापस बेच बिराजत आछे ॥

उभय बीच सिय सोहति कैम । ब्रह्म जीव बिच माया जैस ॥

जैमिनि संहिता—

श्रीरामचन्द्र विमलं यशस्ते मानसं सरः ।

जिह्वा यस्य च हंसीव मुक्तापंक्तीर्गुणावलीः ॥

ज्ञात्वा भक्षति राम त्वं तस्यैव हृदये वस ।

रामचरितमानस—

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।

मुक्ताहल गुनगन चुनै राम बसहु मन तासु ॥

आनन्द रामायण—

सीतारामप्रमपीयूषपूर्ण

जन्म स्थानां केकयीनन्दनस्य ।

चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीनां

योगान् राजन् भारतंऽस्मिन् पवित्रं ॥

दारिद्र्यदम्भदाहानां दुःखदूषणयोस्तथा ।

कीर्तिव्याजेन कां नाशं कुर्यात्कलियुगे दृष्टात् ॥

शठानां कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्भ्रामसम्मुखं ।

रामचरितमानस—

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन हांत जनम न भरतको ,

मुनि-मन-अगम यम नियम सम दम बिषमव्रत आचरत को ।

दुख दाह दारिद दंभ दूषन मुजम मिस अपहरत को ,

कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

खोजनेसे रामचरितमानसके सब दोहों, सोरहों, छन्दों और चौपाइयोंके मूल संस्कृत-ग्रन्थोंमें मिला जायेंगे। वह देखकर महान् आश्चर्य होता है कि तुलसीदासजीने संस्कृत ग्रन्थोंका कैसा सूक्ष्म अध्ययन किया था। कहीं कहीं तो एक दोहेमें दो-दो ग्रन्थोंके श्लोकोंका अनुवाद मिलता है। अब यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृतके

सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदासको कबठस्थ थे। हम जितने ही गहरे जाते हैं, उतना ही इस अद्वितीय रामायणकी अद्भुत प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं। संस्कृत-नन्दन-कालनमें विचरकर तुलसीदासरूपी मधुपने समस्त फूलोंका रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जातिको दान किया है, उसकी तुलना संसारके किसी दानसे नहीं की जा सकती। ॐ

## रामायणमें क्रोध-शान्तिका उपाय

(लेखक—पं० श्रीरामदयालुजी मजूमदार एम० ए०, सम्पादक 'उत्सव')

तस्मात् यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः।

कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदनः॥

तथापि क्रोध एवानं मोक्षविज्ञाय सर्वदा।

(अध्यात्म रा०)



सारमें जो लोग अशेष दुःखोंको नहीं देखते और जो देखकर भी उनसे मुक्त होना नहीं चाहते, उनको क्या मनुष्य कहना चाहिये? नहीं। यदि मुक्त होना चाहते हैं तो सदा-सर्वदा विद्याभ्यासका पक्ष करना चाहिये। स्मरण रहे, इधर उधरसे जो कुछ भी पद लेनेका नाम विद्या नहीं है—

नाहं देहश्चिदात्मैति बुद्धिर्विधेति भण्यते।

‘मैं देह नहीं हूँ, चैतन्य-स्वरूप आत्मा हूँ’ इस बुद्धिका नाम विद्या है। इस विद्याभ्यासके लिये निरन्तर बल करना चाहिये। काम-क्रोध और लोभादि इस विद्याके प्रबल शत्रु हैं। इनमें भी क्रोध तो मोक्ष-मार्गमें सर्वदा ही विघ्नकारी है।

श्रीलक्ष्मणजी रामवनवासकी बात सुनकर क्रोधके मारे तन-मनकी सुधि भूल रहे हैं। भगवान् व्यास लिखते हैं—

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम्।

बद्धा निहन्मि भरतं तद्वन्धून् मातुलानपि॥

(अध्यात्म रा०)

\* श्रीरामचरितमानसमें किस-किस ग्रन्थसे भाव लिये गये हैं, इसका बहुत अच्छा संग्रह बाबू श्रीरणबहादुरभिहारीने, गंगाधर प्रेस, रायबरेलीमें छपवाकर प्रकाशित किया है। आप शाहमऊके ताल्लुकदार बाबू गंगाबक्सभिहारीके आता है और २७ सालके प्रेमपूर्ण परिश्रमसे विभिन्न ग्रन्थोंको देखकर आपने यह बड़ा काम किया है। ऊपर चौपाई तथा दोहे और उनके नीचे प्राचीन ग्रन्थोंके उन्ना भावके श्लोक छपे गये हैं। हमारे पास चार काण्ड तो आ चुके थे शेष जल्दी ही छपनेकी सूचना थी। यद्यपि कुछ प्रमाण छूट गये हैं तथापि आपका यह परिश्रम बहुत ही सराहनीय, स्तुत्य और संग्रह योग्य है। हमारे पास जितने काण्ड आ चुके हैं उनमें लगभग २२५ ग्रन्थोंके श्लोक उद्धृत हैं। रामायणपर यह बहुत सुन्दर संग्रह करनेयोग्य टीका है।

—सम्पादक

लक्ष्मणने कहा, ‘कैकेयीके वशमें हुए उन्मत्त, भ्रान्त-चित्त राजा दशरथको कैदकर मैं भरतको उसके मित्रों और मामाओं-समेत मार डालूँगा।’

भगवान् वाल्मीकिजीने लिखा है कि लक्ष्मणका क्रोध दूर करनेके लिये भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। पर यहाँ भगवान् व्यास कहते हैं—

इति ब्रुवन्तं सौमित्रौमार्त्तियं रघुनन्दनः।

श्रीभगवान्ने लक्ष्मणको पकड़कर हृदयसे जगा लिया। परम शान्त पुरुषके प्रेमालिंगनसे क्रोधादि शरीरके विकृत अणु-परमाणुओंका स्पन्दन भी थोड़ी देरके लिये छन्द-सा बन जाता है। आलिङ्गनद्वारा लक्ष्मणको कुछ शान्त करके भगवान् कहने लगे—‘रघुशार्दूल ! मैं जानता हूँ, तुम वीर हो। भरत मेरा प्राणप्यारा है। जब तुम भरतको भी (मेरे लिये) बंध करनेको तैयार हो तो अवश्य ही तुम मेरे अनन्त हित-साधनमें रत हो, इसमें कोई सन्देह नहीं। आई ! मैं तुम्हारा प्रताप खूब जानता हूँ, पर प्रताप दिखलानेका यह अवसर नहीं।’ इस कथनसे क्या भगवान्ने श्लेष किया ? हरि ! हरि ! प्रेमसे परिपूर्ण हृदयमें क्या कभी श्लेष रह सकता है ? श्लेष तो असत्यकृद्शी हृदयके अभिमानपूर्ण दुर्गन्धयुक्त उद्गार हैं। श्रीभगवान्में श्लेष रह ही नहीं सकता। श्रीवाल्मीकिमें भगवान् कहते हैं कि अभिषेकमें विघ्न होना नियति है और नियतिको—ईश्वरके

विषमको—बदलनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। भगवान् व्यास इस बातको दिखलाते हैं कि—क्रोध कहाँसे उत्पन्न होता है और किस उपायसे उसको समूल निर्मूल किया जा सकता है। केवल क्रोध ही नहीं, सारी अशान्ति और सारे दुःखोंका जो कारण है, उसका विनाश कैसे किया जा सकता है। हम भूमयडलमें समस्त देशोंके सभी नर-नारियोंके बयार्व कल्याणके लिये श्रीव्यास-वर्णित भगवान् श्रीरामका अमूल्य उपदेश यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीभगवान् कहने लगे, 'आई लक्ष्मण ! यह जगत्, यह राज्य, यह देह जो तुम देख रहे हो, यदि सत्य होता तो इस देहको सिंहासनपर बैठानेके लिये तुम जो मेरे राज्य भोगोंमें विभक्त करनेवाले लोगोंका नाश करना चाहते हो, सो तुम्हारा परिश्रम सफल होता। किन्तु लक्ष्मण ! क्या यह सब सत्य है ? देखो आई ! इन्द्रिय-सुख हो या राज्य-सुख, सभी सुख-भोग बादलोंमें बिजलीकी चमकके समान चञ्चल हैं। अभी हैं और दूसरे क्षणमें नहीं। जीवकी यह आयु भी, जैसे आगमें तपे हुए लोहेपर पड़ी हुई जलकी बुँद उसी क्षण सूख जाती है वैसे ही, क्षण-स्थायी है। जिस भोगके लिये मनुष्य इतना कष्टपटाता है, उसको वह कब भोगेगा ? सर्पने मेंढकको मुँहमें निगल लिया है, मेंढक सर्प-कण्ठके कोमल मांसको मज्जुर मानकर उसे भोगनेकी इच्छा करता है, ऐसे ही कालरूप कराळ सर्पके गालमें पड़ा हुआ यह मनुष्य भी अनित्य भागोंको छोड़ना नहीं चाहता। यह मनुष्य भागोंकी प्राप्तिके लिये दिन-रात अत्यन्त बलेश सहता हुआ धन उपार्जन आदि लौकिक और वैदिक अनेक प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। परन्तु शोचो ! यहाँ भोग कौन करता है ? मनुष्य क्या एक बार भी इस बातपर विचार करता है कि इन भागोंको शरीर भोगता है या आत्मा ? देह, देहसे भिन्न पदार्थ है, देह जड़ है और देही पृथक् आनन्दस्वरूप है। जो देहसे देहीको अलग देखते हैं वे तो चैतन्यमें—पुरुषमें कोई भी भोग देख नहीं पाते।

फिर इस संसारके सम्मेलनपर भी तो विचार करो। पिता, माता, स्त्री, पुत्र, भाई, ये सब मिलकर संसारमें रहते हैं। यह सम्मेलन भी बहुत-से लोगोंके रस्तेकी कर्मशाखामें टिके रहनेकी भाँति क्षणस्थायी है। थकावट और व्यास मिटाकर कौन कहाँ चला जायगा, इस बातका किसको पता है ? अथवा इस पारिवारिक सम्मेलनको

नदीके प्रवाहमें बहकर आये हुए काठोंके समान अति अल्प कालका समझो। जलके प्रवाहमें कहाँ-कहाँसे आये हुए अनेक प्रकारके काठ एकत्र मिल जाते हैं और फिर देखते-ही-देखते तरङ्गोंकी चोटें खा-खाकर कहीं अदृश्य हो जाते हैं। एक ही प्रकारके कर्मको लेकर स्त्री-पुत्र, माता-पिताका मिलना होता है और कर्मका भोग पूरा होते ही कौन कहाँ चला जाता है इस बातको कोई नहीं देख सकता।

लक्ष्मी—धन क्षयाकी भाँति चञ्चल है। यौवन जल-तरङ्गकी नाई क्षण-भङ्गुर है। स्त्री-सुख स्वप्न-सुख-भोगके तुल्य है और मनुष्यकी आयु भी अत्यन्त अल्प है, तथापि मनुष्य अभिमानसे नहीं बचता। कहता है कि 'मैं इस धनको, इन भोगोंको सदा भोगूँगा।'

लक्ष्मण ! इस संसारमें कितने दिनोंकी स्थिति है। वह तो स्वप्नके समान है। फिर इस स्वप्नवत् अस्थायी संसारमें भी मनुष्य निरन्तर रोग, शोक और अनेक प्रकारकी ज्वालाओंसे जर्जरित रहता है। यह संसार आकाशमें गन्धर्व-नगरकी भाँति देखते-ही-देखते बिखीन हो जाता है। हाय ! यह मूढ़ मनुष्य इस अत्यन्त अस्थायी संसारको स्थायी बनानेके लिये दीवालपर दीवाल चुनाता है और तालोंपर ताले लगावाता है, न मालूम क्या-क्या करता है ? सूर्यदेवके उदय और अस्तके साथ-साथ प्रतिदिन मनुष्यकी आयु क्षय हो रही है। कितने लोग निरन्तर बुढ़ापेस्थासे पीड़ित हो रहे हैं और कितने मर रहे हैं तथापि मनुष्य एक बार भी यह नहीं सोचता कि इस देहका भी नाश होगा। बनाओ, मनुष्य क्यों नहीं समझता ? पिछले दिनोंकी अपेक्षा अगले दिनोंमें नये-नये भोग सुम्भको मिलते रहेंगे, मूर्ख मनुष्य केवल यही सोचता रहता है। पूर्वकी अवस्थाको हर लेनेवाले कालके वेगको वह एक बार भी नहीं देखता। कब कबके जलकी भाँति जीवका जीवन प्रति-क्षण क्षीय हो रहा है। बीमारियाँ बैरियोंकी भाँति देहपर सतत प्रहार कर रही हैं। बुढ़ापेस्था बाधिके समान मुँह बाये सामने गरज रही है और मृत्यु तो समझकी बाट देखती हुई साथ साथ घूमकर मार्गों यही कह रही है कि कब समय आये और कब मैं इसका संहार करूँ।

जो शरीर मरनेके बाद दो दिन भी पड़ा रहनेपर कृमि—कीटमय हो जाता है। सिंह-व्याघ्रादिके जानेसे जो बिछाके रूपमें परिणत हो जाता है और ज्वाला देनेपर जो

साक बन जाता है, ऐसे कृमि-विष्टा-भस्मकी संज्ञावाले इस शरीरमें 'मैं' पन का अभिमान करके जोग कहते हैं कि 'हम जगत्-प्रसिद्ध राजा हैं।' त्वक्, अस्थि, मांस, विष्टा, मूत्र, शुक्र और रक्त इत्यादि शरीरमें निरन्तर विकारको प्राप्त हो रहे हैं, सनत परिवर्तनको प्राप्त हो रहे हैं। बताओ, ऐसा विकारी और परिवर्तनी शरीर आत्मा कैसे हो सकता है ?

भाई ज्ञप्समन् ! जिन क्रोधादि दोषोंसे युक्त शरीरपर आत्मा करके तुम त्रिलोकको दग्ध करनेके लिये तैयार हुए हो, वे सब दोष वेदाभिमानसे ही तो प्रकट होते हैं। 'शरीर ही मैं हूँ' इसी बुद्धिका नाम अविद्या है; 'मैं शरीर नहीं, मैं चित् स्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। अविद्या ही माया है। आत्माको अनात्मा मानना ही माया है। इसमें विषेप-माया जगत्की कल्पना करती है और आवरण-माया ज्ञानको ढक रखती है। अविद्या जन्म-मरण-रूप संसारमें हेतु है और विद्या संसार दुःखका हरण करने-वाली है। अतएव जो इस दुःखसागरसे तरना चाहते हैं उन मुमुक्षुओंको सर्वदा विद्याका अभ्यास करना चाहिये। हे शत्रुसूदन ! 'मैं शरीर नहीं चैतन्य हूँ, मैं आत्मा हूँ।' जो आत्मत्व छोड़कर सर्वदा ऐसा अभ्यास करते हैं, उनका प्रधान कर्तव्य काम, क्रोध, जोभादि शत्रुओंका नाश करना होता है। इनमें क्रोध तो मोक्षविद्याका बड़ा ही विषम वैरी है, यह सदा-सर्वदा मोक्षके मार्गमें विघ्न डाला करता है। क्रोधके वशमें होकर ही मनुष्य पिता, भाई, सुहृद् और सखाका वध करता है। क्रोध ही मनम्पापका मूल कारण है। जिस समय मनुष्यके अन्तःकरणमें क्रोधका वेग बढ़ जाता है उस समय उसको 'क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये' इस बातका कोई विचार नहीं रहता। इसीलिये वह बर्बोंके प्रति दुर्वाक्य बोलने लगता है और इसपर भी यदि क्रोध शान्त नहीं होता तो उन्हें मारने लगता है, एवं पीछे महान् दुःखको प्राप्त होता है। इसप्रकार-से क्रोध मनुष्यको संसारमें बाँध रखता है और धर्मका चष करता है, अतः भाई ज्ञप्समन् ! तुम क्रोधका त्याग करो ! क्रोध मनुष्यका महाशत्रु है। कारण, वह क्रोध ही मनुष्यकी मृत्युको बुझा लाता है। जोग क्रोध-वश विष खाकर आत्महत्या भी कर लेते हैं।

धन इत्यादि पदार्थों की जो इच्छा है, वह उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है इसीलिये इस तृष्णाको वैतरणी नदीकी उपमा

दी गयी है। जैसे बमराजके मार्गमें वैतरणी एक प्रति अर्धकर दुस्तर नदी है और पापियोंको उसे पार करना पड़ता है इसी प्रकार संसारमें यह तृष्णारूपी नदी भी दुर्द्धि संसारो मनुष्योंके लिये दुस्तर है। भाई ! सन्तोष ही—वाद्य विषयोंकी इच्छाका त्याग ही—नन्दनवनकी नाई आनन्द-दायक है और मनकी निवृत्ति-रूप शान्ति ही कामधेनु है। कामधेनुसे हम जो वस्तु चाहते हैं, वही वस्तु वह देती है। इसीप्रकार शान्ति भी दो चार ब्रह्मावर्णोंकी प्राप्तिकी अपेक्षा भी अधिक सुख प्रदान करती है। ज्ञप्समन् ! इन सब कार्योंसे तुम इस समय यदि शान्तिकी सेवामें लग जाओ तो तुम्हारा कोई भी शत्रु नहीं रहेगा। कारण, शान्तिकी सेवा तुम्हारी दृष्टि आत्माकी ओर कर देगी तब तुम देखोगे कि आत्मामें कोई विकार नहीं। फिर शत्रु उत्पन्न ही कहाँसे होगा ? आत्मा न इन्द्रिय है, न मन है, न बुद्धि है और न प्राण है। वह इन सबसे पृथक् वस्तु है। आत्मा शुद्ध है, स्वयं-प्रकाश है, निर्विकार है और निराकार है। देह, इन्द्रिय, प्राण इत्यादि तो आत्माके विपरीत हैं, अर्थात् वे अशुद्ध हैं, परप्रकाश हैं, विकारी हैं और आकारवाले हैं। मनुष्य जबतक शरीर, इन्द्रिय, प्राणादिसं पृथक् इस आत्माको नहीं जान लेता तबतक उसे जन्म-मरणकी प्राप्ति होती है और वह संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोगता है। अतएव तुम आत्माको सर्वदा शरीर, मन, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियोंसे पृथक् मानो। इस तरह मानते हुए बुद्धि प्रभृतिका अवलम्बन करके बाहरसे लोकव्यवहार करो। खेद न करो। सुख-दुःख तो प्रारब्ध है, जो आये उसीको भोगते जाओ। फिर तुम कर्म करके भी कर्ममें जिस नहीं होओगे। हे राघव ! बाहरसे सर्वत्र कर्तृत्वपन दिखानेपर भी तुम भीतरसे शुद्ध-स्वभाव हो अतएव तुम कर्मफलसे निर्लस रहोगे।

ज्ञप्समन् ! यह जो तुम्हारे प्रति मैंने ज्ञानका उपदेश किया, इन सब बातोंको सदा-सर्वदा हृदयमें सोचते रहो तो फिर सारे संसारके दुःख भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे।

'संसारदुःखैरसिद्धैर्नीध्यसे न कदाचन'

श्रीभगवान्से यही प्रार्थना है कि हमलोग इस ज्ञानको कभी न भूलें।

## रामायणकी विशेषता

( लेखक—कविसम्राट् श्रीवन्दिनाथ ठाकुर )



मायणमें एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें घरकी बातोंहीको बहुत बढ़ा करके दिखाया है। पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, पति-पत्नीमें जो धर्मका बन्धन और प्रीति एवं भक्तिका सम्बन्ध है, रामायणने उसे इतना

महत्व दिया है कि वह बहुत सहजहीमें महाकाव्यके उपयुक्त हो गया है। प्रायः देश-जय, शत्रु-विनाश और दो प्रबल विरोधी पक्षोंके प्रचण्ड आघात-प्रतिघात साधारणतः महाकाव्यके बीचमें आन्दोलन और उद्दीपनाका सञ्चार करते हैं। किन्तु रामायणकी महिमाने राम-रावणके युद्धका आश्रय नहीं लिया है, इसमें वर्णित युद्धचटना श्रीराम-चन्द्र और सीताके दाम्पत्य-प्रेमको ही उज्ज्वल करके दिखानेका उपलक्ष्यमात्र है। पुत्रके लिये पिताका आज्ञापालन, भाईके लिये भाईका आत्मत्याग, पत्नीका पतिव्रत, पतिका पत्नीव्रत और प्रजाके प्रति राजाका कर्तव्य कदांतक हो सकता है, रामायणने यही दिखाया है। इसप्रकार व्यक्तिविशेषके घरकी बातोंका इतना विशद वर्णन करना किसी देशके महाकाव्यमें उचित नहीं समझा गया। इससे केवल कविका ही नहीं किन्तु सारे भारतवर्षका परिचय मिल जाता है। गृह और गृहधर्म भारतवर्षमें कितने और कैसे उच्च थे वे इससे जाने जायेंगे। हमारे देशमें गृहस्थाश्रमको भी अत्यन्त उच्च स्थान था, यह काव्य इस बातको प्रमाणित करता है। गृहस्थाश्रम हमारे निजके सुख और आरामके लिये नहीं था किन्तु गृहस्थाश्रम सारे समाजको धारण करता था और मनुष्यको यथार्थरूपसे मनुष्य बनाता था। गृहस्थाश्रमको भारतवर्षीय आर्यजातिकी नींव समझना चाहिये और रामायण उसी गृहस्थाश्रमका काव्य है। इसी गृहस्थाश्रम-धर्मको रामायणने सङ्कटके समयमें—वनवासके दुःखमें कालकर उभे विशेष गौरव प्रदान किया है। कैकेयी और मन्थराके कुचक्रोंके कठिन आघातोंसे अयोध्याके राजगृहके नष्ट हो जानेपर भी इस गृहस्थ-धर्मकी दुर्मेघ दृढ़ताको रामायण घोषित कर रही है। रामायणने बाहुबल, विजयकी अभिलाषा और राष्ट्र-गौरव इन सबका परित्याग कर केवल शान्तरसास्पद गृहधर्मको ही कल्याणके अभ्युज्ज्वल से अभिसिक्त कर उसे सर्वोच्च सिंहासनपर विराजित किया है।

अब्राहोन पाठक कहेंगे कि इस प्रकारका चरित्र-वर्णन अतिशयोक्तिमें परिणत हो जाता है। इस कथनसे इस बातकी भीमांसा नहीं हो सकती कि किस जगह यथार्थ सीमाका और किस जगह कल्पनाकी सीमाका लंघन करनेसे काव्यकला अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाती है। जिन विदेशी समालोचकोंने कहा है कि रामायणमें चरित्र-वर्णन अति-प्राकृत हो गया है, उनसे हम यही कहेंगे कि प्रकृतिके भेषसे एकके लिये जो अति-प्राकृत है, दूसरेके लिये वही प्राकृत है।

जिस जगह जो आदर्श प्रचलित है उसे यदि अति-मात्रामें आङ्कित किया जाय तो उसे वहाँके लोग ग्रहण ही नहीं करेंगे। हम अपने कानोंमें कितने शब्दोंको ठीक ठीक सुन सकते हैं इसकी सीमा है, यह नहीं कि बराबर कोई कहता चला जाय और हम सुनते ही जायें। हमारे सुननेकी सीमाके बाहर कोई चिन्हाकर हमारे कान ही क्यों न फाड़ डाले किन्तु निर्विष्ट सीमाके बाहर हमारे कान उसके शब्दोंको कभी ग्रहण ही न करेंगे। काव्यमें चरित्र और भाषके उद्भावनके सम्बन्धमें भी वही बात घटती है।

यदि यह बात सत्य है तो यह बात सहस्रों वर्षोंसे मानी जा रही है कि रामायणकी कथा भारतवर्षके निकट किसी अंशमें अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हुई है। इस रामायणसे भारतवर्षके आबाल-वृद्ध-बनिता और ऊँच नीच सब लोगोंने केवल शिक्षा ही नहीं पायी है किन्तु आनन्द भी प्राप्त किया है, इसे केवल उन्होंने शिरोधार्य ही किया हो सो नहीं, इसे उन्होंने हृदयमें भी स्थान दिया है। यह उनका धर्मशास्त्र ही नहीं, काव्य भी है।

श्रीरामचन्द्रजी जो एक ही कालमें हमारे निकट देवता और मनुष्य हैं, रामायण जो एक ही कालमें हमारी भक्ति और प्रीतिभाजन हुई है, यह कभी सम्भव नहीं होता, यदि इस महाग्रन्थकी कविता भारतवर्षकी दृष्टिमें केवल कवियोंकी कपोल कल्पना ही होती और वह हमारे लोक-व्यवहारके कार्यमें न आ सकती।

इसप्रकारके ग्रन्थको यदि विदेशी समालोचक अपने काव्योंके विचारके आदर्शके अनुसार अप्राकृत कहेंगे तो उनके देशके सहित तुलना करनेमें भारतवर्षकी एक और भी विशेषता प्रकट होती है। रामायणमें भारतवर्षने जो चाहा वही पाया है।

( रामायणी-कथा )

## रामचरितमानसके लोकप्रिय होनेका कारण

(लेखक-रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी०ए०)



सारेके जितने काम हैं सब किसी-न-किसी प्रयोजनसे किये जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचनाका कारण यह लिखा है—

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—

भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥

काव्य-रचना यशके लिये की जाती है, धन कमानेके लिये की जाती है, अमंगल नाशके लिये की जाती है और उपदेशके लिये की जाती है, पर यहाँ तो प्रयोजन केवल अपने अन्तःकरणका सुख है, जिसे संस्कृतमें पर-निर्वृत्ति कहते हैं, परन्तु गोस्वामीजी आगे चलकर एक बात और कहते हैं—

बरनौं रघुबर जिसद जस सुनि कलिकलुष नसाय।

कहनेवाले कह सकते हैं कि गोस्वामीजीने अपने ओताओंको यह आज्ञा दिया है। पर ऐसा नहीं है, उनका मुख्य प्रयोजन तो यह है—

मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

क्योंकि राम-कथा 'निज सन्देह मोह-भ्रम-हरणी' और 'भनसरिता तरणी' है। आश्चर्य यह है कि गोस्वामीजीके स्वार्थसे संसारका परमार्थ कैसे सिद्ध हो गया? हमारी समझमें यह आता है, कि उन्होंने अपने समकालीन प्रचलित धर्म ध्यानसे देखे थे। सम्भव है कि पहले उनका मन भी डारवाँडोड था, परन्तु उन्होंने अपने सन्तोषके लिये जो राह निकाली, वही संसारके लिये धर्म-मार्ग बन गया। 'नानापुराणनिगमागम' भयकर जो रस निकाला वह भारतवर्षके लिये रसायन बन गया। सो भी कबूची दवा नहीं, भिन्न भिन्न रुचिवाले सब यह सुधारस पान करके छूक गये। शैव और वैष्णव जो एक दूसरेका सिर फोड़ रहे थे, सबको यह रस अण्डा लगा। विचारनेकी बात है कि इसमें ऐसी कौन-सी बात थी।

किसी कविकी रचनाको समझनेके लिये कविके समयकी देश-दशा जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। वह कितनी बातें समझानुद्घत कह डालता है जो तत्कालीन इतिहास जाने बिना समझमें नहीं आ सकती। गोस्वामीजीने कविताबलीमें लिखा है—

एक तो कराल कलिकाल मूल-मूल तामे

कोढ़मेंकी खाज-सी सनीचरी है मीनकी।

इसको समझनेके लिये इतिहास और ज्योतिषशास्त्र दोनोंकी शरब लेनी पड़ती है। इस पंक्तिकी व्याख्या बड़ी रोचक है। इसके लिये हम भाषाके सुप्रसिद्ध विद्वान् और मानसके अनुरागी सर जार्ज ग्रियर्सनके नोट्स (Notes) से एक अंशका अनुवाद उद्धृत करते हैं। 'तुलसीदासजीके जीवनकालमें राजैरचरने मीनराशमें दो बार प्रवेश किया, पहले चैत सुदी १ संवत् १६४० में, जो ज्येष्ठ संवत् १६४२ तक रहा और दूसरी बार चैत सुदी २ सं० १६६१ में। इस बार 'मीनकी सनीचरी' ज्येष्ठ सं० १६७१ तक रही, और इसी सनीचरीमें मुसलमानोंका अत्याचार बनारसमें बहुत बढ़ गया था।

भारतवर्षमें जितने नये नये मत निकलते हैं, सब अपनेको सच्चा कहते और दूसरेको पाखण्ड बताते हैं। स्वामी रामानुजका जन्म सं० १०७४ वि० (१०१७ ई०) में हुआ। स्वामी रामानुज अपने गुरुसे लड़ते रहे। शैवों और वैष्णवोंकी लड़ाई और शैवोंकी हारका एक उदाहरण यह है—

तिरुपतिके एक मन्दिरमें मूर्तिके विषयमें बड़ा विवाद था। शैव कहते थे कि शिवकी मूर्ति है और वैष्णव उसे विष्णुकी मूर्ति बताते थे। निर्णय करनेके लिये विष्णुके चिह्न (शंख चक्र) और शिवके चिह्न (त्रिशूल) दोनों मूर्तिके आगे रखे गये और पट बन्द कर दिया गया। सबेरे पट खुला तो मूर्तिके हाथोंमें शंख और चक्र देखे गये और त्रिशूल टूटा पड़ा था, यह सब कुछ हुआ परन्तु शैवों और वैष्णवोंका विरोध बढ़ता गया। स्वामी रामानुजके शिष्य कूरेश और उनके गुरु महापुरुष दोनोंको शैवोंकी प्रेरणासे तत्कालीन चोखराज्यने बुलवाया और उनकी आँखें निकलवा डालीं। ये विरोध अबतक हैं। काञ्ची (Conjeeveram) में अब भी दो भाग हैं—(१) शिवकाञ्ची (२) विष्णुकाञ्ची। कहा जाता है, शैव विष्णुकाञ्चीमें जाते या वैष्णव शिवकाञ्चीमें जाते हैं तो अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध लेते हैं।

इतना बिलकर अब हम अब भिन्न भिन्न मतोंका उद्देश करने जो गोस्वामीके समयमें प्रचलित थे। और जिनको गोस्वामीजीने अपने मानसमें ग्रहण किया है।

(१) शंकरस्वामीका वेदान्त—स्वामी शंकराचार्यका प्राधुर्भाव आजकलकी गवेषणाके अनुसार विक्रम संवत्की नवीं शताब्दीमें हुआ था। इन्होंने वेदान्त (शास्त्राचार्य) सूत्रकी एक टीका लिखी है जो 'शंकर-भाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके दूसरे अध्यायमें इन्होंने अपने समयके प्रचलित धर्मोंका खण्डन किया है। इस सम्प्रदायमें शिवकी उपासना की जाती है और वे ही शैव स्वामी रामानुजके विरोधी थे। स्वामी रामानुजने भी वेदान्त-सूत्रपर अपने मतानुसार एक टीका की है जो 'श्रीभाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है।

स्वामी शंकराचार्यने बौद्धोंको परास्त करके भारतवर्षके बाहर निकाल दिया और गया आदि प्रधान बौद्ध-स्थलोंको हिन्दू-स्थल बना दिया था। उनकी शिक्षाका प्रभाव आजकल भी हिन्दू-धर्मपर बहुत है। गोस्वामीजीके समयमें इस मतके अनुयायी बहुत थे। इसलिये पहला धर्म, जिसकी जटा वेस्वनेका प्रपन्न करना उचित समझा गया, शंकरका वेदान्त था, और रामचरित-वर्णनमें वेदान्त ज्ञानेके लिये शंकर-गिरजाका संवाद उसमें मिला दिया गया, या यों कहना चाहिये कि रामचरितके बखाननेवाले श्रीरामके परमभक्त एक शंकर ही हैं। स्वामी शंकराचार्य भी शंकरके अवतार माने जाते हैं। इसी कारण शंकरके मुँहसे शंकरका वेदान्त मानसमें ढाल दिया गया। मानसके पढ़नेवाले जो वेदान्तसे परिचित हैं, गिरिजा-शंकरके संवादमें पद-पदपर वेदान्तके सिद्धान्त देखेंगे।

(२) रामानुज (लक्ष्मण)का श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय—दूसरा मत जो गोस्वामीजीके समयमें धूमधामसे प्रचलित था, स्वामी रामानुजका था। स्वामी रामानुजके सम्प्रदायको श्रीसम्प्रदाय कहते हैं और उनके अनुयायी इस देशमें साधारण रीतिसे आचारी कहलाते हैं। रामचरितमानसमें इस सम्प्रदायके समर्थक श्रीलक्ष्मणजी हैं। हम अपनी इस कल्पनाकी पुष्टिमें मुंशी सुखदेवलाजजीकी टीकासे एक अंश उद्धृत करते हैं—

“बन्दौ लछिमन पद-जल-जात। सीतल सुखद भक्त-सुख-दाता॥  
रघुपति कीरति निमल पताका। दंड समान मयो जस जाका॥

“ता पाछे श्रीधर्मिणा-पति लक्ष्मणजीके चरण-कमल अति सीतल और सुन्दर भक्तजनोंने आनन्दवाता तिनको मैं प्रथम करता हूँ।

“क पूरगौरवपुं शरदिन्दुबन्धन—

पीताम्बरं सरसिजक्षमनन्तमादिम्।

यक्षोर्मिलालितभूषणमामितांगं—

रामानुजं भज मनोमयदं निजानाम्॥

“श्रीरामचन्द्रकी कीर्तिरूपी उज्ज्वल पताकाको जिनका यश वस्त्र-रूप है अर्थात् लक्ष्मणजीका सम्पूर्ण साहस केवल रामके प्रतापके उदय हेतु है, देखो यज्ञ-रक्षा और रंगभूमि और परशुराम-आगमन। ऐसे ही सब कावडोंमें जानो और चारों धुगोंमें ऐसा ही है। देखो, सतयुगमें अनन्तावतार होकर अपने सहस्रमुखोंसे केवल भगवद्गुणानुवाद ही गायो और द्वापर रामावतारमें मुष्टिकादि दैत्योंका बध और जमुना और हस्तिनापुरका कर्षण इत्यादि केवल भगवद्-प्रीति-के निमित्त है। और कलियुगमें जब पाण्डव, बौद्ध, चार्वाक और कुट्टियों करके भगवत्कीर्तिरूपी पताका निराकम्ब हो गयी तब श्रीलक्ष्मणजी यती होकर अपने सुक्तिदण्ड करके उसको उठाकर खड़ा कर दिया। जैसे पद्मपुराणमें अभिष्य जिला है।

“पासण्डे बहुते लोके कुट्टीजनसंकुले।

कलौ वैष्णवीसिद्धान्तं पुनरुद्धार्यते यती॥

“अर्थात् जब जैन, बौद्ध, चार्वाक, पाण्डव कलियुगमें फैल जायगा और कुट्टिन करके संसार भर जायगा तब वैष्णव-सिद्धान्तको फेरि यती उद्धार करेंगे।

“अनन्तं प्रथमे युगे द्वितीये लक्ष्मणं तथा।

तृतीये बलरामश्च कलौ रामानुजो यती॥

“अर्थात् जो सतयुगमें अनन्त भये और त्रेतामें लक्ष्मण और द्वापरमें बलदेव सोई कलियुगमें श्रीलक्ष्मणजी यती होईंगे।”

हम अपनी ओरसे इतना और बढ़ाना चाहते हैं कि स्वामी रामानुजके अनुयायियोंने कम-से-कम दक्षिण-देशमें श्रीराम-जानकीकी उपासना फैलायी और आज दिन भी भारतवर्षमें अनेक राम-जानकीके मन्दिर इसी सम्प्रदाय-वालोंके अधिकारमें हैं।

\* यह टीका कलि-संवत् ४९७० में लिखी गयी थी और प्राचीन टीकाओंमें अत्यन्त प्रामाणिक है, इसमें बहुत नयी बातें जानने योग्य हैं। आजकल कलि-संवत् ५०३० है।

(३) स्वामी रामानन्दका सम्प्रदाय—तीसरा मत स्वामी रामानन्दका है। स्वामी रामानन्दका जन्म प्रयागराजमें संवत् १४०० विक्रमीमें हुआ था। आचार्यों और रामानन्दीयोंका ऋगदा उठनेसे पहले हमलोग मानते थे कि स्वामी रामानन्द भी पहले आचार्य ही थे। परन्तु अब स्वामी रामानन्दसे रामानन्दीय सम्प्रदायका कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता। स्वामी रामानन्दकी शिक्षाकी देशकी दशासे कोई सम्बन्ध न था, न उनके समयमें परदेशियोंके आनेसे इस दशामें बड़े बड़े ऐसे परिवर्तन ही हो गये थे जैसे कि उनके पीछे तीन सौ वर्षमें हुए। लखनौतीके बाजारमें हजारों मनुष्योंका काँसी खटकाया जाना, दिल्लीमें तैमूरकी आशासे नर-मुण्डोंका स्तम्भ बनाना, ऐसी घटनाएँ उस समय न थीं, जिनका असर सहृदय देश-सुधार करनेवालेपर न पड़ता। रामानन्दने यह भी देखा कि हमारे देशके पददलित चमार जो बड़ी लचके साथ गायका मांस खाते हैं, मुसलमान होकर शेर बन गये और जिन हिन्दुओंने उनसे धृष्टा की और उनका तिरस्कार किया था, विजेन्नी जातिका बल पाकर, उन्हींको चिढ़ानेके लिये वे गो-बध करने लगे। स्वामी रामानन्दने सोचा कि बिना दलितोंद्वारा किये काम नहीं चलता। इस भारतवर्षका मुख्य भोजन मांस नहीं है, यहाँ आचार्योंने इतने प्रकारके

अन्नों, स्वादिष्ट फलोंका आविष्कार किया है कि मांस खाये बिना भी मनुष्य अच्छे-से-अच्छा भोजन करता और हृष्ट-पुष्ट रह सकता है। स्वामी रामानन्दने चमारसे कहा कि 'तुम मांस खाना छोड़ दो और कपटी बाँध जो तो हम तुम्हें अपनी पंगतमें भोजन कराते हैं।' उनका एक प्रधान शिष्य रैदास चमार था। इतना ही नहीं उन्होंने कबीर जुलाहेको भी अपना शिष्य बनाया। भविष्यपुराणमें लिखा है कि स्वामी रामानन्दका एक शिष्य अयोध्या पहुँचा और वहाँ उसने अनेक मुसलमानोंको वैष्णव बना लिया। वही आज-कलकी शुद्धि और दलितोद्धार है। उन्होंने यह सिखाया कि राम-जानकीके चरणोंमें भक्ति होनेसे आचारका काम नहीं। इस भक्तिका सबको अधिकार है, और—

जिनके प्रिय न राम बैदेही।

तजिये तिनहँ कोटि बैरी सम यद्यपि परमसनेही॥

मानसमें स्वामी रामानन्दके स्थानापन्न भरत हैं। गोस्वामीजी आप रामानन्दी सम्प्रदायके हैं और अयोध्या-काण्डके अन्तमें स्पष्टरूपसे कहते हैं कि—

कलिकाल तुलसीसे सठनि हठि राम सन्मुख करत को।

जिसका अर्थ यह है कि स्वामी रामानन्दकी शिक्षाने मुझे श्रीरघुनाथजीका भक्त बना दिया। ॐ

## आह्वान

काम क्रोध लोभ सरदूपण त्रिशिर तुल्य

वासना विकल सूर्पणखा-सी सनाती है।

दश इन्द्रियोंका मोह दशमुख रावण है

जिससे विवश बुद्धि-सीता दुःख पाती है।

असुर-समूहोंसँ व्यथित हाँ हृदय-भूमि

अति अकुलाती, घबराती, बिलसालाती है।

सोये किस ओर करुणाके धाम रामचन्द्र !

याद इस ओरकी तुम्हें क्यों न आती है ?

बलदेवप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल एल० बी०, एम० आर० ए० एस०,

● हमने इस विषयपर विद्वानों और रामायणके प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये मोटी मोटी बातें लिख दी हैं। अवकाश मिलनेपर पूरी व्याख्या की जायगी।



## श्रीरामकी पुनः लङ्का-यात्रा और सेतु-भंग



क समय भगवान् श्रीरामको राजसराज विभीषणका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा कि 'विभीषण धर्मपूर्वक शासन कर रहा है कि नहीं? देव-विरोधी व्यवहार ही राजाके विनाशका सूत्र है। मैं विभीषणको लङ्काका राज्य दे आया हूँ, अब जाकर उसे सम्हालना भी चाहिये। कहीं राज्यभ्रममें उससे अभिमानचरम तो नहीं हो रहा है। अतएव मैं स्वयं लङ्का जाकर उसे देखूँगा और हितकर उपदेश दूँगा, जिससे उसका राज्य अनन्त कायलतक स्थायी रहेगा।' श्रीराम यों विचार कर ही रहे थे कि भरतजी आ पहुँचे। भरतजीके नम्रतासे पूछनेपर श्रीरामने कहा—'भाई! तुमसे मेरा कुछ भी गोपनीय नहीं है, तुम और यशस्वी लक्ष्मण मेरे साथ हो। मैंने निश्चय किया है कि मैं लङ्का जाकर विभीषणसे मिलूँ, उसकी राज्य-पद्धतिको देखूँ और उसे कर्तव्यका उपदेश दूँ।' भरतने कभी लङ्का नहीं देखी थी, इससे उसने भी साथ चलनेकी इच्छा प्रगट की, श्रीरामने स्वीकार कर लिया और लक्ष्मणको सारा राज्यभार सौंपकर दोनों भाई पुष्पक विमानपर चढ़ लङ्काके लिये विदा हुए। पहले भरतके दोनों पुत्रोंकी राजधानीमें जाकर उनसे मिले और उनके कार्यका निरीक्षण किया, तदनन्तर लक्ष्मणके पुत्रोंकी राजधानीमें गये और वहाँ छ दिन ठहरकर सब कुछ देखाभाखा। इसके बाद भरतजात्र और अधिक अभिमानको गये। फिर आगे चलकर श्रीरामने चलते हुए विमानपरसे वह सब स्थान दिखावाये जहाँ श्रीसीताजीका हरष हुआ था, जटायुकी मृत्यु हुई थी, कबन्धको मारा था, और बाजिका बध किया था। तत्पश्चात् किष्किन्धापुरीमें जाकर राजा सुग्रीवसे मिले। सुग्रीवने राजघरानेके सब स्त्री-पुरुषों, नगरीके समस्त नर-नारियोंसमेत श्रीराम और भरतका बड़ा भारी स्वागत किया। फिर सुग्रीवको साथ लेकर विमानपरसे भरतको विभिन्न स्थान दिखावाते और उनकी कथा सुनाते हुए लङ्कामें आ पहुँचे, विभीषणको वृत्तोंने यह शुभ समाचार सुनाया। श्रीरामके लङ्का पधारनेका संवाद सुनकर विभीषणको बड़ी प्रसन्नता हुई। सारा नगर बात-की-बातमें सजाया गया और अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर विभीषण भगवान्की लिये चला। सुमेरुस्थित सूर्यकी भाँति विमानस्थ श्रीरामको देखकर

साक्षात् प्रक्षामपूर्वक विभीषणने कहा—'प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये। क्योंकि आज मैं जगद्वन्द्य अनन्य आप दोनों स्वामियोंके चरण-दर्शन कर रहा हूँ। आज स्वर्गवासी देवगण भी मेरे भान्यकी श्लाघा कर रहे हैं। मैं आज अपनेको त्रिवरापति इन्द्रकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझ रहा हूँ।' सर्वरत्नसुशोभित उज्ज्वल भवनमें महोत्सम सिंहासनपर श्रीराम विराजे, विभीषण अर्घ्यदेकर हाथ जोड़ भरत और सुग्रीवकी स्तुति करने लगा। लङ्कानिवासी प्रजाकी रामदर्शनार्थ भीड़ जग गयी। प्रजाने विभीषणको कहलाया, 'प्रभो! हमको उस अनोखी रूप-माधुरीको देखे बहुत दिन हो गये। बुद्धके समय हम सब देख भी नहीं पाये थे। आज हम दीनोंपर दयाकर हमारा हित करनेके लिये कल्याणमय हमारे घर पधारे हैं, अतएव शीघ्र ही हम लोगोंको उनके दर्शन कराइये।' विभीषणने श्रीरामसे पूछा और दयामयकी आज्ञा पाकर प्रजाके लिये द्वार खोल दिये। लङ्काके नर-नारी श्रीराम-भरतकी काँकी देखकर पवित्र और मुग्ध हो गये। यों तीन दिन बीते। चौथे दिन रावण-माता कैकसीने विभीषणको बुलाकर कहा, 'बेटा! मैं भी श्रीरामके दर्शन करूँगी। उनके दर्शनसे महासुनिगण भी महापुण्यके भागी होते हैं। श्रीराम साक्षात् सनातन विष्णु हैं, वही यहाँ चार रूपोंमें अवतीर्थ हैं। सीताजी स्वयं लक्ष्मी हैं। तेरे भाई रावणने यह रहस्य नहीं जाना। तेरे पिताने कहा था कि रावणको मारनेके लिये भगवान् विष्णु रघुवंशमें दशरथके यहाँ प्रादुर्भूत होंगे।' विभीषणने कहा—'माता! आप नये वस्त्र पहनकर कञ्चन थालमें चन्दन, मधु, अक्षत, दधि, दूर्वाका अर्घ्य सजाकर भगवान् श्रीरामके दर्शन करें। सरमा (विभीषण-पत्नी) को आगे कर और अन्यान्य देवकन्याओंको साथ लेकर आप श्रीरामके समीप जायें। मैं पहले ही वहाँ चला जाता हूँ।'।

विभीषणने श्रीरामके पास जाकर वहाँसे सब लोगोंको विरक्तुल हटा दिया और श्रीरामसे कहा, 'देव! रावणकी, कुम्भकण्ठी और मेरी माता कैकसी आपके चरण-कमलोंके दर्शनार्थ आ रही हैं, आप कृपापूर्वक उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करें।' श्रीरामने कहा, 'भाई! तुम्हारी माता मेरी 'मा' ही है। मैं ही उनके पास चलता हूँ, तुम जाकर उनसे कह दो।' इतना कहकर विष्णु श्रीराम उठकर चले और कैकसीको

देखकर मल्लकसे उसे प्रणाम किया तथा बोले—‘आप मेरी धर्म-माता हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अनेक पुत्र और महान् तपके प्रभावसे ही मनुष्यको आपके (विभीषण-सदृश भक्तोंकी जननीके) चरम-वर्णनका सौभाग्य मिलता है। आज मुझे आपके वर्णनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे श्रीकौशल्याजी हैं, वैसे ही मेरे लिये आप हैं।’ बदलेमें कैकसीने मातृभावसे आशीर्वाद दिया और भगवान् श्रीराम-को विश्वपति जानकर उनकी स्तुति की। इसके बाद ‘सरमा’ने भगवान्की स्तुति की। भरतको सरमाका परिचय जाननेकी इच्छा हुई, उनके इशारेको समझकर ‘इक्षितविद्’ श्रीरामने भरतसे कहा, ‘वह विभीषणकी साखी भार्या हैं, इनका नाम सरमा है। वह महाभाग सीताकी प्रिय सखी हैं, और इनकी सखिता बहुत दृढ़ है।’ इसके बाद सरमाको समर्पित उपदेश दिया। फिर विभीषणको विविध उपदेश देकर कहा कि ‘हे निष्पाप! देवताओंका प्रिय कार्य करना, उनका

अपराध कभी न करना। लड़ाईमें कभी मनुष्य आवें तो उनका कोई राक्षस बंधन करने पावे।’ विभीषणने आज्ञानुसार चलना स्वीकार किया।

तदनन्तर वापस कौटनेके लिये सुग्रीव और भरतसहित श्रीराम विमानपर चढ़े। तब विभीषणने कहा ‘प्रभो! यदि लड़ाईका पुख्ता ज्यों-का-त्यों बना रहेगा तो पृथ्वीके सभी लोग वहाँ आकर हम लोगोंको तंग करेंगे, इसलिये क्या करना चाहिये?’ भगवान्ने विभीषणकी बात सुनकर पुख्ताकी बीचमेंसे तोड़ डाला और दश योजनके बीचके टुकड़ेके फिर तीन टुकड़े कर दिये। तदनन्तर उस एक एक टुकड़ेके फिर जोटे जोटे टुकड़े कर डाले, जिससे पुख्ता टूट गया और यों लड़ाईके साथ भारतका मार्ग पुनः विच्छिन्न हो गया! यह कथा पद्मपुराणसे ली गयी है।

—रामकिशोर.

## गोस्वामीजीकी निष्काम-भक्ति

( लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र बी० ए०, बी० एल० )

चतुर्विधा भजते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(गी० ७।१६)



स श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने भक्तोंकी चार श्रेणियाँ बतलायी हैं। आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी, ये तीन भेद सकाम भक्तोंके हैं। चौथी श्रेणी ज्ञानी अर्थात् निष्कामी भक्तोंकी है। इनमें प्रथम तीन श्रेणियोंके भक्त निष्कामोंके हैं। भक्तिकी चरम सीमा निष्काम भक्ति है और इस भक्ति-को प्राप्त कर लेनेपर भक्तोंके लिये और कुछ वाञ्छनीय नहीं रह जाता। इसप्रकारकी भक्ति सर्वथा अहैतुकी होती है अर्थात् इसका कोई हेतु नहीं होता। इसमें स्वार्थका खबरेश नहीं रहता। अहैतुकी अर्थात् निष्काम भक्ति ही भक्तिकी पराकाष्ठा है और इस भक्तिसामुद्रिकता एक बिन्दु भी जिसने पान कर लिया, उससे बढ़कर बड़भागी इस संसारमें और कौन दूसरा हो सकता है?

किन्तु, संसारमें ऐसे बिरले ही भक्त हुए हैं जिनके हृदयमें निष्काम भक्ति जन्मसे ही उत्पन्न हुई हो। अल्प

प्रकारके भक्त प्रारम्भमें निष्कामोंकी ही भक्त थे, किन्तु भक्तिका निरन्तर निरन्तर हृदयसे अभ्यास करते करते अन्तमें उन्होंने भी निष्काम भक्तिको प्राप्त कर लिया, जैसे कि भूष आदि। प्राचीन कालमें हम इसप्रकारकी अहैतुकी उत्कृष्ट भक्ति वालक प्रह्लादमें पाते हैं। किसी स्वार्थ अथवा हेतुको लेकर प्रह्लादके हृदयमें भगवद्भक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी। बालक प्रह्लाद दिन-रात एकनिष्ठभावसे भगवन्नाम-का स्मरण एवं कीर्तन किया करते थे। उन्हें स्वयं इस बात-का कुछ भी ज्ञान नहीं था कि वे क्यों और किस लिये नाम-स्मरण किया करते हैं। उनके हृदयमानसमें भक्तिका निरन्तर जोत अनवरतरूपमें प्रवाहित हो रहा था और उस भक्ति-भागीरथीमें अपने सम्पूर्ण मन, प्राण, इन्द्रियको निमज्जित करनेमें उन्हें एक प्रकारका अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता था। बस, इसके सिवा उनकी भक्तिका, उनके अहर्निश भगवन्नाम-स्मरणका और कोई दूसरा कारण था हेतु ही नहीं था। प्रह्लादकी भक्तिसे प्रसन्न होकर जब भगवान् उन्हें बर देना चाहते थे तो प्रह्लादने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया है—

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ।  
आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥  
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यभिच्छन्यो राति चाशिषः ॥

( भागवत ७।१०।४५ )

अर्थात् हे भगवन् ! जो आपसे वरदान पानेकी आशासे अर्थात् किसी उद्देश्य या मनोरथको लेकर आपकी भक्ति करता है वह सच्चा भक्त, सच्चा सेवक नहीं, वह तो प्रेमका बनिया है, वह तो भक्तिका सौदा करता है, और उसके बदलेमें प्रभुसे कुछ चाहता है। ऐसे ही जो स्वामी अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिये वरदान देना चाहता है वह भी सच्चा स्वामी नहीं। फिर भी यदि मेरे मालिक मेरी सेवापर प्रसन्न होकर वर देना ही चाहते हैं, तो यही वर दें कि “कामाना ह्यममोराहं भवन्तु वृणो वरम्” मेरे हृदयमें कामनाओंकी कभी उत्पत्ति ही नहीं हो। अहा ! निष्काम भक्तिका कितना सुन्दर परिपाक है। धन्य है इस भक्तप्रवर बालककी यह निष्काम भक्ति और धन्य है वह देश जिसने ऐसे भक्तशिरोमणिको पैदा किया। अपने ऐसे भक्तोंको लक्ष्य करके ही तो भगवान्ने उद्भवसे कहा है—

न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ता लोकान्तिनां मम ।  
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्ममम् ॥

( भागवत ११।२०।३५ )

अर्थात् मेरे जो अनन्यभक्त भक्ति करनेपर भी कैवल्य या मोक्षको इच्छातक नहीं रखते, वे पवित्र और धीर भक्त ही मुझे प्यारे हैं।

अच्छा, यह तो हुई प्राचीनकालके निष्काम भक्तोंकी बात। अब हमारे हिन्दी-कवि-कुल-कमल-दिवाकर भक्तिभास्कर गुसाई तुलसीदासजीकी निष्काम भक्तिका नमूना लीजिये और उनकी भक्ति-सुधा-रसकी चाशनी चखिये। अहा ! तुलसीकी अनन्य निष्काम भक्तिका क्या कहना है ? वह तो पुण्य-सलिला भागीरथीकी विमल-धवल-धारासे भी निर्मल, स्फटिकसे भी बढ़कर स्वच्छ एवं द्राक्षासिता और हृष्टसे भी बढ़कर मधुर है। उसकी मधुरतामें जो मादकता है वह संसारमें अन्यत्र दुर्लभ है। उस मादकतामें जो एक बार मग्न हो गया, तुलसीकी अनन्य-भक्तिका रसाभूत जिसने पानकर लिया, उस निरछल प्रेमका छलकता हुआ प्याला जिसने अपने मुँहमें आँख मूँदकर डँकेल लिया, उससे बढ़कर भाग्यवान् इस संसारमें और कौन है ? तुलसीदासजीकी निष्काम भक्ति कितनी उच्च,

गम्भीर एवं सरस है, इसका अन्दाज़ा उन्हीं लोगोंको मिल सकता है जिन्होंने तुलसी-साहित्य-सरोवरमें गहरे गोते लगाये हैं। ‘विनयपत्रिका’ में अपने इष्टदेव भगवान् रामचन्द्रके प्रति आत्म-निवेदन करते हुए इस महामहिम महात्माने निष्काम-भक्ति-परिपूरित जो हृदयोद्गार प्रकट किये हैं वह तो वास्तवमें अनुपम, अतुलनीय तथा अद्वितीय हैं। सारे विरव-साहित्यको हँद जाइये, धार्मिक ग्रन्थोंका मन्यन कर डालिये, फिर भी आपको ‘विनय’ के पद निराजे ही प्रतीत होंगे और आपके मुखसे बरबस निकल पड़ेगा ‘धन्य हैं तुलसीदास और धन्य है उनकी निष्काम भक्ति !’ ‘विनयपत्रिका’ के मंगलाचरणमें ही तुलसीदासजीने अपने इस भक्तिभावका यों परिचय दिया है—

माँगत तुलसिदास कर जोर । बसहिं राम मिय मानस मोर ।

तुलसीदास कर जोड़ कर माँगते तो हैं, लेकिन क्या माँगते हैं ? हम संसारी जीवोंके समान धन-दौलत, मान-मर्यादा, स्वर्ग, यहांतक कि मोक्ष भी नहीं माँगते। बस, माँग इनकी ही है कि ‘बसहिं राम-मिय मानस मोर ।’ एक ही वरदान चाहिये, हृदयमें एक ही आकांक्षा है, दिलमें एक ही चाह है और वह यही है कि—

अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न चहौं निर्बान ॥

जनम जनम गति रामपद, गत् वरदान न आन ।

उन्हें हृदयके निवा और कुछ नहीं चाहिये। फिर चाहनेको और रह ही क्या जाना है ? एक दूसरे पदमें तुलसीदासजी कहते हैं—

‘तुम तो बड़े दीनदयालु हो। तुम्हारे समान दानी भी दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारा नाम हो गरीबनिवाज है। फिर एक बार क्यों नहीं कह देते कि ‘तुलसीदास मेरो’। बस, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो जाऊँगा।’ तुलसीके हृदयमें एक ही लालसा है, एक ही अभिलाषा है; वह यह है कि—  
‘ज्यों ज्यों तुलसी कृपातु चरन-मग्न पावै ।’ चाहे जिस तरह हो तुलसीदासको कृपासागर प्रभुकी चरण-शरण मिले। और सुनिये, महात्मा तुलसीदास अपना मनोभिलाष अपने मालिकमें इसप्रकार व्यक्त करते हैं—

चहौं न सुगति सुमति संपत्ति कछु रिधि सिधि बिपुल बढ़ाई ।

हेतु-रहित अनुगम राम-पद बढ़े अनुदिन अधिकाई ॥

सुगति नहीं चाहिये, सुमति नहीं चाहिये, सम्पत्ति, ऋद्धि, सिद्धि, बढ़ाई कुछ भी नहीं चाहिये। बस, यदि चाह

है तो केवल यही कि रामपदमें दिन दिन अनुराग बढ़ता जाय। और वह अनुराग भी कैसा? हेतुरहित अर्थात् किसी हेतु या मतलबको लेकर नहीं, बिल्कुल अहेतुक, निःस्वार्थ। वह हेतुरहित अनुराग ही क्यों चाहिये? और कोई अभिजापा या जालसा क्यों नहीं? इसीलिये कि—

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।

बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहूँ विषय-भोग बहु धी ते॥

—कामनाओंका तो कोई अन्त ही नहीं। इसपर भी यदि विषय-भोगकी वाचना की जाय तब तो वह कामाग्नि और भी धक्क उठेगी। अतएव नाथमें 'अनुराग जगे' ऐसा उपाय अव करना चाहिये, क्योंकि नाथमें 'जब अनुराग जग जायगा तो फिर कामका नाम ही नहीं रहेगा।'

जहाँ राम तहँ काम नहीं, जहाँ काम नहीं राम।

गुसाईंजी अपने प्रभुसे कहते हैं कि यदि दान ही देना है तो

तुलसीदासपर किरपा करिय भगति दान देहु आज।

—भक्तिका दान दीजिये, और किसी वस्तुका नहीं। महात्मा तुलसीदासजीके इस निष्काम भक्तिभावका परिचय हम उनके अमूल्य ग्रन्थ रामायणमें अनेक स्थलोंपर पाते हैं

परमानन्द कृपायतन मन-परिपूरन काम।

प्रेम-भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

नाथ एक वर माँगो, राम कृपा करि देहु।

जनम जनम प्रभु-पद-कमल, कबहु धँटे जनि नेहु॥

रामदास तुलसी अपने नाथसे, मालिकसे एक वर माँगते हैं, वह वर यदि तुलसीके मालिक देनेकी कृपा करें तो इस रूपमें दें कि अपने चरण-कमलमें जन्म-जन्म स्नेह नहीं घटने दें अर्थात् इस संगारमें भले ही बार-बार आना-जाना पड़े, लेकिन इस मालिकके चरण-कमलमें तुलसीका नेह घटे नहीं, बढ़ता ही रहे। सेवक-सेव्यभावका कितना सुन्दर चित्र खींचा है। बलिहारी है इस सेव्य-सेवक-भावकी! तुलसी-जैसे सेवकको पाकर कौन मालिक अपनेको धन्य नहीं मानेगा? एक दूसरे प्रसंगपर गुसाईंजी बतलाते हैं कि इस शरीरसे उन्हें इनकी ममता प्रेम क्यों है? केवल इसीलिये कि—

सबकर फल रघुपतिपद प्रेमा। तेहि बिन कोठ न पावै छेमा॥

इहि तन रामभगति मैं पाई। ततें मोहि ममता अधिकाई॥

जहि ते कहु निज स्वारथ होई। तेहिपर ममता कर सब कोई॥

इस शरीरसे ही तो राम-भक्ति करनी है? तो फिर इस शरीरपर ममता क्यों न हो? लोग स्वार्थके लिये ही तो ममता करते हैं और तुलसीका भी एकमात्र स्वार्थ अपने प्रभुकी भक्ति करना है। अच्छा, अब तुलसीदासजीके हृदयकी एकमात्र जालसा क्या है सो भी उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिये—

छूटी त्रिविधि ईधना गाढ़ी। एक जालसा उर अति बाढ़ी॥

रामचरन बारिज जब देखौ। तब निज जनम सुपल करि देखौ॥

इसमें भक्तिका चरम उत्कर्ष ही निष्काम भक्ति है। इस प्रकारका एक भी निष्काम भक्त जिस देशमें हो, वह देश धन्य हो जायगा, उस देशके निवासी अपने कृतार्थ हो जायेंगे। माना बसुन्धरा भी ऐसे ही भक्तको पाकर अपनेको सनाथा समझती है, जैसा कि नारदभक्तिसूत्रमें लिखा है 'मोदन्ति पितरः नृत्तान्ति देवताः; सनाथा येयं भूभवति।' 'पितृ-गण आनन्दित हो उठते हैं। देवतागण नाचने लगते हैं और पृथ्वी सनाथा हो जाती है।' ऐसे ही भक्तोंके वशमें भगवान् हो जाते हैं—

'अहं भक्तपराधीनां ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।

साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

'मैं स्वयं स्वतन्त्र नहीं हूँ, मैं भक्तोंके अधीन हूँ। भक्तोंने मेरे हृदयको ग्रस लिया है।' महात्मा तुलसी इसी कोटिके निष्काम भक्त थे। भगवान् रामचन्द्रमें उनकी अनन्य भक्ति, निष्काम प्रेम एवं एकनिष्ठ अनुराग था। अपने इष्टदेव जानकी-जीवनपर बलि जानेके लिये उनका हृदय आकुल हो रहा था। 'जानकी-जीवनकी बलि नहीं।' सच्चे रामदास ठहरे न? हृदयका कोई भाव छिपाया नहीं। हृदयका कपाट बिल्कुल उन्मोचन कर दिया, कलेजा काढ़कर रख दिया, दिल खोलकर दिखा दिया और दिवा दी अपने हृदयमें निरन्तर जलनेवाली वह अनुराग-आगकी ज्वालामयी लपटें, जिनमें पड़कर सारे विषय-भोग भसीभूत हो रहे थे। गुसाईंजीकी रामायणके पढ़नेवाले इस देशमें लाखों नहीं करोड़ों होंगे! किन्तु हममेंसे कितनेको उनकी-जैसी निष्काम भक्तिका शतांश भी प्राप्त हो सका है? हममेंसे कितने लोग विषयभोगसे विरत होकर उनके समान रामदास बननेमें समर्थ हुए हैं? अभी तो हम कामदास ही बने हुए हैं। आज हममेंसे कितने ऐसे हैं जो तुलसीदासकी भक्ति-भागीरथीकी सुरीतल-धारासे अपने नीरस हृदय-सरोवरको सरसित करके उसमें शतदलपत्र प्रस्फुटित करनेकी

चेष्टा करते हैं। महात्मा तुलसीदास अपनी रुखिर रचनाओंके रूपमें हमारे लिये जो अमूल्य निधि छोड़ गये हैं उनका उपयोग करना भी तो हम नहीं जानते। आज जो हमारे हृदयमें अशान्ति एवं हाहाकारकी ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है, भक्ति-गंगाकी पावन पुण्यमयी धारासे वञ्चित होकर हमारा हृदय जो निराशा एवं निरानन्दके कारण नीरस हो रहा है उसे एक बार फिर भक्ति-सुधास्रुतसे सरसित करने और सुरम्ये हुए प्राणोंको भक्ति-सञ्जीवनीसे सर्जित करनेका काम यदि कोई कर सकता है तो वह हैं तुलसीदास और उनका अमर साहित्य। इसलिये हे भारतवासियो! आइये आज हम सब मिलकर भक्तिपूर्वक गुसाईजीके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवान्से यह वरयाचना करें कि—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।  
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय रामहु मोहि राम ॥

## राम-चरित-शिखा-सार

पुरुषोत्तम श्रीरामने, लेकर मानव-रूप ।  
कहकर नहि, करके हमें, शिक्षा दी बहुरूप ॥  
हमको रखना चाहिये, सदा उर्साका ध्यान ।  
यदि नस्तेवक-भावका, है हमको अभिमान ॥  
पिता-वचनसे राज्य तज, करके विपिन-पयान ।  
दिखलाया पितु-भक्तिका, शुभ आदर्श महान ॥  
शबरीके आतिथ्यको, कर स्वीकार सहर्ष ।  
क्या न पतित-उद्धारका, दिखलाया आदर्श ?  
वनचर-मैना साथ ले, मचल शत्रु निज जान ।  
दिया सङ्गाठन शक्तिका, परिचय हमें महान ॥  
रिपु-सौंदर सहृदय निगम्य, दिया उसे सम्मान ।  
राज-नीति-सीजन्यका, यह आदर्श महान ॥  
ब्राह्मण-कुल-सम्भूत भी, रावणका कर घान ।  
'जन-पीडक सब बन्ध है,' वनलायी यह वान ॥  
बनलाया संसारको, कर सीताका त्याग ।  
'राजाका सर्वस्व है, एक प्रजा-अनुगम' ॥  
गुरु-आज्ञासे भी नहीं, करके पुनः विवाह ।  
एक-पक्षी-व्रतकी हमें, दिखलायी है राह ॥  
हाय ! मूलना जा रहा, यह आदर्श समाज ।  
हम पद-पदपर पा रहें, अतः पराभव आज ॥

नन्दकिशोर शर्मा 'किशोर' काव्यनाम ।

## गुसाईजी और सीता-वनवास

(लेखक-श्रीज्योहार राजेन्द्रसिंहजी)

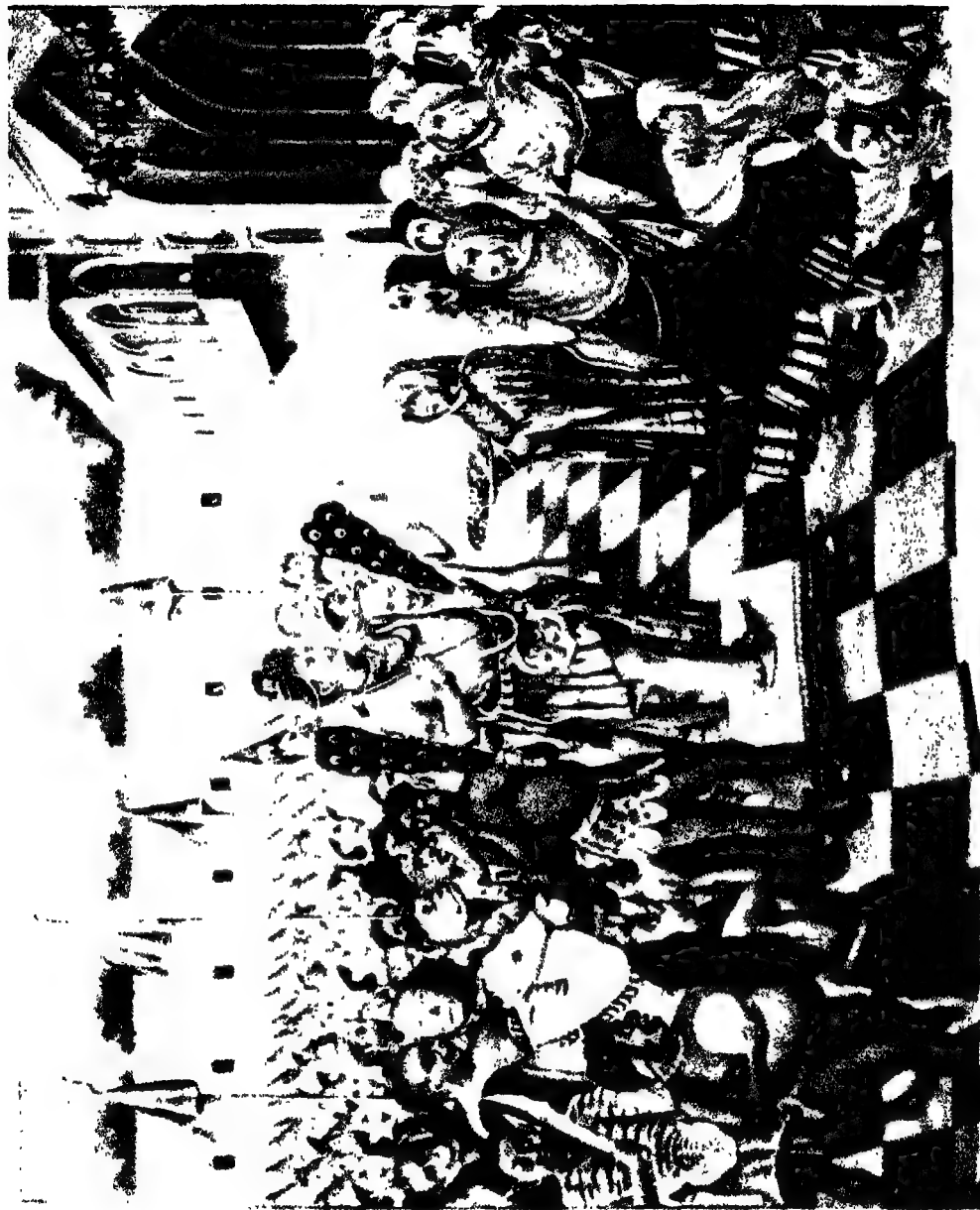


ता सरीखी सतीत्वकी जीती-जागती मूर्तको केवल लोकापवादके कारण वनवास दिया जाना, और विशेषकर श्रीराम-सदृश मर्यादा-पुरुषोत्तमके द्वारा यह कठोर कार्य होना—हृदयको दहला देता है। कुछ लोगोंका तो मत है कि यह प्रसंग ही कल्पित है। रामजी कभी ऐसा अन्याय-कार्य कर ही नहीं सकते। कुछ लोग इसे श्रीरामके यश-चन्द्रमें कलंकरूप मानते हैं।

यहाँ हम कार्यके न्यायान्यायपर बहस करनेसे तो लेखके बहुत बड़ जाने और विषयान्तर हो जानेका डर है। इसलिये हम यहाँ केवल इसी बातपर विचार करेंगे कि गुसाईजीने हम प्रश्नको किम दृष्टिसे देखा है, तथा इसका कैसा वर्णन किया है।

सबसे पहले यह बात अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है और तुलसीदासजीके ग्रन्थोंका अध्ययन करने-वाले इसे अच्छी तरह जानते भी हैं, कि गुसाईजी किसी भी कविके पाँजे आँख बन्द करके नहीं चले हैं। कविता, शैली, और चरित्र-चित्रण आदि सभी विषयोंमें उन्होंने दूसरोंका आधार लेने हुए भी अपनेपनको कायम रक्खा है। कथानकको भी उन्होंने वाक्मीकि या किसी पूर्ववर्ती कविके अनुसार आँ-का-न्याँ नहीं रखकर अपनी विशेष रुचि तथा समाजका आवश्यकतानुसार परिवर्तित, परिवर्धित या परिमार्मितरूपमें सबके सामने रक्खा है। राम तो बही है जो वाक्मीकि, कालिदास या अध्यात्मरामायणके हैं, किन्तु तुलसीके राम बही होने हुए भी उन मध्यमें भिन्न हैं—वे केवल तुलसीदासके राम हैं। उनके चरित्रमें उन्होंने समाजका आदर्शभूत आवश्यकताओंका समावेश किया है। जिसे अनुपयोगी समझा उसे छोड़ दिया, जिसे उपयोगी समझा उसपर विशेष जोर दिया, और जिसे आवश्यक समझा उसे जोड़ भी दिया है। उदाहरण देनेमें कछेवर बड़ जायगा। अतः हम विषयको यहाँ छोड़ते हैं। कथानकोंके विषयमें भी उन्होंने इसी परिपाटीका अवलम्बन किया है।

सीता-वनवासकी कथा भी इसीमेंसे एक है। गुसाईजीकी सीता, वाक्मीकि वा कालिदासकी सीतासे

[illegible]



बिल्कुल भिन्न है—उसी प्रकार उनका 'सीता-वनवास' भी दोनों कवियोंसे भिन्न है। आगेके वर्णनसे यह बात सिद्ध हो जायगी।

वाल्मीकि तथा उनके आधारपर कालिदासका वर्णन इसप्रकार है, कि श्रीराम सीताके विषयमें लोकापवाद सुनते हैं, जिससे उन्हें दुःख होता है और वे लोकापवादके भयमें सीताके त्यागका निश्चय करते हैं। लक्ष्मणको बुलाकर सीताको गंगापार छोड़ आनेके लिये आज्ञा देते हैं। सीताने एक बार तपोवन देखनेकी रुचि भी प्रगट की थी, अतः उसीके बहाने लक्ष्मण स्वयं पैठाकर सीताको वाल्मीकि-आश्रमके समीप छोड़ आने हैं; वाल्मीकि उन्हें आश्रय देने हैं और वहीं लव-कुशका जन्म होना है। बहुत दिनों बाद अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर लव-कुश रामायण गाते हुए अयोध्यामें आते हैं। वाल्मीकिजीसे सीताका भी पता लगता है, श्रीराम उन्हें प्रहस्य करना चाहते हैं, पर सीताजी अपनी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिये भूमिकी गोदमें स्थान चाहती हैं। उनके मनीषको मिट्ट करानेके लिये माना पृथ्वी प्रकट होकर अपने गोदमें स्थान देती हैं।

निरपराधिनी मनी सीताको इसप्रकार दुःख सहने तथा अन्यायसे पीड़ित होने देखकर मनुष्यके हृदयपर गहरी चोट पहुँचना तथा किया किमाको क्रोध आना भी स्वाभाविक है, किन्तु गुमाईजीने गीतावलीके बारह पदोंमें इस कथानकका जिस प्रकार वर्णन किया है, उससे ये भाव बहुत कम हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र बहुत काल राज्य करनेके पश्चात् दूतके सुँहसे लोकापवाद सुनते हैं और एक और राज्यधर्म तथा दूसरी और पत्नीव्रतधर्म, इन दोनोंके असमन्वयमें पचकर विचार करते हैं। गुमाईजीका वर्णन इसप्रकार है

पादिने अग्निवार जत प्रियंश्रम बाल मुमा३ ।  
होइ दिन किहि भौति निन मुनिचारहि चित्त चा३ ॥

प्रेमके लिये श्रीरामके मनमें कितना स्थान था और यह किस प्रकार अन्योन्य था, इसे गुमाईजीने आगे चलकर भलीभाँति दिखलाया है

राम जुगत मीय मनु प्रिय मनहि प्रान प्रिया२ ।  
परम पावन प्रेम परिमति, समुझि नुरुसी गा२ ॥

विना अनन्यता और अन्योन्यताके प्रेम कोई वस्तु नहीं। यदि जोका धर्म पतिव्रत है तो पतिका धर्म भी पत्नीव्रत है। यह सम्बन्ध प्रेमका है, अधिकारका नहीं।

२३

श्रीरामको सीताके पतिव्रत तथा गुण-शीलकी ओर देखकर उन्हें त्यागनेमें बहुत ही असमंजस होता है—

मेरे ही मुख सुखी मुख अपना सपनहू नाहि ।  
मोहिनी गुन मोहिनी गुन मुमिरि सोच समाहि ॥

मन्त्रमुच 'राम-सीय-रहस्य'को तुलसीदासजीने अच्छी तरह समझा था। रामजीने हृदयहानकी तरह बिना कुछ कहे सुने ही महत्मा अपने मनसे ही उनका त्याग नहीं कर दिया, सीताकी सलाह लेकर ही उन्होंने ऐसा किया—

दूत मुख मुनि लोकधुनि घर घरनि पूछी आय ।

इस पदसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस प्रगाढ़ प्रेम तथा धर्मका सम्बन्ध इस प्रकार नहीं तोड़ा जा सकता जैसा कि अन्य कवियोंने वर्णन किया है। श्रीराम यदि सीताजीसे सलाह नहीं लेते तो मन्त्रमुच वे बड़े भारी दोषके पात्र समझे जाते।

फिर श्रीरामने लक्ष्मणको केवल सीता-त्यागकी ही आज्ञा नहीं दी, किन्तु उन्हें वाल्मीकिजीको सौंप आनेका काम भी सौंपा—

बालमीकि मुनीस आत्म आइयहु पहुँचाइ ।

लक्ष्मणजी भी उन्हें केवल गंगा-तटपर छोड़ नहीं आये, वह उन्हें वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंपकर आते हैं—

आये लखन है सौपी सिय मुनीमहि अनि ।

यद्यपि वाल्मीकिके पास छोड़ना रूप त्याग उतना निष्ठुर नहीं तथापि त्याग तो है ही। सीताजीको अवरय ही बड़ा भारी आघात लगा और उन्होंने लक्ष्मणसे दोन होकर कहा—

रुषनगाल कृपाल ! निषहिं दाग्वी न बिसारि ।  
पाऊबी सब तापसनि ज्यो राजघरम बिचारि ॥

कितनी गहरी आर्मिक चोट है ! पत्नीरूपसे न सही, राजधर्मके अनुसार एक तापसीके रूपमें तो सीता अवश्य ही पालनीय हैं, वह भी तो एक प्रजा है !

कालिदासने भी सीताके मुखसे यही कहलाया है—

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यन्  
स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ।

निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं—  
तपस्वि सामान्यमवशनीया ॥



लक्ष्मणजी बड़े ही दुखी होते हैं, बे सोचते हैं, मैं ही सीताको सदा दुःख देनेका कारण हूँ, हरण भी मैंने ही कराया और अब वनवास भी मैं ही दे रहा हूँ।

गौने मौन ही बारहि बार परि परि पाय ।  
जात जनु रथ चोरकर लठिमान मगन पछिताय ॥  
असन विनु बन, बरम विनु रन, बन्धो कठिन कुणाय ।  
दुसह सौंसति सहनको हनुमान ज्यायो जाय ॥  
हेतु हौं सियहरनको तब, अबहुँ मयो सहाय ।  
होत हठि मोहि रहिने दिन दैव दारुन-दाय ॥  
तज्यो तनु संग्राम जेहि जगि गीध जसी जटाय ।  
नाहि हौं पहुँचाइ कागन चतुर्यौ अवध मुनाय ॥  
गोर हृदय कठोर करतब मृज्यो हौं बिधि बायँ ।  
राम नुलसी जानि राह्यो कृपानिधि रघुराय ॥

बाल्मीकि उन्हें सादर आभ्रममें रखते हैं, जानकीके आगमनसे वनमें आनन्द छा जाता है। जब लव-कुश-जन्मका समय होता है, उसी रात शत्रुघ्न भी आभ्रममें पहुँचते हैं। बाल्मीकिजी लव-कुशके नामकरण भावि संस्कार करते हैं। बालक मुनि-बालकोंके साथ खेलते हैं। गुसाईंजीने सीताजीको यही राम-विरहमें डोढ़ दिया है—

दुखी मिय पिय-विरह तुलसी सुखी सुत मुख पाइ ।  
आँख पय उफनात सींचत सरिल ज्यो सकुचाइ ॥

इससे पाठकोंको स्पष्ट हो गया होगा कि तुलसीदासजी-ने इस कथानकको किस प्रकार परिचित कर दिया है।

उत्तरकाण्डके अन्तिम पद्योंमेंमे एकमें कैवेलीका पछतावा तथा दूसरेमें संक्षेपसे पूरे रामचरित्रका दिग्दर्शन करा गीताबली समाप्त की गयी है।

## रामायणी कथा

(लेखक—पं० श्रीविभुदेवः प्रो० भट्टाचार्य एम० ए०, विश्वभारती, बंगाली-विभाग)



रतकी वस्तु होनेपर भी अन्यान्य अनेक पदार्थोंकी भाँति संस्कृत-साहित्य भी अब केवल भारतमें ही सीमाबद्ध नहीं है; अति प्राचीनकालमें इसने किनने ही नद-नदी और पर्वत-समुद्रों-को लाँच दूर दूरके द्वीपों और देश-समूहोंमें जाकर अपना कितना प्रभाव फैलाया है और आज भी फैला रहा है! कुछ समयमें इसने पाश्चात्य देशोंमें प्रवेश किया है। इसीसे आजकल केवल भारतवर्षी ही संस्कृत-साहित्यकी आलोचना करने हैं, केवल वहीं इसको समझ सकने हैं या इसपर केवल उन्हींका एकमात्र अधिकार है, ऐसी बात नहीं रही है। अब तो सारे जगत्में संस्कृत साहित्यपर आलोचना होने लगी है। इस आलोचनाका स्त्रोत अनेकमुखी बहने लगा है। अब इसको न तो रोका जा सकता है और न रोकना उचित ही है। नदीके प्रवाहमें कोई रुकावट न होनेसे जैसे वह कभी किसी जगहको बहा ले जाना और कहीं नहीं

जमीन निकास देनी है, इसीप्रकार संस्कृत-साहित्यकी वर्तमान आलोचनामें भी नये नये ध्वंस-निर्माणकी लीला चल रही है। ऐसा होना भी स्वाभाविक है, परन्तु समय-समयपर कोई-कोई ध्वंस-निर्माण तो ऐसा विचार-कर आकार धारण कर लेता है जो कभी कल्पनामें भी नहीं लाया जा सकता। जैसे अजरका कोई मरवन्ध न होनेपर भी घुणके छिद्रोंमें किसी किसीकी रटिमें अक्षरोंकी सृष्टि हो जाती है, वैसे ही साहित्यालोचनामें भी कोई-कोई समालोचक एक अद्भुत सृष्टि रच डालने हैं। इधर-उधरकी अनोखी-अनोखी बातें लेकर उनमें जोड़-नाड़ लगा कर वे ऐसी-ऐसी नयी बातें गट डालने हैं और समय-समयपर ऐसी युक्तियोंका प्रयोग करने हैं, जिसमें घट घात वैसे ही माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है। मरभय है कि किसी-किसी स्थलपर मधुमुच बह बात वैसी ही हो, परन्तु मभी अगर वैसी ही है, यह बात कभी स्वीकार नहीं की जा सकती।

एक प्रसिद्ध लेखकने बुद्धदेवकी जीवनीको सौर-जगत्-का रूपक बताया है। किसीको महाभारतभरमें ज्योतिष-तत्त्वके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दीखना। इस श्रेणीके भावुकोंमें रामायण भी नहीं बची है। कोई कहते हैं कि इसमें रूपकके द्वारा उत्तर-पथसे दक्षिण-पथमें आर्य-सभ्यताके प्रचारकी बात कही गयी है। कोई कहते हैं कि इसमें गूढ़ शब्दोंमें कृषिका वखन किया गया है। और भी अनेक बातें हैं—‘आदिकाण्ड पीछेमें जोड़ा गया है, रामायण-का प्रकृत आरम्भ सयोध्याकायदसे है, लङ्काकायदमें इसकी समाप्ति हो गयी है, उत्तरकाण्ड प्रसिद्ध है इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं! सीतानिर्वापन और लक्ष्मण-वर्जन आदि कथाओंकी कल्पना पीछेसे हुई है।’

इन सब बातोंके सिवा यह भी सुना जाता है कि ‘रामायणकी मूल कथा वाल्मीकिरामायणमें नहीं है, बौद्धों-का भी रामायण है। कौन कह सकता है मूलमें उसीको लेकर कुछ न्यूनाधिक कहे वाल्मीकिरामायणकी यह कथा नहीं रची गयी है? जैनियोंकी भी रामायण है इसके अनिरिक्त रामायण क्या एक थोड़ी ही है? अथ्यामरामायण, अद्भुत-रामायण इत्यादि कितनी रामायणें हैं। भागनकी विभिन्न भाषाओंमें रामायणकी कहानियोंमें कितना भेद है! फिर जावाइलोपमें भी रामायण है। कौन-सी ठीक है? सबकी आलोचना करनेपर शायद रामायणी कथाके मूलका कहीं पता लगे।’

वर्तमान आलोचना-प्रणालीमें इसप्रकार कितनी ही बातें पैदा हुई हैं सम्भवतः अभी और भी होंगी।

परन्तु यह सब थोड़े से पण्डितोंकी बातें हैं। पण्डितोंकी आलोचना परस्पर पण्डितोंके लिये ही है। भारतके आपामर जनसाधारणका इसमें बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। वे इन आलोचनाओंकी कोई खोज-खबर नहीं रखते। उनकी दृष्टिमें रामायणका आकार कुछ दूसरा ही है। उनके सामने रामायणका स्थान सर्वथा स्वतन्त्र है। रामायण उनके जीवनका, समाजका और धर्मका आदर्श है। सुख-दुःख और सम्पद-विषयमें रामायण उनको उज्ज्वल मधुर प्रकाशसे पथ दिखलाकर ले चलती है। रामायण उन्हें सामंजस्य देती है। रामायण उनके हृदयमें अविरल आनन्द और परम शान्तिकी धारा सींचती है। जीवनके प्रतिदिनके कर्तव्यको सामने रखकर रामायण उनकी परिचायना करती है। सब तो यह है कि भारतमें एक ओर रामायण तथा

दूसरी ओर महाभारत है, इसीसे भारतके जनसाधारण मनुष्य हैं, नहीं तो वे पशु वन चुके होते। वेद-वेदान्त-दर्शनों-ने भारतका इतना उपकार नहीं किया है, जितना रामायण और महाभारतने किया है। रामायण-महाभारत हैं, इसी-लिये भारत भारत है !

मान लिया कि रामायणमें आदिकाण्ड पीछेमें जोड़ा गया है, अथवा रामायणके या रामायण-वर्णित दशरथ, राम-लक्ष्मण, भरत-सीता आदिकी कोई ऐतिहासिकता नहीं है। यह भी स्वीकार कर लें कि रामायण वाल्मीकिजीकी रचना नहीं है। कुछ भी हो या न हो, इतना तो सत्य ही है कि ‘रामायणका आदिकाण्ड नामक किसी पुस्तकका एक अंश है। रामायण नामक एक ग्रन्थ है, और वह किसी एक भारतीयद्वारा ही लिखित है, तथा उसमें राम-लक्ष्मण आदिका एक चित्र है, एक भाव है।’ बस, इननेमें ही वह भारतके जनसाधारणकी वस्तु हो जाती है और वे उससे जो चाहने हैं मो पा जाते हैं।

भाव और रूप दो वस्तुएँ हैं। भाव प्राण है, रूप देह है। जिस चित्रमें सिर्फ कुछ उज्ज्वल रेखाएँ खिंची हैं, पर भावका विकास नहीं हुआ है, वह चित्र चित्र ही नहीं है। जिस काव्यमें कतिपय सुन्दर-सुन्दर शब्दोंका समावेश है, परन्तु भावकी स्पष्टता नहीं है, वह कु-काव्य है, ठीक प्राणहीन देहकी भाँति वह सर्वथा निरर्थक है। काव्यका पाठक चाहता है भाव-रस। शब्द भाव और रसके वाहन हैं, इसीलिये वह शब्दको भी चाहता है। काव्यका विषय सभी समय ऐतिहासिक हो, इसके कोई माने नहीं हैं। ऐतिहासिक हो भी सकता है और नहीं भी। विषय कल्पित भी हो सकता है। इससे भावके स्फुरणमें कोई बाधा नहीं होती। भावके कार्यमें कोई रति नहीं होती। भाव आनन्दमय और शान्तिमय है, जिसके चित्तमें भावका उद्रेक होता है, उसीको वह आनन्द और शान्ति प्रदान करता है।

बड़े बड़े समालोचक और लेखक कहते हैं कि लीष्ट नामक पुरुष कभी कोई नहीं हुए। उनकी ऐतिहासिकताका कोई प्रमाण नहीं है। मान लिया, ऐसा ही है। लीष्टकी कोई रूप-मूर्ति कभी थी ही नहीं, परन्तु उनकी इस भाव-मूर्तिने तो कितने हृदयोंको पवित्र और उज्ज्वल बनाकर उन्हें शान्तिमय बना दिया है। हम तो भावमूर्ति ही चाहते हैं, वही हमें मुक्तिकी ओर ले जाती है।

राम, लक्ष्मण, भरत, सीता इत्यादि हमारे लिये एक-एक भाव हैं। राम, सीता इत्यादि नाम सुनते ही हमारे

मनमें किसी रूपकी जागृति नहीं होती। एक भावका उदय होता है। वह भाव परम उच्च, परम महान् और परम पवित्र है। उसके साथ यदि इतिहासका कोई सम्बन्ध न भी रहा तो इससे कोई हानि-लाभ नहीं होता।

मान लिया, इस भाव-व्यक्तिके चित्रको वाल्मीकिने नहीं खींचा, पर इससे क्या हानि है? हमारा सम्बन्ध है चित्रसे, कर्त्ता कोई भी हों, यह कोई ऐसी बात नहीं है। हम जब रामायण पढ़कर उसके भावोंमें तन्मय हो जाते हैं, तब वाल्मीकिके नामकी बात किसको याद रहती है। इसीसे भारतीय जनसाधारण इसको कोई विशेष बात नहीं समझते।

आधिकांशके 'मः निषाद प्रतिष्ठात्वे' इत्यादि कविता प्रथम श्लोक है अर्थात् इसीसे सर्वप्रथम ऐसे श्लोकोंकी रचना आरम्भ हुई, यह एक प्रसिद्धि है; यह भी प्रसिद्ध है कि यही श्लोक रामायण-रचनाका सूत्र हुआ था। भारतीय संस्कृतिकी एक प्रधान बात है 'अहिंसा', 'मा हिंस्यात् मना नृणां' 'किसी भी मनुष्यको पीड़ा मत पहुँचाओ।' हम यदि विचार करके देखें तो हमें यह दिखायी देगा कि भारतवर्षकी साधनाका मूलमन्त्र है शरीर-मन-वाणी और ज्ञान, देहा, कालके

निर्विशेषसे 'अहिंसा', 'किसीको भी पीड़ा न पहुँचाना।' साधनाके मार्गमें निषेध और विधान दोनों ही रहते हैं, कुछ करनेका निषेध होता है तो कुछ करनेके लिये विधि होती है, परन्तु इन दोनोंमें जो निषेधका पालन नहीं कर सकता, उससे विधिकी पालन भी नहीं हो सकता। एक स्थूल दृष्टान्त लीजिये—जो परपीड़नका त्याग नहीं करता वह पर-उपकार नहीं कर सकता। इसीसे पहले आवश्यकता होती है निषेधकी तदनन्तर विधिकी। अहिंसा एक निषेध है। यह कहा जा चुका है कि समस्त साधनाओंका मूल अहिंसा है। मालूम होता है, हम अहिंसाको ही समग्र कल्याण-साधनाके पथमें प्रथम स्थान देकर आलोच्य कविताकी रचना की गयी है। इसीसे वह 'प्रथम' या 'नवीन' श्लोकके नामसे प्रसिद्ध है, अन्यथा हममें पूर्व ऐसा कुन्वोबद्ध श्लोक था या नहीं, सो कुछ कहा नहीं जा सकता। अहिंसाके विपरीत हिंसाका क्या परिणाम होता है सो रामायणमें दिखलाया गया है। इसीलिये टीकाकारगण कहते हैं कि आलोच्य श्लोकमें कान्याशंकी सूचना की गयी है। जिस श्लोकमें हम श्लोकको प्रथम श्लोक कहा जाता है, टीका उन्नी न्यायमें हम रामायणको भी 'आदि-काव्य' कह सकते हैं।

## तुलसीकृत रामायण और उससे संसारका उपकार

( लेखक- श्रीदेवीप्रसादजी गुप्त 'कृष्ण काल' की. ०. ०, 'मन्त्र' ०. ०. ० )



न्दी-साहित्यमें रामायण एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें अपूर्व वा उसके समान ही ग्रन्थ और भाषाओंमें भी कम निकलेंगे। हिन्दी-भाषा-भाषी स्त्री-पुरुषोंमें उसको अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। अन्य भाषा-के विद्वानोंकी दृष्टिमें भी, जिन्होंने रामायणका केवल अनुवादमात्र पढ़ा है, उसका स्थान बहुत ऊँचा है। भारतवर्ष-के अधिकांश भागमें तो यह ग्रन्थ प्रायः प्रत्येक घरमें विद्यमान है।

रामायणमें एक अपूर्व माधुर्य, भाव और जादू है। जो उसको एक बार पढ़ लेता है उसका चित्त उसको बार-बार पढ़नेके लिये खल्लास होता है। वह जिनकी ही बार-बार पाठ करता है उनका ही उसका आनन्द बढ़ता जाता है। यद्यपि कहीं कहीं ऐसे गूढ़ भाव हैं कि जिनका अर्थार्थ ज्ञान अनिमित्त

दृष्टिमें हो सकता है, निमग्न भी भाषा मधुर और सरल होनेसे पाठक उसको अपनी बुद्धिके अनुसार समझ ही लेते हैं। जैसा बुद्धिवाला उसको पढ़ता है उसको वैसा ही आनन्द आता है। इसमें कविकी साहित्यपाठशाला, रचना-शाला और विद्वत्ताका पूर्ण परिचय मिलता है।

सूक्ष्म विषयोंका इसप्रकार मधुर, सरल, सागराभिन एवं अपूर्व कवितामें वर्णन करना किसी साधारण कविका काम नहीं था। यदि ऐसा होता तो हमको आज दिन रामायणकी टक्करके अन्य किनसे ही ग्रन्थ देखनेको मिलते। तुलसीदासके समान कोई अब हिन्दी-साहित्यमें फिर जन्म लेगा या नहीं हम काममें मन्देह हैं। धन्य है! उस महाकविकी, जिसकी अमृतमयी वाणी करोड़ों नर-नारियों-के हृदयमें धर्म, भक्ति और ज्ञानकी प्रबल लहरें उठानी हुई आद्य पा रही हैं। अविनश्यमें भी जबनक हिन्दी भाषा

वर्तमान रहेगी तबतक उसके साहित्य-भवनपर तुलसीदासकी यशःपताका फहराती रहेगी।

रामायण हमारे प्यारे आर्यावर्तका प्राचीन इतिहास है। उससे हमें राजनीतिकी शिक्षा प्राप्त होती है। उसमें उपदेश भरे हुए हैं। वह एक उत्तम काव्य है। वह पग-पगपर हमको सीधे और सच्चे मार्गका दिग्दर्शन कराती है।

यदि सूक्ष्मदृष्टिसे रामायणके अन्यान्य विषयोंपर विचारकर प्रत्येकके विषयमें विचारपूर्वक लिखा जाय तो एक अलग ही ग्रन्थ तैयार हो सकता है। किन्तु अधिक न लिखकर प्रत्येक विषयके सम्बन्धमें हम दो-दो चार-चार बातें ही यहाँपर पाठकोंको सुनाने हैं।

### इतिहास

हम ग्रन्थसे समस्त भारतवर्षका परिचय मिलता है। इससे पता लगता है कि उस समय हमारे देशमें वर्णाश्रमोंका आचरण कितना ऊँचा था, गृह और गार्हस्थ्य-धर्मको स्त्री-पुरुष किस प्रकार पहचानते थे? तथा राजा और प्रजामें क्या सम्बन्ध था? सभी एक दूसरेके किस प्रकार शुभेच्छु रहते थे?

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

जामु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो न्य अबसि नरक अधिकारी ॥

पाठको! ऐसे राजा आजकल आपको कितने दिखायी देते हैं जो निष्कपट-भावसे ऐसा कह सकते हैं? श्रीरामचन्द्रजी इन शब्दोंको अपने संकटके समयमें कह रहे हैं। उनको अपने सुख-दुःखका इतना ध्यान नहीं है जितना कि अपनी प्यारी प्रजाका है। वे फिर भरतजीसे कहते हैं—

सो विचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार मुखारी ॥

प्रजाकी भक्ति भी राम-वनवासके समय देखने योग्य है—

रामु चकत अति भयंउ विषादु। मुनि न जाइ पुर आगननादु ॥

प्रजा कह रही है—

जहाँ रामु तहाँ सबुइ समाजु। बिनु रघुबीर अवध नहि काहु ॥

चलै माय भय मंत्र द्वाहैं। मुरदुर्लभ सुख सदन बिहाहैं ॥

बहुत समझानेपर भी प्रेमके कारण वे नहीं झौटते—  
किप धरम-उपदेस धनेर। लोग प्रेमबन्ध फिरहि न फेर ॥

दूसरी जगह वे कहते हैं—

अछत राम राजा अवध मरिय माँगु सब कोय।

रामराज्यमें मनुष्योंकी स्थिति भी कैसी थी—

बरनासम निज निज धरम निरत बंदपथ लोग।

चलहि मदा पावहि सुख नहि मय सोक नरोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहि काहुहि ब्यापा ॥

सब नर करहि परमपर प्रीती। चरहि स्वधर्म निगन श्रुतिरीती ॥

चाग्रिहु चरन धरम जग माहीं। परि रहा सपनेहुँ अथ नाहीं ॥

नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥

सब निर्दय धर्मगत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥

सब गुनग्य सब पंडित ग्यानी। सब हुनग्य नहि कपटसयानी ॥

एक-नारि-व्रत-रत नर भारी। नेमन बच क्रम पति-हित-कारी ॥

रामायणसे हमको उस समय जो प्रथाएँ आयोंमें प्रचलित थीं वे भी मालूम होती हैं। जैसे जन्मेत्सव, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत, स्वयंवर, विवाहकी अनेक प्रथाएँ, राज्याभियेक, वरदान, दाहक्रिया, अनिधिसत्कार, युद्धकी अनेक प्रथाएँ, सती होना आदि। 'रामायणमें आयोंकी प्रथाएँ' हमी शीर्षकमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है। किन्तु पाठक स्वयं रामायणमेंसे इन प्रथाओंको आसानीसे जान सकते हैं।

इस ग्रन्थमें रखभूमिकी घटनाओंका भी वर्णन है—

दाहै महाधर-मिस्त्र कोटिन्ह बिबिध बिधि गेला चले।

पहरात जिमि पबिगाव गजेत जनु प्रत्येक बादले ॥

मकट विकट भर जुटन कटन नलटत तन जजं भय।

राहि मंगल नर गठपर चल रहि जहँ मे नहँ निमिचर हय ॥

मधानि धनु सरनिकर लोटेमि तरंग जिमि उड़ि लागहीं।

गहे पूरि सर धरनी गगन दिसि विदिमि कहँ कपि भागहीं ॥

लंकाकाण्डमें अधिकांश मार-काटका ही वर्णन है। रामायणमें श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वके भी कई राजा-महाराजाओं और ऋषियों मुनियोंका हाल मालूम होता है। जैसे चित्रकेतु, शिवि, हरिश्चन्द्र, कश्यप, दधीचि, जमदग्नि आदि।

उस समय ऋषि और मुनि अपने तपोबलसे क्या नहीं कर सकते थे? श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजीसे कहते हैं—

तुम्ह त्रिकालटगसी मुनिनाथ। बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथ ॥

भरतजी वशिष्ठजीके विषयमें कहते हैं—

गुरु बिबेकसागर जग जाना । जिनहिं बिस्व कर बदर समाना ॥

उस समय शकुन आदिपर भी लोगोंका पूर्ण विश्वास था । इसका उल्लेख रामायणमें जगह-जगह किया गया है । यथा—

‘राम सीय तनु सहज जनाये । फलहिं मंगल अंग सुहाये ॥’

‘गूर्पनखहिं आगे करि लीनी । अनुमन्य भुति नारा हीनी ॥’

‘जब अति भयो विरह उर दाहू । फलहिं वान नयन अरु बाहू ॥’

‘असकुन होन लगे बिधि नाजा । रावहिं बटु मृगाल खर-स्वाना ॥’

अभी खोजनेसे रामायणमें और भी कई ऐतिहासिक बातें मिल सकती हैं ।

### राजनीति

यद्यपि तुलसीदासजीको राज-काजकी बातोंमें कोई सम्बन्ध नहीं था, वह धर्मोपदेशकमात्र थे । निम्नपर भी रामायणमें उनके राजनीति सम्बन्धी उच्च कोटिके विचार हमको कई स्थानोंमें मिलते हैं । इसीमें मालूम होता है कि उनको इतिहास-व्यवस्थापर भी थी । नीचे इस विषयमें उनके कुछ विचार दिखाये जाते हैं । वे मन्थगामे कहलवाने हैं—

काउ नृप होउ हमहिं का हानी । चेहिं छोटि अब होव कि रानी ॥

किन्ती किर्माका कहना है कि तुलसीदासजीकी इस उक्तिका प्रभाव हमलोगोंपर बहुत बुरा पड़ा है और उनको ऐसा नहीं कहलवाना चाहिये था, किन्तु ऐसा कहनेवाले यह मूल्य जाने हैं कि ये शब्द एक कुटिल, दुष्ट और नीच दार्शनिके तुलसीदासजीने कहलवाये हैं न कि किसी बुद्धिमान और आदर्श पुरुषके ।

अ.गे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीमें कहते हैं—

‘रहहु करहु सबकर पानिवाँ । नरक तात होइहि बट दो ॥’

जासु राज प्रिय-प्रजा दुखारी । सो नृप अग्रिम नरक-अधिकारी ॥’

रहहु तात अस नीति विचार । मुनन कथन भोगाकुन नारी ॥’

वार्त्ताकिर्जीमें रामचन्द्रजी रहनेके लिये स्थान पूछते हुए कहते हैं—

मुनि तापस जिननें दुख सहहीं । न मंग्य विनु पावक दहहीं ॥

रामचन्द्रजी मुमुक्षुको विदा करने हुए कहते हैं—

कहव मैदंग भयनक आग । नीति न नरक राज-पद पाग ॥

पावहु प्रजहिं कर्म मन बानी । संवहु मातु सकल मम जानी ॥

आगे वशिष्ठजी कहने हैं—

सोचिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥

गृह निवायको देखिये ! वह भरतजीका आगमन सुन शंका करता हुआ कहता है—

भरत न राजनीति उर आनी । तब कलंक अब जीवन हानी ॥

तुलसीदासजीने राज-मदका उल्लेख भी कई स्थलोंपर किया है । वे जानते थे कि इस रोगसे कई राजा ग्रस्त होकर राजनीतिको भूल जाते हैं, जिसका परिणाम उनके नाशका कारण होता है । यथा—

‘कही तात नुम नीति तुहाई । सबते कठिन राज-मद भाई ॥’

‘भरतहिं होइ न राज-मद । बिधि हरि हर पद पाय ।

कबहुँ कि कौजी मीकरन्हि, छोर-सिन्धु बिनसाय ॥’

‘सहसबाहु मुरनाथ त्रिसंकू । केहि न राज-मद दीन्ह कलंकू ॥’

राजनीतिके अनुसार सुगन्धकी महिमाका गान भी तुलसीदासजी जगह जगह करते हैं । यथा—

‘जाइ मुराज मुंदम मुखारी । भई भरत गति तेहि अनुमारी ॥’

‘अगम बाम बन संपति अजा । मुखी प्रजा जनु पाइ मुराजा ॥’

कोल-किगनोंके मुंहमें गुम्हाईजी कहलवाने हैं—

रामकृपा निगम निवाजा । पतित्रन प्रजा चरिय जम राजा ॥

चाहे कोई भी कार्य हो राजाको उसे प्रत्येक जानि और समझदायके अंगुष्ठोंके मलके अनुसार करना चाहिये ।

‘गुरु-पद-कमल प्रनम करि बैठे आशु पाइ ।

विप्र महाजन सीख सब हुँर समामद आइ ॥’

‘भरत बिनय सागर गुनिय करिय विचार बहोतर ।

करब मातुमन लोकमत नृप मम निगम निचरि ॥’

ये उदाहरण सिर्फ अयोध्याकाण्डमें लिये गये हैं । अभी इसीमें अन्यथा अन्य कारणोंसे सैकड़ों उदाहरण लिये जा सकते हैं ।

### उपदेश

रामायणमें परा-परापर हमको उपदेश मिलते हैं । यहाँपर उनका योद्धा-मा दिग्दर्शनमात्र किया जाना है । यथा—

(१) विद्वानों और गुरुओंका आदर—

‘मुनि आत्मन गुना तब गता । मित्रन गयेउ ते विप्रसमात्रा ॥’

‘गुरु आत्मन मुनन गनुना । द्वाग आइ नायउ पद माया ॥’

(२) प्रणिजा—

‘गुरु-कुल नीति मदा चरि भाई । प्रान जाहु बर बचनु न जाई ॥’

(३) पिताका पुत्रपर प्यार—

सब दुख दुसह सहानहु मोहीं। लोचन-ओट राम जनि होहीं ॥

(४) माता-पितामें भक्ति—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥

(५) स्त्रीकी पतिपर प्रीति—

जहँ लगे नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु नियहि तरनिहुँ ते ताते ॥

तनु धनु धानु धरनि पुरराज। पति-बिहीन सब सोक-समाज ॥

प्राननाथ कम्पनायनन सुंदर मुखद सुजान।

तुम्ह बिनु राग-कुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक समान ॥

(६) सासकी पतोहपर प्रीति—

जिअनमूरि जिमि जोगवत रहैऊ। दीपवाति नहि टाग्न कहैऊ ॥

कलपबाले जिमि बहु बिधि लागी। साँचि सनेह सहित प्रतिपाली ॥

(७) सौतेली माका प्रेम—

तुम्हेरहि भागु रागु बन जाही। दूसर हेनु तत कछु नाही ॥

× × ×

जहि न रामु बन रहहि कलमू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू ॥

(८) संगतिका परिणाम—

रामतिअक जो साँचहुँ काही। माँगु देहुँ मनभावन आही ॥

× × ×

जो बिचि जनम देख करि छोडू। होहि गम-मिय पत-पतोडू ॥

ऐसा कहनेवाली कैकेयी कुटिल मन्थगने बहकायी  
जानेपर कहती है—

होत प्रात मुनिबेष धरि जो न रामु बन जाहि ॥

गोत्र मरनु राउर-भजमु नृपसमुझिअ मन माहि ॥

गुसाईजी कहते हैं—

का न कुगति पाय नसाई। रहे न नीच मते गुरुआई ॥

अतिहि मुसीक कैकई रानी। दुष्ट संगु ते मनि बाँगनी ॥

और—

सठ गुणहि ससंगति पाण। पागस धात कुघात छुआण ॥

(९) बड़े भाईपर प्रेम—

गुरु पितु मातु न जानौ काहू। कहाँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥

मेरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी ॥

कानन करहु जनमभर बासू। इहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥

(१०) मित्रता—

जेन मित्र दुख होहि दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥

(११) अधर्म—

जे अघ मातु पिता गुरु मारे। गाइ गोठ महि सुर-पुर जारे ॥

जे अघ तिय बालक बच कीन्है। मीत महीपति माहुर दीन्है ॥

× × ×

बेचहि बेद धरम दुदि लेहीं। पिमुन पराय-पाप कहि देहीं ॥

कपटी कुटिल कन्हप्रिय क्रोधी। नेद-बिदूषक विस्वबिरोधी ॥

लोभी लम्पट लोक लबाग। जे ताकहि पर-घन पर-दारा ॥

× × ×

जे नहि साधुसंग अनुगंगे। परमाश्रय-पथ-बिमुख अनागे ॥

तजि श्रुति-पंथ बामपथ लहहीं। बंचक बिचचि बेप जग छलहीं ॥

(१२) नारी-धर्म—

करेहु मदा संकर-पद पूजा। नागि-धर्म पतिदेव न दूजा ॥

अमित दानि नारी बँदेही। अधम सो नारि जाँ सेव न तेही ॥

बृद्ध रोगबस जड़ घनहीना। अंध बंधिर क्रोधी अनिदीना ॥

पैसेहु पतिकर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥

एक धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा ॥

पतिबंचक पर-पति-रति करई। रौरव नरक कल्पमत परई ॥

(१३) मेवकका धर्म—

श्रीरामचन्द्रजीको अपनी सेवासे सन्मुख करके हनुमानजी  
मांगते हैं—

नाथ भगति तव शनि अनपायनि। देहु दयाकरि मिव-मन-नार्यान ॥

(१४) छंटे भाईपर प्रीति—

अन बिचारि जिय जगहु नान। निरुद्धि न जगत सहोदर-भ्राता ॥

(१५) पतिका स्त्रीको उपदेश—

आयगु मांगि साधु-सेवकाई। सब बिधि नमिनि मवन भलाई ॥

एहि ते अधिक धरमु नहि दूजा। सादर साधु-मसुर-पद-पूजा ॥

(१६) घरकी फूटका परिणाम चिभीषण  
अच्छीतरह दिखाता है।

ऐसे उपदेशोंके अतिरिक्त और फुटकर उपदेश भी  
बहुतायतसे मिलते हैं। उदाहरण—

‘धर्म न दूसर मत्य समाना। आगम-निगम-पुरान बखाना।’

‘दामिनि दमकि रही घन माहों। खलकी प्रीति यथा धिर नाहों।’

‘नरबहि जलद भूमि नियराये। यथा नवहि उष बिद्या पायें।’

‘जुंद अघात सहहि गिरि कैसे। खलके बचन सन्त सह जैसे।’

‘बुध्र नदी भरि चलि उतराई । जस योरे धन सल बौराई ।’  
 ‘महानृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतंत्र होइ बिगारहि नारी ।’  
 ‘चक्रबाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन पर-सम्पति देखी ।’  
 ‘कादर मन कहँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।’  
 ‘सठसन विनय कुटिलसन प्रीती । सहज रूपनसन आरत नीती ।’  
 ‘क्रोधिहिँ सम कामहिँ हरिकथा । ऊसर बीज बये फल जया ।’

‘फूले फले न बेत जदपि सुधा बरषहिँ जलद ।

मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिँ बिरोधि सम ।’

‘कौल कामबस रूपण बिमूढा । अति दरिद्र अजसी अति बूढा ।’  
 ‘सदा रोगबस सन्तत क्रोधी । राम बिमुख धुनि संत विरोधी ।’  
 ‘तनुपोषक निन्दक अधखानी । जीवत शव सम चौदह प्राणी ।’

### उत्तम काव्य

कविता—मर्मज्ञ पुरुषोंके लिखे रामायण एक बड़ा आनन्ददायक ग्रन्थ है। जिस काव्यमें अलङ्कार, व्यङ्ग्यकी प्रधानता, रस और माधुर्य होता है, वह काव्य उत्तम कहा जाता है। रामायणमें आदिसे अन्त तक ये सब भरे पड़े हैं।

अलङ्कार तीन प्रकारके होते हैं। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उभयालङ्कार।

शब्दालङ्कारमें किसी शब्दके बदले उसी अर्थका दूसरा शब्द रख देनेसे काव्यके नियमके अनुसार शुद्ध होनेपर भी वह चमत्कार नहीं रहता। यथा—

‘तेहि कारन आवत हियहरि । कामी काक बलाक बिचार ।’  
 ‘श्लका श्लकत पौयन कैसे । पङ्कज कोस ओसकन जैसे ।’

इनमें यदि काक या बलाक अथवा कोम या ओसके बदले यदि कोई दूसरा शब्द रख दिया जावे तो वह चमत्कार नहीं रहता। शब्दालङ्कार आठ प्रकारका माना जाता है।

अर्थालङ्कारमें शब्द पलटनेसे चमत्कारमें कोई त्रुटि नहीं आती। यथा—

‘सोहत जनु जुग जलज सनाला । मसिहिँ समीत देत जयमाला ।’

इसमें यदि ‘जलज’के बदले ‘कमल’ और ‘मसिहिँ’के बदले ‘विधुहिँ’ रख दें तो चमत्कार नहीं जाता। अर्थालङ्कारको १०० अथवा इससे भी अधिक प्रकारका मानते हैं। किन्तु कवियोंका मत है कि इन सबमें मुख्य उपमालङ्कार है और अन्य अलङ्कार उसीके भिन्न भिन्न रूप मात्र हैं।

कालिदास उपमा देनेमें अद्भुत माने जाते हैं, परन्तु तुलसीदासजीकी उपमाएँ भी बड़ी ही अनूठी हैं। यथा—

‘अरुन-चरन-पङ्कज-नख-जोती । कमल-दलन्हिँ बैठे जनु मोती ।’  
 ‘डगइ न संभु सरासन कैसे । कामी बचन सती मन जैसे ।’  
 ‘मन मलीन तन सुंदर कैसे । बिष-रस भरा कनक घट जैसे ।’  
 ‘जनक लहेउ सुख सोच निहाई । पैरत धके याह जनु पाई ।’

उभयालङ्कार—एकसे अधिक अलङ्कारोंके सम्मेलनको उभयालङ्कार कहते हैं। यथा—

कर्म बचन मानस विमल. तुम्ह समान तुम्ह तात ।

गुरु समाज लघु बन्धु गुन कुसमय किमि कहि जात ॥

इसमें अनन्वय (अर्थालङ्कार) और अनुप्रास दोनों सम्मिलित हैं। कविलोग उभयालङ्कारके भी भेद और उपभेद मानते हैं।

व्यङ्ग्यकी प्रधानता—

‘चरन-पीठ करुनानिधानके । जनु जुग जाभिक प्रजाप्राणके ।’

‘गुरु बिबेकसागर जग जाना । जिनहिँ बिस्व कर-बदर समाना ।’

रामायणसे लैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रस—कविलोग इसके १ भेद मानते हैं। कोई-कोई भक्ति और वास्तव्यको भी सम्मिलित करके ११ भेद मानते हैं। यथा—

(१) वीर—

‘सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठी द्वै भुजा बिमाला ।’

‘देमि न जाय कपिनके ठहा । अनि बिमाल तनु भागु सुमहा ।’

‘धावहिँ गनहिँ न औघट बाटा । परबत फोरि करहिँ गहिँ बाटा ।’

(२) करुण—

‘भंजु बिलोचन मोचति बारी । बौली देखि राममहतारी ।’

‘हा रघुनन्दन प्राण पिरिते । तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ।’

(३) शृङ्गार—

‘एक बार जुनि कुसुम मुहायि । निजकर भूषण राम बनाये ।’

(४) हास्य—

‘देखि सिवहिँ सुर तिय मुसुकाहीं । बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ।’

(५) भयानक—

‘लागत अवध भयानक मारी । मानहुँ काल रात अधियारी ।’

(६) अद्भुत—

‘रहे छाह नम सिर अह बाह । मानहुँ अमित केतु अरु राह ।’

(७) बीमटस—

जोगिन भरि भरि खप्पर साँबहिं । भूत पिसाच विविध बिधि नाबहिं ॥

(८) रौद्र—

‘पुनि सकोप बोले जुवराजा । गाल बजावत तोहि न लाजा ॥’

‘जो सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतौ गधुबीर दुहाई ॥’

(९) शान्त—

दीप-सिखा-सम जुवति जन मन जनि होसि पतङ्ग ।

भजहिं राम तजि काममद करहिं सदा सतसङ्ग ॥

(१०) भक्ति—

कमिहिं नारि पियारि जिमि लोमिहिं जिमि प्रिय दाम ।

पेसे है कय लागिहौ तुलसीके मन राम ॥

(११) वात्सल्य—

मोरे भगत राम दोउ आँखी । सत्य कहाँ करि संकर साखी ॥

रहा माधुर्य, सो इसके लिये उदाहरणकी आवश्यकता नहीं । इसका तो रामायणभरमें खोत बह रहा है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि रामायणमें ऐतिहासिक और राजनीतिक बातें हैं । उसमें अच्छे अच्छे सारगर्भित उपदेश हैं और वह एक उत्तम काव्य है । इसके अतिरिक्त उसमें और भी समाज, शास्त्र, धर्म-नीति, पतितोद्धार, दबड़-नीति आदि सभी विषयोंकी अनेक बातें हैं । जो उदाहरण इस लेखमें दिये गये हैं उनमें कहीं कहीं इनकी भी झलक दिखायी पड़ेगी । सारांश यह कि इस ग्रन्थमें एक ही जगह तुलसीदासजीने हमारे लिये कई अच्छी सामग्रियाँ एकत्र करके रख दी हैं । रामायण लिखकर उन्होंने जो संसारका उपकार किया है वह अकथनीय है ।

## बन्दों सबहिं रामके नाते

(लेखक—श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र ‘माधव’ बी० ए०)



श्वकी विविध विषमताओंमें एक परम रहस्यकी अद्भुत जीला चरितार्थ हो रही है । जीवनके चढ़ाव और उतारमें एक प्रक्षुब्ध प्रवाह अबाध गतिसे बहता चला जा रहा है । सुख और दुःखके मूलमें बसने-वाली अन्तर्धाराको बाह्य विषमता स्पर्शतक नहीं कर सकती । जीवन और मृत्युको प्रेरित करनेवाली मानव-हृदयकी अन्तर्ज्योतिको जगत्का निखिल अन्धकार प्रभावित नहीं कर सकता । इस विविध-रस विश्वकी तहमें ‘एक-रस’ ही निरन्तर प्रवाहित हो रहा है जहाँ जीवनकी जटिलता, विषमता तथा विरोध पहुँच नहीं पाते । हमारे क्रान्तवर्गी महर्षि कवियोंने इसी ज्ञानकी मूल-आभ्यन्तरिक उषोति, हृदयकी अन्तर्धारा, तथा परदेके भीतरकी एक अनुपम छविके आलोकपर बे-सुख होकर प्रायोंका उपहार छुटाया था । वाल्मीकि और व्यासने, तुलसी तथा सूरने, गेदे तथा होमरने, शेक्सपीयर तथा शैलीने, नहीं-नहीं, विश्वके सभी अमर कवियोंने ‘भीतर’ पैठकर ‘रस’ का पान किया था और इसी आत्मोन्मादके व्यतिरेकमें बे-सुख हो, जीवन और मृत्युसे ऊपर उठकर आनन्दकी बंशी फूँकी यी ! इस आनन्द-प्रवाहके एक घूँटसे विश्वकी आतुर पिपासा

शान्त हो गयी; इस अनुल छविकी एक झँकीसे जगत्की तृप्ति आँखें खुदा गयीं !

विश्वके इस विराट् अभिनयका एक ही नायक है । जगत्के इन नाना नाम और रूपोंमें एक ही नाम और एक ही रूप है ! दुनियाँके इन असीम स्वप्नोंकी तहमें एक ही सत्य है, एक ही चिरन्तन प्रवाह है ! विश्वके यावत् पदार्थ ‘उसी’ के स्पर्शके लिये व्याकुल हैं, लालायित हैं, और सभी वस्तु ‘उसी’ एक परम वस्तुके साथ सम्बन्ध चरितार्थ कर रही हैं । विश्वको असत्य, प्रवचनना, अविवेकादिपूर्ण मानकर इसके प्रति विरक्ति उत्पन्न करना संशयवाद (Scepticism) ही के नामसे पुकारा जायगा । परमात्माको विश्वकी विविध लीलाओंसे परे मानकर तथा इस जगत्को परमात्मासे रहित मानकर ज्ञान और विवेककी शुष्क खोजमें जीवन भले ही लपटा दिया जाय परन्तु उस शुष्कतामें मानव-हृदयको खरि शान्ति और अनुल आनन्द तथा उरकुलताका आभास भी नहीं मिल सकता ! धृष्टा, विरक्ति तथा उदासीनता किससे करें ? इस ‘मिथ्या’ जगत्से ? अपना ‘घर’ छोड़ देनेपर परमात्माका घर कहाँ मिल सकता है ? क्या अपने ही घरको ‘उस’ का घर बनाकर उसीके दिव्य आलोकसे अपने अन्धकारपूर्ण अन्तस्त्राणको आलोकित न कर लें ? विश्व-नाटकके



अधिनायककी निखिल लीलासे आँखें भूँदकर 'उसे' हम कहाँ देख सकते हैं ?

चराचरकी सारी वस्तुएँ केन्द्रोन्मुख हो उसी 'एक' में लय होना चाहती हैं, अपने अन्तरमें उसी 'एक' के स्पर्शके लिये व्याकुल हैं। हमारे मनीषी, परिभूः स्वयम्भू कविशौने सृष्टिकी इस 'व्याकुलता', इस 'पिपासा,' इस आन्तरिक 'बुधा' को अपने भीतर अनुभव किया और सभी वस्तुओंमें उसी एक लीलामयकी अद्भुत अपार लीला देखी। उनका जीवन साधना एवं चिन्तनकी लीलामूर्ति था। वे अपने भीतर विश्वको तथा विश्वके भीतर अपनेको देखना जानते थे। इस रहस्यके मूलमें बसनेवाले सनातन-सम्बन्ध (Eternal Contact) को उन्होंने अलीभाँति देखा एवं सुना और इस लीला-माधुरीपर अपनेको न्योछावर कर दिया, आत्म-विस्तृत हो निराकारमें अपने साकार स्वरूपको लय कर दिया !

जिसप्रकार इस विराट् विरवके रंगमञ्चका नायक एक सर्वव्यापी परमात्मा है, उसी प्रकार रामायणरूपी नाटकके नायक भगवान् रामचन्द्र हैं और जिस भाँति विश्वके वाक् पदार्थ उसी 'एक'से अपना सम्बन्ध चरितार्थ कर रहे हैं उसी भाँति रामायणमें आये हुए सभी पात्रोंका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार रामचन्द्रसे है ! 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'—कहकर कवि या भक्तकी शान्ति नहीं मिलती; वह तो मन और वचनसे अगम्य उस परमरूपको भी अपनी कल्पनासे चित्रित कर ही डालता है और विश्वको इस रूपकी सुषमामें अपार शान्ति तथा अतुल आनन्द मिलता है। विश्व अपनी सुन्दरताके कारण आकर्षक नहीं प्रत्युत इसलिये है कि इसकी सुन्दरतामें एक अखण्ड परम-रूपकी सुन्दरता प्रतिभाषित हो रही है। इसकी अख-भङ्गुरताके परदेमें अमरत्वकी मधुर क्रीड़ा हो रही है। एक बार परदा उठाइये—आँखें अघा जायँगी उस छविको देखकर ! 'भूँदका पट' खोल देने पर आकर्षणकी बाकणी किसे नहीं मोह लेती ! परदे-तरकी सुन्दरीको देख लेनेपर विश्वकी सारी शोभा फीकी मालूम होने लगती है ; बिन नयनोंमें 'वह छवि' बसती है वहाँसे और छवि लजित तथा कुचिठ हो सिहर-सिहर अपने कानोंको समेटने लगती है। उस मस्तीमें, उस उन्मादमें जो आनन्द है, जो उन्हास है उसे दुनियाँ क्या समझ सकती है ? एक बार उस 'रस' की एक घूँट पी लेनेपर जन्म-जन्मान्तर कुमारी नहीं मिटती !

इसके बाद नीरस-जैसी कोई चीज ही नहीं रह जाती—  
—एकरस, एक राग, एक तान, एक रूप—!

यह जगत् मिथ्या कैसे ? यह तो 'लिया-राम-मय' है, यह एक आर्ष-कविता है, एक अनन्त संगीत है, जिसकी माधुरी पीनेके लिये अपनेको गँवा देना होता है। इसकी कीमत देनेके लिये कितने तैयार हैं ? अपनी दुनियाँ मिटाकर, अपनी सीमामय परिधि की रेखाको मिटाकर इस विराट् मिलनमें जहाँ केवल 'सीताराम' ही हैं, सम्मिलित होनेके लिये कितने तैयार हैं ? दर्द-दीवानी मीराने इस रसको पीया था, कबीरने, सूरने और तुलसीने पीया था ! परन्तु तुलसी-का रस बहुत ही मधुर है; सूरकी बेहोशी और मीराकी आत्मविस्तृति जनसाधारणकी पहुँचसे बाहरकी है, कबीरका ब्रह्मवाद बहुत ही कठिन है, पर तुलसीकी साधना, तन्मयता तथा अनुभूतिको हम सभी थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं और अपने जीवनको संयमके वेहनमें इस भाँति परिचालित कर सकते हैं, इस 'राजमार्ग' पर इतनी सुगमता और सुख-से चल सकते हैं कि 'धुरस्य धारा निशिता दुर्गमया, दुर्ग पथस्तन्कवयो वदन्ति' में सन्देह होने लगता है। मीरा और सूर हमें इस पार्थिव आधारसे बहुत शीघ्र ऊपर उठाकर उस परमात्म-भावमें लय कर देते हैं, जहाँ अनन्त शीतलता और अमर शान्ति है परन्तु उस उन्मादको जीवनमें उतारना जरा कठिन है पर तुलसीदास हमारे हृदयको धीरे-धीरे उदार और उन्नत बनाते हुए 'रस'के उस महासागरमें हमारे बुद्धि-बिन्दुको सदाके लिये लय कर देते हैं—जहाँसे लौटनेकी कोई कल्पनातक नहीं कर सकता—जहाँ हमारा 'स्वार्थ' विश्वके कण-कणमें बिखर जाता है और सर्वत्र उसी एक रूपकी अपार शोभा देख हम आनन्द-जनित उन्मादमें गा उठते हैं—

'बन्दी सवहि रामके नाते'

### रामायणसे स्वार्थपरताका नाश

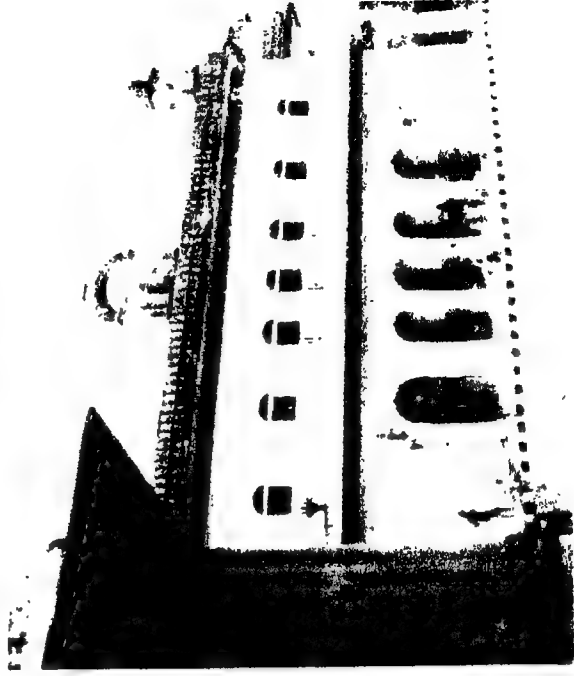
रामायणके द्वारा भारतवर्षसे स्वार्थ परताका दोष जितना दूर हुआ है, उतना किसी भी नीतिवान्, धर्मविद्, समाजसुधारक, राजपुरुष और राजाके द्वारा नहीं हो सका।

—बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

(श्रीअयोध्यापुरी)



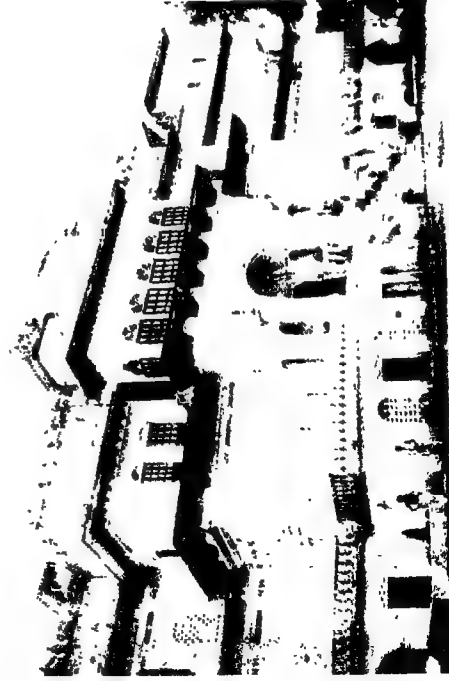
अयोध्या दृश्य (२)



मन्दिर कनकभवत भीतरी दृश्य



अयोध्या नगर दृश्य (१)

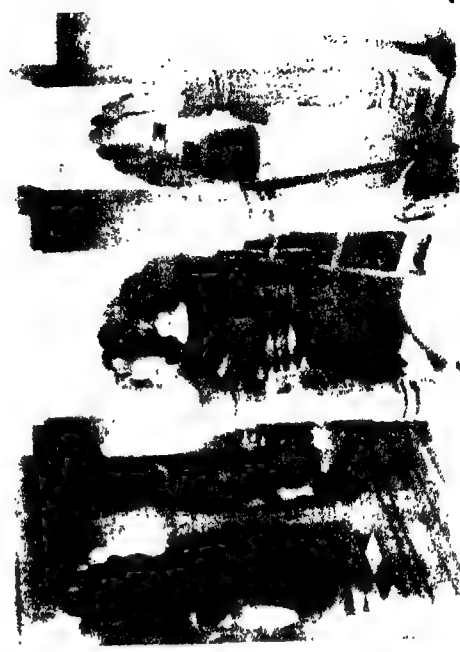


मन्दिर कनक भवन ( बाहरी दृश्य )

(श्रीअयोध्यापुरी)



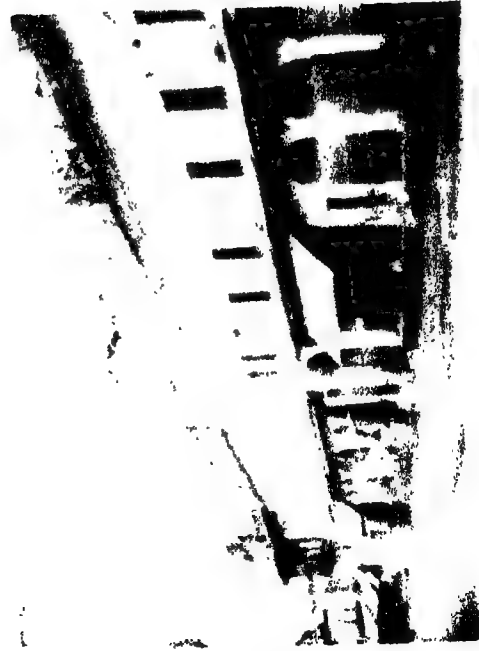
हनुमान गढ़ी (१)



मन्दिर हनुमान गढ़ी (२)



मन्दिर श्रीमहेश्वरनाथ



मन्दिर श्रीशिवमठ

## श्रीवाल्मीकीय सुन्दरकाण्डम्

(लेखक—श्रीहरिस्वरूपजी जोहरी एम० ए०, )

सुन्दरं सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा ।

सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरं किञ्च सुन्दरम् ॥



सुन्दरकाण्डकी सुन्दरता नायसे ही प्रकट है, जैसा नाम वैसा ही गुण । कथाकी सुन्दरता कविकी कवित्वशक्तिकी पराकाष्ठा प्रकट करती है । वैसे तो वाल्मीकिजीका बर्णन तथा उपसार्प, सभी जगह अत्यन्त रोचक हैं, पर सुन्दरकाण्डमें जो जादू भरा है, वह अकल्पनीय है । इस लेखका अभिप्राय सुन्दरका सुन्दरत्व दर्शाना है ।

बहुत मनन करनेके पश्चात् सुन्दरकाण्डका अलौकिक सुन्दरत्व विशेषतः इन कारणोंसे प्रकट होता है—

(१) सुन्दरकाण्डकी कथा एक भक्त-गाथा है । इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमसेवक श्रीहनुमान्जीके पराक्रमका आद्योपान्त बर्णन है, जिससे सर्वत्र वीररसका समुद्र उमड़ रहा है ।

(२) भगवान् रामकी प्रियतमा जगज्जननी महारानी सीताकी अति शोचनीय दशाका बर्णन कविने ऐसा मर्मस्पर्शी किया है कि पापाण-हृदय भी बिना आँसू बहाये नहीं रह सकता । कल्याणरसका समुद्र उमड़ चला है !

(३) श्रीसीता महारानीके पातिव्रत तथा सौन्दर्यादि गुणोंका अनुपम चित्र बड़ी ही विचित्रताके साथ चित्रित किया गया है ।

(४) महारानीजीका रावणके प्रलोभन-प्रपञ्च का खण्डन करना तथा उसको पवित्र हितकर उपदेश देना, रावण-सरीखे दुष्ट-व्यक्तिके लिये महान् शिक्षाप्रद है !

(५) श्रीवाल्मीकि महाराजकी कवित्व-शक्तिका अनुपम परिचय लङ्का, चन्द्रोदय, पुष्पकविमान, अशोक-वाटिका, सीता, अशोक-वाटिका-निर्घंस तथा लङ्का-वहन आदिके बर्णन-प्रसंगोंमें विशेषरूपसे मिलता है ।

वाल्मीकीय—सुन्दरकाण्डकी कथा श्रीगुलसी-सुन्दरसे निरासी है, अतएव वाल्मीकि-रामायणसे अनमिष्ट पाठकोंके

लिये संक्षेपमें सुन्दरकाण्डकी कथाका रसास्वादन करा देना आवश्यक है ।

महारानी सीताकी खोज एवं लङ्का-वहनमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् स्वयं श्रीहनुमान्जीने अङ्गदादि बानरोंको (वा० ५।५६) जो आत्म-कथा सुनायी है । वही कथा यहाँपर संक्षेपरूपसे उद्धृत की जाती है—

जाम्बवान्के पूछनेपर श्रीहनुमान्जी महाराज कहने लगे—

‘आप लोगोंके सामने मैं इस महेन्द्राचलके शिखरसे उड़ा । जाते ही मार्गमें एक बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ । मैंने अपने रास्तेको रोककर खड़े हुए अत्यन्त सुन्दर और काञ्चनमय शिखरयुक्त एक पर्वतको देखा । यह देखकर मैंने अपनी पूँछसे उसके ऊपर इतने जोरसे आघात किया, जिससे उसके शिखरके हज़ारों टुकड़े हो गये । इसपर वह महागिरि मुझसे बोला, ‘हे पुत्र । मैं तुम्हारा बच्चा मैनाक, श्रीरामचन्द्रजीकी सहायता करनेके लिये उद्यत हूँ ।’ मैं उससे अपना अभिप्राय प्रकट कर, जानेकी अनुमति ले आगे बढ़ा ।

तदनन्तर मैंने नागमाता सुरस्ताको देखा, वह तो मुझे खानेको ही उद्यत थी । मैंने कहा, ‘मैं सीताजीका पता लगाकर तुम्हारे मुखमें चला आऊँगा,’ पर वह न मानी । उसने मुख बढ़ाना शुरू किया, मैंने भी अपना शरीर बढ़ाना आरम्भ किया, अन्तमें मैं अपने विशाल शरीरको अँगूठेके बराबर छोटा बना उसके मुखमें प्रवेशकर उसी क्षण बाहर निकल आया । तब वह मुझपर बहुत प्रसन्न हुई ।

मैं आगे बढ़ा, इतनेमें ही मेरी छायाको किसीने पकड़ लिया । सिंहिका-नाझी राजसी मुँह फैलाकर मुझे खानेको दौड़ी । पहले तो मैंने अपना शरीर खूब बढ़ाया, फिर फट झोटा बन रूपदर उसका कलेजा निकाल आकाशमें चला आया । राजसीका हृदय फट गया और वह मर गयी ।

तब बहुत दूर चल कर सन्ध्या-समय मैं लङ्कापूरी पहुँचा । वहाँ लङ्का-जात्री एक राजसी मुझे मार डालनेके लिये मेरे सामने आयी । उस राजसीकी मैं बायें हाथके धुँसेसे परास्तकर आगे बढ़ा ।

मैं सारी रात जानकीजीकी खोजमें भटकता रहा । रावणके रनवासमें कुछ भी पता न लगा । तब मैं शोक-

सागरमें डूबने लगा, इतनेमें मुझे एक अशोक-वृक्षोंका बगीचा दिखायी दिया। मैं कूदकर वहाँ पहुँचा और श्रीसीतामहारानीजीको बैठे देखा। वह चोर राक्षसियोंसे घिरी हुई उनसे बार-बार डाँटी-डपटी जा रही थीं। उनका शरीर श्रीरामचन्द्रजीकी वियोग-चिन्तासे कुश एवं मलिन हो गया था। मैं शिशुपाके वृक्षपर बैठ गया। इतनेमें मैंने वहाँ महाबली रावण और उसकी स्त्रियोंको आते देखा। रावणने आकर सीताको बहुत कुछ समझाया। सीता-महारानीने अत्यन्त क्रुद्ध हो रावणको निरुत्तर कर दिया। इसपर वह दुष्ट उनको मारनेके लिये हाथ उठाने लगा तो मन्दोदरी-नागनी जो बड़े ही कौशलसे रावणको समझाकर ले गयी।

इसके उपरान्त सब राक्षसियाँ सीताजीको क्रूर वचन कह धमकाने लगीं, किन्तु, जानकीजीने उन वचनोंकी तिनके-जितनी भी परवा नहीं की। उनका डराना-धमकाना सब व्यर्थ हुआ। इसके बाद वे सब लेट गयीं। सीताजी अत्यन्त चिन्तित थीं। त्रिजटा-नागनी राक्षसी अपना विचित्र स्वप्न सुनाकर सबसे कहने लगी कि, 'खबरदार! इससे सीताको डराना धमकाना और उसका चित्त दुखाना बिल्कुल छोड़ दो। अन्यथा हमारी कुशल नहीं है।'

अब सीताजीसे वार्तालाप करनेकी मेरी इच्छा बढ़ने लगी। तब मैंने इक्ष्वाकु-वंशियोंकी प्रशंसा करना शुरू किया। जिससे सुनकर सीताजी मुझसे नाम-धाम पूछने लगीं। मैंने अपना सब परिचय देकर उन्हें श्रीरामकी अँगूठी सहिदानीरूप दे दी। फिर पूछा कि, 'देवी! मुझे क्या आज्ञा है? कहिये तो मैं आपको श्रीरामचन्द्रजीके पास ले चलूँ।' इसपर जनक-नन्दिनी सीताजी कहने लगीं, 'नहीं, मैं इस प्रकार जाना नहीं चाहती। यदि श्रीरामचन्द्रजी रावणका वचन मुझे ले जावें तो अच्छा हो।' पश्चात् उन्होंने मुझे अपनी चूड़ामणि सहिदानी-स्वरूप देकर कहा, 'हे हनुमान! तुम मेरा सब हाल रामजीसे कहना और ऐसा करना, जिससे श्रीराम-लक्ष्मण वहाँ शीघ्र आवें। मेरे जीवनकी अवधि केवल दो मास है।'

ऐसे कष्ट-वचन सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने क्रोधमें भर और महारानी सीतासे विदा माँग अशोक-वाटिकाको विभ्रंस करना शुरू कर दिया। इसकी सूचना रावणको मिली। अस्सी हजार विह्वलनामचारी राक्षस मुझे पकड़ने आये, मैंने सबको

मार डाला। जो बचकर भाग गये, उन्होंने सब वृक्षान्त रावणसे कह सुनाया। तब जम्बुमाजी आया, मैंने उसको भी सेनासमेत मार गिराया। मन्त्री-पुत्र भी मेरे सामने आया, उसे भी मैंने मार डाला। इसके पश्चात् रावणका पुत्र अक्षयकुमार आया, मैंने उसको भी धमजोक भेज दिया। तब इन्द्रजित् आया, वह मुझे पकड़नेमें अपनी असमर्थता देखकर मुझे महाकाशमें बाँधकर रावणके सामने ले गया। मैंने उससे श्रीरामचन्द्रजी तथा उनकी सुग्रीवके साथ मित्रता आदि सभी बातोंको कह सुनाया और सीताजीको छोड़ा देनेके लिये उसे बहुत कुछ समझाया, इसपर क्रुद्ध होकर उसने मुझे मार डालनेकी आज्ञा दी, उसके भाई विभीषणने मुझे बचानेके लिये प्रार्थना की। अन्तमें दूत-वच अनुचित समझकर मेरी पूँछ जलानेकी व्यवस्था की गयी, पूँछमें आग लगा दी गयी और समस्त नगरके राजमार्गोंमें मुझे घुमा-घुमाकर मेरे अपराधकी घोषणा की गयी। सब देख-भाळकर मैंने अपने शरीरको छोटा बना लिया और सहजहीमें सब बन्धन तोड़ डाले। फिर मैंने नगरमें आग लगाना शुरू किया। नगर तो जला दिया पर मेरे मनमें बड़ा भय पैदा हो गया, मैंने सोचा कि कहीं मेरी इस मूर्खतासे माता सीता तो नहीं जल गयी? इतनेमें मैंने चारणोंको कहते सुना कि जानकीजी नहीं जलीं। यह सुनकर मेरा मन बहुत ही प्रसन्न हुआ, मैंने पुनः जाकर जानकीजीके दर्शन किये और उनसे विदा हुआ।

तदनन्तर अरिष्ट नामके पर्वतसे उड़कर अब आप लोगोंके पास आ पहुँचा हूँ। यह सब हाल मैंने ज्यों-का-त्यों आपसे कह सुनाया। अब जो उचित जान पड़े सो कीजिये।'

इसके पश्चात् सब जानरोंने मधुवन-नामक उपवनमें पहुँच विजयोन्मादमें तृप्त मधु पिया। जिसने इन्हें रोका, उसको इन्होंने तूब ठोंका। इसके अनन्तर सुग्रीवको सूचितकर सबजोग उसके पास पहुँच गये और श्रीहनुमानजीने सब वृक्षान्त श्रीरामचन्द्रजीको सुनाकर चूड़ामणि दे दी।

इस कथाका जो आनन्द सुन्दरकायक पढ़नेसे प्राप्त होता है वह अकथनीय है। हनुमानजीके पराक्रमका वर्णन स्वयं शेषजी भी अपने सहकर्मियोंसे नहीं कर सकते। भक्त हनुमानकी बुद्धिमत्ता, अनुपम बल, वाक्चातुर्य तथा कार्यसिद्धिके वर्णन करनेकी शक्ति काष्ठीकविजीमें ही थी। विद्वत्का अनुभव यह है कि जितनी बार इस काण्डका पाठ

किया जावे उसनी ही बार उन घटनाओंका चित्र आँखोंके सामने नाचने लगता है। कहीं बीररस, कहीं कन्धाररस, कहीं शृङ्गाररस, कहीं हास्वरस और कहीं उपमाओंके सुन्दर प्रयोगोंको देखकर पाठकका हृदय आनन्दसे गरव हो उठता है। इस प्रबन्धमें यहाँ कुछ विशेष परिचय दिया जाता है—

सिंहिका नाम्नी राक्षसीको श्रीहनुमान्जीने कैसी चतुराईसे परास्त किया। पहले उसने अपना मुख जितना बढ़ाया, उससे अधिक आपने शरीर बढ़ाया। अन्तमें अवसर पाकर बहुत छोटा रूप बना, उसके मुखमें प्रवेशकर अपने तेज नलोंसे उसके मर्मस्थलको चीर-फाड़ डाला। इसपर देवताओंने आपकी इन शक्तियोंमें प्रशंसा की—

यस्य त्वेति चत्वारि वानरेन्द्र यथा तत्र ।

प्रतिर्दीर्घमनिर्दीर्घं म कर्मसु न सीदति ॥

( वा० ५।१।२०२ )

हे वानरोंके स्वामी श्रीहनुमान्जी ! धीरता, सूक्ष्मदृष्टि, बुद्धि और चतुराई, आपके समान ये चार गुण जिसमें होते हैं, वह कभी किसी भी कामको करनेमें नहीं घबकाता।

आपकी धर्मपरायणताको देखिये—

जब लङ्कादेवीने आपको जंगलसे छप्पड़ मारा तो आपने 'स्वा येति मन्थमानेन नान्तक्रोधः स्वयंकृतः' उसे काँ समझकर बहुत क्रोध नहीं किया। केवल एक घूँसा मारकर ही उसे परास्त कर दिया और फिर 'कृपां चकार तेजस्वी मन्यमानः' 'स्वियं तु नाम्' उसपर दया प्रकट की।

जब आपने राक्षसके अन्तःपुरमें रातके समय सीताकी खोज करते करते अनेक स्त्रियोंको देखा तो आप बहुत चिन्तित हुए—

जगाम महतीं चिन्तां धर्ममाध्वसशंकितः ॥

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।

( वा० ५।११।३८-३९ )

पर-स्त्रियोंको सोते देखनेसे आपके हृदयमें धर्म-नाशकी शङ्का उत्पन्न हुई। आप सोचने लगे— 'इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति।' यह मेरा कर्म अवश्य मेरे धर्मको नष्ट कर देगा। परन्तु देखिये, आप किस बुद्धिमत्तासे इस कष्टसे पार होते हैं। आप सोचने लगे—

नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ॥

कामं दृष्ट्वा मया सर्वा विशस्ता रावणस्त्रियः ।

न तु मे मनसाः किञ्चिद्वैकल्यमुपपद्यते ॥

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।

शुभाशुभास्वस्थ्यासु तच्च मे मुख्यवस्थितम् ॥

स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गेण ॥

तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।

( वा० ५।११।४०-४६ )

'आज तक मैंने कभी स्त्रियोंको बुरी दृष्टिसे नहीं देखा। वद्यपि आज मैंने इन स्त्रियोंको देखा, पर मेरे मनमें तिल-भर भी कुविचार उत्पन्न नहीं हुआ। मन ही तो पाप-पुण्य करनेवाली सब इन्द्रियोंका प्रेरक है, वह मन मेरे बशमें है। न देखता तो करता भी क्या? स्त्रियाँ तो स्त्रियोंहीमें ढूँँ जाती हैं, मैंने शुद्ध मनसे ही जानकीजीको ढूँँया।' इस विवेचनमें श्रीहनुमान्जीने अपने चरित्रका जितनी साक्ष्यकारी साथ प्रबलोकन किया है वह सर्वथा अमृत है। यहाँपर आपने अपनेको पूर्णतया बालमग्नचारी चरितार्थ कर दिया।

जब बहुत खोज करनेपर भी श्रीसीताजीका पता न लगा तो आप अगाध चिन्ता-सागरमें डूबने लगे, परन्तु बड़े धैर्य और साहससे उसे भी पार किया। इसका चित्र बाल्मीकीजीने यहाँ हृदयस्पर्शी भाषामें खींचा है। हनुमान्जीकी प्रतिष्ठा ध्यान देने योग्य है।

सोऽहं नैव गमिष्यामि किञ्चिन्धां नगरीमितः ।

वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यदृष्ट्वा जनकामजाम् ॥

चिर्तिं हत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणांमुतम् ॥

उपविष्टस्य वा सम्यग्गोत्रिनं साधारिष्यतः ।

सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्यदयामि जानकीम् ॥

नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वाऽसितेक्षणाम् ॥

( वा० ५।१३।३८-४५ )

'अब मैं किञ्चिन्धा नहीं जाऊँगा। वानप्रस्थी हो चित्तमें प्रवेश करूँगा। प्रायोपवेशनव्रत धारणकर प्राण छोड़ दूँगा। जलमें प्रवेश कर जाऊँगा, पर विना सीताके देखे यहाँसे नहीं हटूँगा। इतना एक संकल्प हनुमान्जीके ही योग्य था। इसके बाद आप सोचने लगे कि प्रायः दे दूँ या रखूँ? अन्तमें आप निश्चय करते हैं—

विनाशे बहवो दोषा जीकम्भद्राणि पश्यति ।

तस्मात्प्राणान्चरिष्यामि ध्रुवा जीवति सक्षमः ॥

( वा० ५।१३।४७ )

‘नाशमें बहुत दोष है। जीवित रहनेसे अनेक शुभोंकी प्राप्ति होती है अतएव प्रायः धारण करना ही योग्य है, क्योंकि जीवित रहनेसे निश्चय ही इष्ट-सिद्धि होती है।’ प्रायः देनेकी तैयारीसे आपके सङ्कल्पकी दृढ़ताका परिचय मिलता है। इसप्रकार प्रायः धारण करनेका निश्चय आपके चैर्य तथा बुद्धिमत्ताको प्रकट करता है।

आपकी बुद्धिमत्ताका एक दूसरा चित्र आगे आता है। इस बातपर यह गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं कि महारानी-सीताजीसे किस प्रकार बातचीत की जाय, जिससे उनको मेरे विषयमें सन्देह न हो। इसपर आप इक्ष्वाकु वंशावली-का निरूपण करना प्रारम्भ करते हैं और शेषमें महाराज दशरथसे लेकर सीताजीको देखनेतककी सारी घटनाओंका बर्णन सुन्दरतापूर्वक वर्णन कर जाते हैं। ऐसी विद्वत् परिस्थिति-में विश्वास उत्पन्न करनेका कैसा अमोघ अस्त्र आपने प्रयोग किया! परन्तु सीताके सदृश पवित्रात्माके हृदयमें धार मायावी राजसोंकी नगरीमें एक अपरिचित पुरुषके प्रति विश्वास उत्पन्न करनेके लिये यह साधन पर्याप्त नहीं था। अतः सीताजीने आपकी परीक्षा की, उसमें भी आप अपनी बुद्धिमत्तासे सफल हुए। सीताजीने ऐसे कठिन प्रश्न पूछे जिनका श्रीरामचन्द्रजीसे अति परिचित व्यक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई उत्तर दे ही नहीं सकता था। यथा—‘आपकी श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट कहाँ हुई? आप लक्ष्मणजीको कैसे जानते हैं? मनुष्योंका और वानरोंका मेल कैसे हुआ? श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीका हुलिया कैसा है? उनके शरीरोंकी गठन कैसी है? श्रीरामचन्द्रजीका रूप कैसा है? लक्ष्मणजीकी भुजाएँ कैसी हैं?’ इन सब प्रश्नोंके उत्तर आपने ठीक-ठीक दिये, जिससे सीताजीको पूर्ण विश्वास हो गया कि वे श्रीरामजीके दूत हैं।

एवं विद्वत्सिता सीता हेतुभिः शोककर्षिता।

उपपत्तेरामजनिर्दूतं तमधिगच्छती ॥

(बा० ५। ३५। ८४)

शोकसन्तप्त सीताजीने अनेक कारणोंका तथा श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीके शारीरिक चिह्नोंका पर्याय पता पाकर हनुमान्जीकी बातोंपर विश्वास किया और उनको श्रीरामचन्द्रजीका दूत जाना।

कोई साधारण दूत होता तो इस कठिन परीक्षामें उचीर्य होना उसके लिये असम्भव ही था। अपनी वाक्-चातुरी तथा बुद्धिमत्तासे पूरा विश्वास दिलाकर ही आपने

रामचन्द्रजीका दिवा हुआ चिह्न महारानीजीको अर्पण किया—जिससे विश्वास होनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं आयी। इसमें भी आपकी कितनी बुद्धिमत्ता थी। यदि चिह्न पहले दिवा गया होता तो जानकीजी शायद इनको शत्रु समझतीं, और यह भाव होता कि कहीं यह भ्रूणही श्रीरामजीको मार उनसे जीव लाया होगा या मुझे मायासे झूठा विश्वास दिलाकर राक्षसकी तरह प्रलोभन दे रहा होगा।

पुनः चलते समय सीताजीने एक बड़ा कठिन प्रश्न पूछा—‘हे वीर! इस दुःख-सागरके पार करनेकी तो शक्ति तीव्रहीमें है—तुममें, गरुडमें और एवमन्त्रमें। फिर श्रीरामचन्द्रजी वहाँ किसप्रकार आ सकेंगे? इस दुस्तान्त्य कार्यकी सफलताके लिये तुमने जो उपाय सोचा है सो बताओ।’

श्रीहनुमान्जी महाराजने इसका जो उत्तर दिया वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है!—

मद्विशिष्टाश्च तुत्याश्च सन्ति तत्र वनोक्तसः।

मत्तः प्रत्यवरः कश्चित्तास्ति सुग्रीवसन्निधी ॥

अहं तावदिहप्राप्तः किं पुनरेतं महाबलाः।

न हि प्रकृष्टाः प्रेम्हन्ते प्रेम्हन्ते हीनरे जनाः ॥

(बा० ५। ३९। ३८-३९)

‘माता! सुग्रीवकी अधीनतामें सभी वानर मेरे ही जैसे और कई तो मुझसे भी बड़कर हैं। मुझसे निकट वानर तो वहाँ कोई है ही नहीं। जब मैं ही वहाँ आ गया तब उन महाबलवान् वानरोंके लिये तो कहना ही क्या है? दूत बनाकर साधारण ही व्यक्ति भेजा जाता है, प्रधान नहीं। हे देवा! वे वानरोंके स्वामी एक ही झुल्लोगमें लक्ष्मण और आप आ जावेंगे। श्रीराम-लक्ष्मणजी तो मेरी पीठपर सवार हो तुम्हारे पास आवेंगे और इस लङ्कापुरीको सहस-नहस कर दायेंगे।’

अब श्रीहनुमान्जीकी घोषणापर जरा ध्यान दीजिये। अपने स्वामीके नामका उद्घाटन करते हुए आप घोषित करते हैं—

जयत्यतिभक्तो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।

राजा जयति सुग्रीवो राज्यवेणामिपहितः ॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याङ्घ्रिदुर्कर्मणः।

हनुमान्छर्तुसैन्यानां निहन्ता माव्तात्मजः ॥

न रावणसहस्रं मे मुद्दे प्रतिबलं भवेत्।

शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥

अर्पयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।

समृद्धयर्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥

(वा० ५।४२।३३-३६)

‘अब जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ! महारानी लक्ष्मणकी जय हो ! श्रीरामजीद्वारा-पालित राजा सुग्रीवकी जय हो ! मैं अह्निवृत्तार्मा (घोर कर्म न करनेवाले) श्रीरामका दास हूँ, मेरा नाम हनुमान् है। मैं शत्रुसेनाका नाश करनेवाला पवनदेवका पुत्र हूँ। हमारे शिलाओं और बूछोंके प्रहारके सामने एक रावण क्या सहस्र रावण भी नहीं ठहर सकते। मैं समस्त रावणोंके सामने लङ्काका ध्वंस कर जनक-नन्दिनीको प्रणामकर अपना काम पूरा कर जाऊँगा ...।’ यह पवनसुत हनुमान्जीकी घोषणा है ! अब उनकी वाक्पटुता तथा बुद्धिमत्ताका एक बार और अवलोकन कीजिये—

रावण श्रीहनुमान्जीसे यह पूछना है, कि ‘तू कहाँसे आया है ? क्यों आया है ? अशोक वन उजाड़ने और राक्षसोंको भयभीत करनेमें तुझको क्या लाभ हुआ ? मेरी इस दुर्गम पुरीमें तू कैसे आया ?’ आप उत्तर देते हैं—‘मैं वानर हूँ, मेरे हृदयमें रावणसे भेंट करनेकी अभिलाषा थी किन्तु इसका सफल होना साधारणतः कठिन था, इसीलिये मैंने अशोकवाटिकाको उजाड़ दिया। राक्षसोंको मैंने अपनी शरीर-रक्षाके लिये मारा। मैं आपको अपने स्वामीका सन्देश सुनानेके लिये स्वेच्छामे ब्रह्मास्त्रमें बँध गया। मुझे अतिपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीका दून जानिये। अब मैं आपसे हितके वचन कहना हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। आप भुवनविख्यात बालिके पराक्रमको भलीभाँति जानने ही हैं, उसको श्रीरामने केवल एक ही राक्षसे मार डाला और उसके स्थानपर सुग्रीवको राजा बनाया। करोड़ों वानर सीताकी खोजमें घूम रहे हैं। मैं तौ योजन समुद्र लाँघकर आपको देखनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप तो धर्म और अर्थको भलीभाँति जानते हैं। आपने तपके प्रभावसे ऐश्वर्य सम्पादन किया है। अतएव आपका तो यह ज्ञात ही होगा कि पराधीन-स्त्रीको घरमें बन्द कर रखना अनुचित है। आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषको ऐसे धर्मविरुद्ध एवं अनर्थकारी तथा समूल नष्ट करनेवाले कार्योंमें भासक होना अनुचित है। देखिये, लक्ष्मणके क्रोध और रामके बाणोंके आगे सुर या असुर कोई भी नहीं टिक सकता। अतएव मेरा कहना मात्र श्रीरामचन्द्रजीकी जौटा हीजिये।

सीताको संसारमें दैत्य अथवा देवता कोई भी नहीं पचा सकता। आप अपने तप-फलका अधर्मके द्वारा नाश न करें। आप यह न समझिये कि देवताओं और दैत्योंसे अवश्य होनेके कारण आप अवश्य ही रहेंगे। सोचिये, सुग्रीव न तो देवता है और न असुर है, उससे प्राणोंकी रक्षा कैसे कीजियेगा ? चाहूँ तो मैं अकेला सारी लङ्काको नष्ट कर सकता हूँ, परन्तु श्रीरामजीने स्वयं ही इसके नाश करनेकी प्रतिज्ञा की है। सीताको आप काल-रात्रि समझिये। सीताजीके तेजसे आपकी लङ्का दग्ध हो चुकी, अब श्रीरामचन्द्रजीके कोपसे वह भस्म हो जायगी। श्रीरामचन्द्रजी लोकसंहार कर सृष्टि-रचनाकी शक्ति रखते हैं। ब्रह्मा, शिव, इन्द्र कोई भी श्रीरामजीका युद्धमें सामना नहीं कर सकते, आपकी तो कुछ गिनती ही नहीं।’

इस उत्तरकी गम्भीरतापर विचार कीजिये—पहला भाग आपकी वानर-प्रकृतिका द्योतक है। आगे चलकर बालिका स्मरण कराना, ‘सुग्रीव न सुर है न असुर’ तथा ‘अधर्म तप-तेजका नाश करता है’—आदि बातें कितने मार्केकी हैं ? फिर श्रीरामके पराक्रम, श्रीसीताके तेज और अपने बलका जितना ओजपूर्ण वर्णन किया गया है, वह मूलपाठके पढ़नेहीसे प्रकट हो सकता है। सच तो यह है कि सुन्दरकाण्ड आदिमें लेकर अन्ततक श्रीहनुमान्जीके पराक्रम तथा चातुर्य-वर्णनसे ओतप्रोत है। सुन्दरकाण्डका नाम यदि हनुमान्काण्ड होता तो अनुचित न होता। बोलिये, पवनसुत हनुमान्की जय !

अब महारानी श्रीसीताजीके अति पवित्र अनुपम चरित्रपर किञ्चित् दृष्टिपात कीजिये—संसारके इतिहासमें ऐसा अद्वितीय चरित्र प्राप्त होना असम्भव है। पति-वियोगमें आपकी क्या दशा थी ? जलमें अधिक बौझसे लदी हुई नौकाके सदृश शोकाधिक्यके कारण आपकी दशा सर्वथा दयनीय हो गयी थी। पृथिवीपर गिरे हुए किसी चीन्हा-पुण्य तारेके सदृश आप मैंले-केशोंसे युक्त, शोकसे सन्तप्त तथा कान्तिसे विहीन हो गयी थीं। केवल पतिप्रेमरूपी भूषण ही आपको विभूषित कर रहा था। आपकी ऐसी असहायावस्था जान पड़ती थी मानो अपने कुण्डसे छूटकर बँधी हुई हथिनी सिंहके चङ्गुलमें फँस गयी हो। आपकी प्रभा वर्षाबिन्दुके अवसानमें शारदीय मेघोंसे आवृत चन्द्रकी ज्योत्स्नाके समान छिप रही थी। डबटनादि न जगनेसे, चिर अवाच-वीणाकी भाँति आप मलिन हो रही थीं।



शोकसागरमें निमग्न, भङ्गलग्रहसे अस्तित्व रोहिणीकी तरह आप राक्षसियोंसे घिरी हुई थीं। पुण्यहीन जताकी तरह शरीरमें मैल लपेटे आप शङ्करसे शून्य हो रही थीं। सुन्दर होनेपर भी आप कीचड़में सनी हुई नखिनीकी तरह शोभाहीन हो रही थीं। श्रीसीताजीका शरीर एक जीर्ण और मैले-कुचैले वस्त्रसे ढका हुआ था। वे शृगधौनीकी तरह भवभीत हो चारों ओर देख रही थीं और उनके निःस्वास्थ्यसे मानो आसपासके पक्षवयुक्त वृक्ष भस्म हुए जाते थे। वमाक्षी साक्षात् मूर्ति महारानी सीताको देखकर ऐसा ज्ञात होता था कि मानो शोकसागरसे दुःखरूपी जहर्न उठ रही हों। यह दशा देखकर श्रीहनुमान्जीकी आँखोंसे अभुचारा बहने लगी।

रावणके सामने सीताजीकी दबनीब-दशाका वक्षं और भी हृदयको पिचला देनेवाला है। श्रीसीताजी रावणको देखकर मारे डरके केल्लेके पत्तेकी तरह काँपने लगीं। रावणने देखा कि सीताजी अत्यन्त दुःखी एवं समुद्रकी जहर्नसे कोंका खाती हुई नावकी तरह डगमगा रही हैं। सीताजी उस समय दृक्त्रत-धारण किये—विना किसी विद्वानेके भूमिपर बैठो, वृक्षकी कटी डालके सहज जान पड़ती थीं। सीताके अङ्गोंपर मैल चका हुआ था। उनके अवलोकनसे यह ज्ञात होता था कि वह मनोरथोंके संकल्प-रूपी बोझोंपर सवार हो प्रसिद्ध राजसिंह श्रीरामचन्द्रके पास जा रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीके स्मरणमें विकल होनेके कारण उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। उनकी आँखोंसे अनवरत अभुक्षी धाग प्रवाहित हो रही थी। उनको दुःखरूपी सागरका ओर-छोर नहीं देख पड़ता था। केवल रामका ध्यान लगाये हुए थीं। उनका शरीर इस प्रकार मन्त्रमुग्धा-सर्पिणीकी तरह छुटपटा रहा था मानो रोहिणी भूमकेतुके तापसे सन्नत हो रही हो। पति-वियोग-से व्याकुल महारानी सीता, निन्दित कीर्ति, अनाद्यत विस्वास, चीखबुद्धि, टूटी हुई आशा, घटी हुई आभूषणी, उद्ध्वान की हुई आज्ञा, उल्कापातकी तरह जलती हुई दिशाएँ, नष्ट हुई पूजाकी सामग्री, मसखी हुई कुमुदनी, नष्ट शूराँकी सेना, अन्धकारसे ढकी हुई प्रभा, सूखी हुई नदी, अस्पृश्योंके स्पर्शद्वारा भष्ट हुई यज्ञवेदिका, बुझी हुई आग, राहुप्रसित चन्द्रमण्डलसे युक्त पूर्णमासीकी रात, टूटी हुई पंखविधियोंका कमल, भयभीत पक्षी, हाथीकी सूँढ़से आलोकित कमलयुक्त पुष्करिणी तथा टूटे हुए बाँधकी नदीके तुल्य हो रही थीं। उपवास, शोक, चिन्ता

और भयके कारण सीताजीका शरीर बिल्कुल दुर्बल और नीच हो रहा था। वह केवल जलमात्र पीकर शरीरको तथा रही थीं।

यह पाषाण-हृदयको भी द्रवित करनेवाला चित्र कितना विषय है—उपमाओंका तो समुद्र उमड़ रहा है। धन्य हैं माता सीता और धन्य हैं कवि बालमीकि जिनकी लेखनी इस पुष्प-चरित्रका चित्रण कर पुष्पमयी हो गयी।

अब पातिव्रतका एक अनुपम चित्र देखिये—रावण प्रलोभनोंका एक विशाल पर्वत महारानीके सामने खड़ा कर देता है। उन्नीसवाँ सर्ग मानो रावणके प्रलोभनोंका सागर है। एक-एक प्रलोभन साधारण स्त्रीको लुभानेके लिये यथेष्ट हैं, यहाँ तो प्रलोभनोंका समुद्र बह रहा है। हनुमान्जीने तो केवल झुलांग मारकर सौ बोजन सागरको पार कर दिया किन्तु श्रीसीता-महारानी तो अनन्त बोजनों-के प्रलोभन-सागरको भी अपनी दैवी-शक्तिसे उल्टहन करनेमें सफल हुईं, यह सबसे विचित्र बात है। आप रावणके प्रलोभनोंका कैसा हितकर उत्तर देती हैं—

तिनकेकी ओट करके धर्मके बलपर मुस्कराती हुई सीता रावणकी उपेक्षा करके निर्भयता और सरलताके साथ अपने पातिव्रतका बल दिखला रही हैं—“अरे दुष्ट, कहीं पापिष्ट भी सिद्धि प्राप्त कर सकता है? मैं पतिव्रता हूँ, उच्छकुलकी स्त्री हूँ, सती हूँ, तेरी स्त्री नहीं हो सकती, तुम्हें सद्धर्म और सद्धर्मके अनुकूल आचरण करना चाहिये। जिसप्रकार तुम्हें अपनी प्रजाकी रक्षा करना उचित है उसी प्रकार परायी-स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। अपनी ही स्त्रियोंमें रमण कर! देख यदि अपनी स्त्रियोंसे सन्तुष्ट नहीं हुआ तो परायी स्त्रियाँ तुम्हें नष्ट कर देंगी। अरे रावण! क्या लङ्का में सज्जन नहीं रहते या नृ सज्जनोंका सङ्ग ही नहीं करता। यदि नृ मेरा उपदेश न सुनेगा और अनीतिपूर्ण आचरण करेगा तो तेरी रत्नोंसे पूर्ण लङ्का नष्ट-भष्ट हो जायगी। हे रावण! मैं तेरे ऐश्वर्य या धनके लोभमें नहीं फँस सकती। मैं सूर्यकी प्रभाकी भाँति अपने स्वामीसे अलग नहीं हो सकती। क्या लोकनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाका आश्रय लेनेवाली मैं किसी अन्य पुरुषकी भुजाका आश्रय ले सकती हूँ? जिसप्रकार ब्रह्मविद्या ब्रह्ममें स्थित ब्राह्मणहीके योग्य हो सकती है, उसीप्रकार मैं श्रीरामकी ही पत्नी हो सकती हूँ। रावण! यदि नृ अपनी भलाई चाहता है तो मुझे श्रीरामचन्द्रजीको विनयपूर्वक

सौंप दे। यदि तू लङ्काकी रक्षा करना तथा मृत्युसे बचना चाहता है तो श्रीरामचन्द्रजीसे मैत्री कर ले। देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा और शरणागतवत्सलके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनसे समायाचना कर, मुझे दे देनेसे तेरा कल्याण हो सकता है, अन्यथा तू निश्चय मारा जायगा, क्योंकि तुझ-जैसे पापीको श्रीरामचन्द्रजी जीवित नहीं छोड़ सकते।'।

इस उत्तरका एक-एक शब्द पातिव्रतके बल, साहस, सौन्दर्य तथा माता सीताके जमा-गुणका अवलम्ब उदाहरण है। उपर्युक्त चरित्रके पठनसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानो महारानी-सीता अपने अगाध जमा-सागरमें रावणके पाप-पर्जनको डुबो देना चाहती हैं। अपने समस्त प्रयासमें विफल होनेके कारण रावण निरुत्तर होकर वापस चला गया।

अब मैं इस काण्डके एक रहस्यमय तथ्यको उपस्थित करता हूँ, जिसका श्रीजानकीजीसे विशेष सम्बन्ध है। श्रीसीताजी जगजननी लक्ष्मीजीका अवतार मानी गयी हैं। माताकी कृपा अपने हुए बालकपर भी होती है। रावणने माताको कष्ट देनेमें कुछ भी उठा नहीं रक्खा था। सीताजीके तेजसे डरकर और शापवश उसमें बलात्कार करनेका सामर्थ्य नहीं था। इसीलिये वह समझा-झुझाकर सीताको अपने प्रलोभनोंमें फँसाना चाहता था। इतने महान् हुएको भी क्यामयी-माता श्रीसीताजी उसी शरणागत-मन्त्रका उपदेश करती हैं जं श्रीबाल्मीकीय रामायणका रहस्य है। वैष्णवाचार्योंका कथन है कि शरणागत-मन्त्रकी व्याख्या ही श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण है। श्रीजानकीजीका यही उपदेश आगे चलकर लङ्काकाण्डमें श्रीरामचन्द्रजीके उपदेशसे सर्वथा मिलता है। माता कहती हैं—

विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ॥

तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि।

प्रसावस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥

(वा० ५। २१। १९-२०)

देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा और शरणागत-वत्सल हैं। यदि तुझे अपने प्राणोंका मोह है तो उनसे मिलकर उन्हें मना ले। इसी शरणागतिपर भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण-भगवान् ने जोर दिया है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

२५

‘हे पार्थ ! धर्म-अधर्मको छोड़ मेरी शरणमें आओ। मैं सब पापोंसे तुझ दूँगा। इस विषयमें शोक मत करो।’

यही बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी विभीषणके शरणमें आनेके समय कही थी—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।

अमयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥

एक बार भी प्रपन्न होकर जो यह कहता है—‘मैं आपका हूँ’, उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है।’

माता जानकीने इसी मन्त्रका उपदेश रावणको दिया था, किन्तु उसने इससे लाभ नहीं उठाया। विभीषणजीने इस उपदेशका महत्त्व जाना और परम-लाभ प्राप्त किया। रावणके बहाने माताका यह उपदेश सबके लिये है।

रावणकी बातों, जानकीके उपदेश एवं समापर ध्यान दीजिये। महारानी सीता कहती हैं कि, ‘रामसे मित्रता कर ले, वह शरणागत-वत्सल हैं, तेरे अपराधोंको क्षमा कर दूँगे, इसमें तेरा कल्याण होगा।’ अन्य है जगजननी माता सीते ! यह वचन आपहीके योग्य हैं। यही श्रीसुन्दरकाण्डका बीजमन्त्र है। दुखी संसारी-जीवोंके लिये यह अमोघ उपदेश है। अतएव प्रत्येक कल्याणकाभीको इसका मर्म समझकर अनन्यभावसे भगवान् की शरणमें अत्यन्त शीघ्र प्राप्त होना चाहिये। ‘शुभस्य शीघ्रम्।’

## रामायणमें ऐतिहासिक तथ्य

रामायण और महाभारतके श्लोकोंमें हम बिजयी पुरुषोंके द्वारा भारत महादेशके प्राचीन उपनिवेशोंसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतसे ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त करते हैं। × × × इनमें रचनाशैलीकी यथार्थता, भावप्रकाशनकी मनोहरता तथा वर्णनके प्रसारसे प्रत्येक मनुष्य यदि कल्पनाके पदोंमें छिपे हुए संस्कृतके श्लोकोंको पढ़नेका कष्ट उठावेगा तो तत्कालीन भारतीय इतिहासके तात्त्विक स्वरूपका और तद्वत राजनीतिक क्रान्तिकी यथा-सम्भव गन्ध और गम्भीर अवस्थाका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

डा० एन० डब्ल्यू० वेल्ही, सी० एस० आई०,

## श्रीसीताहरण-रहस्य

( लेखक—श्रीजनकसुताशरण श्रीतलासहायजी सावंत, बी०ए०, एल०एल० बी०, सम्पादक 'मानस-पीयूष' )



गवान्के चरित्रोंके रहस्य कौन जान सकता है ? वही कुछ जान सकता है जिसे वे कृपा करके जना दें—'सो जानै जेहि देहु जनार्ण' नहीं तो किसीका भी सामर्थ्य नहीं जो उसे जान ले। जान ले तो फिर वह रहस्य ही क्या हुआ ? श्रीसीताजी आदिराजि हैं, श्रीरामजी—ले उनका वियोग कभी किसी कालमें नहीं है, दोनों अभिन्न हैं, एक ही होते हुए भक्तोंके लिये युगलरूपसे विराजमान हैं—'गिरा अरध जल नीचि सम देखियत (काहियत) भिन्न न भिन्न।' आधुन्यमें पति-पत्नीभावसे श्रीरामजीको वे अतिशय प्रिय हैं। ऐसी परम-सती-शिरोमणिके हरणमें क्या रहस्य है, यह तो बथार्थ उस नरनायकके करनेवाले ही जानें। देखिये, जिनके एक सीकके बाणसे पीछा किया जानेपर इन्द्रपुत्र जयन्त त्रैलोक्यमें भ्रष्टा, विषयु, महेश, इन्द्र आदि किसीकी भी शरणा न पा सका, क्या वे रावणको घर बैठे नहीं मार सकते थे ? अवश्य मार सकते थे। पर ऐसा होता तो आज हमको उनके चरित्र गान करके भवपार होनेका अवसर कहाँसे मिलता ? उनके दिव्य गुणों—कल्याण, भक्तवत्सलता इत्यादिको हम कैसे विरवासपूर्वक स्मरण करके अपनेको कृतार्थ समझ सकते ?

स्मरण रहे कि यहाँ जो कुछ लिखा जा रहा है सो प्रधानतया धार्मिक वा भक्तिभावसे ही लिखा जा रहा है।

वह चरित जानबूझकर किया गया है। गौस्वामीजीने तो इसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है और वाल्मीकिरामायणसे भी स्पष्ट है कि श्रीराम-जन्मण दोनोंने जान लिया था कि यह कपट-शृंग मारीच ही है—

तत्र रघुपति जानत सब कारण । उठ हरषि सुर-काज सँवारन ॥

यदि जान-बूझकर ऐसा न हुआ होता तो क्या रावण परम-सती शिरोमणियोंकी भी मिरताज श्रीवैदेहीजीके कभी हाथ लगा सकता था ? अनुसूयाजीसे त्रिदेवकी न खली, तब इनके आगे रावणकी क्या खलती ? वा०रा० ५ । २२ में श्रीजानकीजीने रावणसे यह स्पष्ट कहा है कि तुम्हें भस्म कर देनेकी शक्ति युक्तमें है तो भी मैं तुम्हें भस्म नहीं करती,

क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं है और ऐसा करनेसे मेरी तपस्या भङ्ग होगी। यथा—

भसंदेशानु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।

न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्माहेतेजसा ॥ २० ॥

नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।

विधित्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

यह सीताहरण-चरित्र ही हमारी समझमें बाळ्मीकि रामायणमें दिये हुए परधाम-यात्राचरितका बीज है। इसीके बलपर ११ हजार वर्ष राज्यकरके अन्तमें श्रीसीताजीके त्यागकी जीलाकरके अवधपुरवासियोंपर अपना परम प्रियत्व दिखाया है—'अति प्रिय मोहि इहाँ' वा०रा० ११ 'ममता जिनहपर प्रभुहि न थोरी' यह जीला नहीं तो और क्या है कि ११००० वर्ष तक कोई चर्चा नहीं और जब परधाम-यात्राकी इच्छा हुई तब एक धोबीद्वारा उनके विषयमें अपवाद सुना जाता है और उसीपर उनका त्याग किया जाता है।

हमारे परमपूज्य महाराज श्री १०८ पं० रामबल्लभ-शरणजी (जानकीघाट, श्रीअयोध्याजी) ने इस विषयमें दो रहस्य बताये थे जो यहाँ लिखे जाते हैं—

१—रावणने देव, यक्ष, गन्धर्वादिकी कन्याओंको जबरदस्ती ला-लाकर उनसे विवाह किया। किन्तु ही देवियाँ उनसे यहाँ कैद थीं—अपने-अपने घरोंकी यह शोचनीय दशा देवताओंने आकर प्रभुने बार बार कही। इन देवियोंकी दारुण विपत्ति सुनकर करुणावश महारानीजीने उनके सन्तोष एवं सान्त्वनाके लिये स्वयं रावणके यहाँ कैद होना स्वीकार किया।

२—मुत्तीक्याजीके आश्रमसे चलते समय महारानीजीने प्रभुसे कहा था कि आपने दण्डकारण्यके अधियोंसे उनकी रक्षाके लिये निशिचर-वधकी प्रतिज्ञा की है और अब दण्डक वनको चल रहे हैं, मुझे वहाँका जाना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि बिना अपराधके दण्डकारण्यप्रति राक्षसोंका मारना योग्य नहीं, यह पाप है। बिना अपराधके मारनेवाले कीरकी लोकमें प्रशंसा नहीं होती। यथा—

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् ।  
ऋषीणां रक्षणार्थाय वचः संयति रक्षसाम् ॥  
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् ।  
अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न कामये ॥

( बा० ३।९।१०, २५ )

यद्यपि प्रभुने उस समय बही उत्तर दिया कि मुझे सत्य सदा प्रिय है, पर मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका उसे अब मैं नहीं झोंक सकता । मैं अबरव राक्षसोंका वच करके मुनियोंको अभय करूँगा । तथापि सीताहरणमें यह रहस्य कहा जा सकता है कि रावणको सापराध ठहरानेके लिये वह चरित हुआ ।

इस तरह लोक-वेद दोनोंसे उनका यह कार्य (रावण-वच) अनिन्य वा निर्दोष हो गया और हमसे प्रियाका भी मान्य रहा ।

ये भाव तो ऐश्वर्य और भक्तिभावसे हुए । अब एक और भाव जो एक पतिव्रताशिरोमणि ( पं० श्रीराजारामकी धर्मपत्नी ) ने सीताहरणके बारेमें कहा है उसे उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

पतिपर आयमुजनि कर्तु अस परिणाम विचार ।

पतिदासी मृगद्वाराहित सिय दुख सही अपार ॥

अर्थात् यह बात पतिव्रताके धर्मके प्रतिफल है कि वह पतिको आज्ञा दे । श्रीपतिदासीजी पतिव्रताओंको सीता-हरणका उदाहरण देकर उपदेश देती हैं कि पतिको कभी भूलकर आज्ञा न देना (स्वामीको आज्ञा देना बड़ा पाप है) देखो, सीताजीने अपने पतिको आज्ञा दी, हठ किया कि मृगको जैसे बने लाओ, उसीका यह फल उनको भोगना पड़ा कि जो उनका हरण हुआ और उनको कितना कष्ट उठाना पड़ा । इस चरित्रसे स्त्रियोंको यह उपदेश हुआ ।

यही भाव स्वयं श्रीसीताजीके इन शब्दोंसे ध्वनित हो रहा है—

कामवृत्तामिदं रौद्रं लीणामसदृशं मतम् ।

बपुषा त्वस्य सत्त्वस्य विस्मया जनितो मम ॥

( बा० ३।४२।२२ )

अर्थात् अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये जो मैं आपसे यह कह रही हूँ, वह कठोर है और स्त्रियोंके लिये अनुचित है, यह मैं जानती हूँ तथापि इस मृगको देखकर मुझे बड़ा विषम उत्पन्न हो गया है, अतः आप इसे ले आवें—

आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति ॥

और भी अनेक भाव लोगोंने कहे हैं जिनमेंसे दो एक मानसरीयूषमें उद्धृत किये गये हैं । यहाँ इस खेलमें उनके लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती ।

भुशुचिडजी, शिवजी आदिने मायाका हरण—माया-सीताका हरण—होना स्पष्ट कहा है । यही बात गोस्वामीजीने भी स्पष्ट शब्दोंमें कही है—

‘पुनि मायासीता कर हरना ॥’

‘निज प्रतिबिम्ब राषि तहँ सीता ॥’

श्रीवैजनाथजी लिखते हैं कि ऋषिकन्या वेदवतीने प्रभुकी प्राप्तिके लिये जगत्तप किया । उसको देख रावणने जबरदस्ती उसे पकड़कर लह्ना ले जाना चाहा । उस समय उसने शाप दिया कि तेरा नाश मेरे द्वारा होगा । यह कहकर उसने अपना वह शरीर छोड़ दिया । बही यहाँ सीताजीका प्रतिबिम्ब है । उसीमें सीताजीका आवेश हुआ । वेदवतीकी कथा वाल्मीकीय उत्तरकाण्डमें है ।

वाल्म्वमें हमारे मित्र प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौड़ने जैसा कहा है वैसा ही है कि ‘मायामानुषरूपिणां’ दोनों भाई, मायाकी सीता, मायामृग, मायाका संन्यासी, मायाका रथ, मायाका विलाप और विरह-कथा सभी कुछ दोनों ओरसे मायाका खेल था ।

इसमें महामाया और ईश्वरी-मायाके साथ राक्षसी-मायाकी लीला हो रही है, ईश्वरी अथवा दैवीमाया तामसी किंवा राक्षसी-मायासे खेल रही है । मूर्ख राक्षस खूश है कि मेरी माया चल गयी और इन मनुष्योंको मैंने मोहित करके खी-हरण कर लिया; परन्तु यह नहीं जानता कि मैं स्वयं ईश्वरी-माया जालमें बेतरह फँस गया हूँ और मेरी बुद्धिका हरण कबका हो चुका है । जब लक्ष्मणजीको ही परतमकी मायाका पता नहीं है तब देव-दनुजादिको तो बात ही क्या है—

‘सिव विरंचि कहँ मोहई को है बपुरा आन ॥’

अधिक लिखनेका समय नहीं है, दूसरे जो लिखा गया वह प्रायः सभी मानसरीयूषमें निकलेगा ही, इससे उसीको यहाँ भी भेजना उचित न जानकर नहीं लिखा गया । हाँ, तीन-चार दोहे श्रीपतिदासीजीके (कैकेयीजी, शूर्पणखा आदिके चरित्रोंसे जो उपदेश उन्होंने निकाले हैं उनको) उद्धृत करता हूँ—

कैकेयीजी—

दासी पति ते हठ किये कैकेयहि दुखभार ।

विधवापन सुतनिमुखता अपयश जगत अपार ॥

सतीजी—

सती न मानी पतिवचन राम परीक्षा लीन्ह ।  
दासी सो अपराधबस, शम्भु ताहि तजि दीन्ह ॥  
दासी पति-आदर बिना कहूँ न तियको मान ।  
नैहगहूँ निदरी गई दक्षसुता जग जान ॥

अइल्या—

दासी सब निदराहि सदा पतिबन्धक अनुमानि ।  
रामहुँ परसेउ पाँव ते गौतम-तिय जिय जानि ॥  
शूर्यखला—  
सूपनखा गइ रामपहँ तजि नैघम्य बिचार ।  
दासी यांत नासिका कटि राजकुमार ॥

## रामायण-कालीन शपथविधि

(लेखक—पं० मानदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ)



रतवर्षकी अन्य रीति-नीतिकी भाँति इसकी शपथविधि भी विस्तारित होगयी है। आजकल जिस प्रकार शपथ ली जाती है अथवा आक्रोश किया जाता है वह सर्वथा हेब है। वैदिक-कालीन शपथविधिकी बात जाने दीजिये, उस समय शपथ लेनेका प्रकार बहुत ही सुन्दर था किन्तु रामायण अथवा महाभारतके कालतक वह सुन्दर शपथविधि अधिकतररूपेण चली आती रही। जिस-जिस प्रकार भारतवर्षके साथ परचक्रका संसर्ग होता गया, उस-उस प्रकार वैदिक-शपथविधिमें, आर्य-शपथविधिमें परिवर्तन होता गया और आजकलकी शपथ लेनेकी पद्धति तो सर्वथा हमारे अधःपतनकी द्योतक है। जब समाजके ऊपर मर्यादाप्रवर्तक और निग्रहानुग्रहप्रवर्तक व्यवहारीयका यथाविधि सञ्चालक राजा नहीं रहता, तब समाजके बन्धन ढीले होकर उसकी रीति-नीति, आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चालकी पद्धतिमें अवश्य ही परिवर्तन होजाता है, यह अपरिहार्य है।

शपथ क्यों ली जाती है ? इसलिये कि हमारे ऊपर शंका करनेवाले, हमको सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाले व्यक्ति अथवा समुदायको यह विरवास हो जाय कि हमने अनुचित, असभ्य, पापमय, सदाचारविरुद्ध, कुलमर्यादाके प्रतिकूल वह विशेष कार्य, अथवा कोई कार्य नहीं किया है जिससे स्वकुल, समाज और अपने बृद्धमण्डलकी दृष्टिमें पतित होना पड़े, अथवा प्रायश्चित्ती होना पड़े।

शपथ भी पवित्र-से-पवित्र, प्रिय-से-प्रिय वस्तु, सम्बन्धी, इष्टमित्र अथवा धर्म-कर्म या पवित्र माननीय ग्रन्थका नाम लेकर की जानेकी प्रथा है। यह प्रथा सब जातियोंमें, सब समाजोंमें, सब सम्प्रदायोंमें, सब राष्ट्रोंमें और सब देशोंमें अनन्तकालसे चली आ रही है।

भरत जब कौसल्याके पास गया और उसको समझाना ही चाहता था—अभी प्रणाम करके कहनेहीवाला था कि रामका वनवास उसकी सम्मतिसे नहीं हुआ, इतनेमेंही कौसल्या माता स्वयं बोल उठीं और कस्यापूर्ण-दृष्टिसे देखकर भरतको कहा—

इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम् ।  
सम्प्राप्तं वत कैकेय्या गीघं क्रूरेण कर्मणा ॥  
प्रस्थाप्य चारवगनं पुत्रं मे वनवामिनम् ।  
कैकेयी के गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥  
अत्र मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति ।  
हिरण्यनाभो यन्नाम्ते गुनो मे मुमहायशाः ॥  
अथवा स्वयमेवाहं ।

(गी० २।७५।१०-१३)

‘लो भरत, तुम राज-पाट चाहने थे, सो तुम्हारे लिये कैकेयीने निककण्टक राज्य छे लिया, और मेरे रामको जटा-वल्कलधारी बनाकर जंगल भेज दिया। न जाने उसने इसमें क्या भला देखा ? उसे कहो कि अब मुझे भी शीघ्र वहीं भिजवा दे, जहाँ मेरा यशस्वी राम चला गया है या जाकर ठहरा हुआ है। रहने दो, मैं स्वयं ही सुमित्राको साथ लेकर चली जाऊँगी—

लो भाई, संभालो राज-पाट, उड़ाओ मौज, संभालो हाथी-घोड़े-रथ, घन-धान्यके कोठे, अब तो राजी हो ?’

इसप्रकारके अर्ममेदी वाक्योंको सुनकर निर्दोष भरतका हृदय व्याकुल हो उठा और शपथ लेकर विश्वास दिला देनेके अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय नहीं रह गया।

उसने माता कौसल्याके चरण पकड़कर, गिड़गिड़ाकर कहा, माता मुझ निर्दोषको क्यों कोस रही हो ? मुझे तो

खबर भी नहीं कि यह सब कायद कैसे हुआ। तुम जानती ही हो कि मैं रामसे कितना प्यार करता हूँ। जिसकी सम्मतिसे राम वनको गये, उसका शास्त्राध्ययन निष्फल हो जाय, वह पापियोंका नौकर बन जाय, उसको वह पाप लगे जो कि किसीकी सूर्यकी ओर मुखकर मूत्रोत्सर्जन या मल्लोत्सर्जन करनेसे लगता है, अथवा गौको लात मारकर उठानेमें लगता है। नौकरसे बड़ा माकेका काम कराके जो उसको यथारोति पारितोषिक नहीं देता, उसको दान-मानसे सन्तुष्ट नहीं करता, उसके स्वामीको जो पाप लगता है, जिसकी रायसे राम वनको गये, उसको वह पाप लगे। यज्ञमें तपस्वी-ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर जो मुकर जाता है, नहीं देता, उसको जो पाप लगता है वह पाप जिसकी सलाहसे राम वनको गये, उसको लगे। रथचक्रमें उतरकर—देन बुद्ध-प्रसङ्गपर, जो अपना कर्तव्य पालन न करे उसको जो पाप लगता है, वह पाप जिसकी रायसे राम वनको गये उसको लगे। जिस दुरात्माने ऐसी सलाह दी हो, उसका पढ़ा-पढ़ाया वेद-शास्त्रका ज्ञान नष्ट हो जाय। आश्रितोंको छाड़कर, अकेले ही स्वादु-पशार्य खानेबाले निवृत्त पुरुषको जो पाप लगता है, गुल्जनोंके निरस्कारमें जो पाप होता है, वह पाप जिस चायबालने यह कार्य करवाया हो उसको लगे। गौको लात मारने या पैरसे छूनेमें, गुरु-निन्दामें, मित्र-द्रोहमें, विरवान-धानमें, कृतव्रतामें जो पाप होता है, वह सब उस दुरात्माको लगे जिसकी रायसे यह काम हुआ। उस दुरात्माको अनुकूल सहधर्मिणी न मिले, उसके अपत्य मर जाय, उसकी धर्म-क्रिया नष्ट हो जाय, वह अनपत्य ही रह जाय, स्वल्पायु होकर मर जाय, जिस दुष्टने ऐसा करवाया हो। वह पापी पागल होकर, चिथड़े पहनकर, दर-दर माँगता फिरे, जिसने यह करवाया हो। शराबके पीनेमें, जूएके खेलनेमें जो पाप है, वह सब उसको लगे, जिसने यह करवाया हो। उस दुष्टका मन धर्ममें न लगे, उसका दान अपात्रमें जाय, उसका हकूदा किया-कराया धन लुटेरोंके हाथ लग जाय जिस दुरात्माने यह सब कुछ करवाया हो। दोनों सन्ध्याओंके समयमें जो सोता रहता है उसका जो पाप है वह उसको लगे जिसने यह करवाया। सपुरुषोंको जो लोक-लोकान्तर मिलते हैं, जो सद्गति होती है, उनको जो कीर्ति मिलती है—वह सब कुछ उसको न मिले जिसके कहनेसे, इशारेसे, मशविरसे यह सब कुछ हुआ है। वह

मातृ-शुभ्रपासे वञ्चित होकर बृथा अन्योकी सेवामें तत्पर रहे, वह स्वल्प-धन और बहुत मृत्योंवाला, ज्वरादि-रोगयुक्त, सदा क्रेशसन्तप्त होवे जिस दुरात्माने यह सब कुछ किया है। जिस पापीने यह करवाया है, वह कपटी-छुली, चुगलखोर, दुर्भावयुक्त पुरुष राजदण्डके भयसे इधर-उधर मारा-मारा फिरे। शत्रुस्नाता भार्याके पास न जानेसे जो पाप होता है वह पाप उस पापीके पल्ले पड़े जिसने यह किया-कराया। स्त्री-वेषसे सन्तानहीन हुए उस पुरुषकी सन्तान-परम्परा नष्ट होकर कुल नष्ट हो जाय अथवा उसके सिरपर वह पाप चढ़े जो कि अनुकूला भार्याको छोड़नेसे लगता है। ब्राह्मणकी पूजामें बाधा डालनेसे जो पाप होता है वह उसको लगे जिसकी रायसे राम वन भेजे गये हों। बाल-वत्स (बच्चे) के हिस्सेका दूध निकालकर स्वयं पीनेमें जो पाप लगता है वह उसको लगे जिस पापीने यह सब कुछ किया कराया। अपनी सहधर्मिणीको छोड़कर जो पर-द्वारापर कुट्टिरखता है, उससे संसर्ग रखता है, जिस व्यक्तिके कारण राम वन गये हैं, उसको वह पाप लगे। पीनेके पानीको गदला करनेवालेको, विप देनेवालेको, प्यासेको पानी न देकर उसको दिक् करनेवालेको जो पाप लगता है वह उसको लगे जिसने यह किया-करवाया। एक ही परात्पर-देवताको पृथक्-पृथक् मानकर उनपर बृथा वाद-विवाद करनेवालोंकी बातोंको जो चुपचाप सुनता है, उसको जो पाप लगता है, वह सब, यदि राम मेरी करनीसे वन गये हों तो मुझको लगे।'

इस प्रकार शपथ लेता हुआ, आक्रोश करता हुआ, शोक-विह्वल भरत भूमिपर गिर पड़ा। तब कौसल्या-माताने 'पति-पुत्र-विहीन कौमल्याने पुचकारकर कहा—'प्रिय भरत ! एक तो वह दुःख था ही, अब तेरी इन शपथोंसे और भी बढ़ गया। यह सब सुनकर मेरे प्राण छुट रहे हैं। तुम बड़भागी हो कि तुमने धर्म नहीं छोड़ा। तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर अच्छे लोकोंको, अच्छी गतिकी प्राप्ति होओगे' ऐसा कह भरतको गोदमें बिठा, उसको पुचकारकर माता कौसल्या फूट-फूटकर रोने लगीं।

रामायण-कालीन समाज-स्थिति, लोकस्थिति कितनी उच्छ थी ! हमारी पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृभक्ति, पतिभक्ति, पतिव्रत-धर्ममें आस्था आदि संगठित सभ्यताकी तुलनामें भला कोई देश, कोई राष्ट्र पहुँच सकता है ? आकाशवाणी हो रही है—'नहीं ! नहीं !!'

## रामायण-कालमें परदा-प्रथा

(लेखक—पं० श्रीद्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी)



निहासिक दृष्टिसे संस्कृत-साहित्यके दो ग्रन्थोंकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, क्योंकि इन दोनों ग्रन्थोंकी रचना प्राचीन मानी जाती है। भारतवासी ही नहीं, विदेशी विद्वानोंने भी श्रीमद्भारतीय-रामायण और कृष्णार्जुन वेदव्यासप्रचित महाभारतको प्राचीन रचनाएँ माना है। ये दोनों ही ग्रन्थ सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टिसे बड़ा महत्त्व रखते हैं। प्राचीन-कालीन आर्य-जातिकी सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितिपर ये दोनों ग्रन्थ अच्छा प्रकाश डालते हैं। रामायणकाल और महाभारतकालमें आर्य-जाति परदेको कितना महत्त्व देती थी, और इस प्रथाको राज्यकी कहाँतक अनुमति प्राप्त थी, इसका दिग्दर्शन कौटिल्य-अर्थशास्त्र देखनेसे अवगत हो जाता है। इन लेखमें हमें महाभारत और कौटिल्य-अर्थशास्त्रका उल्लेखमात्र कर देना है, किन्तु हमें विशदरूपसे तो आज रामायणकी ही चर्चा करनी है। क्योंकि देखा जाता है, कि परदाके विरोधी लोग विशेषकर रामायण और महाभारतकी ही दुहाई दिया करते हैं, और इन्हींके नामपर आर्य-जातिकी प्राचीन परदा-प्रथाको उठाकर वर्तमान नारी-समाजको बेपर्दे कर देना चाहते हैं। यद्यपि ऐसे लोगोंका आन्तरिक अभिप्राय तो आर्य-जानिको पाश्चात्य मभ्यताके साँचेमें डालना है, तथापि वे मुँहसे ऐसा नहीं कहते, किन्तु एतन्मन्थनी उनका अतिवाद और साहस इस बातका ही द्योतक है। किन्तु ऐसे लोगोंका प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर परदेके विरुद्ध जहाजका कण्टा खड़ा करना उनका दुस्साहस मात्र है। यदि ऐसे लोग प्राचीन ग्रन्थोंका अध्ययन, इस बानकी जिज्ञासाके बराबरी हो करें तो उन्हें पता लग जायगा कि परदेकी जड़ सुदीर्घ-कालके गर्भमें पैठी हुई है कहीं तो यहाँ तक कह सकते हैं कि परदा-प्रथा सनातन है, वैसे ही सनातन है—जैसे हिन्दू-समाज। रामायणकालमें तो आर्यजानिमें परदेकी प्रथा पूर्वरीत्या प्रचलित थी, तथा अन्यान्य धार्मिक एवं सामाजिक नियमोंकी तरह इसका पालन भी अनिवार्य नियमोंके अन्तर्गत था।

जिन भगवती सीताकी बे-पर्वाईकी बात लोग प्रायः कहा करते हैं, उन सीताके परदेके बारेमें आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी उक्तिबोपर यदि पक्षपात छोड़कर विचार

किया जाय, तो उस कालमें परदेकी प्रथा पूर्णरूपसे प्रचलित होनेमें तिलभर भी सन्देह नहीं रह जाता। जिस समय श्रीराम, लक्ष्मण और सती सीता खुले रथपर सवार हो वनके लिये राजभवनसे निकले, उस समय अयोध्याकी प्रजाने कातरकण्ठसे कहा था—

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतगकाशगिरिषि।

तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गता जनाः॥

(वा० रा० २।३३।८)

जिन सीताको आकाशचारी प्राणी भी नहीं देख सकते थे, उसको आज सर्वसाधारणजन राजमार्ग (ग्राम मण्डक) पर जाते हुए देख रहे हैं। फिर जब रावणके मारे जानेके बाद श्रीरामचन्द्रने विभीषणको आज्ञा दी कि यदि सीता मुझे देखनेको लालायित हो तो उम्मे अभी मेरे पास लाओ। इसपर उस समय जो घटना घटी, उसका वर्णन आदिकविने इसप्रकार किया है—

तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास सर्वतः॥

कञ्चुकेर्णाविणमन्त्र वेत्रसंस्तरपाणयः॥

उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तादपरिचक्रमुः॥

ऋक्षाणां वानराणां च राज्ञसानां च सर्वशः॥

वृन्दान्युत्सारमाणानि दूरमुत्ससृजुस्तदा॥

तेषामुत्सारमाणानां सर्वेषां ध्वनिरुत्थितः॥

वायुनाद्धतमानस्य सागरस्येव निःस्वनः॥

(वा० रा० ६।११४।२०-२३)

जब विभीषणको भगवान्ने सीताको खानेकी आज्ञा दी, तब वह सीताजीको 'आरोप्य शिविकां दीप्तां परार्ण्याम्बरमवृताम्।' (वा० रा० ६।११४।२५) एक चमचमानी पालकीमें, जिसपर बड़ा बढ़िया उधार (परदा) पड़ा हुआ था, सवार कराया। उस पालकीके आगे जामा-पगड़ी पहने, हाथोंमें बेत लिये हुए खोजे थे। वे चारों ओर घूम-घूमकर सबको इताने लगे। तब रीछों, वानरों और राजसोंके समस्त दल वहाँसे हटायें गये और वे सब दूर जाकर खड़े हुए। उन सबको हटाते समय बैसा ही हो-इन्हा हुआ जैसा कि बालुके बेगसे उत्थित समुद्रके शब्दसे होता है।

उन समस्त रीछों, वानरों और राजसोंका बलपूर्वक हटाया जाना देख, और उन सबको कुछ देख, श्रीरामचन्द्र-





राम-शबरी :

कन्द-मूल फल सरस अति दिये राम कहँ आनि ।

प्रेमसहित प्रभु ग्वाथहु वारहिवार बखानि ॥





के मनमें उनके प्रति क्याका सखार हुआ। विभीषणने यह काम श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लिये बिना ही किया था, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको यह पसंद न आया और इसीलिये उन्होंने क्रोधमें भरकर, उलझना देते हुए विभीषणको बर्जा और कहा—

किमर्थं मामनादृत्य क्रियतेऽयं त्वया जनः ।  
निवर्तयैनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥  
न्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।  
न व्रतौ नो विवाहे च दर्शनं दुष्पति स्त्रियाः ॥  
शेषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ।  
दर्शनेऽस्या न दोषः स्यान्मत्समीपे विशेषतः ॥  
तदानय समीपं मे श्रीममेनां विभीषणः ।  
रामस्योपानयत्सतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥

(वा० रा० ६।११४)

अर्थात् तुम मेरा अनादरकर मेरे जनोंको क्यों सता रहे हो ? अपने लोगोंको मना कर दो, कि वे मेरे जनोंको न सतायें, क्योंकि वे सब मेरे स्वजन हैं अर्थात् घरके लोगों जैसे हैं। इष्टजनोंका बियोग होनेपर, राजविप्लवके समय, समर-भूमिमें, स्वयंवरमें, यज्ञशालामें, विवाहमण्डपमें स्त्रियोंका जनसमाजके सामने बिना परदा या बिना घूँघट काढ़े आना दोषावह नहीं है। अर्थात् इन खास अवसरोंको छोड़ अन्य दशाओंमें स्त्रियोंका जनसमाजके सामने आना दोषावह है। इस समय सीता वही विपत्तिमें पड़ी हैं और यह युद्धकाल है। अतः ऐसे समय और विशेषकर मेरे सामने उसका बिना परदे आना-दोषावह नहीं है। अतएव हे विभीषण ! तुम शीघ्र सीताको (खुले मुँह) मेरे पास ले आओ। श्रीरामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुन विभीषण प्राचीन प्रथा भङ्ग हाते देख, साँच-विचारमें पड़ गये, किन्तु श्रीरामजीका आज्ञा टाल भी नहीं सकते थे। अतः उसी तरह सीताको श्रीरामजीके पास ले गये।

इस प्रसङ्गमें एक बात और है, वह यह कि श्रीरामचन्द्रजी यह जानते थे कि केवल परदेसे ही स्त्रियोंका चरित्र ठीक रहेगा, ऐसी बात नहीं है, अतः उनकी आँर फिल भी ध्यान रखा जाता था। इसीसे श्रीरामचन्द्रजीने कहा था—

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्त्रियाः ।

नेदशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥

(वा० रा० ६।११४।२७)

अर्थात् स्त्रियोंके लिये न घर, न चादरका घूँघट, न कनात आदिकी पहारदीवारी, न चिक आदिका परदा और न इस प्रकारका राजसत्कार ही आव करनेवाला है (जैसा कि तुम कर रहे हो)।

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीने उस समय शास्त्रीय कारण दिखाता सीताको सबके सामने सुष्ठुमस्तुष्टा आनेकी आज्ञा दी तथापि श्रीरामचन्द्रजीका यह आचरण लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान्को अप्रिय दुःखदायी हुआ। आदिकविने लिखा है—

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमांश्च हवद्गमः ।

निशम्य वाक्यं रामस्य बभूव्यथिता भृशम् ॥

(वा० रा० ६।११४।३२)

किन्तु वे कर ही क्या सकते थे ! इस श्लोकसे एक बातका पता और भी चलता है—वह यह कि आदिकविने 'लक्ष्मणः' विशेषण लगाकर यह जतलाया है कि सीताजीका परदा त्यागकर आना बानर-जातिको भी अच्छा नहीं लगा और सुग्रीव तथा हनुमान्को भी दुःख हुआ। किन्तु परदा त्यागकर सबके सामने निकलने-बैठनेमें अनन्यस्ता जानकीकी उस समय क्या दशा थी, वह भी सुनन योग्य है। आदिकवि कहते हैं—

लजया त्ववलीयन्ती स्वेष्टे गात्रेषु मैथिली ।

विभीषणेनानुगता मर्त्तारं साम्यवर्त्ततः ॥

सा नस्वर्गंरुद्धमुखी लजया जनसंसदि ।

स्त्रोदासद्य मर्त्तारमार्गपुत्रेति भाषिणी ॥

(वा० रा० ६।११४।३४-३५)

अर्थात् जानकी लोगोंके सामने आनेमें मारे लजाके अपने शरीरमें दर्बी जाती थी। विभीषण उसके पीछे आ रहे थे। इसप्रकार सीता अपने पतिके निकट पहुँची। उस जनसमाजमें लजावश उसने घूँघट काड़ लिया था और इस अपमानसे धक्का वह 'हे आर्यपुत्र !' कहकर रो पड़ी। सीताने वहाँ जो 'हे आर्यपुत्र !' कहा उसका भी एक गूढ़ रहस्य है अर्थात् वह श्रीरामचन्द्रजीको इशारेसे कहती है कि आर्यपुत्र होकर मर्त्यादाविरुद्ध कार्य क्यों कर रहे हैं ?

सारांश यह कि जिन अवसरोंपर परदेकी शिथिलताकी बात श्रीरामचन्द्रजीने कही थी वह भी उस समय जनसमाजको मान्य न थी, किन्तु बड़े लोगोंमें आदर्शके रूपमें उसकी चर्चामात्र की जाती थी, क्योंकि यदि वह अवसर समाज-मान्य होते तो प्रथम तो विभीषण ही क्यों उकी

हुई पालकीमें सीताको बिठा और हटो-बचो करते जाते। द्वितीयतः यदि भूलवश विभीषणने ऐसा कर भी दिया होता तो वे रामचन्द्रजीकी आज्ञा सुन आगा-पीछा न करते। इसपर भी यदि कोई कह बैठे कि अपने कामकी तीव्र आलोचना होनेपर अभिमानवश विभीषणने आगा-पीछा किया, तो लक्ष्मण, सुग्रीव और हनूमानादिको तो बुरा न लगना चाहिये था, किन्तु यह बात उनको भी बुरी लगी। अतः यह मानना पड़ेगा कि आर्यजाति रामायण-कालमें स्त्रियोंके लिये परदा-प्रथाको उपयोगी मानती थी। यह तो हुई आर्यजातिमें परदा-प्रथाके प्रचलित होनेकी बात। अब लीजिये हम आपको रामायणकालमें अनार्य जातियोंमें भी उसके प्रचलित होनेका प्रमाण रामायणहीसे निकालकर देते हैं। देखिये, जिस समय क्रोधमें भरे लक्ष्मण किष्किन्धामें गये और सुग्रीवके अन्तःपुरमें घुसे, और खास जनानी-खोहोंमें चले गये, तब इन्हें ज्यों ही अन्तःपुरवासिनी ललनाओंके नूपुरों और करघनीकी झंकार सुन पड़ी त्योंही वे लजित हो जहाँ-कहाँ-तहाँ खड़े रह गये। आदिकवि कहते हैं—

कूजित नूपुराणां च काञ्चीनां निनदं तथा ।  
मल्लिशम्य ततः श्रीमान्सौमित्रिर्नजितोऽभवत् ॥

( बा० रा० १.३३।२५ )

अर्थात् नूपुरोंकी जमाड़म और करघनीकी चष्टियोंकी झंकार सुन सुमित्रा-नन्दन लक्ष्मण लजित हो गये। आजकलके कुछ मनचले लोगोंके जैसे तो लक्ष्मण थे ही नहीं कि चाहे जिसके घरमें बेधड़क घुसकर बीबीसे 'शोक-हँस' करने लगते। वे तो बड़े उत्कृष्ट चरित्रवान् थे। इसीसे आदिकविने लिखा है—

चारित्र्येण महाबाहुरपकृष्टः स लक्ष्मणः ।  
तस्यावेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः ॥

( बा० रा० ४।३३।२७ )

अर्थात् चरित्रमें आलक्ष्मण बहुत चढ़े बड़े थे। अतः वे आगे न बढ़े और श्रीरामचन्द्रजीके शोकमें बिकल एकान्त स्थल देख खड़े हो गये। इतनेमें नशेमें चूर ताग लक्ष्मणजीके सामने आती हैं। मारे नशेके उसे अपने शरीरके बल और आभूषणोंकी भी सुध-बुध नहीं है। उसके पैर कहीं-कहीं पड़ते हैं।

सा प्रसन्नन्ती मदविह्वलाक्षी

प्रलम्बकाक्षी गुणहेमसूत्रा ।

सलक्षणा लक्ष्मणसजिधानं

जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः ॥

( बा० रा० ४।३३।३८ )

ताराको इस दशामें देख लक्ष्मणजी 'अवाङ्मुखोऽभ्यन्तुजेन्द्रपुत्रः' अर्थात् राजकुमारने गरदन नीची कर ली।

इस प्रसङ्गसे यह स्पष्ट है कि यदि कोई स्त्री बेहयाई-कर उस जमानेके किसी पुरुषके सामने चली आती थी तो उस जमानेके पुरुष, आजकलके कुछ लोगोंकी तरह उनकी ओर ताकते तक नहीं थे और न आवाजे कसते थे, किन्तु मारे लजाके गर्दन नीची कर लिया करते थे।

अब आइये, लहामें भी हम आपको दिखलावेंगे कि वहाँ उच्च घरानेकी स्त्रियोंमें कैसी परदा-प्रथा प्रचलित थी और यदि कोई स्त्री परदेकी अवहेलना करती थी तो उसके प्रति उसके पति किस प्रकार विगड़ते थे। जिस समय रावणके मारेजानेका दुस्संवाद रावणके रनवासमें पहुँचा उस समय रावणकी अन्तःपुरवासिनी ललनाएँ अपारशोक-मागरमें निमग्न हो, पाँव-प्यादे रणाङ्गणमें पहुँचों। पतिके शब्दसे लिपट बिलाप करती हुई मन्दोदरी कहने लगी—

दृष्ट्वा न स्यन्वमि क्रुद्धां मांसिद्धाननुष्ठितम् ।

निर्गतां नगरद्वारतपदुन्वामेवागता प्रभो ॥

पटयेदद्वार दारोस्ते भ्रष्टान्नावपुष्टमान् ।

बहिर्निष्पतितान्मर्वाणं कथं हृष्ट्वा न शक्यामि ॥

( बा० रा० ६।१५।६१-६२ )

हे स्वामी ! मैं घूँघट काढ़े बिना नगरके फाटकमें निकलकर पाँव-प्यादे यहाँ चली आयी हूँ, तुम इसके लिये मुझमें क्रुद्ध क्यों नहीं होते ? देखो, मैं ही अकेली नहीं प्रत्युत—नुम्हारी प्यारी समस्त पत्नियाँ लजा त्याग और घूँघट खोल अन्तःपुरके बाहर निकल आयी हैं— इनको हम दशामें देख मुझे क्रोध क्यों नहीं आता ?

आदिकविने इतना स्पष्ट घूँघट और परदेका बिबरण दिया है। इसपर भी केवल रामायण-महाभागतका नाममात्र सुननेवाले इन्हीं दोनोंका नाम लेकर बे-पर्देगीका समर्थन किया करते हैं। किन्तु इन भोले आइयोंको यह नहीं सूझता कि अयोध्यामें तो यहाँ तक परदेका आग्रह था कि

रनवासकी खास खोदीपर खियों, बालकों और बूढ़ोंको ही  
पहरेपर रक्खा जाता था । देखिये—

प्रणम्य रामस्तान् वृद्धास्तृतीयायां ददर्शतः ।

स्त्रियो नालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥

( वा०रा० २।२०।२२ )

उन बूढ़ोंको प्रणामकर श्रीरामजीने तीसरी खोदी पर  
खियों, बालकों और बूढ़ोंको पहरा देते हुए देखा ।

आदिकविके लेखते यह भी पता चलता है कि  
अयोध्यापुरीमें अविवाहिता कन्याओंको छोड़, विवाहिता  
स्त्रियाँ बाटिका आदिमें भी नहीं जाती थीं । देखिये—

नाराजके जनपदे उद्यानानि समागताः ।

सायद्धि क्रीडितुं यान्ति कुमारां हेमभूषितः ॥

अर्थात् अराजराज्यमें सोनेके गहनोंसे भूषित कुमारियाँ  
सायंकालके समय बागोंमें क्रीड़ा करने नहीं जाती थीं ।

इन सब प्रमाणाँके रहते कोई भी विवेकी एवं विचारवान्  
पुरुष रामायणके आधारपर यह नहीं कह सकता कि  
उस कालमें परदा था ही नहीं । जो ऐसा कहता है, कवि  
अकबरके कथनानुसार उम्र मर्दकी 'अकूपर परदा' पढ़  
गया है ।

## वेदेही-विलाप

१

जिसे प्रणोंसे भी, अधिक प्रिय माना हुआ था ।  
तुम्हें होना स्वामी, विलग क्षणको भी दुःख था ॥  
जिसे प्रासादोंमें, व्यथित करते चित्र पट थे ।  
जिसे हा । दैत्योंके, सचमुच खिलौने विकट थे ॥

२

तुम्हारी बामाज्ञी, अवनि पग जो थी न धरती ।  
सदा प्रामोदोंमें, नित नव रही मोद भरती ॥  
सरोजाली भार्या, रघुपति ! वही कष्ट सहती ।  
दिखा दो तेजस्वी, अरुण मुमुमा बाल रवि-सी ॥

३

जिसे खोया स्वामी, गिरि बन गुफा खोजत रहे ।  
लताओंसे पूँछा, बहु विपिनक संकट सहे ॥  
उठायो मोड़ा था, धनु सहज ही जीवन दिया ।  
लजाया भूषणोंको, मम हृदय था हर्षित किया ॥

४

बताओ लाये हो, कनक-मृग मेरा वह कहाँ ।  
बिछानेको कोई, प्रियवर नहीं आसन यहाँ ॥  
रमाये भूनी-सी, जनक-तनवा योगिन बनी ।  
पड़ी है लङ्कामें, चहुँ घिर रही निश्चर अनी ॥

५

हगोंसे घाग-सी, अद्विगल महा उल्ल बहती ।  
चितामें चिन्ताकी, विगुड सहसा आज दहती ॥  
तुम्हारी ही मारु, विरह-व्यथिता मौन जपती ।  
तुम्हारी वेदेही, अहह विधि ! यों हैं कलपती ॥

६

सुमित्राके प्यारे, लपन तुमको था कटु कटा ।  
उसीसे तो देखो, ललन इतना सङ्कट सहा ॥  
कहाँ हो आओ तो, रघुपति ! भुलाया किमि कहो ।  
अहित्या-सी नारी, सहज तुम नारी प्रभु अहो !

७

शरद्राका-स्वामी, तपन तनमें और मनमें ।  
बढ़ाता ही जाता, जलन अब ऐसे विजनमें ॥  
निदाघ ज्वाला-सी, उर उठ रही हाय ! अब तो ।  
प्रभो ! हाने जाते, विमुख अपने आज सब तो ॥

८

पतिप्राणा सीता, प्रभु-अनुचरी लोग कहते ।  
विरागी ध्यानी भी, नित युगल-जोड़ी निरखते ॥  
विसारेंगे वे भी, अहह ! मुझको मान अबला ।  
कहायेगी स्वामी, रघुकुल-बधू क्या न सबला ॥

९

तुम्हारी शोभा श्री, निरख मुख होता अनुक था ।  
मुझे सेवामें ही, विभव मिल जाता विपुल था ॥  
अहो अन्तर्यामी ! सब प्रकट है बात मनकी ।  
गिनारें व्यापार, अब अधिक क्या हाय ! तनकी ॥

रमाशङ्कर मिश्र, 'जीवति'

## सतीके मरणान्त प्रायश्चित्तका गुप्त कारण

( लेखक-श्रीरामचन्द्र कृष्ण कामत )



त्यन्तिक चेम बानी 'परम कल्याण' के अधिकारी 'कल्याण' के रसिक पाठक इस लेखका शीर्षक देखकर सम्भवतः आश्चर्य करेंगे और इस रामायणांकके विद्वान् लेखक भी कहेंगे कि इस विशिष्ट सुन्दर अंकके लिये सम्पादकने जिन शताधिक विषयोंकी सूची तैयार की थी, उसमें उपर्युक्त नाम नहीं है। तथापि निम्नलिखित विषय पढ़नेपर मुझे आशा है कि वे इसको सूचित विषयोंके अन्तर्गत ही मानकर इसे श्रीरामचरित्रके पूर्णत्वका निदर्शक ही समझेंगे !

कुछ समय पूर्व एक प्रसिद्ध कानून-न्यायसापी सज्जनने अपने व्याख्यानमें यह प्रतिपादन किया था कि 'श्रीराम ईश्वर-के अवतार नहीं थे, वे एक महान् सद्गुणसम्पन्न नरपति थे।' जो लोग पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षाके कारण अपनी सनातन-धर्म-संस्कृति तथा औपनिषद्-विद्यासे कुछ दूर चले गये हैं, जिन्होंने 'प्राप्य बगवद्दर्शन' इत्यं भुति-वचनानुसार शास्त्रोंका उचित रीतिसे अध्ययन नहीं किया है और जो मनमाने तौरपर अर्थ लगाकर अपनेको परिदृष्टमन्य मानने हैं, उनके विचारोंका ऐसा बन जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, दुःख तो इतनाही है कि इन उपाधिधारी आधुनिक विद्वानोंको सर्वमाधारण सर्वज्ञ और नेता मानने हैं और इनके वचनोंका अनुसरण करना चाहते हैं।

जैसे कानूनका बड़ेसे बड़ा डिग्रीप्राप्त विद्वान् रोगीका निदान नहीं कर सकता, जैसे शिक्षा और अनुभवसम्पन्न नामी डाक्टर मशीनके पुर्जे नहीं सुधार सकता और जैसे मिल चलानेवाला फट्टा ह्यास मेकेनिकल इंजिनियर सेतु निर्माणमें सलाह देनेका अधिकार नहीं रखता, वैसे ही शास्त्र-ज्ञान-शून्य मनुष्य शास्त्रीय गुहा विषयोंपर भी कुछ नहीं कह सकते। किसी भी एक विद्याविशेषमें कोई चाहे कितना ही निपुण क्यों न हो वह सभी विषयोंपर मत देनेका अधिकारी नहीं है। जो जंगल किसीको सब विषयोंमें अधिकारी समझते हैं वे भूल करते हैं और अपने आपको ऐसा समझनेवाले तो बुधाभिमान और दम्भका आचरण करते हैं।

अतएव जिसने जिस विषयका शास्त्रोंके द्वारा अध्ययन किया है, उसीको उक्त विषयका प्रतिपादन करनेके लिये भागे बढ़ना चाहिये और सुविज्ञ सज्जनोंको भी उसी विषयमें उसका मत मानना चाहिये, अन्यथा अनर्थकी बड़ी सम्भावना है।

'श्रीराम मनुष्य हैं या ईश्वर' इस सम्बन्धमें कुछ समय पूर्व मैं बेलगाँवके एक मराठी पत्रमें यथामति बहुत कुछ लिख चुका हूँ, इसके अतिरिक्त 'श्रीरामचरित्ररहस्य' नामक मराठी पुस्तकमें भी इस विषयमें बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया गया है। उक्त पुस्तकका हिन्दी-रूपान्तर 'कल्याण' के तृतीय वर्षके ११ वें अंकमें प्रकाशित हो चुका है, अतएव यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। अवश्य ही साररूपमें इतना निवेदन कर देता हूँ कि भगवान्‌के अवतार-कारहस्य बड़े-बड़े ज्ञानियोंके समक्षमें भी नहीं आता। स्वयं ब्रह्माजीने मुझसे अम्मादायः 'हमारे सदृश पुरुष भी मोहित हो जाते हैं' कहा है तब अन्यान्य ज्ञानियोंकी तो बात ही कौन-सी है ?

ब्रह्मज्ञानियोंके लिये भी अवतार रहस्य जानना कठिन है।

श्रीएकनाथमहाराजने भागवतके एकदश स्कन्धकी टीकामें व्याधस्तुतिके प्रसंगान्तर्गत कहा-हे प्रभो ! तू गुप्तातीत देहातीत होकर भी जीसत्ये (स्वेच्छामे) कैमं देह धारण करता है ? अवतार धारणकर क्योंकर चरित्र करता है ? और फिर उन अवतार-शरीरोंका कैसं त्याग करता है ? इन प्रश्नोंका रहस्य ब्रह्मा आदि देवतागण भी नहीं जानते। ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति मुख्यपूर्वक हो सकती है परन्तु तेरे लीला-देह धारणका तत्त्व उन बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानियोंके भी पूर्णरूपसे जाननेमें नहीं आता।

तात्पर्य यह कि इन्द्र, ब्रह्मादि देवता जो अपरंजित ज्ञानी हैं, वे ही जब भगवान्‌के अवतार-रूपको पहचाननेमें मोहित हो गये, उनको भी जब अवतार-रूपका धन्य नहीं मिला तब अन्य ब्रह्मनिष्ठोंकी तो गति ही क्या है ? श्रीकृष्णावतार-के समय इन्द्र और ब्रह्माजीकी जो दुर्वशा हुई थी, उसको सभी जानते हैं। इसी प्रकार श्रीरामावतारमें भवानी सती देवीकी भी बड़ी दुर्वशा हुई थी, इस कथाको महाराष्ट्र-

सन्तोंने जिस प्रकार वर्णन किया है, उसीका सारांश यहाँ दिया जाता है।

श्रीरामका सीता-  
विरह, शंकरकी  
अचल निष्ठा और  
सती-मोह।

रावणद्वारा सीताके हरे जानेपर श्रीराम सीता-वियोगसे व्याकुल हो गये। पूर्वमाका शीतल सुधांशु उन्हें श्रीराम-मध्याह्नके प्रखर सूर्य-सा प्रतीत होने लगा। सुन्दर शीतल पवनके झकोरे उन्हें वज्रपातका अनुभव कराने लगे। लक्ष्मणने पुष्पशय्या रचकर उन्हें उसपर सुलाया, पर वह फूलोंकी कोमल पंखड़ियाँ श्रीरामके बदनमें सूईकी तरह चुभने लगीं। वे न तो फूलोंकी सेजपर सो ही सके और न उसपरसे उठकर कहीं एक स्थान-में शान्तिसे बैठ सके। एक साधारण मनुष्यकी भाँति 'हा सीते' 'हा सीते' की पुकार मचाते हुए शोककुल हो बनमें इधर-उधर भटकने लगे। गुसाईंजी लिखते हैं—

पूरनकाम गम मुखरासी। मनुजचरित कर अज अभिनासी॥  
पर-दुख-हरन सो कस दुख ताही। भा विगार तिन्हहूँ मनमाही॥  
हा! गुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-व्रत-नेम-पुनीता॥  
लटिमन समुझाप बहु भाँती। पूछत चले कता तरु पाती॥  
हे खग मृग हे मधुकरलेनी। तुम्ह देखी सीता मृग-नैनी॥

सीताके वियोगसे उनकी विचित्र दशा हो गयी, वियोगके कारण उनका संयोग-चिन्तन जाग उठा और अन्तःकरण सीतामय बन गया, यहाँ तक कि वे 'सीता सीता' कहकर वृक्ष और पाषाणोंको आलिंगन करने लगे।

श्रीरामकी यह दशा देखकर लक्ष्मणको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रभुको समझानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सभी व्यर्थ हुए। आकाश-स्थित देवता प्रभुकी प्रत्येक लीलाको कौतूहल-पूर्ण दृष्टिसे देख रहे थे। विश्वकण्ठक रावणका भगवान् श्रीराम कब सकुल संहार करेंगे, वे इसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भगवान् शंकर तो अपने आराध्य श्रीरामके गुण-लीला-चिन्तनमें सर्वदा ही डूबे रहते हैं। वे प्रेमपूर्ण दृष्टिसे श्रीरामकी विचित्र लीलाएँ देख रहे थे। अर्धाङ्गिनी भवानी दादाबिबी सती भी उसी दृष्टिसे देख रही थी परन्तु उसकी अन्तर्दृष्टिमें कुछ अन्तर उत्पन्न हो गया। श्रीरामके 'माया-मनुष्य-रूप' को वह भूल गयी। उसने भगवान् शंकरसे पूछा कि 'आप जिन रामको पूर्णब्रह्म मानते हैं क्या वे यही हैं?' शंकरने कहा, 'हाँ, यही मेरे पूर्णब्रह्म राम हैं।' सती बोली—'यह तो 'सीता सीता' की

पुकार मचाते हुए व्याकुलतासे पेड़-पत्थरोंको भी छातीसे जगारहे हैं?' 'शिवजीने कहा 'तथापि यह पूर्णब्रह्म हैं।' सतीने पूछा—'क्या आप इन्हींका ध्यान करते हैं?' शिवजी बोले,—'मेरे ध्यान, ज्ञान, विज्ञान सभी कुछ यह पूर्णब्रह्म राम ही हैं।' भवानीने कहा—'तब तो आप दोनों ही-भगवान् और भक्त एकसे ही विषयी और कामी दीख पड़ते हैं।' इतना कहकर वह हँस पड़ी। इसपर शिवजीने कहा, 'मेरा राम इस समय विषयी और कामीकी तरह रोता है, गिर पड़ता है, तड़पता है, परन्तु तू निश्चय समझ कि यही परब्रह्म है।'।

अन्य शंकरकी निष्ठा! किसी भी अवस्थामें जिसके मनमें प्रभुके प्रति किञ्चित् भी विकल्प नहीं पैदा होता, वही तो सच्चा निष्ठावान् है!

सतीको मोह हो गया था, उसने शंकरके सतीका कपट निश्चित वचन सुनकर उनसे कहा—'यदि मैं रामको छुवा दूँ तो?' शिवजी बोले, 'तब हम समझ लेंगे कि यह ब्रह्म नहीं हैं।' भवानी बोली—'आप कहीं तो मैं इसी क्षण रामको चक्करमें डाल दूँ।' शंकरने कहा, 'वे पूर्ण सात्वत हैं, तेरी इच्छा हो तो परीक्षा कर देख!' इतना सुनते ही सतीने सीताका रूप धारण कर लिया और वह उसी ओर गयी, जहाँ श्रीरामजी विचर रहे थे। सतीजी सीताके बेपयमें (हँसती हुई) श्रीरामकी आँखोंके सामने जाकर खड़ी हो गयी। श्रीरामने उसकी ओर बिना ही ताके मुँह फेर लिया और 'हा सीते' 'हा सीते' पुकारने लगे। 'इधर देखिये, मैं आ गयी' कहकर सती फिर सामने गयी, भगवान् उसे वहीं छोड़ दूसरी ओर फिरक पहेलेकी भाँति पेड़-पत्थरोंको आलिंगन करने लगे। वह बार बार श्रीरामके सामने गयी परन्तु राम उससे बिमुख होकर वैसे ही 'सीते सीते' पुकारने लगे। यह देखकर लक्ष्मणने कहा—'रघुराज, श्रीसीतादेवीके सामने आ जानेपर भी आप शोक क्यों कर रहे हैं?' यह सुनकर भगवान् लक्ष्मणपर बिगड़े। जब लक्ष्मणने फिर विनती की तो राम उन्हें डाँटते हुए बोले—'सौमित्र, तू भाई होकर भी मुझसे वैर क्यों कर रहा है? यहाँ कहाँ सीता आयी है? मेरा तो अन्तःकरण उसके लिये दुग्ध हो रहा है।' यह सुनकर लक्ष्मणने सोचा कि 'सीताके विरहमें रामको उन्माद हो गया है, इसीलिये सीताका नाम सुनते ही मारने दौड़ते हैं, अतएव मेरा मौन रहना ही उचित है। माता सीता आप ही समझा देंगी।'।

इधर स्वर्गमें देवगण भी बड़ी दुःखिधामें पड़ गये और परस्पर कहने लगे कि 'रावणके यहाँसे छूटकर सीता कैसे यहाँ आ गयी?' ऋषियोंको भी आश्चर्य हुआ। यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी विस्मित होकर यह कहने लगे कि 'क्या रावणको भस्म करके सीताजी यहाँ आ गयी हैं?' सारांश, ब्रह्मादि देवता भी इस रहस्यको नहीं जान सके। परन्तु पूर्णब्रह्म सर्वान्तर्वासी, सर्वज्ञ श्रीरामने यह भेद जान लिया। लक्ष्मणके मौन होनेपर 'सीते! सीते!' पुकारते हुए श्रीरामका हाथ कृत्रिम सीताने पकड़ लिया और कहा— 'सावधान होइये, मैं तो आपके सामने खड़ी हूँ फिर स्वर्ग ही आप इधर उधर 'सीता, सीता' चिल्लाते हुए क्यों दौड़ रहे हैं? क्या ऐसा करते आपको लज्जा नहीं आती? आप तो सदा कहा करते थे कि मैं निष्प सावधान रहता हूँ। क्या आपका यह ज्ञान स्त्री-विशेषमें सर्वथा जाता रहा। सगे भाई भक्त लक्ष्मणके विनय करनेपर आप उसे डाँटते हैं। थोड़ी-सी देरके लिये मेरे आँखोंसे ओम्ल होते ही आप इतने जड़ कैसे हो गये? मैं तो वनमें छिपकर आपकी यह दशा देख रही थी, जब मैंने देखा कि आप तो पागल हो हो रहे हैं तब मैं थोड़ी आधी।'।

स पण्डितो नरः प्रहः प्राज्ञः कर्मविदा वरः ।

अप्राज्ञ इव किं राम ! नार्या हेतुर्बिमुह्यते ॥

'अब आप इस मोड़को छोड़कर पञ्चवटीमें चलिइये—' बनवासकी अवधिमें थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं, उन्हें बिताकर हमलोग प्रयोध्या लौट चलेंगे।' सतीके इन वचनसे भगवान् श्रीरामने हँसते हुए कहा— 'माता, मैं आपके चरण छूता हूँ, आप मुझे मन मनाइये, मैं तो भगवान् शङ्करका एक दीन बालक, उनका एक अनन्य किन्नर हूँ, फिर आप मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रही हैं? भगवान् शङ्करको अकेले धाँवकर मुझे तंग करनेके लिये सीताका रूप धारणकर आप यहाँ क्यों आयी हैं?'।

श्रीरामके इन वचनोंको सुनने ही सती सीताके स्वरूप-को त्यागकर तुरन्त श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़ी और बोली कि 'भगवान् शङ्करने मुझसे कह दिया था कि श्रीराम निष्प सावधान और सर्वज्ञ हैं, उनके समीप तुम्हारा कपट नहीं चलेगा।' अब मुझे उन वचनोंका निश्चय हो गया। मैं शिवजीकी शक्ति हूँ, मैंने अपनी अतर्क्य माशामें सीताका स्वरूप बना लिया था। मुझे ब्रह्मादि देवता भी यहाँ पहचान सके। आपका ज्ञान अगाध है, आप अगम्य गति

हैं, आपके सामने किसीका भी बल-कपट नहीं चल सकता। आप ऐसे सर्वज्ञ होकर भी पागलकी भाँति वेद-पहाड़ोंको अस्मिन् करके हुए क्यों भटक रहे हैं? आपमें सीता-विरहका दुःख और कामकी वासना रचीभर भी नहीं है। हे राम! आप पूर्णब्रह्म हैं। मुझे इस बातका निश्चय हो गया। फिर आप विरह-वेदना न रहनेपर भी 'सीते सीते' पुकारते क्यों जंगल-जंगल घूम रहे हैं, कृपया मुझे इसका रहस्य समझाइये।' यों प्रार्थना करके सतीने श्रीरामके चरण पकड़ लिये।

श्रोता कैसा होना चाहिये । इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा, 'देवि ! मेरी लीला श्रीशिवजी जानते हैं, वे आप-

को इसका रहस्य बतलावेंगे। अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करनी चाहिये। कहीं कुछ कहना भी पड़े तो पहले श्रोताके अधिकारकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। शुद्ध पात्र बिना रहस्यकी बात नहीं बतलाई जा सकती। ऐसे श्रोता छली, बिबादी, भूत, ब्रह्मक, नास्तिक, कपट-भाषी, कुनकी, आलस्य और दग्भी नहीं होने चाहिये। शुद्ध सतो-गुणी, कामिनी-काञ्चनका त्यागी, पूर्ण परमार्थी और विवेक-सम्पन्न मनुष्य ही इस ज्ञानरहस्यका अधिकारी है। आपके मनमें ज्ञानका अभिमान है, इसीसे आप शिवजीके वचनोंका तिरस्कारकर मुझे छलने आयीं, फिर भला, मैं आपके सामने कोई बात कैसे कहूँ? जिसको पतिवचन, गुरुवचनपर विश्वास नहीं, उसे गोपन रहस्य नहीं बतलाना चाहिये।'।

ज्ञानाभिमानक  
नश्रुण ।

भगवान् के इन वचनोंको सुनकर सती बहुत ही क्षिप्त हुई, यह मन-ही-मन कहने लगी कि 'मैं गुरुरूप पतिके वचनोंका उल्लंघनकर, शंकरकी आज्ञा नहीं सुन श्रीरघुनाथजीको छलने आयी, आग लगे मेरे इस ज्ञानाभिमानको।' यों कहकर वह पश्चात्तापसे रोने लगी। माधु सन्तोंके मिलनेपर उनके गुण-दोष हँदना, उनसे झल करना, उनके गुणोंमें भी दोषोंका आरोपकर उनकी निन्दा करना, मुखपर कुछ और और पीछेमें कुछ और ही कहना, उसपर झट्टा रखनेवालोंकी निन्दा करना, अथवा उनको मूर्ख ठहराना, ये सब ज्ञानाभिमानके लक्षण हैं। सतीने फिर कहा कि 'हे राम, मैं आपको छलने आयी, मेरा कपट आपके सामने नहीं चल सका, तब भी आपने मुझपर क्रोध नहीं किया। इससे मेरा मन पकट गया है। आपके दर्शनसे मेरा सारा

ज्ञानाभिमान जल बुका है। छल-कपट नष्ट हो गया है। हे राम, मैं आपकी शपथ करके ऐसा कह रही हूँ।'

सतीके इन अनुतापयुक्त वचनोंसे श्रीरामका हृदय पिघल गया और वह अपना गुहा रहस्य कहने लगे—

वृक्ष-पापाण-  
आलिङ्गनका  
रहस्य। हे देवि भवानी! आपको देखनेवाले यह वृक्ष-पापाण पूर्वजन्ममें किये थे। इन्होंने मेरी प्राप्तिके लिये निष्काम अनुष्ठान किया था। मेरी चरण-प्राप्तिमें

इनका पूरा सञ्जाब था, इससे वे सारा अभिमान त्यागकर वृक्ष-पहाड़ बन गये हैं, कोई वृक्ष बनकर, कोई पहाड़ बनकर और कोई तृक्ष बनकर मेरे चरणोंके नीचे पड़े हैं। इनकी वृष्ट्या पूर्ण करनेके लिये ही मैं परम प्रेमसे इनका आलिङ्गन कर रहा हूँ। ये सब मेरे निरभिमान भक्त हैं और मैं भक्तोंके भावका अर्था हूँ। सांताके बटाने इन सबको हँदता हुआ बन-बन भटक रहा हूँ। भक्तोंका उद्धार करने और उन्हें आनन्द प्रदान करनेके लिये ही मैं रोता हूँ, कहीं गिर पड़ता हूँ, कहीं लबलबाता हूँ, पहाड़ों-पर दौड़ता हूँ और वृक्षोंको हृदय लगाता हूँ। हे सती! आप वह निश्चय समझिये कि मैं एक कदम भी ज्वर्य नहीं रखता। भगवान् सदाशिव इस तत्त्वको जानते हैं।'

परमार्थका शुद्ध भावका अभिप्राय है, 'सब भूतोंमें भगवान् देखना।' यही एक स्वार्थका भी स्वार्थ और प्रधान परमार्थ है। गुड़के करेले जैसे न तो कड़ुप होते हैं और न उनमें काँटे रहते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मवृत्तिसे किया हुआ कर्म बन्धनकारक नहीं होता। श्रान्तिके बने नूँवके कड़ुआ बतानेवाला ठगा जाता है। इसी प्रकार साधुओंके कर्मकी निन्दा करनेवालेका भी अधःपतन होता है ॐ। कर्म प्राकृतिक गुणोंसे होते हैं, परन्तु शान्ती प्रकृतिके गुणोंसे अतीत होनेके कारण कर्मसे सर्वथा निर्लेप रहते हैं। 'समस्त द्रव्यमात्र ही ब्रह्म है,' इस वृत्तिसे कर्म करनेके कारण उनके कर्म प्रज्ञारूप ही हो जाते हैं। वह कभी मोहमें नहीं पड़ते। सन्तोंकी महिमा भगाव है।

\* जो शान्तिको निन्दा करते हैं, उनसे छल करते हैं वे उनके पापके हिस्सेदार होते हैं और जो एकान्त-भावसे उनकी स्तुति पूजा और सेवा करते हैं उनको शान्तिको पुण्य मिलता है, अतः इन्हीं प्रकार शान्तिके पाप-पुण्योंके अधिकारी बताये हैं—  
(इसराज-कृत वाक्यवृत्ति।)

शान्तिमे वास्तवमे पाप-पुण्य होते हैं। नहीं, जो उनमें पापका आरोप करता है वह पापका और जो पुण्यका आरोप करता है, वह पुण्यका भागी होता है।—सम्पादक

इन साधुओंको वृक्ष-पर्वत न समझकर आप पूर्णब्रह्म समझिये।' इतना कहकर श्रीरामने कृपा-दृष्टिसे सतीकी ओर देखा !

सतीकी वृक्ष-समाधि। श्रीरामके द्वारा यह उपदेश सुनते ही सती मूर्छित होकर गिर पड़ी। मैं ही एक शक्ति हूँ, और वही एक शिव हूँ, इस बातको वह भूल गयी। 'अहं' 'कोहं' 'सोहं' की भावना मिट गयी। उसका चित्त चैतन्यके साथ एकरस हो गया, जिससे सारे भाव लुप्त हो गये। नामरूपका परदा फट गया। दृश्य-वृष्टाका भेद नष्ट हो गया, सर्वत्र ब्रह्म ही ध्यात हो गया, निजानन्दकी लहरें उठीं और निजानन्दमें ही स्थिर हो गयीं। इसप्रकार शिव-प्रिया सतीकी समाधि लग गयी ! कुलनेके लिये आयी हुई सतीकी ऐसी अनुपम अवस्था हो गयी। यही सत्संगकी महिमा है, संत अपकार करनेवालेका भी उपकार करते हैं। इसप्रकार पूर्णरूपसे समाधानको प्राप्त करनेपर कुछ समयके बाद भवानीको बाह्य ज्ञान हुआ, उसे अखिल विश्व सच्चिदानन्दधनरूप देखने लगा !

यह देखकर श्रीराम बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने पूछा कि 'देवि ! मेरी एक बात सुनोगी ?' उमाने दौड़कर श्रीरामके चरणोंपर मस्तक रख दिया और गद्गद् बायीसे कहा। 'देव ! आपके कारण मेरा मोह नष्ट हुआ, मैं सुखरूप हो गयी। भला, मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे कर सकती हूँ ?' श्रीराम बोले, 'माता ! मैं आपसे एक ही भीख माँगता हूँ कृपा करके मुझे दो, वह यह कि श्रीशंकरके वचनोंको कभी झूठ न समझना, और आहूँदे किसीके भी साथ झूठ न करना।' इसपर भवानी बोली— 'हे राम, आपके चरण-दर्शनसे ही मेरी सारी दुष्ट वृत्तियाँ दग्ध हो गयीं, अबसे मैं कभी श्रीशंकर-आज्ञाकी अवहेलना नहीं करूँगी। आपके वचनोंसे मेरी अविद्या भ्रष्ट हो गयी है। मैं आपकी शपथ स्वीकार कहती हूँ कि मेरा सारा छल-कपट नष्ट हो गया है। आपके शब्दोंमें मुझे सायुज्य-सुखकी प्राप्ति हो गयी।' इतना कहकर भवानी श्रीरामके चरण-वन्दन कर आनन्दपूर्वक कैलासकी ओर चली गयी !



श्रीलक्ष्मण इस घटनाको देख रहे थे, सतीके चले जानेके बाद उन्होंने भगवान्‌के चरण पकड़कर कहा कि 'नाथ ! मैंने तो इन्हें माता सीता समझा था, परन्तु यह तो शिवकान्ता भवानी निकलीं । आपने इन्हें खूब पहचाना । सचमुच ही आप सर्वज्ञ और सर्वान्तर्दामी हैं ।' मझा आवि देवता भी इसीप्रकार उठार प्रकट करते हुए श्रीरामके चरणोंमें सिर नवाकर अपने अपने लोकोंको चले गये । सबका संशय दूर हो गया, श्रीलक्ष्मणको शान्ति मिली ।

श्रीएकनाथ महाराज अपने भावार्थरामायण (अरण्यकाण्ड अ० २०)में लिखते हैं—कि यह उमा-राम-संवाद शिवरामायणमें है और ज्ञानी श्रोता इसको जानते हैं ।

बाल्मीकिने शतकोटि रामायणोंकी रचना की, जिनके तीन विभागकर शंकरने स्वर्ग, मृत्युजोक और पाताल इन तीनों लोकोंमें बाँट दिया । तीन विभाग कर देनेके बाद शेष दो अक्षर 'रा' 'म' बच रहे । दो होनेसे इनके तीन हिस्से नहीं हो सके, अतएव इनको श्रीशिवजीने अपने कलमें धारण कर लिया । श्रीएकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें रामायणोंकी एक सूची दी है, उसे कस्याखके पाठकोंके लिये मूल मराठीमें ही हम यहाँ उपस्थित करते हैं, पाठक सहज ही रामायणोंके नाम समझ लेंगे ।

शिव-रामायण शैव-रामायण । आनन-पंचरात्र-रामायण ।  
गुहा-गुह्यक-रामायण । हनुमन्त-रामायण नाटक ॥  
मत्स्य-कूर्म बराह-रामायण । कालिकास्तोत्र निरूपण ।  
महाकाशी-रामायण । स्कंद-रामायण प्रसिद्ध ॥  
अगस्ति-पारम्प्री रामायण । पद्मपुराणीय रामायण ।  
रवि-अग्नि-वक्रण रामायण । ऐकंनि अण्ण जट्टगु वक्ता ॥  
नंदिप्रभातं भारत आपण । नंद ने भारत-रामायण ।  
महामारनीय रामायण । वक्ता आपण श्रीव्यास ॥  
कौचद्वीपी अध्यापि जाण । कौच शिव सांगे पुराण ।  
कथा पवित्र रामायण । प्रति पावन अनुपम्य ॥  
विमीषणापदां जाण । निम्न कथा निरूपण ।  
धर्मश्रुति सांगे आपण । धर्म रामायण धार्मिक ॥

श्वेतद्वीपीय निरूपण । श्वेतकेतु रामायण ।  
कथा विचित्र विद्वान् । अति पावन तीर्थां लोकीं ॥  
शंकर वक्ता स्वयं आपण । श्रोता भवानी सावधान ।  
ते शिवभवानी रामायण । कथा विद्वान् विचित्र ॥  
सदाशिव स्वयं वक्ता । स्वयं श्रीराम निज श्रोता ।  
ते शिवरामायणी कथा । श्रवणों ऐकतां स्वानंद ॥  
स्वयं श्रीराम स्वानंदे पूर्ण । आपणा प्रति बंद आपण ।  
ते कथा आत्म-रामायण । गोड निरूपण सर्वांथी ॥  
जैमिनीकृत रामायण । अपूर्व कथेयं विद्वान् ।  
अलौकिक निरूपण । आश्चर्यगुण जाण चरित्र ॥

मवानीका प्रायश्चित्त वाचावली सती देवीने कैलास पहुँचकर अनुतापसहित श्रीशंकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया । भगवान्‌ शंकर सर्वज्ञ और केवल धर्मकी ही मूर्ति हैं । उन्होंने उस समय भवानीसे कुछ भी नहीं कहा । परन्तु मनमें यह सोचा कि इसने मेरे परम पूज्य उपास्यदेव श्रीरामके साथ छल और उनका अपमान करके घोर पाप किया । जब इसने श्रीसीताका—मेरे प्रभु श्रीरामकी पत्नीका स्वरूप धारण कर जिंघा तब यह मेरे लिये सीतार्जुनके समान पूजनीया हो गयी । इसके साथ मैं पत्नीका सम्बन्ध कैसे रख सकता हूँ ? यह सोचकर शिवजी बहुत ही दुःखी और उद्विग्न हुए एवं सतीके पत्नी-भावको छोड़ दिया तथा भ्रमण रहने लगे ।

सती कीन्ह सीता कर भेजा । निम्न ३२ नयः विषाद विमेषण ॥  
जो अब करौ सतीमन प्रती । मिट भा नि-पण होइ अनिमी ॥  
पहि तन गतिहि भेट मोहि नहि । सिब संकल्प कीन्ह मनमर्ही ॥  
सन्मुख संकर आसन दीन्ह ॥

सतीको हमसे मृत्यु-मरण दुःख हुआ । उसने दृष्टव्य-को निमित्त बनाकर अपना शरीर भस्म कर दिया और फिर हिमाचलके यहाँ जन्म ग्रहणकर पार्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुई । नवीन जन्ममें पुनः महान्‌ तप करके शंकरजी-को पतिरूपमें प्राप्त किया । ❁

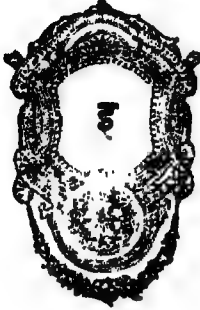
इति विद्या तपो योगनिर्दिष्टुरीदितः ।  
वाग्भट्टनाथिनो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः ॥

\* गुप्तार्जुनने भी मानमें इस प्रसंगका बड़ा ही सुन्दर उर्ध्वदश-प्रद और रोचक वर्णन विस्तारपूर्वक किया है । सतीके सन्दर्भमें लेकर हिमाचल-कन्या पार्वतीके विवाहनकला प्रसंग मानसके शिल्पकाण्डमें अवश्य पढ़ना चाहिये । — सम्पादक

# श्रीरामचरित-मानसका दार्शनिक सिद्धान्त

( लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी सिंहल एम० ए० )

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न मिल ।  
बन्दों सीताराम-पद, जिनहिं परम प्रिय सित ॥



स एक दोहेमें गुसाईजीने अपना दार्शनिक सिद्धान्त साररूपमें उपस्थित कर दिया है। गुसाईजी उस उच्च सिद्धान्तपर पहुँचे हुए थे, जहाँ पुरुष, प्रकृति, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि सिद्धान्तोंके भेद परस्पर विरोधी न रहकर एक दूसरेके पोषक हो जाते हैं। आपने रामायणके प्रारम्भमें ही

वन्दना करते समय कहा है—

उद्भवस्थितिसंहारकानिणी क्लेशहरिणीम् ।  
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥  
यन्मायावशवर्ति विडम्बित्वं ब्रह्मादिदेवामुग,  
यन्मायावदमैव भूतिमकलं रज्जौ यथाऽहेश्रम ।  
यत्पाटश्रवमेकमेव हि भवाभान्वित्तिनीपात्रां ।  
वन्देऽहं तमशेषकारणपदं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

‘सर्थात् उत्पत्ति, रक्षा और संहार करनेवाली, क्लेश हरनेवाली, सर्व श्रेय (सम्पूर्ण कल्याण) करनेवाली श्रीरामकी प्रिया सीताको मैं नमस्कार करता हूँ ।’

‘जिसकी मायाके वशमें अश्विनि विवर्त, ब्रह्मादि देवता तथा असुर हैं, जिसकी मत्तामें गर्भमें माँपके भ्रमकी भाँति सब कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है, जिसका चरण भवसागरमें नरनेकी इच्छा करनेवालोंके लिये एकमात्र नौका है उस अशेष-कारण-पर, रामनामसे प्रसिद्ध श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ ।’

इसमें विविध यादोंका कैसा सुन्दर और स्पष्ट समन्वय किया गया है। पहले तो प्रकृतिरूप सीताजीको संसारके उद्भव, स्थिति तथा संहार करनेवाली कह दिया परन्तु फिर भगवान् (पुरुष) रूप श्रीरामजीको ‘अशेष-कारणपर’—सम्पूर्ण कारणोंका भी कारण बतलाया। इसके साथ ही श्रीरामजीके लिये यह भी कह दिया कि इन्हींकी सत्ताके

आधारसे वह असत् संसार भी रस्सीमें सर्पके भ्रमकी भाँति सब प्रतीत होता है।

इस विवेचनमें निर्गुण और सगुणका कैसा सुन्दर मेल है? गुसाईजीके लिये श्रीरामजी केवल मनुष्यरूप पुरुषोत्तम राम ही नहीं हैं, वे ‘निर्गुण-स्वरूप राम’ भी हैं। यथार्थमें आपके विचारानुसार तो सगुणके यथार्थ स्वरूपको पहचानना निर्गुणमें भी कठिन है। उत्तर-काण्डमें आप स्पष्ट कहते हैं—

निर्गुन रूप मुलम अति मनुन न जान कोइ ।

मुगम अगम नाना-चरित मुनि मुनि-मन भ्रम होइ ॥

यह समस्या जैसे बड़ी ही जटिल है वैसे ही सहज भी है। भगवान्के नाम और रूपके विषयमें आप कहते हैं—

नामरूप दोटईम उपाधी । अकथ अनादि सो सामुभि साधी ॥

रामायण कैसा अद्भुत ग्रन्थ है। दर्शन, योग एवं भक्तिके अनुपम रहस्य इसमें भरे हैं। परन्तु यहाँ सगुणके रहस्यपर कुछ नहीं कहना है अतएव वह विषय यहीं छोड़कर केवल दार्शनिक सिद्धान्तपर ही कुछ कहा जाता है—

उपर्युक्त श्लोकमें श्रीरामजीकी पुरुष तथा श्रीसीताजी-को प्रकृतिका स्वरूप मानकर, प्रकृतिको संसारका कारण कहा है और पुनः पुरुषको भी परम कारण बतलाते हुए, संसारको कृष्ण—सत्य-सा प्रतीत होनेवाला बतलाया है। यह एक पहली है, जिसको सुलभाना आवश्यक है।

प्रकृति और पुरुषमें क्या भेद है? ये दोनों केवल कहनेमें भिन्न भिन्न जान पड़ने हैं, वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है। वाणी एवं उसके अर्थ तथा जल और उसकी लहर, इसके ये दो उदाहरण हैं। वाणी और अर्थ—कोई ऐसी दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं जो किसी प्रकार जोड़ दी गयी हों। जब मन अपने भावको किसीपर प्रकट करना चाहता है, तब वह जो संकेत करता है उसमें उस भावका समावेश रहता ही है। या बाँ कहिये कि संकेत उस भावका वाह्यस्वरूप है। सभ्य मनुष्य जब किसी भाषामें बातचीत करते हैं तो वह विशेष संकेतोंका प्रयोग करते हैं—यह ठीक है, परन्तु वे संकेत जिन अर्थोंके लिये होते हैं, वे कुछ पीछेसे जोड़े

नहीं आते । सहस्रों वर्षोंसे कुछ निर्दिष्ट भावोंके लिये कुछ निर्दिष्ट संकेत अनेक बार प्रयुक्त होते-होते शब्दका रूप धारण कर लेते हैं । जिसप्रकार बाणीके अन्तर्गत अर्थ निहित है उसी प्रकार प्रकृति या 'स्वभाव' पुरुषके अन्दर होता है, उससे पृथक् नहीं होता । पुरुषके स्वभावको ही प्रकृति कहते हैं । जैसे जल और उसकी शीतलतामें कथनमात्रका भेद है, वास्तविक नहीं है । गुण और गुणी पृथक्-पृथक् नहीं रह सकते । जैसे बिना गुणके गुणीका कोई अस्तित्व नहीं, वैसे ही गुणीके आधारके बिना गुणका रहना भी असम्भव है-दोनोंकी स्थिति एक ही साथ होगी । विचारके सुभीतेके लिये इनका द्वैत भले ही मान लिया जाय, यथार्थमें सत्ता द्वैत ही है ।

फिर इस संसारका स्वरूप क्या है ? गुलाईजी जल और उसकी लहरका उदाहरण देते हैं । लहर ही संसार है । पुरुषके स्वभावानुसार उसमें स्पन्दन हुआ और उससे जो स्वरूपभेदकी परिणति हुई, वही संसारका प्रकट स्वरूप है । यह स्पन्दन कैसा हुआ और स्वरूप-भेद कैसे और क्यों प्राप्त हुए ? इन प्रश्नोंका उत्तर ऋग्वेदके नासदीय सूक्त (मण्डल १० सूक्त १२६) में बहुत ही स्पष्ट और सुन्दरताके साथ दिया गया है । यहाँ उस विषयकी चर्चा करनेसे जेब बहुत बंद जायगा । अन्तु, यहाँ संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'प्रकृति' रूप स्वभावसे उत्पन्न हुई क्रियाका परिणाम ही यह संसार है । परिणामवादा भी तो यही सिद्धान्त है ।

यह स्वभाव भगवान्-स्वभाव होनेके कारण दोषी नहीं कहा जा सकता इसीलिये प्रकृतिको 'क्लेशहारिणी' (क्लेशोंको हरण करनेवाली) तथा 'सर्वश्रेयस्करी' (सर्व कल्याण करनेवाली) कहा गया है । अरण्यकाण्डमें भी श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणजीको उपदेश देते समय मायाको विद्या तथा अविद्या-भेदमें दो प्रकारका कहा है । पुरुषकी प्रकृति-विद्यारूप माया उन क्रियाओंके जानका भण्डार है जिनके द्वारा पुरुषका रूपान्तर होता है । यही ब्रह्माके मुखसे निःसृत, सरस्वतीद्वारा प्रकाशित वेदोंका ज्ञान है । यह शुद्ध माया है, इसके मयारोमे अनुरूप शनैः शनैः पुरुष तक पहुँच जाना है । जीव अपने जिस 'अज्ञान'वश विद्याके यथार्थ स्वरूपका दर्शन नहीं कर पाता, वह अज्ञान ही मोह या अविद्यारूप दुष्ट माया है, यह अविद्या उस परब्रह्मके

'स्वभाव' रूप विद्या (प्रकृति) से भिन्न है यह तो स्वरूप-अवित भेदसे प्राप्त जीवकी अज्ञानता है ।

यद्यपि विद्यारूप प्रकृतिकी क्रियासे आधाररूप पुरुष (परम कारण ब्रह्म) में ही रूपान्तर होता है, परन्तु जीव जब इस रूपान्तरको भी यथावत् नहीं जानता, तब इस रूपान्तरके अन्तर्गत जो पुरुष यथार्थ नित्य शान्त एकरस-स्वरूपसे विद्यमान है उसे कैसे जान सकता है ? इसी कारण वह इस रूपान्तरको कुछका कुछ समझता है, वही उसका 'रस्सीमें सर्पका भ्रम' है । रस्सीरूप आधार तो है ही, परन्तु उसके यथार्थ स्वरूपको न जानकर अज्ञानताके अन्धकारमें उसे सर्प समझता है । यदि रस्सी सीधी रखी हुई है तो उसे सीधा सर्प, और यदि वह टेढ़ी रखी है तो उसे टेढ़ा सर्प प्रतीत होता है । और कदाचिन् रस्सीके पास ही रस्सीका एक छोटा-सा पिण्ड रक्खा हो तो उसे सर्पके पास एक ऐसा मेंढक दीखने लगेगा, मानो सर्प उसे अभी निगलना ही चाहता है । यद्यपि दोनोंका आधार-स्वरूप रस्सी एक ही है परन्तु उनके दो स्वरूप होनेसे वे पृथक् दिखलायी देंगे और उनका यथार्थ भेद नहीं दीखेगा वरं अज्ञान जिस जिस प्रकारके भेदोंका उनमें आरोप करेगा वे ही दिखलायी देंगे । यदि हम रस्सीके पिण्ड और रस्सीको मेंढक और सर्प न समझें, उनके स्वरूप-भेदको यथार्थतः समझें अर्थात् विद्यारूप प्रकृतिको जानें तो हम सहजमें ही रस्सीके यथार्थ स्वरूपतक पहुँच जायेंगे । यही विचरनवाद-अध्यात्मवाद आदि सिद्धान्तोंका मार्ग है ।

फिर, 'जगत् मिथ्या है, त्रिकालमें हुआ ही नहीं' ऐसे वाक्योंका क्या अर्थ है ? इसका उत्तर यह है कि जगत्-को हम जिस रूपमें देख रहे हैं वह मिथ्या है, वैसा त्रिकाल-में भी नहीं हुआ । इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि कोई रूपान्तर ही नहीं हुआ; रूपान्तर तो हुआ ही । भगवान् श्रीकृष्णजी भी स्पष्ट कहते हैं कि 'इस जगत्की क्रिया आदिमें अव्यक्त, अन्धमें व्यक्त तथा अन्धमें अव्यक्त स्वरूपवाली है । मायावादी भी इतना तो मानते हैं कि मायाग्रन्थ जीव ही संसारको अपने अज्ञानमें देखता है । यहाँ मायाग्रन्थ जीव और शुद्ध आत्मस्वरूपका स्वरूपभेद तो उपस्थित होता ही है अर्थात् रूपान्तर-भेद तो होता है परन्तु उस भेदको हम यथावत् नहीं समझते, यह हमारा अज्ञान है ।

जल और उसकी लहरको जीजिये। हमलोग जलको लहराते देखते हैं, उन दोनोंको हम भिन्न वस्तु नहीं समझते, बरं जानते हैं कि लहर जलका ही स्वरूप है। यदि उसमें बर्फके टुकड़े हों तो उनको भी हम जलका ही स्वरूप मानते हैं, किन्तु जो जलमें बहता हुआ कीटाणु लहर और बर्फके टुकड़ेको दूसरी तरह समझता है, उसे वे सब व्यापार आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं, और विविध स्वरूपकी लहरें तथा बर्फके टुकड़े उसे भिन्न भिन्न वस्तुके रूपमें दिखायी देते हैं। उसको उनका स्वरूप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंकी अवस्थाके अनुसार ही व्यक्त होगा और वह उसी दृश्यको वयार्थ समझेगा। यही अवस्था अनुभवकी है। हमें दृश्य जिन प्रकार दीख पड़ते हैं हम उन्हें वैसा ही वयार्थ समझ लेते हैं—यह तो हमारी भूल है। परन्तु हमें जो भिन्नता दिखायी पड़ती है उसका आधार—रूपान्तर—ब्रह्मके स्वरूपमें, जलमें लहरके समान हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यही बात वाय्या और अर्थके विषयमें भी घटती है। वाय्यामें अनेक शब्दोंके अनेक अर्थ हैं, परन्तु कहनेवालेके अर्थों और समझनेवालेके अर्थोंमें भेद रह सकता है और कुछ-न-कुछ भेद ता अर्थस्वरूपोंमें रहता ही है। परन्तु वह नहीं कह सकते कि सुननेवाला जो पृथक्-पृथक् शब्दोंके पृथक् पृथक् अर्थ समझता है, वह भिन्नता निराधार है, वह भिन्नता कहनेवालेके अर्थोंकी भिन्नताके आधारपर है। इसी प्रकार जगत्की भिन्नता ब्रह्मके रूपान्तरके आधारपर है।

यहाँ यह शंका होती है कि 'ब्रह्ममें रूपान्तर कहनेसे तो उसमें विकार हो जाता है फिर उसे निर्विकार कैसे कह सकते हैं?' इस सम्बन्धमें गुप्ताईजीने 'खिन्न' शब्दका प्रयोग बड़े सहजका किया है। वह कहते हैं कि साताराम-जीको 'खिन्न' परम प्रिय है। भक्तिभावसे तो भगवान् दुर्गा-पर वया करनेवाले हैं, अशरण-शरण हैं इसलिये आपको 'खिन्न' प्यारे हैं परन्तु दार्शनिक तत्त्वमें आप खिन्न अथवा विकारको धारण करनेवाले हैं। गुप्ताईजी इस कठिनतासे नहीं घबड़ाते बरं वह इसे स्वीकार करते हैं कि ऐसे विकार तो ब्रह्मके स्वभावजनित होनेसे उनको परम प्रिय हैं। सच पछिये तो गुप्ताईजी ही क्या, जो लोग ब्रह्मको सर्वथा निर्विकार कहते हैं वे भी उसमें विकार उपस्थित कर ही देते हैं। माया चाहे ब्रह्म-पर धारण डाले चाहे जीवपर, है तो विकार ही। और जहाँ ब्रह्म-ही ब्रह्म है वहाँ माया कहाँ रहेगी? वह ब्रह्ममें ही

विकाररूपसे रहेगी। उसे अनादि एवं अनिवर्चनीय कह देनेसे तो पीछा नहीं छूट सकता। ब्रह्ममें जीव-स्वरूपका प्राप्त होना ही विकार है। यदि रूपान्तर होनेका ही विकार कहा जाय तो इसमें गुप्ताईजीको कोई संकोच नहीं। नहीं तो भला अद्वैत-सत्तारूप ब्रह्ममें जगत्का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है?

तथापि इसका वह अर्थ नहीं है कि इस रूपान्तरसे ब्रह्मके शुद्ध स्वरूपमें कोई अन्तर पड़ जाता हो। जल चाहे बर्फके स्वरूपमें हो, चाहे लहरके, और चाहे भाफके—वह रहता 'H<sub>2</sub>O' ही है। उसके परमाणुओंका स्वरूप बही है, वास्तवमें वह रहता जल ही है, इसलिये हम उन तीनों ही रूपोंको अवश्य एकरस कहेंगे। इस दृष्टिसे उसे निर्विकार कह सकते हैं, क्योंकि उसके मूल स्वरूपमें कभी कोई भेद नहीं होता। मनुष्य जब समय-समयपर भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्र और अलङ्कार धारण करता है तो उससे उसके स्वभाव अथवा व्यक्तित्वमें कुछ अन्तर नहीं आता। स्वर्णके अनेक अलङ्कार बनते हैं पर उनके स्वरूप-भेदसे स्वर्णमें कोई भेद नहीं होता। मिट्टीके अनेक पात्र होते हैं जो स्वरूपानुसार भिन्न-भिन्न गुणवाले होते हैं परन्तु उस भेदमें मिट्टीमें कोई भेद नहीं होता। स्वर्ण और मिट्टी जैसेके जैसे रहने हैं। इसी भावसे ब्रह्म भी निर्विकार, अपरिवर्तनशील, एकरस आदि है।

उपर्युक्त विवेचनसे वह भी मालूम हो गया कि इस रूपान्तरका कारण परब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियाशक्ति है। अतएव हम कह सकते हैं कि परब्रह्मके अन्दरकी क्रियाशक्ति प्रकृति या उसकी माया ही संसारका कारण है, और वह भी कह सकते हैं कि परब्रह्म, जो उस शक्तिका धारण करनेवाला मायाधीश है, सम्पूर्ण कार्योंका कारण है। दोनों ही बातें ठीक हैं।

इस रूपान्तरमें इस शक्तिका सूक्ष्म स्वरूप क्या है? उसका विकास किस प्रकार होता है? संसार कैसे बनता है? और उसमें अज्ञान-युक्त जीव किस प्रकार प्रकट होता है? यह सब आवश्यक प्रश्न हैं और श्रद्धेयोंके अध्यापकोंने इनका उत्तर भी दिया है। इस विषयमें यहाँ विस्तार-भयसे अधिक नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट है कि इस रूपान्तरके सिद्धान्तानुसार जीव-सम्बन्धी माया वा अज्ञान यथार्थतः अनादि नहीं है और इसी कारण इसका अन्त भी हो जाता है। रूपान्तरसे जो स्वरूपभेदको प्राप्त हुआ जीव

है वह उस रूपान्तरकी विरोधिनी क्रियाद्वारा अपने मूल—आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। अवश्य ही विद्यारूप माया अनादि और अनन्त है। परब्रह्मके साथ ही उसका स्वभाव, और उस स्वभावकी क्रिया सदासे है और सदा रहेगी।

तब फिर यह प्रश्न होता है कि यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो महापुरुषोंने पुरुषको अकर्ता क्यों कहा है? अथवा संसारको व्यावहारिक सत्ताके रूपमें लक्ष्य, परन्तु पारमार्थिक सत्ताके रूपमें मिथ्या क्यों माना है? अतिके अनुसार भगवान्का स्वरूप ऐसा है कि जिसमें परस्पर विरोधी-गुणोंका समावेश है जो दूर और पास, सूक्ष्म और स्थूल, कर्ता और अकर्ता, निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार, तथा निर्वाकार और सविकार है। वह विरोधी गुण केवल भाव-भेदसे ही कहे जाने हैं। हमने ऊपर देख लिया है कि ब्रह्मके स्वरूपको परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील दोनों ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार यहाँ भी भाव-भेद उपस्थित है। पुरुषको अकर्ता, तथा संसारको पारमार्थिक रूपसे मिथ्या कहनेका प्रयोजन, मुक्तिके लिये साधनका संकेत है। मुक्ति तभी प्राप्त होगी, जब रूपान्तरमें स्वरूप भेदको प्राप्त हुआ जाव विरोधी क्रियाद्वारा उस स्वरूप-भेदको नष्ट करके ब्रह्मरूपमें लय हो जायगा। वह विरोधी क्रिया रूपान्तरकी ओर न जाकर एकरसता तथा मरलताकी ओर अग्रसर होगी—वह चित्तको चञ्चल करनेवाले पथमें न जाकर चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेवाली होगी। परन्तु हमें कौन-से स्वरूपका ध्यान करना होगा परिवर्तनशीलका अथवा अपरिवर्तनशीलका? उस निर्वाकार अपरिवर्तनशील एकरसस्वरूपके ध्यानमें भिन्नतायुक्त जगत्का अस्तित्व ही कहाँ रह जाना है? एक बार आत्म-बन्दकर भगवत्स्मरण करके देखिये, वह जगत् किसप्रकार

खुल होता जाता है और ज्यों-ज्यों आप परमार्थ लाभ करते जाते हैं, त्यों-ही-त्यों वह अगत् विस्मृत होता चला जाता है। परन्तु परमार्थसे उतरकर आप ज्यों ही व्यवहारमें आते हैं, त्यों ही अगत् ज्यों-का-त्यों उपस्थित हो जाता है। यही कारण है कि पुरुषको अकर्ता कहा है, क्योंकि चञ्चल चित्त जीवको यदि शान्तिकी ओर ले जाना है तो उसका लक्ष्य भी शान्ति ही होना चाहिये। और यथार्थतः बात भी यही है। परब्रह्ममें जब प्रकृति अथवा स्वाभाविक क्रियाशक्तिकी क्रिया होती है तो इससे वह नहीं समझना चाहिये कि वह परब्रह्म परिमित जीवकी भाँति इच्छा और विचार करके क्रिया करता है, उस पारावारहीन तत्त्वमें तो वह क्रिया स्वाभाविक ही होती है और वह ऐसा होनेपर भी शान्त-रूपमें अटल स्थित रहता है। इस अविचल शान्ति और एकरसताकी ओर लक्ष्य करानेके लिये पुरुषको शान्त और अकर्ता कहा है। इसीका ध्यान करनेमें मनुष्य संसारमें रहता और कार्य करता हुआ भी शान्ति-लाभ कर सकता है। इसीलिये गुम्माईजी कहते हैं कि 'संसार-सागरसे पार होनेके लिये जिनके चरण ही नौकारूप हैं, ऐसे हरिको मैं प्रणाम करता हूँ।' अहा! कैसी सुन्दर शान्ति-प्रदान करनेवाली रचना है—'यन्मयः ब्रह्मवर्ति निवर्तमानः' आदि में प्रथम भगवान्का स्मरण कर तुरन्त चञ्चल मनके लगाम लगा दी, फिर उनके निज स्वरूपकी ओर 'पारमार्थिक' में संकेत कर दिया। संसार-सागरसे पार होनेके लिये इसी शान्ति-आधार-स्वरूपका ध्यान आवश्यक है। ऐसे शान्त-प्रकाशरूप हरिको प्रणाम करना हूँ। केवल उन्हींको नहीं, 'हं शहरिणी' 'सर्वश्रेयस्करी' उनका मायाको भी प्रणाम करता हूँ। इस विद्यारूप मायाकी कृपासे ही भगवत्प्राप्ति द्वारा ममस्त हंश दूर होकर परम कल्याण होता है।

सायगम-मय सब 'मम' शान्त। काँ प्रणाम मममें मुबाली ॥

### गमायण सर्वोच्च महाकाव्य है

दूसरे देशोंके महाकाव्योंकी अपेक्षा भारतका गमायण महाकाव्य सर्वोच्च है। वाल्मीकिने इस ग्रन्थमें जिन अद्भुत सद्गुणोंका वर्णन किया है, उनकी ओर दृष्टि डालनेसे यह प्रतीत होता है कि अपने कालमें तो क्या, परन्तु उसके बादकी अनेक शताब्दियाँ बीतनेपर भी श्रीगम जैसे सन्ध्यापरायण नरपति किसी भी राजवंशमें उत्पन्न नहीं हुए। श्रीगम सर्वगुण-सम्पन्न और प्रजाका प्रेम सम्पादन करनेमें अद्भुत राजा थे। वाल्मीकिका काव्य आदिकाव्यका स्थान पाने योग्य है और सब रसोंसे परिपूर्ण है।

—गोरीसिन्धो।



कल्याण -



अनुसंधानं पदं गतिं मानां प्रियं वहीरि मुनीनां विनीता ।

## रामायणमें आदर्श पातिव्रत-धर्म।

(लेखक—श्रीयुत मेयद कासिम बली, विशारद साहित्यालङ्कार)



हमारे महान् आचार्यों ने प्राचीनकालमें जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचे थे उनमें रामायण एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। इसकी रचना हुए महत्त्वों बर्य हो गये तथापि आज भी भारतवर्षमें महत्त्वों से लेकर ओपदियों तक इसकी पूजा, पाठ और आरती होती है। यह सब इसी कारणसे है कि इस ग्रन्थमें भक्ति भाँतिके उपदेश-रत्नों का बाहुल्य है। इसके प्रत्येक शब्द मनोहरताके साथ गूढ़ार्थके साँचेमें ढाले गये हैं और अपना अनोखा जीहर संसारमें दिखा रहे हैं।

स्त्री-समाजकी पवित्रता, शक्ति और महानताके विषयमें जैसा प्रकाश इस ग्रन्थमें डाला गया है वैसा दूसरे धर्म-ग्रन्थोंमें देखनेको भी नहीं मिलता। श्रीसीताजी और श्रीअनन्याजीके सवादमें जो पतिव्रत-धर्मका वर्णन मिलता है वह जगत्के लिये अत्यन्त लाभदायक ही नहीं, मोक्ष-प्रदायक भी है। पातिव्रतके लक्षण, भेद, कर्तव्य और फल-पर रामायणमें बड़ी धारीकीमें विचार प्रकट किये गये हैं। स्त्री-जातिके लिये नपन्या, योग तथा भिक्षिका आधार केवल पातिव्रत-धर्म ही बतलाया गया है। जो स्त्री पति-मेवासे विमुख रहता है उसे 'अधम नारि' कहकर सम्बोधन किया और यह कहा है कि—

पतिं प्रति कुतः नमनं तर्ह्ये त्रिषु । विप्रतां ह्ये पाठं तस्मात् ॥

'जो स्त्री अपने पतिके अनुकूल नहीं चलती वह जहाँ जाकर जन्म लेता है वहाँ जवानीमें ही विधवा हो जाती है, और इसप्रकार उसे आजीवन भयानक कष्टप्रद परिस्थितिका सामना करना पड़ता है।' स्त्रियोंके लिये काय, बचन और मनसे पति-पदमें प्रेम ही एकमात्र धर्म बतलाया गया है।

एकै धर्मे एक व्रतं नेमा । काय बचन मनं पति पदं प्रेमा ॥

इतनी उच्च आदर्शसे युक्त शिक्षा बाइबिल, तौरेंट, कुरान प्रभृति किसी भी ग्रन्थमें नहीं पायी जाती और न उन ग्रन्थोंमें स्त्री-जातिके लिये इतना सुन्दर सुरद धर्म-मार्ग ही स्थिर किया गया है। आजकल सभी धर्मावलम्बी विज्ञानसे अपने धर्मकी महत्ताको सिद्ध कर अपने-अपने धर्म-ग्रन्थको

हल्हामी, ईरवरीय घोषित कर सार्वभौम धर्मकी 'पेटेण्ट सील' लगा रहे हैं। परन्तु रामायण-जैसी पातिव्रत-धर्मकी शिक्षा किसीमें नहीं है। रामायणने तो केवल शिक्षा ही नहीं दी, बल्कि अपने पात्रोंके द्वारा इस उच्च पातिव्रत-धर्मका आदर्श भी उपस्थित कर दिखाया है। जिससे सोनेमें सुगन्ध आ गयी है। रामायणके द्वारा सती सीता, सती सुलोचना, सती अनन्या आदिने अपना उज्ज्वल चरित्र संसारमें चिरस्थायी कर दिया है। वह धर्म और वह ग्रन्थ अमूल्य है जिसने मानव-जातिके कल्याणार्थ महान् पवित्रतासे युक्त इस अमर अलौकिक व्रतका आदर्श दिखला दिया।

मैं रामायणसे इसी ज्ञान प्रेम करता हूँ, मैंने कई स्वजातीय विवाहोंमें कन्याओंको रामायण पढ़ेजमें देकर उनके प्रति उस महानताका सङ्केत किया है जिससे वे पातिव्रत-धर्मकी अनुगामिनी बनकर स्त्री-जातिकी महानतामें गर्व करें। इससे मुझे अपने समाजने कलङ्कित करनेका बीबा भी उठाया था। पर मैंने स्पष्ट कह दिया कि रामायण हिन्दू-समाजका ही ग्रन्थ नहीं है, वह तो सारे मानव-समाजकी सम्पत्ति है। जब रामायण हमें इसप्रकार पतिव्रत-सरीखी गौरवान्वित शिक्षा देती है तब हम उसकी क्यों न पूजा करें? जरा विचारकर देखिये कि रामायणका पातिव्रत-धर्म स्त्रीजातिका कल्याण कर सकता है या नहीं? भलीभाँति विचार करनेसे आप अवश्य ही इससे शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे। पुनर्विवाहमें व्यसनमय जीवनको उत्तेजना मिलती है, परन्तु पतिव्रतसे स्त्री-जातिमें सब गहरे प्रेम और पवित्रताका सौन्दर्य उज्ज्वल होता है जो उन्हें इस लोकमें सुख और परलोकमें मोक्षकी प्राप्ति करवाता है। उनके पतिव्रतरूप तपोबलसे महान् पर्वत भस्म हो सकते हैं, मृतक भी जीवित हो सकते हैं।

रामायणके भाषोंकी व्यापकतामें तल्लीन होना और उनको कार्यान्वित करना ही उसकी सच्ची पूजा है। वर्तमान समयमें पश्चिमीय सभ्यताने भारतीय आदर्शकी भव्यताको मिटानेमें कुछ कसर नहीं रखी, इससे हमारी नैतिक शक्ति, प्रायः सभी धार्मिक कार्योंके लिये क्षीण होती जा रही है। तलाक़, पुनर्विवाह तथा स्त्री-स्वातन्त्र्यके आन्दोलनने 'पातिव्रत-धर्म'की भावनापर कुठाराघात किया है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुरुष-समाजने इस ओर बड़ी उदासीनता



दिखलाई है जिससे की-समाजकी कान्तिमें पाश्चात्य  
सभ्यता अपना पूरा प्रभाव डाल रही है।

अन्तमें मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दू, मुसलमान,  
ईसाई आदि सभी धर्मावलम्बी इस 'पातिव्रत-धर्म' को

मननकर इसके प्रचारमें सहायक बननेके लिये अपनी बिलखी  
हुई शक्तियोंको सञ्चित करेंगे, जिससे मातृ-शक्तिकी अखण्ड

ज्योति पुनः एक बार जगत्को अपनी दीप्तिसे चमकृत करेगी  
और मानव-जीवन कृतकृत्य हो जायगा !

## आराध्य राम

जीवन-सागरसे चुनकर मैं थोड़े-से थे मोती।

लाया तेरे चरणोंमें, हँसकर क्या स्वीकृति होती ॥

### प्रार्थना

विश्वके अगणित रागोंमें मिले जा मेरा भी यह राग।  
श्रीगणेशकाय किन्तु परिपूर्ण तुम्हारे पद-पद्मांका राग ॥

× × ×

### आग्रह

हे मेरी मालिक ! पागलपनकी घड़ियाँ ननिक बढ़ा दे।  
जीवनकी घड़ियाँ चाह तो अपनी सभी घटा दे ॥

× × ×

### छवि

जबसे प्रिय ! आँखोंमें मेरी बसा तुम्हारा वर शृंगार।  
हृदय बन गया करुण कुसुम-से कोमल भावोंका भंडार ॥

× × ×

### जीवन-मरण

एक-एक मुस्कान तुम्हारी मो-मो जीवन देती।  
एक-एक बेकिस भू उनको तन्मय ही हर लेती ॥

× × ×

### स्मृति

तेरी स्मृतिमें भरी हुई जो मादकता, मधु, प्यार।  
कैसे उन्हें मुखाडें, वे तो बने हुए त्रिभुज-दार ॥

× × ×

### अमन्य

उसी रूपकी उसी लालमामे मुझको तुम बहने दो।  
क्यों? किसलिये कहँ? कबसे? क मवाल मन उठने दो ॥

× × ×

### प्रेम-प्याला

उसी एक प्यालेमें तेरे जगतीकी मादकता।  
भरी हुई है, छिपी हुई है जीवनकी मार्गकता ॥

× × ×

### प्रेम-राज्य

तेरे प्रेम-राज्यमें मार्गिक ! यह कैसा विचित्र आवर्तन।  
प्रणम नत-अंगार-वृष्टि फिर मधुर अमिय रसका यह वर्णन ॥

× × ×

### ललक

'म हूँ तेरा' मुझे मेरा जिस दिन अनुभव होगा।  
नाच उठूँगा, इतना ऊँचा स्वर्ण-संभार होगा ॥

× × ×

### प्रन्दोभन

तुम रहे मुझ चित्रोंमें मेरे अन्तर्गत मनकी।  
जिगा रहित प्रन्दोभन मार्गिक ! मुझ-मे निर्विकल जनकी ॥

× × ×

मम शक्तिकी हरिन धूम्रपत्र मेरा मन न रिझाया।  
मार्गिक ! मदिर-वामना-प्यासी रह-रह नहीं दिखाओ ॥

× × ×

### उलहना

हम ई पतित, किन्तु तुमको निर्दय, भकटग बस जाना।  
ठीक कहानक रस ! तुम्हीं कह दो, तुमको यह बाना ॥

× × ×

### कामना

जीवनमें माधना, मरणमें तेरे पदकी आहट।  
श्री अनुदिक अत्यंतित करनी तेरी मुस्कहट ॥

× × ×

— बालकृष्ण बलभूषा ।

## तुलसी-रामायणमें भक्त-श्रेणी

(लेखक—पं० श्रीजीवनशङ्करजी यादविक एम० ए०)



भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी स्मार्त वेष्ठास थे और उनकी बालौकिक कृति राम-चरित-मानस भी एक भक्ति-प्रधान ग्रन्थ है। जिस समय हिन्दू-जाति बिल्कुल निर्जीव होकर मरणासन्न हो चुकी थी तब गोस्वामीजीने अपनी अमृतमयी बायींसे भक्ति-मन्त्रद्वारा ही उसको नया जीवन प्रदान किया था। ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मोक्ष आदि सभी बातोंकी चर्चा गोस्वामीजीने रामायणमें की है परन्तु सर्वोपरि साधन उनके मतानुसार भक्ति ही है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भक्ति केवल सबसे उत्कृष्ट साधन ही नहीं है बरं सब साधनों-का परम फल भी यही है—

नव पद-पंकज प्रीति निरंतर । सब साधनकर यह फल सुन्दर ॥

इस बातको गोस्वामीजीने अनेक बार कहा है और यही उनका अटल विश्वास था और यही उनकी अमूल्य शिक्षा है। यहाँनक कि भगवान् रामचन्द्रजीके श्रीमुखमें यही उपदेश दिलाया गया है—

भर्म ते विरति जाग ते ग्याना । ग्यान मोक्ष-प्रद बंद बखाना ॥  
जात बेगि द्वार में आई । मो मम भगति भगत-मुखदाई ॥

यह स्पष्ट है कि किसी मार्गपर आस्रेप किये बिना गोस्वामीजी भक्तिको ही प्रधान पद देते हैं।

गोस्वामीजीने अनेक देवी-देवताओंकी स्तुति-वन्दना की है, परन्तु उनके इष्टदेव रघुकुल-कमल-दिवाकर भगवान् रामचन्द्र ही थे, जिनको वे परमहंसका साक्षान् अवतार मानते थे। इस विश्वासकी दृढ़ता इसी बातसे प्रमाणित है कि जब कभी भी उनको अपने इष्टदेवके गुणगानका अवसर मिलता है, इस बातको कहे बिना गोस्वामीजीने रहा ही नहीं जाता—

ग्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद ।

सो अज प्रेम-भगति-बस कौसल्याके गोद ॥

निर्गुण ब्रह्म ही सगुण होकर भगवान् रामचन्द्रका अवतार हुआ है। दोनों एक ही हैं—

ग्यापक व्याप अखंड अनन्ता । अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता ॥  
सोई सच्चिदानन्दधन रामा । अज विग्यान रूप बहवामा ॥

गोस्वामीजीका यही सिद्धान्त था। उन्होंने अवरुध ही सांख्य, वेदान्त आदि सिद्धान्तोंकी बातें भी बड़ी रोचक रीतिसे कहीं हैं। और अनेक सूक्तियाँ ऐसी मिलती हैं जिनका आश्रय लेकर भिन्न मतवालाभी अपने-अपने मतों-का पुष्टि कर सकते हैं। पर गोस्वामीजी निश्चयही सगुण-उपासनाके पक्षपाती थे और भक्तिके सामने मोक्षपदको भी तुच्छ समझते थे।

गोस्वामीजीने ग्रन्थारम्भमें ही इस बातपर इशारा कर दिया है कि उनकी रामायण “नानापुराणनिगमागम-सम्मत” है। अपना न तो कोई उनको मत स्थापित करना था न कोई नया सम्प्रदाय चलाना था। बान्तवमें बात भी यही है कि उन्होंने नाना पन्थोंका सगुण-उपासनामें समन्वय कर दिया है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्तिका सुन्दर समन्वय कर परस्परके विरोधको शान्त किया गया है, उसी प्रकार गोस्वामीजीने भी नाना सिद्धान्तोंका एकीकरण कर एक राजमार्ग ऐसा बता दिया है कि सब श्रेणीके लोग उसपर चलकर परमपदकी प्राप्तिके अधिकारी बन सकते हैं। और वह राजमार्ग है भगवद्भक्ति, साकार भगवान्की उपासना।

श्रीमद्भगवद्गीताका अनुकरणकर गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीका वर्णन किया है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आत्मां जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

अर्थात् आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकारके लोग भगवान्को भजते हैं। गोस्वामीजीने क्रम बदलकर इन्हीं चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन किया है। गीतामें जो सूत्ररूपसे कहा गया है, उसीको विस्तारमें रामायणमें वर्णन किया गया है।

नाम जह जपि जागहि जोगी । विरति विरंच प्रपंच बिगंगी ॥

ब्रह्म सुखाहि अनुभवहि अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

यह ज्ञानीभक्तका लक्षण कहा है। उसके लिये गोस्वामीजी अष्टाङ्ग योगका साधन नहीं बताते, जिससे कि

केवल ज्ञानकी ही प्राप्ति होती है। साधन बताते हैं  
वक्षस्वरसे भगवान्‌का नाम जपना।

जो नहीं करइ राम-गुन-गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

ज्ञानी-भक्तको ब्रह्म-सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु  
गोस्वामीजी 'केवल ज्ञान' के पक्षपाती नहीं हैं। भक्त्यात्मक  
ज्ञानका ही महत्व विशेष है।

ज अस भगत-ग्यान परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु सम करहीं॥

सो जइ कामधेनु गृह त्यागो। खोजत आक फिरोह पय लागो॥

इस भक्तिमय ज्ञानके सामने वे कैवल्य-पदको भी हेय  
मनसते हैं। ज्ञान भक्तिके लिये साधन है उसका फल नहीं  
है। वही गोस्वामीजीका सिद्धान्त है। और जैसे गीतामें  
भगवान्‌ने कहा है:—

तपो ज्ञानं नित्यगत् एकभक्तिर्विशिष्यम्।

प्रियोहि ज्ञानिनाऽन्यधर्मस्य न मम प्रियः॥

और आगे ऐसे ही ज्ञानी भक्तको भगवान्‌ने अपना  
ही आत्मा बताया है। वही गोस्वामीजीका भी सिद्धान्त  
है। यथा—

ग्यनो प्रपन्नो विमेष पिपासो।

हमरा भक्त है जिज्ञासु वा सुसुक्षु—

जाना चक्षुः गृह गनि जइ। नाम जोह जपि जलहि नेउ॥

हमके लिये भी वही उपाय और वही साधन है।  
नाम-जपकी शक्ति अनित्य है। ब्रह्मसुखकी प्राप्ति हमसे  
होती है तो आत्मा, जीव, प्रकृति माया इत्यादि मरबन्धी  
जितनी बातें हैं उनका रहस्य भी उच्चारणमयित जपमें  
ज्ञान हो जाता है। अन्यत्र जिज्ञासुके लिये जो कठिन  
साधन बताये गये हैं उनमें गोस्वामीजीका कुछ वात्सा  
नहीं। जब ब्रह्मसुखकी प्राप्ति नाम-जपमें हो सकती है तो  
जिज्ञासुकी तृप्ति कौन वही बात है?

यह तो हुई आत्माविषयकी बात। अर्थार्थी क्या  
करे? उसको तो सिद्धियाँ चाहिये। संसारमें विजयी होनेके  
लिये वा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अष्ट सिद्धियाँ  
ही वह चाहना है। योगकी क्रियामें ये प्राप्त होती हैं  
और वह भी आत्मन कठिन और अविरल परिश्रमके बाद।  
अर्थार्थीके लिये गोस्वामीजीका साधन सुनिश्च-

मात्रक नाम जपन लय लाग। होहि सिद्ध अनिमग्निक पाव॥

वही उपाय यहाँ भी बताया गया है। सांसारिक  
सुख-समृद्धि तो क्या सिद्धियाँ तक नाम-जपके आधीन हैं।

अन्तिम भक्त है आर्त्त। आरत-हरणके नाममें वह  
शक्ति है कि—

जपहि नाम जु आरत मारी। मिटहि कुसंकट होहि सुखारी॥

इसप्रकार चारों भक्तोंके लिये केवल नामका ही  
आधार है और फिर—

कलि बिसेस नहि आन उपाऊ।

गीताकी भक्त-श्रेणीका अनुकरण करते हुए गोस्वामी-  
जीने भी ये ही चार प्रकारके भक्त कहे, परन्तु साधन सबके  
लिये एक ही बनाया है। गोस्वामीजीने नाम-माहात्म्य-  
वर्णनमें कोई कमर नहीं की। यहाँतक कि—

कहैं नामु बट रामो, निज बिचार अनुसार।

और अन्तिम उपदेश है—

रामनाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।

सुकुम्ह मनर बाहिरो ने चारुनि गतिपार॥

रामनामको मणि कहा है, नेल, वही आदिका  
दीपक नहीं। क्योंकि जपका साधन सबसे सरल है। कुछ  
बखड़ा नहीं। साधन-भ्रष्ट होनेका भी भय नहीं। 'जीह'  
से संकेत उच्चारणका है। और 'भीतर' 'बाहिरो' से  
निर्गुण और मगुण दोनोंका अनुभव इस यत्नमें होना  
सम्भव बनाया है।

गीता और रामायणकी भक्त-श्रेणीकी समानता  
और उनका भेद इसप्रकार संक्षेपमें कहा गया है।  
रामायणमें इसका विस्तार अधिक है और उसको व्याख्यात्मक  
शैलीमें भी निरूपण किया गया है। परन्तु रामायणमें जो  
बिबेकगता है वह एक और भक्तका वर्णन है जो उपर्युक्त  
चारोंमें बढ़कर है।

मन्त्रक कामना-हीन ने राम-मगन राम मोन।

नाम भुजम-पिपास-हट मनरु बिसे मन मोन॥

ये हैं—मकल कामना-हीन। ज्ञानी भी ब्रह्मसुखका  
लालची होता है, अनर्थ मकामी है। ये पूर्णरूपमें  
निरकाम-भावमें रह रहते हैं। किसी फल-विशेषको  
इनकी इच्छा नहीं। भक्ति ही जिनके लिये साध्य है और  
भक्ति ही साधनका परमफल है। राम-भक्तिके समयमें हीन है  
और उसमें भी बढ़कर जो रामनाम है उसके अमृत-मरोवरमें  
मदा मज्जनीक नाई रहते हैं। समय अमृतका महत्व विशेष  
है, सो राम-भक्तिसे भी राम-नामका अधिक माहात्म्य दिखाने

हैं। ऐसे सग्न पुरुष एक चक्षु भी नाम बिना जीवित नहीं रह सकते, अतएव मकलीके समान हैं। ये भक्त सबसे ऊँची श्रेणीके हैं और उनकी संज्ञा प्रेमीकी है। गीतामें इस दर्जेके भक्तका वर्णन नहीं, और न नामका ही ऐसा महत्व कहीं वर्णित है।

गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीके वर्णनको उपमा, उदाहरण और रुचिर कवितासे जो साहित्यिक रूप दिया है वह बड़ा मनोहर और निलक्षण है, अब प्रत्येक श्रेणीके भक्तका उदाहरण और उपमा सुनिये और गोस्वामीजीकी उक्तियों पर विचार कीजिये।

लक्ष्मणजी श्रीरामजीसे कहते हैं—

वन्दनं कोक मुकुटं खग नाना । हरम् सकल निरा अवमाना ॥

पमेहि प्रभु मय भग्न तुम्हारे । हाँइहहिं टूट धनुष मुखारे ॥

‘कमल, कोक, मुकुट और खग’से चारों प्रकारके भक्त की ओर इशारा है। ज्ञानी भक्तको कमलके महश कड़ा है। ज्ञाक और सन्त-समाज रामायणमें ज्ञानी भक्त बनाये गये हैं। जनकजीका वर्णन है—

जे बिच निरंकुष उपाय । पद्म-गम जिमि जग जग जाय ॥

जैसे जलमें कमल बिना भाँगे रहता है वैसे ही जनकजी संसारमें रहते हुए भी उसके प्रपञ्चमें अलग रहते हैं। सूर्योदय पर कमल चिल्लते हैं। श्रीगमके दर्शनमें साधु समाज भी जैसे ही आनन्दमें खिल उठता है—

उदित उदय गिरि-मेघपर रज्ज्वर धार पनग ।

विक्रमं न-मराज मय हर्षे तांचन भृंग ॥

यही सुन्दर उक्ति है।

आन भक्तकी तुलना काक्ये की है। रावणके अप्याचारसे देवता दुर्ग होकर घबरा गये थे। गौ-रूपी धरा भी बिह्वल हो गयी थी। तब भगवान् ने कहा था—

जनि डगधु मुनि सिद्ध मुंसा । तुमहिं लागि भारहो नरबसा ॥

हरिहो सकल भूमि गरुआई । निमेष होहु देव-समुदाई ॥

वे ही आर्त-भक्त —

मय बिसाक कोक मुनि देवा । बरसहिं गुमन जनाहं सेवा ॥

क्योंकि अब श्रीगम धनुष-भंगके लिये उद्यत हो गये हैं। सीता परिणयके बिना राक्षसोंका नारा कैसे होता ? इसीलिये देवता प्रसन्न हुए।

मधुकर स्वामी है। अपने स्वार्थ-साधनकी धुनमें गुनगुनाया करता है। रस लेनेमें ही वह लीन रहता है। अर्थात् भक्त उसीके समान होते हैं। सुग्रीव, विभीषण और जनकपुरवासी इसी श्रेणीके भक्त हैं। पुरवासियोंकी झालसा क्या है कि सीता और रामका विवाह अपनी आँखोंसे देखें—

यहि लालसा भग्न सब लोग । बर सौवंग जानकी जंग ॥

विभीषणने तो स्पष्ट कहा है—

उर कहु प्रथम नासना रही । प्रभुपद प्रीति सरित ता बही ॥

अर्थात् लंकाका राज्य प्राप्त करनेकी इच्छा थी। मनका भाव समझकर श्रीरामजीने बिना माँगें ही विभीषणको राजपद दे दिया। सुग्रीव तो विभीषणसे भी अधिक स्वार्थ-परायण था। राम-सुग्रीव कथा बड़ी रोचक है, विस्तार-भयमें उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जाता।

चौथे भक्त—जिज्ञासु वा मुमुक्षु खगके समान हैं। खगका अर्थ यहाँ चातकका है। चातक-सम्बन्धी प्रवाद प्रसिद्ध ही है। वह स्वातिकी बूँदके लिये तृपित दृष्टिसे मेघको देखता रहता है। धनुषके टूटनेपर सीताजीकी दशाका वर्णन गोस्वामीजीने इसप्रकार किया है—

सीध मुखहिं बरनिय किहि भौनी । जनु चातकी पाय जल स्वानी ॥

इससे पहले यह दशा थी—

तृपित बारी बिनु जो तनु त्यागा ।

लक्ष्मणजीने श्रीरामको धनुष तोड़नेपर किमप्रकार देखा सो सुनिये—

गमहिं जपन बिलोकत केम । समिति चकोर किंगारक जैसे ॥

खगका अर्थ समष्टिमें चातकके अतिरिक्त पक्षी भी हो सकता है। लक्ष्मणजीके लिये चकोरकी उपमा उपयुक्त है।

चारों प्रकारके भक्तोंको इस रीतिसे गोस्वामीजीने साहित्यिक रूप देकर उनकी कथाको रोचक बना दिया है। अस्तिम भक्त प्रेमी हैं। उसको गोस्वामीजीने किस प्रकार निभाया है, यही और देखना रह गया है।

प्रेमीकी तुलना मीनसे की गयी है। ‘निनदु क्रिये मन मीन’ पद उपर आ चुका है। दोहावलीमें भी गोस्वामीजीने कहा है—

मगर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह ।

तुलसी एकहि मीनका है साँचिलो सनेह ॥

जलमें कितने ही जीव रहते हैं और जलसे बाहर भी कुछ कालके लिये वे जीवित रह सकते हैं, परन्तु जलसे बिछुड़ते ही प्राण देनेवाली तो केवल मछली ही है। उसीका स्नेह सच्चा है। एक लकड़ा वियोग उसे असह्य होता है। सीताजीको बड़ी शिकायत रही कि श्रीरामसे बिछुड़ते ही उनके प्राण-पखेरू क्यों न उड़ गये। हनुमानजीने श्रीरामजीसे सीताजीकी वकालत की और कारण बताया—

नाथ सो नयन कर अपराधा । निरंतर प्रान करहि हठ बाधा ॥

जो हो, सीताजीने विरहमें भी अपना शरीर रक्षता। भरतजी चरखपादुका लेकर ही उसकी सेवामें तन्मय हो गये—

राम-चगन-पंकज मन जानु । दुख मनुष इव नैन पातु ॥

तो क्या स्नेहीका पद खाली ही रहा, जब सीताजी और भरतजी जैसे भक्त भी उस दर्जनक न पहुँच सके? रामायण-में केवल एक ही प्रेमाका चरित्र है और वह है महाराज दशरथका : इस अत्यन्त कठिन प्रेम-परीक्षामें वे ही उत्तीर्ण हो सके। तुलसीदासजीने उनका चरित्र भी बड़ी निपुणतासे अंकित किया है। जब करयप और अदितिने घोर तपस्यासे भगवान्‌को प्रसन्नकर उनका-मा ही पुत्र माँगा तो करयपने यह भी वर माँगा था—

सुतविषयक तब पड रनि होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहं किन कोऊ ॥  
मनि बिनु फनि जनि जन बिनु मीना। मम जीवन निमि तुमहि अजीना ॥

वही बात सत्य होकर रही और श्रीराम दशरथके पुत्र ही नहीं हुए बल्कि प्राणधार भी रहे। दशरथजीने उनको 'प्राण-प्रिय' कहें बार कहा है। विश्वामित्रजीसे कहते हैं—

सब सुत प्रिय मोहि प्रानकी नाई । राम देन नहि बने गोमाई ॥

जब विश्वामित्रजी श्रीराम-लक्ष्मणको ले ही गये तो दशरथजीने प्राण क्यों नहीं त्याग दिये? कारण इसका यह है कि उस समय उनकी दशा 'मनि बिनु फनि' की-सी थी। सपुंकी मखि लो जानेपर वह मरता नहीं है, मृतक हो जाता है और उसको पुनः पाकर सचेष्ट हो जाता है। धनुष-यज्ञके बाद विवाहके समय दशरथजी जनकपुरमें श्रीरामसे मिले हैं तो गोस्वामीजी कहते हैं—

सुत हिय लग्य दुमह दुख मेटे । मृतक सहा प्रान जनु मेटे ॥

राम-विरहमें इतने दिनोंतक दशरथजीकी दशा 'मनि बिनु फनि' की रही थी।

जब राम-वनवासका प्रसङ्ग आया तो दशरथजीके लिये वाचित वरका दूसरा पद 'जल बिनु मीना' के सत्य होनेका अवसर आया। रामायणमें दशरथजीकी शांकातुर दशा बड़ी मर्म-स्पर्शी है। वह प्रसङ्ग कल्याण-रसका समुद्र है। जब कैकेयी अपनी बातसे नहीं टलती तो राजा दशरथ कहते हैं—

जिअइ मीन बरु बारि-बिहीना । मनि बिनु फनिक जिअइ दुखदीना ॥  
कहउँ सुभाउ न छल मननाही । जीवन मोर राम बिनु नाही ॥

'सुभाउ' शब्दपर विचार कीजिये। फिर आगे कहते हैं—

जीवन राम-दरस आधीना ।

वन जानेकी तैयारी हो गयी। तीनों मूर्तिर्षी दशरथसे विद्या माँगने आयी हैं। राजा शोक-विह्वल हैं। मुखसे शब्द नहीं निकलता। विह्वल होता देख कैकेयी श्रीरामसे कहती है—

नृषहि प्रानात्रय तुम रघुबीर । मीन समेह न टाईहि मीरा ॥

'इसलिये उनके मुखसे जानेकी आज्ञा मिलेगी ऐसी आशा मत करना। अपने आप ही अब चले जाओ' राजा दुखी होते हैं।

करहि न प्रान पयान अगले ।

श्रीरामके चले जानेपर राजा शोक करने हैं

राम चल वन प्रान मन जानै । कहि मुख लासि रहन तन माही ॥  
फनि केवन व्यथा बनवाना । जो दुख पड तत्रिहि तनु प्राना ॥

अभी कुछ आशा थी कि श्रीराम जल्दी ही वनसे लौट आवेंगे। इसी आशासे मारथीकी राह राजा देखते रहे। जब वह भी आगया और श्रीराम-जानकी न लौटे तो राजा तपस्वत विषम मोह मन मापा। राजा मनहु मीनकहं व्यापा ॥

मेरखामल राजाको कीमत्या रानी आरवासन देती हैं

राम लगन मिय मिलति बहेरी ।

इन आशाजनक वचनोंको सुनकर—

प्रिया बचन मृदु मुनन नृषचितयउ आसि उधार ॥  
तपसत मीन मरीन ननु मीचैउ सीतरु बारि ॥

राजाके लिये तो अब 'राम-रहित भिम जीवन आमा ।'

उनको अवस्थाकी क्या और अपने पूर्व जन्मके वरदानकी स्मृति हो आयी।

सोतन राखि कसब मे काहा । बेहि न प्रेमपन मोर निवाहा ॥

बन्ध है दशरथका प्रेम कि वे अपने शरीरको धिक्कारते हैं, क्योंकि उसको राम-विरहके प्रथम चरणमें ही धराशायी हो जाना था। राजा दशरथका प्रथम प्राणधारी शरीरने अस्तित्व कर दिया ! प्रतिज्ञा-पावन और कुल-अर्थादाकी रक्षाके लिये जब श्रीरामको बनवास दे दिया तो फिर दूसरी प्रतिज्ञा 'जिमि जब बिनु मीना' का भी तो पावन करना चाहिये। दशरथकी बड़ी खैची भावना है।

रामजीको बन गये अभी बहुत दिन नहीं हुए परन्तु राजाको एक-एक घड़ी युगके समान हो रही है।

हा रघुनन्दन प्रानपिरिस्ति । तुम बिनु जियत बहुत दिन नीते ॥

और अन्तमें—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुबर-विरह राउ गयउ सुरधाम ॥

मछुकीकी तरह तब-तबपकर प्राण देना इसीको कहते हैं। और प्रेमीकी सर्वोच्च दशा भी यही है। गोस्वामीजी कहते हैं—

त्रिभन-मरन-फनु दसरथ पावा । अण्ड अनेक अमल जसु छावा ॥

जियत राम-बिनु-बदनु निहाग । रामविरह करि मरनु सर्वो ॥

जीना उम्मीका सफल है जिसको मरना आता है। विरह-वेदनामें भी एक प्रकारका आनन्द होता है। अजगोपिकाओं-की विरह-न्यथा उसके अनेक भाव-अनुभाव राजा दशरथके भाव्यमें नहीं लिखे ये। वे 'सुरधाम' को सिधारे। मरते समय 'राम राम' मुखसे एक बार भी निकल जाय तो मुक्ति हो जाय और दशरथ 'राम राम' रटते मर गये और फिर भी केवल सुरधामके अधिकारी हुए ! इस बातमें भी भक्तिका एक रहस्य है। राजा दशरथको राम-दर्शन-जाबसा अभी बनी

हुई है और वह पूरी होगी। रावण-बध हो जानेपर उनको दर्शनसे तृप्ति होगी।

गोस्वामीजीने इसप्रकार राजा दशरथका चरित्र एक आदर्श प्रेमीका दिखाया है और इसी भावनासे उनकी बन्धना की है—

बंदौ अवध-मुआल सख प्रेम जेहि राम-पद ।

बिहुरन दीनदयाल प्रिय तनु तन इव परिहरेठ ॥

इससे तुलना करने योग्य और कोई चरित्र रामायणमें नहीं है।

संसार तो दुःखमय सदा रहेगा। मनुष्यमें कहाँ सामर्थ्य है कि घटना-चक्रकी गतिको जान ले वा उसको रोक सके। एक ही उपाय है जिससे मनुष्य सुखपूर्वक संसारमें रह सकता है और त्रिविध तापसे अपनी रक्षा कर सकता है। वह अमोघ उपाय भगवत्-शरणागति है—

मुखी मीन जहँ नीर अगावा । जिमि हरि-सगन न एका बावा ॥

शरणागतिके भावके साथ निरन्तर नाम-जप मुख्य साधन है। साधारण सांसारिक मनुष्योंके ही लिये नहीं, बर—

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरि-गुन सुनहि निरन्तर तेऊ ॥

बन्ध है वह पुनीत देश, जहाँके निवासियोंको पतित-पावन भगवान्की भक्तिका उपदेश प्राप्त हो। इसके द्वारा निगुण ब्रह्मको भी सगुण बनकर प्रकट होनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। जिनको धर्मका वह अमूल्य उपदेश प्राप्त हो उनसे बचभागी संसारमें और कौन हो सकता है ?

हिन्दूभक्तिको गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसा मार्ग दिखाया है जिसपर चलकर देव-दुर्लभ पद भी अनायास ही प्राप्त हो सकता है।

## राम-नाम

लेनेसे जिस रामनामके पाप-पुञ्ज होते हैं छार ।

जन्म-मृत्युसे रहित जीव हो जाता है भवसागर पार ।

जिसका उलटा नाम सदा जप व्याधा हुआ महामुनि भक्त ।

जिसके मधुर रूपका चिन्तन करते सदा सैलजासक्त ॥

सर्व-शीरोमणि उसी नामका अमृतरूपी प्याला ।

रे मन ! व्यर्थ भटकता है क्यों, पीकर बन मतवाला ॥

—मोतीदास ओमरे

## श्रीशुकदेवजी और रामायण

(लेखक—जी पी० एन० अक्षरनारायण अन्यर जी० ए०, बी०एच०)

१—आपकी आज्ञानुसार, श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव-कथित रामायणके कुछ ऐसे प्रसङ्गोंका वर्णन करूँगा जो मुझे बहुत प्रिय हैं तथा जिनसे मेरे आचरण सुधर गये हैं। 'कर्माप्यक्तुं ग्रहणाय पुंसान्' प्रभुकी आज्ञाएँ मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये होती हैं। भगवान्‌के चरित्रने हमें कैसा सुसंस्कृत तथा आगृत किया है, इस बातको जब हम व्यक्त करने लगते हैं तो हमें अनुभव होने लगता है कि श्रीराम अभी विद्यमान हैं और हमें निम्न कल्याणकी मार्ग दिखाता रहे हैं। वर्तमान दशामें भारतको श्रीरामके नेतृत्वकी महान् आवश्यकता है।

२—श्रीशुकदेवजीने श्रीरामके मुख्य संदेशका निचोड़ इसप्रकार बतलाया है—

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्ठैः ।

स्वपादपङ्कजं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥

( भागवत ९.११.१५ )

श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यके कण्ठकौसे विद्ध अपने चरम-कर्मजोंको भक्तोंके हृदयमें स्थापितकर परमवामको पधार गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके ये रक्तक चरण प्रायः मेरी आँखोंके सामने उपस्थित हो जाते हैं और मुझे पीवित प्राणियोंमें धूम-धूमकर उनकी सेवा करनेके लिये प्रेरित करते हैं। जब कभी मैं नंगे पैर अलती धूपमें धूमता हूँ तो प्रायः यह सोचकर कि श्रीरामचन्द्र और श्रीसीताजी भी मनुष्योंके प्रेमका काँटोंमें विचरकर करते थे, मेरा हृदय अमित उत्साह और उछालसे भर जाता है और मैं सारे भक्तोंको भूँच जाता हूँ।

एक बार तीर्थयात्रामें मुझे आधीरातके समय वनके बीच होकर जाना पड़ा। पहले तो मेरे मनमें कुछ भय-सा हुआ परन्तु तुरन्त ही मुझे यह स्मृति याद आ गयी—

अग्रतः पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्च महाकनौ ।

आकर्णपूर्णधन्यानां रभ्रतां रानलक्ष्मणौ ॥

'भाग्य, पीछे तथा दोनों ओर महाबली भगवान् राम और लक्ष्मण शर-सन्धान किये मेरी रक्षा करें।' मेरे मनमें यह निश्चय हो गया कि अब भी एककी वाक्छिणीकी रक्षाके लिये दोनों राजकुमार उत्पन्न हैं, मेरे नेत्रोंमें आँसू भर आये

और मेरा हृदय हर्षसे पूर्ण हो गया। मैंने सारे रास्ते उनको अपने साथ समझा तथा मैं आनन्दमें मग्न हो गया और मुझे मार्गमें किसी भी भयका अनुभव नहीं हुआ। श्रीरामके पावन चरण और उनका पुण्य सहवास इसी प्रकार देशके सब मनुष्योंको प्रेरित करे, जिससे वे भी श्रीरामके समान ही दुःखाकान्त मनुष्योंमें धूम और उत्साहसे उनकी सेवा करें।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य-निवास दण्डकारण्य पृथ्वीपरसे नष्ट होकर जनसमुदायके हृदयोंमें बस गया है, जिससे सारा राष्ट्र भागवत-धर्मसे विमुक्त हो जाता है। कुछ लोगोंके हृदय तो व्यर्थ शिक्षा, अप्यन्त स्वार्थपरता तथा आर्तजन्योंके प्रति उद्वेग और चञ्चल सहानुभूतिसे भर गये हैं, और कुछ लोगोंके हृदयोंमें अज्ञान, अन्धविश्वास, दरिद्रता तथा पुरुषार्थको नष्ट कर देनेवाले दुःखसमूह भरे हुए हैं। धर्मका स्थान अन्धविश्वासने ले रक्खा है और धर्मके स्थानमें केवल लम्बी-चौड़ी बातें कर ली जाती हैं। इसी कारण भारतभूमिके रक्षक मनु और सप्तर्षिोंने प्रजाको सन्मत्त करनेके लिये मानो दुःख और दाम्पत्यको खुकी आज्ञा दे दी है। मैं समझता हूँ कि वर्तमान दुःख और बन्धन राष्ट्रको उस भागवत-धर्मकी ओर खींच जानेके लिये जेनाबनोस्वरूप हैं जो यज्ञकी-स्वार्थ-त्यागकी-भावना तथा सबकी प्रेमपूर्ण सेवासे परिपूर्ण है। इसी यज्ञस्वरूप भागवत-धर्मको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें राष्ट्रके अम्युद्यम और सुखका प्रधान साधन बतलाया है।

श्रीमद्भागवतमें भी इसी यज्ञभावनाका वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने बसुनाके तीरपर स्थित ऊँचे वृक्षोंको दिखाकर अपने मित्रोंसे कहा है—

पश्यतैरान्महामासान्पार्थैकान्तजीवितान् ।

वातवृक्षान्तपक्षिमन्यहन्तो वारयन्ति नः ॥

एतान्जन्म मायन्त्यं देहिनामिह देहिषु ।

प्राणैर्गर्भैर्विण्ण वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥

( भागवत १०.२.२३-२४ )

'हे मित्रो ! इन सब महाभाग वृक्षोंको देखो ! इनका जीवन केवल वरोपकारकेही लिये है। स्वयं वायु, वर्षा,

धाम और हिमके प्रकोपको सहकर, वे उनसे हमारी रक्षा करते हैं। उन्हींका जीवन सफल है जो अपने माय, जन, बुद्धि और वाणीसे सदा परोपकारमें रत हैं।' अगले अध्यायमें भगवान् ने यह दिखाया है कि जिन्होंने यज्ञको संस्कार-विशेष बतलाया है वे भगवान् और सत्यसे दूर चले गये हैं और वे उनको पा नहीं सकते। इसके बाद ब्राह्मण-खिणोंको वापस लौटाकर उन्होंने यह दर्शाया है कि जीवनकी उन्नति उच्च सफलता भगवान् के प्रत्यक्ष शरीरके समीप रहनेमें ही नहीं है, बरं दुखी प्राणियोंके अन्तर भगवान् के प्रेम और प्रकाशको फैलानेमें है। प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा ही राष्ट्रीय समृद्धि की कुत्री है और इसीको भागवत-धर्म भी कहते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने बड़ी ही उत्तमनासे अपने सम्पूर्ण जीवनमें इसीका दिग्दर्शन कराया है। यदि भारतीय नेता आज केवल इसी भावको जागृतकर जनतामें काम करें और राष्ट्रके हृदयमें आत्मनिर्मिता, समन्वय तथा दूसरोंकी प्रेमपूर्वक सेवाके भाव भर दें तो केवल इसीसे देशमें सुख-समृद्धि हो जाय। प्रत्येक मनुष्य अबतक यथार्थ संयम नहीं करता, यज्ञकी भावनासे स्वधर्ममें स्थित नहीं होता और श्रीरामके फलटकविद्ध चरखोंको अपने हृदयमें पथ-प्रदीपकी भाँति प्रतिष्ठित नहीं करता, तबतक वास्तविक स्वराज्यकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

१-श्रीशुकदेवजीके रामायणका एक दूसरा अंश अत्यन्त ही आकर्षक और चरित्र-निर्माणमें सहायक है। उसमें रावणकी शत्रुके अनन्तर लड़ाकी यातुधानियोंद्वारा किये हुए प्रलापका वर्णन आता है। वे इसप्रकारके महत्त्वपूर्ण शब्दोंद्वारा उसके पतनपर प्रकाश करती हैं—

हा हताः स्म बवं नाथ ! लोकरावण रावण ।  
कं यथाच्छरणं लङ्का त्वदिहीना परार्तिता ॥  
नेवं वेद महामाग ! मवान् कामवशं गतः ।  
तेजोऽनुमादः सीताया येन नीतो दशामिमां ॥  
इतैषा विधवा लभ्या बयं च कुलनन्दन ।  
देहः कृतोऽजं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥

(भागवत ९ । १० । २६-२८)

'हे नाथ ! हे संसारको रूखानेवाले रावण ! हमारा सर्वनाश हो गया ! आह ! तुमसे बिहीन हो दूसरोंके द्वारा पक्षवित यह लङ्का किसकी शरणा लेगी ? हे महामाग ! तुम कामाग्नि हो सीताके पतिव्रतके तेज और प्रबल प्रभावको

नहीं जान सके। इसीसे आज तुम्हारी यह दशा हुई। हे कुलको आनन्वित करनेवाले, इसी कारण तुम्हारी लङ्का नगरी और इस तुम्हारी रानिर्वा विधवा हो गयी, और तुम्हारा शरीर गृध्रोंका भोजन बना तथा तुम्हारी आत्मा नारकी हो गयी।' काम-वासनाके विरुद्ध इनसे बढ़कर ओजस्वी, यथार्थ कलापूर्ण, सुन्दर गम्भीर भाव मुझे अन्यत्र कहीं नहीं मिले।

४-श्रीशुकदेवजीके रामचरित-चित्रणका तीसरा और अत्यन्त आकर्षक भाग वह है जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञोंका वर्णन किया गया है। वहाँ उन्होंने सच्चे ब्राह्मण, राजा और राज्यसम्बन्धी आदर्शोंकी विराट् व्याख्या की है।

भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकः ।  
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्महैः ॥  
होत्रेऽददाद्विशं प्राचीं ऋत्विजे दक्षिणां प्रभु ।  
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥  
आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ।  
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥  
इत्ययं तदलङ्कारबामोभ्यामवशेषितः ।  
तथा रात्र्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥  
ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।  
प्रीताः क्रिज्जावियस्तस्मै प्रत्यय्येदं बभाषिरे ॥  
अप्रतं नस्त्वया किन्नु भगवन् भुवनेश्वर ।  
यज्ञोऽन्तर्हृदयं विदय तमो हंसि स्वरोचिता ॥  
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायानुष्ठमेधसे ।  
उत्तमश्लोकधुरीण न्यस्तदण्डार्पिताग्रये ॥

(भागवत ९ । ११ । १-७)

तदन्तर सर्वदेवमय परमदेव भगवान् रामचन्द्रजीने आचार्यद्वारा बतलायी हुई विधिले परमात्माकी पूजाके निमित्त बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान किया। होताको पूर्व-दिशाका राज्य, ऋत्विक्को दक्षिणका राज्य, अध्वर्युको पश्चिमका राज्य और उद्गाताको उत्तरका राज्य दक्षिणामें दे दिया। बीचमें बची हुई पृष्ठी भी आचार्यको दे डाली। श्रीरामने सोचा कि केवल इच्छारहित ब्राह्मण ही वास्तवमें समस्त राज्यके अधिकारी होने योग्य हैं, क्योंकि स्वार्थहीन ब्राह्मण जरा-सा अंश भी अपने उपयोगमें न लाकर सबे दूस्तीकी भाँति सबकी मछाईमें ही उसका प्रयोग करेंगे। अतः भगवान् रामचन्द्रजीने अपने शरीरके



वस्त्राजहारोंके अतिरिक्त सभी वस्तुओंका दाव कर दिया । इसी प्रकार महारानी सीताने भी सब कुछ दे बाका । उनके शरीरपर केवल मंगल-सूत्र बच गया । श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा वात्सल्य और उदारभाव देखकर ब्राह्मणगण अत्यन्त प्रसन्न हुए । उनका हृदय प्रविष्ट हो गया । अश्रुपूर्ण नेत्रोंद्वारा वे समस्त पृथ्वी श्रीरामजीको लौटाते हुए कहने लगे, 'हे पृथ्वीपति भगवन् ! जब आपने हमारे हृदयमें प्रवेश करके अपने प्रकाशसे हमारा अज्ञानान्धकार हर दिया है तब ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे आपने हम लोगोंको नहीं दिया है ? हमें सब कुछ मिल गया है । हमलोग ऐसे महापुरुषके सामने सिर झुकाते हैं जो इन्द्रावरिष्ठ निःस्पृह ब्राह्मणको देवता समझता है । हे स्थितप्रज्ञ ! आप शुभकीर्तियुक्त पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं । आप वह महापुरुष हैं जिनके चरख-कमल उन्हींके हृदयोंमें रहते हैं जो दूसरोंको दुःख देना छोड़ चुके हैं ।'

इससे पता लगता है कि राजाओं और सबे ब्राह्मणोंमें कितनी उच्चकोटिकी निःस्वार्थता, निष्कामता तथा प्रेमकी भावना होनी चाहिये, तथा किस प्रकार दोनोंको सबके कल्याणके लिये द्रष्टियोंकी भाँति परस्पर सहयोग करना चाहिये । ऐसे राजा और ब्राह्मणोंको अपनी सम्पत्ति तो केवल ज्ञान, प्रकाश और भगवच्चिन्तन ही है । यदि भारत इनी दशाको पुनः प्राप्त हो जाय तो यह कैसा सुखी देश हो जायगा ? मैं समझता हूँ कि भूमिदेव होनेके कारण ब्राह्मणोंका यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वे इस पथमें अग्रसर हों । यदि वे अपने हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरख तथा उनके वचार्थ ब्राह्मण-प्रेमको चारख कर मार्गमें अग्रसर होंगे तो अब भी धर्मराज्य—रामराज्यको पुनः स्थापित कर सकेंगे । महाराज पृथुने श्रीमद्भागवतपुराणके चौथे स्कन्धके इच्छीसर्वे अष्टाध्यायमें स्पष्ट समझा दिया है कि राजवशादिका उद्भव और विनाश प्रजाकी धर्मनिहापर अवलम्बित है । हम स्वयं अपने अन्धके विधाना है ।

४—अहा ! देशकी उस समय कैसी स्थिति होगी जब श्रीरामचन्द्रजी धर्म या सत्पाचरखद्वारा इस देशपर राज्य करते होंगे ? इस विषयका एक सुन्दर चित्र श्रीशुकदेवजीने खींचा है—

राजे राजनि धर्मज्ञ सर्वभूतसुखावहे ॥

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि दीपमिन्दवः ।

सर्वे कामदुष्टा आसन् प्रजानी मरतर्षम ॥

नाधिष्ठाधिभारानिर्दुःखशोकभयहृमाः ।

मृत्युहन्तानिच्छतानासीद्भामे राज्यमेषां ॥

( भागवत १।१०।५२-५४ )

अब प्राचीमात्रको सुख प्रधान करनेवाले धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, उस समय वन, नदी, पहाड़, देश, द्वीप और समुद्र सभी प्रेमपूर्वक प्रजाको मनचाही वस्तु देते थे । आधि, व्याधि, जरा, भय, ग्लानि, क्लेश, दुःख और शोक विलकुल नहीं थे, यहाँतक कि क्षुधु भी प्रजाके पास उनकी इच्छाके विरुद्ध नहीं आती थी । 'जब भगवान् रामचन्द्रजी शासन करते थे तब देशकी ऐसी अवस्था थी, वह बात मृदमतिके समझमें नहीं आ सकती ।

जब प्रत्येक मनुष्य आत्म-सन्तुष्ट हो दूसरोंके कल्याणमें रत रहता है, तब देशभरमें वज्रकी आबनाका आधिपत्य हो जाता है, तथा सभी जगह सम्मन्वय और स्नेहापूर्वक सहर्ष सहकारिता तथा प्रेमका प्रसार हो उठता है । वस्तुतः वज्रभावना ही देशको आदर्श बनानेका भारतीय मार्ग है । श्रीशुकदेवजी, राहुर, रामानुज, गौराङ्ग, कबीर और अन्यत्र महामुख देशभक्तिहीन नहीं थे, वरन् उनका शिष्टार्थ 'राज-नीतिक दृष्टि' कहलानेवाली कोई वस्तु नहीं है । वे तत्त्व-दर्शी और सबे देशभक्त थे और उन्हींने वज्रकी भावना—प्राचीमात्रकी प्रेमपूर्वक सेवा-का अनेक प्रकारसे प्रचार किया, और वही एक मार्ग है जिसके द्वारा भारत और संसारकी सभी उन्नति हो सकती है ।

यह हमारे हाथकी बात है कि हम चाहे वज्रकी भावनासे उन्नति करें या विपरीत पथ अवलम्बनकर अशान्तिमय जीवन बितायें । किसी प्रकारके अहम्मन्वताके मार्गसे हम स्वायत्तता, कष्ट और पारस्परिक झोड़में फँस जायेंगे, और वह मार्ग भारतीय नहीं होगा । इससे हमपर भगवान्की कृपा नहीं होगी । किन्तु यदि हम वज्रकी सभी भावनामें स्थित होकर निःस्वार्थ सेवाके द्वारा सबका कल्याण करनेकी चेष्टा करेंगे तो वज्र और धर्मके आत्मा भगवान्का इस देशमें राज्य हो जायगा और कबि अपने सारे उपकरणों-के साथ ज्वांम हो जायगा । विद्वत् और अशान्तिके अवतार 'कबि'को महाराज परीक्षितने जो कहा था, उसे सुनिये—

न वर्तितव्य तदधर्मकन्दो धर्मज्ञ स्पृधेन च वर्तितव्ये ।

अद्यावत्तं यत्र यजन्ति यज्ञैः यज्ञधर्मं यजन्तिनविशः ॥

यस्मिन्परिमृगान्निज्यमानः ईज्यामूर्तिविज्ञां शन्तनोति ।

कामममोधान् स्थिरजज्ञमानां अन्तर्द्विर्वापुरिवैष आत्मा ॥

( भा० २।१७।११-१४ )

हे अधर्मके बन्धु ! तू इस महावर्त्ममें नहीं रह सकता, क्योंकि यहाँकी प्रजा धर्म और सत्य ( श्रीकृष्ण भगवान् ११ वें स्कन्धमें जिसे समर्थान कहा है ) पर अचलरूपसे आरुढ़ है। भूतमात्रकी निःस्वार्थ सेवामें अपनेको मुखा देने-वाले सेवापटु लोग इसप्रकारकी सेवाओंसे समस्त सेवाके स्वामीकी पूजा करते हैं। इस महावर्त्ममें स्वयं भगवान्, जिनका एकमात्र कार्य जीवोंके कष्टोंको हरण करना है और जो सम्मत्यतायुक्त सेवाके प्राण हैं, अपने उन यज्ञक्रिया-द्वारा आत्मविस्तृत होकर अर्वा करनेवाले सेवकोंका

कल्याण करते हैं और समस्त चराचरकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, क्योंकि वे वायुके सदृश सबके प्राण हैं और सबके बाहर-भीतर समानरूपसे व्याप्त हैं।

अतः भगवान् रामचन्द्रजीकी जीवनी सबके प्रति यज्ञरूपी भूतसेवाकी सच्ची भावनाको हमारे हृदयमें जाग्रत करे जिससे इस पवित्र भूमिपर पुनः प्रभुका साम्राज्य हो। तभी भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समृद्धिकी कुम्भी संसारको प्रदान कर अपने मिशनको पूरा करेगा।

## श्रीरामजीका शूर्पणखाके साथ व्यवहार

( लेखक:—पं० कृष्णदत्तजी मारदाज शास्त्री, आचार्य, बी०ए० )



रामचरित्रके रहस्यसे अनभिज्ञ कतिपय पुरुष रामचन्द्रजीकी जीलाओंमें दोष दिखाया करते हैं। शास्त्रीय सिद्धान्तोंके अविदित होनेसे ही ऐसे भ्रान्त पुरुषोंको शूर्पणखाके साथ भगवान् के व्यवहारमें अनौचित्य दिखायी देता है। वे कहते हैं कि श्रीरामको शूर्पणखाकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी

चाहिये थी क्योंकि रावण त्रिशुविजयी था, उसके साथ सम्बन्ध हो जानेसे उनको बहुत कुछ लाभ सम्भव था। सीताजीकी विद्यमानतामें भी शूर्पणखाके साथ वैवाहिक-बन्धनमें बद्ध होनेसे कोई हानि नहीं थी, क्योंकि बहुविवाह शास्त्रानु-मोदित है। स्त्रियोंको जो 'भवतीनां काम विहन्ता पातकी स्वात्' परवान इन्द्रसे मिला है उसके अनुसार भी श्रीरामजीको शूर्पणखाके साथ प्रेम करनेमें कोई बाधा न थी और यदि उन्हें ऐसा न भी करना था तो भी उस बेचारीकी बेसी दुर्दशा करना ठीक नहीं था, जीके नाक-कान काटना निन्दित तथा सम्मताके विरुद्ध है।

ऐसी-ऐसी अनेक शंकाएँ हैं जो तमोगुणप्रधान पाश्चात्य सम्प्रदायके समर्थकोंकी जिह्वापर विराजमान रहती हैं। भारतीय आदर्श क्या है? इस बातको नहीं जाननेके कारण ही वे ऐसी शंकाएँ उठाते हैं। असल,

रामजीने शूर्पणखाके साथ जो व्यवहार किया वह युक्त था, इस बातको सिद्ध करनेके लिये नीचे कुछ पक्षिर्वा खिली जाती हैं।

रामजीके लिये शूर्पणखा परकी थी। परपत्नियोंके साथ वृत्तांत करनेके विषयमें शास्त्रसम्मत है 'मानृवत्परदारेषु' अर्थात् अपनी धर्मपत्नीके अतिरिक्त जितनी भी स्त्रियाँ हैं सबको माताके समान समझो। इसी प्रकारकी एक दूसरी उक्ति है—

मानृवत् स्वमृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ये।

परदारेषु वृत्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

अर्थात् 'सज्जन पुरुष अपनेसे बड़ी वयवाली परस्त्रियोंको माताके समान, समान वयवाली स्त्रियोंको बहिनके समान और कम वयकी स्त्रियोंको पुत्रीके समान समझते हैं।' अतएव भगवान् पर-पत्नीके साथ विवाह कैसे कर सकते थे?

शूर्पणखा ब्राह्मण-वंशकी थी और उसपर भी विवाहिता थी। ब्राह्मणोंके साथ कत्रियका विवाह करना सर्वथा अनुचित है। अतएव रामजीने उसकी अवैध प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। यदि वह अविवाहिता तथा सवर्णा भी होती तथ्यापि श्रीरामचन्द्रजी उससे विवाह न करते, क्योंकि वे तो संसारमें एक-पत्नीव्रतकी मर्यादाको स्थापित करना चाहते थे।

श्रीरामको रावणके द्वारा देश-प्राप्तिके समान किसी लाभकी कल्पना उपहासास्पद है क्योंकि रामजीके लिये ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उन्हें प्राप्त न हो तथा जिसके प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो। वे तो पूर्णकाम हैं। श्रीरामचन्द्रजी संसारमें धार्मिक आदर्श स्थापित करनेके लिये प्रतुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए थे। उनको रावणके साथ सम्बन्ध हो जानेके

अनन्तर दो, चार, दस, बीस देशोंकी प्राप्ति अभीष्ट कैसे हो सकती है ? जिनकी आज्ञासे अनन्त आकाशमें नवजावली अग्रमत्तरूपसे यथास्थान अहर्निश घूम रही हो, उनको किसी कामनाके बशीभूत होकर रावण-जैसे दुष्ट पुरुषोंके साथ सम्बन्धके भाव दिखाना कैसे स्वीकार्य हो सकता था ?

इन्हीं क्षियोंको धरदान दिया था कि 'भवतानां काम विहन्ता पातकी स्यात्' परन्तु यह स्वपत्नीको लक्ष्यकरके ही कहा गया था अतएव श्रीरामचन्द्रजीपर ऐसा कोई दोष आरोपित करनेका अवसर भी नहीं है ।

शूर्पणखाने सीताजीको मारकर, रामजीसे बलात्कार अपनी बात मनवानेका जब विचार किया तभी रामजीने आदर्श नृपत्वका परिचय दिया था । शूर्पणखा माझ्या-कुञ्ज-वृक्ष यी और श्रीरामजी ये त्रिविक्रमभूषण । वह शास्त्र-विरुद्ध प्रातिक्रोम्य विवाहकी अभिलाषिणी थी, और प्रातिक्रोम्य श्री-संग्रहणमें न्यायानुसार पुरुषको शृणुद्वय दिया जाना चाहिये और यदि स्त्री पर-पुरुष-संग्रहणके लिये उद्यत हो तो राजा उसके नाक कान काट ले । ऐसी महर्षि वाशुबल्यजीकी स्पष्ट आज्ञा है:—

सज्जतानुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये त् मध्यमः ।

प्रातिक्रोम्ये बहः पुंसो नार्याः कणादिकर्तनम् ॥

अतएव श्रीरामजीने वाशुबल्यजीद्वारा जो उस उन्मार्ग-गामिनीको दण्ड दितवाया, सो शास्त्रसम्मत ही था ।

माता, पिता, स्नातक आदिकों द्वाराकर सभी पापाचारी राजाके लिये दण्डनीय हैं । जो राजा दण्ड देने योग्य पुरुषको दण्ड देता है, उसको अनेक वज्रोंका कवच प्राप्त होता है । कहा है—

यो दण्डयान्दण्डयेद्राजा सम्यग् दध्याश्च धातयेत् ।

इष्टं स्यात्कतुमिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः ॥

इसी प्रकार दूसरा बचन है—

कुलानि जतीः श्रेणीश्च गणाजानपदानपि ।

स्ववर्माचलितान् राजा विनीय स्थापयेत् पथि ॥

अर्थात् माझ्यादि कुलोंको, मूर्धावसिक्त आदि जातिधोंको, ताम्रवृक्ष आदि श्रेणियोंको, ऐलापुष्प (अथम्यवहारी) आदि गव्योंको कारक आदि जानपदोंको, धर्मसे अष्ट हुए जोगोंको राजा विधिपूर्वक दण्ड देकर सम्मार्गमें चलावे ।

नारदजीके मतानुसार दण्ड दो प्रकारका होता है । शारीरिक दण्ड और आर्थिक दण्ड । जहाँ जैसा दण्ड शास्त्र-वेत्ताओंने निर्धारित किया हो, वहाँ वैसा ही दण्ड देना चाहिये । शूर्पणखाने जो साहस (धोर-कृत्य) किया था उसके लिये उसे शारीरिक दण्ड ही मिलना धर्मशास्त्रसे सिद्धित था, ऐसी वृद्धिवाको यदि इसप्रकारका दण्ड दिया जाता है तो भविष्यमें उससे किसी ऐसे पाप बन पड़नेकी सम्भावना नहीं रह जाती है और वह सद्गुहस्थ बनकर जीवन व्यतीत करती है ।

पुनः देवताधोंको भवभीत करनेवाले, लोकको संभल करनेवाले रावणके उद्धारके निमित्त भगवान्को कुछ बहाना भी चाहिये था । विष्णुमुक्ती बहिनकी दशा देखकर ही रावणने श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्धका विचार किया था ।

अतः इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि शूर्पणखाके साथ ऐसा व्यवहार करनेमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने आदर्श सम्मता तथा आदर्श नृपत्वको ही प्रदर्शित किया है ।

### रघुबीरजीके सबे सेवक कौन हैं ?

मौह कम्मान संधान सुठान जे नारि-बिलोकनि बान में बाँधे ।

कोप-कसानु गुमान-अर्वा घट ज्यों जिनके मन आँख न आँखे ॥

लोम सबे नटके बस हूँ कपि ज्यों जगमें बहु नाच न नाँखे ।

नीके हैं साधु सबे तुलसी पे तेई रघुबीरके सेवक साँखे ॥

१—'नाऽदण्डयो नाम राजोऽस्ति धर्मोऽहिर्बान्तः स्वकाय' (शास्त्रवन्त्य)

एतच्च मातापित्रादिभ्यनिरिक्तेषु । तथा च स्मृत्यन्तरम्— अदण्डको मातापितरोरनामकपुरोहितपरिव्राजकबानप्रस्थाः भुतशोकशोचाचारवन्तः (मिताक्षरा)

## रामायणमें सत्याग्रह ।

(लेखक—जीवुत शार्दवशङ्करजी बामदार, रिटायर्ड सपनन\*)



ज सारे भारतवर्षमें सत्याग्रहकी उमङ्ग बढे जोरसे उठी हुई है। आवाकबूझ इससे परिचित हैं। देशके कोने कोनेमें आज इसकी ध्वनि गूँज रही है। अतः ऐसे सार्वजनिक विषयका नैतिक तथा ऐतिहासिक निदान—अर्थात् उसके सत्य, समय, आचार इत्यादिका विचार करना अधिकाधिक आवश्यक होता जा रहा है। सत्याग्रहके विषयमें सामान्यतः लोगोंकी धारणा है कि 'इसका प्रारम्भ सर्वप्रथम, इसी शताब्दिमें दक्षिण अफ्रिकामें हुआ है और इसके जन्मदाता महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गान्धी ही हैं। आपने ही सत्याग्रहका बीज दक्षिण अफ्रिकासे लाकर भारतवर्षमें बपन किया है। अभी वह सत्याग्रहका पौधा नवीन होनेके कारण सुकुमार-वृक्षमें है, परन्तु भारतके सौभाग्यसे वह अपने जन्मदाताके तत्वावधानमें है।' इस कथनमें हम केवल अन्तिम अंशको स्वीकार करते हैं, अर्थात् भारतके सौभाग्यसे ही सत्याग्रहका नेतृत्व महात्मा गान्धीको प्राप्त हुआ है। अवशिष्ट अंशमें हम सहमत नहीं। क्योंकि हमारे विचारसे तो सत्याग्रहकी आदि कल्पना भारतमें बहुत पुरानी है और वह सनातनसे चली आ रही है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसका समय-समयपर आविर्भाव, तिरोभाव और कुछ-कुछ रूपान्तर होता रहा है। आज जो हमें सत्याग्रहकी कल्पना अनूठी दीख पड़ती है इसका एकमात्र कारण यही है कि हमने अतिकालसे उसे व्यवहारमें जाना छोड़ दिया, अतएव हम उससे अपरिचित हो गये हैं। कभी-कभी यह शंका हुआ करती है कि भारतभूमि सत्याग्रहबीजके लिये उपयुक्त है या नहीं, इसका समाधान इसनेहीमें हो जाता है कि जब सरासे यह भूमि उस बीजके अङ्गुष्ठ रह गई तो आज विपरीत क्यों होगी? इसके लिये तो सत्याग्रह कोई नयी चीज नहीं है। अब मैं रामायणमें सत्याग्रहोंका कुछ विवरण करना चाहता हूँ।

'रामायण' शब्दका अर्थ सब जगह रामचरित ही माना

जाता है और व्युत्पत्तिके अनुसार वही ठीक है। अतः इसमें विस्तारकी कुछ आवश्यकता नहीं रह जाती। 'सत्याग्रह' सामासिक शब्द है; इसका विग्रह दो प्रकारसे होता है—(१) सत्यका आग्रह; (२) सत्यका आग्रह जिस क्रियामें हो वह क्रिया। यदि 'सत्य' और 'आग्रह' दोनों शब्दोंके अर्थ स्पष्ट हो जायें तो और भी अच्छा हो। सत्यका अर्थ प्रायः सभी मनुष्य जानते हैं किन्तु शब्दार्थका यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण वह जानना न जाननेके बराबर ही है। क्योंकि जो ज्ञान आनुमानिक और अभिनिविष्ट (साहङ्कार) होता है, वह शुद्ध नहीं होता। अर्नाभिनिवेश (निराङ्कार) तथा अनुभवसे ही विशुद्ध अर्थ-ज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो तत्त्वचि और अनुभवसे प्रमाणित हो वही यथार्थ सत्य है, मुझे सत्यका यही अर्थ अभिप्रेत है।

रहा 'आग्रह' शब्दका अर्थ। आग्रहकी व्युत्पत्ति होती है—(आ=अच्छी तरह; ग्रह=पकड़ना) अच्छी तरह पकड़ना। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि पकड़ना किन वस्तुको—अपनेको या अन्यको? उत्तर यह है कि 'आग्रह' शब्दमें इन दोनोंका ही समावेश हो जाता है। अतः इस प्रकारकी विचारप्रणालीसे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं तात्त्विक सत्यको पकड़कर उसमें दूसरेको भी गाँठना सत्याग्रह है। शास्त्रीय परिभाषामें इसका यह रूप बतलाया जा सकता है—'स्वयं तात्त्विक सत्यपर स्थित होकर दूसरोंको (असत्यपर आसक्त पुरुषोंको) उसी सत्यपर स्थिर करनेकी चेष्टाका नाम सत्याग्रह है।'।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि तात्त्विक दृष्टिसे यदि किसीको सत्यका अनुभव नहीं हुआ तो उसका सत्याग्रहमें प्रवृत्त होना कहाँतक न्यायसङ्गत हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि सबको उस सत्यका सहज ही अनुभव हो जाना साधारण बात नहीं है, इसके लिये बड़ी तपस्या चाहिये। अतः जिन लोगोंने उस सत्यको यथार्थरूपसे प्राप्त कर लिया है, उन महात्माओंके शब्दोंको कार्यमें परिणत करनेकी सम्यक्

\* आप अन्य भाषाभाषी होते हुए भी रामायणके बड़े प्रेमी हैं। आपने 'मानस'का मराठीमें अनुवाद किया है और 'मानसहंस' नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। —सम्पादक

। चेष्टा करनी चाहिये, उनकी आज्ञानुसार सत्याग्रहमें प्रवृत्त करवाए जब हम अपने मुख्य विषयपर आते हैं। रामायणमें होना उचित ही है। सत्याग्रहकी सामान्य समीक्षा करनेके सत्याग्रह कहे जाने योग्य प्रसंग निम्नलिखित हैं।

सत्याग्रह				रामायणोंमें परिणाम			
क्रमांक	किसने किया	किसके विरुद्ध किया	किस उद्देश्यसे किया	वाल्मीकि० रा०	अध्यात्म० रा०	गुजराती० रा०	
१	विश्वामित्रजी	...	राजा दशरथ	...	सफल	सफल	सफल
२	सीताजी	...	श्रीरामजी	...	आपसमें निपटारा	आपसमें निपटारा	आपसमें निपटारा
३	लक्ष्मणजी	...	श्रीरामजी	...	बन सहगमन	...	...
४	केवट	...	श्रीरामजी	...	पाँच पखारन	...	...
५	भरतजी	...	श्रीरामजी	...	श्रीरामजीको बनसे लौटाना	...	...
६	रामचन्द्रजी	...	वशिष्ठ समुद्र	...	सागरोद्ध्वंजन	...	...
७	शम्भूक	...	वैदिक धर्म	...	देवत्व प्राप्ति	...	...

जब इनका कुछ सुझावा सुनिचे—इसमें संक्षिप्त इतिहासके साथ सत्याग्रहोंकी विशेषताएँ और उनके अधिष्ठान दिखाये जायेंगे।

### १-श्रीविश्वामित्रका सत्याग्रह—

राजा होनेके कारण श्रीदशरथजीका यह कर्तव्य था कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे मुनियोंको अपनी तपस्यामें किसी प्रकारका विघ्न न उत्पन्न हो। परन्तु कुछ दिनोंके कारण श्रीदशरथजीमें इनकी शक्ति न थी कि वे ताड़का, सुबाहु आदि बलशाली राजसोंको मारकर विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा कर सकें। इस बातको ध्यानपूर्वक से विश्वामित्रजी जानते थे, इसीलिये उन्होंने राजा दशरथकी उपेक्षा करके राम-लक्ष्मणको उस कार्यके लिये भेज देनेका संकल्प किया। राजा इस मर्मको नहीं जानते थे, इसलिये आनाकानी करने लगे। इसपर वशिष्ठजीने बीचमें पड़कर दशरथजीके हृदयमें कर्तव्य-भावनाको जागृत किया, तब वहीं दशरथजी राम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके लिये भेजनेको तैयार हुए। इस सत्याग्रहका उद्देश्य राजनीतिक कर्तव्यका जागृत करना था, अतः इसका अधिष्ठान राजनीति था।

### २-श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीका सत्याग्रह—

इनके सत्याग्रहकी कथाएँ प्रसिद्ध ही हैं; इनके सत्याग्रहका जबसर रामचन्द्रजीका वनवासके लिये उद्यत होनेका समय है। वे सत्याग्रह प्रेमपर अधिष्ठित हुए जान पड़ते हैं, किन्तु वस्तुतः ऐसी ही बात नहीं है। विचारनेसे मालूम होता है कि इस प्रेमका मूल सेव्य-सेवक-भावमें है। अतः सेव्य-सेवक-भाव ही इसका अधिष्ठान है।

### ३-केवटका सत्याग्रह—

प्रायः सभी रामायणके ग्रन्थोंमें इस सत्याग्रहका प्रसङ्ग समान ही कथित-मात्रोंसे सुसंक्षिप्त किया गया है। गुसाईजीने उसमें—‘मोहि राम राउरि जानि दसरथ सपब’ इत्यादि पुरक प्रशंसा देकर इस वृत्तान्तको दिव्यस्वरूप प्रदान किया है। इससे गुजरातीवासीकी वात्र-निरीभ्रमता तथा प्रसंगावधानकी प्रवीणता स्पष्ट दीक्ष पड़ती है। इस प्रसङ्गमें कमकार लब्ध ही भरा गया है तथा उससे सत्याग्रहका स्वरूप बड़ा ही विश्लेषण हो गया है। केवटके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है? क्या गुसाईजीका उपर्युक्त पुरक न होनेपर इसे प्रेमका अधिष्ठान न मिलता?

इस बुविधामें महाकवि भवभूतिजीके निम्न श्लोकोंसे पूरी सहायता मिल सकती है—

न्यतिप्रति पदार्थानन्तरः कोपि हेतुः

न हनु बहिरूपाधीन प्रीतयः संश्रयन्ते ॥

अर्थात् ‘प्रेम बाह्य उपाधियोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता। एक आन्तरिक शक्ति वस्तुओंको संघटनके बराबर करती जा रही है।’ अतः आन्तर दृष्टिसे विचार करनेपर केवटके इस सत्याग्रहका अधिष्ठान हम अन्यतम प्रेम ही समझेंगे।

### ४-भरतजीका सत्याग्रह—

भरतजीके सत्याग्रहका अध्यात्म, वाल्मीकीय तथा अन्य रामायणोंमें वैसा महत्त्व नहीं है जैसा गुसाईजीके रामचरितमानसमें है। इसी कारण उनका तद्विषयक भाषा-प्रबन्ध ऐसा छिन्न, कथित और अनोहर हुआ है



त्रिश्वामितकौ राम-भिष्टा ।  
यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ।  
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ॥



कि जिसकी समता अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती । इस कथनकी सत्यता इसीसे हो जाती है कि अन्य सभी रामायणोंके रामजी 'दिर्नाभिमापते' के समान हैं, पर रामचरितमानसके रामजी भरतके प्रेम-वश 'दिश्याभिमापते' बन गये हैं और ऐसा होनेपर भी ज्यों-के-त्यों, बल्कि बढ़कर लोक-प्रिय और आदर्शनीय हुए हैं ।

भरतजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है ? इसका निर्णय करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि गुप्तार्जुनके भरत-भावमें स्वामि-सेवक, पिता-पुत्र, पूज्य-पूजक इत्यादि अनेक भावोंका बहुत ही सुन्दर संगम पाया जाता है । इसप्रकारके भावोंके मिश्रणका उदाहरण हमें श्रीशुकदेवजीकी श्रीमद्भागवतमें मिलता है । वहाँ भावके परस्परानुप्रवेशका नाम श्रीशुकदेवजीने 'भृत्य-भाव' रक्खा है, और वह है भी अत्यन्त मार्मिक । तदनुसार हम भी इस सत्याग्रहका अधिष्ठान 'भृत्य-भाव' ( न कि भक्ति-भाव ) निश्चित करते हैं ।

#### ५-श्रीरामचन्द्रजीका सत्याग्रह—

श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण समुद्रके विरोधमें यह सत्याग्रह किया था और यहाँ इस सत्याग्रहके दो पारस परस्पर विरोधावस्थामें बन गये थे, रामचन्द्रजीके सत्याग्रहके विरोधमें समुद्रने भी सत्याग्रह किया था, अतः उस सत्याग्रहका दक्षिण भाग भगवान् रामचन्द्रका था और वाम भाग समुद्रका । अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने उसे चौदहवाँ रत्न दिखलाकर अपना सत्याग्रह सफल किया । इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ व्यतिहित और समष्टिहितका अवरोध है वहाँ साम—प्रेमसे काम न चलनेपर दण्डका उपयोग करना अनुचित नहीं है । यह प्रसङ्ग पूर्यपेक्षा अधिक जटिल है अतः इसके अधिष्ठानके निर्धारणमें हमें यहाँ विस्तारकी आवश्यकता है, पाठक समा करें ।

रामायण या रामायणीय कथा-प्रबन्ध श्रीरामजी और रावणमें जिस प्रकार भेद निर्देश करते हैं उसका सार समीकरणके रूपमें इसप्रकार दिखलाया जा सकता है—

$$\therefore \text{स्वदेश} + \text{स्वातन्त्र्य} + \text{स्वराज} = \text{रावण} ।$$

$$\therefore \text{स्वदेश} + \text{स्वातन्त्र्य} + \text{स्वराज} + \text{लोकहित} = \text{श्रीरामजी}$$

इसलिये निष्कर्ष—

$$( १ ) \text{रावण} + \text{लोकहित} = \text{श्रीरामजी (यही सभी ग्रन्थोंके रामजी हैं)}$$

$$( २ ) \text{श्रीरामजी—लोकहित} = \text{रावण (यही सब ग्रन्थोंका रावण है)}$$

$$( ३ ) \text{श्रीरामजी—रावण} = \text{लोकहित ( यही रामजीका साध्य है )}$$

समीकरण (१) और (२) से स्पष्ट है कि दो विभिन्न ध्रुवोंके समान रामजी और रावणकी मनोरचना परस्पर विरोधिनी थीं । इससे यह निश्चित होता है कि यदि दोनों एक ही समय पृथ्वीपर रहें तो लोकहितका नाश हो जायगा—

$$\text{रामजी} + \text{रावण} = ( \text{रावण} + \text{लोकहित} ) + ( \text{रामजी—लोकहित} )$$

इस समीकरणके अनुसार लोक-हितका सर्वथा नाश हो जाता है । अतएव समीकरण ३ में निश्चित किया गया कि रावणका नाश केवल लोकहितके लिये अनिवार्य था । इसप्रकार सिद्ध हो गया कि श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान केवल 'लोकसेवा' थी ।

यदि थोड़ा-सा विचार विश्वामित्रजी और श्रीरामजीके सत्याग्रहका भेद समझनेके लिये किया जाय तो अप्रासङ्गिक न होगा । विश्वामित्रजीके माँगनेपर यदि राजा दशरथ श्रीराम और लक्ष्मणको न देंते, जैसा कि समुद्रने रामचन्द्रजीके साथ किया, तो विश्वामित्रजी भी 'शरादपि' नहीं तो 'शापादपि' का प्रयोग अवश्य करते । इसप्रकार दोनों सत्याग्रहोंका रूप एक-सा हो जाता, परन्तु अधिष्ठानमें श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका महत्त्व विश्वामित्रजीके सत्याग्रहमें बहुत आगे बढ़ जाता है ।

इस सत्याग्रहको लेकर एक महत्त्वका प्रश्न और उठाया जा सकता है, कि श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रके कञ्जेपर (बड़वानल-पर) हाथ डालनेको तैयार हो जाना अत्याचार क्यों नहीं कहला सकता ? सामान्य बुद्धिसे तो इसे सत्याग्रहका रूप न देकर अत्याचार ही कहना उपयुक्त समझा जायगा, परन्तु विशेष विचारकर देखनेसे इस समझकी भ्रामकता स्पष्ट हो जाती है—'प्रवृत्तिमें आचार उसे ही कहते हैं जो लोक-संग्राहक हो' इसी विचारको सम्मुख रखकर 'योऽस्मान् द्वेष्टि तं च वयं द्विभः' 'ये यथा मां प्रपन्नन्ते तांस्तथैव ममाम्यहम्' 'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्' इत्यादि आचार बतलाये गये हैं । इन आचारोंका उल्लङ्घन अत्याचार हो जाता है । प्रकृतस्थलमें रामचन्द्रजीने समुद्रसे सामनीतिका बर्ताव किया, उसे भी उनके साथ वैसा ही



करना उचित था किन्तु उसने उल्टे उनकी उपेक्षा की, जिससे उसका कार्य आचारको अतिक्रमण किया हुआ अत्याचार ही सिद्ध होता है। ऐसी अवस्थामें यह शङ्का ही नहीं रह जाती कि रामचन्द्रजीका कार्य आचारका था वा अत्याचारका। शास्त्र भी स्पष्ट कहते हैं—

क्षमा शत्रुषु मित्रेषु यतीनां सैव भूषणम् ।  
क्षमा शत्रुषु मित्रेषु राज्ञां सैव दूषणम् ॥

### ७-शम्बूकका सत्याग्रह.

इस सत्याग्रहका वर्णन केवल वाल्मीकिजीने किया है। महाकवि भवभूतिने उसे इसप्रकार कहा है—

रे हस्त दाक्षिण मृतस्म शिशोर्द्विजस्य ।

जीवातवे विमृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ॥

सांन्य यह कि ब्राह्मण-पुत्रके जीवनके निमित्त, शूद्र होकर मुनियोंका आचार करनेवाले अत्याचारीकी हत्या करना उचित है। इस प्रसङ्गमें रामचन्द्रजीका अभीष्ट केवल कर्मकाण्डीय संस्थाओंकी रक्षा करना था। अतः 'शम्बूकके सत्याग्रहका अधिष्ठान अधर्म था', ऐसा स्पष्ट हो जाता है। ॥

### सारांश तथा निष्कर्ष

उपयुक्त सत्याग्रहोंके अधिष्ठान और इनका निष्कर्ष इसप्रकार समझना चाहिये—

#### सत्याग्रही

१-विश्वामित्र

२-माता सीता

३-लक्ष्मणजी

४-कैवट

५-भरतजी

६-श्रीरामजी

७-शम्बूक

#### अधिष्ठान

राजनीति ।

सैन्य-सेवक-भाव ।

मेध्य-सेवक-भाव ।

अनन्य प्रेम ।

भृत्यभाव ।

लोक-सेवा ।

अधर्म ।

इस विवरणका निष्कर्ष इसप्रकार निष्काशा जा सकता है—

\* शम्बूक देवत्वकी प्राप्तिके लिये तप करता था, यही उसका सत्याग्रह था, परन्तु था मयांशुदरिण—धर्मभिरुद्ध, इससे उसकी भगवान् श्रीरामने मार डाला। परन्तु हमने उसका देवत्व-प्राप्तिके उद्देश्य तो सिद्ध हो ही गया। भगवान्ने मारकर 'शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुत्तमम्' शूद्रको उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि शम्बूक अपने प्राण देकर भी सत्याग्रहमें सफल हुआ। इसका 'अध्यात्मसमाधेय' (७ ६।२६) में स्पष्ट वर्णन है। अवश्य ही अधर्मयुक्त होनेमें यह अदृष्ट नहीं माना जा सकता। कष्टर रामचरितमें भी श्रीरामने शम्बूकको सप्रणपत्याके फलरूप 'वैराज' नामक त्रेत्रेय अभिनवर पुण्य लोकमें जानेको कहा है। —सम्पादक

१-केवल राजनीतिमें ही नहीं प्रत्युत अन्य परिस्थितियोंमें भी सत्याग्रह किये जा सकते हैं।

२- सत्याग्रह वैयक्तिक तथा सामूहिक दोनों रूपमें हो सकता है।

३-सत्याग्रह न्याय तथा सदाचारमूलक होना चाहिये।

४-सत्याग्रह असूया (Revenge) आदि दोषोंसे किञ्चित् भी जिस व होना चाहिये।

५-सत्याग्रहका लक्ष्य अत्याचारीका सुधार होना चाहिये।

६-प्रेमसे प्रेम और वैरसे विरोध, यही सत्याग्रहके सम्बन्धमें प्रधान निबन्ध है।

७-सत्याग्रहकी परमावधि 'कार्य वा साधयेत् देहं वा पातयेत्' है। इतना आग्रह तो सत्याग्रहीमें होना ही चाहिये।

### शङ्काएँ:—

(१) सत्याग्रहके पूर्व, अत्याचारीके अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम मर्चादा कौन-सी है?

(२) सत्याग्रह आरम्भ करनेके बाद, अत्याचारीके अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम सीमा कौन-सी है?

(३) 'सठ प्रति शाठ्यम्', 'कण्टकं नैव वगडकम्' इत्यादि वाक्योंके अवलम्बन तथा प्रचार करनेका अधिकार सत्याग्रहीको है या नहीं? है तो कब? यदि नहीं तो क्यों नहीं? आग्रह अनुरोध है कि विशेषज्ञ सज्जन उपर्युक्त शङ्काओंके समाधानद्वारा लेखकोंको उपकूल करें!

### जाँचना हो तो रामको ही जाँचो।

जग जाँचिये कोऊन, जाँचिये जो तिय जाँचिय जानकी-जानहिरे ।

जेहि जाँचत जाँचकना जरि त्राह, जे जारनि जंतर जतानहि रे ॥

गनि देखु विचारि निमीषनकी, अरु भानु हिये हनुमानहि रे ।

तुम्सी अनु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कांति कृपानहि रे ॥

## श्रीमद्रामायणका महत्त्व

( लेखक—श्रीबालकराम विनायकजी, कनकभवन, जयोध्या )

धन्य धन्य वह भूमि जहाँ जन्मे रघुराई ।  
बाह्यमयी मूर्ति सुचारि अतुलित छवि छाई ॥  
दुलसी-सुत-सुखि-मति दुलास प्रकट सुलरासी ।  
विश्ववास भगवान् सदा निजतन्त्र विलासी ॥  
शिव मन मानस इस मारुती प्रानहुँ प्रियतम ।  
बाह्यबलिक मुनि ज्ञेय ध्येय बायस परमोत्तम ॥  
धन्य सा तुलसी-बट विसाल धनि आश्रम सुन्दर ।  
'नन्दलाल' सो धन्य घड़ी नित्ये नखत सुवासर ॥

—स्वामी नन्दलालजी



ज्यके ग्रन्थ प्रत्येक भाषाकी शोभा बढ़ाते हैं और महाकाव्य भी सभी समुच्चत भाषाओंमें मौजूद हैं, परन्तु आध्यात्मिक काव्य दुर्लभ वस्तु है, क्योंकि काव्य-कला और अध्यात्म-शास्त्रका स्वाभाविक सम्मिश्रण ही प्रकृत आध्यात्मिक काव्यकी विशिष्टता है। जो काव्य वास्तवमें आध्यात्मिक उगके नहीं हैं, उनके अन्दर काव्य और अध्यात्मवादका जो सम्मिश्रण होता है, वह निरा विश्वास और कृत्रिम होता है। स्वाभाविक सम्मिश्रण वहीं होता है जहाँ अध्यात्म-सम्बन्धी विचारोंका भीतरी उमङ्गसे प्रादुर्भाव होता है। जिसके अन्तस्तत्त्वने सत्यको खोज निकालनेके लिये कवित्वका जोश जल्की है।

भयउ हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥

चला मुमग कविता सरितासी । राम विमल जस जल भरितासी ॥

किसी आध्यात्मिक सिद्धान्तके लिये बाह्य अलङ्कारके रूपमें कविताके वेपकी अपेक्षा नहीं है। भीतरी प्रेरणासे ही उसे काव्यके रूपमें प्रस्तुतित होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब आध्यात्मिक विचार उछटी पाजसे चञ्चल उस सीमातक पहुँच जाते हैं, जहाँ विरोधवात्मक बुद्धिके द्वारा प्रत्येक कार्यके कारण हैंकनेका काम बन्द हो जाता है और जहाँ सत्य, शुद्ध आत्मसंवेदनके उच्चतम शिखरसे सहज ज्ञानके रूपमें स्वयं प्रकाशित हो जाता है। इस आदर्शके आध्यात्मिक काव्य विरच-साहित्यमें केवल हो है—

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस। एक संस्कृत वाङ्मयका समुच्चय रच है और दूसरा हिन्दी साहित्यका मुकुटमणि। एक स्वयं भगवान्का भीमुख-वचनामृत है और दूसरा भगवान् शंकरके हृदयमें अवतरित श्रीराम-चरितामृत है। एक भगवत्स्वरूप वेदव्यासजीद्वारा सङ्कलित और सम्पादित होकर जगत्में प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महर्षि वाल्मीकिके साक्षात् अवतार श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी-द्वारा निर्मित होकर लोकमें प्रख्यात हुआ। एककी जन्मस्थली चर्मचेत्र कुरुक्षेत्रकी रथभूमि है और दूसरेकी अपराजिता अवधोष्वापुरीमें अवस्थित श्रीतुलसी-चौरा। एककी जन्म-तिथि मार्गशीर्षकी सुफिदा एकादशी है और दूसरेकी श्रीराम-नवमी। दोनों साक्षात् भगवत्-स्वरूप हैं। दोनों तत्त्वतः भी एक ही हैं। क्योंकि वैदिक भक्ति-मार्गके जिस गहन सिद्धान्त- ( अर्थात् ज्ञान-कर्म तथा अव्यक्त-व्यक्तके समुच्चय एवं ईश्वरभक्त विरहको समझते हुए, विरागपूर्वक कर्म करते हुए निर्लेपत्वकी प्राप्ति ) की व्याख्या गीताने की है, वही मानसमें भी श्रीरामचन्द्रजी, श्रीभरतजी एवं श्रीबिदेहराज जनक आदिके चरित्रोंद्वारा प्रकट किया गया है। व्यक्त और अव्यक्तके एकीकरणको 'नाम-माहात्म्य' में मलीभाँति विस्तारवाया गया है और साधु-समाजद्वारा ज्ञान-कर्म-भक्तिका समुच्चय भी प्रकट किया गया है। महर्षि बरिष्ठादिके कर्मों-द्वारा ज्ञान-कर्मका एकत्र भी दर्शाया गया है तथा यथास्थान कर्म-समर्पणका भाव भी दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त मानसमें त्रिविध बन्धुका बर्णन भी किया गया है जैसा कि गीताने किया है और जो त्रिविध मानव श्रेणियाँ गीतामें रखी गयी हैं वे ही ( त्रिविध मानव-श्रेणियाँ ) विषयी, साधक और सिद्ध श्रीरामचरितमानस में भी रखी गयी हैं। इन त्रिविध देव श्रेणियोंके अतिरिक्त आसुर-श्रेणीका बर्णन भी जिसप्रकार उपनिषद् और गीतामें है उसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी है। जिस प्रकार द्विविध माया और उससे परे आत्माका बर्णन गीताने किया है उसी प्रकार मानसने भी किया है। मनुष्य-रूपमें ईश्वर-पूजाका प्रचार प्रत्यक्षरूपसे गीताने ही किया है। यद्यपि वेदोंमें भी इसकी सज्जक पायी जाती है, परन्तु मानसमें एक विशेषता यह प्रकट की गयी है कि पुत्र, सखा,

भाई, शत्रु, पिता आदि किसी भी भावमें मनुष्यरूपधारी भगवान् की पूजा की जा सकती है और उससे आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति भी हो सकती है। मानसमें एक विशेषता और है। गीताने जितने आदर्श रखे हैं वे सभी वैयक्तिक हैं परन्तु मानसमें श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श पारिवारिक है जिसके कारण यह ग्रन्थ लोगोंको और भी प्रिय हो गया है।

भगवान् वेदव्यासजीके बनाये हुए सर्वोत्तम मेवे श्रीमद्भागवतके साथ मानसकी तुलना करते हुए राघवदासपुर कुमार श्रीकोशलेश्वर प्रताप साहि कहते हैं—‘भक्तोंके लिये विशेष लाभदायक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत और तुलसीकृत रामायण हैं। जिज्ञासुके लिये इन्हीं दो पुस्तकोंमें सब कुछ भरा है। सृष्टिका पूरा भेद, ज्ञान, विज्ञान और भक्तिके सभी अङ्ग, परब्रह्म परमात्माकी अपूर्व स्तुतियाँ इत्यादि सभी कुछ सारमय वाक्य और रहस्ययुक्त ईश्वरीय खीजाएँ, जो मनुष्य वाणीद्वारा प्रकट कर सकता है, इन पुस्तकोंमें हैं, परब्रह्म श्रीमद्भागवत उच्च श्रेणीके मननशील पुरुषोंके लिये ही लाभदायक है। श्रीरामचरितमानस शिषित, अशिषित, अपद, सुपद दोनोंका हाथ धान्ने हुए है, वह दोनोंको सन्मार्गपर ले चलकर मनुष्यजीवनके लक्ष्यतक पहुँचानेका दावा रखता है। विशुद्ध प्रेमरस, सभी दीनता और कान्यके चमत्कारसे यह ‘सुरुषसुकोमल मंथु’ हो रहा है। भक्त-हिन्दुओंके जीवनमें रामचरितमानस दूधमें चीनीकी तरह मुलककर व्याप्त हो गया है। रामचरितमानसके रूपमें हिन्दू जातिकी सरस्वतीका जागरण हुआ है। अपने-अपने बुद्धि-बलके अनुसार सब श्रेणीके भक्त उसके मनोहर पदोंका मर्म समझते और उससे आनन्द-विह्वल होते हैं। जनसाधारणको आदर्श जीवनकी परम उदाहरण सरलतासे देनेमें मानस अद्वितीय है। यह हिन्दी-भाषाका गौरव और हिन्दूके कयडकी शोभा है। यह कब-कुहरमें अमृतकी बर्षा करता है और मानस-जगत्में सौन्दर्यका विकास करता है। यह बुद्धिके लिये सुगम और हृदयके लिये परम रोचक है। स्त्री-पुरुष किसी भी दशामें इस सिद्ध तथा भक्तिपरायण महाकाव्यमें लाभ उठा रहे हैं। सद्गुरु श्रीहनुमान्जीकी कृपासे मानस महान् महिमाका मन्दिर हो गया है।’

सुप्रसिद्ध साधु श्री टी० एच० वात्स्यानीजी कहते हैं—‘काव्य-कलामें श्रीतुलसीदासजी शोकसपिण्डसे कम नहीं हैं और उस अक्षय्य प्रदके जखनेमें श्री राम-कृष्णादि नामोंसे विख्यात हैं, आपने उनसे वाजी मार ली है, इस विवेचनामें वे

उत्तरे बढ़े-बढ़े हैं। वे जनताके जीवनके एक अंश हो गये हैं। कविकी सजीवताके प्रमाणमें यह एक उच्च कोटिकी पूजा-मैट कही जायगी, शोकसपिण्ड परिहृत-वर्गके कवि हैं, परिजमी, दुःखपीडित, अभिलाषपूर्ण उस्ताही जनताके नहीं। अपने निजी जीवन-व्यवहारमें या काव्य-विचारमें वह प्रजा-पक्षपाती नहीं हैं। तुलसीदासजीने अपने जीवन और भजनमें दीन-मुखियों और गये-गुजरोंकी आध्यात्मिक उन्नतिमें सहानुभूति दिखलायी है।’

जिस समय मानसका आविर्भाव हुआ था, उस समयके तत्त्ववेत्ताओं और भगवद्भक्तोंने मानस एवं मानसकारके प्रति जो विचार प्रकट किये थे उसका थोड़ा-सा विवरण भी करा देना उचित समझता हूँ, क्योंकि रामायणके इतने प्रचारका कारण बही है। सर्वप्रथम महाभागवत भगवान् भूतनाथकी सम्मति लीजिये। जिस समय काशीपुरीमें, श्रीविरवनाथजीके मन्दिरमें, रात्रिके समय ग्रन्थकारद्वारा मानसकी प्रति रखी गयी थी, प्रातःकाल मन्दिर-पट खुलने पर पुस्तकपर दिग्भावरोंमें खिन्ना हुआ यह वाक्य लोगोंने देखा था—‘सत्त्वं गिर्यं मुन्दरम्।’ मन्दिरमें उस समय बही ज्वनि भी सुनायी पकी थी। मूख गुसाईं चरितमें खिन्ना है—

पार्थी पाठ समाप्त कैके धरं, शिवलिङ्ग दिग रातमें ।

मूर्ख पण्डित सिद्ध तापस जुर जब बट मुठेठ प्राप्तमें ॥

दक्षिण तिरपिन दष्टिसे सब जने, कीन्हीं सही शंकरम् ।

दिग्भाकर सां किन्ना पठे पुनि मुने सत्य शिवं मुन्दरम् ॥

इस अलौकिक घटनाका प्रभाव जनताके हृदयपर कितना पड़ा होगा, इसका अनुमान भी हम आज नहीं कर सकते। इसमें सन्देह नहीं कि उसी समयसे लोग मानसको वेदके समान स्वतःप्रमाणयुक्त समझने लगे, लैक्यों प्रति-लिपियाँ बढ़ावक उनारी गयीं और देशभरमें अदा-भक्तिकी बाढ़-सी आ गयी।

गोस्वामीजीके विद्या-गुरु-बन्धु श्रीनन्ददासजीकी वाणी है—

श्रीमनुकुमारदास स्वगुरु-भ्राता पद बन्दे ।

शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाद अनन्दे ॥

गमचरित जिन कीन्ह तापत्रय-कलिप्रलहारी ।

करि बायीपर मही आदरेठ आपु पुरारी ॥

राखी जिनकी टेक मदन-मोहन बनचारी ।

वात्सीकि अवतार कहत बेहि सन्त प्रचारी ॥

नन्ददासके हृदय-नयनको खोलिख सोई ।

उज्ज्वल रस टपकाय दिगो जानत सब कोई ॥

**आचार्य श्रीस्वामी हितहरिवंशजीका कृप्य है—**

चातक भाव अनन्य एक रति गति पहिचानी ।

हृदकि देवधुनि वारि टेक स्वाती पै ठानी ॥

गज तज घनदयाम सहै सब पंख फुलाये ।

अनुपम साहस विसद प्रेमपन सिद्धि दिखाये ।

कवि कंकिल पूरव हते व्रता जे हरिवंसहित ।

हरिनाम स्वाति कलिमोहि तेइ तुलसिदास चातक उदित ॥

**गोस्वामीजीके प्रेमी श्रीअबदुरहीम खानखाना ( रहीम कवि ) कहते हैं—**

रामचरितमानस विमल सन्तन जीवन प्रान ।

हिन्दुआनका बंद सम जमनहि प्रगट कुरान ।

**महाकवि महात्मा सुरदासजी लिखते हैं—**

धन्य भाग मम सन्त-सिरामनि चरनकमल तकि आयउँ ।

बदन प्रसाद सदन दग-भरि लखि मुख-सन्दोह समापउँ ॥

दयाहाष्टित मम दिसि हेरेठ तत्त्व-स्वरूप लसायो ।

कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम संशय मूल नसायो ॥

हरिलीला गाथो तेहि सुनि तनु पुलकित मानसवीर ।

सुधासमान बचन कहि पोषेठ सुमिरत सिय-रघुबीर ॥

श्रीतुलसी सुचि संत-समागम अद्भुत अमल अनूप ।

सुरदास जीवन-फल पायो दरसन जुगल स्वरूप ॥

**वात्सल्यभाव-भूषित श्रीरूपारुख स्वामी कहते हैं—**

कृतयुग सिंधु निकष तहाँ विधि वाक्य एक नवि ।

व्रता उपज्यो फेन तहाँ कवि आदि पोतरवि ॥

द्वार विषम कराल लहरि रोगादि भ्रमर सत ।

व्यास आदि मुनिपुंगव तहाँ तेहि काल उबारत ।

काल पाप मूल करषत कलुष विषम लहरि निसिद्धि न भरत ।

श्रीतुलसिदास वानी विमल चढ़ि जहाज नर भव तरत ॥

**परम रसिक रसखानजी ( जिनको स्वामी जन्मखानजी संकीर्णवाखेने यमुनातटपर तीन वर्षतक श्रीरामचरितमानसकी कथा सुनायी थी ) कहते हैं—**

सुर तरु लतान चारि फल है फलित किधौ

कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी ।

किधौ चिन्तामनिनकी भाल उर सोभित

विसाल कंठमे धर हैं ज्योति झलकावनी ॥

प्रभुकी कहानी ते गोसाईंकी मधुर वानी

मुक्त-सुखदानी 'रसखान' मनभावनी ।

खांडकी खिजावनी-सी कंदकी कुड़ावनी-सी

सिताको सतावनी-सी सुधा सकुचावनी ॥

**अब गोस्वामीजीके पीछेके महानुभावोंकी सम्मतिवाँ नीचे बाँधिये । स्वामी श्रीमधुसूदन सरस्वती और अकमालकार गोस्वामी नाभाजीकी उक्तियाँ अति प्रसिद्ध हैं, इसलिये उनका उद्धरण नहीं किया गया ।**

**अबोच्चाजी बड़े स्थानके आचार्य श्रीस्वामी रामप्रसादजी दीनबन्धु कहते हैं—**

चातक-वृत्ति सो सार्विक रूप

मना नभ निमल कार्तिकहीको ।

पातक-पुञ्ज सिराई विलोकत

दीनदयालु बिबै-रस फीको ॥

पूजामें अंग प्रसंग मों कान सों

ध्यान धरे रघुनन्दन-सीको ।

बधु मों रूप धरे हरि पक्ष

प्रतक्ष सरूप गोसाईंजीको ॥

बंदको विधान लिये पुरन पुरान मत

मानत प्रमान साधु-संत सब ठाईके ।

प्रेम-रस भीने पद परम नबीने कहि

दीने हैं अखंड कवि भेद जहैं ताईके ॥

दया दरसावै सरसावै प्रेम पुरे जल

हिया हुलसावै जौन पाहनके नाईके ।

स्वामीको चरित और बापुसो बसाने कौन

वृत्ति बह नोट परी तुलसी गोसाईंके ॥

**काशीजीके सुप्रसिद्ध प्रकाशद विद्वान् श्रीदेवतीर्थ ( काट-जिह ) स्वामीजी लिखते हैं—**

वाल्मीकि, नारद, कपिल औ अगस्तदेव

कहौ बहु भेव पै समुझमें न आई है ।

भक्तिरस चाखो चाहे बूझे बिन सूझे काहा

निपट अबूझको निकट दरसाई है ॥

दास आस पूरे करै संसय सब दूरे करै  
प्रभु पद पूरे करै सुजन सोहाई है ।  
चारि षट दस वसु उदधि अगाध मधि  
सुधासे निकासे मूल तुलसी गोसाई है ॥

असरन-सरन एक तुलसीके चरन हैं ।  
राम-भक्ति दायक औ ज्ञान-मान-हरन हैं ॥  
भाषामे रामचरित कियो ललित बरन हैं ।  
अगम अर्थ सुगम कियो पढ़त बरन-बरन हैं ॥  
बात्मीकि व्यास वाक्य यदपि फलित फरन हैं ।  
इतनो रस तहाँ कहाँ चुबत परन-परन हैं ॥  
देव श्रावि कि आदि कवि कि वेद रूप धरन हैं ।  
जाके बस सीय-राम-रुखन तरन-तरन हैं ॥

धर्माचार्योंकी सम्मतियाँ ऊपर संक्षेपतः दे दी गयीं। अब  
कुछ हिन्दीके पुराने कवियोंकी उक्तियाँ सुनिये। सुकवि  
'प्रधान' जी कहते हैं—

जती कृपा करी महावीरजू गोसाईं तू पे  
तेरी न दुलारा रामजूडू संग भाईको ।  
सबै निज तत्व राम-आनकीको तत्त्व सांग  
एकै बार सौपि दीन्हों सबै सो कमाईको ।  
केते कवि भये केते अहं केते होनेवाले  
काई न 'प्रधान' ऐसी पाई प्रनुताईको ।  
वेद औ पुरानको मान राखैं ताँतो लेला  
जौलो न प्रमान भाखैं तुलसी भाषाईको ॥

तुलसी गोसाईंजीकी कविता न गार्ज जात  
नवो स्रष्ट जम्बूद्वीप तम्बूसी ननार है ।  
भाषत 'प्रधान' सत पुरुष औ मूरुखको  
सबै सुखदाई जाकी ऐसी कविताई है ।  
मधुर विकासी कल फौसी नमरासी हो  
कामना प्रदासी भसी सा नु नन पाई है ।  
ऊल-सी, मयूष-सी पंगुष-सी पुषन-सी  
देवनकी रखन-सी भूषन-सी भाई है ॥

सोक भक्षिता है इहलोक दाक्षिता है  
परलोक रक्षिता है सिद्धिता है सब आईकी ।

प्रीतिकी पिता है अनरीतिकी पिता है  
परतीति संचिता है चर्चिता है काल साईकी ।  
भाषत 'प्रधान' दिल-दोष दरिता है  
रसरूप भरिता है सरिता है शम्भु साईकी ।  
मुक्ति गर्विता है रामभक्ति भविता है  
विश्वहेतु सविता है कविता है या गोसाईकी ॥

कविबर 'किंकर-गोविन्द' जूकी उक्ति देखिये :—  
सरि जात सखित असखित निसरि जात  
करि जात भोग भव-बन्धन कतरि जात ।  
तरि जात काम सरि बरि जात कोष करि  
कर्म कलिकाल तीनि कष्टक भभरि जात ।  
भरि जात भाग्य भाग 'किंकर-गोविन्द' त्योंही  
ज्योंही तुलसीकी कविताई पै नजरि जात ।  
जार् जात दम्भ, दोष-दूषण दरारि जात  
दुरि जात दारिद दुकालहूँ निसरि जात ॥

भक्तिकी प्रभूतिका है मुक्तिहूकी वृत्तिका है  
भवकी विभूतिका है सुख उक्तिका है जू ।  
सर्वा रम्भा मेनका है हिमवन्त-कन्यका है  
कामधेनुका है कंधा मातु रेणुका है जू ।  
अमो-मूरिका है मोह-तम-दूरिका है  
हरिपद-धूरिका है कंधो काम धूरिका है जू ।  
सुर-भारता है कं विमुक्त चरिता है कंधो  
'किंकर-गोविन्द' तुलसीकी कविता है जू ॥

इसी तरह कविबर 'तोष' भव्य भाषनासे आबित  
होकर लिखते हैं—

यह खाने चतुष्फलकी सुखदानि  
अनूपम आनि दिखे हुलसी ।  
पुनि सन्ननके मन-भृंगनको  
अति मंजुक माह लसी तुलसी ।  
अरु मानुषके तारबे कहैं 'ताप'  
भई भवसागरके पुल-सी ।  
सब कामन-दायक काम-दुहा  
सम रामकथा बरनी तुलसी ॥

देखिये, कविबर 'महाराज'के कथनमें कितनी  
वास्तविकता है—

अबलें सब नेम, धर्म, संयम सिराव जते  
माता-पिता बालकको वेद न पढ़ावते ।  
आमिष-अहारी व्यभिचारी होते भारी लोग  
कोऊ रघुनाथजूकी चर्चा न चलावते ।  
छूटि जते नेम-धर्म आश्रमके चारों वर्ण  
ऐसे कलिकलमें कराह दुःख पावते ।  
होते सब कुचाली सो सुचाली भनै 'महाराज'  
जंय कवि तुलसीदास भाषा न बनावते ॥  
**'बेनी' कविकी उक्ति भी इसी प्रकारकी है—**  
वेदमत सोपि सोपि सोपिके पुरान सबै  
सन्त औ असन्तनको भेद को बतावते ।  
कपटी कुराही कूर कलिके कुचाली जीव  
कौन रामनामहूकी चर्चा चलावते ।  
**'बेनी' कवि कहै मानो-मानो हो प्रतीति यह**  
पाहन-हियेमें कौन प्रेम उपजावते ।  
भारी भवसागर उतारते कवन पार  
जोपै यह रामायण तुलसी न गावते ॥  
**भक्त कवि 'ठाकुर' की उक्ति धानेक दृष्टियोंसे**  
**विचारणीय है—**  
वेद-मत-सम्मत पुरान अरु शास्त्रनको  
प्रेमको मिलास ईतिहास परसति है ।  
सोभा सोलमयी प्रतिमयी गीतिमयी नीति  
बड़ेई प्रमान सो प्रतच्छ दरसति है ॥  
**'ठाकुर' कहत धनि तुलसी तिहारी बानी**  
अकह कहानी रससानी सरसति है ।  
चन्द-सी, चमेली-सी गिरा-सी गंगधारहू-सी  
मवा मंगमयी रामयश बरसति है ॥  
**जीपरमानन्दजी कुछ और चढ़-बढ़कर कहते हैं—**  
कैषो सिद्धि सार बगराने देस-देसनिमें  
कैषो गणरायजूकी बुद्धि सरसाई है ।  
कैषो सुरसरिता निहारि निज चौथोपन  
दौन हेतु पाय नव रूप दरसाई है ॥  
कैषो मुक्तिरानी विधरानी मौन-मौननिमें  
कैषो परमानन्द तुलसी-कविताई है ।  
कैषो रघुनाथकी दयालुता प्रतच्छ हैकै  
पतित उधारिबेको रूप धरि आई है ॥

**राजर्षि श्रीरघुनाथसिंहज्ज देव (रीवाँ नरेश) कह**  
**गये हैं—**  
कविनकी नीकी अति जीकी भावतीकी उक्ति  
फीकी परी धार जो अमीकी-सी लगत की ।  
भारतीके दन्तनकी मीसी-सी रचि है रचि  
ब्रह्मगीकी ही की जम भी की जोड़ सतकी ॥  
रघुनाथ श्रुति विमलीकी लीक लीकी लोक  
विरतिकी लोकी भगतिमें भगतकी ।  
प्रेमकी नदीकी दरी छेमकी हृदीकी भरी  
बानी श्रीगोसाईंजीकी जीवन जगतकी ॥  
बंदिक प्रमान जाको वेदको बदत त्यों  
पुरानिक प्रमानमें प्रमान जासु गावै है ।  
देश-देश-वासी निज निज अक्षरन माहि  
छियो है उतारि वृद्ध-बालक पढ़ावै है ॥  
कहाँको कहीं मैं जात जमलो जुड़ाय जात  
ऐसो को न जाको चौपाई चारि आवै है ।  
तुलसी-रचित राम-चरितको रघुनाथ  
सोचत बदत राम उर धसि जावै है ॥  
राम-पद-गति विरजत निकसिकें बेगि  
ब्रह्म, रुद्र, मत्त ऋषि सीसपै सोहावै है ।  
बात्मिकि सुख भवनाथ के महीको मंडि  
जहुँ दिसि गसिक महोदधिको धाई है ॥  
सगर-दुखन जग-जीवन तरन-हेतु  
मकर-प्रसाद हिमगिरि प्रगटाई है ।  
रघुनाथ राम-कथा भगतखंड भूम भलि  
भागीरथी तुलसी भागीरथ बहाई है ॥  
बोयो विधि बीज रघुनाथ जस कामतक  
कुम्भज बसिष्ठ साखा पल्लव लगायो है ।  
व्यास मुकुन्द आदि किसलै कुमुद कीन्दे  
बात्मिकि सुफल अमरु दरसायो है ॥  
माधव धुरीणाचार्य रामानुजाचार्य आदि  
बीनि-बीनि फल ग्रन्थ पथमें धरायो है ।  
रघुनाथ तुलसी सनेहसों परोसे पानि  
सीतापति सेवक निवत ऋषि आयो है ॥

प्रसिद्ध रामायणी पं० श्रीरामगुलाम द्विवेदीजी लिख गये हैं—

जय जय श्रीगुलसीकी बानी ।  
 विसद विचित्र चित्र पद मंडित भुकि भुकि बरदानी ॥  
 लीन्हो वेद-पुराण-शास्त्र-पत मुनिजन ललित कहानी ।  
 ज्ञान, विराग, ब्रह्म-सुख-जननी करम धरम नय सानी ॥  
 उरित भई जा दिनते जगमें तबते बुधन बखानी ।  
 अखिल अवनिमंडल परि पूरित को अस जो नहि जानी ।  
 प्रगटी राम-चरन-रति जहँ तहँ भूरि विमुखता मानी ।  
 राम-गुलाम सुनत गावत हिय आवत सारंगपानी ॥  
 राम-भक्ति रमाको प्रगट पय पारावार  
 सदगुन आभारको नगनाधिराज है ।  
 महामुनि हंसनि की मानस महेश मन  
 बेष विधु विप्रव्रत मोह खग बाज है ॥  
 वेद अवतार औ सिंगार भारतीको भव्य  
 भाग्यको भंडार जग-जगधि जहाज है ।  
 बदत गुलाम राम धर्मको धवल धाम  
 रामायन नाम मय ग्रन्थ सिरताज है ॥

साहित्याचार्य पं० श्रीअम्बिकादत्त व्यासजीने क्या ही बख्शा क्या है—

अंग्रेजी, फारसी, फर्सी, जर्मनीहूमें  
 राम-ललितन की कहानी दगमल है ।  
 सब पाठशालनमें सारनके बागनमें  
 पोथीके अटालनमें रामई लिखल है ॥  
 रात्र-दरबारन दुकान अन्मालनमें  
 बालकी बहारनमें हेत सोई बान है ।  
 मुख्य जपटटुते रामको लिखाये नाम  
 तुलसी गुसाई यह नेरी करामत है ॥  
 गहुँ कलकी करि कपटी कुचाली मूढ  
 बागु-बागु नातो गहि पटक पछारेंगो ।  
 तुलसी गोसाईजूके काव्यके किन्ना सो काढ़ि  
 दोहरा दुनली-सी बन्दूकनसो मारेंगो ॥

कवि अम्बादत्त सोरठाके सैफ साफ करि  
 छंदनके छरासों गरब गहि गारेंगो ।  
 चारु चउपाइनके बोले-बोले बाकू लेइ  
 आज तोहि टूक-टूक काटि-काटि बारेंगो ॥  
 हूनि गये पानीमें मरन्द अरविन्द संग  
 फूटिगे अनार दास देह सिकुराई है ।  
 सूख गये ऊख गरि गये नवनीत भीत  
 बीनी हू हठीली गाँव-गाँव लात खाई है ॥  
 तून गहो मिसरी बतासे भयं हलकेसे  
 अम्बादत्त कवि मुरसाई त्यों मलाई है ।  
 लखिके गुसाईजूके काव्यकी मधुरताई  
 मुबाहू लजाई सुरलाकको सिबाई है ॥  
 तै ते रसरासिनको सत तिन्हें धोरि-धोरि  
 जगुति मथनियाँ सो मथि-मथि डारिये ।  
 काढ़िके मधुरताकी माखनकी गोली तामो  
 मज्जुल्ला मिसरी तै सुभग सँवारिये ॥  
 कहै कवि अम्बादत्त गुन अलंकारनके  
 मेवा डारि ताकां पुनि अधिक सुधारिये ।  
 तुलसी गुसाईजूके मानस रामायनके  
 एक-एक आखरपै सोऊ बरि रसिये ।  
 मोह-ममताकां मद-मग्गरकी मन्दताकी  
 मूढताकी मोहहूकी मारनी-सी दरमो ।  
 पूतना पिमाचां प्रेन पंगनकां पाजिनकी  
 भूत बच्छ राच्छसकी जुगुम जहर-सी ॥  
 कवि अम्बादत्त कहै तुलसी गुसाईजूकी  
 कविता अपूर्व अमीकी धार बरसा ।  
 परम दयालनो पखंडिनके मंडलको  
 भुकि जुबतीको अहै मन्त्र बसकिर-मो ॥  
 डगर-डगर अक नगर-नगरमौहि  
 कहनि पमारी रामचरित अवन्तकी ।  
 कहै कवि अम्बादत्त रामहीकी लीनल सो  
 मरि दीनी भीर सब चाहलि-पहन्तकी ॥  
 मूढनते ब्राह्मण त्यों मूरखते पण्डित त्यों  
 रसना दुनाई यवै जै-जै नलि-नलि की ।  
 नमको अगाध पाप-पुलको नसाव आज  
 तुलसी गोसाई बाक काट लानी कलिनी ॥

अयोध्याजीके प्रसिद्ध सिद्ध सन्त बाबा बनावदासजी लिखते हैं—

बन्दों पद तुलसी गोसाईं महाराजजीका  
कसिराज उदधि जहाज अवतार हैं ।  
जीवनमें दाय्य रघुनाथ निर्माण किये  
जाकी मति षण्ड भवसागरमें पार है ॥  
रसि लीनो सकल पुरान श्रुति शास्त्रबीज  
ना तां बूझि जान मरजाद मौलधार है ।  
पंथी रीति रहस महान तीन काल नाहीं  
बनावदास बहत प्रचारि बाण-बार है ॥

मराठी भाषाके प्रख्यात कवि, 'केकावाळि' के कर्ता श्रीमोरोपन्त 'मयूर कवि' ने एक 'श्रीतुलसीदासस्तव' लिखा है, उसकी नीचे उद्धृत की गयी कुछ आर्थाभासे ज्ञात होगा कि मयूरजीके अन्तःकरणमें गोस्वामीजीके विषयमें कितना आदर था—

श्रीराम-पदान्ज-अंगि तुलसीदास हा सदा गावा ॥ १ ॥  
श्रीवल्लभकि च शाला श्रीतुलसीदास, रामयश गाया ।  
तन्निच प्रेम गमाच क्वाणी वाणी तजीच वशगा या ॥ २ ॥  
भाचें मुंप्रम-भवन कवन निववितं सदा बुवा सरमें ।  
हें जां जां सेवावं, तो तो संन्यासि गमें, सुवा-सरसे ॥ ६ ॥

अर्थात् तुलसीदासजी मानो श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कमलका रस घूसनेवाले अमर हैं । हमें उनकी निरन्तर स्तुति करनी चाहिये । राम-यश-गान करनेमें श्रीतुलसीदास-जी मानो मूर्तिमान् श्रीवाल्मीकि ही हो गये हैं । इसीलिये उनकी बाणी, जो प्रेमरसकी खानि थी, महाकवि वाल्मीकि-की बाणीके ही सदृश उनके वशमें थी । उनका कान्य मानो उत्तम प्रेम-मन्दिर है, जो ज्ञानियों और पवित्रतोंको निरन्तर अपनी सरसतासे शोभा और सुन्दरतासे तृप्त करता है । क्योंकि अ्यों-अ्यों इस मन्दिरका भोग किया जाय—अ्यों-अ्यों इसके प्रेम-भक्ति-पूर्ण कान्य-रसका भोग किया जाय—त्यों-त्यों वह असूतकी तरह सेव्य ज्ञात होता है अर्थात् पीयूष-पानका-सा आनन्द मिळता है ।

इसी कारण श्रीनाभाजीके शब्दोंमें कहना पड़ता है—

'कलि कुटिल जीव निस्तार दित वाल्मीकि तुलसी भयो ।'

'गीताके बाद यदि किसी ग्रन्थके देखोद्वारका समुचित मार्ग दिखलाया है तो इस गोस्वामीजीकी रामायणही ने ।

इसमें भगवद्भक्ति और सांसारिक सदाचारकी इतनी उत्तम शिक्षा दी गयी है कि वह और किसी ग्रन्थमें नहीं पायी जानी ।'

अन्तमें विदेशी विद्वान् डाक्टर ग्रिगर्सनकी सम्मति सुन लीजिये—

'भारतवर्षके इतिहासमें तुलसीदासजीका मुख्य अमूल्य है । उनके ग्रन्थके पाश्चिह्यको अलग रहने दीजिये, उनकी सर्वसाधारण ग्राहकतापर ही दृष्टि कीजिये, जिसका पंजाबसे भागलपुर और हिमालयसे नर्मदा पर्यन्त चारों बर्यावाले आदर करते हैं, सो वास्तविक ध्यान देने योग्य है । सारे हिन्दू-समाजमें राजा, रज्ज, उच्च, नीच, बाबू, युवा, वृद्ध सबके मुँहसे यह रामायण सुनायी देती है और सबमें समभावसे पढ़ी, सुनी और आदरणीय समझी जाती है । तीन सौ वर्षसे अधिक हुए यह रामायण आर्य भारतवासियोंके जीवन, व्यवहार और बोलचालमें सर्वथा मिलजुल गयी है । ऐसा न सोचना चाहिये कि लोग हमें केवल कान्य-रसके प्रेमसे अथवा आश्चर्यताके कारण ही देखते अथवा पढ़ते हैं । इसे तो धर्मशास्त्रके सदृश पवित्र और प्रामाणिक मानते हैं । जैसे यूरपके पादरी 'बाइबिल' को आदरणीय समझते हैं वैसे ही आर्य लोग इसकी अर्थादा मानते हैं । वह करोड़ों मनुष्योंका शास्त्र हो रहा है । पवित्र चाहे वेद और उपनिषदोंका अन्यास करें और थोड़े बहुत अन्य व्यक्ति पुराणोंपर अपना विश्वास जमावें, परन्तु मध्यदेशके पठित अथवा अपठित दोनों श्रेष्ठियोंके मनुष्योंका असंख्य समुदाय इसी तुलसीकृत रामायणको अपना मुख्य जीवनसर्वस्व समझता है । निस्सन्देह मध्यदेशके लिये इसे सौभाग्यका बड़ा कारण समझना चाहिये कि जिसने शैव-सम्प्रदायके तान्त्रिक व्यवहारसे इस देशका रक्षक किया । इस देशके मूल रक्षक स्वामी रामानन्दजी हुए । जिस पतित व्यवहारसे बङ्ग देश अन्न गिना गया उससे उन्होंने इस देशको बचा लिया । किन्तु तुलसीदासजी ऐसे उस धर्मके रक्षक हुए कि पूर्वसे पश्चिम (और उत्तरसे दक्षिण) तक स्वामी रामानन्दजीके उस सद्धर्मको फैलाकर उसपर लोगोंका पूर्णरूपसे विश्वास करा दिया ।

'वाल्मीकिजीने भरतजीकी धर्मपरायणता, लक्ष्मणजीका भ्रातृ-स्नेह और सीताजीके पातिव्रत धर्मकी प्रशंसा की है, परन्तु गुसाईं तुलसीदासजीने उन्हें उदाहरण बनाकर दिखाया है । कालिदासजीने अपनी मनोहारिणी कविताके केवल आचारके लिये श्रीरामचन्द्रजीका निरूपण किया है

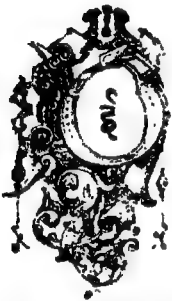


परन्तु बाबा तुलसीदासजीने अपने माननीय ईश्वरके चरणों-पर अति नम्रतापूर्वक चिरस्थायी सुगन्धित पुष्पोंकी माळा परोकर अर्पण की है। यहाँ एक बात और बर्णन करने योग्य है जिसपर कदाचित् किसी आर्य पाठकने ध्यान भी न दिया होगा। वह यह है कि वे ही सर्वप्रथम भारतीय महाकवि हैं जिन्होंने अपने पूर्वभूत कवियोंकी उपमा न लेकर प्रकृतिरूपी पुस्तकसे अपनी सब उपमाओंको लिखा है। वे इतने भारी तपस्वेता थे कि उनके बथार्थ और सरल-सरल पद भी बड़े-बड़े टीकाकारोंकी समझमें न आये।'

हालके द्विवेदी, चतुर्वेदी, शुक्ल, मिश्र-बन्धु,  
गुप्त, दीन, रामहित, मेही, रत्नाकरजू।  
रंग और अनंग, रसरंगमणि, पाठकजू,  
नवलबिहारी, शर्माजू, नवनगरजू ॥  
इन्दु, श्री विन्दु, अरविन्द, नेहलता, गांधी,  
गद्य-पद्य-लेखक मरिन्द, शक्ति, चामरजू।  
निज-निज भावसां गोसाईं गुन-गान कीन्हे,  
छिपे नहीं छपे पत्रिकान बीच सादरजू ॥

## रामायणसे राजनीतिक उत्थानमें सहायता।

(लेखक—राज बहादुर भरदार माधवराव विनायक किये एम० ए०, एम० आर० ए० एम०, डि० ग्राहम मिनिस्टर, होल्कर स्टेट )



साकी १६ वीं शताब्दीके अन्तसे १७ वीं शताब्दीतक महाराष्ट्रमें जितने भी सन्त-कवि हुए, उनमें जिन्होंने धर्म-रक्षणा-द्वारा परतन्त्रताका मूलोद्बोध करनेमें जो कुछ प्रयत्न किया था उसकी उत्थापनामें रामायणकी कथाओंका बहुत कुछ उपयोग किया गया है। इन्होंने मुसलमान और पोर्तुगीज आदि यूरोपियन जागोंको राजसोंकी और महाराष्ट्र वीरोंको भगवान् रामचन्द्रजीके सैनिकोंकी उपमा दी थी। उस समय प्रायः सभी सन्त-कवियोंने रामायणकी कथाओंका भराठीमें बर्णन करना प्रारम्भ कर दिया था। इस उपक्रमका प्रारम्भ सबसे पहले श्रीएकनाथ महाराजने किया। यद्यपि उनका प्रधान उद्देश्य अध्यात्मरामायण-वर्णित तत्त्वज्ञानका ही जनतामें प्रचार करना था तथापि श्रीरामचन्द्रजीके पुण्य चरित्रकी मुख्य-मुख्य बातें उन्होंने बड़े अच्छे ढंगसे वर्णन की हैं।

राजनीतिक उत्थानमें रामायणका सबसे अधिक उपयोग छत्रपति शिवाजी महाराजके गुरु समर्थ श्रीरामदास स्वामीने पूर्णरूपसे किया, उन्होंने बड़े जोरदार शब्दोंमें बड़ी ही सुन्दर शैलीसे इस कथाका प्रभावोत्पादक वर्णन किया है कि यद्यपि रावण अत्यन्त शक्तिशाली, ऐश्वर्यसम्पन्न और विद्वान् था परन्तु दुराचारी होनेके कारण उसका विनाश श्रीरामचन्द्रजीने वानरोंकी सहायतासे कर दिया। इसीके साथ-साथ स्वामी रामदासजीने अपने विभिन्न मठोंके

द्वारा श्रीरामचन्द्रजीके परम अनन्य भक्त बल-वीर्य-निधान श्रीहनुमान्जीकी भक्तिका भी जनतामें खूब प्रचार करवाया। यहाँतक कि उन्होंने अपने उपदेशोंसे जनताको इस बातके लिये बाध्य किया कि वह भी श्रीहनुमान्जी-सी शक्ति प्राप्त करे। हनुमान्जीके महाचर्यका गौरव सिद्ध करते हुए उसका भी सर्वसाधारणमें प्रचार किया। आपने अपने अनेक लेखोंमें उपर्युक्त दोनों बातोंपर बड़ा जोर दिया है। इसीके साथ श्रीरामचन्द्रजीके सत्यवादिता, एकपत्नी-व्रत आदि आदर्श और पवित्र गुणोंका गौरव-गान करते हुए आपने जागोंको यह शिक्षा दी कि मनुष्यपर कितना भी महत्त्व क्यों न आ जाय परन्तु वह अपने शीलका परिचारा कदापि न करे।

स्वामीजी श्रीरामदासजीने अपने 'दासबोध'नामक ग्रन्थ-में छत्रपति शिवाजीके सम्बन्धमें स्थान-स्थानपर जो कुछ उल्लेख किया है उसका मननपूर्वक विचार करनेसे यह ज्ञान होता है कि आपका अभिप्राय यह बतलाना था कि छत्रपति शिवाजी भगवान् श्रीरामचन्द्रका ही अनुकरण करते हैं। उदाहरणार्थ, जैसे श्रीरामचन्द्रजीने विजयलक्ष्मके लिये जिसप्रकार देवीकी उपासना की थी, उसी प्रकार छत्रपतिने भी तुलजा भवानीको प्रसन्न करनेके लिये प्रार्थना की। सुप्रसिद्ध चित्तौड़गढ़में श्रीतुलजा भवानीका मन्दिर है, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस कुलमें छत्रपति उत्पन्न हुए थे, उस सूर्यवंश—सीसौदिवा-कुलकी कुलदेवी

भवानी माता ही थी। श्रीरामदास स्वामीने अपने स्फुट प्रकरणोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

श्रीरामदासजीने स्वरचित कविताओंमें यह दिखलाया है कि जिसप्रकार रावणका ऐश्वर्य अत्याचार पूर्ण था उसी प्रकार 'औरंगबा पापी' का है, और जैसे श्रीरामजीने कुछ वानरोंकी संघशक्तिसे सहायता प्राप्तकर उसका समूल संहारकर धर्मरक्षा की थी, वैसे ही क्षत्रपतिने भी अपने शत्रुओंको परास्तकर धर्मकी रक्षा की और समस्त नीर्यक्षेत्रोंको निर्भय कर दिया। इस बातका वर्णन उन्होंने अपने उस पत्रमें बड़ी ही उत्तमतासे किया है जो क्षत्रपति शिवाजीके पश्चात् क्षत्रपति शम्भाजीके नाम भेजा गया था। उनका 'आनन्द-वन-भुवन' नामक काव्य 'देश-प्रेम'के वर्णनमें सुप्रसिद्ध 'वन्दे मातरम्' से किसी प्रकार भी कम नहीं है, प्रत्युत देशकी स्थिति बतलानेमें उससे कहीं बढ़कर है।

राजनीतिक उद्यानमें रामायणसे जो शिक्षा प्राप्त हो सकती है, महात्मा गाँधीजीके कथनानुसार वह यही है कि किसी भी हालतमें सत्यको हृदयमें नहीं हटाना चाहिये। श्रीरामचन्द्र इस सिद्धान्तके सर्वोच्च आदर्श हैं। पिताके वचनका पालन करनेके लिये उन्होंने प्रसन्नतासे राज्यका त्यागकर वनके कष्ट सहना पसन्द किया। उनकी सत्य-प्रियताके प्रभावसे ही उन्हें जंगली वानर-जातिकी अभूत-पूर्व सहायता प्राप्त हुई। सङ्कटमें धर्मपालन उनका आदर्श गुण था। उन्होंने एक-पक्षी-व्रत ग्रहण किया था और सीता देवीकी अनुपस्थितिमें भी उस व्रतको बड़ी ही उत्तमतासे

निभाया तथा किसी भी परिस्थितिमें उसका त्याग नहीं किया। संघशक्तिको बढ़ावा, वानरोंके जो भेद थे अर्थात् जम्बूक, सुग्रीव और बाकि आदिमें जो परस्पर भेद थे, उन्हें बड़ी ही बुद्धिमान्नीसे निपटाकर उन सबको एक सूत्रमें बाँध दिया और फलतः उनकी सहायतासे महान् वज्र-सम्पन्न दुर्धर्ष रावणका विनाश कर दिया। सहकारसे कितना बड़ा काम हो सकता है यह बात समुद्रपार सेतुकी रचनाकर आपने जनताको प्रत्यक्ष दिखाया ही। चरित्रका प्रभाव कैसा पड़ता है वह तो श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे भलीभाँति दृष्टिगोचर होता ही है। प्रजाके समुत्थानके लिये श्रीरामचन्द्रजीने सीतादेवीरूप सर्वस्वका परित्याग कर दिया। सारांश, कि जोकाप्रगल्भ्यमें जो गुण होने चाहिये, श्रीरामचन्द्रजीने अपने बर्तावसे उन सबको मूर्तिमान् करके दिखाया दिया।

रामायणमें वर्णित चरित्रोंका मनन करनेसे सत्य, संघशक्ति, चरित्रबल, भावना-जागृति, ध्येय पावन आदि गुणोंका देशके राजनीतिक उद्यानमें कितना महत्त्व है और इनको कौन-सा स्थान प्राप्त है—यह बात भलीभाँति जानी जा सकती है। जिसप्रकार १६ वीं या १७वीं शताब्दीमें उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखकर साहित्यकी रचना की गयी थी, आज भी देशोद्धारके लिये वैसे ही साहित्यके निर्माण करनेकी अत्यावश्यकता है। साथ ही उपर्युक्त दृष्टिसे रामायणके अध्ययन करनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है, इससे भी खूब लाभ हो सकता है।

### रामायणसे उच्च भावोंका प्रादुर्भाव

जगत्में अनेक काव्य-ग्रन्थ हैं परन्तु आचार और काव्यको कोई भी कवि इसप्रकारकी दृढ़ता, मनोहरता और रसिकतासे नहीं बाँध सका। ऐसे प्रभावशाली ढंगसे धर्मका सजीव उपदेश देना एक रामायणका ही काम है। यही एक काव्य है जो हमारे हृदयोंमें सत्यके प्रेमको ऐसी उत्तमतासे उत्पन्न कर देता है, कि हम रामायणको पढ़कर कुछ-से-कुछ बन जाते हैं। हममें ऊँचे ऊँचे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, और वे सब गुण जो मनुष्यकी उत्कृष्टताके आभूषण हैं, हमारे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। सत्याचरण, पितृभक्ति, पातिव्रत-धर्म, पति-धर्म, पिता-माताका स्नेह, विनय, धैर्य, दयालुता आदि मानवगुणोंका ऐसा कौन सा चित्र है जिसके यथार्थ स्वरूपको कविने इस ग्रन्थमें अपनी जादू-भरी लेखनीसे चित्रित नहीं किया हो। रामायणके देखनेसे प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति भारतके प्राचीनतम एवं आन्तरिक भावोंसे हुई है। अतः इनसे अधःपतित अवस्थामें पड़े हुए सभी लोगोंको पुनर्जीवन प्राप्त होता है।

—प्रीति (रामायणके अनुवादक)

## मानसमें ज्ञान और भक्ति

( लेखक—पं० श्रीकृष्णमीशरजी पाठक )



कि और ज्ञानमें कौन श्रेष्ठ है यह बताना सरल नहीं है। भाषामें जिस, परमार्थ-चिन्तनसे विमुक्त, हम अल्पज्ञ मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है ? कृत-भाषा-शाली, संसार-त्यागी, परम मेधावी ऋषि-मुनि-आचार्यगण भी इस विषयके सिद्धान्तोंमें एकमत नहीं हैं। कोई कहते हैं ज्ञान श्रेष्ठ है तो कोई कहते हैं भक्ति श्रेष्ठ है। शास्त्र, पुराण एवं बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें इस विषयके प्रचुर विवेचन मिलते हैं पर उनसे एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचना कठिन है। हाँ, इतना तो अवरुध ही सभीको स्वीकार करना पड़ेगा कि भक्ति और ज्ञान दोनों ही पथोंसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है—अथ-स्वरूप परमत्मा-की प्राप्ति हो सकती है।

यद्यपि उपर्युक्त 'भक्ति और ज्ञान'का विवेचन कठिन है तथापि इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीके मनको लेखकने जैसा समझा है, उसे कुछ युक्तियों सहित उपस्थित करनेका प्रयास किया जाता है। आशा है सहृदय पाठकगण छटता जमा करेंगे।

भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने प्रधान ग्रन्थ श्रीराम-चरित-मानसमें इसका एक अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है। इस विवेचनमें उन्होंने रूपक और उपमाके आश्रयसे इन दोनों—'भक्ति और ज्ञान'—में अन्तर दिखलाया है। यह प्रकरण उक्त ग्रन्थके उत्तरकाण्डमें 'ज्ञान-दीपक'के नामसे प्रसिद्ध है। पूरा प्रकरण पाठकोंको उक्त स्थलपर देखना चाहिये। यहाँपर उसके कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं—

ग्यानहि भगतिहि नहि करुं भदा । उभय दुरति भव समवेक्षदा ॥

ग्यान विराग बोग विनयना । ये सब पुरुष मुनः हरिजाना ॥

× × ×

पुरुष त्यागि सक नहि कहैं जे विरक्त भति और ।

न तु कानी जे विषय बस विमुख जे पद रघुबीर ॥

मो मुनि ग्यान-निधान, मुग्धनयनी बिनु मुख निरखि ।

बिकरु होहि हरिजान, नाहि विष्णु माया प्रगट ॥

× × ×

माह न नहि नरिहके रूपा । पत्रगारि यह नंति अनुषा ॥

भावा भगति मुनहु प्रनु ठोऊ । नाहि बगें जनि सब कोऊ ॥

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी । माया लखु नरेंकी विचारी ॥

भगतिहि सानुकूल रघुराया । तसे तेहि दरपति भति भावा ॥

ज्ञान और भक्तिमें (इनके कक्षमें) अन्तर नहीं है; क्योंकि दोनों ही संसारसे मुक्त करते हैं; किन्तु इनके स्वरूपमें कुछ अन्तर है। ज्ञान-विराग आदि पुरुष हैं, तथा भावा और भक्ति स्त्री हैं। पुरुष प्रबल होते और स्त्री धबका-बलहीना होती हैं, इतना होनेपर भी स्त्रियोंमें एक ऐसी शक्ति है जिससे वे बड़े-बड़े बली एवं शानी पुरुषोंको भी विचल कर सकती हैं। परन्तु स्त्रियोंपर उनका कोई जोर नहीं चकता, ज्ञान-विराग आदि रूपी पुरुष-जातिको तो भावा-रूपी स्त्रीसे भय है किन्तु (साँ होनेके कारण) भक्तिका उससे कोई भय नहीं। भक्ति भगवान्की प्यारी है, पर भावा तो बेचारी नरनकीमात्र है, वह तो भगवान्की इच्छानुसार नाचनेवाली है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि भक्तिपर भगवान् पदा अनुकूल रहते हैं, इसलिये भी भावा भक्तिमें डरती है।

नवनन्तर ज्ञानको 'दीप' की उपमा दी गयी है, यह उपमा है भी यथार्थ। क्योंकि दीपकी उपयोगिता केवल सब वस्तुओंको देखनेमें ही है; अर्थात् जैसे अन्धकारमें विजित यथामानस्थित सब पदार्थोंको इस दीपके प्रकाशमें ही देख सकते हैं, उसी प्रकार भावाके अन्धकारमें विजित पदार्थों (नय, स्व आदि) को इस ज्ञानके द्वारा ही अनुभव कर सकते हैं, उनका बोध कर सकते हैं। किन्तु जैसे दीपके प्रज्ज्वल करनेमें घृत, काण्ड, अग्नि इत्यादि अनेक सामग्रियोंकी आवश्यकता है उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें भी गीतोक, देवी सम्पत्तिके गुणोंकी और अन्य अनेक सांख्यिक साधनोंकी आवश्यकता है, जिनको यही रूपकके द्वारा दिखलाया गया है। नवनन्तर जैसे दीपके प्रज्ज्वल होनेपर भी अनेक आपत्तियाँ हैं, उसी प्रकार (शास्त्रीय) ज्ञान प्राप्त होनेपर भी ज्ञात्रीके जिसे कई प्रकारके भय हैं। गोस्वामीजी इस रूपकमें उन सबका दृश्य दिखलाकर ध्यानमें अपने सिद्धान्तस्वरूप वास्तव रूपप्रकाश करते हैं—

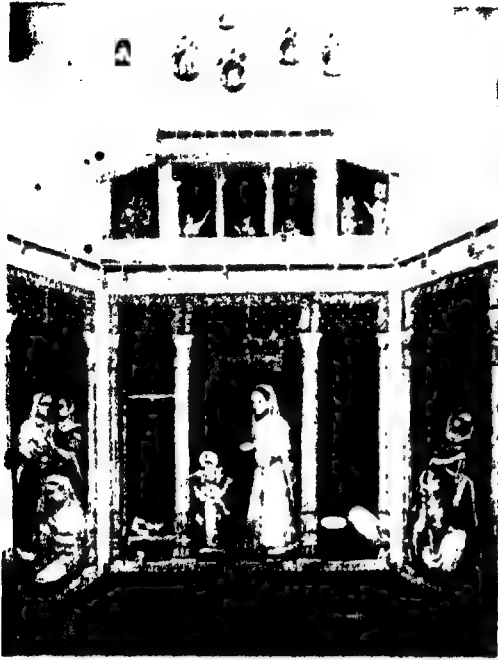
ग्यानके पन्थ कृपापत्रे नारा । परत जगेश न लगहि नारा ॥

को निर्विघ्न पन्थ निरबहई । मो केवन्त परम पद लहई ॥

ज्ञानके सम्बन्धमें ऐमा किन्तुकर फिर भक्तिके विषयमें जाय कहते हैं—

कहेउं ग्यान सिद्धान्त बुझाई । मुनहु भगति प्रसिद्धी प्रमुताई ॥

कल्याण

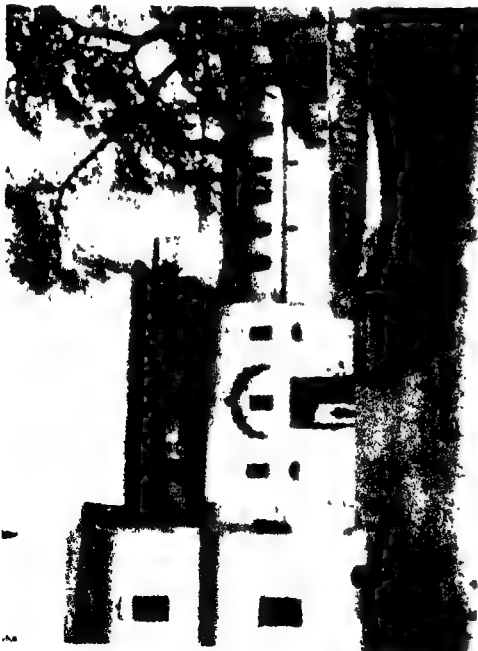


श्रीराम जन्म (प्रार्थन निष्ठ)

(अयोध्यापुरी)



जन्म स्थान, कर्मोटीका स्वम्भा



मन्दिर जन्मभूमि



जन्म स्थान

कल्याण



लक्ष्मणजीका मन्दिर — लक्ष्मण घाट ( बाह्यरस )

( अयोध्यापुरी )



लक्ष्मणजीके मन्दिरकी भांकी ( भीतरस )



लक्ष्मण किला सामनेका दृश्य



लक्ष्मण किला ( पिछला दृश्य )

भक्तिकी उपमा 'भक्ति' से दी गयी है। भक्तिको प्रकाश करनेके लिये दीपकी भाँति दूध इत्यादि उपकरणोंकी आवश्यकता नहीं होती और न इसमें दीपकी भाँति आपत्तियोंका ही कोई भय है।

परन्तु यह भक्ति प्राप्त कैसे होगी ? क्या सुलभ उपाय है—भक्ति होनेपर भी हमकी प्राप्ति दीपकी अपेक्षा सुलभ है—

सुगम उपाय पादं करे । नर हतमाय्य देत भट भरे ॥

'देत भट भरे' अर्थात् ध्वज ही सर फोड़ते हैं। क्या उपाय है ? सुनिये—

पावन पर्वत बेट पुराता । गम-कथा काँचराकर नाना ॥

मर्म सज्जन मर्मत कुदारी । ग्यान विराग नयन उरगारी ॥

भावमहिम जौं ओ प्राप्ति । पाव मर्गाति मणि सब ममखानी ॥

ज्ञानरूपी नेत्रोंकी आवश्यकता है, अर्थात् ज्ञानकी आवश्यकता तो है परन्तु नेत्ररूपमें-दीपरूपमें नहीं। कम, कहिये, दीपके उपर्युक्त सब साधनों-संस्कारोंमें कूट जाने हैं। ऐसा कहनेका यह भाव नहीं है कि भक्तिमें वैसी मर्यादोंके गुणों और अन्यान्य सात्विक साधनोंको नितान्त अनावश्यक समझकर उनकी अपेक्षा की जाय।

हम प्रसंगसे यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञानकी उपयोगिता भक्तिके लिये ही है, अन्यथा केवल ज्ञान-ज्ञाप्ति इतिकर्मव्यवस्था नहीं हो जाती। इसको बों भी समझ सकते हैं कि बागमें जाकर फल-फूलोंके पृष्ठोंकी श्रेणी, ज्ञानि, आचमनभेद, संन्या इत्यादिका केवल पूर्ण ज्ञान करना और दूसरी ओर इन सबोंपर बिना ध्यान दिये ही उन फल-फूलोंका गन्धस्वादभोग करना। इनमें अकेला तो दूसरा प्रकार ही अभीष्ट हो सकता है, और पहले प्रकारकी उपयोगितामें दूसरे प्रकारका होना भी अपेक्षित है। गोस्वामीजी इसीको स्पष्ट करते हैं—

अ अस भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु भ्रम करहीं ॥

ते जड़ कामधनु गृह त्यागी । सोअन आक फिगहि पय त्यागी ॥

मुनु संगस हरिमगति बिहाई । अ मुझ बाहहि आन उपाई ॥

ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी । पैरि पार बाहृत जड़ करनी ॥

क्या ही सुन्दर सिद्धान्त-वाक्य है ? केवल गोस्वामीजी ही नहीं, अपितु वेदके व्याख्याता, अष्टावश-पुराण-प्रवक्ता, ईश्वर-विभूति, स्वयं महर्षि व्यासजीने भी वही कहा है—

भयः कृति भक्तिमुदस्य ते विभो

क्षिद्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।

तेषामसौ हेतुल पद निष्पत्ते

नान्यधया स्थूलसुक्ष्मघातिनाम् ॥

(भागवत १.७.१४.४)

यहाँपर 'केवलबोधलब्धये' बहुत ही महत्वके शब्द हैं—अर्थात् केवल ज्ञान ज्ञाप्ति करनेके लिये ही जो कष्ट उठाते हैं अथवा बों कह सकते हैं कि जो केवल ज्ञान-ज्ञाप्ति कर लेनेमें ही अपनी इतिकर्मव्यवस्था समझते हैं उनके पक्षे भूमी कूटनेवालोंकी भाँति केवल कुंश ही शेष रह जाता है।

महाराष्ट्र-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी इसी सिद्धान्त-वाक्यपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा देते हैं—

ग्यान अगम प्रगूह अनेका । सावन कठिन न मनमहँ टंका ॥

करन कष्ट बहु पावड़ काँज । भगनि-हीन प्रियमोहि न सोक ॥

भगनि स्वतन्त्र सकल गुनखानी ।

महाराष्ट्र यह कि 'ज्ञान-प्राप्ति' करनेका कष्ट 'भक्ति' है 'ज्ञान' बलि साधन है तो 'भक्ति' फल है।

ऊपर कहा है—

जो निर्दिष्ट पन्थ निरबहई । सो कैवल्य परम-पद लहई ॥

यहाँ बिना कौन-से हैं ?

सुनिये ?

यह सब मायाकृत परिवारा । महा मुभट को बरन पारा ॥

मिव चतुरानन दंभि डराहीं । अपर जीव कहि लेल माहीं ॥

'अपर जीव'में (शास्त्र)ज्ञानी भी आ जाते हैं। इसीलिये कहा है—

तुहँ कहें काम कोन रिपु आरी ।

और हमने बचनेका उपाय भक्तिद्वारा 'भगवत्परायणता' ही है।

ज्ञानकी अवस्थानक शत्रुओंका परम भय है, भक्तिकी अवस्थामें कोई भय नहीं, क्योंकि ज्ञानियोंको तो अपने बल-का भरोसा रहता है परन्तु भक्त अपने सर्वशक्तिमान् प्रभुके भरोसेपर निर्भर और निश्चिन्त रहते हैं, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनोंकी स्वरूप-परिस्थितिका उत्तम चित्र दिखलाते हैं—

मेरे प्रौढ़ तनय मम ग्यानी । बालक मृत सन दास भगानी ॥

इसीलिये भगवान्ने कहा है—

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता ९.२२)

## मुसल्मान रामभक्त

[ सिद्ध फकीर शाह जलाल-उद्दीन वसाली ]

(लेखक — श्री जमुनाप्रसादजी श्रीवास्तव)

( १ )



व्यक्ति जीते-जी परमात्मा में मिल जाता है उसे 'वसाली' कहते हैं। यह शब्द फारसी भाषा का है। इसकी व्याख्या कवि बलीरामजीने अत्यन्त सरल और सरस भाषा में इसप्रकार की है—

डेरा डाल दीजे उठि राह लीजे  
जिस राहमें पीवको पाइये जू।  
'हम-तुम' से न्यारे हो रहिये  
नित्य हँसिये, खलिये, गाइये जू॥  
मुए मुक्त मीतकी चाह कैसी  
जो पै जीवते पीव न पाइये जू।  
बली अन्त समय जई जावना है  
तह जीवते क्यों नहीं जाइये जू॥

इस ग़ालानके शाह जलाल-उद्दीन वसाली 'सूफी इरन-परस्त' अर्थात् 'शृंगार-निष्ठा' के भक्त थे। श्रीरामचन्द्रजीके उपासक होनेके अतिरिक्त वे उनकी अलौकिक मधुर छविपर मोहित भी थे। उनका विश्वास था कि श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुन्दर, स्वरूपवान और सुकुमार हैं। उनकी भक्ति करने तथा उनका नाम जपनेसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है। जैसा कि कवि 'सुरतर' ने उर्दू-रामायणमें कहा है—

करं बरदे ज़बों जो कोई यह 'नाम' .  
गुन्स्ताने जहाँमें पाय आराम ॥  
नज़ात हर वशर इस 'नाम'से है,  
कि आम्बिर काम 'मीनाराम'से है ॥  
इबादनका नहीं है आजकल काम,  
फ़कन काफ़ी है 'सीताराम'का नाम ॥

महात्मा 'वसाली' भ्रमण करते हुए पंजाबप्रान्तके सुलतान-नगरमें जा निकले थे। उसी नगरमें पण्डित टेकचन्दजी कथा-वाचक रहते थे। वे बड़े विद्वान् और

सुबोध्य बक्ता थे। प्रतिदिन सन्ध्या समय समई माईके चबूतरपर रामायणकी कथा बँचते थे। उनका स्वर अत्यन्त कोमल और मधुर था। श्रोताओंको वह खूब रिझाते थे। पद-पदार्थोंकी व्याख्या सुन्दर सरल और सरस शब्दोंमें करते थे, जिससे स्त्रियाँ और छोटे छोटे-बच्चे भी आसानीसे समझ लेते थे। जिस रसका वे वर्णन करते उसका तो चित्र ही खींच देते थे। इन सब सामग्रियोंसे उनकी कथा खूब जमती थी। दूर-दूरसे लोग आते और कई सहस्र श्रोता इकट्ठे होकर कथा सुना करते थे।

( २ )

राजा जनककी फुलवारीका प्रसंग था। मिथिलावासी श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत छविपर मुग्ध थे। पण्डितजीने उनकी अलौकिक छविका वर्णन इतनी सुन्दर और सरस भाषा में किया कि श्रोतागण सुनकर गह्वर हो गये और बेहोशतयार उनकी ज़बानसे निकल गया—

किमीकी आँखमें जादू तेरा ज़बानमें है।

कुछ रात्रि बीते कथा समाप्त हुई। श्रोतागण धारती लेकर अपने-अपने घर जाने लगे। पण्डितजीने अपनी पुष्पक बाँधना आरम्भ किया। इसी बीचमें शाह-साहेबने आकर कहा—

“पण्डितजी ! आपकी पद-पदार्थकी व्याख्या सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। कृपा करके यह बतलाइये कि यह कौन-सी बहुअर्थ-गौरवान्वित पुस्तक है और इसमें किस यूसफ़के समान सुन्दर व्यक्तिके सौन्दर्य और लावण्य-का वर्णन है।”

“शाहसाहेब ! हिमालयसे कुछ दूरीपर एक विशाल नगर बसा है। उसका नाम अयोध्या है। वह सूने अवधकी राजधानी है। वहाँ महाराजा दशरथ राज्य करते थे। वे बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। महाप्रभु रामचन्द्रजी उन्हींके सुपुत्र थे। वे अत्यन्त सुन्दर, शूरवीर और बुद्धिमान् थे—

गुणसागर नामर वरवीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा ॥

यह रामायण है। इसमें उन्हींकी मंगलमय खोजका वर्णन है। कहिये ! आपको उनकी कथा अच्छी तो लगती है ?”

“पण्डितजी ! मैं कई दिनोंसे यहाँ रोज़ आकर कथा सुनता हूँ, बड़ा आनन्द आता है। मैं तो शाहजादे अवधका आशिक हो गया हूँ। दीन व दुनियासे मुँह मोड़ उन्हींके कूचेमें मुकीम हूँ।”

“शाहसाहेब ! आप कथाके बड़े प्रेमी हैं। कृपा करके प्रतिदिन आया कीजिये। मैं अपने पास ही बैठा लिया करूँगा।”

“हाँ ! हाँ ! मैं तो रोज़ सबसे पहले आता हूँ और सबसे पीछे जाता हूँ। लेकिन मुझे यहाँ कोई बैठने नहीं देता। खड़े-खड़े सुन लेता हूँ। अच्छा, अब जाता हूँ। कल फिर आऊँगा।”

( ३ )

शाहसाहेबकी इस प्रेमवार्ताकी ख़ास मुसलमानोंके कानोंमें पहुँची। वे अत्यन्त क्रोधित हुए। सबने सलाह करके मौलवी अब्दुल्लाके मकानपर मजलिस जोड़ी। सम्पूर्ण मुसलमानोंको बुलाया और शाहसाहेबको भी पकड़वा मँगाया। मौलवी साहबने बाज़ दी, इस्लाम धर्मकी व्याख्या तथा तरीकत और शरीयतकी तलकीन की। सब लोग ध्यान देकर सुनते रहे। शाहसाहेब एक किनारे बैठे थे। उन्होंने ध्यानतक नहीं दिया। प्रेमके डमक़में वे यह गाते रहे—

कारिगरे इदकम मुसलमानी

मरा दरकार नेस्त।

अर्थात् मैं प्रेम-पथका पथिक हूँ। मुझे मुसलमानीकी ज़रूरत नहीं है।

और अन्तमें यह कहकर—

हगरत मेरी यह है, मेरा अरमान है यही,

आजाय तू नज़र तां तुझे देखता रहूँ।

छुपकेसे कथामें खले आये।

बाज़ हो जानेपर शाहसाहेबकी खोज़ हुई, परन्तु वे थे ही नहीं, मिलें तो कैसे मिलें। लोग उन्हें ढूँढ़ते हुए कथामें आये। वहाँ वे पण्डितजीके पास बैठे बड़े प्रेमसे कथा सुन रहे थे। नेत्रोंसे अभ्युपात हो रहा था। तन-मनकी सुधि नहीं थी। उनकी यह दशा देखकर मुसलमानोंको सन्देह हुआ कि हो न हो, पण्डितजीने ही शाहसाहेबको गुमराह करके मुसलमानसे काफ़िर बना लिया है। सब

जोग उनके ऊपर बिगाड़ पड़े। मौलवी साहेबने धमका-कर कहा—

“पण्डितजी ! जो कुछ हुआ सो हुआ। कलसे कथा मत बाँचो। अपना पोथी-पत्रा यहाँसे उठा ले जाओ, वरना.....”

पण्डितजी बेचारे सीधे-सादे थे और मौलवी साहेब-को अच्छी तरह जानते थे, बोले—

“अच्छा ! कलसे मैं कथा नहीं बाँचूँगा। आप इतमीनान रखें।”

( ४ )

दूसरे दिन कथा बन्द हो गयी। बालकायक समाप्त हो चुका था। पण्डितजीने प्रातःकाल हवन करके दूसरे शहरका मार्ग पकड़ा। रास्तेमें शाह साहेब मिले, उन्होंने पहचानकर कहा—

“कहाँ खड़े जा रहे हो ? पण्डितजी ! ज़रा उस दिलदारका पता तो देते जाओ।”

पण्डितजीने अभ्युपेक्षित नेत्रोंसे कहा—

“शाहसाहेब ! इस समय तो जान लेकर भागा जा रहा हूँ। ठहरनेसे पकड़े जानेका डर है वरना मैं आपकी प्यारे प्रभुका चरित्र अवश्य सुनाता।”

शाह साहेब सिद्ध फकीर थे, उन्होंने कहा—

“पण्डितजी ! डरो मत ! मैं तुम्हें यह भसा ( छड़ी ) देता हूँ। पृथ्वीपर पटक देनेसे वह अजबूदा हो जायगा और सब लोग डरकर भाग जायेंगे। भूलमें डाल दोगे तो वह अपनी असली सुरतमें आ जायगा, उसे हाथमें लिये फिरना, तुम तो मेरे दिलदारकी हिकायत सुनाते हो तुम्हें डर किस बातका है ?”

अर्हत् दुनिया काफ़िराने मुतलकन्द ,

रोज शववांदा ज़क़ ज़को दरवक़ बक़न्द ।

अर्थात्—

महाजाल जंजाल भयङ्कर भव मैं जौन फसेरे।

महामूढ़ बेमतलब शक़ शक़ करते साँस सँबरे॥

“अच्छा ! ज़रा फिर तो समझा दो कि शाहजादे अवध कैसे हसीन हैं।”

बेचारे पण्डितजी क्या करते। पोथी खोलकर बैठ गये। रघुनाथजीकी अपार शोभाका वर्णन करने लगे। जनकपुर-



की क्षिपाँ किसप्रकार मोहित होकर निझावर हुई थी और धनुषयज्ञके समय देश देशके राजा और महाराजा किसप्रकार उनकी अतुलित क्षुविपर वेदाम निक गये थे। इन्हीं सब बातोंका सविस्तर वर्णन करते रहे और आनन्दमें मग्न होकर यह गाने लगे—

वरणीका भार हरने, यही राम अब बने हैं।

पापोंका घन उड़ाने घनश्याम अब बने हैं ॥

विष्णु ! यही निश्चरम्बर ! यही नीलकण्ठवारी।

मही पारमेश्वर ईश्वर ! यही राम हैं मुरारी ॥

शाह साहेब मल्ल हो गये, उन्होंने अपनी सिद्धियोंसे प्यारेकी कथा सुनानेवालेकी कुछ सेवा करना चाहा। और बोले—“वाह ! पवित्रतजी ! वाह वाह, लूच सुनाया।

‘अच्छा ! माँगो क्या माँगते हो ?’

पवित्रतजीने लूच लोच विचारकर तीन चीजें माँगीं—

( १ ) मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे एक पुत्र हो जाय।

( २ ) मेरी मृत्यु अनायास हो। और

( ३ ) श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति हो।

“अच्छा जो, दो वरदान अभी देता हूँ। तीसरा अब फिर मिलोगे और दिलदारकी बातें सुनाओगे तब दूँगा।”

यही तो असली चीज थी। पवित्रतजी अपनी भूलपर पश्चाताप हुए कि मैंने पहले यही क्यों न माँगा, उनसे कहा, “फिर मैं आपको कहाँ पाऊँगा ?”

“घारके कूचेमें। मेरा घर तुम्हें खींचकर मेरे पास पहुँचा देगा। अच्छा, अब जाओ।”

पवित्रत टेकचन्द्र विदा हुए। शाह साहेब कृमने-कामते निम्नलिखित मस्ताना गीत गाते हुए घारके कूचेकी तरफ चले—

दिलदार घर प्यारे गलियोंमें मेरी आ जा।

आँखें तरस रही हैं सूरत मुझे दिखा जा ॥

( ५ )

पाँचवें महीने शाह साहेब अवध-धाममें पहुँचे और बाबरकी मस्जिदमें उतरे। इतने दिनकी प्रबल उष्णताके बाद इष्टधाममें पहुँचनेपर उन्हें जो असीम आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन कौन कर सकता है ? वे उसी अपार आनन्दमें मग्न होकर इष्टदेव प्यारे श्रीरामकी आराधनामें

लग गये। इतनेमें एक सज्जन बहाँसे निकले। उन्होंने शाह साहेबको अकेला देखकर कहा—

“शाह साहेब ! अकेले कैसे बैठे हो ?”

महात्मा वसालीका ध्यान भंग हो गया। उन्होंने किसी प्रकार अपनी विरह-वेदनाको रोक और क्रोधको शान्त कर कहा—

“अभीतक तो अकेला नहीं था, अपने दिलदारके साथ मजे उड़ा रहा था। हाँ, तुम्हारे आ जानेसे अव्यवस्था ध्यान हट गया और मैं अकेला हो गया।”

यह उपदेश-भरे वचन सुनकर वह अत्यन्त लजित हुआ। हाथ जोड़कर क्षमा माँगने लगा और प्रणामकर चला गया।

( ६ )

अनन्तर महात्मा वसालीने इष्टधामकी परिक्रमा करनेका विचार किया। भगवत्-भक्तोंको यह कार्य कितना सुखकर होता है, सो तो कोई भक्त ही जानता है। आजकलके शौकीनोंको इसका क्या पता ? मौखाना रुम साहेबने फरमाया है—

न भन बेहुदा गिरदे कूच, ना बाज़ार मी गरदम।

मज़ाके आशकी दारम' पये दीदार मी गरदम।

अर्थात् मैं यों ही असम्भकी भाँति गलियों और बाजारोंमें नहीं घूमता, मुझे प्रेमका चसका लग गया है, मैं प्रियतम प्रभुको खोजता फिरता हूँ।

एक दूसरे सन्तका कथन है—

ओं जमीन कि निशाने केफ़ पाये नू कुअद।

सालहा सिज़दए साहेब नज़रा खुआहिद बुद ॥

अर्थात्—

परम सुहावन तब पद अंकित भूमि।

सदा रहेंगे मञ्जन प्रेमी चूमि ॥

( शरणजी )

अर्थात् प्रभुपद-अंकित भूमि की महिमाका क्या कहना है ! वह तो भगवत्-भक्तोंकी सदा बन्दनीया है।

यही सब सोचते और यह कहते हुए—

नेहं-सैरोवरमैं बँसिके कढ़िनो हंसि खल नहीं है।

—आनन्दपूर्वक अष्टोप्याजीकी गलियोंमें विचरने लगे। उन दिनों अष्टोप्याजीमें मन्दिर थोड़े ही थे परन्तु उनके भीतर

इनका प्रवेश होना एक असम्भव बात थी। इधर मिचलमके दीवारकी छावसा, उधर पुजारियोंकी दुत्कार। इन दोनों प्रतिद्वन्द्वी स्थितियोंके संघर्षमें बिरही महात्माजीके हृदयमें दर्शन-लाभकी स्वाप्ता और भी जोरसे धक्का उठी। उन्हें क्या दुःख हुआ, परन्तु निश्चय है जो जिसकी याद करता है वह भी उसकी याद करता है। कहा भी है—

तुलसी कमलन जल बसे, रवि शशि बसे अकाश।  
जो जाके मनमें बसे, सो ताहीके पास ॥

और भी—

जिसको हम चाहें न चाहे क्या मज़ाल।  
दिलसे लेकिन उसको चाहा चाहिये ॥

और भी—

असर है जड़-उत्पत्तमें तो खिंचकर आही जावेगे।  
हमें पश्चाद नहीं, इसकी, अगर वह तनके बंधे हैं ॥

अन्तमें जब उनकी बेचैनी बहुत बढ़ गयी तब यह आकाशवाणी हुई—

‘ऐ बसाली, जल्द आ ! मैं तुम्हसे मिलनेके लिये तय्यार रहा हूँ।’

इस आकाशवाणीके सुनते ही महात्मा बसालीका शरीर पुलकित हो गया। आनन्दके मारे उनके नेत्रोंसे आँसू झलक पड़े। उनकी ज़बानसे बरबस निकल पड़ा—

‘ऐ कि दर हेच जानदारी जा तुल अजब मादअम कि हरजार्ह ॥

सबे रहित सब उर पुर नासी।

( ७ )

अनन्तर महात्मा बसाली श्रीसरयूजीके किनारे गये। विमल वर बारिको देखकर प्रेमसे परिपूर्ण हो गये। जब और थलकी उन्हें सुधि नहीं रही। गुदकी पहने हुए ही बीच आरामें कूद पड़े। घाटपर लोग स्नान-स्नान कर रहे थे, यह देख उन्हें आश्चर्य हुआ। सबोंने जाना कि शाह साहेब हूँ गये। कई मनुष्य झटपट कूद पड़े। स्वर्गद्वारघाट लज्जमनघाट आदि सब जग जग परन्तु उनका पता न लगा। आषाढ़का महीना था। सरयूजी बड़े बेगसे बह रही थीं। सब लोग निराश होकर बैठ रहे। अन्तमें एक पहरके पश्चात् वे गुस्साराघाटपर निकले। उनका सम्पूर्ण शरीर भीगा था, परन्तु गुदकी सूखी थी—

गर वदरिया रवदव वजदए इरक।

रितए दलकशां न गरदद नम ॥

३१

अर्थात्

प्रेम पगा जो बूझै सरिता मोंहि।

एकहु ताग गुददिको भीजे नोंहि ॥

—बिनायक

शाह साहेब किनारे खड़े होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने उस समयके दरयका वर्णन इसप्रकार किया है—

दाश रफ़्तम बसूष हम्मामे।

दीदम आँजा इके दिलाशामे ॥

चानुके दिलवरे व बेनाके।

नाजुकें महकूँ गुल अन्दांमे ॥

सरो कद या समन वूप।

सरकेशे मैं खुरे वसुद कामे ॥

तुन्द खोमे व मरदुम आजारे।

मस्त चदमे व सागिरे आशामे ॥

गाह दर वहस हीला परदाजे।

गाह दर इल्म इशवा अल्लामे ॥

आशिक़ारा हमी नमूद अयौ।

ऊ रक्खो जुल्फ़ कुफ़ो इस्लामे ॥

चूँ मरा दीद रूप सुद तरबीद।

तानवर्जद ज़रुष अन्यामे ॥

मुत्तहैयर चुना शुदम किन मोंद।

वमन अज़ होश दरगहे नांमे ॥

मी नदानम कि अन्दरौँ हैरत।

व ‘बसाली’ क दाद पैगामे ॥

कि वचदमाने दिल मुवी जुज़ दास्त।

हर चे बीली वदो कि मज़हर ओस्त ॥

अर्थात्

गयउँ काल्ह मैं सरिता तीर। देखेउँ सुखद एक मति धीर ॥

चतुर मनोहर वीर निशंक। शशि-मुख कोमल सारंग अंक ॥

सुघर उठानि मुवासित गाथा। वय किशोर गति गज सुखदात्र ॥

चितवत चोख मृकुटि बर बाँके। नयन भरित मद मधुरस छाके ॥

कबहुँ छनियुत माव जनावै। कबहुँ कटाक्ष कला दरसावै ॥

प्रेमिन कहँ अस परै लखाई। मुख छवि वैदिक धर्म सुहाई ॥

मेचक कच कुचित घुघुरारे। जनु इसलाम धर्म छुति धारे ॥

मम दिशि लक्ष्मि भूबंक सँमारेउ। छवि प्रसाद जनु देन हँकरेउ ॥  
अकित अकित अकित भयउँ अचेता। सुष पुष बिसरी धर्मक-हेता ॥  
नहि जानोतिहि छिन मोहि जोही। को संदेश जतायउ मोही ॥  
प्रियतम प्रभु तजि आन, जनि देखिय हिमकी चखनि।  
जो देखिय मतिमान, तासु प्रकाशहि जानिये ॥

महात्मा बसाली कुछ दिन स्वर्गद्वार और मन्त्रि-पर्यंत पर रहे। फिर वे प्रमोद-वनको चले आये और वहीं रहने लगे।

( = )

पण्डित टेकचन्दजी शाह साहेबको खोजते हुए अयोध्याजीमें आये, परन्तु वे नहीं मिले। तब उन्होंने इस अभिप्रायसे कि क्याति होते ही जहाँ होंगे, आ जायेंगे, रामायणकी कथा बाँचना आरम्भ कर दिया। कथा खूब जमती थी। सहलों मनुष्य इच्छते होते थे। एक दिन जब कथा समाप्ति हो चुकी और हवन होनेके उपरान्त पूजा चढ़ चुकी, तब पण्डितजीने उदास होकर कहा—

‘रंग पीले पड़ गये जिनके लिये।

वे शाहजी आये न दम भर के लिये ॥’

इसी बीचमें शाहसाहेब भी आ पहुँचे। व्यासासन छू जानेके भयसे उन्होंने दूरसेही पाँच दाने बबके पुस्तक-पर सँक दिये। दाने चमकदार थे। पार्श्ववर्तिनोंने बीनकर पण्डितजीको दिये। यथार्थमें वे सोनेके थे। यह देखकर लोग दंग रह गये। पण्डितजीने व्यासासनसे उतरकर अभिवादन किया और अपने आनेका कारण कह सुनाया। शाहसाहेबने कहा—

“अच्छा ! यहाँसे निपटकर प्रमोद-वनमें बेरके वृक्षके नीचे आओ !”

यह कहकर शाह साहेब चले गये। पण्डितजीने पोथी-पत्रा बाँध, ओलाछोंसे बिदा हो प्रमोद-वनकी राह ली। कुछ ओलाछोंने पीछा किया परन्तु उन्होंने यह कहकर कि, उनके साथ रहनेसे शाहसाहेबके दर्शन नहीं मिलेंगे, उन्हें लौटा दिया, इसपर भी एक व्यक्ति चुपके-चुपके पीछे चला ही गया। पण्डितजीने प्रमोदवनमें पहुँच, बेरके वृक्षके नीचे खोज की, परन्तु शाहसाहेब नहीं मिले तब वे वहीं रुहर गये परन्तु दूसरा व्यक्ति जो पीछे-पीछे आया था, निराश होकर लौट गया। उसके जाते ही शाहसाहेब बेरके वृक्षके नीचे प्रकट हुए। पण्डितजीने हाथ जोड़कर विनती की और कहा—

“शाहसाहेब ! आपकी कृपासे पुत्र-रत्न तो मिल गया, अब मेरा इच्छित तीसरा वरदान दीजिये।”

“अच्छा ! जो कुछ कल कथामें पाया है, उसे दान करके रातको इसी स्थानपर आ जाओ परन्तु आजकी तरह किसी औरको अपने साथमें मत लाना।”

( १ )

पण्डितजीने उसी दिन सब कुछ दान कर दिया। सौम्य होते ही भिक्षारी बनकर शाहसाहेबके आश्रममें पहुँचे और विनती की—

“मैं आपका सेवक हाजिर हूँ।”

महात्मा बसाली उस समय नेत्र मूँदे हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अनूप रूपराशिका असीम आनन्द लूट रहे थे। उनकी उस समयकी अवस्थाका वर्णन करते हुए किसी कविने कहा है—

तुझमें फना हूँ और तुझीमें फना रहूँ।

आजाम तू नज़र तो तुझे देखता रहूँ ॥

महात्माजीने आँखें मूँदे ही मूँदे कहा—

“हाँ ! आ गये ? अच्छा, कहो ?”

मामुकीमाने क्या दिल दारेम।

रख व दुनिया वदी नमी आरेम ॥

बुल बुलानेम कज़ कज़ा व कदर।

ओपतादा जुदा ज़ गुलज़ारेम ॥

मुर्ग़ शास्त्रे दरस्त गाहू तैम।

गोहंर दुर्गे गंज इसरारेम ॥

शाहसाहेब कहते जाते थे और पण्डितजी दुहराने जाते थे। अन्तमें शाह साहेबने कहा—

“अच्छा ! अब बली अच्छाह हो जा।”

पण्डितजीने कहा—

“मैं आपका सेवक टेकचन्द हूँ।”

“हाँ ! हाँ ! अच्छा, बलीराम हो जा।”

अब पण्डित टेकचन्दजी भी उनकी तरह मस्त हो गये। उनका नाम ‘बलीराम’ पड़ा। मामुकीमां ‘की तीन शरै पदकर वे फारसी और अरबीके बड़े विद्वान् हो गये। उनका बनाया हुआ ‘दीवाने-बलीराम’ अब भी आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है।

महात्मा बसाली प्रमोदवनमें रहते थे और पण्डित बलीरामजी मणिकूटपर विचरते थे। रात्रिको जब कभी

दोनों मिल जाते थे तब 'खूब बन आती जो मिल बैठे दीनाने दो' वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

कुछ दिन पश्चात् महात्मा वसाखीने जीवनयात्रा समाप्त कर साकेतवास किया, उनकी समाधि उसी बेरके नीचे अबतक मौजूद है।

(१०)

'माधुकीमा' नामकी प्रसिद्ध पुस्तिका महात्मा वसाखी-हीकी निर्माण की हुई है। आधीरात्रिके समय वह कविता अनायास ही उनके मुँहसे निकल गयी थी। दूसरे ही दिन जलनऊके कीलकालकी मजलिसमें पोरजादा नकीशाहने इसे गाकर सुनाया। लोगोंने बहुत पसन्द किया। सब जगह प्रचार हो गया, कहाँतक कि वह मकतबोंमें जारी हो गयी और पाठशालाओंमें अब भी पढ़ायी जाती है।

एक दिन मौलाना नजीर, शाह साहेबसे मिलने आये। उन्होंने बड़े प्रेमसे वह कविता सुनायी। शाह-साहेबने कहा, मैंने तो किसीको इसे लिखाया तक नहीं! आपको कैसे प्राप्त हुई? मौलाना साहेबने जलनऊ कीलकालकी मजलिसमें सुनकर याद कर लेनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, शाह साहेबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने प्रियतमका रहस्य समझकर वे चुप हो रहे।

एक दिन जनकपुरमें स्वामी जानकीचरणरायजीके मुखसे अनायास ही यह पद निकल गये थे—

चित ले गयो चुराय जुलूममें ठहा ॥  
हम जानी वे कृपासिन्धु हैं,  
तब उनसे मई प्रीति भला ॥  
विरही जनको दुख उपजावत  
करत नये नये अजब कला ॥  
प्रीतिन्ता ! प्रीतम बेदरदी  
छाँड़ि हमें कित गयो चला ॥

उन्होंने यह पद किसीको लिखाया भी नहीं था। परन्तु जब वे अयोध्याजीमें आये तो वहाँ भी यही पद लोगोंको गाते सुना। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी जगन्नाथजीसे लौटते समय मार्गमें गोपीनाथजीके मन्दिरमें ठहर गये। प्रसादमें खीर भी मिली थी। उसे पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। जी चाहा कि कुछ खीर मिलती तो पाते परन्तु संकोचके कारण माँग नहीं

सके। रात्रिको श्रीगोपीनाथजी।स्वयं भण्डारेसे खीर लेकर उनके पास लाये। वे अत्यन्त लजित हुए। अपनी जिह्वाको थिक्कार देने लगे। अनन्तर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

“जीवनधन ! इतना कष्ट क्यों उठाया ?”

भगवान्ने कहा, “क्या तुमने नहीं सुना है भगवान् श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे क्या कहा था—

हम भक्तनके ! भक्त हमारे !  
सुन अर्जुन ! परतिज्ञा मोरी  
यह व्रतं टरत न टोर ।  
हम भक्तनके ! भक्त हमारे !

इतना कह वे अन्तर्धान हो गये।

माधवेन्द्रपुरीजी प्रतिष्ठाके भयसे रात्रिहीको वहाँसे भाग खड़े हुए। भोर होते ही वे दस कोसपर निकल आये। वहाँ गाँववालोंको यह कहते सुना कि गोपीनाथजीने रातको खीर चुराकर माधवेन्द्रपुरीजीको पवाई। इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बंगालियोंमें कहावत है—

प्रतिहार भये पुरी जाय पालाइया ।

पुरी प्रतिष्ठा आगे जाय गोंडाइया ॥

अर्थात् जिस प्रतिष्ठाके भयसे माधवेन्द्रपुरीजी भागे वह प्रतिष्ठा उनके आगे आगे दौड़ी।

भारतकाज मन्दिर खुला। भगवान्ने बखोंपर खीर देकर सबको आश्चर्य हुआ। भगवान्ने खीरकी चोरी और उस चोरीका कारण प्रकट कर दिया। उसी समयसे उनका 'खीरचोर' नाम पड़ा।

महात्माओंके चरित्रमें ऐसी ही विशिष्टताएँ होती हैं। प्रियतम प्रभुके इन रहस्योंको वही समझ सकता है जो इन रहस्योंकी बातें जानता है।

धन्य है महात्मा वसाखी, आपको और आपके अलौकिक प्रेमको ! उस बचनकालमें भी आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी विमल भक्ति आस्वादन करके हिन्दुओंकी आँखें खोल दीं। बाबू हरिश्चन्द्रजाने ठीक ही कहा है—

इन मुसलमान हरिजनन पर  
कोटिन हिन्दुन वारिए ॥

बोझो भक्त और उनके प्यारे भगवान् सिखाव  
रामचन्द्रजीकी जय ।

## श्रीरामचरितमानस-महिमा

( लेखक—श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डेय )

१  
जय 'रामचरितमानस' पवित्र,  
जय शान्ति-सखा, जय धर्म-मित्र ।  
जय कलिमें अनुपम मुक्ति-पन्थ,  
नव कोटि जनोका एक ग्रन्थ ॥

२  
जय नीति-निलय, जय पुण्यपथ,  
जय सत्य-सिन्धु जय शील सध ।  
जय भव्य भक्ति-साधन-विवेक,  
नव कोटि जनोका ग्रन्थ एक ॥

३  
जय जय अति उच्च समाज-नीति,  
जय जय जग-वन्दित राज-नीति ।  
जय विश्वप्रेम-रत धर्म-नीति,  
जय दुष्ट-दलन-व्रत कर्म-नीति ॥

४  
जय स्वाभिमान स्वाधीन नीति,  
जय पूर्व ख्याति प्राचीन-नीति ।  
जय जयति स्वतन्त्र स्वराज नीति,  
जय प्रजा-तन्त्र-विधि राज-नीति ॥

५  
जय जय स्वदेश अनुराग-नीति,  
जय सत्य हेतु तन-त्याग-नीति ।  
जय विषय-विकार-विराग नीति,  
जय चारों वर्ण विभाग नीति ॥

६  
जय पितृ-भक्ति आदर्श नीति,  
जय त्याग-शक्ति-उत्कर्ष नीति ।  
जय भ्रातृ-प्रेम वर हर्ष नीति,  
जय पावन भारतवर्ष नीति ॥

७  
जय प्रजा प्रेम सुख शान्ति-नीति,  
जय राज-भक्ति शुचि-दान्ति नीति ।  
जय ब्रह्मचर्य बल-क्रान्ति नीति,  
जय हरण मूर्खता-भ्रान्ति नीति ॥

८  
जय पत्नीव्रत सत्कार्य-नीति,  
जय जय पातिव्रत आर्य-नीति ।  
जय शुभ शिक्षा आचार्य नीति,  
गो-द्विज-सेवा अनिवार्य नीति ॥

९  
जय दुराचार संहार-शक्ति,  
जय सदाचार उद्धार शक्ति ।  
जय पर-पीड़न-उच्छेद शक्ति,  
जय हिंसक-रिपु-रण-भेद-शक्ति ॥

१०  
जय जय स्वदेश-लक्ष्मी-ममत्व,  
आत्माभिमान रक्षा समत्व ।  
जय खल प्रचण्ड-बल-नाश तत्व,  
जय स्वाधीनता 'सुराज' सत्व ॥

११  
कवि-कुल-गुरु तुलसीदास धन्य,  
नव-रसमय वाक्य विलास धन्य ।  
घर घर घर पुण्य प्रकाश धन्य,  
भय रोग शोक अघ-नाश धन्य ॥

१२  
हिन्दी कवि-कविता-कीर्ति-केतु,  
जय सत्य-शील-सद्धर्म-सेतु ।  
जय भारत प्रतिभा मूर्तिमान,  
जय आर्य धर्म-प्रतिभा प्रधान ॥

१३  
जय रामराज्य महिमा महान,  
जातीय उच्चताका विधान ।  
जय आर्य भूमिका दिव्य गान,  
जय आर्य-विजय-हर्षाभिमान ॥

१४  
जय जय रामायण गुण ललाम,  
जय भ्रान्त हृदय विश्राम धाम ।  
जय भाषा-भूषण सुधा-भाण्ड,  
जय राम कथामृत सस काण्ड ॥

१५  
जय पूज्य गुसाईं यशोदेह,  
जय रामचरण-रत दिव्य नेह ।  
जय महावीर पूजा प्रमान,  
जय जाति देश गौरव महान ॥

१६  
रचते जिसका पूजा-विधान,  
नर नारि बृद्ध बालक सुजान ।  
पाते नैतिक शिक्षा पवित्र,  
उन्नत करते हैं निज चरित्र ॥

१७  
अति शुभकर है जिसका प्रभाव,  
मिटते जिससे सब भेद-भाव ।  
गाते जिसमें एकतादर्श,  
बाईस कोटि हिन्दू सहर्ष ॥

१८  
पावन होना जिससे स्वभाव,  
रहना न सौख्यका फिर अभाव ।  
कहते जय जय श्रीरामराज,  
बाईस कोटि हिन्दू समाज ॥

१९

२०

जय सरल सुबोध सुपाठ्य काव्य,  
जय हिन्दू धर्म अकाल्य काव्य ।  
जय प्रेम-पुण्य शुचि-प्रेम्य यज्ञ,  
नव कोटि जनोका ग्रन्थ-रत्न ॥

जय देश देश विख्यात काव्य,  
जय द्वीपान्तर प्रख्यात काव्य ।  
जय विश्वप्रेम-प्रियता-प्रयत्न,  
नव कोटि जनोका ग्रन्थ-रत्न ॥

## तुलसीदाससे

(लेखक—श्रीमोहनलालजी महतो 'वियोगी')

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा

तूने हुआ बना अनन्तका मानस-रूप-किनारा ।

अव्यापक-सा व्यापक मन है जिसके निकट बेचारा ।

जिसकी नेक मुस्कराहटपर थिरकें रवि, शशि, तारा ॥

जिसने कई तुच्छ डेगोंसे नाप दिया जग सारा ।

‘स्वयंप्रकाशः स्वयंब्रह्म’ कह श्रुतिने जिसे पुकारा ॥

जिसे खांजने जाकर इस मनने अपनापन हारा ।

उस निर्गुनपर तूने जाकर अपना तन-मन वारा ॥

हैं तुलसी, तेरे मानसका शासक तेरा प्यारा ।

सबरी, गीध खोजता चलता बन-बन राम हमारा ॥

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा ॥

## रामावतारका महत्त्व

(लेखक—स्व.मीजी श्रीविवेकानन्दजी)



घटन-घटना-पटीयसी अतर्क्य-नाटक-नटी ब्रह्मशक्ति महामायाके विलासस्वरूप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमेंसे एक ब्रह्माण्डके मर्त्यलोकमें कर्म करनेकी स्वाधीनता-प्राप्त मनुष्य जब उस प्रकृति-माताके ऊर्ध्वगतिशील प्रवाहके प्रतिकूल अर्थात् धर्मके प्रतिकूल कर्म करने लगते हैं, तब धर्मकी ग्लानि हो जाती है और अधर्मका अन्मुत्थान हो उठता है। ऐसी अवस्थामें सत्पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंके विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवद्भवतारकी अथवा अन्य शब्दोंमें जगज्जननी भगवतीके अवतारकी आवश्यकता होती है। भगवान् और भगवतीमें अमेद है। मायोपहित चैनम्भ-भगवान् और ब्रह्ममयी जगदम्बा भगवती हैं। अपने बनाये हुए जगत्में कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोंके कार्योंसे जब असमञ्जस उत्पन्न होता है, तब उसको दूर

करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमें जगदम्बाका प्रादुर्भाव ही भगवद्भवतार-नामसे अभिहित होता है। चेतन निराकार है, जगदम्बाके आश्रय विना साकार-मूर्तिमें भगवदाविर्भाव असम्भव है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेका स्वभाव जगदम्बाका ही है। चेतनके आश्रय विना माया कुछ कार्य नहीं कर सकती। इसीकारण मायाके कार्यका आरोप चेतनमें करके शास्त्रोंमें भगवान्का साहाय्य वर्णन किया गया है, सो युक्तियुक्त ही है। जगदम्बाके ब्रह्ममयी नाममें इन दोनों भावोंका समावेश हो जाता है। शक्ति-उपासक जो भगवद्भवतारोंके साथ काजी-तारा आदि शक्तियोंका सम्बन्ध बतलाते हैं उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जाता है। हमारे शास्त्रोंमें कहीं मतभेद नहीं है, जो मतभेद प्रतीत होता है, वह दार्शनिक-ज्ञानके अभावका ही कुछ है।

मर्मादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य

सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है। इस लेखमें श्रीरामके गुणानुवाद रूपसे हम उन महत्त्वोंका किञ्चित् प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेंगे।

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिक्षामें अत्यन्त सुभीता होता है। श्रीरामको सदादर्शोंका खज़ाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सत्-शिक्षाके लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बाललीला और विद्याभ्यास अनुखनीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरुभक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी, जिसके प्रतापसे वे सब विद्याओंमें निपुण हो सके थे। विश्वामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-श्रृष्यासे ही वे बला और अतिबला विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अस्त्र शास्त्रीकी विद्यामें पारङ्गत हो सके थे। विश्वामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारणही धर्मशास्त्रकी शिक्षा पौराणिक-कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-सङ्कटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिक्षा की-वधरूप ताड़का-वधके रूपसे प्राप्त कर धार्मिकमात्रके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। चरित्र बालकोंके लिये बालकपदसे ही निर्भीकता, दौड़ता और पापियोंको समुचित दण्ड देनेकी प्रकृति होना आवश्यक है। इसको श्रीरामने विश्वामित्रजीके साथ जाकर, बीरतापूर्वक सुबाहुको मारकर और मारीचको दण्ड देकर कार्यतः बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस प्रारम्भिक-अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रत्येक मनुष्यको इसीप्रकार गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही यथाधिकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आजन्मके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-चक्रसे छूटकर मुक्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाश्रम छूट जाता है अथवा गृहस्थाश्रम धारण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह विभीषिकामात्र है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और कर्तव्य-कर्मरूपसे सब कर्मोंको करते हुए कर्म-त्यागकी प्रवृत्तिकी

आवश्यकता ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विदेह जनक हैं।

जनकपुरकी फुलवारीमें जिस समय सीताजीको श्रीरामके दर्शन हुए थे, उस समय श्रीरामने कहा था कि 'जिसने सपनेमें भी पर-स्त्रीको प्रेमदृष्टिसे नहीं देखा, उसकी सीतापर दृष्टि पड़ते ही उसका मन क्यों आकर्षित हुआ।' इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने 'मातृव्य परदारोप' का अभ्यास बालकपनसे ही कर रखा था। इस आदर्शको ग्रहण करनेमें किस मनुष्यका मतभेद हो सकता है? यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही त्याग नहीं किया, अपितु बनवासका कठिन व्रत पावन करके जगत्को पितृभक्तिकी पराकाष्ठा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कौसल्यामें कहा था, कि 'पिता-माताकी परस्पर विरुद्ध आज्ञाओंके पावन करते समय पिताकी आज्ञा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुमा करती है।' ऐसे धर्म-सङ्कटके समय अपने कर्तव्यका निश्चयकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने चेतनी अपेक्षा बीजका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है। क्योंकि पुत्र-सन्तानमें दीर्घ-प्राधान्य होनेके कारण पुरुष-शक्तिकी ही अर्थात् पिताकी ही प्रधानता हुमा करती है।

श्रीरामने आदर्श आतृ-प्रेम अपने तीनों माइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ बतलाया है, एक अमृत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श आतृ-प्रेम अचुम्बण रहा है।

सहचर्मिणीके साथ रतिका क्या कर्तव्य है सो सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। बनवास आते समय सब प्रकारकी बनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्यतिका ही आदर्श दिखाया था और बनवासमें अपनी सहचर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तको दण्ड दिया, शूर्पणखाके कान-नाक लक्ष्मणसे कटवाये, ससैन्य खरदूषण त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहचर्मिणीके उद्धारके लिये ही रावण-कुलका विजय किया। आदर्श गृहस्थधर्मको कार्यतः निरूपण करनेके लिये जंगममें सीताकी अग्रिमरिधा की और आदर्श प्रजा-वत्सलता, जो राजाके लिये मुख्य धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही

श्रीरामने सीताका अयोध्यामें परित्याग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय, श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतीर्ण हुए थे।

चित्रकूटमें भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियोंकी सभामेंके एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधर्मका आदर्श प्रतिपादन किया और उसके अनुसार कार्य किया, वह एक अपूर्व दृश्य था। ऐसे धर्मसङ्कटके समय इस प्रकार निर्णय करना एक आदर्श वरपतिका ही कार्य था, जिसको श्रीरामने अमृत रीतिले निभाया।

पञ्चवटीमें सीताको रावणसे छुड़ानेकी चेष्टा करते हुए मृत-दशरथके मित्र जटायुका दाह-संस्कार श्रीरामने स्वयं किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महत्त्वको अधिक उज्ज्वल बनानेवाला है। प्रत्येक मनुष्यको महान्ते महान् होनेपर भी ऐसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये, इससे उसका महत्त्व ही बढ़ता है।

ऋष्यमूक-पर्वत पर सुग्रीवसे सख्य करके श्रीरामने अपने सख्यत्वको अन्तिम समयतक कैसा निभाया सो तो एक विषय दृश्य है। श्रीराम सुग्रीवके प्रेममें डूबे नहीं थे। वे स्वयं भी मैत्री-धर्मका पालन करते थे और सुग्रीवके भी मैत्री-धर्म पालन करानेमें त्रुटि नहीं करते थे। सीताकी खबर जाननेके आयोजन करनेमें जब सुग्रीवने कुछ विलम्ब किया, तब लक्ष्मणको उनके पास भेजकर अपने कहलवाया था—

समये तिष्ठ राजेन्द्र । मा बालिपथमन्वगाः ।

न स सङ्कुचितः पन्था येन बाली हतो गतः ॥

हे राजेन्द्र सुग्रीव ! अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहो, बालिके मार्गका अवलम्बन न करो, वह मार्ग तुम्हारे लिये सङ्कुचित नहीं है जिस मार्गसे बालि मारा जाकर गया है।

समुद्र-तटपर विभीषणके आनेपर राजधर्म और युद्ध-धर्मके बराबरी होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी सम्मति नहीं दी; परन्तु श्रीरामने शत्रुका आता होनेपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध मत बतलाते हुए उसको आश्रय देकर शरणागत-वत्सलताकी पराकाष्ठा बतला दी थी कि 'अपानक आकर जो मेरे शरण होता है और 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कहता है उसको मैं सफल प्राप्तीमात्रसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा मत है।'।

अनेक धर्मोंका सङ्कट उपस्थित होनेपर ठीक ठीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें कहीं भी उस स्वरूपसे उनकी च्युति नहीं हुई है। रामायणके पढ़नेसे पढ़-पढ़पर वह दृढ प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति देख सकता है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपलक्ष्यसे श्रीरामके चरित्रमें कई अगह अधीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परन्तु बाल्यमें वह अधीरता नहीं है क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई अधैर्यका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि कैसे भी कष्टका समय आवे, अन्तर्द्वैतिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्द्वैति ही धर्मका निर्णय कर लेगी।

बाल्मीकीय-रामायणके उत्तरकाण्डमें कथा है कि एक दिन श्रीराम किसीसे एकान्तमें बातचीत कर रहे थे। कोई आवे नहीं, इसके लिये लक्ष्मणको पहरेदारके रूपमें खड़ा कर दिया था और कहा था कि जबतक मेरी आज्ञा न हो कोई न आवे, यदि आया तो दण्ड दिया जायगा। इसी बीचमें दुर्वासाने आकर लक्ष्मणसे कहा कि, 'अन्दर जाकर श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दे दो।' लक्ष्मणने अपने दण्डकी परवा न करके दुर्वासाके शापसे राज्यको रक्षानेके लिये श्रीरामको इतिला कर दी। उसने सोचा कि दुर्वासाकी अप्रसन्नताकी अपेक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विशेष भयानक नहीं होगी। श्रीरामने आज्ञा उल्लङ्घन करनेके अपराधमें लक्ष्मणको अयोध्यासे चले जानेको कहा। राजधर्मके अनुसार चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो, अपराध करनेपर वह दण्डनीय होता है। राजधर्मके सामने प्राणप्रतिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुछ भी परवा नहीं की। इस कथानकसे श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपालन करना सिद्ध होता है।

इस खेलमें श्रीरामके साधारण व्यवहारोंकी ही समालोचना की गयी है। उनकी अवतारविषयक महत्ताओंको नहीं लिखा गया। इस प्रकार जितना भी विचार किया जायगा, विचारवान् व्यक्ति समझ सकेगा कि श्रीरामावतारकी महत्ता अनुलनीय है और उनसे मनुष्यत्वकी शिक्षा बहुल प्रमाणमें मिल सकती है।

बोलो मर्यादा-गुरुप्रेतम श्रीरामकी जय !



## रामचरितमानसके निर्दोष शृङ्गारकी विशेषता

(लेखक—सेठ श्रीकन्हैयालालजी पोद्दार)



गोसाईंजीकी काव्य-प्रतिभाका चमत्कार भक्ति, ज्ञान और वैराग्यविषयक वर्णनमें महत्त्वपूर्ण होनेपर भी तादृश महत्त्वका कारण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह उनका सर्वांगीण अनुभूत और वर्णनीय प्रधान विषय था। किन्तु उनकी सर्वतोबाही सरस्वतीका वर्णनातीत महत्त्व तो यह है कि उनका शृङ्गार-रस-प्रधान वर्णन भी वही मर्यादापूर्ण और चित्ताकर्षक है। गोसाईंजीका जैसा लेख्य-सेवक-भाव अपने उपास्य भगवान् रघुनाथजीमें था उसीके अनुरूप उनके द्वारा अपने उपास्य देवका शृङ्गारात्मक वर्णन मर्यादोचित किया जानेपर भी वह अत्यन्त मनोमोहक और हृदयग्राही है। इनके शृङ्गारात्मक वर्णनकी तुलनाके लिये यदि संस्कृत-साहित्यके किसी उत्कृष्ट कविकी गवेषणा की जाय तो उनकी श्रेणीके महाकवि कालिदास ही उपलब्ध हो सकते हैं। जिसप्रकार कालिदास संस्कृतके प्रसिद्ध कवियोंमें अग्रगण्य हैं, उसी प्रकार हिन्दीके प्रसिद्ध कवियोंमें हमारे पूज्यपाद गोसाईंजी महाराज सर्वप्रधान हैं। गोसाईंजी श्रीरामोपासक और अनन्य राम-भक्त और रामचरित-निष्णात हैं। महाकवि कालिदास-तादृश रामोपासक और अनन्य भक्त न होनेपर भी रामचरित-निष्णात अवश्य हैं। कालिदासके काव्योंको मनन करनेवाले विद्वानोंसे यह बात अज्ञात नहीं है कि महर्षि वाल्मीकिजीकी सूक्ति-सुधाका निरन्तर आस्वादन करनेवाले कवि-शेखर कालिदासके ग्रन्थोंमें कहीं शब्दका और कहीं अर्थका सादर्य स्पष्ट दृष्टिगत होता है, पर यह स्वतन्त्र विषय है, इसकी स्पष्टता यहाँ अप्रासङ्गिक है। अस्तु।

कालिदासके शृङ्गार-वर्णनकी शैली बड़ी ही हृदयहारिणी और लोकोत्तरा है। उन्होंने शृङ्गार-रसके अलौकिक विभावादिका साक्षात् प्रदर्शन करनेमें कुतूहली त्रुटि नहीं रखी है। पर वे शृङ्गारी कवि थे, शृङ्गार-रस ही उनके वर्णनका प्रधान विषय था। उनके काव्योंमें ऐसे वर्णनोंमें चमत्कारकी पराकाष्ठा न होना ही आश्चर्यका कारण था। बड़े बड़े काव्य-भूमिकोंका कथन है कि कालिदास केवल शृङ्गारात्मक वर्णनमें ही सिद्धहस्त थे, वे शृङ्गारातिरिक्त रसोंके वर्णनमें तादृश सफलता उपलब्ध नहीं कर सके। कालिदास ही क्यों-

संस्कृत-साहित्यके अन्य प्रसिद्ध कवियोंके विषयमें भी यही बात चरितार्थ है। महाकवि भवभूति भी कदम्बररसके वर्णन-हीमें प्रधानता प्राप्त कर सके हैं। इसी प्रकार वीररसके वर्णनमें महाकवि भास अग्रगण्य समझे जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि जिस कविका जो रस विशेष अभीष्ट था उसीके वर्णनमें उसकी वषष्ट सफलता प्राप्त हो सकी है। किन्तु महात्मा तुलसीदास-विरक्त तुलसीदास-अनन्य रामभक्त-तुलसीदास-भक्त प्रपञ्चसे अतीत तुलसीदास जिनके वर्णनका एकमात्र प्रधान विषय भक्तिरस ही था, उनके द्वारा शृङ्गार-रसका अपूर्व वर्णन किया जाना, वह भी अपने इष्ट श्रीरघुनाथजीका और उसमें आशातीत सफलता प्राप्त करना निस्सन्देह आश्चर्य ही नहीं, बड़े महत्त्वका विषय है। महाकवि कालिदासने भी अपने इष्ट उमा-महेश्वरका 'कुमारसम्भव' में चरित्र-चित्रण किया है। जहाँ उसे पुरन्धर विद्वानोंने साहित्याकाशको अपनी अलौकिक प्रभासे चमत्कृत करनेवाला सुधांशु-पीथूपस्यन्दिनी-कलाविशिष्ट चन्द्रमा माना है, वहाँ उन विद्वानोंसे भी कहीं बढ़कर समालोचकोंने उस 'सुधांशु' में आकाशस्थित सुधांशुके समान स्पष्टही कलङ्क आरोपण भी किया है। यात यह है कि कालिदासने अपने उपास्य श्रीउमामहेश्वरका शृङ्गारात्मक वर्णन मर्यादातीत कर डाला है, इसीसे 'काव्य-प्रकाश'प्रणेतृ काव्यके प्रधानाचार्य सम्मत्ने उसे दूषित शृङ्गारके वर्णनकी कष्टा में रख दिया है। हमारे गोसाईंजीने अपने परमेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्र और जगज्जननीका शृङ्गारात्मक वर्णन किया है, वह भी साधारण नहीं, फुलवारीके शृङ्गारावह प्रकरणके पूर्वानुरागमें लोकोत्तर विभावादिकी अलौकिकताका प्रत्यक्ष अनुभव करा दिया है। उस प्रसंगकी एक एक चौपाईके अर्थानुभव में जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह अवर्णनीय है। जिस प्रकार ब्रह्मज्ञानी जनोंको ब्रह्मानन्द केवल समाधिगन्ध है, इन्द्रिय, मन, वाणीसे अगाध है, उसी प्रकार यह आनन्द भी केवल तदीय भक्त-जनोंके ही अनुभव-गन्ध है। इतना होनेपर भी रामचरितमानसमें वर्णित शृङ्गारमें यही विशेषता है कि वह सर्वथा निर्दोष है उसमें कहीं सीमोपलङ्घनकी गन्धतक नहीं मिल सकती। उस प्रकरणके कुछ उदाहरण देकर दिग्दर्शन करानेसे ही हमारे इस कथनकी वयार्थताका अनुभव हो सकता है।

कल्याण



चरण-पादुका-पूजन ।

Lakshminilal Press, Ltd., Calcutta.



प्रारम्भमें ही देखिये, गोसाईंजी औरधुनाथजीको लक्ष्मणजीके साथ और श्रीजनकनन्दिनीको सखियोंके साथ महाराजा जनककी पुष्पवाटिकामें भेजते हैं। पर स्वतन्त्रतासे—स्वेषकाचारितासे सँवर करनेके लिये नहीं, किन्तु—‘समय जानि गुरु भावसु पार’—रघुनाथजीको अपने गुह्यवर्ग महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञा द्वारा उनके उपासना कर्मके लिये पुष्प जानेको, और जानकीजीको—‘गिरिजा पूजन जननि पठार’—अपनी मातृजीकी आज्ञानुसार श्रीगिरिजाकी पूजाके लिये। देखिये तो कैसा मर्यादापूर्वक दोनोंके एकत्र गमनका सुप्रबलर उपस्थित किया गया है। यहाँपर कविको शृङ्गार-रसका उद्दीपन विभाव-वर्णन करना अभीष्ट है क्योंकि जनकपुर समुद्रिराजी नगर है, यहाँ अनेक पुष्पवाटिकाएँ हैं, पर रघुनाथजी महाराज-कुमार हैं, फिर महाराज जनकके सम्मान्य अतिथि हैं, वे अन्यत्र क्यों जाने लगे, उनके योग्य तो राजकीय पुष्पोद्यान ही है। अतः गोस्वामीजी उस पुष्पोद्यानका उद्दीपनात्मक वर्णन इस प्रकार करते हैं—

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥

श्रीरघुनाथजी जाकर पुष्पोद्यानको देखते हैं, कैसे पुष्पोद्यान-को ? जहाँ अखिल विश्वको प्रलुब्ध करनेवाली वसन्त ऋतु स्वयं प्रकीर्णित हो रही है। काबिदासजी ‘कुमारसम्भव’ में पुष्पधन्वा कामदेवको श्रीशङ्करको लुभानेके लिये भेजते हैं। और—

तस्मिन् वने संयमिनां मुनीनां तपः समाधेः प्रतिकूलवर्ती।

मङ्कल्पयोनेरभिमानभूतमात्मानमाधाय मधुर्विजृम्भे।

इस पद्यसे वे वसन्तके उद्दीपनका बड़ा ही उत्कर्षक वर्णन प्रारम्भ करते हैं, परन्तु शृङ्गारी कवि काबिदास-द्वारा यहाँ वसन्तके प्रभावसे ही प्रभावित प्राकृतिक वन-शोभा विश्वमोहिनी बनायी गयी है। पर यहाँ महात्मा गुलसीदासजीने ‘जहँ बसंत रितु रही लोभाई’ कहकर उस वर्णनको सचमुच शिथिल बना दिया है। जहाँ वसन्त ऋतु स्वयं प्रकीर्णित हो रही है उसकी उत्कर्षता अधिक हो सकती है, या जहाँ वसन्त ऋतु द्वारा उत्कर्ष किया जाता है उसकी ?

इसका अनुभव विश्व पाठक स्वयं कर सकते हैं। काबिदासजीके वर्णनमें उपर्युक्त पद्यके भागे वसन्तसे प्रभावित पशु-पक्षी आदि तककी शृङ्गार-चेष्टाओंका वर्णन किया जानेसे रसाभास माना गया है पर रामचरितमानसमें उपर्युक्त चौपाईके भागे वह वर्णन है—

लगे निटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना ॥

नव फल्लव फल-सुमन सुहाय। निज संपति सुर-रुस लजाय ॥

चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत निहँग नटत कल मोरा ॥

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनिसोपान निषिन्न बनावा ॥

बिमल सरिल सरसिज बहुरंगा। जल-खग कूजत गूँजत भुंगा ॥

जिस पुष्पोद्यानमें नवीन पल्लव, फल और फूलोंसे सुशोभित अनेक प्रकारके मनोहर वृक्ष लगे हैं, उनपर वितानरूपसे लटिकाएँ छापी हुई हैं। चातक-चकोर, कीर-कोकिल आदि पक्षीगण अपने अपने चेतोहारी शब्दोंसे उसे मुखरित कर रहे हैं। मधुरगण मनहरण नृत्यमें निमग्न हैं। बागके मध्यभागमें अखियोंके सोपानवाला निर्मल सज्जिलसे परिपूर्ण सरोवर है, उसपर नाना रंगके प्रफुल्ल कमल, जल-पक्षियोंकी मधुर-ज्वनि और शृङ्ग-पुञ्जोंका मधु गुआर हो रहा है। अहा ! चरम श्रेणीकी परम रमणीयताका कैसा पवित्र वर्णन है। पर गोसाईंजीको अपने लिये हुए इस वर्णनसे भी संतोष नहीं हुआ। वे अपनी असमर्थता दिखाते हुए संक्षिप्तमें—

बाग-तड़ाग॥ बिलोकि प्रभु हरये बन्धुसनेत।

परम रम्य आराम पह जो रामहि सुख देत ॥

— बही कहते हैं। पर इसमें सभी कुछ कह दिया है।

जिस बागको देखनेसे जोकामिराम श्रीरामको—अखिल विश्वके स्वयं सुखनिधान श्रीरामको सुख प्राप्त हो, उसकी परम रम्यताका बही पर्याप्त वर्णन है।

अच्छा, अब देखिये, आलम्बन-विभाव-वर्णनमें किस चातुर्यसे श्रीराम-सीताका काफ़तावीय एकत्र होना और परस्पर पूर्वानुराग प्रदर्शित कराया गया है। श्रीरघुनाथजी

\* ‘बाग-तड़ाग’ के सम्बन्धमें रामायणके प्रसिद्ध अन्वेषणकारी रायबहादुर लाल सीतारामजी अपने एक लेखमें लिखते हैं —

‘साधारण पाठकगण इसका अर्थ यह करते हैं कि उस स्थानपर एक बाग और एक तड़ाग (तलाव) था। परन्तु उस स्थानका नाम ही यह है और गुलसीदासजीने उसके दर्शन किये थे। इसीसे उसी नामसे उसका उल्लेख करते हैं। यह स्थान जनकपुरसे दस मील है और दरभंगा जिलेके बेनी पट्टी थानेमें फुलहरेके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ वह बाग था जिसमें जनकके पुजारी पूजा करनेके लिये फूल तोड़ा करते थे। यहाँ तालके किनारे गिरिजाका एक मन्दिर बना हुआ है और कहा जाता है कि विवाहसे पहले श्रीसीताजीने गिरिजाकी यहाँ पूजा की थी, मन्दिर पुराना है और इसके भीतर तीन फुट ऊँची गिरिजाकी पाषाण-मूर्ति है।’—सम्पादक

पुष्पोद्यानमें—जहाँ एक जलाशय है—फूल बोन रहे हैं। ऐसे समयमें श्रीसीताजी उसी पुष्पोद्यानमें एक बूसरे जलाशयपर—जिसके निकट ही श्रीगिरिजाका मन्दिर है—पधारती हैं। और—

संग सखी सब सुमग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी ॥

उनके साथ सुन्दर और चतुर सखी हैं, वे मधुर गीत गा रही हैं—कैसे गीत ? 'मनोहर बाणी'—बाणी सरस्वतीजीका भी मन हरण करनेवाले। उनमेंसे साँ-स्वभाव सुखभ फुलवारी देखनेके लिये गयी हुई एक सखी वहाँ श्रीराम-जन्मस्थानको देखकर, उनकी रूप-माधुरीपर मनोमुग्ध होकर प्रेम-विवश सीताजीके निकट आती है। उसकी तादृश प्रेम-विह्वल-वशा देखकर सखियों द्वारा कारण पूछा जानेपर वह कहती है—

देखन बाग कुँअर दोउ आप। बय कितोर सब भौति सुहाए ॥

स्याम गौर किमि कहाँ बलानी। गिरा अनवन नयन विनु बानी ॥

अहा ! सखीने कुछ अधिक न कहकर भी जो कुछ कहने योग्य था, इतनेहीमें सभी कुछ कह दिया। अधिक कहनेके लिये समय कहाँ, शक तो यह थी कि राजकुमार वहाँसे चले न जायें, ऐसा न हो कि जनकनन्दिनी उनके वर्णन-सुनते बहिन रह जायें। सखीने यह वाक्य कहकर जब सीताके हृदयमें अत्युत्कण्ठा उत्पन्नित देखी तो उनके मुखसे कुछ कहे जानेके पूर्व ही एक अतरंग सखी स्वयं ही वहाँ चबनेके लिये प्रार्थना करती है—

अवसि देखिये देखन जोगु ।

यह सुनकर उसी सखीको आगे करके उकड़ित सीताजी अपूर्व सुन्दरताको देखनेके लिये चलीं। और—

चकित बिभक्त सकल दिसि त्रनु सिनु-मृगी समीत ।

सब दिशाओंकी ओर चकित होकर-समीत मुग्ध वृगाङ्गनाकी तरह देखने लगीं। और उधर सम्मुख आनी

हुई सीताजीके कंकण, किंकिनी और नूपुरोंकी मधुर-ज्वनि सुनकर उनकी ओर, चोकर-कलापूर्व चन्द्रमाको जिस प्रकार चकोर देखता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र अनिमेष दृष्टिसे देखने लगे। कैसे रामचन्द्र ?

जिन्ह निज रूप-मोहनी डारी। कीन्हें स्वयस नगर-नर-नारी ॥

जिन्होंने अपने विश्व-विमोहनरूपसे सारे जनकपुरके सभी नर-नारियोंको मुग्ध कर दिया था, वह रामचन्द्र भी सीताजीके अलौकिक महा काव्यपर मोहित होकर उन्हें स्थिर-दृष्टिसे देखने लगे। इस अचञ्चल दृष्टिके कारण गोसाहुँजीने—

मनहुँ सकुचि निमि तजे दगचल ।

इस उपेक्षामें कभी ही समबोधित कल्पना की है। इसमें जीवनकनन्दिनीका अनुपम काव्य, उनपर श्रीरामचन्द्रजीका अभूतपूर्व प्रेम और मर्यादा इत्यादि अनेक भाव गर्भित हैं। फिर सीताजीके उस सौन्दर्यका श्रीरामचन्द्र अपने हृदयस्थलपर कैसा विचित्र चित्र अंकित करते हैं, देखिये—  
जनु बिराधि सब निज निपुनई। बिराधि बिस्व कहै प्रगटि देखाई ।।

इस अधोक्ष्यमें और काव्यदासखीके—

सर्वापमा द्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशे विनिवेशितेन ।

ममर्पिता विद्वद्भूजा प्रयत्नादेकस्यसौन्दर्येति दृष्टयेव ॥

( कुमारनभय शर्मा १ । ८५ )

इस पद्यके भावमें वर्णित श्रीपार्वतीजीके सौन्दर्यमें बहुत कुछ समानता है। पद्यमें कवि स्वयं पार्वतीजीके सौन्दर्यका वर्णन करता है, किन्तु चौपाईमें भगवान् रामचन्द्र जो स्वयं सौन्दर्य-निधान थे, वे—

देखि सीय-सोभा मुख पावा। हृदय सराहत बन्धन न आवा ॥

सीताजीके अकथनीय सौन्दर्यका वर्णन करनेमें असमर्थ

\* जिसके निकट श्रीगुनाधजी फूल बोन रहे थे, उस मनोहरमें यह सरस्वती भिन्न है, क्योंकि पुरुषोंके आवागमनके स्थानपर जन्मनालीका सखियोंके साथ गान और स्नान आदि विहार भव्य नहीं। इसका प्रमाण जगन्महादेवमें मिलता है—

वेदेहोपवनस्यानर्दिश्यैशान्ये मनोहरम् । विशालं सरस्वती गौरामन्दिरमुत्तमम् ॥

वेदेही बाटिका तत्र नाना पुष्प-मुगुम्फिता । रक्षिता मार्कण्डेयानिस्सर्वेषु सुकटा शुभा ॥

प्रभाते प्रयहं तत्र गत्वा स्नात्वाऽऽगिमिस्सह । गौरीमपूजयत्याता मात्राशता मुमकितः ॥

आगे रामकी प्रशान्तसे—

एक सखी मिय संग बिहाई। गई गढ़ा देखन फुगवाई ॥

इस कथनसे भी इसका सम्बन्ध हो सकता है।

होकर इक्ष्वाकु केवल उसका अनुभवमात्र ही कर सके हैं। पक्षमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीद्वारा संसारकी सारी उपमायोग्य सुन्दर सामग्रियोंको एकत्र देखनेके लिये—यह जाँच करनेके लिये कि मेरेद्वारा रचित संसारकी सारी सुन्दरता एकत्र होनेपर कैसी होगी, पार्वतीजीके प्रकट करनेकी उत्प्रेक्षा की गयी है। किन्तु चौपाईमें सीताजीको प्रकट करनेकी उत्प्रेक्षामें ब्रह्माजी-द्वारा अपनी सारी रचनाका चातुर्य विरबको एकत्र दिखाना है। निष्कारं यह कि काबिदासकी उत्प्रेक्षामें एकत्र सौन्दर्यकी जाँच करनेके लिये प्रथम प्रयास है, और गोसाईंजीकी उत्प्रेक्षामें उसी एकत्र सौन्दर्यकी परिपाक-अवस्थाका ब्रह्माजी-द्वारा विरबमें दिखाना है। शिल्पकारके प्रथम प्रयासकी रचनामें और अल्पस्त होजानेपर सिद्ध-हस्तकी रचनामें जो भेद रहना है, वही वहाँ इन दोनों उत्प्रेक्षाओंमें है। अग्रे, आगे देखिये—

सुंदरता कहैं सुंदर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई ॥

इसमें सीताजीको सुन्दरतारूपी घरकी दीप-शिखा—दीपककी अंशतिकी उपमा दी गयी है। काबिदासजीने भी रघुवंशमें इन्दुमतिके स्वयंवर-प्रसङ्गमें दीप-शिखाकी उपमा वर्णन की है—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ च यं व्यतीयाय पतिवरा सा ।

नरन्द्रमार्गोऽहं इव प्रपदे विवर्णभावं म म भूमिपालः ॥

इसका भाव यह है कि स्वयंवरा इन्दुमति जिस जिस राजाके सम्मुख होकर फिर उसे जोड़कर आगे बढ़ती थी, उन्म उस राजाकी ठीक वह अवस्था होती जाती थी, जिन प्रकार चलनी हुई दीप-शिखा—हाथमें ली हुई लालटेनकी रोशनी, आगे बढ़नेसे राजमार्ग—बाजारकी पीछे छोड़ी हुई दूकानें प्रकाश-रहित-गनप्रभा होती जाती हैं। इस दीप-शिखाकी उपमाके वर्णनद्वारा संस्कृत-साहित्यमें काबिदासका इतना गौरव है कि काबिदास-नामके अन्य कवियोंसे विभक्त करनेके लिये रघुवंशदि ग्रन्थोंको 'दीपशिखा काबिदास'के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त है। वस्तुतः उपमाकी कल्पना बड़ी ही विचित्र और मनोहारी है, तथापि जब हम इसके साथ गोसाईंजीद्वारा दी गयी 'दीप-शिखा' की उपमाकी तुलना करते हैं तो विवशतया कहनेको बाध्य होना पड़ता है कि काबिदासकी 'दीप-शिखा' सुवर्ण है तो गोसाईंजीकी 'दीप-शिखा' अवसर ही कुण्डल है। काबिदासजीने इन्दुमतिको दीप-शिखाकी समता केवल उसकेद्वारा त्यक्त-राजाओंके गत-प्रभ होनेमात्रके लिये दी है। किन्तु

गोसाईंजीने सीताजीको विश्वकी सुन्दरतारूप वस्तुका स्पष्ट प्रदर्शन करानेवाली दीप-शिखाकी उपमा दी है। अर्थात् संसारमें जहाँ कहीं भी सुन्दरता कही जानी है वह अन्धकारावृत होनेके कारण केवल कथनमात्र है—वस्तुतः नहीं, यदि अन्धकारमें कोई वस्तु उपलब्ध हो सकती हो तो सुन्दरता भी अन्धकार उपलब्ध हो सकती है। वैदीप्यमान अखिल सुन्दरताका साक्षात् दर्शन तो श्रीसीताजीमें ही उपलब्ध हो सकता है। श्रीरघुनाथजी भगवती सीताके अकथनीय विशिष्ट लावण्यपर मनोमुग्ध होकर उनकी उपमाके लिये खोज करने लगे, पर अब बहुत खोज करनेपर भी उनके सादर्य योग्य उपमा कहीं नहीं मिल सकी तो उन्हें विवशतया यही कहना पड़ा कि—

केहि पटतरी बिंदहुकुमारी। सब उपमा फाब रहे जुठारी ॥

उपमा देने-योग्य जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उनको कवियोंने साधारण स्त्री-जनोंको देखकर, जूँठी कर दिया है। फिर वे निर्माल्य उपमाएँ विदेह-कुमारीके योग्य किस प्रकार हो सकती हैं? इससे अधिक कहनेके लिये वहाँ समय ही कहाँ था, पर आगे अवसर मिलनेपर जब रंगभूमिमें सीताजी पदार्पण करती हैं, तो गोसाईंजीने अपनी उक्तिमें इसकी—

गिरा मुखर तनुअरब भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥

बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही ॥

—इस वर्णनसे और भी स्पष्टता कर दी है। सुन्दरतामें सर्वोपरि विश्वविख्यात सरस्वती, पार्वती, रति और श्रीलक्ष्मी हैं, फिर भी सीताजीके साथ इनकी तुलना नहीं की जा सकती। सरस्वतीजी मुखरा हैं—अधिक बोलती हैं, सीताजी परिमितभाषिणी हैं, जो कुलाङ्गनाओंके लिये केवल शांभा-प्रद ही नहीं, परमावश्यक भी हैं। पार्वतीजीमें अर्द्धाङ्गी सुन्दरता है, आधा अङ्ग भगवान् शङ्करका और आधा गिरिजाका है। कामाङ्गना रति तो बेचारी अपने पतिके अनङ्ग—अङ्गरहित होनेके सन्तापसे दुःखिनी है और लक्ष्मीजी भी अपने प्रिय कण्ठु बिष और बारुनीकी सहोदरा हैं, अवश्य ही उनके निवासस्थानमें प्रमत्तता होनेका यही कारण है। यही नहीं—

जौ छवि सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई ॥

सोभा रजु मंदरु सिंगारु। मथइ पानि-पंकज निज मारु ॥

एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता-मुख-मूल ॥

तदपि सकोचसमेत कवि कहहि सीय सम तूल ॥

यदि ऐसी सामग्रीसे उत्पन्न कच्चीकी हों, तो भी सीताजीके साथ उनकी उपमा देनेमें कविको संकोच है, क्योंकि उपमा तो उत्कृष्ट वस्तुकी ही जाती है, किन्तु वहाँ तो भाव यह है कि उन्हें सीताजीकी भी विशुद्ध समता नहीं दी जा सकती, फिर भी शक्ता रह जाती है कि वे सीताजीकी समताके योग्य हैं या नहीं। देखिये तो कैसी नवीन और अनूत कल्पना है। गोसाईंजी यदि इस नवीन उपमाकी कल्पना न करते तो सचमुच उनकी—‘किरि पट-तरी विदेह-कुमारी। सब उपमा कवि रहे जुठारी।’ यह उक्ति कवि-स्वभाव-सिद्ध व्युत्पत्तिमें ही गण्य हो जाती।

काबिदासने भी दुष्पन्तद्वारा शकुन्तलाके सौन्दर्यका वर्णन कराया है—

चित्ते निवेद्य परिकल्पितसत्त्वयोगा

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।

क्षीरद्व सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे

वातुर्विमुक्तमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः॥

( अभिज्ञान शाकुन्तल द्वितीयः )

और राजा पुरुषाके द्वारा उर्वरीका सौन्दर्य वर्णन इसप्रकार है—

अस्याः सर्वविधौ प्रजापतिरभूत् चन्द्रो नु कान्तिप्रदः

शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदने मासो नु पुष्पाकरः।

वेदाम्बासजः कथं नु विषमम्बावृत्तकौतुहलो

निर्मातुं प्रमवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥

( विक्रमोर्वशीय )

दोनों ही वर्णन अपूर्व हैं। पिछले वर्णनकी और गोसाईंजीके वर्णनकी तो एक ही शैली है तथापि गोसाईंजीद्वारा वर्णित सौन्दर्य-सामग्रीकी समता विक्रमोर्वशीयमें वर्णित सामग्री नहीं कर सकती, यही नहीं अब कि काबिदासने अपनी वर्णित सामग्रियोंद्वारा उर्वरीकी रचनाकी उत्कृष्टता सूचित की है, तब गोसाईंजीने इससे कहीं बढ़कर सामग्रियों-द्वारा की हुई रचनाको भी निराद्वी सीताजीकी तुलना देने योग्य नहीं माना है।

अच्छा, आगे देखिये—

सियसोमा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।

बोले सुचि-मन अनुजसन बचन समब-अनुहारि॥

इसप्रकार सीताजीकी शोभाका दृष्टमें अनुभव करनेके

समय प्रभु रघुनाथजीने अपनी ऐसी प्रेम-विह्वल दशाका विचार किया—क्या विचार किया? यही कि मेरे साथ सम्मेलन हैं, वे मेरे अनुज हैं, यद्यपि वे दुर्धमन हैं—छद्म-चित्त हैं, (‘सुधिमन’ वह विशेषण वहाँ रघुनाथजीके सम्बन्धमें वैसा उपयुक्त नहीं हो सकता, जैसा सम्मेलनकी सम्बन्धमें। रघुनाथजीके लिये तो वहाँ गोसाईंजीने ‘प्रभु’ सर्वनामके प्रयोगही में सभी कुछ सूचित कर दिया है) तथापि समझके अनुकूल—जोकरिआके आदर्शके लिये स्पष्टता करना प्रयोजनीय समझकर श्रीरघुनाथजी कहते हैं—  
तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥  
पूजन गौरि सखी ते आई। करत प्रकास फिरइ फुलझई॥  
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मार मन छोभा॥  
सो सनु कारन जान बिधाता। करकहि सुभग अंग सनु आता॥  
रघुबेसिन्हकर सहज सुसाऊ। मन कुपय पगु चौर न काऊ॥  
मोहि अतिसय प्रनीत मनकेरी। जेहि मयनेहु पनारि न हेरी॥

अहा ! कैसे पवित्र, स्पष्ट और मर्वादायक वाक्य हैं ! काबिदासजी दुष्पन्तद्वारा शकुन्तलाके विषयमें कहलाते हैं—

असंशयं श्रवणमिदं श्रवणमिदं

यदार्थमस्याममिनामि मे मनः।

मतां हि सन्देहपदेन बन्नु

प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

वहाँतक तो समानता है, पर इसके आगे—

जनापात्रां दृष्टि स्पृशसि बहुशां वेपथुमती।

रहस्याभ्यायीव स्वनमि मृदु कर्णान्निकरः।

करी व्याधुन्वत्याः पिवमि रतिसर्वस्वमधरं,

वयं नन्वान्नेषान्मपुकर इतास्त्वं सानु कनी॥

( अ० शाकुन्तल मि० अ० )

इसमें और इसके आगे काबिदासने इस शृङ्गारात्मक वर्णनको अधिक विस्तृत और स्पष्ट किया है। उसमें मर्वादाकी परवा नहीं की गयी है। परन्तु गोसाईंजीके—

करत बतकही अनुजसन मन सियरूप तुमान।

मुख-सरोज-मकरन्द-छवि करै मधुप इव वान॥

चितवति चकित चहूँ दिशि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मन-बीता॥

जहँ बिलोक मृग-सावक-जैनी। अनु तहँ बरिस कमलसित-अनी॥

मता जोट तब सखिन लखावे। स्वामल गौर किसोर सुहावे॥

देखि रूप लोचन ललचाने । हरये जनु निज निधि यहिबाने ॥  
यके नयन रघुपति-छवि देखे । बलकनिहं हरिहरों निमेषे ॥  
अधिक संनह देह भइ मोरी । सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी ॥  
लोचनमग रामहि उर आनी । दान्हे फलक-कपाट सयानी ॥  
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन मुसुकानी॥

लताभवनते प्रगट भये तेहि अवसर दोठ माइ ।

निकसे जनु जुग बिमल बिभु जलद-पटल बिलगाइ ॥

इस मधुर वचनमें देखिये, कैसा मर्यादोचित शृङ्गार वचन किया गया है। इसके अत्येक शब्दमें बड़े ही माधुर्य-पूर्ण भाव गर्भित हैं। वही क्यों, इसके आगे श्रीरघुनाथजीकी रूप-माधुरीपर सीताजीकी प्रेम-विह्वल अवस्थाका भी वचा अद्भुत और चमत्कारिक वर्णन है। खेद है कि बिलार-भयमे हम उसकी स्पष्टता करनेमें असमर्थ हैं। सीताजीकी तादरा बरा देखकर—

परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भए गहरु सब कहहिं सम्यता ॥

सखियाँ परस्पर कहने लगीं, वही घेर हो गयी। सभीत इत्यलिये कि माताजी बिलम्बका कारण पूछेंगी तो हम क्या कहेंगी। पर इसपर भी जब सीताजीकी प्रेम-समाधि नहीं छूट सकी तो—

पुनि आठव पति बिरियां कारी। अस कहि मन निहँसी एक आली ॥

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलंब मातुभय मानी ॥

घरि बदि वीर राम उर आने । फिरी अपनपौ पितुबस जाने ॥

एक सखी जब यह कहकर कि 'कल इसी समय फिर आवेंगी' मन-ही-मन ईंसी, तब सीताजी सखीकी इस गूढ़ बाखीको व्यङ्ग्योक्तिको सुनकर जजित हो गयीं। सखीकी इस व्यङ्ग्योक्तिके वाक्यार्थमें तो एक साधारण परिहास है, किन्तु व्यङ्ग्यार्थमें 'गुह्यारी इस प्रेम-विवाह वशाको मैं भलीप्रकार समझ रही हूँ, पर अब बिलम्ब करना उचित नहीं और मैंने अपने वह वाक्य 'पुनि आठव पति बिरियां कारी' राजकुमारको सुनाते हुए इसीलिये कहे हैं कि वे भी कल इसी समय आवें।' यह बोधव्य-वैशिष्ट्य व्यङ्ग्य है क्योंकि वहाँ बोधव्य (जिसके प्रति कहा जाय) सीताजी हैं। और श्रीरघुनाथजी—जो यह वाक्य सुन रहे हैं, उनके प्रति सखीके इस वाक्यमें वह व्यङ्ग्य सूचन है कि 'हम अपनी सखी श्रीसीताके साथ कल फिर इसी समय वहाँ आवेंगी, आप भी आनेकी कृपा करें।' इसलिये यह अन्वय-संक्षिप्त-वैशिष्ट्य व्यङ्ग्य भी वहाँ है। और सीताजीके जजित होनेका वही कारण है।

जजित सीताजी सखीकी इस गूह्योक्तिको सुनकर अगत्या झौंटीं चकरव, पर केवल देहमात्रसे, मनसे नहीं। इसी भावको कवि वर्णन करते हैं—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिर बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रघुबीरछवि बाढे प्रीति न योगि ॥

बहा ! कैसी मधुर कोमल और कान्त-पदावलीद्वारा वह भाव व्यक्त किया गया है। काशिकास भी शकुन्तलाकी ठीक इसी अवस्थाका वर्णन करते हैं—

दर्भोद्भुरग चरणः क्षत इत्यकाण्डे

तन्वा स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।

आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती

शास्त्रासु बलकलमसकमपि दुमाणाम् ॥

( अ० शाकुन्तल द्वि० )

वह वचन भी वचा रसावह है। पर शृङ्गारी कवि काशिकास शकुन्तलाकी हम चेष्टाका वचन उसपर अनुरक्त राजा दुष्यन्तद्वारा कराते हैं। किन्तु गोसाईंजी सीताजीके विषयमें स्वयंवरके प्रथम श्रीरघुनाथजीद्वारा ऐसा वचन कराना उचित नहीं समझकर कविकी हैसियतसे स्वयं ही करते हैं, वही उनके शृङ्गार-वचनकी विशेषता है।

मित्र पाठक ! रामचरितमानसके शृङ्गार-वचनकी विशेषताका यह दिग्दर्शनमात्र है। इसप्रकारके विशेषताद्योतक और भी बहुतसे उदाहरण हैं और उनकी स्पष्टताके लिये इस कुछ खेलककी खेलनी बड़ी लाजायित है—यह इस सुधा-भ्रोतसे विरत होना नहीं चाहती, और न आप ही श्रीरामचरितायुतमे गूढ़ हो सकते हैं और न यह प्रसन्न ही समाप्त हो सका है, जो कुछ खिला गया है, उसका विवेचन भी अत्यन्त संक्षिप्त किया गया है—अपर्याप्त है, किन्तु 'कल्याण' के विरोधाङ्की जम्बी विषय-सूची और उनपर खेलोंका बाहुल्य ज्ञानमें रखकर इस खेलको अगत्या वहीं समाप्त किया जाता है।

### रामायणमें रस

होमरके काव्यमें जो रस है, रामायणमें उससे कहीं विशेष है। —वेबर



## रामचरितमानसकी कतिपय विशेषताएँ

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी 'मान्त' और श्रीगुरल्लोपरजी दीक्षित 'भान्त')

आनन्द-कानने हस्मिन् तुलसीजङ्गमस्तवः ।  
कविता-मञ्जरी यस्य राम-प्रमद-मूर्धिता ॥



स्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस अपने दिव्य और अलौकिक गुणोंके कारण मानव-समाजके मानस-मन्दिरोमें मन-मोहनी मन्त्र-सूक्तिकी भांति पूजा जा रहा है और अनन्त कालतक इसी प्रकार भक्ति-पुष्पाञ्जलि पाता रहेगा । इस अलौकिक ग्रन्थ महासागरमें अनेक प्रकारात्मान गुण-रत्न भरे पड़े हैं जिन्हें प्रेमी पाठक अपनी अपनी शक्तिके अनुसार चुनकी जगाकर निकाल लेते हैं । ईश्वरकी कृपा और विद्वानोंके सत्सङ्गसे हमें भी कतिपय गुण-रत्न प्राप्त हुए हैं । उनमें कुछ हम 'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंके मनोविनोदार्थ भेंट करते हैं ।

( १ )

सोपान आरम्भ—

गोस्वामीजीने सब सोपानोंका आरम्भ दोहे या सोरठेसे किया है; पर सुन्दर-काव्यका आरम्भ चौपाईसे ही कर दिया है । क्या—

बाल-काण्डः—

जैहि मुमिरत मित्रि होइ गननायक करि-बर-बदन ।  
करी अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि मुम-गुन-सदन ॥ (सो०)

अयोध्या-काण्डः—

श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज निज-मन-मुकुर मुधारि ।  
बरनीं रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि ॥ (दो०)

अरण्य-काण्डः—

उमा शनगुन गूढ़ पंडित मुनि पावहि बिरति ।  
पावहि मांहे बिमूढ जे हरि-बिमुख न धरमरति ॥ (सो०)

किष्किंधा-काण्डः—

मुक्ति-जन्म महि जानि ग्यानमानि अवहनिकर ।  
जहँ बस समु-मबानि सो कासी सेइज कसन ॥ (सो०)

सुन्दर-काण्डः—

आमन्त के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥ (चौ०)

लङ्का-काण्डः—

लज निमेष परमान जुग बरष कल्प सर चंड ।  
भगसि न मन तेहि राम कहँ काल जामु कोदंड ॥ (दो०)

उत्तर काण्डः—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग ।  
जहँ तहँ सोचहि नारि नर कसतनु रामबियोग ॥ (दो०)

पाठक, सुन्दर-काव्यका चौपाईसे ही आरम्भ क्यों किया गया ? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि मानव-गत सोपानोंके आरम्भ और अन्त्य सभी स्थलोंमें लिखे हुए दोहे-सोरठे विद्याभक्तके लिये हैं । सुन्दर-काव्य आरम्भ करनेके पहले विद्याभक्त कोना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि गोस्वामी जैसे परम भक्त अपने हृद-द्वय श्रीरामचन्द्रजीको धर्म-शीला, पति-प्राया सीतादेवीके विरहमें व्याकुल होकर विद्याभक्त नहीं हो सकते । इस बातकी पुष्टिमें वे स्वयं कहते हैं । 'रामकाव्य क'हैं बिना मोहि कहौ विद्याभक्त ?' (इन्मानजीका कथन)

कोई कोई विनोदी पाठक चौपाईसे आरम्भ करनेका यह कारण बतलाते हैं कि सुन्दर-काव्यमें श्रीरामचन्द्रजीका सारा कार्य चौपायों (रीत बानरों)में ही किया है, अतएव चौपायोंके कारण यह काव्य चौपाईसे ही आरम्भ करना उचित है ।

( २ )

धन्वनामें—

'बंदीं गुरु-पद-कंज कृपासिधु नरकष हरि ।'

'बंदीं मुनि-पद-कंज रामायन जहि निरमंघट ।'

'पुनि मन बचन कर्म गनुनायक । चरन-कमल बंदीं सब लायक ॥'

'जनकमुता जगजनि जानकी । अनिमय प्रिय कलनिधानकी ॥'

तत्कं जुग-पद-कमल मनारौ । जामु कृपा निरमल मति पावौ ॥'

'बंदीं लखिमन-पद-जलजला । सीतल सुमग मल-सुख-दाता ॥'

'रिपु-सूदन-पद-कमल नमामी । सूर सुसील भरत अनुगामी ॥'

‘रघुपति-चरन-उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेत ॥  
बंदौ पदसरोज सब केरे। जे विनु काम रामके चरे ॥’  
‘प्रनवौ प्रथम भरतके चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥’  
‘बंदौ विधि-पद-रेनु। मयसागर जेहि कीन्ह जहँ ॥’

उपर्युक्त पंक्तियोंमें बन्धना करते समय गोस्वामीजी सबके चरनोंको कमलकी उपमा देते हैं; परन्तु भरतकी बन्धनामें ‘प्रनवौ प्रथम भरतके चरना’ और विधाताकी बन्धनामें ‘बंदौ विधि-पद-रेनु’ लिखकर ही रह जाते हैं। भ्रातृ-भक्त बेचारे भरत और बयोद्वन्द्व ब्रह्माने गोस्वामीजीका क्या अपराध किया था जो उन्होंने उनके चरनोंको कमलकी उपमासे बखित रक्खा ? पाठको ! इसमें एक रहस्य है। बात यह है कि ‘प्रनवौ प्रथम भरतके चरना। जासु नेम-ब्रत जाइ न बरना ॥’ इसके आगे गोस्वामीजीने लिखा है ‘राम-चरन-पंकज मन जाय। कुतुभ मधुप बव त गइ न पास ॥’ अर्थात् जिसका मन खोभी मधुपके समान रामके चरण-कमलोंका पास नहीं जोड़ता। खोभी मधुपके सदृश रामके चरणारविन्दोंमें भरतकी यह अनुरक्ति ही उन्हें कमलकी उपमासे बखित रखनेका कारण है। यदि भरतके चरणोंको कमलकी उपमा दे दी जाती तो उनका मनरूपी भौंरा कदाचित् उनके ही चरण-कमलोंमें लुब्ध हो जाता, क्योंकि अमरका तो कमल चाहिये। जब उसे अपने पास ही कमल मिल जाता तब वह द्रव्य रामके चरण-कमलोंमें भटकने क्यों जाता ? इस तरह कवितामें व्यर्थ उत्पन्न हो जाता।

विधाताके चरणोंको कमलकी उपमासे बखित रखनेका कारण यह है कि ब्रह्माजी कमलसे उत्पन्न हैं अर्थात् कमल उनका जनक है। अतएव उनके चरणोंको कमल (उनके पिता) से उपमा देना कितना असंगत ज्ञात होता ? अन्य है, गोस्वामीजी आपकी इस सूक्ष्म-दर्शिताको !

(१)

महारामाजीकी उपमाएँ भी कभी अज्ञेय हैं। आपने श्रीरामचन्द्रजीको चकोर बनाया है !

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय-मुख-ससि मय नयन चकोरा ॥

जब रामजी चकोर हुए तब उनका विवाह भी चकोरीसे होना उचित है, अतएव गोस्वामीजी सीताजीके विषयमें लिखते हैं—

अधिक सनेह देह मइ मोरी, सरद-ससिहिं अनु चितय चकोरी।

चकोर-चकोरी के विवाहमें समझी भी चकोर होना चाहिये। खीजिये वे भी चकोर बने बैठे हैं—

दशरथजीः—

जानिसि मोर स्वभाव बरोक। मन तव आनन-चन्द्र चकोर ॥

जनकजी—

सहज निराम रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द्र-चकोरा ॥

दुलहा-दुलहिन चकोर-चकोरी, समझी भी चकोर, तब क्या दुलहाजीके चिर-अनुगामी जन्मबन्धी चकोर नहीं होंगे ? क्यों नहीं, वे भी चकोर हैं—

रामहि लवण बिलोकहि कैसे। ससिहिं चकोर-किसोरक जैसे ॥

सब तो चकोर हो गये फिर बराती ही क्यों रहें ? खीजिये—

राम-चन्द्र-मुख-चन्द्र-छवि लोचन चार चकोर।

करत पान सादर सकल प्रेम-प्रमोद न थोर ॥

विवाहका योग मिलानेवाले राजर्षि चिरबामिन्त्रजी भी चकोर-पद्मे बखित नहीं रहे। देखिये—

नख-सिख निरख रामके सोमा। अनु चकोर पूजनससि लोमा ॥

बलिहारी है, इस चकोर-विवाहकी ! निःसन्देह इस चकोर-विवाहमें आनन्द-सिन्धु उमड़ पड़ा होगा ! सच्चे भक्त प्रेमी पाठक तो इस प्रसंगमें अब भी चकोर बन जाते हैं।

बनमें जाते हुए चकोर-चकोरी—राम-सीता—तथा चकोर बन्धु जन्मबन्धीको देखकर दर्शक भी तत्काल चकोर बन गये। अगस्त्याश्रममें मुनि-महदजी भी चकोर बन गयी !

मुनि-समूह महँ बैठे, सनमुख सबकी ओर।

सरद-इन्दु तनु चितवत, मानहु निकर चकोर ॥

मार्गमें नर-नारि गद्य भी चकोर हो गये—

मुदित नारिनर देखहिं सोमा। रूप अनूप नयन मन लोमा ॥

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचंद्र मुख-चंद-चकोरा ॥

(४)

गोस्वामीजीने सभी उपमाओंका प्रयोग बड़े विचारसे किया है। कहीं एक उपमा, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार-चार उपमाओंका जमावट है। इसप्रकार न्यूनाधिक उपमाएँ देनेका क्या कारण है ? क्या ! जन्मबन्धी

मृगशिकतापर विचार करते ही हृदय मुग्ध हो जाता है—  
कविकी खोजनी भूम खेनेको चित्त चञ्चल हो उठता है।  
उदाहरण-स्वरूप, उपमाओंके दो-चार नमूने देखिये।

[ क ]

सुनि मृदुनचन भूपहिय सोऊ । ससिकर छुअत बिकल जिमि कोऊ ॥  
गयेउ सहमि नहि कहि आवा । जनु सञ्चान बन सपेटेउ लावा ॥  
बिबरन मयेउ निपट नरपाहू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु ताहू ॥

उपर्युक्त पंक्तियोंमें वृषारथजीकी वृषाका चित्रण तीन उपमाओंद्वारा किया गया है। क्या एक उपमासे काम नहीं चला सकता था ? यहाँ तीन उपमाएँ देनेका क्या कारण है ? गोस्वामीजी तीन प्रकारका शोक विलजाना चाहते हैं, इसीलिये तीन उपमाएँ दी गयी हैं। पहली—  
सुनि मृदुनचन भूपहिय सोऊ । ससिकर छुअत बिकल जिमि कोऊ ॥

इसमें मानसिक शोक दर्शाया है। दूसरी—

गयेउ सहमि नहि कहि आवा । जनु सञ्चान बन सपेटेउ लावा ॥

इससे वाचनिक शोक प्रकट होता है। तीसरी—

बिबरन मयेउ निपट नरपाहू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु ताहू ॥

इससे शारीरिक वेदना व्यक्त होती है।

शोककी संख्याके अनुसार उपमाओंकी संख्या तो है ही, विशेषता यह है कि महाराज वृषारथजीको शोक उत्पन्न हुआ है कैकेयीकी बाबीद्वारा ( सुनि मृदुनचन ) और बाबीका तत्त्व है आकाश, इसलिये उपमाएँ भी आकाशस्थ ही हैं। यथा—प्रथम पंक्तिमें शशिकर, द्वितीय पंक्तिमें सञ्चान (बाब) और तृतीय पंक्तिमें दामिनि।

शोककी व्यापकता जल, धर और आकाशमें बतलानेके लिये गोस्वामीजीने वृषारथजीके उपमान जल-धर, धर-धर और जल-धर ही दिये हैं। यथा—(१) कोऊ-जलधर (२) लावा-जलधर (३) तरु-ताहू-धरधर-आकाश कैकेयीकी बाबीसे जल, स्थल और आकाश सभी शोक-पूर्ण हो गया था। कमाव है !

[ ख ]

चित्रकूटाश्रममें भरतको ससैन्य आते हुए देख जलधरजीका हृदय धीर-रससे उझड़ने लगता है और वह रामचन्द्रजीसे कहते हैं—

जिमि करिनिकर दहै मृगराजू । लेह लपेटि लवा जिमि बाजू ॥

तैसहि भरतहि सेनसमेता । सानुज निदरि निपातौं खेता ॥

उपसु'क बर्बानमें दो उपमाएँ दी हैं। (१) करिनिकर दहै मृगराजू (२) लवा जिमि बाजू।

दोनों उपमाओंमें पहली उपमा भरत तथा दूसरी शत्रुघ्नके लिये है। करि (हाथी) से शृंग-राज (सिंह) झोटा होता है, इसी प्रकार भरतसे जलधर भी झोटे थे। इससे प्रथम उपमाकी सार्थकता सिद्ध होती है। दूसरी उपमामें वह विलज्जलाया गया है कि जिसप्रकार जलसे बाजू बड़ा होता है उसी प्रकार शत्रुघ्नसे जलधर भी बड़े थे। अतः दूसरी उपमाका भी उचित प्रयोग किया गया है। खूबी यह कि पहली उपमामें करि-निकर ( हाथियोंके समूह ) के समान भरत भी 'सेन-समेता' थे। दूसरी उपमामें झकेला लवा है, क्योंकि शत्रुघ्नके साथ भी किसी सहायक शब्दका उल्लेख नहीं है।

भरतको करि (हाथी) की उपमा देना सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि इस प्रसंगमें जलधरजी भरतको राज-मद्-मल समझ रहे हैं और हाथी मतवाला होता ही है। शत्रुघ्नको उनकी जघुताके कारण उबाकी उपमा देना भी सर्वथा उचित है।

[ ग ]

गिरा अरथ ऊन बोधि सम कहिअन भिन्न न भिन्न ।

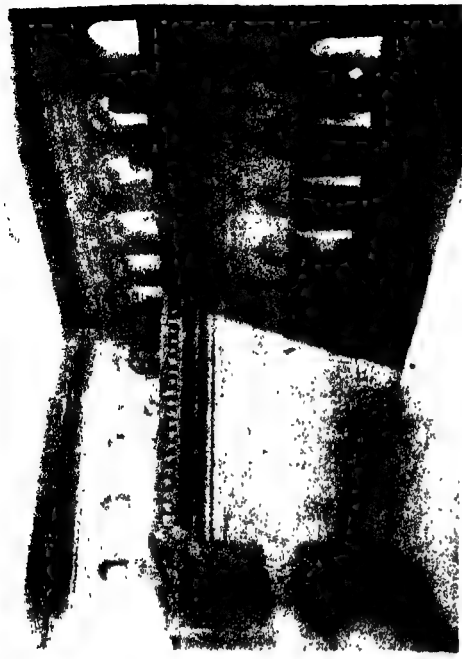
बंदी सीतागमपद त्रिन्हहि परम प्रिय सिन्न ॥

इस दोहेमें श्रीसीता-रामजीकी अभिन्नता दो उपमाओंके द्वारा प्रदर्शित की गयी है। अभिन्नता तो एक उपमासे भी प्रकट हो सकती थी। फिर दो उपमाएँ देनेका क्या कारण है ? विचार करने पर हमें तो निम्न-लिखित कारण जान पड़ा है।

पहली उपमा 'गिरा-अरथ' में गोस्वामीजीने पहले सीतादेवीका और उनके परचातु श्रीरामचन्द्रजीका नाम उपमानके रूपमें लिया है। अतएव उपमानोंके इस क्रमके अनुसार उपमेयोंका क्रम सीता-राम हुआ। रामचन्द्रजीका नाम पीछे होनेसे कहीं वह रुक न हो जाय इसलिये दूसरी उपमामें गोस्वामीजीने उपमानोंका क्रम बदल दिया अर्थात् पहले श्रीरामजीका पञ्चातु सीतादेवीके नामका उपमानके रूपमें उल्लेख किया। यथा—'जल-भीषि'। इस प्रकार दूसरी उपमा देख गोस्वामीजी कैवला इस दोहेसे ही

कल्याण

( अयोध्यापुरी )



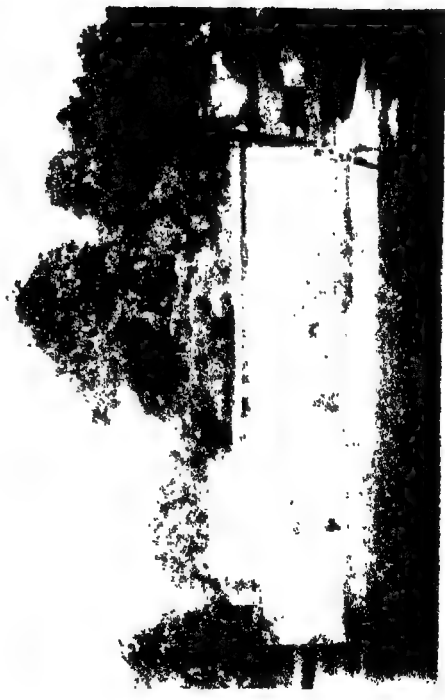
मंज कुण्ड - जनाल। बाट



रत्न कुण्ड



मंज कुण्ड



वशिष्ठ कुण्ड

कल्याण

(अयोध्यापुरी)



तुलसी जीरा



गोस्वामी तुलसीदासजीकी कुटी



.मणि पंचत



मन्मथ जेल

नहीं बच गये प्रत्युत उन्होंने अपने युगल आराध्योंकी एकरूपता और भी प्रदर्शित कर दी। अन्य अक्षप्रवर !

इसके अतिरिक्त इन उपमाओंमें एक विशेषता और भी है। यह यह कि दोनों उपमाओंमें सीतादेवीके उपमान कीर्ति तथा श्रीरामजीके पुर्ल्लिख हैं। उपमानोंमें परस्पर जैसा अभिन्न प्रेम है उससे वे श्रीसीता-रामजीके उपमान बननेके सर्वथा योग्य हैं।

(५)

मानसके कतिपय प्रेमी पाठकोंने कदाचित् इस बातपर ध्यान न दिया होगा कि वन-वासके आरम्भ, मध्य और अन्तमें मिलनेवाले महर्षियोंसे श्रीरामचन्द्रजीने कौन-कौनसे प्रश्न किये और उनसे उन्हीं विशेष प्रश्नोंके करनेका क्या कारण है? यथा—

वन-वासके आरम्भमें महर्षि भरद्वाजसे मिलनेपर भगवान् कहते हैं—

राम मप्रेम कहेउ मुनि-पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥

पाठक! उक्त ऋषि-वरसे मार्ग ही पूछनेका क्या कारण है? इनमें अन्य प्रश्न क्यों नहीं किया?

इन्के दो कारण हैं:—

(१) भरद्वाज-ऋषिके आश्रमसे ही श्रीरामजी वनमें प्रवेश करते हैं; अतएव प्रवेश करनेके पहले ही मार्ग जान लेना आवश्यक है।

(२) जो जिस विषयका ज्ञाता होता है, उससे वही बात पूछी जाती है। भरद्वाजजीके विषयमें गोस्वामीजी बालकायडमें लिख आये हैं:—

भरद्वाज मुनि वसति प्रयागा। त्रिनहि राम-पद अति अनुरागा॥

तापस सम-दम-दया-निधाना। परमार्थ-पथ-परम-सुजाना॥

यहाँ चौथे चरणपर ध्यान दीजिये। इससे स्पष्ट है कि भरद्वाजजी परमार्थ-पथके अच्छे ज्ञाता थे और परमार्थके लिये ही भगवान्ने अवतार धारण किया था। यथा—

जब जब होइ भ्रम के हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी॥

तब तब धरि प्रभु मनुज सीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥

सारांश यह कि श्रीरामजी राजसोंका बच करने अर्थात् परमार्थके पथपर चलनेहीके लिये अवतारी हुए

३३

थे। 'अतएव परमार्थ-पथ-परम सुजाना' होनेके कारण ही उन्होंने भरद्वाजजीसे उपयुक्त प्रश्न किया।

वनवासके मध्यमें आदिकवि वाल्मीकिजीसे भेंट हुई है और उनसे श्रीरामजीने निम्नलिखित प्रश्न किया है—

अस जिय जान कहिय सोइ ठाँऊ। सिय सौमित्र-सहित जहँ जाऊँ॥

तहँ रचि रुचिर परन-तुन-साला। बास करौं कछु काल कृपाला॥

पाठक इन महर्षिजीसे निवास-स्थान पूछनेका कारण भी बड़ा गूढ़ और मनोमुग्धकारी है। बात यह है कि महर्षि वाल्मीकि श्रीरामचन्द्रजीके निवास-स्थानके निर्माण करनेमें सबसे अधिक कुशल शिल्पी समझे गये हैं। गोस्वामीजीने वन्दनामें कहा है—

बेटौं मुनि-पद-कंठ 'रामायण' त्रिन निरमयेउ।

रामायणका अर्थ (राम + अयण) रामजीका निवास-स्थान है। वाल्मीकिजीसे श्रीरामजीका निवास-सम्बन्धी इस प्रश्नके करनेका अभिप्राय कितना गूढ़ रहस्यमय और युक्ति-युक्त है।

वनवासके अन्तमें अगस्त्य ऋषिसे भेंट हुई। उनसे श्रीरामजी कहते हैं—

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मार्गें 'मुनि द्रोही'॥

अगस्त्यजीसे राजसोंके मारनेकी युक्ति क्यों पूछी?

एक बार दण्डकारण्यमें दो राजस-वन्धुओंने बड़ा उपद्रव मचाया था, उनमेंसे एक ब्राह्मण-वेष धारण कर ऋषियोंको निमन्त्रण दे जाता और अपने छोटे भाईका मांस पकाकर निमन्त्रित ऋषियोंको खिला देता था। भोजनोपरान्त ज्यों ही वह अपने भाईको पुकारता त्यों ही वह ऋषियोंका पेट काटकर निकल आता। इसप्रकार एक ही दिनमें अनेक ऋषि मारे जाते। निदान एक दिन अगस्त्यऋषिको भी निमन्त्रण दिया गया। भोजनोपरान्त सदाकी भाँति उस राजसने अपने भाईको पुकारा। महर्षि अगस्त्य उसका झुल समझ गये और डकार लेकर पेटपर हाथ फेरते हुए बोले—'तुम्हारा भाई हमारे पेटसे सदेह नहीं निकल सकता, हजम होकर ही निकलेगा।' इसप्रकार उस 'मुनि-द्रोही' मायावी राजसका नाश कर अगस्त्यजीने अनेक ऋषियोंको मृत्युसे बचा लिया। (वाल्मीकीय रामायण आरण्यकाण्ड)

उपयुक्त कथाके समान ही श्रीरामजीके सामने भी स्थिति उपस्थित है। उन्हें भी 'मुनि-द्रोहियों' का बच करना

है और 'मुनि-द्रोही' वधका भगवन् श्रीरामचन्द्रजीको पूरा अनुभव है अतएव उनसे 'अब तो मंत्र देहु प्रभु मोही। जिहि प्रकार मारौ मुनि-द्रोही ॥' यह प्रश्न करना सर्वथा उचित है।

(६)

गोस्वामीजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंकी, कहीं नील कमलसे, कहीं लाल कमलसे और कहीं केवल कमलसे उपमाएँ दी हैं। एक ही उपमेयसे पृथक्-पृथक् रंगके उपमानोंका मिलान क्यों किया गया ?

थोड़ा ध्यान देनेसे इसमें एक बहुत बड़ी विरोधता दिखायी देती है, और हृदय आनन्दसे ओत-प्रोत हो जाता है।

पाठक ! पहले नील कमलकी उपमापर विचार कीजिये। गोस्वामीजीने नील कमलकी उपमा केवल दो स्थानोंपर दी है। इन्हीं दो स्थानोंमें श्रीरामचन्द्रजीके बाल-रूपका वर्णन है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाल-नेत्रों और नील कमलोंमें कुछ सादृश्य है और यह ठीक भी है। कमल-युक्त आँखें नील कमलके समान ही तो होती हैं।

बालकायदान्तर्गत बाल-रूप-वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

नील कमलदोठ नयन बिसाला। विकट अकृष्ट कटकन वर भाला ॥

उत्तरकायडमें श्रीकागभुशुनिडजी, भगवान्के बालरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—

नील कज-लोचन भव-मोचन। आजत भास तिरक मोरोचन ॥

इन दो स्थानोंके अतिरिक्त मानसमें और कहीं भी नील कमल, नेत्रोंके उपमान नहीं बने। वन कैसे सकते थे ? इन दो स्थानोंके अतिरिक्त बालरूपका वर्णन भी तो और कहीं नहीं है।

लाल कमलसे गोस्वामीजीने उन्हीं-उन्हीं स्थानोंमें उपमाएँ दी हैं, जहाँ भगवान् शत्रु-वध करनेके हेतु प्रभुत हुए हैं। शत्रुके सम्मुख लाल नेत्र होना ही चाहिये। पाठक, देखिये—तापका-सुबाहु आदिके वध करनेके लिये भगवान्, अघिवर कौशिकके साथ प्रस्थान करने हैं। लिखा है—

अरुण नयन उर बाहु बिसाला। नील जगज तनु स्याम तमाला ॥

यद्यपि यहाँ लाल कमल उपमान नहीं है, तथापि लाल नेत्रोंका वर्णन किया गया है।

'मुनि-द्रोहि-वध'की प्रतिज्ञाकर कार्यारम्भके लिये प्रस्तुत, भगवन् श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

अरुण नयन रात्रीव सुनेसं। सीता नैन-चकोर निसेसं ॥

बालि-वधके समय—

स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुण नयन, सर-चाप चढ़ाए ॥

लाल नेत्रोंका वर्णन है।

रावण-वधके लिये आये हुए भगवान् रामचन्द्रजीको विभीषणने देखा—

भुज प्रलेन कञ्जारुण लोचन। स्यामल गात प्रणत भय-मोचन ॥

रावण-वधके समय—

अरुण नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचन अमिरामा ॥

रावण-वधोपरान्त तुरन्त ही देवता स्तुति करते हैं—

सर चाप मनोहर तूण वरं। जगज्जगुण-लोचन भूप वरं ॥

इन स्थानोंके अतिरिक्त लाल नेत्रोंका वर्णन अथवा नेत्रोंका लाल कमलोंसे मिलान और कहीं नहीं किया गया। शत्रु-वधके स्थान भी तो यही हैं। सभी जगह शत्रु-वध नहीं हुआ, अतएव सभी जगह लाल कमलोंसे उपमाएँ भी नहीं दी गयीं। हाँ, एक स्थानपर पाठक आक्षेप करेंगे। वह कौन-सा ? बन्धनामें गोस्वामीजीने लिखा है—

नील सरोरुह-स्याम, तरुण अरुण बारिज नयन ॥

यहाँ किस शत्रुका वध किया गया ? पाठक, थोड़ा विचार कीजिये और 'नील सरोरुह-स्याम, तरुण अरुण बारिज नयन' के उपरान्त लिखी हुई पंक्ति पढ़िये। क्या लिखा है ?

'करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन ॥

भक्त भगवान्को अपने हृदयमें स्थापित करना चाहता है। किसलिये ? काम, क्रोध, लोभ, मोहादि छः प्रबल शत्रुओंको सम्पूर्ण निरस्त करनेके लिये। देह-धारी राक्षस शत्रुओंमें वे छः शत्रु प्रबल हैं; अतएव 'अरुण-बारिज नयन' ही नहीं किन्तु 'तरुण अरुण बारिज नयन'की आवश्यकता है। धन्य है !

आनन्दके अवसरोंपर गोस्वामीजीने नेत्रोंके उपमानभूत कमलोंको रंग-रहित लिखा है और उसकी आवश्यकता भी है। क्योंकि आनन्दके समय नेत्र अपनी स्वाभाविक दशाको प्राप्त हो जाते हैं—आनन्दरूप बने रहने हैं अतएव उन्हें लाल रंगसे रँगकर रंगमें भंग क्यों डाला जाय ?

जनकपुरमें दोनों भाई अमल कर रहे हैं। चारों ओर  
आनन्द छा रहा है। यहाँ खिन्ना है—

सुभग श्रवण सरसीरुह लोचन।

केवल कमल है, रंग नहीं।

जनकपुरकी खियाँ परस्पर भगवान्‌के रूपका वर्णन  
कर रही हैं—‘दयाम गात, कल कंज-विलोचन ॥’

रंग-भूमिमें दोनों भाई आ गये, आनन्द-ही-आनन्द  
है ! गोस्वामीजी खिखते हैं—

सरद चंद निन्दक मुख नीके। नीरज नयन भावते जीके ॥

बिवाह हो रहा है—

सरद निमल त्रिभु-नदन सुहावन। नयन नवल राजीव लभावन ॥

अवस्था नयी है, अतएव राजीव भी नये ही लजित  
हो रहे हैं।

ससुरालमें जहाँ आनन्दका समुद्र ही हिलोरें मार रहा  
है, गोस्वामीजी खिखते हैं—

नयन कमल, कल कुंडल नाना। नदन सकल सौन्दर्य-निधाना ॥

पथिक-वेश-धारी सीता, राम, लक्ष्मण मार्गमें आ रहे  
हैं। मार्गमें स्थित पुर-नर-नारी उन्हें देखकर आनन्दमें मग्न  
हो रहे हैं—

स्यामल गौर किशोर वर, सुंदर सुलभा ऐन।

सरद सर्वरी-नाथ मुख, सरद सरोरुह-नैन ॥

चौदह वर्षकी अवधि समाप्तकर भगवान्‌ अयोध्या-  
पुरीको लौट आये। अहा ! इस आनन्दकी तो कोई सीमा  
ही नहीं है। विशाल समुद्रमें भी इसकी तुलना नहीं की  
जा सकती। अयोध्या आनन्दमें परिप्लावित है। साधु  
भरतजी भगवान्‌से मिल रहे हैं ! अहा !

परे भूमि नहीं उठत उठाप। बल कर कृपा-सिंधु उर लाप ॥

स्यामल गात रोम भये ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

( ७ )

गोस्वामीजीने कहीं कोई शब्द खिस दिया है तो  
उसका पूरा पूरा निर्वाह भी किया है। उनके शब्द साधारण  
कवियोंकी भाँति वाक्य, तुकान्त या मात्रा-पूर्तिके खिन्ने  
नहीं हैं। वे सर्वथा सार्थक हैं। यथा—

(क) भरतजी कहते हैं—

आपनि दारुण दीनता, सबहिँ कहौ समुझाय।

बिन देखे रघुवीर-पद, जियकी जरनि न जाय ॥

पाठक, ‘जियकी जरनि’ पर ध्यान दीजिये। भरतजी  
कहते हैं—‘श्रीरघुवीर-पद’ बिना देखे ‘जियकी जरनि’ न  
जायगी।

चित्रकूटाश्रममें श्रीरामजीको दूरसे भरतने देखा।  
देखकर तो ‘जियकी जरनि’ जानी ही चाहिये। जीजिये  
गोस्वामीजी वहाँ खिखते हैं—

कर कमलन वनु-सायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत ॥

‘जियकी जरनि न जाय’ यह पद पहले खिखकर  
गोस्वामीजीने इसका कितना ध्यान रक्खा है। मानसकी  
समस्त रचना इसी प्रकार है। ध्यान-पूर्वक देखनेसे खूबियाँ  
नजर आती हैं और मन मुग्ध हो जाता है !

(ख) राजर्षि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणको दशरथजीसे  
माँगकर अपने साथ लेकर चलने लगे। वहाँ गोस्वामीजीने  
निम्नलिखित सोरठा कहा है—

पुरुष-सिंह दोउ वीर, हरषि चले मुनि-भय-हरण।

कृपा-सिंधु मति-वीर अखिल निस्त-कारण-करण ॥

पाठक, साधारण दृष्टिसे इस सोरठमें बहुत-से शब्द  
केवल वाक्य-पूर्तिके अर्थ खिखे हुए-से जान पड़ते हैं। पर  
नहीं, एक-एक शब्दपर ध्यान देनेसे सभी शब्द सार्थक  
ज्ञात होंगे। विलार-अर्थसे हम केवल ‘पुरुष-सिंह’, ‘हरषि चले’  
‘मुनि-भय-हरण’, ‘कृपासिंधु’, और ‘मति-वीर’, इन्हों  
शब्दोंकी सार्थकता सिद्ध करते हैं।

(१) पुरुष-सिंह — आगे चलकर श्रीरामचन्द्रजी  
तादका, सुबाहु आदिका वध करेंगे, इसी आशयसे वहाँ इस  
शब्दका प्रयोग किया गया है। इस ‘पुरुष-सिंह’ का निर्वाह  
भी गोस्वामीजीने कितनी सुन्दरताके साथ किया है ! ध्यान  
दीजिये, सोरठसे विदित होता है कि श्रीराम-लक्ष्मण  
पुरुष-सिंह बनकर घरसे निकले हैं। इसके अनन्तर अब  
जनकके भेजे हुए वृत्तोंके मुखसे इन ‘पुरुष-सिंह’ के रूपमें  
निकलनेवाले वीरोंका समाचार सुनिये।

दशरथजीके यह पूछनेपर कि—

भैया कहहु कुसर दोउ वारे। तुम नीके निज नयन निहारे ॥

वृत्त उत्तर देते हैं—

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुष-सिंह तिहुँ पुर उजियारे ॥



‘पुरुष-सिंह’ बनकर घरसे निकले, अतएव समाचार भी ‘पुरुष-सिंह’ बने रहनेका मिलना चाहिये। गोस्वामीजीको अपने पहले जिले हुए ‘पुरुष-सिंह’ का कितना ध्यान रहा और आगे चलकर उन्होंने उसको किस खूबीसे दुहराया, विचार करते ही मन मुग्ध हो जाता है ! क्या यह ठीक होता कि चलते तो सिंह बनकर और समाचार मिलता शृगालका ? कदापि नहीं।

(२) मुनि-भय-हरण—स्पष्ट ही है कि आगे ताड़का, सुबाहु, मारीचादिसे मुनियोंको निर्भय किया है। क्या मुनियोंको उनसे भय लगता था ? हाँ, गोस्वामीजी पहले लिख चुके हैं—

तहँ जप-जग्य-जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥  
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि भय पावहिं॥

(३) कृपा-सिन्धु—इस शब्दका प्रयोग इसलिये किया गया है कि उन्होंने आगे अहल्याका उद्धार किया है। एक पतितपर इसप्रकारकी कृपा, कृपा-सिन्धुके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? अहल्या स्वयं कहती है—

जहि पद सुर-सरिता परम पुनीता  
प्रगट भई सिव सीस घरी।  
सोई पद-पंकज जेहि पूजित अज,  
मम सिर धरेउ कृपाहु हरी॥

(४) मति-धीर—धनुष-यज्ञमें धनुष तोड़ना है और बिना ‘धीर-मति’के उसका टूटना असम्भव है। इस बातका गोस्वामीजीने स्वयं समर्थन किया है। राजाओंसे धनुष क्यों न टूटा ? क्योंकि वे ‘परिकरि बोंध उठे अकुलाई’। अकुलाकर उठे, ‘धीर-मति’से नहीं। श्रीरामजीसे धनुष क्यों टूट गया ? क्योंकि वे ‘ठाढ़ भये उठि सहज सुभाये’। अकुलाकर नहीं उठे और ‘सहजहि चले सकल जगन्नामी ॥’ चले भी सहज ही, ‘मति-धीर’ होकर। राजा लोग कैसे चले थे ? वे ‘चले ऋ देवन्ह सिर-नाई ॥’ अपने-अपने इष्टदेवोंके सिर उन्होंने पहले ही जीचे कर दिये। सफलता मिले तो कैसे मिले ? ॐ

इसप्रकार भगवान्ने जो जो कार्य विष्णुमित्रजीके साथ रहकर किये, उन सब कार्योंके करनेकी शक्ति तो गोस्वामीजीने प्रस्थानके समय ही प्रदर्शित कर दी है।

(५) हरषि चले—यहाँपर केवल ‘चले’ ही लिख देना पर्याप्त था। ‘हरषि चले’ लिखनेकी क्या आवश्यकता थी ? क्या हरषि मात्रा-पूरक है ? नहीं, वह बहुत ही ठीक लिखा गया है। पाठक, विचार कीजिये। प्रस्थान-कालका हर्ष, कार्य-सफलताका द्योतक है। इस बातका समर्थन गोस्वामीजीने स्वयं किया है। सुन्दरकाण्डमें महावीरजी वानरोंसे कहते हैं—

तब लगी मोहि परिस्रयहु माई। सहि दुख कंद-मूल-फल खाई॥  
जब लगी आवौ सीतहि देखी। होइ काज मन हरष बिसखी॥

कार्य होगा; क्योंकि मनमें विशेष हर्ष है। प्रस्थान भी महावीर किस तरह करते हैं—

अस कहि नाय सबन्ह कहैं माथा। चलेउ हर्ष हिय धीर रघुनाथा॥

एक तो हर्ष दूसरे हृदयमें रघुनाथजी, कार्य-सिद्धि न हो तो क्या हो ?

अतएव, जहाँ-जहाँ श्रीरामजीने सफलता प्राप्त करनेके हेतु प्रस्थान किया है, वहाँ वहाँ गोस्वामीजीने ‘चले’के पहले ‘हरषि’ का प्रयोग अवश्य कर दिया है। देखिये—

उपयुक्त स्रोतमें ही ‘हरषि चले’। अतएव ‘मुनि-मल रचा’ में उन्हें सफलता मिली।

इसके उपरान्त धनुष-यज्ञकी खबर पाकर वहाँ सफलता-प्राप्ति की आशासे भगवान् प्रस्थान करते हैं और सफल भी होते हैं। अतएव गोस्वामीजी लिखते हैं—

धनुष-जग्य मुनि रघुकुल-नाथा। हरषि चले मुनिवरके साथ ॥

आरष्यकाण्डमें अगस्त्यजीसे ‘मुनि-द्रोही’ राक्षसोंके बधकी युक्ति पूछकर श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसोंको बध करना आरम्भ कर दिया और सफल भी हुए। अतएव अगस्त्याश्रममें श्रीराम-आगमनके पूर्व ही गोस्वामीजीने लिख दिया है—

एवमस्तु कहि रमा-निवासा। हरषि चले कुंभज ऋषि पासा ॥

क्योंकि आगे वह खर-वृषण आदिसे युद्धकर सफल हुए हैं।

सुन्दरकाण्डमें सीतादेवीकी सुधि पाकर भगवान् रामचन्द्र, राक्षसोंको मारनेके लिये प्रस्थान करते हैं। युद्धमें सफलता भी मिलती है अतएव गोस्वामीजी लिखते हैं—

ॐ यहाँपर प्रतीत होता है कि यह अर्थ मनाविनादाय किया गया है, राजाओंका असफलताका कारण व्यङ्ग्यसे प्रदर्शित किया गया है। —सम्पादक

हरषिराम तब कीन्ह पयाना । मये सकुन सुंदर सुभ नाना ॥

युद्धमें रावणको सफलता नहीं मिली; अतएव उसके प्रस्थानमें गोस्वामीजीने केवल 'चले' ही शब्दका प्रयोग किया है—

'चले वीर सब अनुलित बली ।'

'चली निसाचर-सैन अपारा ॥'

'चले मत्त गज-जूथ धनरे ॥' आदि ।

(८)

गोस्वामीजीने अपनी रचनामें जहाँ तहाँ 'रुचिर' शब्दका विशेषणके रूपमें प्रयोग किया है। इसका क्या कारण है? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि इस शब्दका प्रयोग गोस्वामीजीने श्रीरामचन्द्रजीके अंगों, आभरणाँ और उनसे ही सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंकी विशेषता बढ़ानेके लिये किया है, चाहे जहाँ नहीं, इससे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीके विचारमें श्रीरामजीको 'रुचिर' विशेष रुचिकर था। जो वस्तु हृदयको रुचिकर हो, उसे उसका परम भक्त क्यों न समर्पण करे?

पाठक, 'रुचिर' का प्रयोग देखिये। कितना सुन्दर और हृदयहारी है।

नव राजीव अरुन नृदु चरना । पदज रुचिर नख ससि द्युति हरना ॥

रेखा रुचिर कंठु कल ग्रीवा । जनु त्रिभुवन सुखमाकी साँवा ॥

रेखा त्रय सुंदर उदर नाभि रुचिर गंभीर ।

उर आयत आजत त्रिविध बाल त्रिभूषण चरि ॥

केहरि कंथर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नाग-मनि माला ॥

सुंदर भ्रुटि मनोहर नासा । भाऊ तिलक रुचिरता निवासा ॥

मामभिरक्षय रघुकुल-नायक । धृत वर चाप रुचिर कर सायक ॥

रुचिर चैतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।

नख सिख सुंदर बहु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥

उर-श्रीवत्स रुचिर बनमाला । पदिकहार भूषण मनि-जाला ॥

रुचिर-प्रेमी भगवान्की शय्या भी रुचिर ही होनी चाहिये। लीजिये—

सेज रुचिर रचि राम उठाये । प्रेम-समेत पलंग पौढ़ाये ॥

वास-स्थान भी रुचिर ही है—

तहँ रचि रुचिर परन-तुन साला । बास करों कलु काल कृपाला ॥

'रुचिर'से ऐसा प्रेम रखनेवाले भगवान् रामचन्द्रजीकी जन्मभूमि अयोध्यापुरी क्या रुचिर न होगी? अवश्य होगी। देखिये—

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन सुमन-वृष्टि सरलाई ॥

धन्य है !

बाल्यकालहीसे 'रुचिर' प्रेमी शिशु-रूप रामका 'प्ले-ग्राउण्ड' भी कैसा रुचिर है?

बगिन न जाय रुचिर अँगनाई । जहँ खेलहि नित चारों भाई ॥

धनुष तोड़नेवाले रुचिर-प्रेमी हैं, अतएव धनुष-वेदिका भी पहलेसे ही 'रुचिर' रच दी गयी

अति बिस्तार चारु गज ढारी । विमल वेदिका रुचिर सँवारी ॥

क्या कहते हैं?

रुचिरानुरक्तजो कहीं नाराज न हो जायँ, अतएव—

रच रुचिर बर बंदनवारे । मनहु मनोमन-फंद सँवारे ॥

इसके अतिरिक्त बारातमें जानेके लिये सवारी भी रुचिर ही हो तो ठीक है। लीजिये बारातकी तैयारीमें—

दोउ रथ रुचिर भूपपई आन ।

और—

तंहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहँ हरषि चढ़ाय नरंस ॥

महर्षि बशिष्ठको 'रुचिर' रथमें बैठाना उचित ही है क्योंकि वह पुरोहित ठहरे।

'रुचिर'से दूल्हका इतना प्रेम देख जेवँ नारकें समथ जनकजीने भी कैसी खुशुराई की—

छ रस रुचिर न्यंजन बहु जाती । एक एक रस अगनित भाँता—

परसवा दिये ।

क्यों न हो ?

जिसका 'रुचिर' में इतना गहरा अनुराग है, जिसके अंग और आभरणादि भी साक्षात् रुचिररूप हैं, जो रुचिर पदार्थोंका ही उपयोग करता और करना चाहता है, उस रुचिररूप प्रभुका जब चरित भी रुचिर हो तब गोस्वामीजीका काव्य-कौशल सफल समझा जावे। हाँ, चरित भी रुचिर है। देखिये—

यह सब रुचिर चरित में भाखा । अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा ॥

अपने आराध्य-देवकी 'रुचिर'से इतनी प्रीति देखकर

ही कदाचिद् परमभक्त कागमुद्युष्टिजी 'रुचिर' पर्वतपर निवास करते हैं।

तेहि गिरि रुचिर नसै खग सोई। तासु नास कल्पान्त न होई ॥

धन्य हैं !

शायद, शूर्पणखाको श्रीरामका 'रुचिर-प्रेम' मालूम हो गया था, इसीलिये वह इन्हें रिक्तानेके लिये—

रुचिर रूप धर प्रभुपहँ आई। बोली मधुर बचन मुसकाई ॥

खेद है ! उसका मनोरथ सफल न हो सका।

ऊपर जिन कतिपय विशेषताओंका दिग्दर्शन कराया गया

है, उनसे यह भलीभाँति ज्ञात हो जावेगा कि गोस्वामीजीने रामचरित-मानसमें कैसी-कैसी अनेक अलौकिकताएँ भरकर अपनी अपूर्व प्रतिभा, दिव्य काव्य-चातुर्य और प्रकाण्ड पाण्डित्यका पूरा परिचय दिया है। इस छद्म खेसनीसे आपकी प्रशंसा कैसे की जाय ? हम तो मुग्ध होकर ही रह जाते हैं !

लखि मानस, मानस-मुकुर क्यों न हुकसि हरषाहिं ?

तुलसी-बुधि-प्रति-विम्ब वर प्रतिविम्बित जेहि माँहि ॥

हरत हृदय-अज्ञान-तम रचना-रुचिर प्रकास।

काव्य-कौमुदी इंदुवर धनि धनि तुलसीदास ॥

## श्रीरामायणोपदेश

( लेखक—श्रीयुक्त चौधरी खुनन्दनप्रसादसिंहजी )

### [ समाज और देशहित ]



रामावतारसे यह उपदेश मिलता है कि देशका ब्यर्थ हित धर्मके प्रसारमें ही है। सब लोगोंको एकमत होकर इसी महान् कार्यमें लग जाना चाहिये। असुरोंके असदाचारसे देशकी परम हानि होते देखकर उनका वधन करना ही देशहितका प्रधान कार्य समझा गया था और इसीलिये भगवान्‌का श्रीरामावतार हुआ था। भगवान्‌ श्रीरामचन्द्रने बिष्णुमित्रजीके यज्ञकी रक्षाके लिये उनके साथ जाते समय स्पष्ट ही कहा था—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।

तत्र चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥

( वा० रा० १।२६।५ )

गो, ब्राह्मण और देशके हितके लिये आप-जैसे अग्रजकी आज्ञानुसार मैं सावधानीसे देश-शत्रुओंका वध करूँगा। इसप्रकार भगवान्‌ श्रीरामका शास्त्र धारण केवल धर्मकी रक्षा और अधर्मके विनाशके लिये ही था। इस देशहितकर आयोजनकी सिद्धिके लिये देव, मनुष्य और वनवासी रीक्ष-वानरादि तकने एकमत होकर प्रयत्न किया। शास्त्रके अनुसार, केवल मनुष्य ही समाजके अन्तर्भूत नहीं हैं, पशु-पक्षी और वृक्षादि स्थावरोंका भी उसमें स्थान है। मनुष्यसमाजमें सभी वृक्षोंके लोग शुद्ध पर्यन्त उस समय

आदरणीय थे। कोई भी भीष नहीं समझा जाता था। श्रीरामराज्याभिषेकके समय लोगोंको निमन्त्रण देनेके सम्बन्धमें आदेश देते हुए महर्षि वशिष्ठने सुमन्त्रसे कहा था।

ब्राह्मणान्सत्रियान्वैद्यान् शूद्राश्चैव सहस्रशः।

समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् ॥

( वा० रा० १।१३।१२९ )

'सभी देशोंके हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों-को सम्मानके साथ बुलाओ।' प्राचीनकालमें लोगोंमें इतना अधिक प्रेमभाव था कि परस्पर मिलनेके समय जड़ वृक्षादिके सम्बन्धमें भी कुशल-प्रश्न पूछे जाते थे। हमसे सिद्ध होता है कि उन स्थावर जीवोंको भी समाजमें स्थान प्राप्त था। महाराज बिष्णुमित्र महान् तेजस्वी वशिष्ठसे वृक्षोंकी कुशल पूछते हैं—

विश्वामित्रो महातेजा वनस्पतिगणं तदा।

सर्वत्र कुशलं प्राह वशिष्ठो राजसत्तमः ॥

इसी प्रकार श्रीवशिष्ठ और भरतने महर्षि अगस्त्यसे शरीर और शिष्योंके साथ ही अग्नि एवं पशु-पक्षी तथा वृक्षोंकी भी कुशल पूछी थी।

वशिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम।

शरीरेऽश्विषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥

रामायतारमें रघुवंशके गुणोंका पूर्ण विकास ।

रघुवंशमें कहा गया है—

त्याग्य संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।  
यशसे विजयीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥  
दौशेवऽभ्यस्तविद्यानां बीजं विचरैषिणाम् ।  
वर्द्धये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥

अर्थात् 'रघुवंशी त्याग वा परोपकारके लिये ही प्रेरक रहते थे । सत्यकी रक्षाके लिये कम बोलते थे । कमनीय कीर्तिके लिये ही विजयकी कांक्षा करते थे । सन्ततिके लिये ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे । वाक्यकालमें विद्याध्ययन करते थे । केवल बीजनावस्थामें ही धर्मसे अविरुद्ध विचर्योंका सेवन करते थे । वृद्ध होनेपर मुनिव्रत धारण करते और अन्तमें योगके द्वारा शरीरका परित्याग कर देते थे ।' भगवान् श्रीराममें इन दिव्य गुणोंका पूरा विकास था । इसीका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है ।

त्याग

महाराज दशरथके द्वारा श्रीरामराज्याभिषेकका निश्चय किये जानेपर सम्पूर्ण अयोध्यामें परमोत्सव हो रहा है । आनन्दसागरकी उत्थान तरङ्गोंकी तुमुल ध्वनि पूर्यमाके सागर-तरङ्ग-गर्जनके तुल्य है । घर-घर मङ्गल-बधाइयाँ बँट रही हैं । सभी लोग अभिषेकका उत्सव देखनेके लिये जमाहित हैं । ऐसी स्थितिमें वहाँ एक ही भवन ऐसा है जहाँ शान्तिका साम्राज्य छाया है, किसी प्रकारका ध्वज कोलाहल नहीं है, उपवासव्रत-सहित स्तुतिपाठ और जप जारी है । यह वह आलय है जहाँ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी राजकुमारीजी श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ दैन्य-भावसे कठिन राज्य-शासनके गुस्तर भारको ग्रहण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रार्थनामें प्रवृत्त हैं । इसी अवसरमें माता कैकेयीके प्रासादसे बुझाहट आती है और श्रीराम तत्काल वहाँ उपस्थित होकर अपने पूजनीय धर्मात्मा पिताको शोक-विकल स्थितिमें भूमिपर पड़े देखते हैं और विनम्रताके साथ माता कैकेयीसे पिताके शोकका कारण पूछते हैं । कैकेयी स्पष्ट कह देती है कि 'महाराजने पूर्वकालमें मुझे दो वरदान देनेके लिये प्रतिज्ञा की थी, आज मैंने उसकी पूर्तिके लिये एक वरसे तुम्हारे राज्याभिषेकके लिये संगृहीत सामग्रियोंके द्वारा भरतका राजाङ्कार-विभूषित होकर राज्यसिंहासनावृत्त होना और दूसरेसे तुम्हारा भीर-वस्त्र-जटा-धारणपूर्वक

मुनिव्रतसे चौदह वर्षके लिये वनमें वास करना माँगा है । मैंने महाराजसे ये दोनों वरदान स्वीकृत करवा लिये हैं और उनकी बही आज्ञा है ।'

एक राज्यसुखाभिलाषी विविध आशाओंसे युक्त अधिकारप्राप्त युवकके लिये यह आज्ञा महान् भयानक दृष्ट-सदृश है परन्तु श्रीभगवान् रामचन्द्रका परम शान्त स्थिर और सुसमाहित बदन-कमलपर जिसको राज्याभिषेकके भावी सुखकी आशा हर्षोत्फुल्ल नहीं कर सकी थी, इस आज्ञाको सुनकर भी किञ्चित् भी चोम, शोक और उद्देगकी दिखावटी रेखा भी नहीं खिंची । श्रीभगवान्ने परम प्रसन्नभावसे समता और भीरुताके साथ अनायास ही कहा कि 'माता, सहर्ष आज्ञाका पालन किया जायगा ।'

वाक्यकालमें ब्रह्मचर्यव्रत पालनके समय श्रीभगवान्ने गुरु वशिष्ठके द्वारा नामरूपात्मक प्राकृतिक संसारकी असरता और चञ्चलभंगुरता एवं आत्माकी ही सच्चिदानन्द-रूपता रूप दिव्यज्ञानको प्राप्त कर लिया था । वे वैराग्य और त्यागकी उस उच्चतम सीमापर पहुँचे हुए थे कि आज राज्यसिंहासनके बदले वनवासकी आकस्मिक आज्ञा, राज्यभोगके स्थानमें भिषाटनकी विपत्ति उनके नित्य प्रशान्त और प्रसन्न चित्तको तनिक भी विचलित और दुःखित नहीं कर सकी । भगवान्ने 'समत्वं योग उच्यते' को चरितार्थ कर दिखाया । इस समन्वयका मानसमें क्या ही वधार्थ वर्णन है !

प्रफुल्लतां यो न गताऽभिषेकतः

तथा न मर्त्या वनवासदुःखतः ।

मुखाम्बुजं

श्रीरघुनन्दनस्य

सदास्तु मे मञ्जुलमङ्गलप्रदम् ॥

सत्य

श्रीभगवान् आदर्श मातृ-पितृ-भक्त तो थे ही, साथ ही आप आदर्श सत्यवादी थे, आपने हँसी-मजाकमें भी कभी असत्य भाषण नहीं किया । 'रमोद्दिनां मिभाषते' की उक्ति लोकप्रसिद्ध है । असत्य तो दूर रहा, भगवान्ने कभी कटुभाषण भी नहीं किया—

न वेति रामः परुषाणि भाषितुम् ।

सत्यके सम्बन्धमें भगवान्ने स्वयं कहा है कि 'हे सीता ! मैं मुनिबोंके समीप जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ उसे जीते-जी कभी भंग नहीं कर सकता, क्योंकि सदासे सत्य ही मेरा हृद है । मैं तुम्हारा, जन्मवृत्तका और प्राणोंका भी परित्याग

कर सकता हूँ किन्तु अपनी सत्य प्रतिज्ञाका परित्याग नहीं कर सकता । (वा० रा० २।१।१७-१८)

### क्षमा और तेज

जब राजा विश्वामित्रने अन्यायपूर्वक महर्षि वशिष्ठसे युद्ध करना चाहा तब वशिष्ठजीने युद्धको ब्राह्मण-धर्मके विरुद्ध समझ अपने सामने एक ब्रह्मदण्ड गाढ़ दिया, जिससे टकरा-टकराकर विश्वामित्रजीके ब्राह्मण पर्यन्त सभी शस्त्र व्यर्थ हो गये । इसपर उन्होंने चात्रबलको धिक्कारते हुए और ब्रह्मतेजके बलको सराहते हुए कहा था—

विश्वतः क्षत्रियशतं ब्रह्मतेजो बले बलम् ।  
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वोत्थाणि हतानि मे ॥

यह ब्रह्मदण्ड यथार्थमें क्षमाका ही नाम है, जो इस क्षमाके दण्डको धारण करता है उसपर परिणाममें शत्रुके समस्त आघात व्यर्थ होते हैं । जित् समय ब्राह्मणकुलोत्पन्न श्रीपरशुरामजीने अन्यायके वशवर्ती हो धनुष-भंगके लिये भगवान्‌के प्रति प्यर्थ क्रोध प्रकट किया था और जब भगवान्‌ने उसके उत्तरमें बड़ी नम्रताके साथ क्षमाका वर्ताव किया था उस समय वह उग्र ब्रह्मतेज बिनम्र चात्रतेजसे निरन्त्र हो गया और उसने अन्याय और क्रोधके कारण परशुरामजीका परित्याग कर दिया । इससे यह सिद्ध होता है कि सत्य, न्याय और क्षमा ही यथार्थ बल हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कोई भी क्यों न हो जिसके अन्दर ये गुण हैं वही यथार्थ बलवान् है । दण्डकारण्यके ऋषियोंने भगवान्‌से कहा था कि हमलोगोंमें शापके द्वारा हत्यारे राक्षसोंके विनाश करनेकी शक्ति है पर हमलोग उनके द्वारा भयब्रू किये जानेपर भी उनका नाश इसीलिये नहीं करते कि क्रोध करनेसे हमारे तपकी हानि होगी जो हम किसी प्रकार नहीं चाहते—

बहुविघ्ने तपो नित्यं दुश्शस्त्रैव राघव ।  
तेन शापं न मुञ्चामां मध्यमानश्च राक्षसः ॥

### ब्रह्मचर्य

स्त्रियोंमें सर्वप्रथम अहल्याने ही गौत्रम-वेषधारी इन्द्रके साथ जान-बूझकर व्यभिचार किया, जिससे हमप्रकारके दुष्कर्मके प्रचार-भयसे ही महर्षि गौतमने शाप देते हुए कहा—

अयन्तु मांवां दुर्मुदे ! मस्त्वयेह प्रवर्तितः ।  
मानुषेष्वपि नैकेषु गमिष्यन्ति न संशयः ॥

‘हे दुर्मुदे ! तुमने इस लोकमें जो यह गर्हितभाव प्रवर्तित किया, तुम्हारे इस दोषके कारण मनुष्यलोकमें इस दुर्भावका विस्तार हो जायगा इसमें कुछ संशय नहीं।’ इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक व्यक्तिके गुण-दोषका प्रभाव समाजपर पड़ता है । एकके दुष्टकर्मको देखकर अनेक लोग दुष्ट कर्म करने लगते हैं और सुकर्मको देखकर सुकर्ममें प्रवृत्त होते हैं ।

भगवान्‌ श्रीरामचन्द्रजी आदर्श गृहस्थ ब्रह्मचारी और एक-पक्षीव्रतमें रहते थे, इन्हींकी भाँति सीताजी भी आदर्श पतिव्रता थीं, इन दोनोंके समान कोई न हुआ न होगा । इसी कारण श्रीभगवान्‌के द्वारा अहल्याका शाप-भोचन हुआ ।

### अनुकम्पा

श्रीभगवान्‌का सम्पूर्ण जीवन दयाप्रिय और परहित-सम्पादनसे पूर्ण है । आपने अपने ऊपर अनेक कष्ट सहकर दूसरोंका हित किया । ऋषियोंकी व्रत-रक्षा, श्रीसीताजीके लिये गुरुकी आज्ञासे धनुष-भंग, सत्यकी रक्षाके लिये वन-गमन और लक्ष्मण-त्याग, धर्मकी रक्षाके निमित्त राक्षस-वध, पानिघ्नत-धर्मकी रक्षाके लिये सीता-त्याग, वाङ्‌मयमें मुनिघ्नत ग्रहण और अन्तमें समस्त नगरवासियोंको साथ लेकर परमधाममें प्रयाण आदि सभी कार्य त्यागमूलक परोपकार हैं । श्रीभरतजीने यथार्थ ही कहा था—

वृद्धिकामो हि लोकस्य सर्वभूतानुकम्पकः ।

मत्तः प्रियतरो लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥

(वा० रा० २।१।२७)

मेरे राम सब लोगोंकी हित-कामना करनेवाले हैं । मेघकी भाँति चारों ओर दयाकी वृष्टि करके वे मेरी अपेक्षा भी लोगोंके अधिक प्रियतम बन गये हैं ।

### इष्टदेवोंकी एकता

श्रीभगवान्‌ने स्वयं साक्षात् विष्णु होकर भी समुद्रके सेतुपर श्रीशिवजीकी स्थापना कर यह सिद्ध कर दिया कि सभी इष्टदेव यथार्थमें एक ही हैं, भिन्न नहीं । अतएव किसी भी इष्टदेवकी निन्दा, अनादर एवं अवज्ञा करना पाप है । श्रीभरतजीने अपनेको श्रीरामके वनवास भेजनेमें कारण होनेके दोषसे मुक्त सिद्ध करनेके लिये श्रीकौसल्याजीके सामने शपथ की थी—

ममत्या विवदमानेषु मार्गमाश्रित्य पदवतः ।

तेन पापेन युज्येत यस्यायोऽनुमते गतः ॥

(वा० रा० २।७।५७)

अपने इष्टदेवकी भक्तिके कारण जो अन्य इष्टदेवके अनुयायीके साथ विवाद करते हैं और उनको निकृष्ट बतलाते हैं ऐसे लोगोंको जो पाप लगता है वही पाप मुझको हो, यदि मैं कार्य श्रीरामके वनवासका कारण होऊँ।

### राम-राज्य

वाल्मीकि रामायणके वालकाण्ड और रामचरित-मानसके उत्तरकाण्डमें राम-राज्यके सुवर्णकाल का वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि सब लोग परम सुखी थे। रोग, शोक, अतृप्त, अकाम्यव्यथ, विपत्ति आदि बाधाएँ किसीको नहीं होती थीं। सब अपने अपने धर्ममें रत थे, 'यथा राजा तथा प्रजा।'।

यही इस राम-राज्यकी उत्कृष्टताका कारण था। सिद्धान्त यह है कि अधिपति अथवा नायकके आचरण और भावोंका उत्तम अथवा दुष्ट प्रभाव आश्रितोंपर अवश्य पड़ता है। अतएव देशके स्वामी, ग्रामके अधिपति, घरके मालिक, मठोंके प्रभु, समाजके नेता, धर्मके आचार्य, बालकोंके शिक्षक, ग्रामके पुरोहित और न्यायालयके शासक आदिके उत्तम आचरण और व्यवहारसे उनके आश्रित और सम्बन्धी उत्तम तथा निकृष्ट आचरण और व्यवहारसे निकृष्ट होंगे। समाजके हानि-हानिकारके लिये इनपर बहुत बड़ा दायित्व है। भगवान् श्रीरामचन्द्र इस दायित्व सम्पादनके परम आदर्श हैं। अतएव हम सबको श्रीराम-राज्यका आदर्श अपने सामने रखना चाहिये।

## सबसे बड़ा राम-नाम

( लेखक—वीरभुत के० बर अत्रा )

हरथ पदार्थोंमें भूमण्डल सबसे बड़ी वस्तु है, परन्तु हिन्दूधर्मशास्त्रके अनुसार शेषनाग इससे भी बड़े हैं क्योंकि उन्होंने इसको अपने फाँसपर उठा रक्खा है।

शेषनागजीसे बड़े शंकर हैं क्योंकि वह शेषजीको अपने हाथ या गलेमें कङ्कण या हाररूपसे धारण किये रहते हैं।

शंकरजीसे भी बड़ा कैलास पहाड़ है क्योंकि शिवजी उसपर निवास करते हैं।

कैलाससे बड़ा रावण है, क्योंकि उसने दिग्विजयके समय महान् कैलासको अपने बाहुबलसे लुटका दिया था।

रावणसे बड़े बाळि हैं क्योंकि उसके पुत्र अंगदने शिशु अवस्थामें ही रावणको खिलौनेकी भाँति पलनेमें बाँध

रक्खा था, और स्वयं बाळी उसे पूँछमें लटकाने वृत्ता करते थे। दूसरी कथामें यह भी कहा है कि रावणको बाळिने महीनों अपनी काँखमें रक्खा था।

बाळिसे अधिक प्रतापी रामका बड़ा बाण है, जिसने बाळिका संहार किया।

बाणसे बड़े महाराजा राम हैं, जो उस बाणको धारण करते हैं।

रामसे भी अधिक शक्तिमान् प्रतापी और महान् श्रीराम-नाम है क्योंकि उसके वशमें राम हैं जो भक्त नियम और निष्ठापूर्वक श्रीराम-नामका जप करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् श्रीराम सदा सेवककी भाँति निवास करते हैं।

इसीसे श्रीराम-नामका महत्त्व समझ लीजिये।

## रामायण

चार घाट भव-ताप-हरण, निर्मल-जल सर है ?

लिये अमृत-भण्डार, कहो क्या अजर अमर है ?

भरा बिन्दुमें सिन्धु, भक्ति क्या हरिको प्यारी ?

विविध ज्ञानका स्रोत, कृष्णकी गीता प्यारी ?

जग-जीव-मात्र-कल्याण-रत, पत्र सुरुचि 'कल्याण' कृत ?

नहिं भक्ति-अमर-गीता प्रभृति, रामायण तुलसी-रचित ॥

रामपल्टसिंह 'मधुर' एम० ए०, एम०आर० ए० एस०

● पण्डित श्रीभवानीशंकरजीकी आज्ञा और उपदेशानुसार लिखित।

## राजनीतिज्ञ वाल्मीकि

(केलक—'महाराष्ट्रीय' ●)



हर्षि वाल्मीकि आदिकविके नामसे प्रसिद्ध हैं, राजनीतिज्ञके नामसे नहीं। इसलिये 'राजनीतिज्ञ वाल्मीकि' शीर्षक देखकर पाठक चकित हो जावेंगे और समझेंगे कि वाल्मीकिके नामपर हम कोई कल्पित बात लिख रहे हैं। वस्तुतः उनके नामपर विकनेवाली म्वाधसे ऋषि होनेकी कथा निराधार होनेपर भी लोगोंकी उसपर भ्रमा है और उनकी क्रियात्मिका राजनीति साधार होनेपर भी लोगोंमें उसकी कोई कल्पना भी नहीं है—यह बड़े आश्चर्यकी बात है! पर इसका दोष लोगोंपर ही क्यों जगाया जाय? उनकी राजनीतिक क्रियाधारा इतनी गुप्त रीतिले चली है कि यह कार्य उन्होंने किया था इसके वे सूत्रधार थे, इसकी कल्पना उनके समयमें भी किसीको नहीं हुई थी, तब पीछेसे कोई इस भेदको कैसे जानता? रामायणमें इस राजनीतिका उल्लेख स्पष्ट शब्दोंमें नहीं मिलता, अतः सरसरी तौरपर पढ़नेवाले पाठकोंके ध्यानमें यह बात नहीं आती। किन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करनेपर इसका अनुभव हो जाता है। महर्षिने यह कार्य कितनी सतर्कतासे किया, इस बातकी मथार्थ कल्पना होनेपर उनके काव्य-रचना-कौशलकी अपेक्षा उनकी राजनीति-कुशलतापर विशेष आदर उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

महर्षि वाल्मीकि रामायणकी रचना करनेमें क्यों प्रवृत्त हुए, इसका संक्षिप्त वृत्तान्त रामायणके प्रारम्भमें दिया गया है। वस्तुतः राजनीतिक दृष्टिसे ही उन्होंने इस काव्यकी रचना की—यह बात, उन्होंने जिस समय इस काव्यकी रचना की थी उस समयपर दृष्टिपात करनेसे, समझमें आ जाती है। यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि श्रीरामने जब लोकापवादके कारण अपनी पत्नी सती सीताका त्याग कर दिया, तब वह महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें रहने लगी, तथा वहीं उसने दो पुत्र प्रसव किये, रामायणकी रचना करनेपर महर्षिने उसे उन दोनों पुत्रोंको पढ़ाया। लक्ष्मणसुरके

बचके लिये मधुपुरकी ओर आते समय शत्रुज मार्गमें महर्षिके आश्रममें जिस दिन ठहरे, उसी दिन रातको सीताके दो पुत्र हुए (७।६१।१)। इसके ठीक बारह वर्ष बाद जब वहाँसे खौटते समय शत्रुज पुनः आश्रममें ठहरे तब उन्होंने जब-कुशके द्वारा रामायणका गान अवश्य किया (७।७१।१-१६)। इससे पता चलता है कि रामायणकी रचना महर्षिने इसीके बीचके समयमें की थी। सीताको रामने त्याग दिया, वह वाल्मीकिके आश्रममें आकर रहने लगी और वाल्मीकिने उसे अपने आश्रममें आश्रय दिया, तभीसे वाल्मीकिके राजनीतिक कार्यका प्रारम्भ हुआ। क्योंकि सीताके सर्वथा निर्दोष होनेका लोगोंको विरवास दिवाकर उसके दिव्यत्व सिद्धिका संयोग जगानेके लिये उन्होंने जो सफल कार्यवाही की, उससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपने मनमें इस कार्यका भार अपने ऊपर समझ लिया था। सीता एक राजत्यक्ता की है इस बातके जाननेपर भी महर्षिका उसे आश्रय देना निःसन्देह बड़े ही धैर्य और साहसका कार्य है, परन्तु उनकी अगला कार्य इससे नहीं अधिक महत्त्वका है। महर्षिको यदि इस महान् कार्यकी जिम्मेदारीका ज्ञान न होता तो रामायण-रचनाका योग आता या नहीं, इसमें सन्देह है। सीताके आचरणके सम्बन्धमें लोगोंमें जो भ्रम फैल चुका है उसे किसी भी तरह दूर करना होगा—इस समय महर्षिके सामने वही एक बिन्दु समस्या उपस्थित थी। यह भ्रम कितना प्रबल था इसकी कल्पना महर्षिके उन उद्गारांसे की जा सकती है जो उनके मुखसे, सीताको आश्रमवासिनी ऋषिपत्नियोंके हाथ सौंपते समय निकले थे। महर्षि कहते हैं—

स्नुषा दशम्यस्यैषा जनकस्य सुता सती।

अपापा पनिना त्यक्ता परिपाल्या मया सदा ॥

इमां भवतः पश्यन्तु म्नेहेन परमेण हि।

गौरवान्ममवाक्यान् पृज्या वोऽस्तु विदोषतः ॥

(वा० रा० ७।४९।१८-१९)

● आपने मराठीमें 'रामायण समालोचना' नामक बहुत ही उपयोगी और तथ्यपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। आचार्य पं० महावीर-प्रसादजी द्विवेदीने इस ग्रन्थकी बहुत प्रशंसा की है।—सम्पादक



### रामायण-शिक्षा ।

पावन आश्रम बीच विराजे वात्मीकि मुनि ज्ञान निधान ।  
सिखलाने हैं लव-कुशको सुर-ताल सहित रामायण-गान ॥





वहाँपर महर्षिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहकर 'मेरे शब्दोंको मानकर' अर्थात् मैं कहता हूँ इसलिये इससे स्नेहभाव रखो-ऐसा कहा है। सीताके विषयमें वहाँ बसि किसीको कुछ शंका थी तो महर्षिने उसको अपनी जिम्मेदारी-पर विरवास दिखाया। आश्रमवासी जी-पुरुषोंका महर्षिके वचनोंपर विरवास होना स्वाभाविक ही है, इसीलिये उन्होंने मान लिया। परन्तु अयोध्या या राम-राज्यकी समस्त प्रजाके विरवास सम्पादन करनेका क्या उपाय था? सीताके सम्बन्धमें शंका उपस्थित करना अन्याय था, अपराध था और ऐसा करनेवालेको श्रीराम दण्ड दे सकते थे परन्तु उन्होंने दूरदर्शितासे अपने अधिकारका उपयोग नहीं किया। महर्षिके हाथमें तो यह अधिकार होना सम्भव नहीं था। सुतरां सीताकी सच्चरित्रताका लोगोंको विरवास दिलानेके लिये उनके चरित्र-प्रसार करनेका विचार ही महर्षिके मनमें आया। महर्षिका उद्देश्य सीताकी सच्चरित्रता बतलाना था परन्तु सीताका चरित्र रामपर अवलम्बित था और रामने सीताका त्याग कर दिया था। महर्षिके मनमें रामके प्रति अत्यन्त आदर था। अतः उन्हें कुछ कालतक रामचरित्रका ही ध्यान लगा रहा। वेदोंकी छन्दोरचना उनकी दृष्टिमें थी अतएव उन्होंने वैसी ही रचना करके श्रीरामचरित्र-वर्णनका विचार किया। महर्षिकी ये बातें रामायणमें या अन्य किसी ग्रन्थमें स्पष्ट-रूपमें नहीं लिखी हैं परन्तु ये इतनी सहज हैं कि कोई भी अनुमानसे इनकी सत्यताका मान लेगा। इसप्रकार जब महर्षि रामचरित्र-वर्णनके विचारमें रत थे, तब एक दिन नारदमुनि उनके आश्रममें आ पहुँचे। महर्षिने उनसे पूछा—

कान्वस्मिन् साग्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ?

(वा० रा० १।१।२)

महर्षि-वर्णित गुणोंका संग्रह तो बहुत बड़ा है। इस समय हमें उससे कोई प्रयोजन नहीं है। महर्षिके पूछनेका तात्पर्य यह है कि अमुक-अमुक गुणोंसे युक्त पुरुष इस समय पृथ्वी-पर कौन हैं? प्रश्न अस्पष्ट है। उन्होंने इस प्रश्नमें न तो कहीं रामका नाम लिखा है और न उनका कुछ अव्यष्टरूपसे ही उल्लेख किया है। इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने संक्षेपमें रामचरित्र सुनाया। नारदके वचने जानेपर महर्षि स्नान करनेके लिये तमसा-तीरपर गये। उसी समय कौश-वचकी घटना हुई और महर्षिके मुखसे शापके विभिन्न श्लोकमधी बाकी निकली। कहना नहीं होगा कि रामचरित्रमें मन लगा

रहनेके कारण ही महर्षिने नारदजीसे उपयुक्त प्रश्न किया था। महर्षिके मनमें रामचरित्रके छन्दोबद्ध करनेकी कल्पना थी, हमने यह अनुमान कौश-वचके लिये व्यासको दिये गये छन्दोबद्ध शापसे किया है। सीताकी वचनीय वशा देखकर महर्षिका अन्तःकरण जैसे प्रवित हो रहा था, उनकी वैसी ही वशा कौश-वचपर शोक करती हुई कौशजीको देखकर हुई। हमने उपर्युक्त श्लोकसे ही उनके मनमें छन्दोरचनाके लिये संकल्प होना अनुमान किया है। यद्यपि रामायणमें वही कहा गया है कि वह श्लोक उनके मुखसे सहज ही निकल गया था और ऐसा होना वस्तु-स्थितिके अनुसार सम्भव ही है। परन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि छन्द-रचनाकी ओर उनकी जो प्रवृत्ति बढ़ रही थी, वह उसीका परिणाम था, यह बात भी उतनी ही सम्भव है।

इसके बाद महर्षिने बालकाण्डके पाँचवें सर्गसे बुद्ध-काण्डतक रामायणकी रचनाकर वह काव्य खव-कुशको पढ़ाया। बालकाण्डके प्रस्तावनारूपमें प्रारम्भके जो चार सर्ग हैं वे महर्षिने ग्रन्थ-पूर्तिके समय लिखे थे, यह स्पष्ट है। बीचमें बहुत-से स्थानोंपर पीछेसे मिलाया हुआ प्रक्षिप्त भाग है, उसका विवेचन हम 'रामायण-समालोचना' नामक मराठी ग्रन्थके एक स्वतन्त्र प्रकरणमें कर चुके हैं। कहनेका मतलब यह कि जो मूल काव्य या वही महर्षिने खव-कुशको पढ़ाया। इसके बाद वह प्रश्न सामने आया कि इस काव्यका प्रचार कैसे हो? खवयासुरको मारनेके बाद जब बारह वर्षके उपरान्त, शत्रुघ्नजी जौटकर अयोध्या जाते समय पुनः महर्षिके आश्रममें ठहरे, तब उन्होंने खव-कुशके द्वारा अपने सैनिकों सहित रामायणका गान सुना, जिससे उन सबको बड़ा ही आनन्द हुआ। दूसरे शब्दोंमें हम यों कह सकते हैं कि इसप्रकार यहाँ महर्षिके काव्यकी प्रथमावृत्ति एक ही साथ बिक गयी और उन्हें दूसरी आवृत्ति निकालनेके लिये अधिक उत्साह मिला।

सीताके निष्पाप आचरणकी कथा लोगोंमें उसके चरित्र-प्रचार द्वारा विस्तृत करनेके उद्देश्यसे ही महर्षिने रामायणकी रचना की थी, हमारे इस अनुमानकी सत्यता रामायणकी रचनापर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेवालोंके ध्यानमें सुरन्त आ जावगी। रामचरित्रपर विशेष प्रकाश डालनेवाला भाग है अयोध्याकाण्ड। रामके पराक्रमका वर्णन बुद्धकाण्डमें है। सीताके वयार्थ चरित्रका सीता-हरणसे ही प्रारम्भ होता है और यह कथा भरवचकाण्डमें है। यह कथा महर्षिने पूरे

विस्तारके साथ कथन की है। इस कथाका विस्तार सुन्दर-कायके सीता-इनुमान्-भेंट और सीता रावणके सम्भाषण दोनों ही अवसरोंपर अत्यन्त स्पष्ट दीख पड़ता है। सीताके उच्च चरित्रको व्यक्त करनेवाली प्रत्येक बातका महर्षिने उल्लेख किया है, यहाँतक कि सीताने रावणसे बातचीत करते समय तिनकेकी ओट कर ली थी 'तृणमन्तरतः कृत्वा' (३।५६।१ तथा ५।२१।२), सामान्य समझ करके महर्षि इसप्रकारकी घटना तकका वर्णन करना भी नहीं भूले। यह सत्य है कि रामायणमें श्रीराम और सीता ही प्रधान पात्र थे अतः उनके चरित्रका विस्तारसे वर्णन करना उनके लिये आवश्यक था, तथापि श्रीराम-चरित्रका चित्रण करनेमें महर्षिने अपनी कृतिमें उनके समस्त गुणोंपर जैसा प्रकाश डाला है वैसा सीताके चरित्र-चित्रणमें नहीं किया। सीताके चरित्र-कथनमें तो केवल उन्हीं बातोंपर अधिक प्रकाश डाला है जिनमें सीताके लोकापवादके मिथ्या होनेमें लोगोंका विश्वास हो जाय। नायक-नायिकाके चरित्र-निरूपणमें इस विवेककी ओर दृष्टि डालनेपर पाठक इस बातको समझे बिना नहीं रहेंगे कि रामायणकी रचनाके सम्बन्धमें हमने महर्षिके जिस हार्दिक उद्देश्यका अनुमान किया था, वह युक्तियुक्त और ठीक है।

सीताके मिथ्या कलङ्कको मिटानेके लिये महर्षिको प्रधानतः उसके दोनों पुत्रोंसे सहायता लेनी थी और वह जी भी गयी। सहायता पानेकी योजना महर्षिने अपने मनमें किन्तु प्रकार की, इसबातके जाननेका कोई उपाय नहीं है। किन्तु लव-कुशके कुछ समझने लगने ही यह योजना की गयी थी, इसमें सन्देह नहीं। कदाचित् यह कल्पना महर्षिके मनमें पीछेमें आयी हो तथापि उस समय लव-कुशको अपने अधिकारोंका, और रामसे उनका पिता-पुत्रका सम्बन्ध है इस बातका पता न लगाने देनेके लिये महर्षिने बड़ी समझौतासे काम लिया, वही भाग चलकर उनके लिये बड़ी उपयोगी हुई, यह स्पष्ट है। दोनों राजकुमारोंके साथ बनबासी शिष्योंके सहान्वयहार करके महर्षिने जो अनुरता दिखलाई, उसीमें उनकी राजनीतिज्ञता भरी है।

यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसी सीताकी धीरता असीम है। महर्षिको अपनी नवीन योजनाके सफल करनेमें सीताकी सहायता पूर्वरूपसे प्राप्त है। इस बातको सिद्ध करनेके लिये प्रमायोंकी आवश्यकता नहीं है। रामायण-रचनाके अवन्तर महर्षि उसके प्रचारका मौका ढूँढ़ रहे थे।

श्रीरामके अवशेषकी योजनासे महर्षिकी बहुत दिनोंकी मनोकामना सफल होनेका अवसर बनायास ही आ गया। यज्ञ-समारम्भके लिये विविध देशोंके नर-पत्नियों और ऋषियोंको निमन्त्रण भेजा गया। तदनुसार महर्षिको भी निमन्त्रण मिला और वे अपने शिष्योंको साथ ले अयोध्या पहुँचे। अयोध्याके बाहर ही कहीं डेरा डालकर महर्षिने लव-कुशको कार्यसिद्धिके लिये अयोध्यामें जाकर घर-घर रामायण गान सुनाने हुए फिरनेकी आज्ञा दी। आज्ञा देते हुए महर्षि कहते हैं—

ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणवसयेषु च ।

गन्धामु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥

रामस्य भवनद्वारे यत्र कर्म च कुर्वते ।

ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गन्धं विशेषतः ॥

( बा० रा० ७।१३।१-७ )

'हे पुत्रो! ऋषियोंके पवित्र स्थानोंमें, ब्राह्मणोंकी बस्तीमें गलियोंमें, सबकोंपर, राजमार्गोंमें, यज्ञवेदिकाओंके द्वारपर और ऋत्विजोंके समीप विशेषरूपसे इस रामायणका गान करो!'

रामायण-रचनामें महर्षिका उद्देश्य केवल राजाको प्रसन्न करना होता तो वे लव-कुशको सीधे यज्ञ-मण्डपमें जाकर श्रीरामके सामने रामायण गान करनेकी आज्ञा देते। यज्ञमें आद्विक-हवनके उपरान्त, भोजनोत्तर तथा हवनसे पूर्व पुराण-गाथा सुननेकी विधि है। इसीके अनुसार उस समय यदि लव-कुशको भेजनेकी योजना महर्षिने की होनी तो महजहीमें कार्य हो जाता। रामको सन्तुष्ट करके पर्याप्त धन लाभ करनेका यह निष्कपट और सरल मार्ग था परन्तु महर्षि धनके भूम्बे नहीं थे, उन्हें तो इस बातकी चिन्ता लग रही थी कि कैसे सीताका मिथ्यापवाद नष्ट हो तथा सर्वसाधारणके हृदयमें उसके प्रति आदरके भाव उत्पन्न हो जायँ और उसके पुत्रोंको राज्यकी प्राप्ति हो। इसीलिये उन्होंने लव-कुशको रामायण गानेके लिये नगरमें भेजते समय जिन स्थानोंका दिग्दर्शन कराया, उनमें गली, सबक, ऋषियोंके आश्रम, ब्राह्मण और राजाओंके निवासस्थान आदिका ही निर्देश है। माराश यह कि महर्षिने यह योजना रामायणके प्रचारकी ही दृष्टिसे की थी। कल्पना-प्रसारके लिये ऐसी व्यवस्था विशेष सुविधाजनक हुआ भी करती है, इससे इच्छित फलकी प्राप्ति शीघ्र होती है। इसप्रकारके अनुभवोंका इतिहासोंमें प्रचुर उल्लेख है और आजका भी

वही अनुभव है। शिवाजी महाराजके समय समर्थ रामदास-स्वामीने महाराष्ट्रमें जो जागृति उत्पन्न की थी, उसका अधिक श्रेष्ठ स्वामीजीके उस शिष्य-सम्प्रदायको है जो 'मनका श्लोक' गाते हुए भावोंका प्रचार करते थे। इतिहासज्ञ इस बातको जानते हैं। उन्होंने अथवा उनके पहले और पीछेके महाराष्ट्रीय धारकरी-सम्प्रदायने इसप्रकार घूम-घूमकर भजन गाते हुए लोगोंमें धर्मजागृतिका कार्य बड़ी उत्तमतासे किया। इस समय भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि गोरवा-प्रचारक गण बाजारोंमें घूम घूमकर भजन गाते हुए जागृतिका कार्य करते हैं। महर्षिकी योजना भी इसी प्रकारकी थी। उस समय ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने श्रीरामका चरित्र भाँखों देखा था और रामके प्रति उन लोगोंके मनमें प्रेम तथा आदरका भाव भी पूर्णरूपसे था। अयोध्याकाण्डका गान सुनते ही इस प्रेम और आदरका दूना बह जाना कौन बड़ी बात है ?

अयोध्याकाण्डका वह कथाभाग क्रमके हिसाबसे प्रारम्भमें आया है और लव-कुशके मुखसे श्रोताओंको सबसे पहले वही सुननेको मिलता था। भाँखों देखी बात वैसी की वैसी सुननेके कारण लोगोंके हृदयोंमें यह विश्वास जमना स्वाभाविक है कि काव्यकी कथामें कहीं भी सत्यका अपलाप नहीं किया गया है। यह विश्वास आगेके कथाभागपर सत्यता और विश्वसनीयताकी छाप लगानेमें विशेष उपयोगी होता है, इनका अनुभव उस समय हो चुका है जब कि मधुपुरीसे लौटते समय शत्रुघ्न मार्गमें महर्षिके आश्रममें ठहरे थे। शत्रुघ्नने अपने साथी सैनिकों सहित लव-कुशके मुखसे रामायणका गान सुना, शत्रुघ्न केवल एक ही रात वहाँ ठहरे, इनने थोड़े समयमें लव-कुशने उन्हें कुछ ही सर्ग सुनाये होंगे। परन्तु गान सुनते ही शत्रुघ्नके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और शरीरकी सुधि जाती रही। (वा० ७। ७१। १०) इससे सहज ही पता लगता है कि लव-कुशके द्वारा गाया जानेवाला कथाभाग अयोध्याकाण्डका ही था। इस गानके सुननेपर सैनिकोंकी जो दशा हुई थी, उसका वर्णन पहलेसे अयोध्याकाण्ड-सम्बन्धी हमारा अनुमान और भी इदतर हो जाता है। यह वर्णन इसप्रकार है—

पदानुगाश्च ये राजस्तां श्रुत्वा गीतिसम्पदम् ॥

अवाङ्मुखाश्च दीनाश्च ह्याश्चर्यामिति चात्रिवन् ।

परस्परं च ये तत्र सैनिकाः संबभाषिरे ॥

किमिदं क च बर्तामः किमेतत्स्वप्नदर्शनम् ।

अयों यो नः पुरा दृष्टस्तमाश्रमपदं पुनः ॥

मृण्मः किमिदं स्वप्नो गीतबन्धमनुत्तमम् ।

( वा० रा० ७।७१।१८-२१ )

'शत्रुघ्नके साथी लोग गान सुनते ही सिर मुकाकर दीनसे बन गये और 'आश्चर्य' 'आश्चर्य' पुकारने हुए परस्पर कहने लगे कि 'अरे यह क्या है ? हमलोग कहाँ हैं, स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं ? जो बात हमने पहले भाँखों देखी थी वही सुन रहे हैं। क्या यह स्वप्नमें तो नहीं सुन रहे हैं।' रामायणगान सुननेपर उस समय साधारण जनताकी कैसी दशा होगी थी, इसकी कल्पना करानेके लिये यहाँ पूरे श्लोक उद्धृत किये गये हैं। अन्तिम श्लोकमें सैनिकोंका यह उद्गार कि 'हमने जो बातें अपनी भाँखों देखी थी ठीक वही आज सुननेको मिल रही हैं' बड़े ही महत्त्वका है। रामायणी-कथाका वह भाग जिसमें रामवन-गमनसे लेकर अयोध्या लौट आनेतकका वर्णन है अर्थात् आरण्यकाण्डसे युद्धकाण्ड-तकका वर्णन, अयोध्याके नागरिकोंमें किसीकी भाँखों देखी घटना प्रायः नहीं है। उनका देखा हुआ कथाभाग तो बाल और अयोध्याकाण्डमें ही है। इससे भी यह स्पष्ट है कि लव-कुशने जो गान किया था उसका अयोध्याकाण्ड होना ही अधिक सम्भव है।

इसी प्रकार अयोध्यामें भी लव-कुशने अयोध्याकाण्डका गान किया होगा और उसे सुनकर लोगोंकी ऐसी ही दशा हुई होगी। राम-बन-वासके बादकी कथाएँ लोगोंको बीच-बीचमें इधर-उधरसे सुनायी पड़ती थीं। अयोध्याकाण्डकी कथा लोगोंकी जानी हुई थी। जब लोगोंने उसे ठीक सिलसिलेवार सुना तब उनका, आगेकी कथाके लिये भी इसी प्रकार ऐसा अनुमान होना कि वह भी ऐसी ही सत्य और सुन्दर होगी, और उसके जाननेके लिये जिज्ञासा बढ़ना स्वाभाविक था। अतएव किसीने कथा सुननेके लिये, किसीने सत्यान्वेषणके लिये और किसीने सीताका अपवाद सिद्ध करनेके लिये ही अगला कथाभाग गानेके निमित्त लव-कुशको बहुत ही तंग किया होगा। किसीने कहा होगा कि 'जब रावण सीताके पास आया तब वह क्या करती थी ?' 'वह उसे कैसे ले गयी ? हमें वह क्या सुनाओ।' दूसरेने कहा होगा—'रावणने सीताको कहाँ रक्खा था ?' 'उसमें और सीतामें क्या बातें हुई ? यह सुनाओ।' मतलब यह कि, उस समय ऐसे कितने प्रश्न पूछे गये होंगे और गानके लिये

कितना आग्रह किया गया होगा, इसकी कल्पना सभी कर सकते हैं। इसप्रकार गान करने हुए लव-कुशको यदि मूल लग जाय तो उसके निवारणके लिये महर्षिने उन्हें पहलेसे ही फल दे रखते थे तथा सर्वथा निस्पृह-भावसे प्रचार करनेके लिये आज्ञा दी थी। प्रचारके लिये भेजते समय महर्षिने स्पष्ट ही कहा था—

लोमश्यापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया ।

किं धनेनाश्रमस्थानां फलमुलाशिनां सदा ॥

(वा०रा० ७।९३।११)

पुत्रो ! धनके लिये तनिक-सा भी लालच नहीं करना क्योंकि हम फल-मूलपर रहनेवाले आश्रमवासियोंको धन लेकर क्या करना है ?

गान सुनकर कोई धन देने लगे तो नहीं लेना, वहाँ महर्षिने यही कहा। निष्काम-प्रचारकी दृष्टिने यही उचित था, पर साथ ही वह भी करण रखना चाहिये कि निष्कामताकी आवश्यकता महर्षिने कार्य-सिद्धयर्थ नहीं बतलायी है। हमलोग फल-मूलादि खाकर रहनेवाले आश्रमवासी हैं, अपनेको धनसे क्या करना है। उन्होंने अपनी निरपेक्षताका हेतु यही बताया है।

इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि महर्षिने इस समय-तक उनसे इसी साधनासे वर्ताव किया होगा। इसपर भी यदि महर्षिके सम्बन्धमें हमने जो अनुमान किये हैं, उनसे कोई सहमत न हों तो वह आगेके शोक देखें। इसप्रकार रामायण-गानका प्रचार होते रहनेसे लव-कुशकी कीर्ति श्रीराम-तक पहुँच जायगी और फिर दरबारमें रामायण-गानका सुप्रचलन आवेगा, महर्षिका ऐसा अनुमान था और यही वह चाहते थे। राजाके द्वारा ही हुई कोई भी वस्तु न लेनेके सम्बन्धमें उन्हें फिरसे समझानेकी कोई आवश्यकता न थी परन्तु इस निस्पृहताके कारण लव-कुश कहीं विनयहीन होकर रामकी श्रवण न कर बैठें। इसी शंकासे महर्षिने उन्हें सतर्क करते हुए कहा—

आदिप्रभृति मेवं स्यात्तत्त्वज्ञाय पार्थिवम् ।

पिता हि सर्वभूतानां राजा भवति धर्मतः ॥

( वा० रा० ७।९३।१५ )

इसमें राजासे नम्रताका वर्ताव करनेका उपदेश देते हुए उसका जो कारण महर्षि बतलाते हैं वह कितनी चतुरताका है। महर्षि कहते हैं—‘महाराजका तनिक भी अपमान न करना क्योंकि राजा सब प्राणियोंका धर्मतः पिता है।’

श्रीराम लव-कुशके साक्षात् पिता हैं परन्तु महर्षि सीधी बात न कहकर उन्हें समझाते हैं कि राजा सब प्राणियोंके पिता हैं अतः वह तुम्हारे भी पिता हैं। इस प्रकारान्तरसे रामका पितृत्व समझानेमें मुनिने जिस युक्तिके काम किया, उसपर विचारकर हम कह सकते हैं कि इस विषयमें महर्षि कितने सावधान थे और लव-कुशको असली बातका पता न लगने देकर उन्हें किस प्रकारसे पाला था।

महर्षिकी योजनानुसार सभी संयोग एकत्र हो गये। यज्ञ-मण्डपमें श्रीरामके सम्मुख लव-कुशका गान हुआ। नाना देशोंके नरपति, ऋषि तथा जनताने उसको सुना। इसप्रकार महर्षिने बड़ी चतुराईसे सीता-अपवादको समूल नष्ट कर दिया ! दोनों कुमारोंको आश्रममें पिताका पता नहीं लगने दिया और वहाँ उनकी सारी व्यवस्था साधारण विद्यार्थियोंकी भाँति की गयी। इसका कारण यह है महर्षिको इस बातकी शङ्का थी कि इन तेजस्वी कुमारोंको इस बातका पता लग जाने पर कि निर्दोषा माताको पिताने त्याग दिया है, क्रोध आना सम्भव है। यह कौन कह सकता है कि यह शंका निराधार थी ?

वाल्मीकिकी योजनाके अनुसार सभी बातें हुईं, परन्तु नीनादेवी पुनः शपथके समय जो एक बार रामके सामने प्रगट हुईं। वस, वह अन्तिम बारके लिये ही हुईं। इसका कोई उपाय नहीं था, महर्षिने जिस कार्यको उठाया था वह सिद्ध होकर भी सुख-पर्यवसायी नहीं हुआ तथापि उन्होंने एक चतुर कर्मी पुरुषकी भाँति राजनीतिका यह एक दाव बिछाया था। इस विषयमें तो किसीका मतभेद नहीं होना चाहिये।

### रामायणसे परस्पर सहानुभूतिकी वृद्धि

रामायण केवल हिन्दुओंका ही राष्ट्रीय महाकाव्य ही नहीं है, किन्तु उसमें यह विशेष गुण भी है कि वह अपने देशवासियोंके विश्वास तथा चरित्रका विश्व आश्रित सत्यतापूर्वक चित्ताकर्षकरूपमें जीवितो है, इसका फल यह होता है कि उसके अनुशीलनसे यूरोपनिवासियोंके बहुतसे मिथ्या विश्वास और दुर्भाव जो इस सम्बन्धमें हैं, दूर होजाते हैं और दोनों जातिबोमें परस्पर सहानुभूतिकी वृद्धि होती है। —ग्राम

## रामायण-पञ्चदशी

( सं०—श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी )

कर्म-प्रधान—

कर्म-प्रधान विस्व करि राखा ।  
जो जस कर सो तस फल चाखा ॥

अहिंसा—

परम धरम खुतिबिदित अहिंसा ।  
पर-निन्दा-सम अघ न गिरिंसा ॥

सत्य—

धरम न दूसर सत्य समाना ।  
आगम निगम पुरान बखाना ॥

अस्तेय-व्रज्जचर्य—

जननी-सम जानहिं पर-नारी ।  
धन पराय बिपते बिध भारी ॥

सन्तोष—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई ।  
जयालाभ संतोष सदाई ॥

भक्त-मुख्य-लक्षण परोपकार—

रामभगत परहितनिरत परदुख दुखी दयाल ।  
भगत सिरोमनि भरततेँ जनि डरपहु सुरपाल ॥  
परहित बस जिन्हके मनमाहीं ।  
निन्हकई जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

जीवात्मा-स्वरूप—

ईश्वर-अंस जीव अबिनासी ।  
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

नाम-माहात्म्य—

सोइ भव-तर कछु संसय नाहीं ।  
नाम-प्रताप प्रगट कलिमाहीं ॥

सर्वार्पण और निष्काम भजन—

बचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम ।  
तिन्हके हृदय-कमलमहँ करउँ सदा विस्राम ॥

शरणागत भक्तकी श्रेष्ठता—

सुनु मुनि तोहि कहऊँ सहरोसा ।  
भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥  
करउँ सदा तिन्हकै रखवारी ।  
जिमि बालकहिं राख महतारी ॥

सतत-स्मरण—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई ।  
जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

संसार-भगवन्मय—

सीयराममय सब जग जानी ।  
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥  
सो अनन्य जाके असि मति न टरे हनुमन्त ।  
मैं सेवक सचराचर रूप-रासि भगवन्त ॥

निर्वाण-त्याग—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।  
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ॥

## सन्तके लक्षण

विषय अलंघ्य सीलगुनाकर । परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥  
सम अमृतिरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष मय त्यागी ॥  
कोमलचित दीननपर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥  
सबहिं मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रानसम मम तेँ प्रानी ॥  
बिगतकाम मम नामपरायन । सांति निरति बिनती मुदितायन ॥

सौतलता सरलता मइत्री । द्विज-प्रद-प्रीति धरमजनयित्री ॥  
बे सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानहु तात संत संतत पुर ॥  
सम दम नियम नीति नहिं डोलहि । पक्ष बचन कबहूँ नहिं डोलहि ॥  
निन्दा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज ।  
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥

## ज्ञान-दीपका स्पष्टीकरण\*

( लेखक—साहित्यरजन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी )

### [ ज्ञानदीप रूपक ]

#### मूल

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बषानी ॥  
ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥  
सो मायावस भयउ गोसाईं। बँधो कीर मरकटकी नाई ॥  
जड़ चेतनहि अस्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥  
तबते जीव भयउ संसारी। छूट न अस्थि न होर सुबारी ॥  
श्रुति पुरान बहु कहैउ उपाई। छूट न अवेक अधिक अरुसाई ॥  
जीव हृदय तम मोह निसेधी। अस्थि छूट किमि परै न देखी ॥  
अस संजोग ईस बन करई। तत्रहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥

#### टीका

१—सुनहु तात यह अकथ कहानी।

समुझत बनै न जात बषानी ॥

अर्थ—हे तात, यह अकथ कहानी, जो कहने और समझने नहीं बनती, उसे सुनो।

सुनहु—इससे शिष्य (गुरुजी) का ध्यान सूचित किया।  
'ग्यानिहि भक्तिहि अन्तर केना। सकल कहहु प्रमु कृपानिकेता।'

तात—से मुमुक्षुजीने शिष्यपर प्रेम दिखवाया।

यह अकथ—से भक्तिके साधनका सुकथ होना दर्शाया।

बषा—

'भगति के साधन कहाँ बखानी' मुगम पंच मोहि पावैं प्राणी ॥

कहानी—से 'अज्ञातवाद' दिखवाया कि हम जो कुछ कहते हैं सो कहानी है। कहानी सत्य नहीं होती, अतः यह भी पारमार्थिक † सत्य नहीं है। सत्य तो एकमात्र निर्विशेष ब्रह्मको स्थिति है। जिसप्रकार शराके कभी भ्रम नहीं हुआ, आकाशमें कुसुम नहीं हुआ, बन्ध्याको पुत्र नहीं हुआ, उसी प्रकार यह सब कुछ भी कभी हुआ ही नहीं, फिर

\* सम्मान्य त्रिपाठीजीने श्रीमानमके 'ज्ञानदीपक-रूपक' पर 'भावप्रकाशक' नामक सुन्दर टीका विख्यात रामायणी पं० श्री

भूषणजीके अनुरोधसे लिखी है, उपाका यह एक अंश है, इसमें पहली ८ चौपाइयोंकी टीका है, अगला भाग 'कल्याण' में क्रमशः प्रकाशित होगा। भूमिका और त्रिपाठीजी-लिखित परिचयात्मक दोहाटक पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेके समय छप सकेंगे। —सम्पादक

† सत्य दो प्रकारका होता है—(१) पारमार्थिक और (२) व्यावहारिक। पारमार्थिक मिथ्या ही व्यावहारिक सत्य है।

किसका बन्ध और किसका मोह ? जो दिखायी पड़ता है सो भ्रम है। उस भ्रममें अंश-अंशी भेद न है और न हो सकता है। माया और उसके प्रपञ्चका उसमें स्पर्श भी नहीं है। बषा—

(१) 'अनघ अद्वैत अनवद्य अन्यक्त अज  
अमित अविकार आनन्दसिधो ॥

(विनय प०)

(२) राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तहँ मोह निसा लबलेसा ॥  
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहि तहँ पुनि विग्यान निहाना ॥  
हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव बर्म अहमिति अमिमाना ॥

(३) यत्र हरि तत्र नहि भेद माया ।

(विनय प०)

(४) जग नम बाटिका रही है फल फूलिरे ।

पूआँ कैसे औरहर देखि तू न मृलि रे ॥

(विनय प०)

शिष्यको संसार और बन्धकी प्रतीति होती है। उसे इस प्रपञ्चके समझने और इससे मुक्ति जान करनेके लिये जिज्ञासा है, अतएव गुरु उसकी इच्छाके अनुसार, उसके समझानेके लिये निरुप्रपञ्चमें पहले प्रपञ्चका व्याख्यान करते हैं और फिर प्रपञ्चका अपवाद करने यथार्थ स्वरूपका उपदेश करते हैं, अतएव यह व्याख्यान-अपवादका उपदेश भी मिथ्या है। जिज्ञासाके पूर्वके साधनचतुष्टय सब मिथ्या ही हैं। अतएव इस मिथ्या कथाको कहानी कहा। परन्तु इस कहानी सुननेवालेको सिद्धान्त-ज्ञान होता है, क्योंकि कहानीकी समाप्तिपर कहेंगे कि 'कथो ज्ञान-सिद्धान्त पुझाई।' अतः साधनचतुष्टयसे ममता-मलके नष्ट होनेपर ही इस कहानीके कहनेका भी विधान है, यह कहानी यदि

‘ममता-रत’से कही जायगी, तो ऊसरमें बीज बोनेकी भाँति व्यर्थ होगी, यथा—

‘ममतारत सन ग्यान कहानी ।’  
‘ऊसर बीज नए फल यथा ।’

समुझत बने न—समझते नहीं बनता । भाव यह कि निर्गुण ब्रह्म और गुणमयी मायाके संयोग-वियोगका इसमें बखान है । निर्गुण ब्रह्म ज्ञेय नहीं है, जाना नहीं जा सकता है जो ज्ञेय हो, स्वयं द्रष्टा कैसे जाना जाय ? और द्रष्टा ही ब्रह्म है, अतएव वह नहीं जाना जा सकता, यथा—

जगपेखन तुम देखनहारे । बिबि-हरि संभु नचावनहारे ।।  
तेव न जानहि मर्म तुम्हारा । और तुमहि को जाननिहारा ।।

माया भी नहीं जानी जा सकती । वह तो अघटन-घटनापटीयसी है, जो हो न सके उसीको कर दिखाना मायाका काम है । यथा—

जो माया सन जगहि नचावा । जासु चरित लखि कहु न पावा ।।

और संयोग-वियोग ब्रह्ममें बनता नहीं, यथा—‘सपनेहु योग-वियोग न जाके’ अतएव यदि समझते बने तभी आश्चर्य है ।

न जात बखानी—बखानने भी नहीं बनता । भाव यह कि उसको कहनेके लिये उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते, यथा—

कंसव कहि न जाय का कहिये ।

देखत तब रचना बिचित्र अति समुझि मनहि मन रहिये ।।  
सून्म भीतपर चित्र रंग नहि बिनु कर किखा चितरे ।  
चाप मिटइ न मरइ भीत दुख पाइय यह तन हेरे ।।  
कोठ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल करि मानै ।  
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम तब आपन पहिचानै ।।

(विनय० प०)

परन्तु वेदान्तके वाक्योंको गुरु-मुखद्वारा सुनते-सुनते धनुभव हो सकता है, यथा—

‘बिनु गुरु होइ कि ग्यान ।’  
‘अनुभवगम्य भजहि जेहि सन्ता ।’

इस चौपाईसे ‘निष्कानित्य-वस्तु विवेक’ रूपी प्रथम साधन बतलाया गया ।

३५

२—ईश्वर अंस जीव अविनासी ।

चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

अर्थ—चेतन अमल सहज सुखराशि जीव ईश्वरका अंश है ।

ईश्वर—ईश्वर और ब्रह्ममें अन्वयभावमात्र है, वस्तुमेव नहीं है । ब्रह्मकी कोई अवस्था न होनेके कारण, ज्ञाप्रत्यक्ष और सुषुप्तिकी अपेक्षा उसे तुरीय (चौथा) कहते हैं, और उस अपेक्षाको भी छोड़कर उसे तुरीयातीत या केवल तुरीय कहते हैं । यथा—‘तुरीयमेव केवलम्’ वही ब्रह्म जब जगत्के प्रकाशकरूप अर्थात् मायापतिके रूपसे देखे जाते हैं, ईश्वर कहलाते हैं । यथा—

जगत् प्रकाश्य प्रकासक रामू । मायावीत ग्यानगुनचामू ।।

अंस—उस मायापति ईश्वरका अंश । कहनेका भाव यह कि ब्रह्म और मायाको लेकर ही सब प्रपञ्च है । पूर्ण ब्रह्मका खण्ड नहीं होता । यथा—‘यद्यपि एक अखण्ड अनन्ता ।’ फिर भी मज्जिन-सत्त्वा-माया (अज्ञान) द्वारा उसके अंशकी कल्पना होती है, जिसे कूटस्थ या साची कहते हैं । साची कूटस्थ भी ब्रह्म ही है, यथा—‘प्रकृतिपार प्रभु सब उरवासी’ परन्तु जैसे महाकाश और घटाकाशमें कल्पित भेद है, वैसे ही यहाँ भी कल्पित भेद है । यथा—‘मुषा भेद जद्यपि कृतमाया ।’ अभिप्राय यह कि तूला-विद्याका आश्रय साची कूटस्थ है, और तूला-विद्याका आश्रय साची ब्रह्म है । प्रत्येक व्यक्तिमें तूला-विद्या भिन्न भिन्न है, और समष्टि-भूता तूला-विद्या एक ही है । तूला-विद्याके भेदसे उसके साची-कूटस्थमें भेद माना जाता है । इसीलिये गोस्वामीजीने ‘राम’ से ब्रह्म, ईश्वर और कूटस्थ तीनोंका ग्रहण किया है, क्योंकि एक ही तीन भाँतिसे प्रकाशित होता है ।

जीव—मज्जिन-सत्त्वा-मायामें जब ब्रह्मका प्रतिबिम्ब पड़ता है, तो सत्त्वके भाजिन्यसे अनन्त प्रतिबिम्ब हो जाते हैं, और उन प्रतिबिम्बोंकी वह मज्जिन-सत्त्वा-माया ही देह हो जाती है । वही देह कारव्यशरीर कहलाते हैं और उनके अभिमानी जीव प्राज्ञ कहलाते हैं । मज्जिन-सत्त्वा-माया, तूला-विद्या, अज्ञान, अहंकार, कारव्यशरीर और नामरूपात्मिका ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । गोस्वामीजीने जीवकी मूँछे पानीसे उपमा दी है । यथा—

भूमि परत माडावर पानी । जिमि जीवहि माया रूपटानी ।।  
परबस जीव स्ववस भगवन्ता । जीव अनेक एक श्रीकन्ता ।।



अविनासी—अर्थात् जिस भीति ईश्वर सद्रूप अविनाशी है, उसी भीति जीव भी अविनाशी है, सद्रूप है। यथा—‘जीव नित्य (तैं केहि लागि रोना)’

चेतन—अर्थात् अहंसे सम्बन्ध होनेपर भी प्रज्ञानघन है, यथा—निज सहज अनुभवरूप (तब खल भूलि भौ आयो कहाँ)

अमल—यानी निर्मल कहनेसे वह दिखलाया कि अभी-तक (सुषुप्ति) जीव ममत्तारूपी मलसे रहित है। गोस्वामीजीने ममताको मल माना है, यथा—‘ममतामल जरि जाय।’

सहजसुखरासी—अर्थात् कारव्यशरीराभिमानो होनेपर भी आनन्दभोक्ता है। इसीसे कारव्यशरीरको आनन्दमय कोष कहते हैं। उसकी अवस्था सुषुप्ति है, यथा—‘अब सुल सोवत सोच नहि।’

३-सो मायाबस भयेउ गोसाईं।

बैंधो कीर मर्कटकी नाई॥

अर्थ—वह प्रभु मायाके वश हो गया, और शुक (सुरंगे) तथा बन्दरकी भीति बँध गया।

सो गोसाईं—वह प्रभु। प्रभुके अर्थमें ‘गोस्वामी, शब्द रामचरितमानसमें व्यवहृत है, यथा—

स्वामि गोसाईहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मैं स्वामि दोहाई॥

सो गोसाईं जेहि विधिगति टेकी। इत्यादि—

प्रभु (कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुममर्थः) है पर इस दशाको प्राप्त हो गया। यथा—

‘निष्काज राज विहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह पर्यौ।’

(वि० प०)

ईश्वरने तो केवल अगत्को उत्पन्न किया, वह उसका भोक्ता नहीं है। भोक्ता तो जीव है, इसलिये जीवको प्रभु कहा। भोगकी कल्पना जीवकी है। उसीने आप्रप्तसे लेकर मोक्षतक संसारकी कल्पना की है।

माया—सब रज और तमकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहते हैं, यही ईश्वरकी शक्ति माया कहलाती है, यथा—‘सो हरि माया सब गुनखानी।’ ब्रह्मसे प्रत्यक्ष मायाकी सत्ता है नहीं, इसलिये उसे सत् नहीं कह सकते, परन्तु उससे प्रत्यक्ष मायाका कार्य दृष्टिगोचर होता है, इसलिये उसे असत् भी नहीं कह सकते, अतएव माया अनिर्वचनीया है।

ब्रह्मसे वह सर्वथा विलक्षण है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है, और माया मिथ्या, जड़ एवं दुःखरूपा है। मिथ्या, यथा—‘समुद्ये मिथ्या सोपि जड’ यथा—‘जासु सत्यतासे जड माया। दुःखरूपा, यथा—‘एक दुष्ट अतिसय दुःखरूपा। जिस प्रकार व्यवहारमें सत्यसे मिथ्या विलक्षण होते हुए भी, सत्यके आधारपर स्थिर रहता है, सत्यके बलसे प्रकाशित रहता है और सत्यके ज्ञानसे बाधित होता है, वैसे ही पारमार्थिक मिथ्या (माया) भी पारमार्थिक सत्य (ब्रह्म) के आश्रित, ब्रह्मसे प्रकाशित तथा, ब्रह्मसे विलक्षण है और ब्रह्मज्ञानसे ही उसका नाश होता है यथा—

शूठहु सत्य जाहि विनु जाने। जिमि भुजङ्ग विनु रजु पहिचाने॥

जेहि जाने जग जाइ हेराई। जगे यथा सपन भ्रम जाई॥

तीनों गुणोंका वह स्वभाव है कि वे एक दूसरेको छोड़कर भी नहीं रह सकते, और एक दूसरेको दबाया भी करते हैं। अतः गुणोंके तारतम्यसे मायाके भी अनेक भेद हैं, जिनमें दो प्रधान हैं। शुद्ध-सत्त्वा-माया,—जिसमें रज और तमका वेशमात्र है, विद्या कहलाती है, अगत्की रचनामें यही समर्थ है और भक्ति-संन्या-माया, अविद्या कहलाने-वाली जीवके बन्धनका कारण है। यथा—

तेहिकर भेद मुनौ तुम दोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥

एक दुष्ट अतिसय दुःखरूपा। जेहि बस जीव परा मयकूपा॥

एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके॥

बस भयेउ—मायाके वशमें हो गया। अचटन-घटना-पटीयसी मायाकी वह क्रामात है कि वह बाधाद्वारा विम्वको बशीभूत कर लेती है। यथा—

‘करि माया नमके लग गहई।’

‘गहै छौह सक सो न उडाई॥’

अतः कूटस्थ, मूला-माया, और प्रतिबिम्ब तीनों मिलकर जीव हुए, अब माया जो-जो और जैसा-जैसा नाश नचाती है, जीव वह और वैसा ही नाश नाचता है। यथा—

‘देखा जीव नचावै जाही।’

‘नाचत ही निसि दिवस मर्यौ।’

तवहीते न मयो मिर जबत जीवन नाम घर्यौ।’

बैंधौ—अर्थात् कूटस्थ प्रतिबिम्बद्वारा मायासे बँध-सा गया, जैसे घटाकाश जलाकाशद्वारा जलसे बँध जाता है। जिसप्रकार प्रतिबिम्ब जलके दोषोंसे दूषित होता है, वस्तुतः होनेसे ब्रह्मण होता है, उद्वहनेसे उद्वहता है, गिरनेसे

गिरता है, दौड़नेसे दौड़ता है निदान जबसे बँध जाता है। उसी प्रकार जीव भी मायासे बँध-सा गया। परन्तु जबका उदाहरण देनेसे किसीको जीवके प्रति जबका सन्देह न हो तथा यह शङ्का न हो कि अज्ञान तो कोई रस्सी नहीं है जिससे कोई बाँधा जा सके, इसलिये कहा है कि—

‘बँधौ कीर मर्कटकी नाई’

कीरकी नाई—सुम्मेकी भाँति बँध गया। भाव यह कि बहेलिया हो तिष्ठियाँ गाढ़कर उनके सिरेपर एक तीसरी तिष्ठि बाँध देता है, और उस तीसरी तिष्ठिमें बाँसकी नली पहिना देता है, नीचे दाने रख देता है। सुम्मेका स्वभाव ऊँचेपर बैठनेका होता है। अतएव जब वह नलीपर बैठकर दाना जोनेके लिये झुकता है, नली भूम जाती है, सुम्मा उल्टा लटकने लगता है। अज्ञानसे भयवश उसे झोझता नहीं, अन्तमें बहेलिया आकर उसे पकड़ लेता है। विचार करनेसे यहाँ सुम्मेको अज्ञानके सिवा कोई दूसरा बन्धन नहीं है।

किसी महात्माने सुम्मेकी यह दुर्वशा देखकर एक सुम्मा पाका और उसे लगे पकाने—‘देखो ! सुम्मा ! दानोंका जोभ करके नलीपर न बैठना, और यदि बैठना तो उसके घूमनेपर निडर होकर उसे झोझ देना।’ जब सुम्मा पकड़ पछिड़त हो गया तो उसे झोझ दिया। उस सुम्मेका वाक्य सुनकर दूसरे सुम्मे भी बैठे ही झोझने लगे। महात्मा बड़े प्रसन्न हुए कि सभी सुम्मेका भय निवृत्त हो गया। परन्तु उनके आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा, जब कि उन्होंने एक सुम्मेको उसीप्रकार उल्टा लटके हुए यह पकड़ पाया कि ‘देखो सुम्मा ! दानोंका जोभ न करना’ इत्यादि। व्यवहार-कालमें (वाचक ज्ञानी) पछिड़तोंकी भी स्थिति मूर्खों-सी देखी जाती है। अतएव पछिड़तोंका अज्ञान-बन्धन दिखलानेके लिये ‘कीरकी नाई’ कहा।

मर्कटकी नाई—बानर भी ऐसे ही बँधता है, उसके हाथ जानेलायक छेदवाली कुहिया दानोंसे भरकर जमीनमें गाड़ दी जाती है। बानर उसमें हाथ डालकर मूठीमें दाने पकड़ लेता है। जब मूठी उसमेंसे नहीं निकलती तब बँध जाता है। जोभसे, अज्ञानसे मूठी नहीं झोझता। अतः वह भी अज्ञानसे ही बँधा है। यह मूर्ख होनेसे ‘सुम्मा पछिड़त’की भाँति मोह-शास्त्रका पाठ करते हुए बड़ नहीं है। मूर्खका बन्धन दिखलानेके लिये ‘मर्कटकी नाई’ कहा।

इसी तरह जीव अज्ञान-बन्धनसे बँधा हुआ है, हजार प्रयत्न करनेपर भी नहीं छूटता।

४—जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई।

जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

अर्थ—जड़ चेतनमें गाँठ पड़ गयी, वह यद्यपि छूटी है पर छूटना कठिन है।

जड़ चेतनहिं—जड़-चेतन दोनों विरुद्ध स्वभाववाले पदार्थ हैं। एक अन्वकार है, तो दूसरा प्रकृश है। एक विषय है, तो दूसरा विषयी है। एक मिथ्या है, तो दूसरा सत्य है। इन दोनोंमेंसे एकका दूसरेमें अभ्यास (भ्रम) होना, अथवा एकके धर्मका दूसरेमें अभ्यास होना मिथ्या है। यथा—

छिति अरु पावक गगन समीरा। पंचरश्मित यह अधम सरीरा ॥

प्रगट सो तनु तव अतो सोआ। जीव निग्य तें केहि लागि रोआ ॥

ग्रन्थि परि गई—गाँठ पड़ गयी अर्थात् तादात्म्य हो गया। जड़में चेतनका अभ्यास होने लगा और चेतनमें जड़का। इस गाँठको किसीने बाँधा नहीं है। अनादिकालसे यही हुई है। शिष्यको समझानेमें सुभीतेके लिये ‘पड़ गयी’ कहा। कारणधारीरमें जो चेतनका अभ्यास हुआ वही प्रतिबिम्ब है, वही गाँठ है। यथा—

रजत सीप महुँ मास जिमि, जथा भानुकर नरि।

जदपि मृषा तिहुँ कारुमहुँ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

पहि निधि जग हरि आश्रित रहई ॥

जदपि मृषा—यद्यपि गाँठ कूटी है, अममात्र है। मायाके साथ असंग कूटस्थका सम्बन्ध कैसा ? चटाकाशका जलसे सम्बन्ध केवल भ्रमसे सिद्ध है। यथा—

जदपि असत्य देत दुख अहई।

छूटत कठिनई—छूटना कठिन है। किसीका हटाया वह अभ्यास नहीं हटता। क्या लोकका क्या वेदका, सब व्यवहार इसी अभ्यासपर टिका है। यथा—

‘कर्म कि होइ सरूपहिं चीन्हे ।’

५—तबते जीव भयउ संसारी।

ग्रन्थि न छूट न होइ सुपारी ॥

अर्थ—जबसे जीव संसारी हो गया, तबसे न तो गाँठ छूटती है और न यह सुखी ही होता है।

तबसे—अर्थात् काबू का कोई निबन्ध नहीं है, अनावि  
अन्धपरम्परासे। अनाविकाबूसे संसार ऐसा ही चला  
आता है। इसीको अविद्या-निशा कहते हैं। इसीमें  
स्वरूपाज्ञान अर्थात् सुषुप्ति होती है। इस अवस्थाके विभु  
ईश्वर हैं। अपरिच्छिन्न तथा असङ्ग होनेसे विभुमें अहङ्कारकी  
गाँठ नहीं होती, परिच्छिन्न और सङ्गी होनेसे जीवमें  
अहङ्कारकी गाँठ है। इसी गाँठमें आवरण और विक्षेपरूपी  
निद्रा है। इसी निद्रामें पड़ा हुआ जीव अनेक प्रकारके  
स्वप्न देखा करता है। यथा—

मोह निशा सब सोवनिहारा । देखाहि सपन अनेक प्रकारा ॥  
आकर चारि लाख बौरासी । जोनिन भ्रमत जीव अविनासी ॥  
किरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥

इसी सुषुप्तिसे भूतोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लक्ष होता  
है। कारणदेह-प्राप्त ईश्वरांशके भोगके लिये ईश्वरेच्छासे  
तमःप्रधान प्रकृतिमें (१) आकाश (२) वायु (३) तेज  
(४) जल और (५) पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न हुए, जिनके  
सम्पर्कांशसे क्रमशः पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ और मिलकर अन्तःकरण  
तथा रजांशसे क्रमशः पञ्च-कर्मेन्द्रियाँ और मिलकर प्राण  
उत्पन्न हुए। यथा—

गगन समीर अनल जल धरनी । इनकर नाथ सहज जड़ करनी ॥  
तब प्रेरित माया उपजये । सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाये ॥  
विषय करन सुर जीव समेता ॥

इन पाँचों तत्त्वोंमें जो शरीर बना, वही जिज्ञादेह है।  
यहाँसे संसार अङ्कुरित हो गया, जोकि स्थूलावस्थामें  
पञ्चवित और पुष्पित होगा। इस जिज्ञादेहाभिमानकी  
नाम तैजस है और इसके विभु हिरण्यगर्भ हैं। इस तैजसके  
भोगके लिये भगवान् ने पञ्चतन्त्रोंका पञ्चीकरण करके स्थूल  
शरीर तथा इस ब्रह्मावह-भुवनकी रचना की, यथा—

जड़ पंच मिलै त्रिन देह करी करनी बहुधा घनीघरकी ।

( कवित० )

सोखह आनेमेंसे आठ आने एक तत्त्वविशेषको लेकर  
उसमें दो-दो आने शेष चार तत्त्वोंको मिलाकर, उस तत्त्व-  
विशेषको स्थूलरूप दिया। वही पञ्चीकरण है। जब तैजस  
स्थूल देहका अभिमानी होता है तब उसे विरव कहते हैं।  
इसकी आग्रह अवस्था है और विराट् विभु है। यथा—

जुन जीव उर चारिठ अवस्था विमुनह सहित विरामही ।

प्रतिविम्ब चाहे किसी अवस्थाको पहुँचे, पर विम्बसे  
उसका साथ नहीं छूटता। यथा—‘ब्रह्म जीव हव सहज सँघाती ।’  
अवस्थामेवके सम्बन्धसे विम्बमें भी भेदकी कल्पना होती  
है। सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रतके भेदसे जीव क्रमसे प्राज्ञ,  
तैजस और विरव हुआ। उसी भाँति तुरीय ब्रह्म भी ईश्वर,  
हिरण्यगर्भ और विराट् कहलाये। ऐसा संसारका रूप  
अनाविकाबूसे चला आता है, केवल समझानेके लिये  
‘तबसे’ कहते हैं। यथा—

‘विधि प्रपञ्च अस अच्छल अनादी ।’

जीव भयेठ संसारी—जीव अपने सहज स्वभाव सच्चिदानन्द-  
रूपको छोड़कर ईश्वरांशके ऐश्वर्यको लेकर संसारी हुआ,  
देहवाला हुआ। अब (१) जिज्ञादेह (२) जिज्ञादेहमें स्थित  
चिच्छाया और (३) अभिमान चैतन्य, तीनों मिलकर जीव  
कहलाये। इसप्रकार तीन प्रकारके जीव हुए।  
(१) पारमार्थिक (२) प्रातिभासिक और (३) व्यावहारिक।  
पारमार्थिक जीव कूटस्थ है और प्रातिभासिक जीव चित्त-  
जड़की प्रस्थितवाला प्रतिविम्ब है और व्यावहारिक जीव जिज्ञा-  
देहवाला है। इसी तीसरेको संसारी कहा। इसीका लोक-  
परलोकमें जाना-जाना लगा रहता है। स्थूल-शरीर छूटता  
रहता है, पर यह जिज्ञाशरीर नहीं छूटता। यथा—

कौन जोनि जनमेठ जहँ नाही । मैं खंगस भ्रमि भ्रमि जग माँही ॥

ग्रन्थि न छूट न होय सुधारी—ज जड़-चेतनवाली अज्ञान-  
की गाँठ छूटती है और न जीव सुखी होता है। अज्ञान-  
वाली गाँठ छूटे बिना सहज-स्वरूपकी प्राप्तिका दूसरा कोई  
उपाय नहीं है। किसी प्रकार जड़ चेतनकी गाँठ छूटनी  
चाहिये। यथा—

‘तुलसिदास’ में ‘मोर’ गये विनु जिव सुख कबहुँ कि पाव ।’

तीनों चौपाइयोंमें सर्वप्रथम साधन सुसुषुप्तका  
बन्धन किया।

६—श्रुति पुराण बहु कहेंउ उपाई ।

छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

अर्थ—वेद-पुराणोंनि बहुतसे उपाय बतलाये हैं,  
पर गाँठ उलझती ही जाती है, छूटती नहीं।

श्रुति पुराण—अर्थात् वेद-पुराणसे बढ़कर कोई प्रमाण  
नहीं, यथा—(वास्तव्यास) निगम निज बानी । तथापि ये भी

जब-चेतनके अभ्यास-पूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं। अतएव अधिष्ठायाके ही हैं, पर ग्रन्थिभेदका उपाय बतलानेमें भी वही समर्थ हैं।

‘तस पूजा चाहिय जस देवता।’

बहु कहें उपाई—बहुत-से उपाय वेद-पुराणोंने बतलाये हैं। जप, तप, व्रत, यज्ञ, दानादि, अनेक साधन जो बतलाये गये हैं, वे सब जीवके कल्याणके लिये ही हैं। यथा—

तप तीरथ उपवास दान मय जो जेहि रुचै करो सो।

पायेंहि पर जानिबो करम फल मरि मरि वेद परोसो ॥

आगम विधि अप जोग करत नर सरत न काज खरोसो ॥

अधिक अधिक अहसाई—अधिक-अधिक उलझनेका कारण यह है कि—

अज अर्द्धन अगुन हृदयेंसा।

अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवनाम्य अलण्ड अनुषा ॥

—का कर्मकाण्डमें उपयोग नहीं है। और बाह्यधर्म—देहधर्म, इन्द्रियधर्म और अन्तःकरणधर्म सम्बन्धी विधि-नियेक कटकर ही कर्मक्याका उपदेश है।

( १ ) बाह्यधर्म, यथा—

‘पूजहु प्रामदेव सुर नागा। कह्यो बहोरि देन बलि मागा ॥’

( २ ) देहधर्म, यथा—

‘करहु जाइ तप सैलकुमारी’

( ३ ) इन्द्रियधर्म, यथा—

काटिय तासु जीह जो बसाई। भवण मुँदि ननु चलिय पराई।’

( ४ ) अन्तःकरणधर्म, यथा—

‘मनहु न आनिय अमरपीति रघुपति भगत अकाज।’

इन विधियोंके पालनमें धर्म है स्वर्ग है, पर कर्म-सन्तति बढ़ती ही जाती है। बिना अभ्यासकी हृदता बढ़ाये कोई धर्म नहीं हो सकता ! अतः बाह्य पदार्थ, देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें अभ्यासोंकी उलझन बढ़ती ही जाती है, यथा—मल की जाहि मलहोके धोये।’

छूट न—चित्तजब-ग्रन्थि नहीं छूटती। कारण यह कि साधन-चतुष्टय बिना तत्त्व-विवेकका अधिकार नहीं होता। अतः जिसने साधन नहीं किया उसे शास्त्रके पाठिकायसे भी ज्ञान नहीं होता, यथा—

वाक्य ग्यान अद्वयन्त निपुन भवपार कि पावै कोई।

निसि घन मौंस दीपके बातन्ह तम निवृत्त नहि होई ॥

( विनव० प० )

( १ ) नित्यानित्य-वस्तु विवेक ( २ ) इहलोक और परलोकके विषयभोगसे विराग ( ३ ) षट्-साधन-सम्पत्ति और ( ४ ) मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं और शम, दम, उपरति, तितिक्षा, अद्या और समाधान ये षट् सम्पत्तियाँ हैं, इन सबका व्यवहार यथास्थान किया जायगा।

इसप्रकार साधन-चतुष्टय-सम्पन्न अधिकारी जब गुरु-वेदान्त-वाक्य-अन्य ज्ञानसे ग्रन्थि-भेद करना चाहे तभी सम्भव है। नहीं तो—

मुनिय गुनिय समुक्षिय समुज्ञाय दसा हृदय नहि आवै।

जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुण भव बिपति सतावै ॥

केवल शास्त्रचर्चा या यों कहिये कि अनधिकार चर्चासे गाँठ नहीं छूटती।

७—जीव हृदय तम मोह विसेपी।

ग्रन्थि छूट किमि परै न देखी ॥

अर्थ—जीवके हृदयमें विशेष मोहान्धकार है। इससे दिखायी ही नहीं पड़ता फिर गाँठ तो कैसे छूटे?

जाँव हृदय—यहाँ हृदय कहनेसे स्थूल-देहकी प्राप्ति दिखायी। जीवके स्थूल-देहमें हृदय ही राज-प्रासाद है, यथा—

‘अस प्रभु हृदय अछत अधिकारी ॥’

तम मोह विसेपी—मोह अविवेकको कहते हैं, उसीको तम अर्थात् अन्धकार कहा गया है। इसीके कारण अभ्यास होता है, और वही अभ्यासको बढ़ाता है। यथा—

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही ॥’

अधिष्ठा-रात्रिमें मोह-तमकी प्रबलता होती है। जीव-हृदयपर अधिष्ठाका अधिकार है, क्योंकि वही जब-चेतन-ग्रन्थि पकी हुई है। अन्धकार तो संसारी होनेके पहले ग्रन्थिमात्रसे ही था, परन्तु अब संसारी होनेसे अधिक हो गया। यथा—

मम हृदय-भवन प्रभु तोरा। तहँ बस आइ बहु चोरा ॥

अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहि नहिं बिनय निहोरा ॥

तम मोह लोभ अहंकारा। मद क्रोध बोध रिपु मारा ॥

अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा ॥

मैं एक, अमित बटपारा। केउ सुनइ न मोर पुकारा ॥

आगेठ नहिं नाथ उबारा। रघुनाथक करहु सँभारा ॥

कह तुलसिदास सुनु रामा । तस्कर छूटहि तब चामा ॥  
चिता मोहि नाथ अपारा । अपजस जनि होइ तुम्हारा ॥

अन्ध छूट किमि—गाँठ कैसे छूटे ? छूटना तभी सम्भव है, जब प्रकाशमें यह दिखलायी पड़े कि गाँठ कहाँ है और कैसी है । नहीं तो बिना देखे ही टटोलकर ममताके सूत्रोंको इधर-उधर खींचनेसे बन्धन ही रह जाता है । छूटनेकी कहाँ सम्भावना है ?

पर न देवी—अविद्या-रात्रिमें मोहान्धकार छाया हुआ है । इदम्भके भीतर और भी घना अन्धकार है । अङ्ग-चेतनकी गाँठ दिखायी ही नहीं पड़ती । अतएव दीपक जलाना चाहिये ।

८-अस संजोग ईस जौ करई ।  
तबहु कदाचित सो निरुअरई ॥

अर्थ—यदि ईश्वर ऐसा संयोग बना दे, तो कदाचित् वह गाँठ सुलभ जाय ।

अस संजोग—भाव यह कि ऐसा होना किया-साध्य नहीं है । संयोग आन पड़े तो हो जाय; संयोग अज्ञाके हाथकी बात है, मनुष्यके सामर्थ्यसे सर्वथा परे है । यथा—‘जो विधिबन्ध भन बने संजोगू ।’ ‘ऐसा कइनेका भाव यह कि संयोगोंका सिलसिला बँध जाय । अर्थात् गौ भी मिल जाय, चारा भी मिले, दूधनेवाला, औटनेवाला, दूध उबटा करनेवाला, दही मथनेवाला इत्यादि यथेष्टित मिलते ही चले जायँ ।’

ईस जौ करई—अर्थात् ईश्वर यदि करें । भाव यह कि ऐसा संयोग विधि भी नहीं कर सकते, वे तो स्वयंके विभु हैं, कारणपर उनका अधिकार नहीं है, कर्म शुभाशुभ दिया करते हैं, यथा—‘कर्म शुभाशुभ देह विधाना ।’ और ईश्वर सुषुप्तिके विभु हैं । कारणपर भी उनका अधिकार है, कर्मकी अवस्था न करके भी संयोग कर सकते हैं । अथवा जीव जिनका अंश है, जिन्होंने कससा करके उसे नरवृद्ध दिया है, वही चाहे तो कससा करके ऐसा संयोग भी कर दें, यथा—‘कबहुँ करि करुणा नरदेही । देत ईस बिनु हेत सनेही ॥’

और वह ईशका क्रिया हुआ संयोग इसप्रकार हो कि सात्त्विकी अज्ञा हरिकी कृपासे इदम्भमें बसे, और उस अज्ञाद्वारा खूब धर्माचरय हो, जिसमें अज्ञा परिपुष्ट होती जाय और धर्मके साथसे राज और लभके अभिभूत होनेसे सात्त्विक भाव उत्पन्न हो । तब अज्ञा इषीभूत होती है,

धर्माचरयका सात्त्विक परिणाम अहिंसा-दया-भावमें प्रकट होता है । तब बलीभूत निर्मल मनको अज्ञाके चरखोंमें जगा दे, और एव विचार करके अहिंसामें प्रतिष्ठित हो जाय, प्राणिमात्रको अभयदान दे । जबतक धर्मव्रतधारीके इदम्भमें दयाका प्रादुर्भाव नहीं होता, तबतक समझना चाहिये कि परम धर्मका उदय नहीं हुआ । अहिंसामें प्रतिष्ठित होनेपर निष्कामतासे अहिंसागत कामनाके अंशको दूर करे । कामनाके अंशको दूर करनेसे जो ताप होता है उसे चमत्कारा तोषसे दूर करे । जब शीतल निष्काम दयाभाव हो जाय तो उसे धृतिसे ठोस करे । तब उस शीतल ठोस निष्काम दयाभावका दम्पूर्वक गुरु-शास्त्रोपदेशानुसार विचारसे मन्थन करे । (दम्पूर्वक इसलिये कहा कि इदम्भ-दीर्घकालको स्थान न मिले, जैसे कामपीडित व्यक्तिकी वृत्ति आदि शास्त्रविरुद्ध विषयका दृष्टांते समवेश न हो), विचार करे कि संसार दुःखमय है । हम जीव इसमें पड़े हुए छेश उड़ा रहे हैं, इस दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति कैसे हो, इत्यादि । इन विचारोंसे साधक जिस निश्चयपर पहुँचेगा, वही वैराग्य है । उस निश्चयका यह रूप होगा कि ‘ये विषय अनित्य हैं, दुःखकी ओति हैं, चाहे ये इस लोकके हों चाहे परलोकके ।’ और फिर उनसे आपसे आप जी हटेगा । अब चित्तमें विराग आ जायगा तब वह विषयोंको छोड़ सकेगा, और तब उसे योगका अधिकार होगा ।

चित्तवृत्तिका निरोध योग है । वैराग्यसे चित्तवृत्ति निरोधकी योग्यता प्राप्त होती है, परन्तु शुभाशुभ कर्मसे सम्बन्ध त्याग किये बिना निरोध नहीं हो सकता । बुद्धि-द्वारा शुभाशुभ कर्म-सम्बन्ध त्यागते ही चित्त निरुद्ध होता है । ममता नष्ट होती है, तब सत् वस्तुमें चित्त एकाम होता है । ‘तत्’ पदका ज्ञान अर्थात् परोक्षज्ञान होता है । तब विज्ञावरूपिणी ( उपनिषत्-अन्य ) बुद्धि उस अपरोक्ष-ज्ञानको चित्तमें अमाकर समतामें स्थापन करती है । अब ‘त्वं’ पदार्थका शोधन शेष है । अतः इसप्रकारका परोक्ष-ज्ञानी ध्यानमें स्थित होकर अपनेको स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरोंसे वृथक् भावना करके, अर्थात् ‘त्वं’ पदार्थका शोधन करके तुरीयावस्थाको प्राप्त होता है । फिर तुरीयावस्थाके संस्कारोंको एकीभूत करके परोक्ष-ज्ञानमें मिला देता है । यह ‘असि’ पद है । और तब शब्दानुबिद्ध समाधिमें स्थित होनेसे आत्मानुभव प्रकाश उत्पन्न होता है, और वह ‘सोहमकिं’ वृत्तिवाका अपरोक्ष होता है । यह

मोहान्धकारको मिटा देता है। परन्तु अभी चित्-जड़-ग्रन्थि बनी हुई है। विज्ञानरूपिणी बुद्धि इस प्रकार ग्रन्थि-मेदन कर सकती है। यदि ग्रन्थि-मेदन हो गया तो अज्ञान सदाके लिये मिट गया, और सहजस्वरूप कैवल्यकी प्राप्ति हुई। यही परमपद है। इसी बातको दीपकके रूपमें सुलभताके लिये विशादरूपमें बर्णन किया जायगा।

तबहुँ कदाचित्—भाब यह कि ईशके ऐसा संयोग कर देनेपर भी कार्य-सिद्धिमें बहुत सन्देह है। क्योंकि साधन बहुत कठिन है और संसारी जीव रोगी है। रोगीकी क्या सामर्थ्य जो कठिन साधनका सामना कर सके। क्या—

मोह सकल व्याधिनकर मूला। तेहिते पुनि उपजै बहु सूला ॥  
पहि बिधि सकल जीव जग रोगी। सोक हर्षमय प्रीति बियोगी ॥

एक व्याधिवस नर मरइ, ए असाध्य बहु व्याधि।  
सन्तत पीडहि जीव कहँ, सो किमिलहइ समाधि ॥

और दूसरी बात यह है कि 'अकृतोपास्ति-ज्ञान' जिसमें भक्तिकी सहायता नहीं है, सिद्ध नहीं होता, क्या—  
जें ग्यानमान बिमत तव भयहरनि भगति न आदरी।  
ते पाइ सुर दुर्लभ पदार्दापि परत हम देखत हरी ॥  
सो—यह चित् ( अस्ति, भाति, प्रिय ) और जड़ ( नामरूप ) की गाँठ।

निरुद्ध—अर्थात् वह गाँठ सुलभ है। अस्ति ( सत् ) भाति ( चित् ) और प्रिय ( आनन्द ) ये तीन अंश ब्रह्मके और नाम और रूप, दो अंश मायाके, इन्हीं पाँचोंने उलझकर प्रपञ्चकी गाँठ बना रखली है, और इन्हींके उलझनपर उलझन पड़नेसे संसार बना हुआ है, सो सुलभ जाय। अर्थात् तीन अंश ब्रह्मके पृथक् और ( नाम-रूप ) दो अंश मायाके पृथक् हो जायें। गाँठके अँधेरेमें होनेके कारण प्रकाशके लिये दीपका संकल्प हुआ। दीपके साधनमें, डहरनेमें, ऐसा विमल बाहुल्य है कि संयोग अनुकूल होनेपर भी कहना पड़ा कि कदाचित् ही वह सुलभ सके। यथा—

भाबव मोह-पास क्यों टूटै ?

बाहिर कोटि उपाय करिय अमिअन्तर ग्रन्थि न छूटै ॥  
घृत-पूरण कराह अन्तरगत ससि प्रतिबिम्ब दिखावै ॥  
ईवन अगिन लगाइ कटपस्त अँटे नास न पावै ॥  
तरकोटरमँह बसि बिहंग तर कोटे मरै न जैसै ॥  
साधन करि अविचार करहि मन सुख हाँड कहु कैसे ?  
अन्तर भक्तिन विषय मन अति तनु पावन करी हमारे ॥  
मरइ न उरग अनेक जतन बलमीक बिनिधि बिधि मारै ॥  
मुलसिदास हरि-गुरु-करुना बिनु बिमल बिबेक न होई ॥  
बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि पार कि पावै कोई ॥

## रघुवर भजो

भजहु मन रघुवर दीनदयाल ॥टेक॥

जौलौ चरण-सररोज न भजिहौ ,

शीसमुकुट शोभित श्रुति कुण्डल

फिरिहौ भ्रमत बिहाल ।

धनुधर दशमुख काल ॥

सुमिरत ही शुभ नाम खगाधिप

वर वामांग जनक-तनया-छवि

नशिहै भव-दुख-व्याल ॥१॥

नयनन्ह करत निहाल ॥३॥

भक्त-शिखिन्ह सुखदायक धनवत्

वैर करत निशिचर गन तारथो

श्यामल गात रसाल ॥

को अस निजपन पाल ॥

पीत वसन वर विज्जु-विनिन्दित

“श्रीमन” जाहि भजे भय भाजत

चन्दन भाल विशाल ॥२॥

दुखदायक जग-जाल ॥४॥

—श्रीनारायणाचार्य शास्त्री वेदान्तभूषण

## रामायण-संकीर्तन-माला

### बालकाण्डम्

१-शुद्धब्रह्म परात्पर	राम
२-कालात्मक परमेश्वर	राम
३-शेषतल्प-सुखनिद्रित	राम
४-ब्रह्माद्यमरप्रार्थित	राम
५-चण्डकिरण-कुलमण्डन	राम
६-श्रीमद्भरथनन्दन	राम
७-कौशल्या-सुखवर्द्धन	राम
८-विश्वामित्र-प्रियधन	राम
९-घोर-ताटका-घातक	राम
१०-मारीचादि निपातक	राम
११-कौशिक-मख-संरक्षक	राम
१२-श्रीमद्दहल्योद्धारक	राम
१३-गौतम-मुनि-संपूजित	राम
१४-सुरमुनिवरगण-संस्तुत	राम
१५-नाविक-धावित-मृदुपद	राम
१६-मिथिलापुर-जन-मोहक	राम
१७-चिदेह-मानस-रञ्जक	राम
१८-त्र्यम्बक-कामुक-भञ्जक	राम
१९-सीतार्पित-वरमालिक	राम
२०-कृत-वैवाहिक-कौतुक	राम
२१-भार्गव-दर्प-विनाशक	राम
२२-श्रीमद्योध्या-पालक	राम
अयोध्याकाण्डम्	
२३-अगणित-गुणगण-भूषित	राम
२४-अवनी-तनया-कामित	राम
२५-राकाचन्द्र-समानन	राम
२६-पितृवाक्याश्रित-कानन	राम
२७-प्रिय-गुह-विनिवेदित-पद	राम
२८-तत्क्षालित-निज-मृदुपद	राम
२९-भरद्वाजमुखऽऽनन्दक	राम
३०-चित्रकूटाद्रि-निकेनन	राम
३१-दशरथ-सन्तत-चिन्तित	राम
३२-कैकेयी-तनयार्थित	राम
३३-विरचित-निजपितृकर्मक	राम
३४-भरतार्पित-निजपादुक	राम
अरण्यकाण्डम्	
३५-दण्डकवन-जन-पावन	राम

३६-दुष्ट-विराध-विनाशन	राम
३७-शरभङ्ग-सुतीक्ष्ण-अर्चित	राम
३८-अगस्त्यानुग्रह-वर्धित	राम
३९-गृध्राधिप-संसेवित	राम
४०-पञ्चवटी-तट-सुस्थित	राम
४१-शूर्पणखार्त्ति-विधायक	राम
४२-खर-दूषण-मुख-सूदक	राम
४३-सीताप्रिय-हरिणानुग	राम
४४-मारीचार्तिरुदाशुग	राम
४५-विनष्टसीतान्वेषक	राम
४६-गृध्राधिपगतिदायक	राम
४७-शबरी-दक्ष-फलाशन	राम
४८-कबन्धबाहु-च्छेदन	राम
किष्किन्धाकाण्डम्	
४९-हनुमत्सेवित-निजपद	राम
५०-नत-सुग्रीवाभीष्टद	राम
५१-गर्वित-बालि-संहारक	राम
५२-वानर-दूत-वेषक	राम
५३-हितकर-लक्ष्मण-संयुत	राम
सुन्दरकाण्डम्	
५४-कपिवर-सन्तत-संस्मृत	राम
५५-तद्वति-विघ्नध्वंसक	राम
५६-सीता-प्राणाधारक	राम
५७-दुष्ट-दशानन-भूषित	राम
५८-शिष्ट-हनुमद्भूषित	राम
५९-सीता-शोध-परायण	राम
६०-कृत-चूडामणि-दर्शन	राम
६१-कपिवर-वचनाश्वासित	राम
अथ युद्धकाण्डम्	
६२-रावण-निधन-प्रस्थित	राम
६३-वानर-सैन्य-समावृत	राम
६४-शोषित-सरिदीशार्थित	राम
६५-विभीषणाभयदायक	राम
६६-पर्वतसेतु-निबन्धक	राम
६७-कुम्भकर्ण-शिर-छेदक	राम
६८-राक्षस-संघ-विमर्दक	राम
६९-अहि-महि-रावण-चारण	राम
७०-संहृत-दशमुख-रावण	राम
७१-विधिमवमुखसुरसंस्तुत	राम

७२-संस्थित-दशरथ-वीक्षित	राम
७३-सीता-दर्शन-मोदित	राम
७४-अभिषिक्त-विभीषण-नत	राम
७५-पुष्पक-याना-रोहण	राम
७६-भरद्वाजाभिनिषेवण	राम
७७-भरत-प्राण-प्रियकर	राम
७८-साकेत-पुरि-भूषण	राम
७९-सकल-स्वीय-समानत	राम
८०-रत्न-लसत्पीठास्थित	राम
८१-पट्टाभिषेकालंकृत	राम
८२-पार्थिवकुल-सम्मानित	राम
८३-विभीषणार्पितरंगक	राम
८४-कीशकुलानुग्रहकर	राम
८५-सकल-जीव-संरक्षक	राम
८६-समस्तलोकाधारक	राम
उत्तरकाण्डम्	
८७-आगत-मुनिगण-संस्तुत	राम
८८-विश्रुतदश-कण्ठोद्भव	राम
८९-सीतालङ्कननिर्बुत	राम
९०-नीति-सुरक्षित-जनपद	राम
९१-विपिनत्याजित-जनकज	राम
९२-कारित-लवणासुर-वध	राम
९३-स्वर्गत-शम्भुक-संस्तुत	राम
९४-स्वतनय-कुशलवन-नन्दित	राम
९५-अश्वमेध-क्रतु-दीक्षित	राम
९६-कालावेदित-सुरपद	राम
९७-आयोध्यक-जन-मुक्तिद	राम
९८-विधिमुख-विबुधानन्दक	राम
९९-तेजोमय-निजरूपक	राम
१००-संस्तुति-बन्ध-विमोचक	राम
१०१-धर्मस्थापन-तत्पर	राम
१०२-भक्तिपरायण-मुक्तिद	राम
१०३-सर्वचराचर-पालक	राम
१०४-सर्वभवास्य-धारक	राम
१०५-त्रैकुण्डालय-संस्थित	राम
१०६-नित्यानन्द-पदस्थित	राम
१०७-राम राम जय राजा	राम
१०८-राम राम जय सीता	राम

कल्याण



सदाप्रसन्न राम ।

प्रसन्नतां या न गतामिषेकतस्तथा न मन्त्रे वनवास दुःखतः ।

मुखाभ्युज्ज्वलीरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलम्बुलप्रदा ॥





## संक्षिप्त रामचरित माला

### बालकाण्डम्

- १-ध्रीमद्वि-कुल-दीपक। राम
- २-भितजन-कल्पक-सीता-राम
- ३-राक्षस-कुल-बल-शिक्षक राम
- ४-भकावन-सुविचक्षण राम
- ५-मायातीत-गुणाञ्जित राम
- ६-सत्त्वैकगुणाधिष्ठित राम
- ७-यक्षेभ्यश्चरित-पूजित राम
- ८-कर-धृत-धर्मविराजित राम
- ९-नर-सुरवर-दत्ताभय राम
- १०-वाचातीत-गुणोज्ज्वल राम
- ११-धृत-मानवरूपाञ्जित राम
- १२-जन-विधि-शङ्कर-माधव राम
- १३-कौसल्यावर-नन्दन राम
- १४-दशरथतोषण-कारण राम
- १५-कौशिकल-धाविलशर राम
- १६-घोरासुरयोपान्तक राम
- १७-विश्वामित्र-सहायक राम
- १८-मार्गेचस्मयवारक राम
- १९-चैतन्यद-पटु-पद-नम्र राम
- २०-गौतम-हृदयानन्दन राम
- २१-जनक-तपःफल-रूपक राम
- २२-खण्डिन-भर्ग-शरासन राम
- २३-क्षोणी-तनया-संगत राम
- २४-निर्जित-भार्गव-कुलमगिराम
- २५-साकेतपुरी-भूषण राम
- २६-सीता-हृत्पञ्जर-शुक राम

### अयोध्याकाण्डम्

- २७-कैकय-तनया-वञ्जित राम
- २८-पित्राज्ञा-परिपालक राम
- २९-सीता-लक्ष्मण-सेवित राम
- ३०-धृत-तापस-वेषाञ्जित राम
- ३१-परम-सुहृद्-गुह-पूजित राम
- ३२-भारद्वाज-मुदावह राम
- ३३-चित्रकूटतट-निवसित राम
- ३४-कैकेयीतनयार्थित राम
- ३५-अचलसमीकृत-पातुक राम
- ३६-कृत-पैतृक-मख-राघव राम

३६

### अरण्यकाण्डम्

- ३७-भीषण-कानन-विहरण राम
- ३८-कर-विराघ-विदारक राम
- ३९-मुनि-जनगण-दत्ताभय राम
- ४०-राकाचन्द्र-निभानन राम
- ४१-दिव्य-महामुनि-संनुत राम
- ४२-कुम्भज-दत्त-महायुध राम
- ४३-पुण्य-सुतीक्ष्णाभ्यर्चित राम
- ४४-परिचित-गृध्रकुलाधिप राम
- ४५-पञ्चवटीतट-संस्थित राम
- ४६-हृत-शूर्पणखा-नासिक राम
- ४७-हृत-क्षरदूषण-दानव राम
- ४८-माया-हरिणोद्धञ्जित राम
- ४९-शरित-मारीचासुर राम
- ५०-दैत्येश्वर-हृत-भूसुत राम
- ५१-दारास्वेषण-तत्पर राम
- ५२-गृध्राधिप-संबोधित राम
- ५३-गन्धक-बन्धोन्मथक राम
- ५४-शबरी-दत्त-फलाशन राम
- ५५-पंपालोकन-दुःखित राम
- ५६-पवनात्मज-संपूजित राम

### किष्किन्धाकाण्डम्

- ५७-रविज-निवेदित-निज-कथराम
- ५८-प्राप्तावनिजा-भूषण राम
- ५९-लीलोत्क्षिप्ता-सुरतनु राम
- ६०-खण्डित-सप्त-महीरुह राम
- ६१-एकाशुगनि-हृतेन्द्रज राम
- ६२-अभियुक्ताकर्तनूभव राम
- ६३-गिरिधर्यन्तर-संस्थित राम
- ६४-वानर-सेना-परिवृत राम
- ६५-सीतालोकन-तत्पर राम
- ६६-प्रेमित-वानर-नायक राम
- ६७-गृध्र-सुबोधित-वानर राम

### सुन्दरकाण्डम्

- ६८-जलनिधि-लङ्कनपटु-भट्टराम
- ६९-लङ्कान्तक-समुपासित राम
- ७०-सीतानन्दकरार्चित राम
- ७१-मारुतसुत-दत्तोर्मिक राम

- ७२-विश्रावित-निजनामक राम
- ७३-दूषित-रावण-विक्रम राम
- ७४-भस्मीकृत-लङ्कापुर राम
- ७५-प्राप्त-सती-चूडामणि राम
- ७६-जलनिधि-ब्रेला-वासक राम

### युद्धकाण्डम्

- ७७-शरणाक्रान्त-विभीषण राम
- ७८-शयनीकृत-दर्भोत्कर राम
- ७९-जलनिधि-गर्भ-निवारक राम
- ८०-वारिधि-बन्धन-कौशल राम
- ८१-चिक्रोटक-परितोषक राम
- ८२-विपुल-सुवेलाचलगत राम
- ८३-अहिपाशोत्कर-पीडित राम
- ८४-खण्डिन-फणि-शर-बन्धनराम
- ८५-घटकणासुर-विदलन राम
- ८६-नाशित-मूल-बलोत्कर राम
- ८७-रावण-कण्ठ-विलुण्ठक राम
- ८८-अभियुक्ताहित-सोदर राम
- ८९-सीतालोकन-कौतुक राम
- ९०-शुचि-परिशोधित-सीताराम
- ९१-ब्रह्म-न्द्रादि-समीडित राम
- ९२-दशरथ-दर्शन-भोदित राम
- ९३-मृत-वानर-संजीवक राम
- ९४-पुष्पक-यानाधिष्ठित राम
- ९५-प्रकटित-पाप-विमोचक राम
- ९६-विरचित-पशुपति-पूजनराम
- ९७-भारद्वाजाचितपद राम
- ९८-भरतोत्कण्ठा-पूरक राम
- ९९-जनयित्री-हर्षप्रद राम
- १००-नरवानर-द्वितीयावृत राम
- १०१-अभियुक्तीत्सव-हर्षित राम
- १०२-करुणामुद्रितवीक्षण राम

### उत्तरकाण्डम्

- १०३-संजीवित-विप्रार्थक राम
- १०४-स्मरणैक-सु-तुष्टात्मक राम
- १०५-अपवाद-भयैकार्दित राम
- १०६-आजड-भोक्षप्रद-पटु राम
- १०७-एक-शिलानगरालय राम
- १०८-योगीन्द्रेणसुपूजित राम

## राज्य

( लेखक—भीमैबिलीरारणजी गुप्त )

कहा वैदेहीने—“हे नाथ,  
अभी तक चारों भाई साथ  
भोगते थे तुम सम-सुख-भोग,  
व्यवस्था भेंट रही वह योग।

मित्र-सा करके, तुमको आज,  
राज्य देते हैं कोसलराज।  
तुम्हें रुचता है यह अधिकार?”  
“प्रिये, पर राज्य भोग या भार!

बड़ेके लिए बड़ा ही दण्ड,  
प्रजाकी थाती सदा असण्ड।  
तदपि निश्चिन्त रहो तुम नित्य,  
यहाँ साहित्य नहीं, साहित्य।

रहेगा साधु भरतका मन्त्र,  
यशस्वी लक्ष्मणका बल-तन्त्र।  
तुम्हारे लघु दैवरका धाम,  
मातृ शायित्व-हेतु है राम।”

“नाथ, यह राज-विधान पुनीत,  
किन्तु लघु दैवरकी ही जीत!  
हुआ जिनके अधीन नृप-नोह-  
सचिव-सेनापति युत सस्नेह!!”

## विवाहके समय सीताकी अवस्था

( लेखक—पण्डित श्रीराजेन्द्रनाथ बिद्याभूषण )

१—यह जानेके समय अयोध्यामें रहकर सास-ससुरकी सेवा करने और राजा भरतकी आज्ञामें रहनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी जब सीताको समझा रहे थे तब सीताने रामकी इन बातोंपर कुछ भी ध्यान न दे उनसे स्पष्ट कहा था कि स्वामीके प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है इस बातको पहचाने ही मैं खूब जानती हूँ। आपके साथ मुझे किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, कैसे बर्तना चाहिये—इस बातकी शिक्षा मुझे अपने माता-पितासे पर्याप्त मिल चुकी है॥

२—श्रीराम जब किसी प्रकार भी सीताको साथ ले जानेके लिये राखी नहीं हुए तब सीताने और भी जोरसे कहा कि मैं अपने नैहरमें ब्राह्मणोंके द्वारा इस बातको पहचाने ही सुन चुकी हूँ कि मेरे भान्जमें वनवास खिला है। जिस दिन मैंने उन सब विद्वानोंसे यह बात सुनी थी उसी दिनसे

मेरा भी मन वनवासके लिये उत्साहित हो रहा है।†

उपर्युक्त दोनों अवसरकोंमेंसे एकसे यह पता लगता है कि विवाहसे पूर्व ही सीताके माता-पिताने उसको पक्षीका कर्त्तव्य भलीभाँति सिखा दिया था और दूसरेमें विवाहके पूर्व ही उद्योगियोंके द्वारा सीता अपने भान्जमें वनवास होना सुन चुकी थी। वनवास अवश्य होगा इसके लिये सीताने अपने मनको भलीभाँति तैयार कर रक्खा था। विवाहके बाद न तो सीता कभी नैहर गयी और न सीताको पाखनेवाली माता ही अयोध्या आयी। अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सीताको माता-पिताके द्वारा पक्षीके कर्त्तव्यकी शिक्षा नैहरमें ही मिल चुकी थी।

† ‘अथापि च महाप्राक् ब्राह्मणानां मया श्रुतम् ।

पुत्रा पितृगृहे सत्यं वसन्त्यं किल मे वने ॥

लघुनेभ्यो द्वितीयेभ्यः भुत्वाहं वननं गृहे ।

वनवासकृतोत्साहो नित्यमेव महाबल ॥’

\* ‘अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।

मास्ति संप्रति वक्तव्यो वर्तितव्यं यथा मया ॥’

( बा० २। २७। १० )

( बा० २। २९। ८-९ )

ज्योतिषियोंके द्वारा वनवास-सम्बन्धी भविष्यवाणी भी विवाहके पहले ही हुई थी। 'पुरा पितृगृहे' की उक्ति ही स्पष्ट प्रमाण है। जब रामायणकी कुछ और उक्तियाँ देखिये—

१—राम लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्रजी जनकपुरीमें पहुँचे, उस समय दोनों आहूतोंके अनुपम रूप-जादूय और यौवनसे दहसित, सुसंगठित शरीरको देखकर जनकने आश्चर्यके साथ मुनिसे पूछा—'हे मुनिवर ! ये दोनों नवयुवक कुमार—जिनकी बाह हाथी और सिंहके समान, जिनका बल देवताओंके समान और जिनका रूप अरिबनीकुमारके सदृश है—किसके सुपुत्र हैं ?

यहाँ राजा जनक और राम-लक्ष्मणको 'समुपस्थित यौवन' अर्थात् नवयुवक कहते हैं, सुतरां विवाहके समय इन दोनों आहूतोंके बल और शारीरिक बलका भी यथेष्ट पता लग जाता है। जनककी यह उक्ति धनुष-भङ्गके पूर्वकी ही है।

४—यज्ञमें विघ्न करनेवाले रावणके अनुचर भारीच और सुबाहु नामक कठोर राक्षसोंका बध करनेके लिये जब विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणको लेने दशरथके यहाँ आते हैं, तो रावणके नामसे ही भयभीत होकर दशरथ कहते हैं—'मेरे इस कमलनयन रामकी अवस्था अभी केवल पन्द्रह वर्षकी ही है, इस उम्रमें यह राक्षसोंके साथ कैसे युद्ध करेंगे ?' इस प्रसङ्गसे यह पता लगता है कि इस समय रामकी अवस्था पन्द्रह वर्षकी थी। अनेक जगह धूमने और राक्षसोंसे युद्ध करनेके बाद श्रीराम जनकपुरमें आते हैं और शिव धनुषको तोड़कर जब जानकीका पाणिग्रहण करते हैं, तब राम-लक्ष्मण अबरध ही यौवन-संगण हैं।

५—विश्वामित्र जनकसे कहते हैं कि 'ये दोनों राजकुमार आपके यहाँ सुप्रसिद्ध धनुषको देखना चाहते हैं। इसके उत्तरमें जनकजी बहुत-सी बातें कहनेके बाद धनुषकी प्राप्ति,

सीताकी उत्पत्ति, सीताके व्याहके लिये धनुष-भंगका प्रयत्न प्रभृति अनेक प्रकारकी चर्चा करते हुए कहते हैं 'इसप्रकार जब मेरी अयोनिजा कन्या सीता 'बर्द्धमाना' प्राप्तयौवना हुई तब बहुत-से राजा इसका पाणिग्रहण करनेकी आशासे आये, पर सबको असफल होना पड़ा। कारण, शिव-धनुषको कोई भी उठा नहीं सका।'

मूल श्लोकमें 'बर्द्धमाना' शब्द है, टीकाकारोंमेंसे किसीने इसका अर्थ 'यौवनसम्पन्ना' किया है तो किसीने 'प्राप्तयौवना'। इससे यह पता लगता है कि विवाहसे पूर्व सीता 'रीरमें यौवनका सूत्रपात हो गया था। अतएव 'समुपस्थित यौवन' रामके साथ जब सीताका विवाह हुआ तब वह भी 'बर्द्धमाना' अर्थात् 'प्राप्तयौवना' थी।

६—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके साथ क्रमसे सीता, उर्मिला, माण्डवी और कुतिलीतिंका विवाह हो गया। महाराज दशरथ पुत्र और पुत्र-वधुओंके साथ अयोध्या छौट आये। राजमहलोंमें महोत्सव हो रहा है। अनेक प्रकारके की-आचार, मांगलिक कार्योंके बाद सीता आदि चारों बहिनें अपने-अपने पतिवर्गोंके साथ निर्जनमें मुदित मनसे आमोद-प्रमोद करती हैं।

मूल श्लोकमें 'रेमिरे' शब्द है, इसका अर्थ रमण करना होता है। इससे सीता आदि चारों बहिनोंकी अवस्थाका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। राम-लक्ष्मण तो 'प्राप्तयौवन' थे ही, यह बात जनकजी कह ही चुके हैं।

७—वनवासके समय अत्रिके आश्रममें अनसूयाजीके साथ सीताकी पातिव्रत-धर्मकी बातें हो रही थीं, तब सीताजी कहती हैं कि—'विवाहके समय मेरी माताने अग्निके सम्मुख मुझको जो उपदेश दिया था, उसे मैं किञ्चित् भूली नहीं हूँ। उन

१ 'पुनस्तं परिपश्यन् प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः ।

इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥

गजसिंहगतौ वीरौ शार्ङ्ग-वृषभोपमौ ।

अश्विनाविष रूपेण समुपस्थित यौवनौ ॥

.....कस्य पुत्री महामुने ! ॥

( बा० १ । ५० । १७-१९ )

२ 'जन-पोदशर्वो मे रामो राजीवलोचनः ।

न युद्ध योग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥'

( बा० १ । २० । १२ )

३ 'भूतलादुत्थितां तां तु बर्द्धमानां ममात्मजाम् ।

वरयामासुरानय राजानो मुनिपुङ्गव !

तेषां जिज्ञासमानानां शैबं धनुस्पाहतम् ।

न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा ॥

प्रत्याख्याता नृपतयः × × × '

( बा० १ । ६६ । १५, १८, १९, २० )

४ 'अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ।

रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिः सहिता रहः ॥'

( बा० १ । ७७ । १३-१४ )

उपदेशोंको मैंने अपने हृदयमें रख छोड़ा है, माताने कहा था कि स्त्रीके लिये पति-सेवासे बढ़कर और कोई भी तप नहीं है।'

पतिके प्रति पत्नीका क्या कर्तव्य है, इसके सम्बन्धमें सीताकी माताने उसे विवाहके समय अग्निके सामने उपदेश दिया था। अतएव यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उस समय सीताजीकी उम्र इसप्रकारका उपदेश ग्रहण करने-योग्य अवस्था हो गयी थी।

८- बातों-ही-बातोंमें सीताने भनसूयासे कहा कि 'पिताने जब मेरी 'पति-संयोग-सुलभ' अवस्था देखी तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। जैसे दुरिद्रको जन-नाश होनेपर विवाद होता है मेरे पिताको भी वैसा ही हुआ।'

इस प्रसङ्गमें 'पति-संयोग सुलभ' शब्द आता है, किसी-किसी टीकाकारने इस पदकी व्याख्यामें 'विवाह-योग्य-वयस्य' लिखकर अपना पिण्ड बुझाया है किन्तु सीताने इसके बाद जो कुछ कहा है उससे यह पता लगता है कि सीताके लिये कन्या-दाय-पीडित जनकजी अपनेको बहुत ही दुखी और अपमानित समझते थे। सीता मानो उस समय अत्यन्त अरुणणीया सी हो गयी थी।

यहाँपर 'पति-संयोग-सुलभ' पदका यथार्थ अर्थ करनेके लिये रामायणका ही आश्रय लेना होगा। 'रेमिरेः' रहा- 'ने पतिपत्नीके साथ निर्जनमें आमोद-प्रमोद करने लगीं' यह प्रसंग विवाहके ठीक बादका है और विवाहके पूर्वकी अवस्था 'पति-संयोग-सुलभ' थी, जिसको देखकर पिताके चिन्ताकी सीसा नहीं रही। अतएव इसका अर्थ सहज ही यह होता है कि, 'वर्द्धमाना' पत्नीके साथ 'प्राप्तयौवन' पतिका मिलाप हुआ।

इस तरह 'प्राप्तयौवन' राम जब 'वर्द्धमाना' सीताके साथ विवाह करते हैं, उस समय उनकी अवस्था प्रायः सोलह वर्षकी है। परन्तु सीताजीकी क्या अवस्था है ?

१ पाणिप्रदानकाले च सप्तपुरा त्वग्निसन्निधौ।

अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥'

'पतिस्तु ब्रूयणास्त्रायान्तपो नान्वदिधीयते ॥

(वा० २।११।८-९)

२ 'पतिसंयोगसुलभं' वयोऽवैद्य पिता मय।

चिन्तामभ्यगमहीनो चिन्तानाश्यादिवाचनः ॥

(वा० २।११।३४)

उपयुक्त भाषां स्थलोंका सरल सीधा अर्थ करनेसे तो यही प्रतीत होता है कि विवाहके समय सीताकी अवस्था रामसे सम्भवतः दो एक वर्ष छोटी होगी। ऐसा नहीं मानते हैं तो रामायणके उपयुक्त स्थलोंकी व्याख्या करना कठिन हो जाता है। यह तो हुई विवाहके समय सीताके उम्रकी बात, किन्तु रामायणमें ही दूसरे स्थलपर सीता अपने ही मुँहसे अपनी उम्र कुछ और ही बतलाती है, उसे माननेपर यह स्वीकार करना पड़ता है कि विवाहके समय वह छः वर्षकी दुधभुँही बच्ची थी।

परिभाषकके रूपमें जब रावण सीताका हरण करने आता है तब सीता संसार-त्यागी ब्राह्मण अतिथि, बात न करनेसे शायद क्रुद्ध होकर शाप दे देगा, इस आशङ्कासे अपना परिचय देती हुई कहती है कि 'मैं मिथिलाधिपति जनकजी कन्या, श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी सीता हूँ। मैंने बारह वर्षतक इक्ष्वाकु-वंशी श्रीरामके घरमें निवासकर मनुष्यके उपयुक्त सभी सुख भोग लिये हैं, अब मेरे कोई भी वासना शेष नहीं है। मेरे महातेजस्वी स्वामी रामकी अवस्था उस समय पचीस वर्षकी और मेरी अठारहकी थी।'

बारह वर्षतक ससुरालमें रहनेके बाद तेरहवें वर्षके लगते ही रामके राज्याभिषेकका प्रस्ताव हुआ और तब राम मुक्तको और लक्ष्मणको साथ लेकर वनमें आ गये। (वा० ४।४७।५-७)'

इस बयानसे यही पता लगता है कि जब सीता वनमें आयी थी उस समय उसकी उम्र अठारह वर्षकी थी, विवाहके बाद बारह वर्ष वह ससुरालमें रही, तब बच रहते हैं छः वर्ष। पर क्या सीताका विवाह छः वर्षकी उम्रमें हुआ था ? क्या छः वर्षकी अशोध बालिकाको विवाहके समय माँ-बापने पत्नीके कर्तव्यका उपदेश दिया था और उस उपदेशमालाको सीताने अपने हृदयमें रूँप रखा था ? क्या इस छः वर्षकी शिशु बालिकाको ही

१-माक्षणश्चातिथिश्चैव अनुत्तो दि शपेत मीम्।

इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत् ॥

दुहिता जनकस्याहं मेथिल्यस्य महात्मनः।

सीता नामास्मि भद्रे ने रामस्य महिषीप्रिया ॥

उपित्वा द्वाद्रश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।

भुजाना मानुषान् योगान् सर्वकामसमृद्धिनी ॥

मम मर्त्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।

अष्टादशहि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ॥

(वा० २।४७।२, ३, ४, १०)

‘बर्द्धमाना’ या ‘प्रासयौवना’ मानकर राजर्षि जनक विवाहकी चिन्तासे व्याकुल हो अपने चारों ओर रँधेरा देखने लगे थे ? क्या छः वर्षकी लड़कीके लियेही उसका ‘पति-संयोग-सुलभ’ समय समझकर पिता सीरध्वज उसके विवाहके लिये व्याकुल हो उठे थे ? और फिर क्या वही अबोध बालिकाएँ ससुराल पहुँचकर अपने-अपने पतियोंके साथ निर्जनमें आमोद-प्रमोद करने लगी थीं । इन सबका क्या उत्तर है ?

एक विवाद और है । रामने सोलह वर्षकी ‘प्रास-यौवन’ अवस्थामें सीतासे विवाह किया । यह बात ऊपर कही जा चुकी है, इसके बाद जब राम बन जाते हैं तो सीता उनकी उम्र पचीस वर्ष बतलाती है । यह शब्द भी रामायणके ही हैं । किसी किसी ग्रन्थमें रावणके प्रति कहे हुए सीताके शब्दोंमें ‘भर्ता महतेजा वयसा पञ्चविंशकः’ की जगह ‘सप्तविंशकः’ पाठान्तर है । बन-गमनके समय कौसल्याने रोते-रोते रामसे कहा है ‘हे रघुनन्दन, दसवें वर्षमें तुम्हारा उपनयन हुआ था, सबसे मैंने सतरह वर्ष इसी आशामें बिताये थे ।’ इससे भी रामकी अवस्था उम्र समय पूरे सत्ताईस वर्षकी सिद्ध होती है ।

इस वर्णनसे पाठक कुछ अनुमान कर सकेंगे कि विवाहके समय सीताकी अवस्था कितनी थी ? उपर्युक्त स्थलोंके अतिरिक्त रामायणमें छोटी-मोटी ऐसी कई बातें और मिलती हैं जिनसे यह भलीभाँति प्रमायित होता है कि अथर्वी तरह ज्ञान-यौवन-सम्पन्ना होनेपर ही सीताका विवाह हुआ था । अन्य रामायणोंमें देखिये—

अध्यात्मरामायणके आदिकाण्डके बृठे अध्यायमें कहा है कि मिथिलाकी राजसभामें श्रीरामचन्द्रने हैंसते हुए शिव-धनुषको तोड़ डाला । राजा जनक और सारा रत्नबास आनन्दमें विह्वल हो गया । सीता सोनेकी माला हाथमें लिये मुस्कराती हुई धीरे-धीरे रामके समीप आयी और रामके गलेमें माला पहनाकर मानो वह एकदम प्रेमसागरमें डूब गयीं । मूल वर्णनका समस्कार देखिये—

सीता स्वर्णमयीं मालां गृहीत्वा दक्षिणं करे ।  
स्मितवक्त्रा स्वर्णवर्णा सर्नाभरणभूषिता ॥  
मुकाहारैः कर्णपत्रैः कण्ठकलितनूपुराः ।  
दुकूलपरिसंवीता वस्त्रान्तरभ्यजितस्तनी ॥  
रामस्योपरि निक्षिप्य स्मयमाना मुदं वनौ ।

वहाँ ‘स्मितवक्त्रा’ और ‘स्मयमाना मुदं वनौ’ इन दोनों विशेषणोंसे सीताकी विवाह-कालीन अवस्थाका प्रतीत आभास मिलता है । छः वर्षकी बालिकाके लिये ऐसी

उक्तिर्माँ कभी नहीं कही जा सकती । फिर यदि इनको भी जोड़ दिया जाय अथवा कानूनके दायपेंचसे इनका दूसरा अर्थ करनेकी व्यर्थ चेष्टा की जाय तो ‘वस्त्रान्तरभ्यजितस्तनी’ विशेषणके द्वारा तो सभीको यह मानना होगा कि विवाहके समय सीता ‘प्रासयौवना’ थी और उसकी अवस्था वाल्मीकि-रामायणके अनुसार अवश्य ही ‘पति-संयोग-सुलभ’ हो चुकी थी, इस प्रसंगको पढ़कर कोई भी संस्कृतका विद्वान यह नहीं कह सकता कि उस समय सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी ।

और देखिये, श्रीराम प्रभृति चारों भाई अपनी अपनी पत्नियोंके साथ अयोध्या लौट आये । राजमहलमें बड़ी भूमधाम है । सबके साथ मिलने-जुलनेके बाद ‘देवप्रतिम राम-जन्मस्थ-भरत-शत्रुघ्न अपने-अपने महलोंमें अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आमोद-प्रमोद करने लगे । जैसे वैकुण्ठमें लक्ष्मीके साथ विष्णुका समय सुखसे बीतता है वैसे ही माता-पिताके आदरसे श्रीरामसीताका समय भी बड़े आनन्दसे बीतने लगा ।’ अध्यात्मरामायणमें व्यासजीकी यह उक्ति वाल्मीकिजीकी उक्तिसे बिहकुल मिलती-जुलती है हाँ, अध्यात्मरामायणमें सीताको विवाहसे पूर्व ही ‘वस्त्रान्तरभ्यजितस्तनी’ बतलाया गया है अतएव वहाँ ‘रेमिरे’ शब्दका अर्थ खेल-कूद करके सीताको जबरदस्ती छः वर्षके बना देनेकी कोई गुश्माइरा ही नहीं रही । वाल्मीकिरामायणमें अवश्यही ऐसा कोई विशेषण नहीं दिया गया है, तथापि ‘रेमिरे मुदिता रहः’ एवं ‘पति संयोग-सुलभं वयः’ इन सब उक्तिव्योंसे सीताका वय यौवनोद्भूतित ही सिद्ध होता है ।

कल्कि-पुराण तृतीयांशके तीसरे अध्यायमें लिखा है कि मिथिलाके स्वयंवर-समारोहमें जब भगवान् श्रीरामचन्द्र धनुष तोड़नेको खड़े हुए, तब जनकने उनके प्रति आदर दिखलाया और जानकीनेभी आँखोंसे उनकी पूजा की—

स भूप परिपूजितो जनकजैक्षितैरर्चितः ।

करालकठिनं धनुः करसरोरुहं सहितम् ॥

वहाँ यह देखा जाता है कि रामका उत्साह बढ़ानेके लिये सीताने कटाक्ष-पात किया, इससे सीताकी उन्नका पूरा पता न लगनेपर भी यह तो समझा ही जा सकता है

१ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसम्मिताः ।

स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्व-स्व-मन्दिरे ॥

मातृपितृभ्यां संहृष्टौ रामः सीतासमन्विताः ।

रेमे वैकुण्ठभवने भ्रिया सह यथा हरिः ॥

(अ० रामायण १।७।५२-५४)

कि उस समय उसकी उम्र छः वर्षकी कदापि नहीं थी। छः वर्षकी दुधमुँही बच्ची भावी प्रियतमके प्रति कटाक्ष करे, यह किसी भी नियमसे अनुमोदित नहीं है।

देवीभागवत तीसरे स्कन्धके अठारहवें अध्यायमें कहा है—‘जब बत्तीके मेचमें रावण सीताको हरनेके लिये आया, तब सीताके पूछनेपर उसने कहा कि ‘मैं बाल्यमें बत्ती नहीं, मैं लंका रावण हूँ, तुम्हारे लिये मैंने यह वेध धारण किया है, तुम मुझे बरण करो, मैंने तुम्हारे पितासे पहले भी तुमको माँगा था परन्तु शिव-धनुष-भङ्गकी बात सुनकर मैं रुद्र-चापके भयसे स्वयंवरमें नहीं गया, उसी समयसे मेरा मन तुममें लगा है और मैं तुम्हारे लिये विरहातुर हो रहा हूँ। आज तुम्हारा यहाँ बनमें रहना जानकर पूर्वानुरागसे प्रेरित हो तुम्हारे समीप आया हूँ, तुम मेरे परिभ्रमको सफल करो।’

छः वर्षकी कन्याको देखकर लङ्केश्वर रावणका मोहित हो जाना और उसके लिये विरहातुर होना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता।

उपपुराण पातालखण्डके २१ वें अध्यायमें एक बच्चा ही कौतूहल-पूर्ण उपाख्यान है। एक दिन मिथिलाके बगीचेमें सखियोंके साथ घूमती हुई सीताने पेड़पर बैठे हुए शुक-वृषतिकी मीठी बातें सुनी। शुक और शुक रामायणके सम्बन्धमें ही बातचीत कर रहे थे। वे कुछ समय तक वाक्मीकिके तपोवनमें थे और वहाँ उन्होंने भावी रामायणका गान सुना था। आज वे उसी गानके सम्बन्धमें परस्पर आनन्दसे बातचीत कर रहे थे। कुछ समयतक चुपचाप सुनते रहनेपर सीताने यह समझा कि शुकमिथुन जिस सीताका नाम ले रहे हैं वह मैं ही हूँ और मिथिलामें श्रीरामके द्वारा धनुष-भङ्गकी कथा भी मेरे ही विवाह-सम्बन्धी है। तदनन्तर सीताने सखियोंके द्वारा बड़ी बालाकीसे

उन दोनोंको पकड़ा लिया और वह उनसे रामके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें पूछने लगी। सीताके द्वारा राम-सम्बन्धी प्रश्नोंको सुनकर पक्षियोंने सन्देहमें भर सीतासे पूछा—

त्वं का वा किं सु-नामात्र तव सुन्दरी यत्तु माम्।

परिपृच्छसि वैदग्ध्याद् रामकर्तनमादरात्॥

‘हे सुन्दरी ! तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है ? जो तुम बड़े ही आदर और चातुर्यके साथ बारबार श्रीरामके सम्बन्धमें पूछ रही हो ? तुम जानकी तो नहीं हो ? सीताने कहा—

या त्वया जानकी प्रोक्त साऽहं जनकपुत्रिका।

स रामो माम् यदागत्य प्राप्स्यते सुमनोहरः॥

तदा वां मोक्षयाम्यद्वा नान्यथा वाक्यमोहिता।

लीलया च सुखेनास्तां मदगृहे मधुरादकी।

‘तुम जिस जानकीकी बात कहते हो, वह जनकनन्दिनी जानकी मैं ही हूँ। जब मनोहर मूर्ति राम पधारकर मुझे ग्रहण करेंगे।’ तब मैं तुम लोगोंको छोड़ दूँगी, तुम लोगोंने मीठी बाणी सुनाकर मुझे प्रसन्नित कर दिया है। इस बीचमें तुम मेरे यहाँ रहकर सुखसे लाओ-खेओ।’

यदि सीताका विवाह छः वर्षकी उम्रमें हुआ था तो उपयुक्त घटना तो उससे बहुत पहले की बाणी तीन चार वर्षकी उम्रमें होनी चाहिये। परन्तु क्या इस अवस्थामें कोई लड़की ‘वैदग्ध्याद्’ और ‘आदरात्’ (पाण्डित्य और समादरके साथ) भावी पतिके सम्बन्धमें कुछ पूछ सकती है ? इसप्रकार संस्कृत साहित्यके सर्वप्रधान महाकाव्य आदि-कविकृत रामायण, पुराण, उपपुराण और इतिहासोंमें सीताकी विवाहकालीन अवस्थाके विषयमें बहुतसे प्रमाण मिलते हैं। इन सब प्रमाणोंकी पर्यालोचना करनेपर किसी तरह भी यह नहीं माना जा सकता कि विवाहके भ्रमसर-पर सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी।

रही सीताकी उस उम्रकी बात, जो उसने रावणके प्रति कही है कि विवाहके बाद बारह वर्षतक मैं ससुरारामें रही। वयमें जाई तब मेरी उम्र अठारह वर्षकी थी। इस उम्रके अनुसार विवाहके समय सीताकी उम्र छः वर्षकी माननी पड़ती है, परन्तु ऐसा माननेसे उपयुक्त उद्धृत श्लोकोंके साथ कुछ भी मेल नहीं लाता, अतएव यहाँ पाठक स्वयं विचार करके निश्चय करें कि रामायणके इन परस्परविरोधी स्थलोंमें कौनसा प्राण और कौनसा त्याग्य है !

१ लङ्केशोर्ध्वं मरालाक्ष ! × × ॥

त्वत्कृते तु कृतं कृतं मयेरधं शोभनाकृते ! ॥

× × × × ×

पिता ते याचितः पूर्वं मया वै त्वत्कृतेऽवले ।

जनको भगुवाचैव पणवन्तो मया कृतः ॥

रुद्र-चाप म्बाज्जं सम्प्राप्त्यु स्वयंवरे ।

मनो मे संस्मितां तावज्जिमघं विरहातुरम् ॥

वनेऽन संस्मितां मुत्वा पूर्वानुरागमोहितः ।

आगतोऽस्म्यमितापाङ्गि ! सफलं कुरु मे प्रमम् ॥

( ५३।५७-५९ )

## श्रीरामचरितमानस-पात्र-परिचय

( लेखक—भीष्मालाप्रसादजी कानोडिया )

**अकम्पन**—रावणका मामा और उसका सेनापति था, ब्रह्माके युद्धमें महावीर हनुमान्जीद्वारा मारा गया था। इसके प्रहस्त और भूजाएँ जो भाई थे, पिताका नाम सुमात्री और माताका नाम केसुमात्री था। दो बहनें थीं—रावणकी माता केकसी और दूसरी कुम्भीनसी।

**अगस्त्य**—महर्षि मित्रावच्यके पुत्र थे, इनका पहला नाम मान था। विष्णुपर्वतके अहङ्कारको नष्ट करनेके कारण इनका नाम अगस्त्य पड़ा। महर्षि बरुच आक्षिप्तके वशमें एक बार निमन्त्रित होकर गये थे, वहाँ उर्वशीको देखकर उनका रेतःपात हो गया था, उस रेतका जो भाग कुम्भमें पड़ा, उससे इनकी उत्पत्ति हुई, इसीलिये इन्हें कुम्भज भी कहते हैं। वृत्रासुरके मरनेके पश्चात् काँड़केबादि राक्षस समुद्रमें जा छिपे और वहाँसे निकलकर मुनियोंको भ्रातृ देने लगे। इन्होंने देवताओंके आग्रहसे समुद्र पानकर उन राक्षसोंका नाश करा दिया था। आपने ही राजा नहुषको शाप देकर इन्द्रत्वसे श्रुत करके सर्प-योनिमें भेज दिया था। इनकी पतिव्रता पत्नीका नाम जोषामुद्रा था। भगवान् राम वनवासके समय इनके आश्रममें गये थे।

**अङ्गद**—वानरराज बालिके पुत्र थे। श्रीरामचन्द्रजीने बालिको मारकर सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठाया और अङ्गदको युवराज बनाया था। अङ्गदकी माताका नाम तारा था। आप रामचन्द्रजीके वृत्त बनकर रावणकी सभामें गये थे और वहाँ अपना पद रोपा था, जिसे कोई नहीं हटा सका था। सुग्रीवकी सेनाके साथ लड़ामें जाकर, इन्होंने अपनी वीरताका परिचय दिया था। एक दिन युद्धमें अङ्गदने इन्द्रजीतको भी हराया था।

**अज**—अयोध्याके सूर्यवंशी राजा रघुके पुत्र थे। विदर्भ राजकी कन्या हनुमतीने स्वयंवर-प्रथाके अनुसार अजको अपना पति बनाया था। विवाहोपरान्त जब हनुमतीको लेकर वे जा रहे थे तो राहमें स्वयंवरमें बिकलमनोरथ राजाओंने बलपूर्वक हनुमतीको धीनना चाहा। युद्ध होने लगा और अन्तमें सबको सम्मोहन-मन्त्रसे अचेतकर आप हनुमतीको लेकर अयोध्या गये।

**अक्षयकुमार**—मन्वोदरीके गर्भसे रावणका पुत्र था। यह मेघनादसे छोटा था। श्रीसीताजीके खोजनेके लिये जब हनुमान्जी जङ्गा गये थे और रावणके प्रमोद-वनका नाश करना प्रारम्भ किया था, उसी अवसरपर रावणने अक्षयकुमारको हनुमान्को पकड़नेके लिये भेजा था। वहीं यह हनुमान्जीके द्वारा मारा गया था।

**अञ्जनी**—केसरी वानरराजकी पत्नी थी। इसीके गर्भसे श्रीहनुमान्जीका जन्म हुआ था। पूर्व जन्ममें यह पञ्चकस्थला नाम्नी अप्सरा थी। शापवश वानरी होकर सुमेरु पर्वतपर रहती थी।

**आत्रि**—ब्रह्माके मानस पुत्र हैं, सप्तर्षियोंमें इनकी भी गणना होती है, कर्दम प्रजापतिकी कन्या अनसूया इनकी स्त्री थी। श्रीदत्तात्रय, महर्षि दुर्वासा और चन्द्रमा इनके पुत्र हैं। वे दस प्रजापतियोंमें एक प्रजापति भी माने जाते हैं। वे धर्मशास्त्र-ग्रन्थक हुए हैं, इनका बनाया धर्मशास्त्र अत्रिर्संहिताके नामसे प्रचलित है। भगवान् रामचन्द्रजी इनके आश्रममें गये थे।

**अनसूया**—कर्दम प्रजापतिकी कन्या और महर्षि अत्रिकी सती साध्वी पत्नी थीं। इनकी माताका नाम प्रसूति था। अत्रि-ऋषिके आश्रममें जब वनवासके अवसरपर श्रीरामचन्द्रजी गये थे तो अनसूयाने श्रीसीताजीको पातिव्रत-धर्मकी महत्तापर उपदेश दिया था।

**अरुन्धती**—कर्दम प्रजापतिकी कन्या थी और वशिष्ठ मुनिको ब्याही गयी थी।

**अहल्या**—महर्षि गौतमकी पत्नी थीं। इनके पिताका नाम वृद्धाश्व था। वे अत्यन्त रूपवती थीं इसीलिये देवराज इन्द्रने गौतम ऋषिका रूप धारणकर इनका धर्म नष्ट किया था। गौतमने शाप देकर अहल्याको पाषाण बना दिया था। श्रीरामचन्द्रजीके चरण-स्पर्शसे अहल्याकी पाषाणत्वसे मुक्ति हुई थी।

**अर्मिला**—सीरध्वज जनककी कन्या थी, इनका विवाह लक्ष्मणजीके साथ हुआ था।



कपिल—कर्म-शक्ति के पुत्र थे। इनकी माता देवदुती थी। वे सांख्य-शास्त्र के प्रवर्तक हैं। इनकी शापसे सगर राजा के साठ हजार पुत्र भस्म हो गये थे।

कनक—कनक और उनकी स्त्री दनुसे इसकी उत्पत्ति हुई थी, यह पूर्वजन्ममें गन्धर्व था। एक बार स्यूखशिरा शक्ति इसके गानपर अभिसन्न हुए। तब इसने ईश्वर दिया था। इसीसे शक्तिने इसे राक्षस होनेका शाप दे दिया। ब्रह्माकी तपस्या कर इसने दीर्घायु होनेका वर प्राप्त किया था। वरके गर्वसे यह सदा इन्द्रका अपमान किया करता था, इन्द्रने क्रुद्ध होकर इसके ऊपर वज्रप्रहार किया और इसके ऊपर, मुक्त और मस्तकको तोड़ दिया, पुनः इसके विनय करनेपर इसकी भुजाओंको योजनपरिमित दीर्घ कर दिया और इसके पेटके अन्दर तीक्ष्ण दाँतयुक्त मुँह बना दिया था, तबसे यह दण्डकारण्यमें रहने लगा और सिंह व्याघ्रादिको पकड़-पकड़कर खाने लगा। जब श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्यमें आये तो इसकी भुजाओंको काटकर इसे मुक्त कर दिया। विनय करनेपर स्यूखशिराने ही यह वरदान भी दे दिया था कि श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बाहें काटी जानेपर पुनः मुक्त हो जाओगे।

कश्यप—ब्रह्माके मानस-पुत्र हैं। यह एक प्रसिद्ध शक्ति हो गये हैं। दण्डप्रजापतिकी तरह कन्याएँ इन्हें व्याही गयी थीं, जिनसे सब जगत्की उत्पत्ति मानी जाती है।

काकभुशुण्डि—राम-भक्त कायस थे। इनके पिता अक्षयसुतादेवीके बाहन चन्द्र नाम काक और माता ईसिनी थी। काकभुशुण्डिजी इसकीस भाई थे, जिनमें सभी मर गये, केवल यही चिरजीवी हुए। पूर्व जन्ममें यह अयोध्यावासी सूत्र थे। एक बार शङ्करकी पूजा करते समय इनके गुरु आ गये और इन्होंने उनका सत्कार नहीं किया अतः वे शिव-शापसे सर्प हो गये, पुनः शिव तथा गुरुकी कृपासे सगुणरूप रामके उपासक ब्राह्मण हुए, तत्परचाव कोमल-शक्ति के शापसे इन्हें काक-बोनि प्राप्त हुई।

कालनेमि—यह रावणका बच्चा एक राक्षस था। मेघनाथके शक्तिशालसे लक्ष्मणजीके मूर्धित होनेपर भीहन्मान्जी अब सजीवन-मूख खानेके लिये गये थे, ठसी समय रावणने भी काखनेमिको सिलाकर भेजा था कि यह हन्मान्जीको रास्तेहीमें सुबोध्यतक रोक रखे। यह कपट-मुनिके बेवर्मे सुन्दर बजाशय और वाटिकसे मुक्त मायाका आश्रम बना कर बैठ गया। हन्मान्जी जब पीने बजाशयमें गये और

वहाँ भकरी-अप्सरारके द्वारा सब भेद जानकर काखनेमिको पूर्वमें छपेटकर पृथ्वीपर पटक दिया। इसप्रकार काखनेमिकी मृत्यु हुई।

कुम्भकर्ण—महामोक्षी, महाकाय, राक्षस रावणका छोटा भाई था। इसके पिता विभवा मुनि और माता कैकसी थी। इसकी स्त्री (बलिकी दौहित्री) वृत्रज्वाला थी। इसने प्रति उग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया था परन्तु अन्तमें सरस्वतीकी प्रेरणासे वर माँगते समय छः मास सोनेके लिये और एक दिन भोजनके लिये जगनेका वर माँगा था। यह महा पराक्रमी था, युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारा गया।

कुबेर—क्षीमे लोकपाल हैं। इनके देवता हैं। अक्षयपुरी इनकी राजधानी है। यह रावणके लौतेले भाई हैं, पहले लंकामें रहते थे। इनके एक भाँख, तीन पैर और आठ दाँत होनेके कारण कुबेर नाम पड़ा। इनके पिता विभवा मुनि और माता भरद्वाजकी कन्या देववर्धिनी थी। वे बल-जातिके अज्ज्वल हैं।

कुश—श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी माता जानकीजीने इन्हें श्रीवासुकी-मुनिके आश्रममें प्रसन्न किया था, वहाँ इनका पावन-बोध और शिक्षा-दीक्षा हुई थी। श्रीरामजीके अरवमेघ-वज्रके अवसरपर कुश और इनके छोटे भाई लक्ष्मणे वाल्मीकीय रामायणका गानकर सारी सभाको मन्त्र-मुग्ध कर दिया था। इन्हें कुशावती नगरीका राज्य दिया गया था। श्रीरामचन्द्रजीके बैकुण्ठ जानेपर अयोध्याकी अधिष्ठात्री देवी कुशके शयनागारमें उपस्थित हुई थी और अयोध्याकी दुर्दशा कहकर इनसे कुशावती छोड़कर अयोध्या जानेका निवेदन किया था, अतः यह अयोध्या चले आये और यहाँ राज्य करने लगे।

केसरी—बानरराज थे, इनकी स्त्री अञ्जनाके गर्भसे हन्मान्जीका जन्म हुआ था।

केहरि—एक बानर था।

कैकसी—रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणकी माता थी। इसके पिता सुमाजी और माता केतुमाजी पाताळमें रहते थे, कुबेरको लंकामें देखकर ईर्ष्यावश इन्होंने अपनी कन्या कैकसीको विभवा-मुनिके प्रति इस उद्देश्यसे अर्पण किया था कि उससे कुबेरसे भी अधिक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हो।



**कैकेयी**—केकय-देवके राजाकी कन्या अत्यन्त सुन्दरी और बुद्धिमती थी। राजा दशरथको ज्यादा प्यारी थी। भरतभी इसीके पुत्र थे। इसने एक बार राजाकी बुद्धिमें रक्षाकर दो बार प्राप्त किये थे उन्होंने कहींसे इसने अपनी दासी मन्थराकी अनुमतिसे श्रीरामचन्द्रजीको बनवास और भरतको राज्याभिषेक राजासे माँगा था।

**कौसल्या**—दक्षिण कौसलराजकी कन्या थीं। राजा दशरथकी सबसे बड़ी राणी थीं। इन्होंने गर्भसे विष्णुभगवान् रामचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए थे। जब रावणको मारजूम हुआ कि कौसल्याके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले रामसे मैं मारा जाऊँगा तब उसने बालिका कौसल्याको हरब करके एक सन्तूकमें बन्दकर वह सन्तूक रावण नामक मन्त्रजीको दे दी। भवितव्यकी रक्षाके लिये ब्रह्मने रावणका रूप धारणकर उस मन्त्रजीसे सन्तूक जाँगकर बनें छोड़ दी, वह सुमन्तको मिली और उसने कौसल्याको राजा दशरथके अर्पण किया।

**हर**—रावणका सौतेला भाई था। सुमाजी राजसकी कन्या राजा इसकी माता थी, पिता विषवा मुनि थे। रावणने इसे जनस्थानका प्रान्ताधीश बनाया था। इसके साथ चौदह हजार सेना थी। जम्भवजीने जब शूर्पणखाके नाक काट काट लिये थे तब इसने श्रीराम-जम्भवसे युद्ध किया था और रामजी द्वारा मारा गया था।

**गणेश**—(गणपतिजी) श्रीमहादेवके पुत्र हैं, इनकी माता पार्वती हैं। विष्णुके घरसे इनकी सम्प्रज्ञा होती है। वे श्रीरामनामकी महिमाको नलीभाँति जाननेवाले और भारतको विपिबद्ध करनेवाले हैं।

**गहड़**—पिता करवप और माता बिन्दासे आपका हुआ। आप पचिराज हैं। विष्णु भगवान्के बाहन हैं। श्रीरामचन्द्रजी जब मेघनादके द्वारा नागपाशसे बाँधे गये थे, जो गहड़ने ही उन्हें उस पाशसे मुक्त किया था।

**गालव**—विरवामित्रके प्रिय शिष्य थे। स्वयं एक प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं। इन्होंने अपने गुरुको दक्षिणा देनेके लिये बड़ा आग्रह किया था। विवामित्रजीने रुढ़ हो ८०० स्वयं-कर्ण छोड़े इससे माँगे, किन्तु प्राप्त करनेमें इनको दाक्ष कष्ट सहना पड़ा था किन्तु अन्तमें वे दक्षिणा युक्त गुरु-द्वयसे मुक्त हुए।

६७

**गुहक**—निषादराज, शङ्खदेरपुरका जनार्ण राजा था। राजा दशरथसे इसकी मित्रता थी, यह रामका भक्त था। इसने बनवासमें श्रीरामकी बहुत सेवा की थी। पूर्व जन्ममें यह ज्ञात था। शङ्करकी कृपासे इसे रामसेवाका अवसर प्राप्त हुआ था।

**नैन्द**—श्रीरामचन्द्रजीका सेवक एक बड़ा बानर था।

**गौतम**—एक ऋषि थे, इन्होंने की पत्नी अहल्या थी। इनका व्याख्यान प्रसिद्ध है, वे आग्निविकी विद्याके प्रथम प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने अपने व्याख्यानमें प्रभाव-प्रवेश भावि सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मुक्ति की प्राप्ति बतलायी है। इन्होंने केवल दश ही दिनोंमें इस दर्शनका प्रवचन किया था।

**जटायु**—सूर्यके सारथी अक्षय और माता रथेनीके गर्भसे जटायु उत्पन्न हुआ था। वह गृध्र पक्षी था। राजा दशरथका परम मित्र था। सीताहरण करके ले जाते समय रावणको इसने रोका था और रुद्ध होनेपर भी उससे युद्ध किया था, अन्तमें रावणके अज्ञातसे जाचल हो गिर पड़ा था, जब श्रीरामचन्द्रजी सीताकी लोभमें जम्भवको साथ लिये हुए आये और जटायुको इस दशमें देखा तो बहुत व्याकुल हुए। श्रीरामजीकी गोदमें सिर रखे हुए जटायु परमभागको प्राप्त हुआ।

**जमदग्नि**—महर्षि ऋषीके पुत्र थे। राजा प्रसेनजित्की पुत्री रेणुकाके साथ इनका विवाह हुआ था, इनके पाँच पुत्र हुए, सबसे छोटे परशुराम थे।

**जयन्त**—देवराज इन्द्रका पुत्र था। इसने काकरूप धारणकर अपनी बाँचसे श्रीरामचन्द्रजीको बाधल कर दिया था और जब श्रीरामचन्द्रजीने इसके ऊपर बाण चलाया था तब यह तीनों लोकोंमें प्राण बचानेके लिये भागा किन्तु किसीने इसे आश्रय नहीं दिया। अन्तमें हारकर श्रीरामजीके-दारबारे गया, रामचन्द्रजीने इसके प्राण तो नहीं लिये पर एक माँका फोड़ दी।

**जाम्बवन्त**—ऋक्षराज थे, ब्रह्माके पुत्र थे। यह महाबली थे और सुग्रीवके सेनापति होकर इन्होंने श्रीरामचन्द्रजी सहायता की थी। रास-भक्तोंमें इनकी भी खासी प्रसिद्धि है।

**ताड़का**—सुकेतु नामक वनकी पुत्री थी। (मरुद और कलक-देवके राजा) सुन्दको ज्यादा प्यारी थी। मारीच और सुबाहु इसके पुत्र थे। जब अगस्त्य-मुनिके आपसे सुन्द मारा

गया तो वह क्रुद्ध होकर ऋषियोंको सताने लगी, इसपर मुनिने शाप दिया, जिससे वह राक्षसी हो गयी। तबसे वह तपोभूमिमें रहकर ऋषियोंके ब्रह्म अष्ट करने लगी, विश्वामित्रजीके मन्त्र-रक्षार्थ आये हुए श्रीरामजीके द्वारा वह मारी गयी।

तारा—सुषेख बानरकी कन्या थी, कपिराज बालिको ब्याही गयी थी। अंगद इसका पुत्र था।

विजटा—रावणके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक राक्षसी थी, यह श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तिकरती थी। रावणकी ओरसे सीताजीकी सेवामें असोक-वाटिकामें रहती थी। अन्य राक्षसियोंकी भाँति सीताजीके प्रति क्रूर व्यवहार न करके प्रेमका बर्ताव करती और उन्हें सान्त्वना देती थी।

दक्ष—दक्षप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे, इन्हें प्रजा-सृष्टिका अधिकार मिला था। इनके मनुकन्या प्रसूतिसे १६ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। ११ कन्याएँ धर्मको, एक कन्यको, एक करवपको और सती नामकी सबसे प्यारी कन्या शिवको ब्याही गयी थी। दक्षके शिवरहित ब्रह्ममें सतीने देह त्याग किया था।

दशरथ—सूर्यवंशी महाराजा अन्न और विदर्भराजकी कन्या इन्दुमतीसे इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनके कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन पटरानियाँ, और तीन सौ साठ अन्य रानियाँ थीं। पटरानियोंसे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न चार पुत्र हुए थे। इनके पहले शान्ता नामकी एक कन्या थी जिसको इन्होंने अपने मित्र अङ्गदेशाधिपति रोमपादको दत्तकरूपसे दे दिया था और उन्होंने उसे अश्वत्थजीको प्रदान किया था। महाराज दशरथने एक बार आखेट खेलते समय अश्वमुनिके पुत्र अवधको हाथीके अङ्गसे शकटभेदी बाणसे मार डाला, जब अश्वमुनिको यह बात मालूम हुई तो वे बड़े ही बेचैन हुए और राजाको शाप दिया कि हमें जिसप्रकार पुत्रवियोगमें व्याकुल होकर मरना पड़ता है वैसे ही तू भी पुत्रवियोगमें तड़प-तड़पकर मर जायगा। इसी शापके परिणाम-स्वरूप कैकेयीने जब राम-वनवासका वरदान मांगा और रामचन्द्रजी अयोध्या छोड़कर वन गये तो राजा दशरथ उनके वियोगको न सह सके और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।

दिलीप—सूर्यवंशी राजा थे, इनकी स्त्री सुदक्षिणा थी। राजा दिलीपके विषयमें एक कथा है कि एक बार स्वर्गसे

आते समय इन्हें मार्गमें कामधेनु मिली, उसका दिलीपने अभिषादन नहीं किया, अतः उसने शाप दे दिया कि मेरी पुत्री नन्दिनीकी सेवा किये बिना तुम्हारे पुत्र नहीं होगा। बहुत दिनोंतक राजाको कोई सम्स्तान नहीं हुई। अन्तमें बेरानीको साथ ले बरिशदजीके आश्रममें गये और वहाँ नन्दिनीकी सेवाकर उसके आशीर्वादसे रघुको पुत्ररूपेण प्राप्त किया।

द्विविद—सुग्रीवका मित्र एक बानर था, इसमें एक हजार हाथीका बल था।

इन्दुमि—यह महिषाकार दानव था। बालिद्वारा मारा गया था। इसकी अस्थियोंको रघुनाथजीने अपने बायें चरखके प्रहारसे नष्ट कर दिया था। इसके सिरको बाँझिने अश्वत्थ-पर्वतपर फेंक दिया था, जहाँ मतङ्ग ऋषि रहते थे। वहाँ रुधिरकी धारा प्रवाहित होते देख ऋषिने बालिको शाप दिया था कि यदि वह उस पर्वतपर जायगा तो भस्म हो जायगा।

हर्मुस—रामकी सेनाका एक बानर था।

दूषण—खरका भाई और रावणका सेनापति था। इसके अर्धवर्ष पाँच हजार सेना थी। यह दण्डकारण्यमें रहता था और रामद्वारा मारा गया था।

नल-नील—ये दोनों बानर क्रमसे विश्वकर्मा और अश्विके पुत्र थे। श्रीरामकी सेनामें रहते थे। इन्होंने समुद्रके ऊपर पाषाणका सेतु बाँधा था। इनके विषयमें एक कथा प्रसिद्ध है कि जब वे छोटे बालक थे तब समुद्रके किनारे खेलते-खेलते ऋषि-मुनियोंके आश्रमसे शालग्राम आदि पाषाणकी मूर्तियाँ जाकर समुद्रमें डाल देते थे। इसप्रकार मूर्तियोंके लो जानेपर मुनि लोग नल-नीलको बालक जान क्रोधित नहीं होते और न दण्ड ही देते थे। हाँ, एक दिन एक मुनिने इतना कह दिया कि 'आओ, तुम लोगोंके हाथसे स्पर्श किया हुआ पाषाण जलमें नहीं डूबेगा।' मुनियोंने इसप्रकार अपने उपास्य मूर्तिकी रक्षा की और उनके आशीर्वादसे नल-नीलने सेतु बाँध अपने उपास्य-देवकी सेवा की।

नारद—देवर्षि नारद ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। दक्षप्रजापतिके पुत्रोंको इन्होंने जगत्से चिरक कर दिया था, इस कारण दक्षने इनको शापसे नष्ट कर दिया। पुनः ब्रह्माके निवेदन करनेपर इन्होंने करवपको एक कन्या प्रदान की, जिससे नारद उत्पन्न हुए। इनके विषयमें आगेवर्तमें कहा गया है

कि पूर्वजन्ममें वह दासीपुत्र थे, इनकी माता ऋषियोंकी सेवा करती थी, वास्यकाजसे ही इन्हें ऋषि-उपदेश और प्रसाद प्राप्त होता रहा। जब इनकी माता सर्प-दंशसे मर गयी तो इन्होंने ऋषियोंकी आज्ञा से तपस्या की और शरीर त्याग करनेके बाद ब्रह्माके मानस पुत्र और महान् भगवत्पुत्र हुए।

पनस—(१) रामवृक्षका एक वानर। (२) विभीषणके चार भ्रात्रियोंमेंसे एक।

परशुराम—पिता जमदग्नि और माता रेखुकासे इनकी उत्पत्ति हुई थी। विष्णुके दश अवतारोंमें एक वह भी हैं। राजा कार्तवीर्य सहजाजुन एक बार जमदग्निके आश्रममें आये थे, वहाँ कामधेनुको देख प्रलुब्ध हो उसे हरणकर ले गये। तब परशुरामजी कामधेनुको लाने गये और कार्तवीर्य-को युद्धमें मार उसे क्षीन लाये। इसके प्रतिकारमें कार्तवीर्य-के पुत्रोंने जमदग्निको मार डाला तब परशुरामजीने २१ बार पृथ्वीको निःशस्त्र कर दिया। धनुष-यज्ञके अवसरपर जनक-पुरमें इन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको विष्णुका धनुष चढ़ानेके लिये दिया और उसके चढ़ाते ही आप अत्यन्त विस्मित हो श्रीरामकी स्तुतिकर वनमें तप करने चले गये।

पार्वती—पिता हिमावध और माता मैनासे पार्वतीका जन्म हुआ, इनका विवाह शिवजीसे हुआ। इनकी शिवजीके प्रति अनन्यता आदर्श है। गणेश और स्वामि कर्तिकेव इनके दो पुत्र थे।

प्रहस्त—रावणका सेनापति था। वह रावणके सामने अपनी बीरताकी डींग हाँका करता था। युद्धमें मारा गया।

पुरुस्त्य—ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। रावणके पितामह थे। इनकी गायना सप्तर्षियोंमें होती है।

बालि—वह देवराज इन्द्र, और ब्रह्माके अधुसे उत्पन्न एक वानरीसे उत्पन्न हुआ था। वह किष्किन्धाका राजा था इसको ब्रह्माका वरदान था कि युद्धमें प्रतिद्वन्द्वीका आवाज बज हर जेगा। सुग्रीव इसका सहोदर भाई था, उसके साथ अनीति करनेके कारण रामजीद्वारा मारा गया।

मरदाज—मरदाज-ऋषिके पिता बृहस्पति, माता ममता थी। प्रयागमें इनका आश्रम था, दुष्यन्त-पुत्र राजा भरतने इन्हें पाया था।

भरत—दशरथके पुत्र थे, इनकी माता कैकेयी और आमा सुधावति थे, इनकी पत्नी माचडवी थी। इनकी राम-भक्ति भक्तोंके लिये परम आदर्श है।

भानुप्रताप—काशमीरके निकट केकय-देशका राजा था। इसका पिता सत्यमेतु, भाई भरिमर्दन और मन्त्री धर्मरथि था। इसने राजा काजकेतुका राज्य हरण किया था। प्रतिहिंसाके विचारसे काजकेतु छत्र करके राजाके यहाँ रहा और छत्रसे ब्राह्मणोंको नरमांस भोजन कराया, तब ब्राह्मणोंने प्रतापमानुको शाप दिया कि तू राक्षस-योनिमें जन्म ले। इसी कारण वह राक्षस होकर उत्पन्न हुआ।

भृगु—इनकी उत्पत्ति ब्रह्मासे हुई थी। वह महादेवके वक्त्रपुत्र थे। इन्होंने परीक्षार्थ विष्णु भगवान्के हृदयमें जात मारी थी।

भतङ्ग—ऋष्यमूक-वर्षतपर रहनेवाले एक ऋषि थे, शबरीको भक्तिका उपदेश इन्होंने प्राप्त हुआ था।

भनु—ब्रह्माके पुत्र और मनुष्य-जातिके आदि पुरुष हैं, इनकी स्त्री रातरूपा है, यही दशरथ हुए थे।

मन्थरा—महारानी कैकेयीकी दासी थी, इसीकी सम्मतिसे कैकेयीने रामके लिये वनवासका वरदान माँगा था। मन्थरा कैकेयीके साथ केकय-देशसे आयी थी।

मन्दोदरी—पिता मयदानव और माता हैमा अप्सरासे मन्दोदरीका जन्म हुआ था। वह रावणकी धर्मशीला पत्नी थी। मेघनाद और अक्षयकुमार इसके दो पुत्र थे। वह प्रसिद्ध पतिव्रता है।

माण्डवी—राजा जनकके भाई कुशकेतुकी कन्या-भरतकी स्त्री थी, इसके लक्ष और पुष्कर दो पुत्र थे।

मारीच—ताड़का राक्षसीका पुत्र था। इसका पिता सुन्द यक्ष था। विचामित्रकी यज्ञरथाके समय रामजीके बाणसे यह समुद्रके किनारे जा गिरा था, पुनः रावणकी प्रेरणासे कपटदृग्गका रूप धारणकर सीताहरणका कारण बना और श्रीरामजीद्वारा मारा गया।

मेघनाद—(इन्द्रजीत)—रावणका पुत्र था, इसकी माता मन्दोदरी थी। साध्वी सुलोचना इसकी स्त्री थी। एक समय इन्द्रने युद्धमें रावणको बाँध लिया था, फिर मेघनादने इन्द्रसे युद्धकर पिताको मुक्तया और इन्द्रको बाँधकर लाया था। इसको वर था कि वह बारह वर्षतक निद्रा, मारीको त्यागकर केवल फल अशन करनेवालेके हाथसे मारा जायगा। अतः इसको युद्धमें लक्ष्मणजीने मार डाला।

मैनावती—हिमवानकी पत्नी और पार्वतीकी माता थी।

रम्भ—रामवृक्षका एक वानर था।

रघु—अयोध्याके प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा थे। इन्हींके नामसे रघुवंश चला। ये बड़े प्रतापी और शूरवीर थे, इन्होंने इन्द्रको हराया था, इनके पिता विश्वीर और पुत्र अजये।

राम—अश्विज ब्रह्मायकके स्वामी कौत्सयाके गर्भसे अवधमें अवतीर्थ हुए थे। आपके पिता दशरथ, पुत्र लक्ष और कुश, भाई भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा पत्नी जनक-नन्दिनी श्रीसीताजी थीं।

रावण—विश्वामुनिका पुत्र था। इसकी माता कैकसी, श्री मन्दोदरी थी। इसने उत्कट तपस्याके बलसे ब्रह्मा और शिवसे अनेक वरदान प्राप्त किये थे। एक वरदानके द्वारा इसकी मृत्यु नर और वानरके अतिरिक्त किसीसे भी नहीं हो सकती थी। रामजीने इसको मारा। पूर्व जन्ममें वह जय नामक विष्णुका द्वारपाल था, दूसरे जन्ममें भानुप्रताप राजा भी बही था। कुबेरके पुष्पक-विमानपर बैठकर रावण जब आकाशमार्गसे जाता हुआ कैलाशके निकट आया तब नन्दीधरने इसे कैलाश पार करनेसे मना किया। नन्दीधरकी वानर जैसी-मुक्ताकृति देखकर वह हँस दिया। इसपर उसने शाप दिया कि जाओ, वानरोंके द्वारा ही तुम्हारा नाश होगा!

रेणुका—यह राजा प्रसेनजितकी कन्या थी। जमदग्निकी पत्नी थी। परशुरामावतार इन्हींके गर्भसे हुआ।

लक्ष्मण—श्रीरामके छोटे पुत्र थे। इनकी माता सीता थीं। वाल्मीकिके आश्रममें इनका जन्म हुआ था, ये उत्तर कोसलके अन्तर्गत आवधपुरीके राजा थे।

लवणामुर—मथुराजस और रावणकी मौसी कुंभीनसीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई थी। पितृप्रदत्त शूलके प्रभावसे, यह दानव, देव और मनुष्य सबसे अजेय था। इसने राजा आम्बाताको मारा था। वह ऋषियोंपर बड़ा अत्याचार करता था। श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको भेजकर इसका विनाश कराया।

लक्ष्मण—श्रीरामके भाई लक्ष्मण शेषके अवतार थे। इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, पत्नी उर्मिला, पुत्र अश्व और चित्रकेतु थे। श्रीरामकी सेवामें इन्होंने उनके साथ वन-वास किया था। ये अनन्त राम-सेवक थे।

लोमश—एक प्रख्यात अमर ऋषि हैं। आप काक-शुश्रुषहीजीके गुरु हैं।

लंकिनी—भूलोकवासिनी राक्षसी लंकामें रहती थी। इन्मान्जी सीताको खोजने जब लंकामें घुसे थे तब इस राक्षसीने उन्हें रोका था और इन्मान्जीने इसे एक घूसा मारा था।

वशिष्ठ—ब्रह्माके भाससे उत्पन्न हुए थे, कर्दम-ऋषिकी कन्या अरुन्धतीसे इनका विवाह हुआ था। ये सप्तर्षियोंमें एक हैं, रघुवंशके कुलगुरु हैं। प्रसिद्ध पाराशर ऋषि, इनकी पुत्रवधू अदरक-पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

वाल्मीकि—आदिशिव थे। इन्होंने रामायणके पूर्व ही दिव्य दृष्टिसे रामायणकी रचना की थी। जब श्रीरामजीने सीताको निर्वासित किया था तो उसे इन्हींके आश्रममें आश्रय मिला था। वह पहले वस्यु थे, भगवत्सर्गोंकी कृपा तथा राम-नाम आपके प्रभावसे परमभक्त हो गये।

विभीषण—रावणका भाई था, इसके पिता विश्रवा, माता कैकसी, पत्नी (शैलुष-गन्धर्वकी कन्या) सरमा थी, यह श्रीरामका शरणागत भक्त था। रावणके मरनेके बाद लङ्काका राजा हुआ।

विराट—एक विद्याधर था, जो दुर्वासाके शापसे राक्षस-योनिको प्राप्त होकर चित्रकूटके दक्षिण वनमें रहता था, श्रीरामके हाथ मारा गया था।

विश्रवा—रावणादि तीनों भाई, खर, शूर्पणखा और कुबेरका पिता था, यह पुलस्त्यका पुत्र था, इसकी माता दक्षकन्या पृथ्वी, श्री देवर्वाणिनी, कैकसी, राखा और माहिनी थीं।

विश्वामित्र—(कौशिक-गाधितनय)—कान्यकुब्जके पुरुवंश-के गाधिराजाके पुत्र थे। इन्होंने क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर भी अपने तपोबलसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था। इनकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा वर्णन है कि गाधिराजकी कन्या सत्यवती ऋषीक-ऋषिको व्याही थी, गाधिराज और ऋषीकके कोई सन्तान न थी इसलिये ऋषीकने यज्ञावशेष चरके दो भाग किये। एकके साथ ब्राह्मण-सन्तानका और दूसरेके साथ क्षत्रिय-सन्तानका आशीर्वाद था। दोनों यह ऋषीकने अपनी पत्नीको देकर ब्राह्मणवाला घर उसे खानेके लिये तथा दूसरा यह गाधिराजकी स्त्रीको खानेके लिये कहा। गाधिराजकी स्त्रीने सोचा कि कदाचित् सत्यवतीका यह अधिक भेद होगा क्योंकि उसके स्वामीने

सैवार किया है, इसलिये ब्रह्मसे उसने उसके चरुको अपने लिये ले लिया और अपना उसे दे दिया। फलस्वरूप गाधिराज-पत्नीके विश्वामित्र (जो आगे चलकर माहव्य हुए) और सत्यवतीके जमदग्नि हुए, जो माहव्य होते हुए भी चात्र-गुह्यसे युक्त थे।

शतरूपा—ब्रह्माके बायें हाथसे उत्पन्न हुई थी। स्वात्मभुव मनुकी पत्नी थी। श्रीनारायणको पुत्ररूपसे प्राप्त करनेके लिये इसने बड़ी तपस्या की थी और बड़ी कौसल्यारूपमें अवतरित हुई थी।

शत्रुघ्न—भीष्मकमहर्षीके छोटे भाई थे, इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, की श्रुतिकीर्ति, पुत्र सुबाहु और भूपकेतु थे। यह श्रीभरतजीके अनन्य भक्त थे। मधु नामक राक्षसको मारकर मथुरापुरीको इन्होंने ही बसाया था।

शरम—राम-सेनाका एक धूमपति बानर था।

शरमंग—एक ऋषि थे। दक्षिणारण्यमें रहते थे, श्रीरामके परम भक्त थे। इन्होंने श्रीरामका दर्शनकर अपना शरीर त्याग दिया था।

शबरी—एक भील-कन्या (या एक तपस्विनी) थी। मतङ्ग-ऋषिसे इसने ज्ञानोपदेश प्राप्त किया था। यह तपस्विनी भगवान् रामके दर्शनार्थ वनमें तपस्या करती थी, इसने श्रीरामके आनेपर उनकी वयोधित सेवा की और उन्हें वन-फल भोजन कराया था।

शान्ता—राजा दशरथकी कन्या थी। इसको राजाने अपने मित्र अज्ञाधिराज जामपादको पोष्यपुत्रिकाके रूपमें दिया था। पीछे यह महर्षि ऋष्यशृङ्गके साथ ब्याही गयी थी।

शुक—रावणका एक दूत था।

शुभी—ऋष्यशृङ्ग प्रसिद्ध तपस्वी थे। शमीक अथवा विभायटक ऋषिके पुत्र थे, इनकी की शान्ता थी। राजा दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञका सम्पादन करनेके लिये इनको अयोध्या बुलाया था। इनके आशीर्वादसे राजाको चार पुत्र हुए।

श्रुतिकीर्ति—साकल्यके राजा कुराण्वजकी कन्या थी। शत्रुघ्नको ब्याही गयी थी, इसके सुबाहु और भूपकेतु दो पुत्र थे।

सगर—सूर्यवंशी राजा आहुकके पुत्र थे। इनके दो राक्षसी थीं—सुमति और केशिनी। केशिनीसे असमजस, और

सुमतिसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। सगर बड़े प्रतापी राजा हुए हैं, इन्होंने अनेक वंश किये। एक बार इन्द्र ईर्ष्यावश इनके वंशाधिकारी बुराकर कपिल-मुनिके आश्रममें बांध जाये। सगरके साठ हजार पुत्र उस अवधको खोजते हुए कपिलके आश्रममें पहुँचे और चोर समझकर उनके ज्ञात मारी। मुनिका ज्ञान भङ्ग हुआ और उन्होंने शाप देकर सबको भस्म कर दिया। पीछे इसी वंशमें भगीरथ उत्पन्न हुए जो तपस्या करके गंगाजीको लाये और उनका उद्धार किया।

सती—दक्ष प्रजापतिकी कन्या शिवको ब्याही गयी थी। किसी समय शिवजीसे दक्षप्रजापतिकी अनवन हो गयी, इसलिये उन्होंने अपने वंशमें शिवको आमन्त्रित नहीं किया। सती शिवकी आज्ञा विना ही उस वंशमें गयी और वहाँ दक्षके मुँहसे शिवकी विन्दा सुनकर क्रोधित हो योगाम्रिसे देहको भस्म कर दिया। जब वह समाचार शिवको मिला तो उन्होंने जोरसे अपनी जटा पृथ्वीपर पटक दी जिससे वीरभद्र उत्पन्न हुआ, उसके साथ अन्य शिवगणोंने जाकर दक्षके वंशको विध्वंस कर दिया और दक्षका सिर काटकर हवन कर दिया।

सम्पती—जटायुका बड़ा भाई था। इसके पिता भरह्य थे। दोनों भाई एक बार सूर्यको जीतनेकी इच्छासे उड़े। सूर्यके तेजसे जटायुके पंख जलने लगे। उस समय सम्पतीने अपने पंखोंसे उसकी रक्षा की। इसप्रकार अपने छोटे भाईकी सहायता करते वह स्वयं विन्ध्य-पर्वतपर आ गिरा और निशाकर मुनिने इसकी शुश्रूषा की। जब सीताको खोजनेके लिये बानर दक्षिण-समुद्रकी ओर जा रहे थे तब उनकी इससे भेंट हुई थी और इसने अपनी बुरादिले सीताका पता बतलाया था।

सहस्रनाहु—(सहस्रार्जुन, हैहयराज या कार्तवीर्य) इसके पिता कृतवीर्य, माता एकावली थी। इसकी की सत्यासे इसे १००० पुत्र हुए, जिनमें ६६६ को परशुरामजीने मार डाला। वह नर्मदा-नदीके तीर हैहय-देशका राजा था। माहिष्मती इसकी राजधानी थी, एक बार लङ्केश्वर रावणको हराकर इसने बन्दी कर लिया था। जिसे पुलस्त्य मुनिने बुझाया। जमदग्नि-मुनिको मारनेके अपराधमें यह परशुरामजीद्वारा मारा गया।

सारण—रावणका एक मन्त्री था, जो रामचन्द्रजीकी सेवामें एक बार भेद करने गया था।

स्वयंप्रभा—दिव्य गन्धर्वकी कन्या तथा हैमाकी सखी थी। विष्णु भगवान्‌के दर्शनार्थ गुफामें रहकर तपस्या करती थी। हनूमान्‌की सीताकी खोजमें जाते समय प्यास लगी, तब जब पीनेके लिये वे इसकी गुफामें गये थे और इससे उनकी भेंट हुई थी।

सीता—( जानकी, उर्विजा, जनकनन्दिनी, भूमिजा ) इनके पिता जनक थे। मियितामें एक बार अकाल पड़ा था तब राजाने वृष्टिके लिये स्वयं हल चलाया था, उस समय भूमिसे जानकी उत्पन्न हुई। इनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी प्रसिद्ध ही हैं। वे साक्षात् जगज्जननी माया थीं, इन्होंने अपने आचरणोंसे पातिव्रतका महान् आदर्श दिखलाया है।

सुकेतु—ताड़का राजसीका पिता था।

सिंहिका—राहुकी माता थी, वह पाताळवासिनी राजसी ससुरामें रहती थी। उड़ते जीवोंकी परछाईंसे ही उन्हें पकड़ लेनेकी शक्ति रखती थी। जङ्गा जाते समय हनूमान्‌जीने इसे मारा था।

सुतीक्ष्ण—अगस्त्य-मुनिके शिष्य थे। वह प्रसिद्ध रामोपासक थे। इनकी प्रेमाभक्ति आदर्श थी।

सुशीव—इनके पिता सूर्य थे और माता मङ्गाके भाँवसे उत्पन्न एक वानरी थी। श्रीरामचन्द्रजीके मित्र थे। बालिके मारे जानेपर किष्किन्धाके राजा बनाये गये थे।

सुनाहु—ताड़काके साथ रहनेवाला एक राक्षस था, कोई इसे ताड़काका पुत्र बतलाते हैं। विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामजीने इसे मारा था।

सुमन्त—महाराजा दशरथके मन्त्री थे।

सुरसा—स्वर्गलोकवासिनी एक राजसी थी। हनूमान्‌जीको जङ्गा जाते समय परीचाके लिये इसने उनको रोका था। अन्तमें प्रसन्न हो हनूमान्‌जीको आशीर्वाद दिया था।

सुलोचना—वासुकी पुत्री और मेघनादकी पत्नी थी, वह बड़ी पतिव्रता थी।

सुवेण—एक वैद्य वानर था। इसने लक्ष्मणजीकी मूर्खता दूर करनेमें सहायता की थी।

शूर्पणखा—रावणकी छोटी बहन थी। इसके पिता विश्रवा थे बाष्पीकिके अनुसार वह रावण कुम्भकरणसे छोटी और बिभीषणसे बड़ी थी, कैकसीकी पुत्री थी, कोई कहते हैं कि इसकी माता राखा है और सहोदर आई सर। विद्युजिह्वसे

न्धाही गयी थी, इसके पतिको रावणने भूलसे मार डाला था, विधवा होनेपर इसने पञ्चवटीमें श्रीराम लक्ष्मणसे व्याहृति प्रस्ताव किया था। कलस्वरूप इसके नाक और कान काट लिये गये थे।

हनूमान्—इनके पिता केशरी और माता अञ्जना थी। यह पवनके पुत्र प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध रामभक्त हैं। सुग्रीवके मित्र और मन्त्री थे। यह महावीर थे। श्रीरामके गाढ़े अवसरोंपर इन्होंने उनकी सेवा की थी। इनके पुत्रका नाम मकरध्वज था। यह शंकरके अवतार माने जाते हैं। वे बड़े वीर, ध्वाकरणके पबित और वेदज्ञ हैं।

हरिश्चन्द्र—सूर्यवंशी राजा सत्यव्रतके पुत्र थे। इनकी स्त्री शौन्या और पुत्र रोहिताश्व था। विश्वामित्रने इनके सत्यकी परीक्षा ली थी। सत्यपालनके लिये इन्होंने अपना सर्वस्व विश्वामित्रको दे दिया था और स्वयं रानी सहित बिक गये तथा अनेक कष्ट सहें, परन्तु सत्यका पालन किया। इनका-सा सत्यवादी चिरञ्जीवी मित्रता है।

हैमा—विश्वकर्माकी कन्या थी। दक्षिणके दिव्य नगरमें रहती थी। वह मन्दोदरीकी माता थी।

## रामायणकी ओर अधिक आकर्षण

रामायणमें गंगाकी उपत्यकासे दक्षिण ओर विस्तृत राक्षसोंके प्रदेशमें हिन्दू-धर्मके प्रसारका वर्णन पाया जाता है। महाभारतके उपदेश आज्ञापालन तथा कर्त्तव्यपथका निर्देश करते हैं और उनकी पूर्ति के निमित्त सब प्रकारके आत्म-बलिदान अथवा त्यागपर जोर देते हैं। परन्तु उनकी अपेक्षा रामायणमें कहीं अधिक सहानुभूति तथा सहृदयतासे कौटुम्बिक जीवनके मानन्द सुदृढ़ होते दीखते हैं। पुत्र-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, दाम्पत्य-प्रेम तथा अपने सम्बन्धियों और पड़ोसियोंके प्रति शुद्ध निःस्वार्थ प्रेमके ऊपर उसमें अधिक जोर दिया गया है। तुलसीदास प्रभृति अन्य हिन्दू-कवियोंके द्वारा रामायणका सजीव चित्रण होनेके कारण जनता उसकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हुई है।

—नेल्सन ( विश्वकोषरचयिता )



## आदि कवि वाल्मीकि

( लेखक—पं० श्रीरामचरितजी उपाध्याय )

( १ )  
सत्काव्य-संस्कृतिके चतुर ,  
अक्षतुर्बदन विधि आप हैं ।  
रस-रूपमें नवरत्नके ,  
वसुधा-सुधानिधि आप हैं ॥

( २ )  
सत्काव्य-कल्पद्रुम-गहनके ,  
आप अनुपम मूल हैं ।  
सत्काव्य-रस-मकरन्दके तो ,  
आप विकसित फूल हैं ॥

( ३ )  
प्रत्यक्ष वपुधारी प्रणव हैं ,  
आप काव्यास्त्रायके ।  
हैं आर गौतमरूप ही ,  
सत्काव्यरूपी न्यायके ॥

( ४ )  
व्यासादि चेले आपके हैं ,  
आपके गुह आप ही ।  
जगका जनक जगदीश हैं ,  
ईश्वर-जनक ईश्वर वही ॥

( ५ )  
हैं कौन-सी ऐसी प्रभा ,  
जिसमें न रविका छोट है ।  
है कौन कृति जिसमें न प्रभुकी ,  
उक्ति ओत-प्रोत है ॥

( ६ )  
उच्छिष्ट जो हरका गरल ,  
उससे हुए विषधर सभी ।  
जो भाव जूटे आपके ,  
उनसे हुए कविधर सभी ॥

( ७ )  
जो आपसे प्रतिभा-प्रभावित ,  
भाव हो पाया नहीं ।  
वह दूसरे कविके हृदयमें ,  
आज तक आया नहीं ॥

( ८ )  
नृपके चरितका चित्र चित्रित ,  
आपने जैसा किया ।  
त्रैलोक्यमें किस दूसरेने-  
आज तक वैसा किया ?

( ९ )  
जब आपने पुस्तक लिखी ,  
तब राम प्रकटित थे नहीं ।  
ऐसा चरित-लेखक अपर ,  
भूपर हुआ है क्या कहीं ?

( १० )  
अमरावतीसे भी प्रयतः ,  
साकेतको किसने किया ?  
यह आपहीका काम था ,  
राक्षस बना द्विजको दिया ॥

( ११ )  
श्रीराम-चरितावलि मुने !  
यदि आप लिख देंते नहीं ।  
सन्देह है , तो रामके यों ,  
नाम हम लेते नहीं ॥

( १२ )  
प्रतिपल बदलता जो सदा ,  
विधिने रचा उस लोकको ।  
पर आपने कैसा बनाया ,  
धन्य अव्यय श्लोकको ॥

( १३ )  
पथके प्रदर्शक आप यदि ,  
संसारमें आते नहीं ।  
तो काव्य-काननके पथिक ,  
हम बन कभी पाते नहीं ॥

( १४ )  
है ईशा भी कवि किन्तु उससे ,  
अत्यधिक तुम बढ़ गये ।  
वह आदिकविके मञ्जतक-  
पहुँचा नहीं , तुम बढ़ गये ॥

( १५ )  
कवि आप ही हैं , अन्य भी अब-  
काव्यको करते रहें ।  
नर्तक गिरिश हैं , नाच करके-  
मृत भी मरते रहें ॥

( १६ )  
काव्याब्धिपर दृढ़ सेतु बाँधा ,  
आपने ही पथमय ।  
अब पार करते हैं उसे ,  
बलहीन भी होकर अभय ॥

( १७ )  
कविवृन्द वन्दित आज भी है ,  
आपके ही कृत्यसे ।  
समता न कर सकता यदपि वह ,  
आपके लघुभृत्यसे ॥

( १८ )  
है रामसे ही आपका यश ,  
राम-यश भी आपसे ।  
निर्मुक्त दोनोंने किया ,  
संसारको त्रयतापसे ॥

( १९ )  
सत्पात्र-गुणको कवि लिखे ,  
यह आपका आदेश है ।  
शिल्पी वहाँ जाता नहीं ,  
जो वनचरोंका देश है ॥

( २० )  
उसको त्रिदिवमें भी सुधा-  
मिल जायगी जाकर कभी ।  
जिसने सुधा पाई , तुम्हारे-  
काव्यको पाकर कभी ॥

## भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया

( लेखक—मेहता पं० श्रीलज्जारामजी शर्मा )



तःअरव्यीय गोस्वामी तुलसीदासजीका जगद्गन्ध 'रामायण-मानस' परम उत्कृष्ट ग्रन्थ होनेपर भी वह इतिहासकी गवनामें आने योग्य नहीं है। वह वास्तवमें एक महाकाव्य है। उसमें बरिषा ङंगसे यथायोग्य समय और स्थानोंपर सभी रसोंका समावेश किया जानेपर भी वह भक्तिरसप्रधान है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको अवतार-अवतारी ही नहीं, परब्रह्म, परमात्मा, सर्वेश्वर मानकर उसकी अप्रत्यक्ष इतिहास रचना की गयी है। कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार महात्मा सूरदासजीने गोस्वामीजीसे कहा कि—'आप जिन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी उपासना करते हैं वे तो भगवान् के अंशावतार हैं किन्तु मेरे आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अवतारी हैं।' वास्तवमें गीतगोविन्दमें कवि-कुल-कमल-विवाकर जयदेवकी और श्रीमद्भागवतमें वेदव्याख्याता भगवान् वेदव्यासकी गवाही भी उनके इस कथनका प्रतिपादन करती है। जो कुछ भी हो, गोस्वामीजी आश्चर्यचकित होकर कहने लगे—'हैं, मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं? मैं तो अवतल राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र समझकर ही उनकी आराधना करता था। अब—अब कि आप उन्हें अवतार मानते हैं तो उससे द्विगुण ऋतुगुण रूपसे उनकी उपासना करूँगा।' यह गोस्वामीजीकी अनन्य भक्तिका हार्दिक उद्गार मात्र है किन्तु 'रामायण-मानस' के राम हैं तो वैसे ही वैसे ऊपर कहे गये हैं।

जिस तरह उक्त कहावत प्रसिद्ध है उसी प्रकार कहा जाता है कि—एक बार सम्राट् अकबरने इन दोनों महात्माओंकी करामातके परीक्षणकी इच्छासे जहाँपर ये उपस्थित थे, वहाँ एक मन्त्र हाथी बुझवा दिया। हाथीके घण्टोंका शब्द सुनते ही महात्मा सूरदासजी वहाँसे भगे, किन्तु गोस्वामीजी अचल हिमाचलकी भाँति टससे मस भी न हुए। बादशाहने सूरदासजीको बुलाकर इसका कारण पूछा। वह कहने लगे—'मेरा इष्टदेव ग्वालेका छोकरा सात वर्षका बालक है। विरगलकाय हाथीको देखकर कटीं डर न जाय। अतः मैं, उसे लेकर भाग

निकला।' तब बादशाह बोले—'किर तुलसीदासजी क्यों नहीं भागे?' उत्तरमें महात्माजीने कहा—'वह भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रके उपासक हैं। उस समय 'मानस' में मेघनाद-वधकी रचना कर रहे थे। भागते भी तो कैसे भागते?' दोनोंका भाव दोनोंके हृदयका उद्गार है। दोनों कहावतें और महात्मा सूरदासजीके शब्द उनके ही चोट प्रकाशित कर रहे हैं कि गोस्वामीजीके विषयमें उनकी कैसी पूज्यबुद्धि थी।

इन उदाहरणोंसे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीकी रचना इतिहास नहीं। इस दशामें जो सज्जन 'मानस' को इतिहास मानकर विविध तर्क करते हैं वे भूलते हैं। गोस्वामीजीने 'रामायण-मानस' की रचना वाल्मीकीय रामायण, हनुमन्नाटक, अजन्म-राघव प्रभृति अनेक इतिहास पुराण और काव्य-ग्रन्थोंके आधारपर की है। उसमें कथा-भाग विशेषकर वाल्मीकीय रामायणसे लिया हुआ है, अन्य भाग प्रायः भागवतके हैं। 'मानस' में किष्किन्धा-काण्डका ऋतुचर्यन भागवतके दशमस्कन्धके ऋतुचर्यनकी छाया है और उत्तरकाण्डका कलिधर्म भागवतके कलिधर्मका ज्यों-का-त्यों आध्यात्मिक है। रावणराज विभीषण ज्येष्ठ-बन्धु रावणसे तिरस्कृत होकर वाल्मीकिके अनुसार अक्षय ही भगवान्से लड़ाका राज्य पानेकी लालसासे गया था। वहाँ भक्ति नामसे उसके मुखसे एक भी शब्द नहीं कहलाया गया। गोस्वामीजीने अक्रूरके अजगमनके प्रसङ्गको भागवतसे लेकर विभीषणके हृदयमें प्रवेश करा दिया और इस तरह गोस्वामीजीकी कृपासे रावणलोलुप विभीषण भक्ताराज विभीषण बना दिया गया। इतना ही क्यों, भागवतसे कंसवधकी रचनाके आधारपर राजाके अखाटमें जो दृश्य दिखाया गया था, वही थोड़े बहुत हेर-फेरके साथ मानसकी जनकसभामें धनुषभङ्गके समय आ बिराजा है। उन्होंने जितना अंश भागवतसे लिया है, वही खूबीके साथ लिया है और कहीं कहीं तो 'मानस' में वह भगवान् वेदव्यासजीसे भी बाजी मार ले गये हैं। वही कंसके अखाटमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराते समय वेदव्यासजीने 'जीनां सरो शूर्तिमान्' इस पदका उल्लेख कर राज-सभामें उपस्थित श्रीकृष्णकी माता, बानी, दादी, चाची

कल्याण



भांकी मद्गुप्तमदन

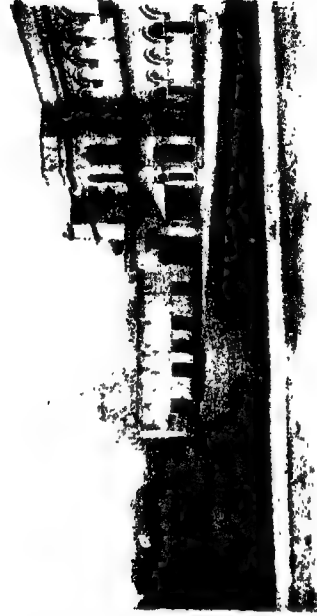


स्वर्णद्वार घाट

(अयोध्यापुरी)



मन्दिर राजद्वार

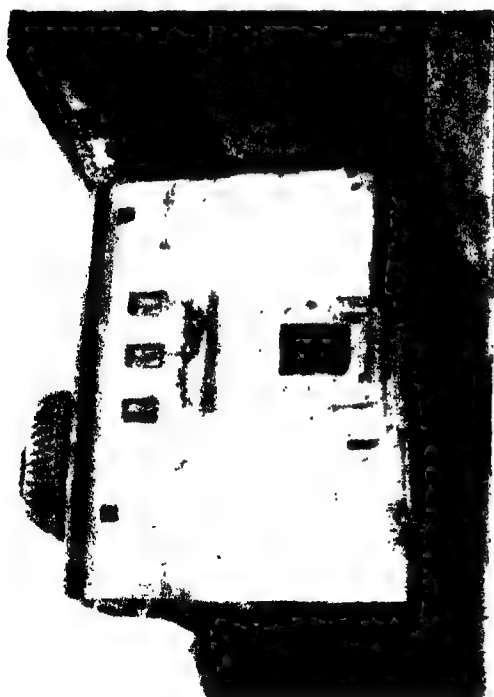


ददुआ राजमहल—पीरो मन्दिर श्रीदश नेश्वर नाथ

कल्याण



मन्दिर दशरथ-यज्ञ-भवन



बैताके आकुर

(अयोध्यापुरी)



धर्म हरि



गैत जहाँना

इत्यादिको मानो पञ्चशायकका शिकार बना दिया था। गोस्वामीजीको इतना संशेप-इतना अनर्थ पसन्द न आया, उन्होंने इसीजिये जनक-सभामें बैठी हुई महिलाओंके विषयमें—'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तेसी।' इस चौपाईके द्वारा उन रमणीयोंका हार्दिक आभ विखलाकर केवल उनके साथ न्याय ही नहीं किया बल्कि उनको जोकापवादसे भी बचा दिया। भागवतमें ही क्यों, संस्कृतके भावपुराणोंमें—काव्योंमें किसी महिलाके नख-सिखका वर्णन करते हुए उसके सभी अंगोंका उल्लेख किया गया है। परन्तु गोस्वामीजीकी जगजननी जानकीके विषयमें या किसी भी रमणीके विषयमें ऐसा लिखना जजास्पद मर्वादाविरुद्ध मालूम हुआ। उन्होंने जहाँ-जहाँ भगवतीके नख-सिखका वर्णन करनेकी आवश्यकता समझी, वहाँ-वहाँ नये-नये ढंगसे और ऐसे ढंगसे काम लिया जिसका उनके पूर्ववर्ती किसी कविने कभी स्वप्नमें भी खयाल न किया होगा। यहाँ तक कि 'सीता चरन चोच हति भाग।' का उल्लेख करते हुए उस अङ्गको स्पष्ट बचा दिया, जिसका प्रयोग वास्मीकिजीने खुले शब्दोंमें किया था।

इस जगह इन उदाहरणोंद्वारा बड़ी विखला देना इष्ट है कि काव्य और इतिहासमें बहुत भारी अन्तर हुआ करता है। 'रामायण-मानस' जैसे ऐतिहासिक काव्य अवश्य ही इतिहासोंके आधारपर लिखे गये हैं, किन्तु इतिहास-लेखनमें जहाँ व्यक्ति—समाजका वातावरण—हृदय चित्र लखा किया जाता है वहाँ काव्यमें उसके प्रधान पात्र, अथवा पात्रोंका चित्र सुचारुकर विखलाया जाता है। चरित्रके दोषोंको छिपाना और गुणोंको प्रकट करना ही कविका उद्देश्य है। परित्याग यह होता है कि प्रायः इतिहासमें प्रधान पात्रका जो उत्कृष्ट गुण है वही काव्यमें कहीं कहीं दोषकी छिन्निमें जाया जा सकता है। भगवान् रामचन्द्रजीके सुप्रचरित्रका एक उत्कृष्ट गुण शायद इसी सिद्धान्तके कारण गोस्वामीजीकी लेखनीद्वारा 'मानस' में स्थान देनेका अधिकारी नहीं समझा गया। घटना राम-रावण-संग्रामकी है।

प्रायः-प्रिय-बन्धु लक्ष्मणके मेघनादकी शक्तिसे मूर्छित होनेपर केवल नरसीला दिखानेके लिये मर्वादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र प्राकृत मनुष्यकी तरह घबड़ाकर अवश्य रोये और पड़ताये थे। अवश्य ही उन्होंने हृष्यकी दुर्बलता दिखानेमें कामल कर दिया था किन्तु जब बड़ी लक्ष्मण

रावणके बाणोंसे बेहोश हुए तब भगवान् मर्वादा-पुरुषोत्तमने एक सर्व आहतक न भरी। इसका एक कारण था। उस समय रोने, घबड़ाने और पड़लानेका अवकाश था, इसलिये रोये-धोये, किन्तु इस समयकी दशा बिल्कुल निराली थी। इस समय परम पराक्रमी, विश्वविजयी राक्षसराज रावण बीसों हाथोंसे एक साथ सैकड़ोंकी संख्यामें घायल चला-चलाकर बानरी सेनाका संहार कर रहा था। इतना ही नहीं, इस भूम-धामसे आक्रमण करते हुए भगवान् रामचन्द्रकी ओर वह बड़ा चला आ रहा था। अपने आश्रित वानरोंकी—उन वानरोंकी जिन्होंने भगवान्की सेवामें आरम्भकृत करनेका इष्ट संकल्प किया था—घोर विपत्तिके समय रक्षा करनेसे मन इटाकर यदि वह एक मिनटके लिये भी ठहरते, आईकी सेवा-शुश्रूषा अथवा चिकित्साका प्रबन्ध करनेमें लग जाते तो उनके विमल चरित्रमें कर्तव्यशून्यताका काला टीका लगाकर उन्हें स्वार्थीपनका शिकार बनानेमें इतिहास-लेखक कदापि आना-कानी—रिचावत न करते। इधर रावणकी शक्तिसे लक्ष्मण मूर्छित हुए थे और उधर वीरकेसरी हनुमान्की जातसे राक्षसराज रावण। रावणको सचेत और युद्धके लिये सज्ज देखकर हनुमान्जीके परामर्शसे उन्हींके कन्धेपर सवार हो रामचन्द्रजी रावणका मुकाबला करनेके लिये आगे बढ़े। इस तरह आगुल्लेहकी उपेक्षा मने ही कहलाये परन्तु भगवान्ने अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये प्रायःप्रिय आईको—'विष्णो मीगममी-मांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन्'—के आधारपर छोड़ दिया। उनको एक बार कर्तव्यके अनुरोधसे अन्यत्र तपस्वी शम्भूकका वध करना पड़ा था, दूसरी बार प्रायःप्रिया—इदयेधरी जानकीका त्याग करना पड़ा था और तीसरी बार अपने आश्रित आईको मूर्छित अवस्थामें मृत्यु-शय्याके निकट छोड़ना पड़ा।

इस तरह अवश्य ही वह कलेजेपर पत्थर रखकर परम प्रतापी शत्रुसे युद्धमें मुठभेड़ करनेको सज्ज हुए, परन्तु इसप्रकारका कर्तव्य पालन करते समय यदि वह आईको भूल जाते तो एक ओरसे हटकर कर्तव्य-शून्यता उनपर दूसरी ओरसे आ चढ़ती। उन्होंने ठक वाक्यद्वारा अपने प्रिय बन्धुको उनके अवतार होनेकी याद दिलायी। उन्होंने आईकी सेवा-शुश्रूषाका, उनकी रक्षा-चिकित्साका भार राक्षसराज जाम्बवान्, वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणपर छोड़ा। इसप्रकारसे सब तरह तैयार होकर

भगवान् ने अपने शत्रुको बखकारा। वह कहने लगे— 'तूने मेरा अभिय करनेमें कमी नहीं की है। यदि आज तू इन्द्र, भास्कर, ब्रह्मा, वैश्वानर वा शङ्करकी शरणा में भी चला जाय, यदि आज वहाँ विशाखोंमें भागकर बचना चाहे तो भी मेरे हाथसे बचकर नहीं निकल सकता। आज बेशक अपनी शक्तिले तूने लक्ष्मणको लापित किया है किन्तु मैं इस दुःखकी शान्तिके लिये तुम्हें पुत्रों और पौत्रोंसहित मारे बिना न छोड़ूँगा। जिन बाणोंसे मैंने जनस्थानमें चौदह सहस्र राक्षसोंका संहार किया था उन्होंने तुम्हें मार्लेंगा।' इसके अनन्तर राम और रावणका घोर संग्राम हुआ। वही युद्ध, जिसके लिये कहा जाता है— 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोर्वि।' तात्पर्य यह कि इनकी भिन्न एक निराजे टंगकी थी। वह ऐसा संग्राम था जैसा संसारके इतिहासमें दूसरा—'न भूतो न भविष्यति'। इस भीषण संग्राममें रावण घबड़ा उठा। वही रावण विचलित हो उठा जो सचमुच विचलितभी कहलानेकी वमता रखता था। रामके बाणोंकी मारसे व्याकुल रावणका चतुर्ध हाथसे गिर पड़ा। उसका सूर्यप्रतिम किरीट लखड़-लखड़ हो गया।

आजकलकी कूटनीतिके अनुसार ऐसे घबड़ाये हुए शत्रुको यदि भगवान् रामचन्द्र उसी समय दबोच लेते तो कोई भी उन्हें बुरा कहनेवाला न था। सम्भव है कि घबड़ाये हुए शत्रुपर दया दिलानेवाले श्रीरामपर आजके युद्धपटु वीर कायरता या बुद्धिहीनताका कलङ्क लगाने किन्तु उनके उदार हृदयमें यदि इसप्रकारकी कूटनीतिको स्थान होता तो वह कदापि मर्षादा-पुरुषोत्तम कहलानेके अधिकारी न होते। वे बाणधर्म भगवान् के अवतार थे। उन्हें अबतार लेकर संसारके इतिहासमें सर्वोत्तम आदर्श, नर-रत्नका एक उत्कृष्ट आदर्श खड़ा करना अभीष्ट था। वे चाहते थे कि उनकी उपमाके वही उपमेय हों। वस, उन्होंने वही कार्य किया जो उनके सहस्र महापुरुषको करना चाहिये था। उन्होंने घबड़ाये हुए कर्तव्यशून्य और अपनी प्राणप्रियाको उनकी अनुपस्थितिमें बलपूर्वक बुरा ले जानेवाले नीच शत्रुको समाश्रय देते हुए सम्बोधन किया—'यद्यपि तूने आज बड़ा भीम कर्म करके मुझे आतृहीन कर दिया है, तू मेरी अनुपस्थितिमें मेरी गृहिणीको बलपूर्वक पकड़ लाया था, इसलिये मैंने आज ही प्रतिज्ञा की थी कि मैं आज तेरा बंधन करके तुम्हें सदाके लिये घराणाधीन कर दालूँगा। किन्तु तू मेरे बाणोंकी मारसे व्याकुल है, तू

खपते-खपते थक गया है इसलिये अब तुम्हपर प्रहार करना मैं उचित नहीं समझता। जा, जङ्गलमें चला जा। फिर जब तू तैयार होकर मुझसे युद्ध करनेके लिये सामने आवेगा, तब देखूँगा कि तुझमें कितना शौर्य है।'।

प्रबल शत्रुसे इस तरह उदारताका-दयाका व्यवहार पाकर रावण भागा हुआ जङ्गलमें पहुँचा और तब इधर भगवान् रामचन्द्रको प्रियबन्धु लक्ष्मणकी चिकित्सा कराने-उन्हें आरोग्यता प्रदान करनेका अवसर मिला।

रामबाणोंके अत्यन्त पीड़ित और व्यथित रावणने यद्यपि जङ्गलमें जाकर शरण ली, तथापि उसकी दशा उस समय वैसी ही थी जैसी पराक्रमी शार्ङ्गका तमाचा लाकर मत्त मत्तगकी अथवा गल्लके पंजोंसे छूटे हुए सर्पकी होती है। वह बारम्बार जङ्गलके सहस्र अभोघ राम-शरोंकी मारको झरझर व्याकुल हो उठता था। वह राक्षसोंकी सभामें सुवर्ण-सिंहासनपर आसीन होकर सोचने लगा। सभास्थल बही, सिंहासन बही, किन्तु विचलितभी रावण आज पराजित, व्याकुल और अथभीत था। उसे आज वह राजसभा, वह ठाट, वह वैभव—सब खानेको दौड़ते थे। इस समय उसे यदि इसके बड़े फूसकी कोपड़ी मिलती तो गनीमत थी। सचमुच ही उसे माता पृथ्वी मार्ग दे देती तो उसमें समा जानेमें ही सन्तोष था। वह जिन रामका, एक समय मनुष्य समझकर निरादर करता था, जिन्हें एक समय तुच्छातिगुण्य मानकर उनकी प्रिय पत्नीको हर लाया था, हर पर हर और राक्षसोंका बिनाशपर बिनाश होनेपर जिनके लिये उसने— 'निजं भुज बलं मे वैरं बढ़ाया। देहां उतर जो रिपु चड़े आया ॥' का प्रयोग किया उन्होंने रामके आगे आज उसे हार खानी पड़ी। उनकी कृपासे-केवल उनकी दयासे प्राण बचाकर समर-भूमिमेंसे भाग आना पड़ा। रावण-सहस्र अभिमानीके लिये इससे बढ़कर जजाकी कौन-सी बात हो सकती है? भगवान् रामकी उस दयाको यदि वह अन्यथापूर्वक वापस करनेकी वमता रखता तो अवश्य ही उसे सन्तोष होता। उसने अपनी करनीपर पड़ताते हुए कहा—'मैंने माताका, गृहिणीका, और भाईका उपदेश न मानकर बहुत बुरा किया। मैंने अज्ञ-सरीसे बसीठीको पाकर रामके प्रलाभको ठुकराया। मैंने उग्र तप करके बड़ेसे बड़ा करदान पाया। उस करदानके भरोसे मैं सुरेन्द्रवक्त्रको तुच्छ समझता था। हाय! हाय! मैंने वर माँगते समय मनुष्य-जातिको तुच्छ समझकर बही भारी

भूख की। क्या अच्छा होता जो उस समय मैं मनुष्य-जातिसे भी अपनी अवस्थता माँग लेता। आज राजा अनुरोधका कथन सत्य हुआ। वास्तवमें तपस्विनी वेदवती, पार्वती, नन्दीश्वर, रम्भा और वसु-कन्याके साथ सच्चे हो गये। निश्चय, अब निश्चय हो गया कि वही वेदवती महाभाग सीताके रूपमें मेरा नाश करनेको अवतरित हुई है। जिस राक्षसके आगे इन्द्रादि देवता काँपते हैं, जिसका नाम लेते ही त्रिलोकी सिहर उठती है उसी राक्षसको आज एक तुच्छ मनुष्यके आगेसे, उससे प्राण-मित्रा प्राप्तकर भाग जाना पड़ा। वाल्मीकीय रामायणमें इस विषयमें जो कुछ लिखा है वह उसका अविकल भाषान्तर नहीं है। भाव उसके हैं और भाषा मेरी है।

इसप्रकार बिलाप करते हुए राक्षसने भगवान् रामचन्द्रके अमोघ वार्योंका शिकार करनेके लिये भाई कुम्भकर्णको जगाया। इसके बाद जो कुछ घटनाएँ हुईं उनका उल्लेख गोस्वामीजीके 'रामायण-मानस' में है, किन्तु सहसा समझमें नहीं आता कि वह ऐसे आवश्यक प्रसङ्गको—जिसका उल्लेख करनेमें शत्रुघ्न दया दिखानेमें उनके इष्टदेवकी कीर्ति होती थी—क्यों छोड़ गये। अवश्य ही उन्होंने चौबीस हजार वाल्मीकीय रामायणको मानस-त्रैलोक्य छोटी पुस्तिकामें रखकर गागरमें सागर भरनेका सराहनीय उपक्रम किया है और इसलिये अनेक स्थलोंकी अन्यान्य कथाएँ ग्रन्थ में भी कहीं घटा देनी और कहीं बिल्कुल छोड़ देनी पड़ी हैं, किन्तु प्रभ यह उठता है कि भगवान् रामचन्द्रके चरित्रकी उत्कृष्टता वर्णन करनेवाली यह कथा क्यों छोड़ दी गयी? 'माधुरी' की पूर्ण संख्या २१ में 'राक्षसका पञ्चाक्षर' शीर्षक नोट देते समय भी इसका कारण मेरे ध्यानमें नहीं आया था। किन्तु अब निश्चय हो गया कि जो कारण अश्वमेध-यज्ञका प्रसङ्ग छोड़ देनेमें था, जो कारण शम्भूके वधकी कथाका उल्लेख न करनेका था, वही कारण इस समय आ उपस्थित हुआ। अवश्य ही अश्वमेध-यज्ञका उल्लेख न करनेमें इतिहासका एक आवश्यक अंश छूट गया किन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ कि 'मानस' काव्य है इतिहास नहीं और काव्यके लिये आवश्यक होता है कि उसके प्रधान पात्र समस्त दोषोंसे बचाये जायें। अश्वमेध-यज्ञका वर्णन करनेसे पूर्व जगज्जननी सीताका त्याग दिखलाना पड़ता था, जब-कुछके हाथसे राम-सेनाका पराजित होना दिखलाना पड़ता था और ऐसा करना उन्हें अग्रिम था। उन्हें पसन्द न था। इसी तरह शम्भू-वध युगधर्मके अनुसार कर्माजमधर्मकी रक्षाके लिये

जनताके मनोरञ्जनार्थ—इसकी इच्छाको देखकर किया गया था किन्तु 'मानस' जिस समयकी रचना है उस समय यह बात पसन्द की जाने योग्य न थी। ऐसा ही कारण इस समय आ उपस्थित हुआ, अवश्य ही इस प्रसङ्गका उल्लेख न करनेसे भगवान् रामचन्द्रजीकी विमल और आदर्श कीर्तिका आवश्यक अंश छूट गया किन्तु इसे 'मानस' में न रखकर गोस्वामीजीने उस आशेपसे अपने इष्टदेवकी बचा लिया जो मूर्च्छितावस्थामें प्राण-मित्र भाईको, अपने आश्रित भाईको, ज्येष्ठ बन्धुके लिये अपना सर्वस्व त्यागकर साथ चले जानेवाले भाईको सिसकते हुए छोड़कर दुःखमें प्रवृत्त होनेपर किया जाता। उन्हें भगवान् श्रीरामकी नीति-निपुणता दिखलानेकी अपेक्षा अच्युत आत्मेन्द्र दिखलाना इष्ट था। किन्तु इतिहासकी दृष्टिसे, चरित्रकी आदर्शताका विवर्णन करते हुए ये तीनों ही घटनाएँ भगवान् के उत्कृष्ट प्रजारजन, नीति-परायणता और कर्तव्य-पालनके अवलम्ब उदाहरण हैं। ये ऐसे आदर्श हैं जैसे संसारके इतिहासमें दूसरे नहीं मिल सकते।

### रामायण नैसर्गिक काव्य है

रामायण केवल एक साधारण कहानी नहीं है। यह हृदय-तलसे विनिर्गत हुआ एक नैसर्गिक काव्य है, जिसकी प्रत्येक घटनाकी अधिकांश भारतीय सत्य मानते हैं तथा उसमें उनका पूर्ण विश्वास है। यद्यपि इसकी रचना हुए बहुत काल बीत गया तथापि आर्यावर्तके सन्तानमें वह उसी रूपसे वर्तमान है, जैसा कि पचास पीढ़ी पूर्व उसके पूर्वजोंके हृदयमें उसे स्थान प्राप्त था। श्रीरामचन्द्रजीने अपने जन्मस्थानसे लेकर लङ्का तक, विजयपूर्ण प्रस्थानके समय जिन-जिन मार्गोंसे होकर भ्रमण किया था उनका अब भी धार्मिक यात्री पदशः अनुसरण करते हैं। करोड़ों मनुष्योंका यह दृढ़ विश्वास है कि केवल श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेनेसे ही आत्म-रक्षा तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। अतः जिन्हें भारतीय जनताके विषयमें पूर्ण जानकारी प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, उनके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

—जोमन ('इण्डियन एपिक्स'के रचयिता)

## गोस्वामीजी और महिला-समाज

( लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी )



धर कुछ दिनोंसे लोग गोस्वामी मुखसीदासजीपर यह आचेप करने लगे हैं कि यह महिला-समाजके निन्दक थे और उसके विषे विष उगला करते थे। गोस्वामीजीको जीवनभरमें कभी खीका सुख प्राप्त नहीं हुआ, इसीसे वह स्त्रियोंके विरोधी बन उन्हें खली-कटी सुनाने लगे। मासिकपत्रोंमें इस विषयके लम्बे-चौड़े लेख भी निकल चुके हैं। उनमें श्रीरामचरितमानसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि गोस्वामीजी स्त्रियोंके शत्रु थे। पर मेरी समझसे ऐसी बात नहीं है।

यों तो जितने भक्त और त्यागी हुए हैं प्रायः सबने ही कामिनी-काञ्चनको सब दुःखोंका मूल बताया और उनके त्यागका उपदेश किया है। फिर केवल गोस्वामीजीपर ही यह आचेप क्यों? इसके सिवा 'रामचरितमानस' की जिन पंक्तियोंके सहारे उनपर आचेप किया जाता है वह भी युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि वे पंक्तियाँ गोस्वामीजीकी बनायी होनेपर भी दूसरोंके मुँहसे कहलायी गयी हैं। इसलिये वह उनकी उक्ति नहीं हो सकती। कविकी उक्तियाँ—सिद्धान्त बही हो सकता है जो वह स्वयं कहता है। जैसे—

रामनाम मनि दीप बर, जीह देहरी द्वार।  
मुखसी मीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥  
कामिहि नारि पिमारि जिमि, लोमहि प्रिय जिमि दाम।  
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लामहु मोहि राम॥  
रामनाम भव-भेषज, हरन चार त्रय मूल।  
सो दयालु मोहि तोहिपर, रहै सदा अनुकूल॥

जो वह दूसरोंके मुँहसे कहलाता है वह उसकी उक्ति नहीं हो सकती। जो पात्र जैसा होता है उसके मुँहसे वैसी ही उक्ति करायी जाती है। अन्यथा होनेसे कविकी निन्दा होती है, पर आचेप करनेवाको यह बातें क्यों सोचने लगे? उन्हें तो गोस्वामीजीपर आचेपकर पाबिकल्प दिखाना है। अस्तु—

'मानसरामायण' की जिन पंक्तियोंके कारण गोस्वामीजीपर आचेप होता है अब एक-एक कर उनपर ही विचार करता हूँ। आशा है कि पाठक गोस्वामीजीके पक्षमें ही निर्णय करेंगे। सुनिये—

कवने अवसर का भग्न, गयेउँ नारि-विस्वास।

जोग सिद्ध फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास॥

'गयेउँ नारि विस्वास' बस यही इसमें आचेपका कारण है पर इससे गोस्वामीजीपर आचेप नहीं हो सकता क्योंकि यह महाराजा दशरथकी उक्ति है और उस समयकी है जब कैकेयीने कहा था—

सुनहु प्रानपति भावत जीका। देहु एक बर भरतहि टीका॥

मौगउँ दूसर बर कर जेरे। पुरबहु नाथ मनोरथ मेरे॥

तापस बेग बिशेष उदासी। चौदह वर्ष राम बनबासी॥

'चौदह वर्ष राम बनबासी' वाक्य राजा दशरथको वाक्य-सा लगता, इसपर वह पञ्चात्ताप कर कहते हैं 'गयेउँ नारि विस्वास' अर्थात् इस रानी कैकेयीका विश्वासकर मैं कैस गया। इसका संकेत कैकेयीकी ओर है, तारे नारी-समाजकी ओर नहीं, क्योंकि वह कैकेयीका ही विश्वास करके फँसे थे और किसीका नहीं। इसलिये गोस्वामीजीपर आचेप व्यर्थ है।

अब दूसरा दोहा लीजिये—

काह न पावक जरि सई, का न समुद्र समाय।

का न करै अकला प्रबल, कहि जग काल न स्वाय॥

यहाँ भी यही हाज है। श्रीरामचन्द्रजी जब बन जानेको तैयार हो गये तब अयोध्यावासी आपसमें दुखी हो बातचीत करने हैं। कोई कैकेयीको सब घनयोंका मूल बताकर गालियाँ देता है, कोई भाव्यको दोष देता है। मतलब यह कि सब ही अपनी-अपनी समस्याके अनुसार कुछ-न-कुछ कहते हैं। उन्हीं दुखी अयोध्यावासियोंकी उक्ति है कि—'का न करै अकला प्रबल' अर्थात् स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकती हैं, मतलब, सब कुछ कर सकती हैं। मुखसीदासजीने तो अयोध्याकी जनताका भाव प्रदर्शित किया है, फिर उनपर आचेप क्यों?



**इसीप्रकार—**

सत्य कहहिं कवि नारि स्वभाऊ । सब बिधि अगम अगाध दुगड ॥  
निज प्रतिबिम्ब बरक गहि जाई । जानि न जाइ नारि-गति भाई ॥

यह भी जनताकी उक्ति है, गोस्वामीजीकी नहीं ।

बिबिध न नारि-हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अबगुन खानी ॥

यह भरतजीकी उक्ति है । जनिहाजसे आनेपर जब उन्होंने पिनाका मरवा और राम, जयमवा, सीताका वन-गमन सुना तब वह शोकसे व्याकुल हो गये । जब मालूम हुआ कि इन अनर्थोंकी जड़ रानी कैकेयी ही है, तब तो वह हतबुद्धि हो माताको फटकारने लगे । माताको फटकारते-फटकारते नारी-समाजतकको फटकार डाला । क्रोधमें येना होता ही है । आजकल भी किसीसे लड़ाई होती है तो एकके अपराधपर उसके सारे जानदान और जातिभरको गालियाँ सुननी पड़ती हैं । दो विभिन्न जातिके लोगोंमें झगड़ा होनेपर दोनों एक दूसरेकी जातिको

भी निरुद्ध बता देते हैं । इसी तरह भरतजीने मातापर गुस्ता होनेके कारण सारी स्त्रियोंको कपटिन, पापिन और अवगुणोंकी कानितक कह दिया । इस स्वाभाविक बर्चानके हेतु गोस्वामीजीपर आक्षेप न कर उनकी प्रशंसा करनी चाहिये ।

ढोल गवौर सूत्र पसु नारी । सकल ताड़नाके अधिकारी ॥

यह उक्ति भी समुद्रकी है । श्रीरामचन्द्रजीने जब धनुष चढ़ाया तब समुद्र 'विभ्र रूप आयो तमि माना ।' इसी समयकी यह उक्ति है । गोस्वामीजी वहाँ भी बच गये ।

विस्तार-भयसे और अधिक न लिख यह लेख यहीं समाप्त करता हूँ । पर इतना और भी निवेदन करता हूँ कि यदि तुलसीदासजी स्त्रियोंके निन्दक होते तो कौसल्या, सुमित्रा, सीता, जनक्या, तारा, मन्दोदरी आदिसे अपढ़ी अपढ़ी उपदेशमय बातें न कहजाते । मेरी समझसे गोस्वामीजी महिला-समाजका जितना आदर करते थे, उतना शायद आक्षेप करनेवाले भी न करते होंगे ।

## कैसे आऊँ द्वार

बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

भक्ति-दीप टिम टिम उदोत है ,

मन बैठा अज्ञान-पोत है ,

शवरी-सा न प्रेम स्रोत है ,

शंकाका व्यापार ;

हृदय-देशमें मचा वासनाओंका हाहाकार ।

बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

लिपटा विषम मोहमें यह तन ,

कहता हूँ कुछ करता कुछ मन .

तुम्हीं बताओ रघुकुल-नन्दन !

कैसे हाथ पसार

गहूँ चरण, मागूँ किस मुखसे क्षमा-भीख कर्तार !

बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

न हनुमत-सी स्वामि-भक्ति है ,

न लक्ष्मण-सी त्याग-शक्ति है ,

सात्विक तुलसी-सम न भक्ति है .

कह दो कौन प्रकार ;

गिरूँ, चरण-रजमें कर डालूँ जन्म सफल भर्तार !

बताओ कैसे आऊँ द्वार ?

## भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी दिनचर्या

(लेखक-श्रीयुत बी० एच० वाडेकर, बी० ए० एल-एल० बी०)

श्रीरामायण-प्रेमियोंके अवलोकनार्थ भगवान्के वनवासकी दिनचर्या अग्निवेश्वरामाशय और  
बोमशरामचरित्रके आधारपर उपस्थित की जाती है।

- ( १ ) विवाहके समय भगवान् रामकी अवस्था पन्द्रह वर्ष तथा महाराणी सीताकी केवल छः वर्षकी थी। (अभि० रा०)  
( २ ) वनवासके लिये प्रस्थान करते समय भगवान् सत्ताईस वर्षके तथा भगवती सीता इकस वर्षकी थीं। (लो० रा०)

### वन-वास

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
प्रथम	३ रात्रियाँ ...	जकाहार।	चतुर्दश	पौष कृष्ण ७	भगवान् रामको श्रीसीताजीके शुद्ध होनेका संवाद मिलना।
"	चतुर्थ रात्रि...	फकाहार।	"	पौष कृष्ण ८	
"	पञ्चम रात्रि...	चित्रकूटकी यात्रा।	"	उत्तराफाल्गुनी	श्रीरामचन्द्रजीका सेनासहित शुद्धके लिये प्रस्थान।
त्रयोदश	.....	शूर्यकलाका अपमान तथा नाक-कान काटना।	"	नक्षत्र विजय- सुहृत् मथ्याङ्क	
"	माघ शुक्ल ८ वृन्द सुहृत्।	रावणद्वारा सीता-हरण।	"	पौष कृष्ण १०	श्रीरामचन्द्रजीका सेनासहित समुद्रतटपर उतरना।
चतुर्दश	मार्गशीर्ष शुक्ल १०	सम्पातीने रामसे कहा कि सीता रावणके द्वीपमें हैं।	"	पौष शुक्ल ४	विभीषणका श्रीरामचन्द्रजीके शरण आना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल ११	श्रीहनुमान्जीका कन्या- कुमारीके समीपवर्ती महेन्द्र पर्वतसे ज्वालामुखी मारकर जङ्गलमें पहुँचना। यह स्थान मन्नास- प्रान्तके तिननेवेली (Tinne- velli) जिलेमें है।	"	" १० से १३ तक	सेतु-निर्माण।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल १२	वृषपर बैठे हुए श्रीहनुमान्- जीका श्रीसीताजीसे वार्तालाप।	"	" १४	सेनाओंका सुषेन-पर्वतके उन्नत समतल भागका मार्ग दिखावना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल १३	श्रीहनुमान्जीद्वारा अचय- कुमार आदि राजसोंका वध तथा अशोकवाटिका-विध्वंस।	"	पौष शुक्ल १५ से	सेनाओंका समुद्र पारकर जङ्गल पहुँचना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल १४	हन्द्रजित्द्वारा श्रीहनुमान्जीका महापाशमें बंधना और हनुमान्- जी द्वारा जङ्गलका अन्वेषण करना।	"	माघ कृष्ण २	सेनाओंका कई द्वारोंमें विभक्त किया जाना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल १५	श्रीहनुमान्जीका महेन्द्र- पर्वत पर झूटना।	"	माघ कृष्ण ११	शुक्र-सारथका सेनामें आ मिलना।
"	पौष कृष्ण ६ ...	वानरोंद्वारा मधुवनका नाश।	"	" १२	श्रीरामका स्व-सैन्य-निरीक्षण।
			"	माघ कृष्ण १३	रावणका स्व-सैन्य-निरीक्षण तथा उनके उत्साहवर्द्धक शुद्ध- कला-प्रदर्शनका अवलोकन।
			"	माघ शुक्ल १	अज्ञेयजीका सन्धिकी शर्तें लेकर रावणके पास जाना। (अज्ञेय- शिष्टाई)।

\* उपर्युक्त दिनों, वर्णनोंमें श्री सीताजीकी अवस्थामें भूल नहीं होता, प्रथमके अनुसार सीता श्रीरामसे ९ वर्ष छोटी थीं तो दूसरेके अनुसार उनका ६ वर्ष छोटी होना सिद्ध है। मेरी समझसे सीताका वय विवाहके समय १२ वर्षसे कम किसी प्रकार नहीं था, इस सम्बन्धमें अन्यत्र प्रकाशित 'विवाहके समय सीताजीकी अवस्था' दीर्घक लेख ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। — सम्पादक

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
चतुर्वर्ष	माघ शुक्ल २ से ८ तक	वानरों तथा राक्षसोंमें युद्ध-आरम्भ ।	चतुर्वर्ष	चैत कृष्ण १४	एक दिन युद्ध बन्द, तथा रावणका रथ-दीक्षा ग्रहण करना अर्थात् स्वयं सैन्य सञ्चालन करना ।
"	माघ शुक्ल ९	रातके समय मेघनादद्वारा श्रीराम-लक्ष्मणका नागपाशमें बाँधा जाना ।	"	" ३०	रावणका युद्धके लिये राजधानीसे प्रस्थान ।
"	" १०	गल्वद्वारा नागपाश काटा जाना ।	"	चैत्र शुक्ल १ से ५	रावणके मन्त्रियोंका वध ।
"	" १०-११	दो दिन युद्ध बन्द ।	"	" ६ से ८	महापारवर्षका वध ।
"	" १२	श्रीहनुमान्जी द्वारा वज्रासका वध ।	"	" ९	श्रीलक्ष्मणजीके शक्तिका सचिद्वत हो जाना ।
"	" १३	श्रीहनुमान्जी द्वारा कम्पनका वध ।	"	" १०	एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।
"	माघ शु० १४ से फाल्गुन कृष्ण १	जीलद्वारा ग्रहणका वध ।	"	" ११	एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।
"	फाल्गुन कृष्ण २ से ४	श्रीरामद्वारा रावणका रथ-भूमिसे भगाया जाना ।	"	चैत्र शुक्ल १२ से वैशाख कृ० १४	लगतातार अठारह दिनों तक राम-रावण-युद्ध और अन्तमें रामद्वारा रावण-वध । युद्ध-समाप्ति ।
"	फाल्गुन कृष्ण ५ से ८	चार दिनतक युद्ध बन्द, कुम्भकर्णका निद्रा-त्याग ।	"	वैशाख कृ० ३०	रावणका धीरोचित अन्तिम-संस्कार ।
"	" ९ से १४	श्रीरामचन्द्रजीद्वारा कुम्भकर्णका वध ।	"	वैशाख शुक्ल १	श्रीरामका सुबेल पर्वतपर लौट जाना तथा युद्धक्षेत्रमें टिकना ।
"	" ३०	कुम्भकर्णके मृत्युशोकमें एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।	"	" २	जंगलमें विभीषणका राज्याभिषेक ।
"	फाल्गुन शुक्ल १ से ४	नरान्तक एवं चार अन्य राक्षसोंका वध ।	"	" ३	श्रीसीताजीकी शुद्धि और श्रीराम-सीता मिलन ।
"	फाल्गुन शुक्ल ५ से ७	अतिकायका वध ।	"	" ४	श्रीरामका पुष्पक विमानपर चढ़कर उत्तर दिशाकी ओर जाना ।
"	फाल्गुन शुक्ल ८ से १२ तक	कुम्भ तथा निकुम्भका वध ।	"	" ५	श्रीरामचन्द्रजीका भारद्वाजके आश्रममें ठहरना । वनवासके चौदह वर्षोंकी समाप्ति ।
"	फाल्गुन शुक्ल १२ से चैत्र कृष्ण १	भकरासका वध ।	१५ वीं वर्ष	वैशाख शुक्ल ६	नन्दीग्राममें श्रीराम-भरतका मिलाप ।
"	चैत्र कृष्ण २	मेघनादका वानर-सेनापर विजय ।	"	" ७	अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक ।
"	चैत्र कृष्ण ३ से ७	५ दिनतक युद्ध बन्द तथा वानरोंका वैद्यक ओषधियों तथा वनस्पतियोंका खाना ।			
"	" ८ से १३	श्रीलक्ष्मणजीद्वारा मेघनादवध ।			

## अब्दरामायणके अनुसार रामायणका तिथिपत्र

(लेखक—श्रीयुत बी०एच० वाडेर बी०, ए०, एल०बी०)

श्रीगिरिधर-कृत एक छोटी-सी 'अब्दरामायण' है। इसमें भगवान् रामचन्द्रजीके जीवनकी अनेक रोचक घटनाओंका वर्णन है। पता नहीं गिरिधरने इन घटनाओंका कहाँसे संकलन किया है ! तिथिपत्रके छिपे निम्नलिखित सूची देखिये—

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
	चैत्र शुक्ल ६, आनन्द नाम संवत्सर मध्याह्न काजमें	श्रीरामचन्द्रजीका अवताररूपसे प्रकट होना।	(वनवास- का १३ वां वर्ष)	फाल्गुनसे	श्रीरामचन्द्रजीका पम्पा नदीके तटपर पहुँचकर तीन मास तक तपस्या करना।
४ था	.....	विद्यारम्भ।	(वनवास का १४ वां वर्ष)	ज्येष्ठ शुक्ल १	श्रीहनुमान्जीका पम्पासर (हम्पा)के तटपर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलान।
११ वाँ	.....	व्रतबन्ध	"	" २	श्रीराम-सुग्रीव-भेंट।
१२ वाँ	.....	श्रीरामचन्द्रजीका, विरबामित्रके साथ उनके आश्रमको जाना।	"	" ३	श्रीरामद्वारा बालि-बध।
१५ वाँ	.....	स्वयंवरमें श्रीरामचन्द्रजीद्वारा शिव-धनुष-भंग और श्रीसीता-पाणि-ग्रहण।	"	" १३	सुग्रीवका किष्किन्ध्यामें राज्याभिषेक।
१५ वेंसे २७ वें तक।	.....	अयोध्या निवास।	"	" १५	श्रीरामचन्द्रजीका माल्यवान् पर्वतपर जाकर वर्षाकालतुल्य एक गुफामें निवास करना।
२७ वाँ	.....	श्रीरामचन्द्रजीका वनगमन।	"	आषाढ ...	जिगाचर्चन।
२७ वेंसे ३१ वें तक	.....	१४ वर्षका वनवास।	"	आश्विन कृष्ण पक्ष	श्रीरामचन्द्रजीका पितृगण तथा पिताके सम्मानार्थ महाव्रत आदि करना।
(वनवास- का प्रथम वर्ष)	वैशाख शुक्ल १	वनवासका प्रथम दिवस।	"	आश्विन शुक्ल १०	श्रीरामचन्द्रजीका गुफा त्यागकर जागे प्रस्थान करना।
"	वैशाख शु० २	श्रीरामचन्द्रजीका चित्रकूट पहुँचना।	"	कार्तिक शुक्ल १०	सुग्रीवका सेना एकत्र करना।
"	वैशाख शु० ६	श्रीभरतजीका श्रीरामचन्द्रजीसे मिलान। तदनन्तर भगवान्का अनुमान १२ वर्ष ६ महीने पर्यन्त पञ्चवटीमें निवास।	"	मार्गशीर्षकृष्ण ७	श्रीहनुमान्जीका श्रीसीताजीकी खोजमें प्रस्थान।
(वनवास का तेरह- वाँ वर्ष)	कार्तिक कृष्ण ३०	शूर्यगस्तके नाक-कान काटना।	"	मार्गशीर्ष शुक्ल १०	श्रीहनुमान्जीका अशोक-वाटिकामें सीताजीसे मिलान।
"	माघ शुक्ल १४	श्रीसीताजीका अन्तर्धान होना।	"	मार्गशीर्ष शुक्ल १२	श्रीहनुमान्जीका अपने दलबल-सहित श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना।
"	फाल्गुन कृष्ण ७	रावणद्वारा(माया) सीताहरण।	"	पौष कृष्ण ३०	सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र-तटपर पड़ाव बालना।



भगवान् श्रीराम और काकभुसुंडि ।  
'चलउं भागि तब पुण देखावहि' ।



वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
वनवासका १४वाँ अथवा भगवान्की आयुका ४१वाँ वर्ष	पौष शुक्ल ४	श्रीबिभीषणजीका श्रीरामजीसे मिलाप।	वनवासका १४ वाँ वर्ष	फाल्गुण कृष्ण ४	लिये समझाना।
	पौष शुक्ल ८ से १२ तक	सेतु-निर्माण।	"	फाल्गुण कृष्ण १ से १४ तक	श्रीरामका रावणके मुकुटोंको नीचे गिरा देना।
"	पौष शुक्ल १४	सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र पार करना।	"	फाल्गुण शुक्ल ४ तक	कुम्भकर्णका युद्धके लिये भाना और उसका श्रीरामचन्द्रजी- द्वारा वध।
"	माघ कृष्ण १ से १० तक	लङ्कापुरीका घेरा जाना।	"	फा० शुक्ल २ से ७ तक	महोदर, त्रिशिरा तथा अन्य रावणके सेनापतियोंका युद्धमें मारा जाना।
"	माघ कृष्ण ११	रावणके शुक्र एवं सारण्य नामक दूतोंका श्रीरामचन्द्रजीके पास जाना।	"	फा० शु० ८ से १२	अतिकाय वध।
"	माघ कृष्ण १२	लङ्काके मुख्य-द्वारका अवरोधकर सेनाका स्थापित कर देना।	"	फा० शु० १३ से चैत्र कृष्ण १ तक	कुम्भ, निकुम्भ, जह्न तथा अन्य राक्षसोंका वध।
"	माघ कृष्ण ३०	श्रीरामका माया-मल्लक रचकर रावणद्वारा भगवती सीताको छोला देनेका प्रयत्न।	"	चैत्र कृष्ण २	मकर, अक्र तथा अन्य योद्धाओंका वध।
"	माघ शुक्ल १	सन्धि (शिष्टार्ध)केलिये अश्वत्थका रावणके पास जाना।	"	चै० कृ० ८ से १३	मेघनादका युद्धके लिये भाना। श्रीहनुमान्जीका द्रोणगिरि जाना और घायल वानरोंका आराम होना।
"	" ७-८	घनघोर युद्ध।	"	चैत्र शुक्ल ११	६ दिनोंतक घनघोर युद्ध।
"	" ११	अकम्पनका वध।	"		मातलिका युद्ध-रथ लेकर श्री- रामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित होना।
"	" १३	अंगदद्वारा वज्रवृक्षका वध।	"	चै० शु० १२ से	१८ दिनोंतक श्रीराम रावणका
"	" १५	नीलद्वारा ग्रहस्तब्ध वध।	"	वैशाख कृ० १४	घोर युद्ध।
"	फाल्गुण कृष्ण २	मन्दोदरीका रावणको, श्री- रामचन्द्रजीके साथ सन्धि करनेके	"	" ३०	रावणका वध।
			"	वैशाख शुक्ल ३	श्रीसीता-राम-मिलाप।

## तुलसी

तुलसीकृत राम-कथा जगमें, नर-नारिन तारनकूं पुल-सी।

पुलसी भवसागर पारन कूं, पाँढि कै मन गाँठ गई खुल-सी ॥

खुल-सी गठरी गई पापनकी, धुल-सी गई औ जनता हुलसी।

हुलसी जनता, हुलसी वसुधा, हुलसी हुलसी, जानिकै तुलसी ॥

श्रीअवन्तविहारी माधुर 'अनन्त'

## वनगमन और रावणवधकी तिथियाँ \*

( लेखक-पं० श्रीराधाकृष्णजी मिश्र )

(१) श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ होती है ?

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ ?

(३) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको वनवाससे अयोध्यामें लौटे ?

(४) उनके वनवासके चौदह वर्षकी पूर्ति किस भाँति हुई ?

उपयुक्त विषयोंमें परस्पर बहुत मतभेद है, इस सम्बन्धमें हम अपने विचार क्रमशः प्रकट करते हैं ।

(१) भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ हुई ?

यह सब जानते हैं कि जिस दिन रामचन्द्रजीका राज्याभिषेक उत्सव था, उसी दिन उनको चौदह वर्षके लिये वनवास-यात्रा करनी पड़ी। इसलिये अभिषेक-तिथिके निर्याच-के साथ ही उनकी वन-यात्रा-तिथिका भी निर्याच हो जाता है। अब देखना चाहिये कि उनका अभिषेक किस दिन था ? वाल्मीकीय रामायणमें अभिषेकके मास और नक्षत्रका तो उल्लेख है, पर पक्ष और तिथिका कुछ निर्देश नहीं। न हो, किन्तु मास और नक्षत्र ही पक्ष और तिथिका पता बता देते हैं। महाराज दशरथ अभिषेकसे पहले दिन रामचन्द्रजीको बुलाकर कह रहे हैं कि—

‘इस समय चैत्रका सुन्दर और पुण्य मास है, जिसमें सब वन जंगल फूल गये हैं। आज पुण्यसे पहले नक्षत्र पुनर्वसुपर चन्द्रमा आया है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि कल निम्न पुण्य ( नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका ) योग है, तुम पुष्यनक्षत्रमें कल अपना अभिषेक करा लो। मेरा अन्नःकरण मानो मुझसे शीघ्रता करा रहा है।’ (वा० रा० २।३।४ एवं २।४।२१-२२)

महाराज दशरथके कथनसे स्पष्ट हो गया कि चैत्र-मासके पुष्य-नक्षत्रमें अभिषेक होनेवाला था, इससे पक्ष और तिथिका

भी निश्चय आपसे आप होजाता है, क्योंकि ज्योतिषकी गणनाके अनुसार पुष्य-नक्षत्र चैत्र-मासके शुक्लपक्षमें ही आता है, सो भी केवल नवमी दशमी और एकादशी इन तीन तिथियोंके भीतर ही। नवमी रिक्रा होनेसे राज्याभिषेकके लिये बर्जित है। एकादशी नव्यातिथि होनेसे राज्याभिषेकके लिये कुछ विशेषता नहीं रखती इसलिये अर्थापत्ति-प्रमाणसे यह सिद्ध हो जाता है कि चैत्र-मासके शुक्ल-पक्षमें पुष्यपक्ष पूर्णातिथि दशमी राज्याभिषेकके लिये नियत हुई थी। किन्तु कैकेयीकी इच्छासे राज्याभिषेक रूक गया और श्रीरामको उसी दिन वन जाना पड़ा। यद्यपि चैत्र-मास राज्याभिषेकके लिये अग्रगण्य है जैसा कि मुहूर्तशास्त्रमें लिखा है—

नाभिषेकः शुभो वाप्यो नृपे चैत्रऽभिषासके ।

न भूसुते प्रसुप्ते च विष्णौ रिक्रासु रात्रिषु ॥

(चण्डेश्वरः)

उत्तराश्रय मंत्रेन्द्र-धातु-चन्द्र-करोडुषु ।

सशुभश्रीज्य-वैष्णोषु कुर्याद्राज्याभिषेचनम् ॥

(कदम्ब)

अर्थात् ‘देवराज्यके समय, चैत्रमास, अधिक मास, रिक्रा तिथि और मंगलवारमें किसीके मतमें, बुधवारमें भी राजाका अभिषेक अशुभ कहा गया है। तीनों उत्तरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, रोहिणी, मृगशीर्ष, इस्त, अश्लेषा, अश्विनी, पुष्य, और रेवती इन नक्षत्रोंमें राजाका अभिषेक करना चाहिये’ फिर भी महाराज दशरथने बर्जित चैत्रमासमें ही रामाभिषेक कर डालनेके लिये शीघ्रता की। इसनी शीघ्रता की कि ‘कोसल-साम्राज्यकी भविष्य युवराज्यके पिता मिथिलाधिपति नृपति सीरध्वज जनकको और प्रभाव-शाखिनी तक्षका रानी कैकेयीके सेजस्थी पिता प्रबल सम्बन्धी केकय राजाको भी बुला नहीं सके। और कह दिया कि कोई बात नहीं, अभिषेकके श्रेष्ठ संवादको वे पीछे सुन लेंगे ( वा० रा० २।१।४८ ) ।

\* श्रीरामके वन गमन और लङ्काविजयके पश्चात् पुनः अयोध्या लौटनेकी तिथियोंके सम्बन्धमें कल्याणमें पहले श्रद्धेय मिश्रजीका एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुका है। तिथिपत्र सम्बन्धी दो अन्य लेख इस अंकमें छपे हैं अतएव पाठकोंके अवलोकनार्थ उम लेखका आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। —सम्पादक



वद्यपि राजाकी मृत्यु आदि राजनैतिक संकटके समय अभिवेकके मुहूर्तके लिये सादरा विवेचनकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु महाराज दशरथने मुहूर्तके विशेष आलोचनकी उद्देश्य कर इनकी स्वरा क्यों की ? इसका उत्तर रामायणमें स्वयं वे ही श्रीरामचन्द्रजीके सामने इसप्रकार दे रहे हैं—

‘हे पुत्र राघव ! और भी एक बात है कि आज मैंने (बड़े) अशुभ स्वप्न देखे हैं । (आकाशमें) निर्घात शब्द हो रहे हैं और वहाँसे महानाद करती हुई उल्काएँ पड़ रही हैं दैवज्ञ बता रहे हैं कि मेरे नक्षत्रपर हे राम ! शुक्र, मङ्गल और राहु दारुण ग्रह आये हुए हैं । ऐसे निमित्तों (उत्पातों) के प्रादुर्भाव होनेपर प्रायः राजाकी मृत्यु होती है और (कोई) घोर विपद् आती है । अतः जबतक किसी तरह मेरा चित्त मोहित नहीं होता है, उससे पहले ही (तुम अपना) अभिवेक करा लो क्योंकि मनुष्योंकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती । इस तरहके कार्योंमें बहुत विघ्न आ पड़ते हैं, जबतक भरत राजधानीसे बाहर हैं, तबतक ही मेरी सम्मतिमें तुम्हारे अभिवेकके लिये (अच्छा) अवसर है । यह ठीक है कि तुम्हारे भाई भरत (अबतक) सप्त-पुरुषोंके आचरणमें स्थिर हैं । किन्तु मेरी सम्मतिमें मनुष्योंके चित्त सदा एकत्र नहीं रहते । (वा० रा० अ०)

यह हो सकता है कि रामायण-युगके किसी मुहूर्त-शास्त्रमें राज्याभिवेकके लिये शायद चैत्र-मास वर्जित न हो और यह भी ठीक है कि श्रीराम-राज्याभिवेकका मुहूर्त चाहें दुर्लभ दैवगतिके सामने पराजित हो गया, तो भी ऊपरके अवतरणसे यह तो मानना ही पड़ेगा कि कोशलेश्वरने राज्याभिवेकके सब अङ्गोंपर सन्तोष-जनक रीतिसे विचार नहीं किया और न करना चाहता । श्रीरामचन्द्रजीके समक्ष सशंक-हृदय वृद्ध नृपतिने जो हृदयका उद्गार प्रकट किया और जो आवेग दिखाया, उससे तो यही प्रतीत होता है कि उन्हें बढ़िया मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं थी, अभिवेकके लिये बहुत भारी तैयारीकी जालसा भी नहीं थी । जालसा थी तो एकमात्र यही कि किसी तरहसे भी जल्दी-से-जल्दी वे एक बार लोकनयनाभिराम श्रीरामको सूर्यवंशके प्रधान और विरप्रतिष्ठित राजसिंहासनपर अभिविक्त देखकर नेत्रोंको सफल कर लें । वे इतने अधिक क्यों हुए ? माबूम होता है कि अयोध्याके राजाज्य पर जो विपत्ति आनेवाली थी, उसके विषादकी छाया ने उनके हृदयको घेर लिया था । उससे समुद्रगन्भीर वे

राजर्षि इतने विह्वल और चञ्चल हो गये कि आकाशकी तरह निष्कलंक लोकपावन महात्मागी राजकुमार भरतजी पर भी अचम्भ्य सन्देह कर बैठे । शेक्सपीयरद्वारा कल्पित कलिनाचक हैमलेटका ज्ञान-गर्भ उन्माद और किंग लीयरका परित्यामानुकूल पागलपन भी पढ़ा है, पर त्रेतायुगके ऋषि-प्रशंसित देव-वन्दित उस पुण्य-श्लोक अमर नरपतिके मनकी प्रकृत अन्वस्थाका चित्र बड़ा ही मर्मस्पर्शी है । जो हो, ऐसी दशमें जो कुछ होना था वह हो गया । भगवत्-संकेतसे घटनाचक्र घूम गया । अभिवेक-दिन निर्वासन दिनमें परिवर्त हो गया । अयोध्यावासियोंके आनन्दका सूर्य उदय होते ही अस्त हो गया । वह दिन श्रीरामचरितके आगोशानमें ऐसा डबल रेकॉर्ड है जिसके एक तरफ रामाभिवेकके आनन्दकी औरतीका आलाप पूर्ण होनेसे पहले ही दूसरी ओर रामवन-यात्राकी सोहनीका शोक-संगीत शुरू हो जाता है । जो हो, आर्यजातिके इतिहास-प्रांगणमें आज भी वह दिन एक ऐसे उच्च गोपुरकी तरह दृष्यमान है, जिसकी एक विरापर ‘सत्यसंघ दशरथ और रामाभिवेक’ और दूसरीपर ‘पितृभक्त श्रीराम और उनकी वन-यात्रा’ अङ्कित है एवम् अस्तकपर खिला है—

### ‘चैत्र शुक्ला १० पुष्यनक्षत्र’

श्रीरामचन्द्रजीके वन-गमनकी तिथिका निर्णय हो गया । इसके बाद यह निश्चय करना है कि—

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ ?

रावणवधतक भगवान्की जीलाओंके समय या तिथिका क्रम इसप्रकार है—

चित्रकूट

१— यात्रा-दिनसे छठे दिन, अर्थात् चैत्र-शुक्ला १५ को रामचन्द्रजी चित्रकूट पहुँचे ।

अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण आदि ऋषियोंके आश्रम

२— दण्डकारण्यमें, विभिन्न मुनियोंके आश्रमोंमें रामचन्द्रजी दश वर्षतक रहे और यह सारा समय उनका सुखसे बीत गया, विराधका वध वे वनवासके आरम्भमें ही कर चुके थे ।

तत्र संवत्सतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ।

रमतश्चानुकूलेन ययुः संवत्सरा दश ॥

(रा० ३।११।२६)

सुतीक्ष्ण-आश्रममें ३—वनवासके ग्यारहवें वर्षके आरम्भमें श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें पुनर्गमन दूसरी बार आवे और वहाँपर अनुमान दश मासतक अर्थात् वर्षाकालकी समाप्ति तक रहे ।

सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं पुनरेवागमाम् ह ।  
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमरिन्दमः ॥

(रा० ३।११।२८-२९)

अगस्त्याश्रम ४—ग्यारहवें वर्षके ग्यारहवें महीनेमें कार्तिक मासमें श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्य मुनिके आश्रममें पहुँचे ।

पश्चिन्यो विविवास्तत्र प्रसन्नसकिलाशयाः ।  
हंसकारण्डवाकीर्णाक्षकबाकोपशोभिताः ॥

(रा० ३।११।४०)

बारहवें वर्षके ग्रीष्मकालतक वहाँपर रहे ।

पञ्चवटी और ५—बारहवें वर्षकी वर्षा ऋतुके आरम्भमें मगवान् श्रीराम पञ्चवटीमें आवे, जटायुसे मिले ।

'मयूरनादिता रम्याः' 'इदयन्ते गिरयः सौम्याः' ।

(रा० ३।१५।१३।१४)

बह वर्ष उनका वहाँपर समाप्त हो गया । तेरहवें वर्षके मार्गशीर्ष मासतकका समय भी वहाँपर निर्विकल्पासे व्यतीत हो गया ।

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः ।  
शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रवर्ततः ॥

(रा० ३।१६।१)

शुर्पणखाके कर्ण-नासिका-छेदनके अनन्तर जन-स्थानके चौदह महत्त राक्षसोंका वध हो देनेपर तेरहवें वर्षके तीसरे महीने अर्थात् शिशिर ऋतुके अन्तिम मास फाल्गुनके आद्यपक्षमें रावणने भीताजीका अपहरण किया ।

कुसुमापञ्चयव्यग्रा पादपानत्यवर्तत ।  
कर्णिकारानशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणा ॥

(रा० ३।४२।३०।३१)

६—सीतान्वेषणके समय कञ्चन-वध और शबरी-उद्धारके बाद अनुमान तेरहवें वर्षके पौषमें (वसन्त ऋतुके वैशाख) मासमें भगवान् क्रमशः पम्पासरोवर और ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँच राज्यस्थित सुग्रीवसे मिले ।

गन्धवान् सुरभिर्मांसो जतपुष्पफलद्रुमः ।

(रा० ४।१।१०)

७—तेरहवें वर्षके सातवें (भाषाद) मासमें बाह्यिका वध हुआ । पश्चात् आवणसे लेकर पौष कृष्ण ८ अर्थात् चौदहवें वर्षके आरम्भतक श्रीरामचन्द्रजी प्रलयवध वा माल्यवान् पर्वतपर रहे ।

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।

प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः ॥

कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यतः ।

(रा० ४।२६।१३-१५)

८—चौदहवें वर्षके प्रथम मास मार्गशीर्षकी शुक्ला ११को महाबीर हनुमान् लंकामें छुसे । अगले दिन द्वादशीको उनका श्रीजानकीजीसे संवाद हुआ ।

हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थिता नैकसहस्ररश्मिः ।

(रा० ५।५।१)

सेना-प्रयाण ९—पौष कृष्ण अष्टमी उत्तरा-फाल्गुनी-नक्षत्रमें मण्डारके समय ।

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचये ।

युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्ते मध्यं दिवाकरः ॥

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य

(रा० ५।४।३।६)

मुंबेल शिखरपर १०—पौष शुक्ला चतुर्वशी वा पौर्णमासीको सेनाके अग्रभागको त्रिकूट पर्वतपर पहुँचा स्वयं सुबेल पर्वतपर चढ़े ।

ततोऽस्तमगमत् सूर्यः सन्ध्यया प्रतिरंजितः ।

पूणचन्द्रप्रदीप्ता च निशा समभिवर्तत ॥

(रा० ६।३८।१८)

श्रीरामचन्द्रजीकी समस्त सेना एक मासमें नक्ष-सेतुद्वारा लंकातक पहुँच सकी ।

(म० भा० ३।२८२।५०)

११—इन दोनों कार्योमें माघ कृष्ण १ से अमावस्यातकके १५ दिन व्यतीत हो गये ।

वानर-राक्षसोंके  
सख युद्ध  
सेना-मन्त्रियोंसे आज्ञा राक्षसोंकी साधारण सेनाके लक्ष्य  
युद्ध होते रहे।

इन युद्धोंमें कः महीने निकल गये।

अयन्ते सुमहान् कारु शयानस्य महानल ।  
सुषुप्तस्त्वं न जानीषे मम राम-कृतं मयम् ॥  
( रा० ६।६२।१३ )

उक्त युद्धोंमें प्रमुख बौद्धा और सेनापतियोंने भाग  
नहीं लिया। आगे इन लोगोंके जो युद्ध हुए उनके विवरण  
नीचे दिये जाते हैं।

सेनाका संकुल-  
युद्ध तथा प्रमुख  
वीरोंका द्वन्द्वयुद्ध  
१३—भाद्र शुक्ला प्रतिपदाको स्वयं  
रावणद्वारा प्रेषित प्रधान सेनाका  
वानरोंके साथ संकुल युद्ध हुआ, इसी  
दिन दोनों ओरके प्रमुख वीरोंका सबसे  
बड़ा द्वन्द्व-युद्ध हुआ।

निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुममाज्ञापयत्तया ।  
( रा० ६।४२।३२ )

रक्षसी वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ।  
( रा० ६।४३।४३ )

मेघनादका १४—भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदाकी  
नागपाश रात्रिके समय।

अदृश्यो निशितान् बाणान् मुमोक्षाशनिसन्निभान् ।  
रामं च लक्ष्मणं चैव धौरौर्नागमयैः शरैः ॥  
( रा० ६।४४।३७-३८ )

( १५ ) धृञ्जय-वध	भाद्र शुक्ला २,
( १६ ) वज्रदंष्ट्र-वध	" " ३,
( १७ ) अकम्पन-वध	" " ४,
( १८ ) प्रहस्त-वध	" " ५,
( १९ ) रावणका पराजय तथा पलायन	" " ६,
( २० ) कुम्भकर्णप्रबोधन	" " ८,
( २१ ) कृष्णकर्म-वध	" " १५,
( २२ ) अतिकाय-वध	आरिबन कृष्ण— १,
( २३ ) त्रिशिरा-वध	" " २,
( २४ ) देवान्तक-वध	" " ३,

( २५ ) नराम्तक-वध	आश्विन कृ० ४,
( २६ ) महोदर-वध	" ५,
( २७ ) महापार्व-वध	" ६,
( २८ ) मेघनादकृत प्रह्लाद-प्रयोग	" ७,
( २९ ) संजवनी आनयन	" ८,
( ३० ) कुम्भ-निकुम्भ-वध	" ९,

( ३१ ) मकराष्ट्र	} दिनमें { रात्रिके { समय
( ३२ ) मायासीता	
( ३३ ) मेघनाद वध	
( ३४ ) मूल सेना-वध	" १३,
( ३५ ) मूल सेना-वध	" १४,

( ३६ ) रावण-निर्वाण—आरिबन कृष्णा अमावस्या ।  
अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्ष-चतुर्दशीम् ।  
कृत्वा निर्याणायमावस्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥  
( रा० ६।९२।६४ )

( ३७ ) रावण-वध—आरिबन शुक्ला नवमी ।  
न्यतीते सप्तमे रात्रे नवम्यां रावणं ततः ।  
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ॥  
( कालिकापुराण )

( ३८ ) विजयोत्सव—आरिबन शुक्ला दशमी ।  
ततस्तु श्रवणेनाऽथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम् ।  
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बल-नीराजनं हरिः ॥  
( कालिकापुराण )

श्रीरामचरित्रके साधारण और असाधारण सैतीस  
अंशोंकी सूची और उनका ब्याख्यान समय प्रायः  
श्रीवाल्मीकीय रामायणके आधारपर ऊपर दिया गया  
है। कहीं केवल ऋतुका, कहीं ऋतु और मास दोनोंका और  
कहींपर नक्षत्रके आधारसे पक्ष और तिथिका भी निश्चय हो  
गया है। किन्तु रामायणकारकी प्रधान धटना रावण-वधके  
समयका स्पष्टतया उल्लेख रामायणमें कहीं नहीं किया  
गया। अतः उनके निर्याणके लिये महाभारत और पुराणोंकी  
ही ओर अन्वेषणकी दृष्टि दौड़ती है, क्योंकि पुरेतिहासके  
सबसे बड़े कोश यही हैं। रावण-वधके उक्त अन्वेषणकाराच्छ्र  
अंशको 'कालिकापुराण' प्रकाशित कर देता है कि आश्विन  
शुक्ला ६ को भगवान् रामचन्द्रजीने रावणका वध किया  
और अगले दिन देवताओंने सेनामें रोशनी की। सम्भवतः  
नवमीको रावण देरसे मरा और शेष समय भगवती दुर्गाकी  
महती पूजामें व्यतीत हो गया, इससे दशमीके दिन देवी-

विसर्जनके अनन्तर देवताओंने विजयोत्सव मनाया। वही कारण है कि नवमी तिथि दुर्रा-पूजाकी प्रधान तिथि मानी गयी और दशमीका नाम 'विजया' हो गया। यद्यपि रावणका वध आश्विन शुक्ला ६ को हुआ, परन्तु विजयोत्सव दशमीके दिन मनाये जानेसे जनसाधारणने रावण-वधका वही दिन मान लिया और आज भी सारे हिन्दुस्थानकी लोहारी रामलीलाओंमें दशहरेके दिवस ही रावण-वध होता है। रावण-वधके दिन रामचन्द्रजीके बनवासके बारह दिन शेष रह गये थे।

अब देखना चाहिये—

(४) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको बनवाससे अयोध्यामें लौटे !

रामायणमें लिखा है कि—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।

भरद्वाजाश्रमं प्राप्य वनन्दे नियतो मुनिम् ॥

(ग० ६।१२४।१.)

अर्थात् 'निचमपरायण रामचन्द्रजीने चौदहवाँ वर्ष पूरा होते ही पञ्चमीके दिन भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मुनि (भरद्वाज) को प्रणाम किया' वहाँपर केवल तिथिका ही निर्देश है, मास और पक्षका नहीं। पर जब यह सिद्ध हो गया कि आश्विन शुक्ला १०को रावणका निधन हो चुका था, तब साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि रामचन्द्रजी जिस पञ्चमीको भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचे वह कार्तिककृष्ण ६ ही थी। कार्तिक कृष्ण ६ को बनवासके चौदह वर्ष पूरे होते थे, इसलिये उस दिन भ्रातृ-भक्त भरतजीके पास रामचन्द्रजीका पहुँच जाना अतीव आवश्यक था।

उनके निश्चित समयपर वहाँ दूरान नहीं देनेसे महान् अनर्थकी आशंका थी क्योंकि दृढ़मत भरतजी चित्रकूटमें रामचन्द्रजीसे कह चुके थे कि—

चतुर्दशे हि सम्पूर्णं वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥

न द्रव्यामि यदि त्वान्तु प्रवेक्ष्यामि दुताशनम् ।

(ग० २।११२।२५-२६)

अर्थात् 'हे रघुवंश ! जिस दिन चौदह वर्ष पूरे होंगे उस दिन यदि आपको नहीं देख पाऊँगा तो मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा।' इसी तीव्र प्रतिज्ञाके प्रभावसे कार्तिक कृष्ण ६को महावीरजीने राम-मेघके घातक महात्मा भरतके पास उपस्थित होकर कहा कि—

'अविचिं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ।'

'कृष्ण पुष्य नक्षत्रके समय बिना बाधाके आप रामचन्द्रजीको देख सकेंगे' इस सन्देशके अनुसार कार्तिक कृष्ण ६ को पुष्य नक्षत्रके योगमें भगवान् रामचन्द्रजीका भरतजीसे मिलाप हुआ और उसी दिन सब भाइयोंने समारोहके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया। कार्तिक कृष्ण सप्तमीको मज्जाह्मकालक पुष्य नक्षत्रमें ही चौदह वर्षके सुदीर्घ कालके पश्चात् स्थगित श्रीराम-राज्याभिषेक पुनः सुसम्पन्न हुआ। यह विषय ध्यान देनेका है कि रामचन्द्रजीका अभिषेक पहले भी पुष्य नक्षत्रमें ही होनेवाला था और अब दूसरी बार भी उसी नक्षत्रमें हुआ। मालूम होता है कि कार्तिक कृष्ण ६ को मज्जाह्मोत्तर और कार्तिक कृष्ण ७ को पूर्वाह्णमें पुष्य नक्षत्र था। तभी यह हो सका कि भरत-मिलाप और अभिषेक जैसे महत्वपूर्ण दोनों कार्य एक ही नक्षत्रमें हो सके। श्रीरामाभिषेकके उत्सवका सिलसिला बहुत दिनोंतक रहा, जिसमें काल घोड़े, उतनी ही बैल, लौ वृष और तीस करोड़ सुवर्णमुद्राएँ तथा कितने ही बहुमूल्य वस्त्र-आभरण जाह्मणोंको दानमें दिये गये। (वा० रा० ६।१३०।७३-७५) चारों ओरके तपोधन ऋषि और प्रथित राजा आशीर्वाद, बधाई एवं भेंट देनेके लिये उसमें सम्मिलित हुए। सुग्रीव, विभीषण आदि सुहृद्गण तो प्रेम-वरवश हो फाट्गुन मासतक राम-राजधानी अयोध्यामें अभिषेक-आतिथ्यका रसास्वादन करते रहे। अभिषेकके उपलक्ष्यमें रीशनी भी अवश्य हुई, पर कितनी हुई और कितने दिन रही इस विषयका स्पष्टीकरण महर्षि वाल्मीकिजीने अयोध्याकाव्यके अन्तिम सर्गमें नहीं किया। कारण, संक्षेपके लिये वहाँपर नब्बे श्लोकोंमें ही भरत-मिलाप और अभिषेकोत्सवका वर्णन समाप्त कर दिया गया है। हाँ, अयोध्याकाव्यमें रामाभिषेकके आयोजनका वर्णन करते समय आदिकवि लिखते हैं कि—

प्रकाशीकरणार्थं च निशागमनशंकया ।

दीपवृक्षास्तथा चक्रगुणुरध्यासु सर्वशः ॥

(ग० २।६।१८)

'रात्रिके आनेसे पहले रीशनीके लिये अयोध्याके सब गली-कूचोंमें दीप-वृक्ष (काष्ठ) बनाये गये। परन्तु देव-

\* ततः प्रभाते विमले मुहूर्तेऽभिजिनि प्रभुः ।

वसिष्ठः पुष्ययोगेन ब्राह्मणैः परिवारितः ॥

दुर्घटनासे उस दिनकी तैयारी ज्यों-की-त्यों रह गयी ! रोशनीके जल-दीपकोंको कौन पूछे, जब अयोध्यावासियोंके प्राण-मन्दिरके दीपक ही बनमें जले गये । जो हो, श्रीरामाभिषेकके प्रथम मुहूर्तपर भरपेट रोशनी करनेका जब अयोध्यावासियोंके मनमें ही रह गया । अभिषेकके दूसरे मुहूर्तपर उन जोगोंने रोशनी करनेमें पहली बारकी कसर भी निकास बाकी होगी, इसमें सन्देह नहीं । उपवासके पारणपर प्रती पुरुष कितने जोरसे भोजन करता है ? अबरुद्ध जब पाँच दूधनेपर कैसे बेगसे बहता है ? जब देवताकी प्रतीक-पूजाके उपचारमें भी कितने ही दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं, तब प्रकृति-पुञ्जके परमाराध्य साक्षात् देव और संसारविजयी रावणके विजेता प्रभु रामचन्द्रके विजय-शोभित अभिषेकके प्रथम सप्ताहमें प्रकाश—रोशनीका जो प्रकाशक आयोजन हुआ होगा, उसका अनुमान लगाना कठिन है और यह प्रत्यक्ष है कि वर्तमान दीपावलिमें उसीका प्रतिविम्ब है ।

कार्तिक कृष्ण पक्षके दिन श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्या-प्रवेश मान लेनेपर यह सन्देह उपस्थित होता है कि जब चैत्र शुद्ध दशमीको वनवासका आरम्भ हुआ तो कार्तिक कृष्ण पक्षको वनवासके चतुर्दश वर्षकी पूर्ति किस तरह हुई ? चौदह वर्षमें पाँच महीने और उन्नीस दिनकी न्यूनता न रह जाती है ? निस्सन्देह, उक्त सन्देहके औचित्यमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती । पाण्डवोंकी वनयात्रा और अज्ञातचर्याके विषयमें भी वही समस्या सामने आयी थी । बिराट-नगरके गो-अपहरण-युद्धमें बृहन्नला बेगवारी सत्यसन्ध अर्जुनको पहचान लेनेपर कौरवराज दुर्योधनने हो-हल्ला मचाया था कि पाण्डवोंके तेरह वर्षोंकी पूर्तिमें अभी पाँच महीने और कई दिनकी श्रुति है, इसलिये प्रतिज्ञात समयसे पहले प्रकट हो जानेके कारण इन्हें फिर वनचर्या और अज्ञातवासकी आवृत्ति करनी पड़ेगी, उस समय परम चर्मज्ञ पितामह भीष्मजीने यह व्यवस्था दी थी कि—

पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासौपचीयतः ।  
पषामप्यधिका मासाः पञ्च च द्वादशशुभाः ॥  
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे धीयते मतिः ।

✻   ✻   ✻   ✻

सर्वं यथावधारितं यद्यदोभिः प्रतिश्रुतम् ।

सर्वं चैव महत्प्रमाणः सर्वं धर्मोक्तोविदाः ।

येनां युधिष्ठिरो राजा कथं धर्मेऽपराध्नुयुः ॥

( महाभारत ४ । ५२ । ३-६ )

‘अर्थात् हर पाँचवें वर्षमें दो महीने बढ़ते हैं । ( इस हिसाबसे ) इन पाण्डवोंके ( तेरह वर्षोंमें तो आवश्यक ) पाँच मास बारह दिन अधिक हो चुके । मेरी यह सम्मति है कि इन्होंने जो जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, वे सब यथावत् पूरी कर दीं । सभी ( पाण्डव ) महात्मा हैं और सभी धर्म तथा धर्मशास्त्रके वेत्ता हैं । जिनका युधिष्ठिर ( जैसा सत्यवादी ) राजा है, वे धर्म ( विषय ) में कैसे अपराधी हो सकते हैं ?

भीष्मजीकी उक्त ज्योतिष-शास्त्रानुसृत व्यवस्थासे यह सिद्ध है कि एतादृश विषयोंमें ३५ दिनके तिथिबद्ध चान्द्र वर्षोंका ही उपयोग होता है और ३६ दिनवाले सौर वर्षोंके अधिक मास मिलाकर उनकी पूर्ति की जाती है । अतः चान्द्र वर्षोंकी पूर्तिके लिये सौर वर्षके अधिक मासकी गणना न्यायसंगत है और उससे धर्मकी कोई हानि भी नहीं होती । ऐसी दशामें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अधिक मासगणनाकी उपेक्षा कैसे कर सकते थे ? और न्यायनिष्ठ रामदर्शनोत्सुक रामगत-प्राण भरतजी भी अधिक मासोंको गिने बिना क्योंकर रह सकते थे ? अथवा ही दोनों ओरसे समय-संगतिपर पूर्ण विवेचना की गयी है । चौदह वर्षमें पाँच मास और उन्नीस दिन अधिक मासोंकी गणनासे बढ़ जाते हैं—वही सोचकर श्रीरामचन्द्रजी कार्तिक कृष्ण पक्षको ही दर्शनोत्सुक और प्रतीकसाय भरतसे जा मिले । कार्तिक कृष्ण पक्षमें पाँच मास और उन्नीस दिन जोड़ देनेसे वनवासके चौदह वर्षोंकी यथावत् पूर्ति हो जाती है । गणित-शास्त्रका जो अपरिहार्य सिद्धान्त कुरुराज दुर्योधन जैसे हठी राज्य-कामुकने बिना आपत्तिके स्वीकार कर लिया, उसे न्याय और त्यागके प्रथम शिक्षक कौसल-राजकुमार महोदर भगवान् रामचन्द्र और भरत किस भाँति त्याग सकते थे ?

उक्त सिद्धान्तसे चतुर्दश वर्षकी पूर्तिका समाधान हो गया । साथ ही यह भी निर्यात हो गया कि दशहरा श्रीराम-विजयका स्मृति-दिवस है और कार्तिक मासमें ही विजय-वैजयन्ती-महोत्सव पुष्पक-विमानारूढ़ श्रीराम अयोध्या-में लौटे थे । इसीलिये दीपावलिका उत्सव मनाया जाता है ।

## राम-नाम

(लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०, एल० एल० बी०, एम० आर० ए० एस० )

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां,  
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परिपदंप्राप्तये प्रस्थितस्य ।  
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां  
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

( हनुमन्नाटक )

राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।  
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥

—तुलसी

राम राम कहते रहे। जन गगन धरमें प्राण ।

—कबीर



था है कि एक बार एक सज्जन सरयू अथवा गङ्गापार करके गोस्वामी तुलसीदासजीके पास उपदेश सुनने आये। जौटते समय देर हो गयी, नदीमें पूरा गया और पासमें नाव भी न थी। उस सज्जनने कुछ व्यग्रता दिखायी। इसपर गोस्वामीजीने कहा—“भाई! जो भक्तसागर पार करा देते हैं उनके लिये यह नदी पार करा देना कौन बड़ी बात है? तुम उन्हीं रामजीका नाम लेकर नदीको यों ही पैदल पार कर जाओ।” उन सज्जनने वैसा ही किया और नदीके पानीमें उतरकर आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर जब वह गोते खाने लगे तो उन्होंने गोस्वामीजीको अपनी सहायताके लिये पुकारना शुरू किया। यह देख गोस्वामीजीने चिन्ताकर कहा—“भाई कहो कि तुलसीदासके राम हमें पार करें और ऐसा कहते हुए पार हो जाओ।” उन्होंने वैसा ही किया और वह सचमुच ही पार हो गये।

क्या उन सज्जनके राम और वे और गोस्वामीजीके और? अवश्य, बात ऐसी ही है। प्रत्येक मनुष्यके राम अलग अलग हैं। अयोध्याके ऐतिहासिक राजा रामचन्द्रजी सम्भव हैं एक ही व्यक्ति रहे हों परन्तु उनका वर्णन सबने एक-सा नहीं किया है। वाल्मीकीय रामायणमें वे मर्बादा-पुरुषोत्तम कहे गये हैं तो अप्पात्तरामायणमें विष्णुके अवतार। भवभूतिने उन्हें लोकोत्तर पुरुष माना है तो तुलसीदासजीने साक्षान् परमेश्वर परमात्मा। ऐसी

विभिन्नताका कारण स्पष्ट है। ये महापुरुष कोरा इतिहास तो लिखने बैठे ही नहीं थे। इनका उद्देश्य तो एक आदर्श चरित अथवा भगवत्-चरितका वर्णन करना था। इतिहासकी अँधेरी कोठरीमें दूँदते दूँदते उन्हें श्रीरामचरितरूपी भूमिका मिल गयी। फिर क्या था, जिसकी जहाँतक पहुँच हुई उसने वहाँतक इस चरितद्वारा भगवन्भावकी अभिव्यक्तिका प्रयत्न किया। कुछ लोग इस चरितमें सत्चरितमनुष्यकी ही कल्पना कर पाये, कुछ लोकोत्तर पुरुषतक बढ़ गये, किसी-किसीने मर्बादा-पुरुषोत्तमकी सीमा छु ली, किसीने विष्णु अवतारकी माँकी देल ली और गोस्वामी तुलसीदासजीके समान कुछ महात्माओंने इस चरितमें परमेश्वर परमात्माहीका आधिभाष देला। ऐसी स्थितिमें कैसे कहा जा सकता है कि सबके राम एक ही समान थे और सबने ‘राम’ शब्दका अर्थ एक-सा ही समझा था।

नदी पार करनेवाले सज्जन रामका जो अर्थ समझते थे, उससे कई दर्जे बढ़कर अर्थ तुलसीदासजीके राममें था। यदि वह सज्जन रामसे केवल अयोध्यावासी राम अथवा साकेतलोकवासी रामका ही अर्थ लेते होंगे तो तुलसीदासजीके रामका अर्थ था—राम-रोममें और परमाणु-परमाणुमें रमा हुआ अक्षय्य चैतन्य, जो विद्यात्मा होकर भी विश्व-निवृत्ता है। एक ही रत्न शक-वणिजद्वारा चार पैसेका, सामान्य जाहरीद्वारा चार सौ का और सबे पारखी-द्वारा चार अरब का इसमें भी अधिक दामोंका छहराया जा सकता है। ठीक यही हाल इस ‘राम-नाम’ का है। कोई इससे अयोध्यावासी रामका अर्थ ले सकते हैं, कोई विष्णु अवतारका अर्थ ले सकते हैं और कोई इसे एकदम परमेश्वर परमात्माका ही नाम मान सकते हैं। इसके अर्थमें जो जितना गहरा गोता खगावेगा वह उतना ही अधिक फल पावेगा।

वैष्णवजोग ‘राम’का अर्थ शरीरी अथवा अवतारी राम समझते हैं। कबीर नामक सरीखे सन्त रामका अर्थ अशरीरी परमात्मा ही मानते हैं। यह अपनी अपनी समझकी बात है। नाम तो एक ही है। जिस मनुष्यके मनमें परमेश्वरकी भावना जैसी-जैसी बिराज और परिपक्व होती जायगी, वह मनुष्य

रामके अर्थकी विशालता भी जैसे-ही-जैसे अनुभव करता चला जायगा। नामी (नामके अर्थ) बढ़ते गये परन्तु नाम ज्यों-का-त्यों रहा। इसीलिये नामकी महिमा बहुत बढ़ी-चढ़ी है।

सामान्य जगत्में हम रूपकी (वस्तुकी) प्रधानता पाते हैं, नामकी नहीं। प्यास बुझानेके लिये हमें तो वह तरल पदार्थ बल ही चाहिये। उसका नाम रटते रहनेसे प्यास नहीं बुझ सकती। महत्व तो नामधारी व्यक्तिका देख पड़ता है न कि उसके नामका। परन्तु अध्यात्म-जगत्में कुछ उल्टा ही खेल है। बात यह है कि अध्यात्म-जगत्के पदार्थोंका (ब्रह्म, आत्मा, शक्ति आदिका) हम वर्णन तो कर नहीं पाते, वे प्रत्यक्ष विषय तो हैं ही नहीं, इसलिये उन्हें ब्रह्म करनेमें हमें नामका सहारा लेना पड़ता है और इसी कारण उस क्षेत्रमें नामकी प्रधानता हो जाती है। अध्यात्म-जगत्की वस्तुओंके लिये नामका सहारा बड़ा प्रबल होता है। शब्द और अर्थका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि एक मिला तो दूसरा भी मिला ही समझिये। वह नाम कैसा है जो रूपको न रोक रखे और वह रूप कैसा है जो किसी नामसे व्यक्त न किया जा सके !

जिस नाममें रूपका (अर्थका) जितना अधिक समावेश होगा, वह उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा। सामान्य नामोंसे भगवान्‌के नाम अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और भगवान्‌के सहस्र (या असंख्य) नामोंमें भी यह राम-नाम इसी कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है। शङ्करजीका 'सहस्रनाम तत्सुल्यं' बाबा बाबू प्रायः प्रत्येक नाम-प्रेमीको विदित होगा। इसी दृष्टिसे विचार करनेपर यह भी विदित हो जायगा कि नकी पार करनेवाले उस सज्जनके रामनाममें और तुलसीदासजीके रामनाममें क्या अन्तर था !

इस राम-नाममें ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण यह दूसरे नामोंसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक अर्थ गाम्भीर्यवाला माना जाता है ? इसका उत्तर कई प्रकारसे दिया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि यह 'ॐ' से मिलता-जुलता नाम है और अहाँ 'ॐ' केवल निर्गुण अथवा अधिक-से-अधिक निराकार ब्रह्मका द्योतक माना गया है वहाँ राम शब्द निर्गुण और सगुण तथा निराकार और साकार दोनोंका प्रकाशक है। दूसरी बात यह है कि इस नाममें रमणीयता (रम् धातुवाली) द्योतप्रोत् भरी हुई है इसलिये भक्तोंको यह नाम विशेष प्रिय है। रमा

और राम-दोनों ही दीर्घ स्वरान्व शब्द हैं, क्योंकि दोनोंकी रमणीयता विकारशील है। केवल राम शब्द ही ऐसा है जिसमें प्रथमके विकार अन्तमें आकर लय हो जाते हैं। तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जो अक्षर अपने शरीरके षट्पदमें विद्यमान है और जो वास्तवमें अक्षर और अमिट शक्तिशाली बने हुए हैं उनमें 'रं' अग्नि-बीज माना गया है। जो आगकी तासीर है वही इस बीज-मन्त्रकी है। अग्नि केवल भस्म करनेवाली ही नहीं है, उष्ण-शक्ति प्रकट करनेवाली भी है। इसी प्रकार वह बीजमन्त्र न केवल पापोंको भस्म करता है वर निर्बलोंमें प्रबल आत्मबलका सञ्चार भी करता है। बीजमन्त्रका सम्यक् जप करनेसे तन्निहित शक्तिका आविर्भाव हो जाना अवश्यभावी है। इसी तरह रामनामका ठीक-ठीक जप करने रहनेसे यह हो नहीं सकता कि यह नाम अपना फल न दिखावे।

मुंहसे रामनाम कह देना ही उस मन्त्रका सम्यक् जप नहीं है। यह तो बैलरी बाथीका जप हुआ। जपकी बाथी जितनी गहराईसे डूबेगी, उसका फल भी उतना ही उत्तम होगा। बैलगीसे मज्जमा बाथी अंष्ट है, उससे भी परयन्ती बाथी अंष्ट है और परयन्तीसे भी बढ़कर पराबाथी है—जो मुलाधारमें गूँजा करती है। उस बाथीसे यदि इस नामका जप हो तो फिर क्या कहना है ! यह तो हुई पहली बात। अब दूसरी बात यह है कि यदि नाम-जपके समय अर्थकी ओर कुछ लक्ष्य ही न रक्खा गया तो फिर तोते अथवा फ़ोनोफोनकी तरह नाम-रटते वास्तविक लाभकी आशा कैसे की जा सकती है ? माला भँगुलियोंपर घूमे, जीम मुकुटमें घूमे और मन दशों दिशाओंमें घूमे; इसे असली जप नहीं कह सकते।

## भक्त-भावना

[ राम-नामकी महत्ता ]

भयोंके प्रभुत्वका प्रभाव क्या पड़ेगा, जब मनमें समाई प्रभुता है सुख-धामकी, 'रसिकेन्द्र' दाम, दंड, भेद, की निःसात क्या है, प्राप्त है अखंड सिद्धि जब सत्य 'साम'की। क्रोध कर लेगा प्रतिशोध क्या विरोध,—जब प्रिय है परीक्षा पूर्ण-प्रेम-परिणामकी। सत्ता पातकोंकी क्यों न पत्ता-सी उड़ेगी, जब ध्यानमें हमारे है महत्ता रामनामकी।

—श्री-'रसिकेन्द्र'

## रामलीलामें सुधार

( लेखक—श्रीयुत राजबहादुरजी कमगोका, पम० प०, पल-पल० बी० )



न महाराजोंने स्वर्गोच्च कालाजीकृत 'दुखी भारत' (Unhappy India) नामी पुस्तक का अध्ययन किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि 'मदर-इण्डिया' (Mother India) की बदनाम रचयित्री मिस मेयो (Miss Mayo) का हमारे प्रति एक आक्षेप यह भी है कि भारतीय जनता का साहित्यिक रुचिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस अनर्गल आक्षेप का उत्तर देते हुए आचार्य थॉमसन (Thomson) ने जो इंग्लैण्ड के किसी विश्वविद्यालयमें बंगभाषा के अध्यापक हैं, यह कहा है कि 'न जाने मिस महोदया का भारत के किस भागसे परिचय है।' आचार्य महोदयने यह भी कहा है कि प्रत्येक शांत-काल के आरम्भमें उत्तरीय भारतमें दो सप्ताहों तक 'रामलीला' का उत्सव ऐसे समारोह के साथ मनाया जाता है कि ग्राम-ग्राममें सुरीकी लहर-सी दौड़ जाती है। अर्नेस्ट-वुड (Earnest Wood) साहेबने भी 'मदर-इण्डिया' का उत्तर देते हुए तुलसीकृत रामायण का उल्लेख कर यह कहा है कि लैटिन (Latin) और ग्रीक (Greek) महाकाव्यों के साथ तुलनामें भी रामायण : Compares more than favourably का पन्ना भारी रहता है। सर जार्ज ग्रियर्सन (Sir George Grierson) ने सत्य ही कहा है 'यदि उस प्रभावपर विचार किया जावे जो महाकवि तुलसीदासने स्वरचित रामायण-द्वारा उत्पन्न किया है, तो निःसन्देह वह एशिया महाद्वीप के उन छः चुने हुए प्रसिद्ध रचयिताओंमें से एक सिद्ध होने हैं जिनका प्रभाव कौंपकोंसे लेकर शाही महलों तक एक-सा है।'।

यूनान Greece में भी नाटकीय खेल जनता के शिष्य-का एक विशेष साधन समझा जाता था। सम्प्रति इंग्लैण्ड के सबसे बड़े दार्शनिक बर्नार्ड-शा (Bernard Shaw) का भी कथन है कि कहानी और विशेषतः नाटक सार्वजनिक शिष्यण के दो बहुत बड़े साधन हैं, अन्यथा जो लोग सूक्ष्म दार्शनिक बातें समझनेकी योग्यता नहीं रखने, उनके लिये मूर्ति-पूजा और कड़ानियों के अतिरिक्त कोई दूसरा साधन शेष ही नहीं रहता।

अब देखना यह है कि आजकल सुशिक्षित भारतीयोंकी

क्या दशा है? हमारा अभिप्राय विशेषतः सुशिक्षित हिन्दुओं-से है। उनका एक अङ्ग तो अपनी मस्तिष्कगत दार्शनिकता के अभिमानमें रामलीला और तत्सम्बन्धी दृश्योंको दृष्टिसे देखता है। दूसरा अङ्ग कृत्रिम सहानुभूतिसे कुछ चन्दा इत्यादि दे देता है, पर उत्सवमें इससे अधिक भाग लेना उचित नहीं समझता। उसका विचार है कि यह अव्यवस्था ही जनता के लिये पर्याप्त है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि जब बर्नार्ड-शा प्रभृति दिग्गज लेखक वर्तमान शताब्दी के विचारानुसार नाटकोंकी रचनामें संलग्न हैं और जब तुलसीकृत रामायण के त्रिशतवर्षीय नाटकीय खेलों के प्रभावसे हिन्दू लोग अब भी जेम्स (James) जैने विद्वान् की रायमें The Sober (गम्भीर) की उपाधि पाने के अधिकारी हैं तो कोई कारण नहीं दीखता कि हम थोड़ा-सा ज्ञान उधर न दें और इस शिष्य-विधिको अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न न करें।

हमारी उपेक्षा का प्रभाव बहुत दुरा पड़ रहा है। जहाँ सुशिक्षितों का यह कर्तव्य है कि नाटकको उसके उचित आदर्शपर सुस्थिर रखने का प्रयत्न करें वहाँ हमने वह कार्य प्रायः अर्धशिक्षित लोगों के हाथोंमें ही दे रक्खा है।

परिणाम क्या हुआ है ?

( १ ) मूर्तियों के शृङ्गारमें समय और स्थान का कोई क्याल नहीं होता। श्रीरामचन्द्रजी हैं तो वनवासकी दशामें, पर पाँचोंमें घुँघरू, शिरपर जगमगाता हुआ मुकुट, नाकमें खटकन इत्यादि बराबर दीख पड़ते हैं। भगवान् अपने इस रूपको देखकर हमारी मूर्खतापर अवश्य ही हँसते होंगे। इस शृङ्गारसे त्याग और वैराग्य का क्याल तो भूलकर भी नहीं आता। समरभूमिमें रावणसे युद्ध करते हुए जहाँ महाकवि तुलसीदासने खून के धब्बोंसे श्रीरामचन्द्रजी के शरीरको अलङ्कृत किया है, वहाँ आज रामलीलाओं के राम के शृङ्गारमें अनेक खिलावती रंगोंकी ही भरमार रहती है ! ऐसी दशामें दर्शकोंपर वीर-रस का प्रभाव कैसे पड़ सकता है ? होना तो यह चाहिये कि वनवासकी दशामें महाराजकी बेध-भूषा मुनियोंकी-सी हो, मुखपर उन्नासित गम्भीर प्रसन्नतासे जितेन्द्रियता के भावों का प्रस्फुरण हो, उनके



प्रत्येक गति एवं सङ्केतसे स्वागत तथा वैराग्य इसप्रकार प्रकट होते हों कि हम सभी प्रभावित होकर सत्त्वपर अपना तन-मन-धन निष्कावर करनेके लिये प्रस्तुत हो जायें। फिर मुख्यत्वके श्रुतार एवं द्रष्टा तो ऐसे होने चाहिये कि वीर-रस मूर्तिमान् होकर दर्शकोंके सामने जाचने लगें और अपने प्रभावद्वारा उनके मन-समें वीरत्वका सञ्चार कर दें।

(२) तुलसीदासकी पवित्र पद्यावलियों अथवा राजा रघुराजसिंह या अक्षित जैसे कवियोंकी सुन्दर रचनाओंमें नौटंकी या अन्य बाजारू पदोंकी मिलावट होती जा रही है।

एक बार मैंने एक ऐसा गान सुना, जिसमें यह बात थी कि महारानी उर्मिला चिककी आदसे हाथोंको हिलाकर लक्ष्मणजीको श्रीरामके साथ बन जानेसे मना कर रही थीं। आह, यह कितने द्विदोरेपनकी बात है, पर लाचारी है। प्रत्येक कवि या तुकड़में तो इतनी योग्यता नहीं हो सकती कि वह पुनीत भावनाओंको पूर्णतः व्यक्त कर सके। आपको नौटंकी पसन्द है तो आप कृपया अपनी इस पसन्दको दूसरे अवसरके लिये रख छोड़ें। रामलीलाके पवित्र शिक्षाप्रद अवसरपर रामायणके साथ ऐसे गानोंकी मिलावट तो जनताके लिये बिप ही है। अस्तु !

गत वर्षकी घटना है कि जब मेरे घरके बच्चे रामलीलाके बहुत दिनों बाद अपनी बालोचित रीतिले अनुपचयका खेल खेलते थे तो चाहे और बात वे भले ही भूल जायें पर उस 'टिळी-ली-ली' शब्दको कभी नहीं भूलते थे जिसे किमी अबूक तुकड़ने परशुरामजीके प्रति लक्ष्मणजीके मुखसे कहलाया था, कारण यह कि बुरी बातोंका अनुकरण तुरन्त ही होता है। कहाँ रामायणमें परशुराम और लक्ष्मणका वह रोचक संवाद, जिसे पढ़कर शेक्सपियरके 'जुलियस सीज़र' (Julius Caesar) वाली कैसियस (Cassius) और ब्रूटस (Brutus) की पारस्परिक वार्ता बच्चोंका खेल जान पड़ती है और कहाँ यह 'टिळी-ली-ली' की बेहूदी बात ! यदि ऐसा ही होता रहा तो किसी दिन लक्ष्मण-जैसे बौद्धाकी दशा गली-शूबोंमें फिरनेवाले बालकोंकी-सी हुए बिना न रहेगी।

(३) गति, इक्रित तथा वार्तालाप पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। बहुतो तो बालकोंको अपना पार्ट (Part) भी नहीं याद होता जो एक सुकी हुई कापीसे पढ़ा जाता है, जो बहुत भद्दा प्रतीत होता है।

अतः सुशिक्षित देश-प्रेमियोंसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे तनिक इस ओर भी ध्यान देनेकी कृपा करें। चाहे वह रामको 'अवतार' मानें अथवा 'मर्यादापुरुषोत्तम', पर सब मिलकर यह कोशिश अवश्य करें कि वह पुनीत पाठ, जिसने हमें शताब्दियोंसे ठीक-ठीक मार्गपर कायम कर रखा है, विस्मृत न हो जाय, अन्यथा कुछ दिनों बाद किसी दूसरी मिस भेषोके आलेपोंके उत्तरके लिये भी हमारे पास कुछ बाकी न रहेगा।

तुम्हारी बात ज़मानके रुबरू रह जाय।

जो गैर हैं उन्हें हँसनेकी आरजू रह जाय ॥

(चकवला)

देखिये, अभी २७ मार्च सन् २० के 'लीडर' में, १४ वें पृष्ठपर 'राष्ट्रीय नाटक' शीर्षक एक लेख छपा है। लार्ड लिटनके समापनलिखमें कोई सभा हुई थी। उसमें ब्रिटेन (Britain) के जगत्-विख्यात नाटककार बर्नाड-शा महोदयने नाटकके प्रति राज्यके कर्तव्यपर जोर देते हुए यों कहा था—

On the continent the theatre is recognised as an instrument of culture which the Government must provide, yet in this country official recognition should not be obtained without strict regard For commercial considerations, it is to do the best work in the best way—it must not go in for the horrible policy of giving to the public what the public likes .....that national theatre should have a very liberal endowment.... People would go to the national theatre as they go the church. अर्थात् 'यूरोपीय महाद्वीपमें नाटक एक शिक्षाका साधन माना गया है जिसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे होना चाहिये। परन्तु इस देशमें उसे सरकारी स्वीकृति नहीं मिल सकी।..... व्यापारजन्य लाभका कुछ भी खयाल न करते हुए इस सर्वोत्तम कार्यको सर्वोत्तम रीतिले ही करना चाहिये, उस अथार्थ नीतिको कदापि न अपनाना चाहिये कि सार्वजनिक खर्चके अनुकूल ही वस्तु-प्रदानकी योजना हो, उस राष्ट्रीय नाटकमें बहुत बड़ी अप्रति निधि होनी चाहिये।..... लोग उस नाटकमें उसी (पवित्र) भावनासे जायेंगे जैसे वे गिरजेमें जाते हैं।'।

वहीं मिस लीना-ऐशवेल (Miss Lena Ashwell) ने भी कहा है कि—The function of the national theatre should be to satisfy the hunger of our people for the poetry and beauty of our language. अर्थात् 'राष्ट्रीय नाटकका कर्तव्य, हमारे देशवासियोंकी भाषाके काव्य एवं सौन्दर्यसे सम्बन्ध रखनेवाली पुष्पाको निवृत्त करना है।' हम यहाँ अपनी ओरसे केवल इतना ही कहेंगे कि हमारे पूर्वजोंने रामलीलाको प्रचलित करनेमें इन्हीं सब बातोंपर

ध्यान दिया था। उसी विषयपर हमारा भी ध्यान आकर्षित होना चाहिये। वस्तु !

मेरी विशेष प्रार्थना है कि जो सज्जन इस लेखको पढ़ें वह कम-से-कम इसे ऐसे लोगोतक अवरुध पहुँचा देंगे जो रामलीलाके कार्यकर्ता हों। 'आचारः प्रथमो धर्मः' की उक्तिपर विचार करते हुए वह प्रश्न हमारे जीवन और मरणका प्रश्न है, अतः उपेक्षा और उदासीनता छोड़कर हमें इस प्रश्नको हल करना ही होगा।

### रामायणमें सगुण ईश्वर

“रामचरित-मानस (रामचरितका सरोवर) तुलसीकृत रामायणके नामसे अधिक प्रसिद्ध है। कविकी सर्वश्रेष्ठ कृति यही ग्रन्थ है और समयके अनुसार यही पहला ग्रन्थ है जो सन् १५७४ ई०में जब कविकी अवस्था ४३ वर्षकी थी, आरम्भ हुआ था। इसीपर कविकी ख्याति निर्भर है। इसे नौ करोड़ मनुष्योंका बाइबिल कहते हैं और वस्तुतः उत्तरीभारतके प्रत्येक हिन्दूको इसका जितना ज्ञान है उतना मध्य कक्षाके अंगरेज किसानको बाइबिलका भी नहीं है। भारतका एक भी हिन्दू, राजा या कुटी निवासी ऐसा न होगा जो इसके प्रचलित दोहोंको न जानता हो या जिसकी बातचीतमें इसका रंग न हो। भारतीय मुसलमानोंकी भाषामें भी इसकी उपमाएँ घुस गयी हैं और उनके बहुतसे मामूली मुहावरोंका, यद्यपि वे यह नहीं जानते, पहले पहल इसी ग्रन्थमें प्रयोग हुआ है।

परमेश्वरके अवतार रूपमें रामचन्द्रका चरित इस ग्रन्थमें वर्णित है। इसका विषय वही है जो वाल्मीकिके प्रसिद्ध रामायणका है। पर तुलसीदासका ग्रन्थ उसका किसी प्रकार अनुवाद नहीं है। उसी घटनापर नयी कथा रची गयी है पर घटनाओंके वर्णन तथा महत्त्वके चित्रणोंमें भिन्नता है। ग्रन्थकर्ता स्वयं लिखते हैं कि उन्होंने यह चरित अनेक ग्रन्थोंसे लिया है। उनमेंसे वाल्मीकिकी कृतिको छोड़कर मुख्य मुख्य ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' (ब्रह्माण्ड पुराणका एक खण्ड) 'भुसुण्डि रामायण' 'वसिष्ठ संहिता' और 'जयदेवकृत' 'प्रसन्नराघव' हैं।”

×

×

×

×

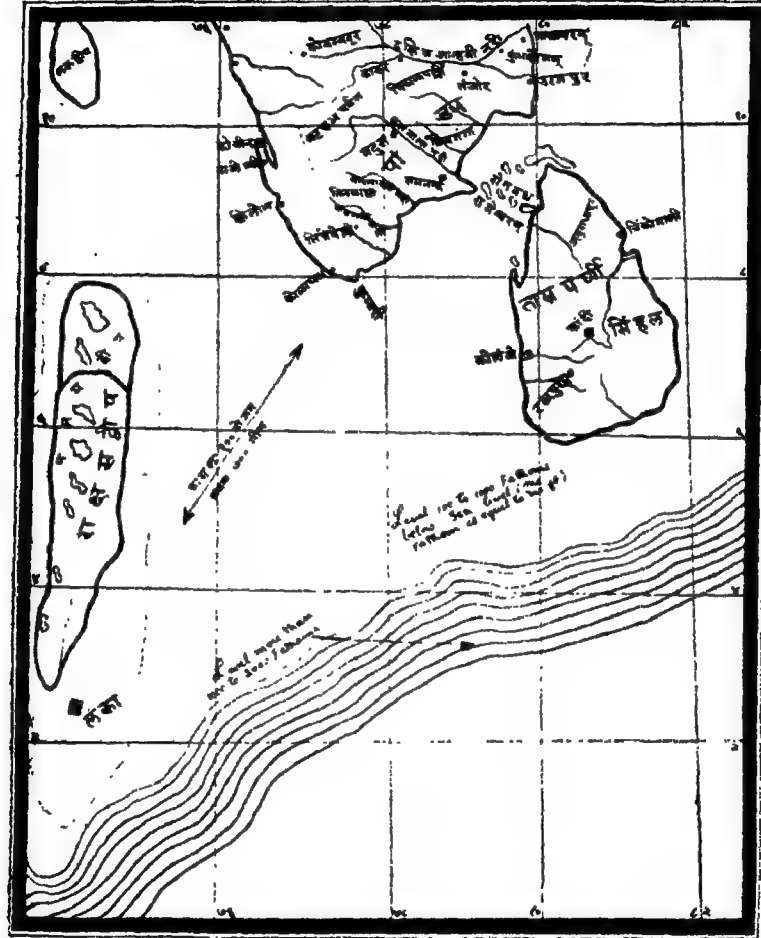
“तुलसीदासने यह भी शिक्षा दी है कि ईश्वर शरीरधारी है। उपनिषद्के निर्गुण ब्रह्मको मानते हुए जो सभी गुणोंसे हीन है तथा जिसके बारेमें केवल यही कहा जा सकता है कि वह 'यह नहीं है, वह नहीं है'। इन्होंने यही निश्चय किया कि ऐसे पुरुषका विचार मनुष्योंके मष्तिष्ककी शक्तिके बाहर है और केवल उसी ईश्वरका पूजन हो सकता है जो निर्गुणसे सगुण हो गया हो।”

—डा० सर जार्ज ग्रिफिथ



कल्याण

### रामायणकालीन लंका



मानचित्रकार श्री वी०एच०वडेर ।

## रावणकी लङ्का कहाँ थी?

(लेखक—श्री बी० एच० वाडेर, बी० ए०, एल० एल० बी०, एम० आर० ए० एस०)



व० १९२५ ई० में अखिल भारतीय ओरियण्टल कॉन्फ्रेंसके महासम्मेलनमें होनेवाले तृतीय अधिवेशनके अवसरपर सरदार माधवराव किवे महाशयने एक निबन्ध पढ़ा था, जिसमें उन्होंने यह दिखलाया था कि वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित रावणकी लङ्का अमरकण्ठक पहाड़पर स्थित थी जो विजयाचङ्ककी एक शाखा है और जहाँसे भारत महादेशको उत्तर और दक्षिण दो भागोंमें विभक्त करनेवाली नर्मदा नदी प्रवाहित होती है। बान-नगरके प्रोफेसर जैकोबीने स्वीकार किया है कि रामायणीय कथाका जैन रूपान्तर 'पठमचरित्र' का सम्पादन करते समय जो उन्होंने लङ्काकी स्थिति कहीं आसाममें बतायी थी उससे किवे महाशयका सिद्धान्त कहीं भ्रष्ट है। यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है, और जैसे ही बौद्ध-रूपान्तर 'दशरथजालक' भी बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं, जिसको प्रमाण्य कोटिमें रक्खा जा सके। सन् १९१६ में प्रथम ओरियण्टल कॉन्फ्रेंस पूनामें भी सरदार साहबने इसी विषयपर एक लेख पढ़ा था, परन्तु तीसरे अधिवेशनके निबन्धके उपसंहारमें उन्होंने बतलाया कि 'उपलब्ध स्थानीय ज्ञानके अनुसार अब कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि रावणकी लङ्का मध्यभारतमें थी।'

आसाम और मध्यभारत-सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तोंके अतिरिक्त तीसरा एक प्रसिद्ध सिद्धान्त और है, जिसके अनुसार (आधुनिक) सीलोन ही लङ्का और लङ्का ही सीलोन माना जाता है। बहुत-से प्राच्यविद् इसे भ्रुव सत्य मानते हैं। तथापि हम पाठकोंके सामने लङ्काकी स्थितिके विषयमें एक नवीन सिद्धान्त उपस्थित कर रहे हैं, जिसका समर्थन हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य और विशेषकर वाल्मीकीय रामायणसे उद्धृत विशेष महत्वपूर्ण तथा विरचनीय प्रमाणोंद्वारा होता है। यह चौथा सिद्धान्त साररूपमें इसप्रकार रक्खा जा सकता है—

‘लङ्का दक्षिण-महासागरमें स्थित राक्षस-द्वीप नामक एक विशाल द्वीपकी राजधानी थी।

यह लङ्का भूमध्यरेखा (Equator) पर या पृथ्वीके मध्यभागमें स्थित थी। भारतवर्षके दक्षिणतटसे राक्षसद्वीप अथवा लङ्काकी दूरी १०० योजन अर्थात् लगभग ७०० मील थी।’

सीलोन और लङ्का एक नहीं है।

पहले हम आस-प्रमाणोंद्वारा यह दिखलाना चाहते हैं कि सीलोन और लङ्का दोनों भिन्न भिन्न स्थान थे और लङ्कानगरीका अस्तित्व सीलोन (सिंहलद्वीप) में नहीं था।

(१) महाभारत—समापर्वमें सिंहलद्वीपका उल्लेख है। आसमुद्र दक्षिणी राज्योंपर विजय प्राप्त करनेवाले पाण्डव और सहदेवके बाबत कहा गया है कि 'उन्होंने 'ताम्रद्वीप' तथा 'रामक' पर्वतको विजय किया था तदनन्तर तत्कालीन 'लङ्का' के राजा पौलस्त्य विभीषणके समीप कर प्राप्त करनेके लिये दूत भेजे थे\*। इस पृथक् पृथक् बखानसे सिद्ध होता है कि ताम्रद्वीप और विभीषणकी लङ्का एक नहीं थे। ताम्रद्वीप निम्न ही सिंहलका प्राचीन नाम है। पूनानी लेखकोंने सीलोनका ताम्रोबान (Taprobane=ताम्रपर्व) के नामसे उल्लेख किया है।

(२) महाभारत—वनपर्वके २१वें अध्यायमें वर्णन है कि पाण्डव-वनवासके समय अगस्त्य ऋषिकृष्ण उनसे मिलने जाते हैं और उनकी दबनीय दशा देख कौरवोंके प्रति क्रुद्ध होकर धर्मराजके सामने अपने हृदयोद्गार इसप्रकार प्रकट करते हैं—

‘राजसूय-यज्ञके समय तुम्हारी इननी महती विभूति थी कि पृथ्वीके सभी देशोंके राजा अपनी स्थिति और सम्मानको भूलकर छोटे-से-छोटे काबौद्वारा तुम्हारी सेवामें लगने रहते थे, वे तुम्हारे शास्त्र और तेजसे धनरावे हुए, भंग, भंग, पौण्ड्र, उद्, चोळ, द्रविड, अन्ध, समुद्र-तीरस्थ जलमय देश, समुद्रके समीपस्थ देश, 'सिंहल', बर्बर, ज्येष्ठ, 'लङ्का' आदि देशोंके राजा तुम्हारे यहाँ निमग्नित व्यक्तियोंको

\* द्वीप ताम्राज्यञ्च पर्वत रामकं तथा ।

विमिश्रलसं नृपं बले कृत्वा महामतिः ॥ (म०सभा० ३१:६९)

भोजनके समय परोसनेका कार्य कर रहे थे, थाक चुकरी यह दशा है..... ।'॥

महाभारतकार महर्षि व्यासके इन अवतरणोंसे 'सिंहल' और 'जङ्गा' दो भिन्न-भिन्न राज्य सिद्ध होते हैं ।

३-भारकण्डेय पुराण-कर्मविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंकी सूची इसप्रकार मिलती है:—

'जङ्गा' कालाजिनाश्वं शैलिका निकटास्तथा ।

दक्षिणाः कौशवा ये च श्रमिकास्तापसाधमाः ॥

ऋषभाः 'सिंहला' श्वेत् तथा कार्त्तिकवासिनः ।

( २५ । २७ )

इन देशोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये कूर्मसे दक्षिण दिशामें अवस्थित हैं । इस सूचीसे भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'जङ्गा' और 'सिंहल' दो भिन्न भिन्न देश हैं ।

४-श्रीमद्भागवत-पौर्वर्णे स्कन्धमें जम्बूद्वीपके आठों उपद्वीपोंके नाम इसप्रकार दिये गये हैं ।

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपानष्टौ उपदिशन्ति । तद्यथा-  
स्वर्णप्रस्थद्वचन्द्रद्वक आवर्त्तनो रमणको मंदरहरिणः पाञ्चजन्यः  
'सिंहलो' 'लङ्कति' ॥ ( २ । १० । २९-३० )

हे राजन् ! जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप हैं, उनके नाम—  
स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रद्वक, आवर्त्तन, रमणक, मन्दर-हरिण, पाञ्चजन्य, 'सिंहल' और 'जङ्गा' हैं । यहाँ यह स्पष्ट है कि सातवाँ उपद्वीप 'सिंहल' और आठवाँ 'जङ्गा' था ।

(५) महाभूगोलिकी बराहमिहिराचार्यकृत बृहत्संहिताके कर्मविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंके नामोंका इसप्रकार वर्णन पाया जाता है—

लङ्काकालाजिनः सौरिकाणः काशीमरुचीपट्टन-चेर्यायक  
सिंहला ऋषभाः । ( अ० १४ । ११ )

॥ प्रथमांशे राजेन्द्र पौलस्त्याय महात्मने ।

विश्वामित्राय धर्मात्मा प्रातिपूर्वमरिन्दमः ॥ ( अ० सर्गा० ३१ । १७ )

यत्र सर्वान् महीपालान् शस्त्रतेजो भवोदितान् ।

सर्वज्ञानान् सपौण्ड्रान् सचोक्तान् द्रविडान् चकान् ॥

सागरान्पूकाश्वेत् ये च प्रान्तिनिवासिनः ।

सिंहलान्बर्बान् स्लेच्छान् ये च लङ्कानिवासिनः ॥

( अ० वन० ५१ । २२-२३ )

इस प्रसंगमें यह बतलाया गया है कि इन नामोंकी गणना बावेंसे दाहिने ओर होनी चाहिये । अतः सिंहल और जङ्गा दो द्वीप एक दूसरेसे दूर पृथक्-पृथक् थे और अरब-देश इनके मध्यमें था ।

(६) उपर्युक्त उद्धरणोंके अतिरिक्त संस्कृत-नाटकों और काव्योंमें भी ऐसे बहुत स्थान मिलते हैं, जहाँ 'सिंहल' (सीलोन) और 'जङ्गा'को सर्वथा भिन्न-भिन्न देश बतलाया है । कम-से-कम इतना तो निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि जबतक संस्कृत-ग्रन्थोंमेंसे ऐसा एक भी प्रमाण पेश नहीं किया गया है जिससे यह सिद्ध होता हो कि वर्तमान सीलोन ही प्राचीन जङ्गा है । और यह भी तब सम्भव है कि शायद ऐसा प्रमाण संस्कृत-ग्रन्थोंमें मिल ही नहीं सके । हम अपने सिद्धान्तके समर्थनमें यहाँ कवि राजशेखरकृत बालरामायण नामक संस्कृत-नाटकका एक स्थल उद्धृत करते हैं । राजशेखर कवि ईसाकी नवीं शताब्दीमें हुए हैं । कहा जाता है कि उन्होंने समस्त भारतका भ्रमण किया था, अतः भौगोलिक वर्णनमें जो कुछ उन्होंने लिखा है उसपर विश्वास करना सर्वथा निरापेक्ष है । उनके बालरामायणके तीसरे अङ्कमें लङ्केसर रावणके विनोदार्थ 'सीता-स्वयंवर' नामक अभिनयका विवरण प्राप्त होता है । सीताके पाणिग्रहणकी इच्छासे एकत्रित अनेकान्य राजाओंके साथ सिंहलाधिपति राजशेखर भी उस अभिनयमें एक पात्र हैं । रावण उसे अस्वनापूर्व शयनोंमें कद रहा है—

रावण—सिंहरूपेण किमिदं संदिशतः ? न च सन्देहोऽहं  
वीर-व्रत-निर्वाहः ।

इस आख्यानसे स्पष्ट हो जाता है कि सिंहलेश्वर राजशेखर और जङ्गाधिपति रावण दो व्यक्ति थे तथा 'जङ्गा' और 'सिंहल' निम्न ही दो भिन्न देश थे ।

पुनः इसी बालरामायणके दशवें अङ्कमें जङ्गासे पुष्पक विमानपर लखोपमा जाते समय भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको पहले 'जङ्गा' और युद्धभूमिका पूर्ण परिचय देते हैं और आगे बढ़नेके बाद सीताजीके ऐसा प्लुनेपर कि यह जलुपके समान कौन-सा भूखण्ड दृष्टिगोचर हो रहा है, पास बैठे हुए विभीषणने 'सिंहल'का वर्णन किया है । यथा—

सीता—'अक्षयितालण्डल कोदण्डमण्डलप्रतिरूपः कतरः  
पुनरेव उद्देवः ?

### विभीषण—

पश्यस्वग्ने अरुधिपरिहं मण्डलं 'सिंहलानाम्' ।

चित्रोत्तसं मणिमयमुवा रोहणेनाचलेन ॥

दूर्वाकाण्डच्छविषु चतुरं मण्डनं यद्वभूनाम् ।

गात्रधाम्मो भवति गरितं रजतां शुक्तिगर्भम् ॥

यह स्थान देने योग्य बात है कि यहाँ विभीषणने 'सिंहल' के विषयमें वर्णन करते हुए लङ्काका कहाँ नाम भी नहीं लिया। वास्तवमें लङ्काको तो वे सब पीछे छोड़ आये हैं और उसका परिचय भी श्रीसीताजीको पहले दिया जा चुका है।

उपर्युक्त श्लोकोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि 'सिंहल' उपद्वीप 'लङ्का' से छोटा था और कविने अपना अभिप्राय प्रकट किया है कि लङ्का सिंहलसे दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) में स्थित थी।

### लङ्का कहाँ थी ?

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि 'सीलोन' और 'लङ्का' के एक होनेकी भारय्या निराधार है। अब यह निश्चय करना है कि लङ्काकी वास्तविक स्थिति कहाँ थी ? यह पहले कहा जा चुका है कि भारतकी दक्षिणी सीमासे लङ्का १०० (सौ) योजनकी दूरीपर थी। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौड़ाई चाबीस योजन थी। यह परिमाण सिंहलद्वीपके लिये कभी लागू नहीं हो सकता। 'भारतवर्षीय भूवर्णन' के रचयिता प्रो० एस० बी० दीक्षित महोदयका कथन है कि 'सीलोन ही लङ्का है।' परन्तु रामायण-वर्णित सौ योजनकी दूरीका प्रश्न सम्मुख आते ही दीक्षित महोदय भी चक्करमें पड़ जाते हैं और इस तरह उनका निर्याय भी सन्दिग्ध ही रह जाता है।

श्रीहनुमान्जी सीताकी खोजमें लङ्का जाते समय जिस मार्गसे गये थे उसपर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि सीलोन और लङ्काकी दूरीको सिद्ध करनेवाला अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध होता है या नहीं।

### लङ्का भूमध्यरेखा पर अवस्थित थी।

१. वायुपुराणके भुवनविन्यासप्रकरणके षड्तालीसवें अध्यायमें जम्बूद्वीपके चारों ओर फैले हुए, अङ्ग, यम, मलय, शङ्ख, कुश और वराह इन द्वीपोंका वर्णन आता है। इसी अध्यायके २० से ३० श्लोकमें मलयके वर्णनमें कहा गया

है कि 'इस द्वीपमें सुवर्णकी अनेक खानें हैं और यहाँके वासी विभिन्न प्रकारके स्नेह्य हैं। यहाँ मलय नामका एक विशाल पर्वत है जिसमें चाँदीकी भी खानें हैं। इस पर्वत-पर प्रत्येक पर्वके अवसरपर स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है। इसी द्वीपमें प्रख्यात त्रिकूट पर्वत भी है। यह पर्वत बहुत विस्तृत है और इसमें अनेक अत्यन्त रमणीक उपत्यकाएँ तथा मनोहर शिखर हैं, इसी पर्वतके उत्संगमें लङ्काकी विशाल पुरी बसी हुई है। इस पुरीमें इच्छिन रूपधारी, बलगर्वित, देव-शत्रु महात्मा राक्षस रहते हैं। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौड़ाई तीस योजन है। और इसके पूर्वमें गोकर्ण' नामक पवित्र स्थानमें एक विशाल शिव मन्दिर है।'

इस वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि जम्बूद्वीप इन उपद्वीपोंमेंसे तीसरे अर्थात् मलयद्वीपमें त्रिकूट-पर्वतपर लङ्का नगरी बसी थी। यह मलयद्वीप भारतीय महासागरमें स्थित आधुनिक 'मालदिव' द्वीपपुञ्ज 'Maldive Islands' के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। यह 'मालदिव' द्वीपपुञ्ज भूमध्यरेखापर अवस्थित है। यह स्मरण रखना चाहिये कि गोकर्ण' नामक पर्वतका जो यहाँ उल्लेख आया है वह भारतवर्षके पश्चिमीघाटपर करवार जिलेमें स्थित पवित्र स्थान आधुनिक गोकर्णनाथसे भिन्न है।

\* नथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंज्ञितम् ।

मणिरत्नाकरं रत्नातमाकरं कनकस्य च ॥

आकरं चन्द्रनानाञ्च समुद्राणां तथाकरम् ।

नानाम्लेच्छमणाकाणं नदीपर्वतमण्डितम् ॥

× × ×

तथा त्रिकूटनिलये नानाधातुविभूषिते ।

× × ×

तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणा ।

निर्युहवलयविभ्रवा इन्दुप्रासादमालिनी ॥

शतयोजनविस्तीर्णा त्रिशदायामयोजना ।

नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी ॥

सा वामरूपिणां स्थाने राक्षसानां महात्मनाम् ।

आवासो बलदृप्तानां तद्विधादेवविदिषाम् ॥

मानुषाणामसम्बाधा क्षमया सा महापुरी ।

तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नदनदीपतेः ।

गोकर्णनामभेयस्य शंकरस्यालयं महत् ॥

(वायुपुराण ४८।१०-३०)

२. गोलाभ्याय—क्याटिक-प्रदेशके इलेबिड-स्थानके निवासी प्रसिद्ध ज्योतिर्विद तथा गणितज्ञ भास्कराचार्यके वर्णनसे जो जङ्गाकी स्थितिके विषयमें ज्ञान प्राप्त होता है उससे उक्त सिद्धान्तका पूर्णरूपसे समर्थन होता है। श्रीभास्कराचार्यका जन्म १०३७ शकाब्द या सन् १११२ई० में हुआ था। उन्होंने गोलाभ्यायके सुबनकोषमें लिखा है—

लङ्का कुम्भ्ये यमकोटिरस्या  
प्राक् पश्चिमे रोमकपट्टनं च ।  
अधस्ततः सिङ्गपुरं मुमरुः  
सौम्येऽथ याम्ये बडवानलक्ष ॥

इस श्लोकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जङ्गा भूमध्यरेखापर (कुम्भ्ये) स्थित थी। भूमध्यरेखाको ज्योतिष-शास्त्रमें निरक्ष अर्थात् ०° शून्य अक्षांश कहते हैं इसी अक्षांशके ४३-४४ वें श्लोकमें पुनः वर्णन आता है कि जङ्गा भूमध्यरेखापर है और जङ्गा तथा अबन्तीके (उज्जैनी) देशान्तरमें (Longitude) बहुत कम अन्तर दिखलाया गया है। इस मतमें तो श्रीभास्कराचार्यका यह दृढ़ विश्वास था। अबन्तीका देशान्तर ७०°, ७२° पूर्व बतलाया गया है।

३. अब हमें यह देखना है कि जङ्गाके सम्बन्धमें रामायणमें जो वर्णन आये हैं उनसे भास्कराचार्यके उपर्युक्त मतकी पुष्टि होती है या नहीं। समस्त भारतका अग्रगण्य करनेवाले श्रीसुग्रीवजी कावेरी नदीके दक्षिण देशोंका विस्तृत वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'जैसे कोई नवयुवती रमणी पतिके पास जाती है, इसीप्रकार समुद्रकी ओर जाती हुई महानदी ताम्रपर्णीको पार करनेके बाद तुम्हें पाण्ड्य-देशका सुवर्णमय प्रवेशद्वार (कवाटं पाण्ड्यानाम्) मिलेगा। इसके बाद समुद्र जाँचना पड़ेगा। \* तदनन्तर कहते हैं कि वहाँ एक लार्ही थी जिसके कारण समुद्रमें जानेवालोंको बड़ी असुविधा होती थी। अतएव अगस्थ मुनिने विचित्र शिखर महेन्द्र पर्वतका स्थापन कर उस लार्हीको भर दिया। इस पर्वतका बहुत-सा भाग अभी समुद्रमें है, यह महेन्द्र पर्वत सर्वथा सोनेका है।

\* नामप्रपणः ग्राहजुषां तरिष्यथ महानदांश ।

कान्तेव युवतीकान्तं समुद्रमवगाहते ॥

ततो हेममये ... .. ॥

कवाटं पाण्ड्यानां ... .. ॥

ततः समुद्रमासाद्य मंत्रधारायां निश्चयम् ॥

(वा० रा० ४।४।१)

अगस्थेनान्तरे तत्र सागरे विनिवेशितः ॥

चित्रसानुनगाः श्रीमान्महन्द्रः पर्वतोत्तमः ।

जातरूपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवः ॥

(वा० रा० ४।४।१।२०-२१)

इन श्लोकोंसे यह ज्ञात होता है कि महेन्द्र-पर्वत कजिङ्ग देशस्थ महेन्द्र-पर्वतसे भिन्न है। और इसका एक भाग-दक्षिणकी ओर बढ़कर समुद्रमें डूबा हुआ है। इसके अनन्तर २४वें श्लोकमें जङ्गाके विषयमें कहा है—

द्वीपस्तस्यापरे पारे शतयोजनविस्तृतः ॥

स हि देशस्तु बध्यस्व रावणस्य दुरात्मनः ॥

राश्रसाधिपतेर्वासः सहस्राक्ष समुद्यतेः ॥

(वा० रा० ४।४।१।२४-२५)

'इस पर्वतके पश्चिमकी ओर एक द्वीप है जिसका विस्तार सौ योजन है जहाँ इन्द्रके समान कान्तिमान, बध करने योग्य, दुष्टात्मा रावणराज रावण निवास करता है।' इससे अधिक स्पष्ट प्रमाण रावणके निवासके सम्बन्धमें और क्या हो सकता है? अब यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि रावणद्वीप नामक रावणका देश था और जङ्गा उसकी राजधानी थी। वह भारतके दक्षिणतम तट पाण्ड्य-देशके प्रवेशद्वार (पाण्ड्य कवाट) से पश्चिम दिशामें था। सिंहल अथवा सीलोनके लिये यह वर्णन कदापि लागू नहीं हो सकता। और 'दक्षिण भारतीय इतिहासका प्रारम्भकाल' (Beginnings of South Indian History) नामक ग्रन्थमें ग्रन्थकर्ता मन्नासके प्रसिद्ध प्राच्यविद् डा० एस० के० आर्यंगर महाशयने बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ यह सिद्ध किया है कि 'पाण्ड्यानां कवाटम्' तामिल-प्रान्तका प्रसिद्ध कवाटपुरम् या कपाटपुरम् ही है। पाण्ड्यके अर्थशास्त्रमें भी ताम्रपर्णी नदी और पाण्ड्य कवाटका वर्णन आता है। अर्थशास्त्रके टीकाकार श्रीशाम शास्त्रीजीने पाण्ड्य कवाटको पाण्ड्य-देशस्थित मलयकोटि पर्वत बतलाया है, परन्तु यह सर्वथा सन्देहास्पद् है क्योंकि पर्वतपर मोती आदि सामुद्रिक वस्तुओंकी उपलब्धि नहीं हो सकती। आर्यंगर महाशयने इसपर व्याख्या करते हुए 'कवाट-पाण्ड्यानाम्'को पाण्ड्यदेशका प्रवेशद्वार बतलाया है। यह अधिक युक्ति-सङ्गत प्रतीत होता है। टीकाकारने जिसको मलयकोटि बतलाया है वह वही उद्ग्रभूमि है जहाँ पश्चिमी घाट समुद्रमें निगम हो गया है। इस पाण्ड्यदेशके प्रवेशद्वारसम्बन्धी उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट हो



जाता है कि भारतका दक्षिणी कन्याकुमारी अन्तरीप ही वह स्थान है, क्योंकि इसीके समीप महेन्द्र-पर्वत समुद्रमें अन्तर्हित हुआ है और सुग्रीवने जो दक्षिण-भारतके भूगोलका निदर्शन कराया है उससे भी यह पता चलता है कि रावणका निवासस्थान राक्षसद्वीप इस पर्वत श्रृंखलासे पश्चिम था।

लंकाका स्थान।

इस कथनके समर्थनमें कुछ ऐसे प्रमाण पेश किये जा सकते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह लंका समुद्रमें बिलीन हो गयी थी। जिस स्थानपर इस समय मालदिव द्वीप-समूह है। प्राचीन कालमें यही राक्षसद्वीप था। इसका विस्तार भूमध्यरेखासे ६ उत्तर अक्षांश तथा ३ दक्षिण अक्षांश के तथा ७३ से ७६ के पूर्व देशान्तर बीच विस्तृत था। यह सम्भव है कि जिस समय यह द्वीप क्रमशः जलमग्न हो रहा होगा, उस समय वहाँके निवासी भागकर प्राचीन ताम्रद्वीप (ताम्रपर्णि) में

आकर बस गये होंगे, इसी प्रदेशका नाम पीछेसे सिंहलद्वीप अथवा सीलोन पड़ गया होगा।

भूगर्भविद् पब्लिडर्लैंकी यह धारणा है कि ईसाके चार हजार वर्ष पूर्व भारतीय महासागरमें लेमोरिया (Lemuria) नामक एक महाद्वीप था। यह भारतवर्षकी दक्षिण दिशामें अफ्रीकाके दक्षिण भागसे लेकर पूर्वकी ओर दक्षिण अमेरिका तक विस्तृत था। कालगतिसे यह महाद्वीप जलमग्न हो गया और वर्तमान समयके मालदिव (Maldives), सायचेल्लिस् (Seychellis), रोड्रिग्स (Rodrigues), शैगोस (Shagos), मारिशस, (Mauritius) मैडागास्कर (Madagaster), जावा, सुमात्रा, बोर्नियो (Borneo), एसेन्शन (Ascension), फाकलैण्ड (Falkland), ग्राहम् (Graham), और पश्चिमी अंटार्क्टिका (West Antartica) प्रभृति उसी प्राचीन विशाल महाद्वीपके पर्वत-शिखर तथा उच्चभूमि भाग मात्र हैं। मलयद्वीप अथवा मालदिव ही आज उस स्थानपर वर्तमान है जहाँ प्राचीनकालमें रावणका राक्षसद्वीप था, जिसकी राजधानी लंका थी।

## तुलसी-चन्दना

जयति जयति तुलसिदास हिन्दी हितकारी।

प्रगटं भुवि भार हरन , विमल राम चरित रचन।

धनि धनि संसार सरन , असरन दुःख टारी ॥

कविता नभके दिनेश , भाषा-कैरव निशेश ,

कवि-सुरगनमें गनेश , ललित कलाधारी ॥

रामायण अति प्रधान , नवल कमल दल समान ,

धर्म अर्थ भक्ति ज्ञान , मोक्ष दैनहारी ॥

विद्या पीयूष खान , कोविद-जन करन पान ,

पाप पुञ्जको कृशान , त्रिविध तापहारी ॥

धनि धनि श्रीतुलसिदास , भेटों भव फन्द त्रास।

मधुप शरण गहत आस , भक्तन सुखकारी ॥

—योगेन्द्रनाथ शर्मा

\* लेखक इस सम्बन्धमें सन् १९२६ में 'The Mythic Society's Journal' में और 'The Indian Historical Quarterly' नामक पत्रोंमें अपने विचार प्रगट कर चुके हैं।

इसी विषयमें कलकत्तेसे प्रकाशित बंगला मासिकपत्र 'भारतवर्ष' की फाल्गुन १३३६ और ज्येष्ठ १३३७ की संख्याओंमें पं० राजेन्द्रनाथ विद्याभूषणके दो लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें भी प्रायः इसी मतका समर्थन किया गया है। सम्पादक

## रामायणके रचयिता

कौन देता जन्म इस साहित्यको ?  
नद बहाता कौन काव्यानन्दका ?  
मानता जिसको सभी संसार है—  
लघु-सहोदर पूर्ण-ब्रह्मनन्दका ॥ १ ॥

सृष्टि आती दृष्टिमें कुछ और ही—  
आदि-कवि वाल्मीकि जो होते नहीं ।  
प्राकृतिक-सौन्दर्यमें घाचालता—  
—बीजको जो बे भला बोते नहीं ॥ २ ॥

लेखिये अद्भुत महत्ता-सत्यता—  
सन्तजन-उपदेश-बलकी, भक्तिकी ।  
और महिमा देखिये फिर रामके—  
ठीक उलटे नामकी भी शक्तिकी ॥ ३ ॥

व्याधसे वाल्मीकिने ब्रह्मर्षि बन—  
रम्य-रामायण-सुधाकी वृष्टि की—  
मानवोंके चित्तमें जिसने महा—  
शान्तिकी, आनन्दकी है सृष्टि की ॥ ४ ॥

पापियोंका और कुटिलोंका कमी—  
रोग आवागमनका मिटता नहीं ।  
कर कृपा, कलिकालमें आते न तो—  
भक्त 'तुलसी' रूपमें वे जो कहीं ॥ ५ ॥

देववाणी-सम बनाता कौन जन—  
मातृभाषा-नागरीको, यत्नसे !  
जो न होते प्रगट 'हुलसी'खानसे—  
दिव्य, 'तुलसीदास' जैसे, रखसे ॥ ६ ॥

कान्त-कविता-कामिनीके कान्त हैं,  
जो सभी साहित्यके मर्मज्ञ हैं ।  
विज्ञ हैं परिपूर्ण जो नृपनीतिके—  
और जो वेदज्ञ हैं, धर्मज्ञ हैं ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ-रामायण-सदृश संसारमें—  
राजपथकी है न कोई दर्शिनी ।  
ज्ञानकी, हरि-भक्तिकी, शुभ-कर्मकी—  
दूसरी ऐसी न कोई चर्चिणी ॥ ८ ॥

नीतिका यह दिव्य-आदि निधान है,  
गेह है यह ईश-गुण-गण-नीतिका ।  
स्रोत त्रेता-रीतिका भी है यही—  
और है यह काल भवकी भीतिका ॥ ९ ॥

मानता संसार यह सारा इसे—  
सत्यता-शुचिता-महत्तागार है ।  
श्रेष्ठतम-उपदेश-शिक्षाका इसे—  
और वह कहता महा-भण्डार है ॥ १० ॥

चार-चिन्तामणि यही कलिकालमें,  
करनिवासी कल्पतरु यह अन्य है ।  
श्रेष्ठ धर्मशास्त्र है पहला यही—  
सब पुराणोंका यही मूर्धन्य है ॥ ११ ॥

प्रेमसे जो नित्य इसका पाठ कर—  
मानता उपदेश भी है सर्वथा—  
आपही मिट जायगी उसकी महा—  
दुःखदा-आवागमन-जाता व्यथा ॥ १२ ॥

भक्त-कुल-रूपी कुमुद-विधुकी यही—  
चाँदनीकी है अनोखी सम्पदा—  
जो खिलाकर मञ्जु मानस-कमलको—  
जानती घटना न, पर बढना सदा ॥ १३ ॥

काल-चैरीको महा-कलिकालमें—  
जालमें यह डालनेका दाव है ।  
और यह संसाररूपी सिन्धुके—  
पार पानेको अनश्वर-नाव है ॥ १४ ॥

हार है यह परिडतोंके कण्ठका,  
सर्व-लौकिक-धर्मका यह सार है ।  
कष्ट-पातक नष्ट करने हेतु यह—  
एक, मानवमात्रका, हथियार हैं ॥ १५ ॥

जो पुरातन-पुरुष ही साक्षात् हैं—  
श्रेष्ठ मर्यादापुरुषके रूपमें—  
है उन्हींका चारु-जीवनचरित यह—  
सुगमतम-सोपान-सम भवकूपमें ॥ १६ ॥

देहधारी-मुक्ति है जङ्गम यही—  
ज्ञानकीपति-भक्तिकी यह मूर्ति है ।  
शक्ति है मनमोहिनी यह काव्यकी—  
और 'तुलसी'की अलौकिक-स्फूर्ति है ॥ १७ ॥

धन्य है कविराज ! तुमको धन्य है,  
और कविता भी तुम्हारी धन्य है ।  
'द्रोण' हो तुम, शिष्य मैं हूँ 'एकलव्य'—  
काव्यगुरु मेरा न कोई अन्य है ॥ १८ ॥

—कु० प्रतापनारायण 'कविराज'

## श्रीराम-नामकी महिमा

( लेखक—आचार्य श्रीमदनमोहनजी गोस्वामी वै० दर्शनतीर्थ भागवतरत्न )

नंदौ रामनाम रघुवरके । हेतु कृसानु भानु हिमकरके ॥

श्रीराम-नामकी महिमाके सम्बन्धमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके उपर्युक्त वचन हैं । चौपाईका अचरार्थ है कि 'कृसानु (अग्नि) भानु (सूर्य) हिमकर (चन्द्रमा) इन तीनोंका हेतुरूप जो 'राम' नाम है—उसकी मैं बन्वा करता हूँ ।' भावकोंके सत्संगसे इसका जो कुछ अर्थ मुझे ज्ञात हुआ है उसे मैं प्रेमी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ ।

प्रथम अर्थ तो यह है कि, 'राम' इस पदमें तीन अक्षरोंका समावेश देखनेमें आता है । जैसे र—अ—म, ये तीनों अक्षर क्रमसे चौपाईमें कथित—कृसानु—भानु—हिमकर—तीनों देवताओंके बीज हैं । सुतरां 'राम' नाम तीनों देवताओंका कारण है यदि उक्त तीनों शब्दोंका अर्थ न करके केवल कृसानु आदि शब्दोंका ही व्यवहार किया जाय तथापि उक्त शब्दोंमें क्रमपूर्वक र—अ—म अक्षरोंका प्राकट्य दीखता है । वहाँ कोई ऐसा सन्देह कर सकते हैं कि, कृ—में अ आती है र नहीं आता है, इसके उत्तरमें व्याकरणका सिद्धान्त कह देना ही पर्याप्त होगा । व्याकरणमें—अ—र—का एक ही स्थान माना है अतः अ—के स्थानमें—र—कह देनेसे कोई दोषापत्ति नहीं होती । सुतरां यह निश्चय होता है कि, र—अ—म—तीनों वर्णोंके एकत्रित होनेपर 'राम' शब्द हो जाता है और इसी नामके कारण तीनों शब्दोंकी प्रधानता भी हो जाती है । अन्यथा कृसानु—भानु—हिमकर तीनों निरर्थक हो जायेंगे । सुतरां 'राम' नाम ही कृसानु आदि शब्दोंकी उत्पत्तिका हेतु समझा गया ।

दूसरा अर्थ यह भी होता है कि, 'अग्नि' पाचकरूपसे भोजनोंको परिपक्व करता हुआ प्राणियोंके शरीरका पोषण करता है । सूर्यके प्रकाश और तापसे सुख और आरोग्यताका सञ्चार होता है । 'चन्द्रमा' वनस्पतियोंका पोषण करता हुआ प्राणियोंको सहायता पहुँचाता है, सुतरां प्राणिमात्रके जीवनस्वरूप ये तीन देवता ही सिद्ध होते हैं । परन्तु इन तीनों देवताओंको शक्ति देनेवाला इनका जीवनस्वरूप—

'राम' नाम है, रामरूप ब्रह्मके प्रकाशसे ही ये तीनों प्रकाशित हैं । श्रुति कहती है—

'तमेवमान्तमनुभाति सर्वं तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति'

इसी प्रकार गीतामें भगवान्‌के वचन हैं ।—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।

( गीता १५ । १२ )

अर्थात् सूर्य, चन्द्र, अग्निमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित कर रहा है, श्रीभगवान्‌ कहते हैं कि वह सब मेरा ही तेज है ।

तीसरा अर्थ यह है कि, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा इन तीनोंका प्रधान कारणरूप जो 'राम' नाम है वह तीन कुलोंको उत्कर्ष करनेवाला है । देखिये, अग्निवंशमें श्रीपरशुराम प्रकट हुए । सूर्यवंशमें दशरथकुमार श्रीश्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए । चन्द्रवंशमें श्रीबलरामजी प्रकट हुए । सुतरां तीनों कुलोंकी श्रीरामनामसे ही प्रसिद्धि हुई ।

चौथा अर्थ यह है कि, व्यवहारमें भी शरीरमें देखा जाता है कि, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमासे ही स्वास्थ्य अच्छा रहता है । मनुष्य-शरीरमें हृद्, पिंगला, सुषुम्ना अर्थात् चन्द्र, सूर्य, अग्नि, ये तीन नादियाँ हैं, इन तीनों नादियोंसे जब तक प्राणवायुका सञ्चार होता रहता है तभी तक मनुष्य जीता है और तभी तक उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है । जिस समय इनकी शक्तिका अभाव हो जायगा, स्वास्थ्यमें खराबी उत्पन्न हो जायगी । स्वास्थ्यकी खराबीसे शरीर दुर्बल हो जाता है, उस समय लोग कहते हैं कि, इसके शरीरका 'राम' निकल गया । सुतरां सिद्धान्त यह है कि, राम नामको भूल गया, इसीसे दुर्बल हो गया, यदि राम-नामको न भूलता तो शक्तिहीन न होता, अतः राम-नाम ही सब समयमें सत्य है । देखिये स्रष्टुके बाद भी 'राम-नाम ही सत्य' रहता है । इसलिये मनुष्य-देह-धारीमात्रको निरन्तर रामका नाम कीर्तन करना उचित है ।

## ‘र’ और ‘म’ की रमणीयता ।

( लेखक पं० श्रीहृत्हरामजी चौने ‘गुणाकर’ )

एक छत्र, एक मुकुटमणि, सब नरननपै जोय ।

‘तुलसी’ रघुबर नामके बरन निराजत दोय ॥



स्तवमें वे दोनों वर्षा वर्षामालामें उत्कृष्ट हैं । यही कारण है कि वे वर्षा जिन शब्दोंके मस्तकपर रेफ या अनुस्वाररूपमें चिराजमान हो जाते हैं, वे शब्द अपने अर्थका विशेष मूल्य कूतने लगते हैं और एक अनोखी छटा छिटका देते हैं । अपने इस कथनको विशेष स्पष्ट करनेके लिये हम यहाँ कतिपय उदाहरण देकर पाठकोंका मनोरञ्जन करनेका प्रयत्न करते हैं । यथा सागर, आगर, नागर, कर्मी, गर्मी, धर्माधर्म आदिसे यदि ‘र’ वर्षा निकाल दिया जाय तो शेष साग, आग, नाग, कमी, गमी, और धमाधम शब्द बतकर दुर्गतिमें पड़ जाते हैं । इसी प्रकार यदि कामना, मङ्गली, मलाका, मुकुन्ध, मुल्लू आदि शब्दोंसे रामजीका ‘म’ निकल जाय तो काना, छली, साला, कुन्ध और उल्लू आदि हो-शब्दार्थ प्रायः हास्यास्पदकी गतिको प्राप्त हो जाते हैं । और यदि ‘र’ और ‘म’ दोनों किसी शब्दमेंसे निकल जायें तो फिर कहना ही क्या ? जैसे ‘विश्राम’ मेंसे ‘राम’ जब पृथक् हो जाते हैं तो जो शब्द बच रहता है वह ‘बिष’ ही रह जाता है । रसोईमें यदि ‘रामरस’ न हो तो ‘रसोई’ का स्वाद बेस्वाद ही है; ऐसे ही इस नर-तनमें ‘रामरस’ न रहे तो वह नर-तन नितान्त निरर्थक है । ‘रसना’ रामरस न रहनेसे रस-हीन ही है; नयन नय-हीन है यदि वे अन्तर्मुख होकर अपने ‘राम’ की छवि नहीं निरखते; ओत—ओत नहीं जो भुक्ति-कथा सुनकर ‘राम’ मय नहीं हो जाते— वे कान ‘कान’ नहीं कहे जा सकते जो ‘कान्ध’-कथाके इच्छुक-भिच्छुक नहीं हैं । एक ‘अज्ञात’ कविने भी ‘र’ ‘म’ की महानता प्रदर्शित करते हुए कहा है—

कोऊ बनावत ऊँच अठा, धनधोर घटा लगी तन्नु कनातैं ।  
तामसी कोउ तमाम रक्क, बहु भूषन गौन सम्राटी जयातैं ॥  
बन्द नृपा भवको यह ख्याल, महाविकराल धनी उत्पतैं ।  
एक ‘र’ कार ‘म’ कार विना मुधिकार सबै संसारकी बातैं ॥

हम यहाँ ‘र’ ‘म’ वर्षाका केवल शाब्दिक चमत्कार

ही नहीं प्रकट कर रहे हैं । विशिष्ट वर्षाओंके उच्चारणका तो अमेरिका, यूरोप, आदिके वैज्ञानिकोंने शरीरके अवयवोंके कट दूर करनेका भी आविष्कार किया है । उन वैज्ञानिकोंका कहना है कि कुछ वर्षा या शब्द ऐसे हैं जिनके Vibrations (कम्पन) से शरीरके विशिष्ट भीतरी भागोंपर धक्का पहुँचता है और परिणामतः उस भागकी अस्वस्थता क्रमशः दूर हो जाती है । एक अमेरिकन पत्रमें एक रोगीने अपना अनुभव प्रकाशित कराया है । उसका कहना है कि मैं कई वर्षोंसे मन्दागि (Dyspepsia) आदि उदर-सम्बन्धी रोगोंसे पीड़ित था । अनेक औषधोपचार किये, पर विशेष लाभ नहीं हुआ । एक दिन मैंने एक बच्चेको पलनेपर ‘आ’ ‘म’ शब्द बार-बार बिछाते सुना । उसी क्षण मैंने ध्यानसे देखा तो जिस समय बालक इन वर्षाओंका उच्चारण करता था, उस समय उसके पेटके ऊपरका पद संकुचित होता और फैलता था, बस, मैं समझ गया कि इन वर्षाओंके उच्चारणसे अवश्य पेटके भीतरी अवयवोंपर प्रभाव पड़ेगा । तदनुसार मैंने निम्न उपर्युक्त वर्षाओंको अपनेकी क्रिया की, जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे स्वास्थ्यमें क्रमशः परिवर्तन स्पष्ट दिखायी पड़ने लगा । औंधके राजा-साहेबने ‘सूर्यनमस्कार’ पर एक उत्तम पुस्तक लिखी है, उसमें भी उन्होंने वेद-मन्त्रोंके वैज्ञानिक प्रभावोंकी विशद व्याख्या की है । डॉक्टरके श्रीशिखरजी शर्माने ‘ओंकार-जाप-विधि’ नामक पुस्तकमें भी ‘ओंम्’ शब्दके जाप करने-वालोंके अनुभवोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि ‘ॐ’ शब्दके नियमित जाप करनेसे कई मनुष्योंका शारीरिक और नैतिक उत्थान हुआ । अतः यदि भारतीय वैज्ञानिक ‘राम’ शब्दके Vibrations ‘कम्पन’ का वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो निस्सन्देह उनपर हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके उपदेशोंका रहस्य प्रकट हो जायगा ।

अब हम स्वयं ‘राम’-जापके अपने अनुभवोंको बतलाते हैं । एक चण्डिय जो कफकी बीमारीसे पीड़ित थे, जब कई औषधोपचारसे नीरोग नहीं हुए तब वैद्यने उनके काममें अमृतचूनि, किरपान और कुम्पय जिनमें प्रायः राम, जलमण और महावीरजीके युद्धका वर्णन था, अच्छे स्वरमें सुनाये जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका

कच-कच का बाहर निकल पड़ा और वे स्वस्थ हो गये। दूसरे महाशय जो 'राम' शब्दसे बिदा करते थे, एक बार उधर-शुद्धसे अत्यन्त बेचैन हो गये। वैद्योपचार असफल होनेपर एक भजनानन्दीने उन्हें सलाह दी कि वे जोरसे 'राम राम' कहें, उन्होंने विनोद-वश ऐसा ही किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका शूल न जाने कहाँ छू हो गया। अब वहाँ एक धार्मिक दृष्टिसे जप करनेमें हमें जो अनुभव हुआ वह भी सुनिये—

एक बार हम जबलपुर विमान्तर्गत सिहोरा ग्राममें थे। एक दिन राम-जप करनेकी इतनी धुन समाई कि हमें आरमभिसृति-सी हो गयी। उस दिन यात्रा भी करनी पड़ी; परन्तु 'राम-जप' कई व्यवधान पड़नेपर भी उधो-का-न्धो जारी रहा। सन्ध्याको घर झौटनेपर क्या दिखायी पड़ा कि श्रीरामजी महाराज अपने प्रिय बन्धुओं और गुरु-जन सहित हमारे द्वारपर ही खड़े हैं। हमारे शरीरमें उस समय रोमाञ्च हो आया। तदनन्तर हमने सावधान होकर सोस्ताह दबडबत् की और अपने अहोभाग्य माने। जो प्रसन्नता हमें उस दिन हुई, कदाचित् ही वह जीवनमें अब

सम्भव हो। यथार्थ बात यह थी कि हमारे गृहके प्रमुखने राम-जीजाके पात्रोंको सादर आमन्त्रित किया था, जिसका हमें स्वप्नमें भी आन नहीं था। तो भी हमारे लिये उन पात्रोंके दर्शनमें ही अपने 'राम' की प्रतिमूर्ति फलक उठी, जिसे हमने केवल अपने राम-जापका ही प्रतिफल समझा।

विकारोंके तीव्रतम उत्कर्षमें राम-जप हमें अत्यन्त शान्ति-प्रद होता है। इसकी कई अवसरोंपर परीक्षा कर ली गयी है। अतएव जिनपर 'राम' नामकी महत्ता प्रकट हो जाती है ऐसे भजनानन्दी अपने बातवरणको ही 'राममय' बना डालते हैं। अपने स्वजन-परिवारके नाम भी 'राम' से रहित नहीं रखते। कई व्यापारी 'राम' नामको फलदायक समझकर वस्तुओंको तौलते समय 'राम एक' 'राम दो' कहकर गिनती लगाते हैं। यहाँतक कि भोवी जब कपड़े धोने लगता है तो यकान आदि मिटानेके लिये 'राम-सियाराम' कहता है। उपयुक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि 'राम' शब्दके जापसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबकी प्राप्ति सरलतासे ही हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी सच कह गये हैं:—

नहिं कलि-कर्म न भगति-बिंबकू। राम-नाम अवलम्बन एकू॥

## तुलसी-स्मृति

कितनी उज्ज्वल विभा है, गोस्वामीजीकी अम्लान—

शुक्लपक्षके धवल गगनमें, सतत दीखती वह धुतिमान।

परम ज्योतिसे बिछुड़ पड़े थे कभी, यहाँ पर वे मतिमान;

भूल जगतके तुमुल तिमिरमें भटक रहे थे उनके प्रान;

मायाकी अज्ञान-निशामें जब स्वरूपका रहा न ध्यान—

प्रकट हुई तब कालनागिनी-मायासे मणि-ज्योति महान।

अहो खुल गये वहीं अचानक, हियके दिव्य नयन, दो कान—

निखिल सृष्टिमें उन्हें हो गया, सियारामकी छाविका ज्ञान।

उसी अतुल छविके कीर्तनमें विश्वप्रेमके गाकर गान—

अपना पिजड़ा छोड़ हुए वे सियाराममें अन्तर्धान।

× × × ×  
पिजड़ेमें यह सुग्गा भी तो रटता है नित सीताराम—

फिर भी तो हा इसे न मिलती—शान्ति, मुक्ति औ पावन धाम।

खोलो, खोलो, अन्तर्यामिन्! मेरे भी ये रुद्ध कपाट—

शुक्लपक्षकी उज्ज्वलतामें मैं भी देखूँ रूप विराट।

—श्रीशान्तिप्रिय द्विवेदी

\* एकवार प्रसिद्ध रामभक्त गायनाचार्य पं० विष्णुदिगम्बरजी पलुस्करने मुझसे कहा था कि जोर-जोरसे कम्बे सुरसे राम-नाम उच्चारण करनेसे ज्वर चला जाता है। उनका ऐसा अनुभव है। —सम्पादक

## रामायण और उसकी शाखाएँ

( लेखक—प्रो० श्रीललितमोहन कार यम० प०, बी० एल०, काव्यतीर्थ )



दोँके पश्चात् रामायण ही सर्वोत्कृष्ट भारतीय ग्रन्थ है। भारतवर्षकी सभी मुख्य-मुख्य भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया है। इन अनूदित ग्रन्थोंमें मूल ग्रन्थके मुख्य विषयसे साम्य होते हुए भी कथा-भागमें कुछ परिवर्तन पाया जाता है। जहाँ-जहाँ भारतीय लोगोंने प्रवास किया है वहाँपर वे अपने साथ कम-से-कम तुलसीकृत रामायण—जैसे सर्वप्रिय ग्रन्थको अवश्य ही लेते गये हैं। मुख्य मुख्य व्यापारिक केन्द्रोंमें भारतीय, आङ्गिक कार्योंकी समाप्तिके बाद तथा विभासके पूर्व बहुधा तुलसीकृत रामायणके पद्योंको गा-गाकर पाठ किया करते हैं जिससे दिनका कोलाहलपूर्व वायुमण्डल मध्मरात्रिके समय पवित्र हो जाता है। भारतीय गृहोंमें इसे बच्चे अपनी बड़ी सम्पत्ति समझते हैं और जिस समय माताएँ अथवा दादियाँ भोजन बनाने, सूत कातने अथवा अन्य गृहकार्योंमें लगी रहती हैं उस समय वे उसे पढ़कर उन्हें सुनाते हैं। रत्नगादियोंमें प्रायः यह देखनेमें आता है कि दक्षिण भारतके निवासी लुआके समान काठके दो टुकड़ों (करताल) को बजाते हुए द्राविडी भाषामें श्रीरामकथाका गान करते हैं। अन्य तीर्थस्थानोंकी भीति पुरीमें जगन्नाथजीके मन्दिरमें भी निरन्तर सन्ध्याके समय रामायणका पाठ नियमितरूपसे होता है। रामजीलाके द्वारा भी रामायणके दशकोंका वर्षमें एक बार साक्षात्कार हो जाता है। रावणके पुतलेके दाह, तथा श्रीरामके सहायकोंकी सेनाका सञ्चालन उसी प्राचीन रावण और विजयी श्रीरामकी सखी स्थितिको जागृत कर देते हैं। भरतमिलाप—जहाँ एक वास्तविक राजा एक दूसरेको राज्यका भार सौंपता है—सदा स्मरण रखनेयोग्य आत्मत्यागका एक अपूर्व दृश्य उपस्थित करता है, और इसप्रकार यह भरतमिलाप प्रतिवर्ष जीवित किया जाता है।

रामायणके प्रति सजीव प्रेमका स्पष्ट परिचय इस देशके अन्य प्रान्तोंमें सार्वजनिक कथाके रूपमें मिलता है। सर्वसाधारणको समझानेके लिये इस कथाको नाटकीय स्वरूप दिया जाता है, जहाँपर कथावाचक सभी पात्रोंका अभिनय करता है। अभिनय इतनी कुशलताके साथ किया जाता है कि (एक रामायणी कविके शब्दोंमें) कल्याण

स्थलोंपर पत्थर भी पिघल जाते हैं। इसप्रकार बीते हुए दिनोंकी भावनाएँ जागृत रक्खी जाती हैं। महर्षि वाल्मीकि—जिनकी आयु अधिक बतलायी जाती है—वास्तवमें चिरजीवी हो गये हैं और तबतक न मरेंगे, जबतक संस्कृत भाषा और हिन्दू-धर्मका अस्तित्व इस वसुधापर रहेगा।

रामायणके अतिरिक्त देशी भाषाके अन्य ग्रन्थोंके जगभरा आधेसे अधिक विचार वाल्मीकीय रामायणसे लिये गये हैं। इसमें अत्युक्ति नहीं कि जो मनुष्य रामायणसे परिचित नहीं है उसे भारतकी विभिन्न भाषाओंके बहुत-से प्रसङ्ग समझमें नहीं आवेंगे। लक्ष्मण, मन्थरा, विभीषण तथा कनक-शुग आदि ऐसे शब्द हैं जिनके समझनेके लिये किसी कोषकी सहायता नहीं ली जा सकती। भारतके गृहस्थ-जीवनमें रामायणके आदर्शोंका बड़ा अमृत प्रभाव है। आज भी भारतीय नारियोंको महारानी सीताकी भीति पतिव्रता, श्रीरामके मुख्य पति, श्रीदशरथके समान श्वसुर और माता कौसल्याके समान सास पानेके लिये आशीर्वाद दिया जाता है। बहुत-से प्रान्तोंमें विवाहके अवसरपर आज भी जियाँ भगवान् राम एवं महारानी सीताके आदर्श विवाहसम्बन्धी गीत गाती हैं।

रामायणके अनेक अनुवाद पाये जाते हैं और प्रत्येक ग्रन्थमें सम्पादक अथवा अनुवादकने कुछ-न-कुछ अपनी ओरसे जोड़नेका प्रयत्न किया है। पाली ग्रन्थोंमें भी इस कथाका असंस्कृत रूप 'दशरथ जातक'के नामसे पाया जाता है। कविकुलशिरोगणि कालिदासने लेकर कविराज पण्डित प्रभृति-संस्कृत कवियोंने रामायणके आधारपर जिन-जिन ग्रन्थोंकी रचना की है उनमें घटनाकी दृष्टिसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। कालिदासकृत 'रघुवंश', भवभूतिकृत 'उत्तररामचरित' एवं 'महावीरचरित', भट्टकृत 'भट्टीकाव्य', राजशेखरकृत 'बालरामायण' तथा अन्तिम किन्तु धुरन्धर विद्वान् कविराज पण्डितकृत 'राघव पाण्डवीयम्' आदि संस्कृतके ग्रन्थ रामायणके आधारपर रचे गये हैं। इनमें 'राघवपाण्डवीयम्' एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक श्लोक साथ-साथ रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थोंकी कथाओंका वर्णन करते हैं। इस अमृत ग्रन्थके अवलोकनसे संस्कृत भाषाकी प्रभूत प्रतिभाका परिचय मिलता है। रामायणके

आधुनिक ग्रन्थोंमें वाल्मीकीय रामायणसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। महारमा तुलसीदासजी तथा श्रीकीर्तिदासजीने रामायणकी घटनाओंका उल्लेख भक्ति और ध्यानसे प्रेरित होकर किया है, जिसका प्रभाव अन्य चर्मावलम्बी मनुष्योंपर भी पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ मुसलमान-कवियोंने भी रामायणपर रचना की है।

अतः भिन्न-भिन्न कवियोंद्वारा रामायणमें बहुत रूपान्तर हो गया है। सर्वप्रथम हमें इस कथाका उल्लेख 'बौद्धजातक'में मिलता है। इस ग्रन्थके अनुसार, राजा दशरथ काशीके (अयोध्याके नहीं) राजा हैं। उनके रामपण्डित और लक्ष्मणकुमार दो लड़के तथा सीता नामकी एक कन्या है। इन वर्षोंकी माताके मरनेपर राजा दशरथ एक स्थिरचित्त सुन्दरीका पाणिग्रहण करते हैं, जिसके गर्भसे भरतकुमार जन्म लेते हैं। प्रसङ्गवश एक दिन वह रानी अपने पुत्रको सुवराज बनानेके लिये राजासे कहती है, राजा सुनते ही क्रोधित हो उठते हैं और कहते हैं—'ये दुष्टा स्त्री! तुम्हें ऐसा कहनेका साहस कैसे हुआ जब मेरे अन्य दो लड़के अग्निस्कन्धकी भाँति दीप्यमान हो रहे हैं।' अन्तमें राजा अत्यन्त दुःखी होकर दोनों बड़े लड़कोंको कूटागारमें बुलाते हैं और उनसे कहते हैं कि 'हे पुत्रो! तुमलोग इस राज्यको छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारी हँसालु माता तुम्हारा वध कर डालेगी।' परचात् दोनों राजकुमार और राजकुमारी उत्तर दिशामें हिमालयकी ओर दस वर्षकी अवधि व्यतीत करने चले जाते हैं क्योंकि ज्योतिषियोंके कथनानुसार राजाकी मृत्युके केवल दस वर्ष ही बच रहे हैं। किन्तु पुत्र-विभोगके कारण राजा दो ही वर्षमें मर जाते हैं और नगरके सब निवासी भरतकुमारके साथ, उनकी बहिन तथा भाइयोंके जौदानेके लिये जाते हैं। राजाकी मृत्युका समाचार जैसे ही उनसे कहा जाता है, रामपण्डित तो धीरपुरुष होनेके कारण नहीं रोते हैं, किन्तु लक्ष्मणकुमार और सीता अत्यन्त अधीर हो उठते हैं। अब रामपण्डित किसी प्रकार भी राजधानीमें जाना नहीं चाहते और प्रतिनिधिस्वरूप अपनी कुश निर्मित चरखपादुकाको भेज देते हैं। सब लोग निराशा होकर लौट जाते हैं और गद्दीपर रामपण्डितकी चरखपादुकाको रख देते हैं। ये

चरखपादुका चेतन हैं और जबतक कार्य न्यायपूर्वक सम्पादित होता है—जुप बैठी रहती हैं, किन्तु अन्याय होते ही वे एक दूसरेपर आघात करने लगती हैं। वनवासका समय बीतनेपर रामपण्डित राजा बनाये जाते हैं और जनकदुहिता (सीता) के साथ विवाह कर लेते हैं। ❀

उपर्युक्त कथाके औचित्यपर अपनी सम्मति प्रदान करनेका भार मैं पाठकोंके ऊपर ही छोड़ देता हूँ किन्तु बौद्धजनश्रुतिके अनुसार इस कहानीको स्वयं बुद्ध भगवान्ने कहा था और उन्होंने यह भी कहा था कि पूर्वजन्ममें विषममें भी प्रशान्तचेता रामपण्डित मैं ही था।

कवि काबिदासकृत रघुवंशमें भी रामायणके सदृश आदिसे अन्ततक रघुकुलके आचार और धर्मोंके विकासका वर्णन मिलता है और उनकी पराकाष्ठा श्रीरामके जीवनमें हो जाती है। रामचन्द्रके उपाख्यानसे पूर्व रघुवंशमें एक महान् राज्यनिर्माणका क्रम दिखायी देता है और पश्चात् जानेवाले राजाओंके वर्णनमें उसी राज्यकी अस्तव्यस्त दशाका विवर्णन हो जाता है। कविने सबसे अधिक स्थान अर्थात् २६ राजाओंके वृत्तान्तसे पूर्व रघुवंशका लगभग एक तिहाई भाग श्रीरामके चरित्र-चित्रणमें ही समाप्त कर डाला है। वहाँ तक कि महाराजा रघु जिनके नामसे काव्यका नामकरण हुआ है, उन्हें भी उतना स्थान नहीं दिया है। महारानी सीताके चरित्र-चित्रणमें कविकी कला पराकाष्ठाको पहुँच जाती है। श्रीलक्ष्मणजीसे उस अज्ञात स्थानमें वनवासकी बात सुन सीताजी मूर्छित हो जाती हैं और चेतना लाभ करनेपर कहती हैं कि 'जब पति स्वयं राजगद्दीपर विराजमान हो उस समय उसके सन्तानकी माताके लिये क्या भिक्षुकीका जीवन बिताना उचित है? मेरी अग्नि-परीक्षाके पश्चात् भी मेरा त्याग करना क्या ठीक है? अथवा कदाचित् यह मेरा दुर्भाग्य है? फिर भी, शिशुपालन आदि मातृत्वसे अवसर पाते ही मैं पञ्चाग्नि ग्रहणकर अति कठिन तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तरमें उन्हें पतिका रूपमें प्राप्त करूँ और मेरा तथा उनका फिर कभी वियोग न हो।'

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-

रुध्वं प्रसूतेऽचरितुं यतिष्ये।

❀ इस कथासे प्रतीत होता है कि या तो इसका लेखक श्रीवाल्मीकिरामायणसे अपरिचित था, अथवा तो जानबूझकर उसने इसप्रकारकी असम्भव और अनर्गल कल्पना की है। पाठकोंको इससे यह मालूम हो जायगा कि हमारे गौरवमय इतिहासको किस प्रकारसे लोगोंने विकृतरूपसे जनताके सामने रक्खा है।—सम्पादक.

भूयः यदेवं जननान्तरेषु

त्वमेव मर्त्ता न च विप्रयोगः ॥

महाकवि भवभूति जिन्होंने पूर्णरूपेण काबिवासको बाबूभट्टसे मिला दिया है, अपने पूर्व लेखकोंसे आगे बढ़ना चाहते हैं, जो महारानी सीताके चरित्रको और भी सुन्दर बनानेके लिये भगवान् रामकी ओर कुछ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं और उन्हें कम सम्मान प्रदान करते हैं, क्योंकि उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे सीताजीके विषयमें 'अपि स्वदेहात्' इत्यादि बचन कहलाये हैं। किन्तु भवभूति उन्हें उत्कर्ष प्रदान करते हैं और उनके मुखसे—

'वज्रादपि कठोरणि मृदुनि कुसुमादपि'

—कहला देते हैं। यदि वास्तवमें देखा जाय तो भवभूति-कृत 'उत्तर रामचरित' केवल एकाङ्ग अभिनय है। इसके प्रथमाङ्क-

में ही उपक्रम और अवसान उपस्थित कर दिये गये हैं। क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी अभी-अभी अपनेको सीतासे अभिन्न समझ रहे हैं और तत्काल सीता-वियोगका प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है। उत्तर-रामचरितके अन्य अङ्क इसी कथाकी पूर्ति तथा पुनः संयोगका सम्पादन करते हैं क्योंकि संस्कृत-साहित्यमें दुःखान्त नाटकका स्थान नहीं है। इससे ज्ञात हो जाता है कि भवभूतिने काव्यकी एकतापर ध्यान नहीं दिया है, जिसका संस्कृतके अन्य नाटकोंमें पूरा निर्बाह किया गया है। उत्तररामचरितके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ पञ्चम तथा षष्ठ अङ्कोंमें जिन-जिन घटनाओंका उल्लेख जाता है वे एक ही दिन घटित होती हैं और सातवें अङ्ककी घटना कुछ दिन बाद होती है किन्तु प्रथम एवं द्वितीय अङ्कके मध्य बारह वर्षका अन्तर पड़ जाता है।

### अमर-काव्य

प्रत्येक मनुष्यके दो रूप होते हैं—पहले रूपमें सन्तों और योगियोंके गुण होते हैं और दूसरेमें ऐसी वृत्तियाँ होती हैं जो मनुष्यको घृणित और दूषित बनाती हैं। श्रीरामचन्द्रजी प्रथम स्वरूपके अवतार थे और रावण दूसरे स्वरूपका था। इससे शिक्षा मिलती है कि हम लोग सभी इच्छानुसार अपने जीवनको दैवी या आसुरी बना सकते हैं। हम स्वयं ही अपने भविष्यके निर्माता हैं। साधारणतः लोगोंमें सद्बृत्तियोंकी अपेक्षा असद्बृत्तियाँ ही अधिक प्रकट हुआ करती हैं। अर्जुनने इस बातका अनुभव करके श्रीकृष्ण भगवान्से वह उपाय बतलानेके लिये प्रार्थना की थी जिसके द्वारा कामना और आसक्तिके विक्षिप्त-चित्त पुरुष योगकी स्थितिको प्राप्त हो सकता है। भगवान् कृष्णने बड़े ही मनोहर श्लोकोंमें ऐसे विभिन्न साधन बतलाये हैं, जिनसे मन वशीभूत किया जा सकता है—'मुक्ते मनबुद्धि लगाकर सब काम करते रहो—'मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।' ऐसा न कर सको तो मेरे कर्माँमें लगे रहो, जो कुछ करो सो मेरे लिये करो 'मत्कर्मपरमो भव' मदर्थमपि कर्माणि।' यह न हो सके तो कर्मफलकी आशा छोड़ दो 'सर्वकर्म फलत्यागं कुरु।' इस तरह अनेक प्रकारसे अहङ्कारपर विजय प्राप्त करने तथा योगियोंकी परमावस्थातक पहुँचनेका रहस्य भगवान्ने समझाया।

यह उपदेश श्रीरामचन्द्रजीके आचरण और उपदेशका प्रतिफलरूप है। × × × ×

हम कह सकते हैं कि जैसी भावप्रकाशनकी सरल और चमत्कृत शैली, उच्च विचार तथा दिल फड़कानेवाली घटनाओंसे युक्त रचना वाल्मीकिकी है उससे बढ़कर रचना साहित्य शास्त्रमें हो ही नहीं सकती। यही कारण है कि यह काव्य वृद्ध-युवा, सज्जन-दुर्जन, आस्तिक-नास्तिक सबके मनको मोह लेता है। ब्रह्माने ठीक ही कहा था कि जबतक चन्द्र-सूर्य चमकते रहेंगे और जबतक ससागरा पृथ्वीका अस्तित्व रहेगा तबतक यह काव्य जीवित रहेगा। —स्वर्गीय अहिस् टो०बी० गोपगिरि अम्बर।

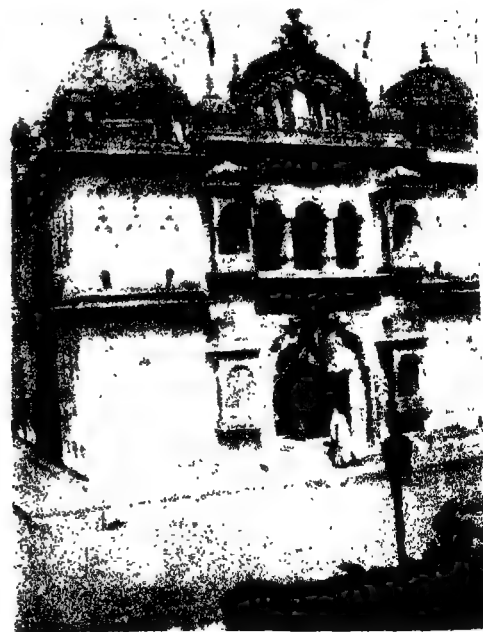




श्रीजानकीजीका नालन्दा मन्दिर



श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका सिंहामन



श्रीजानकी मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके मन्दिरका पूर्वी दृश्य

कल्याण



श्रीरामजीके मन्दिरमे प्रार्थित स्तुतियाँ

( श्रीजनकपुर धाम )



श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर



धनुष श्री राम श्रीरामजीके मन्दिरका सामनेका ( पूर्वी ) दृश्य



श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दृश्य

## राम-नाम-माहात्म्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीयोगतिर्मयानन्दजी पुरी)



गवतादि भक्ति-ग्रन्थोंमें नबचा भक्तिके विषयमें विशेषरूपसे बयान किया गया है। उनमें स्मरण-भक्ति एक अन्यतम है। इस स्मरण-भक्तिका विषय प्रभुका नाम-स्मरण है। प्रभु अनन्त अपार हैं। इसलिये उनके नाम भी अनन्त अपार हैं। उन अनन्त अपार नामोंके प्रत्येक नाम ही प्रभुका वाचक और आपकोंके लिये अभीष्ट सिद्धिदायक है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु उनमें राम-नामकी कुछ और ही महिमा है। भगवान् रामचन्द्र और उनके नामकी यथार्थ महिमा सामान्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, देवतागण भी अपनी तरह नहीं जानते। स्वयं श्रुति माता भगवान् रामचन्द्रजीके और उनके पावन नामके विषयमें कहती है:—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।

राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥

(रामरहस्योपनिषद्)

भगवान् रामचन्द्रजी परमब्रह्मस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी परम तपस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी श्रेष्ठ तत्त्व हैं और रामचन्द्रजी साक्षात् तारक ब्रह्म हैं।

रमन्ते योगिनेऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परं ब्रह्मामिधीयते ॥

(रामतापिन्युपनिषद्)

जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्म परब्रह्ममें योगी लोग सदा रमण करते हैं वही परब्रह्म रामायणादि ग्रन्थोंमें रामनामसे कथन किये गये हैं।

महारामायण और अगस्त्यसंहितामें भगवान् शिवजीने रामनामकी विशेषता बतलाते हुए कहा है—हे देवी पार्वति! समस्त वेद, शास्त्र, मुनि और श्रेष्ठ देवता भी अति महान् नामका प्रभाव नहीं जानते हैं, अमृत राम-नामका अर्थ भगवान् श्रीरामचन्द्र ही सम्यक् रूपसे जानते हैं और उन्हींकी कृपासे मैं भी किञ्चित् जानता हूँ। हे पार्वति! समस्त वेदपाठ और समस्त मन्त्रोंका जप करनेसे जो पुण्य लाभ

होता है उससे कोटिगुण अधिक पुण्य-लाभ केवलमात्र रामनामसे होता है।

अब प्रश्न यह है कि वेदोंमें 'ॐ' मन्त्रकी बहुत ही प्रशंसा की गयी है, वहाँ कहा गया है कि 'ॐ' साक्षात् पर-ब्रह्मस्वरूप है और वही मन्त्रोंका राजा है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी गीतामें 'ॐ' के विषयमें कहते हैं—

ॐ इत्येकाग्रं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(८।१३)

इसीप्रकार भगवान् पतञ्जलिने भी योगसूत्रमें 'तस्य वाचकः प्रणवः' कहकर इसकी महिमा गायी है।

उपर्युक्त श्रुति, स्मृति तथा अन्य अनेकानेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि 'ॐ' से अधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र समस्त मन्त्रशास्त्रोंमें दूसरा नहीं है, फिर राम-नाम सब मन्त्रोंसे विशेषतः 'ॐ' से भी बढ़कर किस प्रकार हुआ ?

इसका उत्तर यह है कि वस्तुतः 'ॐ' और 'रामनाम'में फलकी दृष्टिसे कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही परमात्माके नाम हैं और दोनोंका ही फल समान है। परन्तु एक प्रकारसे रामनामकी ही ॐकारसे अधिक विशेषता बतलायी जा सकती है, यह यह है कि—

ॐकारके उच्चारणका अधिकार आपामर सर्वसाधारणको नहीं है किन्तु रामनामका उच्चारण उच्च-नीच, विद्वान्-अविद्वान्, साधु-असाधु, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, पापी-पुण्यवात्मा सभी मनुष्य, सब समय समान-भावसे कर सकते हैं। इस बातको हम एक दृष्टान्तके द्वारा समझाते हैं—

किसी देशके एक स्वामी हैं, उनका नाम नटवरसिंहजी है। वे उस देशके राजा हैं अतः उनके नामके साथ 'महाराजा' भी जोड़ा जाता है। उनके पूर्वजोंकी उपाधि महाराणा थी इसलिये उनको भी महाराणा कहते हैं। वे बड़े शूरवीर हैं, इसलिये उन्हें बहादुर भी कहा जाता है। सरकारसे उनको के०सी०एस०आई०की पदवी प्राप्त हुई है अतः उनके नामके साथ वह भी जोड़ देनी चाहिये। अब उनका पूरा नाम ऐसा

हुआ 'महाराजा महाराणा श्रीमदवरसिंहजी साहेब बहादुर के०सी०एस०आई०' इस नाममें उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, और महत्व भरा रहनेसे भी जो विद्वान् है, जो उच्चकोटिके मनुष्य हैं वे ही इसका उच्चारण कर सकते हैं। परन्तु जो अविद्वान् हैं, साधारण ग्रामीण अनपढ़ हैं, या मृत्यु-श्रेणीके लोग हैं वे उस नामका न तो अर्थ जानते हैं और न उच्चारण ही कर सकते हैं। वे लोग तो केवल 'महाराजा साहेब' इतने सहजसाध्य—सहजबोध्य शब्दसे ही अपना काम चलाते हैं और महाराजा साहेब भी उनकी सरलतापर प्रसन्न रहते हैं।

इसी प्रकार 'ॐ' परमात्माका महान् महत्त्वपूर्ण एवं ऐश्वर्यपूर्ण नाम होनेपर भी साधारण श्रेणीके मनुष्य उसका न तो महत्व समझते हैं और न ठीक-ठीक उच्चारण ही कर सकते हैं। इसीलिये शास्त्रकारोंने उस 'ॐ' के ही सारभूत अर्थ 'राम' इन दो अक्षरोंसे परमात्माको सम्बोधित किया है, जिससे सर्वसाधारण उसको उपयोगमें ले सकें। 'राम' शब्दका अर्थ 'रमते योगिनो यः सन्' योगीलोग जिसमें रमण करते, ऐसा परमात्मा परब्रह्म है।

(१) एक हिसाबसे 'राम' ॐ से भी सम्मान्य है क्योंकि 'राम' इन दोनों अक्षरोंको ॐकार सदा अपने मस्तक पर धारण किये रहता है। ॐकारके ऊर्ध्वभागमें जो अर्धचन्द्राकार चिह्न है सो 'रकार' का ही चिह्न है। वह ऊपर कैसे गया? 'जलपुष्पिकान्यायेन रेफस्यार्धगमनम्' इसी संस्कृत कहावतके अनुसार। और जो ॐकारके ऊपर बिन्दु है सो 'मकार' का चिह्न है। 'मोऽनुस्वारः' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार 'मकार' का रूप अनुस्वार हुआ है। अब यदि आप पूछें कि 'राम' शब्दमें जो आकार था वह कहाँ गया? इसका उत्तर यह है कि 'आकार' अकार का ही एक भेद है 'अकारस्याष्टदश भेदाः।' राममें जो आकार है वह केवल उच्चारणके लिये ही है, इसके अतिरिक्त उससे कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, पाणिनि महाराजने कहा ही है कि 'अकार उच्चारणार्थः' इति।

(२) 'राम' इस मन्त्रमें ॐकारका सार आनेसे जिस वर्णके साथ राम यह महामन्त्र अर्थात् ॐ नाम बिन्दु लग जाता है वही वर्ण एक अमृत मन्त्र-राक्षसाका बन जाता है। इस विषयमें तुलसीदासजी कहते हैं—

एक छत्र इक मुकुटमनि सब वर्णनपर जोय।

तुलसी रघुबर नामके वर्ण विराजत दीय ॥

इसी रीतिसे ॐ (पृष्ठीबीज), ॐ (अग्निबीज), ॐ (वसुबीज), ॐ (वायुबीज), ॐ (आकाशबीज), इत्यादि जिस-जिस वर्णके ऊपर 'राम' ये दो अक्षर विराजमान हुए हैं, वही वर्ण महान् राक्षसाकी बीजमन्त्र बन गया है और उन बीज मन्त्रोंके जप करनेसे उन मन्त्रोंके देवता शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

प्राणीमात्रके नाममें 'राम' यह दो अक्षर मालामें सूत्रकी तरह प्रोत है।

'राम' शब्द प्राणीमात्रके नामका भी हेतु है, अर्थात् जीवमात्रके नामोंमें ये दो अक्षर 'राम' पाये जाते हैं। किसी भी व्यक्तिका, कितना भी बड़ा नाम क्यों न हो, अन्तमें उसमें दो ही अक्षर बाकी रह जाते हैं, शेष सब अक्षर उड़ जाते हैं। इस विषयको गणितकी सहायतासे स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक पुरुषको संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार प्रकारके पुरुषार्थ-साधन करने पड़ते हैं, इसलिये प्रत्येक नामके अक्षरोंको पहले चार गुणा करना होगा, ये पुरुषार्थ पञ्चभूतोंकी सहायतासे होते हैं इसलिये उस गुणनफलके साथ पाँच और जोड़ देना चाहिये। अब प्रत्येक पुरुषको पुरुषार्थ-साधन करते हुए शीतोष्ण, सुख-दुःख, सुतिपासा आदि इन्हें भी सहन करने पड़ते हैं इसलिये उस योगफलको फिर दोसे गुणा करना चाहिये। अब उस गुणनफलको भगवत् वाक्यानुसार अष्टधा-प्रकृति 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकार इत्ययं भेदभिन्न प्रकृतिरष्टधा' द्वारा विभाग करनेसे अवश्य ही चैतनस्वरूप 'राम' ये दो अक्षरात्मक पुरुष ही अवशेष रहेगा। उदाहरणार्थ किसी पुरुषका नाम 'देवदत्त' है, इस नाममें ४ अक्षर हैं, इसको ४ से गुणा करनेसे १६ होते हैं, उसके साथ ५ जोड़ देनेसे २१ होते हैं, २१ को दुगुणा करनेसे ४२ होते हैं, फिर उस ४२ को ८ से विभाग करनेसे बाकी २ रहते हैं और ये दो अक्षर ही 'राम' शब्द हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण नामोंका आचार 'राम' को ही समझना चाहिये—

जीव सर्वदा 'राम' ये दो अक्षर जपता रहता है—

जीव जो आस-प्रवास लेता है वह अव्यक्तित भावसे 'राम' नामका ही जप करता है, ऐसा समझना चाहिये।

राकारेण बहिर्याति मकारेण विशेत् पुनः।

राम रामेति सच्छब्दो जीवो जपति सर्वदा ॥

राकार उच्चारण करता हुआ जीव प्राण-वायुको जोड़ता

है और मकार उच्चारण करता हुआ प्राणको अन्दर प्रवेश करता है। इसप्रकार जीव अर्हन्ति 'राम'एव दोनों अक्षरोंको ही जपता रहता है।

रामसे राम-नामका महस्व अधिक है।

एक कविने कहा है—

राम त्वतोऽधिकं नाम इति मन्त्रामहे वयम्।

त्वयैका तारितोऽयोध्या नाम्ना तु मुवनत्रयम्॥

हे राम ! आपसे आपके नामकी महिमा अधिक मालूम पड़ती है, क्योंकि आपने तो केवल एक अयोध्याका ही उद्धार किया है और आपका नाम तो स्वर्ग, मर्त्य और पानाज इन तीनों भुवनोंका उद्धार कर रहा है।

राम नाम सर्व पापनाशक है।

माहात्म्यं परमं तदैव महतो हे राम नामःक्षितौ,

राकारं बदतो जनस्य सकलं निर्याति पापं हृदः।

भूयस्तद्विशतीति रोधनविधावास्तं मकारस्ततो,

जिह्वाम्रे तव राम नाम वस्तु श्रीराममृत्यस्य मे॥

हे रामचन्द्रजी ! पृथ्वीमें आपके महान् नामका बड़ा भारी माहात्म्य है, 'रा' कहते ही मनुष्यके हृदयस्थित समस्त पाप निकल जाते हैं, फिर वे अन्दर प्रवेश नहीं करने पाते, क्योंकि 'म' कहता हुआ मुख बन्द हो जाता है। ऐसा पवित्र नाम मुझ श्रीरामचन्द्रजीके वासकी जिह्वापर सदा निवाले करे।

देनन्दिनन्तु दुरितं पक्षमासतुर्वर्षजम्।

सर्वं दहति निःशेषं तूताचलमिवानलः॥

कईके पहाड़को भी जैसे अग्नि बिल्कुल झूंक देती है, वैसे ही रामनाम भी विन, पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष आदिके समस्त पापोंको निःशेषतया नाश कर देता है।

कलिमें राम-नाम ही एकमात्र आश्रय है

रमेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति नन्तुः।

कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्रधर्मे ललु नाधिकारः॥

राम इन दोनों वर्णोंको आदरसे स्मरण करता हुआ प्राणी मुक्तिको प्राप्त होता है। कलियुगमें इस राम-नामके स्मरणके अतिरिक्त और किसी भी साधनमें पापात्मा मनुष्योंका अधिकार ही नहीं है।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

कलिमें रामनामसे अतिरिक्त गति नहीं है।

राम-नाम सर्व भय तथा सन्तापहारी है

अकराव प्रह्लाद पिता हिरण्यकशिपुके प्रति कहते हैं—

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकमेवजम्।

पश्य तात मम गात्रसज्जिधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

रामनाम अपनेवालेको भय कहाँ ? सर्व-ताप शमन करनेवाला एकमात्र औषधि राम नाम है। हे पिता ! देखो, मेरे शरीरके समीप अग्नि भी अब जल-सी शीतल हो गयी है।

राम-नाम उल्टा अपनेसे भी मुक्ति

उल्टा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्मसमाला॥

घोर पापी दस्यु रत्नाकर महर्षियोंकी कृपा प्राप्त करके भी जब उनके दिये हुए रामनामका उच्चारण करनेमें असमर्थ हो गया, तब महर्षियोंने एक भूत वृक्षकी ओर इशारा करके उससे कहा कि 'देख रत्नाकर ! वह सामने जो वृक्ष दीखता है वह कैसा है ?' रत्नाकरने कहा—'मरा' है, तब ऋषियोंने कहा, 'अच्छा ! तुम बराबर इसी शब्दका जप किया करो।' रत्नाकर उस उल्टे 'राम' शब्दका उच्चारण करते करते जगत्पूज्य कवि वाल्मीकि तथा साक्षात् ब्रह्मस्वरूप बनगये। यह राम-नामकी महिमा है।

राम-नामका प्रभाव

एक समय ब्रह्माजी सब देवताओंसे बोले कि पहले किसकी पूजा होनी चाहिये। यह सुनकर सब देवता आपसमें लड़ने लगे। तब ब्रह्माजीने कहा कि 'आप लोगोंमेंसे जो सबसे पहले सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके मेरे पास आवेंगे वही प्रथम-पूज्य होंगे। यह सुन सब देवता अपने अपने बाहनोंपर चढ़ पृथ्वी-प्रदक्षिणाके लिये निकले, इनमें गणेशजी सबसे पीछे रह गये, एक तो उनका शरीर स्थूल और दूसरे बाहन भी चूहा। वह अपना पराजय सोचकर बहुत व्याकुल हो गये। इतनेमें नारदजी आ गये और उनकी यह दुरा देखकर बोले—'गणेशजी ! आप धनरायें नहीं मैं आपको एक उपाय बतला देता हूँ। आप पृथ्वीपर 'राम' नाम बिल्लकर उसकी प्रदक्षिणा करके ब्रह्माजीके पास चले जाइये, आपकी अवश्य जय होगी और आप सबसे पहले पूजित होंगे।' गणेशजीने वैसा ही किया और ब्रह्माजीने रामनामका माहात्म्य विचारकर गणेशजीको

ही सर्व-प्रथम पूज्य ठहराया। इसीसे गो० तुलसीदासजी कहते हैं—

महिमा जातु जान गनराज । प्रथम पूजित नाम-प्रभाज ॥

(२) समुद्र-मन्थनके समय काळकूट नामक जहर निकला जिससे सब देव-दानव जलने लगे, तब सब मिश्रकर भगवान् शंकरजी शरण गये और बोले—‘हे भगवन् ! हम सब भस्म हुए जा रहे हैं, कृपा करके इस भयानक विषसे हमें बचाइये।’ तबालु शंकरजी राम-नामका उच्चारणकर उस भयंकर काळकूट विषको पी गये और राम-नामके प्रभावसे वह विष असृत हो गया, जिससे शिवजी सदाके खिचे अमर हो गये। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है—

नाम प्रभाव जान सिव नीके । काळकूट फल दीन्ह अमीके ॥

(३) एक समय शंकर भगवान् ने पार्वतीजीको भोजनका समय हो जानेसे भोजनके खिये बुलाया, पार्वतीजी कहने लगीं कि मैंने अभी तक विष्णुसहस्रनामका पाठ नहीं किया है, आप भोजन कीजिये, मैं पाठ करके भोजन करलूंगी। तब शिवजीने कहा—

राम रामति रामति रामे रामे मनोरम ।

सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम बगाने ॥

राम-नामके माहात्म्यको सुनकर पार्वतीने रामका नाम लेकर भोजन कर लिया।

(४) सेतु-बन्धनके समय बानर जीजने राम-नामकी शक्तिसे पत्थरोंको जोड़कर सेतु-बन्धन किया था और समुद्र-पर पत्थर तैराये थे और इसी नामकी महिमाको कथामें सुनकर न्यायिनी यमुना-पार हो गयी थी। राम-नामकी

महिमा गाथी जाय तो कल्पान्तमें भी पूरी नहीं होगी। संक्षेपसे थोड़े-से शब्द और शिक्कर प्रभाव समाप्त करता हूँ।

तुलसीदासजी कहते हैं—

भाव कुमार अनस आरुसदू । नाम अपत मंगल दिसि दसदू ॥

इसीलिये पुरुष आपसमें मिलनेपर कहते हैं ‘राम राम’। स्त्रियाँ भी आपसमें मिलनेपर कहती हैं ‘राम राम’। किसीका कोई कष्ट सुना जाय तो मुँहसे निकलता है ‘राम राम।’ जीभ बिना कहते उकारती है ‘राम राम।’ मुँहके पीछे छेते हैं ‘राम राम।’ कव्यामय तन्त्रमें एक श्लोक है—

शिखे शब्द न सञ्चारो भवेत् प्रेतस्य कस्यचित् ।

अतस्तदाहर्षयन्तं रामनाम जपो वरम् ॥

मुँहमें कोई प्रेत घुस न जाय, इसलिये रामनाम जप करना चाहिये। प्रेतसाधन-तन्त्रमें भी कहा है—

‘श्वसाधनवेदायां रामनाम विवर्जयेत्।’

श्वसाधन करनेके समय रामनाम नहीं लिखा जाता है। क्योंकि इस नामको सुनकर प्रेत, भूत, पिशाच, बाकिनी, शकिनी, बहिराचस आदि भग जाते हैं। निकट योनिज जीव भग जाते हैं, इसी कारण लोक शवको छे जाते अथवा हाह करते समय ‘राम नाम सत्य है’ ऐसा बोलते हैं। इसी संसर्ग-दोषसे विवाह आदि शुभ कार्योंमें ‘राम नाम सत्य है’ अमंगल-सूचक माना जाता है परन्तु वास्तवमें राम-नाम सदा सत्य एवं पवित्र है, इसमें कोई भी संदेह नहीं है। भगवान् के नाममें जो कोई विद्वेष वा आक्षेप करेगा उसको अक्षयमेव नरककी प्राप्ति होगी।

## रामकथा सुरलोक नसेनी

दीन दुर्खीन अनाथनको कलपद्रुम है फलमें सुख देनी ।

पापम-पुञ्ज पत्थारनको बर-वारि प्रवाह अथाह त्रिवेनी ॥

काम मददिक काननको अनु आरि उचारत पावक पैनी ।

‘श्रोत्रिय’ सोच नृथा सब है, अब रामकथा सुरलोक नसेनी ॥

कक्ष्मीचन्द्र श्रोत्रिय

## बालिवधका औचित्य

(लेखक—श्रीजनकमुताशरण शीतलासहायजी साबन्त बी०ए०, एच०एल०बी०, सम्पादक 'मानसपिण्ड')

धर्महेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु मोहि व्याधकी नाई ॥

बालिवधके विषयमें उपर्युक्त चौपाईको लेकर कुछ समाजोच्चकोंने इसे आलोचनाका विषय बना लिया है और परमेश्वर परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें इसको एक धब्बा माना है।

इस विषयमें तीन प्रकारसे विचार किया जाना आवश्यक है। (१) भगवान् रामचन्द्रजीको निर्गुण निराकार आदि विशेषकयुक्त परमेश्वर परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम मानकर, क्योंकि रामायणके सभी रचयिताओंने उनको अवतार मानकर ही चरित्र-चित्रण किया है। (२) राजनीतिक दृष्टिसे, जिसमें अवतारसे कोई सम्बन्ध नहीं भी रह सकता है और (३) शरणागत-व्यसक्तता एवं स्वयम्भूताकी दृष्टिसे। उपासक लोग तो श्रीभगवान्के 'विटप ओट' होनेमें शरणागत-व्यसक्तताको ही मुख्य कारण मानते हैं और यह श्रास भी उन्हींके विचारोंसे सहानुभूति रखता है। इसीसे इसको सबके अन्तमें रक्खा है।

अब प्रथम दृष्टिसे विचार प्रकट किया जाता है। जो लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको अवतार मानते हैं (उनकी उपासना करते हैं या नहीं, इससे हमें सरोकार नहीं) उनसे मेरा यह प्रश्न है कि 'क्या आप भगवान्के सारे कार्योंमें दखल रखते हैं, क्या भगवान्के जितने चमत्कार चमक-चमकपर प्रकट होते हैं और जो पूर्वसे ही विख्यात थे रहे हैं, आपने उन सबको समझ लिया है? क्या पञ्चतत्वसे बनी हुई यह बुद्धि उन सर्वशक्तिमान्के कार्योंके कारण समझने-सोचनेमें समर्थ हुई है? गर्भमें बच्चा क्यों उलटा रहता है? यह संसार क्यों रचा गया? असुख दुःखके पत्तोंमें ऐसे किन्हीं क्यों हैं और असुखमें दूसरे आकार क्यों हैं? तारागण कितने हैं, कहाँ तक हैं? पहले दुःख हुआ या बीज? इत्यादि इत्यादि जिसकी अज्ञात करणी है, जो—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । बिनु कर कर्म करइ बिधि नाना ।  
अस सब भौति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहि बरनी ॥

क्या उसको समझनेमें आप अपनेको समर्थ पाते हैं? क्या आपने पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कभी सोचे और कुछ

निश्चय किया है? आज जो एक Theory निकलती है कुछ वर्ष बाद वह पकट जाती है, जिसे लोग आज एक बातका ठीक उत्तर समझते हैं उसीको कुछ दिन बाद वे ही लोग गूँजत मानते हैं। क्या यह बात ठीक नहीं है? ऐसी हालतमें वासकी बुद्धि-बुद्धिमें तो यही आता है कि भगवान्के कार्योंमें सन्देह करना उचित नहीं। उनके कार्य समयावधि और बहुत ही ठीक होते हैं, वे सदा अच्छा ही करते हैं। उनके सब कार्य यदि हमारी समझमें आ जायें तो उनका सर्वशक्तिमान्ता गुण ही कहाँ रह गया? अन्य अज्ञानधर्मियोंने भी यही मत प्रकट किया है—

हरकि आमद इमारतें नौ सख्त ।

रफ्तो मंजिल बदीगरे परदाख्त ॥

अर्थात् जो आया, उसने एक नवी इमारत कभी की, पर चला गया और मंजिल दूसरोंके जिबे लाबी कर गया। तात्पर्य कि जो आता है अपनी अज्ञान बजाता है और चला जाता है, कोई पार न पा सका।

वही ईसामसीहका शूलीपर चढ़ना, जिसको ईसाई कुछ वर्ष पूर्व कमजोरी और अपने मतपर एक धब्बा समझते थे, आज अपने जिबे एक बड़े भारी गौरव और बल पानी मुक्ति (Salvation) का कारण समझते हैं।

अब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् परमेश्वर और मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार हैं, तब उनके चरित्रपर सन्देह कैसा? उनका कोई भी चरित्र ऐसा नहीं हो सकता जो मर्यादा-पुरुषोत्तमत्वपर धब्बा डाल सके।

अब यहाँ कुछ महानुभावोंके विचार उद्धृत किये जाते हैं जिन्होंने इस चरित्रको धब्बा मानकर उसकी वथार्यता बतायी है, अथवा लोगोंकी इस शंकाका समाधान किया है—

पं० रामचन्द्र शुक्ल (लेखक 'हिन्दू-विश्वविद्यालय') कहते हैं—'रामके चरित्रकी इस उज्ज्वलताके बीच एक धब्बा भी दिखायी देता है। वह है बालिको झिपकर मारना। बाल्यकी और तुलसीदासजी दोनोंने इस धब्बेपर कुछ सफेद रंग पोतनेका प्रयत्न किया है। पर हमारे देखनेमें तो वह धब्बा ही सम्पूर्ण रामचरित्रको उज्ज्वलताके



अनुरूप एक कल्पनामात्र समझे जानेसे बचाता है। यदि एक यह धृष्ट्या न होता तो रामकी कोई बात मनुष्यकी-सी न लगती और वे मनुष्योंके बीच अवतार लेकर भी मनुष्योंके कामके न होते। उनका चरित भी उपदेशक महात्माओंकी केवल महेश्वरूपक फुटकर बातोंका संग्रह होता, वह मानव-जीवनकी विशद अभिव्यक्ति सूचित करने-वाले संबद्ध काव्यका विषय न होता। यह धृष्ट्या भी सूचित करता है कि ईश्वरावतार राम हमारे बीच हमारे भाई-बन्धु बनकर आये थे और हमारे ही समान सुख-दुःख भोगकर चले गये। वे ईश्वरता दिखाने नहीं आये थे। मूल-चूक या त्रुटिसे सर्वथा रहित मनुष्यता कहाँ हो सकती है? इसी एक चक्केके कारण हम उन्हें मानव-जीवनसे तटस्थ नहीं समझते—तटस्थ क्या, कुछ भी हटे हुए नहीं समझते।

श्रीवाचशङ्कर जामशरजी कहते हैं—‘बाखिवध इस काव्यकी एक और विशेषता है। विशेषता कहनेका कारण यह है कि बाखिवधके सम्बन्धमें श्रीरामजीपर कपटका दोष लगाया जाता है। आश्चर्य तो विचारकी यह एक परिपाटी-सी हो गयी है। उसके मूलमें ‘विट्ठ छोटे’ और ‘व्याधकी नाई’ ये पद आधारभूत दिखलाये जाते हैं। आक्षेप ठीक है या नहीं, इसका अब थोड़ा विचार करें।

‘कपटका दोष सबसे प्रथम बाखिने ही लगाया था और वह उस समय लगाया था जब वह पूरा पराका और मरखोमुख होनेके कारण बिल्कुल ही क्रोधमें भरा था। यहाँ मुख्य देखना यह है कि बाखि मरना जाता था तो भी उसका अहंकार क्यों-काल्यों जीना ही जाता था। इसका प्रमाण हम बाखि-निचन-बर्चनके पहले कर्ममेंके ‘मोहि जानि अनि अभिमानबन’ इन बाखिके ही शब्दोंसे लेते हैं। इस अभिमानके बल होकर ही ‘अमेहेनु अवतरेहु गोमाई । मारेहु मोहि व्याधकी नाई ॥’ बाखिने यह प्रकट किया।

अभिमानी प्रकृतिकी ‘युगाः पदं न कुर्वन्ति नमो निन्दा प्रवर्तते।’ यह स्वभावसिद्ध प्रवृत्ति रहती है। क्या हमारे लिये भी बाखिकी दृष्टिमें देखना ठीक होगा?

‘आक्षेपाई दो पदोंमेंसे एक ‘तटछोटे’ है। सभी संहिताएँ एक मतसे यही प्रतिपादन करती हैं। इसलिये इसके सम्बन्धमें किसीको भी चरक करनेका हक नहीं, पर केवल

एक इसी बातपर बिल्कुल निर्भर रहकर कपटका दोष आरोपित करना सुविचारका अभाव नहीं कहा जा सकता।

दूसरा पद—‘व्याधकी नाई’ है। वयार्थमें यह पद निर्दोषताका दर्शक है। क्योंकि व्याधकर्म अथवा ही निर्दोषताका होता है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह सदा कपटसे ही भरा रहता है। इसलिये व्याध शब्दसे व्याधयुक्तत्व लेना होगा।

आक्षेप करनेवाले पक्षके लोग व्याध शब्दसे कपटभाव लिया करते हैं। हमारे मतसे जिस व्यवहारके सम्बन्धमें जिस विषयका प्रकाश न करना व्याधवश्यक रहता है, उस व्यवहारके सम्बन्धमें उस विषयका आशङ्कान्न अब किसीसे जान बूझकर किया जाता है, तभी यह किन्ना कपट कहलाती है।

‘इस व्याख्यानुसार, अपनेको जानबूझकर छिपाकर, यदि रामजीने बाखिपर वाय चलाया होता, तो उनपर कपटका अपराध अवश्य ही प्रमाणित हो सकता। परन्तु मूल ग्रन्थ ही स्पष्ट कहता है कि वधपि बाखि मैदानमें डटा हुआ प्रत्यक्ष सामने खड़ा था तो भी रामजीने ‘एकरूप तुम्ह भाता दोऊ । तेहि भ्रममें नहि मारेउं सोऊ ॥ देसा कहकर तुरन्त ही ‘कर परगा मूर्खव मरीरः।’ और ‘मेनी कठ मुननक माला । पठवा पुनि बल देह विमाला ॥’ इस प्रकारसे सुग्रीवको फिर भेजा। इन बर्चनमें यह सोपपत्तिक सिद्ध होना है कि अपनेको छिपाना तो दूर ही रहा, उल्टे और बाखिकी ही दृष्टि अपनी और लीचनेका निःशङ्क-प्रयत्न रामजीने जान-बूझकर किया; अथवा रहे कि मैं ‘पहचान नहीं सका’ वह केवल औपचारिक निमित्त बतलाते हुए प्रत्यक्ष पक्षपात बतलानेके लिये और बाखिकी दृष्टि उस तरह लीचनेके लिये श्रीरामजीने सुग्रीवको पुनःमाछा पहनायी थी।

‘आक्षेप करनेवालोंका अब ऐसा भी दर्शानेका प्रयत्न होगा कि बाखिने रामजीके किसी भी कार्यका और—सुग्रीवके गलेका माछाकी ओर भी—दृष्टिरेप न किया। पर एक तो यह कहना ही सत्युक्ति नहीं है, क्योंकि बाखि कुछ चाँखें मूँदकर बीच अथवा समाधिमें तो डब ही नहीं रहा था और दूसरे यदि बाखिने देखा ही नहीं या देखनेकी परवा न की, तो यह किसका दोष है? साफ-साफ उसीका दोष है।



इन सब बातोंका इसप्रकार विचार करनेपर रामजीके ऊपर लगाया जानेवाला कपटका आखेप हमारे मतसे अनुपपत्तिक सिद्ध होता है।'

### राजनीतिकी दृष्टिसे विचार

किसी बातकी ठीक समालोचना और जाँच तभी हो सकती है जब समालोचक अपनेको उस समयमें पहुँचा दे जिस समयकी वह घटना है, जो समालोचनाका विषय है। वही समाज-सुधार-सम्बन्धी बातें जो एक शताब्दिके पूर्व ब्रह्मासे देखी जाती थीं, आज उचित समझी जाती हैं। वही मनुष्योंका बेचना, गुलाम बनाना, बाख़बिबाह आदि जो पहले अच्छे समझे जाते थे आज बुरे समझे जाते हैं। ऐसे ही आज संसारमें आपके सामने अनेक उदाहरण हैं, समझ लीजिये। जो बात पहलेके समयमें नीतियुक्त समझी जाती थी, उसीको आज अनीति कहा जाता है। इस स्थितिमें क्या हम अपनेको सच्चे समालोचक कह सकते हैं यदि हम उस समयकी घटनाकी वयार्थता वतमान कालकी नीतिले जाँचें ? मेरी समझमें तो कदापि नहीं।

हमको वालिवधपर आलोचना करनेके लिये त्रेतायुगकी नीतिका अवलम्बन करना पड़ेगा। उस समयकी नीति अप्यात्म, वाल्मीकि भाविमें भी इस प्रसंगपर दी हुई है और मनुस्मृतिका प्रमाण भी दिया गया है। यथा वाल्मीकीये कि० स० १८—

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया दृतः ।

भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥

अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।

कामायां वर्तसे कामात्सुवायां पापकर्मकृत् ॥

न च ते मयं पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्भूतः ।

औरसां मगिनी वापि भार्या ज्ञाप्यमुजस्य यः ॥

प्रचरत नरः कामात्तस्म दण्डो वधः स्मृतः ।

भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः ॥

( १८-१९। २२-२३ )

'सुमने धर्मका त्याग किया, छोटे भाईके जीतेजी उसकी खीको अपनी खी बना लिया। इसके लिये प्रायश्चक्र ही विधेय है.....। वही बात गोस्वामीजीने भी कही है—

अनुजबधू मगिनी सुतनारी। सुन सठ कन्या सम ए चारी ॥

इन्हहि कुदिष्टि मिलोके जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई ॥

वालिफो श्रीरामचन्द्रजीका ईश्वरावतार होना अवगत है। वह जानता है कि सुग्रीवसे उनकी मित्रता हो गयी है और वे उसकी रक्षामें तत्पर हैं। ताराने वालिको समझाया है और प्रार्थना की कि सुग्रीवसे मेज कर लो, वर कोंबकर उसे सुवराज बना दो, अन्यथा तुम्हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है—'नान्या गातिरिहास्ति ते' (वा०रा० ४।१६।२८)। पर उसने अभिमानवश उसका कहा न माना और वही कहा कि वे धर्मक हैं, पाप क्यों करेंगे, वा (मानसके कथनानुसार) वे समवर्णी हैं एवं 'अ' कदाचि मोहि मारिहहि तौ पुनि होउँ सनाथ। प्रभुने वालिको पहली बार नहीं मारा। उसको बहुत मौका दिया कि वह सँभल जाय, सुग्रीवसे शत्रुभाव छोड़ दे, इससे मेज कर ले, पर वह नहीं मानता। दूसरी बार अपना चिह्न देकर फिर भी भगवान्ने उसे होशियार किया कि सुग्रीव मेरे आश्रित हो जा चुका है वह जानकर भी—'मम भुज बल आश्रित तदि जानी—उसने श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषार्थकी अवहेलना की, उनका अपमान अपमान किया, उनके मित्रके प्राण लेनेपर तुल्य गया, तब उन्होंने मित्रको शत्रुपाशासे बचानेके लिये उसे मारा। इसमें 'बिटप ओट'से मारनेमें क्या दोष हुआ ?

यदि इसमें अन्वय होता तो रामजी कदापि यह न कह सकते कि छिपकर मारनेके विषयमें न मुझे पश्चात्ताप है न किसी प्रकारका दुःख—

न मे तत्र मनस्तापो न मन्युर्हरिपुंगव ।

(वा०रा० ४।१८।३६)

जो श्रीरामजीसे इसका उत्तर माँग रहा है कि 'धर्म हेतु अवनन्द होताई। मोगु मोहि व्याधकी नारि ॥' वह उत्तर पाकर स्वयं कहता है कि मैं निरुत्तर हो गया, आपने अधर्म नहीं किया, यथा—

न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥

प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्बानरेश्वरः ।

यत्त्वमात्य नरभ्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥

(वा०रा० ४।१८।३४-३५)

अर्थात् उत्तर सुनकर उसने धर्मको निश्चय जानकर राघवको दोष नहीं दिया और हाथ जोड़कर बोला कि आपने जो कहा वह ठीक है इसमें सन्देह नहीं।

जब स्वयं वालि ही यों कह रहा है तब, हमको आज श्रीरामके चरितपर दोषारोपण करनेका क्या हक है ?

अच्छा अब आजकलकी नीति भी बीजिये। क्या जो राजा किसी राजासे मिलता है वह उसकी सहायता जोष देता है? क्या खाज खाई (Trenches) आदिमें जान-बूझकर छिपकर शत्रुपर एवं रात-बिनात छिपकर बकायक घोसा देकर, छलकपटके व्यवहार जवाईमें जायज नहीं माने जा रहे हैं? शत्रुको जिस तरह हो सके मारना वही आजकलकी नीति है। इस नीतिके सामने तो रामजी उत्तरदायित्वसे सर्वथा मुक्त हैं। आजकल तो जवाईमें धर्म और अधर्मका कहीं विचार हो नहीं है।

यद्यपि मेरी समझमें तो जब बाबि स्वयं अपनेको निरुत्तर मानता है तब हमको उसके उत्तरके अनुसन्धानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती? तथापि लोगोंकी शङ्काओंके समाधान और तरह भी हो सकते हैं—

१—श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ हैं। वह त्रैलोक्य जानता है कि 'राम' दो बचन कभी नहीं कहते, जो बचन उनके मुखसे एकबार निकला, वह कदापि असत्य नहीं किया जा सकता। वे मित्र सुग्रीवका दुःख सुनकर प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'शत्रु सुग्रीव मारिहो बालिहि एकहि वान।' और वह भी कि 'सखा बचन मम वृषा न होई। व्याघ्र मयसे नहीं छिपता। मुख्य कारण यह होता है कि कहीं शिकार उसे देखकर हावसे जाता न रहे। यहाँ 'बिटप-घोट' से इसलिये मारा कि—यदि कहीं बाबि हमको देखकर भाग गया अथवा छिप गया, (अथवा, शरणमें आ पड़ा—वह बात आगे लिखी गयी है) तो प्रतिज्ञा भंग हो जायगी। सुग्रीवको खी और राज्य कैसे मिलेगा? पुनः, यदि सामने आकर लड़े होते तो बहुत सम्भव था कि वह सेना आदिको सहायताके लिये जाता। तो वह आपत्ति आती कि मारना तो एक बाबिको ही था, पर, उसके साथ मारी जाती सारी सेना भी। खरब रहे कि यहाँ छिपनेमें कपटका छेद नहीं क्योंकि यदि ऐसा होता तो प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके बाद बाबिके शरणागत होने-पर श्रीराम यह कैसे कहते कि 'अन्ध करी मन राखहु माना।'।

२—बाबि बीसे चाहता था कि मेरा बच भगवान् के हाथसे हो, यथा—'त्वत्तोऽहं बधमाकाङ्क्षन्वार्थमाप्नोऽपि नारया'। वही बात मानसमेंके 'जौ कदाचि मोहि मारिहहि तो पुनि होउं सनाब' से भी उचित होती है। सामने जानेपर मजा उसकी यह अभिजापा कैसे पूरा होती? भगवान् अन्तर्धामी हैं उन्होंने उसकी अभिजापा इसप्रकार पूर्ण की।

३—यद्यपि भगवान् सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, उनकी इच्छामें कोई बर वा शाय बाधक नहीं हो सकता। तथापि वह उनका मर्मादापुरुषोत्तम अवतार है। 'मानस-अवङ्क'कार एवं और भी कुछ सज्जनोंका मत है कि बाबिको किसीका बरदान था कि जो तेरे सम्मुख लड़नेको आवेगा उसका आधा बल तुझको मिल जायगा। प्रभु सबकी मर्मादा रखते हैं, इसीसे तो रावणवधके लिये नर-शरीर धारण किया, नहीं तो जो काकज भी काक है क्या वह बिना अवतारलिये ही रावणको मार नहीं सकता था? अवश्य मार सकता था—पर देवताओंकी मर्मादा, उनकी प्रतिष्ठा जाती रहती। उनके बर और शाय कोई चीज न रह जाते। इसीलिये तो श्रीरामचन्द्रने भी ब्रह्माका मान रक्खा और अपनेको नागपाशसे बँधवा लिया—

जौ न ब्रह्मसर मानिहौ महिमा मिटै अपार।

अतएव घोटसे मारकर बरकी मर्मादा रखी।

४—पं० शिवरत्न शुक्ल लिखते हैं कि 'बृचकी भावसे मारनेका कारण बाबिको अकेला पाना था। अर्थात् नियत स्वयंके उस जंगमें बाबि सुग्रीवसे युद्ध करके घोटता और फिर वेगके साथ सुग्रीवको और दौड़ता था। अतएव उसी स्थानका जङ्ग बृचकी घोटसे किया गया था कि जिसमें भूजसे भी सुग्रीवके बाध न जगे; क्योंकि उस स्थानपर बाबि अकेला था। वही कारण बृचकी घोटमें लड़े होनेका है। जोंग करते हैं कि बाबि सम्मुख युद्ध करनेवाले वीर बाबाका आधा बल हर होता था; पर रामचन्द्रजीके साथ वह ऐसा नहीं कर सकता था। क्योंकि समुद्रका जारा जब जैसे एक जड़में भरा नहीं जा सकता; वैसे ही बाबिकी शक्ति कृपा पात्रमें भुबनेश्वरका अर्द्धबल भी नहीं समा सकता। अस्तु' यह शङ्का निर्मूलक है।

### शरणागत-वत्सलता एवं सत्यसन्धता

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें उनकी पूर्ण ऐश्वर्य और परमशक्त्य सबसे अधिक उनके शरणागत-वत्सलता गुणसे प्रकट होता है। इसी गुणने मत्तोंको रिक़ा रक्खा है। प्रायः सर्वत्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऐश्वर्यको छिपाया है। पर विभीषणजीकी शरणागतिके समय जब एक बीहड़माम्बीकी जोष सुग्रीव, जाम्बवान, अङ्गद आदि सभीने उनको शरणमें न रखनेका मत दिया, तब सुग्रीवको प्रभुने अपनेक प्रभारसे समझाया और अन्ततोगत्वा उन्हें यह कहना ही

पदा कि 'तुम मेरे प्रभावको नहीं जानते, मैं जैंगुलीके अग्रभागके इशारेसे त्रैलोक्यका नाश कर सकता हूँ, थोड़ेसे राक्षस तो क्या चीज हैं ? पर मैं शरणागतको नहीं कोष सकता, चाहे मेरा सर्वस्व नष्ट क्यों न हो जाय।' बारम्बार आदि रामायणोंमें शरणागतिपर प्रभुके बहुत कुछ बचन हैं। प्रभुने यहाँतक कहा कि 'यह क्या, यदि वह राक्षस भी हो और मेरी शरणा ( कपटवेष्टे ) आया हो तो भी मैं उसे अभय देता हूँ तुम उसे जिया जाओ।' देखिये, श्रीकृष्णजीको शक्ति जगी, पर ऐसे दारुण शोकके समय भी उन्हें सीताजी या और किसीकी चिन्ता नहीं है; लक्ष्मणजीका भी शोक है तो इसी कारण कि विभीषण हमारी शरणा आया हुआ है, अब हम उसका मनोरथ कैसे पूरा करेंगे। गीताबलिमें श्रीराम कहते हैं—

मेरो सब पुत्रवारय थाकां ।

विपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको ॥

मुनु सुग्रीव सौँचहु मोसन फेरयो बदन बिधाता ।

ऐसे समय ममर संकट हैं गज्यो लपन सो आता ॥

गिरि कानन जैहैं शाखासुग ही पुनि अनुज सँघाती ।

हँदै कहा विभीषनकी गति रही सोच भरि छाती ॥

यहाँपर शरणागतिपर जैसा प्रबल और दृढ़ भगवद्-वचनानुगत है, वैसा शायद ही और कहीं मिले—

कंठि बिप्र-बध लागहि जाहूँ । आप सरन तजउँ नहिं ताहूँ ॥

मनमुख होइ जीव मोहि जबही जनम कंठि अग्र नासहिं तबही ॥

औं समीत आवा सरनाई । रक्षिहउँ ताहि प्रानकी नाई ॥

सकंदव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥

मित्रभावेन संप्राप्तं न लजेयं कथञ्चन ।

दोषा यद्यपि तस्य स्यात् सतामंतदगर्हितम् ॥

इसी तरह भगवान् ने अपने श्रीकृष्णावतारमें भी कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अपि चतसुदुराचारो भजते मामनन्यमाक् ।

साधुरेव स भक्तव्यः सम्यग्यवसितो हि सः ॥

यही वाक्य आज भगवत्सत्त्वोंकी अनेक समारोहों, पन्थों, मतवादियोंसे रचा कर रहे हैं। इसी जगह आकर अन्य मतवादी हिन्दू आई दाँतके नीचे डँगली क्या खेते हैं, नहीं

तो अवतार-खण्डन तो वे करते ही रहे और करते भी हैं।

सुग्रीव वालिसे बहुत कमजोर है। वह स्वयं कहता है कि—  
तकि मय रघुवीर कृपाळा । सकल भुवन में फिरेउँ बिहाळा ॥

यही कारण है कि श्रीसीताजीकी खोजमें जब उसने वानरोंको भेजा तब चारों दिशाओंकी अन्तिम सीमातकके नाम उसने वानरोंसे बताया। वालिसे संसारभरमें उसका कोई रक्षक न हुआ।

वालि त्रास न्याकुल दिन राती । तन बहु व्रन चिन्ता जर छाती ॥

ऐसा सुग्रीव जब प्रभुकी शरणा हुआ, उससे प्रभुने मित्रता की और उसका दुःख सुनकर एवं यह जानकर कि वालिने उसका सर्वस्व एवं कीको हर लिया, उनसे न रहा गया, वालिके अधर्मको वे न सह सके। यद्यपि वालिने उनका कोई अपराध नहीं किया था तो भी 'सेवक बेर बेर अधिकारी।' मित्रका शत्रु अपना ही शत्रु है। यह सोचकर उन्होंने तुरन्त प्रतिज्ञा की कि 'घनु सुग्रीव मारिहौं वाकिहि एकहि वान।'।

प्रभुका बाना है गरीबनिवाज, दीनदयालु, प्रयत्नपाल !  
इसीसे उन्होंने दीन, गरीब और शरणागत सुग्रीवकी रक्षा उसके अति प्रबल शत्रुसे की।

भगवान् ने 'बिटप-छोट' से वालिको मारनेका चरित वस्तुतः क्यों किया, इसमें क्या रहस्य है—यह तो श्रीराम ही जानें, या वे जानें जिन्हें श्रीराम जना हैं। पर श्रीअवधमें जो महात्माओंसे सुना है, वह यह है—

वालि जानता है कि राक्षसबधके लिये प्रभुने अवतार लिया है, ताराने भी जब उससे कहा कि—

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवौ । ते दोउ बंधु-तेज बरु-सीवौ ॥

कौसलेस-गुत लछिमन रामा । कारहु जीति सकहि संप्रामा ॥

तब उसने बही कहा कि—

समदरसी रघुनाथाजो कदाचि मोहि मारिहैं तौ पुनि होउँ सनाथ ॥

और मारे जानेपर जब प्रभु समीप आये तब वह एक बारगी उठ बैठा और कहने लगा कि—

'धर्महेतु अवतरउ गोसाईं । मारेहु मोहि व्याधकी नाई ॥'

इससे स्पष्ट है कि वह जानता था कि ये परब्रह्म-परमात्मा हैं।

यदि प्रभु सामने आते तो किञ्चित् समदेह नहीं कि वह दर्शन पाते ही अवश्य चरखोंपर गिर पड़ना। इसका प्रमाण है—

परा निकल गहि सरके लागे । पुनि उठि बैठ देखि प्रभु अगे ॥

× × × । सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा ॥

तब श्रीराम बालिको कैसे मारते ? और न मारते तो मित्रका काम कैसे होता ? एवं सत्यसन्धता कहाँ रह जाती ? शरणमें आये हुए सुग्रीवको जोर देते तो ब्रह्मावधभरमें आज उनकी शरणमें कौन विश्वास करता ? जीव उनकी शरणमात्र लेनेसे अपने कल्याणका विश्वास और निश्चय कब कर सकता ? सामने आनेपर वे शीख कैसे झुकते ? इसीलिये उसे 'बिटप-घोट'से मारा ।

इसपर यह कहा जा सकता है कि बालि भक्त था तो पहले ही शरणमें क्यों न आया, जब ताराने उसको समझाया था ? इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सुग्रीवने आकर उसे लजकारा था । भला ऐसा कौन बलवान् पराक्रमी बोझा होगा जो शत्रुकी लजकारपर उलटे उसके सामने हाथ जोड़े ?—'बाली रिपुबल सहै न पारा ।'

छिपकर भी मित्रके शत्रुको मारनेमें कोई दोष नहीं । मान भी लिया जाय, तो भी यह कानून ही और है और शरणागत-वत्सलताका कानून उन सारे सांसारिक कानूनोंसे निराळा है । यह तो नियमका अपवाद (Exception to the Rule) है यह तो भगवान्का निजका कानून है । अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रभु ब्रह्मवधदेवत्व आदि गुणोंको भी ताकपर रख देते हैं, उनको यह भी परवा नहीं कि हमको कोई बुरा कहेगा । इसीपर गोस्वामीजीने विनयमें कहा है

ऐसे राम दीन हितकारी ।

नियबिरही सुग्रीव सखा लखि दायो बालि सहि गारी ।'

और दोहावलीमें भी कहने हैं—

कहा विनीषन ते मिलेठ कहा जिंगारी बालि ।

तुलसी प्रभु मरनागतहि सब दिन आये पालि ॥

बालि बरी बन्सालि दलि सखा कीन्ह कपिराज ।

तुलसी रामकृपालको बिरद गरीबनिवाज ॥

बंदु-बनुत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि ।

तुलसी प्रभु सुग्रीवकी चितव न कछू कुचालि ॥

इसी विषयमें बा० आ० स० १० की प्रमाणमें दिया जा सकता है । वहाँ जब महारानीजीने आपसे प्रार्थना की कि आपने राक्षसोंके बधकी प्रतिज्ञा की है, पर मेरी प्रार्थना है कि आप बिना अपराधके उनका बध न करें, उस समय प्रभुने यह उत्तर दिया—

रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा त्वज्जाया हि वयं बने ।

मया चैतद्वचः श्रुत्वा कात्स्न्येन परिपालनम् ॥

ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुत्य जनकारमजे ।

संश्रुत्य च न शक्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ॥

मुनीनामन्यथाकर्तुं सत्यमिदं हि मे सदा ।

अप्यहं जीवितं जङ्घांतां वा सीते सततमगमाम् ॥

न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् ॥

( १६-१९ )

अर्थात् 'व्यवहारवचके ऋषि मेरी शरण आकर मुझसे बोले कि आप ही हमारे नाथ हैं, आप ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं । यह सुनकर मैंने राक्षस-बधकी प्रतिज्ञा की । अब उस प्रतिज्ञाको मैं नहीं छोड़ सकता, सत्य मुझे सदा प्रिय है । मैं प्राण छोड़ सकता हूँ, तुमको एवं लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ पर प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता ।' ऐसा ही प्रभुने सुन्दरकाण्डमें सुग्रीवसे कहा है—'मम पत मरनागत भय हारी ।'

तात्पर्य कि सत्यसन्धता, प्रतिज्ञारक्षा, साधुप्रतिज्ञा तथा दुष्टसंहारके लक्ष्य और भगवान्की शरणागत-वत्सलताको जो नहीं जानने वे ही प्रभुपर अन्यायका जान्चुन लगायेंगे । कविके शब्दोंमें ईश्वरगवना-चरित ऐसे होते हैं जिन्हें देख-सुनकर—

जड़ मोहहि बुध होहि मुमारी ।

आधुनिक ममाजोषकोंको चाहिये कि वे सहृदयता और सद्भावनासे ही ईश्वरावतार-चरित्रोंपर विचार करनेका कष्ट ठाढ़ा करें, नभी उसके रहस्य उनकी समझमें आ सकते हैं ।

\* आप 'मानसदीप्य' नामक श्रीरामचरितमानसका एक वृहत् टीका निकालनेका बड़ा ही महान्नीय और सर्वथा श्रुत्य कार्य कर रहे हैं । अबतक 'मानस' पर जितनी टीकाएँ निकली हैं प्रायः उन सबका मार और अपकारात्मक टीकाओंका रसास्वादन करना हो तो हम ग्रन्थको जरूर पढ़ना चाहिये । इसमें काशीनिवासी प्रसिद्ध रामायणी सा० पं० रामकुमारजीकृत पूरी टीका दी जा रही है, इसके सिवा श्रीबन्धन पाठकजी, महाराज श्रीरामचरणदासजी, पाण्डेय रामदेवजी, संतसिद्धजी बाली पंजाबी, काष्ठजिजा

## पतितोद्धारक तुलसी

आखर अमोघ अस्त्र अतुल अनोखे चोखे ,  
छन्दके प्रबन्ध आछे अच्छत बिचारे हैं ।  
दीबे काज मेख राव-रंकनके अंकनपे ,  
लेखबद्ध करिके गुसाईंजू उचारे हैं ॥  
जन्त्रहू हैं मन्त्रहू हैं आगम निगमहू हैं ,  
कलिकी कराल चाल नासिबे दुधारे हैं ।  
गाय 'प्रेम' मानसकौ अधम उधारे जेते ,  
तुलसीनि तारे तेते नभमें न तारे हैं ॥१॥  
पापी व्यभिचारी भारी कपटी कुचाली मूढ़ ,  
आँगुनकी खान , पढ़ि साँची गति धारे हैं ।  
चुगुल चवाइ चोर चपल चलाक चित्त ,  
चाव चौगुनेसों राम-नामाहि उचारे हैं ॥  
जेते गये चलें बढि मानस-सोपानपर ,  
धोय मल मानस कौ बुझिहि सुधारे हैं ।  
धन्य तेरी कृति 'प्रेम' तुलसी गुसाईं इन ,  
तेने जीवें तारे जेते नभमें न तारे हैं ॥२॥

—प्रमनारायण विपाठी 'प्रेम' ।

स्वामीजी, बाबा हरिहरप्रसादजी, पं० शिवलालजी पाठक, पं० गणपति उपाध्यायजी, रणबहादुरसिंहजी, कैलासजी, बाबा हरिदासजी, बाबा रघुनाथदासजी आदिकी टीकाओंसे तथा ना० प्रचारिणी सभाकी ग्रन्थालयसे, विनायकी टीका, वीर कविजी मालवीयकृत टीका, बाबू दयामुन्दरदासजीकी टीका, पं० सुधाकरजी द्विवेदी, पं० सूर्यप्रसाद मिश्र, 'तुलसी' 'माधुरी' आदिसे जहाँ जहाँ सुन्दरभाव मिलता है, उनका संग्रह रहता है। इनके सिवा पृ० पं० श्रीरामबल्लभाशरणजी महाराज, रामायणी बाबा श्री-रामबल्लभाशरणजी, बाबा श्रीजानकीदासजी रामायणी इत्यादिकी कथाएँ सुनकर लेखकने कई वर्षोंतक जो नोट लिख लिये थे वे भी रहते हैं। यथावश्यक शब्दोंके अर्थ और उनकी व्युत्पत्ति देकर फिर सरल अक्षरार्थ किया जाता है। प्रमाणसहित कथाएँ दी जाती हैं। श्रीरामदासजी गौड़ और लाला भगवानदासजीके विचार भी रहते हैं। कठिन समस्याओंकी सीमांसा की जाती है। भिन्नानके लिये ग्रन्थोंके श्लोक जहाँ चौपाइयोंसे मिलते हैं, दिये जाते हैं। जहाँ तहाँ विवादार्थपद चौपाइयोंका खुलासा किया जाता है। प्राचीन पाठान्तरोंपर विचार रहता है। इन टीकामें प्रायः रुपयेमें चौदह आना भाग अपकाशित टीकाओंका रहता है।

अवतक चार काण्ड समाप्त हो चुके हैं। बालकाण्डके लगभग ३२७५ और अयोध्याकाण्डके १५३५ पृष्ठ हैं। रामायण-प्रेमियोंको तावन्तजीसे सम्पादक 'मानस-पीयूष' अयोध्याके पनेने पत्र-व्यवहार कर प्रकाशित पुस्तकें खरीदनी चाहिये और प्रकाशित होनेवाले भागोंके लिये ग्राहक बन जाना चाहिये।

बाबू शीतलसहायजी अपने सब कार्योंको छोड़कर केवल इसी पवित्र रामसेवामें लग रहे हैं। मेरी समझसे इन्हें इस कार्यमें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, और घाटा हो रहा है, जो पुस्तकें विकनेसे ही कम हो सकता है, रामायण-प्रेमियोंको यह परम उपयोगी ग्रन्थ खरीदकर राम-सेवामें सहयोग देना चाहिये। —सम्पादक

## तुलसीकृत रामायणकी समीक्षा

( लेखक—रैवरैण्ड एडविन ग्रीन्स, मेल्बर्न, इंग्लैण्ड )



न्दी-भाषाके महाकवियोंकी रचनाओं-पर समालोचनात्मक दृष्टिसे कुछ लिखना एक विदेशीके लिये दुस्साहस-मात्र होगा। किन्तु मेरे-जैसे व्यक्तिका जिसने हिन्दी-भाषाके सर्वोत्कृष्ट महा-कवि गुसाईं तुलसीदासजीकी रामायणका सौभाग्यवश क्यों अध्ययन किया है, उनके चरखोंमें अद्भुतजि उपस्थित करना कदाचित् सम्भव हो सकता है।

तुलसीदासजीने बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें कोई ऐसा नहीं है जो सामान्य दृष्टिसे देखा जा सके। किन्तु हिन्दीके विद्वान् गुसाईंजीके नामसे प्रसिद्ध सभी ग्रन्थोंको उनकी कृति नहीं मानते। सम्भव है कि कुछ निम्नश्रेणीकी रचनाएँ जिनमें गुसाईंजीका नाम है, वस्तुतः उनकी कृति न हो, अतएव महाकविके दोष दिखानेके विचारसे उनको प्रसाररूपसे उपस्थित नहीं किया जा सकता।

उनके समस्त ग्रन्थोंमें रामायण या रामचरितमानसका स्थान सबसे ऊँचा है। मुझे सरण है कि हिन्दीके एक विद्वान् इस निष्कर्षको स्वीकार करनेमें आनाकारी करते थे क्योंकि उनके विचारसे वह स्थान विनयपत्रिकाको प्रदान किया जाना चाहिये। निम्नश्रेणीके विनयपत्रिकामें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो रामचरितमानसमें उनकी नहीं पायी जाती, किन्तु विनयपत्रिका केवल धोंड़े-से संस्कृत पुर्योंके लिये ही पवित्र धरोहर बनी रह जानी है। रामायणके और रामायणके गुणोंको समझनेवाले ऐसे बहुतेरे मउज्ज्वल मिलेंगे जो विनयपत्रिकाके विवाद-ग्रस्त पदोंका विवेचन तो दूर रहा उनको समझनेतककी भी क्षमता नहीं रखते।

श्रीरामचरितमानसकी एक मन्त्रसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सब श्रेणियोंके लोगोंको—यहाँतक कि जो लोग पढ़ना नहीं जानते, केवल सुन सकने हैं, उनको भी समान रूपसे प्रिय है। इससे एक भोलाभाळा ग्रामीण जितना आनन्दित होता है, विद्वान् भी उतना ही आनन्द पाता है। रामायणकी कथा बड़ी ही सुन्दरताके साथ कही गयी है,

जिससे पाठकका मन आदिसे अन्ततक कहीं नहीं ऊबता। चमत्कारकी अधिकता, कल्पनाकी प्रचुरता, भाषाकी सजीवता, मधुर ध्वनि तथा भाव प्रकाशनकी सुन्दरता और उपादेयताके कारण यह सबको मन्त्रमुग्ध कर देती है। सम्भव है कि इसकी उत्तमता सब जगह एक-सी नहीं हो, परन्तु खेसकको हम कहीं विषयान्तरमें जाते नहीं देखते (जैसा कि कुछ वास्तविक सुकवि कोंकमें आकर कर बैठते हैं)। तथापि यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्टसुन्दररूपमें हमारे सामने उपस्थित है। अब सम्भवतः यह प्रश्न उठता है कि तुलसीदासकृत रामायणमें कौन-से ऐसे गुण हैं जिनसे उसने हिन्दी-साहित्यमें सर्वोच्च पद प्राप्त किया है ?

खेसक सङ्कोचके साथ इस प्रश्नका संक्षिप्त उत्तर देनेकी चेष्टा करता है।

(१) महाकविका मन प्रतिपाद्य विषयमें तन्मय है, उसने अपने आपको भुला दिया है। उसका प्रयत्न अपनी प्रवीणता प्रदर्शित करना नहीं है, वह श्रीरामचन्द्रजीकी महानता और साधुताकी ओर ही पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता है। श्रीरामके प्रति उसकी भक्ति (अथवा उसकी रामभक्ति) उसके समस्त पद्योंमें स्वभावसे ही परिप्रावित है। उसकी रचनाएँ अपने प्रभु और भगवान्के अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण हैं। वह कीर्ति कमानेके लिये रचना नहीं करता, उसका एकमात्र लक्ष्य श्रीसीता-रामकी विमल कीर्तिकी स्थापना करना है।

(२) इस लक्ष्यको मरमुक्त रखकर कवि प्रधानरूपसे इस बातपर दृष्टि रखता है, जिसमें उसकी भाषा सरल और सबके समझने योग्य हो। वह अपनी विद्वत्ता, प्रवीणता और रचना-कौशलकी प्रशंसाके लिये पाठकोंको विवश करनेकी इच्छा नहीं करता, वह तो पाठकोंको अपनी बात समझाना चाहता है। निम्नलिखित पद बड़ा ही मनोहर है जिसमें कविने इस विषयकी विवेचना की है और जिसमें साधारण 'भाषा' शब्दका प्रयोग कर अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त की है—

भाषा मनि मौर मति मीरी। हँसिबे जोग हँसे नहि खोरी ॥  
प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कया सुनि लागिहि कीकी॥  
हरि-हर-पद रति मति न कुतरी। तिन्ह कहँ मधुर कया रघुबरकी॥

कल्याण —



गोस्वामी तुलसीदासजी

कल्याण



श्रीशृङ्गि अमिका समाधि

(शृङ्गवेर पुर)



श्रीगोविन्दपुर पाटशाला



शान्ता देवीका मन्दिर



श्रीगामचन्द्रजीके मालिका स्थान ( राम चौराहे )



निस्सन्देह रामचरितमानसमें बहुतसे ऐसे स्थल हैं जिनके समझनेमें विवेची पाठकोंको कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, पर सम्भवतः उनमें कुछ स्थल ऐसे भी हैं जो प्रत्येक भारतीय पाठकके लिये भी सुगम नहीं हैं, किन्तु इस छिष्टताका कारण केवल विषयकी गम्भीरता है। कविने इस प्रकारकी रचना अपना पाण्डित्य और गाम्भीर्य दिखलानेके लिये नहीं की है। इस काव्यकी एक बड़ी विशेषता भाषाकी सरलता है। कवि अपनी रचना साधारण जनताके समझने योग्य बनाना चाहता है। उसका उद्देश्य तुलसीदासको विख्यात करना नहीं है, वह तो अपने रामको लोकप्रिय बनाना चाहता है।

(३) एक विशेषता यह है कि इसमें बिना वाधा विभिन्न वृत्तान्तोंका समावेश है। कृन्द-योजना भी बहुत ही सुन्दर है। यद्यपि कहीं कहीं चौपाइयों और दोहोंके क्रममें कुछ भेद है परन्तु अधिकांशमें चार चौपाइयोंके बाद एक दोहेका क्रम रखा गया है, बीच-बीचमें सोरठोंका प्रयोग करके क्रममें परिवर्तन किया गया है, जिससे रचना और भी रुचिकर हो गयी है। पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ अनेक प्रकारके कृन्दोंका भी समावेश किया गया है, जिनसे काव्यका सौन्दर्य विशेष बढ़ गया है। कहीं कहीं तो विषय और भाषाकी उत्कृष्टताके कारण वे बहुत ही प्रभावोत्पादक हो गये हैं। उदाहरणार्थ इस कृन्दको देखिये, जिसका आरम्भ इसप्रकार है—

जय-जय सुरनायक जन-सुख-दायक प्रनतपाद भगवंता ।

यह बालकाव्यमें है। अन्यान्य स्थलोंपर ये कृन्द युद्धकी भीषणता और भयानक योद्धाओंके शृत्थोन्मुख संग्रामके भैरव-निनादसे परिपूर्ण हो रहे हैं। जङ्घाकाव्यमें इसके उदाहरण अधिक मिलते हैं।

गुसाईंजीने रामायणके पदोंकी पूर्तिके लिये आवश्यकता-नुसार शब्दोंके स्वरूपोंको बदलकर, बहुत-से अन्यान्य शब्दोंको अपनाकर रचनामें एक और नवीनता जा दी है। शब्दोंको उपयुक्त स्थानपर रखने, उनको घटाने-बढ़ाने तथा काटने-छाँटनेकी गोस्वामीजीमें ऐसी विचित्र शक्ति थी कि उनके ऐसा करनेपर भी प्रयुक्त शब्द सरलतासे पहचाने जा सकते हैं। मैंने एक 'ऐसा' शब्दके रामायणमें ११ भिन्न रूप देखे हैं। इसी प्रकारकी विभिन्नता सर्वनाम, शब्द और अन्यान्य पदोंमें भी पायी जाती है। स्थान-स्थापनपर

अनुप्रासोंकी छटा दीख पड़ती है। कदाचित् उपर्युक्त कृन्दमें यह एक पंक्ति अनुप्रासका सर्वोत्तम उदाहरण है—

जो भव-मय-मंजन जन-मन-रंजन गंजन विपति बरूया।

कवि शब्दों और पदोंके प्रयोगमें, विषय-प्रतिपादनके लिये कृन्दोंकी गतिमें अपनी विशेष रुचिका प्रदर्शन करता है और भाव तथा रसोंके द्वारा अत्यधिक विभिन्नताकी छटा दिखाता है। रामायणमें उल्लिखित विषयों तथा उनके प्रकाशनके लिये प्रयोग किये गये रसोंकी सूची बना लेना प्रायः असम्भव है। पात्रोंके चरित्र-चित्रणकी शैली नाटकोंकी भाँति है। यह सत्य है कि पाश्चात्य मनोवृत्तिके लिये रामायणके बहुत-से स्थल कुछ दुर्बोध या छिष्ट प्रतीत होते हैं तथा जिस भाषा और रसके द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की गयी है उसमें कुछ अतिमात्रा दीख पड़ती है, परन्तु इससे रामायणके भिन्न-भिन्न पात्रोंके सजीव चरित्र-चित्रणके प्रति पाठकोंकी अज्ञा कम नहीं हो सकती।

गुसाईं तुलसीदासजीने सरल शान्त वर्णनमें, गार्हस्थ्य सुख-दुःखोंके चित्रणमें (हा ! दीना कैकेयी), युद्धके आघात-प्रतिघातके वर्णनमें, सन्तान और माता-पिताके, भाई-भाई और पति-पत्नीके पारस्परिक क्षुद्रुल सम्बन्धके अंकित करनेमें एक-सी कुशलता दिखायी है। सुदीर्घ वनवासकी यात्रासे पूर्व राम-सीताका जो वार्तालाप है वह तो कदाचित् सम्पूर्ण रामायणमें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रसंग है। जिस शूरतासे राम-चन्द्रजी वनके कष्टमय जीवनका चित्र खींचकर सीताको दुःखोंसे बचने और घरपर सबकी देखभालमें सुख-पूर्वक रहनेका उपदेश करते हैं, उसी वीरताके साथ सीताजी भी प्रत्येक दशामें पतिके साथ रहकर उसके बड़े-से-बड़े कष्टोंमें समान रूपसे भागीदार बनना चाहती हैं। वह यह नहीं दिखलाना चाहती कि कठिन कार्योंका विनय-पूर्वक करना केवल कर्तव्य या भक्तिवश है, वह तो अपना दावा इससे कहीं भावपूर्ण शब्दोंमें पेश करती है, वह कहती है कि प्रभुके साथ वनकी कठिनाइयाँ भोगना मेरे लिये स्वर्ग-सदृश है और उनके अलग रहनेमें यह राजप्रासाद भी नरक-मुल्य है।

(४) तुलसीदासजीके हास्य-विनोदपर तो एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है। साहित्य तथा जीवन दोनोंमें विनोदकी बड़ी आवश्यकता है। जीवनके किसी विज्ञानमें विनोदका अभाव एक बड़ा दोष समझा जाता है। प्रायः हास्योत्पादक पद्य तत्काल मनमें जाग उठते हैं, उदाहरणार्थ,

परशुरामकी गर्जना तथा उनके क्रोधके उत्तरमें अक्षय्यका विनोदपूर्ण उत्तर । अथवा शूर्पक्षलाकी अक्षय्यको बरख करनेकी चेष्टा और उसके उत्तरमें अक्षय्यका खोखलपन हास्य देखने योग्य है । लङ्कामें राजप्रासादमें इन्सान् और उनकी पूँछकी कथा हास्यरससे परिपूर्ण है । इसीप्रकार बालकाचडमें शिवके बहुसंख्यक विचित्र गणोंका वर्णन है । लङ्काकाचडसे भी ऐसे बहुतेरे अंश उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें विकट तथा प्रौढ़ हास्यरसका समावेश है । कहीं-कहीं तो यह हास्य-विनोद मर्मस्पर्शी—व्यङ्ग-गर्भित हो गया है । क्या मैं निम्नलिखित पद्य इसके एक स्पष्ट चित्रके रूपमें रख सकता हूँ ?

समरथ कहँ नहिँ दोष गोसाईं ।

यद्यपि कुछ सज्जन इसमें व्यङ्ग न मानकर इसका शब्दशः अनुवाद करना ही उचित समझते हैं ।

अन्य विषयोंकी भाँति काव्यमें भी लोगोंकी अभिरुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है । कुछ पाठकोंको कवि विहारीलाहकी रचना विशेष प्रिय मालूम होनी है । शब्दबोजनानमें वे अवरोध ही बड़े प्रबोध हैं, किन्तु उनकी सतसईमें इसके अतिरिक्त कौन-से गुण रह जाते हैं ? कुछ दूसरे लोगोंको सूरदासकी कविता बड़ी मनोहर प्रतीत होती है । निश्चय ही न तो कोई भी मनुष्य उनकी साहित्य-सुन्दरता तथा मनोरमताको लघुना प्रदान कर सकता है और न उनके पदोंके माधुर्यमें ही सन्देह कर सकता है । इस विषयपर हमें 'मेकाळे' की निर्वोष अंग्रेजीके ऊपर काज़ाहृदके से उद्गार

स्मरख हो जाते हैं—'हे कान्तिमयी सरिते ! बहती जाओ' ( Flow on thou shining river ) । सूरदास विचित्र कूर्वों और कर्जोंसे भरपूर एक ऊँचे पठारपर स्थित हैं, पर क्या नीचेकी समतल भूमि उनकी अभिरामता नहीं रख सकती ? यद्यपि उनका स्थान बहुत ऊँचा है तथापि ढालों और गड्ढोंमें भी मनोहरता होती है । महात्मा कबीरजीमें अपने डंगकी एक महानता है । सम्भवतः कोई भी कवि इतने कम शब्दोंमें इतने ऊँचे भाव नहीं भर सकता । संक्षिप्त कथनकी शक्ति तथा रूखे ओजपूर्ण पदोंके प्रयोगमें उनकी कोई समानता नहीं कर सकता । उनके पदोंमें बहुत-से व्यावहारिक सिद्धान्त फूट-फूट कर भरे हैं । किन्तु तुलसीदास-जी और कबीरजीमें इतनी समानता नहीं कि उनकी तुलना की जा सके ।

हिन्दी-साहित्यको अनेक कवियोंने सज्जिदशाजी बनाया है, किन्तु तुलसीदासका स्थान निश्चय ही उन सबमें ऊँचा है । अन्य कवियोंमें तुलसीदासजीकी अपेक्षा कोई विशेष गुण भले ही हो परन्तु तुलसीदासजीमें तो अनेक उच्च और महान् गुणोंका समन्वय है । उनकी रामायणमें कैसे वीरत्व और विनयपूर्ण भावोंका प्रवाह दीप्त पड़ता है ! वह हमारे केवल प्रशंसाके ही पात्र नहीं, प्रेमके भी हैं और वह प्रेम उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका अवलम्ब उदाहरण यही है कि समस्त हिन्दी-साहित्यमें ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं जिसका राजप्रासादसे लेकर एक निर्धनकी कृतिघातक इतना अधिक प्रसार हो ।

## राम

रामही चराचरोमें व्याप्त है अखण्ड नम्र ।

रामका गुणानुवाद, पुण्यका आगार है ।

रामसे सभी महान हैं सुखी जहान बीच ,

रामके लिये सदा प्रणाम बार बार है ॥

रामसे जुदा कभी हुआ नहीं किसीका चित ,

रामकी कथा सुधा-त्रिवेणिकाकी धार है ।

राममें रामें मुनी, मुनीश्वरोंके मानसोंमें ,

राम 'विष्णु' सर्वथा त्रिलोकका आधार है ॥

गंगाविष्णु पाण्डेय, विशाखपत्तन 'विष्णु'

## रामायण संसारका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है

( लेखक—डाक्टर बी एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनो, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रेसिडेण्ट 'पेंगलो इण्डियन लॉग' )



स बातको सभी मानते हैं कि रामायण संसारमें सबसे पुराना महाकाव्य है; किन्तु यह सर्वोत्कृष्ट और आदिकाव्य है—इसे बहुत कम लोग जानते हैं। ऐतिहासिक कालके अरुणोदयमें रहे जानेपर भी यह ग्रन्थ सर्वथा अद्वितीय हुआ है। यद्यपि यूनान, रोम, इटली, इंग्लैण्ड, फारस तथा अन्य देशोंमें भी महाकाव्यों के लिखनेवाले समय समयपर आविर्भूत होते रहे हैं किन्तु सांस्कृतिक सौन्दर्य तथा सर्वांगीय पूर्ण होनेके कारण रामायणको वह गौरव-युक्त महान् पद सदा प्राप्त रहेगा जिसका अतिक्रमण अथवा प्रतिस्पर्धा कोई नहीं कर सकता।

रामायणमें महाकाव्यके लिये आवश्यक सभी नियमोंका पालन किया गया है। यद्यपि दूसरे महाकवियोंने भी उन नियमोंकी अवहेलना नहीं की है तथापि हिमालयस्थ उच्च शिखरकी भाँति यह उन सबसे आगे बढ़ा हुआ है। जो रामायणकी महत्ताको हृदयग्रम करना चाहते हैं उन पुरुषोंके लिये महाकाव्यके नियमोंका विश्लेषण अधिक उपादेय होगा।

नाटकके समान महाकाव्यमें भी तीन महान् नियमों (सिद्धान्तों) का समावेश होना आवश्यक है—( १ ) विषयकी महानता—अर्थात् इतिहास तथा पुराणोंके महान् चरित्र-चित्रण, ( २ ) सर्वांगीय चमत्कारपूर्ण क्रियाएँ ( ३ ) भाषाकी उत्कृष्टता। अब देखना है कि रामायण कहाँ तक इन नियमोंको पूरा करता है। भगवान् राम स्वयं एक महान् सज्जद हैं, उनका जन्म एक ऐसे महान् राजवंशमें होता है जिसकी सीमा देवताओं तक पहुँची हुई है। मनुष्य उन्हें ईश्वरका अवतार मानते हैं। उनकी पतिव्रता की महारानी सीताजी उसी प्रकारके दूसरे महान् राजवंशमें जन्म लेती हैं और अपनी उच्च स्थितिके अनुरूप, अनुकरणीय गुणोंसे विभूषित इस महाकाव्यकी नायिका हैं। भगवान् श्रीरामके आता लक्ष्मणमें भी वे सारे सुन्दर गुण वर्तमान हैं जो एक राजकुमारके लिये आवश्यक हैं। दक्षिणके आदि निवासी वानरोंके आकारवाले पुरुष, भीहनूमान्जी देवताओंके अवतार हैं जो एक बार अतुल शक्तिके आधीन

मास्तिके नामसे प्रसिद्ध थे और ( रामायणमें ) दक्षिणदेशके शासक हैं। महारानी सीताका अपहरण करनेवाला रावण लङ्काका शक्तिशाली राजा है। यद्यपि उसकी सारी कामनाएँ पाशाविक हैं तथापि राज्य-वैभवमें वह किसी भी भारतीय नरेशसे कम नहीं है।

इस महाकाव्यका कथानक सर्वतोभावेन हृदयग्राही है। अंग्रेजी भाषाका प्रसिद्ध कवि पोप ऐसा नहीं कर सका है, उसके हास्य-वीर-रस-पूर्ण काव्य 'दि रेप ऑफ़ दि लॉक' ( The rape of the lock ) में सुन्दरी बेलियडाके एक केशपासके ऊपर ही सारा बल्लेबा मचना है। रामायणमें लक्ष्मण तथा महारानी सीताके सहित श्रीरामजीका भारतके दक्षिणी प्रदेशमें पर्यटन, मार्गमें ऐतिहासिक विभूतियोंसे मिलाप, भयानक लङ्काधिराजका पराभव, विजय प्राप्त कर अपने राज्यमें लौटना और वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ काल तक राज्य करना आदि घटनाओंका वर्णन है।

रामायणकी भाषा चमत्कार-पूर्ण है तथा संस्कृतके श्लोक-प्रवाहके कारण इस काव्यकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। महाकवि वर्जिल ( Virgil ) के एनिडकी ( Aenid ) भाँति ग्रीक अथवा लैटिन महाकाव्योंमें चमत्कारपूर्ण वर्णनके लिये षट्पदी ( Hexameter ) का उपयोग किया जाता है। मिल्टनने Milton ) भी सीमित पञ्चपदीका ( Pentameter ) प्रयोग किया है किन्तु रामायणमें इनसे कहीं अधिक चमत्कारिक छन्दोंका प्रवाह है। इसीलिये इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं कि आज भी श्रीगुरुदासजीके रामायणको भी जिसमें वाल्मीकीय रामायणकी भाषाकी छाया वर्तमान है, गाँवोंमें लोग शान्तभावसे लगातार कितनी रातों सुनते हैं और मचड़पके नीचे आसनपर बैठे हुए विद्वान् पण्डित श्रीरामके पराक्रमपूर्ण कार्योंका सुन्दर वर्णन करते रहते हैं।

अरस्तूके काव्य-सिद्धान्तके अनुसार किसी ग्रन्थको महाकाव्यकी श्रेणीमें जानेके लिये तीन और नियमोंका पालन आवश्यक है। वे हैं—काल, स्थान तथा क्रियाकी एकता, महाकाव्यकी क्रियाओंका सम्पादन एक ही कालमें होना चाहिये। इतिहासकी भाँति इसका विस्तार एक कालसे

दूसरे काल तक नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ रोमका आगस्टन तथा इंग्लैण्डका विक्टोरियन-काल है। रामायणमें, श्रीरामजीके वनवास तथा केवल उसी अवधिमें किये गये पराक्रमके थोड़े-से समयको चुनकर काव्यकी एकताका अच्छा निर्वाह हुआ है। शेक्सपियरके ओथेलो (Othello) नामक नाटकमें भी कालकी एकताकी रचा हुई है, ठीक बेनेशियन लोगोके साहस्रस इपीपर आक्रमण करनेके पूर्व—ओथेलो (Othello) अपनी सेनाके साथ प्रस्थान करनेके लिये विचार करते समय ही मलिनहवय आइगोकी (Iago) धूर्तताका शिकार बन जाता है। ग्रीक नाटकोंमें भी कालकी एकतापर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। अर्थात् जितने समयमें वास्तविक शोकपर्यवसायी कार्यों की (Tragedy) समाप्ति होती है उतने ही समयमें नाटकका अभिनय भी समाप्त होता है। सम्राट् हेनरी पञ्चम (King Henry V.) नामक नाटकमें काव्य एवं स्थानकी एकताका अतिक्रमण हो जाता है और यही कारण है कि शेक्सपियर काल तथा स्थानकी एकताकी कमीको पूरा करनेके लिये सामूहिक-गान (Chorus) उपस्थित करता है। रामायणमें स्थानकी एकताका अच्छी तरह निर्वाह किया गया है। इस महाकाव्यकी सारी लीलाएँ भारतवर्ष तथा लङ्काके मैदानोंमें होती हैं। सम्राट् हेनरी पञ्चम नाटकमें स्थान, इंग्लैण्डके फ्रान्स तथा फ्रान्ससे इंग्लैण्ड परिवर्तित होता रहता है, किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है—सामूहिक गानसे वह सौम्य बन जाता है। रामायणमें क्रियाकी एकताका भी पालन होता है, समस्त क्रियाओंका सम्बन्ध केवल श्रीरामचन्द्रजीके वनवास तथा उनके लौटनेके गिया और किसी बातसे नहीं है। लौटनेके बाद श्रीरामचन्द्रजी और महारानी सीताकी क्या दशा हुई? वनमें किसप्रकार महर्षि वाल्मीकिने लव और कुश—इन दोनों कुमारोंका पालन-पोषण किया? किसप्रकार वे अपने राज्यमें पुनः लौटकर आये? इन सब विषयोंका वर्णन रामायणमें है। महाकवि होमर रचित महाकाव्य इलियड (Iliad) की समाप्ति, पाट्रोक्लस (Patroclus) के हत्यारे हेक्टरके (Hector) मारनेके कारण एचलियजके क्रोध-शमनमें, हो जाती है। इसप्रकार यह दुःस्वप्न दृश्य पूर्ण हो जाता है, क्योंकि एचलियजके क्रोधसे निकलकर दुःस्वप्न अन्त जोत पड़ते हैं और वह उन्हींके गीत गाता है और कुछ नहीं कहता, तथा मृतक पाट्रोक्लसके सम्मानार्थ मृतक-क्रिया-सम्बन्धी खेल (Funeral games) की समाप्तिमें महाकाव्यका अन्तान होता है। एनिडमें वयास्थानकधिन लकड़ीके बोहेकी कहानी,

ट्रायनगरका पतन तथा दाइ-इनियास (Aeneas) द्वारा एचलियज (Anchises) को सहायता देना तथा उनके गृह-देवताओंकी रक्षादि—घटनाएँ यूनानी वस्तुकथाओंसे ली गयी हैं।

संसारके महाकाव्योंके साथ तुलना करनेमें रामायण बड़ी सुन्दरताके साथ उपस्थित किया जा सकता है। महानताके विचारसे 'इलियड' को रामायणके सामने रख सकते हैं। परन्तु बहुत-से स्थलोंपर वह प्रतिभाहीन हो जाता है, जहाँ रचनाशैली तथा विचारोंकी अनोहरताके कारण रामायणकी विजय होती है। इन दोनों महाकाव्योंमें उपर्युक्त तीनों एकताओंका अनुसरण किया गया है और दोनों इस विषयमें अपना विशेष चमत्कार रखते हैं, किन्तु रामायण विशद शैली तथा सुन्दर दृश्योंके चित्रणके कारण एक अनुपम स्थान प्राप्त करता है। स्वयं महाकवि बर्जिल स्वीकार करता है कि एनिड केवल इलियडकी प्रतिस्पर्धा है। किन्तु इसमें इलियडके समान भाषा और भाव विकसित नहीं हो सके हैं, क्योंकि इसमें ऐसी कोई बात नहीं, जिसे होमरकी उन उपमाओंके सामने रख सकें जो संसारमें अत्यन्त सम्मानित हो चुकी हैं। महाकवि डांटे (Dante) के काव्योंमें विचार तथा वर्णनकी समशीलताका अभाव नहीं है। उसके वनावे हुए इनफर्नो (Inferno) परगोटोरियो (Purgatorio) तथा पैरेडाइज (Paradise) नामक ग्रन्थोंमें ऐसा सुन्दर चित्रण है कि जिसकी प्रतिलिपि आधुनिक कलाविद् उपस्थित नहीं कर सकता। किन्तु कभी-कभी डांटेके विचारोंपर पक्षपातका परदा पड़ जाता है, यही कारण है कि वह जगत्में जिन चर्माध्यक्षोंसे घृणा करता है उन्हें नरकमें पहुँचा देता है किन्तु इनफर्नोमें रिमिनीकी Riminal क्रैमिस्काके (Francesca) एक सुन्दर उपाख्यानके निमित्त वह किन्ने ही विद्रोहात्मक भावोंकी मूर्ति करता है। चमत्कारिक वर्णनके लिये सभी उपादान मिश्टनके 'पैरेडाइज लाइ' में हैं, किन्तु शैतानका वर्णन करते समय वह उसीको लगभग वास्तविक नायकके रूपमें ला देता है। इस काव्यके निर्दिष्ट नायक, मनुष्यके पुत्रका व्यक्ति अत्यन्त शीघ्र और निष्प्रभ हो जाता है जिसे हम ईसाई-धर्म-ग्रन्थकी कथाके कारण अन्धकी दृष्टिसे देखते हैं, मिश्टनकी रचनाके कारण नहीं। मनुष्यकी प्रथम अवस्थाका गीत गानेवाले नेत्रहीन प्योरिटन (Puritan) महाकवि मिश्टनके भाव-प्रकाशनकी पेशलता, सन्द-प्रवाह तथा कल्पना-की प्रचुरतामें कोई कमी नहीं आती। फिरदौसीके शाहनामामें फारसके राजाओंका इतिहास है—जिसमें शक्तिशाली स्तनमका विशेष वर्णन है, किन्तु यह काव्य केवल कथा और

उपकथा तथा युद्ध और सन्धिके विवरणोंसे भरा हुआ है, जिनके पढ़नेसे मग डक जाता है। फिर भी इनके मध्यमें सोहराबकी एक आश्चर्यमयी कहानी है। रस्तमका भयंकरवेजान (Azerbaijan) देशनिवासिनी अपनी पत्नी ताहमीना (Taheminah) के साथ केवल एक रात्रिके लिये शयन करना, तदनन्तर उसकी अज्ञानतामें सोहराबका जन्म होना तथा उसी सोहराबका संयोगवश अपने पिताके द्वारा मारा जाना आदि रोमाञ्चकारी घटनाओंसे भरी हुई इस कल्प कहानीको पढ़कर ऐसा कोई न होगा जिसकी आँखें सज्ज न हो उठें। वास्तवमें, जैसा कि स्वयं कवि फिरदौसी कहता है कि यदि शाहनामा-जैसे महाकाव्यकी रचना न हुई होती तो रस्तम एक ग्रामीण वीर ही रह जाता और उसके पराक्रमकी गाथा केवल ग्रामीण भाटोंकी जिह्वापर रह जाती। फिरदौसीने केवल इस पूर्वीय देशके महान् वीरके चरित्रको ही अंकित नहीं किया बल्कि दिलको हिला देने-वाला सोहराबकी कहानीको हमारे लिये रच छोड़ा, जो आज भी फारसके प्रासाद एवं अन्तःपुरमें रहनेवालेके हृदयको प्रसन्नचित्त करती है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी, महारानी सीता, श्रीलक्ष्मणजी, महावीर हनुमानजी तथा रावणका चरित्र भी सुदूर भविष्यमें समयके अगम प्रवाहमें सर्वदा सजीवरूपसे वर्तमान रहेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दूजनश्रुतिमें सावित्री, शकुन्तला तथा दमयन्ती-जैसी पतिव्रता स्त्रियाँ आ जाती हैं किन्तु धर्मप्राया सीताके सामने सभी निष्प्रभ हो जाती हैं; जिते देवता भी प्रणाम करते हैं और अपनी अज्ञातज्ञि अर्पित करते हैं। सत्यप्रतिष्ठ युधिष्ठिर, भीष्म तथा प्रह्लादके चरित्र भी प्राप्त होते हैं किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके विशुद्ध तथा कलङ्कहीन जीवन, एवं राजकीय गुण और शीलके साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती।

रामायणका सार क्या है? पैरेबाइज कॉस्टके कुछ उपदेश एवं इलियड काव्यमें वर्णित साधारण चरित्रोंकी अपेक्षा उसकी महत्ता किस प्रकार सार्थक होती है? ग्रीक कहानियोंमें वर्णित वीराग्रगण्य एचिलीज तो केवल मनेलास (Menelaus) बन्दी कन्याके लिये ही अपने शिविरमें क्षिप्त जाता है; दूसरी ओर ओडसेस (Odysseus) एक अत्यन्त कामी पुरुष है जो आजकल सज्जन पुरुषोंके सम्मुख केवल घृणाका पात्र ठहरता है। अजाक्स भी (Ajax)

केवल शक्तिमें भीमके समान है, इसके सिवा उसमें और कोई गुण नहीं है। इसके विपरीत श्रीरामचन्द्रजी उस मूल सिद्धान्तको सिखाते हैं जो चराचरका आधार है क्योंकि परमात्माका प्रथम विधान 'अनुशासन' है। यदि आज सीताजी होतीं तो उनके सामने हमारी बहनें—चाहे वे प्राण्य देशकी हों या पाश्चात्य देशकी हों, जज्जाले नतशिर हो जातीं। श्रीलक्ष्मणजी धर्म और भक्तिसे ओतप्रोत हैं, उनके बाद उस प्रकारके बहुत ही कम आई हमारे देसनेमें आते हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे केवल सरल और सर्वप्रिय जोनैथन (Jonathan) और डेविड (David) की अमर कहानी कुछ अधिक जैवती है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें रामायणमें और भी महत्त्वपूर्ण विषय प्राप्त होते हैं। कुछ भाष्यकारोंका विचार है कि सीता-शब्दका अर्थ इसके द्वारा बनायी गयी गहरी रेखा है। इसी आधारपर वे कहते हैं कि रामायणमें आखण्डारिक ढंगसे आर्थोंकी विभिन्न क्रियाओंका वर्णन है। उदाहरणार्थ किसप्रकार आर्थोंने धूमने-फिरनेवाली जंगली जातिबोंको खेती करना सिखाया तथा शकानुसूक्त जीवनके लाभ बतलाये, जिनका उन्होंने अपने आदि स्थान मध्य एशियामें प्रयोग किया था। यदि इस महाकाव्यका यह महान् अर्थ हो तो भी उसकी उपादेयता बढ़ जाती है। इसकी वास्तविक कथाकी गम्भीरता और मनोहर वर्णनके अतिरिक्त इसमें और भी अधिक गूढ़ तत्व भरा है जो बिहृतापूर्ण अन्वेषणके लिये बहुत ही विस्तृत क्षेत्र उपस्थित करता है।

वाल्मीकि भले ही डाकू रहे हों किन्तु वह युगोत्तक चमकनेवाले उस रत्नकी भाँति है, जिसके समीप पहुँचना सम्भव है किन्तु जिसकी समता तथा अतिश्रम्य करना असम्भव है। रामायणकी कथा उन वृत्तान्तोंसे भरी है जिसका जादू राजमहलसे लेकर गाँवों और जंगलोंकी ओपवियोंतक एक-सा फैला हुआ है। यद्यपि महाभारतकी भाँति इसमें कहानियोंका सौता नहीं दीख पड़ता और इसमें श्रीमद्भगवद्गीताकी भाँति केवल तत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी नहीं है तथापि महाकाव्यकी दृष्टिसे यह सर्वदाके लिये सर्वोत्कृष्ट और आदिकार्य है। यद्यपि रामायणको श्रीगणेशजीने नहीं लिखा और न महर्षि व्यासकी विशद बुद्धिसे इसका प्रकाश हुआ तथापि इस धरामें कितने ही वंश आर्थों और चले आर्थोंके किन्तु रामायण ज्यों-की-त्यों ही अवस्थित रहेगी।

## ‘रामचरितमानस कवि तुलसी।’

अवध-मधुरिपु-नामिसरमें जो खिला अरविन्द ।  
मकरिस्तका है मरा जिसमें मधुर मकरन्द ॥  
भाव-सौरभ पुञ्ज जिसका उड़ रहा सब ओर ।  
हो रहा अलिवृन्द रसिकोंका जहाँ सुन्दोर ॥१॥

कलितमोमय कालको जिसने किया सुप्रभात ।  
वह सु-रामचरित्रमानस है जगद्विख्यात ॥  
कामरिपुके दिव्य-अनुभव-सिद्ध फलका रूप ।  
साधु तुलसीदासका है तप-प्रभाव अनूप ॥२॥

दिव्य-दृष्ट उदार भावोंसे मरा भरपूर ।  
मुग्धता-सुविदग्धता-सह महज रचना कर ॥  
सफल मन्त्र-समान कोमल-कान्त-पद-संयुक्त ।  
गुणातीत-उदात्त-चिन्मय भक्ति-रससे मुक्त ॥३॥

नर-हृदयका दिव्य और पवित्रतर उद्गार ।  
आसुरिकताका तथा भी बीज और विकार ॥  
सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म मानस-वृत्तिकी भी बात ।  
द्वन्द्व और विरुद्ध भावोंका परस्पर घात ॥४॥

शैल-वन-निर्झर-नदी-वागीश-चन्द्रातोंक ।  
प्रसन्न कमल-विकास सामग्री कोक-दम्पति शोक ॥  
प्राप्तके रूपि-लेख हैं त्यों कहीं नगर-मुह्युट ।  
कहीं बल्कलकी छटा है कहीं राज-मुठट ॥५॥

शुद्ध सूनूनवादिताका है अपूर्व विकास ।  
व्यास और समासका भी देखिए सुप्रयाम ॥  
पूर्वमें उत्तर कथाकी सूचनाका ढङ्ग ।  
आनुपूर्वी भाव स्रष्टिगुक्त विविध प्रयाम ॥६॥

दिव्य-दम्पति-प्रेमका शुद्धत्व और महत्त्व ।  
हैं कहीं आनन्द त्यों ही है कहीं भृङ्गत्व ॥  
रामभक्ति अनन्यता रङ्गितनास मुक्त ।  
अङ्ग देवोंकी तथा आगवना संयुक्त ॥७॥

ब्रह्मकी अद्वैतता और जगन्मायावाद ।  
किर विशिष्टाद्वैत एवम् द्वैतका संवाद ॥  
तज विगंशी भाव हो समशील शीतल शान्त ।  
सम्मिलित सह प्रेम चलते हैं सभी सिद्धान्त ॥८॥

विविध ऋषियोंके विविध अनुभव तथा मत-पंथ ।  
साङ्गवेद मुकाव्य-दर्शन और भी सद्ग्रंथ ॥  
दिव्य प्रज्ञा सर्वगायें खूबि सनका तत्व ।  
कर दिया कविरत्नने उनका कविर एकत्व ॥९॥

रामतत्त्व अतर्क्य और अचिन्त्य दिव्य उदार ।  
ज्यों अनन्ताकाश और अपार पारावार ॥  
मनो-मति-वाचा परे है वह विचित्र अनूप ।  
भावके सत्पात्रमें ढलता है उसका रूप ॥१०॥

निज सुकाचि-विश्र्वासके अनुकूल है वह ध्येय ।  
वस्तुतः वह तत्त्व क्या है यह नहीं-सा ज्ञेय ॥  
तज दुराग्रह-द्वेष अपने भावके अनुसार ।  
ईशपदको पूजिये मत कीजिये तकरार ॥११॥

यह जगत् सब रामही है, रामहीका खेल ।  
प्रत्येक अणु प्रतिरेणुमें त्यों है उसीकी मेल ॥  
है समस्त सु-नाम-रूपोंमें उसीकी ख्याति ।  
है वही जो कुछ कि है सब अस्ति एवम् भाति ॥१२॥

यह विमल मत हो गया जिनसे प्रचारित मित्र ।  
स्वामी तुलसीदास है वे लोक पुण्य-चरित्र ॥  
शुद्ध शाश्वत-धर्मका जिनने किया उद्धार ।  
क्षीण आर्य-शरीरमें सजीवनी सञ्चार ॥१३॥

ज्ञान-रविकी ज्योतिमें कर प्रेम-अमृत-मुयोग ।  
दिव्य चन्द्र उगा दिया है, घन्य कवि-उद्योग ।  
निर्विकल्प मुक्तपनायुत कलित काव्य मुकान्त ।  
ज्ञानगारिनामय विशद है उपनिषद् वेदान्त ॥१४॥

हो रहा है, फिर, कहीपर विविध-निषेध-विधान ।  
है कहीं त्यों नीनियोंका कचिरतर व्याख्यान ॥  
यह सु-रामचरित्रमानस है सुमानस-शास्त्र ।  
हो रहे जिसके अमित हैं तत्त्वशानी छात्र ॥१५॥

तर गये लाखों हैं जिसका पाठ पारके सद्य ।  
स्वतः सिद्ध सुमन्त्र है जिस ग्रन्थका प्रतिपद्य ॥  
हो गये कितने निरक्षर पढ़ जिस विद्वान ।  
सुबुधसे कवि और कविसे सन्त-ऋष्य महान ॥१६॥

रङ्गसे हो सब कितने हो गये श्रीमान ।  
पा चुकें हैं लोकमें शुभ कीर्ति औ सम्मान ॥  
विविध मनकी कल्पनाएँ, कामनाएं क्षार ।  
पूर्ण करनेके लिये है कल्पवृक्ष उदार ॥१७॥

आधिदैविक-आधिभौतिक आदि हैं जो कष्ट ।  
वे प्रयोग-विधानसे होते हैं इसके नष्ट ॥  
पाठमें मानसके मानसमें उपजती भक्ति ।  
पूर्ण दैवी ज्योतिसे होता सुबाचक व्यक्ति ॥१८॥

वृत्तियों मुरझी हुई करती हैं सुन्दर हास ।  
उनमें होता है विशद स्वर्गीय-भाव-विकास ।।  
किन सु-शब्दोंमें करे उस काव्यका गुण-गान ।  
उन महाकविका करे किस भाँति हम सम्मान ।।१०।।  
शुद्ध सम्यग्ज्ञानमय वे सूर्य थे निर्धार ।  
दिन्य अन्तःकरणमें था प्रेम-वारि अपार ।।  
हस्तगत ब्रह्माण्ड हृदिगत ब्रह्म था साकार ।  
कौन पा सकता है उनके विमल यशका पार ।।२०।।

महाकवि मुनिराज थे, थे भक्तराज महान् ।  
सदय परठषकाररत गतमान वे विद्वान् ।।  
कलि-उदधिमें विकल भारत-पतकें आधार ।  
हरि-अनुग्रह-विग्रही परमार्थकें अवतार ।।२१।।  
रम्य रामचरित्रमानस रचित कर अमिराम ।  
स्वामि तुलसीदासजीने कर दिया वह काम ।।  
सकल विषसे जो हमारा हंगामा हित-हेतु ।  
सकलका सोपान त्यों संसार-सागर-सेतु ।।२२।।

शारदकं पद बन्दि नितैकविकोपद 'बिन्दु' उमाहि चहै ।

शब्द जमत्कृत अर्थ अलंकृत त्यों रस-रीति निबाहि रहै ।।

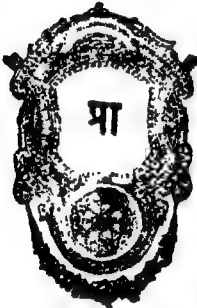
भूत प्रभूत मयं होइहैं अजहूँ सरि नागनाहि अहै ।

कते कवी कविताहि कहैं तुलसीसौं तुलै कवि ताहि कहैं ।।

—'श्रीविन्दु' ब्रह्मचारी

## रामायणके कुछ राजनीतिक सिद्धान्त और शासन-संस्थाएँ

( लेखक—श्री युक्त बी०आर० रामचन्द्र दीक्षितार एम०ए० )



चीन हिन्दूशासनके भावों और शासन-संस्थाओंके पुनर्निर्माणके लिये महाकाव्य महाभारतके समान रामायण भी ज्ञातव्य विषयोंकी एक कान है। यद्यपि इस दृष्टिसे रामायणका अध्ययन स्वतन्त्ररूपसे किया जाना आवश्यक था तथापि अबतक इस विषयमें, इधर-उधर कुछ भावोंके और संस्थाओंके साधारण संकेत किये जानेके अतिरिक्त, किसीने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। प्रोफेसर जैकोबी तथा प्रो०एस०जेवी-सद्व्या प्रसिद्ध विद्वानोंने रामायणपर दो उत्तम निबन्ध लिखे हैं, जिनका उल्लेख करना अप्रासङ्गिक न होगा। जैकोबी महाशयका Das Ramayana (Bon-1893) और जेवी महाशयका Pour L'histoireon du Ramayana (Journal Asiatique, 1918) इन दोनों निबन्धोंमें भी रामायणकाहीन राजनीतिक तथा शासन-सम्बन्धी विधानोंके विषयमें कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है। जैकोबी महाशयको पुस्तक-प्रकाशन करते समय जो कुछ सामग्री मिल सकी, उससे उन्होंने वर्तमान रामायणका निकटतम काल निर्णय किया है। उन्होंने

रामायणका काल अधिक-से-अधिक ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दी और कम-से-कम ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दी निर्धारित किया है। प्रो० एस० एस० मैकडोनेलकी सम्मतिमें रामायणका मुख्य भाग ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दीके पूर्व प्रणीत हो चुका था। 'दशरथजातक' नामक बौद्धग्रन्थमें यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणीय कथाके कुछ भागसे जातकका लेखक परिचित था। वेबरकी यह धारणा कि, इस कथामें यूनानी संस्कृतका प्रभाव है, बिल्कुल गिम्बल है। ऐसी दशामें यह कल्पना युक्तिसंगत है कि जातकोंकी रचनाके पूर्व भी भारतीय जनता इस महाकाव्यके अधिकांश भागोंसे परिचित थी। यह तो सर्वसम्मत है कि रामायणका सङ्कलन भी ईसासे दूसरी शताब्दीके लगभग या उसके पूर्व ही हो चुका था। यदि हम इस धारणाको भी स्वीकार कर लें तो रामायण ईस्वी सन्के बहुत ही पहलेकी रचना सिद्ध होती है। अतः इसमें वर्णित विधान प्राचीन हैं इसलिये वे प्राच्य-विद्या विशारदोंके लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। रामायण धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गकी प्राप्ति उपदेश देती है। (बा०रा०६ द३।३२-३६) इसमें सामाजिक पद्धति वर्णाश्रमधर्मके अनुसार स्वीकृत की गयी है। इस पद्धतिका स्तर स्वधर्म पर स्थिर रहना है और



यही सभी प्राचीन ग्रन्थोंका प्रधान विषय रहा है। स्वधर्मका अभिप्राय है कि प्रत्येक पुरुष-को अपने कर्तव्यका पालन करें। यद्यपि महाभारतने राजधर्मको सब धर्मोंमें ओष्ठ बतलाया है, किन्तु रामायण इसपर उतना जोर नहीं देती। वह धर्म और अधर्मका भेद निश्चित करती है—

स्वधं श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

राजधर्म अहं वक्ष्ये अधर्म धर्मसंहितम्  
(बा० रा० २।१०९।२०)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणके प्रणेता राजधर्मके मौखिक सिद्धान्तको माननेके लिये तैयार हैं, पर वे इसीको प्रधान धर्मके रूपमें नहीं मानते। रामायणमें राजधर्म बड़ी बतलाया गया है जिसका राजर्षि लोग पालन करते हैं। इस दृष्टिसे रामायणमें एक महान् नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी सिद्धान्त निहित है।

रामायणमें वर्णित राजनीतिक परिस्थितियोंसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उस समय वस्तुतः सम्पूर्ण भारत अयोध्या-सम्राट्के आधिपत्यमें था। श्रीरामचन्द्रजीकी गति दक्षिणमें कन्याकुमारीतक निर्धार्य थी। दूसरे राज्योंके शासक और सामन्तगण या तो इच्छाकुपंशय राजाके सहकारी थे या उनके अधीनस्थ थे। द्रव्यकारवचमें जहाँ कहीं रामचन्द्रजी गये, वहाँ उनका स्वागत किया गया। उनका आतिथ्य करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

रात्रा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।

पूजनीयश्च मान्यश्च मवान्प्रातः प्रियतिथिः॥

पुनः जब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे मैत्री करके उसके भाई वालिका वध किया, और जब वालिने उनके कर्मको अन्याययुक्त बतलाया, तब रामचन्द्रजी अट्से बोल उठे—

इक्ष्वाकुनां इयं भूमिः सदैवजनकानना।

(बा० रा० ४।१८।६)

‘किष्किन्ध्याप्रदेश, इक्ष्वाकु साम्राज्यका एक भाग है और उस साम्राज्यके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे मुझे दुराचारियों और अधर्मियोंके नाश करनेके अधिकार प्राप्त हैं।’ इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारतका सारा प्रदेश अयोध्या-सम्राट्के अधीन था।

शासनप्रणालीका स्वरूप एक राजतन्त्र (Monarchy) था। शासकतन्त्रके प्रति प्रजामें पैतृक-भावनाका प्रसार था।

अर्थात् राजा प्रजाको अपनी सम्मान मानकर व्यवहार करता और लोकप्रिय होता था, एवं इसके बदलेमें प्रजा भी पूर्य राजभक्त होती थी। इतना होनेपर भी राज्यप्रणाली निरङ्कुश नहीं थी, यह निबन्धित राजतन्त्रात्मक प्रणाली थी। निबन्धन ‘अन्त्रिपरिषद्’के द्वारा होता था, जिसका प्रधान सदस्य पुरोहित होता था। साथ ही ‘चौर’ और ‘जानपद’ आदि अन्याय्य समितिवाँ भी होती थीं। इन सबसे बड़कर कुछ ऐसे लौकिक नियम थे, जिनका सत्कार करना राजाका धर्म समझा जाता था।

तत्कालीन राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार नियम-भङ्ग किये जानेपर राजाको अराजकता (Anarchy) और विद्रोह (Revolution) का सामना करना पड़ता था। ‘मेघी’ और ‘नैगम’ सहित कुछ अर्द्धराजनीतिक संस्कार्य भी थीं, जिनके प्रतिनिधि देशके शासनमें मुख्य भाग लेते थे (बा० रा० २।१२०।१६) श्रीरामचन्द्रजीके पुत्रराजपदकी घोषणाके समय ये सब प्रतिनिधि उपस्थित थे। राजा दशरथके देहावसानके उपरान्त जब भरतजी रामचन्द्रजीसे उनकी प्रतिज्ञापर पुनर्विचार करानेके लिये अर्थात् उन्हें लौटा लानेके लिये प्रार्थना करने चित्रकूट गये थे, उस समय भी वे उपस्थित थे (बा० रा० २।८१।१२, ८३।१०)। दशरथ-जीकी मृत्युके अनन्तर पुरोहित महर्षि बशिष्ठजीने ही भरतको राजधानीमें शीघ्र पुकारनेके लिये दून भेजे थे। रामायणमें आदिसे अन्ततक पुरोहितका स्थान बड़े महत्त्वका है और वह कौटिल्यके इस कथनको स्पष्ट प्रमाणित करता है कि जो राज्य एक योग्य पुरोहितके अनुभवद्वारा रक्षित होता है वह सदा उन्नत होता है, उसकी कमी अवनति नहीं होती। पुत्रराज-निर्वाचनके प्रश्नपर विचार स्थिर करने-वाले लोगोंमें ‘चौर’ और ‘जानपद’के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। (बा० रा० २।२।१६-२०) इसप्रकार इन संस्थाओंको महत्त्वके अधिकार प्राप्त थे और वे राजनीतिक कार्य किया करती थीं।

एक राजतन्त्र-शासन प्रायः पैतृकाधिकारके रूपमें था। बहुधा पुत्र ही पिताका उत्तराधिकारी होता था। अभिवेकोत्सवमें राजकुमारको पुत्रराजकी पदवी दी जाती थी। (बा० रा० २।३।६) राजकुमारोंको प्रांतीय शासक (Provincial Governors) बनाकर भेजनेकी प्रथा थी। भरतजीके दो पुत्र लक्ष्मण और पुष्कलावतीके शासक बनाये गये थे। शत्रुजके दो पुत्र मधुरा और विदिशाके शासक बने थे तथा





कल्याण



मृगेन्द्र पर्वत पर श्रीराम का भोजन

अधमयके दोनों पुत्रोंको उत्तर और दक्षिण कोसल पर शासनका अधिकार प्राप्त था (बा० रा० ७।१०।१।११; १०।८।१-११; १०२।१; १०७।१०)। यहाँ हमें ग्राम्तीय शासनप्रणालीका पता मिलता है, ग्राम्तीय शासनप्रणालीका हेतु यही था कि श्रीरामचन्द्रजीका साम्राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था।

अन्ध्र-राजाओंद्वारा किये जानेवाले राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञोंका हस्ताक्षर भी रामायणमें है। राजा दशरथने पुत्रजायके लिये और रामचन्द्रजीने विरव-विजयके लिये अश्वमेधका अनुष्ठान किया था (बा० रा० ७।८४।२)। रामायणमें प्रसिद्ध सर्वप्रिय 'कश्चित् सर्ग' के अध्ययनसे हमें तत्कालीन प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तोंका पता लगता है (बा० रा० २।१००)। दो छोकोंमें आय और धनके बहाने बढानेके सम्बन्धमें उल्लेख मिलता है। व्ययकी सूचीमें मन्दिर, संस्कार, ब्राह्मण, योग्य अतिथि, घोड़ा तथा मित्रादि-सम्बन्धी व्ययका समावेश पाया जाता है।

रामायणमें सैनिक संगठन और शासन-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। उस समय एक विशेष रक्षामन्त्री (War Minister) होता था जिसका काम अपने और शत्रुके बलावकका ज्ञान रखना तथा तदनुसार राजाको सम्मति प्रदान करना होता था (१।१४।२२)। रथ-परिषदें (War Councils) भी होती थीं जो युद्ध द्विद्वैके पूर्व

जुलाई जाती थीं, जिनमें कार्यक्रम बनाये जाते थे। रावणने जब सुना कि रामचन्द्रजी समुद्र पार कर लङ्का आ गये हैं तब उसने अपने 'रथ-परिषद्'की सभा बुलाई थी। राजदूतोंका संघ (Institution of Ambassadors) सैनिक नीतिका एक प्रधान अङ्ग था। धर्मशास्त्रका विधान इन सबमें प्रधान दीखता है। रावणसे कहा जाता है कि दूतका बध नहीं किया जा सकता, इस बातसे पता लगता है कि सदाचार ही सब कार्योंका आधार था (बा० रा० २।५२।१३-१४)। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंकी अनुरंगिणी सेना होती थी। सैन्य-संस्थापन तथा शिविरस्थापन वैज्ञानिक ढंगसे होते थे। यहाँ शस्त्र, शस्त्रोंके प्रयोग तथा रथ-नीतिके विषयमें विचार नहीं करना है। एक उल्लेखनीय बात यह होती थी कि शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके बाद उसीको वहाँके सिंहासनपर करद राजाके रूपमें प्रतिष्ठित कर देते थे। और यदि शत्रु-राजा युद्धमें मारा जाता तो उसी प्रकार उसके बधार्थ उत्तराधिकारीको सिंहासनारूढ़ किया जाता था। उदाहरणार्थ लङ्काविजयके पश्चात् विभीषणको राजतिलक दिया गया था। रामायणमें राजनीतिक संस्थाओंका जो वर्णन मिलता है, उसका यह संक्षिप्त सार है। छाया है कि कोई विद्वान् सज्जन रामायणका विशेष और विस्तृत अध्ययनकर तत्र तत्र उपयोगी सामग्रियोंको प्रकाशमें लानेका प्रयत्न करेंगे।

## सुबेल पहाड़पर श्रीरामजीकी भाँकी

सैल संग एक सुन्दर देखी।

दुहुँ कर कमल सुधारन बाना।

अति उत्तंग सम सुभ्र विसेखी ॥

कहँ लंकेस मंत्र लागि काना ॥

तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये।

बड़भागी अंगद हनुमाना।

लछिमन रचि निज हाथ डसाये ॥

चरन-कमल चाँपत विधि नाना ॥

तापर रुचिर मृदुल मृगछाला।

श्रु पाछे लछिमन वीरासन।

तेहि आसन आसीन कृपाला ॥

काटि निषंग कर बान सरासन ॥

श्रु कृत सीस कपीस उछंगा।

एहिबिधि करुनासील गुनधाम राम आसीन।

बाम दहिन दिसि चाप-निषंगा ॥

ते नर धन्य जे ध्यान एहि, रहत सदा लवलीन ॥

\* इस निबन्धमें जो उद्धरण दिये गये हैं वे रामायणके कुंभकोणम् संस्करणसे किये गये हैं। —लेखक

## यूरोपके सामान्य पाठकोंके लिये रामायणका स्वरूप ।

( लेखक—ग्रीगुल एन्. जी. डॉ. टर्नबुल, एम. ए., वेमिन, इंग्लैण्ड )



यह कहा जा सकता है कि इस अग्रान्त, व्यवहार-प्रधान युगमें, जहाँ उच्च शिक्षाके लिये ग्रीकका अध्ययन भी अपरिहार्य नहीं समझा जाता, वहाँ रामायणको—सो भी अनुवादके रूपमें—पढ़नेके लिये कहाँ अवसर है ? जहाँ आज बहुत बोदे-से ग्रीक छात्र इलियड और ओडिसेका अध्ययन करते हैं वहाँ संस्कृतके पब्लिशर्स तथा पौराणिक पाठकोंके अतिरिक्त रामायण पढ़नेका सच्चा शौक किसे होगा ?

उपयुक्त आपत्ति उठायी जा सकती है परन्तु बलु-स्थितिपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि भारतके प्राचीन महाकाव्यकी कथाओंके अध्ययनके लिये यूरोपमें कुछ सार्व-जनिक रुचि वर्तमान है। यद्यपि इंग्लैण्डमें ग्रीकिय और दत्त महाशयके वाक्मीकि-रामायणके तथा ग्रीस महाशयकृत तुलसीकृत रामायणके अनुवादको बहुत कम जोग देखते हैं, किन्तु बहुत-सी दूसरी ऐसी पुस्तकें हैं जो कुछ-न-कुछ सार्वजनिक रुचिके अनुकूल हैं और जिनके द्वारा श्रीराम-सीताके आख्यानसे अधिकारा पाठक परिचित हो गये हैं और कुछ लोगोंने कथापरिचित भाषाओं और भाषाओंका भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। उन ग्रन्थोंमेंसे उदाहरणके लिये हम भगिनी निवेदिना और ए. के. कुमार स्वामीकृत 'मीथ्स आफ दी हिन्दू ऐण्ड बुद्धिस्ट्स' (Myths of the Hindus and Buddhists) का उल्लेख करेंगे जिसको अखनीग्रनाथ ठाकुरने बहुत ही मनोहर चित्रोंसे सुशोभित कर दिया है।

यद्यपि एक यूरोपियनसे उस नैसर्गिक और सरल अद्वायक दृष्टिसे रामायणको देखनेकी आशा नहीं की जा सकती, जिससे उसे एक हिन्दू देखना है। दूसरे शब्दोंमें इसीको बोल सकते हैं—जैसे हिन्दू बाइबलकी कहानियोंको वास्तवमें उस दृष्टिसे भी नहीं देख सकता, जिस दृष्टिसे उन्हें एक स्वतन्त्र विचारका यूरोपियन देखता है, वैसे ही यूरोपियन लोगोंके भाव रामायणके प्रति हो सकते हैं। तथापि समझदार यूरोपियन रामायणकी कथाको अत्यन्त अद्भुतसे देखेंगे, क्योंकि महाभारतकी भाँति यह भी

तो बायोंके उसी शौर्यप्रधान युगका आभास है, जिस युगमें यूरोपमें इलियड और ओडिसेकी रचि हुई थी। मानव-मस्तिष्क अब भी असंख्य और अचिन्त्य प्रतिभापूर्ण ग्रन्थोंका प्रत्ययन कर सकता है, परन्तु आधुनिकी उन चमत्कारी रचनाओंकी समानता इनसे नहीं हो सकती। अतएव जो अनुपम विश्व-संस्कृति का संसारकी सर्वोत्तम भावनाओं और क्रियाओंको सम्यक् प्रकारसे जानना चाहता है, उसे रामायणसे परिचय अवश्य प्राप्त करना होगा।

रामायणका अध्ययन कभी निष्फल नहीं होगा। उसको पढ़नेवाले उसमें आजकलके दैनिक कार्य-शृङ्खलामें आबद्ध पुरुषोंके मस्तिष्कसे कहीं अधिक स्वतन्त्र और अनियन्त्रित रूपसे प्रवाहित आधुनिकी कल्पनाओंको पायेंगे और साथ ही उन महान् एवं निरञ्जल शौर्यपूर्ण कथाओंको देखेंगे जो केवल अहं-भाव-शून्य जगत्में ही सम्भव हैं। इन कथाओंमें निस्सन्देह, श्रीराम और सीताका चरित मुकुटमणि है और केवल उनको जाननेके लिये ही रामायणका अध्ययन उपादेय हो जाता है।

किन्तु हमारे सामान्य पाठक इससे अन्यान्य विभिन्न रुचिकर वस्तु भी प्राप्त कर सकते हैं। तुलनात्मक साहित्यके विद्यार्थी, जो होमरसे अभिज्ञ हैं, रामायण पढ़ते समय उसकी तुलना होमरके इलियडके साथ करेंगे और उनके प्रतिपाद्य विषय तथा काव्यरचनाकी समीक्षा करेंगे। पढ़ते तो वे इस भारतीय महाकाव्यके आकार-प्रकारको देखकर संभवतः चकित हो जायेंगे, क्योंकि ऐसी प्रचुर सामग्रीसे युक्त बृहत् ग्रन्थ यूरोपकी अथवा भारतमें ही अधिक पाये जाते हैं। फिर वे रामायणके उन रचना, काव्य तथा कथाप्रोत-सम्बन्धी अनेक मनोरम प्रश्नोंका वर्णन देखेंगे, जिनकी तुलना उस सरस प्रभावशीलसे की जा सकती है जो 'Homeric Problem' के नामसे प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त जातीय मनोविज्ञानके विद्यार्थीको ग्रीक और भारतके इन महाकाव्योंमें विभिन्न कल्पनाओंके विभिन्न स्वरूपोंकी तुलनामें बड़ा रस मिलेगा। उसे अनुभव होगा कि इन दोनोंमें यदि एक समकटिग्रन्थकी जगहायुसे प्रभावित है तो दूसरा काल्पनिकदृष्टिसे जलवायुसे,—

जहाँ प्रकृति समृद्ध और अपरब है। अवरुण ही इस वर्णन-प्राचुर्यका कुछ भाग उसे अतिशयोक्ति या अत्युक्तिके रूपमें आभासित होगा क्योंकि उसकी रूचि प्राचीन ग्रीक मर्षादा-बलभित यूरोपीय जनश्रुतिके द्वारा निर्मित हुई है। किन्तु रामायणमें कम्पना-समृद्धि और सरसता पाठकोंको अफित कर देती क्योंकि यूरोपके उत्कलम साहित्यमें इसकी उपमा उसे प्राप्त नहीं हो सकती। वह अपने प्राधुनिक और प्रतिदिनके जीवनसे होमरकी कथा-भूमिको जितना दूर पाता है उससे कहीं अधिक दूर वह चेत, उन्हें होल पड़ेगा, जिसमें

रामायणकी कथा प्रभावित होती है। किन्तु इस दशमें भी उसे विशिष्ट चित्रण प्राप्त होगा।

अब हम सहज ही इस निष्कर्षपर पहुँच सकते हैं कि सहजभूति तथा आन्तर्दृष्टिसे अध्ययन करनेवाले समक्षद्वार यूरोपियन पाठकके लिये, चाहे वह हिन्दी या संस्कृत न भी जानता हो, रामायणमें नैतिक और बौद्धिक दोनों प्रकारकी सरस और बहुमूल्य सामग्री है। हजारों वर्ष पूर्व रचित किसी विशिष्ट साहित्यके विषयमें और क्या कहा जा सकता है ?

## महाकाव्योंमें राक्षस

( लेखक - श्रीधर पक्ष० पन० ताडपयीकर एम० ए०, प्राच्यविद्यालङ्कार )



व्यकालसे ही हमारे हृदयमें राक्षसका एक भयानक चित्र लिखा हुआ है— विशाल शरीर, अग्निके सदृश बड़ी-बड़ी आँखें, भयानक डारें, तथा ऐसे ही दूसरे भय-उत्पन्न करनेवाले उपादानसे युक्त एक प्रार्थी मानो मनुष्यको खाने-के लिये ही जपक रहा है। रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्योंमें राक्षसोंके उदाहरण मिलते हैं। भेद यही है कि रामायणमें राक्षसोंके आबाद और शासित प्रदेश मिलते हैं किन्तु महाभारतमें कहीं-कहीं प्रसन्नकरा राक्षसोंका उल्लेख आ जाता है।

रामायणमें सबसे पहले हमें ताडकाका वर्णन मिलता है, जो एक बड़की कन्या थी और सुन्दसे ध्याही गयी थी, मारीच उसका पुत्र था। ताडका, मारीच, सुबाहु और इसी प्रकारके अन्य राक्षसोंको भगवान् रामचन्द्रजी अपने वायोंसे मार डालते हैं। यहाँ हमें राक्षसोंकी मायाका वर्णन मिलता है। हमारे विस्तृत साहित्यमें राक्षसोंकी उस माया-शक्तिका उल्लेख है जिसके द्वारा वे सुन्दर-से-सुन्दर तथा विकृत-से-विकृत मानवरूप, एवं अन्य प्राणियोंके रूप भी धारण कर सकते थे, और उनमें स्वेच्छानुसार अवरुण होनेकी शक्ति भी थी। एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे यज्ञानुष्ठानके बड़े विरोधी थे और यज्ञभूमिको अग्नि रक्त और अस्त्रियों बरसाकर अपवित्र और जह्न कर देते थे।

आगे चलकर अरुणकाण्डमें भी इन कल-जनोंका उल्लेख है। शूलचारी विराट राक्षस, जिसने दोनों भाइयोंको, राम-लक्ष्मणको लेकर भाग जानेकी चेष्टा की थी, मारा जाता है। उसके दोनों हाथ तलवारसे काट लिये जाते हैं और वह एक गर्तमें गाड़ दिया जाता है। उसके विषयमें यह वर्णन मिलता है कि वह मनुष्य-भक्षी था और सिंह, बाघ, मेरिषा तथा हरिणोंका शिकारकर उन्हें अपने शूलमें ढाँग लेता था।

इसके बाद पञ्चवटीके आश्रममें शूर्पणखाका उपाख्यान मिलता है जहाँ श्रीरामचन्द्रजी राक्षस खर, उसके सेनापति वृषण तथा राक्षसोंकी चौदह सहस्रकी शक्ति-शालिनी सेनाका नाशकर विजय प्राप्त करते हैं। वह सेना सब प्रकारके अस्त्रोंसे सुसज्जित थी। खरका रथ सूर्यके तुल्य कान्तिमय था और उसमें नाना प्रकारके धनुष, बाण, तलवार तथा शक्तिपूर्ण वर्तमान थीं। यहाँ एक ही स्थलपर बहुत-से विभिन्न सच्चाओंका वर्णन है। पुनरावृत्तिसे बचनेके लिये निम्न श्लोकोंका उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है।

मुद्गैः परिवैः शूलैः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः ।

सज्जैश्चक्रे रथस्यैश्च भ्राजमानैः सतोभरैः ॥

शक्तिभिः परिवेषैर्वैरैरतिमात्रैश्च कर्णुकैः ।

गदसिमुसैर्लेवैर्ग्रैर्हस्तैर्मामदशनैः ॥

( वा० रा० ३।२२।१८-१९ )

अर्थात् सुन्नर, पटिश, तीक्ष्ण शूक, बरही, तलवार, चाक, चमकीले सोमर रथपर रखे थे। शक्ति, भवानक परिचय, अनेक धनुष, गदा, मूसल और बज्रोंको जो देखनेमें भयानक थे, राक्षस त्रिवे हुए थे।

अपको प्रारम्भहीमें अपशकुन होने लगे किन्तु उसने उनकी उपेक्षा की और रक्षाङ्गणमें पहुँचकर अपनी समस्त सेनाके साथ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर आक्रमण कर दिया। वद्यपि भगवान् उनके ही जय रहे थे, तथापि अन्तमें उन्होंने उसकी सारी महती सेनाको मारकर विजय प्राप्त की।

उपयुक्त बर्णनसे कोई ऐसी बात नहीं ज्ञात होती जिसके द्वारा यह अनुमान किया जा सके कि राक्षसजोग युद्धकालमें किसी प्रकार पिछड़े हुए थे और सम्पूर्ण रामायण पढ़नेपर भी हम इसी परिचयपर पहुँचते हैं। वानरोंके उस प्रदेशको छोड़कर जिनमें हमें क्रमशः (आधुनिक भारतके अनुसार) किसी प्रकारकी सम्भ्रताका विकास नहीं मिलता, हमें आगे चलकर फिर राक्षसोंके महान् प्रदेश और उनके निवासके कर्मोंका परिचय मिलता है। राजधानी जंकाकी स्थिति तथा उसके चारों ओरकी किलेबन्दीको देख हमें आश्चर्यसे वकि्त हो जाना पड़ता है। पक्काव जब भीहनुमानजी मनोहर चन्द्र-ज्योत्स्नासे पूर्ण जङ्गलमें प्रवेश करते हैं और प्रसुप्त जङ्गल-नगरीको देखते हैं, उस समयका जैसा वर्णन है वैसा उस समयके किसी भी अत्यन्त सम्य नगरके लिये सज्जत हो सकता है। और फिर हमें वहाँ सभी भोग-विलासकी सामग्रियोंसे पूर्ण सुप्त अन्तःपुरका वर्णन मिलता है। युद्धकावडके आशयन करनेसे राक्षसोंकी बुद्धिकी प्रसरताका परिचय मिलता है; वं 'युद्ध-परिचय'में बाद-विवादके पश्चात् युद्ध-विषयक प्रश्नोंका निर्णयकर म्यूहरचना करके युद्ध करते थे। अन्ततः हमें यह सोचकर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि ऐसी सर्वतोभावेन उन्नत जाति वानरोंके शिखा और इन्होंने आक्रमणसे कैसे पराजित हुई ?

महाभारतकी ओर देखनेसे हमें ज्ञात होना है कि राक्षसजोग उस समय प्राण्तिग शासनसे वज्जित हो गये थे और संश्रय होकर वन-संन जीवन व्यतीत करते थे। हिङ्गय तथा किरमिर जङ्गलोंमें रहते थे। केवल वनवासुरके जीवन ही एक समस्त नगर था। प्रायः इन सभी राक्षसोंको भीमने अपने पराक्रमसे मार डाला था। इसप्रकार यह विदित होता है कि महाभारतकालके राक्षसोंमें

रामायणकालीन राक्षसोंकी सम्भ्रताका हास हो चुका था। वस्तुतः उनकी जाति नष्टमात्र हो चुकी थी, कुछ लोग जो बचे थे, वे सब प्रकारकी विपत्तियोंसे त्रास पानेके लिये सधन वनमें छिपे रहते थे।

जब हम इसी बातको सामने रखकर वेद तथा वैदिक साहित्यकी ओर देखते हैं तो हमें राक्षसोंकी वयार्थ सत्ता नहीं मिलती, वहाँ उन्हें पौराणिक प्राणी माना है। उनको वहाँ शत्रु समझा गया है और भाषाद्वारा विभिन्न शरीर धारण करनेकी उनकी शक्ति भी स्वीकार की गयी है। मनुष्य उन राक्षसोंसे युद्ध करनेकी क्षमता नहीं रखते, क्योंकि वे पार्थिव शरीरमें जाते ही नहीं हैं। ऋग्वेद ८.१०४ में राक्षसोंके उपद्रव तथा उनके शमनके लिये देवताओंके आवाहनका उल्लेख मिलता है। क्रमशः उन्हें यज्ञोंमें भाग भी मिलने लगा, और इसीके अनुसार मैत्रेयी संहितामें (३-१४, १६, २१) निष्ठा और राक्षसोंके सम्मानार्थ कुछ यज्ञोंके विधान मिलते हैं। तदनन्तर गृह-सूत्रोंमें भी प्राचीन वैदिक प्रमाणाका अनुसरण किया गया है और गृहस्थोंको इन प्रतिकूल शक्तियों (Hostile influences) (राक्षसों) के शमनके लिये भौति-भौतिकी शिक्षा दी गयी है।

भीमजगन्नीताने, जो महाभारतका एक भाग है, राक्षसोंकी उपासनाका राजस्वरूप माना है। रामायणमें (३.३०.१२) भी रामचन्द्रजी कहते हैं कि सुनिर्वाणे भी सर राक्षसमे डरकर उसके सम्मानार्थ एक वज्र किया था।

उपयुक्त विवेचनका सारांश यह है कि रामायणकालमें राक्षसजोग पूर्ण समुन्नत थे और यज्ञमें सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त करनेके लिये उन्होंने पुरोहितोंको नीचा दिखाया था। अनन्तर पृथ्वीसे इस जातिके उठ जानेके बाद महाभारतकालमें इन दुष्टोंका वज्र तत्र उल्लेख मिलता है। वैदिक साहित्य राक्षसोंकी वयार्थ सत्ताके विषयमें कुछ नहीं कहता; उन्हें केवल पौराणिक प्राणी मानता है।

किन्तु यदि यह सिद्धान्त स्वीकृत किया जाय तो वेदों और महाकाव्योंके सापेक्ष कालगणनाके प्रश्नपर हमें पुनः विचार करना पड़ेगा। वहाँपर केवल प्राण्विद्या-विद्यारदोंकी गणेशनाके निमित्त यह विषय प्रस्तुत किया गया है।

## आदर्श पुरुष श्रीराम

(लेखक-श्री आर्दे० जी० एस० तारापुरवाला बी०ए०, पी-एच० डी०, नार-एट-डा)



मायबयमें मुझे सबसे अधिक प्रभावोत्पादक श्रीरामजीका तत्त्वपूर्ण मनुष्यत्व मालूम होता है। यद्यपि उन्हें करोड़ों मनुष्य मानवरूपमें अवतरित साक्षात् भगवान् मानते हैं तथापि मनुष्यरूपमें वे जैसे प्रतिभासित हुए हैं वैसे ईश्वररूपमें नहीं।

परशुराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध प्रभृति अन्यान्य मानव अवतारोंको देखिये। पहले दोमें ईश्वरीय तत्त्वकी प्रतिष्ठा है। बुद्ध नितान्त मनुष्य हैं पर उनके अनुयायियोंने उन्हें ईश्वर अथवा उनसे भी कुछ बढ़कर बना दिया है।

किन्तु वाक्मीकिके राम पूर्ण मानव हैं। सम्पूर्ण इतिहासमें हम उन्हें कहीं भी मनुष्येतर रूपमें नहीं देखते। यही रहस्य है कि वे हिन्दू-अहिन्दू सभीके हृदयोंको आकर्षित करते हैं। हम शिशुरूपमें, बालकरूपमें, प्रेमी-रूपमें, वीररूपमें, और प्रजाका शासन करते हुए नरपति-रूपमें—प्रत्येक दशामें उनकी उज्ज्वल आदर्श मानवताकी जगमगती ज्योति देख पाते हैं। वे प्रत्येक क्षेत्रमें आदर्श हैं किन्तु हैं सभी जगह हमी जोगोंमेंसे एक। हम जितने ऊँचे आदर्श मनुष्यकी कल्पना कर सकते हैं उन्हें वैसा ही पाते हैं। सम्पूर्ण कथामें हमें वे कहीं भी देवता या ईश्वरके रूपमें नहीं देखते और कहीं भी वे अपने साथी जीवोंसे पृथक् नहीं होते। वे मनुष्योंमें एक मनुष्य हैं और मनुष्यकी तरह ही काम करते हैं, बोलते हैं और अनुभव करते हैं। अवश्य ही उनका कर्मक्षेत्र हमलोगोंके कर्मक्षेत्रसे सर्वथा पृथक् है, पर दोनोंके कर्म हैं एक ही प्रकारके। उनके भाव ऊँचे हैं, उनके शब्द प्रेमपूर्ण हैं, उनके कर्म किसी भी मनुष्यसे अधिक त्यागमय हैं। पर जीवनभर वे इसी भूमण्डलसे सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हमें अनुभव होता है कि वे हमारे ही निज-जन थे। और हम भी चाहें तो उन्हींके समान अनुभव कर सकते हैं, बोल सकते हैं और कर्म कर सकते हैं।

वह एक प्रेमी मनुष्यकी भाँति प्रेम करते हैं और सीताजीके सामने अपने हृदयके अत्यन्त गम्भीर भावोंको खोज कर रख देते हैं। यह युगल-जोड़ी हमारे जिये आदर्श

है। इसप्रकार नितान्त मनुष्य होते हुए वे यथार्थ आर्य और हिन्दू हैं। यद्यपि अवभृतिने उत्तररामचरितमें इन दोनोंके आदर्श मनुष्यत्वका गुण-गान बड़ी सहृदयताके साथ किया है परन्तु वह कथा निःसन्देह बालमीकिके ही की गयी है। बालमीकि या गुलसीदासकी रामायणमें हमें जैसी मनोहर प्रेम-कथा पढ़नेको मिलती है वैसी संसारमें कहीं नहीं मिलती। इनमें भावोंका चमत्कारिक उद्गम, कर्कशता तथा नाटकीय बाह्य चमक-दमक नहीं है। यहाँ हम प्रेमके प्रवाहको बहुत ही विस्तृत और गम्भीर देखते हैं। वह इतना गम्भीर है कि घरातलपर कहीं उसका एक तरंग-विषेप भी दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रणयकी हमारी यह प्राचीन विधि हमें सिखाती है कि यद्यपि प्रेम प्रथम दर्शनसे ही उत्पन्न होता है तथापि विवाह हो जानेके बाद भी अनुरजनका अवसान नहीं हो जाता। वस्तुतः वह वहींसे आरम्भ होता है। सीता-रामकी कथामें हमें दाम्पत्य-प्रेमका बड़ा ही उन्नत प्रकार देख पड़ता है। और ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों वह अलौकिक प्रेमभाव गम्भीरतर होता जाता है। हम इन दोनोंमें सर्वत्र ही पारस्परिक समादरका भाव पाते हैं और वह केवल बाह्य प्रदर्शन नहीं! उनका प्रेम इतना गम्भीर और पवित्र है कि सार्वजनिक प्रदर्शनमें वह कभी भा ही नहीं सकता, इसीलिये वह समस्त 'नारी-जातिका सर्वस्व' हो रहा है और उसमें उनके जीवनका अधिकांश भाग ओत-प्रोत है।

हम वर्तमान युगके जीव आश्चर्यान्वित होकर कहते हैं कि इसप्रकारके महान् प्रेमका अन्त ऐसा शोकपर्यवसायी नहीं होना चाहिये था। बीसवीं शताब्दीकी सङ्कुचित दृष्टिके कारण ही हम श्रीरामको सीताके बनवास या अग्नि-परीक्षाके जिये दोषी ठहराते हैं। यदि श्रीराम राजा न होते और अपनी प्रजाको सन्तानवत् न समझते तो उनकी प्रेम-कथा दूसरे ही प्रकारसे लिखी जाती। सीताका जीवन तो केवल प्रेमके जिये ही था, उनके जीवन-धारणमें अन्य कोई हेतु ही नहीं था, परन्तु श्रीरामको दूसरे भी कर्म करने थे, उन्हें केवल सीताकी ही नहीं सारी प्रजाकी चिन्ता थी। शासक और राजा होनेके कारण वह तुच्छ-से-तुच्छ अपवादासे भी बचना चाहते थे। यद्यपि उनका हृदय-

सुख विचित्र हो रहा था तथापि उन्होंने अपने पवित्र कर्त्तव्यका पाबान किया। प्रजाके प्रति उनका बड़ी कर्त्तव्य था कि जिससे वे अपने राज्यपरिवारकी परमोच्चक स्वातंत्र्यको अपवादकी हवासे तनिक भी दूषित न होने दें। इसीसे उन्होंने अपनी आत्माको ही नहीं बरं उससे भी प्रिय—आत्माकी भी आत्मा—सीताको त्याग दिया। इसमें उनको कैसी असीम मर्मवेदना हुई होगी, हम उसका अनुमान ही नहीं कर सकते। जैसे उनका प्रेम अमर्यक है उसी प्रकार उनकी यह मर्म-म्यथा भी इसनी पवित्र है कि जिसका हरय सब साधारणके सामने नहीं रक्खा जा सकता। इसीजिसे उनका बाका चित्र अत्यन्त शान्त और प्रायः उपरामतायुक्त चित्रित किया गया है। अवरय ही वहाँ अवभृतिने श्रीरामके इन्द्रयस्त्र भावोंका बथार्थ चित्रण किया है। उनके उत्तररामचरित्रमें हम केवल नाट्य हरयोंको देखते हैं, पर उनसे पता लगता है कि सीता त्यागके कारण प्रेममय भगवान् रामके हृदयमें कितने गहरे बाध थे और उनसे कैसे लून बह रहा था !

श्रीरामचन्द्र अपने अन्यान्य विभिन्न कार्योंके द्वारा भी हमें अनुपमरूपमें ही प्रभावित करते हैं। हमने यहाँ केवल उनकी 'प्रेम-काँकी' देखनेका ही प्रयास किया है। वे प्रेमी हैं किन्तु अन्वयेमी नहीं। वे सदा-सर्वदा एक सर्वोच्च कर्त्तव्य-निष्ठ पुरुषके रूपमें द्दर्शन देते हैं। परिणाम कुछ भी हो, वे सर्वदा कर्त्तव्यका अनुसरण करते हैं। केवल परमात्मा हमें इसप्रकार प्रभावित नहीं करता। क्योंकि हम जानते हैं कि वह मानव-जीवनके गुण-दोषसे परे है। वह श्रीराम-सीताकी कथा त्रिष नवीन रहनेवाली है क्योंकि वे दोनों मानवरूपमें अवतरित हैं। हम उनके समान ही अनुभव कर सकते हैं, प्रेम कर सकते हैं किन्तु उनके समान त्याग नहीं कर सकते। इसीजिसे हम उनका सम्मान करते हैं। श्रीरामके सरश त्यागी ईश्वर केवल ईश्वर हो सकता है किन्तु श्रीरामचन्द्रजी मानव-रूपमें हमारे अन्तस्तलमें आकर प्राप्त करते हैं और वे हमारे सामने एक परम आदर्श पुरुषके रूपमें अवस्थित हैं।

## रामायणके राक्षस

( लेखक—पं० श्रीगोविन्द शास्त्रीजी दुर्गाकर )



राम-कथा प्रायः सब पुराणोंमें मिली गयी है और केवल रामकथात्मक 'शतकोटि-प्रक्षिप्त-स्वतन्त्र रामायणों-मेंसे कतिपय उपलब्ध भी हैं। इन सभी राम-कथाओंका आधार आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि-रचित रामायण महाकाव्य है, इसमें कोई सन्देह कर ही नहीं सकता। लोगोंका विश्वास तो बर्हातक है कि, श्रीराम प्रभुके जन्म-ग्रहणसे पूर्व ही यह महाकाव्य रचा गया था। अतः रामायण-सम्बन्धी किसी विषयकी आखोंका इसी ग्रन्थके आधार-पर करना युक्तियुक्त होगा। विस्तारमयसे इस लेखमें अधिकतर मूल श्लोकोंके अवतरण न देकर केवल उनका अनुवाद अथवा सारांश ही दे दिया है। मूल श्लोक जिन्हें देखने हों, उनके सुभीतेके जिसे काव्य, सार और श्लोकोंकी संख्या लिख दी गयी है।

प्रथम हम यह देखना चाहते हैं कि, रामायणके राक्षसोंके रूप, गुण, व्यवहार आदि कैसे थे और अनुप्योंके साथ उनकी कुछ गुलना की जा सकती है या नहीं। राक्षसोंके रूपोंका पुराणोंमें बड़ा ही भयानक वर्णन किया गया है। काव्य होनेपर भी वाल्मीकीय रामायणमें उतनी भयानकता नहीं दीख पड़ती। राक्षसराज रावणका रूप चित्रकारों और कवियोंने अत्यन्त विकलाव अंकित किया है। रामायणमें भी एक स्थानपर लिखा है—

यश्च नानाविधधाररूपैर्व्याघ्रोऽहनाभेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः।

भूतैर्भूतैः माति विवृत्तनेत्रैर्बाँडसी सुराणामपि दर्पइन्ता॥

'बड़ी रावण है, जो देवताओंके भी गर्वको लय करने-वाला है और जो नाना प्रकारके भयानक रूपों तथा बाघ, कैंड, हाथी, हरिण और घोड़ेके मुखोंसे युक्त है तथा भूतोंसे भिरा हुआ शोभा पा रहा है।'

यहाँ पक्षमुकी और कहीं-कहीं दशमुकी रावणका उल्लेख है। परन्तु ऐसे स्पष्ट रामायणमें बहुत कम हैं।



एकमुख और दो हाथवाले राक्षसका वर्णन प्रायः सर्वत्र है। हनूमान्जी जब राक्षसके राजभवनमें राजिके समक्ष द्विपक्ष पहुँचे, तब उन्होंने उसे सोया हुआ पाया। उसके दोनों हाथोंमें सोनेके आम्रपत्र थे। दोनों कंधोंपर इन्द्रके वज्र-प्रहारके चिह्न थे। पाँच फर्रोंके सौपोंकी तरह उसके दोनों हाथ शुभ विक्रानेपर पड़े थे, इत्यादि, (२।१०।१२-२२)। इसी तरह गन्धर्व बैठे हुए राक्षसपर सुग्रीवने जब आक्रमण किया, तब 'राक्षस उठा और उसने अपने दोनों हाथोंसे उसे उठाकर पृथ्वीपर दे मारा। फिर सुग्रीवने भी गेंदकी तरह उड़कर राक्षसको दोनों हाथोंसे उठाकर पटक दिया' (१।४०।१३)। राक्षसके मर जानेपर शोकाकुल विभीषण उसका वर्णन करता है—'गह्वरी आदि भूषणोंसे युक्त मुहारे दोनों लम्बे हाथ भूमिपर निक्षेप पड़े हुए हैं।' (१।१०२।३) इससे स्पष्ट है कि, राक्षसके दो ही हाथ थे।

इन्द्रजित्का वध होनेपर राक्षसके क्रोधका इसप्रकार वर्णन किया गया है—'वृत्रासुरके मुखसे जिसप्रकार अग्नि और धुआँ बाहर निकलता था, उसी प्रकार जैमाई देते हुए राक्षसके मुखसे (वक्त्रान्) लपटें और धुआँ निकल रहा था। उसकी दोनों लाज आँखें (नेत्रे) अधिक लाज हो गयीं और उन आँखोंसे (नेत्राभ्याम्) दीपकके जलते हुए तेजकी हँवोंकी तरह आँसू भरने लगे, (६।१२।१८-२२)। क्रुद्ध सीता राक्षससे कहती है—

'हे अनार्य राक्षस ! मुझे देखते हुए तेरे थे क्रूर और चिकराल दोनों नेत्र (नयने) क्यों नहीं पृथ्वीपर गिर पड़ते ? उस भर्मात्मा (राम) की पत्नी और वराहकी पुत्रवधूके साथ इसप्रकारकी बातें करते हुए तेरी जिह्वा (एक ही जिह्वा) क्यों नहीं गल जाती ?' (२।२२।१८-१९)। 'सीताकी बातें सुनकर राक्षसाधिपति राक्षस दोनों आँखें (नयने) काढ़कर उसकी ओर देखने लगा। उसके दो हाथ मन्दराचलके दो उन्नत शिखरोंकी तरह दीख पड़ते थे। बाज-सूर्यके समान दो सुन्दर कुण्डल उसके कानोंमें थे और पुष्पित दो कशोक-हृत्त जिसप्रकार पर्वतपर शोभा पाते हैं उसी प्रकार वे

(कुण्डल) सुशोभित हो रहे थे (२।२२।२३-२८)।' राक्षसको अपसकुन जाग पड़ने लगे, उस समयके वर्णनमें खिला है—'उसकी बाईं आँख (एक ही) और बाईं मुजा (एक ही) फटकने लगी। उसका चेहरा (एक ही) उतर गया और स्वर भीमा हो गया (६।१६।४६)।'।

राक्षस जब युद्धके लिये उपस्थित होता है तब राम उससे कहते हैं—'तेजस्वी कुण्डलोंसे युक्त तेरा सिर (शिरः) मेरे बायाँसे उड़ जाय और उस ध्वजि-धूसरित सिरको राक्षसगण बसीटकर ले जायें (६।१०३।२०)।' राक्षसको अशुभ चिह्न दीख पड़ने लगे, उसका वर्णन इसप्रकार है—'राक्षस मुख देखकर मुखसे आग उगलते और अशुभ शब्द करते हुए सियार भाग रहे थे (६।१०६।२८)।' राक्षसके हल होनेपर उसकी क्षिर्याँ बिजाप करने लगीं। 'एकको तो उसका शव देखते ही मूर्छा आ गयी। दूसरीने उसका सिर गोदमें उठा लिया। तीसरी कहती है, राजन् ! आपका मुलकमन्त्र (एक ही) सुकुमार था, भीहँ सुन्दर थी, नासिका उत्तम थी, मुखकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी। तेज सूर्यके समान था। दोनों होठ जाज बं और दोनों नेत्र चञ्चल थे। नागा प्रकारकी माताओंसे आपका मुख (वक्त्रं) चञ्चकृत हो रहा था और उसीसे हँस-हँसकर आप बातें करते थे। वह मुख इस समय रामके बायाँसे क्षिप्त-भिन्न हो गया है। उसकी वह शोभा नहीं रही। पूँ उड़नेसे तो मुख बहुत रुध हो गया है और उससे मेढ़-मजा बह रही है।' (६।११०।६-१०; ६।१११।३४-३८) इन अवतरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, सोते, जागते, क्रुद्ध होते, युद्ध करते और मृत अवस्थामें भी राक्षसके एक ही मुख, दो आँखें, दो कान और दो ही हाथ थे।\* इसमें सन्देह नहीं कि, वह बड़ा बलवान्, दृढ़-पुष्ट और अत्यन्त काका था। हनूमान्जीने उसकी सुप्तवस्थाके वर्णनमें कहा है कि,— 'गोशालामें उत्तम गौधोंके बीच जैसे मोटा-साजा सँद सोया हो, वैसे ही अनेक सुन्दरी स्त्रियोंके बीच, वह पड़ा हुआ था' (२।११।११)।

\* रावणके जन्मसमयके वर्णनमें कहा है कि 'दशग्रीवः प्रसूतोऽयं दशग्रीवो अविष्यति' अर्थात् दश मस्तकवाला होनेसे उसका नाम दशग्रीव रक्खा गया। जब शूर्पणखा अपने भाई रावणके पास गयी है उस समयके वर्णनमें यह स्पष्ट कहा गया है— 'विशङ्कुषं दशग्रीवं दर्शनीयपरिच्छदम्।' अर्थात् राक्षसके बीस मुजा और दश मस्तक थे। इसीप्रकार बाल्मीकीय रामायणके अन्यान्य स्थानोंमें भी रावणके दश मस्तक और बीस हाथ होनेका कुछे शब्दोंमें वर्णन जाता है। असलमें कितने मुख और हाथ थे, सो मगवान् जानें। —सम्पादक

रावणकी तरह कुम्भकर्णका भी रामाचरणमें एकाध स्थानमें विचित्र विकराल वर्णन किया गया है। जिला है—

धनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुच्छ्रितः ।

रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसज्जिमः ॥

(६।५५, ४७)

अर्थात् 'कुम्भकर्ण' सौ धनुष चौड़ा और ऋः सौ धनुष लम्बा था। उसकी आँखें गाड़ीके पहियेके समान थीं। वह महापर्वतके सदृश और उग्र था।' अतिशय नामक राक्षसका भी इसी तरहका रूप बताया गया है। उसे देखकर 'सब बन्दर डर गये और यह जानकर कि, वही कुम्भकर्ण' है, आपसमें चिपकने लगे (६।७०।७)।' इसी तरह एक बार 'काले पहाड़के समान विभीषणको देखकर और उसे इन्द्रजित् जानकर बन्दर डर गये और भागने लगे थे (६।४६।३२)।'।

इस विवेचनसे पता चल सकता है कि, राक्षसोंके सम्बन्धमें लोगोंकी वही धारणा थी कि, वे बड़े विकराल और उग्र होते थे। अब भी वही धारणा है और कवितया चित्रकार उनके स्वरूपका इसी भावनाके अनुसार चित्रण करते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। राक्षस भी मनुष्योंकी तरह हुआ करते थे। स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने युद्धके समय वानरोंको आज्ञा दी थी कि,—'कोई वानर मनुष्यके रूपमें युद्ध न करे। अपनी सेनामें केवल मैं, लक्ष्मण, विभीषण और उसके अनल, अनिल, हर और सगपाति नामक चार मन्त्री—जो माखी नामक राक्षसके पुत्र हैं,—ये सात ही मनुष्यरूपमें रहें। इस व्यवस्थासे ज्ञात हो सकेगा कि, अपने दलके कौन हैं और शत्रु दलके कौन ?' (६।३७।३३-३४, ७।५।४४)

सीता हुई मन्दोदरीका हनुमान्ने वर्णन किया है कि, 'उसका वर्ण गौर था और उसने बहुत-से अलङ्कार धारण कर रखे थे।' (५।१०।५१) उसे देखकर हनुमान्को सन्देह हुआ कि, ये ही तो सीता माता नहीं हैं (५।१०।५३)।' अन्ततः मन्दोदरी राक्षसी होनेपर भी उसका स्वरूप मानुषी-वैसा ही था। अशोक-वनमें सीताको ढगने जो राक्षसियाँ आयी थीं, उनका वर्ण भीषण वर्णन है। (कोउ मुखदान विपुल मुख कोक)। ऐसा वर्णन तो है ही, किन्तु यह भी बताया गया है कि, उनमेंसे किसी-किसीके मुख बाघ, मेंस, बकरी, सिंघार, कुत्ता, हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि जानवरों सदृश थे (५।१०; ५।१२)। आटिका (१।२५।१२) अपोमुनी

(३।६६।१२-१३) और शूर्पणखा (३।१७।६-११) के विचित्र तथा भयोत्पादक वर्णन तो मूल ग्रन्थमें ही देखने योग्य हैं। परन्तु ये वर्णन आधिकारिकी रस-निष्पत्तिकी प्रतिभामात्र हैं।

राक्षसोंके रूपकी उग्र कल्पना लोगोंने उनके नामों और कृतियोंसे ही कर ली है। रावण (गर्जना करनेवाला), कुम्भकर्ण, (जिसके कान घड़ेके समान हों), विभीषण (भयंकर), त्रिशिरा (तीन मस्तकवाला), कुर (गड़हा), दूषण (दुष्ट) आदि नाम भयानक हैं। परन्तु नामोंसे ही कर जानेका कोई कारण नहीं है।

विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मान्धश्च दिवाकरः ।

लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च त्रयन्ते नाम धारकाः ॥

यह सुभाषित प्रसिद्ध ही है। स्वयं रावणने सीतासे अपने नामकी व्युत्पत्ति कही है कि—'मेरे नामका अर्थ है—शत्रुओंसे हाहाकार करानेवाला। यद्यपि मेरा नाम रावण है, तथापि मुझे पराक्रमी दशग्रीव कहते हैं (३।४८।२; ५।२३।८)।' राक्षसोंकी कृतियाँ वही भयानक थीं। आटिका मनुष्य-भक्षण करती थी (१।२५।१४)। मारीच दण्डकारण्यमें तपस्वी ब्राह्मणोंको मार खाता था (३।३८।३)। नरमांस रावणका आहार था (३।७२।२३), दूषरोंकी छियोंको हरणकर उनका सतीत्व नाश करना, रावणने राक्षसोंका स्वधर्म कहा है (५।२७।५)। तो भी राक्षसोंमें कुछ नीतिज्ञ भी थे। वह बात मारीच, शूर्पणखा, कबन्ध, विभीषण, मन्दोदरी आदिके नीति-वचनोंसे स्पष्ट हो जाती है। राक्षस उन्मत्त, हिंसक, अन्धधारी और अविचारी होते थे, इसीसे लोगोंने उनके रूपोंकी उग्र कल्पना कर ली है।

राक्षस नर-मांस-भक्षक और हिंस्र थे सही, किन्तु उनमें भी आनुवंशिक व्यवस्था थी। 'रावणकी माता कैकसी सुमात्री नामक राक्षसकी कन्या थी। उसका विवाह पुत्रस्थपुत्र विजया अचित्से हुआ था। इसी जोड़ीसे रावणादि तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो ब्राह्मण थे (७।३।२३)।' हनुमान्ने इन्द्रजित्से उसकी अर्त्सना करते हुए कहा था,—'तू ब्रह्मर्षिके कुक्षमें राक्षसयोनिमें उत्पन्न हुआ है (६।८।१।१६)।' इससे सिद्ध है कि, राक्षसोंमें वर्णव्यवस्था थी, परन्तु वे आसुरी प्रकृतिके होनेके कारण राक्षस-विधिसे चाहे जिस जाति या वर्णकी स्त्रीसे विवाह कर लेते थे। हनुमान्ने रावणके अन्तःपुरमें रावणकी जो छियाँ देखीं, वे राजर्षि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, मन्त्र्य और राक्षसोंकी कन्याएँ थीं (५।३।६८-६९)। अन्ततः राक्षसोंका मनुष्योंसे शरीर-सम्बन्ध भी होता था।

राक्षस तपस्वी और विद्वान् भी हुआ करते थे। राक्षसका शिवभक्त होना प्रसिद्ध ही है। वह अग्निहोत्री और वेदपाठी भी था। चारों वेदोंका पदच्छेद उसीने किया था। जब वह मरा, तो उसकी चितामें अग्निहोत्रके पात्र रखे गये थे। इसका उल्लेख युद्धकाण्डमें है। राक्षसके अतिरिक्त अण्ड्य राक्षस भी वेदपाठ करते थे। हनुमान्ने उत्तररात्रिमें राक्षसके प्रासादमें महाराक्षसोंका बड़ा वेदपाठ सुना था (५।१।८२)। बिभीषण राक्षससे मिलने गया, तब उसने देखा कि, अपने भाईकी विजयकामनासे राक्षस-गण पुण्याहुवाचन कर रहे हैं। (६।१।८) निकुंभिजा देवी राक्षसकी कुल-देवी थी। उसके उद्देश्यसे मद्य खाने और हवन करनेका उल्लेख रामायणमें है (५।२४।५७)। राक्षसों के मद्यप होनेका हमने पता चलता है। वे उग्र तपस्या करते थे। बिराध (३।३।६) और राक्षसने (६।६२।२६) घोर तपस्या की थी। परन्तु उनकी तपस्या ब्राह्मणोचित निष्काम नहीं, सकाम हुआ करती थी।

उनके संस्कार वेदोक्त होते थे। बिभीषणका राज्याभिषेक वेदोक्त ही हुआ था (६।११।१४-१६)। राक्षस अनेक विद्या-कलाओंमें निपुण, राजनीति-चतुर, युद्ध-विद्या-विशारद और रसिक होते थे। राक्षस तो बड़ा अच्छा गायक था (६।२४।४६-४७)। राक्षसोंके वैभवकी सीमा नहीं थी और उनकी मायाका तो कहना ही क्या है? उनकी

अन्तिम क्रिया भी मनुष्योंकी तरह की जाती थी। वे अर्वाये जाते और गाव भी दिये जाते थे (३।४।२२-२३)। कबचने तो अन्त समयमें कहा कि, मुझे पहले गाव दो और फिर जवा दो (३।७।१।३१)। राक्षस मनुष्य-जैसे ही थे, इसका विस्तृत वर्णन अयोध्याकाण्डमें अनेक स्थलोंमें पाया जाता है।

रामायण-सागरका अध्यन कर राक्षसोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ ऐसे प्रमाण दिये जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जायगा कि, राक्षस कोई कल्पनातीत प्राणी नहीं थे। मनुष्यों-जैसे ही थे। किन्तु क्रूर प्रकृतिके होनेके कारण उन्हें राक्षस पदवी प्राप्त हुई थी। हमारे समाजमें वर्तमान समयमें भी राक्षसोंकी कमी नहीं है। परन्तु उनके स्वरूप उम-आप-जैसे ही हैं।

हमारे अन्तःकरणमें दिक्में किननी ही बार राक्षसी प्रवृत्तियोंका उदय हुआ करता है और कभी-कभी उनके बशीभूत होकर हम राक्षसी कर्म भी कर बैठते हैं। परन्तु हमें उनका विचार नहीं रहता। इन प्रवृत्तियोंको दबानेका एकमात्र उपाय मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीभगवान् रामचन्द्रजीके पावन पद-पङ्क्तियोंकी शरणागति ही है। इसीसे हम बीब-कलमच होकर अन्त समयमें बाज़िकी तरह श्रीभगवान्से अभिमानपूर्वक पूछ सकेंगे कि, प्रभो !—

अजहूँ का मैं पातकी अन्तकाल गति तौर :

## श्रीरामचरितमानसकी नवधा भक्ति

प्रथम भगति संतन्ह कर संग। दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा।

दो०—गुरु-पद-पङ्कज-सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुनगन करै कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम हृद बिस्वासा। पंचम भजनु सो बेद प्रकासा।

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।

सातवें सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा।

आठवें अयालाम संतोषा। सपनेहु नहि देखै परबोषा।

नवम सरल सब सन छलहीना। ममभरोस हिय हरष न दीना।

## रामायणके वानर-ऋक्ष



हर्षि वास्मीकि रचित रामायणका अध्ययन करने पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि रामायण-वर्णित ऋक्ष-वानर आजकलके-से पशु बन्दर-रीढ़ कदापि नहीं थे। वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंके अधिकारी थे। विद्या, बुद्धि, ज्ञान, कला, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, राज्य, भोग, बल, चातुर्य, राजनीति आदि गुणोंमें किसी भी मानव-जातिसे कम नहीं थे। श्रीरामके प्रति भक्तवत् श्रीहनुमान्जीके ये वाक्य विख्यात ही हैं—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकम् ।

वस्तुतस्तु तदेवाहं इति मे निश्चिता मतिः ॥

'शरीर-दृष्टिसे मैं आपका दास हूँ, जीव-दृष्टिसे आपका अंश हूँ और वास्तवमें मेरे पूर्व आपके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, वह मेरा निश्चित मत है।' क्या पशु बन्दर-जातिका कोई प्राणी इसप्रकारके विचार कर सकता है या वाणी बोल सकता है? संक्षिप्तरूपसे वानर-ऋक्ष-जातिके कुछ गुणोंका विवर्णन कराया जाता है—

### विद्या

जब श्रीहनुमान्जी महाराज ऋष्यमूक-पर्वतसे उत्तरकर नापस-नेपमें भगवान् श्रीरामके समीप आकर अपने अर्थ-गम्भीर मधुर मनोहर शब्दोंसे रामको प्रसन्न कर लेते हैं तब श्रीराम—सर्वविद्यामिष्यात् राम—साक्षात् सखिदानन्दवन राम—अपने भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—'सौमित्रि! तुम सुग्रीवके मन्त्री हनुमान्से स्नेहयुक्त सम्भाषण करो, वह हनुमान् वाक्यके रहस्यको जाननेवाला चतुर और महाबली है। यह शत्रुओंका दमन करनेमें समर्थ है। इसके भाषणसे मालूम होता है इसने वेदोंका पूर्ण अभ्यास किया है क्योंकि ऋक्ष, यजु और सामवेदको न जाननेवाला कोई भी ऐसा उत्तम और स्पष्ट भाषण नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यह व्याकरणका भी पूरा पण्डित प्रतीत होता है, क्योंकि इतने लम्बे भाषणमें इसके मुँहसे न तो एक भी अशुद्ध शब्द निकला और न शब्दोंके उच्चारणमें कहीं इसके अङ्गोंमें ही कोई विकार आया।' (बा० रा० ४।४) हनुमान्जीका सीता और रावणसे जो वार्तालाप हुआ, उसमें भी उनके पूर्ण शिक्षित और वेदज्ञ होनेका पता चलता है। कहा

जाता है श्रीहनुमान्जी संगीत-कलामें भी बड़े निपुण थे। पुरुषोंकी तो बात ही क्या, वानर-स्त्रियाँ भी पूर्ण विदुषी थीं। बाळिके मरनेपर विज्ञाप करती हुई तारा श्रीरामसे भुक्ति-स्तुतिके प्रमाण देकर जीका पतिसे अनेक सिद्ध करती है। (बा० रा० ३।२४।३७-३८)

### धर्म ज्ञान

प्रायःचातक राम-वाक्यसे मरणासन्न बाळि जब श्रीरामको उलाहना देता है, तब श्रीराम धर्म-त्यागके कारण वधका औचित्य सिद्ध करते हुए कहते हैं—'हे बाळि! तू अपने निम्नित चरित्रके कारण विपरीतगामी हो गया है। तूने राजधर्मका त्याग कर दिया है, जो पुरुष अपनी पुत्री, बहिन, या छोटे भाईकी स्त्रीके साथ कामवास होकर व्यभिचार करता है वह वध करने योग्य ही है। मैंने महाराज भरतके धर्मशासनकी नीतिके अनुसार तुम्हें मारकर अच्छा ही किया है, अन्यथा तुम्हें अपने पापोंके लिये धर्मशास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता।' इसके बाद श्रीरामजी मनुस्मृतिके श्लोकोंका प्रमाण देने हैं। इससे यह सिद्ध है कि वानर-जातिके लोग धर्मशास्त्रसे परिचित थे और धर्म-पालनके लिये बाध्य थे, तथा धर्म-विरुद्ध कार्य करनेपर वृद्धके पात्र समके जाते थे। पशु-बन्दरोंके लिये श्रीराम कभी ऐसा नहीं कह सकते !

### धार्मिक-संस्कार ।

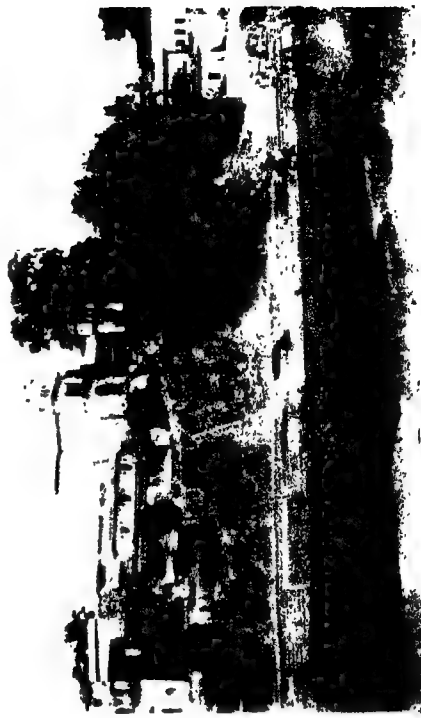
वानर-जातिमें सभी संस्कार वैदिक विधिके अनुसार होते थे। उदाहरणार्थ बाळिकी मृत्युके अनन्तर उसके और्ध्वदेहिक संस्कारका विवरण पढ़िये—

सुग्रीव और अंगद एक सुन्दर पाजकीपर बाळिके शवको रखकर रमरानमें ले जाते हैं, शवपर रजोंकी वर्षा की जा रही है, नदीके तीरपर शिविका उतारी जाती है, सूखे काठकी चिता बनाकर उसपर शव रक्खा जाता है, फिर शोकाकुल अंगद पिताकी चिताके अपसम्ब प्रक्षुब्ध करता है, तत्पश्चात् शास्त्र-विधिके अनुसार अग्नि-संस्कार किया जाता है। इसके अनन्तर वानर पवित्र नदीतटपर स्नान करते हैं और सुग्रीव तारा तथा अंगद बाळिको अलार्जि प्रदान करते हैं। क्या पशु बन्दरोंमें ऐसी क्रिया सम्भव है? और देखिये—

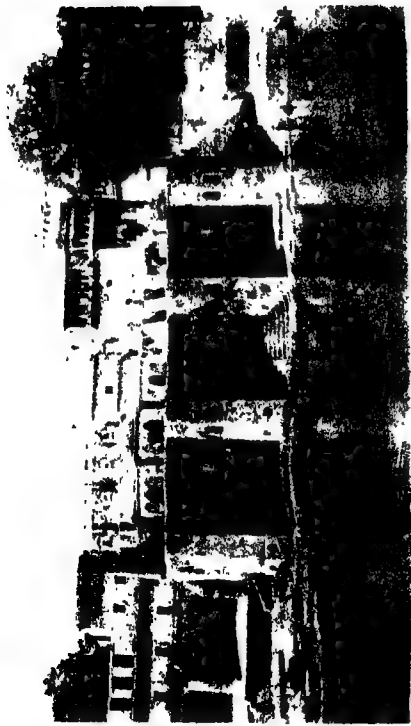
भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे सुग्रीव राज्याभिषेकके लिये किष्किन्धा-नगरीमें प्रवेश करता है, उस समयका वर्णन



( १ ) मन्नाडेर-मन्दिर ( राघव-प्रयाग )



( ३ ) राघव-प्रयाग (संगम) ( ४ ) पर्णकुटी नं० १



( २ ) मन्दाकिनी घाट





(५) पणकुटी में



(२) परिक्रमार्थे तुलसीदासजीका मन्दिर



(३) जानकी कुण्ड (४) तुलसीदासजीका मन्दिर रामगढ़के पास

है—सुग्रीवके राज्याभिषेकके लिये वानरोंने शीघ्रतासे ये वस्तुएँ भोग्यार्थी थीं, सुवर्णालङ्कृत रवेत ध्वज, सोनेके डोरीवाले दो चरै, सब प्रकारके रत्न, सकल प्रकारके बीज और औषधियाँ, सचौर वृक्षोंके प्ररोह, सुगन्धित पुष्प, सफेद कपड़े, रवेत चन्दन, सुगन्धयुक्त कमल, अनेक प्रकारके सुगन्धित-द्रव्य अक्षत, सुवर्ण, गेहूँ, मधु, घृत, दही, व्याघ्रचर्म, बहुमूल्य जूतेकी जोड़ी। इसके बाद राजाके शरीरमें लेपन करनेके लिये गोरोंधनादि सुगन्धित पदार्थोंको लेकर सोलह रूपसी कुमारिकाएँ आयीं। उत्तम आकर्योंको भोजन कराया गया और उन्हें रत्न तथा वस्त्र देकर प्रसन्न किया गया। फिर मन्त्रज्ञाता ऋत्विजोंने कुचटमें अग्निकी विधिबत् स्थापना कर हवन किया, तदनन्तर सुन्दर सुवर्ण-सिंहासनपर बैठकर चारों दिशाओंके तीर्थोंके तथा विविध समुद्रोंके निर्मल जलसे सुवर्णपात्रोंद्वारा सुग्रीवका अभिषेक किया गया। वहीं विधिपूर्वक अंगदको भी युवराज-पद दिया गया। ( बा० रा० ३१३६ ) क्या ऐसी विधि पशु-जन्तुओंमें कभी सम्भव है ?

### ऐश्वर्य-विलास

किष्किन्दा-नगरीकी अवस्थाका किञ्चित् वर्णन पढ़नेपर वानरोंके ऐश्वर्यका कुछ अनुमान लग जाता है। जिस समय सुग्रीवको चेतावनी देनेके लिये श्रीलक्ष्मणजी सुग्रीवकी नगरीमें गये, उस समय उन्होंने देखा—

अनेक रत्नोंसे छापी हुई उस दिव्य नगरीमें जगह-जगह पुण्डित वृक्ष लग रहे थे। ऊँची-ऊँची कुतोंवाले रत्नज्वित विशाल भवनोंसे नगरी सजाखच भरी थी, प्रत्येक घरके साथ बगीचा था, जिसमें फल-पुष्प-समन्वित वृक्ष लगे थे। विन्यासल और सुमेरु-जैसे ऊँचे ऊँचे महलोंसे नगरी शोभित हो रही थी। आगे चलकर श्रीलक्ष्मणजीने युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, विष्णुनाली, सूर्याक्ष, इन्द्रमान, सुबाहु, नल, नील, जाम्बवान् आदि अष्ट बुद्धिमान् वानरोंके रमणीय और सुन्दर महल देखे। ये सब महल सफेद बाइल-जैसे, सुगन्धित पदार्थों और पुष्पमाळाओंसे सजाये हुए, घन धान्यादि ऐश्वर्य और रमणी-रत्नोंसे सुशोभित थे। वानरराज सुग्रीवका राजमहल तो रवेत स्फटिक-भयिकी बड़ी-बड़ी शिलाओंका बना हुआ था, सामने दिव्य पुष्प फल और शीतल छायावाला बगीचा था, दिव्य पुष्प और सोनेके तोरनोंसे महल सजाया हुआ था। अत्यन्त बलवाले वानर राज चारख किये दरवाजेपर पहरा दे रहे थे! श्रीलक्ष्मणजीने

महलके अन्दर जाकर एकके बाद एक सात उद्योदियाँ पार कीं, वहाँ उन्होंने भूति-भूतिके रथ और विमान आदि सवारियाँ और बिछाने योग्य बहुमूल्य आसनोंका ढेर देखा। अन्तःपुरमें सोने और चाँदीके बहुत-से बड़े-बड़े पल्लोंपर अमूल्य बिछौने बिछे थे। अन्दर सुन्दर स्वरमें गाना-बजाना हो रहा था, अन्तःपुरमें सुन्दर आकृतिवाली उत्तम कुलमें उत्पन्न अनेक स्त्रियाँ थीं जो उत्तम वस्त्रामूषणोंसे सजी हुई सुगन्धित फूलोंके हार गूँथ रही थीं। इसके बाद उन्होंने सुग्रीवके उत्तम गहनों-कपड़ोंसे सजे हुए भगणित नौकरोंको अनेक प्रकारके कार्योंमें लगे देखा! ( बा० रा० ३१३३ ) इससे वानरोंके ऐश्वर्य और विद्यासका अन्दाजा लगाइये !

### कला-कौशल

वानर जाति कलाकौशलमें खूब बड़ी-बड़ी थी। विशेष प्रमाण न देकर दो एक प्रमाण ही दिये जाते हैं। देखिये—

वाजिका राज रमणाल के जानेके समय जिस पालकी-पर रक्खा गया था, उसका वर्णन इसप्रकार है—‘दिव्य रथ-जैसी पालकी अत्यन्त शोभायमान थी, उसके मध्यभागमें उत्तम भद्रासन बनाया हुआ था। चारों ओर अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्षोंके प्राकृतिक चित्र चित्रित थे। पालकीके अन्दर जानेके दरवाजे बहुत ही सुकरूप थे, हवाके जाने-आनेके लिये सुन्दर जाखियाँ रखी हुई थीं। निपुण शिल्पकारोंद्वारा निर्मित वह सुन्दर शिबिका बहुत ही बड़ी और मजबूत थी, देखनेमें देवताओंके विमान-जैसी थी। उसके अन्दर नानाप्रकारके काठके पहाड़ बनाये हुए थे। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत-सी कारीगरी की गयी थी। वह पालकी उत्तम सोनेके हारों, रंगविरंगे पुष्पों और जाल चन्दनसे सजायी हुई थी। शिबिकापर भूति-भूतिके सुगन्धित फूल बिखराये हुए थे और प्रभातकालीन सूर्य-सदृश कान्तिवाली कमलकी मालाओंसे वह शोभित हो रही थी। ( बा० रा० ३१३५ )

वह तो सुर्वेको उठानेकी पालकीका वर्णन है। अन्य वस्तुओंकी कारीगरीका भी इसीसे अनुमान कर लीजिये।

इसके अतिरिक्त नलकी अन्यक्षतामें वानरोंद्वारा समुद्रपर सौ भोजनमें विशाल पुख बनाना तो प्रसिद्ध ही है। वाल्मीकीय रामायणसे पता चलता है कि पुख बाँधनेमें वानरोंने यन्त्रों ( मशीनों ) द्वारा भी काम लिया था,

जिज्ञा है कि हाथी-जैसी बड़ी-बड़ी शिखाओं और पर्वत-शिखरोंको बानरलोग उपाधकर बन्धुद्वारा समुद्रतक जाते थे। सेतु कहीं बाँका टेढ़ा न हो जाय इसलिये बानरगण स्वसे नाप-नापकर पथर रखते थे। इसलिये कई बानर हाथोंमें डोरी बिये बंधे रहते थे + । इससे रामायणमें 'कसा-कौराख' का भी पता लगता है।

इसके अतिरिक्त, सुग्रीवका विशाल भौगोलिक ज्ञान उस समय प्रकट होता है जब वह सीताकी खोजमें जानेवाले बानरोंके सामने भूगोलका विस्तृत वर्णन करता है। स्वयं बानरोंकी शूरता और युद्ध-विपुलता तो प्रसिद्ध ही है। सुग्रीवकी राजनीति और रणनीति-पटुताका यही एक प्रमाण है कि श्रीरामने उसे अपना मंत्री और सेनापति बनाया था। भगवद्भक्ति और परमार्थज्ञानके विषयमें श्रीहनुमान् परम प्रसिद्ध हैं ही। जटायु जाम्बवान्की रणनीति, बुद्धिकुशलता, जिसने हनुमान्की बख्क करवा करवा था, सभीपर विदित है।

इन योगेमे उदाहरणोंसे पता लगता है कि रामायणके जटायु-बानर साधारण पशु रीख-बन्दर नहीं थे। वह कोई विशेष बुद्धि-सम्पन्न अनाथ मानव-जाति थी। जो आज नष्ट या कहीं रूपान्तरित हो गयी है। सम्भव है इनके पूर्व रही हो, क्योंकि रामायणमें पूर्वका वर्णन प्रायः मिलता है। पूर्वके द्वारा श्रीहनुमान्की कष्ट-दहन प्रसिद्ध है। वह भी हो सकता है कि वे हम समयकी अपनी जातिकी सम्बन्धोंके अनुसार कपड़ेकी पूर्व-सी बनाये रखने हों। कुछ मुसलमान-जातियोंमें और राजपूतानेमें बाळरथी, और कहीं-कहीं अब भी है, कि खियर! अपनी बोटीको उनकी आँटीसे गूँथकर इतनी छम्पी बना लेती थी जो पीठमें पैरोंक जटकती रहती थी। जयपुरके नागे पूर्व-सी बनाये रखते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ विशेष कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वेदाध्ययन, यज्ञ-याग, दान-पुण्य, ज्ञान-विज्ञान, ईश्वर-भक्ति, राज्य-सञ्चालन, गाथन-वादन, कसा-कौराख आदि कार्योंको करनेवाली जाति पशु-जाति नहीं हो सकती। सम्भव है इस मानव-

जातिका नाम 'बानर' रहा हो। बानर पशु भी होते हैं, इस-लिये लोग इन्हें पशु मानने लगे हों। वा यह भी हो सकता है कि इनके रूप-रङ्गमें बन्दर-जातिसे कुछ समानता पायी जाती हो, इनमेंसे कुछ लोगोंकी शक्लें बन्दरोंकी-सी भयावनी और कुरूप हों, यद्यपि इनके चेहरेपट सुन्दर होनेका भी उल्लेख मिलता है। श्रीरामकी सेवामें रहने-वाले बानर देवताओंकी सम्मान थे। इनकी उत्पत्तिके प्रकरणमें जिज्ञा है कि जिस देवताका जैसा रूप, वेश और बख्क या उसके अंशसे ही जैसे ही रूप, वेश और बख्कवाले पुत्र उत्पन्न हुए, तथापि कुछ लोग बसुरत होंगे, आज-कल भी तो मनुष्योंमें ऐसे बहुत-से भयावनी शक्लके व्यक्ति देखे जाते हैं जिनके चेहरेकी ओर देखते ही डर लगता है। बानरी खियोंके तो सुन्दरी होनेका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सम्भव है यह जाति कूदने-काँदने और वनमें रहनेवाली होनेके कारण कल-मूल लानेमें अभ्यस्त होनेसे बड़े-बड़े शहरोंके लोग मजाकसे इन्हें बन्दर कहने लगे हों, जैसे कुछ दिनों पहले कूद-काँदने निपुण पीतबर्ष जापानियोंको कसी जांग 'पीत-बन्दर' ( Yellow Monkeys ) कह-कर पुकारा करते थे। रुसी-भालू ( Russian Bear ) और ब्रिटिश-सिंह ( British Lion ) नाम आज भी प्रचलित हैं। भारतकी प्रसिद्धि जनता अफ़रेजोंको अब भी बन्दर कहती है। पर इन तीनोंमेंसे कोई भी जाति पशु नहीं है। राजपूतानेके अजरवालोंमें एक जातिको 'मूत' कहते हैं। इसीप्रकार इनके खिये भी सम्भव है। ऐसे ही 'जटायु' \* पर्वतपर निवास करनेके कारण, एक जाति जटायु कहाने लगी। जिसमें जाम्बवान् थे।

इस विवरणमें पाठक अनुमान कर सकेंगे कि रामायणमें वर्णित बानर-जटायु पशु नहीं थे। धन-धान्य और ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न मानव-जातिके ही लोग थे, जिनके रहन-सहन और आचार-विचारमें आंग-जानिसे कई बातोंमें अन्तर था और जिनके वर्णाकार भी आर्यजातिये पृथक् थे, जैसे आज भी चीनी और जापानियोंका कद छोटा और सुँह चिपटा होता है।

फिर ये जाम्बवान् जटायु-बानर तो सब देवताओंके अंश थे जो मन्त्रिदानम्बुधन भगवान् श्रीरामकी खोजमें सम्मिलित होनेके लिये अचलीय हुए थे। उनकी उत्पत्तिका संक्षिप्त विवरण जिनकर लेख सम्पाद करता हूँ।

\* हस्तिमात्रात्महाकायाः पाषाणाश्च महाबलाः ।

पर्वतश्च समुद्रादयः यन्त्रः परिवहन्ति च ।।

(वा०रा० ६ : २२ : ५९)

† सृष्टाण्यन्ये प्रगृह्णन्ति (वा०रा० ६ : २९ : ६९)

\* अन्ये जटायवतः प्रबानुपनभुः महाबलाः ।

(वा०रा० १ : १७ : ३९)



ब्रह्माजीके कहनेसे देवताओंने अप्सराओं, गन्धर्बियों, वसुकन्याओं, नागकन्याओं, अश्वकन्याओं, विद्याधरियों, किन्नरियों और वानरियोंके द्वारा सब प्रकारकी माया जानने-वाले, शूरवीर, वायु सद्य गतिवाले, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, पराक्रमी, शत्रुविजयी, साम-दानादि नीतिनिपुण, इदगरीरी, शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें पटु, साक्षात् देव-सद्य पुत्र उत्पन्न किये। ब्रह्माजीसे 'जाम्बवान्', इन्द्रसे 'बालि', सूर्यसे 'धुम्रीव', बृहस्पतिसे 'तार', कुबेरसे 'गन्धमादन', विरवकर्मासे 'नक्ष',

अग्निसे 'नील', अश्विनीकुमारोंसे 'मैत्र' और 'द्विचिद', वसुधसे 'सुषेध', पर्जन्यसे 'शरभ' और वायुसे 'हनूमान्' हुए, तथा अम्बाव्य देवताओं, महर्षियों, गरुडों, यक्षों, किम्पुल्लों, सिद्धों, विद्याधरों और नागोंने भी हजारों पुत्र उत्पन्न किये। देवोंके भाट-चारणोंने भी सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये। इन सबकी उत्पत्ति मुख्यतः अप्सरा, विद्याधरी और नागकन्याओंसे हुई। ( बा० रा० १।१७ )

—रामायण-प्रदी

## रामायण और महाभारत

### एक तुलना

( लेखक—डा० श्रीमङ्गलदेवजी शाली, एम० ए०, डी० फिल० )



रतीय संस्कृतिके इतिहासमें साहित्यिक दृष्टिसे 'इतिहास' और 'पुराण' का महत्त्व किसी दूसरे ग्रन्थसे कम नहीं है। इधर कुछ दिनोंसे अनेक पाश्चात्य विद्वानोंकी देखा-देखी तथा अन्य कारणोंसे 'इतिहास' और 'पुराण' कुछ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखे जाने लगे थे।

परन्तु यह प्रसन्नताकी बात है कि अब न केवल भारतीय किन्तु पाश्चात्य विद्वानोंके भी इन विचारोंमें परिवर्तन हो रहा है। अब वैदिक साहित्यकी तरह इनका आर भी विद्वानोंका ध्यान जाने लगा है। हमारे भारतवर्षमें तो अति प्राचीन कालसे ही इनका गौरव समझा जाता था। यहाँ तक कि इतिहासको 'पञ्चम वेद' माना जाता था— इतिहासः पञ्चमो वेदानां वेदः। कौटिल्यने अपने 'अर्थशास्त्र' में कहा है—'सामकृत्यजुर्वेदाम्बयम्बयी । अथर्ववेदेतिहासवेदी च वेदाः।' अर्थात् सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद यह त्रयी और अथर्ववेद तथा इतिहासवेद ये वेद हैं। प्राकृत्यग्रन्थोंमें अनेक जगह इतिहास और पुराणका बर्णन है। पातञ्जल-महाभाष्यमें

कहा है—'चत्वारो वेदाः... इतिहासः पुराणम्...'। चतुर्वेद विद्याओंमें भी 'पुराण' को गिनाया गया है। इसप्रकार भारतवर्षमें अप्रत्ययनाभ्यापनकी प्रत्येक प्रथाकीमें इतिहास और पुराणका समावेश था।

इतिहास और पुराणके साहित्यमें रामायण और महाभारतका—जिनका समावेश प्रायः इतिहासमें ही किया जाता है—स्थान बहुत ऊँचा है। इन दोनों ग्रन्थोंके आपेक्षिक निर्माणकालके विषयमें अनेक मत हैं। यहाँ हम उम्र भावमें न पड़कर इन दोनोंकी संक्षेपमें एक-दो दृष्टियोंसे तुलना करना चाहते हैं। साधारणतया यही समझा जाता है कि दोनों ग्रन्थ बिल्कुल एक ही प्रकार तथा कालिके हैं। परन्तु यहाँ हम इन दोनोंकी तुलनामें कुछ उन्हीं बातोंको दिखाना चाहते हैं जिनमें इन दोनोंका भेद है।

(१) रामायण और महाभारतमें एक मौलिक भेद, जिसकी ओर प्रायः बहुत कम ध्यान जाता है, यह है कि महाभारतको 'वैवात्मिकी संहिता' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, इसके पर्वोंके अन्तमें समाप्तिसूचक वाक्यमें यह लिखा

\* यह लेख तर्कका दृष्टिसे लिखा गया है। वास्तवमें क्या बात थी, सो भगवान् ही जानें। जब साक्षात् आहूतमान्जी महाराजका प्रेरणा और सहायतासे लिखित रामचरितमानसने आरामके साथ वानर-कक्षोंका बन्दर-भालु बतलाया है तब मुझ सरीखे सुदृष्ट प्राणीका कुछ भी लिखना श्रद्धा ही है, वास्तवमें भगवान्की शक्ति अनन्त और अतर्क्य है। बन्दर-भालु तो चेतन्य प्राणी है; वे चाहे तो जड़ वृक्ष-पाषाणोंकी जगहसे अधिक विद्वान्, कालसे भी अधिक बकराली, इन्द्रसे भी अधिक ऐश्वर्यसम्पन्न, बृहस्पतिसे भी अधिक बुद्धिमान् और विश्वकर्मासे भी अधिक कलाकुशल बना सकते हैं।—लेखक

रहता है—‘इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्रिकायां संहितायां वैयासिन्या .....’। परन्तु वाल्मीकीय रामायणके काव्योंके अन्तमें इसको ‘संहिता’ न कहकर केवल ‘वाल्मीकीय आदि-काव्य’ कहा है। यदि ध्यानसे विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इन दो शब्दोंमें सूत्ररूपसे दोनों ग्रन्थोंका सारा भेदभाव भर दिया है। ‘संहिता’ शब्दका अर्थ है ‘एकत्रीकृत’ अर्थात् इकट्ठा या संग्रह किया हुआ। प्रारम्भमें ‘संहिता’ शब्दका प्रयोग जिन-जिन ग्रन्थोंके लिये किया जाता था वे सब इसी प्रकारके थे कि उनको प्रायः साक्ष्यसे प्राग्भूतों सामग्रीसे ही संगृहीत किया गया था। उनकी स्वतन्त्र रचना नहीं की गयी थी। वैदिक संहिताओंके विषयमें यह बात प्रायः निर्विवाद रूपसे सब मानते हैं। वाल्मिकीय महाभारत भी ऐसी ही संहिता है। अर्थात् व्यासमुनि इसके बनानेवाले न होकर केवल संग्रहीता ही थे।

इसके विरुद्ध वाल्मीकीय रामायण ‘वाल्मीकीय आदि-काव्य’ है। अर्थात् वाल्मीकि मुनिने इस ग्रन्थकी रचना स्वयं स्वतन्त्ररूपसे की। क्या प्राचीन रही हो तो भी यह रचना वाल्मीकिजीकी ही है। इसप्रकार जहाँ रामायण एक व्यक्तिकी कृति है, वहाँ महाभारतके विषयमें ऐसी एकता नहीं है। इसी कारणसे जहाँ एक ओर रामायणमें भाव, भाषा तथा रचनाशैलीकी एकरूपता प्रायः समग्र ग्रन्थमें देख पड़ती है वहाँ महाभारतमें यह बात नहीं देखी जाती। नीचे यह भेद कुछ स्पष्ट हो जायगा।

(२) रामायण और महाभारतकी तुलना करनेसे प्रतीत होगा कि दोनोंकी भाषा और रचना-शैलीमें काफी अन्तर है। इसके साथ जहाँ प्रायः समग्र रामायणकी भाषा और रचना-शैलीपर एक व्यक्तिकी छाप प्रतीत होती है, वहाँ महाभारतके भिन्न-भिन्न अंशों और भागोंमें ही भाषा और रचनाशैलीका भेद स्पष्ट हो जाता है। इस भेदसे वहाँ प्रतीत होता है कि वे भिन्न-भिन्न अंश न तो एक व्यक्तिकी ही और न एक समयकी रचना हैं। वहाँ इसका विचार करनेका अवसर नहीं है। केवल दोनोंके अन्वयोंकी रचनाके भेदको ध्यानकर ही हम सम्योच कर लेंगे।

संस्कृत-भाषामें वैदिक और ऋषिक अन्वयोंका एक मुख्य भेद यह है कि वैदिक अन्वयोंमें प्रायः अक्षरोंकी संख्या ही नियत होती है। परन्तु उन सब अक्षरोंमें कौन गुण होगा और कौन व्यु, यह प्रायः नियत नहीं होता। एक ही वाक्यमें

केवल दो तीन अक्षरोंको जोड़कर दोष अक्षरोंको गुण वा व्यु करनेकी स्वतन्त्रता होती है। परन्तु ऋषिक संस्कृतके अन्वयोंमें मात्राअन्वयोंको जोड़कर यह बात नहीं है वहाँ पादके प्रत्येक अक्षरका गुण और व्यु नियत होता है। वेदोंके काव्यसे काव्यशास्त्रके समयतक आनेमें भिन्न-भिन्न ग्रन्थोंमें अन्वयविषय उपर्युक्त प्रवृत्तियोंका क्रमिक विकास देखा जाता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रथम प्रवृत्ति और पिछले ग्रन्थोंमें द्वितीय प्रवृत्ति देखी जाती है।

उपर्युक्त दृष्टिसे यदि हम रामायण और महाभारतके अन्वयोंकी तुलना करें तो रामायणके अन्वय काव्यशास्त्रके अन्वयोंके सट्टा प्रतीत होंगे और महाभारतमें अनेकानेक अन्वय उपनिषदोंकी तरहके मिलेंगे। द्वितीय प्रकारके अन्वय रामायणमें प्रायः बिल्कुल नहीं पाये जावेंगे। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। उनके पदमेसे ही दोनों प्रकारके अन्वयोंका भेद स्पष्ट हो जायगा। साथ ही उनके गुण और व्यु अक्षरोंका भी तथा उनके नियत होने या न होनेका भी विचार कर लेना चाहिये।

प्रथम रामायणको लीजिये। सुन्दरकाण्ड ४१। १—

न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते  
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।  
न मेरुसप्त्या बरुदार्पिता जनाः  
पराक्रमस्त्वेव ममेह शेषते ॥

सुन्दरकाण्ड ४०। १८—

स राजपुत्रया प्रतिवेदितार्यः  
कथिः कनार्यः परिदृष्टचेताः।  
तदरपेशं प्रसमीक्ष्य कामं  
दिशं क्षुदीची मनसा जगाम ॥

इन श्लोकोंके साथ महाभारतके निम्नलिखित श्लोकोंकी तुलना कीजिये। महापर्व १८। ४—

तं वै राजा मन्वृतिर्महात्मा  
अक्रातञ्जुर्दुर वधाम्बु।  
पूजापूर्वं प्रतिगृह्णाजमीदम्  
ततोऽपृच्छद्भृतराष्ट्रं मपुत्रम् ॥

आविर्ब १०। १—

यदाऽवसो नन्दने कामरूपी  
संयन्सराणामयुतं शतानाम्।  
किं कारणं कर्तुमुत्प्रधानं !  
हित्वा च त्वं वमुषामन्वपद्यः ॥

ये रसोक स्पष्टतया उपनिषदादिके ज्ञानोंसे मिलते-जुलते हैं। परन्तु नीचे लिखे रसोक महाभारतके ही होकर रामायणके जैसे ही हैं—

आदिपर्व १८६।२—

रूपेण वीर्येण कुलेन चैव  
शीलेन वित्तैः च बीजनेन।  
समिद्धदर्शो मदवेगमिन्ना  
मत्ता यथा हेमवता गजेन्द्राः ॥

आदिपर्व १८६।३२—

तथैव पार्थाः पृथुबाहवस्ते  
वीरौ यमौ चैव महानुभावौ।  
तां द्रौपदीं प्रियंवदां स्म सन्ने  
कन्दर्पनाणामिहता बभूवुः ॥

(३) रामायण और महाभारतमें क्या भारी भेद भावोंकी दृष्टिमें है। इस दृष्टिसे विचार करनेमें सबसे पहली बात जो मनमें आती है यह है कि जहाँ रामायण आदर्शकी दृष्टि (Idealistic point of view) से लिखी गयी है, वहाँ महाभारत वास्तविक घटनात्मक दृष्टि (Realistic point of view) से लिखी गयी प्रतीत होती है। इस भेदका कारण कुछ ही रहा हो, हमारा उससे यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। हमें यहाँ यही दिखाना है कि यह भेद दोनों ग्रन्थोंमें वर्तमान है। पहले रामायणको जीजिये। रामायणकी सारी कथामें उसके मुख्य पात्रोंका चरित्र आदर्शकी दृष्टिसे ही लिखा गया है। बाजि-वध जैसी एक दो घटनाओंको छोड़कर, जो कुछ-कुछ मनमें कटकती है, प्रायः सारे ग्रन्थमें यही प्रयत्न बराबर किया गया है कि उसके नायकके पक्षको सर्वथा निर्दोष दिखाना जावे और उसके विपक्षको सर्वथा सर्वोप।

महाभारतमें यह बात नहीं है। उसकी कथा ऐसी नहीं होती जैसी मानो किसी धर्मशास्त्रको सामने रखकर लिखी गयी हो। उसके कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंमें अच्छे और बुरे पात्र हैं, रामायणमें आर्जुनको आदर्श रखा है, तो महाभारतका सारा आधार आर्जुनपर है। द्रौपदीके पाँच पति, कुन्तीकी कौमार अवस्थामें कर्णकी उत्पत्ति, स्वयं युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र आदिकी नियोगसे उत्पत्ति, द्रोण, भीष्म और कर्णका अत्याचार या झुलसे बच,—इत्यादि अनेकानेक

बातें हमारी दृष्टिकी पुष्टि करती हैं। द्रौपदीके वीरहरणकी ही बात जीजिये। भीष्म, द्रोण-जैसे वीर और धर्मात्मा एक लीके प्रति मरी सभामें किये गये घोर अपमानको सुपचाप सह लेते हैं। शाबद बाणकणका एक साधारण सत्पात्रही भी ऐसा नहीं कर सकता। वह अपने बीबड़-दानसे भी एक लीकी रक्षा करेगा।

इस भेदके मूलमें भी वास्तवमें उपर्युक्त पहला भेद ही है। रामायण वास्तवमें राम-अवतार है। वह एक व्यक्तिके ही गुणगान करनेके लिये लिखी गयी है। रामको जो बचर इसके और पात्रोंमें उतनी सजीवता तथा व्यक्तिगत रोचकता नहीं है। और तो और, रामायण-जैसे विशिष्ट पात्रके विषयमें ही अधिक सजीवता नहीं दिखवायी गयी। उनके जीवनकी घटनाएँ, उनका व्यक्तिगत जीवन सब कुछ अन्वयकारमें छिपा है। उर्मिला-जैसी की-रल या सुमित्रा-जैसी माता मानों कभी मुझसे बोलती ही नहीं।

इसके विपरीत महाभारत किसी एक व्यक्तिकी गुणगाथा नहीं है। उसमें वह कहना भी मुश्किल हो जाता है कि उसका सर्वप्रधान पात्र कौन है। उसके अनेकानेक पात्र, भीष्म, कुन्ती, गान्धारी, व्यास, कृष्ण, युधिष्ठिर, दुर्योधन, कर्ण आदि बिल्कुल सजीव मालूम होते हैं। हम उनके जीवनकी घटनाओंके साथ-साथ उनके मनके भावोंको भी स्थान-स्थानपर प्रत्यक्ष देखते हैं। वहाँतक कि उन सबका पृथक् पृथक् जीवनचरित लिखा जा सकता है।

(४) रामायण और महाभारतमें एक भेद यह भी है। संस्कृतके प्राचीन ग्रन्थोंमें महाभारतके पात्रोंका जितना उल्लेख मिलता है उतना रामायणके पात्रोंका नहीं। वैदिक-संहिताओं तथा ब्राह्मणोंतकमें विचित्रवीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र या परीक्षितके पुत्र जनमेजय आदिका बर्णन मिलता है। रामायणके विशिष्ट पात्रोंका उल्लेख ऐसे प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। पाणिनीकी अष्टाध्यायीकी ही जीजिये; उसमें बासुदेव, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि महाभारतीय नामोंका तो उल्लेख है, पर रामायणीय पात्रका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि समयके गुजरनेके साथ-साथ महाभारतके मुकामसे भी रामायणका भाग्य जागता

गया। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं रामायणका प्रभाव तथा प्रचार बढ़ता हुआ दीखता है और महाभारतका घटता हुआ।

जहाँ प्राचीन समयमें वैष्णव-धर्ममें कृष्णका प्राधान्य दिखलायी देता है वहीं पिछले समयमें रामका। पिछले

समयमें संस्कृत नाटक आदि जितने महाभारतीय कथानकों-को लेकर लिखे गये उससे कहीं अधिक रामायणके आधार-पर। आजकल भी जितना प्रचार तुलसी-रामायणका है उतना सूरसागरका नहीं। शायद वहाँ भी इस मेवका कारण वही है कि रामायण आधारवादीको लेकर लिखी गयी है।

## रामायणकी प्राचीनता



अकल कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि रामायणकी रचना महाभारतके बादकी है, यद्यपि निरपेक्षतापूर्वक ग्रन्थोंका अध्ययन करनेपर इस मान्यतामें इठके अनिश्चित अन्य कोई भी आधार नहीं उभरता। जिसप्रकार भगवान् रामका काल कौरव-कालमें जालों बंध पड़ेका है उसी प्रकार रामायणकी रचना भी है। रामायणमें जिस अर्थादापूर्ण सरसमयी सत्यताका वर्णन है, महाभारतमें वैसा नहीं है, इसीसे पता लगना है कि रामायण-कालसे महाभारत-कालकी सम्बन्धताका आदर्श बहुत नीचा था। गुरुकुल कांगड़ीके प्रसिद्ध अध्ययनशील श्रियुक्त रामदेवजीने लिखा है—“धर्ममय एवं आत्मिक तथा प्राकृतिक सब प्रकारकी उन्नतियोंसे परिपूर्ण रामायणके संक्षिप्त इतिहासको वर्णनकर तथा उसके पीछेके एक श्रीवंशकाजके इतिहासको जोड़कर शोकमय इन्द्रके साथ महाभारतके समयका व्यक्तिज्ञ इतिहास लिखना पड़ता है। श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र आधारथके प्रतिकूल युधिष्ठिरके जूझा खेतने आदि कर्मोंका, जन्ममय भरतादिके आनन्द-स्नेहके प्रतिकूल युधिष्ठिरके प्रति भीमके अपमानसूचक शब्दोंका, महाराज वशरथको प्रजाके सम्मुख सीताको कैकेयीद्वारा तपस्विनीके वस्त्र देनेपर प्रजाका एक साथ चिह्ना उठना ‘चिक्त्वा दग्धायमः’ तथा हताराइकी राजसभामें द्रौपदीकी दुर्दशा होनेपर भी भीष्म, द्रोणादि वीरोंका कुछ भी न कर सकना, कुटिला वासी मन्थराका भी अपमान भरतके जिह्वे अमल और महारानी द्रौपदीकी दुर्दशामें दुर्योधन-कन्यादिकी प्रसन्नता, सभी साध्वी सीताका पातिव्रत और श्रीरामचन्द्रजीका पक्षीव्रत, उसके प्रतिकूल सत्यवती और कुन्तीके कानीन पुत्रोंकी उत्पत्ति और पाण्डववादि-

के बहुविधा, श्रीरामचन्द्रजीके वनकी ओर चलेनेपर अयोध्यावासियोंका उनके साथ वनगमनके जिवे प्रयत्न और युधिष्ठिरके दो बार हस्तिनापुरसे निकाले जानेपर सिवा थोड़ेसे नगर-निवासियोंके पाण्डवोंके दुःखके साथ कुल्लम-सुझा दुःख प्रकट करनेमें ग्रन्थोंका कौरवोंके भयसे मौनावलम्बन, श्रीराम और भरतका महान् राज्य-जैसे पदार्थको धर्मशास्त्रनके सम्मुख तुच्छ समझना और उसे एकका दूसरेके हाथमें देना और दुर्योधनका यह कहना कि ‘मृच्यग्रैव दस्यमि विनः’ बुद्धिहीन केराव’ बुद्धिहीनमें राजाके बाध हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीका यह कहना कि पाण्डवका बध करना धर्मविरुद्ध है और राजा छोड़े हुए भीष्म और द्रोणका बध, रथसे उतरें हुए कर्णका बध, मोने हुए धृष्टद्युम्न, शिशुकी और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका प्राणशकुनोपपन्न वीरनाभिमाना अश्रुधामाद्वारा बध। कहीं-तक गिनायें। यह सब घटनाएँ हैं जो स्वरूपसे रामायण और महाभारतके समयकी अवस्थाओंको प्रकट करती हैं। यद्यपि महाभारतके समय रामायणके समयकी भीति ही जयवा उससे भी अधिक आयातर्जनमें मग्नति भरी हुई थी और रामायणके समयके वीरोंकी भीति भीष्म, द्रोण, अर्जुनादि कतिपय बड़े बाबूत्याग, पाण्डुरता, वाक्याग, अन्तर्धाना, मन्त्रादि आमेवालोंकी बिधा भी जानते थे, अचतरी नाम अग्नि-बान जलपर चलता था, आयातर्जनका बबूबा सारी पृथ्वीपर जमा हुआ था; परन्तु रामायणके समयकी अपेक्षा इस समय धर्मका बहुत हास था।.....”

इस अवतारकसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामका और रामायणका काल बहुत ही प्राचीन, शिक्षाप्रद तथा गौरवमय है।

एक रामायण-प्रेमी

## मानसकी महत्ता

( के० विद्यार्थी श्रीमहेशप्रसादजी मिश्र 'रसिकता' )

धर वीरता औरकी कायरताकी कलोलिनी माँहि बहा चुके थे ।  
करिके करतव्य-पिताकर दाह अर्घोंकी नदीमें नहा चुके थे ॥  
न रच्यो हुतो 'मानस' जी 'तुलसी' तौ ही पापने धर्म गहा चुके थे ।  
कुलकी मरजाद मिटा चुके थे अरु कूर कपूत कहा चुके थे ॥१॥  
हरि-भक्ति-पयोनिधि भक्तनमण्डली कैसेके आजुलौं ह्यौ बहती ।  
रहती उफनानी सुभायपकी सरि कैसेके लोकनमें महनी ॥  
पति-प्रेमकी माधवी-मञ्जु-लता केहिपै कहाँ आस्रयकौ लहती ।  
न भयो हुतो जी 'तुलसी' तौ कहा 'हुलसी' हुलसी-हुलसी रहनी ॥२॥  
तुम सृकिबेने सुबचाय लियो छुति-सास्त्र-सरोरुहके बनकौ ।  
तुम कालके गालते वारि लियो ध्रुव-धर्मके कर्मके मीननकौ ॥  
इतने उतने चुनि 'मानस' में तुम राम चरित्र-कनूकन कौ ।  
'तुलसी' तुम भाँकरी नैयामें आइबो दीनी नहीं जलकौ-तनकौ ॥३॥  
जब आर्यताकी तरनी कौ चह्यौ जु अनार्यता-अम्बुधि लीलबेकौ ।  
हरिकी हरिता कौ रहीम-रहीमता चाह्यो पतालमें कीलिबेकौ ॥  
कलमाकी भुजंगिनि ओऽम-जरा पर चाह्यो गरल उगीलिबेकौ ।  
रच्यो ता छनमें 'तुलसी' तुमने यह 'चक्र' मिचिलिबे-खीलबेकौ ॥४॥  
चहकाय दियो 'तुलसी' तुमने चिरी-आतमाकी-तपनारतकी ।  
उफनाय दियो 'तुलसी' तुमने रसकी नदी घोर-तृषारतकी ॥  
विकसाय दियो 'तुलसी' तुमने उरकी कलिका इस-आरतकी ।  
पनपाय दियो 'तुलसी' तुमने सुचि-सभ्यता-बहुरी भारतकी ॥५॥  
कुडुकाय दियो रमनीयताकी पिक्की 'मानस'की सुरभीर्मह प्यारी ।  
प्रगटायके 'मानस'की नमसी उमड़ाय दियो रस निर्भरी-न्यारी ॥  
निज 'मानस' की रवि-रस्मिन ते विगसाय दियो भली-भाव कियारी ।  
करि 'मानस' की सुभा-वृष्टि-धनी लहराय दियो कविता-कुलवारी ॥६॥  
लहि 'सूर'की ओष-अनोखी कियो स्वविकास-प्रकासकी 'चन्द' नै न्यारे ।  
उननै निज जोतिकी जालिनते बगरायो हजारन ह्यौपै 'सितारे' ॥  
'पटबीजन'-जीगनोंकी न रही गनना तिनते जो भयो अधिकारे ।  
पर धन्य ही 'मानस' के 'तुलसी' तुम 'सूर' की आँखिकौ खोलनिहारे ॥७॥  
कियो घोर मरुस्थलमें 'तुलसी' तुम मन्दन-कानन केर विकास ।  
कियो घोर प्रलंकी विभावरीमें 'तुलसी' तुम पुनोकी चन्द-प्रकास ॥  
कियो बिंध्यकी छासीपै तू 'तुलसी' निज मानसकेर अनोखी मिठास ।  
कियो सागर गागरमें 'तुलसी' कियो राममें रावनकेर उजास ॥८॥  
'बलमीकि' नै बीज बयो जेहिकौ तेहिमें कियो अंकुर 'कालियदास' ।  
'भवभूति' विभूति-मई करिके कवि 'सूर' कौं सौं पि चलयो हरि-पास ॥  
उननै तेहि सौंचि कियो दल-भूषित पणित पुष्पनते अनयास ।  
कविताकी लताकौ प्रफुल्ल कियो 'तुलसी' तुमने ही जु परो विकास ॥९॥

# वाल्मीकीय रामायणसे अवतारवादकी सिद्धि

( ७२ उद्धरण और २४० श्लोक )

( लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीरघुवर मिट्टूभाषजी शास्त्री, काव्य-वेदान्त-शीर्ष, शास्त्री, एम० ए०, एम० ए० एल० )

नमोऽस्तु रामाय सत्कर्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।

नमोऽस्तु क्लृप्तेन्द्रियमानहेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणभ्यः ॥

( सुन्दरकाण्ड सर्ग १२ श्लोक ६७ )

जिन लोगोंने आदिक्वि भीवाल्मीकिकृत रामायणको नहीं पढ़ा है उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनकी बुद्धिमें यह बात बैठा दी गयी है कि वाल्मीकिजी न तो श्रीरामचन्द्रजी-को विष्णुका अवतार मानते हैं और न अवतार-वादके अनुयायी ही हैं। ऐसे भूले-भटके लोगोंके हितार्थ तथा श्रीमद् वाल्मीकि-मुनि-प्रणीत श्रीरघुवरचरितमें श्रीरामावतारके भक्तोंकी अन्दाके संरक्षार्थ, एवं तद्द्वारा स्वकीय अन्तःकरणकी शुद्धिके प्रयोजनसे यह लेख लिखा जाता है। इसमें यह सिद्ध किया जावेगा कि बा० रामायणके रचयिताने अवतारवादको अत्यन्त स्पष्टरूपसे माना है और उनकी दृष्टिमें राम सावान् विष्णुके अवतार ही थे।

अवतारवादका सिद्धान्त श्रीकृष्णभगवान्के निम्नोक्त गीतोक्त वचनोंपर निर्भर है—

यदा यदा हि धर्मस्य स्तान्निर्मवति भारत ।

अनृत्यानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं मृत्रामहन् ॥

परित्राणाय मातृनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवानि युगे युगे ॥

( श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४ श्लोक ७-८ )

—कि 'जब-जब प्राणियोंके अन्याय और निःशेयस्के साधक वर्णाश्रमादिरूप धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है तब-तब मैं मायाद्वारा अपने आपको उत्पन्न करता हूँ और सम्मार्गमें स्थित जनोंके परिरक्षण तथा पापकारियोंके उन्मूलन एवं धर्मके सम्बन्ध स्थापनके प्रयोजनोंसे मैं प्रत्येक युगमें प्रकट होता हूँ ।'

हम सिद्धान्तके अनुसार आर्यजाति प्रचीनकालसे यह मानती चली आ रही है कि कर्मात्मा परिपालन करनेवाले सत्पुरुषात्मक विष्णु भगवान् आधुनी सम्पत्तिका उद्घोष और वैसी सम्पत्तिका प्रसार करनेके लिये तत्पुरुष समक्ष उपस्थित

होनेपर स्वयं तत्पुरुषका शरीरद्वारा अवतार लेते हैं। ऐसे अवतारोंकी संख्या दश वा, चौबीस वा असंख्य मानी गयी है।

प्रस्तुत लेखमें वामन, कल्कि (कमठ), वराह, कपिल इत्यादि अवतारोंका स्पष्ट उल्लेख बा० रामायणके श्लोकों-द्वारा करके श्रीरामावतारका विशिष्ट वर्णन करनेवाले श्लोकोंका संग्रह किया जावेगा।

धिविध अवतारोंका प्रासङ्गिक वर्णन

(१) वामनावतार—

अथ विष्णुर्महत्तेजा अदित्या समन्वायत ।

वामन रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमन् ॥२५॥

त्रीन् पदानथ भिक्षित्वा त्रिगृह्य च त्रिदिनीम् ।

अत्रमथ लोकाँह्लोकप्रमा मर्त्यैः कर्हिने रतः ॥२६॥

महेन्द्राय पुनः प्रादास्त्रियम् बर्हिमोजम ।

त्रैलोक्यं स महतेजोऽन्ते शक्यवशं पुनः ॥२७॥

तेनैव पूर्वमाकान्त आश्रमः भ्रमनाशनः ।

मयापि भक्त्या तस्मैव वामनम्योपमुच्यते ॥२८॥

( बालकाण्ड सर्ग २५ )

[ ताटकावध और मिथिलागमनकी कथाओंके मध्यमें सिद्धाधमवर्षान की कथा है जिसमें विश्वामित्रजी रामजीसे कहते हैं कि ] तब (अर्थात् देवकार्यमें नियुक्त होनेके पश्चात्) महातेजस्वी विष्णु अदितिमें उत्पन्न हुए और वामनरूप धारण करके विरोचन-पुत्र (बलि)के पास आये ॥२५॥ तत्पश्चात् तीन पद्म (पृथिवी) माँगकर और [ममस्त] पृथिवीको प्रतिग्रह (दान) रूपसे प्राप्त करके, [उन तीन पद्योंमें सब] लोकोंको आक्रान्त करके, सब लोकोंके हितमें रमण करनेवाले लोकेश्वर महातेजस्वी [वामनरूपधारी विष्णुभगवान्] ने [अपने] वक्षसे बलिका नियमन (बन्धन) करके, महेन्द्रको पुनः दे दाला, (एवं) त्रैलोक्यको पुनर्बार इन्द्रके चरणों पर दिया ॥२६-२७॥ उन्हीं (वामनभगवान्) से [यह] धर्मको दूर करनेवाला आश्रम पहले आक्रान्त (अधिष्ठित) था। उन्हीं वामनके भक्तिसे मैं भी (इन्द्रका) [उपभोग] करता हूँ ॥२८॥



( १ ) फटिक-शिला ( २ ) जानकी कुण्ड (मन्दाकिनीका दृश्य)



( ३ ) फटिक-शिलाके सामनेका दृश्य ( ४ ) कामतानाथ



( १ ) चरण विह ( परिक्रमार्थ ) ( २ ) राम-शाय्या के ऊपर बना हुआ मन्दिर

( ३ ) राम-शाय्या ( ४ ) मरत कूप



वामनावतारका बर्णन वा० रामायणके अने स्थलोंमें भी मिलता है। यथा—

१—बालकाण्ड सर्ग २६—

इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः ।  
वर्षाणि सुबह्वृणीह तथा युगशतानि च ॥२॥  
तपश्चरणयोगाभिमुखा सुमहात्मनाः ।  
एष पूर्वाश्रमे राम वामनस्य महात्मनः ॥३॥  
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महात्माः ।  
पतीस्मिन्नेव काले नु राजा वैरोचनिर्बलिः ॥४॥  
निर्जित्य दैवतगणान् सेन्द्रान् सहमरुदगणान् ।  
कारवासात् तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥५॥  
यज्ञं चकार सुमहानसुरेन्द्रो महाबलः ।  
बलस्तु यज्ञमानस्य देवाः साग्न्यपुरोगमाः ।  
समागम्य स्वयं चैव विष्णुमूर्चुरिहाश्रमे ॥६॥  
वर्निर्वैराचनिर्विण्णो यज्ञते यशमुत्तमम् ।  
असमाप्तव्रते तस्मिन् स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥७॥  
ये चैनमभिवर्तन्ते याचिता इतस्ततः ।  
यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति ॥८॥  
स त्वं मुग्धितार्थाय मागायोगमुपाश्रितः ।  
वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कन्वाणमुत्तमम् ॥९॥

ये श्लोक पुर्बोद्धृत श्लोकोंके ऊपर उसी सर्गमें वामनावतारकी आचरणकता और अवतारका विशद बर्णन करते हैं। इनके आगे (श्लोक १०-१८) विष्णु भगवान् किस प्रकारसे करवप और अवितिके पुत्ररूपसे इन्द्रके छोटे भाई बनकर वामनके रूपमें उत्पन्न हुए इसका बर्णन है। तदनन्तर श्लोक १९-२२ की कथा है जो अर्धसमेत ऊपर दी जा चुकी है। पुनः—

- २—प्राप्त्यसंख्ये महाप्राज्ञ मैयिकी जनकामत्राम् ।  
यथा विष्णुर्महाबाहुर्बलिं वद्ध्वा महीमिमाम् ॥३॥१२४॥
- ३—जानामि वारुणलोकान् विष्णोमैविक्रमानपि ।  
देवासुरविमर्दाश्च ह्यमृतस्य विमन्यनम् ॥४॥१२५॥
- ४—मया वैरोचने यज्ञं प्रभविष्णुः सनातनः ।  
प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणश्चिक्रमः ॥५॥१२६॥
- ५—विषण्णा हरयः सर्वे हनुमन् किमुपेक्षसे ।  
विक्रमस्व महाबाहो विष्णुस्त्रीन् विक्रमानिव ॥६॥१२७॥
- ६—प्रहृष्टा विस्मिताश्चापि ते वीक्षन्ते समन्ततः ।  
त्रिविक्रमं कृतोत्साहं नारायणमिव प्रजाः ॥७॥१२८॥

- ७—मविष्यति हि मे रूपं ह्रवमानस्य सागरम् ।  
विष्णोः प्रक्रममाणस्य तदा त्रान् विक्रमानिव ॥८॥१२९॥
- ८—तद्रूपमतिस्तिष्ठिष्य हनुमान् प्रकृतौ स्थितः ।  
त्रीन् क्रमानिव विक्रम्य बलिर्वीर्यहरो हरिः ॥९॥१३०॥
- ९—अपेक्ष्यति मां मर्ता त्वतः शीघ्रमग्निरमः ।  
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिमिरिव क्रमः ॥१०॥१३१॥
- १०—विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशः ।  
सत्यवादी मधुरबाणदेवो वाचस्पतिर्यथा ॥११॥१३२॥
- ११—तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ।  
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं यथा ॥१२॥१३३॥
- १२—त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्त्वेर्विक्रमैस्त्रिभिः ।  
महन्द्रश्च कृतो राजा बलिं वद्ध्वा मुदारुणम् ॥१३॥१३४॥

(२)—कपिलावतार [ बालकाण्ड सर्ग ४० ]

यस्त्वं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः ।  
महिषी माधवस्वैया स एव भगवान् प्रभुः ॥१॥  
कपिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिश धराम् ।  
तस्व कोपमिनना दग्धा मविष्यन्ति नृपाः मजाः ॥२॥  
ते तु सर्वे महात्मानो भीमबलाः महाबलाः ।  
ददशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ॥३॥

धृत्वा तद्वचनं तेषां कपिलो रघुनन्दन ।  
रोषेण महताविष्टो हुंकारमकरोत्तदा ॥४॥  
ततस्तेनाऽग्रमेयेण कपिलेन महात्मना ।  
मस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगरात्मजाः ॥५॥

[वितामह देवताओंसे मविष्यत् कथा कहते हैं कि] जिन भीमान् वासुदेव माधव (अर्थात् सर्वव्यापक और अक्षणीय विष्णु भगवान्) की यह समस्त वसुधारा (पृथिवी) महिषी (रानी) है वे ही प्रभु (सर्वशक्तिमान्) भगवान्, कपिलका रूप धारण करके नित्य [अपने स्वाभाविक योगबलसे] पृथिवीको धारण करते हैं। उनके क्रोधावस्थसे राजा (सगर) के पुत्र भस्म हो जावेंगे ॥ २-३ ॥

[विश्वामित्र श्रीरामजीसे कहते हैं कि] उन सब महा-शरीरधारी, अमानक वेगवाले, महाबली, राजपुत्रोंने वहाँ [जाकर] कपिल [रूपधारी] सनातन वासुदेव (अर्थात् विष्णु भगवान्) को देखा ॥ २५ ॥

वे ककुत्स्थवंशोजब रघुनन्दन (राम), तब उन [सगर-पुत्रों]का वह वचन सुनकर कपिलने बड़े क्रोधके आवेशमें

आकर 'हुँ' कार (शब्द) किया। तब उन अग्रमेघ (अर्थात् मन, वाणी इत्यादि इन्द्रियोंसे परे एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अविषय) कपिल महात्मा (अर्थात् परमात्मा) के द्वारा सभी सगरसुत राजके डेर (अर्थात् भस्म) कर दिये गये ॥ २६-३० ॥

३—कमठ (कच्छपा)वतार[बालकाण्ड सर्ग ४५]

[विश्वामित्र मुनि रामजीसे गङ्गावतरण और सागरपूरण की कथा कहकर गङ्गा पार करके उत्तरतीरस्थित विशाला-नगरीके राजवंशके सम्बन्धमें पूर्व-वृत्तान्त बर्णन करते हैं]—

पूर्व कृतपुगे राम दितेः पुत्राः महाबलाः ।

अदितेश्च महाभागा दीर्यवन्तः सुवार्मिकाः ॥१५॥

ततस्तेषां नरव्याघ्र बुद्धिरासीन्महात्मनाम् ।

अमरा विजराक्षिव कथं स्यामां निरामयाः ॥१६॥

पहले कृत (सत्य) युगमें महाबली देवों और परम धार्मिक देवताओंने सोचा कि हम किस प्रकारसे जरा-भरख-रहित हों ॥१५-१६॥

तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद्विपश्चिताम् ।

ध्रीगेदमथनं कृत्वा रस प्राप्स्याम तत्र वै ॥१७॥

ततो निश्चित्य मयनं योक्त्रं कृत्वा च बासुकिम् ।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्धुरमितौजसः ॥१८॥

उन्होंने विचारते हुए यह मत स्थिर किया कि हम समुद्र मयकर उसमें [से] रसको प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ तब [समुद्रके] मयनेका निश्चय करके, और बासुकि (नाग) की मन्थनरज्जु (जिसे भाषामें देहिरा वा गेल्ला कहते हैं) एवं मन्दर (पर्वत) को मथानी बनाकर उन अपरिमित बलवालोंने [समुद्रको] मथा ॥१८॥

[तब बासुकि सर्पके शिर महाविष्णुको डगलाने लगे, जिससे सब जगत् द्रव्य होने लगा। तब तो देवताओं शंकर महादेवजीके पास शरयकी इच्छासे जाकर 'त्राहि-त्राहि' पुकारे और स्तुति करने लगे। देवताओंकी स्तुतिको सुनकर देवदेवेश्वर प्रभु (महादेवजी) प्रकट हो गये तब शङ्ख-पाङ्क-धर हरि (विष्णु भगवान्)ने शूङ्गधारी कृष्णने मुस्कराकर कहा कि देवताओंके मयनेपर जो बस्तु पहले प्राप्त हुई वह हे सुरभेड, आपका [भाग] है, अतः आप इस विष्णुको अग्रपूजार्हपने ग्रहण करें। यह कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और शिवजीने देवताओंका भय देखकर

और शङ्कित भगवान्का वाक्य सुनकर घोर हाहाहल विष्णुको असुतके समान ग्रहण किया। देवताओंको छोड़कर शिवजी भी चलाते बने। देवासुरोंने फिर मथना प्रारम्भ किया। तब तो मथानीरूप मन्दराक्षस पातालमें प्रविष्ट हो गया अतः देवोंने गन्धर्वों समेत पर्वतके उद्धरणके लिये मञ्जुसूदन (भगवान् विष्णु) की स्तुति की। (१९-२६) ]

इति श्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रूपमास्थितः ॥२७॥

पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिदयं तत्रोदधौ हरिः ।

पर्वताग्रं तु लोकतामा हस्तेनाक्रम्य केशवः ॥२८॥

देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः ॥२९॥

बह [स्तुति] सुनकर हृषीकेश हरि (विष्णु भगवान्) ने कच्छपका रूप धारण किया और पर्वतको पीठपर करके वहाँ समुद्रमें राखन किया। फिर पर्वतके अग्रभागको जोकात्मा पुरुषोत्तम केशवने हाथसे धामकर देवोंके मध्यमें स्थित होकर मथना प्रारम्भ किया ॥२७-२९॥ सहज वर्षोंके पश्चात् [इस समुद्रमन्थनसे] धन्वन्तरि (वैद्य) ६० करोड़ अप्सराएँ और उनकी असंख्य परिचायिकाएँ, बल्लकीकन्या (सुरा), उर्ध्वःअवाः नामक हव, कौस्तुभ रत्न और असुत निकले (३१-३६) ॥

(४)—विष्णुका 'मोहिनी' (मायातनु) का धारण करना—

[बालकाण्ड सर्ग ४५—(कोक ४०-४१) इस असुतके लिये देवोंने देवताओंसे त्रिलोकीकी कैपानेवाला महाघोर युद्ध किया। सभी असुर राजसोंसे मिलकर एक (घोर) हो गये। ]

यदा ध्रुवं गते मदे तदा विष्णुमहाबलः ।

अमृतं सोऽहरत् नृणं मायामास्थाय मोहिनीम् ॥४२॥

ये गतामिमुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम् ।

संपिष्टास्ते तदा युद्धे विष्णुना प्रमविष्णुना ॥४३॥

जब सब कुछ क्षयको प्राप्त हो गया तब वे महाबलवान् विष्णु (भगवान्) मोहिनी (अर्थात् काम और मोहको उत्पन्न करनेवाली) माया [के शरीर]को धारण करके शीघ्र ही उस असुतको ले गये ॥४२॥ जो कोई [सुर वा असुर] अविचारशील पुरुषोत्तम विष्णुके सामने [असुतग्रहणकी इच्छासे] गये वे सब महासामर्थ्यवान् विष्णुके द्वारा युद्धमें पीस डाले गये ॥४३॥

[देवताओंने दैत्योंको डुरी मार मारा । इसप्रकारसे  
इन्द्र, दैत्योंका नाश करके, राज्य पाकर सुखित हो, अवि-  
चार्यों समेत लोकोंका शासन करने लगे (४४-४६) ]

५—परशुरामावतार [बालकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक  
१६-२४]—रामावतारके प्रसङ्गमें देखिये ।

६—वराहावतार [अयोध्याकाण्ड सर्ग ११०]—

स बराहस्ततो भूत्वा प्रोजहार वसुधराम् ॥ ३ ॥

तब उस [त्रिमूर्ति विराट्के विष्ण्वामक अंश] ने वराह  
होकर वसुधरा (पृथिवी) का उद्धार किया ॥ ३ ॥  
[अरण्य ० ३१।२४ श्रीरामावतारके प्रसङ्गमें एवं युद्धकाण्ड  
११७।१३ आर्यस्तवमें देखिये ।]

७—कृष्णावतार [बाल० ४०।२, अरण्य०  
३१।२३]—कपिल और रामके अवतारोंके प्रसङ्गमें  
तथा युद्धकाण्ड ११७।१५] आर्यस्तवमें देखिये ।

८—विष्णुका हयग्रीव-हनन—

तत्र पञ्चजनं हत्वा हयग्रीवं च दानवम् ।

आजहार ततश्चक्रं शङ्खं च पुरुषोत्तमः ॥ (४।४२।२६)

वहाँ [अर्थात् उस चक्रवान् नामक पर्वतमें] पञ्चजन  
और हयग्रीव दानवको मारकर पुरुषोत्तम (विष्णु भगवान्)  
ने वहाँसे [विष्णुकर्मा-निर्मित सहस्रारोंवाला] चक्र और  
शङ्ख छे लिया ॥ २६ ॥

९—श्रीरामावतारका विशद वर्णन—

अब हम श्रीरामावतारके सूचक और विविध स्थलोंसे  
संगृहीत प्रायः समस्त रामायण-वाक्योंका समावेश यहाँ  
पूर्वापरके क्रमसे करते हैं ।

१—(बालकाण्ड सर्ग १५)—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।

भावप्रतिग्रहार्थं वै समेवता यथाविधि ॥ ४ ॥

ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन्सदासि देवताः ।

अब्रुवैल्लोककरीरं ब्रह्माणं वचनं महत् ॥ ५ ॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः ।

सर्वान् नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः ॥ ६ ॥

ऋषीन् यक्षान् सगन्धर्वान् ब्राह्मणान्सुरांस्तदा ।

अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥ ९ ॥

४७

तन्महर्षो भयं तस्माद् राक्षसाद् धीरदर्शनात् ।

वधार्थं तस्य ममबन्धुपायं कर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

एवमुक्तः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् ।

हन्तायं विदितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥ १२ ॥

तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् ।

अवध्योऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया ॥ १३ ॥

नाऽकीर्तयदवज्ञानात् तद्रथो मानुषांस्तदा ।

तस्मात्स मानुषादवध्यो मृत्युर्नाऽन्योऽस्य विद्यते ॥ १४ ॥

एतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।

देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तऽमन्वंस्तदा ॥ १५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगरपतिः ॥ १६ ॥

वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा ।

तप्तहाटककेयूरो बन्धमानः सुरोत्तमैः ॥ १७ ॥

ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः ।

तमब्रुवन् सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ॥ १८ ॥

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।

राज्ञो दशत्यस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥ १९ ॥

धर्मशस्त्रं वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।

अस्य भार्यासु तिनृषु ह्रीश्रीकीर्तयुपमासु च ॥ २० ॥

विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।

तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥ २१ ॥

अवध्यं दैवतं विष्णो समरे जहि रावणम् ।

स हि देवान् सगन्धर्वान् सिद्धांश्च ऋषिसत्तमाम् ॥ २२ ॥

राक्षसे रावणो मुखो वीर्याद्रेकेण बाधते ।

ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ २३ ॥

क्रीडन्तो नन्दनवने रौद्रेण विनिपातिताः ।

वधार्थं वयमाधातास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥ २४ ॥

सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ।

त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप ॥ २५ ॥

वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ।

एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगवः ॥ २६ ॥

पितामहपुराणांस्तान् सर्वलोकनमस्कृतः ।

अब्रवीत् त्रिदशान् सर्वान् समेतान् धर्मसंहितान् ॥ २७ ॥

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।

सपुत्रपौत्रं सामर्थ्यं समन्त्रिणातिबान्धवम् ॥ २८ ॥

हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षिणां भयानहम् ।  
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२९॥  
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पुषिनीमिमाम् ।

एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥ ३० ॥

मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ।  
ततः पञ्चपलाशाक्षः कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ॥ ३१ ॥

पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥  
ततो देवर्षिगन्धर्वाः सक्त्राः साप्सरोगणाः ।  
स्तुतिभिर्दिव्यरूपाभिस्तुष्टुनुर्मधुसूदनम् ॥ ३२ ॥

बभूवुस्तं रावणमुग्रतेजसं  
प्रबुद्धदर्षं त्रिदशेश्वरादिषम् ।  
विरावणं साधुतपस्विकण्ठकं  
तपस्विनामुदरं तं भयावहम् ॥ ३३ ॥

तमेव हत्वा सबलं सबन्धवं  
विरावणं रावणमुग्रपीठवम् ।  
स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरक्षिरं  
सुरेन्द्रगुप्तं गतदोषकल्मषम् ॥ ३४ ॥

[ ऋष्यशृङ्गद्वारा दशरथकी पुत्रेष्टि प्रारम्भ हो गयी । ]  
वहाँ गन्धर्वों समेत देव, सिद्ध और परमर्षि लोग भाव-  
ग्रहणके निमित्त विविधपूर्वक एकत्रित हुए ॥४॥ उस [वृक्ष-]  
सभामें वे देवता वयावोन्म एकत्रित होकर जोककर्ता  
ब्रह्माजीसे [ निम्नलिखित ] महत्त्वपूर्ण वचन बोले ॥५॥ हे  
भगवन् ! आपके प्रसाद ( वरदान ) से [ प्राप्त ] बलसे रावण  
नामक राक्षस हम सबको पीड़ित कर रहा है, उसका शासन  
करनेके लिये [ हम ] समर्थ नहीं हैं ॥६॥ ..... वरदानसे  
मोहित हुआ [ वह ] महाबली, ऋषियों, गन्धर्वों समेत  
बर्षों, ब्राह्मणों [ और ] असुरोंको अतिक्रमण कर रहा है ॥७॥  
..... अतः उस घोरवर्तन राक्षससे हमें बड़ा भय है । हे  
भगवन् ! उसके वधके लिये आपको उपाय करना चाहिए ॥११॥

तब सब देवताओंसे इसप्रकार निवेदित [ ब्रह्माजी ]  
विचार करके बोले कि वह जो उस दुरात्माके वधका उपाय  
निवेदित हो गया ॥१२॥ उसने वह बात कही थी ( अर्थात्  
वर मांगा था ) कि मैं गन्धर्वों, बर्षों, देवताओं और  
राक्षसोंका अवधू हूँ ( अर्थात् इनसे न मारा जाऊँ ) । मैंने  
[ भी ] तब कह दिया था कि ऐसा ही हो ॥ १३ ॥  
उस राक्षसने उस समय तुच्छ जानकर मनुष्योंका नाम नहीं

लिखा था । इसलिये वह मनुष्यसे मारा जा सकता है,  
अन्ध उसका शत्रुजनक नहीं है ॥१४॥ ब्रह्माजीके कहे हुए  
इस प्रिय वाक्यको सुनकर उस समय वे सब देव [ और ]  
महर्षि बड़े प्रसन्न हुए ॥१५॥

इसी अवसरमें अत्यन्त प्रकाशयुक्त जगत्पति विष्णु  
[ भगवान् ] शङ्ख, चक्र, गदा हाथमें लिये, पीताम्बर और  
तपे हुए सुबर्णके केयूर ( वाजूडम् ) धारण किये हुए तथा  
अष्ट देवताओंसे नमस्कृत होते हुए गरुडपर चढ़कर आये  
जैसे सूर्य ( भगवान् ) मेघपर ॥१६-१७॥ और वहाँ ब्रह्माजीसे  
मिलकर ( अथवा ब्रह्माजीसे भी नमस्कृत होते हुए  
वहाँ आकर ) एकाग्रचित्त [ हो ] बैठ गये । प्रणाम करते  
हुए सब देवताओंने सम्यक् स्तुति करके उनसे कहा ॥१८॥

हे विष्णो ! जोकोंकी हितकामनासे [ अवतार खेनेके  
लिये ] हम तुम्हें नियुक्त करेंगे । हे व्यापक विष्णो ! तुम इस  
धर्मज्ञ, महाबली, महर्षियोंके समान तेजस्वी और  
अवोभ्याके अधिपति दशरथकी ही ( जज्ञा ) श्री ( लक्ष्मी )  
[ और ] कीर्ति ( क्वाति ) के सहस्र तीन भाषाओंमें,  
अपनेको चार प्रकारका करके, पुत्ररूपसे अवतार लो ।  
हे विष्णो ! वहाँ तुम मनुष्य होकर देवताओंसे अवधू  
बिराज लोककण्ठक रूप रावणको युद्धमें मारो । क्योंकि  
वह मूर्ख राक्षस रावण बलकी अधिकतासे गन्धर्वों भ्रमेत  
देवों, सिद्धों और अष्ट ऋषियोंको पीड़ित कर रहा है । इस  
( बलाधिक्यके ) कारणसे उस रौद्र ( अर्थात् भले-बुराके  
विचारसे रहित रावण ) ने ऋषियोंको तथा [ स्वर्गस्थ ]  
अन्नबलमें क्रीडा करने हुए गन्धर्वों और अप्सराओंको  
बिनिपातित किया है । निश्चय उसके वध [ के निमित्त  
प्रार्थना करने ] के लिये [ ही ] हमलोग मुनियोंके साथ  
आये हैं ॥ १९-२४ ॥ और इसीसे सिद्ध गन्धर्व [ तथा ]  
वृक्ष तुम्हारे शरणको प्राप्त हुए हैं । हे शत्रुके तपानेवाले  
देव ! तुम हम सबकी परम-गति हो ( अर्थात् हमारी  
अन्तिम वीर तुम्हीं तक है ) ॥ २५ ॥ [ अतः ] देवताओंके  
शत्रुओंके वधके लिये मनुष्योंके लोकमें [ अवतार खेनेका ]  
मन ( अर्थात् संकल्प ) करो । देवताओंमें अष्ट और  
सर्वलोकोंमें नमस्कार किये गये वेशेष विष्णु इसप्रकारसे  
स्तुति किये जानेपर ब्रह्माप्रयुक्त एकत्रित हुए धर्ममहित  
सब देवताओंसे बोले ॥ २६-२७ ॥ तुम लोग भयको  
त्याग दो, तुम्हारा मङ्गल हो, तुम्हारे हितके लिये मैं देवों  
और ऋषियोंके भवहायक महाबली क्रूर रावणको पुत्रों,

पौत्रों, अमात्यों, मन्त्रियों और भाई-बन्धुओंके समेत युद्धमें मारकर ग्यारह सहस्र वर्षोंतक इस पृथिवीको पावन करता हुआ मनुष्यलोकोमें निवास करेगा ॥ २८-३० ॥

इसप्रकार आत्मवान् विष्णुदेवने देवोंको वर देकर मनुष्यलोकोमें अपनी [ योग्य ] जन्मभूमिका विचार किया । तदनन्तर [ उन ] कमलपत्र-जैसे नयनोंवाले [ विष्णु भगवान् ] ने अपने आपको चार प्रकारका करके राजा दशरथको उस समय [ अपना ] पिता [ बनाना ] चाहा । तब रुद्र और अग्निसराओंके गणों समेत देवों, ऋषियों और गन्धोंवने दिव्यरूप स्तुतिधौसे मधुसूदन ( भगवान् विष्णु ) को प्रसन्न किया ॥ ३०-३२ ॥—

उस उद्धत, उग्र तेजवाले, महामिमानी, इन्द्रशत्रु, [ त्रिलोकीको ] हलानेवाले, तपस्विधौके अयवाचक, साधुओं और तपस्विधौके उस प्रसिद्ध रावणरूप कण्टकको [ समूल ] उन्मूलन करो ॥ ३३ ॥ हे देवश्रेष्ठ ( उपेन्द्र ), उस [ त्रिलोकीको ] हलानेवाले, उग्र पौरुषवाले रावणको सेना और बान्धवों समेत मारकर ही चिरकालके जिने मन्तापरहित [ होते हुए तुम अपने द्वारा ] रक्षा किये गये अपने [ वैकुण्ठनामक ] स्वर्गलोकोमें [ जो रागादि ] दोष [ रूप ] कल्मषों ( मलों ) से रहित [ है ] आओ ॥ ३४ ॥

२—( बालकाण्ड सर्ग १६ )—

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ।  
जानन्नपि सुरानेवं क्लृप्य वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥  
उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः ।  
यमहं तं समास्थाय निहन्त्यामुषिकण्टकम् ॥ २ ॥  
एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमन्त्रयम् ।  
मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ ३ ॥  
स हि तेषे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः ।  
येन तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा लोकल्लोकपूर्वजः ॥ ४ ॥  
संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः ।  
नानाविधेभ्यो मृतेभ्यो अयं नान्यत्र मानुषात् ॥ ५ ॥  
अवशाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः ।  
एवं पितामहात् तस्माद् वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥  
असादयति लोकांस्त्रीन् स्त्रियश्चाप्युपकर्षति ।  
तस्मात् तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परतप ॥ ७ ॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान् ।

पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ ८ ॥

स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन् काके महाद्युतिः ।  
अयजत् पुत्रियामिष्टिं पुत्रेभ्युररिसूदनः ॥ ९ ॥  
स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्य च पितामहम् ।  
अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ १० ॥

ततो वै यजमानस्य पावकादतुल्यप्रभम् ।  
प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ॥ ११ ॥

दिव्यपायससंपूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम् ।  
प्रगृह्य विपुलां दोम्भ्यां स्वयं मायामयीमिव ॥ १२ ॥  
समवेक्ष्यान्नवीद्वत्कथमिदं दशरथं नृपम् ।  
प्राजापत्यं नरे विद्धि मामिहान्मगतं नृप ॥ १३ ॥

इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।  
प्रजाकरं गृहाण त्वं बन्धुमारोग्यवर्धनम् ॥ १४ ॥  
भार्याणामनुरूपाणामदनीतेति प्रयच्छ वै ।  
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप ॥ १५ ॥

सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत् ।  
पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमत्मानम् ॥ १६ ॥  
कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा ।  
अर्धादर्थं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥ १७ ॥  
कैकेय्यै चाऽवशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात् ।  
प्रददौ चाऽवशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ॥ १८ ॥  
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः ।  
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक् ॥ १९ ॥  
ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो  
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक् ।

हुताशनादित्यसमानतेजसो-

ऽचिरेण गर्भान् प्रतिपेदिरे तदा ॥ २० ॥

तब श्रेष्ठ देवोंसे नियुक्त ( प्रार्थित वा आश्रित ) हुए नारायण विष्णु ( भगवान् ) [ रावणके बंधके उपायको ] जानते हुए भी देवताओंसे [ उनके अधिनीतपन और लज्जा झुकावके अभिप्रायसे, अज्ञकी नाई ] इसप्रकार मधुर वचन बोले ॥ १ ॥ हे देवताओ, उस राक्षसोंके अधिपतिके वचनमें कौनसा उपाय है जिसका आश्रय लेकर मैं उस अधिधौके कण्टकको मारूँ ॥ २ ॥

ऐसे कहे गये सब देवता लोगोंने अविनाशी ( अविकारी ) विष्णु ( भगवान् ) को उत्तर दिया कि तुम मानवरूपको धारण करके युद्धमें रावणको मारो ॥ ३ ॥ क्योंकि

उस शत्रु-वधनकारी [ रावण ] ने दीर्घकाल तक कठिन तप किया था जिससे लोकोंके पूर्वज [ तथा ] ब्रह्मदेव महाजी प्रसन्न हुए ॥१॥ सन्तुष्ट [ होकर ] प्रभु ( महाजी ) ने उस रावणको मनुष्यसे मित्र अन्य नाना प्रकारके प्राथिवोंसे भय न होनेका वर दिया ॥२॥ क्योंकि वरदानमें उसने पहले ही मनुष्योंको तुच्छ कहा था । इसप्रकार उन पितामह ( महाजी ) से [ पाये हुए ] वरदानसे गर्वित [ हुआ वह ] तीन लोकोंको पीकित कर रहा है और जिवोंको भी उठवा खेता है । इस कारणसे हे शत्रुको तपानेवाले ( भगवान् ), उसका वध मनुष्योंसे [ होना ] निश्चित है ॥६-७॥

आत्मवान् विष्णुने देवोंके इस वचनको सुनकर राजा दशरथको उस समय पिता [ बनाना ] चाहा ॥८॥ उस समय ( जब भगवान् की अवतार खेनेकी इच्छा हुई तब ) उन महाप्रकाशयुक्त और शत्रुओंका नाश करनेवाले अयुध राजा ( दशरथ ) ने भी पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा करते हुए पुत्रेष्टिका यजन किया ॥९॥ वह विष्णु ( भगवान् ) [ अवतारविषयक ] निश्चय करके और पितामह ( महाजी ) को आमन्त्रितकर ( अर्थात् मैं चखता हूँ ऐसा कहकर ) देवों [ और ] महर्षियोंसे पूजित होते हुए अन्तर्धान हो गये ॥१०॥

तब ( अर्थात् विष्णुके अन्तर्धानके अनन्तर ही ) यजमान ( दशरथ ) के [ यज्ञसम्बन्धी ] अग्निसे अतुल प्रभावाका ( अर्थात् विजयी इत्यादिके समान जिसके तेजके सामने आँख न ठहर सके ऐसा जागृत्यमान ) महाबल-वीर्यवाला विशाल प्राणी प्रकट हुआ [ वह विशाल प्राणी 'एको विष्णुमहद्भूतम्' के अनुसार स्वयं विष्णु ही थे जो अन्तर्हित होकर अपने तेजसे सगुण पायसको जिये हुए होमाग्निसे प्रकट हुए, क्योंकि भगवान् का तेज धारण करनेकी शक्ति अन्यमें नहीं है—टीकाकार श्रीरामकृत तिलकम्याख्या ] ॥११॥ ..... दिव्य पायस ( खीर ) से पूर्ण विशाल मायामयी पात्रीको, मानो प्रिया पत्नीको, दोनों बाहुओंसे स्वयं ग्रहण करके ॥१२॥ राजा दशरथको देखकर वह बाण बोला कि हे राजन्, तुम मुझे यहाँ आया हुआ प्रजापति [ मेजा हुआ—प्रजापति ( प्रजापालक ) विष्णुसे उन्मत्त हुआ—अर्थात् विष्णुरूप ] पुरुष जानो ॥१६॥ हे राजर्षिह, तुम इस धन्य ( प्रशस्त ) [ और ] आरोग्य-बर्द्धक [ तथा ] देव ( प्रजापति ) द्वारा भिमित [ एवं ] प्रजा ( सन्तान ) के देनेवाले पायसको ग्रहण करो ॥१६॥ [ और अपनी ] अनुरूप ( योग्य ) आर्थाओंको दे दो कि वे

खा लें । उनमें तुम पुत्रोंको प्राप्त करोगे जिसके जिये हे राजन् ! यज्ञ कर रहे हो ॥२०॥

वह ( राजा ) अन्तःपुरमें जाकर कौसल्यासे ही यह बोले कि यह अपनेको पुत्र देनेवाला पायस खो ॥२१॥ तदनन्तर राजाने आधा पायस कौसल्याको दे दिया । और सुमित्राको भी राजाने [ शेष ] आधेमेंसे आधा ( अर्थात् पूर्ण पायसका अर्थांश ) दे दिया और कैकेयीको अवशिष्ट ( अर्थांश ) का आधा ( अर्थात् सबका अष्टमांश ) पुत्र-प्रयोजनके कारणसे दिया और पुनः महामति ( राजा ) ने सुमित्राको [ कैकेयीकी अपेक्षा बड़ी होने (?) और कौसल्याकी अपेक्षा जोटी होनेका ] विचार करके पायसका अष्टतुल्य अवशिष्टार्ध ( अन्य अर्थांशका कैकेयीसे बचा हुआ अर्ध अर्थात् समस्तका अष्टमांश जो बच रहा था ) दे बाबा । इसप्रकार राजाने उन आर्थाओंको पृथक् पृथक् [ विभाग करके ] पायस दे दिया । [ काश्मिरास ( रघुवंश सर्ग १० श्लोक ४४-४७ ) इत्यादि अन्य जगोंके मतानुसार चरविभाग इसप्रकार हुआ कि कौसल्याको जो आधा भाग दिया, उसीके आधेका आधा सुमित्राको दिलाया अर्थात् समस्त चरके आठ भागोंमेंसे प्रथम चार भागोंका अर्थांश वा समस्तका अष्टमांश सुमित्राको दिलानेपर कौसल्याके पास आधेका तीन चौथाई वा समस्तका  $\frac{3}{4}$  रहा । इसी प्रकार कैकेयीको दूसरा आधा दिया जिसमेंसे ( आधेका ) आधा पुनः सुमित्राको दिलानेपर कैकेयीके पास भी समस्त चरका  $\frac{3}{4}$  रहा । इस-प्रकार सुमित्राके दोनों पुत्र प्रत्येक अष्टमांश थे और राम तथा भरत प्रत्येक  $\frac{1}{4}$  ] ॥ २७ २६ ॥ तब राजाकी [ अग्नि और आदित्यके समान तेजवाली ] उन उसम जिवोंने उत्तम पायसको पृथक् पृथक् लाकर शीघ्र ही अग्नि और आदित्यके समान तेजवाले राशियोंको धारण किया ॥३१॥

### ३ ( बालकाण्ड सर्ग १७ )—

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महद्भयः ।

उवाच देवताः सर्वाः स्वयंभूर्मगवानिदम् ॥ १ ॥

सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैविणः ।

विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥ २ ॥

मायाविदश्च शूराश्च नायुवेगसमाज्वले ।

नयज्ञानं बुद्धिसम्पत्तान् विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥ ३ ॥

अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वाणां तनूषु च ।  
 वक्षपन्नगकन्यासु ऋक्षविद्याधरीषु च ॥ ५ ॥  
 किन्नरीणां च गात्रेषु बानरीणां तनूषु च ॥  
 सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रास्तुल्यपराक्रमान् ॥ ६ ॥  
 ते तथोक्ता मगवता तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् ।  
 जनयामासुरेवं ते पुत्रान् बानररूपिणः ॥ ८ ॥  
 ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः ।  
 चारणाश्च सुतान् वीरान् ससृजुर्वनचारिणः ॥ ९ ॥

ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीवबोधताः ॥ १.७ ॥  
 अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः ।  
 ते गजाक्षरसंकटा दपुष्पन्तो महाबलाः ॥ १.८ ॥  
 ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजहिरे ।  
 यस्य देवस्य यद्रूपं वेयो मक्ष पराक्रमः ॥ १.९ ॥  
 अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक् पृथक् ॥

विष्णुके उस महात्मा राजाका पुत्रत्व प्राप्त करनेपर स्वयम्भू भगवान् (ब्रह्माजी) सब देवताओंसे यह बोले ॥ १ ॥ [ हे देवो ! तुम लोग ] सत्य प्रतिज्ञावाले, वीर और हम सबका हित चाहनेवाले विष्णु ( भगवान् ) के—बली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, मायाके जाननेवाले, यूर, वेगमें वायुके समान वेगवाले, नीति जाननेवाले, बुद्धिशाली और विष्णुसदृश पराक्रमी—सहायकोंको उत्पन्न करो ॥ २-३ ॥  
 .....मुख्य अप्सराओंमें, गन्धर्व-स्त्रियोंके शरीरोंमें, यक्षों और भागोंकी कन्याओंमें, ऋक्षों और विद्याधरोंकी स्त्रियोंमें, और किन्नरियोंके शरीरोंमें तथा वानरियोंके शरीरोंमें [ तुम लोग अपने अपने ] समान पराक्रमवाले पुत्रोंको बानररूपसे ..... उत्पन्न करो ॥ ४-६ ॥ भगवान् ( ब्रह्माजी ) से ऐसा कहे गये उन [ देव ] लोगोंने उस शासन ( आज्ञा ) को अङ्गीकार करके इस ( भागे कहे हुए ) प्रकारसे बानररूपी पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ ऋषियों, महात्माओं, सिद्धों, विद्याधरों, नागों और चारणोंने बनमें बिचरनेवाले वीर पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ .....ऐसे अपनेकों सहस्र [ बानर ] सृजे गये [ जो ] रावणके बधमें उद्यत [ होंगे ] ॥ १० ॥ वे अमित बलवाले, वीर, विक्रमशाली, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, हस्ती तथा पर्वतके सदृश [ आकार-वाले ], सुन्दर, महाबली, ऋक्ष, बानर और गोपुच्छ ( गोबामूँह-जातिके वन्दर ) शीघ्र ही उत्पन्न हुए । जिस [ जिस ] देवका जो रूप, वेध और जो पराक्रम है उसीके तुल्य पृथक् पृथक् उस उस [ के पुत्र ] का [ भी रूपादि ] उत्पन्न हुआ ॥ १५-२० ॥ ..... ॥

#### ४—( बालकाण्ड सर्ग १८ )—

ततो यज्ञे समासे तु ऋतूनां षट् समस्यसुः ।  
 ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ ८ ॥  
 नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ।  
 ग्रहेषु कर्कटे लगे वाक्पताविन्दुना सह ॥ ९ ॥  
 प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् ।  
 कौसल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ १० ॥  
 विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैकवाकुनन्दनम् ।  
 लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभित्वनम् ॥ ११ ॥  
 कौसल्या शुश्रुमे तेन पुत्रेणाऽमिततजसा ।  
 यथा बरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥ १२ ॥  
 भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।  
 साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥ १३ ॥  
 अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राऽजनयत् सुतौ ।  
 वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥ १४ ॥  
 पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः ।  
 सापं जातौ तु सांमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥ १५ ॥

नव यज्ञके समाप्त होनेपर ऋः ऋतु व्यतीत हो गये । उस समय बारहवें मासमें, चैत्र [ शुक्ल ] नवमी तिथिको, अदिति देवतावाले (पुनर्वसु) नक्षत्रमें, पाँच ग्रहों (सूर्य, मंगल, शनि, बृहस्पति और शुक्र) के ऊँची राशियों (क्रमशः मेष, मकर, तुला, कर्क और मीन) में स्थित होनेपर, तथा चन्द्रमासहित बृहस्पतिके कर्कट लभोदधमें वर्तमान होते हुए—कौसल्याने दिव्य लक्षणोंसे संयुक्त, जगन्नाथके नाथ, सब लोकोंसे नमस्कृत (अथवा—सर्वलोकरूप अर्थात् विराटरूप और नमस्कार किये गये—इससे यह सूचित होता है कि रामके प्रकट होनेके समय माताने उनके विराट् रूपका दर्शन किया और उससे विस्मित होकर नमस्कार किया था जिससे तत्काल ही भगवान्ने बालकका रूप धारण कर लिया—तिलकव्याख्या । इसी आशको गोस्वामी तुलसीदासजीने—

“अप प्रगट् कृपाला दीनदयाला कौसल्याहितकारी,  
 हर्षित महतारी मुनिमनहारी अदभुतरूप निहारो ॥”  
 “कह दुहुँकर जेरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौ अनन्ता ॥”  
 “सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना हुरि बालक सुरमूषा ॥”  
 —इत्यादि छन्दोंमें दर्शाया है । ), विष्णुके अर्धांश, महाभाग, रक्तनेत्रोंवाले, लम्बी भुजाओंवाले, लाल ओंठों-

वाले, पुन्नुमिके समान शब्दवाले, इष्वाकु-वंशको ज्ञानन्वित करनेवाले पुत्र रामको जना ॥ ८-११ ॥ उस अमित तेज-वाले पुत्रसे कौसल्या ऐसी शोभित हुई जैसे देवताओंमें ओष्ठ इन्द्रसे अदिति ॥ १२ ॥ सत्य पराक्रमवाला और साक्षात् विष्णुके सब गुणोंसे युक्त चतुर्थांश भरत नाम [ पुत्र ] कैकेयीमें उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर सुमित्राने विष्णुके अर्धांशसे संयुक्त, वीर और सब अर्थोंमें कुशल लक्ष्मण और शत्रुघ्न [ नामक दो ] पुत्रोंको जना ॥ १४ ॥ निर्मल बुद्धिवाले भरत पुष्प ( नक्षत्र ) और मीन लग्नमें उत्पन्न हुए । तथा सुमित्राके दोनों ( यमज ) पुत्र सारप ( अर्थात् आरलोषा नक्षत्र ) में तथा कर्क-लग्नमें सूर्य ( की ठण स्थिति ) के समय उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

[ इसप्रकार वाल्मीकि-रामायणमें जन्म-वृत्तका विशद वर्णन होना इस बातका सूचक है कि उस प्राचीनकालमें भी कलित ज्योतिषका माहात्म्य ऐसा ही सत्य माना जाता था जैसा वर्तमान कालमें है । तिलकव्याख्याकार श्रीराम वर्माने 'विष्णोरर्धम्' का अर्थ यह किया है कि विष्णु भगवान् तो शङ्ख, चक्र और घनन्मसे विशिष्ट हैं परन्तु राममें शङ्ख-चक्रादिका अभाव होनेसे विष्णुके कुछ कम आधे राम थे, (पहले भी अर्थोंके मतसे तिलककार कौमल्याके भागमें आधे हुए पायसको  $\frac{3}{4}$  बता चुके हैं) । इसीप्रकार भरतके सम्बन्धमें 'चतुर्भागा' का अर्थ आधे पायसके चतुर्थांश न्यून अर्थात् समस्त चक्रके  $\frac{3}{4}$  के अनुसार 'चतुर्न्यूनो भागश्चतुर्भागा' किया है । तथा सुमित्राके पुत्रोंके सम्बन्धमें 'विष्णोरर्धममन्वितः' का अर्थ 'रामके एक भागसे युक्त' करते हुए दोनोंमेंसे प्रत्येकके 'पायसका अष्टमांश' होनेका समर्थन किया है । परन्तु यदि स्त्री-तानीके द्वारा ही राम और भरत विष्णुके  $\frac{3}{4}$ ,  $\frac{3}{4}$  तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न  $\frac{1}{2}$ ,  $\frac{1}{2}$  अंशावतार सिद्ध किये जा सकते हैं—तो इसकी अपेक्षा अधिक सरलतासे पूर्व कथनानुसार राम तो  $\frac{1}{2}$  और लक्ष्मण  $\frac{1}{2}$  तथा भरत, शत्रुघ्न प्रत्येक  $\frac{1}{2}$  अंशावतार वहाँ भी सिद्ध होते हैं । यथा 'विष्णोरर्धम्' का अर्थ रामके सम्बन्धमें स्पष्ट  $\frac{1}{2}$  अंश है । भरतके सम्बन्धमें 'साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागा' का अर्थ होगा साक्षाद्विष्णु ( अर्थात् राम,  $\frac{1}{2}$  ) का चतुर्थांश ( अर्थात्  $\frac{1}{4}$  ) । एवं लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सम्बन्धमें 'विष्णोरर्धममन्वितौ' के अर्थमें 'अर्ध' शब्दकी आकृति करके विष्णु ( राम ) के आधे ( अर्थात् समस्तके  $\frac{1}{2}$  ) लक्ष्मण और 'तदर्थ' ( उसके

आधे अर्थात् समस्तके  $\frac{1}{2}$  ) शत्रुघ्न । सर्वथा वात्सीकि रामायणसे सिद्ध है कि चारों आई विष्णुके ( न्यूनाधिक चार रूपोंमें ) अवतार थे । ]

५—(बालकाण्ड सर्ग २६)—

[ इस लेखमें सर्वप्रथम वामनावतारके सम्बन्धमें इसी सर्गके जो श्लोक ( २-६ और १६-२२ ) उद्धृत किये जा चुके हैं उनके अन्तमें विश्वामित्रजी रामसे कह चुके हैं कि इस सिद्धाश्रममें पहले वामनावतारधारी विष्णु तपस्या करके सिद्ध हो चुके थे उसीमें आजकल मैं रहता हूँ । अर्थात् यह सिद्धाश्रम प्रथम विष्णु भगवान् ( वामन ) का और अनन्तर उनकी भक्तिसे मेरा है । उसीके आगे कहते हैं—]

एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विप्रकारिणः ।

अत्र ते पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥ २.३ ॥

अस्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।

तदाश्रमपदं तात तवाऽप्येतद् यथा मम ॥ २.४ ॥

इस आश्रममें [ वृक्ष- ] विप्रकारी राक्षस आते हैं । हे पुरुषोत्तम ! वहाँ उन दुराचारियोंको मारना चाहिये ॥ २.३ ॥ [ कारण यह है कि ] हे राम ! आज हम उस सर्वसुन्दर आश्रम-को चल रहे हैं, वह आश्रम जैसे मेरा है वैसे ही हे तात ! तुम्हारा भी है ॥ २.४ ॥

[ इसपर तिलककारने भी उचित ही लिखा है कि 'हे तात, तदेतद् अश्रमपदं यथा मम स्व-नूनं तदा तवाभिः विष्णवचनारत्नाङ्गं गुणैऽमिन्विः ।' अर्थात् हे तात ! इस आश्रम स्थानमें जैसी ममता मेरी है वैसे ही तुम्हारी भी है; क्योंकि तुम उन्हीं विष्णुके अवतार हो जिन्होंने वामनरूपसे इस आश्रमको अपनाया था—यह गूढ़ार्थ है । ]

[ यदि यह कहा जाय कि अयोध्याके राज्यके अन्तर्गत होनेसे ही सिद्धाश्रममें रामकी भी ममता विश्वामित्रको इष्ट थी जिससे उसे अपवित्र करनेवाले राक्षसोंका विनाश करना उसीके लिये आवश्यक था । तो उत्तर यह है कि चक्रवर्ती होनेसे दशरथ भले ही इस सुदूरवर्ती सिद्धाश्रमके भी स्वामी हो सकते हों परन्तु राम जो अभी तक युवराज भी नहीं हुए थे और जो वनवासकी अवस्थामें नाजिबध इत्यादि समस्त अवसरोंपर सदा वही कहा करते थे कि राज्य और पृथिवी भरतकी है और मैं केवल उनके आदेशमें वर्तमान



होकर दुष्टोंका शासन और शिष्टोंका रक्षक करता हूँ, वे किसी युक्तिसे अभीतक सिद्धाश्रमके 'स्वामी' नहीं उद्धार सकते। अतः विष्णुवचनारके ही सम्बन्धसे विरवामित्रके वाक्यकी सङ्कति खग सकती है, अन्यथा नहीं।]

[यह कथा असङ्गत वा प्रक्षिप्त भी नहीं हो सकती, क्योंकि यह पिछले सर्ग २८ के निम्नलिखित प्ररनका उत्तरमात्र है—

सर्व मे शैश भगवन् कस्याश्रमपदं त्विदम्।

सम्प्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मणा दुष्टचारिणः ॥२०॥

हे भगवन्! मुझसे सब कहो कि यह आश्रमस्थान किसका है (और वह कौन स्थल है) जहाँ वे वेदविनाशक दुराचारी पापी आते हैं ॥२०॥]

६—(बालकाण्ड सर्ग ७६)—

तेजोमिर्गतदीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जहीकृतः।

रामं कमलपत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥१२॥

अक्षरयं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।

धनुषाऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥१३॥

पते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः।

त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१४॥

न चेय तव काकुत्स्थ ब्रीडा भवितुमर्हति।

त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुक्षीकृतः ॥१५॥

रामं दाशरथि रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥२४॥

[अपने वैष्णव] तेजों [के राममें जाकर प्रविष्ट होने] के कारण वीर्यरहित हो जानेसे अबसमान हुए जमदग्नि-पुत्र (परशुराम), कमलपत्र-सदृश नेत्रोंवाले रामसे धीरे-धीरे बोले ॥१२॥ ..... हे शत्रुओंको तपानेवाले (विष्णुरूप राम), इस धनुषके परामर्श (ग्रहण, आकर्षण, इत्यादि) के कारणसे तुम्हें, चप न हो सकनेवाले, (आदि और अन्तसे रहित), तथा मधु (नामक राक्षस) को मारनेवाले, पूर्व देवोंके परम स्वामी (अर्थात् साक्षात् विष्णु भगवान् ही) जान गया हूँ। तुम्हें स्वस्ति (भङ्गलकी प्राप्ति) हो ॥१३॥ अनुपम कर्म करनेवाले, एवं युद्धमें प्रतिबोद्धरहित तुमको ये सब आये हुए देवगण देख रहे हैं ॥१४॥ हे ककुत्स्थवंशोज्ज्वल (राम), और जो त्रिकोणीके नाथ होते हुए तुमने मुझे अशक्त कर दिया, वह तुम्हारे लिये

कोई लज्जाकी बात नहीं होनी चाहिये [तिलककारकी व्याख्याके अनुसार—इससे परशुरामने अपनेको भगवान्का अंश होना और रामजीका पूर्व भगवदवतार होना सूचित किया। भाव यह है कि अपनेसे भिन्न द्वारा अशक्त किये जानेमें लज्जा होती है न कि अपने आप मायाके द्वारा वैसा हो जानेमें। इस व्यवहारका प्रयोजन यह प्रतीत होता है कि क्या करके दशरथादिके प्रति स्वरूपका बोधन हो तथा राममें पूर्व तेज आ जावे। क्योंकि यदि विष्णुका तेज किसी अंशमें भी अन्यत्र (विकारा) रहता तो रावणका वध दुष्कर होता। इसीलिये (मूलमें) पूर्व ही कहा जा चुका है कि रावणका वध चाहनेवाले देव-गणधर्मादि लोग देखने आये थे] ॥१५॥ ..... तब जमदग्नि-पुत्र [परशु-] राम प्रभु [स्वयं भी] प्रपूजित होते हुए दशरथ-पुत्र रामकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थानको चले गये ॥२४॥

[यहाँ श्लोक १६ में यदि रामके विष्णु होने और परशुरामके भगवदंश होने, और इसी कारणसे परशुराम (रूप भगवान्के अंश) का पराजय पूर्व भगवान्की लज्जाका हेतु होनेमें रामायणकारका अभिप्राय न माना जावेगा तो वह वाक्य ही असंगत हो जावेगा क्योंकि दूसरेके कारण दूसरेको लज्जा होना बिल्कुल उल्टी बात है। अतः श्लोक १६ के अभिप्रायसे और श्लोक २४ में आये हुए 'प्रभु' पदसे परशुरामका अंशावतार होना सूचित होता है। और परशुराम नाशक होकर भी क्षत्रिय रामकी प्रदक्षिणा करते हैं इससे भी श्रीरामजी विष्णुके अवतार सिद्ध होते हैं।]

७—(अयोध्याकाण्ड सर्ग १)—

सर्वं पव तु तस्मैष्टाश्रित्वारः पुरुषर्षभाः।

स्वशरीरादिनिर्वृत्ताश्चत्वार इव नाहवः ॥५॥

तेवामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः।

स्वयम्भूरिव भूतानां नभूव गुणवत्तरः ॥६॥

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥७॥

[श्रीरामके बौवराज्याभिषेककी भूमिकासे अयोध्याकावट-का प्रारम्भ करते हुए, और तत्सम्बन्धमें भरत और शत्रुघ्नके अपने मातुल (आमा) भरवपतिके यहाँ जाकर वृद्ध पिताका स्मरण करने, और पिताके पुत्रोंका स्मरण करनेकी सूचना देकर, श्रीरामायणकार लिखते हैं कि—]

उन (राजा दशरथ) को पुरुषोंमें श्रेष्ठ सब चारों ही [पुत्र] ऐसे प्रिय थे जैसे [विष्णु] अपने शरीरसे निकली हुई चारों भुजाएँ ॥१॥ उन (चारों) में भी महातेजस्वी राम पिताको [विशेष] आनन्ददायक (अत्यन्त अभिमत) और [सब] प्राणियोंके मध्यमें स्वयम्भू (ब्रह्माजी) के समान अधिक गुणवान् थे ॥२॥ क्योंकि वे वर्षपूर्व रावणका वच चाहनेवाले देवोंसे प्रार्थित हुए सनातन विष्णु [ थे जो ] मनुष्यलोकमें जन्मे थे ॥३॥

८—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४)

चिरम्य खलु काकुत्स्थ पदयाम्यहमुपागतम् ।

ध्रुते तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥२१॥

[ प्रयागमें भरद्वाज मुनि रामसे कहते हैं कि— ] हे काकुत्स्थ ! मैं निश्रयही तुम्हें बहुत काखके पश्चात् [मेरे] समीप आया हुआ देख रहा हूँ और मैं तुम्हारे अकारण विवासन (घरसे निकाल दिये जानेकी बार्ता) को सुन चुका हूँ ॥२१॥

[ तिलककारने 'बहुत काखके पश्चात् आया हुआ देखने'के दो अर्थ निकाले हैं (१) कदाचित् राम पहले भी प्रयागमें भरद्वाजका दर्शन कर चुके थे (२) अथवा पूर्वकल्पके रामावतारमें उनका प्रयागागमन मनमें रखते हुए भरद्वाजने ऐसा कहा हो । हमारी दृष्टिमें वाल्मीकि रामायणकारको रामका इस जन्ममें कभी पहले प्रयाग आकर भरद्वाजमुनिके दर्शन करना अभोष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि रामायण वा किसी अन्य ग्रन्थमें ऐसे पूर्व आगमनका कोई प्रयोजन अथवा सङ्केतमात्र भी नहीं मिल रहा है । अतः रामायणकारने 'मर्वाचन्द्रमसौ भाता यथा पूर्वमकल्पयत्' के सिद्धान्तानुसार पूर्वकल्पसम्बन्धी रामावतारके प्रयागागमनको खिरजीबी भरद्वाजमुनिके मुखसे स्वीकार कराया है वही पक्ष शेष रह जाता है । अतः यह प्रसङ्ग भी रामायणकारके माने हुए अवतारवादका पोषक है । ]

९—(अयोध्याकाण्ड सर्ग ११०) —

इमां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथ निबोध मे ॥ २ ॥

[ जाबालिके बचनोंसे रामको कुछ हुआ जानकर बसिष्ठजी रामको समझाते हैं— ] हे लोकोंके नाथ ! इस जगदुत्पत्तिको मुझसे समझो [ यहाँ 'लोकनाथ' का अर्थ 'प्रजा-जनोंके स्वामी' वा 'राजा' नहीं हो सकता क्योंकि (१) दशरथके भर जानेपर पिता-माताके आदेशानुसार राजा तो भरत होते, न कि राम, (२) 'लोक-समुत्पत्तिम्' पदमें 'लोक' का अर्थ 'भूमि-स्वराज्य' है वही 'लोकनाथ' में भी इस

लिये होना चाहिये कि जो 'लोकोंका नाथ है उसे लोकोंकी उत्पत्ति जाननी चाहिये' (३) तिलकम्पाक्याकारने भी लिखा है—'लोकनाथेत्यनेन लोकनाथावतारत्वं ध्वनयति' कि 'लोक-नाथ' पदसे जगत्पति (विष्णु) का अवतार होना सूचित करते हैं ] ॥ २ ॥

१०—(अरण्यकाण्ड सर्ग २७)—

सरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलंभात् प्रसादितः ॥६॥

[ सर रामसे खड़ने आ रहा था । परन्तु त्रिशिराने जो विभीषणके समान ही राक्षसोंके स्वभावसे विपरीत भगवत्प्रकृति या आकर सरसे कहा कि तुम न जाओ किन्तु मुझे भेजो । यदि मुझसे राम मारे गये तो हर्षपूर्वक जनस्थान (पञ्चवटी) को जौट जाना, परन्तु यदि मैं मारा गया तो तब तुम रामसे खड़ने जाना । इस प्रकार ]—

उस त्रिशिराने [ अन्तकालमें भगवत्तत्त्वको पहचानकर उन्हींके हाथसे ] मृत्यु पानेके जोभसे सरको प्रसन्न कर लिया [ और सरसे आज्ञा पाकर घोड़ोंवाले सुन्दर रथपर त्रिशिरा युद्धमें श्रीरामजीके अभिमुख गया ] ॥ ६—७ ॥ [ इसी सर्गके श्लोक १७ में रामके लिये 'अप्रमेयात्मा' विशेषण भी दिया गया है । ]

११—(अरण्यकाण्ड सर्ग ३१)—

[ अकम्पन नामक राक्षसने जङ्गलमें जाकर रावणसे जनस्थानस्थित सरादि राक्षसोंके रामद्वारा मारे जाने और अपने बच आनेकी बार्ता कही जिसपर रावणने जनस्थानमें जाकर राम-अकम्पणको मार डालनेका निश्चय किया । अकम्पनने निम्नलिखित शब्दोंमें यह बात असम्भव बतलायी और रामके मृत्युका एकमात्र उपाय सीताहरण और तद्वियोग-तुल्य बतलाकर रावणको सीतापहरणके लिये प्रेरित किया— ]

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशः ।

आपगायास्तु पूर्णया वेगं परिहरंश्छरेः ॥२३॥

सताराग्रहनक्षत्रं न नश्चाप्यवसादयेत् ।

असौ रामस्तु सौदन्ती श्रीमान्मुद्गेन्महीम् ॥२४॥

मित्रा वेगं समुद्रस्य लोकानाद्रावयेद्विभुः ।

वेगं वापि समुद्रस्य वार्यं वा विधमेच्छरेः ॥२५॥

संहत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशः ।

शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥२६॥

न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ।

रक्षसां वापि लोकैः स्वर्गः पापत्रनैरिव ॥२७॥

कल्याण

[चित्रकूट]



सीताकी रसोई



हनमान-धारा (२)



भरत मन्दिर





कल्याण



कामनालाथ गिरि २ (चित्रकूट)

अनुसूयाजी (चित्रकूट)



भगदीप्त आश्रम (प्रयाग)

न तं वध्यमहं मन्त्रे सवैदेवासुरैरपि ।

अयं तस्य वयोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु ॥२८॥

महाबलवाले राम कुपित होनेपर [ वमके समान संहारमें प्रवृत्त होते हुए किसीके भी ] विक्रमसे [ महावि-  
हारा भी ] रोके नहीं जा सकते । किन्तु वे बाध-वर्षा करके  
पूर्ण नदीका बेग रोक सकते हैं [ इससे कृष्ण-वज्रभङ्गके  
अवतारको सूचित किया ] ॥ २३ ॥ यह श्री-संयुक्त राम  
ताराओं, ग्रहों और नक्षत्रों समेत आकाशको भी अवसक्त  
( शून्य ) कर सकते हैं [ जैसा त्रिक्रम ( वामन ) अवतारमें  
किया था, तथा जलमें डूबनेसे ] कष्टावस्थाको प्राप्त होती  
हुई पृथ्वीका भी उद्धरण कर सकते हैं [ जैसा वज्रवराहा-  
वतारमें किया था ] ॥ २४ ॥ विष्णु ( व्यापक भगवान् राम )  
समुद्रकी बेला ( मर्बादा ) को तोड़-फोड़कर [ सब ] लोकों-  
को डुबो सकते हैं [ जैसा प्रलयकालमें करते हैं ] अथवा अपने  
बाधासे समुद्रके वेगको [ इससे समुद्रपर सेतु बाँधनेका  
सामर्थ्य दिखाया है ] वा बाधु [ इत्यादि पञ्चभूतों ] को  
टका सकते हैं ॥ २५ ॥ अथवा महाबलवाले वह अष्ट पुरुष  
अपने विक्रमसे लोकोंका संहार करके फिरसे प्रजाओंका  
सृजन करनेको भी समर्थ हैं [ यहाँ-‘पुनः’ और ‘अपि’=  
‘फिर भी’—इन शब्दोंसे सर्वमृष्टि और संहारके व्यापार  
उन्हींके अधीन बतलाये हैं ] इससे यह व्यङ्ग्य होता है कि  
वे जगन्की स्थिति और संहारके कर्ता हैं । अकम्पन राजसको  
भी ऐसा ज्ञान भगवान्हीकी कृपासे था ॥ २६ ॥ हे  
वशधीव ! तुम वा राजसोंका समूह भी रामकों रथमें नहीं  
जीत सकते जैसे पापी लोग स्वर्गको नहीं [ पा सकते ]  
॥ २७ ॥ सब देवासुर [ मिलकर ] भी उनका वध नहीं कर  
सकते [ ऐसा ] मैं मानता हूँ [ अर्थात् तुम्हारे पुत्रद्वारा  
जीते हुए इन्द्र भी यदि तुम्हारा साहाय्य करें तो भी राम-  
को नहीं जीत सकते ] उनके वचका [ केवल ] वह ( आगे  
कहा हुआ ) उपाय है इसलिये मेरे [ मुख ] से [ तुम ]  
एकाग्रमन होकर सुनो ॥ २८ ॥

१२—(अरण्यकाण्ड सर्ग ६४)—

[ जैसा आशय अकम्पन राजसके वाक्य ( सर्ग ३१  
श्लोक २३-२६ ) का है वैसे स्वयं श्रीरामजी अपने विषयमें  
कहते हैं— ]

यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधिः ।

नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्षण ॥

तथाऽहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥ ७५ ॥

४८

पुरेव मे चाकदतीमनिन्दितां

दिशन्ति सीतां यदि नाव मैथिलाम् ।

स-देव-गन्धर्व-मनुष्य-पत्नगं

जगत् सशैलं परिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥

हे लक्ष्मण ! जैसे जरा ( बुढ़ापा ), मृत्यु, काल, विधि  
( भाग्य ), सभी प्राणियोंमें कभी रोके नहीं जा सकते वैसे  
ही मैं भी क्रोधसंयुक्त हुआ निःसन्देह रोका नहीं जा सकता  
॥ ७५ ॥ यदि मैथिली सीताको पहले जैसी सुन्दर नहीं  
लौटाते हैं तो मैं देवों, गन्धर्वों, मनुष्यों, नागों और पर्वतों-  
ममेन जगन्को नाश करनेको तैयार हूँ [ यह मानुषदेह  
भरके जीवामात्र क्रोधका प्रकाशन है सही, किन्तु अपने  
विषयमें असम्भव बात बोलनेकी आशा रामसे नहीं की  
जा सकती । अतः जगन्का नाश करनेके सामर्थ्यसे वे  
अवरय भगवद्वतार करके ही रामायणकारको इष्ट हैं ] ॥ ७६ ॥

१३—(अरण्यकाण्ड सर्ग ६६)—

[ सीताहरणपर शोकाकुल हुए रामको प्रलयाम्रिके समान  
लोकोंके विनाशके लिये उद्युक्त, और जैसे कभी पहले नहीं  
देखे गये थे वैसे संक्रुद्ध होकर, युगान्तकालमें शिवजीके  
समान, सर्व जगत्को भस्म करनेके लिये सज्ज देखकर  
लक्ष्मणका तो लोकविनाशके भयसे मुख सूखने लगा ।  
लक्ष्मणने विनयपूर्वक रामसे प्रकृतित्थ होनेकी प्रार्थना करने  
और बहुत कुछ समझानेके पश्चात् यह निवेदन किया  
कि पहले हमलोग सर्व लोकोंको सबतक ढूँढ़ें जबतक  
सीताऽपहारीका पता न लगे । फिर भी यदि साम ( शान्त उपाय )  
से देवतालोग सीताको न फेरेंगे तो समयानुसार लोकनाशके  
लिये शरसन्धान कीजियेगा ( सर्ग ६५ ) । ( सर्ग ६६ ) इतनेपर  
भी जब राम प्रकृतित्थ न हुए तब बहुत बहुत समझाते  
हुए लक्ष्मणजी अन्तमें बोले— ]

मामेवं हि परा वीर त्वमेव बहुशोक्तवान् ।

अनुशिष्याद्वि को नु त्वामपि साक्षाद् बृहस्पतिः ॥ १७ ॥

मुद्दिश्व ते महाप्राज्ञ देवैरपि दुरन्धरा ।

शोकेनभिप्रसुप्तं ते ज्ञानं संनोषयाम्यहम् ॥ १८ ॥

दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् ।

इक्ष्वाकुवृषमाऽवेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥ १९ ॥

किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषधम ।

तमेव तु रिपुं पापं विज्ञायोद्वर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

हे वीर ! तुम्हको ही तुमने पहले बहुत कुछ समझाया  
है । तुम्हें भला कौन शिष्य देगा, साक्षात् बृहस्पति भी

[ नहीं सिखा सकता, तब अन्धकी कौन गिनती है ] ॥ १७ ॥  
हे महाप्राज्ञ, और तुम्हारी बुद्धिको तो देवता भी नहीं पहुँच सकते [ इससे ईश्वरता सूचित की। तब मैं तो केवल ]  
शोकके कारण सोचे हुए तुम्हारे [ ही ] ज्ञानको [ मानो ]  
जगा रहा हूँ ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकुकुलभेद, और अपने दिव्य  
तथा मानवी ( दोनों ही प्रकारके ) पराक्रमको देखते हुए  
[ अर्थात् दिव्य पराक्रमके लिये वह उपयुक्त समर्थ नहीं है  
इसका विचार करते हुए केवल मानवी-पराक्रमका उपयोग  
करके ] शत्रुबन्धमें प्रयत्न करो ॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम्हें सर्व  
[ जोकों ] का विनाश करनेसे क्या [ लाभ होगा ] ? किन्तु  
हँसकर केवल उसी शरीरका उन्मूलन करना चाहिए ॥ २० ॥

[ सर्व जोकोंके विनाशका सामर्थ्य और दिव्य पराक्रम  
मनुष्यमात्रमें होना असम्भव है। इससे रामजी अवरण  
विश्ववतार ही थे । ]

१४—(किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १८) —

[ सर्ग १६ में रामके द्वारा बाणविद्य होनेपर सर्ग १७ में  
बाणोंने रामपर अनेक कटु आक्षेप किये थे और उत्तर  
माँगकर चुप हो गया था। सर्ग १८ में जब श्रीरामजीने सब  
आक्षेपोंका समुचित उत्तर दे दिया तब (श्लोक ४४) बाणिको  
श्रीरामजीपर मिथ्या अभियोग लगानेके कारण बड़ा पश्चात्ताप  
उत्पन्न हुआ और धर्मविषयमें निश्चय हो जानेसे जब  
उसके मनमें रामका एक भी दोष न रहा तब वह हाथ जोड़-  
कर रामसे बोला— ]

त्वत्तः। इह बचमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया ॥ १५ ॥

सुग्रीवेण सह भ्रात्रा दन्द्रमुद्रमुपागतः ॥ १६ ॥

शराभितस्तन विभक्तसा मया

प्रभाषितस्त्वं यदज्ञानता विमो ।

इदं महेन्द्रोपमर्मात्मविक्रम

प्रसादितस्त्व क्षम मे हरीश्वर ॥ १६ ॥

तुमसे [ अपना ] बंध चाहना हुआ मैं ताराके द्वारा  
रोका जाता हुआ भी [ अपने ] भ्राता मुर्धावसे इन्द्रमुद्र  
[ करने ] आया ॥ १५ ॥ ..... ॥ हे महेन्द्रके समान भयानक  
विक्रमवाले, हे सर्वव्यापक, हे हरीश्वर ( देवराज इन्द्रके  
भी स्वामी भगवान् विष्णो ), बाणसे पीड़ित और विविध-  
विध होते हुए अज्ञानबध ( अर्थात् आप भगवान् हैं इस  
बातको भूलकर ) मैंने आपको जो कुछ कह डाला, प्रसन्न  
होकर आप मेरा वह [ दुर्वचन ] क्षमा करें ॥ १६ ॥

१५—( किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २४ ) —

[ तारा बाणिवचसे अत्यन्त आर्त होकर, इन्द्रसदृश  
और दुरासव एवं विष्टुदसम्बन्धके महाबुभाव श्रीरामजीके  
समीप जाकर बोली— ]

त्वमप्रमेयश्च

दुरासदश्च

जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च ।

अक्षीणकर्तृश्च विषक्षणश्च ,

क्षितिक्षमवान् क्षतशोपमाक्षः ॥ २४ ॥

तुम अप्रमेय ( अर्थात् देश और कालके परिच्छेदसे  
रहित तथा गुणोंकी इच्छा करके दुर्ज्ञेय ) और दुरासव  
( अर्थात् योगियोंकी भी प्राप्त होनेके लिये भ्रातृव्य ) और  
जितेन्द्रिय ( अर्थात् हृषीकेश वा इन्द्रिजातीत ) [ यहाँ तक  
रामका निर्गुण ब्रह्म होना प्रतिपादन करके आगे उनके  
सगुण रूपकी स्तुति करती है ] और उत्तम ( अर्थात् पुरुषोत्तम  
विष्णु भगवान् ) के धर्मों [ को धारण करने ] वाले हो। तुम्हारी  
कीर्ति [ सदा ] अक्षीण [ बनी रहती है अर्थात् किसी ऐसे  
कर्मसे भी, जो आपके समान आभासमान हो, कभी क्षीण  
नहीं होती ] है और [ तुम ] विषक्षय ( विशेष ज्ञानवान् ),  
पृथिवीके सरस सम्राट् तथा रक्षेत्रांचाले हो ॥ २४ ॥

मारुति ( हनुमान्जी ) ने रामको क्या माना है—

१६—( सुन्दरकाण्ड सर्ग १३ ) —

[ सातान्वेषणके लिये जङ्गलमें पहुँचे हुए हनुमान् अशोक-  
बनिकामें मनसे भी पहुँचनेके पूर्व इष्टदेवतादिको प्रणाम  
करते हैं— ]

नमोऽस्तु रामाय सरस्वतयाय

देव्यै च तम्यै जनकान्मत्राय ।

नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रायमानवेभ्यो

नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥ १५ ॥

म नम्यन् नमस्कृत्वा मुर्धावाय च मारुतिः ॥ २८ ॥

[ यहाँ हनुमान्जी रुद्रादि देवताओंसे भी पूर्व राम,  
लक्ष्मण और सीताको नमस्कार करते हैं, जिससे स्पष्ट है  
कि वे इनको रुद्रादि देवोंके भी ऊपर ( अर्थात् साक्षात् विष्णु  
और लक्ष्मीके अवतार ) होनेसे अपना इष्टदेव मानते हैं।  
और कम भी इसी बातका सूचक है क्योंकि सबसे प्रथम  
[ राम-लक्ष्मणरूप ] भगवान् और उनकी मायाको, फिर

उनसे छोटे अन्यान्य देवताओंको, फिर उनसे भी छोटे अपने राजा (स्वामी) सुग्रीवको नमस्कार किया। यदि वे राममें मनुष्यत्व-बुद्धि रखते होते तो देवताओंके पश्चात् उन्हें नमस्कार करते। यह बात भी विशेष ध्यान देनेके योग्य है कि उक्त देवताओंमें कहीं विष्णुका नाम नहीं लिखा—यद्यपि रामायणके मतानुसार विष्णु ही इन्द्र-रुद्रादि सबसे बड़े गिने जाने चाहिए थे। यदि रामको नमस्कार करनेसे ही विष्णुके लिये भी नमस्कार गतार्थ न होता तो मुख्य दो-तीन देवताओंकी भी गणनामें विष्णुका नाम न जोड़ा जा सकता।]

१७—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ३०)—

यथा तस्मात्प्रमेयस्य सर्वसत्त्वदायकः ॥६॥

[यहाँ भी हनुमान्जी रामके लिये 'अप्रमेय' शब्दका (अर्थात् जिनका स्वरूप और गुण देश-काल वा रूपतासे परिच्छेद्य नहीं है) प्रयोग करके रामका साक्षात् ब्रह्म होना सूचित करते हैं।]

१८—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ५१)—

[तथापि यदि सन्देह हो तो हनुमान्जीके रामविषयक वर्णनसे जो उन्होंने रावणके समक्ष किया था रामजी स्वयं ही जगत्के स्थिति-उत्पत्ति-संहार-कर्ता और सर्वलोकोंके ईश्वर सिद्ध होते हैं—]

सत्यं गङ्गासराज्रेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ।

रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ॥३८॥

सर्वान्तोकान्मुसंडित्य सभूतान् सचराचरान् ।

पुनरेव तथा खण्डुं शक्ता रामो महायशः ॥३९॥

सर्वलोकैश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।

रामस्य गत्रसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥४०॥

देवाश्च दैत्याश्च निशाचरान्द्र

गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।

रामस्य लोकत्रयनायकस्य

स्थातुं न शक्ताः समरेषु मवं ॥४३॥

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा

रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।

इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा

स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥४४॥

हे राक्षसराजोंके राजा (रावण व.) मुक्त रामजीके दास [यह विशेषण इस कारणसे दिया है कि समीप रहनेके

कारण दासको अपने स्वामीकी महिमाका ठीक-ठीक ज्ञान होता है अतएव उसकी बात विश्वासके योग्य है] विशेषतः दूत [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि दूतका अधिकार हितके उपदेशमें होता है और वह विपत्तीकी बातको क्यों-क्यों बुराता है जिससे उसके कहे हुए समाचारमें शङ्का करनेका अवकाश नहीं] (और एक) वानरके [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि मैं न तो रामकी (मनुष्य) जातिका और न तुम्हारी (राक्षस) जातिका हूँ किन्तु एक तीसरी जातिका होनेसे पक्षपातरहित होकर न्यायकी बात कहूँगा। तीनों विशेषणोंसे अपना सत्यवक्ता होना प्रमाणीत किया है] सत्य वचनको सुन ॥३८॥ महायशवाले राम [समस्त] चराचर भूतों (अर्थात् सब जातियोंके प्राणियों) सहित सब लोकोंको सम्यक् संहार करके फिरसे उसी प्रकार सृजनेको समर्थ हैं [इससे जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और संहारका कर्ता होना बतलाया] ॥३९॥.....॥ 'सभी लोकोंके ईश्वर' एवं राजभेद रामका इस लोकमें ऐसा अपकार करके तेरा जीवन [बचना] असम्भव है ॥४०॥ हे निशाचरोंके राजा (रावण), देव, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, वन सभी लोग 'तीनों लोकोंके नियन्ता' श्रीरामजीके समक्ष युद्धमें नहीं ठहर सकते हैं ॥४३॥ ब्रह्माजी [जो] स्वयं उत्पन्न होनेवाले (सर्वादि हिरण्यगर्भ) [तथा] चार मुकोंवाले (अर्थात् सर्वज्ञ) [हैं], अथवा रुद्र (शिखजी) [जो] तीन नेत्रोंवाले (अर्थात् तीसरे ज्ञानरूपी नेत्रसे अज्ञानजनित कामादिको भस्म करनेवाले) [तथा] त्रिपुरका अन्त करनेवाले [हैं], अथवा इन्द्र [जो] महाऐश्वर्यवाले [तथा] देवताओंके नायक [हैं] (अर्थात् जगत्की उत्पत्ति तथा संहार करनेमें समर्थ और महाबली देवता भी कोई) रामजीके [आगे] युद्धमें नहीं ठहर सकते ॥४४॥

[हनुमान्जीने जैसे यहाँ रावणके सामने अपनेको 'तीनों लोकोंके ईश्वर भगवान् राम' का 'दास' कहा है वैसे ही (सीताजीके सामने सुन्दरकाण्ड सर्ग २६ श्लोक २०, इत्यादि) अन्य स्थलोंमें भी अपनेको उन्हींका दास कहा है। परन्तु लौकिक दृष्टिसे तो हनुमान्जी अपनेको सुग्रीवका ही दास कह सकते थे। रामके दास तो उनमें अवताररूपि रहनेके ही कारण अर्थात् परम वैष्णव होनेके ही कारण थे। इस उद्धरणमें भी ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्रका तो नाम है परन्तु विष्णुका नाम केवल इसीलिये नहीं है कि राम स्वयं ही विष्णुके अवतार थे।]

## युद्धकाण्डके प्रमाण

१६—(युद्धकाण्ड सर्ग १७)—

[ रावणका पत्न छोड़कर आया हुआ विभीषण अपने जानेका समाचार रामके पास पहुँचानेके लिये कहता है—]

सोऽहं परितस्तन दासवच्चावमानितः ।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥१६॥

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महारमने ।

सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥१७॥

[ मेरी बात न माननेवाले ] उस (रावण) से कठोर बचन कहा हुआ और दासके समान अपमानित हुआ मैं यह (विभीषण अब), पुत्रों और स्त्री [ सब ] को छोड़कर श्रीरामजीके शरण आया हूँ [ इससे विभीषणने एक सच्चे वैष्णवके समान 'आत्मनिवेद्य' को दर्शाया है ] ॥१६॥ सब जोकोंके शरण [ तथा जगत्के ] महान् आत्मा रामसे शीघ्र मुक्त विभीषणको उपस्थित हुआ निवेदित करो [ 'महात्मने' और 'सर्वलोकशरण्याय' पर तिलकव्याख्याकारने लिखा है कि विभवाके द्वारा कैकसीको दिये गये—'मम वंशानुरूपश्च (पः स) धर्मात्मा च भविष्यति (च न संशयः)'—इत्यादि (उत्तरकाण्ड सर्ग ६ श्लोक २७) वरदानके अनुसार 'सावित्र' होनेके कारण और ब्रह्माजीसे भी उसी प्रकारका वर पाये होनेके कारण विभीषण रामके विषयमें यह जानता था कि वे सर्वलोकलक्षा और सर्वलोकान्तर्वासी भगवान्का अवतार हैं एवं सब जोकोंके शरण और महान् आत्मा हैं ] ॥१७॥

वहाँ 'महात्मने' का अर्थ—

२०—किमात्मानंमहात्मानमात्मानं नावबुध्यसे ॥

(बा० यु० का० १८३ ४३)

अर्थात् [मायामयी मीताको वाल्विक मीता जानकर इन्द्रजित्से आहत हुई देखकर इन्द्रमान्ने जब यह संवाद रामसे निवेदित किया तब वे शोकमें अत्यन्त विह्वल हो गये। उन्हें समझते हुए लक्ष्मणजीने कहा कि हे दीर्घ-भुजाओंवाले और राक्षस स्यका मत-धारण-करनेवाले नरश्रेष्ठ (राम) डडो! क्या तुम अपनेको महान् आत्मा (अर्थात् 'परमात्मा'—तिलक-व्याख्या) नहीं जानते [ जो ऐसा शोक करते हो ]—इस स्थलके समान 'परमात्मा' ही जेना होगा। तथापि यदि कोई इठवरा न माने, तो 'सर्वलोकशरण्याय' का अन्य अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि हमारे प्रदर्शित अनेक स्थलोंमें 'लोक' का अर्थ 'पृथिव्यादि' लिया गया है

न कि 'प्रजाजन।' अतः इन विशेषणोंसे ऐसे स्थलोंमें रामायणकारको रामजी भगवत्तार करके ही हट है।

२१—(युद्धकाण्ड सर्ग १७)—

[ विभीषणके भावकी परीक्षाके सम्बन्धमें वानर लोग रामसे कहते हैं—

अज्ञातं नास्ति ते किञ्चित् त्रिषु लोकेषु राघव ।

आत्मानं पूजयन् राम पृच्छत्यस्मान् सुदत्तया ॥२१॥

हे राम, तुमको तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है (अर्थात् तुम 'सर्वज्ञ' भगवान् हो) तथापि हे राम ! तुम अपने आपको ही वरा बनाते हुए (अर्थात् अपने ही बहपन-के कारणसे) हमें सुहृद्भावसे पूजते हो ॥२१॥

२२—(युद्धकाण्ड सर्ग १८)—

[ विभीषणके विषयमें जब सुग्रीवने कहा कि यह कुटिल राक्षस रावणका भ्राता है और इसलिये आया है कि आप या लक्ष्मण या मैं जब इसकी ओरसे विश्वस्त हो जावें तो यह हमपर प्रहार करे, तब रामने इसपर विचार करके शुभतर उत्तर दिया—]

स दुष्टो वायुदुष्टो वा किमेव रजनीचरः ।

सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ॥२२॥

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।

अद्भुतयज्ञेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥२३॥

मनुदेव प्रपन्नाय तवाऽस्मीति च याचत ।

अमयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भ्रतं मम ॥२४॥

यह चाहे दुष्ट हो अथवा अदुष्ट, [ परन्तु ] क्या यह राक्षस किसी प्रकारसे मेरा अणुमात्र भी अहित कर सकता है ? ॥ २२ ॥ [ क्योंकि ] हे वानरराज [ यदि मैं ] चाहूँ [ तो सभी ] पिशाचों, दानवों, यक्षों और पृथिवीभरके उन (रावणादि समस्त) राक्षसोंको [केवल] अक्रुद्धीके अग्रभागमें ही मार डालूँ [इससे राम भगवान्ने अपने विषयमें 'सङ्कल्पसिद्धि'रूप ईश्वरताका चिह्न दर्शाया है। यद्यपि मुझे अपने अतिरिक्त किसी दूसरे सहायकी आवश्यकता नहीं है तथापि मेरे अवतारका प्रयोजन मनुष्योंको संसारकी मर्षादा सिलाना ही है अतएव मैं मानुषमर्षादामें स्थित होकर तुम-जैसे सहायकी प्राप्ति इत्यादि व्यवहारकी अपेक्षा रखता हूँ—यह तिलकव्याख्याकारका आशय है ] ॥ २३ ॥ ..... ॥ मेरा यह मत है कि जो एक ही (स्वात्मरूपा अनन्य) वृत्तिसे



मुझे प्राप्त होता है अथवा ( औपाधिक भेदका अवलम्बन करके सेवक-स्वामी, शिष्य-गुरु, रक्षक-रक्षक इत्यादि भावसे उपासना करता हुआ ) मैं तुम्हारा हूँ इसप्रकार वाचना करता है उसे सब प्राणियोंकी ओरसे अभय प्रदान करता हूँ [इसपर भी व्याख्याकारने अत्युत्तम विस्तृत व्याख्यान किया है जिससे रामके भगवदवतार होनेमें कोई संदेह नहीं रह जाता है ] ॥३३॥

२३—( युद्धकाण्ड सर्ग १६ )—

[विभीषण चार राक्षसों समेत जाकर रामके चरणोंमें प्रणाम करके स्वयं आत्मनिवेदन करता है—]

अनुजो रावणस्याहं तेन चात्म्यवमानितः ॥४॥

भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ।

परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥५॥

भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥६॥

मैं रावणका छोटा भाई और उससे अपमानित हुआ आपके शरण आया हूँ क्योंकि आप सब भूतोंके शरणके स्थान हैं । [ यहां 'लोक' शब्दके स्थानमें 'भूतों' अर्थात् 'प्राणियों' का नाम लेनेसे अधिकतर स्वरूपसे रामका भगवदवतार होना सूचित किया है । ] मैंने लङ्का और मित्रों और धन [सभी] को [आपके लिये] छोड़ दिया है ॥४-५॥ क्योंकि मेरा राज्य, जीवन, और [सभी] सुख आपहीके अधीन हैं [ इससे सर्वज्ञ भगवान् राम अवश्य रावणका वध करेंगे यह निश्चय व्यक्त है ] ॥६॥

२४—( युद्धकाण्ड सर्ग ३४ )—

[रावणकी जननी और वृद्ध मन्त्रीकी रावणसे कही हुई बातको उन्हीं शब्दोंमें सरमा सीतासे कहती है कि (रत्नो० २१) मैथिली (सीताजी) को सत्कारपूर्वक रामके समर्पण करो क्योंकि जनस्थानमें उनका जो अमृत (अलौकिक) कर्म देखा गया है वही उनके पराक्रमका पर्याप्त निदर्शन (नमूना) है ]

लङ्कनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः ।

वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मतुषो युधि ॥२२॥

[बल्कि रामका एक अनुचर अकेला हनूमान् ही सब राक्षसोंको जीत सकता है तथा] हनूमान्का समुद्रको लाँचना, [सीताको] देखना, और [रामका करार] राक्षसोंको युद्धमें मारना, यह सब युद्धमें कौन मनुष्य कर सकता है ?

[इसलिये न तो हनूमान् वानर हैं और न राम मनुष्य हैं, किन्तु सब देवावनार हैं—(तिलकव्याख्या)] ॥२२॥

२५—(युद्धकाण्ड सर्ग ४०)—

[न केवल हनूमान् ही किन्तु सुग्रीव भी रामको 'लोकनाथ' और अपनेको रामकी ओरके भावानुसार 'मित्र' होता हुआ भी अपनी ओरके भावानुसार 'रामका दास' मानता था जैसा उसने रावणको जलकारते हुए कहा है—]

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ।

न मया मोक्षसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥१०॥

हे राक्षस ! मैं 'लोकोंके नाथ' रामका सखा और दास हूँ । मैं राजाओंके राजा (राम) के तेजसे (अनुगृहीत हुआ) आज तुम्हें न छोड़ूँगा ॥१०॥

२६—(युद्धकाण्ड सर्ग ५०)—

[राम और लक्ष्मणको शरविहृत तथा मोहापन्न देखकर जब विभीषण निराश होकर विज्ञाप करने आता तब सुग्रीवने कहा कि हे धर्मज्ञ विभीषण ! लङ्कामें सपुत्र रावणका मनोरथ पूरा होनेका नहीं है बल्कि तू ही लङ्काका राजा होगा और—]

गरुडाधिष्ठितावेनातुमी गधवलक्ष्मणौ ।

त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं गवणं रणे ॥२२॥

गरुडसे अधिष्ठित हुए वे दोनों, राम और लक्ष्मण, मोह छोड़कर रणमें अनुयायियों समेत रावणको मारेंगे [ विभीषणको सान्त्वना देनेवाले इस वाक्यसे सुग्रीवने अपना, रामजी के सम्बन्धमें भगवदवतार होनेका, ज्ञान सूचित किया ] ॥२२॥

[(रत्नो० ३६) तब एक मुहूर्तके पश्चात् वानरोंने विनताके पुत्र महाबली गरुडको प्रज्वलन्त अग्निके सहश देखा और (रत्नो० ३७) गरुडको आया देखकर वे नाग जिन्होंने शर बनकर राम-लक्ष्मणको बाँध रखा था भाग लड़े हुए । (रत्नो० ३८-३९) तब गरुडके हस्तस्पर्शसे उनके सब बाँध (जग) भर गये और (रत्नो० ४०) उनका रूप, बलादि पहलसे दूना मिलकर आया । (रत्नो० ४४-४६) रामके पछनेपर गरुडने अपना परिचय इसप्रकार दिया—]

अहं सखाते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिर्भरः ।

गरुमानिह संप्राप्तो युवयोः साक्षाकारणात् ॥४६॥

मैं तुम्हारा बाहिर सखरब करनेवाला प्राण एवं प्रिय मित्र गल्ल तुम दोनोंकी सहायताके हेतु यहाँ आया हूँ [बहिःसञ्चारी 'प्राण' कहनेसे गल्लने विषयवतार राम-लक्ष्मणके साथ विष्णुवाहनके रूपसे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित किया है। अन्यथा रत्नोक्तके पूर्वाह्नका अर्थ असंगत होगा] ॥४६॥

२७—(युद्धकाण्ड सर्ग ५६)—

[रावणने लक्ष्मणके शक्तिबाण जगनेपर, इस भवसे कि पूर्वसदृश कहीं फिर भी न जी उठे, रामको असहाय कर देनेके अभिप्रायसे, लक्ष्मणको समुद्रमें फेंक देनेके लिये उठाना चाहा। परन्तु—]

हिमवान् मन्दरो मेन्त्रैलोक्यं वा सहामरैः ।

शक्यं भुजाम्यामुद्धर्तुं न शक्यो मरतानुजः ॥१०९॥

शक्त्या ब्राह्म्या तु सौमित्रिस्ताडितोऽपि स्तनान्तरे ।

विष्णोरमीमांस्यमगमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ॥११०॥

ततो दानवदर्पणं सौमित्रि देवकण्ठकः ।

तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥१११॥

हनूमानश्च तेजस्वी लक्ष्मणं गवणार्दितम् ॥११२॥

आनयद्वाघवाभ्यां बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ।

वायुमनोः सुहृत्वेन भक्त्या परमया च सः ।

शत्रूणां प्रकम्पोऽपि लघुरवमगमत् कपेः ॥११३॥

आश्वस्तश्च विशत्यश्च लक्ष्मणः शत्रुमृदुनः ।

विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥११४॥

गिरा गम्भीरया गमो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥११५॥

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।

क नु राक्षमशार्दूक गन्वा मोक्षमवाप्स्यसि ॥११६॥

यदीन्द्रवैवस्वनभास्करान् वा

स्वयम्भु-वैश्वानर-शङ्करान् वा ।

गमिष्यसि त्वं दशधा दिशो वा

तथापि मे नाद्य गतो विमादयसे ॥११७॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः ।

वायुपुत्रं महावगं वहन्तं राघवं रणे ॥११८॥

रोषेण महताऽऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।

आजघान शरैर्दीप्तैः कालान्तराश्लोपमैः ॥११९॥

[जिस रावणके लिये] हिमालय, मन्दर, मेरु ( ये पर्वत ) अथवा देवताओं सहित तीनों लोकका ( दो )

भुजाओंसे उठा लेना सहज था [ वह ] भरतके छोटे भाई ( लक्ष्मण ) को न उठा सका ॥१०९॥ [ क्योंकि ] सुमित्राके पुत्र ( लक्ष्मण ) ने वचःस्थलके मध्यमें ब्राह्मी शक्तिद्वारा आहत होते हुए भी, अपने आपको, निःसंशय विष्णुके अंश होनेका ( अथवा चिन्तन न किया जा सकनेवाला विष्णुका भाग अपने प्रति ) अनुस्मरण किया [ तिलकम्पाख्या— अपनी ही वस्तु अपने आप ( अर्थात् स्वामी ) को नहीं मारती है इस आशयसे लक्ष्मणने ब्रह्मशक्तिमूलक आपत्तिसे अपना रक्षक करनेके लिये 'मैं भगवान्‌के तेजका अंश ही हूँ' ऐसा ध्यान किया। माया-मानुष-शरीर-भारीका ऐसा ध्यान करना औरोंकी दृढ़ प्रतीतिके लिये है, परन्तु सर्वथा नहीं होता। इसप्रकार लक्ष्मणने 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी भावनाके द्वारा अपने शरीरको भारी कर दिया था, यह स्पष्ट है ] ॥११०॥ तब ( अर्थात् लक्ष्मणके अपनी महिमाका अनुसन्धान करनेपर ) देवोंका कण्टक ( रावण ) दानवोंके दर्पका हनन करनेवाले सुमित्रापुत्र ( लक्ष्मण ) को ( दो ) बाहुओंमें दबाकर हिलाने-डुलानेमें भी समर्थ न हो सका [ तब उठा लेनेमें तो क्या समर्थ होता ] ॥१११॥ ..... ॥

तदनन्तर रावणसे पीड़ित उन लक्ष्मणजीको तेजस्वी हनूमान् अपनी भुजाओंसे परिग्रहण करके रामके समीप ले आये। वह ( लक्ष्मणजी ) शत्रुओं ( अर्थात् रावण तथा उसके सहायभूत अनुबरो ) के लिये अग्रकम्प ( हिलाने-डुलानेको अशक्य ) होते हुए भी वायुपुत्र वानर ( हनूमान् ) के लिये मित्रभाव और परमभक्तिके कारण लघु ( हलके ) हो गये [ भगवान् वा भगवद्भक्तारोंका यह केवल भक्तोंके सहज वश होना स्वाभाविक ही है ] ॥११६-११७॥ ..... ॥ शत्रुविनाशक लक्ष्मण अपने विषयमें विष्णुके निःसंशय वा अचिन्त्य अंश [ होने ] का अनुस्मरण करते हुए आरवन्त ( शान्तियुक्त ) और विशरम्य ( चाब-रहित अर्थात् सब गात्रोंमें नीरोग ) [ हो गये ] ॥११८॥ ..... ॥ [ कुछ हुए ] राम गम्भीर वाणीसे राक्षसोंके राजा ( रावण ) से बोले ॥११९॥ हे राक्षससिंह, ठहर ठहर, न मेरा ही ऐसा अपकार करके मला कहाँ जाकर छुटकारा पावेगा ? ॥१२०॥ यदि नू हृन्, यम और सूर्यके अथवा स्वयम्भु ( ब्रह्माजी ), अग्नि और शङ्कर ( शिवजी ) के शरण वा दश प्रकारकी दिशाओं [ के अन्तों ] में भी जावेगा तो भी [ वहाँ ] गया हुआ [ भी ] आज मुझसे नहीं छूट सकता ( अर्थात् आज मैं तुम्हें न छोड़ूँगा ) [ वहाँ भी

महा, शङ्करादि देवोंके साथ विष्णुका नाम नहीं है क्योंकि राम स्वयं ही विष्णु थे ] ॥१२८॥ रामका बचन सुनकर महाबलवान् राक्षसराज (रावण) ने महारोष (अतिक्रोध) से आविष्ट होते हुए और 'पूर्व वैरका अनुसरण करते हुए,' महावेगवाले वायुसुत (हनुमान्) को [जो] रथमें रामको [अपने ऊपर] चढ़ाये हुए [थे], प्रलयकाजकी अग्निज्वालाओं सरीखे दीप्त शरीरसे मारा [यहाँ रावणका 'पूर्ववैर' या तो हनुमान्से या रामसे होना चाहिये। वर्तमान शरीरोंमें दोनोंसे उसका वैर जबोत ही था जो 'पूर्व' नहीं कहा जा सकता। हनुमान्जीके वर्तमान शरीरसे पूर्व रावणका वैर उनसे तो कुछ नहीं था किन्तु उनके पिता वायुसे इसलिये था कि वे भी उसके शत्रु देवोंमेंसे एक थे। परन्तु यह वैर भी कुछ विशेष तीव्र नहीं हो सकता। अतः रावणके अपने हिरण्यकशिपु आदि पूर्वजन्मोंमें जो वैर नृसिंहाद्यवतारधारी विष्णुसे था उसीसे यहाँ रामायणकारका अभिप्राय प्रतीत होता है ] ॥१३१-१३२॥

२८—( युद्धकाण्ड सर्ग १०८ )—

[ इन्द्रके भेजे हुए रथके सारथि (मातलि) ने राम और रावणके युद्धको रात-दिन मुहूर्त-कण कभी न रुकने-वाला देखा, और रामके जबको अवतक न देखा ]

अथ संस्मारयामास मानवी राघवं तदा ।  
अजाननिव किं वीर त्वमेवमनुवर्तसे ॥१॥  
विमृजाऽहमै वधाय त्वमखं पैतामहं प्रभो ।  
विनाशकाणः कथितो यः सुरैः साऽद्य वर्तते ॥२॥  
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलः ।  
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३॥

तब तो मातलिनने उसी समय रामको स्मरण दिलाया कि हे वीर ! तुम क्यों ऐसा ध्वजहार कर रहे हो, मानो जानते हो न हो ॥१॥ [इसे] मारनेके लिये 'हे प्रभो' तुम पितामहका (आज्ञा) आज इसकी ओर चलाओ। देवताओंने [इसके] विनाशका जो समय कहा था वह अब चालू है ॥२॥ तब मातलिके उस वाक्यसे स्मरण दिखाये हुए उन (विष्णुवतार) रामने निःश्वास लेते हुए सर्पके समान दीप्त शर (आज्ञाका) को ग्रहण किया ॥३॥

[ यहाँ देवेन्द्रका सारथि देवलोकाभिर्णीत बातोंका 'स्मरण' रामको विष्णुवतार होनेके कारण ही दिला सकता है। मनुष्यमात्र होकर राम मातलिके कहनेपर भौचक-से

देखते रह जाते और मातलिका स्मरण दिलाता भी बिल्कुल असमर्थ होता । ]

२९—( युद्धकाण्ड सर्ग १११ )—

[ रावणकी स्नेह पत्नी मन्दोदरी पतिको रामके हाथसे मरा हुआ देखकर विलाप करने लगी (श्लोक १-२)। उसे विरवास न हुआ कि देवादि सर्व जगत्को दृष्टानेवाले रावणको मानुषमात्र रामने क्योंकर मारा (श्लोक ३-८) ! अथवा स्वयं बभराज रामरूपसे मायाका प्रयोग करके भाये होंगे (श्लोक ९)। अथवा इन्द्रने (रामरूप धारण करके) तुम्हें मारा होगा, परन्तु तुम-जैसे महाबलीके सामने युद्धमें लड़े होनेकी भी शक्ति तो बेचारे इन्द्रमें नहीं है (श्लोक १०-११)। अतः— ]

व्यक्रमेण महायोगी परमात्मा सनातनः ॥१॥  
अनादिमध्यमिधना महतः परमो महान् ।  
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ॥२॥  
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजयः शाश्वतो ध्रुवः ।  
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥३॥  
सर्वैः परिवृतो देवैर्वीरत्वमुपागतैः ।  
सर्वलोकेश्वरः श्रीमल्लोकानां हितकाम्यया ॥४॥  
सराक्षसपरीवारं देवशत्रुं भयावहम् ।  
इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ॥५॥  
स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ।  
यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुमिर्वृतः ॥६॥  
खरस्तु निहतो आता तदा रामो न मानुषः ।  
यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशं सुरैरपि ॥७॥  
प्रविष्टो हनुमान् वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ।  
क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥८॥  
उच्यमाने न गृहासि तस्येयं व्युष्टिरागता ॥९॥  
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥१०॥

यह (राम) प्रकटरूपसे (सचमुच ही) महायोगी (अर्थात् स्वाभाविक सर्वशक्तियुक्त भगवान् योगेश्वर) सनातन (सदा रहनेवाले) परमात्मा (अर्थात् सर्व आत्माओंके भी अन्तर्धामी आत्मरूप ईश्वर) ॥१॥ आदि (जन्म) मय (वृद्धि) और निधन (नाश) से रहित, महत्से भी परम महान् [ 'महतो महीषान्' श्रुतिके अनुसार ], तमः (अज्ञान) से परे [ 'तमसः परस्तात्' श्रुतिके अनुसार ], धाता (सब भूतोंके सृजनेवाले) [ 'यतो वा इमानि भूतानि

जायन्ते' श्रुतिके अनुसार], [अब उनके विग्रहगुणोंको कहती है—] शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले ॥१२॥ इत्यर्थे श्रीवत्स [का चिह्न धारण करने] वाले, जिनसे लक्ष्मी कभी पृथक् नहीं होती, जो जीते नहीं जा सकते, शाश्वत (अपचय नामक भावविचारसे रहित), भुव (परिग्रामरहित) [यहाँ तक भगवान्‌को कृष्ण भावविचारोंसे रहित बतलाया], मनुष्यका रूप धारण करने हुए और सत्य पराक्रमवाले विष्णु ही हैं ॥१३॥ [जो] बानररूपको प्राप्त हुए सब देवोंसे विरे हैं (अर्थात् ऐसे देवोंको अपना सहाय बनाये हुए हैं। जोकोंकी हितकामनासे [ऐसे] श्रीमान् सर्वलोकेश्वरने देवोंके भयानक शत्रु [रूप तुमको] राक्षसपरिचारसमेत मारा है। तुमने पहले इन्द्रियोंको [कठिन तपस्याद्वारा] जीतकर [तब] त्रिकोकीको जीता था। मानो उसी बैरका स्मरण करते हुए इन्द्रियोंने तुम्हें जीत रक्खा था [जिससे तुम सीता-अहरणमें प्रवृत्त हुए और अन्तमें मारे गये]। ठीक उसी समय जब जनस्थान (पञ्चवटी) में बहुतसे राक्षसोंसे संयुक्त आता खर मारा गया था [यह सिद्ध हो चुका था कि] राम मनुष्य नहीं (किन्तु साक्षात् ईश्वर) हैं। ठीक उसी समय जब देवताओंको भी भगव्य लङ्कानगरीमें इन्सान् घुस आए थे [उनके] बलसे हमलोग जयित हो चुके थे। मेरी कही हुई इस बातको कि रामसे सन्धि कर जो जो तुमने ग्रहण नहीं किया उसीका यह फल प्राप्त हुआ है ॥१४—१५॥.....॥ हे ! मेरे स्वामी तुम निश्चय पतिव्रता (सीता) के शपथसे बन्ध हुए हो ॥२३॥

३०—(युद्धकाण्ड सग ११७)—

[ (श्लोक १—२) सीताके अग्निप्रवेशके समय जब राम लिङ्गचित्त हुए तब कुबेर, बभ्रु, पितृगण, १००० नेत्रोंवाले इन्द्र, जलेश्वर वरुण, त्रिनेत्र कृष्णज महादेवजी, सर्वलोककर्ता ब्रह्माजी, इन सब देवोंने विमानोंद्वारा लङ्कामें रामके समीप आकर कहा—]

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां त्रिभुः ।

..... ।

कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नाबनुदध्यसे ॥६॥

ऋतधामा बसुः पूर्वं बसूनां च प्रजापतिः ।

त्रयाणामपि लोकनामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥७॥

वृद्धाणामष्टमो वरुः साध्यानामपि पञ्चमः ।

अश्विनौ चापि कर्णौ ते मूर्धाचन्द्रमसी दशौ ॥८॥

अन्ते चादौ च मध्ये च हृदयसे च परंतप ।

उपेक्ष्यसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ॥९॥

इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ।

अब्रवीत् त्रिदशभेष्टान् रामो धर्ममृतां वरः ॥१०॥

आत्मानं मानुषं मन्यं रामं दशरथात्मजम् ।

सोऽहं यच्च यतश्चाहं मगनांस्तद् ब्रवीतु मे ॥११॥

इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।

अब्रवीच्छृणु मे वाक्यं सत्यं सत्यपराक्रम ॥१२॥

(आर्ष-स्तव)

भवानारायणा देवः श्रीमाध्वकायुधः प्रभुः ।

एकशृङ्गा वराहस्त्वं भूतमव्यसपक्षजित् ॥१३॥

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।

लोकानां त्वं परो धर्मो विष्णुस्तेनश्चतुर्भुजः ॥१४॥

शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुष्टपोतमः ।

अजितः क्षत्रभृग्विष्णुः कृष्णशैव बृहद्वरुः ॥१५॥

सेनानाग्रांमणीः सर्वं त्वं बुद्धिस्त्वं क्षमा दमः ।

प्रभवश्चाऽव्ययश्च त्वामुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥१६॥

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मानामो रणान्तकृत् ।

शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥१७॥

सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः ।

त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥१८॥

सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ।

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परात्परः ॥१९॥

प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति ।

हृदयसे सर्वभूतेषु गोंषु च ब्राह्मणेषु च ॥२०॥

दिक्षु सर्वेषु गगने पर्वतेषु नदीषु च ।

सहस्रचरणः श्रीमाञ् शतशीर्षः सहस्रदह् ॥२१॥

त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।

अन्ते पृथिव्याः सलिले हृदयसे त्वं महारगः ॥२२॥

श्रील्लोकान्धारयन्राम देवगणवर्चदानवान् ।

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥२३॥

देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो ।

निभेवस्ते स्मृता रात्रिकन्मेषो दिवसस्तथा ॥२४॥

संस्कारास्त्वमवन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना ।

जगत्सर्वं शरीरं ते स्वैर्यं ते वसुधातकम् ॥२५॥

अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीनत्सलक्षणः ।  
 त्वया लोकाजयः कान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥ २६ ॥  
 महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम् ।  
 सीता लक्ष्मीभेवान्निणुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥ २७ ॥  
 वषाथं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।  
 तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां नर ॥ २८ ॥  
 निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।  
 अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः ॥ २९ ॥  
 अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।  
 अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥ ३० ॥  
 ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।  
 प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥  
 इममार्थस्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम् ।  
 ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां परामवः ॥ ३२ ॥

[ यहाँ सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिये कि उक्त देवोंके साथ विष्णुके आनेका कोई प्रसङ्ग इसीखिमे नहीं है कि राम स्वयं ही विष्णु हैं । ] ( तुम ) सब लोकके कर्ता [ रामके मनुष्य शरीरके विषयमें सर्वलोककर्ता इत्यादि विशेषण उनके मूल ( विष्णु ) स्वरूपके अभिप्रायसे ही दिये गये हैं । तिलकव्याख्या । ] शानियोंमें अष्ट, और विभु ( सर्वव्यापक ) [ होते हुए भी ] क्योंकि अपने आपको [ इन्द्रादि ] देवराजोंमें अष्ट नहीं समझते [ क्योंकि 'विष्णु-मुक्ता वै देवाः' यह श्रुति भी विष्णुको ( अर्थात् तुम्हें ) ही सब देवोंमें प्रमुख बताती है ] ॥ ६ ॥ [ कतकव्याख्यामें 'ऋतधामा' इत्यादि तीन श्लोक ( ७-९ ) स्वीकार नहीं किये गये हैं । तीर्थव्याख्यामें इनका व्याख्यान अधोलिखित प्रकारसे किया गया है—] पूर्व ( अर्थात् पूर्वकल्पमें अथवा सृष्टिसे पूर्व तुम ) वसुधों [ के मध्य ] में ऋतधामा नामक वसु और प्रजापति [ हुए थे तथा ] तीनों ही लोकोंके आविर्कर्ता ( अर्थात् अष्ट और अष्टाविपतिरूप आदि-सृष्टिके कर्ता, एवं ) स्वयंप्रभु ( अर्थात् सबके नियन्ता होते हुए स्वयं किसीसे नियमित न होनेवाले ) हो ॥ ७ ॥ उद्धोंमें आठवें रुद्र ( अर्थात् महादेवजी ) और साध्योंमें पाँचवें ( अर्थात् वीर्यवान् भामक ) भी [ तुम्हीं हो ] । [ विराट्-रूपका वर्णन करते हैं—] दोनों अधिनीकुमार तुम्हारे ( दोनों ) कान हैं, स्वर्ग और चन्द्रमा [ तुम्हारी दोनों ] आँखें हैं ॥ ८ ॥ हे शत्रुओंको तपानेवाले ( भगवन् विष्णो )

[ तुम्हीं तुम ] अन्त, आवि और मध्यमें दिसावी पड़ते हो [ इससे यह सूचित किया कि सर्वभूततत्त्व तुम्हीं हो ] । और [ अग्निप्रवेशके समय ] सीताकी उपेक्षा साधारण मनुष्यकी भाँति कर रहे हो ॥ ९ ॥

[ इन्द्रसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त ] उन ( पूर्वोंके ) लोकपालों-द्वारा ऐसा कहे गये लोकस्वामी रघुकुलोत्पन्न धर्मधारियोंमें अष्ट राम अष्ट देवोंसे बोले— ॥ १० ॥ मैं अपने आपको मनुष्य ( एवं ) वरदयका पुत्र राम मानता हूँ । ऐसा ( मनुष्यशरीरमें ग्रहंभुविवाला ) मैं जो ( परमार्थस्वरूप ) और जहाँसे ( जिस कारणसे ) हूँ उसे आप ( भगवान् ब्रह्माजी ) मुझको बतावें [ यही, शिष्यकी जिज्ञासा होनेपर गुरुद्वारा ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया जानेका, मार्ग सर्वत्र श्रुति-स्मृतिवर्गोंमें प्रसिद्ध है । इसी कारणसे रामने अपने भक्तोंको अपना स्वरूप बोधन करानेके लिये ब्रह्म शिष्यकी भाँति जिज्ञासु बनकर सर्वज्ञ गुरु ब्रह्माजीसे प्रश्न किया— तिलकव्याख्या ] ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञानियोंमें अष्ट ब्रह्मज्ञाने ऐसा पूछते हुए काङ्क्ष ( राम ) से कहा, हे सत्य पराक्रमवाले ( विष्णो ) मेरे सत्य वाक्यको सुनो ॥ १२ ॥

[ ब्रह्माजीने रामके प्रश्नके उत्तरमें श्लोक १३ से ३२ तकका 'आर्षस्तव' नामक दिव्य पुरातन इतिहास सुनाया । इसमें रामको-नारायणदेव, चक्रायुध, एकशृङ्गवराह, अक्षरब्रह्म, विष्णुस्तेन, चतुर्भुज, शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, पुरुषोत्तम पुरुष, विष्णु, कृष्ण, सृष्टि-प्रलय [कारण], उपेन्द्र, मधुसूदन, पद्मानाभ, तीनों लोकोंका आविर्कर्ता, स्वयंप्रभु, यज्ञ, वष्टकार, ओङ्कार, दिनान्तमें पृथ्वीके जलपर महोरग ( अनन्त वा शेषनाग ) के ऊपर सोनेवाला, ( २१-२४ ) विराट्स्वरूप, श्रीवत्सलक्षण, भामनावतारमें तीन उग्राँसे तीनों लोक नापकर और बलिको बाँधकर महेन्द्रको राजा बनानेवाला—वतलाकर ( श्लोक २७-२९में ) स्पष्ट कहा गया है कि—]

सीता [ साक्षात् ] जयमी हैं और आप विष्णुदेव एवं कृष्ण ( अथवा रथामवर्ण ) प्रजापति हैं ॥ २७ ॥ राक्षसके बचके लिये इसलोकमें मनुष्यशरीरमें आये हैं । हे धर्मधारियोंमें अष्ट! तुम हमारा वही कार्य कर चुके हो ॥ २८ ॥ राक्षस मारा गया, [ अब ] तुम [ ऊँच काजतक महाराजपदसे ] प्रसन्न होते हुए ब्रह्मलोकको [ जाँट ] चलो ..... ॥ २९ ॥

[ रामके ब्रह्मत्वका प्रतिपादन करनेवाले इस ब्रह्मांक वाक्यको सुनकर लोकसाधी अभिदेव सीताजीको गोदमें

लिये चितासे निकल आये और सुरूपवती सीताको रामके अर्पण करके बोले कि यह तुम्हारी सीता है जिसमें कोई पाप नहीं है ( सर्ग ११८ श्लो० १-५ )। इसे ग्रहण करो ( १० )। रामने ऐसा ही किया। इसके अनन्तर सर्ग ११९ में महेश्वरने रामसे कहा है कि हर्ष है कि तुम यह कर्म कर चुके (श्लो० २) अब अपनी माताओं, भाइयों तथा सुहृदजनोंको आनन्दित करके, अयोध्याका राज्य पाकर एवं वंश स्थापन करके तथा अश्वमेध-यज्ञ करके ब्रह्मलोकको जाना चाहिये ( ४-६ )। वेल्हे तुम्हारे द्वारा तारित हुए यह राजा दशरथ जिन्हें इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है विमानपर विराजमान हैं, तुम और लक्ष्मण इन्हें प्रणाम करो ( ७-८ ) प्रभुने वैसा ही किया और पिताको बेला ( १-१० )। विमानस्थ राजा दशरथने अत्यन्त इर्षित होते हुए रामको गोदमें बिठाकर और गलेसे लगा कर कहा ( ११-१२ )। तुम्हारे वनगमनके चिरहसे स्वर्ग भी मुझे अश्रद्धा न लगा, किन्तु कैकेयीकी बातों मेरे हृदयमें गहरी रहीं ( १३-१४ )। आज तुम्हें और लक्ष्मणको सकुशल देख और छातीसे लगाकर मैं दुःखसे ऐसा छूट गया हूँ जैसे कुहरसे सूर्य ( १५ ) हे पुत्र ! तुम-जैसे महात्मा सुपुत्रने मुझे तार दिया जैसे महाबलकने धर्मात्मा कदोल माछणको ( १६ )]

३१—( युद्धकाण्ड सर्ग ११६ )—

इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।

वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥ १.७॥

पते सेन्द्राक्षयो लोकः। सिद्धाश्च परमर्षयः ।

अभिवाद्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥

पतत् तदुक्तमन्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।

देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥ ३० ॥

और हे सौम्य ! अब मैंने जाना है कि जिसप्रकार रावणके वधके लिये सुरेश्वरों ( देवों ) से [ प्रार्थित ] पुरुषोत्तम ( भगवान् विष्णुरूप तुम ) यहाँ [ मेरे पुत्रके शरीर-में ] छिपे थे ॥ १७ ॥ ..... [ अनन्तर राजाने लक्ष्मणको रामकी शृङ्गामें ही परम-कल्याणकी-प्राप्तिका उपदेश करते हुए समझाया और कहा— ] वे इन्द्रसहित तीनों लोक तथा सिद्ध और परमर्षिलोग [ इन ] महात्मा ( परमात्मा ) पुरुषोत्तम ( विष्णुरूप राम ) का प्रणाम करके अर्चन कर रहे हैं ॥ २६ ॥ हे सौम्य ( वरुण लक्ष्मण ) शत्रुघ्नोंको तपानेवाले राम [ रूप तब ही ] वह ( प्रसिद्ध ) ब्रह्मसंमित ( वेदप्रतिपादित ) अन्यक्त अक्षर है जो देवोंका

हृदय और गुह्य [ 'देवानां हृदयं ब्रह्माऽन्कविन्दत्' तथा 'पतदे महोपनिषदं देवानां गुह्यम्' इत्यादि श्रुतिवाक्योंमें ] कहा गया है ॥ ३० ॥

३२—( युद्धकाण्ड अन्तिम सर्ग १२८ )—

[ अन्तमें समस्त रामायणके अक्षर वा पाठ करनेवालेको सदा जो फल मिला करता है उसके प्रसङ्गमें कहा गया है कि— ]

प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ।

आदिदेवो महानाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ १.१.७ ॥

एवमेतत्पुराजुत्तमाख्यानं मद्रमस्तु वः ।

प्रव्याहरत विसन्वं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १.१.८ ॥

राम विरन्तर प्रसन्न होते हैं [ और ] निश्चय करके वे [ ही ] सनातन विष्णु आविर्बुध महाबाहु हरि नारायण प्रभु हैं ॥ ११७ ॥ इसप्रकार इस ऐतिहासिक आख्यानको निःशङ्क उच्चारण किया करो, तुम्हारा [ सदा ] कल्याण हो, और विष्णुका बल बढ़े ॥ ११८ ॥

सूत्रमेषिकासे तथा व्याख्याकारोंके अभिप्रायानुसार, विज्ञजिलित रामायण-वाक्योंमें तथा ऐसे ही अनेक अनुवृद्ध स्थलोंमें भी अवतार-वाक्या सङ्कत मिलेगा जिनका अधिक विस्तार यहाँ लेखदृष्टिके भयसे नहीं किया जा सकता—

३३—ठत्तरोत्तरयुक्ता च वक्ता वाचस्पतिर्यथा ।

सुभूरायतताम्राक्षः साक्षाद्विष्णुरिव स्वयम् ॥ ( २।२।४३ )

३४—हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै ।

मया तु पूर्वं त्वं मोहाज्ज्ञातः पुरुषर्षभ ॥

कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया ।

वदेहो च महामाता लक्ष्मणश्च महायशः ॥ ( ३।४।१४ १.५ )

३५—अहंमवाहरिष्यामि सर्वाल्लोकान्महामुने ।

आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ ( ३।५।३३ )

३६—त्वमिक्त्वाकुलुस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।

प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मघवानिव ॥ ( ३।६।८ )

३७—अहंमवाहरिष्यामि स्वयं लोकान् महामुने ।

आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ ( ३।७।१४ )

३८—सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ॥ ( ३।१५।३२ )

३९—तानहं समतिक्रान्ता राम त्वाऽपूर्वदर्शनात् ।

समुपेतास्मि भावेन मर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥ ( ३।१७।२३ )

वाल्मीकिकृत इस श्लोकमें जो ध्वनि है कदाचित् उसीसे प्रेरित होकर काबिदासको भी ऐसी रचनाकी सूझी थी—

राममन्मथशरेण तडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।  
गन्धर्वद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसति जगाम सा ॥  
( रघुवंश ११/२० )

परन्तु काबिदासके पद्यमें 'अमृत-परार्थता' नामक वाक्य-शेष है जिसकी अपेक्षा आधिक्यिका श्लोक नितान्त निर्बोध है ।

४०—इति राजवंशः सिद्धाः सगणाश्च द्विजर्षभाः ।  
जतकौतूहलास्तस्युविमानस्याश्च देवताः ॥  
जीविष्ट तेजसा रामे संग्रामशिरसि स्थितम् ।  
दृष्ट्वा सर्वोणि मृतानि भयाद्विन्मथिरेतदा ॥  
( ३।२४।२४-२५ )

४१—अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितमनः ।  
अहो वीर्यमहो दाढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥  
पतदयं महतेजा महेन्द्रः पाकशासनः ॥  
शत्रुमङ्गाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरन्दरः ॥  
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।  
पथा वधायै शत्रूणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥  
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥  
रामं चैवाऽव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा ॥  
( ३।३०।३२, ३४, ३५, ३६, ४० )

४२—इह त्वं भव संनद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ।  
अस्यामापतमस्माकं यत्कृत्यं रघुनन्दन ॥  
( ३।४३।४६-४७ )

४३—ततस्त्रिविनतं चापमादायाऽऽमविभूषणम् । ( ३।४४।२ )

४४—असङ्गं संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः ॥  
न चिराच्चौरवासास्तत्रा रामो बुधि वधिष्यतिः ॥ ( ३।५०।२४ )

४५—प्रवर्षितायां वैदेक्ष्यां बभूव सचराचरम् ।  
जगत्सर्वममर्यादं तमसाऽन्वेन संवृतम् ॥  
न वाति मायतस्तत्र निष्प्रभोऽभूदिवाकरः ।  
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा ॥  
कृतं कर्ममिति श्रीमान् व्याजहार पितामहः ।  
प्रहृष्टा व्यथिताश्चासन् सर्वे ते परमर्षयः ॥  
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः ।  
रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यदृच्छया ॥

( ३।५२।९-१२ )

४६—इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् ।

उवाच लक्ष्मणो आता वचनं युक्तमव्ययम् ॥

( ४।१।११४, १२३ )

त्यज्यतां कामनुत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः ।

महात्मानं कृतात्मानमन्त्रमानं नावनुद्ध्यसे ॥

४७—जगतिपतेः प्रमदामवेक्षमाणः । ( ५।३०।४४ )

कुछ व्याख्याकारोंकी दृष्टिसे रावण भी बालि, त्रिशिरादि भगवन्मूर्तियोंके समान रामके हाथसे मृत्यु चाहता था । परन्तु तिलकव्याख्यामें ( अरण्य ० २४। १ इत्यादि स्थलोंमें ) इस मतका युक्तियुक्त खण्डन किया गया है । अतः इस विषयके प्रमाणोंका समावेश प्रस्तुत लेखमें नहीं किया गया है । तथापि अन्तर्गत मूलसे थोड़े ऐसे प्रमाण भी अक्षतार-वाचके शेषक होनेसे यहाँ अन्तमें दिग्दर्शनरूपसे उद्धृत किये जाते हैं—

४८—असह्य तस्या हरणे दृढं मनो

समर्थयामास वचाय रावणः ॥ ( ३।४६।३७ )

४९—क्रोशन्तीं रामरामेति रामेण रहितां वने ।

जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसैनिकः ॥ ( ३।५२।८ )

५०—तां जहार सुसहृष्टो रावणो मृत्युमात्मनः ॥ ( ३।५।४६ )

५१—तदेवा सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोमादुपस्थिता ।

भयात् शकस्त्वां मोक्तुमनिरस्तः स संयुगे ॥ ( ३।५४।२५ )

५२—वचाय सीता सागीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥ ( ६।९४।१२ )

युद्धकाण्डमें सर्ग ३२ के अन्तिम श्लोकसे पूर्व—

रामं मन्यामहे विष्णुं मानुषं रूपमास्थितम् ।

न हि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः ॥

येन बद्धः समुद्रे च सेतुः स परमाद्भुतः ।

कुरुष्व नररात्रेण सन्धिं रामेण रावण ॥

ये दो श्लोक भी किन्हीं रामायण-पोथियोंमें थे, जिनमें प्रथममें स्पष्टतया राम विष्णुके अवतार बताये गये हैं । परन्तु रामकर्मके तिलकसे पता चलता है कि 'कृतक'-व्याख्याकी दृष्टिमें ये दोनों श्लोक प्रचलित हैं, इसी कारणसे प्राचीन व्याख्याकारोंने इनका व्याख्यान नहीं किया । इसी विचारसे हमने भी इस लेखके प्रमाणोंमें इसप्रकारके प्रमाणोंका समावेश नहीं किया है ।

यद्यपि उत्तरकाण्डकी प्रामाणिकता भी युद्धकाण्ड सर्ग ६० श्लोक २-१२ तथा सर्ग ११० श्लोक १२-१३, इत्यादिसे ही सिद्ध है कि जहाँ सूत्ररूपमें उल-उल कथाओंका संकेत

विद्यमान है जो उत्तरकाण्डके सर्ग १०, ११, १७, १८, २१, २४, २६ इत्यादिमें विस्तारसे मिलती हैं और जिनके बिना युद्धकाण्डपर्यन्त रामायणकी अर्थवत्ता भी अपूर्ण ही रहती है क्योंकि उत्तरकाण्डके अतिरिक्त अन्यत्र रामायणभरमें कहीं इनका विशद वर्णन नहीं किया गया है। (और इसप्रकारसे उत्तरकाण्ड एक प्रकारका परिशिष्ट है जो स्वयं आधिक्य वा उनके कुछ ही कालके पश्चात् होनेवाले किसी ऐसे महापुरुषका रचा प्रतीत होता है जिसने

युद्धकाण्डपर्यन्त रामायणकी अपूर्ण बातोंको ही पूर्ण करनेका सफल प्रयत्न किया है) तथापि आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ताओंकी दृष्टिमें उत्तरकाण्ड बालीकृत और अतएव प्रामाणिक नहीं समझा जाता है। इसीसे उत्तरकाण्डके प्रमाणोंको मैंने इस लेखमें स्थान नहीं दिया है, यद्यपि उनकी एक बड़ी संख्या है। इसप्रकार वह लेख वहीं समाप्त करके भगवत्पर्वण करता हूँ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

## उदासी साधु भगवान् श्रीराम

(लेखक—स्वामी श्रीहरिनामदासजी उदासीन महन्, श्रीसाधुदेव)



स्वन्त प्राचीन कालसे भारतवर्ष ही संसारकी सभ्यताका आदिबोत रहा है। यहीसे संसारके समस्त विभागोंमें धर्म, सभ्यता, संस्कृति, विद्या, कला, कौराज आदिके प्रकारक महात्मा, साधु तथा धर्मगुरु जाया करते थे। साधुका स्वरूप ही धर्म-उपदेश, जाति-रक्षा और देश-सेवाकी निरानी है। यही कारण है कि सृष्टिके आदिकालसे आज तक धर्म-रक्षा, देश-सेवाकी बागडोर साधु-महात्माओंके हाथोंमें रही है और आगे भी रहेगी।

भगवान् के अवतार धारणका प्रथम भी साधु-रक्षा ही है—'परित्रायाय साधुना।' यही नहीं मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने अवतार धारणकर अनेक बाल-बालाएँ करते हुए जब जनकपुरमें जाकर धनुष तोड़ा तब परशुरामजीने उदासी साधुके बीर-बानेमें ही आकर बातचीत की थी—

गौर मरीर मूर्ति मल प्राजा । भक्त विसरु त्रिपुंड बिराजा ॥

सीस गटा ससि बदन मुहाम्बा ।

कटि मुनि बसन दूध दुई बाँधे । वनु सर कर कुठार कल बाँधे ॥

सांत मेघ करनी कठिन बरनि न जाब सुरूप ।

धरि मुनि तनु अनु बीररस आये बहै सब भूष ॥

श्रीपरशुरामजीको देखकर सब राजाओंने कड़े होकर विलासमेत अपना-अपना नाम खेते हुए उनके प्रशाम किया। यह साधु-स्वरूपका ही प्रताप था।

तदनन्तर श्रीरामने अपनी चौदह वर्षकी बनवात्रामें उदासी साधुके रूपमें रहकर देश-हित, नीति-उपदेश, लोक-मर्यादा, मल्लचर्यव्रतद्वारा वेदप्रतिपादित साधु शब्दको चरितार्थ करके दिखा दिया। भगवान् त्रिकाक्षवर्षी थे, ऊँचा-नीचा सब जानते थे, उन्हें यह पूर्णतया विदित था कि यदि हम साधुरूप धारण किये बिना ही पृथ्वीका भार उतारेंगे तो आगे महात्मा साधु लोगोंमें साहस मज्जा होकर देश और धर्म-रक्षाके पुण्य कार्योंमें उनको कैसे प्रवृत्त करेगा? जब देश और धर्म-रक्षाका कार्य इनके हाथमें निष्पन्न जायगा तो साधुओंकी महत्ता खुद ही जायगी और गंगा होनेपर इन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ेंगे। जब साधुओंको कष्ट होता है तब मुझे अवतार खेना पड़ता है। इसलिये भगवान् ने पहिले ही साधु-रूप धारणकर सबका कल्याण किया।

हम गुरु रहस्यका पूर्ण ज्ञान श्रीमती महारानी कैकेयी-जीको भी था, तभी उन्होंने अपने पति महाराजा दशरथजीसे वरदान माँगते समय श्रीरामजीके लिये चौदह वर्षके बनवासके साथ-साथ उनके लिये उदासी-साधु-मेघ और तपस्वी-वृत्तिसे रहना भी माँगा—

तापस मेघ विसेव उदासी । चौदह बरस राम बनवासी ॥

महाराजा दशरथजीको यह बात बड़ाघातसे भी अधिक कठोर प्रतीत हुई, पर इसके भीतर जो गुरु रहस्य था उसको वे नहीं समझ सके। यह भगवान् रामकी इच्छा थी। उसमें माता सहायक हो गयी। जिस समय श्रीरामने



कल्याण



रामायणं द्रुमं नौमि रामरक्षां नवांकुरम् ।

गायत्री बीजं वन्द्याय मूर्तं मोक्षं महाफलम् ॥

Lakshminidhas Press Ltd., Cal



साधुसे घरकर बन जानेकी बात सुनी उस समय उनका मुख-  
कमल खिल गया, उनकी मनमानी हो गयी। वे बोले—

मुनि गन मिलन बिसेष बन सबहि मॉति भल मार ।

तेहि भई पितु आयसु बहुहि सम्मति जननी तार ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताका कारण माता-पिताकी आज्ञासे उनकी मनोकामनाकी पूर्ति होना था। भगवान् पुरन्त ही राजोचित वैभव, अलङ्कार और निवास-स्थान त्यागकर वनको चले, वरके रमणीय पदार्थोंका एक बार मुक्कर भी लपकनेका न किया।

‘मुनि पट भूषन भाजन आनी । आगे बरि बोलै मूहु बानी ॥’

‘राम पुरत मुनि मेष बनाई । जले जनक जननी सिर नाई ॥’

माता कैकेयीके दिये मुनि-(साधु)-पट धारणकर श्रीराम-  
ने वनका सीधा मार्ग लिया। उनका उदासी साधुमेधमें वन जाना सुन धर्मपत्नी महारानी सीता कब एक सकती थीं ? उन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया—

की तन प्रान किंकर प्रान । विधि करनव कटु जल न जाना ॥

श्रीरामने वनके अनेक दुःख सुनाकर उनकी परीक्षा ली,  
पर यह प्रतिप्राणा वीर-पत्नी धर्ममें कब पीछे पैर रखनेवाली थी, स्फा कह दिया—

राक्षिय अवच जो अबधि लागि रहत न जानिय प्रान ।

सीताने रामजीके साथ समस्त वनयात्रामें तपस्विनीरूपमें रहकर उनका साथ दिया। यह है हमारे भारतवर्षका गौरवपूर्ण सच्चा पतिव्रत-धर्म। इन दोनोंको साधुरूपमें वन जाने देख लक्ष्मण—रामजीसे एक लक्ष भी पृथक् न रहनेवाले लक्ष्मण—कब उठर सकते थे ? उनके तो जीवन-सर्वस्व प्राण-वन श्रीरामजी ही थे। यह है आनन्दोदके पुरुष स्वरूपका एक उज्ज्वल चित्र।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मणने चौदह वर्षोंतक वनमें प्रेमपूर्वक उदासी साधुमेध धारणकर तदनुकूल व्यवहार और आचरणोंद्वारा साधु शब्दको चरितार्थ कर दिखाया। उन्होंने जटा धारण की, (अनुजमहित सिर जटा बनाये) कप नहीं लाया, केवल कन्द-मूल-फलका भोजन किया—

सिम मुमंत भ्राता सहित कंद-मूल-फल खाय ।

नोट—मुनि नाम साधुका और ऋषि नाम विद्वान् तपस्वी ब्राह्मणका होता है। मुनि और ऋषिके पृथक्त्वको भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने गीतामें बताया है, ‘मुनीनामप्यहं व्यासः’ (१०।१७) ‘महर्षीणां भृगुरहं’ (१०।२५)।—लेखक

जब श्रीरामचन्द्रजी वनमें ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें मिलने गये तब अनेक जगह ऋषि और मुनियोंने उनको उदासी साधुरूपमें देखकर ही प्रथम प्रणाम किया। श्रीरामजी वृद्ध महात्माओंको प्रथम प्रणाम किया करते थे। साधुको साधु आपसमें प्रणाम किया करते हैं। अगर श्रीरामचन्द्रजी ऋषिरूपमें गये होते तो उनको ब्राह्मणसाधु प्रणाम नहीं कर सकते। यदि कहा जाय कि राजा या वल्लिष्ठ जानकर किया होगा तो यह नीतिके विरुद्ध होगा। जब रामजीके पिता महाराजा दशरथजीको कोई ब्राह्मण-साधु प्रणाम नहीं करता था, बल्कि वे ही मुनियों और साधुओंका आगमन सुनकर आगे जाकर प्रणाम कर उनको सादर साथ जाते थे—

मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गयठ कै निप्र समाजा ॥

करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठे आनी ॥

चरन पखार कीन्ह अति पूजा । मो सम धन्य आजु नहि दूजा ॥

तब भला रामजी ऋषिरूपमें होते तो उनको कौन साधु प्रथम प्रणाम कर सकता था और श्रीरामजीको ही यह कब स्वीकार होता ! भगवान् वेद तथा ऋषि-मर्यादा-भंगका कलंक अपने शिरपर क्यों लेते ! वह तो स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। जब वे उदासीन मुनि सुतीक्ष्णके आश्रममें गये तब सुतीक्ष्णने उनको उदासी साधु या तपस्वीके रूपमें देखकर ही प्रथम प्रणाम किया था—‘पंडित लकुट इव चरन्नि लगी ।’

श्रीहनुमान्जीने विग्रहरूपमें होते हुए भी भगवान्को प्रथम प्रणाम किया, इसका कारण भी रामजीका साधुरूपमें होना था, क्योंकि साधु सर्व वस्तुओंका गुरु होता है। इसीसे हनुमान्जीने कोई हानि नहीं समझी। यदि रामजी ऋषिरूपमें होते तो हनुमान्-जैसे पबिडत कब ऐसा कर सकते थे !

जब श्रीशङ्करजीने रामको वनमें देखकर मन-ही-मन प्रणाम किया था, तब भी रामजी उदासी साधुके ही रूपमें थे—

पिता वचन तजि राज उदासी । दंडक वन बिचरत अविनासी ॥

नारदजीने भगवान् रामको पम्पासरपर उदासी साधु-  
रूपमें बैठे देखकर ही प्रथम प्रणाम किया था—

करत दंडवत लिये उठार्ह । राखे बड़ी बार उर लार्ह ॥

—भगवान् भयबा राजा जानकर नहीं किया था। ऐसा करना तो धर्म-मर्यादाके विरुद्ध होता। तब आजकलका-सा मनमानी घरजानीवाला समय नहीं था; गोसाईं तुलसीदासजी उस समयकी मर्यादा दिखाते हुए लिखते हैं—

बरनाश्रम निज निज घरम निरत वेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग ॥

यदि कोई कहे कि नारदजीने भगवान् या राजा जानकर प्रणाम किया था तो उसका उत्तर यह है कि जब वे अयोध्यामें रामचन्द्रजीके पास ब्रह्माजीके भेजे गये थे उस समय रामजी अग्रिय राजकुमारके बेपमें थे, इसलिये उन्होंने नारदजीको देखते ही सहसा उठकर प्रणाम किया—

देखि राम सहसा उठि धाप । करत दंडवत मुनि उर लप ॥

सादर निज आसन बैठारे । जनकसुता तब चरन पखारे ॥

इससे साफ प्रकट है कि अयोध्यामें रामजीने साधुरूप नहीं धारा था इसलिये नारदजीको प्रणाम किया था और पन्पासरोवरपर नारदजीने साधुरूप जानकर ही प्रथम प्रणाम किया था। बाकिने अन्य समय श्रीरामजीके जटाधारी साधुरूपका ही ध्यान किया था—‘स्याम गान्धर्व जटा वनाय ।’

इसी प्रकार महारानी भगवती सीताने भी अपने पतिके स्वरूपका समझ बनयाश्रममें अनुकरण किया है। जब हनुमान्जीने जङ्गलकी अशोक-वाटिकामें सीताजीका दर्शन किया, तब मली-शिरोमणि सीताका शरीर अत्यन्त कृश था और उन्होंने जटाजूट धारण कर रक्खा था—

कस तनु सीत जटा इक बेनी । जपति हृदय रघुपति गुन-अनी ॥

रावण श्रीरामजीको उदासी साधु ही जानता था इसीसे कई जगह अपने वचनोंमें रामजीके लिये तपस्वी शब्दका प्रयोग किया है—‘मन पुत्र वस नर्पामन मन प्रीति’ ‘कहु तपमिन कर वान बहांगी ।’ इत्यादि

यदि किसीको संशय हो कि उदासी भेष तो पहले था ही नहीं फिर भगवान् रामचन्द्रजीका तपस्वी, उदासी, साधु भेषमें रहना लिखकर कहीं गोसाईं तुलसीदासजीने गलती तो नहीं की? प्रिय पाठको ! गोसाईंजीने कोई

गलती नहीं की है। उन्होंने उपर्युक्त प्रसङ्ग श्रीदासजीके रामायणके आधारपर अक्षरशः सत्य लिखा है। देखिये—

नव पत्र च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ।

श्रीराजिनघरो धीरो रामो भवतु तापसः ॥

( २।११।२७ )

पताक्षान्याश्च सुहृदामुदासीनाः शुभाः कथाः ।

आत्मसम्पूजनीः शृण्वन्त्ययौ रामो महापथम् ॥

( २।१७।१२ )

वेदप्रतिपादिन सनातनधर्मी उदासी भेष अनादिकालसे चला आ रहा है। १०८ उपनिषदोंमें ४६ वीं निर्वाण उपनिषद् तथा गरुडपुराण आधार-खण्ड ४६।६-१० और कूर्मपुराण २।७६-८०-८१ देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अन्य कई पुराणों तथा महाभारतादि इतिहासोंमें उदासी साधुओंकी कथाएँ बहुत प्रकारसे आती हैं। लेख बढ़ जानेके भयसे उद्धृत नहीं की गयीं। गोसाईं तुलसीदासजीने अपनी रामायणमें श्रीरामजीको झाँड़कर अन्य कई जगह उदासी साधुओंका वर्णन किया है। जैसे भरतजीके प्लुनेपर भरद्वाज मुनिने अपनेको उदासीन तपस्वी बताया है—

मुनह भरत हम मृग न कदही । उदासीन तापस बन रहती ॥

आगे चलकर और भी लिखने हैं—

‘साधक सिद्ध विमुक्त उदासी । कबि कविद विरक्त सन्यासी ॥’

‘प्रमुदित तीरथराज निवासी । बैलानस बहु गृही उदासी ॥’

‘मिलहिं किरात कोरु बनबासी । बैलानस बहु व्रती उदासी ॥’

‘कहु कहु मरिता तीर उदासी । बमहिं जानन मुनि सन्यासी ॥’

क्या आज भी साधु लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रके उन्म आदर्श जीवन और उपदेशका अनुसरण और धारण करके त्याग एवं तपस्याका परिचय देंगे, जिसमें समझ भारतका कल्याण होकर पूरे साधु-समाज फिर पूर्ववत् आदर्शवीर होकर भारतकी विमल कीर्तिकी गगन-चुम्बी पताका फहराता हुआ संसारमें भगवान् रामचन्द्रकी भक्तिका प्रचार करके स्वयं कृतार्थ होकर औरोंको भी कृतार्थ करेगा !

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आशीर्वादसे देशका कल्याण हो।



## फारसीमें रामायण

(लेखक—जीमोहलप्रसादजी चौधरी, आधुनिक-फारसिक)



सखसानोंके राज्यकाजमें भारतमें हिन्दूसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद फारसीमें हुआ था अथवा वह कहना चाहिये कि अनेक फारसी ग्रन्थ संस्कृत-पुस्तकोंके आधारपर लिखे गये थे। हिन्दू-समाजमें रामायणको जो स्थान प्राप्त है वह सभी जानते हैं। यही कारण है कि फारसीमें भी अनेक रामायणें पायी जाती हैं।

रामायणको फारसी आमा पहचानेका पता सबसे पहले अकबरके समयमें मिलता है। एक इतिहाससे पता चलता है कि सन् १५८२ ई०में 'महाभारत' का फारसी अनुवाद समाप्त होनेके बाद सन् १५८२ ई०में मुल्ता अन्दुलकादिर बदायूनीको रामायणके फारसी अनुवादके लिये आज्ञा हुई। सन् १५८३ ई०में वह अनुवाद समाप्त हुआ। इसके पश्चात् आवश्यकतानुसार उसकी सचित्र और सुसज्जित प्रति शाही पुस्तकालयमें रखी गयी। यह अनुवाद फारसी पद्यमें था। इसकी कोई प्रति नहीं है या नहीं—इस विषयमें मैं अबतक कुछ नहीं जान सका। परन्तु फारसीमें जो रामायणें मेरी दृष्टिसे गुजरी हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

(१)

लगभग १२ वर्ष गुजरे, मैंने 'नद्वतुल उल्मा' नामी बख्शनऊकी इस्लामी संस्थाके पुस्तकालयमें एक हस्तलिखित फारसी रामायण देखी थी, उसपर लिखा हुआ है—'रामायण फ़ैजी।' यह सन् १३३४ ई०की लिखी हुई है। यह अधिकांश फारसी गद्यमें है और इसमें पद्यका अंश बहुत ही थोका है।

सम्राट् अकबरने जो अनुवाद कराया था, उससे यह ग्रन्थ बिल्कुल पृथक् प्रतीत होता है, क्योंकि सम्राट् की रामायण सर्वथा पद्यमें थी। उक्त रामायणमेंसे कुछ अंश इसप्रकार है—

जंग ज़रकरे रावन बाफ़ौजे ज़फ़रे मौजे श्रीरामचन्द  
व शिकस्त ख़ुर्दन व क़ुरतः शुदन फ़ौजे रावन बंद करदार।

सहर गाहां कि शाहंशाह काबर ख़िबाय ज़फ़र दर  
अरसा मशरिक बर फ़राज़त, ज़बर रमतन हनुमान व

आबुरदन स्वाह संजीवन व सहीदख़दन व तन्मुक्त  
शुदन बहादुराने फ़ौज श्रीरामचन्द मुफ़्तसख़ व मुशरह  
बरावन बाहिर शुद विस्तार ग़मगीन् गर्वीदः ज़ख़ते अज़  
गायत फ़िक्र नज़्श दीवार हैरत मान्द, बाद अज़ साअते  
दख़ेराने फ़ौज ख़ुदरा आमावा पैकार नमूदा बदी किस्स  
तरतीब दाव ॥

दूसरी रामायण फारसी पद्यमें मुल्ता मसीह-कृत है। मुल्ता साहबको बहुतेरे लोग वह समझते हैं कि वह पानीपत (करनाल) के निवासी थे पर दरअसल वह कराना (जिला सहारनपुर) के निवासी थे। उन्होंने जहाँगीर बादशाहके ज़मानेमें अपना ग्रन्थ रचा था।

उक्त ग्रन्थ 'रामायण-मसीही' के नामसे मुंशी नवल-किशोर साहबके बन्नालय बख्शनऊसे सन् १८३३ ई० में प्रकाशित हो चुका है। वह मन्त्रके आकारके ३३० पृष्ठोंमें है। उदाहरणार्थ कुछ अंश इसप्रकार है—

शकरे गुफ़तार ई शीरी फ़साना।

बदी आहंग बसरुद ई तराना ॥

कि राये बूद अन्दर किशारे हिन्द।

बेजरे ख़ातमश बहाल ता सिन्द ॥

बशहरे अवध नामश राजा जसरत।

जे तख़्तश आसमां मीबुर्द हसरत ॥

पन्द दादन कुम्भकरन रावनरा व पराज शुदन रावन  
अब ओ—

ज़मी बोसीद व गुफ़त पे शाह दीनां।

दिले मन् मान्दा अस्त इमरोज़ हैरां ॥

कि अज़ ख़ाबम् चरा बेदार करदी।

ख़िलाफ़े आदतम् आज़ार करदी ॥

मगर कारे दर उफ़तादः बहुश्मन।

कि शोरांदी जुना खुश ख़ाब बरमन ॥

बगुफ़ता राम लङ्कारा कृतल कर्द।

सरासर शहर देवारा ख़लक कर्द ॥

(३)

तीसरा ग्रन्थ श्रीमान् चन्द्रभान 'बेदिल' कृत पद्यमें है। यह ग्रन्थ औरङ्गज़ेबके राज्यकाजमें किसी समय रचा गया था।

वह भी मुंशी नवलकिशोर साहबके बन्नालय कलनऊसे सन् १८७२ ई० में प्रकाशित हो चुका है। केवल ११४ पृष्ठोंमें है।

इस प्रतिसे ऐसा भी प्रतीत होता है कि जीवुत 'वेदिक' जीने रामायणको पहले फारसी गद्यमें लिखा था। परन्तु आपकी गद्य-रामायणका कुछ पता नहीं लगता। बल्कि उसका सर्वथा अभाव प्रतीत होता है। अतः फारसी पद्य-रामायणका ही कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

मस्खहत्तु वर अंगेजतन् रावन बामहोवर बजीर आजम  
प्रुव व करार दावन् वर जंग ।

बरोजे दिगर शाहे लंका बतस्त,  
बर आमद बसद आब व ता बे जे बस्त ॥

इमः बारयावाने दरगाह ऊ,  
सतादन्द बर जाये खुद कबर ॥

जे शहजादहा अन्दरां मजलसे,  
नशिस्तः बजाहाय खुद हर कसे ॥

( ४ )

जाका अमरसिंह नामक सज्जन जातिके कायस्थ थे, इन्होंने संवत् १७८३ बि० ( १७०२ ई० ) में एक रामायण फारसी गद्यमें लिखी थी। यह रामायण वं० माधवप्रसादजी-के उद्योगसे सन् १८७७ ई० में मुंशी नवलकिशोर साहबके बन्नालय कलनऊमें प्रकाशित हो चुकी है। इसका नाम 'रामायण अमर-प्रकाश' है। बड़े आकारके २४४ पृष्ठोंमें है।

नमूनेके रूपमें कुछ अंश नीचे हैं—

दानायान पेशान चुनीं गुफ्तः अन्द कि दर शहर प्राग  
(प्रयाग) अज मुलहिक शुदन गङ्गा व जमुना व सरस्वती  
त्रिवेनी नाम तीर्थें अस्त हर कस्त दर उमर जुनु बक मरतबः  
गुसुख जुमायद् अजाबहाय जन्म जन्म आंग बरवद् व  
आकि बनाम माह मकर गुसुख जुमायद् मरातिव ऊ चिः  
तथां गुफ्त ? अज् अर्थ व काम व मोक्ष व अम' इमः  
हासिक शब्द ।

( ५ )

पांचवें ग्रन्थके लेखक जा० अमानतरावजी हैं। यह जातिके चत्रिय व लाळपुर नामक ग्रामके निवासी थे। उस ग्राममें अधिकांश चत्रिय ही थे जो बल्लुतः रखनेकी थे। पर यह विद्या-क्षेत्रके एक शूर थे।

द्वैवचोगसे बाह आधी। लाळपुरकी दया बिगडी। जा० अमानतरावजी देहली पहुँचे। इनके विद्वत्ताकी चर्चा चारों ओर फैली। नवाब अमजद खान साहबने इन्हें अपने वहाँ नौकर रक्खा और जब नवाब साहब स्वर्गलोका सिधारे तब उनकी बहिन रहीमुलिसा बेगम लाळाजीकी जीविकाकी सहायिका बनीं। लाळाजीने पहले 'बीमद्भागवत' को फारसी गद्यमें लिखा था। देशमें जब उसका अच्छा सम्कार हुआ तो आपने रामायणको सन् १७२४ ई०में फारसी पद्यका जमा पहनाया।

यह अपूर्व ग्रन्थ भी मुंशी नवल किशोर साहबके बन्नालयसे सन् १८७२ ई०में प्रकाशित हो चुका है। १७८ पृष्ठोंमें है। नमूनेके रूपमें आरम्भका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है केवल इसीसे मालूम हो सकता है कि इस रामायणके पद्य किरदोसीके शाहनामाके समान जोरदार हैं।

फुसाहत बमानाने हिन्दी जवां,  
कुनन्द ई चुनीं शरहे ई दास्तां ॥

कि दर नसके राजा मनु कामगार,  
बसे राजा शुद जीते रांगार ॥

इमः साहबे जुमता रुबे जमीं,  
कशीदः जहां जेर भुते नगीं ॥

अबरदस्त व फुयाज व आजीहिमम्,  
चु बहर व चु अजे सयाबत अजम ॥

अजी हा यके ऊ मगर नाम नुद,  
चु खुर नुद ऊ दर जहां आम नुद ॥

( ६ )

एक ग्रन्थ जाहीरके एक पवित्रत जीवेखोराम मिश्रजीके पुत्र पवित्रत रामदासजी कृत है। इसके रचने जानका समय सन् १८६४ ई० है। मैं इन्से अभी तक स्वयं नहीं देख सका, इस कारण इसकी वाचत और अधिक नहीं लिख सकता।

× × ×

समझ है कि एक रामायणोंके सिवा कुछ ग्रन्थ और भी रामायण फारसीमें हों, किन्तु उनके विषयमें मैं तो मुझे अभी कुछ पता ही चला है न उनके देखनेकी नौबत ही आयी है। यदि किसी सज्जनको कुछ और पता हो और वह कृपया मुझे सूचित करनेका कष्ट करें तो मैं उनका आभारी हूँगा।

## मराठीमें रामायण

(लेखक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पात्रारकर वी० प०, सम्पादक 'मुमुक्षु')



भार-भारतमें गुस्ताई मुजसीदासजीकी रामायण जैसी लोकप्रिय है, वृत्तिय अर्थात् महाराष्ट्रमें ज्ञानेश्वर महाराजकी ज्ञानेश्वरी भी वैसी ही है। ज्ञानेश्वरी श्रीमन्नगवद्गीता-पर एक अद्वितीय टीका ग्रन्थ है, वह ज्ञान-भक्तिप्रधान है। इसमें अद्वैत-ज्ञानका भक्तिके साथ उत्कृष्ट सम्मेलन है तथा ज्ञान-भक्तिकी एकरूपता है। मराठी साहित्यके सभी उत्कृष्ट ग्रन्थ ज्ञानेश्वरीके ढंगपर ही लिखे गये हैं। ज्ञानेश्वरी, एकनाथजीकी भागवत और रामदासजीका दासबोध इन तीन ग्रन्थोंको महाराष्ट्र वेद-सदृश मानता है। नामदेव और मुक्तारामके अमंग भी इसी प्रयाजोंके हैं। शिबोपासकोंके लिये 'शिवजीबाधन' और वृत्तात्रेयके भक्तोंके लिये 'गुरुचरित्र' ये दोनों सम्प्रदाय-ग्रन्थ भी महाराष्ट्रमें लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्रीय अन्तःकरणकी स्थिति ज्ञानप्रधान है परन्तु उस ज्ञानके साथ भक्तिकी एकरूपता है। निरे वेदान्त-ज्ञान और कोरी उपासनाका महाराष्ट्रमें विशेष आदर नहीं। ज्ञान और उपासना, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण, एवं मूर्त और अमूर्त इन सबमें महाराष्ट्रीय मन पूर्ण अभेद मानता है और महाराष्ट्रके समस्त सन्तकवियोंका उपदेश भी यही है।

मराठी साहित्यका यह रहस्य समझ लेनेके बाद मराठीमें रामकथाको किसने कैसे गाया है, यह जानना विशेष आनन्द-प्रद होता है। यद्यपि महाराष्ट्रमें राम और कृष्णको सब एकरूप हो मानते हैं तथापि स्वामी रामदासने राम और हनुमान्की उपासनाका विशेष प्रचार किया। अन्य अनेक सत्पुरुष और कवि श्रीकृष्ण अर्थात् विठ्ठलके उपासक हैं। 'श्रीराम जय राम जय राम' यह रामदासका मन्त्र है और 'रामकृष्ण हरि' कृष्णोपासकका मन्त्र है। सारांश यह है कि राम-चरित्र और राम-नामका महत्त्व सर्वत्र मान्य है। श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीराम-चरित्र हिन्दूमात्रके लिये सर्वथा पूज्य और प्रिय हैं, और किसीकी किसी भी उपासनासे अविरुद्ध हैं। राम और रामनाम सफ़ल लोकप्रिय हैं।

मराठी भाषामें अनेक सन्तों और कवियोंने रामचरितका गान किया है और रामचरितसम्बन्धी पृथक् उपाख्यान

तो असंख्य हैं। राम-नामका गौरव-गान अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभीने किया है।

मराठी भाषामें रामचरित्रका सर्वांशमें सुन्दर वर्णन चार-पाँच कवियोंने किया है। इन सबमें सबसे बड़ा अत्यन्त सरस, विह्वला, प्रतिभा और प्रसादगुणयुक्त, आध्यात्मिक सन्तुष्टीसे निर्मित होनेपर भी श्रीरामकथाके माधुर्यको अत्यन्त बढ़ानेवाला ग्रन्थ एकनाथजीका भावार्थ-रामायण है। वह चाळीस हजार ओवियों (मराठीका एक कुण्ड)का प्रकाशक ग्रन्थ भावुकोंको अत्यन्त प्रिय है। वाल्मीकि, अज्यात्म, आनन्द और बोगवाशिष्ठ रामायण इत्यादि अनेक संस्कृत-ग्रन्थोंमें वर्णित कथाओंको अपनी इच्छानुसार चुनकर कविने स्वतन्त्रताके साथ उनका सविस्तर वर्णन किया है। श्रीएकनाथजी महाभागवत माने जाते हैं और श्रीमन्नगवत्के एकादश स्कन्धपर लिखी हुई उनका मराठी टीका भी ज्ञानेश्वरीके समान ही लोकप्रिय और सर्वमान्य है। मरे निर्ययके अनुसार एकनाथजीका काल वि० सं० १५८५ से १६५५ है। भावार्थ-रामायण उनका अन्तिम ग्रन्थ होनेके कारण उसका रचनाकाल वि० सं० १६४५ से १६५५ तक ठहरता है अर्थात् यह ग्रन्थ भी गुनाह् मुजसीदासजीके रामायणके समकालीन ही है। श्रीएकनाथजी काशी गये थे। उनका भागवतग्रन्थ काशीमें ही वि० सं० १६३० में पूरा हुआ था। इसके सिवा उनके 'रुक्मिणी-स्वयंवर' नामक ग्रन्थकी पूर्ति भी काशीमें वि० सं० १६२८ की रामनौमीके दिन हुई थी। इससे उनका करीब तीन वर्ष काशीमें रहना सिद्ध होता है। इस बीचमें एकनाथजी और मुजसीदासजीका काशीमें परस्पर प्रेम-परिचय अवश्य हुआ होगा क्योंकि दोनों ही महाभागवत थे। अवश्य ही दोनोंमेंसे किसीके ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख नहीं मिलता।

एकनाथजीकी रामायणमें रामकथा और ब्रह्मज्ञानका उत्कृष्ट एकीकरण है। अतएव उसके अध्ययनसे सगुणप्रेम और अज्यात्मज्ञान दोनोंकी साथ ही प्राप्ति हो जाती है। 'श्रीराम मुझसे बरबरा अपना चरित्र गान करवाते हैं,' इस बातका उन्होंने बड़ी ही मनोहर रीतिसे वर्णन किया है।

‘जागृति माजी वर्ततां। पुढें प्रकाशे रामकथा ।  
दुश्चितपणें ठेवो जातां रामतत्त्वा ।  
रामायण दावी ॥’

श्रीराम अपनी सत्तासे बलात्कार कथा कहला रहे हैं। जागते राम, सोते राम, मनमें राम, मौनमें राम, ग्राम्य-जगाममें राम इसप्रकार—

रामें पुरविली पाठी खिलिती दृष्टी रामायणी ।

—राम मेरे ऐसे पीछे पड़े कि मेरी दृष्टि श्रीरामायणपर अटक गयी। श्रीरामके द्वारा इसप्रकार बलात्कार निज गुण-गान करवानेका दुर्दर प्रसङ्ग बिरले ही ग्रन्थकारोंके भाग्यमें होता है। श्रीराम सर्वथा अज-अजन्मा हैं। अजसे द्रोन्मित्र्य दशरथरूपसे अवतरित हुए, उनकी चार रानियाँ हैं। कौसल्या-सद्मिधा, सुमित्रा-शुद्धमेधा, कैकेयी-अविद्या और उसकी दासी मन्थरा-कुविद्या। लक्ष्मण आरम-बोध हैं, भरत भावार्थ हैं, श्रीराम पूर्ण आनन्द-विग्रह हैं। इस-प्रकार एकनाथजीने रामायणका बहुत ही सुन्दर रूपक बाँधा है। आध्यात्मतत्त्वकी ओर ऐसी निर्मल दृष्टि रखते हुए भी उन्होंने समस्त कथा-भागका अत्यन्त रसपूर्ण और मधुर भाषामें सविस्तर वर्णन किया है। हनूमान्जीकी रामभक्ति हूतनी असीम थी, एकनाथजी कहते हैं—

रामा बाँचूनि ब्रह्मज्ञान। आकासी न लगेन रुगे जाण ।

आमुचें ब्रह्म रघुनन्दन । बोले गर्जन हनुमन्त ॥

अर्थात् श्रीहनूमान्जीने गरजकर कहा कि राम ही मेरे ब्रह्म हैं, उनके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा ब्रह्मज्ञान नहीं चाहिये। इस एक ही ओबीसे कथाके वर्णनकी सरसताका पता लग जाता है, विस्तार-भयसे अधिक नहीं लिखा जाता।

एकनाथजीके नाती मुक्तेश्वरने भी एक श्लोकबद्ध रामायणकी रचना की है, उसकी श्लोक-संख्या १७२५ है। महाराष्ट्रके छोटे-छोटे गाँवोंमें अनपढ़ और पढ़े-लिखे लोगोंको—सभी की पुरुषोंको श्रीराम-कथा और श्रीकृष्ण-कथाका अमृत पिलानेवाला अत्यन्त रसिक और लोकप्रिय कवि या अधीश्वर। उसने वि०सं० १७५६ में हरिविजय और १७६० में रामविजय एवं १७६६ में पाण्डवप्रताप इन तीन सुन्दर ग्रन्थोंका निर्माण कर श्रीराम-कृष्णके चरित्रका महाराष्ट्रके कोने-कोनेमें प्रचार कर दिया।

महाराष्ट्रमें रामोपासनाका प्रचार बढ़ानेवाले महापुरुष थे श्रीशिवाजी महाराजके मोक्षगुरु समर्थ श्रीरामदास। इनका समय वि०सं० १६९५ से १७३८ है। उन्होंने रामायणके दो

काव्य लिखे हैं, जिसमें श्रीहनूमान्जीके चरित्रका सविस्तर वर्णन है, पहला सुन्दरकाव्य और दूसरा युद्धकाव्य। रामदास-जीने इन्हीं दोनों काव्योंपर रचना की, तथापि उनकी इस रामायणकी अपेक्षा महाराष्ट्रमें उनके लिखे हुए राम-नामके अमंग, पद, कल्याणक, खोत्र, सबैया आदि स्फुट कविताओंका अधिक प्रचार है और उन्हींसे लोगोंमें रामभक्ति ठिकी है। श्रीरामदासजी रामके अनन्य भक्त थे। इन्होंने श्रीराम और श्रीमारुतिजीकी उपासनाका प्रचार किया और रामनवमीके उत्सवको लोकप्रिय बनाया।

मराठीमें रामकथापर लिखनेवाले एक विख्यात कवि हैं मयूर-पण्डित धनबा मोरोपन्तजी। इनका काव्य वि०सं० १७८६ से १८५१ है। इनकी जीवनी काव्यविवेचनासहित अबसे २४ वर्ष पूर्व मैंने प्रकाशित की थी। उसमें इस कविकी रामायणके सम्बन्धमें दो-तीन प्रकरणोंमें करीब ८० पृष्ठोंमें मैंने सविस्तर विवेचन किया था। इस कविने १०८ रामायणें लिखी हैं, जिनमें कुछ तो बहुत छोटी दस-बीस श्लोकोंकी हैं और कुछ दो-चार हजार श्लोकोंतक पहुँची हैं। इनके ये ग्रन्थ बड़े अज्ञुत हैं, इन सबकी श्लोक-संख्या ओढ़नेपर १६ हजारसे अधिक होती है। इन्होंने नाना प्रकारके छन्दोंमें रचना की है। आर्या-रामायण, अनुष्टुप-रामायण, विष्टुप्माला-रामायण, विष्टुपी-रामायण, प्रहर्षिणी-रामायण, सखाया-रामायण, कन्विषी-रामायण इत्यादि। इन रामायणोंके नाम छन्दोंके अनुसार ही रखे गये हैं।

कवि मोरोपन्त बड़े विद्वान्, साहित्यज्ञ, छन्द-शास्त्रमें निष्णात् और अत्यन्त रामभक्त थे। इनकी रामायणोंमें कई प्रसङ्ग तो बहुत ही मजेदार हैं। मोरोपन्ती-रामायण मानो पिरवकर्माकी एक अद्भुत सृष्टि है।

## राम

रामके ही चिन्तनमें मनको लगाता रहूँ,  
रामके गुणोंका ही मृदुल गान गाऊँ मैं।

रामको निहारा करूँ अनिमेष चक्षुओंसे,  
रामको पुकारा करूँ रामको ही ध्याऊँ मैं ॥  
रामके ही पद-पङ्क्तियोंका पदपद बनूँ,  
रामके ही प्रेमका प्रसाद नित्य पाऊँ मैं।

आशा अमिलापा और यही लालसा है मेरी,  
राम-नामसे ही राममें हो मिल जाऊँ मैं ॥

—भगवतीप्रसाद त्रिपाठी विशारद पद्य० प० पल-पद्य० वी०



## बंगलामें रामायण



बंगालकी जनतामें सबसे अधिक तीन ही ग्रन्थों-का प्रचार है, जिनकी कथाओंको अधिकपूर्ण रूपसे सैकड़ों नर-नारी एकत्र होकर सुनते हैं—कृतिवासकृत रामायण, काशीरामदासकृत महाभारत और कृष्णदासकृत श्रीवैतन्य-चरितामृत। कौपदीसे लेकर राजमहलौतक इनकी अवाधित गति है। कृतिवासी रामायणके बंगलामें कई संस्करण निकल चुके हैं। इसके रचयिता पं० कृतिवास ई० सन् १४३२ की वसन्तपञ्चमी रविवारको बंगालके नदिया-जिलान्तर्गत फुलिया नामक गाँवमें पैदा हुए थे। यह गाँव वर्तमान राखाघाटसे सात मील दक्षिण-पश्चिम है। कृतिवासके पितामह मुरारी ओका अपने समयके एक सर्वमान्य प्रधान पण्डित थे। इनके पिताका नाम वनमाली और माताका मांजिनी था। वे ब्राह्मण थे।

गौड़-नरेशके आदेशसे कृतिवासने इस ग्रन्थकी रचना की थी। रचना इनकी सुन्दर है कि आबाल-वृद्ध-बनिता सभीके लिये परम आदरकी वस्तु है। इस ग्रन्थने बंगालकी जनताको श्रीरामचरित्रसे परिचित कर धर्मभाव और सामाजिक आदर्शको बहुत ऊँचा उठा दिया है।

कृतिवासने वाल्मीकि और अज्यात्मके सिवा अन्योन्य पुराणोंका भी आश्रय लिया है। सारी रचना बंगालके पथार-जुद्धमें है। भाषा बहुत सरल है। कहीं-कहीं अद्भुत कथाएँ हैं। श्रीहनुमान्जी जब द्रोणाचल-पर्वतको लेकर आये, तब उनकी काँखमें तेजपुञ्ज सूर्यदेवको देखकर श्रीरामको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि 'हनुमान्, सूर्यदेवको तुमने काँखमें कैसे दबा रक्खा है?' हनुमान् बोले—'नाथ! मैं पहाड़पर सजीबनी खोज रहा था, मुझे यह डर था कि कहीं सबेरा न हो जाय। मैं सूर्यके पास गया और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की कि आपके वंशज श्रीराम इस समय कष्टमें हैं, अतएव जबतक श्रीरामका न जी उठें, तबतक आप उदय न हों। परन्तु सूर्यने मेरी बात नहीं मानी। मैंने सोचा कि सूर्य उदय हो जायेंगे तो बहुत कुरा होगा। अतः मैं उन्हें पकड़ लाया, इससे अब रात नहीं बीतेगी।' इसके बाद श्रीरामने सूर्यको छुड़ा दिया। मूल वर्णन इस-प्रकार है।

कक्षतले ताहार देखिया दिनकरे।

जिज्ञासा करेन राम पवनकुमारे ॥

कि अद्भुत देखि, 'बापू पवननन्दन।

तोमार शरीरे केन रनिर किरन ॥

हनुमान बोलै 'प्रभु कर अवगति।

आनिवारे औषध गेलाम रत्ताराति ॥

औषधि खूँजिया आमि शिखरे बेड़ाइ।

पूर्वदिके दिनपति देखिया डराइ ॥

पर्वत हईतें गेनू भास्कोरें ठौर।

जोड़ हाथ करि स्तव करिनु गोसाँई ॥

तोमार सन्तान अति कत्तर श्रीराम।

क्षणेक कश्यप-पुत्र करह विश्राम ॥

यावत लक्ष्मण वीर नापान जीवन।

तावत उदय नाहि हईओ तपन ॥

आमार ए वाक्य ना शुनेन दिनपति।

चरिया पने छि ताइ ना पोहाय राति ॥

राम बलेन, 'बापू एकि चमत्कार।

ना पोहाय रजनी ना घूँचे अंधकार ॥

सूर्येर उदय-जन्य संसार-प्रकाशे।

छाड़ह भास्कर इनि ठहूँ आकाशे ॥

रामेर वचने वीर तोले दूई हात।

बाहिर हइल तबे जगतेर नाथ ॥

सूर्येर प्रणाम करे पवन-नन्दन।

यतेक बानर करे चरण-वन्दन ॥

आदिकर्ता आपन वंशेर दिवाकर।

शत शत प्रणाम करेन रघुवर ॥

उदय-पर्वते मानु करेन गमन।

पोहाइल बिभावरी प्रकाशे भुवन ॥

इसप्रकार बहुत रोचक वर्णन है। इसके अतिरिक्त श्रीराजकृष्ण राय महाशयने भी वाल्मीकिके आधारपर बंगला पद्यमें रामायण-रचना की है। साहकेल मधुसूदन दत्तका मेघनाद-बध काव्य बड़ा ही रोचक और ओजस्वी है। इनके सिवा बंगलामें वाल्मीकि, अज्यात्म और गुसाईजीकृत सभी रामायणोंके अनुवाद हो चुके हैं तथा रामायण और रामायणके पात्रोंपर अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गयी हैं।

## उत्कल-रामायण

( लेखक—पं० श्रीगोचनप्रसादजी पाण्डेय )



बन्ध्यावली के लेखक पं० स्वामिमुन्दर रायगुरु बी० ए० लिखते हैं—हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें जिस भाँति गुसाईंजी-कृत रामचरितमानसका प्रचार और आवर है, बङ्गालमें जिस भाँति कृतिवास पवित्रित विरचित 'रामायण' का मान है, दक्षिण-देशमें 'मात्सर-कवि' कृत रामचरित्र जैसा आदर है, उसी भाँति उत्कल-प्रान्तमें बलरामदास कविद्वारा रचित 'रामायण' का प्रचार है। इन्हें यदि 'उत्कल-वाल्मीकि' कहा जाय तो अप्रयुक्ति न होगी। वे उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्रके समयमें अर्थात् ईसा की सोलहवीं सदीमें विद्यमान थे। वे जातिके कश्यप (उत्कलीय कायस्थ) थे। वर इनका श्रीपुरोचोत्तमचेत्र (पुरी) में था। इनके पिताका नाम महापात्र सोमनाथ था। इनकी जननीका नाम था मनोमाया। रामायण-रचनाके समय इनकी अवस्था केवल ३२ वर्षकी थी। वाल्मीकि-रामायणके आधारपर इन्होंने अपनी रामायणकी रचना की। पर स्थान-स्थानपर बहुत-सी बाहरी और जयी बातें भी जंजी गयी हैं। हम इनकी रामायणको मूल संस्कृत-ग्रन्थका अनुवाद नहीं कह सकते। ३२ वर्षके युवकके लिये इतने बड़े ग्रन्थका प्रणयन बड़े साहसका कार्य कहा जायगा। उन्हींके शब्दोंमें सुनिवे—

( उड़िया भाषा )

सामवेदूँ समूत ए सात काण्ड कहि,  
कृष्णरूप अनन्त अपूर्व तनु बहि।  
ताहा प्रसादे मंते सारदा दया कला,  
रामायण ग्रन्थ मोर मुखे उबारिला॥  
चौबिस महस क्लोक ए गीन रस,  
वाल्मीकि मुनि बाहा कलेक प्रकाश।  
विद्वज्जन मुखकें ये सुनिलई ताहा,  
दया कले मंते ये कमला देवी नाहा॥  
तेनु एहि महाकान्यकु ये बाक्य कलि,  
लक्ष्म पद ठिक करि गीते बसाइलि।

जन्मर मुख मोर अल्प बयस,  
ग्रन्थकला कले मोते बरस बतिस।  
दासा सुत जन सुखमोग शिरी,  
अरुपे आपने देइ अछन्ति ता हरि॥

इन्होंने अपनी रामायणका नाम 'जगन्मोहन-रामायण' कहा है। उसमें एक लाक पद हैं।

'जगन्मोहन' बलि ए रामायण नाम।  
तत्थ करि भजिले पाइन विष्णु स्थान॥

× × × ×  
श्रीजगन्नाथरु चरित मुहि कहि।  
रामायण सात काण्ड लक्ष्म पद होई॥

भाषासेतर जातिके एक व्यक्तिद्वारा रचित ग्रन्थ उपेक्षासे न देखा जाय, इस भयसे कविने लंकाकाण्डमें लिखा है—

मुहि हीन पावी ये विगेने शूद्र योनि।  
मुश जने कांप न कठिन इहा मुनि॥

इसकी भाषा अत्यन्त सरस और सरल है। सरलताके लिये इन्होंने ग्राम्य शब्दोंको साहित्यगत करनेमें आनाकानी नहीं की है। अपने समयकी लोक-प्रचलित भाषाका म्यूना इनके ग्रन्थभरमें देखा जाता है। वर्णनामें आद्यन्तर-शून्यता है। कन्धमें भी लक्ष्यशून्यता है। किसी पदके अक्षर १२, किसीके १३ वा १४ और कहीं-कहीं १५ और १६ अक्षर भी मिलते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान् और समालोचक पं० विजयचन्द्र मजुमदार महोदय लिखते हैं—

Balram Das is not ashamed of using those words freely which soon after his time came to be regarded as vulgar, for the poet reckons himself as one of the common people of the country. Balram Das as a national poet has sung for the people and by making Orissa a miniature world by itself has taught his countrymen to love the land of their birth.

मजुमदार महोदयके ऐसा लिखनेका कारण है। बलरामदासजीने हँकानाक राजधान्यगत कपिलास पर्वतको

प्रसिद्ध कैलास पर्वत माना है। उदीसाके कई स्थानोंमें श्रीराम-लक्ष्मणको बिचरवा कराया है एवं 'बामरवा' और 'बयाई' राज्योंका भी उल्लेख किया है।

बलरामदास अपने समयके प्रसिद्ध भक्तोंमेंसे थे। जनश्रुति है कि एक बार रथयात्राके अवसरपर पड़के और पुजारियोंने आपसे अभद्रताका व्यवहार किया था। आप उस अपमानको न सहकर महोदधिके निकट 'बौकी मुहान' में जा कातर होकर भगवन्नामोच्चारणपूर्वक रोने लगे। इसपर श्रीजगन्नाथ महाप्रभुका रथ आगे न बढ़ा—जोग खींच खींच कर थक गये। पीछे स्वप्नमें तत्कालीन राजपति महाराजको यह आदेश हुआ कि मेरे भक्तका अपमान किया गया है। उसने जमा माँगी जाय और उसे आवरपूर्वक आमन्त्रित किया जाय, तब रथ चलेगा। वैसा ही किया गया। तबसे इनकी गणना पुरीके प्रधान हरिमक्तोंमें होने लगी। इसी घटनाको लक्ष्यकर किसी ब्रह्मण कविने लिखा था—

बन्दे ओड़िया बलरामदास महाशय ।

जगन्नाथ बलराम वश बार हय ॥

इनकी यह कथा उड़िया-भाषाके भक्त-माल कवि रामदासकृत 'दावय'ता-भक्ति-रत्नावली' में दी गयी है।

इनके रचे हुए अन्धान्य ग्रन्थोंके नाम हैं—

(१) कान्त कोइली (२) अर्जुनगीता (३) वेदा परिक्रमा (४) शृणुयीस्तुति (५) ब्रह्मावडभूगोल (६) गुप्तगीता (७) दुर्गास्तुति।

कहा जाता है कि आपने प्रीदावस्थामें प्रसिद्ध चैतन्यदेव महाराजसे वैष्णवधर्मकी सीखा ले ली थी। जोग इन्हें 'मस बलरामदास' भी कहा करते थे, क्योंकि वे सर्वैव हरिनामावृत पानकर मस्त रहा करते थे।

उदाहरणार्थ २०-२५ पंक्तियाँ हम 'आदि-कावड' से यहाँ उद्धृत करते हैं—

नमो नारायण प्रभु कमलारपति ।

नीलगिरि-शिखर ये अपूर्व मूरति ॥

सुन्दर श्रीमुखे नीलगिरि पाप शोभा ।

कि जाणि कि पटान्तर शरत् शशी प्रभा ॥

नयन-युगल किना शतदल पद्म ।

जगत् जीवन नाथ परम-आनन्द ॥

सर्व जन निस्तारण सुरगण साहा ।

सर्वदा ये शंख चक्र गदा पद्म नाहा ॥

× × ×

श्रीजगन्नाथ आज्ञा शिरे मुँ बरि ।

अन्य बलाणिवा इच्छा आदि अन्त करि ॥

कविने श्रीनीलाचल या नीलगिरिकी बर्णना तथा श्रीदासब्रह्म जगन्नाथ महाप्रभुके श्रीपुरुषोत्तमधाम(पुरी नगर) के सुन्दर शब्द-चित्र अंकित करते लिखा है कि श्रीजगन्नाथ महाप्रभुकी आज्ञासे मैं इस रामायण-रचना-कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

कविने पुरीधाममें ग्रन्थकी रचना की थी। उस समय पुरीका नाम पुरुषोत्तमपुरी था। पुरुषोत्तमका उड़िया अपभ्रंश नाम 'पुरस्तम' होता है। पाटना नगर विशेषतः राजधानीको कहा जाता है। इसका समर्थन इन दो पंक्तियोंसे होता है—

पाटना-नगर नाम पुरस्तम पुरी ।

ब्रह्मा सृजि अछि जाहा अति यत्न करि ॥

श्रीरामनामकी महिमाका बर्णन करते हुए कवि बलरामदास लिखते हैं कि पार्वतीजी श्रीसदाशिवजीसे जो-जो प्रश्न करती हैं उन्हींको जेकर रामायणकी अमृतरूपी कथा बनी है। एक बार 'कपिलास कन्दर' में जब विश्वनाथ शिवजी विराजमान थे तब उनसे चौ-माथ (चतुर्मुख) ब्रह्माजी मिले। कुशल-विज्ञासाके पश्चात् शिवजीने ब्रह्माजी-से कहा कि मेरा शरीर इन दिनों 'बलहीन दुर्बल' हो रहा है, इसका कारण क्या है और यह दुर्बलता क्योंकर दूर हो। ब्रह्माजीने उत्तर दिया कि आपने दश-महापद्मके विज्वंश करनेमें जो 'तामस भाव' धारण किया उसी वापसे यह अस्वस्थता उत्पन्न हुई है। इसके दूर करनेका एकमात्र उपाय 'तारक ब्रह्म' का जप करना है, सो आप वही करें। कविके शब्दोंमें ब्रह्माजी कहते हैं—

पड़िला तोते से महापापर ये भोग ।

शरीर असुस्थ साचि न पारिवु योग ॥

पवे सदाशिव तू मोहर नोलकर ।

तारक ब्रह्म नाम तु जपि पाप हर ॥

राम नाम जपिले ये छाड़ि जिव पाप ।

विशामिन्न मुनि ऋषि छन्द अनुष्टुप ॥

साधन कर हे शिव रामनाम पद-।  
 दुर्वलका नाश जिन सुबल आनन्द ॥  
 होइन प्राप्त तोते सकल पदार्थ ।  
 सर्व क्लेश नाश जिन होइन सामर्थ्य ॥  
 पते होइ ब्रह्मा मुख सामवेद घोषि ।  
 रुद्रहु दि 'राम' पद कहिले विशेषि ॥  
 कृताञ्जलि होइ रहिले से सदाशिव ।  
 ब्रह्माङ्कुर कल्याणरे देह सुख्य हेन ॥  
 इत्यादि ।

× × ×

वनवासमें जानेके लिये उद्यत श्रीरामचन्द्रजी सीताजीसे  
 कहते हैं—

कहारि सज ते तु गो न करिनु कलि ।  
 तोते तूहि रक्षा करयिनु मइयली ॥

## गुजरातीमें रामायण

( ले०—श्रीयुक्त प्रकाश चन्द्रशेखर दीवानजी )



धुनिक गुजराती, पश्चिमी राजस्थानी और  
 प्राचीन गुजरातीसे निकली है। इसकी  
 तेरहवीं शताब्दीके अन्ततक तो अपभ्रंश  
 सौरसेनी ही गुजरात और मानवा  
 आदि प्रान्तोंमें प्रचलित थी। तदनन्तर  
 लगभग सोलहवीं शताब्दीके अन्ततक  
 पश्चिमी राजस्थानीका बोल-बाला  
 रहा। आधुनिक गुजरातीकी उत्पत्ति सत्रहवीं शताब्दीके  
 प्रारम्भिक चतुर्थांशसे पूर्व नहीं हुई थी, उस समयसे अंग्रेजी  
 शासनकी शिष्टाई नवीन पद्धतिके प्रारम्भकावतक बानी  
 १९वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके अन्ततकके समयमें जिस गुजराती  
 साहित्यका निर्माण हुआ वह अन्य भाषाओंकी तुलनामें  
 गण्य था। इसके सिवा श्रीकृष्णके चरित्रसे सम्बन्धित  
 महामारतका अंश गुजरातके व्यावहारिक और कौमुदी-  
 मय आत्माको जितना बीच सका उतना रामायण बीच  
 भी नहीं सकी। गुजराती साहित्यके अनुसूचीकनसे वह

बात सहज ही समझमें आ सकती है तथापि रामायणके  
 सम्बन्धमें मुझे जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है वह  
 निम्नलिखित है।

सोलहवीं शताब्दीमें गुजरातमें भाजय नामक एक अच्छे  
 कवि हो चुके हैं। उनके बड़व नामक एक पुत्र था।  
 सत्रहवीं शताब्दीमें सबसे पहले उसीने रामायणकी  
 रचना की। इसी शताब्दीमें महाकवि प्रेमानन्दका शिष्य  
 रत्नेरवर हुआ। यह संस्कृतका अच्छा पण्डित था, इसने  
 भी ब्रह्मकाण्डकी रचना की, इसका निवास-स्थान  
 बभोई था।

अठारहवीं शताब्दीमें प्रीतमदास नामका एक साधु  
 खेवा जिलेके सन्देशर गाँवमें एक मठमें रहता था। इसको  
 वेदान्तका अच्छा अभ्यास था। गुजराती और हिन्दीमें  
 इसने अनेक ग्रन्थों और पद्यांकी रचना की। इन्हींमेंसे एक  
 अध्यात्मरामायण भी है।

उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके अन्ततक शिष्टाई  
 प्राचीन पद्धति ही प्रचलित थी। जिसके कारण अनेक भक्त-  
 कवि पैदा हुए इनमेंसे एकका नाम गिरधरदास था।  
 यह बबौदाके निकट किसी गाँवके साह-बनिया थे।  
 इन्होंने एक जैन-यतीसे संस्कृत और हिन्दी सीखी थी और  
 उसीके प्रतापसे इन्होंने अनेक पद्य-ग्रन्थोंकी रचना की।  
 इनमें रामायण मुख्य है। गुजरातीमें इन्हींकी रामायण  
 सबसे अच्छी मानी जाती है और वह लोकप्रिय भी है। इस  
 कविके अन्य ग्रन्थोंके नाम तुजसी-विवाह, गोकुल-जाँझा,  
 अश्वमेध और मथुरा जाँझा हैं। इसके अतिरिक्त इसी  
 सर्दीमें एक रामायण रत्नकोइमक नामक कविकी बनायी  
 हुई भी है।

इस शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें शिष्टाई नवीन  
 पद्धतिका आरम्भ हुआ और दूसरे चतुर्थांशमें उसकी जब  
 गुजरातमें जो चारों ओर फैलने लगी और उसके फलस्वरूप  
 तथा भारतमें मुसलमानोंके प्रवेश और प्रचारके कारण  
 गुजराती साहित्य भी विभिन्न नूतन दिशाओंमें विकसित  
 होने लगा। प्राचीन साहित्यपर भी विशेष और गम्भीर  
 अध्ययन आरम्भ हुआ और उसके परिणामस्वरूप अबतक  
 स्वतन्त्र ग्रन्थों और आपान्तरोंके रूपमें रामायण-सम्बन्धी  
 लगभग तीस ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

## हाड़ोती भाषामें रामायण

( लंछक—श्रीनन्दकिशोरजी सक्सेना )



जपूतानामें कोटा, बूँदी और कालाबाद  
रिवाजतें हाड़ोती नामसे प्रसिद्ध हैं। इस  
प्रान्त ( हाड़ोती ) की बोली बड़ी ही  
सुन्दर, रसीली, चित्ताकर्षक है। भगवान्  
श्रीरामचन्द्रजीकी जीजाका गुथानुवाद जब  
विभिन्न भारतीय भाषाओंमें हुआ तो यह  
प्रान्त भी ऐसा अभाग्य नहीं था कि  
भगवान् रामके गुथ-गानसे शून्य रहता।  
अस्तु, इस भाषामें भी बड़ा ही सुन्दर अनुवाद हुआ है।  
इस अनुवादकी कुछ पंक्तियाँ पाठकोंके सम्मुख रखी  
जाती हैं। पाठकगण इनको पढ़कर हँसें नहीं, क्योंकि  
प्रत्येक प्रान्तकी भाषा निराखी होती है।

श्रीपार्वतीजी श्रीशिवजीसे भगवान् रामके अवतार-  
धारण करनेका कारण पूछती हैं—

सदाशिव पूँछूँ, राम अवतार,  
पृथ्वीका बाने कैसे उतारया मार  
तान ( सदा शिव पूँछूँ जी )  
निर्गुण ब्रह्म सगुण क्यों होया, मनुष्य देहको धार  
भूप दशरथके कस्यो लियो अवतार  
काई तपस्या करी छी भूपन, जी मूँ जन्म्यो आर  
( सदा शिव पूँछूँजी )

श्रीशिवजी कहने हैं—

पेरी उमा मरा पूँछया समंचार  
रामका चरित कहूँ अवतार ॥  
जब जब दुःख पड़यो री भक्तनपर  
होयो धर्मको नाश :  
असुर जब जन्म्यो पृथ्वीपर आर  
दुखी हो गया गऊ ब्राह्मण देवता  
जब लीनो अवतार ॥

जिस समय रामजीजा होती है उस समय इसे ग्राम-  
वासी ऐसी तर्जसे गाते हैं कि दरोगगण सुगह हो जाते हैं,  
परन्तु समझते हैं केवल हाड़ोतीवासी ही।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज ताराको बिलाप

करते हुए देखकर समझते हैं, यह भी सुनिचे—

जीव अविनाशी पड़ी या देह  
पेरी तारा किसपर करती झेह,  
पृथ्वी अग्नि गगन जरु वायु, यों कर रच्यो शरीर  
बीच मरु मूत्र मरीरी या देह।  
जीव अमर छै सुन जेरी तारा, किसपर धारबोनेह ॥

परमप्रिय पाठकगण ! इस भाषाकी रामजीजामें  
वह आनन्द आता है जो अचर्यानीय है। रामजीजा  
हो जानेके बाद भी लोग बारहों महीने रामचरितको बड़े  
प्रेमके साथ गाते हैं। वास्तवमें भगवान् की जीजामें जो  
आनन्द है वह किसी वस्तुमें भी नहीं है—

अच्युतं केशवं रामनारायणं  
कृष्ण-दामोदरं वासुदेवं हरिम्,  
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं  
जानकीनाथकं रामचन्द्रं भजे ॥

## द्रविड़ रामायण



बिड़ी भाषामें एक रामायण है। इसमें बहुत  
नयी-नयी घटनाओंका समावेश है। पाठकोंके  
मनोरञ्जनार्थ उसकी कुछ बातें संक्षेपमें यहाँ  
ही जाती हैं—

द्रविड़देशके राजाका नाम जीमूतवाहन था। एक बार  
इसने शत्रुओंसे अयभीत होकर लड़ा और पाताललङ्काके  
महाबली और प्रतापी राक्षसराज भीमकी शरण ग्रहण की।  
राक्षसराजके कोई पुत्र नहीं था, और वह बूढ़ा हो चला  
था। उसने जीमूतवाहनको सर्व सुलक्षण-सम्पन्न समझकर  
गोव ( वत्तक ) ले लिया। जीमूतवाहनका यहाँ एक सुन्दरी  
राक्षस-कन्यासे विवाह हो गया ! महाराज भीमने लड़ा  
और पाताललङ्काके राजसिंहासनपर जीमूतवाहनको बैठा  
दिया। इसी जीमूतवाहनके वंशमें माळी, सुमाळी और  
मात्स्यवान नामक तीन बलवान राजा हुए थे। परन्तु  
विद्याधरदेशके राजा इन्द्रने उनसे लड़ाका राज्य छीन लिया

जिससे उन्हें भागकर पाताञ्जलकामें जाना पड़ा। इन तीनोंमें सुमात्रीके पुत्रका नाम राजभवा था। प्रतापवान और दिग्विजयी राजसराज रावण इसी राजभवाका पुत्र था। रावणने विद्याधर-देशके राजा इन्द्रको पराजितकर जङ्गलमें पुनः अपना राज्य स्थापित किया। तदनन्तर किष्किन्धा-राज्यको जीतकर वहाँ बाबज और सूर्यजको राजा बनाया। सूर्यजके बाबज और सुग्रीव नामक दो बच्चे थे। रावणने किष्किन्धा-राज्यके बदलेमें बाबज और सुग्रीवकी सुन्दरी बहिनके साथ विवाह करना चाहा। बाबजको यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा और इस विषयमें सुग्रीव आदिके साथ इसका मतभेद हो गया। अगड़ा बड़ाना उचित न समझकर बाबज राजसिंहासन सुग्रीवको सौंपकर चला गया और सुग्रीव अपनी बहिनका विवाह रावणके साथ करके निर्भिन्न राज्य करने लगा। एक बार सुग्रीवका अपनी बी 'सुतारा' से कुछ मनमुटाव हो गया। जिससे चबराकर सुग्रीव राजधानीसे दूर किसी एक स्थानमें कृपकर रहने लगा। इधर मौका पाकर किसी एक दुष्ट अनुष्यने सुग्रीवका रूप धारणकर किष्किन्धामें आकर राज्यपर अधिकार कर दिया। पीछेसे जब सुग्रीवको इस अप्रिय घटनाका पता लगा, तब वह चबराकर अपने प्राणोपम मित्र हनुवर-देशके राजा एवमजयके पुत्र हनुमान्के पास उनकी सहायता लेने गया। राजा हनुमान्को अपने चरोंद्वारा वह संवाद मिला ही था कि कोसलदेशके सूर्यवंशी रामचन्द्र नामक एक कृति बलवान वीर राजकुमार अपने दूरवीर भाई जम्भवसहित किसी कारणवश वनमें आये हैं और समीप ही कहीं विचर रहे हैं। हनुमान् स्वयं श्रीरामके पास गया और अश्विनी साखी बनाकर सुग्रीवके साथ उनकी मित्रता करना दी। राम सुग्रीव दोनोंने परस्पर सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। वह निश्चित हुआ कि राम नकली सुग्रीवको मारकर मित्र सुग्रीवको उसका राज्य वापस दिखा देंगे और सुग्रीव राम-महिषी सीताका पता लगाकर उसे रामके पास जानेके कार्वमें सहायता पहुँचावेगा। नकली और असली सुग्रीवका चेहरा बहुत ही मिलता-जुलता था। इसलिये श्रीरामने पहचाननेके लिये असली सुग्रीवको माछा पहना दी और नकली सुग्रीवके साथ बुढ़कर हनुमान्को सहायतासे उसे मारकर असली सुग्रीवको उसका राज्य वापस दिखा दिया। तदनन्तर सीताकी खोजके लिये सुग्रीवने चारों ओर वृत्त भेजे। इन वृत्तोंने लौटकर लबर दी कि जङ्गलका राजा रावण सीताको

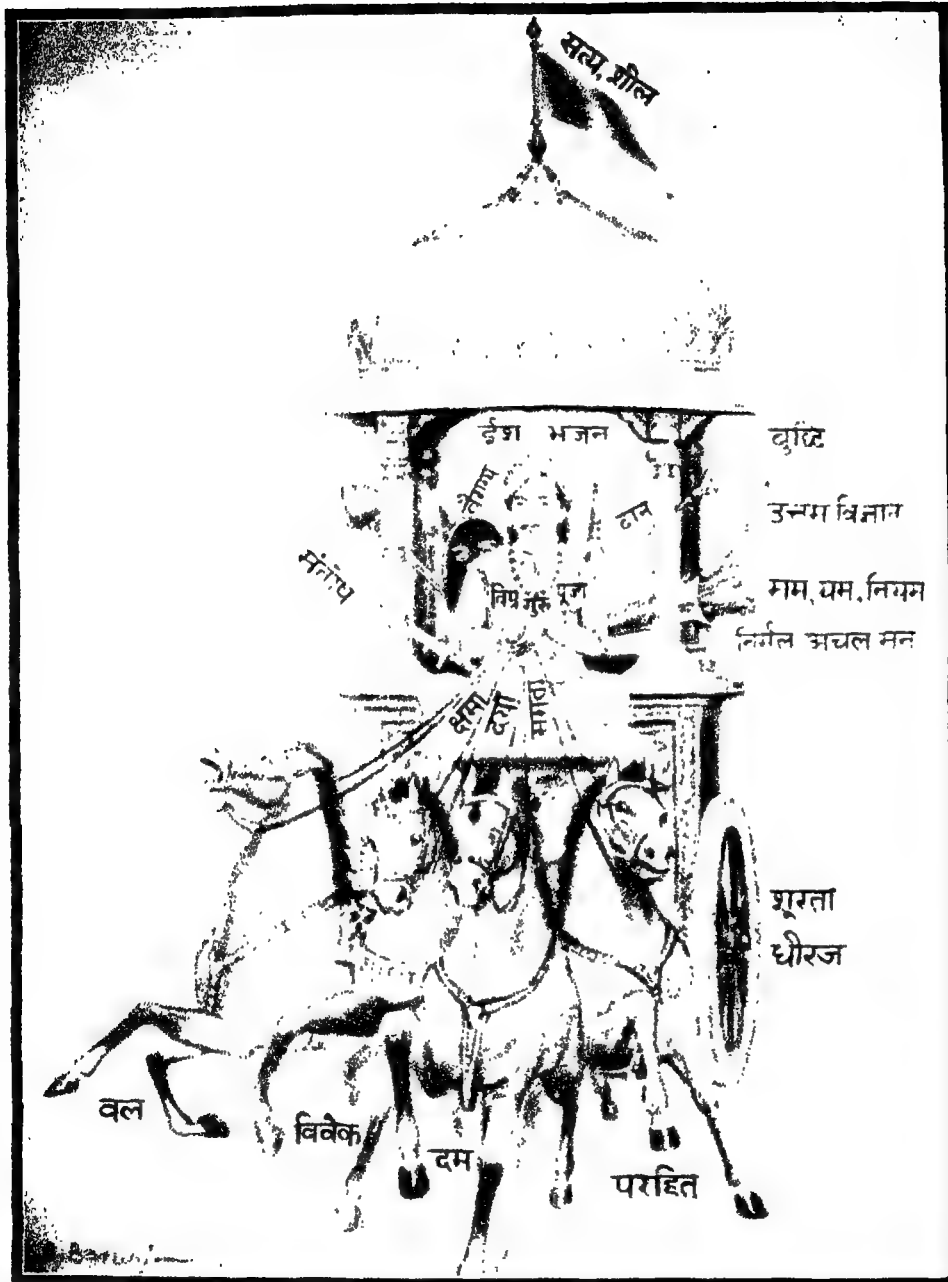
हरकर ले गया है। रास्तेमें सीताका रोना-चिहाना सुनकर राजा जटायुने उसे बुढ़के बंगुलसे छुड़ानेका प्रयत्न किया था, परन्तु वह सफलमनोरथ नहीं हो सका, रावणने उसको मार डाला।

सीताका पता लगनेपर वह प्रभ उठा कि सीताको रावणके पंजेसे कैसे छुड़ाया जाय। इसपर सर्व-सम्मतिसे वह निश्चय हुआ कि राजा हनुमान् सीताको लौटा देनेके निमित्त रावणको समझानेके लिये जङ्गल जायें। हनुमान्को भेजनेकी यह योजना बहुत ही पुकिपुकि थी। क्योंकि हनुमान् रावणकी भाँति राक्षस वंशके राजा और रावणके दूरसम्पर्कीय सम्बन्धी थे। कारण, सुग्रीवकी बहिन रावणकी स्वाही थी। इसके अतिरिक्त हनुमान् परम बुद्धिमान्, जसाधारण दूरवीर और कुशलवक्ता तो थे ही। हनुमान् श्रीरामके पाससे कुछ वस्तुएँ चिह्नस्वरूप सीताको देनेके लिये साथ लेकर महेन्द्र और इचिमुल-पर्वतके मार्गसे जङ्गल गये और रावणसे मिलकर उसको सब तरहसे समझाया, परन्तु उसने एक भी बात नहीं सुनी। हनुमान् लौट आये। अब बुढ़के सिवा अन्य कोई उपाय नहीं रह गया। अब श्रीराम, सुग्रीव और हनुमान् बुढ़की नैयारीमें लगे। सुग्रीव और हनुमान्ने अन्यान्य हाबिदी नरेशोंका सहयोग प्राप्तकर बड़ी सेना इकट्ठी की। तदनन्तर जङ्गलपर चढ़ाई करनेके लिये श्रीराम सेनासहित चले। इस यात्रामें उन्हें बेलाञ्चपुर, सुबेलाचक और इसह्रीप आदि राग्योंसे होकर जाना पड़ा। उस समय बेलाञ्चपुरमें समुद्रनामक राजा राज करता था। उसने रामकी सेनाको अपने राज्यमेंसे होकर जानेके लिये मार्ग दिया।

इसप्रकार हाबिदी रामायणमें कई अज्ञुत बातें हैं। यह वर्णन पुराने 'बंगाली' नामक बंगला-भाषिक पत्र और मराठोंके 'केसरी' नामक पत्रमें प्रकाशित लेखोंके आधारपर किया गया है।

### श्रीरामका आदर्श विजय-रथ

सौगज वीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा-पताका ॥  
बल बिबेक दम परहित घेरे। छमा कृपा समता रिजु जोरे ॥  
ईस-मजन सारथी सुजाना। बिरति धर्म संतोष कृपाना ॥  
दान परसु नुषि शक्ति प्रचंडा। बर विज्ञान कठिन कोदण्डा ॥  
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम यम निबम सिलीमुखनाना ॥  
कवच अमेद विप्र-गुरु-पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा ॥  
सका धर्ममय अस रथ जाके। जितन कई न कतहुँ रिपुताके ॥



ईश भजन सारथी सुजाना । विरति चर्म संतोष कृपाना ॥  
दान परशु बुद्धि शक्ति प्रवण्डा । वर विद्वान कठिन कोदण्डा ॥

संयम नियम शिलीमुख नाना । अमल अचल मन त्रौण समाना ॥  
कवच अमेद विप्रगुरु पूजा । यहि सम विजय उपाय न दूजा ॥





## रामायण और राजनीति

(केसक—कान्यतीर्थ प्रो० लोट्टसिंहजी गौतम एम० ए०, एल० टी०, एम० आर० ए० एस०)



नू धर्म-ग्रन्थोंमें रामायणका स्थान बहुत ऊँचा है। सचमुच यह रत्नोंका भण्डार है। इस निराखे महाग्रन्थका नाम 'पञ्चम वेद' रखना सब तरहसे ठीक है। यह धर्म-नीति, राज-नीति और समाज-नीतिके उपदेशोंसे पूर्ण है। इसमें वे सुखम साधन बतलाये गये हैं जिनसे मानव-जीवनका पूर्ण विकास और शेषमें अन्तिम ज्ञचयकी प्राप्ति हो सकती है।

भगवान् व्यासकृत अष्टाध्यायीरामायण और आदि-कवि-रचित वाल्मीकि-रामायण दोनों ही ग्रन्थ संस्कृतमें हैं। इन्हीं दोनोंके आधारपर भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अनेक रामायणोंकी रचना हुई है। उनमें गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानसका स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

रामायणने मनुष्य-जीवनकी समस्याओंको बड़े अच्छे ढंगसे हल किया है। गृहस्थमें रहने हुए भी हम अपने अन्तिम ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं। इसी विषयका रामायणमें विशद विवेचन किया गया है। ब्रह्मज्ञानको माननेवाले वैद्वान्नी, बौद्ध और जैन आदि दार्शनिकोंने गृहस्थ-धर्मकी अपूर्णता सिद्ध की थी। पर रामायणमें इन माया, ज्ञाया और वैराग्यबाधियोंको अच्छा उन्तर दिया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये कुछ मद्गुणोंकी आवश्यकता है। जीवनमें किसी एक विशेष भुकावकी प्रवृत्तिमें निवृत्तिकी आवश्यकता है। यथार्थ आत्मत्याग और आध्यात्मिकताकी ज़रूरत है जो घर और वन दोनों ही स्थानोंमें सम्भव है। रामायणके प्रधान नायक भगवान् श्रीरामका पदानुसरण करना ही प्रधान साधन है, क्योंकि आदरा गृहस्थ और संसारके समस्त यति तथा वनवासी पुरुषोत्तम श्रीरामकी चरण-पादुका छूनेमें अपना अहोभाग्य समझते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि रामायणमें धर्म, राज्य और समाजकी नीतिका उपदेश भरा है। प्रस्तुत लेखमें रामायणकी राजनीतिपर ही दो-चार शब्द लिखने हैं। कुछ लोगोंने कहा है कि 'हिन्दू-सभ्यतामें राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ कभी विकसित नहीं हुईं। यहाँ तो जन्मसे अवसान

तक और जागनेसे सोनेतक केवल धर्मका ही अखण्ड साम्राज्य छाया रहता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुओंके पास और रचना ही क्या है? बही एकतन्त्रवाद (Autocracy) और वही राजाको ईश्वर बतलानेवाली भेद-सधरा प्रज्ञा! इतना ही नहीं हिन्दू-राजाओंकी आज्ञा रूसके अत्याचारी जारके समान ही निरङ्कुश होती है। इनमें पाश्चात्य उदार राजनीतिकी कल्पना तो आकाश-कुसुमबन् है।' इस निराधार उक्तिका पूर्ण उत्तर स्वतन्त्र लेखमें दिया जा सकता है। इसके सिवा इनके सुप्रसिद्ध विद्वान् इसकी सारहीनता सिद्ध कर ही चुके हैं। यहाँपर इतना ही कह देना अलग होगा कि रामायणमें उस मनुष्यत्वहीन कठोर राजनीतिका या शासनकलाका वर्णन अवश्य ही नहीं है जिसके कारण आज सभ्य और असभ्य संसारमें हाहाकार मच रहा है। रामायणकी राजनीति मनुष्यके प्रेम, आत्मत्याग और सर्व-भूत-हितकी भावनापर अवलम्बित है। इस राजनीतिका उद्देश्य लोकसंग्रह है। दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि हिन्दुओंकी राजनीतिका आधार धर्म है। रामायणमें राजनीति भी है, पर वह ज्वलन्त होनेके कारण त्याज्य है। श्रीरामकी राजनीति ही धर्मानुमोदित और प्राज्ञ है।

नाहिन राम राजके मुखे। धर्मधुरीन विषय-रस कहे ॥

श्रीरामकी यह भावना ही उत्कृष्ट राजनीति है। पाश्चात्य देशोंमें राजनीतिको ही धर्म समझा जाता है। ज्वलन्त-से-ज्वलन्त कार्य करनेपर भी किसीको राजनीतिक लाभ होता हो तो भी वे उसे धर्म ही मानते हैं। पर श्रीरामकी राजनीतिमें यह बात कदापि नहीं। जिस राजनीतिका विकास यूरोपकी पिछली चार शताब्दियोंमें हुआ है, सम्भवतः उस राजनीतिका उल्लेख रामायणमें न हो। उसके न होनेमें कोई हानि तो है ही नहीं, मानव-समाजका लाभ अवश्य है। पाश्चात्य राजनीति (Politics) या शासनकला यूरोपके जिये भले ही कल्याणकारक हो, हमारे लिये तो वह घातक ही है। हमारी राजनीति तो मनुष्यता, समता, दया और प्रेमकी गोदमें फली-फूली है। रामायणमें देवर्षि बारहने वाल्मीकिजीके प्रति श्रीरामकी गुणावलिका वर्णन किया है। वहाँ अन्य गुणोंके साथ ही श्रीरामको अत्यन्त बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाय्मी और दयालु बतलाया है। मेरे

विचारसे तो श्रीराम जिस ग्रन्थके नायक हैं वह रामायण भारतीय राजनीतिका एक अनूठा ग्रन्थ है। 'अप्रमत्त प्रजां रक्षेत्' प्रभाव जोड़कर प्रजाकी रक्षा करना ही राजाका कर्तव्य है। इस कर्तव्यकी रक्षा रामायणमें आविसे अन्त-तक की गयी है। महर्षि वाल्मीकिने आदर्श राजा, आदर्श राजकुमार और आदर्श राजनीतिका वर्णन किया है।

महाराज दशरथकी उम्र उबल रही है। कार्यकी शक्ति क्षीय होती जा रही है। उन्हें मालूम होता है कि जमता न रहनेपर राजधर्ममें बिम्बलक्षता आ जायगी। उनके श्वेत केश श्रीरामको युवराज बनानेका परामर्श दे रहे हैं। इसी विषयको गोस्वामी तुलसीदासजीने यों कहा है—

राठ सुभाउ मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥  
सबन समीप भये सित केसा। मनहु जरठपन अस उषेदेसा ॥  
नृप युवराज राम कहैं देहू। जीवन जनम लाह किन लेहू ॥

महाराज दशरथने कसके जार, इटलीके मुसोलिनी अथवा अभागे भारतके कूर शासक औरंगजेबकी भाँति मन-माना करमान नहीं निकाला। उन्होंने राज्य-परिषद्की बैठकमें सबके सामने कहा—'आप लोग जानते हैं कि हमारा राज्य कैसा उत्तम है? हमारे पूर्वजोंने पुत्रके समान प्रजाका पालन किया है, मैंने भी बराबरकि आज्ञास्व त्यागकर सेवा की है, अब मैं बूढ़ हो गया हूँ, प्रजा-पालनका धर्म बड़े ही दायित्वका है। अतः मैं श्रीरामको युवराज बनाकर प्रजापालनका भार सौंपना चाहता हूँ। आप लोग निस्संकोच अपनी सम्मति दीजिये।' उपस्थित ब्राह्मण, सामन्त, राजा, नागरिक एवं राज्य तथा प्रजाके प्रतिनिधियोंने मिलकर परामर्श किया और सबने एकमतसे रामको युवराज बनानेकी सम्मति दी। महाराज दशरथको इसपर भी सन्तोष नहीं हुआ। प्रजा कहीं मेरे दबावसे मेरी रायमें राय न मिला दे, अतएव महाराज दशरथने उनसे फिर पूछा—

कथं नु मयि धर्मं पृथिवीमनुशामति।

मन्त्रो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महात्मम् ॥

'मैं धर्मपूर्वक राज्यका शासन कर रहा हूँ, फिर आप-लोग महाबलवान् युवराज क्यों चाहते हैं?' उन जाँगोंने मुक्तकण्ठसे कहा, 'महाराज! रामके गुणोंको देखकर ही हम ऐसा चाहते हैं, अतएव आप शीघ्र ही उनका अभिषेक करावाइये।' दशरथकी राजनीतिका अनुमान पाठक इसीसे कर सकते हैं।

श्रीरामके राजनैतिक जीवनका अंगवेश होनेवाला है, राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं। सब लोग बड़े प्रसन्न हैं, पर श्रीरामको अब वह शुभ समाचार मिळता है तब वे सहसा कह उठते हैं—

जनमे एक संग सब माई। भोजन समय केति लरिकई ॥

निमल बंस यह अनुचित एकू। सबहि बिहाइ बडेहि अभिषेकू ॥

श्रीरामकी त्यागमूलक राजनीतिका यह एक आदर्श है। आज माइयोंमें ज़रा-सी भूमि और तनिक-से स्वार्थके जिये खून-खराबी हो जाती है। इतिहासज्ञ जानते हैं कि औरंगजेबने अपने बड़े भाई दाराको कत्ल करवाया, केचारे मुरादको बुझा-बुझाकर मार डाला, शुजाको वज्रजोंमें भटकाया और सगे बापको कैद किया तथा मुगल-साम्राज्यके विनाशका बीज बोया। वह सब क्यों हुआ? उसकी अगुछ राज्यक्षिप्ता और वज्र-स्वार्थके कारण। यह राजनीति रामकी राजनीति नहीं है। वह तो संसारके इतिहासमें एक आदर्श वस्तु है। रामने प्रेममूलक राजनीतिसे गुह निषादको अपने वशमें कर लिया। उसकी दशा मन्त्र-मुग्ध नागराजकी-सी हो गयी। ज़रा देखिये—

लिय फल मूल भेट भरि माग। मिलन बलेठ हिय हरष अपारा ॥

करि दंडवत भेट धरि आगे। प्रसुहि बिलोकत अति अनुरागे ॥

जहाँ कोई इसप्रकार अनुराग-रहित होकर मिळता है वहाँ क्या राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार अङ्गरक्षकोंकी किसी प्रकारकी चेष्टाकी अपेक्षा है?

राम-वनगमनके पश्चात् भाई भरतको वहाँ चिन्ता खगी हुई थी कि कहीं राज्यकी कोई प्राचीन प्रथा टूट न जाय और बड़े भाई रामके रहते उनसे जोटा होनेके कारण मुझको राज्य-शासन देना देना और समाजके जिये हानिकर सिद्ध न हो। भरतकी गहरी राजनीतिक गिरावट और नज़रता आदर्श है। वह कहते हैं—

कहाँ सौँच सब सुनि पतिवाहू। चाहिय धरमसील नरनाहू ॥

मोहि राज हठि देखहु जबही। रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

भरतने आधी राज्यक्रान्तिका विचारकर श्रीरामसे मिलनेकी इच्छा की और सेनाके साथ अयोध्यासे प्रस्थान किया। गुह निषादको भरतपर सन्देह हुआ था और उसने उनसे जोड़ा खेना चाहा था। परन्तु भरतकी साधुतारूप बिमल गंगाकी धारामें स्नानकर वह निष्पाप हो गया। श्रीरामने अब भरतको ससैन्य आते हुए सुना तो उनकी

राजनीतिक पटुता क्रोधके सामने बिजुल नहीं हो गयी। धैर्यमूर्ति राम अपने मनमें किसी भी राजनीतिक चालकी आशंकासे विचलित न हुए। श्रीरामकी यह राजनीतिक परीक्षा भी और वे इसमें उत्तीर्ण हो गये।

भरत-सुमाठ समुक्षि मनमाहीं। प्रमु-चित हित-यिति पावत नाहीं॥  
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महुँ साधु सयाने॥

लक्ष्मणको बड़ा क्रोध आया। वे युद्धके विचारोंमें निमग्न हो अनेक कड़ी बातें कहने लगे। और भरत, शत्रुपक्षके बचकी प्रतिज्ञातककी मौलत आ गयी। किन्तु राजनीति-कुशल श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें समझाया—

सुनहु लषन भल भरत-सरीखा। विधि-प्रपञ्चमहुँ सुना न दीखा॥

भरतहि होइ न राज-मद बिधि-हरि-हर-पद पाइ।

कबहुँकि काँजी-सीकरन्हि छीरसिंधु बिनसाइ॥

यह तो थी रामकी राजनीतिक गम्भीरता, और

कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ। प्रमथयाधि मगन रघुराऊ॥

यह थी श्रीरामकी सच्ची भावना। भरत आये और चरवापादुका लेकर चले गये। श्रीरामके समक्ष अक्षय्य साक्षात्पक्षका बड़ा प्रलोभन था ! किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर रहते हुए भरतका प्रेम निबाहा। श्रीराम आगे बढ़कर मुनिघोंसे मिले। उनके साथ-साथ मुनि-वृन्द भी चले पड़ा। एक स्थानपर—

अस्थि-समूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन लागि अति दायी॥

मुनिगणने उत्तर दिया --

निसिचर निकर सकल मुनि लाये। मुनि रघुबीर नयन जक लाये॥

यह था श्रीरामका भाव और यह थी उनकी सहृदयता ! क्या राजा या राजकुमारके लिये अपनी प्रजाका दुःख देखकर भी उसके निवारणकी चेष्टा न करना राजनीतिमें कहीं खिल्ला है ? यदि नहीं, तो भला क्या राम इस आदर्शसे पीछे पैर रखनेवाले थे ? उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की—

निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह।

सकल मुनिन्हके आग्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

वही है उस राजनीतिककी शक्ति, जिसके भरोसेपर शासन किया जाता है।

श्रीराम गोदावरीके तटपर पञ्चकटीमें रहते थे। उस समय—

सूपनखा रावनकै बहिनी। दुष्टहृदय दारुन जसि बहिनी॥

पंचवटी सो गइ एक नारा। देखि बिकल मह जुगल कुमारा॥

शूर्पणखाने श्रीरामसे विवाहका प्रस्ताव किया। श्रीरामने लक्ष्मणको और लक्ष्मणने श्रीरामको संकेत किया। अपनी इच्छा पूर्ण न होते देख शूर्पणखाको क्रोध आया और उसने बिकराव मेघ धारण किया। लक्ष्मणने उसके नाक और कान काट लिये। तदनन्तर लर, वृषण, त्रिशिरा-समेत चौदह हजार निशाचरोंको श्रीरामने धराशायी किया। शूर्पणखाके अपमानका बदला लेनेके लिये रावणने जगदम्बा अजीतानकीजीको हरनेका निश्चय किया और मारीचके पास जाकर सहायता माँगी। श्रीरामचन्द्रजीका नाम सुनकर मारीच काँप उठा और रावणको श्रीरामचन्द्रसे वैर न करनेकी सलाह देने लगा। वह एक बार भगवान्‌का प्रभाव देख चुका था। श्रीरामके भयसे कह उठा—

राममेव हि पश्यामि रहिते राष्ट्रसेश्वर।

दृष्ट्वा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमाभीव चेतनः॥

रकारादीनि नामानि रामव्रस्तस्य रावण।

रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे॥

न ते रामकथा कार्या यदि मां द्रष्टुमिच्छसि।

( वा० रा० ३।३९।१७-१८-२० )

‘हे रावण ! जिस स्थानपर रामचन्द्रजी नहीं हैं वहाँ भी मैं उन्हींको देखता हूँ। स्वप्नमें रामचन्द्रको देखकर मेरा मन चक्का जाता है और मैं बकने लगता हूँ। हे रावण ! रामचन्द्रसे डरे हुए मुझको रथ, रत्न आदि रकारसे प्रारम्भ होनेवाले पदार्थ भी अवधीत कर देते हैं। यदि मुझे देखना चाहते हो तो रामचन्द्रकी बात मेरे सामने न कहो ।’

बाल्मीकि-रामायणके अ० का० ३३, ४०, ४१, ४२ सर्गोंमें रावण और मारीचका वाद-विवाद सब राजनीतिज्ञोंके लिये विशेषतया आधुनिक शासकोंके देखने योग्य है। मारीच रावणको समझाता है—

वध्याः क्षतु न वध्यन्ते सन्धिवास्तव रावण।

ये त्वामुत्पथमारूढं नानुगृह्णन्ति सर्वशः॥

( वा० रा० ३।४१।१६ )

‘हे रावण ! जो मन्त्री कुमार्गमें जानेसे तुम्हें नहीं रोकते वे बध्य हैं। तुम उनको क्यों नहीं मार डालते ?’ परन्तु रावणने तो पक्षे शासकका व्रत ले लिया था। वह था आजकलकी भाषामें Thorough Administrator अर्थात् ‘पूर्वशासक।’ रावणने बड़े अभिमानसे कहा था—

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे स्तरघातिनः ।

प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तन सन्निवी ॥

एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच निवृत्ते ।

न न्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥

( वा० रा० ३ । ४० । ६-७ )

अर्थात् 'स्तरको मारनेवाले रामचन्द्रके प्राणोंसे प्यारी सीताका मैं अवश्य हरण करूँगा, सो भी तुम्हारे सामने ही । मारीच ! यह मेरा निश्चित विचार है । इसको इन्द्र, देवता या असुर कोई नहीं बदल सकते ।' रावणने जिस दिन सीताहरणका निश्चय किया था, उसीदिन उसकी ओका नाश होना प्रारम्भ हो गया था ।

श्रीरामकी राजनीतिका पूर्ण परिचय सुग्रीव-मैत्री और विभीषणकी शरणागतिसे मिलता है । उनकी संगठनात्मक शक्ति बहुत ही प्रौढ़ थी । समय पड़नेपर भगवान् श्रीराम सुग्रीवसे कहते हैं -

त्वदधीना वयं सर्वे बनेऽस्मिन्शरणं भवान् ।

तस्माद्युध्यस्व भुयस्त्वं मा माशङ्कीश्च वानर ॥

( वा० रा० ४ । १२ । ३-४ )

'हम सब इस समय तुम्हारे अधीन हैं । इस वनमें तुम्हीं हमलोगोंके रक्षक हो । तुम शंका न करो, पुनः युद्ध करो ।' सुग्रीवको समझाबुझाकर श्रीराम उसे बाजिसे जड़नेके लिये प्रेरित करते हैं और अन्तमें पालिका वध करने हैं । राजनीतिपर श्रीराम और बाजिका बाद-विवाद अनुशीलन करने योग्य है । बाजिका राजनीतिक तर्क बड़ा ही मर्मस्पर्शी है । इसके उत्तरमें श्रीराम यह कहते हैं -

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः ।

आनुर्वर्तसि मार्याया त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥

( वा० रा० ४ । १८ । १-८ )

अर्थात् 'सनातन-धर्मको त्यागकर तुम छोटे भाईकी ओका उपभोग कर रहे हो इसी कारणसे तुमको मैंने मारा है ।' इस उत्तरसे बाजि निर्मल हो जाता है । श्रीरामका सुग्रीवको राजा बनाना उनकी राजनीतिपटुताका उत्तम उदाहरण है । सुग्रीवका विषयात्मक होकर विजय कराना, किराजसमूहद्वारा उसको उचित मार्गपर लाना तथा सीताकी खोज करवाना आदि विषय श्रीरामकी राजनीतिक चतुरताके द्योतक हैं ।

यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है । मेरे पुष्प मनसे ऊपर कथितानुसार रामायण एक राजनीतिक ग्रन्थ है परन्तु भगवान् वेदव्यासजीका अध्यात्मरामायण आध्यात्मिक

दृष्टिसे लिखा गया है । अतः यह आध्यात्मिक शास्त्रका गौरव है । और महात्मा तुलसीदासजीका रामचरितमानस भक्ति-रससे प्राणित है । वास्तविक-रामायणमें राजनीतिका अन्धा विवेचन है । इस महाग्रन्थमें पद-पदपर राजनीतिक उपदेश दिये गये हैं । वास्तवमें कोई भी रामायण श्रीरामका विषय होनेसे राजनीतिसे शून्य नहीं हो सकती । यदि इस विषयकी गम्भीर एवं विस्तृत विवेचना की जाय तो अधिक स्थानकी आवश्यकता पड़ेगी । अतः सूक्ष्मरूपसे ही इसके सम्बन्धमें कुछ लिखा जाता है ।

भगवान् रामने महारानी सीताके अन्वेषणके लिये श्रीहनुमान्जीको भेजा । श्रीहनुमान्जीने बड़ी बुद्धिमत्तासे माता सीताका पता लगा लेनेके बाद अपने शत्रु राक्षसोंके हृदयपर अपने प्रबल प्रभुत्वका सिक्का जमाना चाहा । उन्होंने राजनीतिके चार अंगोंमें साम, दान और भेदके उपयुक्त चित्रन देव दशरथकी आयोजना की । अशोक-वाटिकाको उजाड़ा, 'रामकाज' के लिये बँध गये, लंका जलायी और अन्तमें पूर्णमनोरथ होकर लौटे एवं सीताका सन्देश रामको सुनाया ।

श्रीरामकी वानरी सेना समुद्रपर है । रावणका छोटा भाई विभीषण रावणसे फूटकर भगवान्से मिलने जाता है । वानर उसके आनेके रहस्यको समझ नहीं पाते । यहाँपर श्रीरामचन्द्र जिस उदार राजनीतिका वर्णन करते हैं उसे देखकर शत्रु भी मित्र हो सकते हैं । भगवान् कहते हैं 'सबसे पहली बात तो यह है कि विभीषण शरणागत है अनः रक्षणीय है । यदि मान भी लें कि वह दशरथका भाई है तो भी हे सखा !—

जगमहँ सखा निसागर जंते । ललितमन हनर् निमित्तमहँ तेते ॥

जो समीन आता मरनाई । गिहौ तहि प्रानकी नहि ॥

अतः—

उभय भक्ति के आवहु, हँसि कह कृपानिकेत ।'

जब विभीषण आया तो रामने 'भुव विमाल गहि हृदय लगावा' और बड़ी नम्रतासे पूछा—

'स्वयं मंडनी बसहु दिन-राती । सखा ! जमे निबहै केहि मौती ॥'

एक ओर श्रीरामका आत्मविश्वास, दूसरी ओर लक्ष्मणको प्रोत्साहन, तीसरी ओर सभी सह्ययता और उदारता ! इन सब सुन्दर गुणोंके सम्मिश्रणसे श्रीरामकी राजनीतिमें और भी सौन्दर्य आ जाता है । आगे चलकर भगवान् कहते हैं—

जदीपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरस अमोघ जगमाहीं ॥  
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन वृष्टि नभ मई अपारा ॥

इन चौपाइयोंमें कैसी राजनीति और कितना आत्म-विश्वास है। वानरोंमें कोई भी ऐसा न था जिससे श्रीरामने कुशल-प्रश्न न पूछा हो। वह आदर्श है नेतृत्वका। नेताका कर्तव्य है कि वह सबकी सम्मति ले और सबके कल्याण-मार्गको स्थिरकर कार्यक्षेत्रमें उतरे। श्रीरामको विनयद्वारा समुद्रसे पार जानेका कोई मार्ग नहीं दिखलायी देता, भ्रतः यहाँ उनको राजनीतिका रहस्य बतलाना पड़ा।

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तैनि दिन नीति ।

बोले गम सकोंष तब बिनु भय होइ न प्रीति ॥

शक्तिसे भय और भयसे प्रीति, यह राजनीतिका उच्चतम उपदेश है। श्रीरामने इसीके अनुसार कार्य कर समुद्रको अपने वशमें किया।

संसारके इतिहासमें राजनीतिका बर्णन किसने न पढ़ा होगा। आज भी राजनीतिका पाठन होता है। पर श्रीरामकी राजनीति इन सबमें निराक्षी है। उन्होंने युद्धके समय रावणके साथ पद पदपर राजनीतिका पालन किया है। उन्होंने विभीषणका उचित उपयोग किया है। रामने रावणका नाशकर सुवर्णमयी लङ्का विभीषणको दी और आर्य-संस्कृति-सभ्यताका ऋणदा फहराया। तदनन्तर सती सीताको लंकरा प्रयोध्या आये। अयोध्यामें अपने वानरोंको गुरु वशिष्ठका परिचय इन शब्दोंमें करवाया—

पुनि रघुपति सब सखा बोलायै । मुनिपद गगनहु सकल सिलायै ॥

गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे । इनकी कृपा दनुज रन मारे ॥

और गुरु वशिष्ठसे वानरोंके विषयमें कहा—

ये सब सखा मुनहु मुनि मेरे । भये समर-सागर कहँ बरे ॥

मम हित लागि जनम इन हारे । भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे ॥

मुनि प्रभु बचन मगन सब भये । निमिग निमिग उपजत मुख नये ॥

एक ओर अपनी विजयका श्रेय गुरुको और दूसरी ओर अपने सहायक वानरोंको देकर आप तटस्थ रह गये। विजय-भी आपके ही मस्तकको सुशोभित कर रही थी, परन्तु आपने उसका सारा श्रेय दूसरोंको ही दिया। अहा! राजनीतिक पटुता, सज्जनता, शिष्टता, कृतज्ञता, नम्रता और निरभिमानताका कैसा अवलोकित उदाहरण है! इस राजनीतिमें आजकलकी राजनीतिकी नृशंसता और पशुता नहीं है। इसमें मदान्धता, नास्तिकता, स्वार्थपरता और अहम्भान्यता नहीं है। दण्ड तो इसलिये दिया जाता है कि वह—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड पवामिरक्षति ।

दण्डः सुप्तेषु नागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥

( मनु० ७।१८ )

भगवान् रामने लोक-कल्याणार्थ रावणके प्राण अवशय ले लिये। परन्तु उन्होंने उसकी आत्माको अपनेमें मिलाकर उसको शुभ गति दी। तभी तो कहा है—‘क्रोधेऽपि देवस्य वरंण तुल्यम् ।’ मारकर भी मोक्ष देना, अपराधीको भी भौतिक बन्धनोंसे छुड़ाकर मुक्ति देना, भगवान् की विश्वबन्धुताके एक अंगका सुन्दर परिचय है। रामायणकी रामकी इसी भावनापर अवस्थित राजनीति निम्न लोक-कल्याण-कारिणी है।

यह शंका हो सकती है कि जिम आधुनिक राजनीतिको हथ समझकर उसकी निन्दा की गयी है वह भी तो रामायणमें पायी जाती है। रावणकी एकान्तनीति ‘भक्ष्य-भक्ष्य’ (eat or be eaten) ही थी। जिसका पालन आजकल पाश्चात्य राजतन्त्रमें किया जाता है। श्रीरामने भी बालिवध क्यों किया था?

इसका उत्तर यह है कि रावणकी नीति रामायणकी दृष्टिसे त्याज्य होनेके कारण वह रामायणकी राजनीति नहीं कही जा सकती। श्रीरामका बालि-वध संसारके कल्याणके हेतु अथवा आर्य-संस्कृतिकी उत्पत्तिके लिये भी आवश्यक था भ्रतः उसमें स्वार्थका दोष देखना भ्रान्तिमात्र है। इस विषयपर स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है, स्थानाभावसे यहाँ विशेष बर्णन नहीं किया जाता। निस्सन्देह श्रीरामकी राजनीति लोकसंग्रह और कल्याणके लिये ही थी।

आज श्रीरामकी राजनीतिसे संसारका पुनः उद्धार-कल्याण हो सकता है। इस प्रजारजनी राजनीतिसे सेनाकी बढ़ती हुई संख्या रुक जायगी। इससे दूबे हुए छोटे-छोटे देशोंके साथ न्याय होनेके कारण अनेक भावी विप्लवोंका अन्त हो जायगा। इसके अवलम्बनसे अवयव-विगलित जाति अपना स्वरूप पहचानेगी। इसीसे सत्य, धर्म, दया, न्यायादि मनुष्योचित भावोंकी रचा होगी। इससे मानव-समाजके विकासमें पूर्ण सहायता मिलेगी। रामायणके प्रेमियोंका-रामके भक्तोंका कर्तव्य है कि वे श्रीरामकी राजनीतिद्वारा महान्ध और अज्ञानवश्रस्त मनुष्योंको ही नहीं, बरन् राष्ट्रोंको सुधारकर सन्मार्गपर खानेका प्रयत्न करें। यह कार्य धार्मिक उत्थान और संसारके कल्याणका है। बोलो राजा रामचन्द्रकी जय!

## बालि-वधका राजनीतिक कारण

( लेखक—पं० श्रीराजेन्द्रनाथजी विद्याभूषण )



वध सीताहरणको लेकर ही रामसे रावणका वैर था, सो बात नहीं है। इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंसे रावणकी शत्रुता बहुत दिनोंसे चली आती थी। इक्ष्वाकुसे नीचेकी पांचवीं पीढ़ीके राजा अनरण्यके साथ रावणका अपनाक संग्राम हुआ था, जिसमें रावणके हाथसे अनरण्य मारे गये थे। इस युद्धके बहुत दिनों बाद इक्ष्वाकुने दूसरों राजा मानवाताके साथ भी रावणका युद्ध हुआ था ( उत्तरकाण्ड सर्ग १६।२६ )। राजा दशरथ भी रावणके पराक्रमसे भली भाँति परिचित थे। इतना ही नहीं, वह रावणके नामसे डरते भी थे। रावण कभी छोटे मोटे उपद्रव नहीं करता था। इन सब कामोंके लिये तो वह अपने सेवकोंको ही नियुक्त रखता था। जिस कामको दूसरे नहीं कर सकते, वैसे बड़े काममें वह स्वयं जगता था। विधामित्रने जब वज्र धारण किया, तब रावण ने उसमें विज्र बाजनेके लिये मारीच और सुबाहु नामक दो महाबली राक्षसोंको नियुक्त कर दिया। वज्र-रक्षाका अन्ध कोई उपाय न देखकर विधामित्र दशरथके दरबारमें रामको भाँगने गये। विधामित्रने तपोबलसे यह जान लिया था कि रामके अतिरिक्त दूसरेसे मारीच-सुबाहु नहीं मर सकते। रावण दक्षिण समुद्रके उस पार जङ्गलमें था और विधामित्र वज्र करते थे उत्तर हिमालयके अन्तःपाती सिद्धाश्रममें ! वहाँ रावण-प्रेरित सुबाहु और मारीच वज्रमें विज्र करते थे और उनको मारनेके लिये विधामित्र आये थे अयोध्याके राजा दशरथके पास रामको भाँगने ! मानो मारी पृथ्वीमें किसी एक इच्छाचक्रका सूत्रपात हो रहा था। विधामित्रके मुखसे 'रावण-प्रेरित' शब्द सुनते ही दशरथ सहम गये और उन्होंने कपट झोड़कर कहा—

नहिं शक्योऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः ।  
देवदानवमन्त्रेणाः यज्ञाः पतगपजगाः ॥  
न सक्ता रावणं सोढुं किं पुनर्मानवा युधि ।  
स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावण ॥  
तेन चाहं न सक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः ।

( बा० रा० १।२० )

'रावणकी तो बात ही दूर है मैं तो उसकी सेनाके साथ भी युद्ध नहीं कर सकता। फिर मेरे पुत्र तो हैं ही किस गिनतीमें ?' जो कुछ भी हो यशिष्ठकी प्रेरणासे दशरथने रामको विधामित्रके हाथ सौंप दिया। अक्षमय भी बड़े भाईके साथ चला दिये।

मारीच-सुबाहुका वध हो चुका। रावणके कार्मोत्तक यह संवाद अवश्य ही पहुँचा था और इस संवादसे मारीच-इन्ता रामके प्रति रावणके मनमें कैसे भाव पैदा हुए, आदि-कविकी भाषामें इस सम्बन्धमें स्पष्टरूपसे कुछ ज्ञात न होनेपर भी रामायणकी घटनाओंपर विचार करनेसे उस मनोभावका रूप बहुत कुछ समझा जा सकता है। क्रमशः इस विषयपर विचार कीजिये।

रामके वनगमनके बाद जब भरतने ननिहालसे लौट कर सारी बातें सुनीं और सब लोगोंको साथ लेकर रामकी सेवामें उपस्थित हो वापस लौटनेके लिये उनसे आप्यन्त आग्रह किया। तब अनेक प्रकारसे समझाकर अन्तमें रामने स्पष्ट ही कह दिया कि 'भाई, मैं नहीं लौटूँगा। पिलाजीने जिस प्रकारसे विभाग कर दिया है मैं उसी प्रकारसे राज्य भोग करूँगा—

त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसङ्कतम् ।  
वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वत्कलत्रासमा ॥  
पवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसन्निधौ ।  
व्यादिक्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः ॥

( बा० रा० २।१०१ )

तुम अयोध्या जाओ और मैं दण्डकारण्य जाता हूँ। तुम्हारे सहाचर शत्रु हैं तो मेरे साथी अक्षमय हैं। ( बा० रा० २। १०१ ) अनेक प्रकारसे समझानेपर भी जब भरत किसी तरह नहीं माने तब रामने और भी दृढ़तासे कहा—'भरत, तुम जाकर अनुज्योंपर राज्य करो और मैं वनचर पशुओंका राजा बनूँगा। तुम प्रसन्न-हृदयसे नगरको लौट जाओ, इधर मैं भी सहर्ष दण्डकारण्यमें प्रवेश करूँगा। सूर्य-किरणोंका निवारण करने-वाला वज्र तुम्हारे मकड़पर शीतल छाया करेगा। इधर मैं भी वनके वृक्ष-समूहोंकी बनी छायाका आनन्द लूँगा। भाई, कुशलबुद्धि शत्रु तुम्हारे सहायक हैं, इसी प्रकार सौमित्र अक्षमय वहाँ मेरे प्रपाच मित्ररूपसे रहेंगे। हम चारों ही

कल्याण

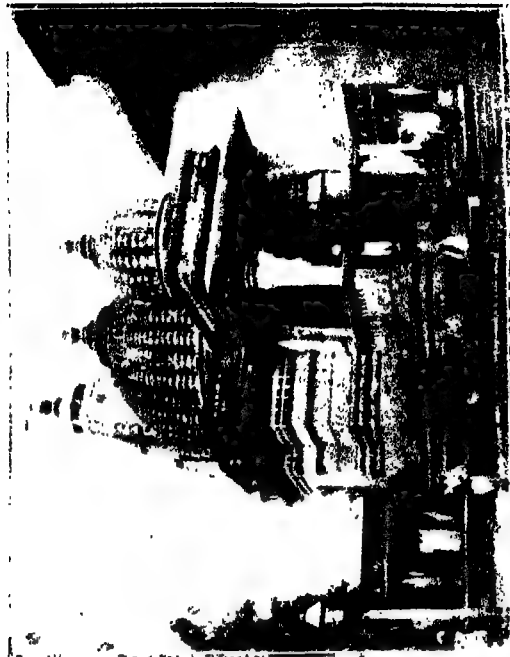


(नामिक पञ्चवटी)

१



नामिक गोदावरी दृश्य (२)



पञ्चवटीमें श्रीराम मन्दिर



नामिक गोदावरी दृश्य (३)



नाइका नाका

कल्याण

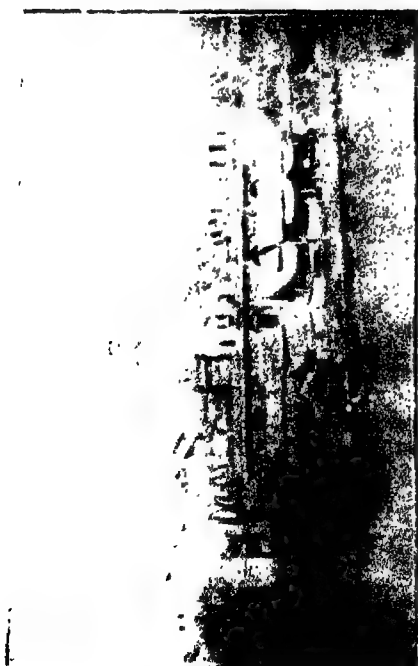
(नासिक पञ्चवटी)



श्रीचक्रवर्तीकेदार मन्दिरका बाहरी दृश्य



रामकृष्ण और गंगामन्दिर



गोदावरीनर नारी शंकरका मन्दिर



गोदावरीनरका पूज्य



भाई महाराजके चार सुपुत्र हैं अतएव आपो, हम सब मिलकर महाराजको सत्कार स्थिर करें। तुम इसमें किसी प्रकारकी न तो आपत्ति करो और न विवाद ही करो।' (पा० रा० २, १०७। १७ से १९)

रामकी इस उक्तिसे यह प्रतीत होता है कि दशरथ मानो सबके सामने राज्यका बँटवारा कर गये थे। एकके लिये अबोध्या और दूसरेके लिये दूधक-वन। श्रीरामचन्द्र पिताके लिये हुए बँटवारेको शिर चढ़ाकर आज दूधक-वनमें नवीन राज्यकी स्थापनाके लिये चले।

राम-वन-गमनके बहुत पहलेसे ही रावणकी विधवा बहिन शूर्पणखा दूधकवनमें रहती थी। मद्गर्हित, क्रोधान्ध रावणने प्रमादसे शूर्पणखाके स्वामी अपने बहनोई-को मार डाला था। तदनन्तर अपने मौसेरे भाई सर नामक राक्षसको चौदह हजार सेनाका स्वामी बनाकर और दूधकको सेनापति बनाकर शूर्पणखाकी रक्षाके लिये उसके साथ दूधक वन भेज दिया था। सर-दूधकके अत्याचारसे दूधकारण्यवासी अधियोंके नाकोंदम हो गया था और उनके सारे कर्मकाण्ड प्रायः मिट चुके थे। रावण स्वयं जङ्गलमें रहा और विधवा युवती बहिनको भोज दिया समुद्रके उस पार चोर दूधक-वनमें। और फिर उसकी खोज कर भी नहीं रखी, ऐसा क्यों किया? उत्तर आगे मिलेगा।

रावण कितना बड़ा पराक्रमी और भयङ्कर अपराधेय वीर था, इस बातको दशरथ भलीभाँति जानते थे। दूधकारण्यमें रावणका एकाधिपत्य था, यह बात इसीसे सिद्ध होती है कि बहिन शूर्पणखाके रहनेके लिये रावणने दूधकवनको ही चुना था। जब विश्वामित्र रावणपत्नीय और कास रावणके द्वारा ही नियुक्त यज्ञ-विश्वकारी सुषाढु और मारीचको मारनेके लिये श्रीरामचन्द्रको भोगने गये थे, तब रावणके नामसे ही राजा दशरथ कितने अधिक डर गये थे, यह बात ऊपर कही जा चुकी है। राजपरिवारकी प्रधान और प्रथम सन्तान रामको अक्षमयसहित विश्वामित्र ले गये थे। उस समय बालक राम-अक्षमयके प्रति कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीनों ही रानियोंका समान आकर्षण था। क्योंकि सुवराज्याभिषेककी बातसे पूर्वतक कैकेयी रामको खूब चाहती थी, और बड़े स्नेहकी दृष्टिसे देखती थी, इस बातको सभी जानते हैं। ऐसी अवस्थामें रावणके बच्चे और रावणके द्वारा ही नियुक्त दोनों राक्षसोंके बच्चे लिये विश्वामित्रके साथ राम-अक्षमयके जानेकी और साथ ही प्रबल पराक्रमी रावणके बल-विक्रमकी चर्चा राम-माताओंमें

बबरव ही हुई होगी, यह सहजहीमें समझा जा सकता है। प्रसङ्गतः दूधकारण्यमें रावण-सौदरा शूर्पणखाका सेना-सहित निवास करना, वहाँ रावणका एकाधिपत्य होना, रावणसम्बन्धी अन्य अनेक विषयोंकी आलोचना होकर, की-स्वभाव-सुखम अनेक वस्तुकारणोंसे उसका एक रूप बन जाना भी सम्पूर्ण स्वाभाविक है। अब देखना यह है कि इस अनुमानकी सार्थकता कहाँ तक होती है।

मन्थराने अपने कुपरामर्शमें कैकेयीको केवल दो ही वर माँगनेकी बात सिखायी थी—एकमें रामको चौदह वर्षका वनवास और दूसरेमें भरतका राज्याभिषेक। इसके सिवा उसने और कुछ भी नहीं सिखाया था। पर जब कैकेयीका मित्राज्ज बिगड़ा तब वह मन्थराके द्वारा कुत्रुडिरूप जहरकी घूँट पिँडायें जानेसे पूर्व जैसे सांझहों आने भण्डी थी, वैसे ही, बल्कि उससे भी और अधिक डुरी हो गयी। इसीलिये उसने मन्थराके 'वनवास शब्दके साथ' 'दूधकारण्य' शब्द और जोड़ दिया। देशमें भयानक जंगल तो और बहुतसे थे, उसे दूधक ही क्यों बाद आया? निरन्तर ही दूधकारण्यके सम्बन्धमें पहलेसे ही उसके मनमें कुछ संस्कार बढभूज थे। यह नहीं कि वह स्थान सुखोपभोगके लिये सुन्दर है किन्तु इसके विपरीत उसकी धारणा यह थी कि दूधक भयङ्कर राक्षसोंसे पूर्ण रावणशासित होनेके कारण विपत्तिपूर्ण और सत्पुरुषोंके रहनेके लिये सर्वथा अयोग्य है। उसने सुलसे रहनेके लिये रामको वहाँ नहीं भेजा था। पिता दशरथके विभागके अनुसार राम दूधक लें और भरत अबोध्यामें राज्य करें, यह बात भरतको समझानेके समय स्वयं श्रीरामके मुखसे हम सुन ही चुके हैं।

दूधकारण्यमें शूर्पणखाको भेजकर रावण निरिचन्त था। क्योंकि उसके समुद्र पार जङ्गलमें रहने-पर भी उसका अभिन्नहृदय मित्र वीरभेद बालि तो दूधकके समीप ही राज्य करता था। बालिकी जानकारीमें रावणकी और रावणकी जानकारीमें बालिकी कोई हति नहीं हो सकती थी या उनपर कोई आपत्ति नहीं आ सकती थी। वे दोनों अग्निको साची देकर (Offensive-Defensive) सन्धि-युद्धमें बैठ चुके थे। इस पार बालिका साम्राज्य था और उस पार रावणका, बीचमें था विराट् समुद्र। इस पारसे रावणके राज्यपर आक्रमण करनेवालेको सबसे पहले बालिके साथ युद्ध करना होगा और उस पारसे बालिके राज्यपर आक्रमण करनेवालेके साथ सर्वप्रथम रावणका युद्ध होना अनिवार्य था। इस सन्धिकी प्रस्ताव रावणने ही पहले किया था। बालिके साथ बल-परीचामें

हारकर रावणने उससे कहा 'हे वानर-श्रेष्ठ ! मैंने आपका बख अपनी आँखों देख लिया, अब मैं अग्निको सामने रखकर आपके साथ विरबन्धुव स्थापन करना चाहता हूँ। हे वीरराज ! आजसे हमारे और आपके की. पुत्र, घर, राज्य, भोग, आच्छादन, भोजन सब अभिभक्त हो गये यानी एक हो गये।' यह कहकर उसने अग्नि जला दी और दोनोंने परस्पर हृदयसे लगकर स्नेहपूर्ण आत्माकी स्थापना की। इसके बाद दोनों मित्र परस्पर हाथ पकड़कर महलमें गये।' ( बा० रा० ७।३४।४०से४३ )

अतएव शूर्पणखाके विहारक्षेत्र दण्डक-वनपर ही नहीं, रावणराज्यके किसी भी अंशपर किसी प्रकारसे भी यदि कोई भारतवर्षसे आक्रमण करने जाता तो उसको सबसे पहले वीरश्रेष्ठ बालिसे जड़ना अनिवार्य था।

श्रीराम अपने पिताकी आज्ञासे दण्डक-वनमें आये। वनवासमें दस वर्षका जरा समय अनेक आश्रमोंमें घूमकर और तीन वर्षका समय पञ्चवटीमें रहकर आपने बिनाया। अब केवल एक वर्ष बाकी है, इसी समय रावणने सीताको हर लिया।

रावणके सद्यः दुर्दैय रावस दूसरा नहीं। जङ्गलमें उसका निवास है। ऐसी शत्रुका दमन करनेके लिये जो कुछ आवश्यक है सुग्रीव सबसे पहले वही कर रहे हैं—'हे जम्भय ! आप शान्त हों, सुग्रीव राक्षसाधम रावणका बधकर रोहिणीके साथ चन्द्रमाकी भाँति सीतासहित रामको लावेंगे। रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुग्रीव करोड़ों वानरोंकी सेना एकत्र करनेमें लगे हैं।' ( बि० सर्ग ३५ )

ताराकी इस उक्तिसे प्रतीत होता है कि रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुग्रीव भीष्म और दृष्टन् आशोकनमें लगे हुए हैं। रावणने सीताको हर लिया, इस बातको सभी जान गये हैं और उसके समुचित प्रतिकारकी चेष्टा भी हो रही है, यह भी ताराकी बातोंसे स्पष्ट है। परन्तु वहाँ एक विषय प्रश्न उपस्थित होता है कि सारी बातें जाननेपर भी सुग्रीवने अनेक स्थानोंके नाम बतला-बतलाकर उन देशोंमें जाकर सीताके अपहरण करनेवाले रावणका पता लगानेके लिये वानरोंसे क्यों कहा ? रावण सीताको जङ्गलमें ले गया था, यह बात तो ताराने जम्भयसे पहले ही कह दी थी, फिर इतिहास-भूगोलके इतने ज्ञाने स्थानानकी क्या आवश्यकता थी ? सीधे शब्दोंमें जङ्गल कहनेमें ही काम चल सकता था। इस शङ्काका समाधान किसी अगले लेखमें किया जायगा।

आज तो हमें यह देखना है कि रामने केवल सुग्रीवके साथ मित्रता करनेके लिये ही बालिको मारा था इसमें कोई और भी कारण था।

श्रीरामने जब भरतको अयोध्या छोड़ जानेके लिये जोर देकर कहा था। तब यह भी स्पष्ट कह दिया था कि पिताके किये हुए विभागाके अनुसार तुम अयोध्यामें जाकर मनुष्योंके राजा बनो और मैं दण्डकारण्यमें जाकर वनचरोंका 'राज-राज' बनता हूँ। राजा और 'राज-राज' अर्थात् राजाके राजामें बहुत अन्तर है। दण्डक-वनमें शूर्पणखाके नाक-कान काटने और खर-दूषणको मारनेसे रावणके साथ घोर शत्रुता हो ही गयी थी। इस बातसे राम-जम्भय अपरिचित नहीं थे। शूर्पणखानेही रामके पूछनेपर यह साफ कह दिया था कि रावण, कुम्भकरण, विभीषण और दूषण आदि मेरे भाई हैं। ऐसी अवस्थामें महाबली रावणकी बहिनके नाक-कान काटनेका कितना अयत्न परिणाम हो सकता है, राजनीति-विशारद श्रीरामके लिये इस बातका समझना बाकी नहीं था। रावणके साथ किष्किन्धा-नरेश महारौर बालिकी मैत्री और सन्धिकी बात पहले कही जा चुकी है। अब यह भी मालूम होता है कि सीताहरणके बाद सहायताके लिये श्रीराम सुग्रीवके साथ मैत्री करनेके लिये तैयार न भी होते और बालिको मारकर सुग्रीवको किससे गजपगदीपर बैठानेकी प्रतिज्ञा न भी करते तो भी उन्हें बालिको तो मारना ही पड़ता। समुद्रके डम पार जङ्गलपति रावणपर आक्रमण करनेके लिये सारा उद्योग इस पार बालिके राज्यमें ही करना था। रावण-बन्धु महावीर बालि मित्रके विरुद्ध रणसज्जाको कभी भहन नहीं कर सकता। सन्धि-सूत्रके अनुसार रावणका शत्रु बालिका भी शत्रु था। अतएव रावणके साथ युद्ध करनेमें पूर्व ही रामको बालिके साथ युद्ध करना पड़ता। दण्डकमें राज्यस्थापन और जङ्गलपति रावणके साथ विवाद यह दोनों ही बातें बालिके जीवित रहते सहज नहीं थीं। अतएव रामका सर्वप्रथम कर्तव्य हो गया था—बालिको पराजित करना। अन्यथा सीता-उद्धार एक प्रकारसे असम्भव था। इसीलिये श्रीरामचन्द्रने एक दश राजनीतिज्ञकी भाँति आगे-पीछेकी सारी बातोंको सोच-समझकर सुग्रीवके साथ मैत्री और बालि-बधकी प्रतिज्ञा करके करोड़ों वानर-सेनाकी सहायतासे कर्तव्य-सम्पादनका निश्चय किया था। अवश्य ही बालिकी प्रतिज्ञाही सुग्रीव इतना गहरा नहीं जा सका। राज्यभट सुग्रीव तो केवल बालिका बध और स्वराज्यका

उद्धार ही चाहता था। अपने ये दोनों ही उद्देश्य श्रीरामद्वारा सिद्ध होते देखकर उसने सेनासहित अपने आपको रामकी सहकारितामें लगा दिया। रामचन्द्र धर्मोपासकके लिये वनमें नहीं गये थे। जीवनके प्रारम्भमें राजपुत्र राम अपनी प्यारी जन्मभूमिको छोड़कर जानेको बाध्य हुए थे। प्रकृतिके खीलानिकेतन निबिड वनकारणमें नवीन और विशाल साम्राज्य स्थापनके लिये ही कृतसङ्कल्प होकर श्रीरामने वनव्रतमें प्रवेश किया था। वे वीर थे। उनके लिये कोई भी कार्य दुष्कर नहीं था। वे प्रसन्नचित्तसे आनन्दके साथ अपने दिन बिता रहे थे। इसी बीचमें सीताका अपहरण होनेसे

राज्यके साथ युद्धका उद्योग करना पड़ा और उसीके र्शगीभूत अवश्य कर्तव्योंमें बाधबध भी एक कर्तव्य था। अतएव रामपर किसी प्रकार भी बोधारोपण नहीं किया जा सकता। सीताके उद्धारके लिये बाह्यके राज्यमें रहकर बाह्यके जीते समुद्रपर पुनः बाँचना और राज्यके सर्वनाशके लिये विपुल उद्योग करना असम्भव था। सीताके उद्धारके लिये सबसे पहले बाह्यका बंध अत्यन्त आवश्यक था। प्रसन्नवश इस बाह्य-बंधके उपलक्ष्यमें सुग्रीवके साथ मैत्री हो गयी। जिससे समुद्र-वन्दन आदि कठिन कार्य बहुत कुछ सहज-साध्य हो गये। यह भी बाह्य-बंधका एक रहस्य है।

## रामायण और श्राद्ध-तर्पण

(लेखक—पं० श्रीआचारामजी शास्त्री, साहित्यभूषण, व्याकरणाचार्य, वेदान्तपार्थक)



धाँदा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी दिव्य लीला और उनके द्वारा स्थापित दिव्य आदर्शोंका तथा उनके अनुकरणीय आचरणोंका वर्णन जिसप्रकार श्रीमद्वाल्मीकिजीने अपनी रामायणमें किया है, वैसा वर्णन करनेका सौभाग्य किसी दूसरे ग्रन्थकारको प्राप्त नहीं हो सका। यही कारण है कि इस ग्रन्थमें सब सम्प्रदायोंकी समान अज्ञा है। और प्रायः सभी आस्तिक पुरुष अनुकरण करनेके विचारसे ही इसका अध्ययन करते हैं। इसी ग्रन्थसे प्रसङ्गवश श्राद्ध-तर्पण जैसे कठिन विषयपर कुछ विवशान कराना अनुचित न होगा। आजकल श्राद्ध तर्पणपर कुछ लोगोंकी अज्ञा बढ़ रही है। इस बातको भी दृष्टिमें रखकर यह प्रसङ्ग उपादेय ही प्रतीत होगा।

रामायणमें सर्व प्रथम, अयोध्याकाण्डके ७९ वें और ७७ वें सर्गोंमें, श्राद्ध-तर्पणादिका वर्णन आया है, जहाँ भरतजीने महाराज दशरथका और्ध्वदेहिक संस्कार कर कौसल्या आदि रानियोंके सहित उदकदान दिया है—

ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य च पुनः पुनः ।

यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुनृपाङ्गनाः ॥

कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च ।

पुनः प्रविश्याधुपरीतनेत्रा भूमी दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥

(भा० रा० २।७६।२२-२३)

अर्थात् 'रोती-रोती वे स्त्रियाँ दुरका गयीं। इन लोगोंने बार बार बिछाप किया, फिर वे राजस्त्रियाँ सरयूके तीरपर सचारियोंसे उतरतीं। इन रानियोंने तथा मन्त्री और पुरोहित आदिने भरतके साथ राजाको जलाअग्नि दी। अनन्तर वहाँसे रोते हुए वे नगरमें आये और इस दिनोंको भूमि-शयन आदिके द्वारा दुःखपूर्वक बिताया।' तथा—

ततो दशाहंऽतिगते कृतशीघ्रो नृपात्मजः ।

द्वादशोऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्मण्यकारयत् ॥

प्राक्षणेभ्यो घनं रत्नं ददावन्न च पुष्कलम् ।

वास्तिकं बहुशुक्रं च गादृचापि बहुदास्तादा ॥

(भा० रा० २।७७।१-२)

अर्थात् 'इस दिन भीतनेपर राजकुमार भरतने त्वारहवें दिनके आरम्भशुद्धि करनेवाले कर्म किये। बारहवें दिन उन्होंने राजाके सब श्राद्धकर्म किये और प्राक्षणियोंको घनरत्न, बहुत-सा अन्न, अनेक प्रकारके दामी वस्त्र, बकरी और अनेक गौएँ प्रदान की।

इस प्रकरणमें तर्पण, द्वादशाहादि, सपिण्डीकरणके अन्तमें श्राद्ध और पितरोंके उद्देश्यसे दिये गये प्राक्षणोंके दानका भी स्पष्ट प्रतिपादन मिलता है। जो लोग शङ्का करते हैं कि 'दान अन्धको दिया जाता है और प्राप्त होता है अन्धको', यह बात असङ्गत-सी है। उनको उपयुक्त उद्धरण-पर आस्तिक-भावसे विचार करना चाहिये। आगे श्रीरामचन्द्रजी द्वारा किये हुए पितृ-तर्पणादिका उल्लेख पाया जाता है—

ते सुतीर्या ततः कच्छादुपगम्य यशस्विनः ।  
नदीं मन्दाकिनीं रम्यां सदा पुष्पितकाननाम् ॥  
शीघ्रस्रोतसमासाद्य तीर्थं शिवमकर्मम् ।  
सिपिचुस्तुदकं राक्षे तैतत्ते भवत्विति ॥  
प्रगृह्य तु महीपालो बलपूरितमञ्जलिम् ।  
दिशन्वात्म्यामभिमुखो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥  
पतते राजशार्ङ्गं विमलं तोयमध्वयम् ।  
पितृलोकगतस्याद्य मद्भक्तमुपतिष्ठतु ॥

( बा० रा० २।१०।३।२४-२७ )

अर्थात् 'बे यशस्वी सुन्दर घाटवाली रमणीय मन्दाकिनी नदीके तीरपर बड़े कष्टसे गये । मन्दाकिनी नदीके पासका वन सदा पुष्पित रहता है । शीघ्र चलनेवाली मन्दाकिनीके सुन्दर और बिना कीचड़के घाटपर जाकर वन जोगोंने पिताको यह कहकर जल दिया कि यह जल आपको मिले । श्रीरामचन्द्र अपनी अञ्जलिको जलसे भरकर दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके रोते हुए बोले—हे राजसिंह, यह विमल और अद्यय मेरा दिया हुआ जल पितृलोकमें आपको प्राप्त हो ।

इसप्रकार अञ्जलिके पश्चात् हनुमी और बेरसे विषहवादादिका भी विधान है—

पेङ्गुदं नदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्मसंस्तरे ।  
न्यस्य रामः सुदुःखतो रुदन्वचनमब्रवीत् ॥  
इदं पुंस्व महाराज प्रीतो यदशना वयम् ।  
यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥

( बा० रा० २।१०।३।२९-३० )

अर्थात् उसपर हनुमी और बेरके फल रखकर, दुखी रामचन्द्र बोले—'महाराज ! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन कीजिये, क्योंकि हमजोगोंका यही भोजन है । मनुष्य जो अन्न खाता है उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं ।'

इस प्रसङ्गके पश्चात् रामजीके द्वारा जटायुके तर्पणका वर्णन आया है—

शाक्यदंष्ट्रेण विधेना जलं गृध्राय राघवौ ।

स्नात्वा तौ गृध्रराजाय उदकं चक्रतुस्तदा ॥

( बा० रा० ३।६८।३६ )

इसका अभिप्राय स्पष्ट ही है । जटायु देवारा, दिव्य-बलशाली पक्षिराज था तथा राजा दशरथका मित्र था । इसलिये उसके तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होनेपर भी भगवान् रामचन्द्रजीने उसका तर्पणादि किया । इसी प्रकार किष्किन्धा-कावटके २५ वें सर्गमें सुग्रीवद्वारा सम्पादित बाजिके आदादिका तथा युद्धकारणमें विभीषणकृत रावणके तर्पणादिका वर्णन आया है । इन अवसरयोंको देखकर स्पष्ट ज्ञात होता है कि आद-तर्पणादिका विधान सनातन है और आर्यग्रन्थोंके आधारपर स्थित सनातन कृत्य है ।

जीवित पुरुषके आदसे इन अवसरयोंका कुछ सम्पर्क ही नहीं है और न आस्तिक पुरुष इनमें अनार्य भावनाकी ही कल्पना करने हैं । अतएव 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव' इस भुक्तिके अनुसार इस नित्यकर्ममें अदापूर्वक भाग लेकर अपना कर्त्तव्य पावनकर सनातन मर्यादाकी रक्षा करना प्रत्येक धर्मप्राय हिन्दूका परम कर्त्तव्य है ।

### राम अटल रहे

रामचन्द्रकी माता कैकेयीने रामचन्द्रके वनवास जानेका वरदान माँगा । दशरथको यह कुबूल करना पड़ा । मामूली तीरपर तो यहाँ कह सकते हैं कि दशरथ पागल तो नहीं हो गये थे ? पर रामचन्द्र क्यों ड़िगने लगे ? उनसे कहा गया, तुम्हारे वियोगमें पिता रो रोकर मर जायेंगे, अयोध्या विधवा हो जायगी । पर उन्होंने सब बातोंको तुच्छ समझा—

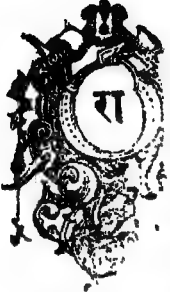
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्राण बाढ़ बड़ बचन न आई ॥

अयोध्या निस्तेज हुई, दशरथकी मृत्यु हुई, पर राम अटल रहे ।...

—महात्मा गांधी

## रामायणमें सत्य और प्रेम

(लेखक—श्रीसदानन्दजी सम्पादक 'मेसेज'\*)



भाष्यका महत्त्व श्रीरामचन्द्रजीके वनवासमें निहित है। श्रीरामचन्द्रजीके पिता राजा दशरथने अपनी छोटी रानी कैकेयीको उसकी इच्छानुसार दो वरदान देनेकी प्रतिज्ञा की थी। जब रामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही थीं, उनकी विमाताने अपने सपत्नीके पुत्रको राज्याभिषेकके लिये चुने जानेपर ईर्ष्या करते हुए राजासे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेको कहा। एक वरसे उसने श्रीरामचन्द्रके लिये चौदह वर्षका वनवास और दूसरेसे अपने पुत्र भरतके लिये अयोध्याका राज्य माँगा। यह सुनते ही राजाके शिरपर मानो वज्रपात हो गया ! इस शुभ अवसरपर आश्चर्यक ऐसा वरदान माँगनेसे वे दुःखमग्न हो गये। अपनी मृत्युके समयतक भी उनके मुखसे स्वीकृति-शुद्ध शब्द न निकल सके। किन्तु उस युगमें प्रतिज्ञा-पालन अत्यन्त पवित्र कर्म समझा जाता था, प्रतिज्ञाकी अवमानी अक्षम्य अपराध था। और दशरथजीको चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़े, प्रतिज्ञाको पूरा करना उनका धर्म था।

श्रीरामचन्द्रजीने अपनी विमाताने जब अपने पिताके शोकका कारण सुना तो वे राजाको शोकमुक्त करनेके लिये स्वेच्छापूर्वक आत्मत्याग करनेको तैयार हो गये। सच पूछिये तो पिताकी प्रतिज्ञाके लिये रामचन्द्रजी उत्तरदायी नहीं थे, और न राजासे ही उन्हें कोई ऐसी स्पष्ट आज्ञा मिली थी। किन्तु उनकी सत्यके प्रति ऐसी महान् श्रद्धा थी कि उन्होंने राजाको सत्यके आर्यपथसे गिरते नहीं देखना चाहा, चाहे उन्हें इसके लिये प्राण भी क्यों न देने पड़ें। यद्यपि सारी प्रजाने उनसे आग्रह किया, भरतने भी स्वर्ण उनसे प्रार्थना की और अधियोंने समझाया परन्तु श्रीरामचन्द्रजी अपने निश्चयपर सुदृढ़ रहे, क्योंकि वह सत्यको ही परमधर्म

समझते थे। जब भरतने राज्यशासन ग्रहण करनेके लिये प्रबल युक्तियाँ पेश कीं, जब सारे नगर-निवासी प्रार्थना करने लगे तब श्रीरामने कहा—'सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं है, सब पदार्थोंमें सत्यको ही परम पुनीत वस्तु समझना चाहिये। सत्यपर ही वेद अवलम्बित हैं। पिताकी आज्ञाका अनुवर्तन करनेकी प्रतिज्ञा कर खेनेपर, अब मैं जोभसे, प्रमादसे या अज्ञानसे कभी सत्यकी मर्यादाका उल्लङ्घन न करूँगा।'।

वे हम आत्म-त्यागकी कठिनाइयोंसे पूर्ण परिचित थे, वे अपने सिरपर भानेवाली आपद्-विपद्को देखते थे, किन्तु सत्यके निमित्त उन्होंने उनकी कुछ भी परवा न की। आधुनिक कूटनीतिज्ञ उनके इस कार्यको विवेकशून्य समझेंगे, किन्तु आजकलकी गहिरी कूटनीति जो अर्द्धसत्य या असत्यके आशय-पर ठहरी हुई है, उस युगमें किसीको मालूम ही नहीं थी। आजकी भाँति श्रीरामचन्द्र सत्यको, अपनी आत्माको लूट और परस्वापहरणके बाजारमें बेचनेके लिये तैयार न थे। सांसारिक लाभके लिये आसक्ति, लोभ और स्वायत्तपरताके द्वारा अन्धे होनेके कारण, आधुनिक युगमें, हममेंसे अधिकांश मनुष्य इसकी महत्ताका अनुभव नहीं कर सकते। सत्यकी महिमा आज जड़वादके चक्काचौधमें, लोभ और लूट-खसोटके कूड़े-करकटमें, अहङ्कार और दम्भकी धूलमें छुस-प्राप्त हो गयी है। प्राचीनकालके बहुदियोंने सत्यके लिये ईसाको सूजीपर चढ़ा दिया, पर आधुनिक कालके बहुदियोंने सत्यको ही सूलीपर चढ़ा दिया है। श्रीरामचन्द्रजीका युग एक दूसरा ही युग था। आधुनिक कालके हीन मतवाद उस युगके सरल चित्त और ईश्वरसे डरनेवाले लोगोंके हृदयको स्पर्शतक नहीं कर सके थे। किन्तु उस समय भी सत्यके निमित्त श्रीरामकी महती निष्ठाने आत्मत्यागी अधियोंको भी शक्ति कर दिया था। सत्यकी रक्षाके लिये उनके प्रिय भाई लक्ष्मणका—जो उन्हें प्राणसे भी प्रिय

छ'दा 'मेसेज'(The Message) अंग्रेजोंका सर्वधर्मसमन्वय कारक और प्रेमका प्रचारक बहुत अच्छा मासिकपत्र है, इसमें साधु वास्तवानीजीके और सदानन्दजीके बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेख रहते हैं। सदानन्दजी बहुत पवित्र भावसे यह कार्य कर रहे हैं। अंग्रेजी जाननेवालोंको यह पत्र अवश्य पढ़ना चाहिये। इसका वार्षिक मूल्य सिर्फ एक रुपया है। यह गोरखपुर 'आनन्द-आश्रम'से प्रकाशित होता है—सम्पादक।

थे—वन जाना आत्मत्यागका एक दूसरा उदाहरण है। यह सत्य-प्रेम ही उनके सर्वप्रिय होनेका जीवन्-मूर्त है, जिसके कारण वे अवतार माने गये हैं।

इसके अतिरिक्त हम रामचन्द्रजीमें उन दक्षिण, अनाथों और पहाड़ी तथा जङ्गली जातियोंके प्रति अगाध प्रेमका परिचय पाते हैं, जिन्हें जोग छोटी नजरसे देखते, धृष्टा करते और पशुवत् व्यवहार करते थे तथा जिन्हें बन्दर, भालु, निशिचर और राक्षस प्रभृति नामोंसे पुकारते थे। एतदर्थ इसप्रकारका साहसिक कार्य करनेके लिये एक राजकुमारमें बहुत बड़े उत्साहकी आवश्यकता थी। अन्त्यज राजा गुहको मित्रवत् आखिन्न करना, शक्तीके जूँटे बेर खाना, बानरराज सुग्रीवके साथ मैत्री, राक्षसराज विभीषणके प्रति प्रेमभाव, जटायुका दाह-संस्कार करना, शत्रु राक्षसके मरखोपरान्त उसकी अन्त्येष्टि प्रभृति कराना, श्रीरामके ये कार्य लोगोंको इतने प्रिय लगे कि वे उनके लिये प्रत्येक प्रकारका त्याग करनेके लिये तैयार हो गये। बल्लुनः वे जङ्गलके युद्धमें इन्हीं दक्षित, अर्थात् तथा उपेक्षित लोगोंके प्रति अन्त्यतम प्रेम रखनेके कारण ही विजय प्राप्त कर सके थे। वे उस समय राजा नहीं थे और उनके पास सेनाको देनेके लिये—वर्हातक कि भोजन प्रदान करनेके लिये भी—कुछ न था। किन्तु प्रेमके कारण ही उन्होंने एक विशाल सेनाका सङ्गठन कर लिया, जोग उनके प्रेम और सत्त्वबलसे इतने मुग्ध हो गये कि उनमेंसे प्रत्येकने श्रीरामके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करना अपना पवित्र धर्म समझा। हमारे नवयुवकोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

श्रीसीताजीके राक्षसद्वारा हरे जानेपर श्रीरामने उनके लिये शोकाकुल होकर जो विषाद किया है उसीसे उनके पत्नी-प्रेमका पता लगता है। वाक्यमौलिकी रचना यहाँ यहाँ सुन्दर हो गयी है।

श्रीरामका प्रजाके प्रति प्रेम लोक-प्रसिद्ध है ही। 'राम-राज्य' सुन्दर शासनके लिये एक पर्यायवाची परम्परागत नाम पड़ गया है। आधुनिक सरकार इस शासनकालसे कब शिक्षा ग्रहण करेगी ?

अपनी प्रजाकी सम्मतिके प्रति श्रीराममें इतना आदर

था कि एक तुच्छ बोधीके विचारसे उन्होंने अपनी प्राण-प्रिया सीताको वनवासके लिये भेज दिया।

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें आत्मनिष्ठा तथा आत्मप्रेमके पवित्र भाव पूर्णरूपसे विकसित हैं। वे रामकी विपत्तिमें स्वेच्छापूर्वक भाग लेते हैं और रामावस्थाके पाठक अष्टाङ्गी तरह जानते हैं कि राम-प्रेमके कारण उन्होंने कैसे-कैसे कष्ट प्रसन्नतापूर्वक सहे थे।

श्रीसीताजी एक आदर्श हिन्दू-महिला थीं, स्त्री-सुखम गुणोंकी अवतार थीं। अपार कष्टों और विपत्तियोंकी परवा न करके अपने पतिके साथ वनमें गयी थीं। उन्होंने अपने पतिके साथ वन जानेके लिये आज्ञा माँगते समय जो तर्क उपस्थित किये थे, वे उनके स्वामी और प्रभुके प्रति अनुपम भक्तिसे श्रोतप्रोत्त थे। हमारे आधुनिक स्त्री-समानको सीताजीका अनुकरण करना चाहिये और उससे बड़े-बड़े उपदेश प्राप्त करना चाहिये।

श्रीहनुमानका प्रेम और प्रभुभक्ति, जिसने उनके नाम-को अमर बना दिया और जिसके कारण वे देवत्वको प्राप्त हुए, मानव-जीवनके इतिहासमें एक विचित्र वाच्य है।

सारांश यह है कि रामायण आदिमें अन्ततः सत्य और प्रेमकी विजयका आख्यानमात्र है। सत्य-प्रेम, पत्नी-प्रेम, पति-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, मित्र-प्रेम, शत्रु-प्रेम, प्रभु-प्रेम, दान और दक्षिणोंके प्रति प्रेम, गिरहदारीके समान छोटे जीवोंके प्रति प्रेम, चारों ओर प्रेम-ही-प्रेम है ! और प्रेम ही एकमात्र मुक्तिका मार्ग है। जो जोग इस बातका अनुभव नहीं करने, वे रामायणको व्यर्थ ही पढ़ते हैं। रामायणके प्रणेत्या, अमर ब्रह्मस्वी ऋषि वाक्यमौलिकीने ठीक ही कहा है—

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।

यः पठेद्रामचरितं सर्वपापः प्रमुच्यते ॥

एतद्रास्त्रानमायुष्यं पठन् रामायणं नरम् ।

स पुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गं गच्छति ॥

जो मनुष्य इस पवित्र, पुण्यमय, वेदार्थप्रतिपादक, आयु-प्रदाता (जीवन प्रदान करनेवाले) रामायणका पाठ करता है, अभ्यस्यन करता है, वह सब पापोंसे छूटकर अपने पुत्र-पौत्रादि सम्बन्धियोंसहित स्वर्गको प्राप्त होता है।



## रामायणी-प्रजा

( लेखक—श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेकर )



रामचन्द्रजीने जोकाबुरजगकासिधारा-  
मत ग्रहण किया था वह अभी भी  
पूरा नहीं हुआ है। वाल्मीकिने जैसा  
खिला वैसी ही जीजा रामचन्द्रजीको  
करनी पड़ी। सुखसीदासजीने उस  
रामायण-कथामें बहुत कुछ परिवर्तन  
किया। श्रीरामचन्द्रजीको वह भी मंजूर  
रखना पड़ा। अष्टात्मरामायण, अनुतरामायण, आनन्द-  
रामायण, भावार्थरामायण इत्यादि अनेक प्रासादिक ग्रन्थों-  
में श्रीरामचन्द्रजीको नये-नये रूपमें अपनी जीजा बिलानी  
पड़ती है। भक्तवत्सल प्रभु भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके  
लिये सभी कुछ सहन करते हैं।

रामायणमें भारतीय जीवनका आदर्श चित्रित है।  
गरुडजीका उद्वेग आदर्श राजाका चित्र प्रदर्शित करना  
था। वाल्मीकिने यह चित्र तैयार करके मनुष्य-जातिके  
सामने अनन्तकालके लिये रख दिया है। रामायणमें  
आदर्श राजा ( रामचन्द्र ), आदर्श पुत्र ( रामचन्द्र ),  
आदर्श भाई ( लक्ष्मण और भग्न ), आदर्श सेवक  
( हनुमान् ), आदर्श भक्त ( शबरी ), आदर्श पुरोहित  
( वशिष्ठ ), आदर्श मित्र ( गुहक और विभीषण ),  
आदर्श सहायक ( जटायु ), आदर्श सचिव ( धन्वन्तरि ), आदर्श  
पत्नी ( कौसल्या, सीता और उर्मिला तथा मन्दोदरी ), आदर्श  
शत्रु ( रावण ), इत्यादि कई सुन्दर आदर्श बताये गये हैं।  
क्या हम कह सकते हैं कि रामायणी-प्रजा भी आदर्श है ?

रामायणने बताया है कि राजा परम्परा और प्रजाकी  
इच्छाके अनुसार राज्यके उत्तराधिकारीका निर्वाचन कर  
सकता था। राजा दशरथने प्रजासे पूछा कि राम  
तुम्हें पसन्द हैं ? लोगोंने आनन्दित होकर कहा, 'अवरय'  
रामचन्द्र ही हमें पसन्द हैं।' परन्तु कैकेयीने लोगोंकी  
पसन्दगीको नहीं माना। बस, जोग चुपचाप बैठ गये।  
बेचारे क्या कर सकते थे ? रामचन्द्रजीको चौदह वर्षका  
वनवास हुआ, जोग उनके पीछे चले। रामचन्द्रजीने  
उनको वापस जौटा दिया। वे रोते-रोते वापस लौट आये।  
दशरथजीका देहान्त हुआ। कैकेयीने राजसूत्र अपने  
हाथमें लिया। प्रजाने चुपचाप उसे मंजूर कर लिया।

फिर भरतजी आये। उन्होंने राजधानी बदल दी। यह तो  
प्रजाको मंजूर ही करना पड़ा।

श्रीरामचन्द्रजी जंगलमें कहाँ गये ? उनका क्या हुआ ?  
इस बातकी तो प्रजाने कभी कुछ खोज-खबर नहीं की।  
सीताका हरण हुआ, जटायुका वध हुआ, रामचन्द्रजीने  
वानर और रीछोंकी मदद की, समुद्रपर सेतु बाँधा, लंकापर  
हमला किया, दुनियाका असाधारण युद्ध हुआ, लेकिन  
रामायणी-प्रजाको उसका कुछ भी पता नहीं था।  
हनुमान्जी उत्तरसे प्रोथागिरि ला सके, लेकिन रामायणी-  
प्रजा दृष्टिकोणसे रामचन्द्रजीकी खबरें मालूम नहीं कर  
सकी। रावणका वध हुआ, लंका विभीषणको दी गयी,  
सीताने अग्नि-परीक्षा दी, इन बातोंकी भी इन जोगोंको  
कोई खबर नहीं थी।

अत्यन्त लोकप्रिय राजा रामचन्द्रजीके प्रति अनुरक्त  
प्रजाकी इतनी उदासीनता क्यों थी ? कुछ समझमें नहीं  
आता। क्या प्रजाको सुख-दुःख नहीं थी ? क्या धर्मका  
खयाल ही न था ? मानो इस तोहमतका निराकरण  
करनेके लिये ही रामचन्द्रजी जब सीता और लक्ष्मणके  
साथ विजययात्रा पूरी करके अयोध्या पधारे तब प्रजाने  
अपने हकका सवाल पूछा कि सीता माता रावण-जैसे  
दुराचारीके घरमें रहकर कैसे शुद्ध रह सकीं ? अग्नि-शुद्धि  
तो हम जोगोंने देखी ही नहीं है। उसका इतबार कैसे  
करें ? रावणके घरमें सीतानी रही थी, इतना शायद वे सब  
जोग देख आये होंगे ! इसलिये उस बातपर तो विश्वास  
कर लिया, पर अग्नि-परीक्षा नहीं देखी थी, उसपर विश्वास  
कैसे करें ? शास्त्रोंने ही कहा है, 'चक्षुर्न सत्यम्।'।

ऐसी प्रजाको लेकर रामचन्द्रजीने राज्य किया।  
सीताका त्याग करके सीताकी स्वरूपमयी प्रतिमा पास रखकर  
अरवमेघ-यज्ञ किया। फिर तो वाल्मीकिजी स्वरूप सीताको  
दोनों पुत्रोंके साथ वापस ले आये। तो भी क्या हुआ—  
'शान्तमथवा किमिहोत्तरेण ?'

क्या ऐसी प्रजाको पृथ्वीपर भारभूत समझकर ही  
श्रीरामचन्द्रजी अपने साथ निजधाम ले गये ?

रामायणकाकालसे यह आवश्यकता मालूम होती है कि  
इस देशमें तेजस्वी धर्मप्राण प्रजाका अवतार हो।

## रामायणी शक्ति

(लेखक—मीनलिनीकान्त गुप्त, भरविन्दभाम्रम—पाण्डिचेरी)

❀❀❀ विश्वकी दृष्टिसे अतुलनीय होनेपर भी रामायण  
❀❀❀ केवल एक काव्यमात्र ही नहीं है; रामायण  
❀❀❀ है एक शक्ति।

यह रामायणी शक्ति, भारत-शक्तिका एक प्रधान अंग—एक मुख्य स्वरूप है। जिन मन्त्र-शक्तियोंने भारतकी शिक्षा-दीक्षाको, भारतके धर्म-कर्मको एक महान् वैशिष्ट्य प्रदानकर निर्मित किया है, उन सबमें वाल्मीकिकी यह गाथा एक विशेष अवदान है।

प्रथम वेद और उपनिषद्, इनके बाद रामायण और महाभारत, तीसरे पुराण एवं चौथे धर्म या स्मृति-शास्त्र हैं। भारतकी समस्त शिक्षा-दीक्षा इन्हीं चार ग्रन्थानोंके द्वारा हुई है। इन्हीं चारोंने भारतीय जीवन-प्रतिभाको आकृति और प्रकृति—स्वरूप और स्वभाव प्रदान किया है।

भारतकी आदिमूल मातृ-शक्ति है वेद। भारतकी अन्तरात्मा यहीं है। दूसरे छोरपर, भारतके दैहिक आचरणका विधान है स्मृति। यह बाहरी स्थूल कर्मचेत्रकी, व्यवहारिक जीवन-यात्राकी व्यवस्था है। इन दोनों छोरोंके—इस अन्तरात्मा और वेदके बीचमें जो अन्तःकरणकी पृथक्-पृथक् भूमियाँ हैं, उनका निर्माण किया है रामायण, महाभारत और पुराणोंने।

वेद-उपनिषद् भारत-प्रतिभाकी बुनियाद हैं, पर वह बुनियाद बहुत अन्दर, बहुत गहरी और लोक-दृष्टिसे परे है। उसके सत्य, शाश्वत, अम्वय, स्थायुने गुप्तरूपमें पीछेमें ममस्त भारतजीवनको धारण कर रक्खा है और वह सबमें शक्तिका सञ्चार कर रहा है। दूसरी ओर स्मृति केवल उसकी प्रशाला—पत्रमात्र है। वह उसके केवल बहिरंगका विकास है। स्मृतिका स-य, देश, काल और पात्रके नियमाधीन है, वह नियम परिवर्तनशील है। रामायण-महाभारत भारतीय जीवनके प्रधान काव्य हैं, और पुराण हैं इनकी कतिपय मुख्य शाखाएँ।

अन्तरात्माके सरबको, वैदिक औपनिषदिक सिद्धिको रामायण और महाभारतहीने जीवनमें—प्राणोंके व्यन्दन-रूपमें सचल मूर्त करके धारण करनेकी चेष्टा की है और पुराणोंने उसी प्राणजीवाको विषय विवरणद्वारा व्याख्या करके विशेषरूपसे स्पष्ट और विशेषरूपसे नित्य-नैमित्तिक

व्यवहार बनाना चाहा है। आरचयकमें साधकमयवृत्तिके मध्यमें वेद-शक्ति विपी हुई है। परन्तु जनसाधारणमें, समाजके जीवनमें जो शक्ति प्रकट है वह प्रकारधर्मों निकलती है रामायण, महाभारत तथा पुराणोंसे। भारतके चित्तको, मूलप्राणको—जो कार्यकारिणी प्रकृतिकी प्रतिष्ठा है—निर्माण किया है रामायण और महाभारतने! पुराणोंने उस चित्त धर्मको और भी गोचर और अलंकृत करके ग्रहण किया है और तदनुसार स्थूलतर मन बुद्धिको उसी साँचेमें ढालकर तैयार करनेकी कोशिश की है।

रामायणने भारतकी चित्तवृत्ति, प्राणोंकी धाराको स्पष्ट किया है, उसका निर्माण किया है हृदयके अवदानसे, तथा सरल सुकुमार अथवा समर्थ आदर्शीजनके कल्याणसे। परन्तु महाभारतने उन प्राणोंको बाँध लिया है स्थिरबुद्धि-स्थित हृद्वायुशक्तिके—सुख मानसिक शक्तिके द्वारावसे। कहा जा सकता है कि रामायणका मूलमन्त्र है 'सत्य' और महाभारतका है 'धर्म'। मत्ताकी सहज स्फूर्ति ही सत्य है; एक सहज बोध, सरल अनुभव उन्में व्यक्त करता है। परन्तु धर्मकी उत्पत्ति है सम्यक् बुद्धिसे, कर्तव्यज्ञानसे और आदर्श-परायणतासे। धर्मकी स्थिति है न्यायसंगत और युक्तियुक्त विचारके आधारपर, परन्तु सत्य तो स्वतःमिद है। वह एक नैसर्गिक औचित्यके आधारपर स्वयं प्रकाशित है।

रामायणके दशरथ, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण आदि सभी पात्रोंने कर्तव्यके निर्धारण और सम्पादनमें विचार-विवेचनपर विशेष निर्भर नहीं किया है। यदि वहाँ मस्तिष्क पहुँचकर नील-माप करना चाहता तो कई पात्रोंकी एकधिक क्रिया सम्भवतः दृग्गरे ही प्रकारकी होती। परन्तु ये तो अनुप्रासित हुए हैं सहजान स्वभावमिद विवेकसे। इनके कर्म हैं अन्तरकी एक महत्ताके, उदारताके, विशालताके और उन्मूलनाके परिप्लव! यहाँतक कि कैकेयी, मन्थरा एवं रावण-सरीले पात्र भी अपने विकर्मके पथपर जितने उल्हासके साथ चले हैं उतने बुद्धि, युक्ति अथवा किसी उद्देश्यका आश्रय करके नहीं। इसके विपरीत महाभारतके वीरगण युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदिमें कर्मका प्रवाह सीधे प्राणोंसे उत्सरित होकर नहीं



आया, वह मानों धूम-फिरकर अस्तिष्कके अन्दरसे होता हुआ बाहर निकला है। महाभारतके महापुरुष श्रीकृष्णमें बुद्धियोग विशेषरूपसे विकसित है। उनकी गीताका प्रधान-मन्त्र ही है 'बुद्धियोग'। परन्तु श्रीराम सरल निर्मल प्राणोंकी सहज गतिके विग्रह हैं। पाञ्चाक्षरीके प्रत्येक पादनिष्ठेमें एक परिश्रम, आत्मप्रतिष्ठ, मग्नका स्थिर सङ्कल्प, इच्छा-शक्तिकी कल्पना परिस्फुटित है। परन्तु सीताके कर्मके साथ है एक सरल भावगर्भप्राप्त। उसमें मन, बुद्धि अथवा युक्तिकी जादू नहीं है।

महाभारतकी शक्तिसे मानो तपस्वर्याका, कृष्णताका गम्भीर, उदात्त और कठोर ताप निकल रहा है। रामायणी शक्ति भी शक्तिमान है किन्तु वह एक उदार, महान् प्रसन्न-कान्त-गुणसे मखिल है। महाभारत उन्मुक्त शैलशिखर है तो रामायण विशाल जलधि। महाभारत चात्रगुणका आचार है, कृप और द्रोण ब्राह्मण होते हुए भी चरित्रधर्म और आचारको प्रहस्य किये हुए हैं। रामायणके हावभावमें ब्राह्मण-गुणका परिचय विशेष है। रामायणके नायकके चरित्र होनेपर भी शम, दम, शुचि, अन्तरात्माकी सरल शुभ्रता, प्राणोंकी सहज महत्ता आदि सच्चे ब्राह्मणके गुणोंने उनकी प्रकृतिका बैशिष्ट्य रच दिया है। बाष्पीकिके

हाथोंसे जिस सृष्टिकी रचना हुई है उसका सत्यगुण रजोगुणको अधिकतम कर गया है। न्यासकी सृष्टिमें सत्यकी अपेक्षा रजोगुणकी ही अधिक प्रधानता है। महाभारत विन-दुपहरीका प्रकार प्रकाश है तो रामायण है पूर्व्यमाकी स्निग्ध ज्योत्स्ना।

भारतके प्राणोंमें रामायणी शक्तिने तारुण्य, सुकुमारता, सहज महाबुभावता, नैसर्गिक गरिमा, अनायास सौन्दर्य, अथकप्राप्त परिपाठ्य सरलता और आर्च्य आदि गुण भर दिये हैं। न्यासदेवका आविर्भाव आपरके अन्तमें हुआ था। उनको हमारा निर्माण करना था कलियुगके लिये। सम्भवतः इसी हेतुसे उन्होंने हमलोंगोंकी विशेष सज्ज, सावधान, रड, कुङ्क रुड और रुखा बनाना चाहा। परन्तु सौम्य सहाय्य बाष्पीकिको इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे हमारे प्राणोंमें जिस शक्तिका सन्चार कर रहे हैं उसमें कोई जबरदस्ती प्रयास और बुद्धिका सङ्कल्प नहीं है। वह शक्ति है वर्द्धनशील शिशु या तरुलताकी अदृष्ट अव्यर्थ अथवा प्रशान्त अन्तःसज्जिता जीवनी शक्ति, जो हृदयके अन्तस्तलमें प्रतिष्ठित है।

महाभारतका प्रयास है सत्ताका (गीताकी भाषामें) 'उर्जित' करके निर्माण करना; रामायण चाहती है सत्ताको 'श्रीमान्' करके प्रकाशित करना !

## श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महत्त्व

( लेखक—'उर्मिला-पद-रत्न-कण' )



माययमें रामसेवा-प्रती श्रीलक्ष्मणजीका और उनकी धर्मपत्नी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है फिर वह अनुपम कैसे हो गया ? वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका मौनबलम्बन ही चरित्रकी परम उन्नताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कविकी लेखनी उसका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आग्रह करती हैं, और न ले जानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले वचनोंको पलटकर उन्हें साथ ले गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-बैहरमें रहनेका उपदेश दिया था,

सो तो जांकिशिरा, सती पतिव्रताके परम आदर्शकी स्थापना और पत्नीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सखिचाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी वनमें ले जाना ही चाहते थे, क्योंकि उनके गये बिना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए बिना उसकी श्रुत्यु असम्भव थी जो अक्षतार भारणका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी साक्षात् जगन्मायिका और श्रीराम सच्चिदानन्दधन थे। वह उनसे कभी अलग रह भी नहीं सकती ! केवल पतिव्रतकी बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जातीं। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुरक्त और उनकी सेवाव्रतधारिणी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं। वह भी सीताकी भाँति ही साथ आनेके लिये प्रेमाग्रह कर सकती थीं, परन्तु उनके घर रहनेमें ही श्रीरामकाजमें

सुमीता था, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पति का एकमात्र धर्म था और जिसके लिये उर्मिजा पूर्ण सहमत और सहायक थी। इन्द्रजित् मेघनाद को बरवान था कि जो महापुरुष लगातार बारह वर्ष तक फलमूल लायेगा, निद्रा का त्याग करेगा और अक्षय्य ऋणचर्य का पावन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघनाद का मरण होगा। इसलिये जैसे रावण-बधमें कारण बननेके लिये सीताजी का श्रीरामजी के सहयोगिनी बनकर बन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मणजी का भी रामजी के शान्ति होनेके लिये तीव्र महाव्रत-पावनपूर्वक मेघनाद-बधके लिये बन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिजाजी का भी राम-जी का सुचारुरूपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका व्रत था, धरपर रहना आवश्यक था। उर्मिजाजी साथ जातीं, तब भी लक्ष्मणजी का महाव्रत पावन होना कठिन था और वे धरपर रहते तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजीने उर्मिजाजीको अवश्य समझा दी होगी या महान् विभूति होनेके कारण वह इस बातको समझती ही होगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पतिव्रत-धर्म का बैसा ही पावन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमग्रह करके किया था। घर रहनेमें ही पति लक्ष्मणजी का सेवाधर्म सम्पन्न होता है, जिन रामजी सेवाके लिये लक्ष्मणजी अवतीर्थ हुए वे वह सेवाकार्य इसीमें सफल होता है। यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिजा कैसे कुछ कह सकती थी? वह आजकलकी भीति आंगकी भूखी तो थी ही नहीं। पतिकी धर्मरक्षामें सहायक होना ही पत्नी का धर्म है, इस बातको वह खूब समझती थी और यही उर्मिजाजीने किया।

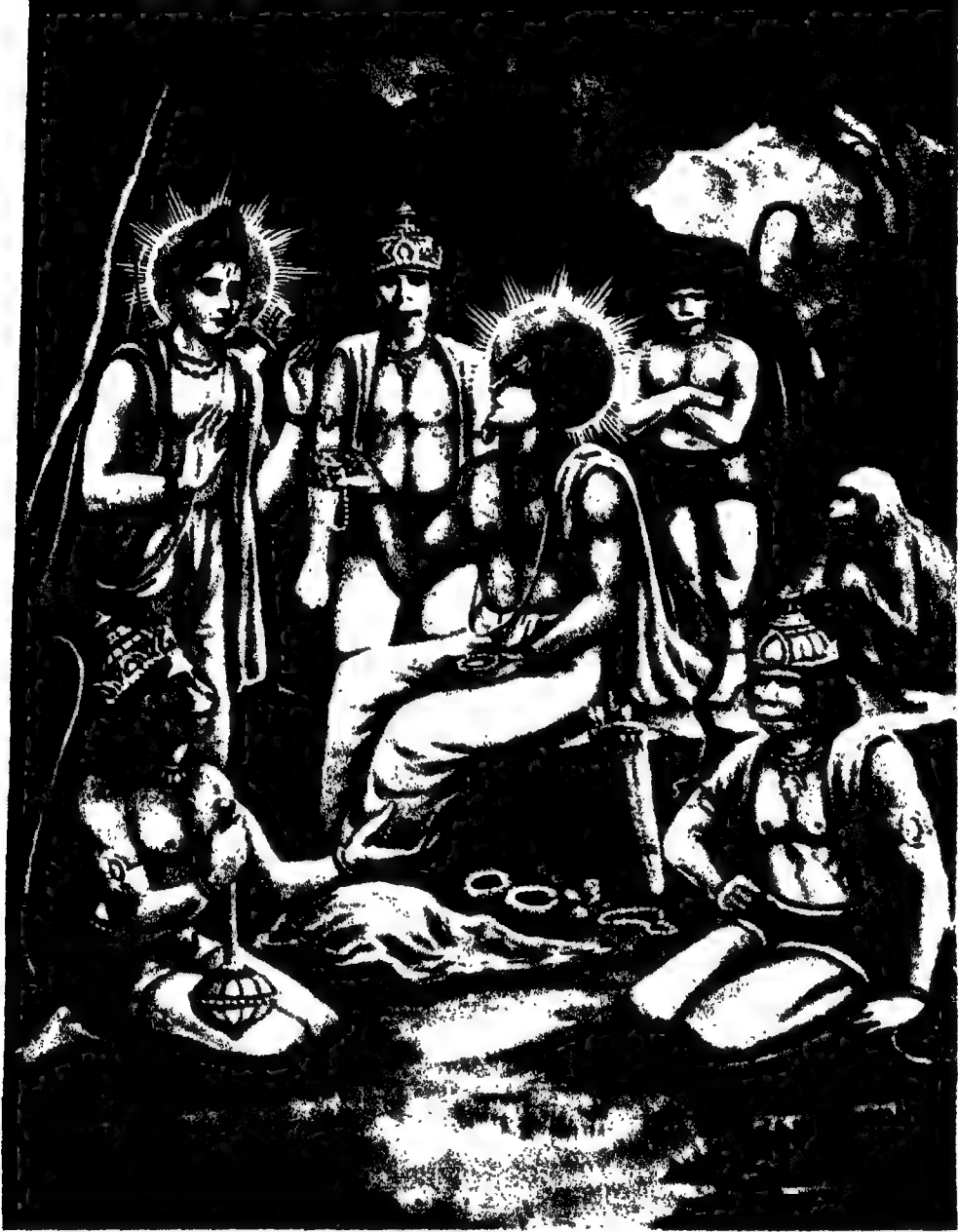
जोग कहते हैं कि 'लक्ष्मण बड़े निष्ठुर थे, राम तो सीताको साथ ले गये, परन्तु लक्ष्मणने तो उर्मिजासे बात-तक नहीं की।' पर वह क्या बात करते, वह इस बातको खूब जानते थे कि मेरा और मेरी पत्नी का एक ही धर्म है। मेरे धर्मपावनमें मन्त्रप्राया कर्तव्यपरायणा प्रेममयी उर्मिजाको सदा ही बढ़ा आनन्द है। वह धर्मके लिये सानन्द मेरा विद्वोह सह सकती है। जनकपुरसे व्याहकर आनेके बाद बारह वर्षोंमें लक्ष्मण और उनकी अनुगामिनी सती उर्मिजा ने अपना राम-सेवा धर्म निश्चय कर लिया था, उसी निश्चयके अनुसार पतिको रामसेवामें भेजनेके लिये वीरगंगा उर्मिजा

भी उसी प्रकार सम्मत और प्रसन्न थीं, जैसे लक्ष्मण-माता वीर-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। धर्म-परायणा वीरगंगानार्थ अपने पति-पुत्रोंको हँसते-हँसते श्वाङ्गणमें भेजा ही करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिजा ने भी किया। अक्षय्य ही उर्मिजा कुछ बोझी नहीं, परन्तु यहाँ न तो बोझनेका अवकाश ही था और न धर्ममें निष्प हार्दिक सम्मति होनेके कारण बोझनेकी आवश्यकता ही थी, और न मर्बादा ही ऐसी आजा देती थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकोंको मुरम्त करने योग्य प्रबल मनषाहा सेवाकार्य सामने आ पड़नेपर सलाह-मशविरेके लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसका सहधर्मिणी पत्नी भी इससे दुःख करती है, क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक कार्यका अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परन्तु परतन्त्र सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिजा का साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता, उन्हें रामजीकी सम्मति लेनी पड़ती, जहाँ धर्ममें श्रीरामजी सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे वहाँ उर्मिजाको साथ ले जानेमें तो ज़रूर आपत्ति करते। जो कार्य स्वामी का रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवकके चित्तमें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसीप्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिजा परम पतिव्रता थीं। लक्ष्मण उनको जानते थे। धर्मपावनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मणजी सेवाके लिये बन जाना चाहते थे, सिरके लिये नहीं। पत्नीको साथ ले जानेसे उसकी देखभालमें भी इनका समय जाता तथा दो स्त्रियोंके सम्हालनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिजाजी दोनों ही इस बातको जरूर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निष्ठुरताका बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मणजी और उर्मिजाजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

बनवासमें श्रीलक्ष्मणजीके व्रतपावनका महत्त्व देखिये। वे दिनरात श्रीसीता-रामके पास रहते हैं। कन्द-मूल-फल खा देना, पूजाकी सामग्री जुटा देना, आश्रमको भाङना-कुहारना, वेदिकापर चौक लगा देना, श्रीसीता-रामकी रुचिके





श्री सीताजीक गहने ।

नाहं जानामि केयूरं नाहं जानामि कुण्डलम् ।

नूपुरं चैव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनम् ॥

अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और विवरात सजग रहकर श्रीरामसे बैठे राममें मन लगाये राम-नाम जपते हुए पहरा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें बड़े ही तत्पर हैं। ब्रह्मचर्यव्रतका तो पता इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरखोंको छोड़कर जन्म किसी अंगका कभी दर्शन नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़पर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने डालदिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनूमान्जीकी प्रेरणासे सुग्रीबके पास पहुँचे तब सुग्रीबने श्रीरामको वे गहने दिखावाये। श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

नाहं जानामि केयुरे नाहं जानामि कुण्डले ।

नूपुरे त्वमिजानामि नित्यं पादाम्बिवन्दनात् ॥

(वा० रा० ४।६।२२)

‘स्वामिन् ! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैंने तो प्रतिदिन चरणचन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ।’ आजकलके देवराँको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके इस महान् व्रतपर श्रीरामका बड़ा भारी विश्वास था, इस बातका पता इसीसे

लगता है कि वे मर्बादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके पास सीताजीको अकले बेचदक छोड़ देते थे। जब खर-दूषण भगवान्के साथ युद्धके लिये जाये थे तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें गिरिगुहामें भेज दिया था—

‘राम बोलाई अनुजसन कहा’—

‘लेहि जानकिहि जाहु गिरिकंदर ॥’

मायामगको मारनेके समय भी सीताके पास आप लक्ष्मणजीको छोड़ गये थे। और निर्वासनके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था।

लक्ष्मणजीका सेवाव्रत तपपूर्ण था। उन्होंने बारह सालतक लगातार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की, इसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे। तपस्यामें उनका उद्देश्य भी यही था, क्योंकि वे श्रीरामका छोड़कर दूसरी बात न तो जानते थे और न जानना चाहते ही थे। उन्होंने स्वयं कहा है—

गुरुपिपुमानु न जानउँ काहू । कहहुँ मुभाउ नाथ पतिआहू ॥

जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजगाई ॥

मोरे सनहि एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर-अंतर-जामी ॥

धरम नीति उपदेशिअ नाही । कीरनि-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥

## रामजन्मकी प्रतीक्षा

( १ )

कहके गए थे पर आते हो न लाड़लें क्यों ।  
वयस व्यतीत होती जा रही विछोहमें ;  
चाह करती हूँ , भरती हूँ आह दिन-रात ,  
स्वासा चलती है सदा आशा बन टोहमें ।  
कान खड़े ध्यान हैं लगाए व्याम वाणी ओर ,  
आँखें थक बैठी अंत शक्तीकी खोहमें ;  
छूत औ अछूत-अंग-अंग हो रहे हैं दूत ,  
जाने कहाँ पूत ! सो रहे हो किस गोहमें ।

( २ )

कृष्णक विदेह देह तोड़ जोतते हैं भूमि ,  
तो भी शस्य-श्यामला न सीता कर पाती है ;  
खूनके घड़े अरे ! गड़े ही गड़े जाते सड़े ,  
होंगे पड़े सोचते-यही तो मति आती है ।  
आतुर निषाद भुज-भर भेंटनेको यहाँ ,  
उसकी न, तात, तुम्हें सुख ही सताती है ;  
आशा-अभिलाषा उपजाती छोड़ ताती याद ,  
आती रामनौमी पछताती रह जाती है ।

मातादीन शुद्ध साहित्यशाली, काव्यभूषण

## पशु-पक्षियोंका रामप्रेम

(लेखक—श्रीरामेश्वर बाजोरिया)

पाहुन पशु बिटप बिहँग अपने करि लीन्हे । महाराज दशरथके रंक राम कीन्हे ॥



मचरित अगाध कल्याण-रत्नोंकी जामि है । उसमें जीवनको ऐसे सुन्दर सीधे सर्व-मान्य पथपर जानेकी शक्ति है कि जिससे सहज ही सुख-शान्ति और भक्ति-मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । इसीसे वह सदासे सबका आदर्शरूप और प्रिय रहा है, और है । जिसमें अपना परम हित सूझता है उसी कार्यको सब किया करते हैं । वह परमहित भगवत्प्रेमका प्रत्यक्ष अनुभव होता है । जग-मङ्गलकर्ता जनसुखदायक भगवान् श्रीराम साक्षात् ईश्वर थे, परम-पिता थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । वे प्रत्येक चराचर प्राणीके दुःख-सुखका, हिताहितका सर्वदा ध्यान रखते थे । इसी लोक-हित, इसी जन-कल्याणके लिये ही तो वे अपनी प्रतिज्ञानुसार अवतरित हुए थे, फिर भला उनके चराचर-प्रिय होनेमें आश्चर्य ही क्या ? वे केवल उनको साक्षात् भगवान् रूपसे जाननेवाले बशिष्ठादिके ही प्रिय न थे वरन् प्रेम-मुग्ध माता-पिताके भी अत्यन्त प्रिय थे । यहाँ ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब माता-पिताको अपना कुपूत पुत्र भी अच्छा लगता है, तब फिर राम तो आकाशकारी मातृ-पितृ-भक्त थे, इससे उनका प्रिय होना स्वाभाविक ही है । वह ठीक है, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी तो पुर-जन-परिवार सभीके अतिप्रिय थे । सारा प्रजा सदा उनको देखती रहना चाहती थी, सदा उनके पास रहना चाहती थी । उसको उनसे विछुड़नेका नाम भी सुनते ही प्राणान्त कष्टका अनुभव होने लगा था । इसका बर्णन वन-गमनके प्रसंगमें सभी रामकथाओंमें आता है । उसे पढ़कर कौन सहृदय पाठक उनके कष्टकी सहायुभूतिसे रो नहीं उठता । भगवान् की सृष्टिमें मनुष्य सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझा गया है, अपने हितोंके प्रति कृतज्ञता और ऋण प्रकट करना उसका स्वाभाविक कर्तव्य है, धर्म है । परन्तु अखिल भुवन-प्रिय रामको पशु-पक्षी और जता-दुम भी कितना प्रेम करते थे, वह कुछ ध्यानसे मनन करनेका विषय है । यहाँ इसी विषयका कुछ वर्णन करना है ।

सांसारिक जीवोंके सुखके लिये भगवान् अपनी जीजा-द्वारा माता कैकेयीसे प्रेरित महाराज दशरथकी आज्ञा पाकर

वल्कल-बन्ध धारणकर सीताजी और लक्ष्मणसहित वनको जा रहे हैं । सुमन्तजीको उन्हें रथमें बैठा वन विललाकर जल्दी वापस लौटा जानेकी आज्ञा हुई है । पुर-नर-नारियोंके दुःखका तो आज कहना ही क्या है, पर जरा पशु-पक्षी और पेड़-पौधोंका भी हाल देखिये ।

ततस्त्वयोध्यागहिता मदात्मना पुरन्दरं गैव मही सपर्वता ।

अन्तः पोरं मयशोकदीपिता सनामयोधाश्रमणा ननाद च ॥

(वा० रा० २।४१।२०)

सारी अथाप्या आज भगवान् के वियोगमें काँप उठी, जोड़े और हाथी चिन्वाक मारने लगे, सर्वत्र शोक-साम्राज्य छा गया । सभी भक्तिमान् जङ्गम और ग्यावर प्राणी भगवान् को वनमें कष्ट होनेकी आशंकासे दुःखित हैं और भगवान् से अपना मुँह भाषा-निश्चेष्ट चेष्टामें खीट चढ़नेकी प्रार्थना करते हैं ।

भक्तिमन्तीह भूतानि जहमाजहमानि च ।

बाचमानेषु तेषु त्वे भक्ति भक्तेषु दर्शय ॥

अनुगन्तुमशक्तास्त्वां मृतैरुद्धनवेगिनः ।

उन्नता नायुमंगिन विक्रोशन्तीव पादपाः ॥

निश्चेष्टाहारसंचारा नृक्षैकग्यानीनाक्षताः ।

पक्षिणापि प्रयः भन्ते सर्वं भूतानुकरपनम् ॥

ददशे तमसा तत्र दारयन्तीव गधवम् ॥

(वा० रा० २।४६।२०-३२)

भगवान् की जीजामें उसीके दिये रूपसे शामिल रहनेवाले अचर वृक्षादि चल नहीं सकते बोल नहीं सकते परन्तु श्रीराम तो उन्हें भी अत्यन्त प्रिय हैं, इसीसे तो वे भी आज दुखी हैं । रब्यं भगवान् इन जड़ जीवोंकी दशाका वर्णन करते हुए लक्ष्मणसे कहते हैं—

पश्य शून्यान्मरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः ।

यथा नित्यमायुर्निर्मलीनीनि मृगदिग्जैः ॥

(वा० रा० २।४६।३)

हमारे दुःखोंमें दुखी होकर खिंचे हुए पशु-पक्षियोंके शब्दोंसे बिहीन इस शून्य वनके उद्वेगको देखो ।

कृपालु कल्याण श्रीरामने सुमन्तको आशा दी—

अग्रमत्तस्त्वमशेषु मम सौम्येत्युवाच ह ॥

( बा० रा० २।४६।२२ )

‘हे सौम्य ! तुम साधुधानीसे घोड़ोंकी देख-भाल करो ।’ भाबुक भक्तियोंका उन पशु-पक्षियोंको, इन नव-नवियोंको और सता-वृद्धोंको कृतपुण्य-धन्य धन्य कहना ठाँक ही है; जिनके लिये स्वर्ग भगवान्—

कदाहं पुनरागम्य सरस्वा पुष्पिते वने ।

मृगयां पर्यटिष्यामि मात्रा पित्रा च संगतः ॥

( बा० रा० २।४९।१४ )

—कहकर उनसे पुनर्मिलनकी उत्कण्ठा दिखाने हैं । निषादराज गुहका गुह-गानकर कौन अपनेको पवित्र करना नहीं चाहेगा । नगर-निवासी शिक्षित, सम्य जनसमुदायसे दूर विकट घोर जंगलमें रहकर हिंसावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करनेवाले दयामाया-हीन मनुष्य भी परम नम्र और सेवा-भाववाले बनकर रामके दासोंमें ठक गिने जानेवाले बन जाते हैं, यह सारी जीजा अपने भगवत्-चरणोंमें प्रेम और उनकी ( चरणोंकी ) हीन दयालुताकी ही है । एक अनावश्यक और हानिकार एवं निन्दनीय पर रुढ़िगत साधारण बातका भी जहाँ हम छोकनेमें असमर्थ होते हैं वहाँ उन भीजोंका—जिनको हम जंगली कहते हैं—सर्वथा बद्वकर अपने अतिथिकी सेवामें हाथ जोड़कर लड़े हुए उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करना कितने आश्चर्यकी बात है ? जिनपर ‘उसकी’ कृपा हो उनका देवता—नहीं नहीं—स्वयं प्रज्ञा, बन जाना भी कोई अनोखी बात नहीं, ‘मसकहिं करइ बिराँच सम ।’ वह ‘तो कत्तु’ अकत्तु’ अन्यथा कत्तु’ समर्थ’ है ।

अब भगवान् गुहराजके साथ गंगाको पारकर आगे बढ़ना चाहते हैं, सुमन्तको वहाँसे लौट जानेके लिये समझा रहे हैं । परन्तु सुमन्तका राजा और राजमाताओंके साथ-साथ उन पशुओं और पक्षियोंका भी दुःख स्मरण हो आता है और वह कहता है—

मम तावज्जियोगस्थास्त्वद्वन्धुजनबाहिनः ।

कथं रथं त्वया हीनं प्रवाह्यन्ति ह्योत्तमाः ॥

( बा० रा० २।५२।४७ )

‘हे राम ! ये जोड़े जिनकी देख-भाल मेरे अधीन है, आप बान्धवोंको ही ले चलते हैं । जब आप लोग कोई

इस रथपर नहीं रहेंगे तब वे जोड़े रथको कैसे ले जायेंगे ?’ सचमुच रामके जानेके बाद उनके वियोगमें घोड़ोंकी बड़ी घुरी बुरा हुई—

देखि दक्षिण दिसि हय हिहिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ॥

नहिं तुन चरहि न पिअहिं जल मोचहिं लोचनबारी ।

ब्याकुल भयेउ निषाद सब रघुवर-बाजि निहारि ॥

× × ×

चर फराहि मग चले न घोर । बनमृग मनहुँ अनि रथ जोरे ॥

अनुकि परहिं फिरि हेरहिं पाछे । रामबियोग बिकल दुख तीछे ॥

जो कह रामु लखन बैदेही । हिकरि हिकरि हित हेगहिं तेही ॥

बाजि-बिरहगति कहि किमि अती । बिनु मनि कनिक बिकल जेहि माँती

भयेउ निषाद निषादबस देखत सचिव तुरंग ।

बोनि मुसेवक चारि तब दिए सारथी संग ॥

वे येचारे जिधर राम गये थे उधर देख-देख पंख-कटे पक्षीकी तरह विकल हो बार-बार हिनहिनाने लगे । दुःखके मारे उनका खाना-पीनानक छूट गया । आँखोंसे अजल अश्रुधारा बहने लगी । राम-बिरहाकुल घोड़ोंकी दशा देखकर उपस्थित लोग भी त्रिषाद-मग्न हो गये । वे उन पशुओंको कृतकृत्य समझने लगे, जो श्रीरामका इतना प्रेम करते हैं कि उनके वियोगमें अपने शरीर-प्राणकी भी परवा नहीं ।

जोड़े वह देखनेके लिये बार-बार कनौटी उठाकर इधर-उधर देखते हैं कि कहीं किसी ओरसे रामचन्द्रजी आ तो नहीं रहे हैं या पास ही कहीं बोल तो नहीं रहे हैं । वे उनके दर्शन पाने और उनके वचनामृत सुननेको व्याकुल हो रहे हैं । अशिथिल जंगली जानवरोंको लाकर रथमें जोड़नेसे उनकी जो दशा होती है वही इन चतुर घोड़ोंकी हो गयी है । चलते-चलते बार-बार भटक (उधर) जाते हैं, और गर्दन घुमाकर पीछेकी ओर देखते हैं कि एक बार फिर रामजीके दर्शन हो जायँ । रामका वियोगजनित उनका दुःख अपार है । यदि वे किसीके मुँहसे राम, लक्ष्मण और सीताका नाम सुन पाते हैं तो हुंकारकर उसकी ओर प्रेमसे देखने लग जाते हैं । उन घोड़ोंकी विकल दशाका वर्णन कैसे हो सकता है ? वे मयिहीन सर्पोंकी तरह व्याकुल हैं । अब निषाद उनकी दशा देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और वह सोचकर कि ऐसे घोड़ोंके

रथमें बैठे सुमन्तके साथ कुछ आदिमियोंका होना अत्यन्त आवश्यक है, न मालूम रास्तेमें इन घोड़ोंको क्या हो जाय, उन्होंने रथके साथ अपने चार आदमी भेज दिये ।

पाठको देखी अपने इस पशुओंके विमल प्रेमकी दुर्लभ क्रांती । हम मनुष्य क्या इन पशु कहलानेवाले घोड़ोंकी बराबरी कर सकते हैं ? वे परम धन्य हैं जो रामके वियोगमें इसप्रकार अपनी सुखि-दुखि खो देते हैं ।

अस्तु, किसी प्रकार गिरते-पड़ते घोड़ोंने रथको अयोध्याजीतक पहुँचा दिया । सुमन्त महलोंमें चले गये । फिर, बेचारे बोड़े रामवियोगको और अधिक न सह सके । उनकी इस कठुणापूर्ण दशाका ध्यानकर आनेकी बातका खिलना-पड़ना कठिन हो जाता है, इसीसे बादका

कुछ पता नहीं मिलता । न-जाने उन घोड़ोंने भी महाराज दशरथजीकी तरह वियोगमें अपने प्राण खो दिये वा पुनर्दरशनकी आशासे भरत और कौसल्याकी तरह किसी प्रकार जीवित रहे ।

रथ-चानरोंके प्रेमकी बात तो भगवान् ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कही है, उसके विषयमें हम क्या कहें । बिहंगवर गीधराजकी कथा तो प्रसिद्ध ही है, उनका रामपर अत्यन्त प्रेम था ।

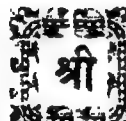
यदि वे सबके परमप्रिय प्राणराम न होते तो 'जीव चराचर वाचन जेही' क्यों कहा जाता । वे तो अवरय ही सबके आत्मा होनेके कारण सर्वप्रिय हैं ।

जय ! सर्वप्रिय श्रीराम और उनके प्रेमियोंकी ।

## रामायणके कुछ रत्न

(लेखक—श्रीयुग रामायणशृङ्गार रामायणी)

मंगल मवन अमंगल-हारी । द्रवहु तो टमरथ अजिर-बिहारी ॥

 श्री रामायणका महत्त्व अनिर्वचनीय है । इसकी महिमा जितनी गायी जाय उतनी ही थोड़ी है । मैं इस रामचरित-रत्नाकरमेंसे कुछ रत्न रामायणका पाठकोंकी भेंट करता हूँ । कृपया स्वीकार करें । उपहार प्रभोत्तरके रूपमें हैं ।

१—'श्रीरामचरितमानस किम मन्त्रार्थपर है, जैसे श्रीमद्भागवत द्वादशाक्षर मन्त्रपर है और श्रीवाल्मीकीय रामायण गायत्रीके चौबीस अक्षरोंपर है ?'

'श्रीमानसरामायण 'श्रीरामाय नमः'—इस पद्यापर तारक मन्त्रराज पर है । परन्तु गुप्त है । 'बर्णानां' इस प्रथम श्लोकमें 'र'कार 'अ'कार बिन्दुमहित रामबीज है और पाँच अक्षर पाँच कायडोंमें हैं, और अन्तका विसर्ग उत्तरकायडके अन्तमें है ।'

२—'ग्रन्थकारने इस ग्रन्थको 'व' कारसे क्यों प्रारम्भ किया ?'

'ग्रन्थके आदि और अन्तमें भी वकार ही है । वकार अमृत बीज है, इससे श्रीरामचरितमानसको 'अमियमय' सूचित किया । जैसे अमृत पान करनेवालेको दूसरे रस-पान

करनेकी आवेश नहीं, वैसा ही श्रीरामचरितामृत पान करने-वालेको दूसरे साधनकी आवश्यकता नहीं है ।

३—'तुलसीकृत रामायणका श्रीरामचरितमानस नाम कैसे पड़ा ?'

'इसको श्रीशिवजीने रचकर बहुत समयतक अपने मानसमें रक्खा, फिर सुप्रसन्न पाकर श्रीशिवासे कहा । इमो-से 'रामचरितमानस' नाम पड़ा ।'

४—'श्रीरामचरितमानसमें गीतोपदेशका वर्णन कहाँ है ?'

'श्रीरामचरितमानसमें गीताका आचाम्बर वा समानार्थक वर्णन बहुत जगह मिलता है । विस्तारभयसे मैं यहाँ नहीं लिखता । केवल मानसमें कितनी गीतार्थ हैं उनके नाम-मात्र यहाँ लिखे जाते हैं, सज्जनराय रामायणमें पदकर देण लें । अयोध्याकाव्यमें ११ दोहेसे १३ दोहेतक निपावके प्रति श्रीलक्ष्मणजीका उपदेश 'श्रीलक्ष्मणगीता' है । अयोध्याकाव्यमें दोहा १२५ से १३१ तक 'श्रीवाल्मीकि-गीता' है । आरण्यकाव्यमें पञ्चवटीमें दोहा १४ से १८ दोहे तक श्रीलक्ष्मणजीके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'श्रीराम-गीता' है । लङ्काकाव्यमें श्रीबिभीषणके प्रति श्रीरघुनाथजीने



को धर्ममय रथका रूपकमें वर्णन किया है वह 'श्रीभगवद्गीता' है। उत्तरकाण्डमें ४२ दोहेसे ४६ दोहेतक श्रीधर्मोप्या-वासियोंके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'पुरजनगीता' है। पुनः उत्तरकाण्डके अन्तमें ११९ दोहेसे १२८ दोहेतक 'ज्ञानगीता' और ११९ दोहेसे १२० दोहेतक 'श्रीभक्तिगीता' है।

५—'मनरूपी दर्पणमें मल क्या है ?'

'काई विषय मुकुर मन लगी ।'

६—'मनरूपी दर्पणके साफ करनेका उपाय क्या है ?'

'श्रीगुरुदेवके चरणकमलकी रत्न ।' यथा—

'जन मन मञ्जु मुकुर-मल हरनी ।'

७—'परमेश्वरका रूप हृदयमें कैसे आ सकता है ?'

'सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेसे ॥'

८—'श्रीरामजीको वश करनेका उपाय क्या है ? और किसने उन्हें वश किया ?'

'सुमिरि पवनसुत पावन नाम । अपन बस करि राखेहु रामू ॥'

९—'श्रीरामजी कैसे सीकते हैं ?'

'शिशुत राम सनेह निसेते ।'

'तुम रीझहु सनेह सुठि थोर ।'

'रीझैउ देखि तोरि चुराई ।'

१०—'पापोंसे मुक्त होनेके विषयमें श्रीरामचरित-मानसमें क्या कहा है ?'

'बिबसहु जातु नाम नर कहहीं । जनम अनेक संवित अघ दहहीं ॥'

'तीरथ अमित कोटिसत पावन । नाम अखिल अघ-पुञ्ज नसावन ॥'

'राज कि रहै नीति बिनु जानि । अघ कि रहै हरि-चरित बखाने ॥'

'सनमुख होय जीव मोहि जबहीं । जनम कोटि अघ नासैं तबहीं ॥'

'सरदातप निसि ससि अपहरई । सन्त-दरस जिमि पातक टरई ॥'

११—'श्रीरामायणमें सहज स्वरूप किसको कहते हैं ?'

'स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर तीनोंसे परे या पञ्चकोशादि तथा तीनों गुणोंसे परे भिन्न, अवस्था जामत् स्वयं, सुषुप्ति अवस्थाओंसे अतीत और तुरीय अवस्थामें प्राप्त विमल ध्यानन्वयी राशि शुद्ध सच्चिदानन्दधनस्वरूप ही सहज स्वरूप है। यथा—

'ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥'

'भ्रम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥'

'संकर सहज सरूप सँभारा । लामि समाधि अक्षण्ड अपारा ॥'

१२—'वेदमें परमधर्म किसको कहा है ?'

'श्रुति कह परम धरम उपकारा ।'

'परम धरम श्रुति विदित अहिंसा ।'

'सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परम धरम यह नाथ हमारा ॥'

१३—'सन्त किसकी प्रशंसा करते हैं ?'

'परहित लामि तजै जे देही । संतत संत प्रसंसिह तेही ॥'

१४—'ईश्वरका प्रण क्या है ?'

'प्रण हमार सेवक हितकारी ।' 'भ्रम प्रण सरनागत भयहारी ॥'

१५—'कौन मनुष्य भवसागरमें नहीं पड़ता ?'

'भव कि परहिं परमात्म विन्दक ।'

१६—'भवसागरमें कौन लोग पड़ते हैं ?'

'भवसिन्धु अगाध परे नर ते । पद-पंकज-प्रेम न जे करते ॥'

१७—'संसारमें यश कैसे मिलता है और अपयश कैसे ?'

'पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावै कोई ॥'

१८—'संसारमें किसकी भक्ति बिना सुख नहीं मिलता ?'

'श्रुति पुरान सदग्रन्थ कहाहीं । रघुपति-भगति बिना सुख नाहीं ॥'

१९—'जीव किसके विमुख होनेसे सुख नहीं पाता ?'

'राम-विमुख सुख जाव न पावै ।'

'जीव न लह सुख हरि-प्रतिकूला ।'

'जिमि सुख लहै न शंकर-द्रोही ॥'

२०—'जगत्में किसको कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है ?'

'परहित बस जिनके मनमाहीं । तिनकहँ जग दुरलभ कछु नाहीं ॥'

'हरि-प्रसाद दुरलभ कछु नाहीं ॥'

२१—'जगत्में सबसे दुर्लभ क्या है ?'

'सबसे दुरलभ मनुज सरीरा ।'

'सत्संगति दुरलभ संसारा ।'

२२—'मनुष्यको संसारमें सबसे बड़ी हानि क्या है ?'

'हानि कि जग यहि सम कछु भाई ।'

'भजिय न रामहिं नर तनु पाई ॥'

२३—'परायी निन्दा करनेका क्या फल है ?'

'पर-निन्दा-सम अथ न गरिमा ।'

'सबकी निन्दा जेवर करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥'

२४—'शोक करने योग्य कौन मनुष्य है ?'

'सोचनीय सबही बिधि सोई । जो न छोड़ि छल हरिजन होई ॥'

२५—'श्रीरामजी कब कृपा करते हैं ?'

'मन क्रम वचन छोड़ि चतुराई । मजत कृपा करिहैं रघुराई ॥'

२६—'श्रीरामजीको स्वप्नमें भी कौन अच्छा नहीं लगता ?'

'सिंह पद-कमल जिनहिं रति नाही । रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं ॥'

२७—'श्रीरामभक्तके लक्षण क्या हैं ?'

'बिनु छलविषनाथ-पद-नेहू । राम मगतकर लक्षण पढ़ू ॥'

२८—'किस उपायसे जीव शोक-रहित हो सकता है ?'

'बहुं युग तीन काल तिहुं लोका । भये नाम अपि जीव असोका ॥'

२९—'संसारमें अभागी कौन हैं ?'

'मुनहु उमाते लोग अभागी । हरि नजि होहिं विषय-अनुरागी ॥'

३०—'बड़भागी कौन हैं ?'

'सोई गुनग्य सोई बड़भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥'

'रमा बिदास राम अनुरागी । नत्रन बसन इव नर बड़भागी ॥'

३१—'श्रीरामजीका स्वभाव कैसा है ?'

'अति कोमल रघुबीर सुभाऊ । जद्यपि अमिल लोककर राऊ ॥'

'मुनहु रामकर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखै काऊ ॥'

'उमा सुभाव राम जिन जान । ताहि भजन नजि भाव न आन ॥'

'अस सुभाव कहूँ सुनौ न देखौ । केहि स्वगैस रघुपति सम देखौ ॥'

'मैं जानौ निज नाथ सुभाऊ । अपग बिदुषा कोह न काऊ ॥'

'राम सुभाव मुनिगि बैदेही । मगन प्रेम-नन-सुखि नहिं तेही ॥'

'जामु सुभाव अरिहु अनुकूल ॥'

३२—'लोक और परलोकमें सुखका क्या उपाय है ?'

'जो परलोक इहाँ मुख चहहू ।

मुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू ॥'

'सुकुल सुखद मारग यह भाई ।

भगति मोरि पुगन श्रुति गाई ॥'

## केवटका अतुल प्रेम

(केवलक-पं० श्रीरामनारायणजी शुक साहित्य-रत्न)



न, बाबो ! परम मनोहर भगवती भागीरथीके तटपर देखो कैसी रमणीयता है ? क्या ही सुबोली छटा झटक रही है । कृपागार, परम उदार श्रीरामजी भीमिथिलेश-किशोरी और प्यारे लपखालालजी सहित पधारें हैं । बाबो, उनका पावन चरण-रज मलकपर धारणकर जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्त कलुष-पुअको धो डालें । सम्भव है कि आज इस तापस वेधमें 'बिनु सेवा जो प्रदे दीनपर राम-सरिस कोउ नाहीं ।' से भी विशेष उदारता हो ।

वह देखो, वही हैं हमारे प्यारे राम ! वही हैं हमारे हृदय-धन !! जीमें आ रहा है कि चरण पकड़कर जीभर रो लें और उन कोमल अरुण चरणोंको प्रेमाभ्रुओंसे ही धो डालें ! पर नहीं, ठहरो । इनका उचित अधिकारी बड़ी उत्कण्ठामे बाट जोह रहा है, उसका हठीला मन मनमानी करनेको आतुर बैठा है ! जलें उसकी सीधी-सादी अमृतमयी वाणी सुनें और उसीके कर-कमलोंद्वारा प्रेमसे धोये हुए चरणामृतका पान करें ! आज प्रेम-पारावार प्रभु मचले हुए भक्तके बरा हो प्रेमका पाठ पढ़ायेंगे और अपने भव्य भाव प्रकटकर भवसागरसे भी पार लगायेंगे ।

बाहरे मनचले बड़भागी केवट ! धन्य तेरा अनन्य प्रेम ! धन्य तेरी निष्कपट अफि ! धन्य तेरा अनूठा इठ ! नू—  
लोक वेद सब भौनेहि नीचा । जामु लौह नृह लेहति सोचा ॥

— इस चौपाईको चरितायं करता दृष्टा भी सरकारमे खुले बाजफाजोंमें सीनाझोरी कर रहा है । जिन्होंने सुर-अमुर सबको 'प्रबल कर्मकी डोरीमें' बांध रक्खा है, वन्हीको आज मूले बातों ही बातोंमें बांध लिया, और बाँचा भी ऐसा कि अपने पिता-पितामह तकका बन्धन मुक्त करा लिया ! धन्य है !  
मौनी नाव न केवट अना । केतसि तुम्हार मरमु में जाना ॥

नाथ माँगनेपर खुले शब्दोंमें साफ इन्कारो और फिर एक तुरां तानाबानाका भी 'तुम्हार मरमु में जाना ।' क्या खूब ? कैसा सौम्य और सरल भाव है ! जिस प्रभुके भृकुटि-बिजाससे ही सृष्टिका लव-विकास होता है । जो अलिक महाबलका नायक है, राजराजेवर है, उसपर वह आशेष कि मैं तुम्हारी बीचत खूब जानता हूँ । सहजमें तुम्हारी बातमें नहीं आ सकता । फिर इतने पर भी चुप नहीं रहा । कहने लगा—

पहि घाटों शोरिक दूर अहै  
कटिनी जल थाह दिखाइहौं जू ।  
परसे पगधूरि तरै तरनी  
घरनी घर क्यों समझाइहौं जू ॥  
तुलसी अवलंब न और कछू  
लरिका केहि भौंति जियाइहौं जू ।  
बर मारिप मोहि बिना पग धोए  
हौं नाथ न नाथ चढ़ाइहौं जू ॥

महाराज ! गंगाजीमें जलकी गहराई कमरतक ही है ।  
आइये, मैं निकटका मार्ग दिखावा दूँ । आप उसी मार्गसे  
निकल जाइये, नावकी जरूरत ही क्या है ? मैं तो सरकार  
अचम दीन हूँ, नाव ही मेरा रोजगार है—

‘यहि प्रतिपालों सब परिवारू । नहिं जानौं कछु और कवारू ॥

यही मेरी जीसे प्यारी जीविका है ! न जाने आप-  
सरीखे कितने राजा-बाबू इससे उत्तर गये हैं । हमें किसीसे  
परिचय तो करना नहीं है, ‘खरी मजूरी चोखा काम’ आपका  
अच्छा काम होगा, थोड़ा बहुत इनाम-अकराम दे देंगे ।  
जन्मभर तो इसीसे काम है, महाराज !

तस्मिन् मुनि-धरनी हंइ जाई । बाट पं मोरि नाव उड़ाई ॥

ऐसा काम मैं नहीं करना चाहता । चखिये जल्द,  
आपको वह मार्ग बतला दूँ, मुझे तो अपना काम करना है  
और आपको भी बिलम्ब होता होगा । पर सरकार, मैं  
आपका यों ही नावपर नहीं बैठा सकता ।

पात मरी सहरी, सकल सुन बांग बांग,  
केवटकी जानि कछू बेद ना पढ़ाइहौं ।  
सब परिवार मेरो याही लागि राजाजू,  
हौं दीन बितहीन कैसे दूसरा गढ़ाइहौं ॥  
गानमकी घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,  
प्रभुसों निषाद हुँके बाद न बढ़ाइहौं ।  
तुलसीके ईस राम रावसों साँचा कहौं  
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं ॥

आप जानते ही हैं, आपके चरणकी धूलि छूते ही मेरी  
नाव की बन जायगी । फिर बाल-बच्चोंको दो रोटी कहाँसे  
मिलेगी ? हाँ, एक उपाय है—मुझे चरण धो लेने दोजिये ।

पदपदुम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं,  
मोहि राम राठरि आन दसगथ सपथ सब साँची कहौं ॥  
नरु तीर मारहु लपनु पै जबरुगि न पायें पक्षारिहौं,  
तबलुगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतरिहौं ॥

और क्या कहूँ ? बड़े सरकारकी सौगन्ध करके कहता  
हूँ—नाथ, पैर धोये बिना तो पार नहीं उतारनेका । छोटे  
सरकार डेढ़े-डेढ़े ताक रहे हैं, अबे ही वे बाथ मारकर मेरे  
पाथ ले लें । मैं मारा जाऊँगा, पर बाल-बच्चोंके लिये नाथ तो  
बच जायगी ।

जौ प्रभु पार अवसि गा चढ़हु । मोहि पद-पदुम पक्षारन कहहु ॥

बाह रे ‘पद-पदुम’के सच्चे पुजारी ! क्यों न हो, आज  
तेरा प्यारा नाम प्रत्येक राम-भक्तके रोम-रोममें रम गया  
है । धन्य तेरा प्रेमाग्रह ! जिन चरणोंको श्रीविदेहजीने  
अपनी जाड़जी कुमारी सीताको अर्पित करके पखारा था, जिन  
चरणोंकी धूलि जन्मजन्मान्तर तपश्चर्या करके महर्षिगण  
कठिनतासे प्राप्त कर सकते हैं । आज तूने अपने सरल  
प्रेमसे उनको प्राप्त कर लिया ।

आनन्दकन्द श्रीकौसलकिशोर श्रीराम अपने जनकी ‘प्रेम-  
लपेटी अटपटी’ बाबी सुनकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए बोले—  
‘नमि आनु जल पाय पक्षारू । हांत बिलंब उतारहि पारू ॥

बस, अब क्या था । भक्तने मनमाना पदार्थ पाया ।  
वह प्रेममें विह्वल हो चरणोंपर गिर पड़ा और जगा  
प्रेमाश्रुओंसे ही पावन चरणोंको पखारने । उसके आनन्दका  
पार नहीं रहा—‘जन्म रंक अनु पारम पावा ।’

श्रीरामजीने कहा—‘भाई, हमें देर हो रही है । यह  
क्या कर रहे हो । जल्दी पार उतार दो ।’ प्रभुके बार-बार  
कहनेपर केवट दौड़कर कठौता ले आया और बोला कि  
‘नाथ ! जल्दी न काजिये । जल्दीका मार्ग तो मैंने आपको  
पहले ही बतला दिया था । जरा शान्ति रखिये । मैं आपको  
बुलाने तो गया ही नहीं था, अनेक घाट पे, जल्दी भी तो  
इधर न आते । अब तो जबतक मेरा काम न होगा, तब-  
तक आपका भी नहीं होनेका । मैं अब रजके एक-एक  
कणको चरणसे छुड़ा लूँगा, तब नाव मिलेगी ।’ प्रभु  
मुसकराये और वह—

अति आनन्द उमगि अनुरागा । चरन-सरोज पखारन लाग्गा ॥

केवट परमानन्दमें मग्न हो धीरे धीरे प्यारके चरण धो  
रहा है । अनन्य प्रेमभावज केवट, आज तेरे सौभाग्यको  
देखगद्य भी जलवा रहे हैं ! जिन चरणोंकी पादुका-  
मात्रसे ही श्रीभरतखासजीने नन्दीप्राममें पर्याकुटी बनाकर  
१४ वर्षकी अवधि पार की थी । जो चरण श्रीशंकर  
भगवान्के इक्ष्वा-मानसमें सदैव निवास करते हैं, आज

तूने उनको इतना बरसमें कर लिया कि बार-बार कहनेपर भी नहीं छोड़ता ।

देवगण ध्यानन्दमग्न पुण्य वर्षा करते हुए मुक्तकण्ठसे पुकार उठे—

‘बहि सम पुण्यपुञ्ज कोठ नाही ।’

केवटने खूब रगड़-रगड़कर चरख घोये और फिर—

पद पसारि जलपान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित मयउठेइ पार ॥

पार ले आकर केवटने पुनः प्रणाम किया । प्रभु सकुचाये । कुछ देना चाहिये, फिर क्या दें ? जगन्माता श्रीजानकीजीने प्रभुके मनका सङ्कोच जानकर—‘मनि-मुदरी मन मुदित

उतारी ।’ सरकार केवटको उतराई देने लगे, पर केवट बड़ा चालाक था, उसने कहा—

नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा ॥

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी । आजु दीन्हि बिबि बनि मलि मूरी ॥

अन कछु नाथ न चाहिय मोरे । दीनदयाल अनुग्रह तेरे ॥

फिरती बार मोहि जोइ देवा । सो प्रसादु मैं सिर बरि लेवा ॥

‘फिरती बार मोहि जोइ देवा ।’ देखा, आज बिछाकर

कैसे फाँस लिया सरकारको । चौदह वर्ष बाद श्रीप्रवच

बौटते समय फिर इसी घाटपर आना होगा !

बोलो भक्त और भक्तवत्सल भगवान्की जय ।

## रसने !

### [ भक्ति-गान ]

भजन कर ले, अरी रसना ! सरस हो, भजन कर ले । अरी रसना० ।

रामकी सुनके कथा, उससे कुछ सबक पा ले ,

तू भी भूतलमें गुणोंसे महा सुयश छा ले ।

चख चुकी खूब तो विषयोंके विषले भोजन ,

है सुधा जिसमें भरी अब वही भोजन खा ले ॥

भक्ति-भावोंसे प्रभुका हृदय हर ले ।

अरी रसना ! सरस हो, भजन कर ले । अरी० ॥१॥

पूज्य कृतियोंका पूर्ण मान करनेके लिये, ज्ञान गुरु-गीरवका गान कर रसने !

‘रसिकेन्द्र’ पूर्वजोंकी आन, बान, शानपर; भक्तिभरी भावनाका दान कर रसने !

मुक्ति मिल जायगी, तू पायगी अमर-पद; सत्य, धर्म-धारणाका ध्यान कर रसने !

सरस सुधाकी धार बरस रही है, बस;—रामकी कथाका रस पान कर रसने !

व्याप रही संसारमें रामायणकी शक्ति ,

पाता सिद्धि अभीष्ट वह, करता जो वर-भक्ति ।

राम रटके तू सागर अगम तर ले ।

अरी, रसना, सरस हो भजन कर ले । अरी० ॥२॥

जब-जब भूमि-भार भारी भरपूर होता, भूतलमें पापों भरे घड़े भर जाते हैं ,

तब-तब हरि अवतार ले पसार प्रभा , दानियोंको मार भार भूमिका हटाते हैं ।

त्रेतायुगका पवित्र रामका चरित्र, मित्र, अबतक सुन-सुन भक्त सुख पाते हैं ,

राजनीति-धर्म, न्याय, धर्म, पुण्य-कर्म भरे, वीर, रणधीर राम-राज्यमें दिखाते हैं ॥

रामचन्द्र बल-धामके बल-विक्रमका गान ,

बरस वीर-रस, डाल दे—बेजानोंमें जान ।

भव्य भारत भी पहिली प्रभा भर ले ।

अरी रसना, सरस हो, भजन कर ले । अरी० ॥३॥ —रसिकेन्द्र

## रामचरितमानस

( लेखक—महात्मा गांधीजी )

भिन्न भिन्न मित्र पढ़ते हैं—

'रामायण' को आप सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते हैं, परन्तु समझमें नहीं आता, क्यों ? देखिये, तुलसीदासजी-ने कौ-जातिकी कितनी निन्दा की है। बाब्रि-वधका कैसा समर्थन किया है। विभीषणके देश-द्रोहकी किस कदर प्रशंसा की है। सीताजीपर चोर अन्याय करनेवाले रामको अवतार बताया है। ऐसे ग्रन्थमें आप कौन सौन्दर्य देख पाते हैं ? तुलसीदासके काव्य-चातुर्यके जिये तो, शायद, आप रामायणको सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं समझते होंगे ? यदि ऐसा ही है तो, कहना पड़ेगा कि आपको कान्ध-परीक्षाका कोई अधिकार ही नहीं।'।

उपर्युक्त सब सवाल एक ही मित्रके नहीं हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न मित्रोंने भिन्न-भिन्न समयपर जो कुछ कहा है और लिखा है, उसका सार है। यदि ऐसी एक-एक टीकाको लेकर देखें तो सारी-कौ-सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सन्तोष यही है कि इस तरह प्रत्येक ग्रन्थ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। एक चित्रकारने अपने टीकाकारोंको उत्तर देनेके लिये अपने चित्रको प्रदर्शनीमें रक्खा और नीचे इस तरह लिखा—'इसी चित्रमें जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हो, वह उस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।' परियाम यह हुआ कि चित्रके अंग-प्रत्यंग दोष-पूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था। टीकाकारोंने तो वेद, बाइबल और कुरानमें भी बहुतेरे दोष बताये हैं, परन्तु उन ग्रन्थोंके भक्त उनमें दोषोंका अनुभव नहीं करने। प्रत्येक ग्रन्थकी परीक्षा पूरे ग्रन्थके रहस्यको देखकर ही की जानी चाहिये। यह वादा परीक्षा है। अधिकांश पाठकोंपर ग्रन्थविशेषका क्या असर हुआ है यह देखकर ही ग्रन्थकी आन्तरिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधनसे क्यों न देखा जाय रामायणकी श्रेष्ठता ही सिद्ध होती है। ग्रन्थको सर्वोत्तम कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं कि उसमें एक भी दोष नहीं है। परन्तु रामचरित-मानसके लिये यह दावा अवश्य है कि उससे लाखों मनुष्योंको शान्ति मिली है। जो लोग ईश्वर-विमुख थे वे ईश्वरके सम्मुख गये हैं और आज भी

जा रहे हैं। मानसका प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। मानस अनुभवजन्य ज्ञानका भण्डार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिये रामचरितमानसका सहारा लेते हैं, इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वे लोग रामचरितमानसमेंसे अकेले पापका ही पाठ सीखते हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि तुलसीदासजीने कियोंपर अनिच्छासे अन्याय किया है। इसमें और ऐसी ही अन्य बातोंमें तुलसीदासजी अपने युगकी प्रचलित मान्यताओंसे परे नहीं जा सके थे अर्थात् तुलसीदासजी सुधारक नहीं, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। इसमें हम तुलसीदासजीके दोषोंका नहीं परन्तु उनके युगके दोषोंका दर्शन अवश्य करते हैं।

ऐसी दशामें सुधारक क्या करें ? क्या हमको तुलसीदासजी-से कुछ सहायता नहीं मिल सकती ? अवश्य मिल सकती है। रामचरितमानसमें कौ-जातिकी काफी निन्दा मिलती है, परन्तु उसी ग्रन्थद्वारा सीताजीके पुनीत चरित्रका भी हमें परिचय मिलता है। बिना सीताके राम कैसे ? रामका यश सीताजीपर निर्भर है। सीताजी-का रामजीपर नहीं। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी मानसके पूजनीय पात्र हैं। शबरी और अहल्याकी भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मन्दोदरी सती थी। ऐसे अनेक दृष्टान्त इस पवित्र भण्डारमेंसे मिल सकते हैं। मेरे विचारमें इन सब दृष्टान्तोंसे यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक कौ-जातिके निन्दक नहीं थे। ज्ञानपूर्वक तो वह कौ-जातिके पुजारी ही थे। यह तो कियोंकी बात हुई। परन्तु बाब्रि-वधाधिके बारेमें भी दो मतोंका गुंजाइश है। विभीषणमें तो मैं कोई दोष नहीं पाता हूँ। विभीषणने अपने भाईके साथ सत्वाग्रह किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासकके दोषोंके प्रति सहायभूति रखना या उन्हें क्षिपाना देशभक्तिके नामको लजाना है, इसके विपरीत देशके दोषोंका विरोध करना सच्ची देशभक्ति है। विभीषणने रामजीकी सहायता करके देशका भला ही किया था। सीताजीके प्रति रामचन्द्रके वर्तानमें निर्दयता नहीं थी, उसमें राजधर्म और पति-प्रेमका इन्द्रियुद्ध था।

जिसके दिलमें इस सम्बन्धकी शंकाएँ शुद्ध भावसे उठें, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको मन्त्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषयमें हृदय संकित हो, उसे छोड़ दें। सब अहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करें। रामचन्द्रने कुछ किया था, इसलिये हम भी कुछ करें, यह सोचना औंठा पाठ पढ़ना है। यह विरवास रखकर कि रामजी कभी कुछ कर ही नहीं सकते, हम पूर्ण पुरुषका ही ध्यान करें और पूर्ण ग्रन्थका

ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्वारंभा हि दोषेण भूमेनाभिरिवावृता' व्याख्यानसार सब ग्रन्थ दोषपूर्ण हैं, यह समझकर हंसवत् दोषरूपी नीरको निकाल फेंकें और गुण-रूपी धीर ही ग्रहण करें। इस तरह अपूर्णमें सम्पूर्णकी प्रतिष्ठा करना, गुणदोषका पृथक्करण करना, इनेश व्यक्तिओं और युगोंकी परिस्थितिपर निर्भर रहेगा। स्वतन्त्र सम्पूर्णता केवल ईश्वरमें ही है और वह अकथनीय है। (नवजीवनसे)

## केवटका सर्वांगपूर्ण प्रेम

(लेखक—पं० श्रीराधेश्यामजी द्विवेदी)



राम पुनीत श्रीरामायणजीमें भक्ताराज केवटका प्रेम-प्रसंग एक आलौकिक घटना है। यह प्रसंग ज्ञान एवं भक्ति-रस-सुधासे पूर्ण है। भक्तिले आकर्षित होकर ही मयादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रने यह चरित्र प्रदर्शित किया, अन्यथा श्रीभगवान्को तो नौकापर चढ़नेकी आवश्यकता भी नहीं थी, परम भगवत्कृष्ण श्रीगोस्वामी गुलसीदासजीने कवितावलीमें तो केवटके मुक्तसे ही यह बात स्पष्ट करा दी है कि यदि आपको पार जाना अभीष्ट है और चरख धुलाना अभीष्ट नहीं है तो 'यदि घाट ने थोरिक दूर अहे कटिला जल थाह देखाइही जू' अर्थात् 'नौकाके पीछे आप क्यों पड़ रहे हैं, इस घाटके समीप ही भगवती भागीरथी केवल कटिपर्यन्त ही हैं, यह केवल कहनेकी ही बात नहीं है, मैं स्वयं आपके आगे आगे चलकर बता दूँगा' इत्यादि। किन्तु श्रीभगवान्को तो भक्तकी विमल भक्तिके रससे तृप्त करना था, अतएव यह प्रसंग उसके अनोखे भावोंको प्रदर्शित कराकर प्रकट किया है।

कुछ सजनोंकी यह धारणा है कि निषादराज और श्रीचरणावृत्त पान करनेवाला केवट दोनों एक ही व्यक्ति हैं। यह धारणा असंगत-स्त्री प्रतीत होती है।

केवट-प्रसंग तो श्रीभगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे सुमन्तके विदा होनेके पश्चात्—

बरबस राम सुमन्त पठाये। सुरसरि तीर आपु चलि अये ॥

माँगी नाव न केवट आता।.....॥

इत्यादि स्थानमें आरम्भ होता है और—

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहि कलु केवट लेइ।

बिदा कीन्ह करुनामतन, भगति बिमल बर देइ ॥

—पर समाप्त होता है। 'विदा' शब्द भी इस बातका ज्वलन्त उदाहरण है। और निषादराजका प्रसंग—

'यहि सुधि गुह निषाद जब पाई'—से आरम्भ होकर

तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावन दीन्ह।

गम रजायसु सीस धरि गवन भवन तिन्ह कीन्ह ॥

—पर समाप्त होता है। पुनः दूसरे स्थानपर भी—

उतरी टाढ़ अये सुरसरि गेता। सीय गम गुह लखन समेता ॥

केवट उतरी दण्डवत कीन्हा।.....॥

इत्यादिसे भी यही प्रमादित होता है कि केवट और गुह दो व्यक्ति हैं। कारण कि पाँच व्यक्ति नौकासे उतरते हैं—सीता, राम, गुह, लक्ष्मण और केवट। केवट तो गुह (निषादराज) की प्रजाप्राप्त है। ❀

\* अध्यात्मरामायणमें यह प्रसंग बालकाण्डमें अहन्वोद्वारके बाद ही जनकपुरके रास्तेमें गंगापार होनेके समय आता है। अहन्वोद्वारका पापाणसे ऋषिपत्नी हो जानेके कारण आसपास बड़ा हो-बड़ा मच गया था, गाँवोंके रहनेवाले मरल कोमोंने यही समझ लिया था कि रामके चरणा-रजसे पत्थर ही श्री बन जाता है, अतएव वहाँ केवट कहता है—

आलयामि तव पादपंकजं नाथ! दासद्वयोः किमन्तरम्। मालुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥

पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि। नोत्तरी सधुवती मलेन स्याच्चोद्विभो! विविक्ताङ्गुलानिः ॥



श्रीराम और केवट ।  
अति आनंद उमंग अनुरागा । चरन-सरोज पखारन लगागा ॥  
वरणि सुमन सुर सकल मिहाही । यहि सम पुन्यपुंज कोउ नाही ॥





उच्च भक्तिका पर्यायवाची शब्द 'प्रेम' है, अतएव इस प्रसंगमें भक्तिके स्थानमें प्रेमका ही विवेचन किया जाना उचित होगा। प्रेममें अतुल्य, अकथ्य, अलौकिक शक्ति है इसी कारणसे यह प्रसंग अलौकिक है। सच्चिदानन्दधन प्रभु प्रेमके वशीभूत होकर ही नाना भवसारोहारा अमित विचित्र जीजाएँ करते हैं। कभी पुत्र और कभी आमाता बनकर सेवा-शुभूषा करना, कभी अपने प्रेमियोंके वश होकर नृत्य करना, कभी विनय-निहोरा कर हा हा खाना, कभी भीखनीके जूँटे फल खाना, कभी जगका आदर करना, कभी मानवतीके मनानेको परम सुन्दर वपु धारण करना, कभी ऊँसखमें बैठ जाना, कभी रुदन ठानना, कभी रथका पहिया खेकर दौड़ना और कभी अपनेको परम कृतकृत्य मानना इत्यादि सभी जीजाएँ भगवान् अपने प्रेमी जनोके प्रेमवश होकर ही करते हैं। वेद-शास्त्र-पुराण सभी सगुण ब्रह्मके प्रेमकी गाथा गाते हैं। टीक ही कहा है—

जाकी मायाबस बिराँचि सिव नाचत पार न पाये।

करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुबनिन तेहि नाच नचाये॥

भगवान् नारदजीने भी प्रेमके विषयमें यही कहा है कि—'अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम्' ( ना०भ०मु० ५१ )

देखा जाय तो समग्र नारदभक्तिसूत्र 'प्रेम' शब्दपर ही एक पूरा निबन्ध है। ऐसे अनिर्वचनीय शब्दपर तो ग्रन्थके ग्रन्थ भी अवस्थाएँ हैं, उस प्रेमकी महिमा कहकर कौन पार पा सकता है? प्रेमका स्वरूप, प्रेमकी शक्ति, प्रेमकी प्रधानता, प्रेमका साधन, प्रेमकी दशा इत्यादि प्रत्येक विषय ही गहन और लिखने योग्य हैं। किन्तु इन सबपर यहाँ थोड़ा थोड़ा लिखना भी कठिन है तथापि केवटके प्रेमको उपयुक्त विषयोंमेंसे एक-भाषपर घटाना असंगत नहीं होगा।

'केवटका प्रेम' ज्ञानमय है, केवट और ज्ञानके सादर्यका विचार करनेसे इसप्रकार मुखना होती है कि ज्ञानका अक्षय, अवसागरसे पार तथा ब्रह्म-जीवकी एकरूपता होना है। केवटका यह कथन कहा जाता है—

तुम केवट भवसागर केरे। नदी नावके हम बहुतरे॥

तुम्हरी हमरी कस उतराई। नापित नापितकी बनवाई॥

वाल्मीकीयरामायणमें 'चरण-पखारन' प्रसंग नहीं है, परन्तु निषादराज गुहकी आज्ञासे नाविक (केवट) लोग नौका लाते हैं और वही श्रीरामको पार उतारते हैं। निषादराज वहीं रह जाता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि गुह और केवट दो व्यक्ति हैं।

† प्रेमके सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो गीताप्रेमसे 'प्रेमयोग' नामक ग्रन्थ मंगाकर अवश्य पढ़िये—सम्पादक

इन शब्दोंमें तरब-तारब और सादर्यताका भाव भरा है, केवट शब्द ही ज्ञानका बोधक है—केवटके प्रेममें अशंकता, निर्भयता, उदासीनता, ठोठता, निहुरता भावि गुण अनुपम सादर्यताके धोतक हैं। सुतरां केवटका प्रेम ज्ञानमय है जो भक्तिका प्रधान काण्ड है।

केवटका-सा सुहावना मंगलमय सुधबसर भी संसारके इतिहासमें इने गिने व्यक्तियोंको ही नसीब हुआ है। एक दिन महाराज बखिओ मिला था, जब सोनेकी क़रीमें जल भरके उन्होंने श्रीभगवान्के पद-पङ्कज पखारे थे। फिर भगवान् कमलपोनि बिधाताने इन्हीं चरखोंका प्रधावन करके लोक-हितार्थ उस पावन चरयासुतको निज कमलबलुमें भर लिखा था, तदनन्तर योगिराज बिदेहको भी वह दिन दिखाया दिया था, जब उन्होंने—

बहुरि राम पद पंकज धोये। जे हर-हृदय-कमलमें गोंये॥

इन सब आत्मनिधि महापुरुषोंने प्रभु-पद-सरसीकृद् धोये अवश्य थे परन्तु इस केवटकी तो चोबनि कुछ और ही है। अबतक चरख धोनेवाले ही चरख धुलानेवालेसे चरख धोनेका निहोरा करते आये हैं। किन्तु यहाँ तो चरख धुलाने-वाले-ही धोनेवालेका विनय-निहोरा कर रहे हैं। सत्य है प्रेम या भक्ति क्रियासाध्य नहीं है, श्रीराम-कृपासाध्य है।

प्रेमकी दशाएँ भक्तमात्रमें भावानुकूल, अमित कहकर प्रधानतः चारह बतलायी हैं। भक्तशिरोमणि महात्मा गोस्वामी श्रीमुलसीदासजीने केवट-प्रसंगमें प्रेमकी चारहों दशाएँ वर्णन की हैं। सबसे पहली प्रेमकी 'उत्त' दशा कही गयी है—

सांझ कृपातुं केवटहि निहोरा। जेहि किय जग तिहुँ पगते थोरा॥

यहाँ केवटके प्रेमकी 'उत्त' दशाका वर्णन है। 'उत्त' दशामें साधक जब 'गुण-ग्राम-अवकाश'-रूप बीज जोता है तब वह साक्षात् नयनगोचर होकर साधकको कृतकृत्य करता है। अपने पूर्ण संस्कारके बलपर केवटने स्वयं भगवान्को वहाँ पा लिखा और देखते ही उसने पहचान लिखा, जिससे चरख धोनेके मिससे उसने श्रीभगवान्से प्रेम-विनोद प्रारम्भ किया। प्रेमकी दूसरी 'वत्' दशा है—'वत्' शब्द-

का अर्थ है जो अर्थात् जो वस्तु वाञ्छित है उसीकी चर्चा करना, उसीकी प्राप्तिका उद्योग करना 'यत्' दशा है।

जो प्रभु अवसि पार गा कहूँ । तो पद-पद्म पसारन कहूँ ॥

इसमें 'यत्' वाचक 'जो' शब्द है, उसका निर्वाह यहाँ कैसा सुन्दर किया गया है अर्थात् जो शब्दमें प्रेमकी 'यत्' दशा समायी हुई है। तीसरी 'ललित' दशा—मनको प्रसन्न करनेवाली दशा है, जिससे गुरु-जनादिसे लज्जा भय आदि दूर होकर प्रीतिमें परायणता होती है। पीछे सुधि होनेपर लज्जा और भय प्राप्त होता है।

जासु नाम सुमिरत इकबारा । उतरहि नर भव-सिन्धु अपारा ॥

तथा—

पद-पद्म धोइ चढ़ाई नाव न नाथ उतराई चहौं ।  
मोहि राम राउर आनि दसरथ सपथ सब सौंकी कहौं ।  
बरु तीर मारहि लघन पै जबलगिन पाँव पसारिहौं ।  
तबलगिन तुलसीदास नाथ कृपा नु पाग उतारिहौं ॥

इन शब्दोंमें प्रेमकी कितनी मनोहर दशा वर्णित की गयी है, यहाँ केवट अपने व्यवसायकी बराबरीका दावा रखता हुआ बराबरका व्यवहार निभाना चाहता है। श्रीलक्ष्मणाजी-का भय भी मानता है, और अपनेको रङ्ग एवं सम्यप्रतिष्ठा भी सिद्ध करता है। चौथी दशा 'वलित' है—यह दशा विकलतासूचक है। यथा—

'अमित काल मैं कीन्ह मजूरी ।'

तथा—

'मिटि दोष हुलद्वारिठ पावा ।'

यहाँ केवट अपनी विकलित दशाको प्रभुके सममुख वर्णन करता है। पाँचवीं 'मिलित' दशा है, अर्थात् प्रीतिमें संयोगका परमसुख 'मिलित' दशा है।

अति आनन्द उमगि अनुगंगा । चरन-सरोज पसारन लागी ॥

चरन-कमलोंके पसारनेके अनुरागमें केवटको गोस्वामीजीने कितना आनन्दित चित्रण किया है। यह उदाहरण छूटी 'गलित' दशामें भी घटित होता है जिसमें कि भक्त अपनेको भूल-सा जाना है। सातवीं 'कलित' दशा है जिसको प्राप्तकर भक्त प्रेममें मग्न हो अपनापना विस्मरकर तन्मय हो जाता है।

कहेउ कृपालु तेउ उतराई । केवट चरन गहेउ अकुराई ॥

कहाँ तो बराबरीका दावा था कि हम दोनों नाविक

हैं, व्यवहार शुद्ध रहना चाहिये, कहाँ उतराई छेमेकी पकड़े ही अकुलाकर चरण गह जेता है। यह प्रेमकी 'कलित' दशाका ही चित्र है। आठवीं 'क्षिणित' दशा है जिसमें स्नेहकी रगड़से कभी-कभी भक्तका हृदय क्षिण जाता है। यथा—

'कहेउ तुमार मर्म मैं जाना ।'

तथा—

'मुनि केवटक बैन प्रेम लंपटे अटपटे ।'

तथा—

फिरती नार जो कलु मोहि देवा । सो प्रसाद मैं सिर घरि लेवा ॥

आदि वाक्य केवटके प्रेमकी क्षिणित-दशा सूचित करते हैं। सब कुछ पा लिया किन्तु नृत नहीं हुआ। पुनः छौटती नार आकर जब दूंगे तब सिरपर धरकर ग्रहण किया जायगा। इतनेमें तो स्नेहकी वृद्धि हुई है, प्रेमका निष्प नाता जोड़ लिया गया है। भगवान्‌का पूजना केवटके स्नेहाई हृदयको छीलता है जिसका कि आश्रय प्रेमी उत्तर दे देता है। नवीं 'चलित' दशा है, यहाँ चलना पारलौकिक यात्रासे सम्बन्ध रखता है।

पद पसारि जगपान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पागक प्रभुनि पुनि मृदित गयउ ते पार ॥

अर्थात् प्रेमका नाता जोड़कर उसने पुरुषों सहित अपनी परलोकयात्रा निष्कषटक कर ली है। दसवीं 'क्रान्त' दशा है जिसमें नृत होकर प्रेमी प्रियतममें अपना मनोरथ पूर्ण समझता है और अपने भाग्यकी सराहना करता है।

अब कलु नाथ न चाहिय मोरे । दीनदयाल अनुग्रह तोरे ॥

भाव स्पष्ट है। ग्यारहवीं 'विह्वल' दशा है जिसमें मनहरण-को प्राप्त करके भी मान न स्थानेपर उसके विधेयमें मन विशेष हलचल हो जानेसे पड़नावा होता है। यथा—

पद नख निर्मलदेव सगि हरषा । सुनि प्रभु बचन मोहमति करी ॥

भगवान्‌को केवटके प्रेममें मग्न देखकर श्रीगंगाजीको भी पड़नावा हुआ। बारहवीं 'मंतस' दशा है जिसमें पूर्ण नृत होकर प्रेमी प्रेमरसमें सम्यक् नृत होकर मग्न बना रहता है। यथा—'नय आज हम काह न पावा ।' इत्यादि—

केवटके अमित भाव और कृपालुकी अतुल कृपालुता दोनोंकी महिमा ही अक्षयनीय है। धन्य केवट ! जिसकी अपार मायाका पार विधि-हरि-हरने भी न पाया, उन्हें पार करना तुम्हारे ही किस्मे आया।

## मानस और व्याकरण

( लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी )



जु लोगोको प्रायः वह कहते सुना है कि कविताकाश-कलाधर कविवर गोस्वामी तुलसीदासजीके 'रामचरित-मानस' में व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगोंकी प्रचुरता है। उसमें लिङ्ग-वचनके व्यभिचारके अतिरिक्त 'ने' विभक्तिका बहिष्कार पद-पदपर दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामीजीने भूलकर भी कहीं 'ने' विभक्तिका प्रयोग नहीं किया है। पर यथार्थमें ऐसा बात नहीं है। जिन्हें हिन्दी व्याकरणका तनिक भी ज्ञान है, या जो उसकी बारीकियाँ समझते हैं वे ऐसा कभी नहीं कह सकते। हाँ, केवल पाश्चिनिका पाठ करनेवाले जो चाहें सो कह सकते हैं। मुझे तो 'रामचरित-मानस' में व्याकरणानुकूल प्रयोग ही अधिकतासे मिले हैं। उनमें न तो लिङ्ग-वचनका व्यभिचार ही हुआ है और न 'ने' विभक्तिका बहिष्कार ही। कहीं-कहीं एकाग्र स्थानमें शिथिल प्रयोग अवश्य है, पर उन्मे गोस्वामीजीके मरये मदन कदापि उचित नहीं, क्योंकि रामचरितमानसकी बड़ी झीझलेदार हुई है। खेत्तकों और प्रकाशकोंकी कृपासे ही गोस्वामीजी-पर ऐसा आक्षेप होता है। जिन लोगोको गोस्वामीजी पर व्याकरण न जाननेका सन्देह है उनका सन्देह दूर करनेके लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करता हूँ।

सबसे पहले मैं यही दिखानेका प्रयत्न करूँगा कि गोस्वामीजीने 'ने' विभक्तिका प्रयोग किया है और अशुद्धा किया है। जिनका यह अनुमान है कि गोस्वामीजीके समयमें हिन्दी भाषामें 'ने' का व्यवहार नहीं था, वह नीचे लिखी चौपाइयाँ जरा ध्यानसे पढ़ें और विचारें। बस, यही मेरी प्रार्थना है। अशुद्धा देखिये—

‘चतुराई तुम्हारि मैं जानी’

इसमें 'ने' का प्रयोग है या नहीं? यदि कोई कहे 'नहीं' तो मैं उसे दयाका पात्र समझूँगा, क्योंकि इसमें 'ने' का प्रयोग है, पर ठीक है। कवियोंको ऐसा करनेका पूर्ण अधिकार है। यदि गोस्वामीजी लिखते—

चतुराई तुम्हारि मैं जाना।

—तो अवश्य ही 'ने' का अभाव रहता, पर वहाँ वह

बात नहीं है। वहाँ 'ने' साफ मालूम होता है। इसका अन्वय होगा—

मैं (ने) तुम्हारि चतुराई जानी।

इसी तरह—

‘कही जनक जस अनुचित जानी’

—को समझना चाहिये। कोई कहे कि ऐसा दुष्प्राचर-व्यायसे हो गया है तो और भी उदाहरण लीजिये। यथा:—

सत्संगत महिमा नहीं गोई।

निज निज मुखन कही निज होनी।

मले पोच सब बिधि उपजाय।

राय मुआय मुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥

कषट लुरी उर पाहन टेई।

कारन कवन कुटिलपन ठाना।

सहे घरम-बित कोटि कलेसा।

मरन काल बिधि मति हर लीन्ही।

परमुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥

प्रभु करि कृपा पावरी दोन्हों। सादर भरत सीस बरि लीन्हों॥

ललितमनहू यह मरम न जाना। जो कलु चरित रक्षा भगवाना॥

सो गोसाँइ बिधि गति जो छेकी। सके को टारि टेक जो टेकी॥

इत्यादि इसके प्रचुर प्रमाण हैं। विस्तार-भयसे केवल अयोध्या और बालकाण्डसे ही कुछ चुने हुए उदाहरण दिये हैं। शेष पाँच काण्ड अभी छुप भी नहीं हैं। जिन्हें विरवास न हो वह एक बार मानसरामायण ध्यानसे पढ़ जायें तो आप ही विरवास हो जायगा।

अब लिङ्ग-वचनका प्रयोग देखिये। वह भी बाधन तोले पाव रत्ती ठीक ही मिलेगा।

‘मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी।

ऊँची अच्छी रुचि, क्या अच्छा प्रयोग है। और सुनिचे—

एकहि बार आस सब पूजी। अब कलु कहव जीम करि दूजी॥

छमब देबि बड़ि चूक हमारी।

चोर नारि जिमि प्रगट न रोई।

चढ़ी बंग जुन खैच सिलारु।

सीय मातु कह बिधि-बुधि बाँकी ।

बरसा बिगत सरद रितु आई ।

भूमि परत मा डाबर पानी । जिमि जीवहि माया लपटानी ॥

इनमें आस पूजी, जीम करि वूजी, चूक हमारी, चोर नारि रोई, चढ़ी चंग, बिधि-बुधि बाँकी, सरद रितु आई, मा डाबर पानी और माया लपटानी, ये प्रयोग लिङ्गकी शुद्धि डंकेकी चोट बता रहे हैं । अब बचनकी शुद्धि देखिये—

ते पितु मातु कहहु सकि कैसे । जिन पठये बन बाकक पेसे ॥

माता-पिताके लिये कैसे और बालक (राम + लक्ष्मण) के लिये ऐसे, कैसे व्याकरणसम्मत प्रयोग हैं । अच्छा और भी सुनिये—

सत्य मूळ सब सुकृत सुहाये ।

और

जाने सरद रितु खंजन आये ॥

‘सब सुकृत सुहाये’ और ‘खंजन आये’ देखकर भी क्या कोई गोस्वामीजीपर व्याकरण न जाननेका दोष लगा सकता है ?

कुछ लोगोंका कहना है कि गोस्वामीजीने ‘का, की, के’ का व्यवहार न कर केवल ‘कर’ से ही काम चलाया है । पर यह बात भी भ्रमसे खाली नहीं है । रामायणमें दोनों प्रकारके प्रयोग मिलते हैं, यथा—

मोह-मगन मति नहि बिदेहकी । महिमा सिय रघुबर सनेहकी ॥

सुर नर मुनि सबकी यह शैली ।

भूतल पर लकुटकी नाई ।

इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है । हाँ, एक चिन्तनीय प्रयोग भी मिला है, पर मैं उसे गोस्वामीजीके मल्ले नहीं मँडना चाहता, क्योंकि वह निश्चय ही लेखकोंकी भूल है । यथा—

खर-दूषनपह गइ बिलखाता । विक विक तव पौरव बरु आना ॥

यहाँ ‘गई बिलखाता’ न होकर बिलखाती होना चाहिये था । इसी तरह एक स्थानपर और मन्वेह हुआ था, पर अब दूर हो गया । क्या कोई सज्जन ‘बिलखाता’ का भी सन्देह दूर कर देंगे ?

मित्रवर पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी ‘स्वतन्त्र’ सत्यावक से प्रार्थना है कि वह अपने सूत्रोंके द्वारा इसका निर्णय कृपाकर कर दें । हाँ वह सन्देहवादी चौपाई यह है—

मर्म बचन सीता जब बोली । हरिप्रेरित कछिमन मन बोली ॥

पर एक दूसरी रामायणमें नीचे लिखा पाठ मिलनेसे सन्देह दूर हो गया ।

मर्म बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित कछिमन मति बोली ॥

लेखकोंसे ‘मति’ का मन हो जाना असम्भव नहीं । मतिका मन होनेसे ‘बोली’ का ‘बोला’ और ‘बोली’ का ‘बोला’ हो जाना भी स्वाभाविक ही है ।

आशा है, गोस्वामीजीके व्याकरण-ज्ञानपर सन्देह करनेवाले सज्जन इतनेहीसे सन्तुष्ट हो जायेंगे और फिर सन्देह न करेंगे ।

## रामायण-सम्बन्धी यत् किञ्चित्

( लेखक — पं० श्रीज्ञानरमलजी शर्मा )

( १ ) प्राकथन



वृत्त-जातिके परमाराध्य महाबा-  
हुर्योत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका  
पुरुष-चरित चित्रित कर रामायणके  
रूपमें महर्षि वाल्मीकि जगत्के  
लिये शिक्षाका अचर्य एवं विपुल  
भण्डार खोद गये हैं । रामायण  
केवल राम-रावण-युद्धकी मारकाट-  
का शुष्क इतिहास नहीं है, प्रयुक्त  
वह सर्वोच्च मानव-समाजका कर्तव्य-शास्त्र है । दूसरे शब्दोंमें  
यों कह सकते हैं कि रामायण भारतवर्षकी धर्मप्राण आर्य-  
जातिका सर्वस्व है । रामायणका विशेष माहात्म्य जिसकर  
समझानेकी आवश्यकता नहीं । कोटि-कोटि जन्तु  
हिन्दुओंके हृदय-पटलपर अतिप्राचीन कालसे वाल्मीकि-  
रामायणकी महिमा अंकित है । यहाँ रामायणका पठन-  
पाठन और अवलोकन पुरुषार्थ एवं अभीष्ट-फलदायक समझा  
जाता है । रामायणके प्रति हिन्दुओंकी जो यह अटूट  
ज्वाला है, वह धर्म-बुद्धिसे है, कोरे इतिहास या काव्यकी  
दृष्टिसे ही नहीं । रामायणकी महिमाका द्योतन करनेके  
लिये निम्नांकित कुछ वचन ही पर्याप्त हैं—

वाल्मीकिगिरिसम्भूता राम-सागरगामिनी ।

पुनातु मुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥

×

×

×

वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

×	×	×
रामायणमादिकान्यं	सर्ववेदार्यसंमतम् ।	
सर्वपापहरं पुण्यं	सर्वदुःखनिवर्हणम् ॥	
समस्तपुण्यफलदं	सर्वयज्ञफलप्रदम् ।	

×	×	×
एकैकमध्वरं पुंसां	महापातकनाशनम् ॥	
×	×	×

जो महापुरुष रामायणकी रचनाकर जन्य हो गये हैं, निस्सन्देह वह मुनिज्येष्ठ वाल्मीकि हमारे प्रथम एवं श्रद्धासमन्वित भक्तिके पात्र हैं ।

## ( २ ) महर्षि वाल्मीकि

वाल्मीकि अति प्राचीन महर्षि हैं । प्रचेता-सनय होनेसे उनका नामान्तर प्राचेत भी है । वह तपोनिष्ठ त्रिकाज्ज ऋषि-ज्येष्ठ महापुरुष थे । भरद्वाज-जैसे प्रख्यात ऋषि उनके शिष्य-समुदाय-भुक्त थे । जम्बव-राज्य भगवान् रामचन्द्रका समस्त चरित प्रशस्त अर्थ-समन्वित विचित्र पदोंमें उन्होंने वर्णन किया है । आरम्भमें उन्होंने पञ्चशतसर्गात्मक वृः काव्योंकी रचना की । सप्तम उत्तर काव्य महर्षिने पीछे बनाया ।

जिस समय जोकापवाद-भयसे भगवान् श्रीरामने लगभग सीताका त्याग किया उस समय रामाज्ञानुसार जम्बवजीने सतीशिरोमणि सीताको गङ्गाके पर-पारवर्ती तमसानदी-तीरस्थ पुण्यकर्मा महर्षि वाल्मीकिसे स्वर्ग-पुण्य आश्रममें ही जोका था । वह वहीं महर्षिकी रक्षामें रही । उसी आश्रममें जन्मग्रहणपूर्वक जाजित-पाजित होकर सुस्वर-सम्पन्न परम मेधावी कुश और लवने महर्षि वाल्मीकि-द्वारा रामायण-गानकी शिक्षा लाभ की थी । वाल्मीकिसे आश्रममें ही शत्रुघ्नको रामचरित अवश्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ।

आधुनिक अन्वेषणकारियोंका मत है कि Tons नामक एक नदी जो बुन्देलखण्डसे होकर प्रयागसे योदी दूरपर गङ्गामें मिलती है, वही तमसा नदी है और इसी सङ्गम-स्थानके पास वाल्मीकिजीका तपोवन था ।

महर्षि वाल्मीकिसे सम्बन्धमें वह प्रवाद भी प्रचलित है कि उनका पूर्व नाम रजाकर और वस्यु-वृषि भी । राम-

का उलट्टा मूलसे 'मरा' 'मरा' अपनेके प्रभावसे उन्होंने महर्षि-पद पाया । किन्तु यह बहुत पीछेकी कल्पना मालूम होती है । इसका कोई प्राचीन प्रामाणिक आधार भी नहीं है ।

## ( ३ ) रामायणकी शिक्षा

रामायणके साथ संसारके किसी ग्रन्थकी तुलना नहीं हो सकती । इसका कारण यह है कि महर्षि वाल्मीकिने अपने हृदयके सत्यको रामायणके प्रत्येक श्लोकके साथ विवक्षित कर दिया है । इस विशेषतासे रामायणका महत्त्व बहुत बढ़ गया है । वाल्मीकि-रामायणपर मनोनिवेशपूर्वक विचार कीजिये । वह विविध रस समन्वित काव्य है, सत्य-चटनावलम्बित इतिहास है और है कर्तव्यविधायक सोदाहरण सृष्टि । रामायणके द्वारा ही हमारे समस्त मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका आदर्श उपस्थित होता है, राक्षसराज रावणकी दुर्दान्त प्रकृति और कार्यप्रणालीका परिचय मिलता है । राम और रावणकी कार्य-व्यवस्थाओंका परस्पर मिलान कर हम भिन्न-भिन्न परिस्थानोंकी शिक्षा रामायणसे पा सकते हैं । पिताके प्रति पुत्रका क्या कर्तव्य है, भाई भाईका परस्पर क्या सम्बन्ध है, क्या व्यवहार है, प्रतिज्ञाका पालन कैसे करना चाहिये, प्रजाके प्रति राजाका क्या धर्म है, एक-पक्षीव्रतकी क्या महिमा है, जोकापवादसे किसप्रकार डरना चाहिये, धर्म-विरोधियोंका शमन किस तत्परतासे किया जाय इत्यादि बातें हमें भगवान् रामके आदर्शसे मालूम होती हैं । इसके अतिरिक्त रामायण-वर्णित दशरथ और कौसल्या प्रभृतिका अपत्य-स्नेह, कजहमिष मन्थराकी परोक्ष-असहिष्णुता, सीताका पातिव्रत, जम्बवकी निःस्वार्थ सेवा, भरतका आवृ-भक्ति-प्रधान स्वार्थ-त्याग, सुग्रीवकी मैत्री, हनूमान्की एकान्त प्रभुभक्ति और विभीषणकी शरणागतिसे उदाहरण मानव-समाजके जिये शिक्षाके उत्कृष्ट साधन हैं । रामायणसे जिन आदर्शोंकी शिक्षा मिलती है उन आदर्शोंमें से यदि कोई एक भी आदर्शका पालन कर सके तो उसके जीवनके धन्य होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं । वह अपने जिये, अपनी जातिके जिये—सभीके लिये उपयोगी हो सकता है । वह स्वयं आदर्श बनकर अपने समाजको आदर्श बना सकता है । जननी और जन्मभूमिको स्वर्गसे भी अधिक गरीयसी बताने वाला—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—यह महामन्त्र महर्षि वाल्मीकिसे हृदयकी ही मञ्जुर ज्वनि है ।

## ( ४ ) रामायणमें वर्णाश्रम-धर्म

भगवान् श्रीरामचन्द्रके समयमें वर्णाश्रम-धर्म पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्ण अपने-अपने धर्मके दृढ़ अनुयायी थे। यथा—

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्देव्याः क्षत्रमनुव्रताः ।  
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥

( वा०रा० १।६।१६ )

अपने धर्मसे विपरीत शूद्र शम्भूक तपस्या करने लगा था, उसका श्रीरामचन्द्रजीको बध करना पड़ा। यही नहीं, ब्राह्मण लोग शूद्रको मन्त्र दान करनेपर पतित हो जाते थे। सुन्दरकाण्डके ८ वें सर्गके २ वें श्लोकमें इसका उल्लेख है। ब्राह्मणोंके जिये बान और आसनादिकी स्वतन्त्र व्यवस्था थी।

## ( ५ ) रामायणकी विवाह-विधि

रामायणमें स्वयंवरका उल्लेख होनेपर भी कन्याको पति स्वयं वरदा करनेका अधिकार नहीं था। वे स्वेच्छा-चारिणी नहीं थीं। धार्यशुल्का सीताजीके स्वयंवरका आयोजन भी सीताजीने स्वयं नहीं, किन्तु राजा जनकने अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके जिये किया था। जब श्रीरामचन्द्रका प्रबल पौरुष उन्होंने देख लिया—उनको और उनके भाइयोंको उपयुक्त पात्र समझ लिया—तब राजा दशरथको वृत्तद्वारा सन्देश भेजकर बुलाया। राजा दशरथ भरत-शत्रुघ्नको लेकर वसिष्ठादि सहित जनकपुर आये। वहाँ वर-पक्षकी ओरसे इषवाकु-कुल-पुरोहित भगवान् वसिष्ठने वंशावली सुनायी और बधू-पक्षका वंश कीर्तन स्वयं राजा जनकने किया। इसके पश्चात् जनक दशरथको गोदान एवं पितृकार्य ( नान्दीमुख आदि ) करनेके जिये कहते हैं। यह कृत्य विवाहसे पहले दिन सम्पन्न हुए। दूसरे दिन समस्त कर्तव्यकर्म समाधानपूर्वक राजा दशरथ ऋषियोंको अग्रणी बनाकर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नसहित राजा जनकके द्वारस्थ हुए। उसी समय वसिष्ठजीने आगे बढ़कर जनकको विवाहकी तैयारी करनेके साथ-साथ दशरथादिको यज्ञागारमें आनेकी अनुमति देनेके जिये कहा। जनक पहलेसे ही कन्याओं सहित तैयार बैठे थे। ऋषिों और पुत्रों सहित राजा दशरथके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचनेपर राजा जनकने वसिष्ठजीसे कहा—‘आप ऋषियों सहित

जोकाभिराम रामका विवाह-कार्य कराइये। इसके पश्चात् विद्यामित्र और शतानन्द ने मण्डपमें विधिपूर्वक वेदी-रचना की और—

अलङ्कार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः ।  
सुवर्णपालिकामिष्य चित्रकुम्भैश्च सांकुरैः ॥  
अङ्कुराढ्यैः शरावैश्च धूपपात्रैः सधूपकैः ।  
शङ्खपात्रैः सुवैः सुगन्धैः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः ॥  
लाजचूर्णैश्च पात्रीभिरक्षैतरपि संस्कृतैः ।  
दमैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥  
अग्निमावाय तं वेद्यां विधिवन्मन्त्रपुरस्कृतम् ।  
जुहावाग्नौ महतिजा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥  
ततः सीतां समानीय सर्वोभरणभूषिताम् ।  
समक्षमग्रेः संस्थाप्य राघवामिमुखं तदा ॥

( वा०रा० १।७३।२१-२५ )

इसके बाद राजा जनक कौशलस्थानम्बुवर्द्धन श्रीरामसे कहते हैं—

इये सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ।  
प्रतीच्छ चैनां भद्रे ते पणिं गृह्णाप्य पाणिना ॥  
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ।

यह कहकर राजाने मन्त्रपूज जल छोड़ दिया। इसी तरह लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके हाथमें क्रमानुसार उर्मिका, मावहवी एवं अतिकीर्तिके उद्देश्यसे जलनिक्षेपपूर्वक राजा जनकने सबको आशीर्वाद दिया—

सर्वे भवन्तः सीम्याश्च सर्वे मुक्तावतव्रताः ।  
पत्निभिः सन्तु काकुत्था मान्दकालस्य पर्ययः ।

नवन्तर कन्यागृहीताओंने तीनवार अग्निकी प्रदक्षिणा करके राजा तथा ऋषियोंकी परिक्रमा की और यों विवाह-विधि समाप्त हुई। यह भी रामायणसे सिद्ध है कि राजा जनकने बड़ा दहेज दिया था। इस विवाह-विधानको कन्याओंका स्वेच्छासम्मत स्वयंवर नहीं कहा जा सकता। रामायणमें यह भी देखा जाता है कि विवाहके सम्बन्धमें कन्या स्वतन्त्र—स्वेच्छाचारिणी नहीं, प्रत्युत अपने पिताके सर्वथा अधीन थीं। इसका उदाहरण—जहाँ बायु, कुशनाभकी कन्याओंसे भाषा बन जानेकी प्रार्थना करता है वहाँ वे

कन्याएँ उसको बड़ी बड़ी फटकार बताती हैं और कहती हैं—

मा भूत्स कालो दुर्मेघः पितरं सत्यवादिनम् ।  
अवमन्य स्वधर्मेण स्वयंवरमुपास्महे ॥  
पिता हि प्रमुरस्माकं दैवतं परमं च सः ।  
यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ॥

( ११३२/२१-२२ )

हे दुर्बुद्धि वायु ! अपने सत्यवादी पिताका अपमान करके हम अपनी इच्छासे स्वयंवर करें, ऐसा समय कभी न आवे । हमारे पिता कुशनाभ हैं। हमारे प्रभु और परम दैवत हैं वे जिस पुरुषके साथ हमारा विवाह करेंगे वही हमारा पति होगा ।

(६) रामायणकी कुछ फुटकर बातें ।

प्रायः चौबीस सहस्र श्लोकात्मक सप्तकाव्य रामायणके वर्णित विषयोंकी चर्चा किसी एक लेखमें नहीं हो सकती । उनका ज्ञान मनोयोगसे पढ़ने या सुननेपर ही हो सकता है । रामायणमें राजा दशरथकी जिस राज्य-न्यवस्थाका वर्णन है, उसके साथ समुज्जतसे समुज्जत राज्यकी व्यवस्थाकी तुलना की जा सकती है। विपुल वैभवशास्त्रिणी अयोध्याकी मनोहरताका चित्र भी रामायणमें अनुपम है। इसके अतिरिक्त रामायणमें पितरोंके तपण और आदरका भर्त्ताभति प्रतिपादन है। प्रायोपवेशन (धरना) का भी उल्लेख मिलता है। भरतजी रामचन्द्रजीको वापस जानेके लिये धरना देकर बैठ गये थे किन्तु रामचन्द्रजीने धरनेको चित्रियोंके लिये अनुचित बताकर उन्हें मना कर दिया था। सीताकी खोजमें जाकर जब अज्ञातवादि वानर कुछ पता नहीं चला सके तब उन्होंने भी प्रायोपवेशन करनेका विचार किया था। रामायण-कालमें संस्कृत बोलचालकी भाषाके रूपमें प्रचलित थी। इत्थल ब्राह्मणका रूप धारणकर संस्कृत बोलकर ही ब्राह्मणोंको निमग्नित करता था। इन्मानजीने भी सर्वप्रथम अशोकवनमें पहुँचकर सीताजीसे किसप्रकार वार्तालाप किया जाय—इस विषयमें बड़ा सोच-विचार किया और अन्तमें संस्कृतमें ही भाषण करना निश्चित किया। उस समय वेदशास्त्रोंके पठन-पाठकी सुव्यवस्था थी। वेदशास्त्र-सम्पन्न ब्राह्मण विद्वानोंका बड़ा समाधि था, उन्हें वान-वर्णिता भी स्तूष मिलती थी। पवित्र जोग समाधियोंमें पहुँचकर विजय पानेकी इच्छासे शास्त्रार्थ भी किया करते थे। इतने पूर्व यज्ञानुष्ठान भी बड़ी

भूम-धामसे विधिपूर्वक सम्पन्न होते थे। देवताओंके उद्देश्यसे कामना-सिद्धिके लिये क्षिप्रा पूजा, प्रार्थना और रात्रि-जागरण (रातीजगा) भी किया करती थीं ।

## तुलसी-काव्य

( लेखक—श्रीदामोदरसहायसिंहजी, एक० टी०, 'कविकर्क' )

( १ )

जानि परै मारग न छाये कुस कास उहाँ  
इहाँई न सूझे कछु मारग सुभावनो ।  
सर सरितानको लतानको वितान उहाँ  
हरे हरे सूझे इहाँ अन्ध-जस सावनो ॥  
'दामोदर' दीननको गृहते विहीननको  
एक दुखदाई दूजो दुर्जन दुखावनो ।  
नातो साधुसज्जनके हेतु सब भाँतिन ही  
काव्य तुलसीके कैधौ सावन सुहावनो ॥

( २ )

रामको जनमसो संजोगिनको आनंद है  
राम बनबाससो बियोगिन दुखावनो ।  
दादुरको सोर बहूँ ओर राम जस सोई  
रावनको जुद्ध रैन-रूपसो भयावनो ॥  
भायप भरतको अनूप हरियाली भरो  
खेतनमें नाज राम-राज मन भावनो ।  
पावनो मनोरथ नसावनो हियेको सोक  
काव्य तुलसीके कैधौ सावन सुहावनो ॥

( ३ )

राम रस अमल अमृतकी बिसद बूँदें  
भक्तसालि ऊपर सदाही बरसावनो ।  
मरुभूमि मालवपै बायें दाहिनेपर सम  
जोग जुकिकों हूँ भक्ति-भावन भुलावनो ॥  
राम स्यामताके छाये घन घनघोर सिया—  
'दामोदर' दामिनी दमक दमकावनो ।  
हिय डुलसावनो नसावनो हियेकी पीर  
काव्य तुलसीके कैधौ सावन सुहावनो ॥

## रामायणमें आदर्श भ्रातृ-प्रेम

( लेखक—श्रीनयनदासजी गोयन्दका )

अनुज-जानकी सहित प्रभु चाप-बान-धर राम ।

मम दिय-गगन इन्दु इन बसहु सदा निष्काम ॥



गङ्गान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्षा-रक्षक आजतक कोई दूसरा नहीं हुआ, ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं होगा। श्रीराम साक्षात् परमात्मा थे, वे धर्मकी रक्षा और लोगोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। उनके आदर्श जीजाचरित्रको पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें महान् पवित्र भावोंकी ज्वाहरी उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कार्य परम पवित्र, मनोमुग्धकारी और अनुकरण करने योग्य है। ऐसे अनन्त गुणोंके समुद्र श्रीरामके सम्बन्धमें सुम्न-सरीखे व्यक्ति का कुछ लिखना एक प्रकारसे लक्ष्मण है तथापि अपने मनोविनोदके लिये शास्त्रोंके आधारपर यत्किञ्चित् लिखनेका साहस करता हूँ, विज्ञान चमा करूँ। श्रीराम सर्वगुणाधार थे। सत्य, सुदृढ़ता, गम्भीरता, चमत्कार, दया, क्षुद्रता, शूरता, धीरता, निर्भयता, विनय, शान्ति, नितिष्ठा, उपरामता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, मर्षादा-संरक्षकता, एक-पक्षीयता, प्रजारक्षकता, ब्रह्मचर्यता, मातृपितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, सरलता, व्यवहारकुशलता, प्रतिज्ञा-त्वरता, शरणागत-वत्सलता, त्याग, साधु-संरक्षण, दुष्ट-विनाश, निर्वैरता, सत्यता, लोकप्रियता आदि सभी सद्गुणोंका श्रीराममें बिलक्षण विकास था। इतने गुणोंका एकत्र विकास जगत्में कहीं नहीं मिलता। माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा आदर्श बताव है, उसकी ओर ख्याल करने ही मन मुग्ध हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता तो आजतक कहीं नहीं देखनेमें आयी। कैकेयी और मन्थराको छोड़कर उस समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था जो श्रीरामके व्यवहार और प्रेमके बतावसे मुग्ध न हो गया हो। वास्तवमें कैकेयी भी श्रीरामके प्रभाव और प्रेमसे सदा मुग्ध थी। राम-राज्याभिषेककी बात सुनकर वह मन्थराको पुरस्कार देनेके लिये प्रस्तुत हुई थी, श्रीरामके गुणोंपर उन्का बड़ा भारी

विरवास था। वनवास भेजनेके समय शत्रु बनी हुई कैकेयीके मुखसे भी वे सच्चे उद्धार निकल पड़ते हैं—

तुम अपराध जोग नहीं ताता। अननी-जनक-बन्धु-सुख-दाता ॥

राम सत्य सब जो कलु कहइ। तुम पितु-मातु-बचन-रत अहइ ॥

कैकेयीका रामके प्रति अभिष और कठोर बर्ताव तो भगवान्की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे लोकहितार्थ हुआ था। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे। देव, मनुष्य, राक्षस और पशु-पक्षी किसीका भी रामसे बिराह नहीं था। यशविश्वसकारी राक्षसों और शूर्पणखाके कान-नाक काटनेपर खर, वृषण, त्रिशिरा, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदिके साथ जो बर-भाव और युद्धका प्रसंग आता है, उसमें भी रहस्य भरा है। वास्तवमें रामके मनमें उनमेंसे किसीके साथ वैर था ही नहीं। राक्षसगण भी अपने सकुटुम्ब-उद्धारके लिये ही उन्हें वैर-भावसे भजते थे। रावण और मारीचकी उक्तिवशसे यह स्पष्ट है—

सुरंजन मंजन महि मारा। जो जगदीस लीन्ह अवतारा ॥

तो मैं जाह बैर हठि करिहौं। प्रभु-सरतें मवसागर तरिहौं ॥

होइ भजन नहि तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र इह पहा ॥

—रावण

मम पाछे घर घावत धंर सरासन बान ।

फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं। घन्य न मोसम आन ॥

—मारीच

इसमें यह सिद्ध है कि श्रीरामके जमानेमें चराचर जीवोंका श्रीरामके प्रति जैसा आदर्श प्रेम था, वैसा आजतक किसीके सम्बन्धमें भी देखने सुननेमें नहीं आया।

श्रीरामकी मातृ-भक्ति कैसी आदर्श है। स्वमाता और अन्य माताओंकी तो बात ही क्या, कठोर-से-कठोर व्यवहार करनेवाली कैकेयीके प्रति भी श्रीरामने भक्ति और सम्मानसे पूर्ण ही बर्ताव किया।

जिस समय कैकेयीने वन जानेकी आज्ञा दी, उस समय श्रीराम उसके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए बोले, माता, इसमें तो सभी तरह मेरा कल्याण है—



मुनिगन मिलन बिशेष वन सबहि मंति हित मोर ॥  
तेहिमहं पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ॥

श्रीरामने कुपित हुए भाई लक्ष्मणसे कहा—

यस्या मदभिषेकार्ये मानसं परितप्यते ।  
माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुर्व ॥  
तस्याः शङ्कामयं दुःखं मुहूर्त्तमपि नोत्सहे ।  
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपश्रितुम् ॥  
न बुद्धिपूर्वं नातुदं स्मरामीह कदाचन ।  
मातृणां वा पितुर्वाहं कृतमत्पं च विप्रियम् ॥

( वा० रा० २ । २२ । ६-८ )

‘हे लक्ष्मण ! मेरे राज्याभिषेकके संवादसे अत्यन्त परितप पायां हुई माता कैकेयीके मनमें किसी प्रकारकी शङ्का न हो तुम्हें वैसा ही करना चाहिये । मैं उसके मनमें उपजे हुए शंकारूप दुःखको एक घड़ीके लिये भी नहीं सह सकता । हे भाई ! जहाँतक मुझे बाद है, मैंने अपने जीवनमें जानमें या अनजानमें माताओंका और पिताजीका कभी कोई जरा-सा अप्रिय कार्य नहीं किया ।’

इसके बाद वनसे जाँटते हुए भरतजीने श्रीरामने कहा—

कामाद्वा तात ! लोमाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् ।  
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ।

( वा० रा० २ । ११२ । १९ )

‘माता कैकेयीने (तुम्हारी हित-) कामनासे वा (राज्यके) छोभसे जो यह कार्य किया, इसके लिये मनमें कुछ भी विचार न कर भक्तिभावसे उनकी माताकी भाँति सेवा करना ।’

इससे पता लगता है कि रामकी अपनी माताओंके प्रति कितनी भक्ति थी । एक बार लक्ष्मणने वनमें कैकेयीकी कुछ निन्दा कर डाली । इसपर मातृभक्त और आतृप्रेमी श्रीरामने जो कुछ कहा सो सदा मनन करने योग्य है—

न तेऽम्भा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।  
तामैवेवाकुनायस्य भरतस्य कथां कुरु ॥

( वा० रा० ३ । १६ । ३७ )

हे भाई ! बिचारी माता (कैकेयीकी) निन्दा कभी मत किया करो । बातें करनी हों तो इष्वाकुनाथ भरतके सम्बन्धमें करनी चाहिये । ( क्योंकि भरतकी चर्चा मुझे बहुत ही प्रिय है )

इसीप्रकार उनकी पितृभक्ति भी अमृत है । पिताके वचनोंको सत्य करने लिये श्रीरामने क्या नहीं किया ।

पिताको दुखी देखकर जब श्रीरामने कैकेयीसे दुःखका कारण पूछा तब उसने कहा कि ‘राजाके मनमें एक बात है परन्तु वे तुम्हारे डरसे कहते नहीं हैं, तुम इन्हें बहुत प्यारे हो, तुम्हारे प्रति इनके मुखसे अप्रिय वचन ही नहीं निकलते, यदि तुम राजाकी आज्ञापालनकी प्रतिज्ञा करो तो वे कह सकते हैं, तुमको वह कार्य अवश्य ही करना चाहिये जिसके लिये इन्होंने मुझसे प्रतिज्ञा की है ।’ इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा—

अहं धिक् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ।

अहं हि वचनाद्राज्ञः पतयमपि पावके ॥

मर्त्यैवं दिवं तीक्ष्णं पतयमपि चापणे ।

( वा० रा० २ । १८ । २८-२९ )

‘अहो मुझे धिक्कार है, हे देवि ! तुमको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, मैं महाराजा पिताकी आज्ञासे आगमें कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष खा सकता हूँ, समुद्रमें कूद सकता हूँ ।’ लक्ष्मणने जब यह कहा कि ऐसे कामासक्त पिताकी आज्ञा मानना अधर्म है, तब श्रीरामने सगरपुत्र और परशुरामजी आदिका उदाहरण देते हुए कहा कि ‘पिता प्रत्यक्ष देवता हैं, उन्होंने किसी भी कारणसे वचन दिया हो, मुझे उसका विचार नहीं करना है, मैं विचारक नहीं हूँ, मैं तो निश्चय ही पिताके वचनोंका पालन करूँगा ।’

बिज्ञाप करती हुई जननी कौसल्यासे श्रीरामने स्पष्ट ही कह दिया था कि—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमिनुं मम ।

प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥

( वा० रा० २ । ११३० )

‘मैं चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम करता हूँ, मुझे वन जानेके लिये आज्ञा दो, माता ! पिताजीके वचनोंको टाकनेकी मुझमें शक्ति नहीं है ।’

श्रीरामका एकपक्षीयत आदर्श है, पत्नी सीताके प्रति रामका कितना प्रेम था, इसका कुछ दिव्यदर्शन सीताहरणके पश्चात् श्रीरामकी वृथा देखनेसे होता है । महान् वीर वीर राम बिरहोन्मत्त होकर अशुपूर्य नेत्रोंसे कदम्ब, खेल, अशोकवि वृक्षोंसे और हरियोंसे सीताका पता पूछते हैं । यहाँ भगवान् श्रीरामने अपने ‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्’ के वचनको मानो चरितार्थ कर दिया है । वे बिज्ञाप करते हैं, प्रज्ञाप करते हैं, पागलकी भाँति ज्ञाबन्धनसे हो

जाते हैं, मूर्छित हो पड़ते हैं, और 'हा सीते हा सीते' पुकार उठते हैं।

श्रीरामका सख्य-प्रेम भी आदर्श है। सुग्रीवके साथ मित्रता होनेपर आप मित्रके लक्षण बतलाते हैं—

जे न मित्र दुख होहि दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक मारी ॥  
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रके दुख रज मेरु समाना ॥  
देत लेत मन संक न धरही। बह अनुमान सदाहित करही ॥  
बिपत्तिकाल कर सतगुन नेहा। सुति कह सत्य मित्र गुन पहा ॥

फिर उसे आश्वासन देते हुए कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि करब काज मैं तोरे ॥

इसी प्रकार रामका आनृप्रेम भी अनुलनीय है। रामायणमें हमें जिस आनृप्रेमकी शिक्षा मिलती है, आनृप्रेम का जैसा उच्चातिउच्च आदर्श प्राप्त होता है वैसा जगत्के इतिहासमें कहीं नहीं है। पाण्डवोंमें भी परस्पर बड़ा भारी प्रेम था। उनके आनृप्रेमकी कथाएँ पढ़-सुनकर चित्त प्रवित हो उठता है और हम उनकी महिमा गाने लगते हैं, परन्तु रामायणके आनृप्रेमसे उसकी तुलना नहीं हो सकती। रामायणकालसे महाभारतकालके आनृप्रेमका आदर्श बहुत नीचा था। इस कालकी तो बात ही क्या है, जहाँ बात-बातमें लड़ाई होती है और जरा-जग-से सुख-भोगके लिये भाइयोंकी हत्यातक कर डाली जाती है! आज हम लेखमें श्रीराम प्रभृति चारों भाइयोंके आनृप्रेमके सम्बन्धमें यथामति किञ्चिन् दिग्दर्शन कराया जाता है।

### श्रीरामका आनृप्रेम

लक्ष्मणसे ही श्रीराम अपने तीनों भाइयोंके साथ बड़ा भारी प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। खेल-कूदमें भी कभी उनकी दुखी नहीं होने देते थे। यहाँ तक कि अपनी जीतमें भी उन्हें मुक्त करनेके लिये हार मान लेते थे और प्रेमसे पुचकार पुचकारकर दाय देते थे—

खेलत संग अनुज बालक निन जोगवन अनट अपाठ।

जीति हरि चुचुकारि दुखारन देत दिवावत डाठ ॥

श्रीराम तीनों भाइयोंको साथ लेकर भोजन करते, साथ ही खेलते और सोते थे। विश्वामित्रजीके साथ उनके यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मण वनमें गये। अनेक बिद्या सीखकर और राजसोंका विनाशकर मुनिके साथ दोनों भाई जनकपुरमें

पहुँचे। धनुष भंग हुआ। परशुरामजी आये और कोप करके धनुष तोड़नेवालेका नामधाम पूछने लगे, श्रीरामने बड़ी नम्रतासे और लक्ष्मणजीने तेजयुक्त वचनोंसे उनके प्रसन्नता उत्तर दिया। लक्ष्मणजीके कथनपर परशुरामजीको बड़ा क्रोध आया, वे उनपर दौँत पीसने लगे। इसपर श्रीरामने जिस चतुरतासे भाईके कार्यका समर्थनकर आनृप्रेमका परिचय दिया, उस प्रसंगके पढ़नेपर हृदय मुग्ध हो जाता है।

तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई, परन्तु श्रीरामने स्वयंवरमें विजय प्राप्त कर अकेले ही अपना विवाह नहीं करा लिया। लक्ष्मणजी तो साथ थे ही, भरत-शत्रुघ्नको बुलाकर सबका विवाह भी साथ ही करवाया।

विवाहके अनन्तर अयोध्या लौटकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहने लगे और अपने आचरणोंसे सबको मोहित करने लगे। कुछ समय बाद भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। पीछेसे राजा दशरथने मुनि वशिष्ठकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मतिसे श्रीरामके अनिरीक्ष्य राज्याभिषेकका निश्चय किया। चारों ओर मंगल-बधाइयाँ बँटने लगीं और राज्याभिषेककी तैयारी की जाने लगी। वशिष्ठजीने आकर श्रीरामको यह हर्ष-संवाद सुनाया। राज्याभिषेककी बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता परन्तु श्रीराम प्रसन्न नहीं हुए, वे पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे 'अहो! यह कैसी बात है, जन्मे साथ, खाना-पीना, सोना-खेलना साथ हुआ, कर्णबंध, जनेऊ और बिशाह भी चारोंके एक साथ हुए, फिर यह राज्य ही मुझ अकेलेको क्यों मिलना चाहिये, हमारे निमल कुलमें यही एक प्रथा अनुचित है कि छोटे भाइयोंको छोड़कर अकेले बड़ेको ही राजगद्दी मिलती है—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥

कनैवेच उपवीत बिबाहा। संग संग सब भयठ उछाहा ॥

निमल बंस यह अनुचित एका। अनुज बिहाइ बड़े अभिषेका ॥

श्रीरामको अकेले राज्य स्वीकार करनेमें बड़ा अनौचित्य प्रतीत हुआ। मनकी प्रसन्नतासे नहीं, परन्तु पिताकी आज्ञासे उन्हें राज्याभिषेकका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। परन्तु उनके मनमें यही था कि मैं सिर्फ यह प्रथा भर पूरी कर रहा हूँ, वास्तवमें राज्य तो भाइयोंका ही है। भरत शत्रुघ्न तो उस समय मौजूद नहीं थे, अतः श्रीरामजीने लक्ष्मणसे कहा—

सौमित्रे मुदक्य भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।

जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥

(बा० रा० २।४।४४)

‘आई सौमित्रे ! तुम (जोग) बाञ्छित भोग और राज्य-फलका भोग करो, मेरा वह जीवन और राज्य तुम्हारे ही लिये है ।’

इसके बाद ही इस लीला-नाटकका पट परिवर्तन हो गया । माता कैकेयीकी कामनाके अनुसार राज्याभिषेक जनरामनके रूपमें परिवर्तित हो गया । प्रातःकालके समय जब श्रीराम पिता दशरथकी सम्मतिसे सुमन्तके द्वारा कैकेयीके महलमें बुलाये गये और जब उन्हें कैकेयीके वरदानकी बात मालूम हुई तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, वे कहने लगे कि ‘माता ! इसमें बात ही कौन-सी है, मुझे तो केवल एक ही बातका दुःख है कि महाराजने भरतके अभियेकके लिये मुझसे ही क्यों नहीं कहा—

गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रमेवैहयैः ।

भरतं मातुलकुलादर्शव नृपशासनात् ॥

दण्डकारण्यमेवोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः ।

अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥

(वा० ग० २। १०। १०-११)

महागजकी आज्ञासे दूतगण अभी नेज घोड़ोंपर सवार होकर मासाजीके यहाँ आई भरतको लानेके लिये जायें । मैं पिताजीके बचन सत्य करनेके लिये बिना कुछ विचार किये चौदह वर्षके लिये दण्डकारण्य जाता हूँ । प्राणप्रिय आई भरतका राज्याभिषेक हो, इससे अधिक प्रसन्नता मेरे लिये और क्या होगी ? विधाता आज सब तरहसे मेरे अनुकूल है—

भरत प्रान्प्रिय पावहि राज्ञः । विधिं सन् विधिं मोहिं सन्मुख आतू ॥

जो न जाई बन ऐसहि काजा । प्रथम गनिय मोहि मृदु-समाजा ॥

अन्य है यह त्याग, आदिसे अन्ततक कहीं भी राज्यविप्लाका नाम नहीं, और भाइयोंके लिये सर्वदा सर्वस्व त्याग करनेको तैयार ! इस प्रसंगसे हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि छोटे भाइयोंको छोड़कर राज्य, धन या सुखका अकेले कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये । योग्यता-वश कहीं ग्रहण करना ही पड़े तो उसमें भाइयोंका अपनेसे अधिक अधिकार समझना चाहिये, बल्कि यह मानना चाहिये कि उन्हीं लोगोंके लिये मैं इसे ग्रहण करता हूँ और यदि ऐसा मौका आ जाय कि जब भाइयोंको राज्य, धन, सुख मिलता हो और इसलिये अपनेको त्याग करना पड़ता हो तो बहुत ही प्रसन्न होना चाहिये ।

इसके बाद श्रीराम माता कौसल्या और पत्नी सीतासे विदा माँगने गये । श्रीरामने भरत या कैकेयीके प्रति कोई भी अपशब्द या विद्वेषमूलक शब्द नहीं कहा । बल्कि सीतासे आपने कहा—

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।

स्नेहप्रणयसंमग्नैः समा हि मम मातरः ॥

भ्रातृपुत्र समौ चापि द्रष्टव्या च विशेषतः ।

त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतमै मम ॥

(वा० रा० २। २६। ३२-३३)

‘मेरी माताओंको नित्य प्रणाम करना, मुझपर स्नेह करनेमें और मेरा जाह-प्यार तथा पालन-पोषण करनेमें मेरी सभी माताएँ समान हैं । साथ ही तुम भरत-शत्रुघ्नको भी अपने आई और बेटेके समान समझना, क्योंकि वे दोनों मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं ।’

यहाँ विशेष आग्रह और प्रेमके कारण सीताजीको भी साथ चलनेकी अनुमति श्रीरामको देनी पड़ी, तब लक्ष्मणजीने भी साथ चलना चाहा । श्रीराम ऐसे तो पुरुष थे ही नहीं, जो अपने ब्राम्हणके लिये लक्ष्मणसे कहते या उसे उभारते कि ‘ऐसे अन्याय राज्यमें रहकर क्या करोगे तुम भी साथ चलो ।’ उन्होंने लक्ष्मणको घर रहनेके लिये बहुत समझाया, अनेक युक्तियोंसे यह चेष्टा की कि किसी तरह लक्ष्मण अयोध्यामें रहें, जिससे राज्य-परिवारकी सेवा-सम्हाल हो सके, और लक्ष्मणको वनके कष्ट न भोगने पड़ें, परन्तु जब लक्ष्मणने किसी तरह नहीं माना तब उसको सुख पहुँचानेके लिये श्रीरामने साथ ले जाना स्वीकार किया ।

श्रीराम छोटे आई लक्ष्मण और सीतासहित वनको चले गये । वनमें लक्ष्मणजी श्रीराम-सीताकी हर तरह सेवा करते हैं और श्रीराम भी वही कहते और करते हैं जिससे श्रीसीताजी और आई लक्ष्मण सुखी हों ।

सीय-रवन जेहि बिधि मुख लहही। सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहही॥ जुगवाहि प्रभु गिय-अनुजहि कैसे । पलक बिलोचन-मोलक जैसे ॥

इससे यह सीखना चाहिये कि अपनी सेवा करनेवाले छोटे आई और पत्नीको जैसे सुख पहुँचे वैसे ही कार्य करने चाहिये तथा उनका वैसे ही रक्षा करनी चाहिये जैसे पलक आँखोंकी करती हैं ।

× × ×

भरतके ससैन्य वनमें जानेका समाचार प्राप्तकर जब श्रीराम-प्रेमके कारण लक्ष्मणजी चुन्च होकर भरतके प्रति

न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'भाई ! भरतको मारनेकी बात तुम क्यों कहते हो, मुझे अपने बान्धवोंके नाश करनेसे प्राप्त होनेवाला धन नहीं चाहिये, वह तो विषयुक्त अन्नके समान है—

धर्ममर्थ च काम च पृथिवी चापि लक्ष्मण ।  
इच्छामि भवतामर्थे पतत्प्रतिशृणामि ते ॥  
भार्तृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।  
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालमे ॥  
यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद ।  
मैवन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुक्तां शिखी ॥  
मन्वेऽहमागताऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः ।  
मम प्राणात् प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ॥  
श्रुत्वां प्रव्रजितं मां हि जटावत्कलधारिणाम् ।  
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥  
अहेनाक्रान्तहृदयः शोकनाकुलितेन्द्रियः ।  
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथागतः ॥  
अन्तां च कैकयीं रूप्य भरतश्चाप्रियं वदन् ।  
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः ॥

(श्रीराम २।१७।१-६ एवं ८ मे १२)

हे लक्ष्मण ! मैं सत्य और आयुधकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी तथा और जो कुछ चाहना हूँ, वह सब तुम्हीं लोगोंके लिये ! राज्यकी इच्छा तुम्हीं लोगोंके धन और सुखके लिये करता हूँ । भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख होता हो तो उसमें आग जगजाघ । हे भाई ! मैं तो समझता हूँ मेरे प्राणप्यारे भ्रातृवत्सल भाई भरतने जब अयोध्यामें आकर यह सुना होगा कि मैं जटा-वीर धारणकर तुम्हारे और जानकीके साथ वनमें चला गया हूँ तब वह कुलधर्मको अरण्य करके प्रति स्नेहके कारण व्याकुल होकर कातर और अप्रिय वचनोंसे माता कैकेयीको अप्रमत्त और पिता दशरथजीको प्रसन्न करता हुआ हम लोगोंके लिये तथा मुझे जोटाकर राज्य देनेके लिये ही आ रहा है । वह मनसे भी कभी विपरीत आचरण नहीं कर सकता । तुम्हें राज्यकी इच्छा हो तो मैं भरतसे कहकर दिखवाऊँगा । तुम भरतके सम्बन्धमें भूल समझ रहे हो ! भाई भरतको कभी राजमद नहीं हो सकता—

सुनहु लपन भल भरत सरीखा । विधि प्रपंचमहँ मुनान दीखा ॥

भरतहिं होइ न राजमद, निधि-हरि-हर पद पाइ ।

कबहुँ कि कौंजी सीकरन्हि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥

लपन तुम्हारे सपथ पितु आना । सुखि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥  
सगुन छीर, अबगुन जलताता । मिले रचे परपंच बिषाता ॥  
भरत हंस रनिबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुणदोष बिभागा ॥  
गहि गुन-पय तजि अबगुन-बारी । निज जस जगत कीन्ह ठजिबारी ॥  
कहत भरत गुन सील सुभाऊ । प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ ॥

श्रीराम भरतका गुण गान करते हुए प्रेमके समुद्रमें निमग्न हो गये ! लक्ष्मणजीको अपनी भूच मालूम हो गयी ! वहाँ भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणके प्रति जो नीतियुक्त तीखे और प्रेमभरे वचन कहे, उनमें प्रधान अभिप्राय तीन समझने चाहिये । प्रथम, भरतके प्रति श्रीरामका परम विश्वास प्रकट करना, दूसरे, लक्ष्मणको यह चेतावनी देना कि तुम भरतकी सरलता, प्रेम, त्याग आदिको जानते हुए भी मेरे प्रेमवश प्रमादसे बालककी तरह ऐसा क्यों बोल रहे हो ? और तीसरे, उन्हें फटकारकर ऐसे अनुचित मार्गसे बचाना ।

भरत आये और 'हे नाथ ! रक्षा करो' कहकर दण्डकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े । सरलहृदय श्रीलक्ष्मणने भरतकी बायीं पहचानकर उन्हें श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करते देखा हृदयमें भ्रातृप्रेम उमड़ा, परन्तु सेवा-धर्म बड़ा जबरदस्त है । लक्ष्मणजीका मन करता है कि भाई भरतको हृदयसे जगा लूँ परन्तु फिर अपने कर्तव्यका ध्यान आता है तब श्रीराम-सेवामें लगे रह जाते हैं, इसप्रकार—

मिनि न जाइ नहिं मुदरत बनई । मुकवि लपन-भनकी गति मनई ॥

रहे गलि सेवापर भास । जड़ी चंग जनु खेच खेलास ॥

आखिर सेवामें लगे रहना ही उचित समझा, परन्तु श्रीरामसे निवेदन किये बिना उनसे नहीं रहा गया—  
लक्ष्मणजीने सिर नवाकर प्रेमसे कहा—

भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।

भगवान् तो भरतका नाम सुनते ही चिह्न हो गये और प्रेममें आधीर होकर उन्हें उठाकर गले लगानेको ठठ लगे हुए । उस समय श्रीरामकी कैसी दशा हुई—

उठे राम मुनि प्रेम अधीरा । कहूँ पट कहूँ निर्णय धनुतीरा ॥

बरबस गिये उठाइ उर लाये कृपीनिधान ॥

भरत रामकी मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥

यहाँ चारों भाइयोंका परस्पर प्रेम देखकर सभी मुग्ध हो गये । भरतकी विनय, नम्रता, साधुता और राम-भक्ति देखकर तो लोग तन-मनकी सुधि भूल गये । श्रीरामको पिताके मर्यादासे बड़ा दुःख हुआ । बधोचित शास्त्रोक्त विधिसे क्रिया करनेके बाद समाज जुड़ा । भरतने भाँति भाँतिसे अनेक युक्तियाँ दिखलाकर श्रीरामको राजप्रहयाके लिये प्रार्थना की । बशिष्ठादि ऋषियोंने, मन्त्री, पुरवासी और माताओंने भी भरतका साथ दिया । जब भगवान् श्रीरामने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया तो भरतजीने कहा कि मैं अनशन व्रत रखकर प्रायश्च दे दूँगा । इसपर श्रीरामने उन्हें यह देखने-तो धरना देनेके लिये फटकारा, फिर, विविध भाँतिसे समझाकर शान्त किया और अन्तमें चरणोंमें पद रोते हुए भरतको अपने हाथोंसे स्वीचकर गोदमें बैठा लिया और प्रेमवश कहने लगे—

हे भरत, मुझे वनवाससे जौटाकर राज्याभिषेक करानेके लिये तुमको जो बुद्धि हुई है सो स्वाभाविक ही है, यह गुल्लेबा द्वारा प्राप्त विनय-विवेकका फल है । इस श्रेष्ठ बुद्धिके कारण तुम समस्त पृथ्वीका पालन कर सकते हो । परन्तु—

लक्ष्मीश्वन्नादपयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजत् ।

अतीयात्सागरं वेना न प्रतिशामहे पेतुः ॥

( या० ग० २।१२।१८ )

‘चन्द्रमा चाहे अपनी भी त्याग दे, हिमालय हिमको छोड़ दे, समुद्र मर्मादाका उल्लंघन करदे पर मैं पिताकी प्रतिज्ञाको सत्य किये बिना घर नहीं लौट सकता ।’

आगुसाईजीने लिखा है कि श्रीरामने अन्तमें प्रेमविश्राम हो कर भरतजीसे कहा कि—

भैया ! तुम दुःख न करो, जीवकी गति ईश्वराधीन है, हे भाई ! मेरी समझसे तो तानों काज और तानों लोकोंमें जितने पुण्यश्लोक पुरुष हैं वे सब तुमसे नीचे हैं । तुमको जो मनमें भी कुटिल समझेंगे, उसके लोक-परलोक बिगड़ जायेंगे, माता कैकेयीकी बही लोग दोष देंगे जिन्होंने गुरु और साधुओंका संग नहीं किया है । मैं शिवको साची देकर सत्य कहता हूँ, कि भाई ! अब यह पृथ्वी तुम्हारे रखले ही रहेगी । तुम अपने मनमें कुछ भी शंका न करो । हे प्यारे ! देखो ! महाराजने मुझको त्याग दिया, प्रेमका प्रण निबाहनेके लिये शरीर भी छोड़ दिया परन्तु सत्य नहीं छोड़ा । इसलिये मुझको उनके वचन ठाढ़नेमें बड़ा संकोच

हो रहा है, परन्तु उससे भी बढ़कर मुझे तुम्हारा संकोच है, गुरुजीभी कहते हैं, अतः अब सारा भार तुमपर है, तुम जो कुछ कहो, मैं बही करनेको तैयार हूँ—

मन प्रसन्न करि सोच तजि कहहु करौ सो आज ।

सत्यसिन्धु रघुवर वचन सुनि आ मुखी समाज ॥

सोच छोड़कर प्रसन्न मनसे आज तुम जो कुछ कहोगे बही करनेको तैयार हूँ यानी मुझे सत्य बहुत प्यारा है परन्तु उससे भी बढ़कर तुम प्यारे हो । तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ ।’ इससे अधिक आत्मप्रेम और क्या होगा ? जिस सत्यके लिये पिता-माताकी परवा नहीं की, आज अपनायास वही सत्य, लौटानेके लिये आप हुए, भाई भरतके प्रेमपर जोष दिया गया !

अवरय ही भरत भी श्रीरामके ही भाई थे । उन्होंने बड़े भाई श्रीरामका अपने ऊपर इतना प्रेम देखकर उन्हें संकोचमें डालना नहीं चाहा और बोले कि—

जो मेवक साहिव संकोचा । निज हित चहै तासु मति पोची ॥

‘जो दास अपने मालिकको संकोचमें डालकर अपना कल्याण चाहता है उसकी बुद्धि बर्बाद ही नीचे है । मैं तो आपके राजतिलकके लिये सामग्री लाया था परन्तु अब—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव ।

सो सिर धरि धरि करहि सब मिटिहि अनट अवैर ॥

प्रभु निःसंकोच होकर प्रसन्नतासे जिसको जो आज्ञा देंगे वह उसीको सिर चढ़ाकर करेगा, जिससे सारी उलझन आप ही सुलझ जायगी ।’ अन्तमें श्रीरामने फिर कहा ‘भैया ! तुम मन वचन कर्मसे निर्मल हो, तुम्हारी उपमा तुम्हीं हो, बड़ोंके सामने झोटे भाईके गुण इस कुसमयमें कैसे बखानूँ ? भाई ! तुम अपने सूर्यवंशकी रीति, पिताजीकी कीर्ति और प्रति जानते हो, और भी सारी बातें तुमपर विदित हैं । अवरय चौदह वर्षतक तुमको बहुत कष्ट होगा—

जानि तुमहि मृदु कहौं कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥

होहि कुठावै सुबंभु सहाये । आडि हाथ असनिके घाये ॥

हे प्यारे ! मैं तुम्हारे हृदयकी कोमलता जानता हुआ भी तुम्हें यह कठोर वचन कह रहा हूँ परन्तु क्या करूँ ? यह समय ही ऐसा है, इस समयके लिये यही उचित है, जब बुरा समय आता है तब भले भाई ही काम आते हैं तलवारके चारको बचानेके लिये अपने ही हाथकी चाक करनी पड़ती है ।’

भगवान् के इन प्रेमपूर्ण रहस्यके बचनोंको सुनते ही भरत श्रीरामकी हलकी भलीभाँति समझ गये। उनका विषाद दूर हो गया। परन्तु चौदह साल निराधार जीवन रहेगा कैसे? अतः

सो अवलम्ब देव मोहि देवा। अवधि पार पाँवउ जेहि सेवा॥

भगवान् ने उसीसमय भरतजीकी इच्छानुसार अपनी चरणपादुका परम तेजस्वी महात्मा भरतजीको दे दी! भरतजी पादुकाओंको प्रणामकर मस्तकपर धारणकर अयोध्या लौट गये।

× × ×

श्रीरामने कुछ समय तक चित्रकूटमें निवास किया, फिर ऋषियोंके आश्रमोंमें घूमते घूमते पंचवटीमें आये। वहाँ कुछ समय रहे। वनमें रहते समय भगवान् प्रतिदिन ही लक्ष्मणजीको भाँति भाँतिसे ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका उपदेश किया करते। एक दिन उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—

संत-चरन पंकज अति प्रेमा। मन-क्रम-बचन भजन दढ़ नेमा॥  
गुरु पितु मानु बन्धु पतिदेवा। सब मोहि कहँ जाँन दढ़ सेवा॥  
मम गुन गावत पुलकि सरीरा। गद-गद गिरा नयन बह नीरा॥  
कामादिक मद दंभन जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥

बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करइ निष्काम।

तिनके हृदय कमल महँ, करउँ सदा बिसान॥

इसप्रकार सत्चर्चा और परम रहस्यके वातांलापमें ही समय बीतता था। भाईपर इतना प्रेम था कि श्रीराम उन्हें हृदय कोलाकर अपना रहस्य समझाने थे।

× × ×

सीता-हरण हुआ, लङ्कापर चढ़ाई की गयी और भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। एक दिन शक्तिवाचसे श्रीलक्ष्मणके धायल हो जानेपर श्रीरामने भाईके लिये जैसी

विलाप-प्रलापकी बीजा की, उससे पता चलता है कि छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति श्रीरामका कितना अधिक स्नेह था।

श्रीराम कहने लगे—

किं मे राज्येन किं प्राणै गुडे कार्य न विद्यते।

यत्रायं निहतः शैते रणमूर्धनि लक्ष्मणः॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाधुतिः।

अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥

(वा० रा० ६।१०१।१२-१३)

‘अब युद्धसे, राज्यसे या जीवनसे क्या प्रयोजन है अब कि प्यारा भाई लक्ष्मण रणभूमिमें सो चुका है। भाई! जिसप्रकार महातेजस्वी तुम मेरे साथ वनमें आये थे उसीप्रकार मैं भी तुम्हारे साथ परलोकमें जाऊँगा।’ गुसाईजी लिखते हैं—

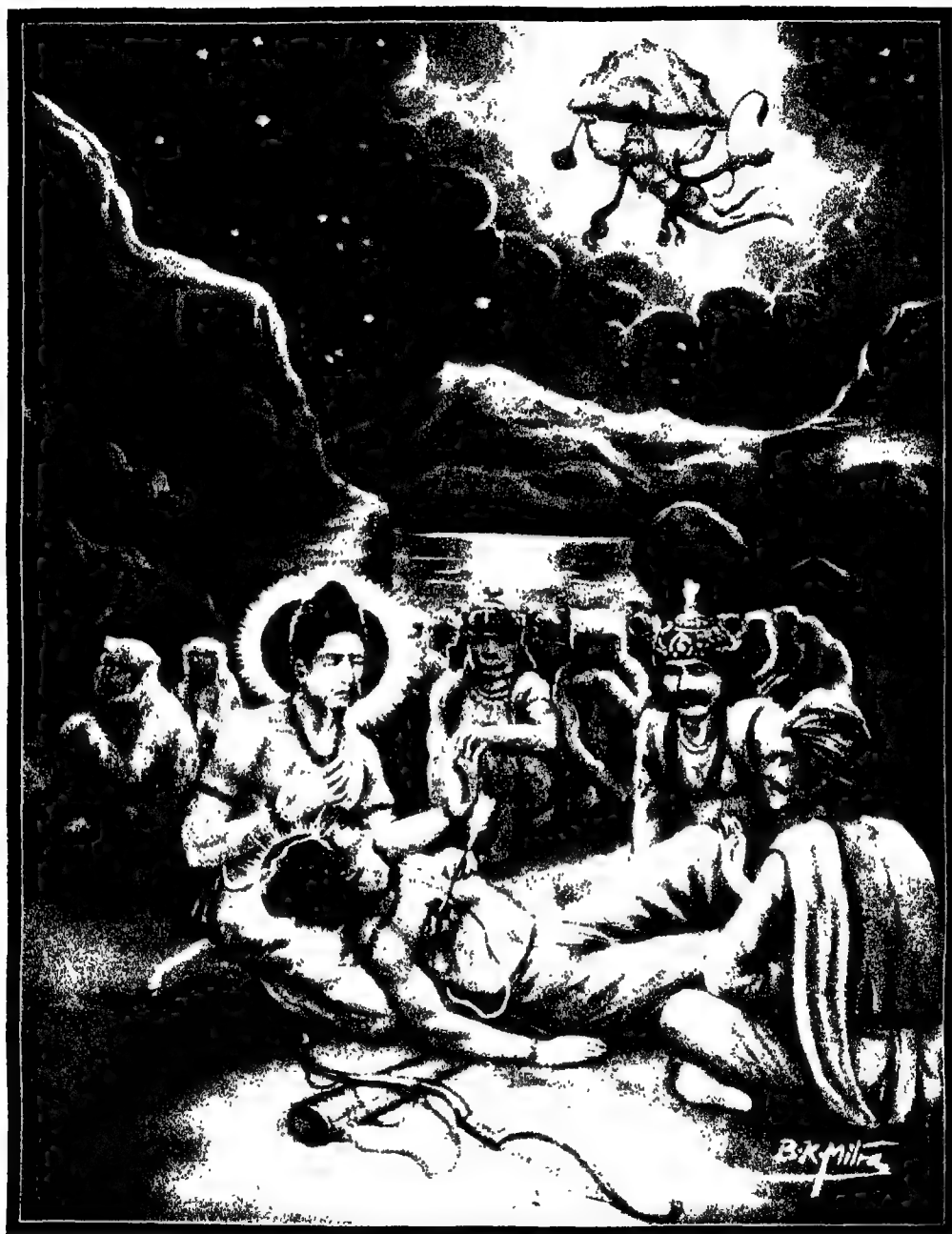
श्रीराम प्रलाप करते हुए कहते हैं—

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तब मृदुल सुमाऊ॥  
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता॥  
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥  
ओ जनतेउँ वन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहि ओहू॥  
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहि जाहि जग बारहि बारा॥  
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिब करहीना॥  
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहादर आता॥  
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौ जड़ दैव जियावहि मोही॥  
जैहऊँ अवच कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय बन्धु गँवाई॥  
अब अपनोक सोक सुत तारा। सहिति निठुर कठोर डर मोरा॥  
निज जननीक एक कुमारा। तात तामु तुम प्रान-अधारा॥  
सौपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सबबिधि सुखद परम हित जानी॥  
उतक काह दैहऊँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥  
बहु बिधि सोचत सोच निमोचन। सवतसक्ति राजिव-दल-लोचन॥\*

\* यह भगवान् श्रीरामकी प्रलाप-आला मानी जानी है, प्रलापमें कुछका कुछ कदा जाना ही स्वाभाविक है। ‘प्रमुप्रलाप सुनि कान’ आगेके दोहोंके इस वाक्यमें भी प्रलाप ही मिश्र होता है। भगवान् शिवके इन बचनोंसे कि, ‘उमा एक अखंड श्पुराई। ‘नर गति’ भगवत्-कृपातु देखाई’ से भी साधारण मनुष्यवत् प्रलाप ही ठहरता है। इसमें अर्थान्तर करनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि दृमरा अर्थ किया जाय तो उपर्युक्त चौपाइयोंमें—‘ओ जनतेउँ वन-बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहि ओहू॥’ इस चौपाइका अर्थ यह करना चाहिये कि यदि मैं जानता कि वनमें बन्धुओंमें बिछेह होगा तो मैं (पिता बचन मनतेउँ) पितृके बचन मानकर वनमें तो आता, परन्तु (‘नहि ओहू’) लक्ष्मणका आग्रह स्वीकार कर उभे वनमें साथ नहीं लाता।

इसी प्रकार ‘निज जननीक एक कुमारा। तामु तात तुम प्रान अधारा’ इस चौपाइका अर्थ यों करना चाहिये कि मैं जैसे अपनी माताका प्यारा इकलैता पेटा हूँ, वैसे ही अपनी माता सुमित्राकि तुम प्राणाधार हो।

इस चौपाइका अर्थ यह भी किया जा सकता है कि ‘मैं अपनी माताके एक ही लड़का हूँ और तुम उसके (मेरे) प्राणाधार हो। अर्थात् तुम्हारे जीवनेसे ही मेरा जीवन है।’



### राम-बिलाप ।

प्रभु-बिलाप सुनिकान, बिकल भण बानरनिकर ।

आइ गयेउ हनुमान, जिमि करना महं बोर रस ॥





जो आई अपने लिये घरदार जोड़कर मरनेको तैयार है, उसके लिये बिलाप किया जाना उचित ही है परन्तु श्रीरामने तो बिलापकी पराकाष्ठा कर आत्मप्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्रीहनुमान्जीके द्वारा संजीवनी खानेपर जखमवाजी स्वस्थ हो गये। राम-रावण युद्ध समाप्त हुआ। सीता-परीभाके अनन्तर श्रीराम सबको साथ लेकर पुष्पक विमानके द्वारा अयोध्या लौटनेकी तैयारीमें है। इसी समय विभीषण प्रार्थना करने लगे—

‘अगवन् ! यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, यदि आप मुझपर स्नेह करते हैं तो मेरी प्रार्थना है—आप कुछ समय तक यहाँ रहें, जखमवा और सीता सहित आपकी मैं पूजा करना चाहता हूँ। आप अपनी सेना तथा मित्रों सहित घर पधार कर उसको पवित्र करें और बर्त्तिकित् स्वीकार स्वीकार करें। मैं आपके प्रति आज्ञा नहीं कर रहा हूँ, परन्तु स्नेह-सम्मान और मित्रताके कारण एक सेवककी भाँति आपको प्रसन्न करनेकी अभिलाषा रखता हूँ। (वा० रा० ६। १२१। १२-१५) बिनयका क्या ही सुन्दर सीखने योग्य तरीका है !

श्रीरामने उत्तरमें कहा—

न खल्वेतन्न कुयो ते वचनं राक्षसद्वर !  
तं तु मे आतरं ब्रह्म भरतं त्वरतं मनः ॥  
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।  
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥  
(वा० रा० ६। १२१। १८-१९)

हे राक्षसेश्वर, मैं इस समय तुम्हारी बात नहीं मान सकता, मेरा मन आई भरतसे मिलनेके लिये छूटपटा रहा है, जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटानेके लिये विनीत प्रार्थना की थी और मैंने उसको स्वीकार नहीं किया था। मित्रवर, तुम मेरी इस प्रार्थनापर दुःख न करना।

तार कोस गृह मोर सब, सख वचन सुनु तात ।  
दसा भरतकी सुमिरि मोहिं निमिष करुण सम जात ॥  
तापस बेध सरीर कृस, जपत निरंतर मोहि ।  
देखौं नेगि सो जतन करु, सखा ! निहारौं तोहि ॥  
जो जैहौं बीते अवधि, जियत न पाऊँ नीर ।  
प्रीति भरतकी समुक्ति प्रभु, पुनि पुनि पुलक सरीर ॥

विभीषण नहीं रोक सके, विमानपर सवार होकर चले। भगवान्ने अपने आनेका संवाद हनुमान्के द्वारा भरतजीके पास पहुँचेसे ही भेजकर उन्हें सुख पहुँचाया।

तदनन्तर अनन्तराक्षि भगवान् श्रीराम अयोध्या पहुँचकर चयमें लीलासे ही सबसे मिल लिये।

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपालु सरारी ॥  
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जयजोग्य मिलि सबहि कृपाला ॥  
कृपादृष्टि सब लोग बिलोकी। किये सकल नरनारि बिसांकी ॥  
छन महँ सबहि मिलि भगवाना। उमा मयै यह काहु न जाना ॥

भरतके साथ भगवान्का मिलन तो अपूर्व आनन्दमय है। फिर शत्रुघ्नसे मिलकर उनका बिरह-दुःख नष्ट किया। राज-तिलककी तैयारी हुई। खान-मार्जन होने लगा। श्रीराम भी आइयोंकी वात्सल्य-भावसे सेवा करने लगे। भरतजी बुलाये गये, श्रीरामने अपने हाथोंसे उनकी जटा सुझाई। तदनन्तर तीनों प्राणप्रिय भाइयोंको श्रीरामने स्वयं अपने हाथसे मल-मलकर नहलाया। भरत जखमवा शत्रुघ्न पितृतुल्य श्रीरामके इस वात्सल्य-भावसे मुग्ध हो गये।

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निजकर राम जटा निरुवारे ॥  
अन्हवाये प्रभु तीनिउँ मारि। मगत-बछल कृपालु रघुपारि ॥  
भरत माग्य प्रभु कोमलतारि। सप कोटिसत सकहि न गारि ॥

शिवजी कहते हैं कि भरतजी (आदि भाइयों) के माग्य और प्रभुकी कोमलताका बखान सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कर सकते। धन्य आत्मप्रेम !!

भगवान् श्रीराम तीनों भाइयोंसे सेवित होकर राज्य करने लगे। रामराज्यकी महिमा कौन गा सकता है? भगवान् समय समय पर अपनी प्रजाको इकट्ठा कर उन्हें विविध भाँतिसे लोक-परलोकमें उन्नति और कल्याणके साधनोंके सम्बन्धमें शिक्षा देते हैं। ऐसा न्याय और दया-पूर्ण शासन, सुन्दर बर्ताव, प्रेमभाव, लोक-परलोकमें सुख पहुँचानेवाली तथा मुक्तिदायिनी शिक्षा, सबप्रकारके सुख रामराज्यके अतिरिक्त अबतक अन्य किसी भी राज्यमें कभी देखे, सुने, या पढ़े नहीं गये !

× × ×

समय समय पर भाइयोंको साथ लेकर श्रीराम वन-उपवनमें जाते हैं भाँति भाँतिके शिक्षाप्रद उपदेश करते हैं एक समय सब उपवनमें गये। भरतजीने श्रीरामके लिये अपना दुपट्टा बिछा दिया, भगवान् उसपर विराजे, तदनन्तर

श्रीहनुमान्जीके द्वारा भरतजीके प्रभ करनेपर श्रीरामने सन्त-  
असन्तके लक्ष्य बतलाते हुए अन्तमें बड़ा ही सुन्दर  
उपदेश दिया—

परहित सरिस धरम नहिं आई । परपीडा सम नहिं अवमार्ई ॥  
निरनय सकल पुरान बेद कर । कहउँ तात जानहिं कोविदवर ॥  
नर-सरीर धरि जे परपीरा । कहिं ते सहहिं महा-भवभीरा ॥  
कहिं मोहनस नर अप नाना । स्वार्थरत परलोक नसाना ॥  
कारुण्य तिनह कहैं मैं प्राता ॥ सुम अरु असुम करम फलदाता ॥  
अस बिचारि जे परम सयाने । मजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥  
त्यागहिं कर्म मुनामुम-दायक । मजहिं मोहि सुर-नर-मुनिनायक ॥

कैसा सुन्दर सबके ग्रहण करने योग्य उपदेश है !  
ऐसे बड़े आई अनन्त पुण्यबलसे ही प्राप्त होते हैं !!

× × ×

आगे चल कर लवणसुरको मारनेके लिये शत्रुजके  
कहनेपर श्रीरामने उन्हें रथाश्रयमें भेजना स्वीकारकर कहा कि  
'वहाँका राज्य तुम्हें भोगना पड़ेगा । मेरी आज्ञाका प्रतिवाद न  
करना ।' शत्रुजको राज्याभिषेककी बात बहुत बुरी लगी परन्तु  
रामाज्ञा सम्मकर उसे स्वीकार करना पड़ा । न चाहनेपर  
भी झोटे भाईको बचनोंमें बाँधकर राजसुख देना, राम  
सरीलके बड़े भाईका ही कार्य है

इसके बाद लक्ष्मण-त्यागका प्रभ आता है, कुछ  
जोग इसको श्रीरामका बड़ा ही निष्ठुर कार्य समझते हैं । जिस  
भाईने राज्यको और राजाको दारुण शत्रु-शापसे बचाया,  
उसके लिये पुरस्काररूपमें भी पहलेका विधान बदल देना  
उचित था, परन्तु ऐसा कहनेवाले जोग इस बातको  
भूल जाते हैं कि श्रीराम सत्यप्रतिज्ञ हैं, इसी सत्यकी  
रक्षाके लिये उन्होंने लक्ष्मणका त्याग कर दिया परन्तु  
प्यारे भाई लक्ष्मणका वियोग होने ही आप भी भरत  
शत्रुज और प्रजा-परिजनोंको साथ लेकर परम धामको प्रयाण  
कर गये !

श्रीरामके भ्रातृप्रेमका यह अति संक्षिप्त वर्णन है ।  
श्रीरामकी भ्रातृवत्सलताका हमसे कुछ अनुमान हो सकता  
है । भाईयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाईको राज  
मिलनेके प्रस्तावसे अपना हक छोड़कर परम  
आनन्दित होना, जिसके कारण राज्याभिषेक रखा  
उस भाई भरतकी माता कैकेयी पर भक्ति करना,  
भरतका गुणगान करना, धरना देनेके समय भरतको  
और भरतपर क्रोध करनेके समय लक्ष्मणको फटकार

बताना अन्ध-मार्गसे बचाना, भरतकी इच्छापर अपने  
सत्यव्रतको भी छोड़ देना, लक्ष्मणजीके शक्ति लगनेपर उनके  
साथ प्राण त्याग करनेको तैयार हो जाना, समय-समयपर  
सदुपदेश देना, स्वार्थ छोड़कर सबपर समभावसे पूर्ण प्रेम  
करना और लवणसुरपर आक्रमणके समय जबरदस्ती  
राज्याभिषेकके लिये शत्रुजसे स्वीकार कराना आदि श्रीरामके  
भावपूर्ण भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे हम सबको क्यायोग्य शिक्षा  
ग्रहण करनी चाहिये !

### श्रीभरतका भ्रातृप्रेम

सिय-राम-प्रेम-पियूष पूरन होत जनम न भरतको ।  
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को ॥  
दुखदाह दारिद दैम दूषन सुजस मिस अपहरत को ।  
कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

भरतजीकी अपार महिमा है । रामायणमें भरतजीका ही  
एक ऐसा उल्लेख करिष्य है जिसमें कहाँ कुछ भी दोष  
नहीं होख पड़ता । भरतजी धर्मके ज्ञाता, नीतिज्ञ, त्यागी,  
सद्गुणोंसे युक्त, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति,  
अज्ञा-भक्तिसरपन्न और बड़े बुद्धिमान् थे । वैराग्य, मध्य,  
तप, दया, नितिरा, दया, वात्सल्य, धीरता, शान्ति, सरलता  
गम्भीरता, सौम्यता, ममता, मधुरता, अमानिता, सुदृढ़ता  
और स्वामीसेवा आदि गुणोंका इनमें बिलक्षण विकास था ।  
भ्रातृप्रेमकी तो आप मानों सजीव मूर्ति थे ।

श्रीराम-वनवास अथवा ही दुःखा, जिससे भरतजीका  
उच्च प्रेम-भाव जगत्में प्रकट हो गया । राम-वियोग न होता  
तो विश्वको हम अनुज प्रेमकी सुधा-भागमें अलगगहन  
करनेका सुअवसर शायद ही मिलता ।

प्रेम अमिष मन्दर विरह भरत पयोधि गभीर ।

मधि प्रगटे सुर-साधु दिन कृपासिन्धु रघुबीर ॥

गम्भीर ससुन्दरूप भरतजीको अपने वनवासरूपी  
मन्दराचल-पर्वतसे मधकर कृपासिन्धु रघुनाथजीने सुर-  
सन्तोंके हितार्थ प्रेमरूपी अमृतको प्रकट किया है ।

श्रीराम-वनवास और वनारण्यकी मृत्यु होनेपर गुरु  
वशिष्ठकी आज्ञासे भरत-शत्रुजको बुलानेके लिये केकयदेश-  
को दूत जाते हैं । उधर भरतजीको दुःस्वप्न होता है,  
जिससे वे व्याकुल हो जाते हैं और माता-पिता तथा भाई-  
औजाईकी मङ्गलकामनासे दानपुण्य करते हैं । वृत्तोंने  
जाकर गुरुका सम्देश सुना दिया । भरतजीने कुशल पूछी,

जिसके उत्तरमें वृत्तोंने भी जानो व्यङ्ग्यसे ही कहा कि 'आप जिनकी कुराह पड़ते हैं वे कुराहसे हैं।' भरतजी उसी दिन चले पड़े। अयोध्यामें पहुँचकर उसे श्रीहीन देख बड़े दुःखित हुए, उनका हृदय परिवारकी अनिष्ट आशंकासे भर गया, न तो किसीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत हुई और न किसी ने कुछ कहा ही। लोग तो उस समय भरतजीको रामवनवास और दशरथकी मृत्युमें हेतु समझकर बहुतही बुरी दृष्टिसे देखते थे, अतः उनसे कोई अच्छी तरह बोलता ही कैसे? आगे चलकर प्रजाने साफ कहा है—

मिथ्या प्रव्रजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।

भरते गजिबद्धाः स्म सौमिके पशवो यथा ॥

(वा० रा० २।४८।२८)

'भूटा बहाना करके कैकेयीने श्रीरामको सीता लक्ष्मणसहित वनमें भेज दिया है। अब हम लोग उसी प्रकार भरतके अधीन हैं, जैसे कसाईके अधीन पशु होते हैं।' लोग सामने आते हैं और दूरसे ही जुहार करके मुँह फेरकर चले जाते हैं—

पुरजन मिलहि न कहहि कष्टु गवहि जोहाहि जाहि ।

भरत कुसल पृष्ठि न मकहि मय बिषाद मनमाहि ।

बबराये हुए भरतजी पिताकी ओजमें माता कैकेयीके महलमें पहुँचे और 'पिता कहाँ हैं' ऐसा पूछने लगे, कैकेयी अपने कियेपर फूली नहीं समाती थी, वह समझती थी कि भरत भी मेरी कृति सुनकर राजी होंगे, अतः उसने कठोर बनकर खड़े से कह दिया—

या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः ।

राजा महात्मा तेजस्वी योगजुकः सतां गतिः ॥

(वा० रा० २।७२।१०)

'सब भूत-आश्रियोंकी अन्तमें जो गति होती है वही तुम्हारे पिताकी भी हुई, महात्मा तेजस्वी और वज्र करने-वाले राजाने सत्पुरुषोंकी गति प्राप्त की है।'।

यह सुनते ही भरत शोकपीडित हो 'हाय! मैं मारा गया' पुकारकर सहसा पड़ा पड़ा साकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भाँति-भाँतिसे बिलाप करते हुए कहने लगे, 'हाय पिताजी! मुझे दुःखसागरमें डोबकर कहाँ चले गये—

असमर्थैव रामाय राक्षे मां क गतोऽसि भो ।

(अध्यात्म रा० २।७।६७)

हे पिता, मुझे रामके हाथोंमें लौपे बिना ही आप कहाँ चले गये।' कैकेयीने बिलाप करते हुए भरतको उठाकर उसके जाँघों पोंछे और कहा कि 'बेटा, धीरज रखो, मैंने तुम्हारे लिये सब काम बना रखा है—समाधिसिंघि भद्रं ते सर्वं सम्पादितं भया। (अ० रा० २।७।६८) परन्तु भरतजीका रोना बन्द नहीं हुआ, उन्होंने कहा—

यो मे आता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।

तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याङ्गिष्टकर्मणः ॥

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्मभार्यस्य ज्ञानतः ।

तस्य पादौ गृहीष्यामि स ह्रीदानीं गतिर्मम ॥

धर्मविद्वर्मशीलश्च महामागो हृदयतः ।

आर्ये किमब्रवीद्वा पिता मे सत्यविक्रमः ॥

पश्चिमं साधु सन्देशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः ।

(वा० रा० २।७२।३२-३५)

वह तो शीघ्र बता कि मेरे पिता-गुल्य बड़े भाई सरल-स्वभाव वह श्रीरघुनाथजी कहाँ हैं, जिनका मैं प्रिय दास हूँ। मैं उनके चरण-बन्दन करूँगा, क्योंकि अब वे ही मेरे अवलम्ब हैं। आर्य-धर्मके जाननेवाले लोग बड़े भाईकी पिताके सदृश समझते हैं। माता, यह भी बतला कि धर्मेश, दृढव्रत सत्यपराक्रमी मेरे पिता राजा दशरथने अन्त समयमें क्या कहा था, मैं उनका अन्तिम शुभ सन्देश सुनना चाहता हूँ।' उत्तरमें कैकेयीने कहा—

रामेति राजा बिरुपन् हा संति लक्ष्मणेति च ।

स महात्मा परं लोकं गतो गतिमतां वरः ॥

इतीमां पश्चिमां वाचं न्याजहार पिता तव ।

कारुधर्मं परेक्षितः पार्श्वैरिव महागजः ॥

सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया ।

लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरगतम् ॥

(वा० रा० २।७२।३६-३८)

'बेटा! बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तेरे पिता अन्तकालमें 'हारास! हारासीते!' पुकारते हुए परलोक सिंघारे हैं। हाथीजिसप्रकार पार्श्वमें बैठकर विचरा हो जाता है उसी प्रकार काज-पारसे बैठकर तेरे पिताने केवल यही कहा था कि 'अहो! सीताके साथ कौटकर आये हुए श्रीराम-लक्ष्मणको जो मनुष्य देखेंगे, वही कृतार्थ होंगे।' यह सुनते ही भरतजीके दुःखकी सीमा न रही।

तामाह भरतो हेऽन्य रामः सनिहितो न किम् ।

तदानीं लक्ष्मणो नापि सीता वा कुत्र ते गताः ॥

(अध्यात्म रा० २।७।७१)

भरतजीने पूछा 'माता ! क्या उस समय श्रीरामजी, लक्ष्मण या सीताजीमेंसे कोई भी नहीं था, वे सब कहाँ चले गये थे ?' जब वज्र-हृदया कैकेयीने सारी कहानी सुनाते हुए कहा कि—

रामस्य यौवराज्यार्थं पित्रा ते सम्भ्रमः कृतः ।  
तव राज्यप्रदानाय तदाऽहं विप्रमाचरम् ॥  
राज्ञां दत्तं हि मे पूर्वं वरदेन वरद्वयम् ।  
याचितं तदिदानीं मे तयोरैकेन तेऽखिलम् ॥  
राज्यं रामस्य चैकेन वनवासो मुनिव्रतम् ।  
ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तवैव हि ॥  
रामं सम्प्रेषयामास वनमेव पिता तव ।  
सीताप्यनुगता रामं पातिव्रत्यमुपाश्रिता ॥  
सौमित्रं दर्शयन् राममनुयातोऽपि लक्ष्मणः ।  
वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥  
प्रलपन् रामरामेति ममार नृपसत्तमः ।

(अध्यात्म रा० २ । ७ । ७२—७६)

'तुम्हारे पिताने रामके राज्याभिषेककी बड़ी तैयारी की थी, परन्तु तुम्हें राज्य दिलानेके अभिप्रायसे मैंने उसमें विप्र डाल दिया, वरदानी राजाने पूर्वमें मुझे दो वर देनेको कह रक्खा था, उनमेंसे एकसे मैंने तुम्हारे लिये सम्पूर्ण राज्य माँगा और दूसरेसे रामके लिये मुनि-व्रत-भारत-पूर्वक चौदह सालका वनवास माँगा । तुम्हारे पिता सत्यपरायण राजाने तुम्हें राज्य दे दिया, और रामको वन भेज दिया । पतिव्रता सीता भी रामके साथ वन चली गयी, और सखा आश्रय दिलाकर लक्ष्मण भी उन्हींके पीछे चल दिये । उन लोगोंके वन जानेपर उन्हींका चिन्तन करते हुए और 'हा राम, हा राम' पुकारते हुए महाराजा भी परलोक सिधार गये !'

कैकेयीके इन वचनोंसे मानो भरतजीपर वज्रपात हो गया । वे पिताकी मृत्युको तो भूल गये और अपने हेतुसे श्रीरामका वनगमन सुनते ही सहम गये, पके हुए बावपर मानो आगसी लग गयी ।

भरतहि बिसरेउ पिनु-मरन मुनन राम बन गौन ।

हेतु अपनपठ जानि जिय थकित रहै घरी मौन ॥

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमार । पाके छत जनु लगु अँगाळ ॥

भरतजी व्याकुल हो उठे और दारुण शोकमें सारी सुध-बुध भूलकर माताको धिक्कारकर चित्तासे हुए कहने लगे—

'घरी क्रूरे ! तू राज चाहनेवाली माताके रूपमें मेरी शत्रु है, तू पतिघातिनी और कुल-घातिनी है, तू बर्मात्मा लक्ष्मणकी कन्या नहीं है, उनके कुलका नाश करनेवाली राक्षसी पैदा हुई है । तू जानती नहीं कि श्रीरामके प्रति मेरा कैसा भाव है इसीसे तूने यह अन्याय किया है, मैं राम-लक्ष्मणको छोड़कर किसके बलपर राज्य करूँगा ? तूने मेरे बर्मात्मा पिताका नाश कर दिया और मेरे भाइयोंको गली गली भीख माँगनेके लिये भेजा है, एकपुत्रा माता कौसल्याको पुत्र-वियोगका दुःख दिया है, जा तू नरकमें पड़ । तू राज्यसे अट हो जा । घरी दुष्टे ! तू धर्मसे पतित है, भगवान् करें मैं मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे ! मैं इस समस्त राज्यको भाईके प्रति अर्पण कर दूँगा, जा तू अग्निमें प्रवेश कर जा, जंगलमें निकल जा या गलेमें रस्तीकी फाँसी लगाकर मर जा । मैं सत्यपराक्रम रामको राज्य देकर ही अपना कलङ्क धोऊँगा और अपनेको कृतकृत्य समझूँगा ।'

(वा० रा० २।७४)

भरतजीने राम-प्रेममें नासि भूलकर शत्रुघ्नसे यहाँतक कह डाला कि—

हन्यामहमिमं पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।

यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ।

(वा० रा० २।७८।२२)

'हे भाई ! इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीको मैं मार डालता, यदि धर्मात्मा श्रीराम मातृहत्यारा सबककर मुझसे घृणा न करते ।'

आखिर भरतजीने माताका मुँह देखना तक पाप समझा और बोले कि—

जोहसि सोहसि मुहँ मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहु जाई ॥

×

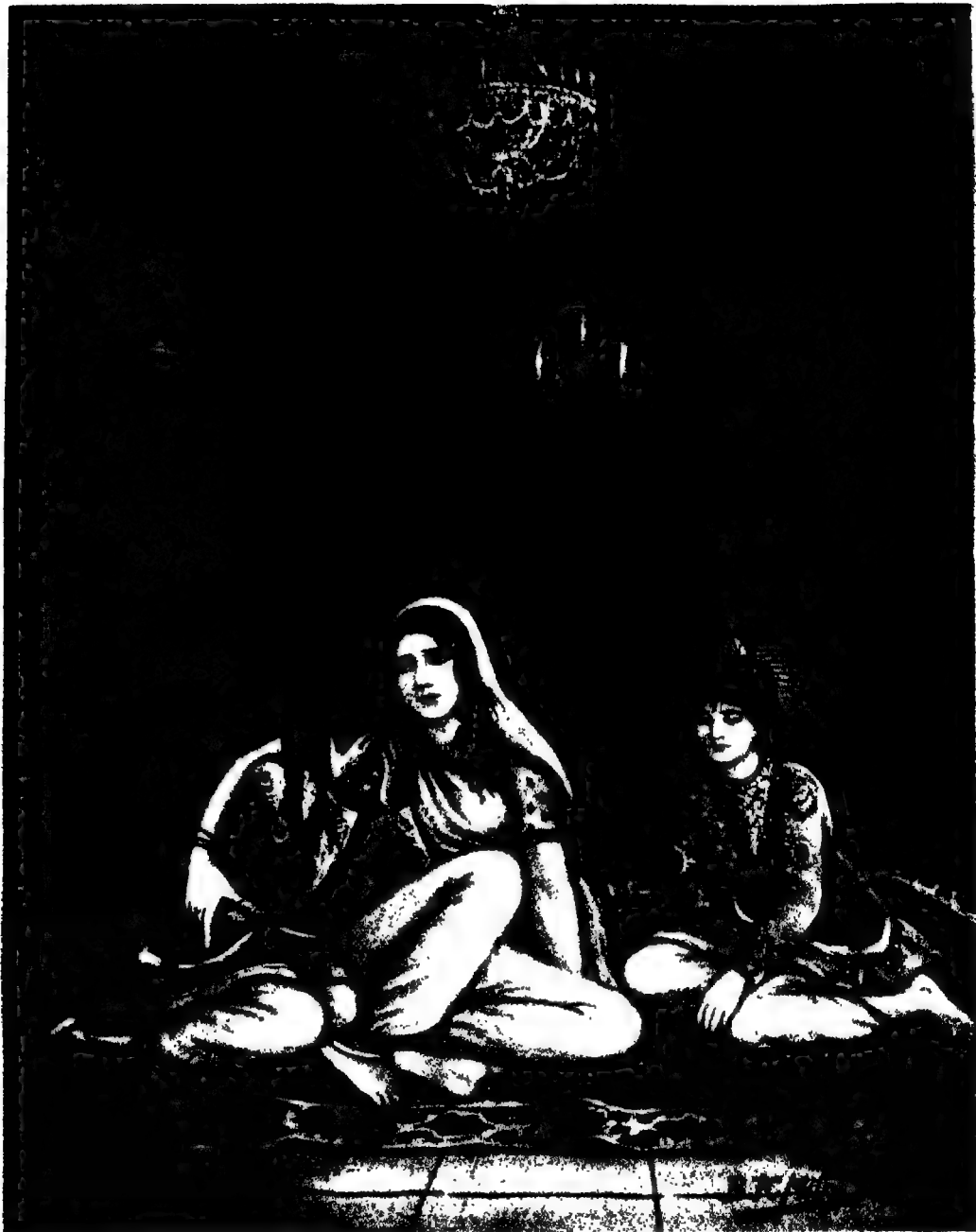
×

×

इतनेमें कुबड़ी मन्थरा इनाम पानेकी आशासे सज्जबजकर आयी । उसे देखते ही शत्रुघ्नीका क्रोध बढ़ा, वे जगे उसे इनाम देने, परन्तु दयालु भरतजीने बुझा दिया । इसके बाद भरतजी माता कौसल्याके पास पहुँचे और उनकी दयनीय दशा देखकर व्याकुल हो उठे । कौसल्याजीने भी कैकेयी-पुत्रके नाते भरतपर सन्देह करके कुछ कटु शब्द कहे । कौसल्याजीके कटु वचनोंसे भरतका हृदय विदीर्ण हो गया, और वह मूर्छित होकर कौसल्याके चरखोंमें गिर पड़े, जब होशमें आये तब ऐसी-ऐसी कठोर शपथें खाने लगे, जिनसे माताका हृदय पसीज गया । भरतने कहा—



कल्याण



कौशल्या भरत ।

माता भरत गौद बैटारे । आंसु पौछि मृदु वचन उचारि ॥

कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने ।  
अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ॥  
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् ।  
हत्वा वशिष्ठं खड्गेन अरुण्यत्मासमन्वितम् ॥

(अध्यात्म रा० २।७।८८-८९)

‘माता ! श्रीरामके राज्याभिषेकके विषयमें कैकेयीने जो कुकर्म किया है, उसमें यदि मेरी सम्मति हो या मैं उसे जानता भी होऊँ तो मुझे सौ ब्रह्महत्याका पाप लगे, और वह पाप भी लगे जो गुरु वशिष्ठजीकी अरुण्यतीव्रीसहित तलवारसे हत्या करनेमें लगता है।’

कौसल्याने गद्गद होकर निर्दोष भरतको गोदमें बिठा लिया और उसके आँसू पोंछकर कहने लगी—‘बेटा ! मैंने शोकमें बिकल होकर तुमपर आक्षेप कर दिया था। मैं जानती हूँ—

गम प्रानतं प्रान तुम्हारे । तुम्हें गृध्रपतिहिं प्रानतं प्यारे ॥  
विधु बिष चुवें सवै हिम आगी । होइ बारिषर बारिनिगामी ।  
मण ग्यान बरु मिटै न मोहू । तुम्हें रामहिं प्रतिकूल न होहू ॥  
मत तुम्हारा यह जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ मुझु सुगति न लहहीं ॥  
अम कहि मानु मरनु हिय लाए । यनपय सवहिं नयन जरु छाप ॥

भरतजीके राम-प्रेमका पता कौसल्याके इन वचनोंसे खूब लगता है। भरतका चरित्रबल और चिर आचरित भ्रातृप्रेम ही था जिसने इस अवस्थामें भी कौसल्याके द्वारा भरतको भ्रातृप्रेमका ऐसा जोरदार सर्टिफिकेट दिलवा दिया।

× × ×

पिताकी शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक क्रिया करनेके बाद राजसभामें गुरु, मन्त्री, प्रजा और माताओंने यहाँतक कि माता कौसल्याने भी भरतको राजसिंहासन स्वीकार करनेके लिये अनुरोध किया परन्तु भरत किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए। उन्होंने अटलरूपसे कह दिया—

आपनि दाखन दीनता कहाँ सबहिं सिरनाइ ।

दंख बिनु रघुनाथ-पद जियकै जरनि न जाइ ॥

आन उपाठ मोहि नहिं सूझा । को जियकी रघुबर बिनु नूझा ॥  
एकहि आँक इहै मनमाहीं । प्रातकाल चलिहैं प्रभुपाहीं ॥  
जद्यपि मैं अनमल अपराधी । भइ मोहि कारन सकल उपाधी ॥  
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छभि सब करइहि कृपा बिसेखी ॥  
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ । कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ॥  
अरिहुक अनमल कीन्ह न रामा । मैं सिंसु सेवक जद्यपि नामा ॥

भरतके प्रेम भरे वचन सुनकर सभी मुग्ध हो गये। रामदर्शनके लिये वनगमनका निश्चय हुआ। सभी चक्षुषेको तैयार हो गये। रामदर्शन छोड़कर घरमें कौन रहता ?

जेहि राखहि घर रहु रक्षवारी । सो जानै गरदन अनु मारी ॥

कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । कोन चहै जग-जीवन लाहू ॥

जरी मुसम्पति सदन-सुख, सुहृद मानु पितु भाइ ॥

सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ॥

भरतजीने अगवान् रामकी सम्पत्तिकी रक्षा करना कर्त्तव्य समझकर जिम्मेवार कर्त्तव्यपरायण रक्षकोंको नियुक्त कर दिया और अयोध्यावासी नर-नारी चल पड़े। उस समय भरतके साथ नौ हजार हाथी, साठ हजार धनुर्धारी, एक लाख धुरसवार थे। इसके सिवा रथों, माताओं और ब्राह्मणियोंकी पालकियों एवं सदाचारी ब्राह्मणोंकी तथा कारीगरों एवं सामानकी बैलगाड़ियोंकी गिनती ही नहीं थी।

भरतजीने वन जाते हुए मनमें सोचा—‘श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पैदल ही नंगे पाँव वन-वन घूमते हैं और मैं सवारीपर चढ़कर उनसे मिलने जा रहा हूँ, मुझे चिन्तार है।’ यह विचारकर भरत और शत्रुघ्न पैदल हो लिये। दोनों भ्रातृभक्त भाइयोंको पैदल चलते देखकर अन्य लोग भी मुग्ध होकर सवारियोंसे उतरकर पैदल चलने लगे—

देखि सनेह लोग अनुरागे । उतरि चले हय गज रथ त्यागे ॥

वह देखकर माता कौसल्याने अपनी डोली भरतके पास ले जाकर मधुर वचनोंमें कहा—

तत चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ॥

तुम्हारे चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोक-कुस नहि मग-जोगू ॥

माता कौसल्याकी आज्ञा मानकर भरतजी रथपर चढ़ गये। चलते-चलते शृंगवेरपुर पहुँचे। यहाँ निषादराजने भी भरतपर सन्देह किया परन्तु परीक्षा करके भरतका आचरण देव वह मन्त्रमुग्धकी भाँति भरतकी सेवामें लग गया। इंगुदीके पेड़के नीचे जहाँ श्रीरामने ‘कुश-किसलय’की शय्यापर लेटकर रात बितायी थी, गुहक द्वारा उस स्थानको देखकर भरतकी विचित्र दशा हो गयी ! वे भाँति-भाँतिसे विलापकर कहने लगे ‘हा ! यह बिलखी हुई पत्तोंकी शय्या क्या उन्हीं श्रीरामकी है जो सदा आकाशस्पर्शी राजप्रासादमें रहनेके अभ्यासी हैं। जिनके महल सदा पुष्पों, चित्रों और चन्दनसे चर्चित रहते हैं, जिनके महलका ऊँचा चूड़ा नृत्य करनेवाले पक्षियों और मयूरोंका बिहारस्थल है, जिसकी

सोनेकी दीवारोंपर विचित्र चित्रकारीका काम किया हुआ है, वही स्वामी राम क्या इसी इंगुली पेड़के नीचे रहे हैं ? हा ! इस अनर्थका कारण मैं ही हूँ—

हा हतोऽस्मि नृशतोऽस्मि यत्समर्थः कृते मम ।  
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते क्षानायनम् ॥  
सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः ।  
सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् ॥  
कथमिन्दीवरदयामो रक्षाक्षः प्रियदर्शनः ।  
सुखमागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः ॥

(वा० रा० २।८८।१७-१९)

हाय ! मैं कितना क्रूर हूँ, हा ! मैं मारा गया, क्योंकि मेरे ही कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताजीके साथ ऐसी कठिन शय्यापर अनायकी भाँति सोना पड़ा। अहो ! चक्रवर्ती कुलमें उत्पन्न हुए, सबको सुख देनेवाले, सबका प्रिय करनेवाले, कमनीय-कान्ति, नील कमलके समान कान्तिवाले, रक्षाक्ष प्रियदर्शन श्रीरामचन्द्रजीको, जो सदा ही सुख भोगनेके योग्य तथा इस दुःख-भोगके अयोग्य हैं, मेरे ही कारण इस जमीनपर सोना पड़ा।'

तदनन्तर भरतजीने उभ कुश-शय्याकी प्रणाम-प्रवृत्ति की—

कुस-साथरी निहारि मुहाई । कान्ह प्रनाम प्रदन्तिन जाई ।  
चरन-रेख-रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कवन प्रीति अधिकारि ॥  
कनकविट्ट दुइ चारिक देखे । गले सीम सीय मम लेखे ॥

यहाँसे भरतजी फिर पैदल चलने लगे, जब मेढकोंने घोड़ेपर सवार होनेके लिये विशेष आग्रह किया तब आप कहने लगे—

गमु पयदिहि पाय सिधाए । हमकहँ रथ गत्र वाजि बनाए ॥  
सिरभर जाई उच्चिन्न भ्रम मोरा । सबनँ मेवक परम कठोरा ॥

भाई ! मुझे तो सिरके बल चलना चाहिये । क्योंकि जहाँ रामके चरण टिके हैं वहाँ मेरा सिर ही टिकना योग्य है । सीता-राम सीता-रामका कीर्तन करते हुए भरतजी प्रयाग पहुँचे । उनके पैरोंके छाले कमलके पत्तोंपर घोसकी सूँदोंके समान चमकते हैं—

सतका मलकत पायन्ह कैसे । पंकजकोप ओस-कन जैसे ॥

तदनन्तर महाराज भरतजी मुनि भारद्वाजके आश्रममें पहुँचे । परस्पर शिष्टाचारके उपरान्त भारद्वाजजीने भी भरतके हृदयपर मानो गहरा आघात करते हुए उनसे पूछा—

कञ्चित् तस्यापापस्य पापं कर्तुमिच्छसि ।

अकण्टकं मोक्षतुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥

(वा० रा० २।९०।१४)

‘क्या तुम उन पापहीन श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणका वचन निष्कण्टक राज्य भोगनेकी इच्छासे तो बनमें नहीं जा रहे हो ?’ भारद्वाजजीके इन वचनोंसे भरतजीका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया । वे कातर-कण्ठसे रोते हुए बोले—

हतोऽस्मि यदि मामेनं भगवानपि मन्यते ।

(वा० रा० २।९०।१५)

‘भगवन् ! यदि त्रिकालदर्शी होकर आप भी ऐसा ही मानते हैं तब तो मैं मारा गया । ऐसा कठोर वचन नहीं कहना चाहिये ।’

कैकेय्या यच्छतं कर्म रामराज्यविधातनम् ॥

वनवासदिकं वापि नहि जानामि किञ्चन ।

भक्तपादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम ॥

इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्टवर्तमानसः ।

ज्ञातुमर्हसि मां देव गुह्यं वा गुह्यं पब वा ॥

मम राज्येन किं स्वामिन् रामं तिष्ठति राजनि ।

किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शादवतः ॥

(अध्याय २० २।८।४६ ४९)

‘हे मुनिश्रेष्ठ ! कैकेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्यभियेकमें विष डालनेके लिये जो कुछ किया था राम-वनवासादिके सम्बन्धमें जो कुछ हुआ, इस विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता, इस सम्बन्धमें आपके चरणयुगल ही मेरे लिये प्रमाण हैं ।’ इतना कह मुनिके दोनों चरणोंको पकड़कर भरतजी कहने लगे, ‘हे देव ! मैं शुद्ध हूँ वा अशुद्ध, इस बातको आप भलीभाँति जान सकते हैं । हे स्वामिन् ! श्रीरामजीके राजा रहते, मुझे राज्यसे क्या प्रयोजन है, मैं तो सदा-सर्वदा श्रीरामका एक किंकर हूँ ।’

इसपर भारद्वाजजीने प्रसन्न होकर कहा ‘मैं तुम्हारी सब बातें जानता था, मैंने तो तुम्हारे भाव दृढ़ करने और तुम्हारी कीर्ति बढ़ानेके लिये ही तुमसे ऐसा पूछ लिया था । वास्तवमें तुम्हारे समान बड़भागी दूसरा कौन है, जिसका जीवन-वन-प्रायः श्रीरामके चरणकमल हैं—

सो तुम्हारे जीवन-वन-प्राण । भूरि माग को तुम्हहि समाना ॥

मुनहु भरत रघुवर मनमाही । प्रेम-पात्र तुम सम कौठ नाहीं ॥

लखन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सराहत बती ॥



मैं जानता हूँ तुम राम, सीता, लक्ष्मणको अत्यन्त प्यारे हो, वे जब यहाँ ठहरे थे तो रातभर तुम्हारी ही प्रशंसा कर रहे थे। तुम तो भरत ! मानो श्रीराम-प्रेमके शरीरधारी अवतार हो।

तुम तो भरत मोर मत पहुँ। धरे देह जनु रामसनेहू ॥

हे भरत ! सुनो, हम तपस्वी उदासी बनवासी हैं, तुम्हारी खातिरसे मूढ़ नहीं बोलने, हमारी समझसे तो हमारी समस्त साधनाओंके फलस्वरूप हमें श्रीराम-सीता और लक्ष्मणके दर्शन मिले थे और अब श्रीरामदर्शनके फलस्वरूप तुम्हारे दर्शन हुए हैं, सारे प्रयागनिवासियों सहित हमारा बड़ा सौभाग्य है—

भरत धन्य तुम जग जस लयऊ। कहि अस प्रेममगन मुनि भयऊ ॥

इसके अनन्तर भरद्वाज मुनिने सिद्धियोंके द्वारा परम सम्मान्य अतिथि भरतजीका आतिथ्य-सत्कार किया, सभी प्रकारकी विज्ञान-सामग्री उत्पन्न हो गयी। सब लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार खान-पान और भोगादिमें लग गये परन्तु भरतजीको रामके बिना कहीं चैन नहीं है, वे किसी भी प्रलोभनमें नहीं आ सकते।

सम्पति चकई भरत चक मुने आगमु खलवार।

तेहि निसि आसम पीत्ररा राखे भा भिनुसार ॥

भरद्वाजजीकी सिद्धियोंद्वारा उत्पन्न सम्पति मानो चकई है, और भरतजी चकवा हैं, मुनिकी आज्ञा बदेनिया है, जिसने उस रातको भरतजीको आश्रमरूपी पित्ररमें बन्द कर रक्खा और इसी प्रकार सचेरा हो गया। चकई-चकवा रातको नहीं भिज सकते। इसी तरह विज्ञान-सामग्री और भरतजीका (आश्रमरूपी पित्ररमें) एक साथ रहनेपर भी मिश्राप नहीं हुआ ! धन्य त्यागपूर्ण भ्रातृप्रेम !

× × ×

राक्षा बतानेके लिये निषादको आगे करके महाराज भरतजी चित्रकूटकी ओर जा रहे हैं मानो साक्षात् अनुराग ही शरीर धारण करके चल रहा हो। यहाँपर गुसाईंजीने बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है। भरतजीके न तो पैरोंमें जूते हैं और न सिरपर कपड़ा है। वे निष्कपटभावसे प्रेमपूर्वक निवम-व्रत करते हुए जा रहे हैं। भरतजी जिस मार्गसे निकलते हैं उसीमें मानो प्रेमका समुद्र उमक पड़ता है और वहाँका वातावरण इतना विशुद्ध हो जाता है कि वहाँके जड़-चेतन जीव भरतके अवरोध-नाशक वर्णन

पाकर परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। जिन रामजीका एक बार भी नाम खेनेवाला मनुष्य स्वयं तरता और दूसरोंको तारनेवाला बन जाता है वे श्रीराम स्वयं जिन भरतजीका मनमें सदा चिन्तन किया करते हैं, उनके दर्शनसे जोगोंका बन्धन-मुक्त हो जाना कौन बड़ी बात है ?

भरतजीके दर्शनसे भ्रातृप्रेमके भाव चारों ओर फैल रहे हैं, जब महाराज भरतजी श्रीराम कहकर साँस लेते हैं तब मानो चारों ओर प्रेम उमक पड़ता है, उनके प्रेमपूर्ण बचन सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ?

जबहि राम कहि कोहि उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँपासा ॥

द्रवहि बचन सुनि कुलिस-पक्षाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना ॥

मार्गके नर-नारी भरतजीको पैदल चलते देख-देखकर नेत्रोंको सफल करते हैं और भाँति-भाँतिकी चर्चा करते हैं। बनकी नारियाँ भरतजीके शील प्रेम और भाग्यकी सराहना करती हुई कहती हैं—

चलत पयादेहि खात फल पिता दीन्ह तजि राज।

जात मनावन रघुबरहि भरत-सरिस कां आज ॥

भाष्य भगति भरत आचरन्। कहत सुनत दुष-दूषन हरन् ॥

‘अहो ! पिताके दिये हुए राज्यको छोड़कर आज भरत फल-मूल खाते हुए पैदल ही श्रीरामको मनाने जा रहे हैं, इनके समान भाग्यवान् दूसरा कौन होगा ? भरतजीके भाईपन, भक्ति और आचरणोंका गुण गाने और सुननेसे दुःख और पाप नाश हो जाते हैं।’

भरतका ऐसा प्रभाव पड़ना ही चाहिये था !

भरतजीसहित सबको छुभ सकुन होने लगे, जिससे प्रेम और भी बढ़ा, प्रेमकी विह्वलतासे पैर उलटे-सीधे पड़ रहे हैं, इतनेमें रामसखा निषादराजने शैलशिरोमणि चित्रकूटको दूरसे दिखाया। अहा ! इसी पुण्यवान पर्वत-पर मेरे स्वामी रघुनाथजी रहते हैं, यह सोचकर भरतजी प्रणाम करने लगे और सिखावर रामचन्द्रजीकी जय-ध्वनि करने लगे। उस समय भरतको जैसा प्रेम था, उसका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते। कविके लिये तो यह उतना ही कठिन है जितना अहंता-ममतावाले मखिन मनुष्यके लिये ब्रह्मानन्द !

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकैं न सेपु ॥

कविहि आग जिमि ब्रह्मसुख अह-मम-मलिन-जनेपु ॥

भरतजीने सारे समुदायसहित मन्दाकिनीमें स्नान किया और सब लोगोंको वहीं छोड़कर वे केवल शत्रुज और गुहको साथ लेकर आगे-चले। यहाँपर भरतजीके मनकी वशाका चित्रण श्रीगोस्वामीजीने बहुत ही सुन्दर किया है—

समुक्षि मानुकरतव सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मनमाहीं ॥  
राम-लपन-सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ॥

मानु मते महेँ मामि मोहि जो कुछ कहहि सो धोर।  
अथ अवगुन छमि आदरहि समुक्षि आपनी ओर ॥

जौ परिहरहि मलिन मन जानी। जौ सनमानहि सेवक मानी ॥  
मोरे सरन रामकी पनही। राम सुस्वामि दोष सब जनही ॥

धन्य भरतजी ! जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु जब अपोष्ठाके दूत, सब नगर-निवासी, माता कौसल्या, निषाद और त्रिकालदर्शी भरद्वाजजी तकने एक एक बार सन्देह किया तो यहाँ भी लक्ष्मण-सीता सुम्भपर सन्देह न करेंगे या श्रीराम ही मुझे मन-मलिन मनस्ककर न त्याग देंगे, इसका क्या भरोसा है ? यह कौन जान सकता है कि माताके मतके साथ मेरा मत नहीं था। जो कुछ हो, राम चाहे त्याग दें, परन्तु मैं तो उन्हींकी प्रीतियोंकी शरण पड़ा रहूँगा। माताके नाते मैं तो दोषी हूँ ही। पर श्रीराम सुस्वामी हैं, वे लक्ष्मण कृपा करेंगे।

फिर जब माताका करतूत याद आ जाती है तो पैर पीछे पड़ने लग जाते हैं, अपनी भक्तिकी ओर देखकर कुछ आगे बढ़ते हैं और जब आरघुनाथजीके स्वभावकी ओर धृति आती है तो मार्गमें जल्दी-जल्दी पाँव पड़ते हैं। इस समय भरतजीकी दशा बैसी ही है जैसे जलके प्रवाहमें मैथरकी होती है, जो कभी पीछे हटता है, कभी चकर खाता है और कभी फिर आगे बढ़ने लगता है। भरतके इस प्रेमको देखकर निषादराज भी तन-मनकी मुधि भूलगया।

फेरति मनहि मानुक्त सोरी। चलत मगति बल धीरज घोरी ॥  
जब समुस्त रघुनाथसुमाऊ। तब पथ परत ठताऊल पाऊ ॥  
भरतदसातेहि अवसर कैसी। जल-प्रवाह जल-बलि-गति त्रैसी ॥  
देखि भरत कर मोच सनेहू। मा निषादतेहि समय बिदेहू ॥

भरत-शत्रुज प्रेममें चिह्नित हुए चले आ रहे हैं—

स तत्र वज्रकुशवारिओचित ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः।  
ददर्श रामस्य मुनेतिमंगलान्येष्ट यत्पादरजः सुसानुजः ॥

अहो ! सुधन्योहममूनि रामपादारविन्दोद्धितभूतलानि।  
पश्यामि यत्पादरजोविमृग्य ब्रह्मादिदेवैःश्रुतिभिश्च नित्यम् ॥

( अध्यात्म रा० २।१।२-३ )

जहाँ श्रीरामके वज्र, शंक्रुश, ध्वजा और कमल आदि चिन्होंसे अंकित शुभ चरख-चिह्न देखते हैं वहीं दोनों भाई उस चरखरजमें खोदने लगते हैं और कहते हैं कि अहो ! हम धन्य हैं जो श्रीरामके उन चरखोंसे चिह्नित भूमिका दर्शन कर रहे हैं, जिन चरखोंकी रज ब्रह्मादि देवता और वेद सदा खोजते रहते हैं।

भरतकी इस अवस्थाको देखकर पशु, पक्षी और वृक्ष भी सुग्ध हो गये। पशु-पक्षी जब पाषाणकी भाँति एकटकी लगाकर भरतकी ओर देखने लगे और वृक्षादि प्रवित हाँकर हिलने-डोलने लगे—

होत न मृतक माठ भरतका। अक्षर सक्षर चर अक्षर करत को ॥

भरत-शत्रुजकी यह दशा देख निषादराज प्रेममें तन्मय होकर रास्ता भूल गया। दो पागलोंमें तीसरा भी पागल होनेसे कैसे बचता ? दोनों ही मतवाले हो गये। देवताओंने फूट बरसाकर निषादको सावधान करने हुए रास्ता बताया। बलिहारी प्रेमकी !

×

×

इधर लक्ष्मणजीको सन्देह हुआ, उन्होंने समझा कि भरत जुरी नीयतसे आ रहे हैं, मनः से नीतिको भूलकर कहने लगे, आज मैं उन्हें मर्जीभाँति शिक्षा दूँगा—

राम निरादर कर फल पाई। सोबहु समर राज दोष भाई ॥

श्रीरामने लक्ष्मणजीकी नीयतकी प्रशंसाकर उन्हें भरतका महत्व समझाया, लक्ष्मणजीका चित्त शान्त हो गया।

भरतका जीवन बड़ा ही मार्मिक है। सर्वदा साधु और निर्दोष होते हुए भी सबके सन्देहका शिकार बनना पड़ता है। भरतके सहसा सर्वथा राज्यक्षिप्त्वा-शून्य धर्मात्मा त्यागी महापुरुषपर इसप्रकारके सन्देहका इतिहास जगत्में कहीं नहीं मिलता। इतनेपर भी भरत सब सहते हैं, ऊबकर आत्महत्या नहीं कर लेते। शान्ति, प्रेम और सहिष्णुतासे अपनी निर्दोषताका ढंका बजाकर अगस्पृश्य बन जाते हैं।

कुछ ही समय बाद श्रीभरतजी यहाँ आ पहुँचे और दूरसे ही प्रतीकवासोंके कारण कुछ हुए श्रीरामकी मुखके आसनपर बैठे देखकर दौड़े और फूट-फूटकर रोते हुए बों कहने लगे—

यः संसदि प्रकृतिभिर्मवेष्टुक उपासितुम् ।  
 वन्यैर्भूगैरुपासीनः सोऽबमास्ते ममाग्रजः ॥  
 वासोभिर्बहुसाहसैर्यो महात्मा पुरोचितः ।  
 भृगाजिने सोऽयमिह प्रवस्ते धर्ममाचरन् ॥  
 अवारयन्तो विविधास्त्रिधाः सुमनसः सदा ।  
 सोऽयं जटामारमिमं सहते राघवः कथम् ॥  
 यस्य यज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तो धर्मस्य संचयः ।  
 शरीरक्लेशसंभूतं स धर्मं परिमार्जते ॥  
 चन्दनेन महार्हणं यस्याङ्गमुपसेवितम् ।  
 मलेन तस्यांगमिदं कथमार्यस्य सेव्यते ॥  
 मन्त्रिमित्तमिदं दुःखं प्राप्नो रामः सुखोचितः ।  
 विजयितुं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥

( वा० रा० २ । ६६ । ३१ से ३६ )

मेरे बड़े भाई राम, जो राजदरबारमें प्रजा और मन्त्रियों द्वारा उपासित होने योग्य हैं वे, आज इन जंगली पशुओंसे उपासित हो रहे हैं। जो महात्मा अयोध्याजीमें उत्तमोत्तम बहुमूल्य वस्त्रोंको धारण करते थे वे आज धर्माचरणके लिये इस निर्जन वनमें केवल खगड़ाला धारण किये हुए हैं। जो श्रीरघुनाथजी एक दिन अपने मस्तकपर अनेक प्रकारकी सुगन्धित पुष्पमालाएँ धारण करते थे आज वे इस जटामार-को कैसे सह रहे हैं? जो ऋत्विजों-द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ कराते थे वे आज शरीरको अत्यन्त क्लेश देते हुए धर्मका सेवन कर रहे हैं। जिनके शरीरपर सदा चन्दन लगाया जाता था आज उनके शरीरपर मैल जमी हुई है। हाय! निरन्तर सुख भोगनेवाले थे मेरे बड़े भाई श्रीरामजीको आज मेरे लिये ही इतना असह्य कष्ट सहन करना पड़ रहा है, मुझ क्रूरके इस लोकनिन्दित जीवनको चिन्तार है।' यों विलाप करते और आँसुओंकी झलजल धारा बहाते हुए भरतजी श्रीरामके समीप जा पहुँचे, परन्तु अश्वन्त दुःखके कारण उनके चरणोंतक नहीं पहुँच पाये। बीच ही में 'हा आर्य, पुकारकर दीनकी भाँति गिर पड़े। शोकसे गला रुक गया। वे कुछ बात नहीं कह सके। इसप्रकार—

जटिलं चिरवसनं प्राजर्लि पतितं भुवि ।  
 ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते मास्करं यथा ॥

( वा० रा० २ । १०० । १ )

'जटा बलकलधारी भरतको हाथ जोड़े हुए जमीनपर पड़े श्रीरामने देखा, भरतजीकी कान्ति उसी प्रकार मलिन हो रही थी, जैसे प्रलयकालमें सूर्यकी होती है। श्रीरामने

चिक्च और दुर्बल भरतको बहुत ही कठिनतासे पहचाना और बड़े आदरके साथ जमीनसे उठाकर उनका सिर सूँध गोदमें बैठाकर कहा। 'भाई! तुम्हारा यह वेश क्यों? तुम जटा-बलकल धारणकर राज्य त्यागकर वनमें कैसे आये?' इसपर भरतजीने पिताकी शृङ्खला संवाद सुनाया और कहा कि 'मेरी माँ कैकेयी विधवा होकर निन्दाके घोर नरकमें पड़ी है, मैं आपका दासाजुदास हूँ, भाई हूँ, शिष्य हूँ, आप मुझपर क्या करें।

एमिन्न सन्निवैः सार्धं शिरसा याचितो मया ।

आतुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥

( वा० रा० २ । १०१ । १२ )

पिताका मरणसंवाद सुनते ही श्रीरामकी आँखोंमें आँसू भर आये। माताओं और गुरु वशिष्ठादि ऋषियोंको प्रणामकर तथा सबसे मिलकर श्रीरामने मन्दाकिनीपर जाकर स्नान किया, तर्पणकर पिबडदान दिये। उस दिन सबने उपवास किया। दूसरे दिन सबलोग एकत्र हुए, तब भरतजीने राज्याभिषेकके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की और कहा कि—

राज्यं पालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा ।

क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥

इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्य तन्तवे ।

राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततो वनम् ॥

इदानीं वनवासस्य कालौ नैव प्रसीद मे ।

मातुर्मे दुष्कृतं किञ्चित् स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः ॥

( अ० रा० २ । ११ । २३-२४ )

आप सबमें बड़े हैं, मेरे पिताजीके समान हैं, अतः आप राज्यका पालन कीजिये। प्रजा-पालन ही क्षत्रियोंका धर्म है। अनेक प्रकार यज्ञ करके एवं कुल-वृद्धिके लिये पुत्र उत्पन्न करके पुत्रको राजसिंहासनपर बैठानेके बाद आप वनमें पधारियेगा। यह वनवासका समय नहीं है। मुझपर कृपा कीजिये, मेरी मातासे जो कुकर्म बन गया है उसे भूलकर मेरी रक्षा कीजिये।

इतना कहकर भरतजी दण्डकी तरह श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े, श्रीरामने स्नेहसे उठाकर गोदमें बैठाया और आँखोंमें आँसू भरकर धीरेसे श्रीभरतजीसे बोले—'भाई! पिताजीने तुम्हें राज्य दिया है, और मुझे वन भेजा है—

अतः पितुर्वचः कार्यमावाप्त्यामतिगतः ॥

पितुर्वचनमुल्लङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु वर्तते ।

स जीवतेन मृतको देहान्ते निरयं व्रजेत् ॥

( अ० रा० २ । ११ । ३१-३२ )

‘अतएव हम दोनोंको बचपूर्वक पिताके वचनावुसार कार्य करना चाहिये । जो पिताके वचनोंकी अवहेलना कर स्वतन्त्रतासे बर्तता है वह जीता ही मरेके समान है और मृत्युके बाद नरकगामी होता है । इसलिये तुम अयोध्याका राज्य करो ।’ भरतने कहा—‘पिताजी कामुकतासे लीके बस हो रहे थे, उनका चित्त स्थिर नहीं था, वे उन्मत्त-से थे, उन्मत्त पिताके वचनको सत्य नहीं मानना चाहिये ।’ इसपर श्रीरामजीने कहा, ‘मित्र भाई ! ऐसी बात मुझसे नहीं कहनी चाहिये, पिताजी न तो लीकेबशमें थे, न कामुक थे और न मूर्ख थे, वे सब ही सत्यवादी थे और अपने पहलके वचनोंको सत्य करनेके लिये ही उन्होंने ऐसा किया । हम रघुवंशी उनके वचनोंको कैसे असत्य कर सकते हैं ?’ भरतजीने कहा—‘यदि ऐसा ही है तो मैं भी आपके साथ बनमें रहकर लक्ष्मणकी भाँति आपकी सेवा करूँगा, यदि आप मेरी इस बातको भी स्वीकार न करेंगे तो मैं बनशन अत लेकर शरीर-त्याग कर दूँगा ।’ श्रीरामने उनको उखाड़ना देकर समझाया परन्तु जब किसी प्रकार भी भरत नहीं माने तब श्रीरामने वशिष्ठजीको हुशारा किया । श्रीरामका हुशारा पाकर गुरु वशिष्ठजीने भरतको एकान्तमें ले जाकर कहा—

एकान्ते भरतं प्राह वशिष्ठो ज्ञानिनां वरः ।  
वत्स ! गुह्यं शृणुष्वेदं मम वाक्यं मुनिश्चितम् ॥  
रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा ।  
रावणस्य वचार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥  
योगमावापि सीतेति ज्ञाता जनकनन्दिनी ।  
शेषोऽपि लक्ष्मणे जातो राममन्वेति सर्वदा ॥  
रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः ।  
तस्मान्न्यजाग्रहं तात ! रामस्य विनिवर्तने ॥

( अथ्यात्म० रा० २ । ९ । ४२-४६ )

‘वेदा ! मैं तुममें एक निश्चित गुप्त बात बतलाना हूँ । श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इनसे रावण-वचार्थ प्रार्थना की थी तदनुसार वे दशरथजीके यहाँ अवतीर्थ हुए हैं, जनकनन्दिनी सीताजी योगमाया हैं और लक्ष्मणजी शेषजीके अवतार हैं जो सदा रामजीके पीछे-पीछे उनकी सेवामें लगे रहते हैं । श्रीराम रावणको मारनेके लिये बनमें अवतरण जायेंगे, इसलिये तुम इन्हें जोटा से जानेका इष्ट छोड़ दो ।’

श्रीरामका अपने प्रति असाधारण प्रेम, अपने सेवार्थ और गुरुके इन गुह्य वचनोंपर खयाल कर भरतजी आपस

अयोध्या लौटनेको तैयार हो गये और श्रीरामकी चरख-पादुकाओंको प्रणाम करके बोले कि—

चतुर्दश हि वर्षाणि जटाधीरधरो ह्यहम् ॥  
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन ।  
तवागमनमाकाङ्क्षन्वसन्ने नगराद्वहिः ॥  
तव पादुकायोर्न्यस्थ राज्यतन्त्रं परन्तप ।  
चतुर्दश हि सम्पूर्णं वर्षेऽहनि रघूत्तम ॥  
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।  
तथेति च प्रतिज्ञाय त्वं परिष्वज्य सादरम् ॥

( बा० रा० २ । ११२ । २३-२६ )

‘हे आर्य रघुनन्दन ! मैं जटा-बलकल धारण करूँगा, फल-मूल खाऊँगा, सारे राज-काजका भार आपकी चरख-पादुकाओंको सौंपकर आपकी राह देखता हुआ चौदह सालतक नगरके बाहर निवास करूँगा । चौदहवर्षके पूर्ण होनेपर पन्द्रहवें वर्षके पहले दिन यदि आपके दर्शन न होंगे तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ।’

श्रीरामने भरतकी वद प्रतिज्ञा सुनकर अत्यन्त प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगा लिखा और ठीक अवधिपर अयोध्या लौटनेका वचन दिया । अर्धश भरतजीने श्रीरामजीके प्रति प्रणाम-प्रदक्षिणा करके स्वयंजित पादुकाओंको पहने अस्तकपर धारण किया और तदनन्तर उन्हें हाथीपर रखवाया ! बनसे अयोध्या लौटकर नगरसे बाहर नन्दिग्राममें पहुँचकर कहा—

एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् ।  
योगक्षेमवहे चैवं पादुके हेममूषिते ॥  
छत्रं धारयत धिप्रमार्थपादाविमो मतौ ।  
आभ्यां राज्ये स्थितो वर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम ॥  
भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सीहदादयम् ।  
तमिमं पादुयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥  
धिप्र संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् ।  
चरणी तौ तु रामस्य द्रक्ष्यामि सह पादुको ॥  
ततो निक्षिप्तमारोऽहं राघवेण समागतः ।  
निवेद्य गुरवे राज्यं मज्जिष्ये गुरुवर्तिताम् ॥  
राघवाय च संन्यासं दत्त्वेयं वरपादुक ।  
राज्यं चेदमयोध्यां च घूतपापो भवाम्यहम् ॥

( बा० रा० २ । ११५ । १४-२० )

‘अहो ! मेरे पृथ्व भाईने वह राज्य मुझे चरोहररूप सौंपा है, और इसके बोगधमेके लिये वे स्वयं-पादुकार्थ की

हैं। वे पादुका भगवान् की प्रतिनिधि हैं, अतः इनपर कुत्र धारण करो, मेरे गुरु श्रीरामकी इन्हीं पादुकाओंसे धर्म-राज्यकी स्थापना होगी। मेरे भाईने प्रेमके कारण मुझे वह राज्यरूप धरोहर दी है, जबतक वे लौटकर नहीं आवेंगे तबतक मैं इसकी रक्षा और सेवा करूँगा। मेरे ज्येष्ठ बन्धु श्रीरघुनाथजी सब सकुशल यहाँ पधारेंगे तब इन दोनों पादुकाओंको उनके चरखोंमें पहनाकर आनन्दमे दर्शन करूँगा। पादुकाओंके साथ ही यह धरोहररूप राज्य उन्हें सौंपकर राज्यभारसे छूटकर मैं निरन्तर उनकी आज्ञामें रहता हुआ उनका भजन करूँगा। इसप्रकार दोनों पादुका, राज्य, और अयोध्या उन्हें पुनः सौंपकर मैं कलङ्क-मुक्त हो जाऊँगा।

तदनन्तर पादुकाओंका अभिषेक किया गया, भरतजीने स्वयं कुत्र-चामर धारण किये। भरतजी राज्यका समस्त शासन-सम्बन्धी कार्य पादुकासे पूछकर करते थे। जो कुछ भी कार्य होता था या भेंट आती थी सो सबसे पहले पादुकाको निवेदन करते, पुनः उसका यथोचित प्रबन्ध करते और वह भी पादुकाको सुना देते थे। इसप्रकार पादुकाके अधीन होकर भरतजी नन्दिग्राममें नियमपूर्वक रहने लगे। उनकी 'रहनी-करनी' के सम्बन्धमें गुसाईंजी लिखते हैं—

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस-साथरी सवारी॥  
असन बसन बासन व्रत नेमा। करत कठिन रिषि-धरम सप्रेमा॥  
नूषन बसन भोग सुख भूरी। तन मन बचन तजे तिनु तूरी॥  
अबधराजु सुरराजु सिंहाही। दसरथ-वन सुनि वनद लजाही॥  
तेहि पुर बसत भरत विनु रागा। चंचरीक त्रिमि चंपक-बागा॥  
रमाबिलास राम-अनुरागी। तजत बमन जिमि अन बड़ भागी॥

× × × ×

देह दिनहि दिन दूबरी होई। घट न तेज बल मुख-छाबि सोई॥  
नित नव राम-प्रेम-पन पीना। बढ़त धरमदल मन न मलीना॥  
त्रिमि जल निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥  
सम दम संजम नियम उपासा। नसत भरत हिय बिमल अकासा॥  
ध्रुव बिस्वास अवधि राका-सी। स्वाभिसुरति सुर-बीधि बिकासी॥  
रामप्रेम-बिधु अचल अदोखा। सहित समाज सोह नित चोखा॥  
भरत रहनि-समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥  
बरनत सकल सुकवि सुकुवाही। सेस-गेनस-गिरा गम नाही॥

नित पूजत प्रमुपौवरी प्रीति न हृदय समाति।

मोंगि मोंगि आयसु करत राजकाज बहु भौति॥

पुलक गात हिय सिय-रघुबीर। जीह नाम जप लोचन नीर॥

लखन राम सिय कानन बसही। भरत भवन बसित तप तनु कसही॥

भरतजीकी इस वैराग्य-त्यागमयी मन्त्रुल मूर्तिका ज्ञान और उनके आचरणोंका अनुकरण कर कृतार्थ हो जाइये !

इस प्रसंगसे हम जोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि छोटे भाईको बड़े भाईके साथ कैसा त्याग और विनयपूर्ण बर्ताव करना चाहिये।

× × ×

रावबाधकके अनन्तर श्रीराम सीता, लक्ष्मण, मित्रों और सेवकों सहित पुष्पक-विमानपर सवार होकर अयोध्या जा रहे हैं। उधर भरतजी महाराज अवधिके दिन गिन रहे हैं। एक दिन रोष रहा है, भरतजीकी चिन्ताका पार नहीं है। वे सोचते हैं—

कारन कवन नाथ नहि आप। जानि कुटिल प्रभु मोहि बिसराप।

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम-पदारविन्द अनुरागी॥

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहि लीन्हा॥

जो करनी समुझहि प्रभु मोरी। नहि निस्तार कल्पसत कोरी॥

जन-अवगुन प्रभु मान न काज। दीनबन्धु अति मृदुल सुमाज॥

मेरे जिय मरोस दड़ सोई। मिलिहहि राम सगुन सुभ होई॥

बीतै अवधि रहहि जो प्राना। अवध कवन जग मोहि समाना॥

श्रीरघुनाथजी क्यों नहीं आवे ? क्या मुझे कुटिल समझकर भुला दिया ? धन्य है बड़भागी भैया लक्ष्मणको, जिसका रामके चरखकमलोंमें इतना अनुराग है। मुझे तो कपटी और कुटिल जानकर ही नाथने वनमें साथ नहीं रक्खा था (असलमें कैकेयी-पुत्रके लिये यह ठीक ही है)। मेरी करनी सोचनेसे तो सौ करोड़ कल्पोंतक भी उद्धार नहीं हो सकता। परन्तु भगवान् का स्वभाव बड़ा ही कोमल है वे अपने जनोंका अवगुण नहीं देखते। मेरे मनमें भगवान् के इस विरवका दृढ़ भरोसा है, सगुन भी छुभ हो रहे हैं, इससे निश्चय होता है भगवान् कृपापूर्वक अवश्य दर्शन देंगे। परन्तु यदि अवधि बीतनेपर भी वे अवध प्राप्त रहेंगे तो मेरे समान जगत्में दूसरा नीच और कौन होगा ?

भरतकी इस व्याकुल दशाको जानकर उधर 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव मजाम्यहम्' की प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् भी व्याकुल हो गये, उन्होंने सन्देश देनेके लिये

हनुमान्जीको भेज दिया। रामविरहके अथाह समुद्रमें भरतजी-का मन डूब रहा था, इतनेहीमें ब्राह्मणका स्वरूप धारणकर श्रीहनुमान्जी मानो उद्धार करनेके लिये जहाजरूप होकर आ गये। हनुमान्जी रामगतप्राप्त, रामपरायण भरतजी-की स्थिति देखकर मुग्ध हो गये, उनके रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे आँसू बहने लगे। भरतकी कैसी स्थिति थी ?

बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कस गात ।

राम राम रघुपति जपत खत नयन जल जात ॥

हनुमान्ने भरतकी आँसू बहाती हुई नाम-जप-परायण व्यासस्थ मूर्तिको देखकर परम सुखसे भरकर कानोंमें अमृत बरसानेवाकी वाणीसे कहा—

जासु बिरह सोचहु दिनराती । रटहु निरन्तर गुनगन पाँती ॥

रघुकुल-तिलक मुजन-सुखदाता। आर्यहु कुसल देव-मुनि-व्राता ॥

रिपुन जीति सुजस सुग गावत । सीता-अनुजसहित प्रभु आवत ॥

यह बचन सुनते ही भरतजीके सारे दुःख मिट गये। व्यासको अमृत मिल गया। प्रायःहीनमें प्राय प्रागये। भरतजी हर्षोन्मत्त होकर पूछने लगे—

को तुम तात ! कहाँतें आये । मोहि परमप्रिय बचन सुनाये ॥

हनुमान्जीने कहा कि—

मास्त-सुत मैं कपि हनुमान । नाम धोर सुनु कृपानिधान ।

दीनबन्धु रघुपति कर किंकर । X X X

भरतजीने उठकर हनुमान्जीको हृदयसे लगा लिया—

सुनत भरत भेटेउ ठठि सादर ॥

प्रेम हृदयमें नहीं समाता है, नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह रही है, शरीर पुलकित हो रहा है। भरतजी कहते हैं—

कपि तब दरस सकल दुख बने । मिले आत्र मोहि राम पिरिति ॥

बार बार दूरी कुसलाता । तोफहँ देठें काह सुनु अता ॥

यहि सन्देश सरिस जगमाहीं । करि बिचार देखेउ कलु नाहीं ॥

नाहिन तात ! उरिन मैं तोहीं । अब प्रभुचरित मुनावहु मोटी ॥

हनुमान्जीने चरण-बन्दन कर मारी कथा संक्षेपमें सुना दी। तदनन्तर भरतजीने फिर पूछा—

कहु कपि कबहुँ कृपानु गोसाईं सुमिरहि मोहि निज दासकि नाई ॥

निज दास ज्यों रघुवंसमूषन कबहुँ मोहि सुमिरन करयो ,

सुनि भरत बचन विनीत अति कपि पुलकि तनु चरननि पश्यो ।

रघुबीर निज मुख बासु गुन-गन कहत अग-अग-नाथ जो ,

काहे न होइ विनीत परम पुनीत, सदगुन-सिंधु सो ॥

श्रीहनुमान्जीने गर्वगद्ग होकर कहा—

राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।

पुनि पुनि मिलत भरतसन हरबन हृदय समात ॥

भरत और हनुमान् बार-बार गले जगकर मिलते हैं। हर्षका पार नहीं है। हनुमान्जी वापस लौट गये, इधर सारे रनिवासमें और नगरमें खबर भेजी गयी। सभी ओर हर्ष छा गया। सारा नगर सजाया गया !

भगवान्का विमान अयोध्यामें पहुँचा। भरतजी, शत्रुघ्नजी भगवानीके लिये सब मन्त्रियों और पुरासिधियों सहित सामने गये। विमान जमीनपर उतरा, भरतजी विमानमें जाकर श्रीरामके चरणोंमें लौट गये। और भगवान्काश्रुओंसे उनके चरणोंको धोने लगे। श्रीरघुनाथजीने उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया। तदनन्तर भरतजी भाई लक्ष्मणजीसे मिले और उन्होंने माता सीताको प्रणाम किया। श्रीरामने भरतको गोदमें बैठाकर विमानको भरतके आश्रम-की ओर जानेकी आज्ञा दी। तदनन्तर नगरमें जाकर सबसे मिले। श्रीरामने भरतकी जटा अपने हाथोंसे सुलझाई। फिर तीनों भाइयोंको नहलाया। इसके बाद स्वयं जटा सुलझाकर स्नान किया।

तदनन्तर भगवान् राजसिंहासनपर बैठे। तीनों भाई सेवामें लगे। समय-समयपर भरतजी अनेक सुन्दर प्रश्न करके रामसे विविध उपदेश प्राप्त करने लगे। और अन्तमें श्रीरामके साथ ही परमधाम पधारे।

श्रीभरतजीका चरित्र बिलक्षण और परम आदर्श है। उनका रामप्रेम अनुलनीय है, इसीसे कहा गया है कि—

भग्न सन्नि को राम मनेही । जग जपु गम. राम जपु जेही ॥

वास्तवमें भरतजीका आनृ-प्रेम जगत्के इतिहासमें एक ही है। इनका राज्य-त्याग, संयम, जन, निवम आदि सभी सगुहनीय और अनुकरणीय है। इनके चरित्रसे स्वार्थत्याग, विनय, सहिष्णुता, गम्भीरता, सरलता, क्षमा, विराग और प्रधानतः आनृभक्तिकी बड़ी ही अनुपम शिक्षा लेनी चाहिये।

### श्रीलक्ष्मणका आनृप्रेम

अहह धन्य तल्लिभन बड़भागी । राम-पदारविन्द-अनुरागी ॥

राम-मेघके चातक लक्ष्मणजीकी महिमा अपार है। लक्ष्मणजीका अवतार श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनकी सेवा करनेके लिये ही हुआ था। इसीसे आज रामकी दशम मूर्तिके साथ लक्ष्मणकी गौर मूर्ति भी स्थापित होती है और रामके साथ लक्ष्मणका नाम लिखा जाता है। राम-भरत



रामेश्वर मन्दिरका एक स्तम्भ



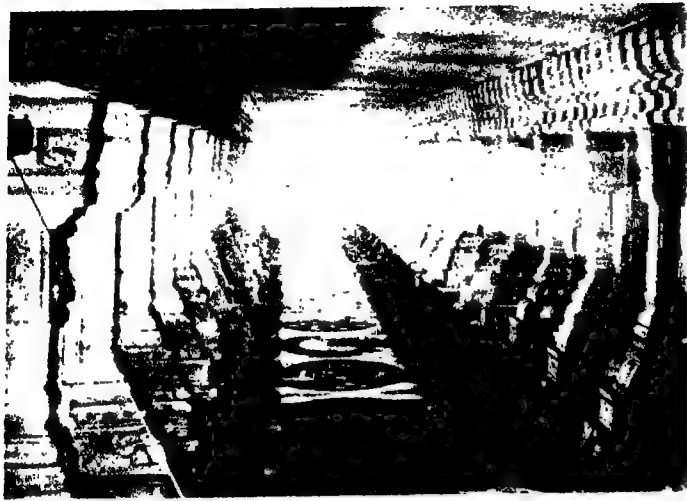
रामेश्वर मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार



रामेश्वर मन्दिरका एक पार्श्व प्रवेशद्वार

कल्याण

(सेतुबन्ध रामेश्वर)

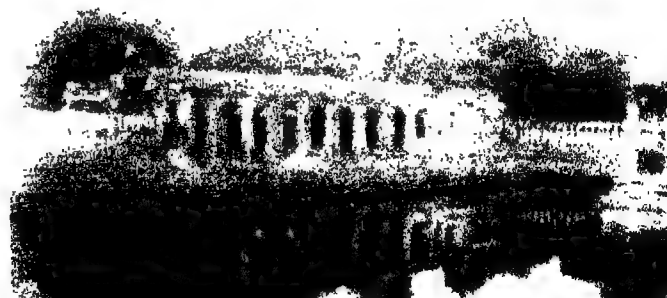


श्रीरामेश्वरजीके  
मन्दिरकी  
प्रदक्षिणा (फेरी)



राम भगवा

लक्ष्मण-तीर्थ (तालाब)





या राम-रात्रुष कोई नहीं कहता, परन्तु राम-लक्ष्मण सभी कहते हैं। श्रीलक्ष्मणजी धीर, वीर, तेजस्वी, महाचर्यवती, इन्द्रियविजयी, पराक्रमी, सरल, सुन्दर, तितिक्षा-सम्पन्न, निर्मल, निष्कपट, त्यागी, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, तपस्वी, सेवाधर्मी, नीतिके जाननेवाले, सत्यव्रती और रामगतप्राप्त थे। उनका सबसे मुख्य धर्म श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनका अनुसरण करना था। वे श्रीरामसेवामें अपने आपको भुल जाते थे। भरतजीका विनय और मधुरता युक्त गम्भीर प्रेम जैसे अनोखा है, वैसे ही श्रीलक्ष्मणजीका वीरतायुक्त सेवासूलक अनन्य प्रेम भी परम आदर्श है।

लक्ष्मणमें साथ खेलने-खानेके उपरान्त पन्द्रह वर्षकी उम्रमें ही लक्ष्मणजी अपने बड़े भाई श्रीरामजीके साथ विश्वामित्रके यज्ञरक्षार्थ चले जाते हैं। वहाँ सब प्रकारसे भाईकी सेवामें नियुक्त रहते हैं। इनकी सेवाके दिग्दर्शनमें जनकपुरका वह दृश्य देखना चाहिये, जहाँ रातके समय विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मण महाराजा जनकके अतिथिरूपमें डेरेपर डेरे हैं। गुसाईंजी उनके बर्तावका इसप्रकार वर्णन करते हैं—

समय संप्रम विनीत अति सकुच सहित दोउ भाई ।

गुरु-पद-पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा । सबही सन्ध्या बन्दन कीन्हा ॥

कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥

मुनिबर समय कीन्हे तब जाई । लगे चरन चाँपन दोउ भाई ॥

जिन्हके चरनसरोरुह लागी । करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥

ते दोउ बंधु प्रेम जुनु जीते । गुरु-पद-पदुम पछोटत प्रीते ॥

बार बार मुनि आग्या दीन्ही । रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥

चाँपत चरन लबन उर लाए । समय संप्रम परम सत्पुषाए ॥

पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पाँढ़े घरि उर पदजलजता ॥

ठंडे लपन निसि बिगत सुनि अरुन-सिखा-धुनि कान ।

गुरुते पहिलेहि जगतपति जागे राम सुजान ॥

अहा, क्या ही सुन्दर आदर्श दृश्य है ! श्रीराम-लक्ष्मण नगर देखने गये थे, वहाँ नगरवासी नर-नारी और समबयस्क तथा छोटे बालकोंके प्रेममें रम गये, परन्तु अन्तर होते देख गुरु विश्वामित्रजीका डर लगा। अतएव बालकोंको समझा-बुझाकर वह मिथिलामोहिनी जुगल-जोड़ी डेरेपर लौट आयी। आकर भय, प्रेम, विनय और संकोचके साथ गुरु-चरणोंमें प्रणामकर दोनों भाई चुपचाप खड़े रहे, जब गुरुजीने आज्ञा दी तब बैठे, फिर गुरुकी आज्ञासे ठीक समय-

पर सन्ध्याबन्दन किया। तदनन्तर कथा-पुराण होते-होते दो पहर रात बीत गयी। तब मुनि विश्वामित्रजी सोचे। अब दोनों भाई उनके चरण धुाने लगे। मुनि बार-बार रोकते और सोनेके लिये कहते हैं पर चरण धुानेके काम-को बेझोड़ना नहीं चाहते, बहुत कहने-सुननेपर श्रीराम भी लौट गये, अब लक्ष्मणजी उनके चरणोंको हृदयपर रखकर भय-प्रेम-सहित चुपचाप धुाने लगे। ऐसे चुपचाप प्रेमसे धुाने लगे कि महाराजको नींद आ जाय। श्रीरामने बार-बार कहा, तब लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणकमलोंका हृदयमें ध्यान करते हुए सोये। प्रातःकाल सुर्गकी ध्वनि सुनते ही सबसे पहले लक्ष्मणजी उठे, उनके बाद श्रीरामजी और तदनन्तर गुरु विश्वामित्रजी। इस आदर्श रात्रिचर्यासे ही दिनचर्याका भी अनुमान कर लीजिये। आज ऐसा दृश्य सपनेकी-सी बात हो रही है। इससे अनुमान हो सकता है कि श्रीलक्ष्मणजी रामकी किसप्रकार सेवा करते थे।

× × ×

श्रीलक्ष्मणजीकी आत्मभक्ति अनुलनीय है। वे सब कुछ सह सकते थे परन्तु श्रीरामका अपमान, तिरस्कार और दुःख उनके लिये असह्य था। अपने लिये-अपने सुखोंके लिये उन्होंने कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। अपने जीवनको तो सर्वथा त्यागमय और रामकी कठिन सेवामें ही लगाये रखा, परन्तु रामका तनिक-सा तिरस्कार भी उनको तलमला देता और वे भयानक काहनागकी भाँति फुंकार मार उठते। फिर उनके सामने कोई भी क्यों न हो वे किसीकी भी परवा नहीं करते।

जनकपुरके स्वयंवरमें जब शिवधनुषको तोड़नेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ, तब जनकजीको बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने दुःखभरे शब्दोंमें कहा—

अब जनि कोउ माखइ भट मानी । वीर-बिहीन मही मैं जानी ॥

तजहु आस निज निज गृह जाहू । किछान बिधि बैदेहि बिवाहू ॥

जो जनतेउँ बिनु भट महि भाई । तौ पन करि होतेउँ न हँसाई ॥

जनकजीकी इस बाणीको सुनकर सीताकी ओर देख-कर लोग दुखी हो गये। परन्तु लक्ष्मणजीके मनकी कुछ दूसरी ही अवस्था है। जब जनकके मुँहसे 'अब कोई वीरता-का अभिमान न करे' वह शब्द निकले, तभी वे अकुला उठे, उन्होंने सोचा कि श्रीरामकी उपस्थितिमें जनक यह क्या कह रहे हैं, परन्तु रामकी आज्ञा नहीं थी, चुप रहे लेकिन जब जनकजीने बार-बार धरणीको वीरविहीन

बलबाबा सब लक्ष्मणजीकी ओहैं देही और जाँलें जाऊ हो गयीं, उनके होठ काँपने लगे, आखिर उनसे नहीं रहा गया, उन्होंने श्रीरामके घरवाँमें सिर नवाकर कहा—

रघुवंसिन्हमहँ जहँ कोठ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई ॥  
कही जनक अस अनुचित बानी । विद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥

जहाँ रघुवंशमणि श्रीरामजी बैठे हों वहाँ ऐसी अनुचित बाणी कौन कह सकता है ? लक्ष्मण कहते हैं कि 'हे श्रीराम ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वभावसे ही इस प्रज्ञापकको गेंदकी तरह हाथमें उठा लूँ और—

काँचे घट जिमि डारौं जोरी । सकउँ मेर मूलक इव तोरी ॥

फिर आपके प्रतापसे इस बेचारे पुराने धनुषकी तो बात ही कौन-सी है, आज्ञा मिले तो दिखाऊँ खेज—

कमल-नालु जिमि चाप चढ़ाऊँ । जोवन सत प्रमान लेइ धाऊँ ॥

तोरौँ छत्रकदम्ब जिमि तब प्रताप बल नाय ।

औं न करौँ प्रभु-पद-सपथ पुनि न धरौँ धनु हाय ॥

लक्ष्मणजीके इन वचनोंसे पुन्नी काँप उठी, सारा राज-समाज डर गया, सीताजीका सकुचाया हुआ हृदय-कमल बिज उठा, जनकजी सकुचा गये, विश्वामित्रसहित सब मुनिगणों और श्रीरघुवीरजीको हृदयके मारे बारम्बार रोमाञ्च होने लगा । लक्ष्मणजीने अपनी सेवा बजा दी, रामका महत्त्व जोगोंपर प्रकट हो गया । वीररसकी जीती-जागती मूर्ति देखकर जोग विमुग्ध हो गये । परन्तु इस वीररसके महान् चित्रपटको श्रीरामने एक ही सैनसे पकड़ दिया—

सयनहिं रघुपति लवण निवार । प्रेमसमेत निकट बैठारे ॥

तदनन्तर शिवजीका धनुष गुरुकी आज्ञासे श्रीरामने भंग कर दिया । परशुरामजी आये और कुपित होकर धनुष तोड़नेवालेका नाम-धाम पूछने लगे । श्रीरामने प्रकारान्तरेसे धनुष तोड़ना स्वीकार किया ।

नाय संभु-धनु संजनिहारा । होइहहिं कोठ एक दास तुम्हारा ॥

यहाँ परशुराम-लक्ष्मणका संवाद था ही रोचक है । लक्ष्मणने श्वंग-भावसे श्रीरामकी मझिमा सुनायी है और श्रीरामने भाई लक्ष्मणकी उक्तियोंका प्रकारान्तरेसे समर्थन किया । मानो दोनों भाई अन्दरसे मिले हुए ऊपरसे दो प्रकारका बर्ताव करते हुए एक दूसरेका एक समर्थन कर रहे हैं । आखिर श्रीरामके मृदु गूढ़ वचन सुनकर परशुरामजीकी जाँलें खुलीं, तब उन्होंने कहा—

राम रमापति कर धनु लेहू । सँजहु चाप मिटहिं संदेहू ॥

धनुष हाथमें लेते ही आपसे आप चढ़ गया—

सुबत चाप आपहि चढ़ि गयऊ । परसुराम मन विसमय भयऊ ॥

भगवान्का प्रभाव समझ परशुरामजी गद्गद् हो गये और उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको प्रणामकर अपना रास्ता किया ।

चारों भाइयोंका विवाह हुआ । सब अयोध्या लौटे । राज-परिवार सुखके समाजसे पूर्ण हो गया । माताएँ आनन्दमें थर उठीं ।

× × ×

तदनन्तर श्रीभरत-शत्रुघ्न ननिहाज चले गये । परन्तु लक्ष्मणजी नहीं गये । उन्हें ननिहाज ससुरारकी, नगर-अरथकी कुछ भी परवा नहीं, रामजी साथ चाहिये । रामके बिना लक्ष्मण नहीं रह सकते । झाया कायासे अलग हो तो लक्ष्मण रामसे अलग हों, उन्हें रातके समय न तो रामके बिना नींद आती है और न रामके प्रसादको जोड़कर और कुछ जानेको कमी जी ही चाहता है—

न च तेन बिना निद्रा लभते पुरुषोत्तमः ।

मृष्टमजमुपानीतमदनाति न हि तं विना ॥

राम-राज्याभिषेककी तैयारी हुई, लक्ष्मणजीके आनन्दका पार नहीं है । श्रीरामको राजसिंहासनपर देखनेके लिये लक्ष्मण कितने अधिक उत्साहित थे, इसका पता राजसिंहासनके बदले वनवासकी आज्ञा होनेपर लक्ष्मणजीके अश्रुके हुए क्रोधानलको देखनेसे ही लग जाता है । जो बात मनके जितनी अधिक प्रतिकूल होती है, उसपर उतना ही अधिक क्रोध आता है ।

जब श्रीराम वनवास जाना स्वीकार करके कैकेयी और दशरथकी प्रणाम-प्रदक्षिणाकर माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये महलसे बाहर निकले, तब लक्ष्मणजी भी क्रोधमें भरकर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे उनके पीछे-पीछे गये । वे हर हाजतमें श्रीरामके साथ हैं ।

दोनों भाई माता कौसल्याके पास पहुँचे । श्रीरामने सारी कथा सुनायी । माताके दुःखका पार नहीं रहा, माताने रामको रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीराम न माने । श्रीरामका यह कार्य लक्ष्मणजीको नहीं रुचा, वे श्रीरामके पूर्व अनुयायी थे परन्तु श्रीरामको अपना एक जोड़ते देखकर उनसे नहीं रहा गया । लक्ष्मणजीके चरित्रमें यह एक विशेषता है, वे जो बात अपने मनमें अच्छी है, सो बड़े

घोरघार शब्दोंमें रामके सामने रखते हैं, उनकी उक्तियोंका लक्ष्यन करते हैं, कभी बिह्वल होकर विखाप नहीं करते। पुरुषत्व तो उनमें टपका पड़ता है, परन्तु जब श्रीरामका अन्तिम निर्णय जान लेते हैं, तब अपना सारा पक्ष सर्वथा छोड़कर रामका सर्वतोभावसे अनुगमन करने लगते हैं। वधायत्री और कैकेयीके इस आचरणसे दुखी हुई माता कौसल्याको विखाप करते देख आत्मप्रेमी जन्मभार्या मातासे कहने लगे—

अनुरक्तोऽस्मि मावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः ।  
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनष्टेन ते शपे ॥  
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि गमः प्रवेक्ष्यति ।  
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥  
हरामि नीर्यादूदुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः ।  
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ॥  
( वा० रा० २ । २१ । १६-२८ )

‘हे देवि ! मैं सत्य, धनुष, श्मशान और इष्टकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं बधायत्री ही सब प्रकारसे अपने बच्चे भाई श्रीरामका अनुयायी हूँ। यदि श्रीराम जलती हुई अग्निमें या घोर वनमें प्रवेश करें तो मुझे पहले ही उनमें प्रवेश हुआ समझो ! हे माता ! जैसे सूर्य उदय होकर सब प्रकारके अन्धकारको हर लेता है उसी प्रकार मैं अपने पराक्रमसे आपके दुःखको दूर करूँगा। आप और श्रीरामचन्द्र मेरा पराक्रम देखें।’ इन वचनोंमें आत्मप्रेम कितना झलकता है !

इसके अनन्तर वे श्रीरामसे हर तरहकी वीरोचित बातें कहने लगे—‘हे आर्य ! आप तुरन्त राज्यपर अधिकार कर लें। आप किसी तरहका भय न करें, मैं धनुष-बाण हाथमें लिये आपकी सेवा और रक्षाके लिये सर्वदा तैयार हूँ। मैं जब काजरूप होकर आपकी सहायता करूँगा तब किसकी शक्ति है जो कुछ भी विजय कर सके ? अयोध्याभरमें एक कैकेयीका छोड़कर दूसरा कोई भी आपके विरुद्ध नहीं है, परन्तु यदि सारी अयोध्या भी हो जाय तो मैं अयोध्याभरको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मनुष्यहीन कर डालूँगा। भरतके मामा या उनके कोई भी हितैषी मित्र पक्ष लेंगे तो उनका भी वध कर डालूँगा। कैकेयीमें आसक्त पिताजी यदि कैकेयीके उभाड़नेसे हमारे शत्रु होंगे तो उनको कैद कर लूँगा या मार डालूँगा। इसमें मुझे पाप नहीं लगेगा। अन्धाय करनेवालोंको शिक्षा देना धर्म है।’

त्वया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम् ।  
काऽस्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतपारिशासन ॥  
( वा० रा० २ । २१ । २५ )

‘हे शत्रुसुधन ! आपसे और मुझसे वैर करके किसकी शक्ति है जो भरतको राज्य दे सके !’

श्रीरामने जन्मभार्याको सान्त्वना देते हुए कहा—

तव लक्ष्मण ! जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् ।  
विक्रमं चैव सर्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥  
धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।  
धर्मसंश्रितमव्येतत्पितुर्वचनमनुत्तमम् ॥  
साऽहं न शक्यामि पुनर्नियोगमतिवर्तितुम् ।  
पितुर्हि वचनाद्वीर ! कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥  
तदेतां विसृजानार्या क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।  
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्णं मद्वुद्धिरनुगम्यताम् ॥  
( वा० रा० २ । २१ । २६ । १४ । १५ )

‘जन्मभार्या ! मैं जानता हूँ, तुम्हारा मुझमें बड़ा प्रेम है और यह भी जानता हूँ कि तुममें अपराजेय पराक्रम, तेज और सत्य है, परन्तु भाई ! इस लोकमें धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य भरा है। पिताके वचन धर्म और सत्यसे युक्त हैं। हमें उनका पालन करना चाहिये। हे वीर ! सत्य और धर्मको श्रेष्ठ समझनेवाला मैं कैकेयीके द्वारा प्राप्त हुई पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। तुम भी इस क्षत्रधर्मवाली उम्र बुद्धिको छोड़ दो और इस तीक्ष्णताका त्यागकर विशुद्ध धर्मका आश्रय ले मेरे विचारका अनुसरण करो।

हे भाई ! तुम क्रोध और दुःखको छोड़कर धैर्य धारण कर, अपना मन भूलाकर इर्षित हो जाओ। पिताजी सत्यवादी और सत्यप्रतिष्ठ हैं, वे सत्यव्युक्तिके भयसे परछोकेसे डर रहे हैं, मेरे द्वारा सत्यका पालन होनेसे वे निर्भय हो जायेंगे। मेरा अभिप्रेत न रोका गया तो पिताजीका सत्य जायगा, जिससे उनको बड़ा दुःख होगा और उनका दुखी होना मेरे लिये भी बड़े ही दुःखकी बात होगी। हे भाई ! मेरे वनवासमें दैव ही प्रधान कारण है, नहीं तो जो कैकेयी माता मुझपर इतना अधिक स्नेह रखती थी वह मेरे लिये वनवासका बरदान क्यों माँगती ? उसकी बुद्धि वैश्वने ही बिगाड़ी है। आजतक कौसल्या और कैकेयी आदि सभी माताओंने मेरे साथ एक-सा बसाव किया है। कैकेयी मुझे

कभी कटु वचन नहीं कह सकती, यदि वह प्रबल दैवके वशमें न होती। अतएव तुम मेरी बात मानकर दुःख-रहित हो अभिवेककी तैयारीको जरूरी-से-अवधी हटवा दो।

श्रीरामके वचन सुनकर कुछ देर तो लक्ष्मणने सिर नीचा करके कुछ सोचा परन्तु पुरुषार्थकी मूर्ति लक्ष्मणको रामकी यह दलील नहीं जँची, उनकी भी हैं चढ़ गयीं, सिरमें बल पड़ गया, वे क्रोधमें भरे बिलके साँपकी तरह साँस खेने लगे और पृथ्वीपर हाथ पटककर बोले—‘आप ये भ्रमको-सी बातें कैसे कह रहे हैं, आप तो महावीर हैं—

विद्महे वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते।

वीराः संभावितः मानो न दैवं पर्युपासते॥

दैवं पुरुषकोरण यः समर्थः प्रभावितुम्।

न दैवेन विपत्तार्यः पुरुषः सोऽवसीदति॥

द्रव्यन्ति त्वष्ट दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च।

देवमानुषयोऽथ व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति॥

(वा० रा० २/२३/१६-१८)

‘दैव दैव तो वही पुकारा करते हैं जो पौरुषहीन और कायर होते हैं। जिन शूरवीरोंके पराक्रमकी जगत्में प्रसिद्धि है, वे कभी ऐसा नहीं करते। जो पुरुष अपने पुरुषार्थमें दैवको दबा सकते हैं, उनके कार्य दैववश असफल होनेपर भी उन्हें दुःख नहीं होता। हे रघुनन्दन ! आज दैव और पुरुषार्थके पराक्रमको जोग देखेंगे, इनमें कौन बलवान है, इस बातका आज पता लग जायगा।’

अतएव हे आर्य—

ब्रवीहि कोऽद्यैव मया विपुल्यतां त्वामुद्धृष्टप्राणवशः सुदुर्जनैः।

तया तदेव वमुधा वशा मन्वन्तर्धेव मां शशि त्वारिन् किंकरः॥

(वा० रा० २/२३/३०)

‘मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपके किम् शत्रुको आज प्राण, धरा और मियाँसे अलग करूँ (मार डालूँ)। प्रभो ! मैं आपका किंकर हूँ, ऐसी आज्ञा मैं जिससे इस मारी पृथ्वीपर आपका अधिकार हो जाय !’ इतना कहकर लक्ष्मणकी राम-प्रेममें रौने लगे। भगवान् श्रीरामने अपने हाथोंसे उनके आँसू पोंछकर उन्हें बार-बार मालुमा देते हुए कहा कि ‘भाई ! तुम निश्चय समझो कि माता-पिताकी आज्ञा मानना ही पुत्रका उत्तमोत्तम धर्म है, इसीलिये मैं पिताकी आज्ञा माननेको तैयार हुआ हूँ। फिर इस राज्यमें रक्षा ही क्या है, वह तो स्वयंकी दरवाजालिके सहसा है—

मदिदं दृश्यते सर्वं राज्यं देहादिकं च यत्।

यदि सर्वं भवेत्तत्र आयासः सफलश्च ते॥

भोगमेववितानस्य विमुक्तैरेव चक्षताः।

आयुरप्यग्निस्तप्तलोहस्यजलविन्दुवत्॥

क्रोधमूढो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्।

धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं परित्यज॥

तस्माच्छान्तिं भजस्वाद्य शत्रुर्व भवेन्न ते।

देहेन्द्रियमनःप्राणबुद्ध्यादिभ्यो विरुद्धणः॥

आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराकृतिः।

यावदेहेन्द्रियप्राणैर्मिन्नत्वं नात्मनो विदुः॥

तावत्संसारदुःखैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः।

तस्मात्त्वं सर्वदा मिन्नमात्मानं हृदि भावय॥

(अध्यात्मरामायण २/४)

‘यदि यह सब राज्य और शरीरादि हरथ पदार्थ साथ होने लगे तबमें तुम्हारा परिधम कुछ सफल भी हो सकता, परन्तु ये इन्द्रियोंके भोग तो बाढ़लोंके समूहमें बिजलीकी चमकके समान चमक हैं और यह आयु अग्निले नये हुए लोहेपर जलकी बूँदके समान क्षयविनशील है। भाई ! यह क्रोध ही मानसिक सम्तापकी अड़ है, क्रोधमें ही संसारका बन्धन होता है। क्रोध धर्मका नाश कर डालता है, अतएव इस क्रोधको त्यागकर शान्तिका सेवन करो, फिर संसारमें तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। आत्मा तो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि आदि सबमें बिलम्ब ही है। वह आत्मा शुद्ध, स्वयंप्रकाश निर्विकार और निराकार है। जबतक यह पुरुष आत्माको देह, इन्द्रिय, प्राण आदिमें अलग नहीं जानता, तब तक उसे संसारके जन्म-मृत्यु-जनिन दुःखोंसे पीड़ित होना पड़ता है, अतएव हे लक्ष्मण ! तुम अपने हृदयमें आत्माको सदा-सर्वदा इनमें पृथक् (इनका हटा) समझो !’

×

×

श्रीराम बन जानेको तैयार हो गये, सीताजी भी साथ जाती हैं, अब लक्ष्मणजीका क्रोध तो शान्त है परन्तु वे श्रीरामके साथ जानेके लिये व्याकुल हैं, दोबकर श्रीरामके चरणोंमें छोट जाने हैं और रोते हुए कहते हैं—‘हे रघुनन्दन आपने मुझमें कहा था कि मैं मेरे विचारका अनुसरण कर, फिर आज आप मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हैं

न देवलोकाक्रमणं नामरत्नमहं वृणे।

ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना॥

(वा० रा० २/३/१२)

हे भाई ! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, मोक्ष वा संसारका कोई भी ऐश्वर्य नहीं चाहता।’ कहाँ तो लक्ष्मणकी यह

लेबोमयी विकराह मूर्ति और कहाँ वह माताके सामने  
बचनेकी-सी करिबाए ! वही तो लक्ष्मणजीके भ्रातृप्रेमकी  
विशेषता है । श्रीरामजी भाई लक्ष्मणके इस व्यवहारसे  
सुख हा गये और उन्हें झालीसे लगाकर बोले—

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः ।

प्रिय प्राणसमो वदयो विधेयश्च सखा च मे ॥

(वा० रा० २।११।१०)

भाई ! तुम मेरे स्नेही हो, धर्मपरायण, धीर, सदा सत्पथ-  
में स्थित हो, मुझे माझोंके समान प्रिय हो, मेरे वरावर्ती हो,  
मेरे आज्ञाकारी हो और मेरे मित्र हो ! इसमें कुछ भी  
सन्देह नहीं है, परन्तु तुम्हें साथ ले चलनेसे बड़ा दुखी  
पिता और शोकशक्तिता माताओंको कौन सान्त्वना देगा ?

मात-पितु-गुरु-स्वामि सिद्धसिंघ धीर करहि मुभाव ।

लेहेउ लाम तिन्ह जनमकर नतर जनम जग जाय ॥

अस जिय जानि मुनहु सिद्ध भाई करहु मातु-पितु पद सेवकाई ॥

रहु करहु सब कर परितारु । नतर तात होहि बड़ दोष ॥

वही ही शुभ शिक्षा है, परन्तु बानक तो मेवकी स्वाति-  
वृद्धों को छोड़कर गंगाकी ओर भी नहीं ताकना चाहता, एक-  
लिह लक्ष्मण एक बार तों सहम गये प्रेम-वश कुछ बोख न  
सके, फिर अकुलाकर चरणोंमें गिर पड़े और आँसुओंसे  
चरण धोते हुए बोले—

दीन्ह मोहिं मिस नीक गोसाई । लागि अमम मोरी कदवाई ॥

नरवर धीर धरम-भुर-बारी । निगम नीति कहैं ते अधिकारी ॥

मैं मिसु प्रनु-सनेह प्रतिपाला । मंदर मेरु कि लेह मराला ॥

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ मुमाउ नाथ पतियाहू ॥

जहँ लमि जगत सनेह सगई । प्रीति प्रतीति निगम निजगई ॥

मेरे सर्वाह एक तुम्ह स्वामी । दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥

धरमनीति उपदसिय ताही । कीरति, भूति, मुगति प्रिय ताही ॥

मन क्रम बचन चरनरत होई । कृपासिंधु परिहसिय कि सोई ॥

भगवान् ने देखा कि अब लक्ष्मण नहीं रहेंगे, तब उन्हें  
आज्ञा दी, अर्थात्—

मौगहु बिदा मातुसन जाई । आवहु बेमि चलहु वन भाई ॥

लक्ष्मण इतनेसे माता सुमित्राजीके पास गये कि कहाँ  
माता रोक न दें । परन्तु वह भी लक्ष्मणकी ही आर्षी,  
उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकप्रजाम् ।

अयोध्यामटवीं सिद्धिं गच्छ तात यथायुक्तम् ॥

५८

जाओ बेटा ! तुमसे वनकी आशों, श्रीरामको दशरथ,  
सीताको मुझे और वनकी अयोध्या समझना । बेटा !

अवध तहाँ जहाँ रामनिवास । तहाँ दिवस जहाँ मानुप्रकास ॥

अस त्रिय जानि संग वन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

तुम्होहि माग राम वन जाहीं । दूर हैतु तात कहु नाहीं ॥

पुत्रवती जुबती जग सोई । रघुपति-मगत जासु सुत होई ॥

नतर बौझ मलि बादि बिबानी । राम-विमुक्त सुतते बड़ि हानी ॥

लक्ष्मणका मनचाहा हो गया, वे दौड़कर श्रीरामके  
पास पहुँच गये और साताके साथ दोनों भाई अयोध्या-  
वासियोंका स्वाकर वनका धोर खल दिये ।

×

×

×

एक दिनकी बात है, वनमें चलते-चलते लक्ष्मण हो  
गया । कभी पैदल चलनेका किसीको अभ्यास नहीं था,  
तीनों जाने थके हुए थे, वनमें चारों ओर काँके साँप  
धूम रहे थे । लक्ष्मणने जगह साफकर एक पेड़के नीचे  
कामका पत्ते बिछा दिये । श्रीराम-सीता उसपर बैठ गये ।  
लक्ष्मणजीने भोजनका सामान छुटाया । श्रीराम इस कष्टको  
देखकर स्नेहवश लक्ष्मणसे बार-बार कहने लगे कि 'भाई !  
तुम अयोध्या लौट जाओ, वहाँ जाकर माताओंको सान्त्वना  
दो । वहाँके कष्ट मुझको और सीताको ही भोगने दो ।'  
इसके उत्तरमें लक्ष्मणने बड़े ही मार्मिक शब्द कहे—

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव ।

मुहूर्तमपि जीवावो अलान्मत्स्याविनोद्धृता ॥

नहि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप !

द्रष्टुमिच्छेममद्याहं स्वर्गं चापि त्वया विना ॥

( वा० रा० २।५३।३१-३२ )

'हे रघुनन्दन ! सीताजी और मैं आपसे अलग रहकर  
उसी तरह नहीं जी सकते, जैसे जलसे निकासनेपर मछलियाँ  
नहीं जी सकतीं । हे शत्रुनाशन ! आपको छोड़कर मैं माता,  
पिता, भाई शत्रुघ्न और स्वर्गको भी नहीं देखना चाहता ।'

धन्य भ्रातृ-प्रेम ! इसीलिये तो श्रीराम भी लक्ष्मणके  
साथ प्राण देनेको नैवार हुए थे !

जिस समय निषादराज गुहके वहाँ श्रीराम-सीता रातके  
समय लक्ष्मणजीके द्वारा तैयार की हुई पासपत्तोंकी शक्या-  
पर सोते हैं उस समय भी लक्ष्मण कुछ दूरपर खड़े पहरा  
दे रहे हैं, गुहक आकर कहता है 'आपको जागनेका अभ्यास

नहीं है आप सो जाइये। मैंने पहलेका सारा प्रयत्न कर दिया है।' इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी कहने लगे-

कथं दाशरथी भूमौ शयाने सह सीतया ।

शक्या निद्रा मया तन्वुं जीवितानि सुखानि वा ॥

( बा० ग० २।८६।१० )

'दाशरथनन्दन श्रीराम सीताके साथ जमीनपर सो रहे हैं, फिर मुझे कैसे तो नींद आ सकती है और कैसे मेरा जीवन सुखकर हो सकता है ?'

वनमें श्रीरामचन्द्रजी हर तरहसे श्रीराम-सीताकी सेवा करते हैं। चित्रकूटमें काठ और पत्ते इकट्ठे करके लक्ष्मणने ही कुदरतसे मिट्टी खोदकर सुन्दर कुटिया बनायी थी। फल-मूल खाना, हवनकी सामग्री इकट्ठी करना, सीताके गहने-कपड़ोंकी बाँसकी पेटी तथा शस्त्रास्त्रोंको उठाकर चखना, आदिकी रातमें दूरसे खेतोंमेंसे होकर पानी भरकर खाना। रातों रात पहचाननेके लिये पेड़ों-पत्थरोंपर पुराने कपड़े लपेट रखना, काढ़ देना, चौका देना, बैठनेके लिये बेड़ी बनाना, जलानेके लिये काठ ईंधन इकट्ठा करना और रातभर जागकर पहरा देते रहना, यह सारे काम लक्ष्मणजीके जिम्मे हैं और बड़े इर्षके साथ वे सब कार्य सुचारुरूपसे करते हैं।

सेवहिं लखन करम मन बानी । जाइ न सीत सनेह बखानी ॥

सेवहिं लखन सीय-रघुबीरहिं । जिमि अविचेदी प्रथम सरौरहिं ॥

आज्ञाकारितामें तो लक्ष्मणजी बड़े ही आदर्श हैं। कितनी भी बिपरीत आज्ञा क्यों न हो, वे बिना 'किन्तु-परन्तु' लिये चुपचाप उसे मिर चढ़ा लेते हैं, आज्ञा-पालनके कुछ दृष्टान्त देखिये-

१-वनवासके समय आपने आज्ञा मानकर लक्ष्मणकी सारी इच्छा एकदम जोड़ दी।

२-भरतके चित्रकूट जानेके समय बड़ा गुस्ता आया, परन्तु श्रीरामकी आज्ञा होने ही तथ्य समझकर शान्त हो गये।

३-बार-बारसे बुझ करनेके समय श्रीरामने आज्ञा दी कि 'मैं इनके साथ युद्ध करना हूँ, तुम सीताजीको साथ ले जाकर पर्वत-गुफामें आ बैठो।' लक्ष्मण-सरीसे तेजस्वी बीरके लिये लड़ाईके मैदानसे हटनेकी यह आज्ञा बहुत ही कड़ी थी, परन्तु उन्होंने चुपचाप इसे स्वीकार कर लिया।

४-सीताजीकी अशोकवाटिकासे पाककीमें चारही थीं। श्रीरामने वैदक ज्ञानकी विभीषणकी आज्ञा दी इससे लक्ष्मणजीको एक बार दुःख हुआ, परन्तु कुछ भी नहीं बोले।

५-श्रीरामके द्वारा तिरस्कार पायी हुई सीताने जब पिता जलानेके लिये लक्ष्मणजीकी आज्ञा दी, तब श्रीरामका हुशारा पाकर मर्म-वेदनाके साथ इन्हींमें चिता तैयार कर दी।

६-सीता-वनवासके समय श्रीरामकी आज्ञासे परधरका-सा कजेजा बनाकर अन्तरके दुःखसे दग्ध होते हुए भी सीताजीकी वनमें जोड़ आये।

इनके जीवनमें राम-आज्ञा-भंगके सिर्फ दो प्रसंग आते हैं, जिनमें प्रथम तो, सीताको लकेले पर्यंकुटीमें बाँधकर माया-सुगको मारनेके लिये गये हुए श्रीरामके पाम जाना और दूसरा मुनि दुर्वासाके शापसे राजकी बचानेके लिये अपने त्यागे जानेका महान् कष्ट स्वीकार करते हुए भी दुर्वासाकी आज्ञाके पाम जाने देना। परन्तु वे दोनों ही अवसर अपवादस्वरूप हैं।

सीताजीके कटु वचन कहनेपर लक्ष्मणने उन्हें समझाया कि 'माता, यह शब्द मायावी माराचके हैं, श्रीरामको त्रिभुवनमें कोई नहीं जीत सकता, आप धैर्य रखें। मैं रामकी आज्ञाका उल्लंघन कर आपको लकेली बाँधकर नहीं जा सकता।' इतनेपर भी जब उन्होंने तमककर कहा कि 'मैं समझती हूँ, न भरतका वृत्त है, तेरे मनमें काम-विकार है, न मुझे प्राप्त करना चाहना है, मैं आगमें जल मरूँगी परन्तु तेरे और भरतके हाथ नहीं आ सकता।' इन वचन-वाक्योंने पवित्र-हृदय जितेन्द्रिय लक्ष्मणका हृदय बिध गया, उन्होंने कहा, 'हे माता वैदेही ! आप मेरे लिये देवस्वरूप हैं, इससे मैं आपको कुछ भी कह नहीं सकता, परन्तु मैं आपके शब्दोंको स्मरण करनेमें समर्थ हूँ। हे वनदेवताओं ! आप सब साक्षी हैं, मैं अपने बड़े भाई रामकी आज्ञामें रहना हूँ, तिसपर भी माता सीता की-स्वभावसे मुझपर मन्देह करती हैं। मैं समझता हूँ कि कोई मारी संकट पानेवाला है। माता ! आपका कल्याण हो, वनदेवता आपकी रक्षा करें। मैं जाता हूँ।' इस अवस्थामें लक्ष्मणका बड़ासे जाना दोषाग्रह नहीं माना जा सकता।

दूसरे प्रसंगमें तो लक्ष्मणने कटुम्बसहित भाईको और भाईके साक्षात्कारको शापसे बचानेके लिये ही यह त्याग किया था।

कुछ लोग कहते हैं कि लक्ष्मणजी रामसे ही प्रेम करते थे, भरतके प्रति तो उनका बिशेष बना ही रहा, परन्तु यह बात ठीक नहीं। रामकी आज्ञा करनेवालेको अवश्य ही वे जमा नहीं कर सकते थे, परन्तु जब उन्हें मालूम हो गया कि भरत बोधी नहीं हैं तब लक्ष्मणके अन्तःकरणमें अपनी कृतिपर बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ और वे भरतपर पूर्ववत् अद्वा तथा स्नेह करने लगे। एक समय जावेकी शत्रुमें उनके अन्दर शीतकी भयानकताको देखकर लक्ष्मणजी मन्दिप्रामनिवासी भरतकी चिन्ता करते हुए कहते हैं—

अस्मिन्तु पुरुषव्याप्त काले दुःखसमन्वितः ।  
तपश्शरित् धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे ॥  
त्यक्त्वा राज्यं मानं भोगांश्च विविधान् बहून् ।  
तपस्वी नियताहारः शंते शीते महीतले ॥  
सोऽपि वेलाभिमं नूनमभिषेकार्थमुद्यतः ।  
वृतः प्रकृतिर्मिर्मलं प्रयाति सरयू नदीम् ॥  
अत्यन्तमुत्सवंदः मुकुमारो हिमार्दितः ।  
कथं त्वपररात्रेण सरयूमवगाहते ॥  
पक्षपत्रेणः श्यामः श्रीमालिहृदरो महान् ।  
धर्मज्ञः सत्यवादी च हीनिषेधो जितेन्द्रियः ॥  
प्रियाभिभाषी मधुरो दीर्घबाहुर्गन्दिमः ।  
मन्त्रजय विविधान् भोगानां सन्निभः श्रितः ॥  
जितः स्वर्गस्तव मात्रा भरतन महत्तमना ।  
अनस्यमपि नापस्ये यस्त्वामनुविधीयते ॥

( ब० ग० ३१६।२३ ३३ )

‘हे पुरुषभेद ! ऐसे अत्यन्त शीतकालमें धर्मात्मा भरत आपके प्रेमके कारण कष्ट सहकर तप कर रहे होंगे। अहो ! नियमित आहार करनेवाले तपस्वी भरत राज्य, सम्मान और विविध प्रकारके भोग-विखासोंको त्यागकर इस शीतकालमें ठंडी जमीनपर सोते होंगे। अहो ! भरत भी इसी समय उठकर अपने साथियोंको लेकर सरयूमें नहाने जाते होंगे। अत्यन्त सुखमें पड़े हुए सुकुमार शरीरवाले भरत इतने तबके सरयूके अत्यन्त शीतल जलमें कैसे स्नान करते होंगे ? कमलनवन श्यामसुन्दर आई भरत सदा नीरोग, धर्मज्ञ, सत्यवादी, राजावश परकीकी ओर कभी न ताकनेवाले, जितेन्द्रिय, प्रिय और मधुर-भाषी और जम्बी सुजायोंवाले महात्मा हैं। अहो ! भरतने सब प्रकारके सुखोंका त्यागकर सब प्रकारसे आपका ही आश्रय ले लिया है। महात्मा आई भरतने स्वर्गको भी

भीत लिया क्योंकि आप वनमें हैं इसलिये वे भी आपकी ही भाँति तपस्वी-धर्मका पालनकर आपका अनुसरण कर रहे हैं।

इन बातोंको पढ़नेपर भी क्या यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मणका भरतके प्रति प्रेम नहीं था ? इनमें तो उनका प्रेम टपका पड़ता है।

× × ×

लक्ष्मणजी अपनी बुद्धिका भी कुछ समयक न रखके श्रीराम-सेवामें किसप्रकार अर्पित-प्राण थे, इस बातका पता तब लगता है कि जब पञ्चवटीमें भगवान् श्रीराम आज्ञा-सा स्थान खोजकर पर्यकुटी तैयार करनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा देते हैं। तब सेवा-परायण लक्ष्मण हाथ जोड़कर भगवान् से कहते हैं कि हे प्रभो ! मैं अपनी स्वतन्त्रतासे, कुछ नहीं कर सकता।

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वमि बर्षानं स्थितं ।

स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां बद्ध ॥

‘हे काकुत्स्थ ! चाहे सैकड़ों वर्ष भीत जायें पर मैं तो आपके ही आधीन हूँ। आप ही पसन्द करके उत्तम स्थान बतावें।’

इसका यह मतलब नहीं है कि लक्ष्मणजी विवेकहीन थे। वे बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे एवं समय-समयपर रामकी सेवाके लिये बुद्धिका प्रयोग भी करते थे किन्तु जहाँ रामके किये कामपर ही पूरा सन्तोष होता वहाँ वे कुछ भी नहीं बोलते थे। उनमें तेज और क्रोधके भाव थे, पर वे वे सब रामके लिये ही। लक्ष्मण बिलाप करना, विद्वल होना, डिगना और रामविरोधीपर जमा करना नहीं जानते थे। इसीसे अन्य दृष्टिसे देखनेवाले लोग उनके चरित्रमें दोषोंकी कल्पना किया करते हैं परन्तु लक्ष्मण सर्वथा निर्दोष, रामप्रिय, रामरहस्यके ज्ञाता और आदर्श आता हैं। इनके ज्ञानका समूचा देखा हो तो गुहके साथ इन्होंने एकान्तमें जो बातें की थी, उन्हें पढ़ देखिये। जब निषादने विषादकश कैकेयीको बुरा भला कहा और श्रीसीतारामजीके भूमि-शयन-को देखकर दुःख प्रकट किया तब लक्ष्मणजी नज्रताके साथ मधुर वाणीसे उससे कहने लगे—

काहु न कोठ सुख-दुखकर दाता निजकृत करम भोग सब आता ॥  
जोग नियोग भोग भरु मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥  
जनम मरन जहँ लगि जगजालू । संपति विपति करम अरु कालू ॥  
धरनि धाम धन पुर परिवार । सरग नरक जहँ लगि न्यवहारू ॥  
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं । मोह-मूक परमारय नाहीं ॥



सपने होइ भिसारि नृप रंक नाकपति होइ ।

जागे हानि न लाभ कलु तिमि प्रपन्न जिय जोइ ॥

अस बिचारि नहि कीजिय रोष । काहुहि बादि न देख्य दोष ॥

मोहनिसा सब सोबनिहारा । देखिय सपन अनेक प्रकारा ॥

एहि जग-जामिनि जागहि जोगी । परमारथी प्रपन्नबियोगी ॥

जानिय तबहि जीव जग आगा । जब सब बिषय-बिलास निरागा ॥

होइ बिबेक मोहभ्रम भागा । तब रघुनाथ-चरन अनुरागा ॥

सत्वा परम परमाथ्य पहु । मन-कम-बचन राम-पद-नेहू ॥

राम ब्रह्म परमाथ्य रूपा । अबिगत, अलस, अनादि अनूपा ॥

सकल बिकार-रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाळ ।

करत चरित धरि मनुजतन सुनत मिटहि जग-जाल ॥

सत्वा समुझि अस बरिहरि मोहू । सिय-रघुबीर-चरन गत होहू ॥

श्रीलक्ष्मणजीकी नहिमा कौन गा सकता है ? इनके समान परमार्थ और प्रेमका, बुद्धिमत्ता और सरलताका, परामर्श और आज्ञाकारिताका नेत्र और मैत्रीका विशुद्ध समन्वय इन्हींके चरित्रमें है । सारा संसार श्रीरामका गुणगान करता है, श्रीराम भरतका गुण गाते हैं और भरत लक्ष्मणके भाग्यकी मशहूराना करते हैं । फिर हम किस गिनतीमें हैं जो लक्ष्मणजीके गुणोंका संक्षेपमें बखान कर सकें !

### श्रीशत्रुघ्नका भ्रातृ-प्रेम

रघुव्रतन पद-कमल नमामी । एर सुमील भगत मनुगामी ॥

रामदासानुदास अंशत्रुघ्नी भगवान् श्रीराम और भरत-लक्ष्मणके परमप्रिय और आज्ञाकारी बन्धु थे । शत्रुघ्नी मौनकर्मी, प्रेमी, सहाचारी मित्रभार्या, सत्यवादी, विषय-विरागी, सरल, तेजपूर्ण, गुरुजनोंके अनुगामी, बीर और शत्रुनापस थे । श्रीरामायणमें इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण नहीं मिलता परन्तु जो कुछ मिलता है, उससे इनकी महत्ताका अनुमान हो जाता है । जैसे श्रीलक्ष्मणजी भगवान् श्रीरामके चिर-संगी थे, इसीप्रकार लक्ष्मणानुज शत्रुघ्नी श्रीभरतजीकी सेवामें नियुक्त रहते थे । भरतजीके साथ ही आप उनके ननिहाल गये थे और पिताकी शय्या पर सावधी जाँटे थे । अयोध्या पहुँचनेपर कैकेयीजीके द्वारा पितामह और राम-भौता-लक्ष्मणके वनवासका समाचार सुनकर इनको भी बड़ा भारी दुःख हुआ । भाई लक्ष्मणके शीर्षसे

आप परिचित थे, अतएव इन्होंने शोकपूर्ण हृदयसे बड़े आश्चर्यके साथ भरतजीसे कहा—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे किं पुनरात्मनः ।

स रामः सत्त्वसम्पन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम् ॥

बलवान्वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।

किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम् ॥

( बा० ग० २ । ७८ । २-३ )

‘श्रीराम, जो दुःखके समय सब भूतप्राणियोंके आश्रय हैं, वे हमजाँगीके आश्रय तो हैं ही, ऐसे महाबलवान् राम एक स्त्री (कैकेयी)के प्रेरणासे ही वनमें चले गये । अहा ! श्रीलक्ष्मण तो बलवान् और महापराक्रमी थे, उन्होंने पिताको समझाकर रामको वन जानेसे क्यों नहीं रोक़ा ?’ इस समय शत्रुघ्नी दुःख और कोपसे भरे थे, इसमेंमें राम-विरहसे दुर्गा एक द्वारपालने आकर कहा कि ‘हे राजकुमार ! जिसके पदचिह्नसे श्रीरामका वन जाना पड़ा, और महाराजकी शय्या हुई, वह कृपा पापिनी कुञ्जा बलामृचखोंसे सजा हुई खड़ी है, आप उचित समयमें तो उसे कुछ शिखा दें ।’ कुञ्जा भरतजीसे इनाम लेने आ रही थी और उसे दरबारपर देखते ही द्वारपालने अन्दर आकर शत्रुघ्णसे ऐसा कह दिया था, शत्रुघ्णका बड़ा गुस्सा आया, उन्होंने कुञ्जाका चाटी पकड़कर उसे घसीटा, उसने त्राससे चीख़ मारी । यह दृश देखकर कुञ्जाका अन्य सखियाँ तो दौड़कर श्रीकौसल्याजीके पास खड़ी गयीं, उन्होंने कहा कि अब मधुरभाषिणी, दयामयी कौसल्याके शरण गये बिना शत्रुघ्ण हमजाँगीको भी नहीं छोड़ेंगे । कैकेयी बुझाने आयी तो उनको भी पटक़ार दिया । आगिर भरतने आकर शत्रुघ्णसे कहा—‘भाई ! झों-जाति अवश्य है, नहीं तो मैं ही कैकेयीको मार डालता—

इमांश्चि हतां कुञ्जा यदि जानाति राघवः ।

त्वां च मां चेत धर्मदत्ता नास्मि माषिष्यते ध्रुवम् ॥

( बा० ग० २ । ७८ । २३ )

‘भाई, यह कुञ्जा यदि तुम्हारे हाथसे मारी जावगी तो श्रीराम निश्चय ही तुमसे और मुझसे खोजना छोड़ देंगे ।’ भरतजीके बचन सुनकर शत्रुघ्नीने उसको ज़ोर दिया । यहाँ यह पता लगता है कि प्रथम तो रामकी धर्मनीतिमें झों-जातिका किनारा आकर था, स्त्री अवश्य समझी जाती थी । दूसरे, शोकाकुल भरतने इस अवस्थामें भी भाई





सीताजीको अग्नि-परीक्षा ।  
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृहणीष्व मैथिलीम् ।  
न किञ्चिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥



शत्रुघ्नको आतृ-प्रेमके कारण रामकी राजनीति बतलाकर अचमत्सरे रोका, और तीसरे, रोचमें भरे हुए शत्रुघ्नने भी तुरन्त भाईकी बात मान ली। इससे हमबोगोंको यथायोग्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो लोग यह आशय किया करते हैं कि प्राचीन कालमें भारतीय पुरुष स्त्रियोंको बहुत दुष्कृष्ट बुद्धिसे देखते थे, उनको इस प्रसंगसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

× × ×

इसके अनन्तर शत्रुघ्नजी भी भरतजीके साथ श्रीरामको लौटाने बनमें जाते हैं, और वहाँ भरतजीकी आज्ञासे रामकी कृटिया ईँकते हैं। जब भरतजी दूरसे श्रीरामको देखकर दौड़ते हैं, तब श्रीरामदर्शनोत्सुक शत्रुघ्न भी पीछे-पीछे दौड़े जाते हैं, और—

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य वन्दे चरणौ रुदन् ।

तावुमी च समास्तिग्य रामोऽभ्यर्चयन्त्यर्चयत् ॥

( बा० रा० २ । ३३ । १० )

ये भी रोने हुए श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करते हैं श्रीराम आत्मनसे उठ अपने हाथोंसे उन्हें उठाने हैं, फिर दोनों छाशने बिट्ट जाने हैं। इसा प्रकार शत्रुघ्न अपने बड़े भाई जन्मज्जालसे भी मिलते हैं—मेटर लम्बन लम्बकि लघु मांघ ।

इसके बाद श्रीराम भरतके संवादमें जन्मज्ज-शत्रुघ्नका बीचमें बोलनेका कोई काम नहीं था। दोनोंके अपने-अपने नेता बड़े भाई मौजूद थे। शत्रुघ्नने तो भरतको अपना जीवन सौंप ही दिया था। इसीसे भरत कह रहे थे कि—

सानुत्र पठह्य मांरि वन . कीत्रय सबहि सनाथ ।

शत्रुघ्नजीकी सम्मति न होनी या शत्रुघ्नके आनृपेमपर अरोसा न होता तो भरतजी ऐसा क्योंकर कह सकते ?

पातुका लेकर लौटनेके समय श्रीरामने दोनों भाई पुनः गले जगकर मिलते हैं। रामकी प्रशिक्षणा करते हैं। जन्मज्जकी भाँति शत्रुघ्नजी भी कुछ तेज थे, कैकेयीके प्रति उनके मनमें रोच था, श्रीराम इस बातको समझते थे, इससे बनसे विदा होते समय श्रीरामने शत्रुघ्नजीको वात्सल्यताके कारण शिक्षा देते हुए कहा—

मातरं रक्ष कैकेयी मा रोषं कुरु तां प्रति ।

मया च सीतयाचैव शप्ताऽसि रघुनन्दन ॥

( बा० रा० २ । ११२ । २० )

‘हे भाई, तुम्हें मेरी माँ सीताकी राख है तुम माता कैकेयीके प्रति कुछ भी क्रोध न करके उनकी रक्षा करते

रहना।’ इतना कहनेपर उनकी आँखें प्रेमाशुओंसे भर गयीं ! इससे पता लगता है कि श्रीराम-शत्रुघ्नमें परस्पर कितना प्रेम था !

इसके बाद शत्रुघ्नजी भरतजीके साथ अयोध्या लौटकर उनकी आज्ञानुसार राज और परिवारकी सेवामें रहते हैं तथा श्रीरामके अयोध्या लौट जानेपर प्रेमपूर्वक उनसे मिलते हैं ‘पुनि प्रभु हरपि शत्रुघ्न भेटे हृदय लगाए ।’ तदनन्तर उनकी सेवामें लग जाते हैं। श्रीरामका राज्याभिषेक होता है और रामराज्यमें सबका जीवन सुख और धर्ममय बीतता है।

एक समय ऋचियोंने आकर श्रीरामसे कहा कि जन्मज्जसुर नामक राक्षस बड़ा उपद्रव कर रहा है, वह प्राणियाँको—कास करके तपस्वियोंको पकड़कर खा जाता है। इस सब बड़े ही दुस्वी हैं। श्रीरामने उनसे कहा कि ‘आप भव न करें मैं उस राक्षसको मारनेका प्रबन्ध करता हूँ।’ तदनन्तर श्रीरामने अपने भाइयोंसे पूछा कि ‘जन्मज्जसुरको मारने कौन जाता है ?’ भरतजीने कहा ‘महाराज ! आपकी आज्ञा होगी तो मैं चला जाऊँगा।’ इसपर जन्मज्जसुर शत्रुघ्नजीने नज्जतासे कहा—‘हे रघुनाथजी ! आप जब बनमें थे तब महात्मा भरतजीने बड़े-बड़े दुःख सहकर राज्यका पावन किया था, ये नगरसे बाहर नन्दीगाममें रहते थे, कुशपर सोते थे, फलमूल खाते थे, और जटावलकल धारण करते थे। अब मैं दास जब सेवामें उपस्थित हूँ तब इन्हें न भेजकर मुझे ही भेजना चाहिये।’ जगवान् श्रीरामने कहा—‘अच्छी बात है तुम्हारी इच्छा है तो ऐसा ही करो, मैं तुम्हारा मधुदैत्यके सुन्दर नगरका राज्याभिषेक करूँगा, तुम शूरवीर हो, नगर बसा सकते हो, मधुराक्षसके पुत्र जन्मज्जसुरको मारकर धर्म-बुद्धिसे वहाँका राज्य करो। मैंने जो कुछ कहा है, इसके बदलेमें कुछ भी न कहना, क्योंकि बड़ोंकी आज्ञा आज्ञाओंकी माननी चाहिये। तुम वशिष्ठ तुम्हारा विधिवत् अभिषेक करेंगे अतएव मेरी आज्ञासे तुम उसे स्वीकार करो।’ श्रीरामने अपने मुँहसे बड़ोंकी आज्ञाका महत्त्व इसीखिये बतलाया कि वे शत्रुघ्नकी त्याग-वृत्तिको जानते थे। श्रीराम ऐसा न कहते तो वे सहजमें राज्य स्वीकार न करते। इस बातका पता उनके उत्तरसे लगता है। शत्रुघ्नजी बोले—

‘हे नरेश्वर ! बड़े भाईकी उपस्थितिमें छोटेका राज्याभिषेक होना मैं अचमत्सर समझता हूँ। इधर आपकी आज्ञाका पावन भी अवश्य करना चाहिये। आपके द्वारा ही मैंने यह धर्म सुना है। आभरतजीके बीचमें मुझको कुछ भी नहीं बोलना चाहिये था—

व्याहृतं दुर्वचं धीरं हन्ताऽस्मि त्वर्षे मृषे ।

तस्यैव मे दुरुक्तस्य दुर्गतिः पुरुषर्षभ ॥

उत्तरं नहि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ।

अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥

( बा० रा० २।६३।४-५ )

‘हे पुरुषभट्ट ! ‘जबबासुरको मैं मारूँगा’ मैंने वे दुर्वचन कहे, इसीसे मेरी यह दुर्गति हुई। बड़े भाइयोंके बीचमें कभी नहीं बोलना चाहिये। ऐसा करना अधर्मयुक्त और परलोकका नाश करनेवाला है।’ धन्य शत्रुघ्नजी, आप राज्य-प्राप्तिको ‘दुर्गति’ समझते हैं ! कैसा आदर्श त्याग है ! आप फिर कहते हैं कि ‘हे काकुत्स्थ ! एक दण्ड तो मुझे मिल गया, अब आपके बचनोपर कुछ बोलूँ तो कहीं दूसरा दण्ड न मिल जाय, अतएव मैं कुछ भी नहीं कहना। आपकी इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ।’

भगवान्की आज्ञामें शत्रुघ्नका राज्याभिषेक हो गया, तदनन्तर उन्होंने जबबासुरपर चढ़ाई की, श्रीरामने चार हजार घोड़े, दो हजार रथ, एक सौ उत्तम हाथी, ऋष-विक्रय करने-वाले व्यापारी, वर्षके लिये एक लाख स्वर्णमुद्राएँ साथ हीं। और भौति-भौतिके समुपदेश देकर शत्रुघ्नको विदा किया। इससे पता लगता है कि शत्रुघ्नजी आंगमको कितने प्यारे थे।

रास्तेमें ऋषियोंके आश्रममें ठहरने हुए वे जाने लगे। बाष्मीकिर्वाके आश्रममें भी एक गान ठहरे, उसी गानको सीताजीके लव-कुशका जन्म हुआ था। अतः वह रात शत्रुघ्नजीके लिये बड़े आनन्दकी रही। शत्रुघ्नजीने मधुपुर जाकर जबबासुरका वध किया। देवता और ऋषियोंमें आशीर्वाद दिये। तदनन्तर बारह साजतक मधुपुरांमें रहकर शत्रुघ्नजी वापस श्रीरामदर्शनार्थ खीटे। रास्तेमें फिर बाष्मीकिर्वाके आश्रममें ठहरे। अब लव-कुश बारह वर्षके हो गये थे। मुनिने उनको रामायणका गान सिखाया दिया था। अतएव मुनिकी आज्ञामें लव-कुशने शत्रुघ्नजीको रामायणका मनोहर और कल्याणदायक गान सुनाया। राम-महिमाका गान सुनकर शत्रुघ्न मुग्ध हो गये—

श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंज्ञो बाष्पलोकनः ।

स मुहूर्तमिवासंज्ञो विनिश्चय्य मुहुर्मुहुः ॥

( बा० रा० ३।७२।१३ )

‘उस गानको सुनकर पुरुषमिह शत्रुघ्नजी आँसुओंमें आँसुओंकी धारा बह चली, और वे बेहोश हो गये। उस

बेहोशीमें एक घड़ी तक उनके जोर-जोरसे साँस चलता रहा।’ अन्य है !

इसके अनन्तर उन्होंने अयोध्या पहुँचकर श्रीरामसहित सब भाइयोंके दर्शन किये। फिर कुछ दिनों बाद मधुपुरी खीट गये।

× × ×

परम धामके प्रयाणका समय आया, इन्द्रियविजयी शत्रुघ्नको पता लगने ही वह अपने पुत्रोंको राज्य सौंपकर खीट हुए श्रीरामके पास आये और चरखोंमें प्रणामकर गद्गदकण्ठसे कहनेलगे—

कृत्वाभिषेकं मुतयादृत्यो राघवनन्दनः ।

तवानुगमने राजन् ! विद्धि मां कृतनिश्चयम् ॥

न चान्यदद्य वक्तव्यमनो बीर न शासनम् ।

विहन्यमानमिच्छामि मद्दिधेन विद्योमतः ॥

( बा० रा० ३।१०८।१४-१५ )

‘हे रघुनन्दन ! हे राजन् ! मैं अपने दोनों पुत्रोंको राज्य सौंपकर आपके साथ जानेका निश्चय करने आया हूँ। हे बीर ! आज आप हृष्टाकर न तो दूसरी बात कहें और न दूसरी आज्ञा दी दें, यह मैं इमलिये कह रहा हूँ कि मैं शासनीरपर आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहता।’ मनजब यह कि आप कही साथ जोड़कर वहाँ रहनेकी आज्ञा न दें दें जिसमें मुझे आपकी आज्ञा भंग करनी पड़े, जो मैंने आज तक नहीं की। अन्य है आनुरोध !

भगवान्ने प्रार्थना स्वीकार की और सबने मिलकर श्रीरामके साथ रामधामको प्रयाण किया।

### उपसंहार

यह रामायणके पागें पूर्य पुरुषोंके आदर्श आनुरोधका किञ्चित् दिग्दर्शन है। यह खेस विरोधरूपसे आनुरोधपर ही लिखा गया है। अन्य वर्णन तो प्रसंगवश आ गये हैं, अनएव दूसरे उपदेशप्रद आदर्श विषयोंकी यथोचित चर्चा नहीं हो सकी है। हम खेसमें अधिकांश भाग बाष्मीकि, अध्यात्म और रामचरितमानसके आधारपर लिखा गया है।

वास्तवमें श्रीराम और उनके अनुष्ठानोंके अगाध चरितकी याद कौन पा सकता है। मैंने तो अपने बिनोदके लिये यह खेस की है, मुटियोंके लिये विज्ञान समा करे। श्रीराम और

उनके प्रिय बन्धुओं के विमल और आदर्श चरितसे हम लोगों को पूरा लाभ उठाना चाहिये। साक्षात् सच्चिदानन्दबन भगवान् होनेपर भी उन्होंने जीवनमें मनुष्यों की भाँति जीया है। जो है जिनको आदर्श मानकर हम काममें ला सकते हैं।

कुछ लोग कहा करते हैं कि 'श्रीराम जब साक्षात् भगवान् थे, तब उन्हें अवतार धारण करनेकी क्या आवश्यकता थी, वे अपनी शक्तियों से ही सब कुछ कर सकते थे।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् सभी कुछ कर सकते हैं, करते हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं

है, परन्तु उन्होंने अवतार धारणकर ये आदर्श जीयाएँ इसलिये की हैं कि हम लोग उनका गुणानुवाद गाकर और अनुकरण कर कृतार्थ हों, यदि वे अवतार धारणकर हम लोगों की शिक्षा के लिये ये जीयाएँ न करते तो हम लोगों का आदर्श शिक्षा कहाँसे और कैसे मिलती? अब हम लोगों का बड़ा कर्तव्य है कि उनकी जीजाओं का अवलोकन, मनन और अनुकरण कर उनके सच्चे भक्त बनें। जेल बहुत बड़ा हो गया है इसलिये यहाँ समाप्त किया जाता है।

## श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

( लेखक—श्रीविन्दु त्रिपाठी )



ज्यों कवि केवल अपनी दृशाओं का वर्णन करता है, नानाविध कल्पनाओं के द्वारा वह अपनी भावनाओं को प्रकट करता है और महाकाव्य वह है जिसमें वह सम्पूर्ण समाज और समस्त देश की संस्कृति, भावना, रीति-

नानि तथा मानव-प्रकृतिके सभी शुभाशुभ रूपों का चित्रण करता है। उसके महाकाव्यमें जगद्भक्त के दर्शन होते हैं। श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासजी महाराज का श्रीरामचरितमानस ऐसा ही महाकाव्य है। उसमें नायकत्व के सर्वोत्कृष्ट पुरुषोत्तम-रूप, नरत्व के दिव्य आदर्श के साथ-साथ आधुरभाव के भी पूर्ण विकाश का उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। इसीसे उसमें प्रत्येक प्रकृति और दशा के अनुकूल उक्ति मिल जाती है और उसका समाजमें सहजभावसे व्यवहार होता है। अब हमें यह देखना है कि श्रीरामचरितमानस महाकाव्य कैसे है और उसके सम्पूर्ण लक्षण उसमें कैसे घटित हैं?

साहित्यदर्पणमें महाकाव्य के लक्षण इसप्रकार दिये हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैका नायकः सुरः ।  
सदृशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥  
एकवंशमवा भूपाः कुरुजा बहवोऽपि वा ।  
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इष्यते ॥  
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वेऽष्टकसन्धयः ।  
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।  
आदौ नमस्कृत्याशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।  
क्वचिज्जिन्दा सरादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥  
एकवृत्तमर्थः षोडशसालेऽन्यवृत्तकैः ।  
नानिस्वरूपा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाविका इह ॥  
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।  
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥  
सन्ध्यामूर्धन्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ।  
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलुवनसमाराः ॥  
सम्भोगविप्रलम्भी च मुनिस्वर्गपुगाध्वराः ।  
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥  
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ।  
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥

### मानसमें इनकी चरितार्थता—

धीरोदात्तनायकत्व—धीरोदात्त नायक उसे कहते हैं जिसमें आत्मरक्षा का न हो, समाशील एवम् अत्यन्त गम्भीर हो, हर्ष-शोकसे जो अभिभूत न हो, गर्व भी जिसका विनयाच्छुद्ध हो और जो दृढमत हो, यथा—

अविकत्यनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।  
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥

### अनात्मश्लाघा—

'समय बितोके लोग सब बानि जानकी और ।  
हृदय न हरष-विषाद कहु बोले श्रीरघुवीर ॥

नाथ, सम्भु-धनु मंजनिहारा। होरहि कोठ एक दास तुम्हारा ॥

आयसु काह कहिय किन मोही ॥

राममात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥

देव एक गुन धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥

सब प्रकार हम तुमसन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे ॥

चितै सबनिपर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया ॥

तुम्हरे बल मैं रावन मारा। तिलक बिभीषन कहै पुनि सारा ॥

**गाम्भीर्यातिशय—यथा—**

राम कहेउ रिस तत्रिय मुनीसा। कर कुठार अगे यह सीसा ॥

मृगुपति बकहि कुठार ठठाए। मन मुसुकाहि राम सिर नाथ ॥

**शमा—यथा—**

कनिह मोह बस द्रोह जयपि तोहिकर बच उचित।

प्रभु छाने करि छोह को कृपाहु रघुबीर सम ॥

**हृषादि।**

**महासत्त्वत्व—**

प्रसन्नता या न गतानिषकतः

तथा न मरुते बन्वास्तुःकतः।

मुक्ताम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे

सदास्तु सा मन्त्रुत्तमज्ञप्रदम् ॥

पितु आयसु सूचन बसन तात तत्र रघुबीर।

विसमय-हरष न हृदय कटु पहिरे बटकल बीर ॥

मुक्त प्रसन्न मन राग न राधू।

मूष सजेठ अनिषक समानू। चाहत देन तुमहि जुवराजू ॥

गुह शिष देह राम पहुँ गयऊ। राम हृदय अस बिसमय मयऊ ॥

जलमें एक सज्ज सब भाई। मोत्रन-सयन-कजि-लरिकाई ॥

करनवेच ठपवीति बिबाहा। संग-संग सब भयठ उलाहा ॥

विमल बंस यह अनुचित एकू। बन्धु विहाय बहेहि अनिषकू ॥

**विमातासे बन्वास-प्रसन्न सुनकर—**

सब प्रसन्न रघुपतिहि मुनारै। बैठि मनहु तनु घरि निठुराई ॥

मन मुसुकाहि भानुकुल मानू। राम सहज आनन्द-निबानू ॥

**स्थैर्य—**

प्रात कहा मुनिसन रघुराई। निर्भय जय करहु तुम जाई ॥

होम करन लगे मुनि शरी। आयु रहे मसकी रसवारी ॥

मुनि मारीक निसाचर कोही। कै सहाय बाबा मुनि-झांही ॥

बिनु कर-बान राम तिहि मारा। सत जोत्रन गा सागर पाग ॥

पावक सर सुबाहु पुनि जारा। अनुज निसाचर कटक सँहारा ॥

मारि असुर दिज निर्भयकारी। अस्तुति करहि देव-मुनि शारी ॥

**निगूढमानता—**

खुबताई दूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौ अभिमाना ॥

जौ हम निदरहि विप्र बदि सत्य सुनहु मृगुनाथ।

तौ अस को जग सुमट जेहि मयबस नाबहि माय ॥

देव-दनुज-मूपति-भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना ॥

जौ रन हमहि प्रचारे कांऊ। लहि सुखेन काल किन होऊ ॥

छत्रिय तनु घरि समर सकाना। कुल-कुलहु तेहि पांवर जाना ॥

कहौ सुभावन कुलहि प्रसंसी। काठहु डराह न रन रघुवंसी ॥

विप्रवंसकै अति प्रभुतारै। अमय होइ जो तुम्हहि डराई ॥

**हृदयतता—यथा—**

राय राम राजन-हित लागी। बहुत उपाय किए छल त्यागी ॥

कबी राम रुख रहत न जाने। चरम-चुरन्धर बीर सयाजे ॥

मानु बचन मुनि अति अनुकूला। अनु सेनह सुतकंक फूला ॥

सुख-मकरन्द मरे श्रीमूला। निरखि राम-मन-मँवर न मूला ॥

जौ नहि फिरहि धार दोउ माई। सत्य-सन्ध हृदयत रघुराई ॥

बनवासको स्वीकार कर लिया, फिर अनेक प्रेमानुरोध और कल्याण-प्राथनाओंपर भी विचलित नहीं हुए।

बनमें मुनिबोंका अस्थि-समूह देखकर—

निसिचर हीन करौ महि मुज ठठाय पन कीन्ह।

**बालिवध-प्रतिज्ञा—यथा—**

सुनु सुग्रीव मैं मारिहौ बनिहि एकहि बान।

ब्रह्म-रुद्र-सानागतहुँ गप न टर्बाहि प्राण ॥

उन रघुकुलतिलक भीर-वीरशिरोमयिने जो कुछ कहा, वह कर दियाया, जिसका अङ्ग-कार और स्वीकार कर लिया, अन्ततक सब प्रकार उसका निषाह किया। कत्रिबोंके सर्वश्रेष्ठ पवित्र सूर्यवंशमें, परमप्रतापी सावंभौम चक्रवर्ती-कुलमें अवतार धारण किया। रूप, शील, कुल, बल, गुण, गौरव, विद्या, प्रतिभा, विनय, बल, विक्रम, तेज, शौर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य तथा कल्याण-निमित्त कल्याण-गुणधारिणि होनेसे वृत्तरथ-राजकुमार आंगमचन्द्रजी नायकत्वके दिव्य आवर्ण एकम् पुरुषोत्तमत्वकी मन्त्रु मर्चादा हैं। जैसे वे नृपत्वमें चक्रवर्ती हैं, वैसे ही नायकत्वमें सावंभौम अतएव वीरोदात्त नायकत्वके वृत्तपति राजा मर्चादापुरुषोत्तम हैं।

(क्रमशः)

## रामायणमें आदर्श पितृभक्ति

(लेखक—राजाबहादुर राजा श्रीलक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव विद्यावाचस्पति, पुरातत्त्व-विशारद टेक्नाली)

पिता हि परमः स्वयंः पिता हि परमं तपः ।

पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

‘स्वर्गकामो यंजत’ इत्यादि वेदप्रतिपादित वाक्योंसे सकल-सुख-समन्वित, त्रितापशून्य, पुण्यकर्मी पुरुषोंकी भोग्यभूमि तथा पवित्र-चरित्र-देव-हृन्दके आवास दिव्य स्वर्गकी कामनावाले मनुष्य यज्ञके द्वारा यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं। उसी स्वर्गकी प्राप्तिके लिये पुराणप्रतिपादित मार्गमें अग्रसर होनेवाले लोग तीर्थ-सेवन, भजन-पूजन करते हैं, तथा उपनिषदोंमें अदाशील-मनुष्य तत्त्वज्ञानका साधन करते हैं। मीमांसाके अनुयायी वेद-प्रतिपादित यज्ञकर्ममें तत्परताका ही उपासना मानते हैं। इन सब धर्मशास्त्रानुमोदित मार्गोंपर चलनेवाले साधक विभिन्न शास्त्रोक्त साधनाओंद्वारा जिस लोकको उत्तम समझ-प्राप्त करना चाहते हैं और साहित्यामृतसेवी चरम लक्ष्य कर जिसकी ओर एकटक देखते हैं—वह स्वर्ग क्या है? कहाँ है? कैसे पहचाना जाता है? और उसे प्राप्त होनेवाले मनुष्य वहाँ क्या सुख भोगते हैं? इन प्रश्नोंके उपयुक्त उत्तर खोजते समय महर्षि वेदव्यासरचित महाभारतका उपर्युक्त श्लोक स्मरण हो आता है, जिसका तात्पर्य यह है कि स्वर्गप्राप्त पुरुष जिन सुखका उपभोग करते हैं, उसकी उपलब्धि पितासे ही होती है। पितृसेवी तीनों तापोंसे छूट जाता है। तपके प्रभावसे जो कुछ प्राप्त होता है, पितृभक्तको वह भी अनायास मिल जाता है। पिताको मन्तृष्टरत्ननेवाले पुरुषने समस्त देवता भी मन्तृष्ट रहते हैं। दृष्टान्तके लिये रामायणका नाम लिया जा सकता है जिसे हम विशुद्ध पितृभक्तिका आदर्श ग्रन्थ समझते हैं। इस ग्रन्थके नामकरणमें भी पितृभक्तिका भाव व्यञ्जित है। राम × अयम् = रामायम् अर्थात् परमपितृभक्त श्रीरामका स्थान; तात्पर्य यह है कि वह ग्रन्थ जिसमें आदर्श पितृभक्त श्रीरामके चरित्रका निर्देश हुआ हो।

अतः उपर्युक्त चारों प्रश्नोंके उत्तर इसप्रकार दिये जा सकते हैं— (१) पितासे स्वर्ग भिन्न नहीं है अर्थात् पिता ही स्वर्ग है। (२) वह पिता हमारे समीप रहते हैं। (३) हमारे हस्तगत वस्तुकी तरह वे हमारे अधीन रहते

हैं। (४) उनके सन्तोषसे प्राप्तिमात्र प्रसन्न हो सुखकी दृष्टि करते हैं।

आदिकविने पितृभक्तिका स्वरूप-निर्देशन करनेके पूर्व पितृत्वको वषट्करूपसे दिलाया है। यथा—पुत्रप्राप्तिके लिये राजा दशरथकी चिन्ता, श्रीवशिष्ठजीके परामर्शसे पुत्रेष्टिका समारम्भ, ऋष्यशृङ्गको बुलानेके लिये सुमन्तका उपदेश तथा ऋषिका आगमन और यज्ञारम्भ प्रभृति विभिन्न सन्दर्भोंका उद्ग्रन्थन किया गया है। महाराज दशरथके पुत्र प्राप्त होनेके पश्चात् ऋषिवर्य विश्वामित्रने अयोध्या पचार कर प्रबल पराक्रमी विविध मायाविशारद मारीच, ताड़का, सुबाहु आदि दुर्दान्त राक्षसोंके विनाशार्थ महाराजसे उनके पञ्चदश वर्षीय पुत्र श्रीरामको माँगा। इच्छा न होने-पर भी महागजने श्रीरामको विश्वामित्रके मन्त्र-रक्षार्थ अरण्य-गमनके लिये आज्ञा दे दी और श्रीरामने भी राजकुमारोचित सुख-संगमोग-स्पृहाकी उपेक्षाकर अज्ञा और भक्तिपूर्वक विश्वामित्रका अनुगमन किया। यहाँ विचार करनेपर यह सहज ही जाना जा सकता है कि श्रीरामको राज्यसुखसे अरण्य-गमन अधिक सुखकर था। कहाँ तो श्रीरामका युद्धकलानभिज्ञ पञ्चदशवर्षीय सुकुमार बालक कहा जाना और कहाँ उनका ही दुर्दान्त भयंकर राक्षसोंसे निर्विघ्न अरण्यमें अकेले युद्धके लिये भेजा जाना। कैसा भयङ्कर न्यापार है? परन्तु वस्तुतः श्रीराम कलानभिज्ञ न थे क्योंकि उनके लौकिक ज्ञान तथा विशेष अभिज्ञताका कविवर वाल्मीकिजीने खूब वर्णन किया है। पितृ-आदेशके प्रति ऐसी अज्ञाका कारण, उनके सुकोमल अन्तःकरणमें पितृभक्तिका जो अङ्कुरोद्गम हो रहा था, निःसंशय वही था।

श्रीराम निःसन्देह यह समझते थे कि पिता हमारे परम देव हैं उनकी आज्ञा पालन करनेसे हमें अक्षय ही सब प्रकारसे सुख-सौभाग्य तथा समुन्नतिकी प्राप्ति होगी। उनके हृदयमें ऐसा विरवास होनेपर उसमें भक्तिजलाका संवर्धन भी सहज ही होने लगा, जिसके फलस्वरूप दुर्दान्त राक्षसोंका वध, विश्वामित्रकी मन्त्र-रक्षा, शस्त्रास्त्र-प्राप्ति, अनेक विषयोंमें अभिज्ञता, अहङ्ग्योद्धार, शिवधनुर्भंग, विशुद्धा कीर्ति-रूपिणी जानकी देवीका जाभ तथा परशुराम-गर्व-हरण आदि अनेक आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न हुए। अतः

यदि पितृ-भक्तिकी पराकाष्ठासे उनका हृदय परिप्राणित न होता तो वे विद्याभित्तके मलकी समाप्तिपर अपना कार्य समाप्त हुआ समझ अधिकी आज्ञा प्राप्तकर अबोध्या छोट सकते थे किन्तु ऐसा होनेसे पूर्वोक्त अभीष्ट-परम्पराकी प्राप्ति कैसे होती ? इसपर विचार करनेसे ज्ञात हो जाता है कि वेद-ध्यासकृत उपर्युक्त पितृप्रशस्तिमें तनिक भी अशुक्ति नहीं है। यदि कहीं फलमें व्यतिक्रम दीख पड़े तो समझना चाहिये कि वहाँ पितृभक्तिमें आत्म-विशुद्धि नहीं है, अन्यथा आदि-कवि अपने ग्रन्थमें पितृभक्तिके अखण्ड फलभोगका निर्देश ही नहीं करते।

राजा दशरथने उर्जरित देह तथा बार्दक्यके कारण राज्यभारको अपने कन्धसे उतारकर सर्वगुण-युक्त ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको जब युवराज बनानेका निश्चय किया और अबोध्याके नागरिकों और राजनीतिज्ञोंने भी जब इसके लिये आग्रह किया, तब विशाखिनी मन्यराने कैकेयीको राजा दशरथसे दो कठिन वर माँगनेके लिये उसकाया। फलतः कैकेयीने एक वरसे श्रीरामके लिये चौदह वर्ष वनवास माँगा और दूसरेसे भरतको बौवराज्य देनेके लिये राजासे कहा। सन्धनिष्ठ परम धार्मिक महाराज दशरथ अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरणकर कैकेयीके इन वज्रगुल्य वचनोंको सुन स्तब्ध हो गये। तब 'मौनं मन्मनिरुद्धमयम्' के अनुसार रानीने उनके प्राज्ञ-प्रतिम रामको वनवास जानेका आदेश किया। सूर्यवंशके इस घोर बिस्मयके विषयमें रामायण-रचयिताके अभिप्रायकी विवेचना करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणमें पितृभक्तिका आदर्श दिखानेके हेतुसे ही ग्रन्थकर्ताने इस प्रसङ्गका उल्लेख किया है। एक ओर श्रीराम नवयुवक राजकुमार हैं जिनकी राज्यलाभसा, विद्यास-वैभवादि-सुख-संभोगमृदा तथा पुरवासियोंके स्नेह-मर्मभाषणादि अभीष्ट योग सर्वदा अभिलषणीय हैं और उधर बार्दक्यमें उर्जरित जीवशतापक राजा दशरथका कठोर वनगमनादेश—वह भी एक दो दिनके लिये नहीं, सुदीर्घ चौदह वर्षोंके लिये उटा-बलक-भूषित वनचारी-वेवधाराय कर परिश्रमय्य करना, कितना बिरोधस्पृह है ! साधारण पुरुष तो यह मुनकर ही किसप्राय हो जायगा, इसमें कुछ भी अशुक्ति नहीं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि श्रीराम स्वराज्यस्क होते हुए भी घोर, स्थिर तथा प्रसन्न चित्तसे उस आज्ञाके पावन करनेमें तत्पर होते हैं। वहाँ पाठकोंको श्रीरामकी पवित्र अस्मानोक्तिका उपहार प्रदान करना सुसंगत होगा—

अनाज्ञोऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः ।

उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः ॥

उक्तोपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते ॥

'आज्ञाके बिना (केवल आज्ञाव समझकर ही) पिताका कार्य सम्पादन करनेवाला पुत्र उत्तम है। आज्ञा पानेपर जो पिताका कार्य करता है वह मध्यम पुत्र है और जो आज्ञा पानेपर भी उसका पावन नहीं करता वह तो मल-स्वरूप है।' ऐसा कहकर उसे चरितार्थ कर देनेमें श्रीरामके गम्भीर अन्तःकरणका सुन्दर परिचय मिलता है। मांसास्थियुक्त शरीरधारी कौन ऐसा पुरुष है जो यों कर सके यदि कोई शङ्का करे कि श्रीराम और कर ही क्या सकते थे ? तो उत्तर यह है कि सामान्य राज्यके लिये कौरव-पाण्डव जड़ गये। हेमनीय रमणी-सम्पर्कसे प्रबल पराक्रान्त कीरेन्द्र शुम्भ-मिशुम्भमें भ्रातृविह्वेय उत्पन्न हो गया। ऐसे ही कितने विद्वेयानल प्रज्वलित हुए, जिनसे इस संसारके कितने वंश तथा बहाराणि-समन्वित साम्राज्य भस्मसाय हो गये। मितुसे लेकर माह्वयतक प्रत्येक प्राणी अपने स्वार्थके लिये क्या नहीं करता ? प्रतिदिन इसी अभिष्ट-सन्तापसे क्या प्राणीवर्ग सन्तप्त नहीं हो रहे हैं ? फिर भी नये-नये सुख-सम्भोगकी प्राप्तिके लिये जग जाते हैं, यह तो प्राणीमात्रका व्यवसाय है इस विषयमें अब अधिक विस्तार अयुक्त है।

अब इस लेखके प्रकृत विषयको देखा जाय तो पता चलता है कि पिताके आदेशको अवनत-मस्तक हो ग्रहण कर, प्राणप्रियतमा जानकी और प्राणप्रिय जन्मभक्त के साथ पितृ भक्त्याग्रणी नववयस्क श्रीगमने चौदह वर्षोंक वरचसमें तापस वृत्तिसे काजातिपात किया। इनना ही नहीं, महाराज दशरथके देहात्मके उपरान्त भरतके आग्रह करनेपर भी पितृ-आदेश उरुखंजन करनेकी कल्पना उनके मनमें स्वप्नमें भी उद्भित नहीं हुई। शवर-राज गुहने जब अपने राज्यमें बसनेके लिये श्रीरामसे अनुरोध किया था तब वहाँ भी राज्यादम्बरके माप काखचंप करना पिताके अभिप्रायके विरुद्ध समर्थ उन्हींने उसे अस्वीकार किया। दण्डकारण्यमें जब शूर्पणखा, सर-वृषय तथा त्रिशिरादि राक्षसोंके घोर अत्याचारसे पीडित हुए। तब भी 'पितृ-आदेश-का पावन करना कष्टकर है' यह उनके मनमें नहीं आया। सतीशिरोमणि प्राणप्रिया जानकीके अपहरण होनेपर भी पितृ-आदेशके पावनके नियमोंमें रक्तमात्र भी कभी



नहीं हुई। यह पितृ-भक्ति धन्य है! कौन कह सकता है कि ऐसी पितृ-भक्ति सफल नहीं होती?

पिताके जीवित रहनेपर उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले बहुत मिलेंगे, पर पिताके मर जानेपर भी उनकी आज्ञापर इसप्रकार बटे रहनेका उदाहरण श्रीरामके सिवा अन्यत्र नहीं मिलता!

धर्मादर्श वीरेन्द्रसूत्रामणि श्रीरामने जङ्घाकायके अन्तमें अपनी प्राण-प्रिया सीताके अपहरण-जनित दोषके परिहारके लिये अग्नि-परीक्षा करायी। पर अग्निपरीक्षाके अनन्तर भी उनके मनमें सीताका निर्दोष होना नहीं आया, तब उनके पिता श्रीवृषभरथने स्वर्गलोकसे आदेश किया - 'जानकी सती-शिरोमणि है इसमें सन्देह नहीं'। श्रीरामने पिताकी इस आज्ञावाणीको सुनते ही अपना कामाङ्ग सीताके लिये समर्पित कर दिया।

चतुर्विंशवर्ष-वनवासके बाद अयोध्या लौटकर राजप्रह्व और प्रजापालन प्रभृति कार्य भी श्रीरामके जीवनमें पितृ-आदेशके द्वारा ही हुए थे। इसप्रकार भगवान् श्रीरामका सम्पूर्ण जीवन पितृ-आदेशसे भोतप्रोत था!

जगत्में हरयमान देव-देवीगण जो देवालयोंमें विराजमान हो रहे हैं वे सब स्थूलतः अन्तःप्राण हैं, उनकी प्रतिदिनकी पूजा-अर्चना हमजोगोंके अधीन है। अदृश्यमान—स्व-स्व-आमस्थित देव-देवीगण मानव-वचुके अगोचर हैं। कारुणिक ज्ञानदृष्टि-गोचर देव-देवियोंके अभीष्टप्रद होनेसे भी उन जोगोंसे हम जोगोंकी अभिलाषा-सिद्धि अति दूर है। परन्तु पितृदेव इन सबोंमें श्रेष्ठ हैं, इसमें कुछ भी अशुक्ति नहीं। हमसे अपराध होनेपर भी वे हमें शाप नहीं देते। आराधना नहीं करनेपर भी वे असन्तुष्ट नहीं होते अपितु वे सदा-सर्वदा पुत्रकी उन्नतिके लिये सचेष्ट रहते हैं। अतः ऐसे पितृदेवकी उपासना इस जगत्में मानवमात्रको अवश्य करनी चाहिये। इसप्रकार हमें पितृ-आराधनामें तत्पर कर उन्नतिपथमें पहुँचानेके लिये आदिकविने रामायण नामक वेदोपम ग्रन्थकी रचना करके हमारे अभिवन्दनीय स्थानको प्राप्त किया है। इस विषयको अधिक दृढ़भूत करनेके लिये इस ग्रन्थके शीर्षकके नीचे लिखे हुए 'पिताहि परमः स्वर्गः' इत्यादिकी पुनरावृत्तिकर हम लोकको समाप्त करते हैं।

## श्रीराम-नाम

( लेखक—महात्मा गांधीजी )



मनामके प्रतापसे पत्थर तैरने लगे। रामनामके बलसे वानर-सेनाने रावणके छक्के लुढ़ा दिये। रामनामके सहारे हनुमान्ने पर्वत उठा लिया और राक्षसोंके घर अनेक बर्ष रहनेपर भी सीता अपने सतीत्वको बचा सकी। भरतने चौदह सालतक प्राण धारण कर रखे, क्योंकि उनके कण्ठसे सिवा रामनामके दूसरा कोई शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये गुलसीदासजीने कहा है कि कलिकालका मल भी राजनेके लिये रामनाम जपो।

इसप्रकार प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकारके मनुष्य रामनाम लेकर पवित्र होते हैं। परन्तु पालन होनेके लिये रामनाम हृदयसे लेना चाहिये। जीम और हृदयको एकरस करके रामनाम लेना चाहिये।

× × ×

रामनामके गीत गानेके लिये यदि कोई मुक्तसे कहे तो मैं सारी रात गाया करूँ। सो यदि आप अपनेको दुकी और पतित मानते हों—और हम सब पतित हैं—तो सुषट्, शाम और सोते समय रामनामका रटन करो और पवित्र होओ।

× × ×

मैं अपने उन पाठकोंके सामने भी इसे पेश करता हूँ जिनकी दृष्टि धुँधली न हुई हो और जिनकी अन्धा बहुत बिहता प्राप्त करनेसे मन्द न हो गयी हो। बिहता हमें जीवनकी अनेक अवस्थाओंसे पार ले जाती है, पर संकट और प्रलोभनके समय वह हमारा साथ बिल्कुल नहीं देती। उस हालतमें अकेली अन्धा ही उबारती है। रामनाम उन जोगोंके लिये नहीं है जो ईश्वरको हर तरहसे फुसलाना चाहते हैं और हमेशा अपनी रक्षाकी आशा उससे लगाये रहते हैं। वह उन जोगोंके लिये है जो ईश्वरसे डरकर चلتते हैं और जो संयमपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं पर अपनी निर्बलताके कारण उसका पालन कर नहीं पाते।

× × ×

इसलिये पाठक खूब समझ लें कि रामनाम हृदयका जोर है। जहाँ वाचा और मनमें एकता नहीं, वहाँ वाचा

केवल मिथ्यात्व है, दुःख है, शब्दज्ञात है। ऐसे उच्चारणसे चाहे संसार मछे धोखा खा जाय, पर वह अन्तर्बामी राम कहीं धोखा खा सकता है? सीताकी वी हुई माताके मनके हनुमान्ने फोड़ डाले क्योंकि वे देखना चाहते थे कि अन्दर रामनाम है या नहीं? अपनेको समझदार समझनेवाले सुभटोंने उनसे पूछा—'सीताजीकी मणिमाळाका ऐसा अनावर?' हनुमान्ने जवाब दिया—'यदि उसके अन्दर रामनाम न होगा तो सीताजीका दिया होनेपर भी वह

हार मेरे जिधे भारभूत होगा।' तब उन समझदार सुभटोंने मुँह बनाकर पूछा—'तो क्या तुम्हारे भीतर रामनाम है?' हनुमान्ने कुरीसे तुरन्त अपना हृदय धीरकर दिखाया और कहा—'देखो अन्दर रामनामके सिवा अगर और कुछ हो तो कहना।' सुभट खजित हुए, हनुमान्पर पुष्पवृष्टि हुई और उस दिनसे रामकथाके समय हनुमान्का आवाहन आरम्भ हुआ।

( नवजीवनके पुराने अंकमें गंकलित )

## श्रीरामकथामें एक अद्भुत पाठान्तर

( लेखक—मोयुत जी० पन० बांधनकर एम० ए०, एल०-एल० बी० )



यः सभी प्राच्य विद्या विहारदोंका मत है कि हिन्दुओंके महाभारत, रामायण इत्यादि पुरातन ग्रन्थोंके जो पाठ इस समय विद्यमान हैं वे ज्योंके त्यों मूलग्रन्थके बचाय पाठ नहीं हैं, उनमें बहुत कुछ उलटफेर हुआ है। रामकथाकी भी यही अवस्था है। गोरेशिगोका बंगलिपिवद्ध पाठ, मार्शमैन, रजोगेल और बर्जिन बाइमेरी ( जिसके दो संस्करण भारतमें हो चुके हैं ) के संस्कृतपाठ—सभीमें कुछ-न-कुछ पाठभेद अवश्य पाया जाता है। इसी प्रकार बम्बईमें प्रकाशित वाल्मीकीय रामायणके आचारपर 'मिफिय' का पद्यमय अंगरेजी अनुवाद तथा गोरेशिगोकी प्रतिसे 'हिपोलिट् फ्रांस्' का फ्रेंच रूपान्तर भी पाठभेदसे मुक्त नहीं हैं। वाल्मीकि-रामायण, अम्बासरामायण और मुजसीके रामचरित-मानसमें भी कथा-भेदक पाया जाता है। कुछ दिन हुए ग्रिवर्सन साहबने किसी कारमीरी लेखकके एक ग्रन्थकी कोख की थी, जिसमें लिखा था कि श्रीसीतार्जी मन्दोदरीकी औरस कन्या थी और माताके परित्याग करनेपर जनकने उन्हें पाका-पोषा था। बंगलाके अद्भुत रामायणमें भी यह कथा इसी प्रकार वर्णित है। पर सर्वसाधारणमें सीताजीके भूमिसे उत्पन्न होनेकी गाथा ही प्रचलित है। इसी प्रकार और भी विभिन्न प्रान्तोंमें अनेक कथा-भेद मिश्र मिश्र ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं, यहाँ उन सबके विवरणकी आवश्यकता नहीं। यहाँ तो केवल रामकथाका एक अद्भुत पाठान्तर उपस्थित करना ही हमारा उद्देश है।

'लोकाववादके भयसे सीताजीका परित्याग करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें पुनः स्वीकार नहीं किया। वाल्मीकि युनिके आश्रमसे लौटनेपर श्रीराम-सभामें सबके सामने अपने दिव्यशक्तियों दिखलाकर सीताजीके निजधाम प्रयाण करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सीता-विरहित विराग-वृत्तिसे अवशेष जीवन व्यतीत किया।' यही कथा सर्वत्र प्रचलित है। पर महाकवि अबभूतिने अपने 'उत्तररामचरित' नाटकके 'सम्मेलनाङ्क' में श्रीसीताजी और श्रीरामजीका पुनर्मिलन वर्णन किया है।

यहाँ सहज ही यह प्रश्न उठता है कि ऐसे विद्वान तथा महाकविने श्रीरामकथामें इतना क्या परिवर्तन क्यों और किन्तु आधारपर किया? क्या हम इसे कविकी निरी निरंकुशता कहेंगे अथवा नाटकको सुव्याप्त बनानेके लिये उनका ऐसा करना उपयुक्त था? कुछ विद्वानोंका मत है कि संस्कृत-नाट्यशास्त्रके नियमोंके अनुसार शोक-पर्यवसायी नाटकोंकी रचना एक काव्य-दोष समझा जाना है। कदाचित् इसी दोषके परिहारके लिये अबभूतिने अपने नाटकमें 'सम्मेलनाङ्क' की आयोजना की हो। यह कल्पना तथ्यपूर्ण हो सकती है क्योंकि संस्कृत साहित्यमें आसकविके नामपर प्रसिद्ध 'त्रिवेन्द्रस् सिरिज' के एक शोकान्त नाटकके अतिरिक्त और किसी शोकान्त नाटकका उल्लेख नहीं मिलता। पर अब पता चलता है कि इस बहुभुत, विद्वान् और कविभेदने जो यह महत्वपूर्ण कथान्तर उपस्थित किया है उसका आधार प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बृहत्कथा' है। डा० बुजरके (Buhar) मतानुसार इसकी रचना ईसाकी प्रथम या द्वितीय

शताब्दिमें हुई थी। जेमेन्द्र दासव्यास, सोमभट्ट तथा अन्यान्य कवियोंके कथनानुसार यह ग्रन्थ वैशाखी भाषामें लिखा गया था। बाणभट्ट, सुबन्धु, दण्डी प्रभृति महा-कवियोंके उल्लेखसे पता चलता है कि यह ग्रन्थ ईसाकी पाँचवीं या छठी शताब्दिक प्रचलित था। इस ग्रन्थके छायास्वरूप तीन ग्रन्थ संस्कृत-भाषामें और एक ग्रन्थ तामिलमें आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत-ग्रन्थोंमें कारमीरका 'बृहत्कथा-श्लोक-संग्रह' सबसे पुराना है। प्रसिद्ध विद्वान् M. Lacote ने इसका सम्पादन किया है। दूसरा ग्रन्थ जेमेन्द्रदास व्यासकृत 'बृहत्कथामञ्जरी' है, जिसकी रचना १०३० ई०के लगभग हुई। और तीसरा ग्रन्थ कारमीरी कविश्रेष्ठ सोमदेवभट्टकृत 'कथासरित्सागर' नामक बृहत्ग्रन्थ है जो १०७० ई०के लगभग प्रणीत हुआ माना जाता है। यद्यपि अन्तिम दोनों, जेमेन्द्र और सोमदेव समकालीन ही थे तथापि उन्होंने अपने-अपने ग्रन्थ स्वतन्त्र रीतिसे ही रचे हैं। 'बृहत्कथामञ्जरी' एक छोटी पुस्तक है, परन्तु 'कथासरित्सागर' तो एक विशाल ग्रन्थ है। इन सब ग्रन्थोंमें 'कथासरित्सागर' विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि स्वयं ग्रन्थकर्त्ता ने कहा है—

यथा मुने तथैवेन न मनसाभ्यनिक्रमः।

अथाग्रन्थसंक्षेपमात्रं भाषा च विद्यते॥

(कथा० सं० सा० १।१।१०)

इसमें सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'कथासरित्सागर' में वर्णित कथाएँ उर्ध्वो-की-न्योँ पहले 'बृहत्कथा' में रही होंगी। और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि महाकवि भवभूति, जो ईसाकी ७ वीं और ८ वीं शताब्दीके सन्धिकालमें उपस्थित थे, 'बृहत्कथा' से पूर्णतया परिचित थे।

अब हम उत्तररामचरितके 'सम्मेलनाङ्क' के आधारका निर्दर्शन करते हैं। कथासरित्सागरके 'अलङ्कारवती लम्बकमें' 'काञ्चनप्रभा' नाम्नी विद्याधरी अपनी कन्या अलङ्कारवतीके विरहानलसे सन्तप्त अपने भावी जामाता नरवाहनकी सान्त्वना करती हुई श्रीरामकथाका वर्णन करती है। इसी कथामें सीताराम-संयोगका विवरण प्राप्त होता है, साथ ही कुछ और अनोखी बातें हैं जो सर्वसाधारणको ज्ञात नहीं। अतः उस कथाका मूल हम पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करते

हैं। एक दिन अपनी नगरीमें गुप्तवेशमें घूमते हुए प्रभु श्रीरामने देखा कि, एक पुरुष—

हस्ते गृहीत्वा गृहिणीं निरस्यन्तं निजात् गृहात्।

परस्येयं गृहममात् इति दोषानुकीर्तनात्॥

—'अपनी स्त्रीको हाथसे पकड़कर अपने घरसे निकाल रहा है और यह दोष दे रहा है कि तू दूसरेके घर गयी थी।' इसपर वह स्त्री कहती है—

रक्षो गृहेषिता सीता रामदेवेन नार्जिता।

अयमभ्यधिको यो मामुज्झति ज्ञातिवेदमगमत्॥

'प्रत्यक्ष शत्रु और तिसपर भी तमोगुणके अवतार राक्षसेश्वरके घर रहनेपर भी सीता निर्दोषा रही और मुझे बन्धुके गृह जानेपर भी इतना लाञ्छित किया जाता है।' इसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी विचारते हैं—'कहाँ एक साधारण पुरुष-स्त्री स्त्रीके सर्वथा उपेक्षणीय सामान्य अपराधके लिये इतना गृहनिर्वासन और कहाँ प्रजाके आदर्शभूत, मर्यादापुरुषोत्तम कहलानेवाले राजर्षि रामचन्द्रका सीतापर ऐसा उत्कट प्रेम! श्रीरामचन्द्रका आदर्श इतना गिरा हुआ है? ऐसा कदापि नहीं हो सकता।' यह विचारकर लोकापवादके भयसे प्रभुने अपनी प्रायश्चित्तका परित्याग कर डाका और जनक-मन्दिनी वात्सीकिके आश्रमकी ओर आश्रय पानेके लिये अग्रसर हुई। सीता दुर्दैवके फेरमें पड़ी हुई थी। जो ऋषि-मुनि श्रीसीता-रामके गुण-वर्णनमें जीवनकी सफलता मानते थे, वही लोग उस सतीके सतीत्वपर शङ्का करने लगे—

नूनं सीता सद्रूपेयत्यक्ता भर्तान्यथा कथम्।

'अवश्य ही यह सीता सदोषा है नहीं तो हमके पति इसे क्यों त्यागने?' हा! विधि-विधान कैसा विलक्षण है! आज ऋषिगण सीताको पापमूर्ति समझकर ठहरने नहीं देते हैं और कहते हैं 'द्वितीयं किञ्चिदाश्रमम्' अर्थात् किसी दूसरे आश्रमको चली जाओ! आह! इसने अधिक दुःखदायी बात और क्या हो सकती है? परन्तु सहस्वरिम सूर्यको अन्धकारका भय कैसे हो सकता है? सीता निर्भय होकर कहती है—

भगवन्तो यथा वित्य तथा शोषयतेह माम्।

अशुद्धायाः शिरश्छेद निग्रहः क्रियतां मम॥

'भगवन्! आप लोगोंको मेरे विषयमें जो सन्देह है उसकी जाँच कर लें, यदि मैं अशुद्धा होऊँ तो दण्डस्वरूप

मेरा सिर काट बाबा बाब ।' ऋषियोंने सतीकी सत्य-वरीषा करना निश्चित किया और कहा—

अस्त्यत्र टिट्ठिमसरो नाम तीर्थं महावनं ।  
टिट्ठिमी हि पुरा कापि मन्त्रान्यासज्ज्ञशक्तिना ॥  
मिथ्यैव दूषिता साध्वी चक्रन्दाशरणाभुवनं ।  
लोकपालोऽक्ष तैस्तस्या शुद्धयर्थं तद्विनिर्मितम् ॥  
ततैषा राघवबधूः परिशुद्धिं करोतु नः ।

'इस महावनमें टिट्ठिम-सर नामका पुनीत सरोवर है । प्राचीन कालमें एक टिट्ठिहरीके पतिने अन्यासज होनेकी शक्त्यासे खूटे ही उस साध्वीको दूषित डहराया था । इसपर वह टिट्ठिहरी अखिल भूमचक्रमें शरणा पानेके लिये विज्ञाती फिरी, अन्तमें लोकपालोंने उसकी शुद्धिके लिये इस सरोवरका निर्माण किया । उसी सरके किनारे इस राघव-पत्नीको परिशुद्धि भी की जाय ।' फिर क्या था ? अगन्माता श्रीसीताजी तत्काल उस सरोवरके तट पहुँची और इसप्रकार त्रिभुवनको धरानेवाला शपथोच्चार किया—

यदार्धपुत्रादन्यत्र न स्वप्नोऽपि मनो मम ।  
तदुत्तरं सरसः पारमस्य बभूवुरहम् ॥

'यदि मेरा मन आर्धपुत्र श्रीरामसे अन्यत्र स्वप्नमें भी न गया हो तो हे माता वसुन्धरे ! इस सरोवरको मैं पार कर आई ।' इतना कहना था कि श्रीसीताजी उस अगाध सरको डीखासे पार कर गयीं ।

इस दिव्य दरवका ऋषियोंके ऊपर अमृत प्रभाव पड़ा । उनका सन्देह समूह नष्ट हो गया । और तत्पश्चात्—

ततस्तान्ते महासाध्वीः प्रणमन्मनोऽखिलः ।  
राघवं शम्भुमेन्द्रोऽक्ष तत्पारिग्याग मन्युना ॥

—'वे अखिल मुनि उस महासाध्वी श्रीसीताजीको प्रणाम करने लगे और क्रोधित हो सीताको परित्राग करनेके कारण साक्षात् श्रीरामको शाप देनेके लिये उद्यत हो गये ।' बात उचित थी । लोकपालाद-भक्त्ये ही क्यों न हो, पूर्वं विष्णुपासनीके साथ स्पर्ध बल करनेवाले रामचन्द्रको भी इतक क्यों न दिया जाय ? पर वह ठीक नहीं । जिसके पुत्रव-प्रभावसे और सर्वात्मकी अमोघ शक्तिके बलसे आर्य संस्कृतिकी पताका आज सारे संसारमें फहरा रही है और अविष्यमें भी फहराती रहेगी वह आर्य-की पातिव्रतसे कदापि विचलित नहीं हो सकती, वह सदा 'पतिहितैरता' और सही पति-कर बाधकर्त्री बनी रहेगी । उसका सर्वात्म ही उसके पतिका सखा रहक है । भारतीय महिलाओंका

वह विशेष गुण है । तत्पर्यं यह कि श्रीसीताजीने ऋषिद्वन्द्वको शापोद्यत अवस्थासे विरत करते हुए कहा—

युष्माभिरार्यपुत्रस्य न ध्यातव्यममंगलम् ।'

'आप लोगोंके लिये आर्यपुत्रके अमङ्गलका ध्यान करना भी उचित नहीं, फिर शाप देना तो और भी अनुचित है ।' सतीके पतिमेमका यह सर्वोच्च आदर्श अवश्य ही आदरणीय है । उन्होंने ऋषियोंसे स्पष्ट कहा—'शत्रुमर्हथ ममैव' अर्थात् 'शाप देना हो तो आप मुझे शाप दें ।' आर्य-कीके मुल-कमलसे ये शब्द कैसी शोभा दे रहे हैं ? दोष सर्वथा रामचन्द्रजीका है और प्रायश्चित्त सती सीता अपने माथे ले रही हैं ! सच है, अगत्को सिखावन देनेवाले जनक और मर्षादा पुरुषोत्तम श्रीरामकी पत्नी ऐसा न करे तो और कौन की करेगी?

अस्तु, कुछ दिन बीतनेपर सीताजीके जब नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । एक दिन सीताजी उसे लेकर काम करने चली गयीं । उनकी अनुपस्थितिमें ही वाल्मीकिजी आश्रममें लौटे और जबको दिहोलेमें न पा बड़े चिन्तित हुए । उन्हें भय हुआ कि कोई हिंस पशु बालकको उठा तो- नहीं ले गया । सीताके भयसे तत्काल ही ऋषिने तपोबलसे ऊहाहारा एक बालककी रचना की और उस कुश-बालकको दिहोलेमें सुजा दिया । इसप्रकार सीताजीके जब और कुश दो पुत्र हो गये ।

एक दिन इन सीताकुमारोंने—

अर्चालिङ्गं च वाल्मीकिश्चक्रतुः कीदनीयकम् ॥

'वाल्मीकि मुनिके अर्चनीय शिवलिङ्गोंको कीदाकी सामग्री बना डाला ।' उनके इस दोषके परिहारके लिये मुनिने परम दुर्घट प्रायश्चित्त सुनाया—

गत्वा कुबेरमरसः स्वर्गपञ्चान्याननः सतः ।

तदुद्यानाच्च मन्दारपुष्पाभ्यानयतु द्रुतम् ॥

मैत्री भ्रातृगतिनः मित्रमर्चयतामुभौ ।

'कुबेरसर जा कर खव स्वर्गपञ्चोंको और उसी उद्यानसे मन्दार पुष्पोंको लावें और दोनों भाई शिवलिङ्गकी पूजा करें ।' इसे सुनने ही वह बालक कुबेर-सर पहुँचा और वहाँके रत्नक बच्चोंको मारकर स्वर्गपञ्च तथा मन्दार पुष्प लेकर लौटा, रास्तेमें एक वृक्षके नीचे विभ्राम करने लगा, इतनेमें—

तत्रान्तरे च रामस्य नरमेधे सुरक्षणम् ।

चिन्तन् पुरुषमागच्छत्तेन प्रभेजे लम्पणः ॥

स त्वं समराहतं मोहनालेण मोहितम् ।

क्षेत्रधर्मेण बन्धा तं अयोध्यामानवपुरीम् ॥

‘श्रीरामके नरमेघके हेतु सुन्दर लक्ष्मणोंसे कुछ पुरुषोंको हँसते-हँसते लक्ष्मणजी उसी मार्गसे लौटे और लक्ष्मणो युद्धके लिये लज्जकारक उसे मोहनाक्षसे मोहित कर बाँध करके अयोध्यापुरी लेगये ।’ पाठक विचार कर सकते हैं कि इस समय सीताजी क्या दशा हुई होगी ? पर सर्वज्ञ वाल्मीकिजीने कुशाको विषय शब्दाक्ष देखकर अयोध्या जाकर लक्ष्मणो युद्ध जानेकी आज्ञा दी । कुशने तुरन्त अयोध्याके लिये प्रस्थान किया और वहाँ जाकर—

राघवमानामयोध्यायां यज्ञभूमिं ग्लोष सः ।

अयोध्यामें घोर संग्राम हुआ । पर सीताजी-जैसी पतिव्रता-शिरोमणिको, लोकापवाद तथा धर्मके नामपर, निर्दोषित कर देनेवाले राम और लक्ष्मण, साक्षात् नारायणके अवतार भी उस जैसी महासतीके पुत्र और ऋषिवर वाल्मीकि-के परमभक्त त्रिभुवनविजयी भीरु कुशके सामने कैसे ठहर सकते थे ? अयोध्यामें कुशने उन त्रिभुवन-कन्या वीरवरोंको पराजित कर दिया । अन्तमें रामचन्द्रजीके पृथ्वीपर उतारने कहा—

कुशन्ततोऽम्रवीन् बद्ध्वा लभणेनाग्रजे मम ।

आनीत इह तस्याहं मोक्षनार्थमिहामृतः ॥

आवां लव-कुशौ रामतनयौ इति जानकी ।

माता नौ वक्ति चतयुक्त्वा तद्वृत्तान्तं शशंस मः ॥

लक्ष्मण मेरे बड़े भाईको बाँधकर वहाँ लाये हैं । मैं उनके छुड़ानेके लिये वहाँ आया हूँ । हमारी माता जानकीने बतलाया है कि हम दोनों लव-कुश श्रीरामके पुत्र हैं ।’ हम वृत्तान्तको सुनकर श्रीरामका हृदय भर आया और उन्होंने उन बाज-वीरोंको एकड़कर हृदयसे जगा लिया—

अथ सीतां प्रशंसन्तु वीरोऽपदयन्तुतौ शिशू ।

पौरेषु मिलितेष्वत्र स तौ रामोऽग्रहीत् सुतौ ॥

आनाय्य सीतादेवीं च वाल्मीकिराग्रमात्ततः ।

तया सह सुखं तस्थौ पुत्रन्यस्तमरोऽथ सः ।

श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी प्रशंसा करते हुए और उन दोनों अपने शिशु पुत्रोंको देखते हुए नगरनिवासियोंके साथ आनन्दसे उनको ग्रहण किया और वाल्मीकिजीके आश्रमसे

श्रीसीता देवीको बुलवाकर पुत्रोंके ऊपर राज्यभार छोड़कर वे सुखसे जीवन व्यतीत करने लगे ।

यही ‘कथासरित्सागर’ में कही हुई कथाका संक्षेपरूप है । अब पाठक सहज ही देख सकते हैं कि इस वर्णनमें और जोड़-बिभूत रामायणी कथामें कितना भेद है ? उपर्युक्त टिप्पि-सर और नीर-परीचाका वृत्तान्त रामायणमें नहीं पाया जाता । रावण-वधके पश्चात् सीताजीके अग्नि-प्रवेशकी कथा सबको विदित है । पर सीताजीकी वह सरोवरप्रवेशकी बात एकदम अनोखी है । हाँ, सीताजीका नदी-प्रवाहके मार्गका बदल देने या नूनन गंगधाराको उत्पन्न करनेकी कथाएँ प्रचलित हैं परन्तु सत्य-परीचाय सीताजीका सरोवर—प्रवेश करना एक बिल्कुल नयी बात है । वैसे इस कथामें, नरमेघका उल्लेख भी कम आश्चर्यजनक नहीं । श्रीरामके अरवमेघकी बात तो प्रसिद्ध ही है पर श्रीरामके समय नरमेघकी राजसी प्रथा प्रचलित थी वह अत्यन्त ही असम्भव प्रतीत होता है । ❀ तीसरी बात, इस कथामें कुश-लक्ष्मणका अयोध्यामें युद्ध होता है । रामायणीय कथाके अनुसार वह युद्ध वाल्मीकिके आश्रमके समीप हुआ था । कहीं-कहीं तो इस युद्धके वाल्मीकि-आश्रमके समीप होने और कुश-लवके द्वारा श्रीराम-लक्ष्मणके पराजित होनेकी बात मिलती है । पद्यपुराणमें भी इस युद्धकी भूमि आश्रमके समीप ही बतलायी गयी है । इस कथामें कुश अपने माता-पिताका नाम स्पष्ट कह देते हैं और वाल्मीकि तथा अज्यात्म-रामायणमें दोनों बालक अपनेको मुनि-कुमार और वाल्मीकिजीके शिष्य कहते हैं और राम-सभामें राम-कथाका सुस्वर गान करते हैं । ऋषियोंका प्रभुको शपथ देनेके लिये उद्यत होनेकी और लवके स्वर्णपत्र लानेकी कथा भी उल्लेखनीय है । एक और कथामेद इसमें यह है कि जहाँ अन्य स्थानमें श्रीरामचन्द्रको सीता-सम्बन्धी अपवादकी कथा वृत्तोंद्वारा प्राप्त होती है वहाँ इस कथामें उसे श्रीराम गुप्तवेषमें अयोध्यामें घूमते हुए स्वयं सुनते हैं । इस कथामें सती सीताके एक ही पुत्र होनेका वर्णन है और रामायणमें लव-कुश दोनोंके जानकीजीके गर्भसे उत्पन्न होनेकी बात पायी जाती है । कुश-से कुशकी उत्पत्तिका वर्णन अज्यात्म रामायणमें भी नहीं पाया जाता । तथापि वह कथा समस्त भारतमें प्रचलित है । इस कथामें

❀ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नरमेघ यज्ञ करना कदापि सम्भव नहीं माना जा सकता । सम्भव है, नरमेघ माननेवाले लोगोंमें अपनी कल्पनासे ऐसी बातें लिख दी हो । परन्तु इन बातोंपर कभी विश्वास करना योग्य नहीं ।

सीता निर्वासनके पश्चात् सीता-रामका पुनः संयोग दिखाया गया है। यह कथा रामायणीय कथासे विस्तृत विस्तृत है। वाल्मीकीय रामायणमें सीता-निर्वासनका उल्लेख तो मिलता है पर सीताराम-संयोगकी बात नहीं मिलती। और 'कथासरित्सागर'में स्पष्ट लिखा है—

तथा सह सुखं तस्थौ पुत्रन्यस्तमरोऽथ सः ।

सोमदेवके कथनानुसार यह अनुमान किया जाता है कि यह कथा ऐसी ही 'बृहत्कथा' में वर्णित होगी। यह सम्भव नहीं कि सोमदेव-जैसा बहुश्रुत और विद्वान् कवि रामायणीय कथा (सीता-निर्वासन और पुनः आश्रमसे बाँटते ही श्रीसीताजीके निज धाम-गमन) से अपरिचित हो और साथ ही यह भी सम्भव नहीं कि उन्होंने 'सरित्सागर' के आधारभूत बृहत्कथामें वर्णित राम-कथाके विपरीत ऐसा फेरफार किया हो। अतः सोमदेवके कथनानुसार ही बृहत्कथामें श्रीसीता-राम-संयोग अवश्य ही वर्णित रहा होगा। साथ ही यह भी निस्सन्देह है कि भवभूति इस प्रसिद्ध महान् ग्रन्थसे अवश्य परिचित थे। दण्डी, बाण, मुबन्धु प्रभृति कविवरोंके कथनानुसार ईसाकी छठी शताब्दिमें यह ग्रन्थ प्रचलित था, अतः भवभूतिके इसमें परिचित होना नितान्त सम्भव है। प्रोफेसर लेवीका भी यह मन है कि भवभूतिने माकलीमाधवका कथानक बृहत्कथाकी उस मूल कथासे लिया था जिसके आधारपर ही सोमदेवने कथासरित्सागरमें मद्रिहावतीकी कथा लिखी थी।

M. Lacote द्वारा प्रकाशित 'बृहत्कथा-श्लोक संग्रह' की विषयसूचीमें उपर्युक्त रामकथाका वर्णन नहीं है, पर हेमेन्द्रकी 'बृहत्कथा-सञ्चरी' में रामकथा अति संक्षेपमें वर्णित है तथा यह श्लोक भी उसमें पाये जाने हैं—

टिटिमोऽन्धिते जायां दृष्टवान्मेन समागताम् ।

प्रतिश्रयार्थिना भर्तृषिवा निर्व्याजि मानसाम् ॥

पुत्री कुशलवाभिलषी उक्तौ वाल्मीकिना स्वयम् ।

तौ प्राप्य रामोदयितां विशुद्धामानिनाय ताम् ॥

'स्वयं वाल्मीकिजीके कहने पर कि ये कुश-खव नामके दोनों आपके पुत्र हैं, श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें ग्रहण करके उस अपनी विशुद्ध भाषा श्रीसीताजीको बुला भेजा।' इस प्रकार बृहत्कथाके आधारपर लिखे गये तीन संस्कृत-ग्रन्थोंमेंसे दो ग्रन्थोंमें श्रीसीता-रामके पुनः सम्मेलनका वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, कथासरित्सागरके ग्रन्थकार तो यहाँतक कहने हैं कि 'यथा मूल तथैवैतन्न मनागप्यनिक्रमः।' इससे यह अनुमान सुदृढ़ होता है कि बृहत्कथामें श्रीसीता-राम-सम्मेलनकी कथा अवश्य वर्णित थी और क्योंकि यह ग्रन्थ ईसाकी छठी शताब्दीमें प्रचलित था। अतः बहुश्रुत विद्वान् भवभूतिने इस कथासे परिचित होनेके कारण उत्तररामचरितके सम्मेलनकाङ्क्षी रचना करते समय इस कथाको अपने मनःशुक्लके सामने अवश्य रक्खा था।

साथ ही यह बात भी याद रखने योग्य है कि रामकथा-जैसा परम प्रसिद्ध और परम पुनीत कथामें, नाट्यरचनाके लिये ही क्यों न हो, सहसा ऐसा विपर्यास करना भी महज नहीं। और नाटककी लोकप्रियताके लिये भी ऐसा करना तबतक उचित नहीं समझा जाता, जबतक कविको उसके लिये तत्कालीन साहित्यमें कुछ आधार न मिल जाय। अन्तमें हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उपर्युक्त सोमदेवकी कथासे मिलती-जुलती कथाएँ अन्यत्र भी पायी जानी हैं।

## दोनों लोकोंका पन्थ

बेदनको भेद बेदध्यासने बखान्यौ सोई,  
सरल सुशोध भाषाबद्ध करि गायौ है।  
रामायन वाल्मीकि आदि गुरु ग्रन्थन के,  
भाव भरि कीन्हों सार-संग्रह सुहायौ हैं ॥  
पान करि पावन सुजान-अनजान, पेसो  
बार्नामय पावन प्रियूष बरसायौ हैं।  
दास तुलसीने ग्रंथ मानसके व्याज मानो,  
पंथ दुहुँ लोकनको पाधरो बनायौ हैं ॥

—जगुनदास केहिया ।

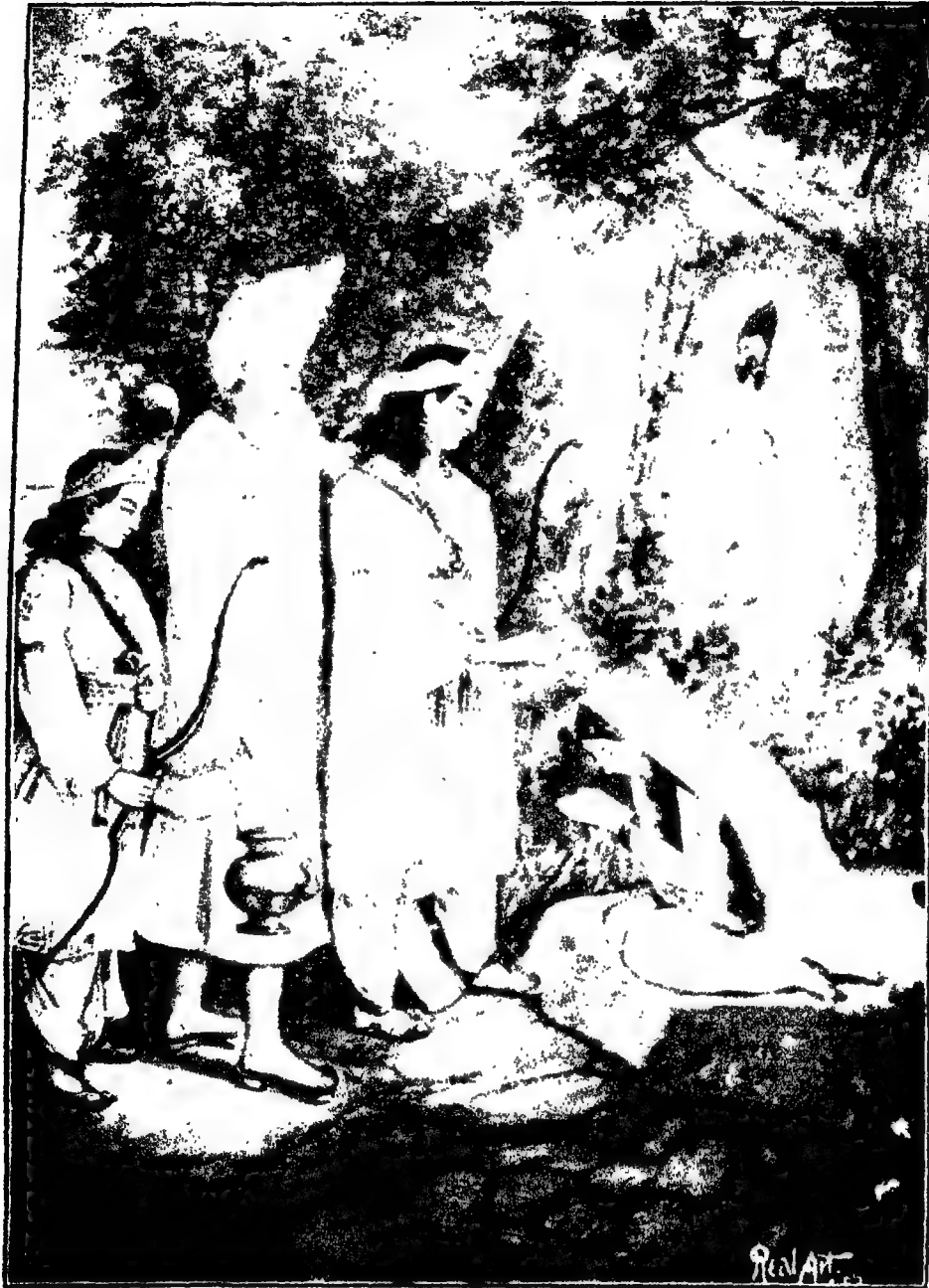
## तुम्हें अर्पण करे

लौचन लखे मो लखे तेरा ही अनूप रूप,  
घाणी जो करे तो करे तेरे गुण गानको।  
श्रवण सुने तो सुने तेरे ही मधुर वैन,  
तेरे ही तनू की गन्ध मुग्ध करे घ्राणको।  
त्वचा भी छुए तो छुए तेरी ही चरण-धूलि,  
मन भी सोचे तो सोचे तेरे गुण-सानको।  
हृदय तेरा ही लोभी तेरा ही आसक्त बने,  
अर्पण तुम्हें ही करे "चंद्र" प्रिय प्राणको।

—ताराचंद पांड्या शी० प० "चंद्र"



## कल्याण



परम पद पावन मोह-नमावन प्रगट भई तपपुंज सही ।  
देखत रघुनायक जन-मुख-शायक सनमुख होइ कर जोरी रही ॥

स. सा. मुद्रणालय अमरावती.



## अहल्याका पद-वन्दन

गम-गद-गदुम-गगग गरी ।

ऋषि-निय नुरत न्यागि पाहन-ननु छविमय देह भरी ॥

प्रचल पाप पनि-माप-दुसह-दय दारुन जगनि जरी ।

कृपा-पृथा मिचि विवुध वंदि ज्यो फिगि मृग-फगनि फरी ॥

निगम-अगम मृगनि महिम-मनि-जुवनि चगय वरी ।

मोड मृगनि भड जानि नयन-पथ डक टकतें न टरी ॥

चरनानि हृदय मरूप-मील-गुन-प्रेम-प्रमोद भरी ।

तुलसीदाम अस कहि आगनकी आगनि प्रभु न हरी ॥

## श्रीगोस्वामी तुलसीदामजीकी स्वकथित जीवनी

(लेखक-गोविंद चरण पंत श्रीविद्यानन्दजी बिपाठी)



विकूल-चढ़ामणि, धर्मप्राण, सकल-राज-  
सम्पन्न, भगवत्कामगय श्रीगोस्वामी  
तुलसीदामजीका परिचय देनेकी कम-से-कम  
हिन्दी जाननेवालोंके जिये कोई आवश्यकता  
नहीं है। आपकी काशी-लाभ हुए केवल  
तीन सौ वर्ष बाने हैं, फिर भी आपकी  
जीवनीके विषयमें बहुत कुछ खोज होनेपर भी कोई विशेष  
जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी बल्कि अम और भी बढ़  
गया। इनके माता-पिताके नाम, इनकी जन्मभूमि आदिके  
विषयमें ऐसा घोर अनभिज्ञ है कि जिसका सामञ्जस्य होना  
नितान्त असम्भव-सा हो गया है। श्रीवैष्णोमध्वरचित  
'गोसाईं चरित' का नाम बहुत दिनोंसे सुनने आते हैं,  
परन्तु वह पुस्तक बहुत खोज करनेपर भी प्राप्त नहीं हुई।

ऐसी अवस्थामें कविने स्वयं अपने विषयमें प्रसंगानुसार  
कहीं कहीं जो कुछ कह दिया है उसीके संग्रहसे संतोष  
करना है। यह कविजी भी ऐसे विरक्त थे कि अपने विषयमें  
गौरवकी बात तो कहना ही नहीं चाहते थे, बहुत नाराज  
हुए तो कह उठे—

‘मेरी जाति पाँति न चढ़ूँ काहुँका जानि पाँति ।

भरे कोऊ कामको, न हौं काहुँके कामको ।

साधु के असाधु भलो के पोच सोच कहा ।

का काहुँके द्वार परी, जो हौं सो हौं रामको ॥’

६०

नथ—

भूत कहौ अवभूत कहौ  
रजत कहौ, जेलहा कहौ कोऊ ।  
काहुँका बेटेसो बेटा न ब्याहब ।  
काहुँका जात बिगारन सोऊ ॥  
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको  
जाका दूचै सो कहै कतु कोऊ ।  
मौगिके खेबो मजीनको सोखो ।  
लेबेको एक न देखेको दोऊ ॥

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि गोसाईंजीने किसी पवित्र  
प्राणाय-कुलमें जन्म ग्रहण किया था यदि ऐसा न होता तो  
वे रजपूत कडनेसे न चिढ़ते। दूसरे, उन्होंने स्वयं लिखा है  
'ज्यो सकल नम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारिको।' इससे  
यह बात भी सिद्ध होती है कि गोस्वामीजीका शरीर भी  
सुन्दर था। नागरी-प्रचारिणी-सभाके प्रबन्धसे छपे हुए  
रामायणमें-जैसा घेढड़ा चित्र दिया हुआ है, उनका शरीर  
वैसा नहीं था। 'सुन्दर' पदसे तो स्वर्णविलास-प्रेस बाँकीपुरमें  
छपे हुए रामचरितमानसमें जिस प्राचीन चित्रकी प्रतिलिपि  
दी हुई है वही समीचीन जैचती है, और वही प्रतिलिपि,  
गोस्वामीजीके अन्वाड़ेके पारवर्तों स्वर्गीय विन्ध्येश्वरीप्रसाद  
पण्डाजीके यहाँ गोस्वामीजीका जो प्राचीन चित्र है, उससे  
मिलती जुलती है।

गोस्वामीजीके माता-पिताने इनके जन्म लेते ही-चाहे अभुक्त मूलमें जन्म लेनेके कारणसे ही हो-इन्हें त्याग दिया था, और ये बहुत दिनोंतक बहुत ही दुखी अवस्थामें भटकते फिरे थे। यथा—

जायो कुज मंगन बभयो ना बजायो सुनि,  
भयो परिताप पाप जननी जनकको।  
बोरते ललात बिलगात द्वार द्वार दीन  
जानत ही चारि फल चार ही चनकको ॥

तथा—

मातु पिता जग जग तज्यौ  
विधिहु न सिद्धये कतु भात भयौ।  
नीच निराश्र नाजन कादर  
कुकर कुकर लाल ललाई ॥

परन्तु बचपनहींमें इन्हें किसी अच्छे महात्माका सम्पर्ग हुआ, और उन्हींका शिष्यत्व प्राप्त होनेमें ये राम-रंगमें रंग गये, यथा—

मैं पनि निज गुरुमन सुनी कथा सुमकर खेत।

समुझि नहीं तसि बारपन तब अनि रहेई अचेत ॥

तदापि कतौ गुरु बरहि बाप। समुझि परे कतु मन अनुसार ॥

गोस्वामीजीके हृदयमें जैसी गुरुभक्ति थी, उसमें उनके गुरुजीके अलौकिक सद्गुणोंका परिचय मिलता है, और उनके सम्पर्गसे गोस्वामीजीमें जैसे सद्गुण, श्रद्धा, विश्वास, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका उद्भव हुआ, उसमें भी कहा जा सकता है कि गुरुदेव कोचमय शङ्कररूप ही थे।

गोस्वामीजीका नाम चाहे उनके गुरुजीने रक्खा हो, अथवा उनके रामनामकी स्तनको मुनकर लोगोंने ही रख लिया हो-रामबोला था, जिसका उल्लेख गोस्वामीजी अभिमानके साथ किया करते थे, यथा 'रामबोला नाम है मुलाम राम म. वि. को' फिर विनयपत्रिकामें कहते हैं कि 'रामबोला गुलाम नम रामबोला रामबोला राम'।

गोस्वामीजीकी अपनी मातृभूमिके प्रति कैसी भक्ति थी, उसकी छाया श्रीरामचन्द्रजीमें अपो-ध्याका वर्णन करवानेमें आगयी है, यथा—

जन्म भूमि मम पुरी सुहृदनि। उत्तरा तसि बह गुरु पावनि ॥

जद्यपि सब बंकुष्ट वस्त्राना। बंद पुरान विदित जग जान ॥

अवध सारस मोहि प्रिय नहीं सोइ। यह प्रसंग जनि कोउ कोऊ ॥

गोस्वामीजी स्वयं जिस भाँति चित्रकूटका वर्णन करते हैं और वहाँके कोल-किरात, बेलि-विटप, गृध्रकी भी महिमा कहते हैं, इससे उनके चित्रकूट-प्रान्तमें जन्म ग्रहण करनेकी बात युक्तियुक्त मालूम होती है। चित्रकूट जाते समय—

कवि अगस्तित गति बेष निरागी। मन कम बचन राम अनुरागी ॥

—बटुका श्रीरामचन्द्रसे मिलना और फिर उसका गृध्रक न होना, श्रीरामचरितमानसमें एक ऐसी विचित्र घटना है, जिससे उक्त स्थलको उनकी जन्म-भूमि माननेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

गोस्वामीजीके ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि पारलौकिक साधनके उपयुक्त शास्त्रानुभवके होते हुए भी, गोस्वामीजीको गृहस्थाश्रमका पूरा अनुभव था, उन्होंने अवश्य ही गृहस्थ जीवन निर्वाह किया था, और उसके मर्मको उनकी कुशाग्र बुद्धिने अच्छी तरह समझ लिया था। विनयमें तो उन्होंने स्वयं स्पष्ट स्वीकार ही किया है—

लरिकाई बीनी सम्बत चित्त बचरता बीनीसे चाप।

नीचन तरा पुर्वी कृपाय कवि नयों विदेग अब मदन भाय ॥

इत्यादि।

परन्तु ऐसे महापुरुषोंका बहुत दिनोंतक गृहस्थोंके जालमें कैसा पड़ा रहना असम्भव था। निमित्त कारण चाहे कुछ भी हुआ हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि अवसर पाने ही लका हुआ वैराग्यका सोना फूट पड़ा, और

बापु निधन नेराय मनहु भात मुग भात बस।

—को चरितार्थ कर दिखलाया।

गोस्वामीजीके रामानन्दीय सग्रदायी (वैरागी) होनेके अनुकूल अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। इस सग्रदायके गृहस्थ शिष्यको विरक्त होनेमें किसी विशेष संस्कारकी आवश्यकता नहीं पड़ती। परका त्याग देना ही पर्याप्त समझा जाता है। गृहस्थोंके समयकी जी हुई दीक्षा ही यथेष्ट होती है। मालूम होता है कि गोस्वामीजीने भी ऐसा ही किया था, यथा—

मैं पनि निज गुरुमन सुनी कथा सुमकर खेत।

समुझि नहीं तसि बारपन तब अनि रहेई अचेत ॥

दूसरे वैरागोसमाज अपना अच्युत गोत्र बतलाता है और गोसाईंजी भी कहते हैं—

अतिही अयाने उपखानेहू न बूझे लोग  
साहिबके गोन गोन होत है गुलामको ।

इस पदसे अश्रुत गोत्र ही ध्वनित होता है । वैष्णव-  
सम्प्रदायमें स्मार्त सम्प्रदाय केवल वैरागियोंका है, और  
गोसाईंजीके स्मार्त-वैष्णव होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

संक्षेपतः गोस्वामीजीकी सम्पूर्णा जीवनी नीचे लिखे  
हनुमानबाहुकके दो कवित्तोंमें आ जाती है, यथा —

बालपने मुख मन राम सनमुख भयो,  
राम नाम लेत मोंगि खान टुक-टाक हों ।  
पर पाँव करीतमें पुनीति प्रीति रामराय,  
मोह-बस बैठौ तोंगि तरक तराक हों ॥  
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनयो  
अजनीकुमार सोधो रामपानिपाक हों ।  
तुलसी भासाई भयो, मोटे दिन मुक्ति भयो,  
ततो फल पावन निदान परिपाक हों ॥  
गमन-वमन-होन विषम विषाद होन  
देखि दीन दुखों करै न हाय हाय को ।  
गुलामी अनापसो मनाय रनुनाय कियो  
दियो फल साँक सिन्धु आपन सुभायको ॥  
नीच वहि नीच पति पाट भूआइया  
बिहाय प्रभु भजन बचन मन कायको ।  
ताते तन पंगियत वार बरतो मिस  
कूटि कूटि निकसन होन राम-रायको ॥

साधु-वेपथारी होनेपर गोस्वामीजीने अपनी अश्रुत-  
मयी वाणीसे रामरस वरसाना आरम्भ किया और इनकी  
सहिमा दिगन्तमें प्रसिद्ध हुई । ऐसे भगवद्भक्तका करामाती  
होना भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, यथा—

रामप्रताप मरी जे कहँ कोउ शिला गरोरह जाये ।

निदान इनका नाम बढ़ा परन्तु महापुरुष सरल होते हैं,  
अपनी कच्ची-पक्की सब कह डालते हैं । यथा—

घर घर मोंगे टुक पुनि भूपति पूज पाय ।  
ने तुलसी तब राम विनु ते अब राम सहाय ॥

गोस्वामीजी बहुत दिनों तक अयोध्यामें रहे और वही  
रामचरितमानसकी रचना संवत् १६३१ की रामनवमीको

आरम्भ की । इस समय गोस्वामीजीकी परिपक्ववस्था थी ।  
यथा—

भंड सुमानस सुथिर थिराना । सुन्द मान रुचि चारु चिराना ॥

आप प्रयागराज, वृन्दावन, जनकपुर, हिमालय,  
चित्रकूट आदि तीर्थोंकी यात्रा भी करने थे और इन  
तीर्थोंका वर्णन भी इनके ग्रन्थोंमें पाया जाता है । रामचरित-  
मानसके निर्माणके ४६ वर्ष बादतक जीवन रहनेसे तो  
वही अनुमान होता है कि गोस्वामीजीके विशेष नहीं, तो  
शतायु होनेमें कोई सन्देह ही नहीं है ।

यद्यपि गोस्वामीजीके नामसे बहुत-से ग्रन्थ देखे जाते  
हैं, परन्तु बारह ग्रन्थ तो गोस्वामीजीद्वारा रचित होनेमें  
सब एकमत हैं । ( १ ) रामचरितमानस ( २ ) रामलला-  
नहट्ट ( ३ ) वैराग्यसंदीपनी ( ४ ) बरवै रामायण ( ५ )  
पार्वतीमंगल ( ६ ) जानकीमंगल ( ७ ) रामाज्ञा प्रश्न  
( ८ ) दोहावली ( ९ ) कवितावली ( १० ) गीतावली  
( ११ ) श्रीकृष्णगीतावली और ( १२ ) विनयपत्रिका ।  
इन्हीं ग्रन्थरूपी स्मारकोंने गोस्वामीजीका नाम अमर  
कर दिया है । इन ग्रन्थोंको देखनेसे गोस्वामीजीके प्रगाढ़  
पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्व, अनन्य रामोपासना, सरल  
स्वभाव, निश्चल विश्वास, उच्च उदारभाव आदिका पता चलता  
है । ये ग्रन्थ ऐसे हैं कि इनको वैष्णव, शैव, शाक्त सभी  
स्नानन्द पढ़ते हैं, और किसीके हृदयपर ठेस नहीं लगने  
पाती । अहंतावादी, विशिष्टाहंतावादी और हंतवादी सभी  
मनन करने हैं और किसीको अश्रुनुद नहीं बोध होता ।

रामके गुणजनकी रीति प्रीति सभी सब,

सबसे सनेह सबहीको सनमानिये ।

इस पदको गोस्वामीजीने कायमें परिणत करके  
दिखला दिया है और अपनी रचनाकी फल-श्रुतिमें जो  
गोस्वामीजीने कहा है कि—

गावत वेद पुरान अष्टदस . सबों शस्त्र सब ग्रन्थनको रस .

मुनि जन धन सन्तनको सर्वस . मार अम सब बिधि सबहीकी ॥

सो बिल्कुल ठीक है ।

अपनी रचनामें गोस्वामीजीने सम्पूर्ण शास्त्रोंका  
सामञ्जस्य कर दिखाया है, एक वाममार्गका सामञ्जस्य करनेमें  
गोस्वामीजी अममर्थ रहे । इतना ही नहीं, गोस्वामीजी वाम-  
मार्गको श्रुति-सम्मत नहीं मानते थे, यथा—

तत्र श्रुति पंथ वाम पंथ चरहीं । भेचक विरोधि भेग जग धरहीं ॥

रात्रणके प्रति अंगदकी उक्ति है—

कौतुकान्न वस कपिन विमूढा । अति दक्षिण अत्रसी अति बूढा ॥

जीवत शत्रु समान ये प्राणी ।

गोस्वामीजीने अलिख वेदमूलक वादोंको, अधिकारी भेदमे ठीक माना है । अद्वैतवादको गोस्वामीजी परम अधिकारीके लिये ठीक मानते हैं, यथा—

मोहि परम अधिकारी जानी ।

लोग करन ब्रह्म उपदेश । अज अद्वैत अगुण हृदयेसा ॥  
अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभवगाय अखंड अनुषा ॥  
निरविकार निरवधि सुखरासी । मनभोगीन अनल अविनासी ॥  
सो ते तोहि ताहि नहि बेदा । नारि बीबि डन गारहि बेदा ॥

और जब भुशुविहजीने उस उपदेशको नहीं माना, तब मुनिजीसे कोपपूर्वक कहलाते हैं कि—

मूढ परम सिख देखै न मानसि । उत्तर प्रत्युत्तर बहु अनसि ॥

भुशुविहजी इसी प्रकारका उल्लेख करते हुए गुरुजीसे कहते हैं कि 'भक्तिज्ञ हठ करि रहेउ दोह महामुनि काप'

वहाँ भी भुशुविहजीका हठ कहकर अद्वैतवादकी उत्कृष्टता दिखलायी है । ज्ञानदीप-प्रकरणमें तो 'मोहमयि इति वृत्ति अलण्डा' कहकर स्पष्ट अद्वैतवादका स्थापन करते हैं, परन्तु सामान्य जीवके लिये इसे निरान्त दुष्कर समझने हैं । इसभाँति अद्वैतवादको गोस्वामीजीने ज्ञानमार्गके नामसे उक्त किया है ।

विशिष्टाद्वैत मन्थन अधिकांशियोंके लिये माना है, यथा—

मायावस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ।

अथवा—

सबक सत्य भार बिनु भव न तरिय टानाति ।

इस वादको गोस्वामीजी भक्तिमार्गके नामसे उक्त करते हैं । भक्ति-मार्गके प्रकरणमें ज्ञानकी दुष्करता और भक्तिके सुकरताको बहुत स्पष्ट करके दिखलाया है, और इसभाँति ज्ञानपर भी भक्तिकी प्रधानता दिखलायी है ।

सब सिद्धान्तोंको आदर देते हुए देखकर लोगोंमें अग्र उत्पन्न होता है कि स्वयं गोस्वामीजीका कौन-सा सिद्धान्त था ? और इसपर वाद-विवाद उपस्थित हो जाता है । परन्तु विचारशील बात है कि अशेष वादोंका क्यास्थान आदर तथा पञ्चदेवोपासन सिवा अद्वैतवादके और कहाँ सम्भव है ?

ग्रामाधिकारीतिले यह भी पता चलता है कि इस सम्प्रदायके परमाचार्य भगवान् रामानन्दजी ज्योतिर्मयके महाचारी थे । बारह वर्षतक गिरनारपर तप करके उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी । इनके सम्प्रदायमें भजनका प्रधानत्व है । इसीसे लोगोंको इनके विशिष्टाद्वैतानुयायी होनेका भ्रम हो जाता है । परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है, शङ्कर सम्प्रदायवाले भी निरुपासि-ज्ञानको (उपासनाहीन) अकिञ्चित्कर मानते हैं । स्वयं नामाजीने भक्तमालमें भगवान् शङ्कराचार्यकी भक्तोंमें गणना की है, यथा—'आचार्य शङ्कर सुभट' निदान रामानन्दीय सम्प्रदायमें वादविवादकी अभिरुचि कभी भी नहीं रही । गुरु-परम्परासे मौलिक उपदेशकी प्रथा गोस्वामीजी तक चली आयी, और गोस्वामीजीने उसे लिपिवद्ध करके रामचरितमानस नाम रक्खा । अतएव यह उक्त सम्प्रदायका एक मात्र साम्प्रदायिक ग्रन्थ है । इसके मूलसम्प्रदायप्रवर्तक भी शङ्कर ही माने गये हैं यथा—

रवि मंदस नित्र मानस शाय । पाइ मुमय मित्रसन नया ॥

सोसिख साननमुद्रिहि दीन्ह । राम-भजन अधिकारी कान्हा ॥

नेहिसन जागवसि पुनि पया । तिन पुनि नादाय प्रति गाया ।

प्रेमो ज हरि मगत मुजाना । कहहि मुनहि समझहि बिधि नाना ॥

म पुनि नित्र गुरुपन सुनी कथा मुमुका मन ।

..... भाषाबद्ध करन में भेई ॥

कवितावलीमें गोसाईजीने कहा है कि 'वेप विरागवैराग्य भो' मनु ।' इसमें उनका वैरागी होना सिद्ध होता है और हंमदेव भी कहा है, यथा 'वै' इसको वेप बोधे मरमे तज दे वक शायमकी कानी ' कहाचिन् वैरागियोंके वेपको हंम-वेप और संन्यासियोंके वेपको परमहंस-वेप माना हो ।

गोस्वामीजीकी सरसता, साधुता और भजनका संसारने भी ऐसा आश्रय किया कि उहाँ-उहाँ उनका वास-विश्राम हुआ वे सब स्थान तीर्थस्थ माने गये, और वहाँ अम्विर-अस्वाद्य बने हुए हैं ।

जामु नामवद सङ्कर रासी । देत सबहि सम गति अविनासी ॥

इस शिवालयपर गोस्वामीजी काशीमें आ गये, और यहाँ—

सम्मत सोलह सैं असी, असी संगके तीर ।

सावन स्यामा तीरको तुम्सी तने सरीर ॥



प्रह्लाद शान्द, काशी । पं० गंगारामजी जोशीका घर ।



पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी दृश्य, काशी



विनय-पत्रिका भवनका बाहरी भाग, काशी



तुलसीघाट, काशी



गोमाई नृत्यमंडपका चित्र, काशी



संकटमोचनका बाहरी दृश्य, काशी



श्रीहनुमानजीका मन्दिर, काशी



संकटमोचनका भीतरी दृश्य, काशी

आजकलका प्रचलित पाठ है कि—

सावन शुक्ल सप्तमी तुलसी तज्यौ सरीर ।

—परन्तु यह पाठ निरान्त अशुद्ध है। भट्टरके कई दोहे 'सावन शुक्ल सप्तमी' परक हैं, यथा—

सावन शुकल सप्तमी जा गरज अधिरात,  
तथा—

सावन शुक्ल सप्तमी उदय न देखिय मान । इत्यादि  
अतः सावन शुक्ल सप्तमी लोगोंके ज्ञानपर थी, और सावन श्यामा तीज का अर्थ भी उनका सीधा नहीं है। अतएव प्रमादसे इस पदके स्थानको भी सावन शुक्ल सप्तमीने दलज कर लिया।

गोस्वामीजीके अन्वादेका कई पुरतसे मेवक होनेके नाते मैं अर्द्धी तरह जानता हूँ कि 'सावन श्यामा तीज' पाठ ही शुद्ध है। गोस्वामीजीके अन्वादेमें तथा टोडरमलके (जिनके यहाँका पञ्चनामा गोसाईजीके हाथका लिखा श्रीमान् काशीनरेशके यहाँ सुरक्षित है) वंशज चौधुरी लालबहादुर मिहके यहाँ भी यही निधि मान्य है।

यह सुनकर भी कह होना है कि किमी महाशयने, सम्भवतः डाक्टर प्रियर्शनके अनुमानका अनुसरण करने हुए कवितावलीसे यहाँतक मिथ करनेका प्रयत्न किया है कि उस समय काशीमें ज़ेग फैला हुआ था। यथा

मेहर महर मर नारि नर धरिचर  
बिरुन सकल महामारी भाग भई है ।  
एक तो कसक करिबारमन मन साथे,  
काँटमें ही खान भी सनीचरी है भितकी ।

अतः गोसाईजीको भी ज़ेग हो गया, कोड़ा हुआ, बाहुमें पीड़ा हुई, यथा—

पायपीर पेटपीर बाहुपीर मुहपीर  
जग जग सकल सरार पीरमई है ।

बहुत-से देवी-देवता मनाये गये, जब नहीं अच्छे हुए तब यह कहा कि 'होह रहीं मीनही बयो सो जानि लुनिये' और देहान्त हो गया।

शरीरीका शरीरसे नियोग किसी-न-किसी हेतुसे होता ही है, ज़ेगका हेतु होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

परन्तु जिस समय काशीमें ज़ेग फैला था उस समय कवितावलीके ही अनुसार मीनकी सनीचरी थी, और यदि दोहावलीकी सहायता ली जाय तो यह भी सिद्ध होता है कि उस समय रुद्रबीसी भी चल रही थी, यथा—

अपनी बीसी आपने पुरहिं लगायो हाथ ।  
केहि बिधि बिनती बिदवकी करौ बिदवके नाथ ॥

अतः मीनकी सनीचरी और रुद्रबीसी दोनों संवत् १६७१ में ही समाप्त हो जाती है, और गोसाईजीका देहावसान संवत् १६८० में हुआ, अतः गोसाईजीके देहावसानका कारण ज़ेग प्रमाणित करनेके लिये इतना बड़ा साहस करना कि मीनकी सनीचरी तथा रुद्रबीसीको भी ६ वर्ष आगे तक खींच ले जाना उपयुक्त नहीं मालूम होता।

वैद्य-डाक्टरोंके पूछनेसे पता चलेगा कि बाहुपीर बाहु-मूलसे उठकर उँगलियों तक जाती है, और अग्निसर्प वेदना पैदा करता है, अतएव बाहुमूलकी पीर ज़ेगकी घातक नहीं है, और न बरतोर का अर्थ ज़ेगकी गिळटी है, और न 'होह रहीं मीन बयो सो जानि लुनिये' यह पद ही कवितावलीकी प्राचीन लिपिमें मिलता है, अतएव उनका ज़ेगसे मरना नयी खोजके प्रयत्नमें शाबाशी पानेवालोंकी कपोल-कल्पनाके अनिश्चित और कुछ भी नहीं है।

सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि यदि उक्त रोगसे गोस्वामीजीका देहावसान हो गया होता, तो हनुमानबाहुकका अनुष्ठान रोगकी निवृत्तिके लिये कदापि न किया जाता। हनुमानबाहुकके अनुष्ठानकी परिपाटीसे ही यह बात सिद्ध है कि गोस्वामी इस रचनाके बलसे इतनी बड़ी पीरसे विनिर्मुक्त हुए।

### गोस्वामीजीकी लिखावट

गोस्वामीजीके अक्षर सुन्दर और पुष्ट होते थे। संवत् १६६६ में उनके भक्त टोडरमलके वंशजोंमें संपत्ति-विभागके लिये झगड़ा हुआ। गोस्वामीजीने विभाग कर दिया और उमे दोनों पक्षोंने प्रमाण माना। तदनुसार पञ्चनामा लिखा गया, उसमें दो श्लोक और एक दोहा गोस्वामीजीके हाथका लिखा हुआ है। स्वर्गवासी महाराज ईश्वरीनारायणसिंह काशिराजने उस पञ्चनामको टोडरमलके वंशजोंके यहाँसे अपने यहाँ मँगवा लिया, और वहीं अबतक भौजूद है।





## श्रीहनुमान्जीका महत्व

(लेखक—श्रीशुत रामचन्द्र शंकरजी टकी महाराज बी० ए० )

जय देव, जय देव, जय मारुतिराया, श्रीमारुतिराया ।  
आरति ओवातुं तुज, भक्तवामृत प्याया ॥  
लङ्कारूपी काम-क्रोधा जागुनियां ।  
बुद्धी सीता शुद्धी, करि सी कपिवर्गी ॥  
अगाध शक्ति नृशी, न करे कोणासी ।  
द्रोणागिरि तू उच्चलुनि, द्रोण रक्षीसी ।  
दबहुनि गडगर्वा, कोहुनि मणि ताना ।  
दास्य भक्तो आम्हा, शिकविमी हनुमंता ॥  
ब्रह्माण्ड पराणी, आहकलें ज्ञान ।  
फेकसि तेंबि पनरपि अर्जुन रथी पूर्ण ॥  
पालिमि उडी तद् ओढे, जधि मूं मंदिगीया ।  
श्रीशंकरभूत राम, जागें तव पाया ॥

स दिन मुझे उपर्युक्त आरतीकी भक्ति हुई और मैंने गोपालको बुलाकर इसे लिखवा लिया । आज श्रीहनुमान्जी प्रेरणासे उक्त आरतीका स्पष्टीकरण करनेका अवसर प्राप्त हुआ है । श्रीहनुमान् कौन हैं, उनका क्या अधिकार है? प्रवृत्ति प्रभांके उत्तर जान लेनेपर आरतीका अभिप्राय सहज ही दृश्यमान हो जायगा । अतः भारतीय पौराणिक साहित्यके अवतरण देकर मैं इस विषयको स्पष्ट करूँगा ।

केसरी तथा अजग्री वानर-युगमें वायुदेवताके प्रसादसे एक पुत्र हुआ, वही बाजक हनुमान् नामसे प्रख्यात हुआ । श्रीहनुमान्जी रुद्राक्ष लेकर अवतरित हुए थे । इनका जन्म चैत्र-शुक्ल १२ को हुआ ।

जिस दिन यह सूर्यके चित्रको पकड़ने आकाशमें उड़े, उस दिन सूर्यग्रहण था । जब यह आकाशमें तीन सौ योजन ऊँचे उड़गये, तब सूर्य घबरा गये । सब देवता दौड़े आये । पर इनके सामने किसीकी एक भी न खली । तब इन्द्रने इनपर वज्रप्रहार किया, जिससे हनुमंग होनेके कारण श्रीहनुमान्जी मूर्छित होकर गिर पड़े । इस प्रसङ्गको देखकर इनके पिता वायुदेवने सब देवताओंके माणशायुको आकर्षण कर लिया, जिससे सब घबराकर

उनकी शरण गये और हनुमान्को सचेतकर उन्हें बहुत-से वस्त्रान दिये । इन्द्रवज्रसे हनुमंग हो जानेके कारण इनका हनुमान् नाम पड़ा । यह अत्यन्त बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा पराक्रमी हैं । इन्होंने श्रीरामचन्द्रसे सुग्रीवका सख्य कराया, सीताके अन्वेषणका कठिन कार्य भी इन्होंने किया, रावणका गर्व नष्ट किया और श्रीरामचन्द्रजीकी अन्य अनेक प्रकारसे सहायता की । यह एकनिष्ठ रामभक्त हैं । किंपुरुषवर्षमें रहकर आगमकी उपासना करने हैं । ये अमर हैं । अर्जुनके रथपर महाभारतयुद्धमें बही बँटे थे । इनके मारुति, महावीर, अजनिन्दन आदि अनेक नाम हैं । इनकी रामायण-रचना 'नाटकरामायण' या 'हनुमन्नाटक' के नामसे विख्यात है ।

श्रीहनुमान्का जन्म चैत्र-शुक्ल पूर्णिमाको होनेका कारण यह है कि सज्जकसगुण मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रतिपदासे नव दिन नवधा भक्तिकी साधना प्रारम्भ करता है । पहले दिन श्रवण-भक्ति करनेके उपरान्त फिर क्रमशः प्रतिदिन कीर्तन, नामस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन आदि भक्तियोंको निष्काम बुद्धिसे करके तथा उन सबका ईश्वरार्पण करनेपर उसे नौमीको रामदर्शनका लाभ होता है । अर्थात् अन्तिम भक्ति करनेसे सद्गुरु-कृपासे उसे स्वरूप-बोध होता है ।

श्रीहनुमान् यह देवकर कि, सूर्यरूप ज्ञानको राहुरूप अज्ञान भ्रम रहा है तथा यह जानकर कि, ज्ञान-अज्ञान दोनों ही मायानिर्मित हैं । ब्रह्मभावसे वह उनपर झपट पड़े । उस समय उनका विरोध करनेके लिये इन्द्रादिरूप कामादि पङ्क्तिपुत्रोंने अपनी वज्ररूप शक्ति उनके हनुरूप भूमिकापर डाली, किन्तु वह केवल स्पर्शकरके ही गेंदकी तरह उड़ल गयी ।

अब उपर्युक्त आरतीकी मीमांसा करते हैं—

'जयदेव, जयदेव, जय मारुतिराया ।' मरुत अर्थात् वायुके प्रसादसे इनका जन्म होनेके कारण उन्हें मारुति या वायुसुत कहते हैं । इसमें श्रीहनुमान्जीको प्रेमपूर्वक गौरव

प्रदानकर ज्ञानयुक्त भक्तिका आस्थादान करनेके लिये 'भारती ओबालू' यह पद दिया गया है।

### लंका दहन

‘रुद्रा रूपी कान केश गुनियो बुद्धि संज्ञा मुद्धि करिति कपिवर्या

‘इस पदसे लङ्कादहन तथा सीता-शुद्धि-अर्थात् श्रीहनुमान्जीकी इन लीलाओंमें जीवोंके सत्वरूपी वर्णणा राज-समरूप लेप नष्ट हो जानेपर चित्तशुद्धि-योगमें प्रतिबिम्ब बिम्बमें मिला जानेपर सद्गुरुकी कृपासे ‘सर्वमसि’ वाक्यका ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, यह बतलाया। इस लीलाका वर्णन आपटे महोदयके बालरामायणमें इसप्रकार किया है

‘सीताको अनुकूल करनेके लिये रावणने उसे बहुत मनाया, परन्तु सीताने उसकी एक बात भी नहीं सुनी। पश्चात् रावणने राक्षसियोंके पहरेमें रखकर सीतासे छुल किया। इसपर भी उसके बशमें न होनेके कारण उसे एक वर्षकी अवधि दी और उस अवधिके बीतनेपर यदि वह राजी न हुई तो उसे मार डालनेकी धमकी दी। इस अवधिमें अब दो ही मास बाकी रह गये थे। सीता बारम्बार श्रीरामका स्मरण करती हुई महान् दुःखी हो रही थी। उसे अन्न-जन भी अष्टा नहीं लगता था। इस दशामें अचानक हनुमान्जीने आकर श्रीरामचन्द्रकी दाँ हुई अंगुठीका स्मृतिचिह्न दे श्रीराम-लक्ष्मणके कुशलयुक्त होने और शीघ्र ही आकर उसे छुड़ा ले जानेका समाचार निवेदनकर दादस दिया। उस समय श्रीज्ञानकीकी जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने हनुमान्को यह कहकर विदा किया कि शीघ्र जाकर श्रीराम-लक्ष्मणको ले आओ। श्रीहनुमान्ने वहाँमें जाने समय अशोक-वनको विध्वंस कर डाला। यह समाचार पा राक्षस दौड़े आये, पर उन सबको भी उन्होंने मार डाला। तब रावणने अपने पुत्र अक्षय तथा हनुमन्जीनको भेजा। तिनमें अक्षयको तो हनुमान्जीने पकड़ा दिया, पर हनुमन्जीनके आप स्वयं ही अधीन हो गये। तब राक्षस इनके हाथ-पैर बाँधकर रावणके समीप ले गये। रावणने उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी, परन्तु विभीषणके राजधर्म समझानेपर उसने उनकी पूँछमें चिह्न दे जपेट नेल बाँधकर आग लगानेकी आज्ञा दी। रावणकी इस आज्ञाका पालन होते ही हनुमान्जी उछले और उन्होंने एक घरसे दूसरे घरपर चढ़ते हुए सारी लङ्काको जला दिया। पश्चात् समुद्र पारकर अंगदादि वानरोंसे आ मिले और

सबके साथ रामचन्द्रजीके समीप गये। श्रीहनुमान्जी चिह्नके लिये श्रीसीताजीकी बेणीकी दिव्यमणि लाये थे उसे श्रीरामचन्द्रजीको दिखलाकर सब वृत्तान्त निवेदन करने लगे। तब श्रीरामको अत्यन्त दुर्घ हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे श्रीहनुमान्जीको छातीसे लगा लिया।

### द्रोणगिरि लाना

श्रीहनुमान्जीके द्रोणगिरि उडा लानेकी कथा श्रीवैद्यकृत रामायणमें इसप्रकार है

‘सुपेण (रामसैन्यका वानर). श्रीरामको मानवना देने कहता है--

‘महाराज, लक्ष्मण मरे नहीं हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। इनका मुख निम्नेज नहीं हुआ है। इनके करतल पद्म-पत्रके समान शीतल और मुखस्पर्श जान पड़ते हैं। हृदयकी धुक्धुकी चल रही है। आसोच्छ्वास भी मन्द-मन्द चलता प्रतीत होता है। इस समय यदि सजावनी मिल सके तो मैं इन्हें तुरन्त मचेत कर सकता हूँ। तब श्रीहनुमान्जी आगे बढ़कर बोले, ‘हे सुपेण ! सजावनी कहाँ मिलेगी ? यत्ताओ, मैं उसे एक क्षणमें ले आ सकता हूँ।’ सुपेणने कहा- ‘इस दुष्कर कार्यको करनेवाला तू ही है, और कोई नहीं। जा, हिमालयपर कैलासके दक्षिण शृङ्गपर सजावनी महीयधि है, और वहाँ विशल्यकरणी तथा मावर्ण्यकाकी नाक्षी ओपधियाँ हैं। उन्हें शीघ्र ला।’ यह सुनते ही श्रीहनुमान्जी उड़े और थोड़े ही समयमें हिमालय-पर्वत-पर पहुँच कैलासपर्वतके दक्षिण शृङ्गपर ओपधि पहुँचने लगे, पर उन्हें पहचान न सके। फिर यह सोचकर कि खोजनेमें विशेष विलम्ब हो जायगा, श्रीहनुमान्जी उस मधुर शृङ्गको ही उग्राद कर उसे गोंदकी तरह हाथमें ले हिमालयमें उड़े और लङ्कामें सुपेणके समीप उतरे। सुपेण श्रीहनुमान्जीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर दाँताँ तले डँगला दबाकर रह गया और उसने प्रतिप्रेमसे उनकी पीठ ठोकी। किञ्चिन् विश्राम करके हनुमान्ने कहा-- ‘इस शृङ्गपरका ओपधियाँ आप पहचान लाजिये, मैं पहचान नहीं सका और विलम्ब होनेके भयसे इस शृङ्गको ही लेते आया।’ सुपेणजीने आवश्यक ओपधियाँका रस निश्चल श्रीलक्ष्मणजीके नाकमें छोड़ा जिससे वे तत्काल सावधान हो उठ बैठे।



लंका जलार्क वाद हनुमानजी जननी सीताजी चरण इन्द्रमा कर रहे है ।



श्रीलक्ष्मणजीका जीवित करनेके लिये द्रोणाक्षल लाना



श्रीहनुमानजीके छाना गरुडजीका गर्व हरण



हनुमानजीका हाथ तोड़ना और हृदय चोरकर दिखलाना ।

कल्याण



श्रीरामका हनुमानके प्रति ज्ञानोपदेश



पार्थके रथपर हनुमानजी



श्रीहनुमानजी पर इन्द्रका वज्र गिराना

### गरुड-गर्व-हरण

गरुडके मनमें अपने परम पराक्रमी होनेका महान् गर्व था। वह जानकर श्रीविष्णु भगवान्ने आज्ञा दी कि—‘हे सुपर्ण, तू बड़ा पुरुषार्थी है, तेरे-जैसा पुरुषार्थी तीनों लोकमें और कौन होगा? अब तू शीघ्र बनमें जाकर एक बन्दर पकड़ कर ला। तू जकेसा ही पकड़ लायगा या अपने साथ कुछ सेवा भी लेता जायगा?’ वह सुन कर गरुड बड़े आदेशमें आये और उन्होंने श्रीहरिसे कहा—‘मैं तो गिरते हुए आकाशको भी अपने बलसे पारबध कर सकता हूँ, मुझे वही आश्चर्य मालूम होता है कि आप मुझसे पराक्रमीको बन्दर पकड़ने क्यों भेज रहे हैं? हे समासदो! देखो, मैं अभी बन्दर पकड़ जाता हूँ।’ ऐसा कहकर श्रीहरिकी चरख-कन्दा कर गरुड आकाशमें उड़े। शीघ्र ही बनमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि हनुमान् उनकी ओर पीठ किए हुए बैठे हैं और कौतुकसे फल खा रहे हैं; साथ-साथ मुँहसे रामनाम-कीर्तन भी कर रहे हैं। वह देखकर गरुडने कहा—‘रे बन्दर! तूने सारा बन नष्ट कर डाला और सारे वनचरोंको भगा दिया। अब पामर! तूने तो सब फल भी खा डाले। तू बड़ा अन्धारी है, मैं तुम्हें दबड दूँगा।’ गरुडकी इस बातको सुनकर हनुमान्जीने मुसकराकर कहा कि—‘तुम अपना नाम इमें बताओ। तुम्हें किसने भेजा है?’ गरुडने कहा कि ‘मेरा पुरुषार्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। मैं करबपसुत, श्रीहरिका दूत पचिराज गरुड हूँ। मैंने सब देवताओंको परास्त कर अपने पुरुषार्थसे अभूत प्राप्त किया है। मेरे भयसे नागराज पृथिवीके नीचे जा छिपे हैं।’ इसपर हनुमान्जीने कहा—‘जा अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा करता है वह सौ मूर्खोंकी अपेक्षा भी अधिक अज्ञानी है। बल, यश, कीर्ति, धर्म, पुरुषार्थ तथा अपनी परम विद्याकी जो अपने मुँहसे प्रशंसा करता है, वह वास्तवमें वैसा नहीं होता।’ इसपर गरुडने हँसकर कहा कि, ‘रे बन्दर, मालूम होता है, मरते समय तेरी नृत्ती बोलने लगी है।’ हनुमान्जीने भी वैसा ही उत्तर दिया, जिसे सुनकर गरुडने आकाशमें उड़कर ऐसी प्रबल गर्जना की कि सकल अचल वनचरादि जीव भयभीत हो गये। तब अकस्मात् गरुड हनुमान्जीपर झपटा और बाँच मारने लगा। पर हनुमान्जी जरा भी न हिले। पर्वतपर अमर, बड़े पेड़पर मन्की या हाथीके कन्धेपर चोटीका जैसा मार होता है वैसा ही गरुडका मार हनुमान्जीको मालूम हुआ। जखमर ऐसी लीला करनेके उपरान्त

हनुमान्जीने गरुडको पाँवोंमें दबा गर्दन पकड़कर उठाया, जिससे गरुड बबरा गया, उसकी आँखें निकलने लगीं, तब उसको पकड़कर हनुमान्जीने समुद्रमें फेंक दिया। श्रीहनुमान्ने गरुडको जो द्वारकासे फेंका तो वह साठ सहस्र योजन दूर जाकर समुद्रमें गिरा और छूटपटाकर डूबने लगा, फिर साँस रोककर वह पानीसे ऊपर आया और मनमें कहने लगा कि ‘मैंने जो हरिके सामने अभिमान किया था, उसका पूरा फल मिल गया। संसारमें कोई विद्या-मन्त्रसे मस्त है तो कोई धनमन्त्रमें उन्मत्त है, पर भगवान् जरा भी अभिमान करनेसे उन्हें दण्ड देते हैं।’ अब गरुडजी श्रीहरिका स्मरण करने लगे। उन्होंने कहा—‘हे भक्तवत्सल! आप मुझपर क्यों कोप करते हैं?’ गरुडको दिशाभ्रम हो गया, इतनेमें उसने द्वारकाका प्रकाश देखा। तब श्रीहरि-कृष्णका नाम जपते हुए वह आकाशमें उड़ा और मनमें सोचने लगा कि ‘यदि फिर उसी वनसे आऊँगा तो वह बन्दर मुझे फिर पकड़ लेगा, अतः वह दूसरे मार्गसे ही लौटा। किसी प्रकार द्वारकाके महाद्वारपर आया फिर वहाँ मूर्छित हो गिर पड़ा। सेवकोंने यह समाचार श्रीहरितक पहुँचाया और गरुडको भी उठाकर श्रीहरिके चरणोंपर रख दिया। तब श्रीहरिने कृपापूर्वक उसके नेत्रोंमें जल लगाकर उसे सचेत किया।

### भीम गर्व-नाशन

कथा है कि एक बार जोड़े-बड़े ऋषि रत्नकी थालियों-में देव-दुर्लभ वट्स भोजन कर रहे थे, उस समय भीमने ब्राह्मणोंमें इसप्रकार कठोर वचन कहे—‘हे ब्राह्मणो! देखो, पात्रमें आप कुछ भी उच्छिष्ट न जोड़ सकेंगे। यदि ऐसा करेंगे तो मैं उन्हे आपकी चोटियोंमें बाँध दूँगा। जितना आपके पेटमें शैंट उतना माँग ले। थालीमें अधिक लेकर छोड़ देना ठीक नहीं होगा। मेरा स्वभाव आप लोग अच्छी तरह जानते ही हैं।’ भीमके भयसे ब्राह्मण अत्यल्प आहार करने लगे, जिससे वे बेचारे दुर्बल हो गये। यह बात श्रीहरि ताड़ गये और भीमसे बोले—‘तुम शीघ्र जाकर गन्धमादनसे ऋषियोंको बुला आओ, उनकी बड़ी आवश्यकता है।’ भीमके मनमें अपने बलका गर्व था अतः वह तेजीसे उन ऋषियोंको लावे चले। मार्गमें बृद्ध वानरके वेशमें महान् पर्वतकी तरह अपनी पूँछ मार्गमें आधाकर हनुमान्जी बैठे थे। उनसे भीमने गर्जकर कहा—‘रे वानर! रास्तेमेंसे पूँछ हटा, मुझे शीघ्र ऋषिदर्शन करनेकी आवश्यकता है।’ इसपर श्रीहनुमान्जीने नम्रतापूर्वक कहा—‘हे

भीम, मैं अब बूढ़ हो गया हूँ, परन्तु तुम तो महाबली भीमसेन हो, अतः तुम ही जरा पूँछको हटा दो।' भीमसेन राजी हो गये और दस सहस्र हाथियोंका बल लगाकर पूँछ हटाने लगे, पर वह जरा भी न हटी तथा पर्वतकी तरह अचल पड़ी रही। भीमसेनको हतबल देख इन्मानुजी जारोंसे हँस पड़े और बोले कि 'हे धर्मानुज ! तू गर्वको छोड़कर श्रीकृष्णका भजन कर।' तब तो भीमसेन श्रीहनुमान्जीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे। 'हे भगवन् ! आप श्रीरघुनाथके प्यारे हैं, आपने रावणके बल-दर्पको नृप किया और श्रीसीताके शोकको दूर किया है।' भीमको निरभिमान होते देखकर श्रीहनुमान्जीने अपनी पूँछ हटा ली, तब भीम गन्धमादन-पर्वत चले गये।

#### हार फोड़ना

श्रीचरत्सामी अपने रामविजयमें लिखते हैं, 'श्रीसीताने बानर-बुन्दको बकालझारादिसे गौरवान्वित करनेके उपरान्त श्रीहनुमान्को अपने कण्ठका दिव्य रत्न-हार दिया। वह हार अद्वितीय था, तीनों लोकोंसे भी उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता था। उसकी एक एक मखि इस पृथ्वीकी कीमनकी थी। श्रीजानकीजीने ऐसे हारको इन्मानुजीके गलेमें डाल दिया। श्रीहनुमान्जी हार पहन कर एक पेड़पर चढ़ गये और एक-एक मखिको दाढ़से फोड़कर देखने लगे। पर किसी भी मखिमें उन्हें राम नहीं दिखायी दिये, तब उन्होंने 'व्यर्थ पापाय' कहकर उनको फेंक दिया। यह देखकर जोगोंने कहा कि 'व्यर्थ ही हार क्यों नष्ट कर रहे हो।' श्रीहनुमान्जीने कहा कि 'इसमें राम नहीं दीखता' तब जोगोंने आश्रय किया कि 'क्या तुम अपने हृदयमें भी राम दिखा सकते हो?' यह सुनते ही श्रीहनुमान्जीने अपना हृदय खोलकर दिखाया। उसमें उन जोगोंने, जिस प्रकार बाहर श्रीरामचन्द्र सिंहासनपर विराजमान थे, वैसी ही मूर्ति देखी। तब सबने उठकर श्रीहनुमान्जीका नमस्कार किया।

#### श्रीहनुमान्के प्रति श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम

श्रीवैद्यकृत रामचरित्रमें लिखा है कि 'जब सुग्रीवादि श्रीरामचन्द्रजीने अलग होने लगे तो भगवान्ने मृगय, विमोषण, जाग्रदवस्था, मैत्र्य, द्विषि, शत्रु, इन्मानादि सब लोगोंको एक-आमूयण आदिसे संकृत किया और

उन लोगोंसे विनयके साथ कहा कि 'इसमें आप लोग बाध रखियेगा, तब उन सब लोगोंकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वे श्रीरामचन्द्रके चरणोंपर शीश धर उनकी प्रदक्षिणा कर बिदा हुए। सबसे पीछे श्रीहनुमान्जीने बिदा होते समय विनती की- 'हे महाराज ! मेरा प्रेम, मेरी भक्ति आपमें निश्चल रहेगी, अन्यत्र कहीं भी न जायगी। जबनक इस जगत्में रामकथाका प्रचार रहेगा तबतक मेरे प्राण इस देहमें रहेंगे। मैं निरपेक्ष आपके गुणानुवाद सुना करूँगा और हस्तीसे मेरे विरह-दुःखका शमन होगा।' श्रीहनुमान्जीकी इस विनयको सुनकर भगवान्का शरीर रोमाञ्चित हो गया और शीघ्र ही सिंहासनसे उठ उन्होंने इन्मानुजीको रद आलिंगन करते हुए कहा - 'हे इन्मान् ! तुमने मुझपर इतने उपकार किये हैं कि मैं उनमेंसे एकका भी बदला नहीं चुका सकता। पर मैं यही चाहता हूँ कि तेरे उपकारका बोझ मेरे मिरपर ही रहे और प्रत्युपकार करनेका कोई प्रयत्न ही न आवे, ऐसी मेरी इच्छा है। तेरे कथनानुसार जबनक लोग मेरी कथाका गान करेंगे तबतक तू जीवित रहेगा और मेरा वश सर्वत्र फैलेगा।' ऐसा कह श्रीरामने अपने कण्ठका नखजोंका हार उनके गलेमें डाल दिया।

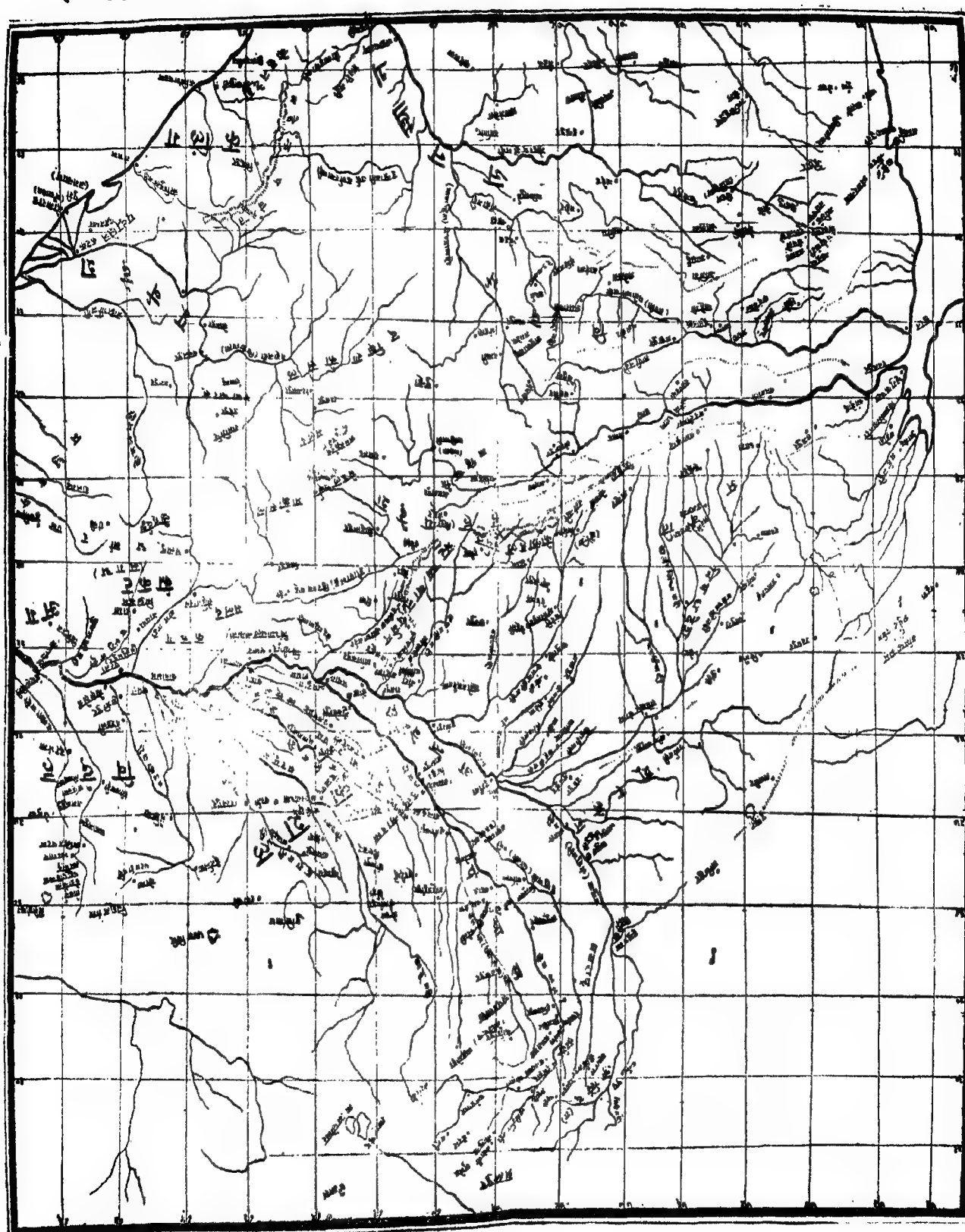
#### जानोपदेश

श्रीहनुमान्जीको भगवान् श्रीरामने ब्रह्मावत-पुराणमें जीव-ईश्वरकी एकताका जानोपदेश किया था, वही पार्थको गीतामें और उद्धवको भागवतमें किया था। श्रीहनुमान्जी अनन्वयरूप और परम जानी भक्त थे।

जो पवनसुत श्रीहनुमान्जी तथा श्रीरघुनाथजीके ध्यानमें रहने हैं तथा जो श्रीरामके सुख प्राण हैं ऐसे अनितनयकी जो सेवा करने हैं उन्हें श्रीरामचन्द्र स्वयं प्रकट होकर दर्शन देने हैं, अतः अपने मनमें उन इन्मानका चिन्तन करो। उन्हींके हृदयसे राम-भक्ति प्रवाहित होती है। जो उन कपिश्रेष्ठका मनमें स्मरण करता है वह धन्य है। जहाँ श्रीराम गुणगान होता है वहाँ श्रीहनुमान्जी गान और नृत्य करनेके लिये उपस्थित हो जाते हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रकी प्रीतिके निवा और कुछ भी अपेक्षा नहीं लगता। ऐसे श्रीहनुमान्की जो वन्दना करने हैं वे धन्य हैं।\*

\* मूल लेख मराठीभाषामें आया था, लेख वेदान्तके बहुत सुन्दर सिद्धांतोंमें पूर्ण और बहुत ही बड़ा था, लेखमें मराठी भाषाके पद्य भी बहुत ही उद्धृत किये गये थे। लेख बहुत बड़ा होने और अधिकतर काव्यमय होनेके कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया गया। केवल श्रीहनुमान्जीके जीवनसम्बन्धी कुछ बातें दे दी गयी हैं। इसके लिये अनेक लेखक महादक्षमें मैं क्षमा माहता हूँ। आपका मूल मराठी लेख मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा है, बहुत ही उपदेश और सुन्दर है। — सम्पादक









## रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन

( लेखक — श्री बी० एच० बंडेरी बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस० )



कु समयसे रामायण एवं महाभारत प्रभृति ऐतिहासिक काव्य और पुराणोंकी विद्वानोंमें जाँच-पड़ताल और तुलनात्मक बुद्धिसे भी विवेचन होने लगा है। रामायण महाभारतकी ऐतिहासिक परीक्षा अनेक पाश्चात्य और भारतीय विद्वानोंने की है। इनमें भी काल-गणनाकी दृष्टिसे और बौद्ध ग्रन्थोंके प्रमाणोंकी दृष्टिसे महामाी लेखकोंने विशेष चर्चा की है। कर्णाटक, महाराष्ट्र, बंगाल आदिमें भी अन्यान्य दृष्टियोंसे पौराणिक ग्रन्थोंका अध्ययन हुआ और हो रहा है। परन्तु भौगोलिक दृष्टिसे हम विषयका जितना विवेचन होना चाहिये उतना अभी नहीं हो पाया है। हम लेखमें इस मुख्यतः रामायणके भौगोलिक विषय पर ही विचार करना चाहते हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने वनवासके चौदह वर्ष भारतके किम-किम भागमें भ्रमण या निवास करके बिताये, इस विषयमें प्राचीन ग्रन्थोंमें क्या प्रमाण मिलते हैं, इस लेखमें हमें विशेषकर इसीपर विचार करना है।

पिता दशरथकी आज्ञा मिर चढ़ाकर श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ वैशाल्य शृङ्गा १ को रथमें सवार होकर वनको चले। वे सबसे पहले वेदश्रुति नदीके तटपर आये। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अयोध्या नगरी सरयू अथवा घाघरा नदीके दक्षिण तटपर बसी हुई थी। सरयूके दक्षिण की ओर सबसे पहले मिलनेवाली नदी वेदश्रुति ही है जिसका वर्तमान नाम तानसा या तमसा है। महर्षि वाल्मीकिका आश्रम जिस तमसाके तटपर था, वह तमसा दूसरी थी और गंगाके दक्षिण की ओर बहती थी। तानसा (वेदश्रुति) और गोमतीके मध्यमें दूसरी कोई नदी ही नहीं है। हम तमसा (वेदश्रुति) और सरयूके नदोंको महाराज दशरथने यज्ञमण्डपों और वैदिक मन्त्रोंसे सुशोभित एवं पवित्र किया था। कालिदासके रघुवंश (१।१७) में इसका वर्णन मिलता है। इससे भी तमसाका 'वेदश्रुति' होना सिद्ध है। आयुत दीक्षितने अपने भारतवर्षीय प्राचीन भू-वर्णनमें वेदश्रुति और तमसाको दो बतलाया है, परन्तु हमारे मतसे

यह ठीक नहीं। तमसाके तीरपर अर्थात् अयोध्यासे पन्द्रह मीलपर श्रीरामजीने पहला सुकाम किया था, दीक्षितजीका यह कथन अयुक्त है। किसी भी ग्रन्थमें इसका कोई आधार नहीं मिलता।

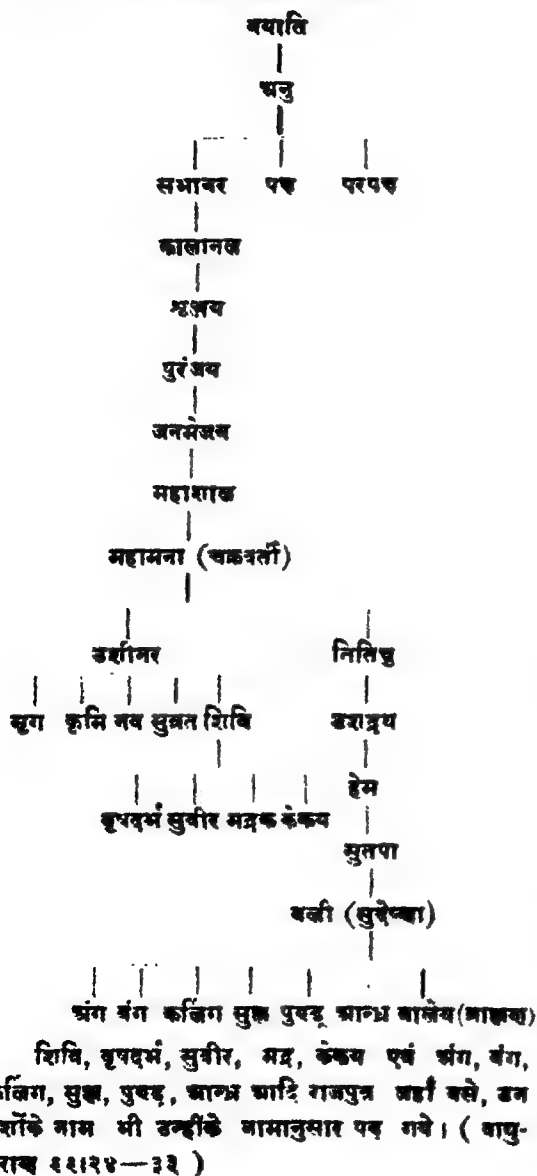
वेदश्रुति पार करनेके बाद दक्षिणमें पहलं गोमती मिली, उसके अनन्तर स्यन्दिका या आधुनिक सई नदी मिली। गोमती तो आजकल प्रसिद्ध ही है। स्यन्दिका (सई) उस कोशल-देशकी दक्षिण सीमापर थी, जो वैवस्वत मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकुको दिया था। श्रीरामने सीतामें वही बात कही है।

इसके अनन्तर स्यन्दिकाके दक्षिणकी ओर स्थित छोटे-छोटे भोज-राज्योंको पार करते हुए श्रीरामका रथ गंगाके निकट पहुँचा, यहाँ सुमन्त्र सहित सभी लोग रथमें उतर पड़े। यह प्रदेश राम-मत्स्या निपाद गुह्यके अधीन था। गुह्यकी राजधानी शृंगवेरपुर थी, जिसका वर्तमान नाम सिंगरौर है। यह गाँव प्रयागमें १८ मील वायव्य दिशामें गंगा-तटपर बसा हुआ है। रातभर यहाँ ठहरकर दूसरे दिन सबेरे गुह्यकी सहायतासे गंगापार करके श्रीराम दक्षिण तटपर पहुँचे।

शृंगवेरपुरसे आगे पूर्वकी ओर गंगा-यमुनाके संगमपर आये। मार्गमें एक बड़ा वन मिला (वा० रा० २।१४।२)। गंगा-यमुनाके संगमके पास भरद्वाजजीका आश्रम था और वहाँ प्रयाग क्षेत्र था। वहाँ एकरात ठहरे और वहाँ रहनेकी इच्छा न होनेके कारण भरद्वाजके उपदेशानुसार वहाँसे दश कोसपर स्थित चित्रकूट-गिरिपर जानेके लिये दूसरे ही दिन श्रीरामचन्द्रजी रवाना हो गये। प्रयागके पास यमुनापार करनेके बाद एक कोस जानेपर नील-कानन नामक वन मिला। चित्रकूटके नीचे चित्रकूटा उर्फ मन्दाकिनी नामकी नदी बहती थी। इस चित्रकूट-पर्वतपर ही श्रीरामने अपनी पणकुटी बनायी।

श्रीरामचन्द्रके वनगमनके छठे दिन पुत्रशोकके कारण राजा दशरथका स्वर्गवास हो गया। उस समय भरत-शत्रुघ्न अपने ननिहाल केकय-देशमें थे। केकय-देशकी राजधानी 'गिरिवज' थी। देशको विना राजाके रखना विपत्तिमूलक समझकर दशरथके मन्त्रिमण्डलने मुख्य पुरोहित वशिष्ठसे कहा और वशिष्ठने भरत-शत्रुघ्नको लिवा लानेके लिये

दूर्तोंको केकय-देश भेजा ( बा० रा० २।१८।११ ) । उस समय केकय-देशमें अरषपति नामक नरपति शासन करते थे । प्राचीनकालमें चन्द्रवंशमें अग्नि गोत्रोत्पन्न केकय नामक एक राजा हुए थे । उन्हींके नामपर देशका नाम केकय पड़ गया था । उन राजाका वंशवृक्ष इसप्रकार है —



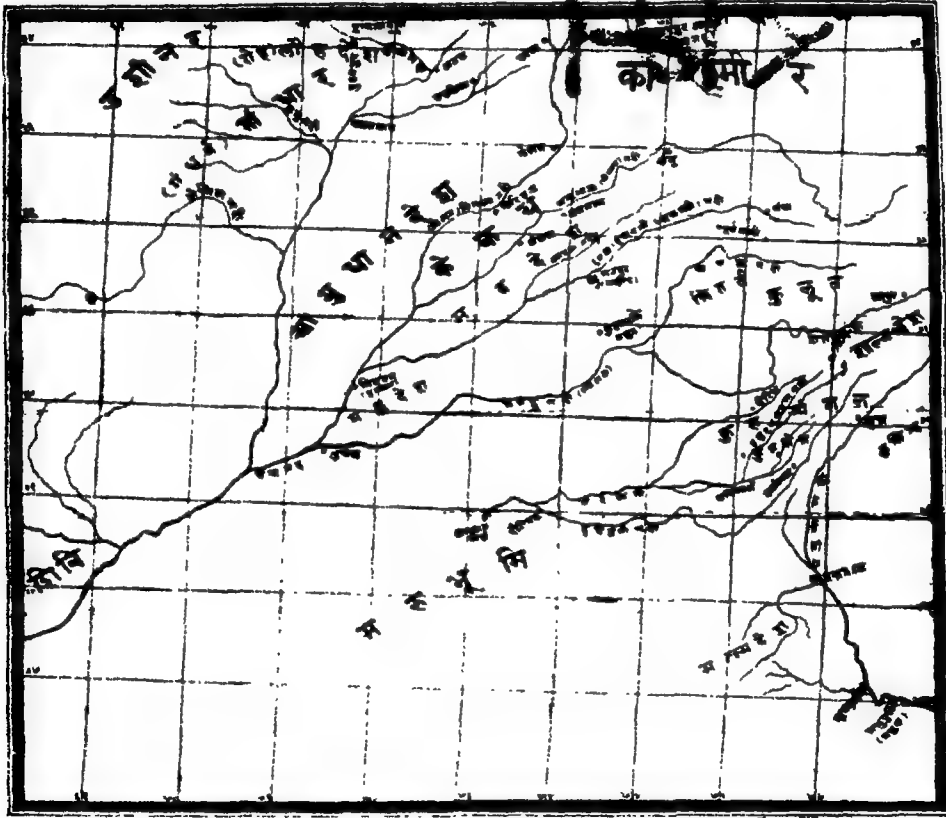
रामायणके अयोध्याकाण्डमें भरतको जानेके लिये दूर किस मार्गसे गये और भरत चतुरंगिणी सेना लेकर

अयोध्यातक किस मार्गसे आये इसका वर्णन देखनेसे मालूम होता है कि वे दूर विपाशा अर्थात् आधुनिक ब्यास तथा शालमली\* नदीको देखते-देखते गये । पश्चात् चिनाब-नदीके उसपार वितस्ता ( बेहात या गेलम ) नदीके पास केकय-देशकी राजधानी गिरिकज ( राजगृह ) मिलती है । इसका नाम गिरिकज भी पाया जाता है । मुसलमानोंके शासनकालमें गिर्भकका नाम बदलकर जलालपुर पड़ा है । सिकन्दर और पोरसकी लड़ाई इसी गाँवके पास हुई थी । जमरख कर्निगहमने अपने प्राचीन भारतके भूगोलमें इस प्रमक्षी विशेषरूपसे समीचा-सरीचा करके यह निर्णय किया है, कि गिर्भक गिरिकजका अपभ्रंश है । श्रीवशिष्ठजीके भेजे हुए दूर जल्दीके कारण नजदीकके रास्तेसे ही गये । वे प्रथम अपरताल देशके पश्चिमकी ओरसे प्रलम्बदेशके उत्तरमें बहनेवाली माखिनी नदीके तीरपरसे उत्तरकी ओर आकर पुनः पश्चिमकी ओर लौटे । प्रलम्ब आजकलके मन्दावर वा मंकोरका नाम था । यह गाँव पश्चिम ग्नेयसलबडमें बिजनौरके उत्तर आठ मीलपर बसा हुआ है । प्रो० जम्बुलाल दे अपनी 'श्री ज्योग्राफीकल डिक्शनरी आफ एन्चवयट एण्ड मैडिणल इंडिया' ( The Geographical Dictionary of ancient and medieval India ) नामकी पुस्तकमें लिखते हैं कि माखिनी नदी पश्चिममें प्रलम्ब-प्रान्त और पूर्वमें अपरताल-देशके बीचमें बहती हुई अयोध्याके ऊपर २० मीलपर सरयू अर्थात् घाघरा नदीमें मिलती थी । इसके तटपर शकुन्तलाके पालक पिता कश्यपवृषिका आश्रम था । श्रीफिम साहबकी रायमें आजकल जिसे चुका नदी कहते हैं, वही माखिनी नदी है ।

तदनन्तर वे दूर इम्लिनापुरमें गंगा-नदी पार करके पश्चिमकी ओर मुड़े । इम्लिनापुर-शहरकी स्थापना पुत्तर्बराज कौरव-पाण्डवोंके पूर्वज इन्द्रा राजाने की थी । गंगा-नदीकी गति बदल जानेके कारण इस प्राचीन शहरके अवशेष कहाँपर हैं, यह निश्चित नहीं किया जा सकता । परन्तु पुरातत्त्वज्ञान वर्धनमें यह पता चलता है कि यह शहर मेरठके ईशानकोणमें २२ मीलपर गंगा-नदीके दाहिने तटपर था । वहाँसे आजकलका बिजनौर शहर पास है । फिर पाञ्चाज ( उत्तर ) कुम्भाज्जल आदि देशोंमेंसे होते हुए सरयू-नदीके किनारे-किनारे अनेक नदी-सरोवर पार करके कुलिंग ( कुलिन्ध ) नगरमें वे जा पहुँचे ।

कल्याण

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० २



मानचित्रकार—श्री वी०एच०वडे ।

राम

पाञ्चाज देव उत्तरी और दक्षिणी भागोंमें थोड़े बिकक हुआ होगा, जिनमें उत्तर पाञ्चाज अर्थात् सह्यद्वारकी राजधानी अधिष्ठित थी। कुरुजाङ्गल प्रान्त हस्तिनापुरके वाङ्मयमें वर्णमान सरहिन्दभागका अरुण्य प्रदेश है। कुरुक्षेत्रमें इस कुरुजाङ्गलका समावेश था पर श्रीरामचन्द्रके समयमें इस प्रान्तको कुरुजाङ्गल वा कुरुक्षेत्र नहीं कहते होंगे। कुबिन्द विहारीके उत्तरमें स्थित सहरनपुर बिछा है। शरद्वहा नदी कौन-सी थी यह निश्चय नहीं किया जा सकता।

सत्यभारत के अम्बिकाज तथा तेजोमित्रन गाँव और इक्षुमती नदीको पार करके आगे बढ़े। इक्षुमती नदीको आजकल काही नदी कहते हैं। यह कन्नौज (कान्पकुञ्ज) के पास गंगासे मिलती है। आगे यमुना पार किये बिना ही वे बाल्हीक (पञ्चाव) की ओर मुड़े। सुदाम-पर्वतके पाससे विपाशा (व्यास) तथा शास्मली-नदियोंको देखते हुए गिरिव्रज (गिर्भक) नगरमें पहुँचे। सुदाम-पर्वतके आधुनिक नामका पता नहीं चलता।

भरतके साथ चतुरंगिणी सेना होनेके कारण उनको कुछ दूरका मार्ग स्वीकार करना पड़ा था। इसका बर्णन अयोध्याकाण्ड सर्ग ७१ में आगे मिलता है। उनको क्रमशः सुदामा, हादिनी और शतद्रु नदी मिली। सुदामा चन्द्रभागा (बिनाब) नदीका ही दूसरा नाम हो सकता है। हादिनी नदीका पाट अत्यन्त विस्तीर्ण था। इसपरसे अनुमान किया जा सकता है कि वह वर्तमान रावी (हरावती) नदी होगी। अन्तिम शतद्रु (सतलज) तो प्रसिद्ध ही है।

तदनन्तर ऐन्द्रधान और उमके समीप बहनेवाली शिखावहा नदी मिली। पश्चात् विशाल पर्वतोंको पार करके भरत चैत्ररथ वनमें आ पहुँचे और आगे पश्चिमकी ओर बहनेवाली सरस्वती नदी मिली।

शिखावहा नदीका ठीक-ठीक पता नहीं मिलता। तथापि सरस्वती (सुरसुही अथवा घग्घर) नदीमें उत्तरसे आ मिलनेवाली अरुणा और कौशिकी नदियोंमेंसे बह एक हो सकती है। अम्बाका खिलेके पूर्व भागका नाम चैत्ररथ वन होगा। आगे सुषु तथा सीता-नदीपरसे होते हुए एवं जङ्गोत्री गाँवके पास जा करके भरतजी दक्षिणकी ओर मुड़े।

काशमीरके उत्तर बारकण्डमें जो सुषु और सीता नामकी नदियाँ बहती हैं, वे मिच हैं। हमारी राहमें इसी नामकी नदियाँ जङ्गोत्रीके पास भी बहती होंगी।

इसके बाद भरत बीरमत्स्य-देशके उत्तरमें स्थित प्रदेशमें होते हुए आरुण्ड नामके वनमें आ पहुँचे। इसके आगे चलनेपर कुबिगा ठकं बेगिनी नदी मिली और हादिनी नदीको पार करके भरत यमुना-नदीके पास आ पहुँचे। वहाँ यमुनातीरपर उन्होंने सेनासहित विश्राम किया। यमुना पार करनेके उपरान्त जंशुधान नामक ग्रामके पास गंगाको पार करना असम्भव देख भरत प्रान्तपुर आये और वहाँ भरतने ससैन्य गंगाको पार किया। इसके अनन्तर वे कृटिकोटिका नदीके समीप आये।

कृटिकोटिका नदी रामगंगासे मिलनेवाली अयोध्या प्रान्तकी कोह नदी है, यह कोहकृटिका नदी पूर्वकी ओरसे रामगंगामें आ मिलती है और इसीका दूसरा नाम कोशिला भी है। कृटिकोटिका नदी ससैन्य पार करके भरत धर्मध्वज गाँवको गये और तोरख ग्रामके दक्षिणकी ओरसे जम्बुप्रस्थ गाँवमें पहुँचे। इसके बाद बरुय नामक गाँव मिला। इसके आगे रम्यवनमें बास करके भरत पूर्वकी ओर चल पड़े और उज्जिहान नगरमें पहुँचे। फिर बाहिनी नदीकी ओर चलकर तथा सर्वतीर्थ नामके गाँवमें थोड़े समय निवास करके उन्होंने उत्तरगा नदीको पार किया तदनन्तर हस्तिपृष्ठक गाँवमें आ पहुँचे। अनन्तर कुटिका नदीको पार करके लांहित्य ग्राममें कपिलती नदीको पार किया। आगे एकलाव ग्रामके समीप स्थायुमती नदी उतरकर बिनतगाँवके पास गोमती नदीका पार किया और कजिग नगरके पास सालवनमें आ पहुँचे, एवं रातोरात उस वनको पारकर अरुणोदयके समय अयोध्यामें आये। मार्गमें कुल सात रातें व्यतीत हुईं। बा० रा० २।७१।१७ तक ऐसा बर्णन मिलता है और बा० रा० २।७७।२२ में उस दिन दशरथ राजाके देहान्तके पश्चात् तेरहवें दिनके प्रारम्भ होनेका उल्लेख है।

तदनन्तर भरत श्रीराम-दर्शनार्थ चतुरंगिणी सेना-सहित निकले। उनके साथ कैकेयी, सुमित्रा तथा कौसल्याजी थीं। जिस मार्गसे श्रीरामचन्द्र चित्रकूट पहुँचे थे, उसी मार्गसे भरत भी चित्रकूट-गिरिपर रामचन्द्रकी पर्याकुटीपर गये। चित्रकूट-गिरि भरद्वाज-आश्रम अर्थात् प्रभागसे ३॥ बोजन अर्थात् २४-२५ मीलपर था। जी. आई. पी. रेलवेके चित्रकूट स्टेशनसे ३॥ मील दूर यह पर्वत है।

आजकल इसका नाम कामतानाथगिरि हो गया है। चित्रकूटके उत्तरकी उपत्यकापर जो एक चौकोन शिखर है वही सीतासेज है (वा० रा० २।२६)। यह स्थान जी. आई. पी. के बंदोला स्टेशनके समीप ही दक्षिणमें है। इस पहाड़में बहुत-सी खोदो हुई इमारतें हैं। अस्तु,

श्रीरामके दर्शन कर चुकनेपर श्रीरामकी आज्ञासे भरत अयोध्या लौटकर नन्दिग्राममें रहने लगे। इधर जब श्रीरामजी चित्रकूटपर वास कर रहे थे, तब वार नामक राजसूयकी जनपदके सब तपस्वियोंको भगाने और सत्तानेकी शिकायत उनके पास आयी। अतएव उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी अग्नि-आश्रमकी ओर चले पड़े। इससे स्पष्ट है कि अग्निमुनिका आश्रम वन-प्रदेशमें था। वनमें प्रवेश करनेपर पहले विराध नामक राजसूय मिला। इसके पिताका नाम जब और माताका सप्तदश था। विराधकी बाहोंको काटकर राम-लक्ष्मणने उसे पराजित किया और गाइकर उसे मुक्ति दी।

विराधकी समाधिसे प्रतापी शरभंग मुनिका आश्रम १०-२० मीलपर होगा। श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित उस आश्रमकी ओर पधारे। मार्गमें रामने लक्ष्मणको इन्द्र-रथ दिलाया। तपश्चाल शरभंग ऋषिसे मिलकर उनकी आज्ञासे राम मुनीश्वर मुनिके आश्रमकी ओर जानेके लिये रवाना हुए। इसके पूर्व ही शरभंग ऋषिने रामके समक्ष अग्नि-प्रवेशके द्वारा देहत्याग करके स्वर्ग प्राप्त किया। मुनीश्वर मुनिका आश्रम मन्दाकिनी नदीके उद्गमकी ओर था।

उपबृंह वर्णनके अनुसार विराधकी समाधि, शरभंग मुनिका आश्रम तथा मुनीश्वर मुनिके आश्रमका वर्तमान पूर्व बुन्देलखण्डके पञ्चा रियासतमें होना स्पष्ट प्रकट होना है।

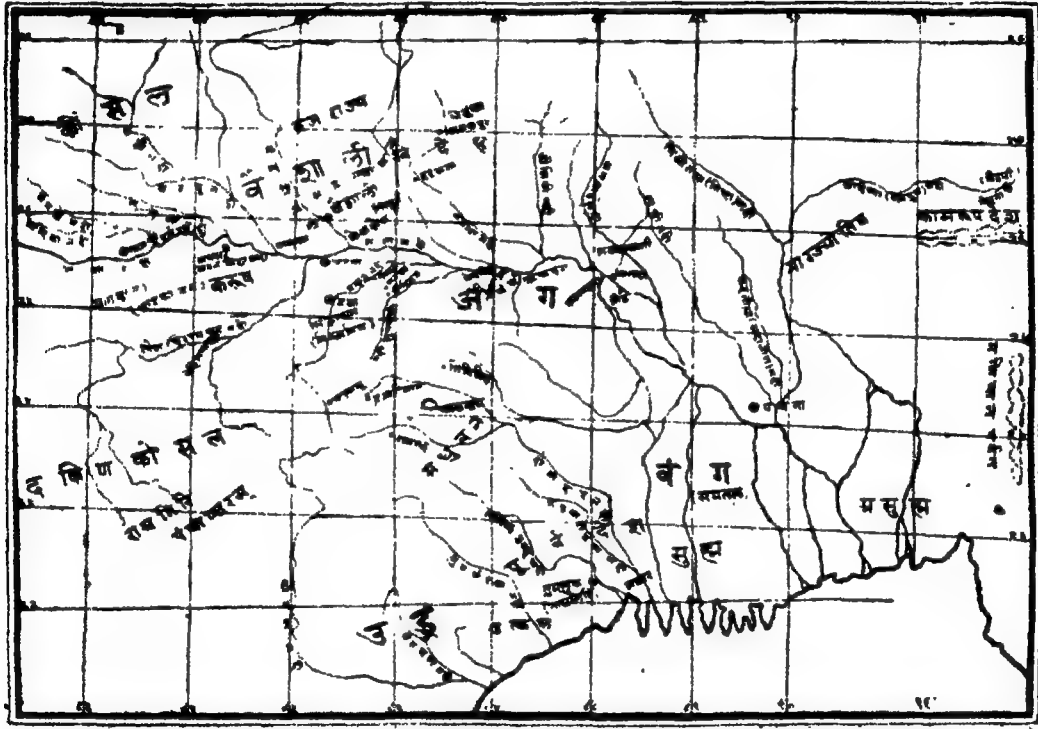
मुनीश्वर मुनिने रामसे कहा,—‘हे राम! वनप्रस्थोंके विराट समुदायके नाथ आपके होने हुए भी अनार्योंकी तरह राजसूय उसका बारम्बार घात करते हैं इसलिये आप उनका संरक्षण करें।’ श्रीरामने मुनीश्वर मुनिके आश्रमके मार्गमें सुमेरुके समान एक ऊँचा पर्वत देखा (वा० रा० ३।०)। मुनिका आश्रम एक घोर वनमें था। इस वनको दृष्टकारण्यका उच्च भाग मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी समग्र दृष्टकारण्य तथा उसमें वास करनेवाले ऋषियोंके आश्रम-दर्शनार्थ विदा हुए। मार्गमें उन तीनोंने ऋग्वेदीयका एक महान् सरोवर देखा। उस सरोवरके मध्य भागसे सुस्वर गायनकी आवाज आती थी। धर्मवृत्त नामक मुनिने रामचन्द्रसे कहा कि ‘यह सरोवर माण्डकर्ष्य मुनिने दस हजार वर्ष घोर तपश्चर्या करके निर्माण किया है और इसका नाम पञ्चाप्सर सरोवर है एवं यह सार्वकालिक है।’

इस पञ्चाप्सर सरोवरके बारेमें प्रो० मन्दलाल ने अपने भौगोलिक कोष पृष्ठ १२ में लिखते हैं कि, छोटा नागपुरके माण्डलिक रियासत उदयपुर नामक स्थानमें यह सरोवर था। इस सरोवरका अधिकारा सुल्ल गया है और वहाँ कपु, बन्धनपुर आदि गाँव बस गये हैं। इस पञ्चाप्सर तीर्थके पासवास अनेक मुनियोंके आश्रम थे। श्रीरामचन्द्रजी सब आश्रमोंमें थोड़े-थोड़े समयतक रहे। कहीं दम महीने, कहीं साल भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच या छः महीने, और कहीं मात्र दो सालसे भी अधिक रहे। इसप्रकार श्रीरामके दस वर्ष मुनियोंके आश्रमोंमें गुज़रे बीते। तब रामचन्द्र फिर मुनीश्वर मुनिके आश्रमकी ओर आये। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद उन्होंने अगस्त्य मुनिके आश्रमकी ओर प्रस्थान किया। मुनीश्वर मुनिके आश्रममें दक्षिणकी ओर चार बोजनपर अगस्त्य ऋषिके बन्धुका आश्रम था और उसके दक्षिणमें एक बोजनपर अगस्त्य ऋषि वास करने थे।

वहाँ कुछ काल व्यतीत करके श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण सहित अगस्त्य ऋषिकी आज्ञानुसार पञ्चवटीकी ओर रहनेके लिये रवाना हुए। यह प्रदेश अगस्त्याश्रममें दो बोजनके अन्तरपर था। इस प्रदेशपर राजसूयका बारम्बार आक्रमण होता था। पञ्चवटी जाते हुए श्रीरामकी एक महाकाय गीध पक्षीसे भेंट हुई। अनन्तर वे तीनों पञ्चवटी पहुँचे। इस प्रदेशका वर्णन वा० रा० ३।१२ में है। इनके साथ जटायु भी था। पञ्चवटीमें पर्वतशृङ्गा बनाकर उन्होंने एक चातुर्मास व्यतीत किया। तपश्चाल हेमन्त-ऋतुका प्रारम्भ होनेपर एक दिन प्रातःकाल राजसूयकी भगिनी शूर्पणखा उस आश्रममें पहुँची, और सीताको मारनेके लिये नैवार होनेपर लक्ष्मणने उसके नाक-कान काटकर उसे विषाख बाहर किया।

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० ३



मानचित्रकार—श्री वी०एच०वडेर ।



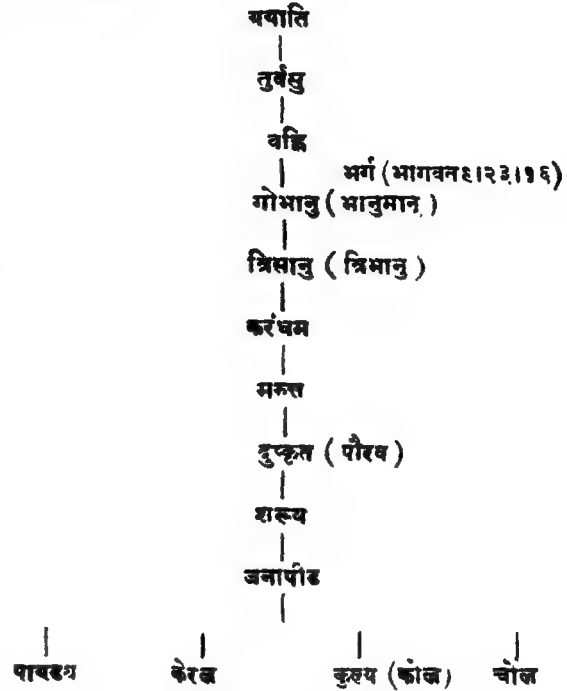


इसपर वह सर-दूषण के पास जाकर उन्हें श्रीरामसे युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित कर अपने साथ ले आयी। चौदह हजार सेना लेकर सर और दूषण जनस्थानसे चले। सर-दूषण रावण-राज्य के सीमा-रक्षक थे (बा० रा० ३।३१)। महा शस्त्रज्ञ श्रीरामने उन चौदह हजार राक्षसों सहित सर, दूषण, त्रिशिरा आदिका राज्यमें बंध कर डाला। उपर्युक्त पञ्चवटी, जनस्थान आदि प्रदेशोंका अभी तक सन्तोषजनक निर्याय नहीं हुआ है। बहुत-से विद्वानोंके मतानुसार जनस्थान और पञ्चवटी वर्तमान बम्बई प्रान्तके नासिक शहरके समीप गोदावरी नदीके उद्गम स्थानके पास थे। किन्तु कुछ विद्वानोंके मतानुसार प्राचीन समयमें गोदावरी नदीके मुँहके समीप उसके उत्तर-दक्षिण तटपर स्थित आन्ध्र प्रान्तके एक विभागका नाम जनस्थान था। पार्सीटर अपने 'Ancient Indian Historical Tradition' नामक पुस्तकके पृष्ठ २०८ में लिखते हैं:—

Rama travelled south to Prayaga then southwest to the region of भोपाल, then south across the नर्मदा and then to a district where he dwelt ten years. That was probably the वर्तमान जिला जिला, because that was called the दक्षिण कोसल and in it was a hill called रामगिरि. His long stay then connected it with his home कोसल, hence probably arose its name. Also later the people of पूर्व कोसल part of old कोसल through fear of जरासंध migrated to the south no doubt to this district. [Vide J. R. A. S. of 1908 P. 323 & Mahabharat 2-13-591.] Afterwards he went south to the middle गोदावरी where he came into conflict with the राज्य colony of जनस्थान.

श्रीरामचन्द्रके कालमें दक्षिण भारतमें सभ्य अर्थात् आर्य लोगोंकी आबादी केवल जनस्थान और किष्किन्धामें थी। उस समय पाण्ड्य लोगोंकी आबादी नहीं थी। उसी प्रकार कोल (कुल), चोल, केरल आदिको भी आबादी नहीं थी। यह पार्सीटर साहबका मत है। इससे हम सहमत नहीं हैं क्योंकि यथाति राजाके पाँच पुत्रोंमें तुर्वसु

नामक पुत्रकी वंशावली प्रायः सब पुराणोंमें निम्नलिखित प्रकारसे वर्णित है।



तेषां जनपदाः कुल्याः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः।

(वायुपुराण ९.१।६)

अर्थात् इन राजपुत्रोंने अति प्राचीन कालमें दक्षिण भारतमें अपने नामपर आबादी कायम की थी। प्रो० नन्दलाल देके अनुसार औरङ्गबाद अथवा देवगिरि (दौलताबाद) के समीपवर्ती प्रदेशका नाम जनस्थान था। इस मतको न माननेके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) 'जनधर्म-राघव' के कर्ता मुरारीका काल शालिवाहनका ७ वाँ शक है। उसने अपने नाटकके चौथे और पाँचवें अङ्कोंमें राज्यमूक वर्तमान जनस्थानके पास ही बतलाया है। राज्यमूक-किष्किन्धा दक्षिणमें तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिण तटपर थे, ऐसा 'प्रसन्न-राघव'-नाटककार जयदेव कविने स्पष्ट बतलाया है। जयदेव कवि शालिवाहनकी तेरहवीं शताब्दिमें हो गये हैं। इसीप्रकार शालिवाहनकी आठवीं शताब्दिमें हुए बालरामायणके कर्ता राजशेखर कविका भी वही मत है।

(२) 'उत्तररामचरित'कार प्रसिद्ध कवि भवभूतिके 'महावीरचरितम्' अङ्क ५ से भी निम्नलिखित बातें स्पष्टतः प्रकट होती हैं—

जनस्थान, पञ्चवटी, जटाबुका निवास-स्थान, प्रसन्नगिरि आदि सब स्थान गोदावरीके मुहानेके निकटवर्ती प्रदेशमें थे और जनस्थानके मध्यभागमें प्रसन्नगिरि था। (महावीर चरितम् २।१२)

(३) ऐसे ते कुहरेपु कुहरेपु गङ्गगदनद० आदि श्लोकोंसे गोदावरी नदीके संगमके समीपका प्रदेश जनस्थान सिद्ध होता है।

(४) काजिदासके रघुवंश (६।६२) के अनुसार जनस्थान पाण्ड्यदेशकी सीमाके बिल्कुल समीप था। किंबहुना दोनों प्रदेश एक दूसरेसे मिले हुए थे। कदाचित् गोदावरी नदीका दक्षिण तीर पाण्ड्यदेशकी उत्तर सीमा हो।

(५) शालिवाहनकी तीसरी शताब्दिमें विमलचन्द्रसूरि नामक एक जैन ग्रन्थकार हुए हैं। उन्होंने रामचरित्रपर 'वपु चरित्र' अथवा 'पञ्चम चरित्र' नामक ग्रन्थ लिखा है। उसीके आधार पर हेमचन्द्रने अपने 'जैन रामायण' नामक ग्रन्थकी रचना की है। जैन रामायणमें लिखा है कि द्रुपदकारणान्तर्गत कर्णारवा-नदीके तटपर जब श्रीरामचन्द्रजी पहुँचे, तब वर्षा ऋतु समीप आ गयी थी, इस कारण श्रीरामने जलमयको समुद्र तटसे न तो बहुत दूर और न बहुत पास किसी प्रशान्त स्थानमें कुटी बनानेकी आज्ञा दी। वह चातुर्मास उन्होंने कौञ्जरवा नदीपर बिताया। इससे स्पष्ट है कि जनस्थान गोदावरीके मुहानेके समीपके प्रदेशका नाम था। कर्णारवा नदीके दक्षिणमें जनस्थान और किष्किन्धा थे और कर्णारवा नदी नर्मदा और ताप्तीके दक्षिणमें थी। जनस्थान जानेसे पहले मार्गमें समुद्र पड़नेका वर्णन जैन-रामायणमें है। इससे भी उपर्युक्त सिद्धान्तका समर्थन होता है। सर राजसका निवासस्थान समुद्रतटपर था और जिस स्थानपर रामचन्द्रने खरका बध किया, वह गाँव अब भी 'खरबाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है और पूर्वी किनारेपर अज्जोलके उत्तर ५ मीलकी दूरीपर है। वहाँ सर-बध-सम्बन्धी बहुत-सी प्राचीन वस्तुएँ भी प्रचलित हैं।

जनस्थानसे तीन कोस चलनेपर कौञ्जारवण मिला। रोहिण्य पर्वतकी उपत्यकापर रामने सुवर्ण युगका बध किया, और जटाबुकी अन्वेषितकर गोदावरीके तटपर पहुँचे। रावणके सीतापहरण करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें लोअनेके लिये जनस्थान छोड़ा। कौञ्जारवणके पूर्व तीन कोसपर अर्तगन्धम वन था। आगे एक गहरे घाँमें उन्हें अयोमुकी राजसी मिली। उसे मारकर श्रीराम-जलमयने

गहन वनमें प्रवेश किया। वहाँ एक कोस लम्बे शरीरवाला कम्ब राक्षस मिला। कम्बको मुक्ति देकर राम-जलमय उसकी सहाइसे सुभीचसे मित्रता करने गये। अस्तु,

बेहारीसे पूर्वकी ओर समुद्र-तटतक, छोटे-बड़े पर्वतोंकी पूर्वसे पश्चिम ओर फैली हुई अ्रेखियाँ हैं। बेहारीके पूर्व जूः मीलपर खोहाचल नामका एक पर्वत है, उसे प्राचीन समयमें कौञ्ज पर्वत कहते थे। वहाँ एक तीर्थ है। उस क्षेत्रमें प्राचीन कालमें अगस्त्य ऋषि आये थे। कौञ्जारवण अति गहन था, ऐसा रामायणमें वर्णन मिलता है। कृष्णा नदीके दक्षिण तटपरके गुण्डकल और नन्द्याल प्रदेशोंको प्राचीन समयमें कौञ्जारवण कहते होंगे।

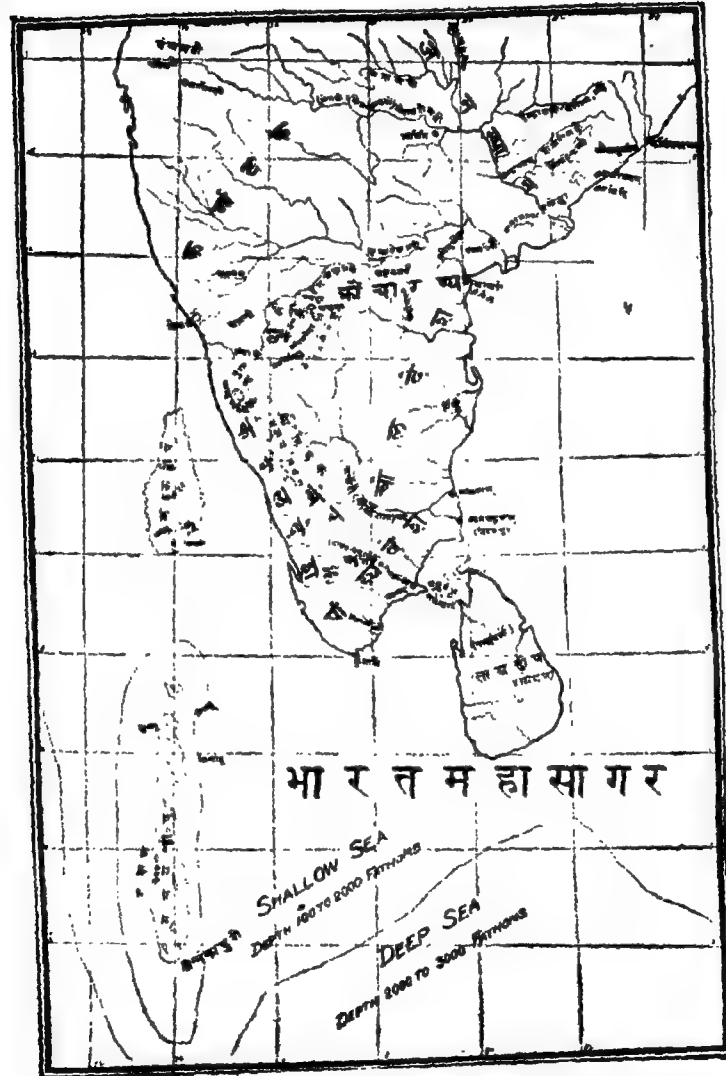
कौञ्जरवा नदी कौन-सी थी, यह निश्चित नहीं बतलाया जा सकता। परन्तु वह गोदावरीके दक्षिणमें होनी चाहिये, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन ग्रन्थोंमें कृष्णा नदीका नामकहीं भी लिखलाया नहीं देता। आधुनिक कुछ ग्रन्थोंमें कृष्णावेसीके नामसे इसका उल्लेख मिलता है, कदाचित् कौञ्जरवा कृष्णा नदीका ही प्राचीन नाम हो। रामायण तथा विमल सूरिके ग्रन्थान्तर्गत वर्णनसे ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती।

तत्पश्चात् श्रीराम-जलमयने कल-कूलयुक्त उत्तर कुल देशके सहस्र नन्दनवनके समान एक सुन्दर वनमें प्रवेश किया और वे पम्पासरके पश्चिम तटपर जा पहुँचे। पम्पासरके सामने अण्ड्यमुक्त पर्वत था। पम्पाके पश्चिम तीरपर उन्होंने कुछ कालतक निवास किया। वहाँ शबरी श्रीरामके चित्रकूट जोड़नेके समयसे उनकी प्रतीक्षामें आश्रम बनाकर रहती थी। उस प्रदेशका नाम 'मतङ्ग वन' था। उपर्युक्त 'मतङ्गाश्रम-वन' इस विचारसे दूसरा ही होना चाहिये। इस 'मतङ्ग वन' में मतङ्ग ऋषिने प्रत्यक्षस्थली बेदीकी स्थापना की थी। वहाँ उस मुनिके प्रभावसे एकत्रित होकर आये हुए सप्तसागर शबरीने श्रीरामको विश्रुताये। उस सप्तसागर-तीर्थमें श्रीरामने बड़ी अज्ञासे स्नानकर पितृ-तर्पण किया। (वा० रा० ३।७४।२६ तथा ३।७५।४)

सीतादेवीका हरण करके रावण पम्पासरतक पश्चिमकी ओर झुँद करके गया, पम्पा उस सरोवरको पार कर खेनेपर वह जङ्गा-नगरीकी ओर अर्थात् दक्षिणाभिमुख होकर चलने लगा। तदनन्तर रावण अपनी काखनागिनी सीताको गोदमें लेकर अनुचसे छूटे बाणकी तरह आकाश-मार्गसे नदी, पर्वत

कल्याण

रामायण कालीन भारत वर्ष नं ४



दक्षिण भारत और लंका (मानचित्रकार श्री बी० एच० वेंटर)

रिहाल

और सरोवरोंको पार करता हुआ सराटेसे निकल गया। वह सिमि नामक मत्स्य और नर्कोंके तथा वरुणके अग्र्य निवासस्थान-सागरको लाँघता हुआ चला। (वा० रा० ३।२४।२-८)

मध्यभारतमें रीवा प्रान्तके दक्षिणमें लौ मीनके अन्दर ही जङ्घा थी, ऐसा आग्रहपूर्वक सिद्ध करनेवाले महानुभावोंने वात्सीकीय रामायणान्तर्गत उपर्युक्त वर्णनको जरा भी महत्त्व न देकर मध्यभारतमें जो एक बड़ा दखदख था, उसीको सागर मान लिया है। उसी प्रकार वे रामायणको समुद्रकी दूरी और जम्बाई-बौदाई तथा जङ्घाकी जम्बाई-बौदाईके वर्णनको भी अतिशयोक्ति कहकर वात्सीकीके आर्य काव्यको अज्ञात कथाओंका उपन्यास मानते हैं।

अप्सु, पम्पासरके समीप ही पम्पा नदी बहती थी। बेहारी जिलेका हम्पी क्षेत्र ही पम्पा है और पम्पा नदी उस क्षेत्रके पाससे बहती है। जिसप्रकार काठियावाड़ और मारवाड़की भाषामें 'स' के स्थानपर 'ह' के उपयोग करनेकी परिपाटी है, उसी प्रकार कनाड़ी भाषामें 'प' के स्थानमें 'ह' का प्रयोग होना प्रसिद्ध है।

श्रीरामने एक वसन्त ऋतु ऋष्यमूक पर्वतपर बितायी। वहीं रहते समय हनुमान्जीका प्रेरणासे उनकी सुग्रीवके साथ मैत्री हुई। वाल्मिके भयसे सुग्रीव मात्स्यवान पर्वतपर रहता था, और वालि किष्किन्धा नगरीमें रहता था। वालि इतना बलवान् था कि बाह्य मुहूर्त्तमें उठकर पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक तथा दक्षिण समुद्रसे उत्तर समुद्रतक प्रतिदिन चकर लगा आया करता था।

सुग्रीवका कार्य करनेके लिये रामचन्द्रजीने ऋष्यमूकसे किष्किन्धा जानेका निश्चय किया। सप्तजन-मुनिके आश्रमसे किष्किन्धा विशेष दूरीपर थी। सप्तजन मुनिका आश्रम तथा सप्तसागर तीर्थ एक ही प्रदेशमें थे। वहाँसे ऋष्यमूक पर्वत करीब ही होना चाहिये। श्रीरामजी उस पर्वतसे सुग्रीवको साथ लेकर तथा अपना प्रचण्ड धनुष लेकर रवाना हुए। उनके साथ हनुमान्, नल, नील और तार नामक वीर-वानर भी थे। मार्गमें निर्मल नीरवाहिनी समुद्रगामिनी नदियोंका उन्होंने अबलोकन किया। रास्तेमें एक अत्यन्त आश्चर्यजनक वन उन्हें मिला। उसी वनमें सप्तजन-मुनि सतत जलमें शोषासनसे (सिर नीचे और पैर ऊपरकर) तपश्चर्या करते थे, श्रीराम उनकी बन्धुभाकर जागे बड़े। (वा० रा० ४।१३।२६)

इसके पश्चात् वालि-सुग्रीवका युद्ध हुआ और श्रीरामकी कृपासे वालिका बच हुआ। वालिकी अन्त्येष्टि श्रीरामने एक नदीके तीरपर अंगदद्वारा सम्पन्न करवायी। निःसंशय वह नदी आधुनिक तुल्लभद्रा ही थी। वालिका वृहन जिस स्थानपर किया गया था, वह स्थान आजकल भी देखनेको मिलता है।

पश्चात् श्रीरामने सुग्रीवके राज्याभिषेक तथा अंगदके वीरराज्याभिषेक करनेकी हनुमान्को आज्ञा की, और वर्षाका प्रथम मास भावय शुरू हो जानेके कारण प्रसन्न गिरिपर वास करनेकी अपनी इच्छा सुग्रीवसे प्रकट की। सुग्रीवने वर्षाकाल समाप्त होनेपर अर्थात् कार्तिकमें रावणवधके लिये ब्रह्म करनेका श्रीरामको आश्वासन दिया। श्रीरामने प्रसन्न-पर्वतके शिखरपर एक महान् विशाल गुहामें निवास करनेका निश्चय किया। उस गुहाके पास एक रमणीय सरोवर था और एक अत्यन्त निर्मल जलवाली पूर्ववाहिनी नदी बहती थी। रमणीय किष्किन्धापुरी वहाँसे बहुत दूर नहीं थी। (वा० रा० ४।२७)

उपर्युक्त वर्णनसे किष्किन्धा-नगरीका विन्ध्य पर्वतके समीप होना किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि विन्ध्य पर्वतके पाससे पूर्वकी ओर बहनेवाली कोई नदी नहीं है, उपर्युक्त नदी निःसंशय तुल्लभद्रा नदी ही है। ऋष्यमूक, पम्पा, मात्स्यवान पर्वत, प्रसन्न-गिरि, किष्किन्धा आदि सब स्थान आज भी हम्पी क्षेत्रके आस-पासके प्रदेशमें प्रसिद्ध हैं। और निःसन्देह यह प्रदेश अत्यन्त प्राचीनतम प्रतीत होता है। उसी विभागके पास ही प्राचीन विजयनगर राजकी राजधानीके भग्नावशेष अब भी दृष्टिगोचर होते हैं।

'एक विद्वान्का मत है कि (१) किष्किन्धा विन्ध्यपर्वतके उत्तरमें गंगा-यमुनाके पश्चिम और चित्रकूटके नैऋत्यमें थी तथा रियासत रीवाका कन्धो नामक ग्राम ही प्राचीन किष्किन्धा है और (२) अमरकण्टक ही प्रसन्न गिरि है।' इस मतके विरुद्ध एक दूसरे विद्वान् लेखकने वर्तमान अनागोंदीको ही प्रबल प्रमाणोंसे किष्किन्धा निश्चित किया है। इसी लेखकने यह सिद्ध किया है कि किष्किन्धा, हम्पी (पम्पा), अनागोंदी, विजयनगर, विद्यानगर आदि सब एक ही प्रदेशमें तुल्लभद्राके तीरपर थे। परम्परागत जानकारी भी इसी मतको पुष्ट करती है। अनागोंदीसे पम्पासर दो मील पर है। मात्स्यवान-पर्वत पास ही है। पम्पा (हम्पी) गाँवसे चार मील दूर

अनागोंदी (किष्किन्धा) है और मार्गमें चक्रीय है। बिरुपाङ्ग-छेत्रकी सीमाके अन्दर किष्किन्धा, पम्पासर, मात्यवान-पर्वत, अक्षयमूक-पर्वत, इन सबका समावेश हो जाता है। अजनी पर्वत भी करीब ही है। अनागोंदीसे वाजिकी गुहा १॥ मीलपर है। प्रसवण पर्वत मान्यवान् पर्वतसे सटा हुआ ही था। जयदेव कविका अभिप्राय भी ऐसा ही है। 'प्रसन्नराघव' नाटकके वर्णनसे अक्षयमूक-पर्वत और किष्किन्धाका तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणमें होना संशयातीत है। बाळरामायण-कार कवि राजशेखर ( शक ८००-१०० ) ने रामवनवासका बहुत ही व्यवस्थित वर्णन किया है। उससे भी किष्किन्धाका निःसन्देह तुङ्गभद्राके समीप होना ही प्रमाणित होता है। प्रसिद्ध कवि भवभूतिका ऐसा स्पष्ट अभिप्राय मिलता है कि किष्किन्धा-नगरी विन्ध्य-पर्वत और गोदावरी नदीके दक्षिणमें बहुत दूर थी।

जैन-कवि विमलसूरिका भी यही मत है कि दण्डकारण्यके आग्नेयमें समुद्रके पास तथा कर्णारवा-नदीके दक्षिणमें बहुत दूर जनस्थान था और कर्णारवा-नदी नर्मदा तथा ताप्ती नदियोंके दक्षिणमें थी, और किष्किन्धा उसके भी दक्षिणमें थी।

वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें वर्णित भूवर्णनमें आग्नेय देशोंकी सूचीमें किष्किन्धा-देशका नाम दिया हुआ है। पर उससे ठीक निश्चय नहीं हो सकता।

महाभारत ( सभाषव ) में दक्षिणके देशोंकी सूचीमें किष्किन्धाका नाम आया है। अतः किष्किन्धा-नगरी तुङ्गभद्राके तट-प्रान्तमें थी, यह बात सिद्ध होती है।

प्रो० डायसन भी किष्किन्धाको दक्षिण भारतके मैसूर राज्यमें बनलाते हैं। ( Classical Dictionary of Hindu Mythology, Geography etc. Page 154 )

इसी प्रकार सीतान्वेषणके लिये श्रीराम-लक्ष्मण जब दक्षिणकी ओर चले तब मार्गमें उन्हें पक्षिश्रेष्ठ, मरणोन्मुख जटायु मिला। उसने रावणका आकाशमार्गसे सीताको दक्षिणकी ओर ले जानेका समाचार श्रीरामसे निवेदन किया। जटायुकी अन्त्येष्टि किया श्रीरामने स्वयं सम्पन्न की। जिस स्थानपर यह घटना हुई वह स्थान आजकल मद्रास-प्रान्तके गवटूर-जिलेमें विनुकोंडा-ग्रामके समीप एक पहाड़ीपर बतलाया जाता है। विनुकोंडाका अर्थ 'समाचार मिलनेका स्थान' है। ( Provincial Geographies of India, Madras Presidency. Page 280. ) आगे श्रीराम कौञ्जाग्रवमें पहुँचे जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है।

वित्सार-मयसे वहाँके समस्त भूगोल-वर्णनका विस्तृत विचार वहाँ करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। अन्य किसी जेलमें इसपर विचार किया जा सकता है। अस्तु।

सुग्रीवकी आज्ञासे गये हुए बानर वीरोंको एक मासके अन्दर खोज करके लौट आनेकी विशेष आज्ञा थी। तबतक राम-लक्ष्मण प्रसवण-गिरिपर ही वास करते थे। सीताकी खोजमें गये हुए बानर वीरोंमें हनुमान्के सिवा और किसीका विशेष वर्णन रामायणमें नहीं मिलता। अर्जुन तथा तारको लेकर हनुमान्जी चले थे वे दूर जाकर विन्ध्य-पर्वत पहुँचने लगे, वहाँ कबडनामके ऋषिसे उनकी भेंट हुई। हूँद हूँदकर थक जाने-पर वे बानर विन्ध्य पर्वतके नैऋत्यमें आये। उन्हीं वहाँ अक्षविल नामकी प्रचण्ड गुहा मिली। उस विवरमें मेरुसावर्धिका स्वयंभवा नाग्री कन्या, जो हैमा अप्सराके स्थानकी रक्षा कर रही थी, उन्हें मिली। यह बानरवीर जब उस गुफामें थे, तभी उन्हें मिला हुआ एक मासका ममय समाप्त हो गया, जिससे सब बानर बहुत ही घबड़ा गये। तब उस स्वयंभवाने अपने योगबलसे सब बानरोंको उस विवरके बाहर विन्ध्य-पर्वतकी उपत्यकापर पहुँचा दिया। अर्जुनने कहा कि आश्विन ( अश्वयुज ) महीनेकी अवधि समाप्त हो गयी। ( बा० रा० ४.२३.६ )

आगे हनुमान्के मुखसे यह वाक्य निकलने हैं कि 'राजा सुग्रीवकी आज्ञाके कारण सीताका पता लगाये बिना जब यहाँसे लौट जानेपर हमारी जान जाना निश्चित ही है तो हम यहाँ पवित्र समुद्र-तीरपर अन्न-जल त्याग करके क्यों न प्राण दे दें।' ( बा० रा० ४.५३.२० )

इसपर सब बानर अनशन करनेके निश्चयसे जब बैठ गये, तब जटायुका बलवान् भाई सम्पाति वहाँ आया और बानररूपी अपने भक्ष्यको देकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पर अर्जुनके सुत्वमें जटायुका किम्सा सुनने ही पूर्वनिहास सुननेकी उसे प्रवृत्ति इच्छा हुई। अर्जुनने उससे जटायुवधकी तथा कुल रामकहानी सुनार्थी। इसपर उसने सीताका वृत्तान्त तथा रावणकी लज्जाका वृत्तान्त बानरोंमें निवेदन किया—

इतो द्वापे समुद्रस्य सम्पूर्णं शतयोजने।

तस्मिँल्लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मेणा।

( बा० रा० ४.५८.२० )

और लङ्कामें रावणके अन्तःपुरमें सीताके रहनेका स्थान बतलाया। चाक्षुष्मती बिद्याके योगसे वह सी बोजनसे दूरका दूर भी देख सकता था और उसी बिद्यासे प्राप्त

दिव्य दृष्टिके कारण यह पता उसने बतलाया था। पश्चात् सञ्जातिके निवेदन करनेपर वानर उसे समुद्रतटपर ले आये, और वह सुपारवर्ष पक्षीसे उसे जो संवाद प्राप्त हुआ था उसे कहने लगा—

'सुपारवर्ष महेन्द्र-पर्वतका द्वार अवस्थ करके अपने भक्ष्यकी प्रतीक्षामें जब बैठा था तब रावण सीताको ले जा रहा था और रावणके गिदगिदामेके कारण उसने उसे जाने दिया।' तदनन्तर जटायुकें नामसे समुद्र-तटपर तपस्य करके सम्पाती जब फिर पर्वतपर आ बैठा, तब उसने कहा— 'यह दक्षिण समुद्रके तटका विन्ध्य-पर्वत है, यहाँ पर एक निशाकर ऋषि आश्रममें तपश्चर्या करते थे, उनके स्वर्ग विचारनेके पश्चात् आठ हजार वर्षमें इस पर्वतपर बिताये।' (वा० रा० ४।१०।८)

सम्पातीको इस रामकार्यके करने ही पङ्क आ जानेका वरदान मिला हुआ था। अतः वानरोंसे सीता-समाचार कहतेही उसके पङ्क फिर आ गये तब वे सब दक्षिण समुद्रके उत्तर तीरपर जाकर ठहरे।

उपर्युक्त वर्णनसे यह स्पष्ट है कि भारतकी दक्षिण सीमापर जो पर्वत था उसका नाम विन्ध्याद्रि था। नर्मदा नदीके उत्तरका विन्ध्याद्रि उत्तरविन्ध्याद्रि है। अङ्गदका यह दत्त और सम्पाती कुमारी-अन्नरीपके प्रदेशमें ठहरे थे, ऐसा वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट होता है। महेन्द्र-पर्वतके शिखरपर चढ़कर हनूमान्ने भी योजन विस्तीर्ण उस समुद्रको लांचनेकी तैयारी की। वह प्राणवायुको हृदयमें निहद्ध करके उड़ और प्रचण्डरूप धारण करके आकाशमार्गसे जाने लगे। उस समय समुद्रपर जो उनकी छाया पड़ी, वह दस योजन चौड़ी तथा तीस योजन लम्बी थी। (वा० रा० ५।१।७४) हनूमान्जी जब आकाशमार्गमें प्रयाण कर रहे थे, तब इक्ष्वाकुकुलाधिपति मगर राजाके द्वारा बढ़ाये हुए समुद्रने उम्मी कुलमें उरवृक्ष रामको सहायता करनेका उत्कृष्ट विचार किया। तब उसने अपने जलमें आच्छादित सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाकको हनूमान्की सहायता करनेके लिये उदकके बाहर आनेको कहा। अचानक मैनाक-पर्वतके बाहर निकलनेके कारण हनूमान्को वह एक विप्र प्रतीत हुआ और हनूमान्ने अपने वक्षःस्थलके धक्केसे उसे नीचे गिरा दिया।

तत्पश्चात् सुरसा नाम्नी नागमाताके मुखमें जाकर अङ्गुष्ठ-प्राय देहसे बाहर निकलकर तथा उसके गर्वको मिटाकर हनूमान् आगे बढ़े तब उन्हें सिंहिका राक्षसी मिली जिसने

उनकी छाया पकड़ ली। तब हनूमान्ने अपना शरीर बढ़ाया और फिर छोटा रूप धारण करके वे उसके मुखमें गये और मुँह काड़कर निकल आये। पश्चात्—

ददर्श तं पतन्नेव विविघट्टमभूषितम्।

द्वीपं शास्त्रामृगश्रेष्ठो मरुतोपवनानि च॥

(वा० रा० ५।१।२०५)

आकाशमार्गमें उड़ते हुए हनूमान्ने सौ योजनके अन्तमें एक वनपंक्ति देखी और नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित द्वीप और उसमें उपवन देखे। इसके बाद नदियोंके मुख भी देखे। तदनन्तर हनूमान् शरीर छोटा करके उस द्वीपके त्रिकूटाचल-पहाड़के लम्बे नाम्नी शिखरपर उतरे और वहाँसे लङ्का-नगरीका निरीक्षण किया। तत्पश्चात् सीतादेवीके दर्शनकर हनूमान्ने उनसे राम-लक्ष्मणका सारा वृत्तान्त निवेदन किया और उनको आश्वामन दिया। श्रीरामचन्द्रके लिये सीताका सन्देश तथा मिलनका चिह्न (महदानी) लेकर हनूमान् वहाँसे लौटे। लौटती बार राक्षस-वीरोंको अपने बाहुबलका प्रवेष्ट पराक्रम दिखलाकर बीचमें अरिष्ट नामके एक श्रेष्ठ पर्वतपर आरुढ़ हुए (वा० रा० ५।२५।२५)। वह पर्वत ४० कोस (८० मील) चौड़ा तथा १२० कोस (२४० मील) ऊँचा था। वहाँसे उड़नेके लिये प्रचण्डरूप धारणकर हनूमान् आकाशरूपी समुद्रमें तैरने लगे और कुछ समयके बाद महेन्द्र-पर्वतके उस शिखरपर आ पहुँचे जहाँ जाम्बवन्त, अङ्गदादि वानर थे और वहाँ उनको लङ्काका सब हाल सुनाया। वहाँसे राम-दर्शनार्थ चले और सुग्रीवके संरक्षित मधुवन नामक वनमें आ पहुँचे। वहाँसे प्रन्वयण-गिरिपर जाकर हनूमान्ने सीताकी खोज एवं लङ्कादहन आदि सब समाचार रामचन्द्रसे निवेदन किये तथा सीता देवीका दिया हुआ चिह्न देकर उनका वृत्तान्त कहा। इसके पश्चात् राम-रावण युद्ध हुआ और उसमें रावणका वध करके श्रीरामने सीताको छुड़ा लिया।

उपर्युक्त वाल्मीकीय रामायणके विस्तृत वर्णनमें वानर राजा किस प्रदेशपर राज्य करते थे तथा लङ्का-नगरी कहाँ थी, इसका पता चल जाता है। लङ्काके सम्बन्धमें 'रावणकी लङ्का कहाँ थी?' शीर्षक प्रबन्धमें हमने लङ्काका स्थान-निर्णय-सम्बन्धी अपना मत प्रकट किया है, पाठक उसे ध्यानसे पढ़ें।

रामायणमें जो और भी भौगोलिक वृत्तान्त मिलता है, उसे हो सका तो दूसरे लेखमें देनेका विचार करके हम इस लेखको समाप्त करते हैं।



## रामायणकालीन स्थान-परिचय

(लेखक आयुत बी० एच० वडेर बी० ए०, एक-एक० बी०, एम० आर० ए०एस०)

अगस्त्याश्रम—यह आश्रम रोहिण-पर्वतपर स्थित है। यह पूर्वी-पश्चिमी घाटोंके नीचे दक्षिण-भागमें कार्डेमम-पर्वतसे नीचे स्थित है। यह पृथिवीतलसे ६२०० फीट ऊँचा सूक्ष्माकार पर्वतशृङ्ग है। अगस्त्यजी यहाँपर वास करते थे। कार्डेमम-पर्वत त्रावनकोरकी सीमापर अवस्थित है। (Provincial Geography of Madras)

अगस्तिपुरी—यह नासिकसे २४ मील दक्षिण-पूर्वके कोणपर है।

अम्रितवती—झोटी गण्डक

अर्धगंगा—कावेरी।

अपर तारु—इसे नक्षीमें दिखलाया है (देशान्तर ७६° २६-३०)

अपर विदेह—रङ्गपुर तथा दीनाजपुर।

अमिसरी—उत्तरी पञ्जाबका हज़ारा जिला।

अत्रि-आश्रम—बृहन्नकारचक्रकी सीमापर

अनुद-आबू पर्वत

अयोध्या—प्रसिद्ध है।

अरुणकुण्डपुर—बारकल

अश्वतीर्थ—गंगा तथा काली नदीका संगम।

अहिच्छत्र—उत्तर बाङ्गाल (मैदानीय) की तात्कालिक राजधानी।

अंग—यह प्रान्त भागलपुरके समीप था। इसके राजधानी चम्पापुरी गङ्गाके तीरपर थी। इसकी पश्चिमीय सीमा गङ्गा तथा सरयूके संगमपर थी।

अवन्ति—आधुनिक उज्जैनमें पूर्वकी ओर एक प्राचीन नगर।

अंशुमती—बसुन्दा नदीका एक प्राचीन नाम।

अंशुवान—गङ्गा नदीके किनारेका एक गाँव।

आनर्त—मालवाका कुछ भाग तथा गुजरात

इध्रुमती—कहेरवाबख्तस्य काकलीनदीका प्राचीन नाम।

इल्लर—एल्लोरा Ellora—निजामराजके दौलताबाद-नगरके समीप पहाड़ोंके ऊपर बनायी गयी गुफाओंमें यह स्थल प्रसिद्ध है।

उकलक्षेत्र—देखिये 'सोरो'।

उज्जैनक—उज्जैन, यह स्थान काशीपुर या गोविन्दसे १ मील पूर्वकी ओर या मदावरसे दक्षिण-पूर्वकी ओर ९७ मीलपर है।

उत्कल—उड़ीसा या उडु।

उत्तरगा नदी—उत्तानिका नदी—इन नदियोंको आजकल रामगंगा कहते हैं। यह अवध-प्रदेशमें होकर बहती हैं।

उशीनर—दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान।

ऊधवान् पर्वत—गौडवाना पर्वतश्रेणी। यह पर्वत बिन्धवाचलका पूर्वीय भाग है। इसके बिलार बङ्गालकी खाड़ीमें लेकर नर्मदा नदीके उद्गमस्थानतक है।

ऊग्रमूक पर्वत—यह पर्वत महाम-प्रान्तके बेल्हारी-जिलान्तर्गत पन्ना या हागपी (Hagpi)के समीप है।

ऊष्यशृङ्गाश्रम—भागलपुर जिलान्तर्गत माधीपुर तहसील-में सिंहेश्वर स्थानपर था।

ऊर्माल—स्थानमुमती नदीपर स्थित एक ग्राम।

ऊरुवान—शिलाबहा नदीपर स्थित एक बस्ती।

आकारनाथ—इसे आजकल अमरेश्वर कहते हैं। यह नर्मदा-नदीपर स्थित महेश नामक स्थानसे २ मील पूर्वकी ओर मंडलेश्वरके समीप है।

कपड-आश्रम—माहिनी-नदीपर स्थित बिजनौर।

कपिथ—देखिये 'मंकास्या'।

कपीवती नदी—अंगू-नदी यह रामगंगा नदीकी एक शाखा है।

करुप—बिहारप्रान्तान्तर्गत शाहाबाद जिलेका पूर्वीय भाग इस नामसे प्रसिद्ध था। इसके पश्चिमी भागको मल्लय कहा जाता था।

कर्णट—प्राचीनकालमें दक्षिण-भारतका एक प्रान्त। आजकलके बेल्गांव, बारबाद, बीजापुर, बेल्हारी तथा इसके आसपासकी सभी देवी विवासतें इसीमें हैं।

कर्मनाशा—यह नदी बिहारप्रान्तान्तर्गत जिला शाहाबाद-की पश्चिमी सीमापर है।

करतोबा नदी-बहरापुर तथा दिबावपुर जिलोंमें बहती है इसका दूसरा नाम 'सदानीरा' है।

कलिंग देश-दक्कीसासे दक्षिण तथा द्रविड देशसे उत्तर पूर्वीघाटपर एक प्रदेश।

कण्टहारिणी घाट-मुँगेरमें है।

कांची-चिन्नलपट जिलेमें। आधुनिक 'काञ्चीवरम्'।

कान्यकुब्ज-आधुनिक कन्नौज नगर।

कार्गिल-कश्मिर-यह फर्गुषाबाद जिलेके फनेहगड (यू० पी०) से २० मील उत्तर-पूर्व है।

कामरूप-दश-आसाम प्रान्त। इसकी राजधानी प्राग्-ज्योतिषपुर थी, जिसका वर्तमान नाम गोहाटी है।

कारापथ-कालाबाग अथवा काराबाग। यह सिन्धुनदी-पर है। श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणजीके पुत्र चन्द्रकेतुको यहींका राजा बनाया था।

काशिकी नदी-यमुना नदीका एक प्राचीन नाम।

कावेरी-प्रसिद्ध नदी है। अर्धगङ्गा भी कहते हैं।

काशिकन्वा (आनागोंदी) विजयनगर-राज्यान्तर्गत तुळभद्रा-नदीपर स्थित है। जिला बेल्गारीमें होस्पेटमे १ मील तथा हावपी (पम्पा) से ४ मीलकी दूरीपर है।

कुट्टिकानदी इसे कौमिला नदी कहते हैं। यह अवध प्रान्तकी रामगंगाकी पूर्वीय शाखा है।

कुम्भेश्वर-नार्थ वेस्टर्न रेलवेके कुरुक्षेत्र स्टेशनके समीप एक प्राचीन नगर।

कुरुजंगल-यह स्थान इम्लिनापुरसे उत्तर पश्चिमकी ओर सरहिन्दमें है। बौद्धकालमें इसे श्रीकच्छ देश कहा जाता था। यह कुरुक्षेत्रका एक भाग था।

कुर्दिगपुरी-दिल्लीसे उत्तरका सहारनपुर जिला।

कुशावली-हारका, हारावती।

कूटिकोटिका नदी-अवधप्रान्तमें रामगंगा नदीकी एक छोटी-सी शाखा।

केकय-केलम तथा चेलाव नदीके मध्यका प्रदेश। यहाँका राजा भरवपति था।

केरल-इसमें आजकलके तीन प्रदेश हैं; कनाडा, मल्लाबार तथा ट्रावनकोर।

कोसल-अवधप्रान्त।

कौशिकी नदी-कुशीनदी। यह गंगामें मिलती है।

क्रयकेशिका-बरार-प्रवेशान्तर्गत पयोष्णि नदी।

कृष्णवेणी-वर्तमान कृष्णानदी।

क्राञ्चारण्य-इस विस्तृत जंगलका प्रसार मद्रासप्रान्तके समस्त साम्बर-राज्यमें है। यह जिला बेल्गारी, गुन्तकल, नागदुवाल तथा पूर्वीय घाटपर स्थित आंगोले तक फैला हुआ है। जनस्थानसे तीन कोस दूर है।

गङ्गा नदी-प्रसिद्ध है।

गन्धर्व देश-कुनार तथा मिन्धु-नदीके बीच काबुल नदीके किनारे किनारेका प्रदेश।

गर्गाश्रम-रायबरेली जिलेमें गंगाके पार असनीके ठीक सामने।

गाविपुर-कन्नौज।

गालनाश्रम-जयपुर (Jeypur) से तीन मीलकी दूरीपर है।

गिरिव्रज-चेलाव (चन्द्रभागा) नदीपर स्थित केकयदेश-की राजधानी। समग्रति केलमसे उत्तर-पश्चिमकी ओर ३० मीलपर गिरमक या जलालपुर।

गोकर्ण पर्वत-गोकर्णक्षेत्रके समीप पश्चिमी घाटपर।

गोदावरी नदी प्रसिद्ध है। इसे रेवा या सुरला-नदी और दक्षिण-गङ्गा भी कहते थे। इसीके किनारे जटायुकी जीर्ण-देहिक क्रिया की गयी थी।

गोप्रतार-घाट-यह कैलाबादमें सरयू नदीपर है। यहाँपर श्रीरामचन्द्रजी परमधाम पधारे थे।

गोमती नदी-यह नदी आजकल भी इसी नामसे प्रसिद्ध है; इसीपर जलनऊ नगर अवस्थित है।

गौतमाश्रम-तिरहुनमें, जनकपुरसे २४ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर परगना जरैलके अहिचारी गाँवमें अहिल्या-स्थान।

घग्गर नदी-स्पइती नदी।

चन्द्रिकापुरी-देखिये 'आवली'।

चम्पा-चम्पानगर-चम्पापुरी-भागलपुरके पास चम्पा नगर। यह जंगकी प्राचीन राजधानी भी है।

चयवनाश्रम-शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत चानसा या चयनपुर।

चर्मप्वती नदी-आधुनिक चम्बल नदी।

चित्रकूट पर्वत-यह चित्रकूट स्टेशनके समीप है। आजकल इसे कामजानाय-गिरि कहते हैं। विराध यहीं मारा गया था।

चित्रकूटा नदी-देखिये मन्दाकिनी नदी ।

चेर-एक समय इसके भीतर ट्राबनकोर, मलाबारका  
कुड़ हिस्सा, तथा कोयम्बटूर था ।

चैत्ररथ वन-चित्राक्ष ।

चाल अथवा द्रविड़ देश-कारोमरहल-किनारेपर, कृष्णा  
तथा कावेरी नदीके मध्यका प्रदेश । इसकी राजधानी  
कांचीपुर अथवा कांची था —

जनस्थान-महाकवि भवभूतिकी दृष्टिसे जनस्थान तथा  
पञ्चवटी दोनों ही गोदावरी नदीके मुहाने हैं । आजकल  
यहाँ खरबाड़ी बस्ती है । यह दण्डकारण्यके दक्षिण सीमा  
पर है । (सायका नक्शा देखिये) यहाँ खर, नृपण, त्रिशिरा  
आदि रहते थे ।

नन्हु आश्रम-भागलपुरमें पश्चिमकी ओर ई० आई०  
रेलवेपर स्थित सुखतानगंजमें । इसी स्थानपर अब गौरीनाथ  
महादेवका मन्दिर है ।

नमदग्नि-आश्रम-गार्जीपुर जिलेमें जमानिका नामक बस्ती।

जाबानि-पट्टण-जबलपुर ।

तक्षशिला-आजकलका तक्षिला ग्राम ।

तमसा नदी-यह नदी अयोध्यामें दक्षिण सरयूनदी  
और गोमतीनदी के बीचमें है ।

ताम्रपर्णा नदी-आजकल यह तिलेवेली जिलेमें ताम-  
बरवारीके नामसे प्रसिद्ध है । कृष्णानदीकी एक शाखा है ।

दक्षिण कामन-मध्यभारतका गोंडवाना जिला ।

दक्षिण गङ्गा-गोदावरी नदी ।

दक्षिण मथुरा-मथुरा ।

दण्डकारण्य यह वन चित्रकूट-पर्वतसे लेकर जनस्थान  
अथवा गोदावरी-नदीके मुहानेतक फैला हुआ था ।  
(विमलसूरी ३०० पृ० डी०)

दशार्ण मध्यभारतकी धस्सान (Dhassan) नदी ।

द्वर्वासाश्रम यह भागलपुर-जिलान्तर्गत कङ्कगॉंव  
(Colgong) शहरसे एक मीलकी दूरीपर इसी नामके  
एक पर्वतपर स्थित था । अथवा—गङ्गा जिलेके नवादा  
तहसीलमें रजौलीसे ७ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर इस  
आश्रमका स्थान है ।

दयद्वती नदी-बमर नदी ।

द्रविड़ देश-देखिये 'चोख'

धनुषकोटि { भारत तथा सीखोनके मध्यका पसवन  
धनुःतीर्थ { नामक जल-भाग ।

धर्मपट्टण-देखिये 'आवली' ।

धर्मारण्य-सत्य अथवा कृतयुगमें बिहार, बंगाल तथा  
उत्तरमें आर्योंका अधिनिवेश (भगवान् श्रीरामके समयसे पूर्व)

धवला नदी { बूढ़ी राप्ती ।  
अर्जुनी ।  
धुमला नदी { सीताप्रस्था ।  
बाहुदा ।

धोगावपुर सुखतानपुरसे १८ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर  
गोमती-नदीपर स्थित है ।

नन्दीग्राम-नन्दिगॉंव—अयोध्यासे एक कोस है ।

नर्मदा नदी प्रसिद्ध ही है ।

आजकल इसे नीमसार कहने हैं ।  
नीमसार यह ओ० आर० आर० के अर्धकीला  
अथवा—स्टेशनमें २४ मीलकी दूरीपर तथा गोमती-  
नदीके बायें किनारेपर स्थित सीतापुरमें  
२० मीलकी दूरीपर है ।

पञ्चवटी आधुनिक नासिक । महाकवि भवभूतिके  
अनुसार यह गोदावरी नदीका मुहाना है । विमलसूरीके  
अनुसार यह जनस्थान, जो दण्डकारण्यके दक्षिण पूर्व  
है—में था ( ३०० पृ० डी० )

पञ्चासम मरोवर छोटा नागपुर राज्यके उदयपुर जिलेमें  
है । अ० २२° दे० ८४° के पास है । (सीलमन्दास दे)

पर्णाशा नदी-ब्रह्माय नदी ।

प्रन्त्य सुन्दार वा सुन्दार, पश्चिमो म्हेलसबहमें  
बिजनौरसे ८ मील उत्तर है ।

प्रयाग प्रसिद्ध है । यहाँपर भरद्वाज-आश्रम था ।

पर्यासर इसे 'हाप्पी' भी कहने हैं । यह मद्रास-प्रान्तके  
वेङ्गारी जिलान्तर्गत होम्पेटके पास है । अनागोंट्रीसे  
२ मील है ।

पयस्विनी नदी देखिये 'मन्दाकिनी नदी' ।

पाञ्चाल-कूहेलसखर ।

पाण्ड्य जनपद-यहाँ आजकलके तिलेवेल्ली तथा मथुरा  
जिले हैं । पूर्वीय किनारेपर स्थित नागपट्टण तथा किसी  
समय मथुरा राजधानी थी ।

पुच्छलावती स्वात नदी तथा बाहुल नदीके संगमपर  
स्थित पुच्छलावती गाँव ।

प्रसन्न पर्वत-गुरुभद्रा नदीके पास है।

प्राग्ज्योतिष-कामरूप अथवा कामाख्या। कामरूपकी प्राचीन राजधानी।

प्रसवपुर-गङ्गा-नदीपर एक नगर।

प्राचीनसाहिनी नदी ( जाह्नवीतुल्य ) किष्किन्धाके पास प्रताराला-हेलिबे 'रामगथा'।

पद्मे नदी-प्रेतशिला आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली नदी। श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण जोष हो गयी है। इसे मधु नदी भी कहते थे।

ब्रह्मरनि पर्वत ( ब्रह्मयोनि ) बही गवशिर पर्वत है।

ब्रह्मर धर्मारण्यमें है।

बाहुदा नदी-धबला नदी—अब इसका नाम धुमेला अथवा बूही राखती है। यह अवधमें राप्तीकी एक शाखा है।

बाह्लीक आधुनिक बलङ्ग-प्रान्त।

विन्दुसार गङ्गोत्तरीसे २ मील दक्षिण है।

भाट्टान आश्रम प्रयागमें है।

भास्वद देश वीरमन्य देशसे उत्तर।

भामाथी भीमा नदी

भृगु आश्रम बलिवा—यह गङ्गा तथा सरयूके संगमपर है। बभ्रुआश्रम भी इसीका नाम है।

मन्त्र-आश्रम, मतङ्ग-संगम-मन्नास प्रान्तके बेल्हारी जिलेमें पण्डा नदीके पास। कौञ्जारण्यसे ३ कोसके भीतर है ( वा० रा० ३। ६६। ८ )

मन्त्र-वन-पण्डाके पश्चिमी तीरपर।

मन्त्रिपुर मदावर—बिजनौरसे ८ मीलकी दूरीपर है।

मधु नदी-प्रेतशिला आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली नदी। श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण इसका जोष हो गया है।

मधुपुरी-मधुरा—इसे शत्रुघ्नजीने मधुके पुत्र लवण्यको मारकर बसाया था। मधुरासे दक्षिण-पश्चिमकी ओर भाद्रोली नामक स्थान है। वही प्राचीनकालमें मधुपुरीके नामसे प्रसिद्ध था।

मन्दाचल-भागलपुर जिलेके बाँका तहसीलमें बीसीसे १-३ मील।

मन्दाकिनी नदी-चित्रकूटा नदी अथवा पण्डिनी नदी। यह अजयगढ़ पर्वतसे निकलकर चित्रकूटमें बहती हुई कुछ आगे जाकर यमुनामें मिल जाती है।

मऊद-बिहारान्तर्गत गढ़ाबाद जिलेका पश्चिमीय भाग।

महोदश पञ्चाब-प्रान्तका मुलतान जिला। लक्ष्मणके पुत्र अङ्गदको श्रीरामचन्द्रजीने इस स्थानका राजा बनाया था।

महानदी-प्रसिद्ध है।

महेन्द्रपर्वत-पूर्वीय घाटपर गङ्गाजिलेमें है।

मार्कण्डेयाश्रम-कमायूँ जिलेमें, बागेश्वरके पास सरयू तथा गोमती-नदीके संगमपर स्थित है।

माल्यवान् पर्वत-अनागाँदीके पास है।

मालिनी नदी ( सदिग्ध )-प्रखण्ड तथा अपर-ताल नामक प्राचीन जिलोंके मध्यमें बहनेवाली चुक ( चुक ) नदी, यह नदी अयोध्यासे ५० मील ऊपर सरयू नदीमें गिरती है। अपि कबवका आश्रम इसी नदीपर स्थित था।

मार्हध्मती नर्मदा-नदीपर स्थित आधुनिक मावडला।

मिथिला-(१) वैजयन्त नगर (२) विदेहमें अनकपुरसे दक्षिण एक नगर।

मेलन-(क) अमरकण्टक पर्वत जो कि नर्मदा-नदीका उद्गम स्थान है।

मैनाक पर्वत-शिवालिक-पर्वतमाला।

यमुना प्रसिद्ध जमना नदी।

यवद्वीप-जावा द्वीप।

रत्नपुर मध्यप्रान्तमें छत्तीसगढ़ प्रदेशमें दक्षिण कोसल-की राजधानी।

रत्नपुर-बल्लभ नदीपर रमताम्बर नगर

रामगथा, रामशिला ब्रह्मयोनि पर्वतके पासकी अन्य पहाड़ियाँ। वहाँपर श्रीरामने पितृ-भ्रातृमें पिण्डदान दिया था। ( बायुपुराण )

रामनाद-रामेश्वरके पास एक नगर। रामनादका राजा सेतुवति-वंशकी सन्तान था। लङ्कासे लौटते हुए श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरपर सेतुकी रक्षाके लिये जिन सात स्वर्णियोंको नियुक्त किया था, उनमेंसे एक रामनाद था।

रामेश्वर-प्रसिद्ध ही है।

रामेश्वर-संगम बल्लभ तथा बलास नदीका संगमस्थान।

रोहतास-ससरामसे ३० मील दक्षिण राहाबाद जिलेमें है। इसको राजा हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितारवने बसाया था।

रोहण पर्वत-सीजोनमें सुमनकूट पर्वतको कहते हैं। आजकल यह ऐडम पीक (Adam's Peak) के नामसे प्रसिद्ध है।

रुध्रणावती-लकनौती, यह गौड़का दूसरा नाम है, इसका भग्नावशेष मालदाके पास है।

रुवपुर-लबकोट, लववार अथवा लाहौर है। इसकी स्थापना भगवान् श्रीरामके पुत्र लवने की थी।

लाङ्गुली-राजपूतानेकी लूनी नदी।

लोमशगिरि-यह गया जिलान्तर्गत नवादा सब-डिवीजनके राजौली स्थानसे ४ मील उत्तर है।

लोमशाश्रम-लोमशगिरि पर है।

लोह-अफगानिस्तान।

लोहितग्राम-कवीरती नदीपर स्थित है।

लोहित्यसगर-बंगालकी खाड़ी।

लोहित्या-नदी-ब्रह्मपुत्र-नदी।

लस भूमि-प्रयागसे पश्चिम एक जिला। इसकी राजधानी कौशाब्बी थी।

बानीरमाहिनी नदी-धर्मारव्यकी नदी।

बादमीकि-आश्रम-तमसा नदीपर। गंगासे दक्षिण। प्रयागसे १० कोस।

बालिगुहा-अनागांदा स्थानसे १॥ मील दूर है।

बितस्ता नदी-पंजाबकी बेतम नदी।

बिदर्भ-बरार।

बिदिशा-मध्यभारतका भिलिसा ग्राम।

विंदह-आधुनिक तिरहुत—इसे मिथिला भी कहते हैं।

विनतग्राम-गोमती नदीपर एक ग्राम।

विन्ध्याद्रि-प्रसिद्ध है। यह पर्वत भारतवर्षको उत्तरी तथा दक्षिणी दो भागोंमें विभक्त करता है।

विनुकोंडा-गन्धूर जिलेमें इस नामका एक नगर तथा एक पर्वत है, इसका अर्थ 'सुननेका पर्वत' है। परम्परासे यह बात चली आती है कि इसी स्थलपर श्रीरामचन्द्रजीने सीता-हरबाध समाचार सुना था।

विपाशा नदी-पञ्जाबप्रान्तकी व्यास नदी। (वेदोंकी आर्षाविन्धा नदी)

विरूपाक्ष क्षेत्र-(हान्पीमें मन्दिर)। इसके अन्तर्गत किष्किन्धा, पम्पासरोवर, तारा, मात्स्यवान् तथा ऋष्यशृङ्ग पर्वतादि हैं।

वेदश्रुता नदी-तमसा या तानसा नदी।

वेदूर्यपर्वत-सतपुरा पर्वत।

वैतरणी नदी-यह नदी कश्मिर प्रान्तमें बहती हुई बज्जल-की खाड़ीमें गिरती है।

वैशाली-हाजीपुरसे १८ मील उत्तर गबडक नदीपर स्थित बेसारग्राम।

बंग-बंगाल। किसी समय यह पाँच प्रान्तोंमें विभक्त था। १-बुबट् २-समतट ३-कामरूप ४-ताम्रजित तथा ५-कर्णसुवर्ण।

यतद्रु नदी-पञ्जाबकी मतलज नदी।

गम्भंग-आश्रम उदयपुरमें। अग्नि-आश्रमसे दक्षिण दिशामें।

सरयू नदी-सरयू या पाचरा नदी—गङ्गा नदीकी एक शाखा। इसीके किनारेपर अथवा कोमलकी तत्कालीन राजधानी अवोध्यापुरी है।

शिवि-सिविलान। सिन्ध नदीके किनारे सिन्धप्रान्तका एक भाग।

शुक्रश्रेष्ठ-देखिये 'सोरो'।

शूर्पारक-बम्बई प्रान्तमें बसईके पास सोपारा नामसे प्रसिद्ध है।

शेण-सोन नदी। यह गंगा नदीमें गिरती है। इसका एक नाम हिरव्यवाह भी है।

शृङ्गरपुर-आधुनिक सिंगरौर। प्राचीनकालमें यहाँका राजा गुह था।

श्रावण-उन्नावसे २० मील दक्षिणपूर्वकी ओर तमसा नदीपर स्थित है। इसी स्थलपर राजा वृक्षरथने भूलसे अथवा अथवा सिन्धु-ऋषिको मार डाला था।

श्रावस्ती-सूर्यवंशी राजा आबस्तने इसे बसाया था। आजकल रापती अथवा ईरावती नदीके दक्षिण तटपर सहेल-महेलके नामसे प्रसिद्ध है। यह अवोध्यासे ५८ मील उत्तरकी ओर है। प्राचीनकालमें यह उत्तरकोसलकी राजधानी थी। इसके तीन नाम हैं १-धर्मपट्ट २-पण्डिकापुरी ३-सहेल-महेल।

सदासीरा नदी-देखिये 'करलोवा'।

स्पन्दिका नदी—अथवा-प्रदेशकी आधुनिक सई नदी। गोमती और गंगाके बीचमें कोसल-देशकी दक्षिण सीमा पर बहती है।

सरस्वती नदी—आजकल इसे सरस्वती अथवा घग्गर नदी कहते हैं। यह उत्तर राजपूतानेकी रेतमें लुप्त हो गयी है।

सहेत-महेत—देखिये 'आवली'।

सिद्धाश्रम—थोरा सया गंगा नदीके संगमके पास काहाबाद जिलेमें बक्सरके नामसे प्रसिद्ध है।

सीता नदी—बारकण्ड अथवा जरझरानदी। इसीपर बारकण्ड शहर बसा हुआ है।

सीतासेज—काजिबर पर्वतकी एक पहाड़ी (साधारण ऊँचा बचरीका भाग)

सुतीक्ष्ण-आश्रम—शरमंगाश्रमसे दक्षिण।

सुवर्णद्वीप—सुमात्रा।

सुदामा नदी—रामगंगा नदी। देखिये 'उत्तरगा नदी'।

सुददेश—आराधनग्रामन्त। एक समय इसकी राजधानी ताजबिला थी।

सेरिन्ध-सरहिन्द।

सोमगिरि—हाला-पर्वतका दक्षिणी भाग।

सोरो—शुक्रचेत्र या उकलचेत्र—यह स्थान पृथ्वी २७ मील उत्तर-पूर्वकी ओर है। कहते हैं इसी स्थानपर हिन्दूके पूजनीय महाकवि तुलसीदासका बाल्यकालमें पावन-पोषण हुआ था।

संकास्या—करंजाबाद-विधान्तर्गत फतेहगढ़से पश्चिमकी ओर २३ मीलपर झुमली-नदीपर कपिलके नामसे प्रसिद्ध है।

हत्याहरण—हरदोईसे २८ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर कल्याणमठके पास है।

हरद्वार—गंगापर प्रसिद्ध नगर है।

हस्तिनापुर—अधुना गङ्गा-नदीके दाहिने तटपर स्थित एक ग्राम। यह दिल्ली तथा मेरठसे उत्तर-पूर्व तथा बिजनौरसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर है।

हटक—काचक (मानन्दीकके पास अबहेस स्थान)

हारीताश्रम—एकजिग। राजपूतानेके उदयपुरसे ६ मील उत्तर।

हिरण्यवती—छोटी गण्डकी।

हिरण्यवाह—देखिये 'शोच नदी'।

निम्नलिखित स्थानोंके नाम रामायणमें आते हैं परन्तु इनके सम्बन्धमें ठीक-ठीक पता नहीं लगता।—अनिमोदल, अमिकाव, आमवती, इधुसागर, उज्जिहाय नगर, आचम-पर्वत, कवन्ध वन, कलिङ्गनगर, काळमट्टी नदी, कुक्षिन्ध, कुक्ष, वीरसागर, गिरिश्रंग, जम्बूप्रस्थ ग्राम, जातरूपशील पर्वत, तेजोभिचन, तोरव ग्राम, दूधवाह आश्रम, धर्मवर्धन, प्रभास, प्रलवस्थली वेदी, मन्दिमान् पर्वत, महाम्राम, रौप्यक द्वीप, बरुथ ग्राम, बाहिनी नदी, वीरमत्स्य देश, शरद्वडा, शवरी आश्रम, शल्यकर्णव, शास्मलीनदी, शिखाबहा नदी, शिशिर पर्वत, ससजनमुनि-आश्रम, सससागरतीर्थ, स्वाधुमती नदी, सुचन्द्र नदी, सुदर्शन सरोवर, सुदामा नदी, सोरोन, हस्तिपृष्ठक ग्राम, हादिनी नदी आदि।

## रामावतार-रहस्य

(एक नवीन दृष्टि)

(लङ्कक—मीमोतीलाक रविशंकर घोष, बी० ए०, एक-एक० बी०)



रवकी अविनाशी सम्पत्ति समझी जानेवाली रामायणी कथा सर्वांगमें चाहे ऐतिहासिक वा हो परन्तु रामायण और श्रीरामचन्द्रजी के दोनों हिन्दू-समाजको गृहस्थाश्रम और राजधर्मका अद्वितीय आदर्श दिखला रहे हैं। इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। पर प्रस्तुत खेल इस आदर्शकी दृष्टिसे नहीं खिला जाता है। यह खेल एक नवीन दृष्टिसे खिला जाता है, इसलिये यदि किसी पाठकको कुछ अनुचित प्रतीत हो तो हम पहलेहीसे क्षमा माँग लेते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीको हम परमात्मा, अविष्णु भगवान्का अवतार मानते हैं, हमारी इस आस्तिक बुद्धिके नातेसे तो हमें किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी है। अवतारवादपर हम एक भिन्न दृष्टिसे विचार करना चाहते हैं, इसलिये एक नवीन विचार सृष्टि करनेका प्रयास किया जाता है। अवतारवाद और विकासवाद इन दोनोंमें कुछ-कुछ समापत्ता है, और वे दोनों ही वाद बुद्धिवाचक होनेके कारण विचारके योग्य ठहरते हैं।

हमारे पुराणोंका अध्ययन करनेसे पता लगता है कि इन ग्रन्थोंकी रचनामें किसी अज्ञात बुद्धिका उपयोग किया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि इनमें वर्णित कथाओंको जोकोपकारक बनानेके लिये, उनके मूल शुभ अंशोंके आधारपर उन्हें नये वक्षामूर्ध्नोंसे सजित किया गया है। इसके अतिरिक्त, 'यथा पिण्डे तथा नक्षत्रे' हमारे इस तात्त्विक सूत्रमें निहित मुख्य भावको सर्वथा चरितार्थ करनेकी भी चेष्टा पुराणकारोंने की है।

पुराणोंके पाठकोंके सूत्रम दृष्टिसे कथाओंका पर्यवेक्षण करना होगा। क्योंकि अवताररूपसे माने हुए देव-दानवोंके चरित्र-चित्रण करके ही पुराणकार सुप नहीं हो गये हैं, उन्होंने उन देव-दानवोंका एक और ज्योतिष्मत्की दृष्टिसे और दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टिसे भी वर्णन किया है। इस वर्णनके द्वारा उन्होंने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विषयोंकी एकार्थता सिद्ध कर दी है। मतलब यह कि हमारी पुराण-कथाएँ ऐसी हैं कि उनको हम भिन्न-भिन्न अर्थोंमें घटा सकते हैं, और इसी दृष्टिसे यह लेख लिखा गया है।

वेदमें 'वज्र' 'विष्णु' और 'सूर्य' ये तीन शब्द एक ही अर्थमें व्यवहृत हैं, इसके अनिश्चित उद्भव होते, केन्द्रमें स्थित रहते और अन्त होते सूर्यकी जिन तीन अवस्थाओंकी हम बार-बार आकृति देखते हैं, वे तीनों ही विष्णुके एकके बाद एक अवताररूपसे समझी गयी है, ऐसा भी वेदादि ग्रन्थोंके आधारपर कहा जा सकता है। अन्य अवतारोंके सम्बन्धमें यहाँ कुछ नहीं कहना है। रामायणके आधारपर हम श्रीरामजीको सूर्यवंशी मानते हैं। इससे श्रीरामका सूर्यके साथ सम्बन्धित होना सिद्ध है। रमाने अपनी आनन्द प्रदान करनेवालेको राम कहते हैं। ऐसे तेजस्वी पुरुष ही 'सूर्यवंशज राम' हैं, यह सीधा अर्थ किया जा सकता है। प्रकर चित्रणोंवाले सूर्यका वरशुराम उग्रस्वरूप है, उसके मुकुटपर (पराजित होनेपर) जो नवा स्वरूप (सूर्यका) बनता है उसका अल्प उग्र होकर जोकमात्रको सुख पहुँचानेवाला होना स्वाभाविक ही है (उसे हुए सूर्यका स्वरूप उग्रतामें कम और सुखकारक होता है)। श्रीरामके जन्मकालसे ही जोकमात्रको आनन्द होता है परन्तु आनन्द तो वही है जो होता ही रहे। रामका वह अर्थ-अर्थों बढ़ता है क्यों-ही-क्यों आनन्द भी बढ़ता जाता है, पर कहीं तक और किस प्रमाणात् ? राम अपनी प्रिया श्रीसीतारूपी सुतिका त्याग करके भी जोकमात्रको प्रसन्न करनेसे नहीं चूकते।

श्रीराम अपना पराक्रम दिखाकर जो सीताका वरण करते हैं, वह बात भी उतनी ही रहस्यपूर्ण है। वरशुराम, संक्रान्तिकावले सूर्यका स्वरूप होनेसे अर्धकाम्पितबुद्धिरूपी अनुपका अंग करनेवाले रामरूपी सूर्यसे पराजित हों, नष्ट हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है। रामकी पत्नीका नाम सीता है। 'सीता' शब्दका अर्थ 'शुद्ध' वा 'इकरेखा' होता है, और वह बुद्धिरूप भी है, तथा सौम्य भी है। अनुप-अंग करके रामरूपी सूर्य सीतारूपी सुतिका वरण करते हैं। इसका अर्थ यह करना चाहिये कि रामरूपी सूर्यका तेज जोक-मात्रको सदा है। उत्तरायणका सूर्य दिन बीतनेके साथ ही क्षीयमानका होने लगता है। यह बात श्रीरामके अपनी पत्नी सीताके साथ दक्षिण-गमनकी कथासे इतनी अधिक मिलती है कि राम-कथा और सूर्य-कथाको हम परस्पर पृथक् नहीं कर सकते। रामकी शक्तिरूपा सीताका रावणने हरण किया, इस कथाको जो हम सूर्यके अन्य अवतारों—नृसिंह वा वामनकी कथाके साथ तुलना करते हैं तो तबतः उन सबसे एक ही अर्थका बोध होता है। सूर्यकी अपनी वास्तविक बुद्धिरूप पत्नीको कैद कर रखनेवाले 'तेजोमण्डल' रूपी हिरण्यकशिपुका जैसा नृसिंहरूपी विष्णु भगवान्ने ध्वंस किया था, उसी प्रकार (वायुपुराणके अनुसार) हिरण्यकशिपुके अवतार रावणका,—जिसने सीताको कैद कर रखा था—रामरूपी सूर्य—विष्णुद्वारा ध्वंस हुआ और परिणाममें रामरूपी सूर्यको सीतारूपी सुतिका पुनः प्राप्ति हुई।

मतलब यह कि रामायणान्तर्गत राम-कथाका हम ज्योतिर्विद्याकी दृष्टिसे अन्यरूपसे भी अर्थ कर सकते हैं और ऐसा करनेसे अवश्य ही रामायणी कथाका प्रयोजन भी नष्ट नहीं होता !

## वरसाये देत

छाये देत छोर छोर सावनी घटा-सी छटा,

दुष्टन जवास भोरि भोरि भरसाये देत ।

बिजु सी परत धाय पातक-पहारन पै,

चातक विबुध उर भकि सरसाये देत ।

दास तुलसीके छंद गरजत मेघ जैसे,

भक्त मंजु मानस मयूर हरसाये देत ।

राम यश पावन सुहावन है धारा धर,

जगमें पियूष बारि धारा बरसाये देत ।

जगन्नाथप्रसाद द्विवेदी

## श्रीरामनामकी महत्ता

(लेखक—विविध-विद्या-विशारद पं० जानन्दधनरामजी तासगाँवकर)



ति प्राचीन कालसे श्रीरामनाम-आरवाकी जो इतनी महिमा चली आयी है, इसका कारण क्या है ? वह रामनामका आरवा हमारे ऐहिक वा पारमार्थिक कल्याणमें क्या और कैसे काम आता है, वह जानना चाहिये । रामनामका यह प्रकार केवल पुरानी लीक पीटले चले जानेका ही एक नमूना है वा इसमें कोई गम्भीर विचार भी है, यह जाननेके लिये इस नामकी महिमा जिन्होंने बतायी है उनकी योग्यता क्या और कितनी थी यह देखकर आज निज आधिभौतिक शास्त्रोंकी इतनी उन्नति हुई है उन आधिभौतिक शास्त्रोंकी कसौटीपर कसकर यह देखना होगा कि इस रामनामकी महिमा कितनी उज्ज्वल है और उससे कितना बड़ा उपकार हो सकता है । ऐसा करनेसे आधुनिक कालके सुशिक्षित मनुष्यको इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहेगा और वह इसका उपयोग करके अपना व्यावहारिक और पारमार्थिक लाभकर लेगा ।

### उपनिषदोंमें वर्णित महिमा

रमन्तं योगिनोऽनन्तं नित्यानन्दचिदात्मनि ।

इति रामपदेनासी परं ब्रह्माभिधीयते ॥

—रामपूर्वतापिन्युपनिषद्

‘योगीजोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मामें रममाय होते हैं उसीका रामपदसे बोध होता है । उसीको परब्रह्म कहते हैं ।’

मन्त्रोऽयं वाचको रामो वाच्यः स्वाद्योग एतयोः ।

फलदश्चैव सर्वेषां साधकानां न संशयः ॥

—रामपूर्वतापिन्युपनिषद्

‘यह मन्त्र रामका वाचक है और राम वाच्य हैं । इन दोनोंका जो योग है वह सब प्रकारके साधकोंको फल देनेवाला है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।’

मुमुक्षुर्देक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।

उपदेक्ष्यति मन्त्रः स मुक्तो भविता शिव ॥

स्वयं श्रीरामचन्द्र भगवान् शंकरसे कहते हैं—  
हे शिव ! मुमुक्षु के दाहिने कानमें जिस किसीको राममन्त्रका उपदेश हो और जो कोई इसप्रकार जप करे वह मुक्त होगा ।

गाणपत्येणु शैवेणु शक्तसैरैश्वरीः ।

वैष्णवेऽपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥

—रामोत्तरतापिन्युपनिषद्

‘गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु इन सब नामोंके जपसे होनेवाले कल्याणकी अपेक्षा रामनाम-मन्त्रके जपका फल अधिक है ।’

इसप्रकार रामनामके जपकी महिमा उपनिषदोंने गापी है । अब मन्त्रशास्त्रकी दृष्टिसे राम इन अक्षरोंके उच्चारणमें क्या शक्ति है, यह देखना चाहिये ।

### वर्णोच्चार-गुण-धर्म-वर्णन

‘र’ वर्ण दाहक विकृतिकर है ।

‘अ’ स्वर सर्वगत और आकर्षक है ।

‘म’ वर्ण विद्वेषी मोहनकर है ।

—अक्षरार्थकोपनिषद्

### बीजाक्षर गुणवर्णन

‘र’ अग्निबीज है ।

‘आ’ वायुबीज है ।

‘म’ आकाशबीज है ।

पृथ्वीबीज सम्भक्त, आपबीज शान्तिकर, तेजबीज दाहक, वायुबीज चालक और आकाशबीज संश्लेषक है । इन अक्षरोंके मिश्रोच्चारणका परिणाम विकृत पञ्च महाभूतोंकी स्थूल सृष्टिपर तथैव अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके सूक्ष्म स्वरूपपर भी घटित होता है । आकाशसे पृथ्वीतक आगमें जैसे सूक्ष्मसे स्थूलमें आना होता है वैसे ही स्थूलको पुनः छोटाकर पृथ्वी और आपको अग्नि, वायु और आकाशमेंसे होकर इनके भी परे जो मूलस्वरूप अर्थात् ब्रह्मस्वरूप है उसमें ले जानेकी सामर्थ्य भी इन्हीं अक्षरोंमें अर्थात् रामनाममें है । देखिये, गुसाईं तुलसीदासजी, क्या कहकर रामनामका वन्दन करते हैं—

बंदी रामनाम रघुवरके । हेतु कसानु भानु हिमकरके ॥



शरीरमें प्राणोंका कार्य चलानेवाली जो इका, पिंगला और सुषुम्ना नादियाँ हैं उनके अधिष्ठाता देवता इस रामनाममें आ जाते हैं। कुरातु (अग्नि) सुषुम्नाके, मातु (सूर्य) पिंगलाके और हिमकर (चन्द्र) इकाके अधिष्ठाता देवता हैं। इन देवताओंको जगाकर, आस-प्रवासको सम करके प्राणको सुषुम्ना-नाड़ीमें ले जाकर समाधि-सुखमें उसे पहुँचानेकी सामर्थ्य इस रामनाममें है; वही नहीं, प्रायुतः अलिक प्रज्ञावदको चलानेवाली जो वे अग्नि, सूर्य और सोम-शक्तियाँ हैं इनपर भी स्वाभित्व स्थापित करनेकी सामर्थ्य इस रामनाममें है, इसीलिये इस रामनामका बन्धन करते हैं।

रामनामकी इस अद्भुत सामर्थ्यका रहस्य भी तुलसीदासजीने रहस्यमय भाषाके द्वारा ही कथन किया है। कहते हैं—

एक छत्र एक मुकुटमनि, सब वरननि पर जोड ।

तुलसी रघुवर नामके, वरन बिरजत दोड ॥

'एक छत्र और एक मुकुट मनि' बानी अर्धमात्रा और उसपर बिन्दी। इनके साथ सब बच्चों सहित जयवा किसी ज्वरयुक्त वर्षासहित जिस 'अ' धारका योग होता है और उस धारके योगसे इसप्रकार जो ओंकारस्वरूप है वही 'राम' इन दो बच्चोंमें शोभायमान हैं। रामनामका उच्चार ओंकारका ही उच्चार है। 'रेफ्योर्वा गतिः।' "मोऽनुस्वारः।" ये बच्च और सूत्र प्रसिद्ध हैं। 'र' कार रेफ चिह्न सूचित करता है, वही छत्र है। 'म' कार बिन्दु चिह्न सूचित करता है, वही मुकुटमणि है और दोनोंको जोड़नेवाला 'आ' है जो 'अ' का ही दीर्घस्वरूप है। इसलिये र आ म- 'राम' ओंकारस्वरूप ही है। ओंकारके जपका जो कुछ माहात्म्य वेदों और उपनिषद्ोंने बताया है वही माहात्म्य रामनामके जपका है। रामनामके जपका स्वयं अनुभव प्राप्त करके तुलसीदासजीने उसकी इतनी महिमा गायी है। परन्तु शब्दादि प्रमात्रोंपर जिनका विश्वास नहीं, उन आधुनिक नवविचारियोंका इससे समायोजन न होगा। उन्हें आधिभौतिक शास्त्रीय पद्धतिसे ही रामनामकी महिमा ज्ञात देनी होगी।

आधिभौतिक पद्धतिसे विवेचन करनेके लिये, इस विषयको ज्योतिषशास्त्री दृष्टिसे देखना होगा। ज्योतिष-निर्माण करनेवाली इन्द्रियोंके सम्बन्धसे इन्द्रिय-विज्ञान भी देखना होगा। फिर शरीर और मनका सम्बन्ध होनेसे

शरीरविज्ञान और मानस-शास्त्री दृष्टिसे भी इसकी जाँच करनी होगी।

इस शरीरमें भिन्न-भिन्न कार्य करनेवाले पर साथ ही परस्परव्यवस्थी अनेक भाग हैं—(त्वचा, स्नायु, नसें, हड्डी, ज्ञानतन्तु इत्यादि) इन सबके संयोगसे शरीर बनता और चलता है। एक ही शरीरके अन्दर वे भिन्न भिन्न स्थूल और सूक्ष्म शरीर ही हैं। इनमें ज्ञानतन्तु सबसे सूक्ष्म है। इन सबके अन्दर कोई बाह्य शक्ति है जिनके बिना वे शरीर अपना काम नहीं कर सकते। शरीरके इन भिन्न-भिन्न भागोंकी स्थूल और सूक्ष्म क्रिया-शक्तिके ज्ञानके लिये इनके कुछ खास नाम रखे हैं—अङ्ग-इन्द्रियसमूह शरीरको अङ्ग अथवा स्थूल देह, शुद्ध मानस-शक्तिको कारण-देह और आत्मशक्तिको महाकारणदेह कहा है—

इस देहका इस अलिक प्रज्ञावदके साथ निकट सम्बन्ध है। प्रज्ञावदके वक्ता महाभूतोंके अंशसे ही यह शरीर बना है। और प्रज्ञावदकी उन्मत्ता, विद्वद्युत और प्राण इन शक्तियोंसे ही यह क्रियायुक्त हुआ और कार्य कर रहा है। इतनी बातें सामने रखकर अब हम यह देखें कि मुझसे निकलनेवाले अङ्ग वा ज्योतिष क्या परिवर्तन होता है।

(१) ज्योतिषे प्रकम्पन होता है। वह प्रकम्पन स्पष्ट वा अस्पष्ट, चीमा वा तेज, हृत्वा वा दीर्घ जैसा होगा वैसा वह वातावरणमें आन्दोलन उत्पन्न करके फैलने लगेगा।

(२) इस आन्दोलनसे वातावरणमें कम्पके कर्तुणाकार रूप उत्पन्न होते हैं।

(३) फिर इन कर्तुणोंके मिश्रणसे विशिष्ट आकृतियाँ बनती हैं।

(४) कम्पके उस वायुमचलमें जो सूक्ष्म और स्थूल द्रव्य हैं उनपर उन आकृतियोंका परित्याम होता है।

(५) इसप्रकार सूक्ष्मरूपसे होनेवाला यह वक्षिण परित्याम जोन्व संस्कार होनेसे सतत कार्य करता रहे तो उससे स्थूल कार्य निर्माण होता है।

(६) इस ज्योतिषकका परित्याम इधर नामक (जिसे प्रवहवातु कहते हैं) अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यपर भी होता है और उससे उसकी समतामें भी प्रकम्पन-कार्य आरम्भ होता है।

(७) इधरमें होनेवाली वह कम्पन-क्रिया ही प्राण-तेज (Odic light) है।



मौताका पाताल-प्रवेश ।

नस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मीथिलीम् । स्वापतेनामिन्मन्त्रनामासने चोपवेशयत् ॥ तामासगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं त्सातलम् ॥



( ८ ) इधरमें होनेवाले वे सूक्ष्म कम्प तेज और उष्णता-के रूपमें तब और नेत्रके द्वारा ज्ञात होनेकी कष्टा में आ जाते हैं तभी उन्हें व्यवहारमें तेज और उष्णता कहते हैं।

इसप्रकार इधरपर होनेवाले ध्वनिके परित्यामका विचार हुआ। अब शरीरके किन-किन भागों और द्रव्यों-पर क्या परित्याम होता है, इसका विचार करें।

जुँहसे मन्त्रोच्चार करनेके पूर्व उस उच्चारका अपने मनमें उत्पन्न होना आवश्यक होता है। मनमें उत्पन्न हुए विना वह जुँहसे निकल ही नहीं सकता। पर मनके भी पूर्व उसका अपने अस्तिष्कमें किसी सूक्ष्म अनुव्यूत-सी अवस्थामें होना जरूरी है। अस्तिष्कमें होनेसे ही वह मनमें उत्पन्न होकर मुखके द्वारा बाहर निकलता है।

पितृवमहायकका शाश्वत और व्यापक वस्तुस्वरूप तथा विचारस्वरूपका बोध करानेवाले श्रीराम-मन्त्रके कम्प ( Vibrations ) अस्तिष्कके अन्तर्भागके सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तन्तुओंको कम्पित किये हुए वहाँ अनुव्यूतरूपमें रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो उन कम्पोंका कहींसे उत्थापन नहीं हो सकता। इन अनुव्यूत कम्पोंका उत्थापन होनेपर वे कम्प वहाँसे ज्ञानवान् नाडी-जाळ ( Sympathetic Nerve ) में, फिर वहाँसे ज्ञानेन्द्रिय नाडी-जाळ ( Sensory ) के वाग-नाडी-जाळमें रहनेवाले शब्दोत्पादक ( Hypoglossal Nerve ) गतिवान् ( Motor Nerve ) ज्ञान-तन्तुओंको प्रेरित करते और जीमको कम्पित करके मन्त्रका स्पष्ट उच्चार कराते हैं। राममन्त्रके कम्प इसप्रकार बाह्य वातावरणपर पवित्र और समर्थ परित्याम करके फिर झौटकर शरीरके अन्तर्भागोंपर परित्याम करते हुए मूल उत्पत्ति-स्थानमें आ पहुँचते हैं। सृष्टि-शास्त्रका यह अबाधित सिद्धान्त है कि, जो-जो शक्ति जिस-जिस मूल स्थानसे उठकर क्रियामें प्रवृत्त होती है वह शक्ति फिर उसी मूल उत्पत्ति-स्थानमें आकर अपना वर्तुल ( Circulation ) पूरा करके ही जयको प्राप्त होती है। इस नियमके अनुसार राम-नामके जो कम्प अपने मूल स्थानसे उठकर जुँहतक आकर बाहर निकलते हैं और फिर वर्तुल पूरा करते हुए झौटते हैं, वे शरीरमें अन्धकी ओर जाते हुए जीमके स्नायुओंमेंसे होकर गतिवान् ज्ञानतन्तुओंमें जाते हैं, वहाँसे ज्ञान-तन्तुओंके शब्दज्ञानरन्ध्र ( Auditory Nerve ) में कम्प उत्पन्न करते व्युत्क्रम रीतिसे ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जाळमें कम्पित करते हुए अब मानस द्रव्यमें जाते हैं तभी वे अपने और

दूसरोंके शरीरके शब्दका स्वरूप समझ सकते हैं, वही उनके अर्थका कार्य निर्माण होता है और श्रीरामस्वरूप तेज अवतरित होकर अस्तिष्क पितृवमन्तर्गत महाद्वेष ( Seat of the Soul ) में विद्यीन हो रहता है। इस प्रकार वह पूरी क्रिया प्रत्येक जपमें होती है। और राम-मन्त्रके जपसे, स्थूल और सूक्ष्म क्रियास्वरूप संस्कारसे, मानस-शक्तिमें, विद्युत् और प्राणमें प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं और उनके संघ तथा संवसमुच्चयसे सूक्ष्म और शान्त तेजोमय आकृति निर्माण होती है।

इस तेजोमय देवताकृतिमें उष्णता नहीं, शान्ति होती है (सुबंकोटिप्रतिकाशं चन्द्रकादिसमप्रभं)। इस आकृतिकी निर्माणक्रियामें मन्त्र शब्दोच्चार, मन्त्र अर्थोच्चार और भावना-स्वरूप जितना ही समर्थ और दृढ़ होगा उससे उतने ही अधिक तेजस्वी और बलवान् मानसिक तेज-कम्पन और चैतन्य विद्युत्-कम्पन होते हैं और उसी परिमाणसे युक्त उस देवताका सूक्ष्म अथवा स्थूल देह निर्माण होता है। मन्त्र-शास्त्रके नियमानुसार इसप्रकार जपके द्वारा उस देवताका वह आकार हमारे मानसिक द्रव्यमें उच्च भूमिकापर सूक्ष्म रूपसे तैयार होने लगता है और जैसे-जैसे इसका संस्कार सतत जपसे दृढ़ होता है वैसे-वैसे हमारे सम्पूर्ण शरीर और मनमें पवित्र शुद्ध भक्ति कैलकर वह मनुष्यको इसी मनुष्य देहमें देव बना डालती है, उसे ज्ञानयुक्त भक्त और मुक्त बना देती है। श्रीरामनामके जपमें इसी सामर्थ्य है।

इसप्रकार वेद और उपनिषद्के बचनोंसे, अनुभवी सन्तोंकी बाखीसे, मन्त्रशास्त्रसे, शरीरशास्त्र और मनो-विज्ञानसे तथा ध्वनिशास्त्रसे श्रीरामनामके जपकी अपार महिमा सिद्ध होती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है—

‘यज्ञानां जपयशोऽस्मि’

इसप्रकार जप-यज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है ही, पर इसमें रामनामके जपकी महिमा सबसे अधिक है, वह ऊपरके विवेचनसे पाठकोंके ज्ञानमें आ गया होगा। इस दृष्टिसे रामरचास्तोत्रमें जो यह कहा है, वह अर्थ ही है कि—

राम रामेति रामेति रेम रामे मनोरमे ।

सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

वहाँतक जप और राममन्त्र जपकी महिमाका दिग्दर्शन करनेके पश्चात् अब मन्त्र-जपकी क्रमपद्धतिका विवरण भी वहाँ से देना आवश्यक मानूस होता है।

वाचिक जप—इस जपकेदो अंग हैं—प्रथम वाचिक और अगन्तर उपांश। ओरसे स्पष्ट उच्चार करते हुए तात्पर्य स्वरके

साथ जिसके आवर्तन होते हैं उसे वाचिक जप कहते हैं; और जिसमें होंठ और जीभ हिलते हैं पर स्वर इतना भीमा होता है कि अपने ही कानमें वह सुनायी दे, शब्द बाहर न जाय उसे उपांशु जप कहते हैं। इन वाचिक और उपांशु जपोंसे बाष्पी और श्रवणक कार्य करनेवाले स्नायुओं और ज्ञानतन्तुओंमें गति निर्माण होती है और उससे अन्तर्बाह्य जगतपर बैलरी बाष्पीसे गतिशील प्रकम्पन उत्पन्न होते हैं। इनसे अन्तर्बाह्य सृष्टिमें इष्ट परिवर्तन होता है।

मानसिक जप—इस जपमें होठ या जीभके हिलनेका काम नहीं है। मनसे मनोमय शब्दका मन-ही-मन स्पष्ट उच्चार करना होता है। वह उच्चार शब्दाचारप्रेरक ज्ञान-तन्तुओंमें होता है और उससे कानोंके शब्दज्ञान तन्तु कम्पित होकर मनसे होने-वाला स्पष्ट उच्चार मनको ही सुनायी देता है। इसप्रकार जो जप होता है उसे मानसिक जप कहते हैं। यह मानसिक जप मध्यमा बाष्पीसे ज्ञानतन्तुओंमें सूक्ष्म गति उत्पन्न करके हृयर आदि सूक्ष्म द्रव्योंमें कम्प निर्माण कर पियड-ब्रह्मायडके सूक्ष्म शरीरपर परिणाम करते हैं।

ध्यान जप—यह जप पर्यन्तो बाष्पीसे मानस तेजाकार देवता मानस प्रत्यक्ष करके स्वतन्त्र ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जाल (Sympathetic Nerve System) और नाडीचक्र (Nervous flexuous) को सूक्ष्म गति देकर हृयरसे भी सूक्ष्म प्राणद्रव्यमें प्रकम्पन उत्पन्न करता है और उसका पियड-ब्रह्मायडके कारण शरीरपर परिणाम होता है।

अनन्य जप—यह जप परावार्थीसे कुण्डलिनी नाड़ीमें तेज उत्पन्न करके जीवामतेजमें सूक्ष्मतर गतियुक्त प्रकम्पन उत्पन्न करता है और पियडब्रह्मायडके महाकारण देहपर परिणाम करके जीवामरूपी लघु केन्द्रको परमात्मरूपी बृहत्केन्द्र बनाया करता है।

यह मन्त्र-जपकी क्रमपद्धति है। प्रथम उक्तस्वरसे राम-नामका जो जप करता है, उसे उसके भगवान्ते ही, जैसे-जैसे अभ्यास बढ़े, वैसं-वैसं, उसकी प्रकृति आप ही इसका ज्ञान करा देती है, और वह वाचिक जपसे मानसिक जपमें, मानसिकसे ध्यानमें और ध्यानसे अनन्य जपमें पहुँच कर ईश्वररूप हो जाता है। जिसको इस रामनामका एक बार सत्सत्वाद् मिळा और वह इस रामनाम-चक्रमें घटका कि फिर वह और कोई प्रयत्न किये बिना, उसकी गतिके वेगके साथ आप ही आगे बढ़ता जाता है और स्वभावतः ही मनुष्यत्वके परे पहुँचकर श्रीराम-प्रभुत्वको प्राप्त होता है।

## श्रीमानसकी चौपाइयोंके विनोदी अर्थ

( लेखक—कविसम्राट् पद्यार्थवाचस्पति पं० बाबूराजजी शुक्ल )

सबकर मत खग नायक एहा ।

करिय राम पद पङ्कज नेहा ॥ ३० का०

( १ ) सबकर मत (सबहीके मत—सम्प्रदाय) ख गून्ध अर्थात् कुछ नहीं, सार हीन हैं। गना यक एहा ( वह एक अर्थात् अङ्क गिना गया है कि करिय राम पद पङ्कज नेहा (हरिभक्ति कर्तव्य है) भाव, बिना अङ्कके गून्ध ध्वर्थ होते हैं, जब अङ्क साथमें हो, तब गून्ध सार्थक होता है, इसी भाँतिसे हरिभक्तिले योग विराग आदि सफल होते हैं, ० वा ०० वा ००० = कुछ नहीं पर १० = दश और ०१ = १, ११ = रामनामको अङ्क है, सब साधन है मूल। अङ्क गये कछु हाथ नाहि, अङ्क रहे दश गून् ॥ तुलसी सतसई

( २ ) सबकर (सबही कुछ करनेवाला) है खगनायक ! मत एहा (है गरुड यह मत है) कि—करिय राम-पद पङ्कज नेहा (हरिभक्ति करे)

( ३ ) है खगनायक ! सब कर (सबही धर्म अर्थ काम मोक्षकी कल) मत एहा (यह सम्प्रदाय है) कि करिय रामपद पङ्कज नेहा (हरिप्रेम करे)

( ४ ) है खगनायक ! सबक (सकल सृष्टिकेशिरपर) एहा रमत (यही रमता है) कि करिय रामपद पङ्कज नेहा (हरिपद प्रेम करे) क = सिर जैसे दशकम्बर—दश शिर धारण करनेवाला।

शङ्का—किस रूपको भजे ? उत्तर

( ५ ) स (सर्वगुणसे) ब (वासुदेव है) र (रजोगुणसे) क (अज्ञा है) न (तमोगुणसे) म (शिव हैं) पर—करिय राम-पद पङ्कज नेहा ऐसा ही श्रीमद्भागवतमें कहा है—सर्वं रजरागमः इति प्रकृतेर्गुणान्मूर्तिः परः पुमेष एक इहाय धत्ते। न्यायार्थे हरिर्विश्वदेवेति मङ्गा; अयमि नय खलु मत्तनमोर्नृणा म्यः। क—ब्रह्मा म—शिव। संस्कृत कोष देखो।

\* आप भोक्त और चौपाइयोंके पदोंका अर्थ करनेमें बड़े हा सिद्धहस्त हैं अथवा विद्वत्तापर मुग्ध होना पत्तन है। रामायणकी चौपाइयोंके सम्बन्धमें आपने एक बड़ा लेख भेजा है। नमूनेके तौरपर उम्माका एक छोट्टा-सा अंश पाठकोके विनोदाधे दिया जाता है। पूरा केवल न आप सकनेके किंव सम्मान्य शुक्लजी महाराज कृपापूर्वक क्षमा करें।

—सम्पादक

## तुलसी-रामायण

(लेखक—श्रीविनोबाजी भावे)



रतीय साहित्यके इतिहासमें तुलसीदासजीके रामायणका एक स्वतन्त्र स्थान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और उस भाषाका यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है, अतः राष्ट्रीय दृष्टिसे तो इस ग्रन्थका स्थान अद्वितीय है ही पर भारतके सात आठ करोड़ लोग इसे वेद-मुख्य प्रामाणिक मानते हैं, यह निम्न परिचित तथा धर्म-जागृतिका एकमात्र आधार है; अतः धर्मदृष्टिसे भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। रामभक्तिका प्रचार करनेमें, 'शिर्यादिच्छेत्त परं जयम्' इत्यन्यासे, वाल्मीकीय रामायणके पाठ्यका आनन्द देने-वाला यह ग्रन्थ है अतः भक्तिमार्गके दृष्टिसे भी यह अद्वितीय ही है। तीनों दृष्टियोंका ऐक्य करके यदि हमपर विचार किया जाय तो यह अनन्वयालंकारका उदाहरण प्रतीत होता है। राम-रावणके युद्धकी उपमा जैसे राम-रावण युद्ध ही था वैसे ही तुलसीरामायणकी तुलना भी तुलसीरामायण है।

प्रथम तो रामायण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र है और फिर तुलसीदासजीने भी उसे विशेष मर्यादापूर्वक लिखा है, इस कारण यह ग्रन्थ छोटे बालकोंके भी हाथमें देने योग्य पवित्र और निर्दोष बन गया है। इसमें काव्यके सब रसोंका वर्णन नैतिक मर्यादाकी रक्षा करते हुए किया गया है। स्वयं भक्तिको भी नियमोंसे नियन्त्रित किया गया है। अतः सूरदास-जैसी मूल भक्ति इसमें देखनेको नहीं मिलती। तुलसीदासकी भक्ति नियमित थी। नियमित और मूल भक्तिमें वही मौलिक भेद है जो श्रीराम-भक्ति और श्रीकृष्ण-भक्तिमें है। पर यहाँ भी तुलसीदासजीकी कुछ विशेषता है ही।

तुलसी-रामायणका वाल्मीकीय रामायणकी अपेक्षा अध्यात्मरामायणसे अधिक सम्बन्ध है। बहुतेरे वर्णनोंमें—विशेषतः भक्तिके उद्गारोंमें तो भागवतकी छाया दीख पड़ती है, गीताकी छाया तो है ही। महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मावलम्बी सन्तोंके ग्रन्थोंसे जो परिचित हैं उन्हें तुलसी-रामायणमें कहीं भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती! वही नीति,

वही निर्मल भक्ति, वही संयम है। सुदामाजीको अपने ग्राममें जौट आनेपर भी जैसे भ्रम हुआ था कि हम फिर द्वारकामें ही पहुँच गये हैं, उसी प्रकार तुलसी-रामायण पढ़ते समय महाराष्ट्रीय सन्त-मण्डलीके बच्चनोंसे परिचित मनुष्यको ऐसी शंका होती है, कहीं हम चिरपरिचित वचन तो नहीं पढ़ रहे हैं। महाराष्ट्रीय सन्तोंमें भी श्रीएकनाथका तुलसीदाससे विशेष साम्य पाया जाता है। श्रीएकनाथके भागवत और तुलसी-रामायणमें तो अत्यन्त साम्य दिखलायी पड़ता है। श्रीएकनाथने भी रामायण लिखी है पर उनके आत्माका प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है, उनके भागवतमें! श्रीरानाडेको इसी भागवतने पागल बना दिया था। नाथ कृष्णभक्त ये तो तुलसीदासजी रामभक्त थे। नाथने कृष्ण-भक्तिकी मस्तीको उत्तरा, यह उनकी विशेषता थी। ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सबके सब कृष्णभक्त तथा मर्यादाशील थे।

तुलसीदासजीकी मुख्य करामात उनके अयोध्याकाव्यमें दिखलाई देती है। उस काव्यकी रचनामें उन्होंने विशेष परिश्रम किया, ऐसा दिखलाई देता है। अयोध्याकाव्यमें भरतकी भूमिका अद्भुत है। भरतजी तुलसीदासजीकी ध्यान-मूर्ति थे। इस ध्यानमूर्तिके चुननेमें औचित्य प्रतीत होता है। लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों ही श्रीरामके परम भक्त थे, पर एकको संयोगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तो दूसरेको वियोगका। वियोग भी 'सौभाग्य' स्वरूप हो गया क्योंकि उसमें भी भरतजीने संयोगका अनुभव किया। हमारे भाव्यमें परमेश्वरके वियोगमें रहकर काम करना बड़ा है, लक्ष्मणजीकी तरह संयोगमें रहकर कार्य करनेका हमारा अहोभाग्य नहीं है, अतः वियोगमें रहकर भी हमें सौभाग्य किस तरह प्राप्त हो सकता है, यह जाननेके लिये भरतजीका आदर्श हमारे लिये बहुत उपयोगी है।

शारीरिक संयोगकी अपेक्षा मानसिक संयोगका विशेष महत्त्व है। शरीरसे सन्निकट रहकर भी मनुष्य मनसे दूर रह सकता है। दिन-रात नदीकी ओढ़नी ओढ़कर सोया हुआ पत्थर आर्द्रतासे विस्फुल्ल अजिब रह सकता है। इसके विरुद्ध शारीरिक वियोगमें भी मानसिक संयोग रह सकता

है। इसमें संयम कसौटी है। भक्ति की तीव्रता विषोगसे बढ़ती है। यदि आनन्द ही देखा जाय तो प्रत्यक्ष स्वराज्य-प्राप्तिके आनन्द की अपेक्षा स्वराज्य-प्राप्तिके प्रयत्नों में जो आनन्द मिलता है, वह कुछ और ही है, केवल उसके अनुभव करने योग्य। रसिकता होनी चाहिये। भक्तोंमें यह रसिकता होती है अतः वे मुक्तिकी इच्छा न करके भक्तिमें ही सुखी रहते हैं। भक्तिका अर्थ है बाह्य विषोगमें आन्तरिक ऐक्य। यह कोई मामूली भाव्य नहीं, यह तो परम भाव्य है। मुक्तिसे भी बढ़कर अहोभाव्य है। भरतजीका यही सौभाग्य था। जन्मभङ्गीका भी अहोभाव्य था। पर प्रथम तो वह हमें नसीब नहीं और दूसरे वह वास्तविक है भी नहीं। इसका कारण 'बंगूर लट्टे हैं' यह नहीं बल्कि 'उपवास मीठा है' यही है। भरतजीके भाव्यमें उपवासकी अनुरता है।

'संन्यासीको भी मोचका जोष होता ही है।' गीता-रहस्यमें लोकमान्यने ऐसा आशेष किया है, पर हमारे साधु-सन्तोंने इस आशेषसे बचनेका भी तरीका ढूँढ निकाला है। उन्होंने जोषको ही संन्यास दे डाला। स्वयं तुलसीदासजी भी भक्तिकी गोन-रोटीपर राखी हैं। मुक्तिकी मित्रमानीका उन्होंने तिरस्कार किया। तुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—'मुक्ति निरादरि भगनि कोमाने; ज्ञानदेव महाराजने भी 'भोग-मोक्ष निबन्धेण पावानली।' 'मोक्षाचो सोडी बाँधी करी' 'चहुं पुण्याबां शरी। भक्ति जैसी।' आदि बचनोंमें मुक्तिको भक्तिकी चेरी बनाया है और साधुवर तुकाराम महाराजने तो 'नको ब्रह्मज्ञान आत्मस्मितिभाव' कह करके मुक्तिको इन्गीफा ही दे डाला है। श्रीएकनाथने भक्तिको मुक्तिसे कई स्थानोंमें श्रेष्ठ बतलाया है। गुजरातके नरसी मेहता तो 'इतिना जन ने मुक्ति न मागे' की ही रटन्त डगावा करते थे। साशंश, कि सब आगवत-धर्मीय वैष्णव-भक्तभाव्य मुक्तिके जोषसे पूर्णतया मुक्त रहे हैं। इस वैष्णव-परम्पराका उद्गम भक्तशिरोमणि प्रह्लादसे है। 'नेनःन् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः' अर्थात् 'इन गरीबोंको जोड़कर मैं छोड़कर ही मुक्त होना नहीं चाहता' यह सूत्रा जवाब प्रह्लादने नृसिंहजीको दिया था। कबियुगमें श्रीत, स्मार्त, संन्यास-मार्गकी स्थापना करनेवाले श्रीशंकराचार्यने भी—

ब्रह्मण्यायाम कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।

—इस गीताके श्लोकपर भाव्य करते हुए 'मंगं त्यक्त्वा'

अर्थात् 'मोक्षेऽपि फले संगं त्यक्त्वा'—'मोचकी भी आसक्ति छोड़ करके'—अपनी तरफसे ऐसे शब्द जोड़कर प्रतिपादन किया है। तुलसीदासजीके भरत इस भक्ति-भाव्यकी साक्षात् मूर्ति हैं। भरतजीकी माँग देखिये—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चाहै निरवान।

जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन ॥

इसप्रकार लोकमान्यके आशेषका सन्तोंने पूर्णतया उत्तर दिया है।

भरतजीमें विषोग-भक्तिका उत्कर्ष दिखावायी देता है, इसी कारण वे तुलसीदासजीके आदर्श बने। भरतजीने सेवाधर्मका उत्तम रीतिसे पाठन किया, नैतिक मर्यादाका भी पूर्ण परिपाठन किया, ईश्वरका विभरव कभी न होने दिया, ईश्वरी आज्ञा मानकर ही प्रजापाठन किया और इस सबका श्रेष्ठ ईश्वरको अर्पण करके स्वयं सदा अलग रहे। जनपदमें रहकर अरथ-वासका अनुभव किया। वैराग्ययुक्त चित्तसे यम-नियमादि विषय वर्तोंका पाठन करके आत्माको ईश्वरसे दूर रखनेवाले देहके परदेको बतला कर डाला। तुलसीदासजी कहने हैं कि यदि भरतजी-जैसे भक्त पैदा न होते तो मेरे-जैसे पतितको रामके सम्मुख कौन करता ?—

सिय-राम-प्रेम-सिद्ध-पूरन होत जनम न भरतजी।

मुनि-मन-अगम-जम-नियम-मम-दम विषय त्रत आचरन की॥

तुल-दाह-दारिद्र-ईम-दूषन मुजस-मिस अपहरत की॥

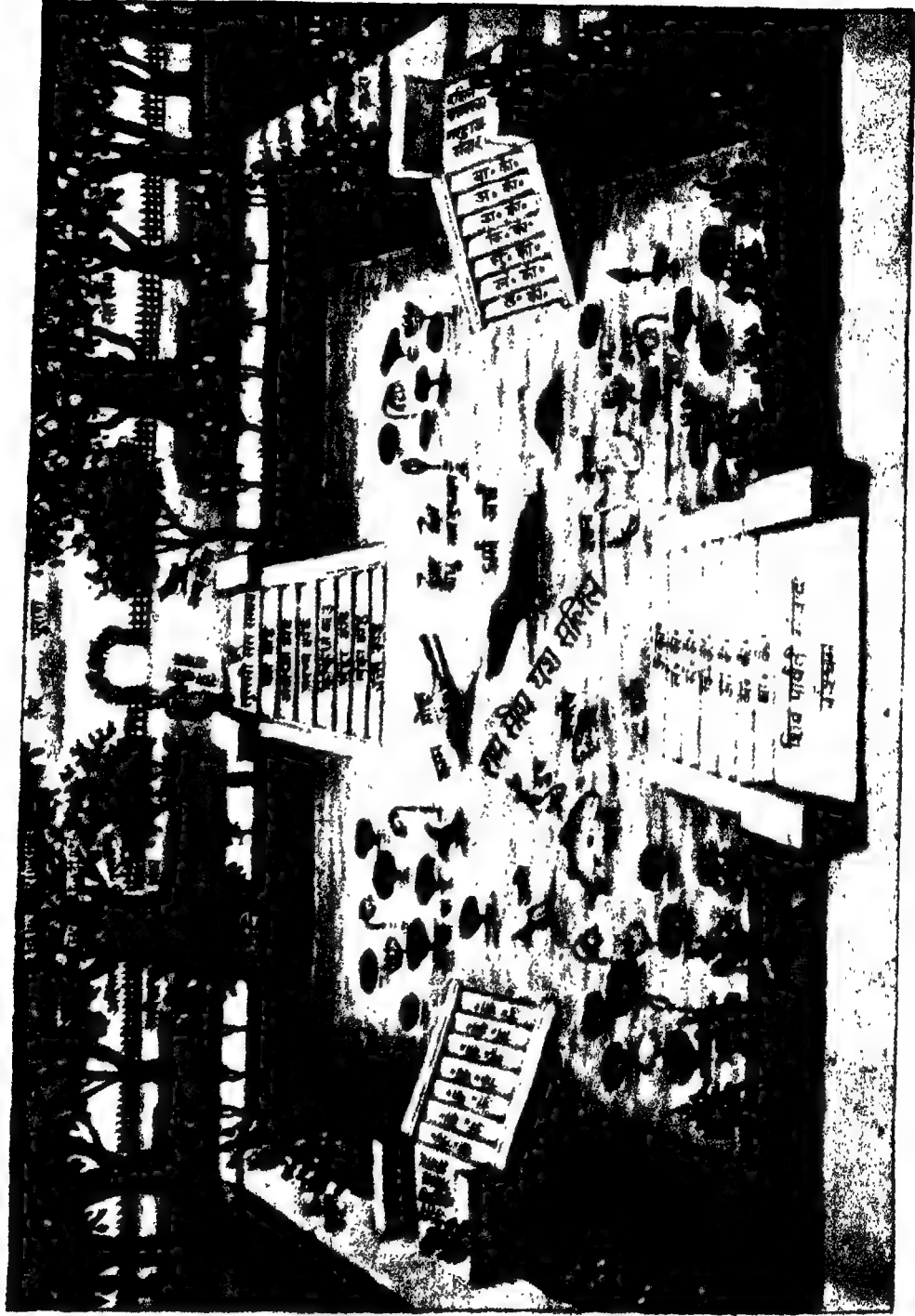
कलिकाल तुलसी-से सठहिं हठि राम-सनमुख करन की॥

रामायणमें राम-सखा भरत, भारतमें शकुन्तलाके पुत्र पराक्रमी भरत और मागवतमें जीवन्मुक्त जब भरत, ऐसे तीन भरत प्राचीन इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। हिन्दुस्थानको 'भारतवर्ष' संज्ञा शकुन्तलाके वीर भरतसे मिली होगी, ऐसा ऐतिहासिकोंका अनुमान है, श्रीएकनाथजीने जब भरतसे यह संज्ञा प्राप्त होना बतलाया है और तुलसीदासजी कदाचित् इसको रामभक्त भरतसे प्राप्त बतलाते होंगे। कुछ भी हो पर आजके विषोगी भारतके लिये भरतजीकी विषोग-भक्तिका आदर्श सब प्रकार अनुकरणीय है। तुलसीदासजीने इस आदर्शको पवित्र अनुभवसे प्रदीप्त करके हमारे सम्मुख रखा है। उसके अनुसार आचरण करवा हमारा कर्तव्य है।





कल्याण



मानव सभाग

## प्रार्थना !

सच्चिदानन्द सनातन रूप ।  
अगुण अज अव्यय अलस अनूप ॥  
अगोचर आदि अनादि अपार ।  
विश्वव्यापक विभु विश्वाधार ॥

न पाता जिनकी कोई थाह । समझकर विषवत् सारे भोग--  
बुद्धि-बल हो जाते गुमराह ॥ त्याग, हो जाने स्वस्थ निरोग ।  
सन्त श्रद्धालु, तर्क कर त्याग । एक बस, करते प्रियकी चाह ।  
सदा भजते मनकं अनुराग ॥ विचरते जगमें बे-परवाह !

धरा धन धाम नाम आराम ।  
सभी कुछ राम विश्व-विश्राम ॥  
देखते सबमें, ऐसे भक्त ।  
सतत रहते चिन्तन-आसक्त ॥

प्रेम-सागरकी तीक्ष्ण तरंग । प्रेम-वश विह्वल हो श्रीराम ।  
बाँध मर्यादाका कर भंग ॥ भक्त-मन-रंजन अति अभिराम ॥  
बहा ले जातीं, जब श्रुति-धार । दिव्य मानव-शरीर-वर धार--  
मन्त तब करने प्रेम-प्रकार ॥ अनोखा, हरि लेते अवतार ॥

मदन-मन-मोहन, मुनि-मन-हरण ।  
सुगन्धुर सकल विश्व सुगव-करण ॥  
मधुर मञ्जुल मूरति द्युतिमान् ।  
विविध कीड़ा करते भगवान् ॥

दयावश करने जग-उडार । जिन्हें गा-सुनकर सब संसार ।  
प्रेममें, तथा किमीको मार ॥ सहज होता भव-वारिधि पार ॥  
विविध लीला विशाल शुचि चित्र । तोड़ माया-बन्धन जग-जाल ।  
अलौकिक सुखकर सभी विचित्र ॥ देखता 'सीय-राम' हर-हाल ॥

वही सुन्दर मृदु युगल-स्वरूप ।  
दिखाते रहो राम रघु-भूप ॥  
'सकल जग सीय-राममय' जान ।  
करूँ सबको प्रणाम तज मान ॥

अकिञ्चन

## रामायण हमें क्या सिखाती है

१-शुद्ध सच्चिदानन्दधन एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और अखिल विश्व एवं विश्वकी घटनाएँ उसीका स्वरूप और जीवा हैं।

२-परमात्मा समय-समयपर अवतार धारणकर प्रेम-द्वारा साधुओंका और दुष्टद्वारा दुष्टोंका उद्धार करनेके लिये लोककल्याणार्थ आदर्श जीवा करते हैं।

३-भगवान्की शरणागति ही उद्धारका सर्वोत्तम उपाय है। उदाहरण—विभीषण।

४-सत्य ही परम धर्म है, सत्यके लिये धन, प्राण, ऐश्वर्य सभीका सुखपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

५-मनुष्य-जीवनका परम ध्येय परमात्माकी प्राप्ति करना है और वह भगवान्-शरणागतिपूर्वक संसारके समस्त कर्म ईश्वरार्थ त्यागवृत्तिसे कलासक्ति-शून्य होकर करनेसे सफल हो सकता है।

६-वर्णाश्रम-धर्मका पालन करना परम कर्तव्य है।

७-माता-पिताकी सेवा पुत्रका प्रधान धर्म है। उदाहरण—श्रीराम, श्रीभबबकुमार।

८-स्त्रियोंके लिये पातिव्रत परम धर्म है। उदाहरण श्रीसीताजी।

९-पुरुषके लिये एकपत्नी-व्रतका पालन अति आवश्यक है। उदाहरण श्रीराम।

१०-भाइयोंके लिये सर्वस्व त्यागकर उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना परम कर्तव्य है। उदाहरण श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न।

११-जहाँमा राजाके लिये प्राण देकर भी उसकी सेवा करना प्रजाका प्रधान कर्तव्य है। उदाहरण—(१) वनगमनके समय अयोध्याकी प्रजा। (२) लङ्काके युद्धमें वानरी प्रजाका आत्मबलिदान।

१२-अन्याधी अधर्मी राजाके अन्यायका कभी समर्थन न करना चाहिये। सगे भाई होनेपर भी उसके बिरुद्ध लड़े होना उचित है। उदाहरण—विभीषण।

१३-प्रजारजनके लिये प्राण-प्रिय वस्तुका भी विसर्जन कर देना राजाका प्रधान धर्म है। उदाहरण—श्रीरामजीद्वारा सीता-त्याग।

१४-प्रजाहितके लिये यज्ञादि कर्मोंमें सर्वस्व दान दे जाना। उदाहरण-दशरथ और श्रीराम।

१५-धर्मपर अन्याय और अजीतिपर जुल्म करनेसे बड़े-से-बड़े शक्तिशाली सम्राटका विनाश हो जाता है। उदाहरण—रावण।

१६-मित्रके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहना तथा उसके सभी कार्य करना। उदाहरण—श्रीराम सुग्रीव और श्रीराम-विभीषण।

१७-निष्काम सेवा-भावसे मदा सर्वदा भगवान्के दाम्बधमें लगे रहना। उदाहरण—श्रीहनुमान्जी।

१८-सौतेके पुत्रोंपर भी प्रेम करना। उदाहरण कौसल्या, सुमित्रा।

१९-प्रतिज्ञा-पालनके लिये सगे भाईतकका उमके प्रति हृदयमें पूर्ण प्रेम रखते हुए भी त्याग कर देना। उदाहरण श्रीरामके द्वारा लक्ष्मण-त्याग।

२०-आश्रय-साधुओंका मदा दान-मानसे स्तकार करना। उदाहरण श्रीराम।

२१-अवकाशके समय भगवत्सर्वा या सन्निवृत्त करना। उदाहरण श्रीराम आदि भाइयोंकी व्रतचीत।

२२-गुरु, माता, पिता, बड़े भाई आदिके वरणोंमें निष्प प्रणाम करना।

२३-पितरोंका अढापर्वक नपण-आद करना।

२४-अन्यायका सर्वदा और सर्वथा प्रतिवाद करना। उदाहरण—लक्ष्मण।

२५-धर्मपालनके लिये बड़े-से-बड़ा कष्ट सहन करना। उदाहरण—श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, भरत।

२६-द्विजमात्रको निष्प ठीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये।

२७-मदा निर्भय रहना चाहिये। उदाहरण श्रीराम-लक्ष्मण।

— २२—बहुविवाह कभी नहीं करना चाहिये। उदाहरण—  
श्रीराम।

२३—साधु-सन्त-महात्माओंके धर्मकार्यकी रक्षाके लिये  
सदा तैयार रहना। उदाहरण—श्रीराम-लक्ष्मण

— २४—अपना बुरा करनेवालेके प्रति भी अच्छा ही  
वर्ताव करना। उदाहरण—श्रीरामका वर्ताव कैकेयीके प्रति,  
श्रीवशिष्ठका वर्ताव विश्वामित्रके प्रति।

— २५—स्त्रीके लिये परपुरुषका किसी भी अवस्थामें  
जानबूझकर स्पर्श नहीं करना। उदाहरण—लङ्कामें सीताने  
हनुमान्की पीठपर चढ़कर जाना भी अस्वीकार कर दिया।

— २६—पुरुषोंको परस्त्रीके अङ्ग नहीं देखना चाहिये।

उदाहरण—लक्ष्मणजीने बरसों साथ रहनेपर भी सीताके  
अंग नहीं देखे, इससे वे उनके गहने तक नहीं पहचान सके।

२७—साधारण-से-साधारण जीवके साथ भी प्रेम करना  
चाहिये। उदाहरण—श्रीराम।

२८—भगवान्के चरणोंका आश्रय लेकर प्रेमसे उनकी  
चरण-रत्न मस्तकपर धारण करनेसे जड़ भी चैतन्य हो  
सकता है। उदाहरण—अहल्या।

२९—बड़ोंके बीचमें अनधिकार नहीं बोलना।  
उदाहरण—शत्रुघ्न।

३०—नास्तिकवाद किसीका भी नहीं मानना। उदाहरण—  
श्रीरामने जाबालि-सरीसे ऋषि और पिताके मन्त्रीकी बात  
नहीं मानी।

## चित्र-परिचय

उद्धारकर्त्ता भगवान् (रंगीन) अन्दरका मुख-  
पृष्ठ यह चित्र गीता अ० १२ ओ० ६-७ के आधारपर  
बनाया गया है। विशाल भवममुद्रमें धनकी गँठरी  
बाँधे और भांग-विलासमें रत स्त्री-पुरुष गोते खा रहे  
हैं। भगवान्का अनन्यभक्त भगवान्की और मन और  
नेत्रोंको लगाये भवममुद्रमें डूबने हुए लोगोंको उबारनेके  
लिये निकाम प्रयत्न कर रहा है, भगवान् स्वयं सुन्दर सुन्द  
नौकापर स्थित हैं और भक्तकी पीढ़ पकड़कर उसे पार ले  
जानेके लिये नौकापर बढाना चाहते हैं।

श्रीरामपञ्चायनन (रंगीन) पृष्ठ १ भगवान् श्रीराम  
सीताजी-सहित सिंहासनपर विराजमान हैं, भरतजी और  
लक्ष्मणजी चौर दुला रहे हैं, शत्रुघ्नजी भेंट लिये खड़े  
हैं, श्रीहनुमान्जी चरण दबा रहे हैं।

श्रीरामगीता—पृष्ठ ४ श्री 'राम' शब्दमें सारी राम-  
गीता लिखी है।

सोहे रामस्वियाकी जोरी—पृष्ठ २०—युगल जोड़ीका  
ध्यान करनेवालोंके लिये बहुत ही सुन्दर चित्र है।

श्रीपरशुराम-राम (रंगीन) पृष्ठ ३६—विवाहके बाद  
अयोध्या लौटनेके समय परशुरामजी रास्तेमें मिलते हैं, उन्हें  
देखते ही दशरथजी अत्यन्त डर जाते हैं, मुनि वशिष्ठ और  
विरवामित्र शान्त खड़े हैं, श्रीलक्ष्मणजी तेजसे भर रहे हैं,

श्रीराम हाथमें धनुष लेते ही बड़ा देते हैं, परशुरामजी  
अत्यन्त विस्मित हो जाते हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ३६ देखिये।

सीता-वनवास पृष्ठ ४५—गंगाके उस पार लक्ष्मण-  
जीने रोते हुए, सीताको रामका सन्देश सुनाया, सुनते ही  
सीताजी सहम गयीं, लक्ष्मण रोने लगे, बड़ा ही कल्या-  
जनक दृश्य है! चित्र बहुत सुन्दर भावपूर्ण है। रामायणाङ्क  
पृष्ठ ५२ और वा० रा० ७।४८ देखिये।

श्रीराम-सीताकी शुभमन्त्रणा—पृष्ठ ५५ (रंगीन)—  
सीताजी एकान्तमें श्रीरामको देवताओंका सन्देश सुनाती  
हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ५५ देखिये।

श्रीरामके चरणोंमें भरत (रंगीन) पृष्ठ ६६—श्रीराम-  
सीता चित्रकूटमें पणकुटीके बाहर वेदिकापर बैठे हैं,  
लक्ष्मणजी पास खड़े हैं, कुटियामें दोनों भाइयोंके धनुष-बाण,  
तलवार-दाल आदि ढँगे हुए हैं। इतनेमें भरतजी आकर  
दूरसे ही 'हा आर्ये!' कहकर गिर पड़ते हैं, वहाँ श्रीराम  
और लक्ष्मणके भाव देखने ही योग्य हैं। शत्रुघ्नजी पीछे  
खड़े चरणोंमें गिरना ही चाहते हैं। निपादराज इस स्त्रीकीको  
देखकर आनन्दमें भर रहा है। रामायणाङ्क पृष्ठ ६६  
वा० रा० २।६६ देखिये।

कैकेयीकी क्षमा-याचना, (रंगीन) पृष्ठ ८५—  
चित्रकूटके एकान्त स्थलमें कैकेयीजी श्रीरामसे जमा माँग

रही हैं, श्रीराम उन्हें सान्त्वना दे रहे हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ८२ तथा अष्टमात्म रा० २ देखिये।

श्रीराम-प्रतिज्ञा-(रंगीन) पृष्ठ ११३—अधियोंकी हठियोंका ठेर देखकर श्रीराम राक्षसोंको मारनेकी प्रतिज्ञा मुझा उठाकर कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजी मुग्धभावसे यह दृश्य देख रहे हैं, सीताजी सोच रही हैं, मुनि प्रसन्न हो रहे हैं।

भक्त-प्रवर रामाजी-पृष्ठ १२४—आपका संक्षिप्त परिचय कल्याणमें निकल चुका है। रामायणाङ्क पृष्ठ १२४ देखिये।

श्रीसीताराम-(रंगीन) पृष्ठ १२२—वनवासका निश्चयकर श्रीराम सीताजीके महलमें जाकर उन्हें यह संवाद सुनाते हैं, सीताजी माथ चलनेको बढ़े ही प्रेम और आर्तभावसे प्रार्थना कर रही हैं। बा० रा० २। ३० देखिये।

श्रीशिव-परिछन्न-(रंगीन) पृष्ठ १७६-शिवजी बारान लेकर पहुँचे हैं, गिरिजाकी माता दमादका परचन करनेस्वर्ग-यात्र लेकर चिर्योंके साथ दरवाजेपर आयी है, परम तरंगी भूतोंको देखकर क्षिप्त हो गई हैं, मैनाजीके चेहरेपर दुःख, परिताप, भय, निराशाके भाव तब चित्रित किये गये हैं, शिवजी गम्भीर हँसमुख लगे हैं, बरानी देवता और भूत-प्रेत छद्माका मारकर हँस रहे हैं। गोसाईंजीके रामायणका बालकाण्ड देखिये।

श्रीराम-शबरी-(रंगीन) पृष्ठ १६८ परम प्रेमिका तपस्विनी शबरीजी श्रीरामको चुने हुए फल बढ़े ही प्रेमसे खिला रही हैं, चित्र दर्शनीय है।

श्रीसीता-अनुसूया-(रंगीन) पृष्ठ २११—अग्निमुनि-के आश्रमका अन्नःपुर है, श्रीसीताजी मुनिपत्नी अनुसूया-जीके चरणोंमें गिर रही हैं, अनुसूयाजी आशीर्वाद देकर पतिभक्तिका उपदेश करती हैं। गोसाईंजीकी रामायण अष्टमकाण्ड देखिये।

श्रीविश्वामित्रकी रामभिक्षा-पृष्ठ २२४-दशरथ-जीके दरबारमें श्रीविश्वामित्रजी राम-लक्ष्मणको माँग रहे हैं, दशरथ चिन्तामग्न हैं, श्रीराम-लक्ष्मण मुसकरा रहे हैं।

श्रीरामजन्म-पृष्ठ २३६—यह प्राचीन चित्र श्रीकौशल-किशोरजीसे प्राप्त हुआ है।

श्रीराम-पादुका-पूजन (रंगीन) पृष्ठ २४८—श्रीरामकी चरखपादुका स्वर्गसिंहासनपर सुयजित है।

ऊपर छत्र है, भरतजी ध्यानस्थ हुए स्वयं पंखा भेल रहे हैं, नीचे धूप जल रही है। मानस उत्तरकाण्ड देखिये।

श्रीरामायण-गान-शिक्षा-पृष्ठ २६६—महर्षि वाल्मीकिजी सीतापुत्र बालक लव-कुशको सुर-तालके साथ रामायणका वही गान सिखा रहे हैं जिसको गाकर दोनों बालकोंने रामकी सारी सभाको मुग्ध कर दिया था।

सदाप्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्र-(रंगीन) पृष्ठ २८० यह ध्यानके योग्य बड़ा ही मनोहर चित्र है।

श्रीराम और काकभुशुण्डि-(रंगीन) पृष्ठ ३०४—भगवान्की बालजीजाका आनन्द लूटनेके लिये श्रीभुशुण्डि-जी छोटोसे कौण बने हैं। श्रीराम मात्वृषा दिला रहे हैं, कौआ उड़ना चाहता है और पीछेकी ओर ताक रहा है। बड़ा सुन्दर चित्र है। तुलसीरामायण उत्तरकाण्ड गरुड-भुशुण्डि संवाद देखिये।

सुबेल-पहाड़पर श्रीरामकी भौंकी (रंगीन) पृष्ठ ३४६-परिचय उसी पृष्ठमें छपी रामायणकी चौपाइयोंमें देखिये।

श्रीगोसाईं तुलसीदासजी पृष्ठ ३४०।

श्रीरामायण-द्रुम पृष्ठ ३८८ परिचय चित्रमें ही जाना जा सकता है, इसके प्रेषक पं० श्रीभगवन्दासजी मिश्रको अनेक धन्यवाद।

अजेय-रथ-पृष्ठ ४००—जब रावण युद्धके लिये आया तब श्रीरामको रथ-विहीन देखकर विभीषणने कहा—'हे नाथ! आप बिना रथ रावणको कैसे जाँत सकेंगे?' श्रीरामने उत्तर दिया—'सन्धे! जिस रथमें विजय प्राप्त होती है वह रथ ही दूसरा है।' इसके बाद श्रीरामने जिस रथका वर्णन किया, उसीके आधारपर यह चित्र बनाया गया है। मानसका लङ्काकाण्ड देखिये।

श्रीसीताजीके गहने (रंगीन) पृष्ठ ४१० सुपीयके दिये हुए गहने पहचाननेके लिये श्रीरामजी भाई लक्ष्मणको दिला रहे हैं, शोकमें भरे लक्ष्मणजी कहते हैं—'मैं इनको नहीं पहचानता। रामायणाङ्क पृष्ठ ४१६, बा० रा० ४। ६ देखिये।

श्रीराम और केवट-पृष्ठ ४२६—गंगाके तीरपर भाग्यवान् केवट श्रीरामके चरख बढ़े चावसे धो रहा है, केवटका चेहरा आनन्दपूर्ण है, श्रीराम कृपारहितसे उसकी

घोर देख रहे हैं। वेवसागण पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। रामायणांक पृष्ठ ४२३ देखिये।

श्रीराम-विलाप-पृष्ठ ४४०-लक्ष्मणके शक्ति जगनेपर भगवान् विलाप कर रहे हैं, सुषेण वैद्य पास बैठे हैं। हनुमान्जी द्रोणगिरि उठाये आ रहे हैं।

श्रीकौसल्या-भरत-(रंगीन) पृष्ठ ४४५-भरत-शत्रुघ्न ननिहालसे लौटकर माता कैकेयीसे मिलनेके बाद कौसल्याजीसे मिलते हैं, भरतजीको सच्चा प्रेमी और दुखी जानकर माता गोदमें ले लेती हैं, दोनों माँ-बेटे रो रहे हैं। रामायणांक पृष्ठ ७७ और बा० रामायण तथा तु० रामायणमें देखिये।

श्रीसीताकी अग्नि-परीक्षा (रंगीन) पृष्ठ ४६०-सीताको लेकर अग्निदेवता जलती हुई लपटोंमेंसे प्रकट होकर श्रीरामको सीता समर्पित करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण आनन्द और आश्चर्यमें निमग्न हैं, उनके मुख और शरीरपर अस्तिका प्रकाश पड़ रहा है। रामायणांक पृष्ठ ५० तथा बा० रा० ६। ११८ देखिये।

अहल्याका उद्धार-पृष्ठ ४७३, कथा प्रसिद्ध है। तुलसीरामायण-बालकाण्ड देखिये।

श्रीसीताका-पाताल-प्रवेश-पृष्ठ ५०० पृथ्वी माता स्वयं प्रकट होकर सीताको लेकर पातालमें प्रवेश कर रही हैं। श्रीराम-लक्ष्मण, मुनिगण और लव-कुश आश्चर्य और शोकमें डूब रहे हैं। रामायणांक पृष्ठ ५४ देखिये।

मानस-मन्दोदर (रंगीन) पृष्ठ ५०५ श्रीरामचरित-मानसके आरम्भमें गोसावईजीने मानस-सरका वक्ता ही सुन्दर रूपक बाँधा है। उसीके आधारपर यह सुन्दर शिक्षाप्रद चित्र बनाया गया है। मानस-बालकाण्डमें यह प्रसङ्ग देखना चाहिये।

श्रीहनुमान्जीके चित्र ७

लङ्का-दाहके बाद सीता चरण बन्दन  
द्रोणगिरि जाना  
गरुड-गर्भ-हरण  
हार तोड़ना और हृदय चीरकर दिल्लखाना

} पृष्ठ ४८०

श्रीरामका ज्ञानोपदेश  
पार्थ-रथपर श्रीहनुमान्जी  
श्रीहनुमान्जीपर इन्द्रका वज्र गिराना

} पृष्ठ ४८१

इनका परिचय 'श्रीहनुमान्जीका महत्त्व' शीर्षक लेख पृष्ठ

४७६ में देखिये। चित्र भेजनेके लिये श्रीसङ्गक्षिप्रसारक मण्डली अंधेरीको अनेक धन्यवाद!

माननीय काशीनरेशकी अभूतपूर्व परमसुन्दर  
रामायणके चित्र-३०

मूल चित्र रंगीन बड़े ही सुन्दर हैं, सारी रामायण चित्रोंसे भरी है, उन्हीं चित्रोंमेंसे ३० चित्रोंके छाया-चित्रोंके ब्लाक बनवाकर चित्र द्याये गये हैं। ये चित्र बाबू श्रीकौसलकिशोरजी बी० ए० एल० टी० से हमें प्राप्त हुए हैं। इसके लिये हम माननीय महाराज काशीनरेश और श्रीकौसलकिशोरजीके बड़े ही कृतज्ञ हैं। चित्रोंके परिचयके लिये प्रत्येक चित्रके नीचे घटनाक्रमको बतलानेवाली चौपाई या दोहा दे दिया गया है, उसीके आसपासका पूरा चित्रण प्रत्येक चित्र है, श्रीरामचरितमानसकी कथा निकालकर मिळान कीजिये। प्रत्येक चित्र कथाके आधारपर ही बना है।

श्रीअयोध्यापुरीके चित्र-३१

ये चित्र हमें सम्मान्य रायबहादुर अवधवासी लाला सीतारामजी बी० ए० और उनके सुपुत्र बाबू कौसल-किशोरजी बी० ए० एल० टी० की कृपासे प्राप्त हुए हैं। इसलिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं। चित्रोंका पूरा परिचय बाबूसाहब लिखकर भेज न सके। लाजाजी लिखित 'अयोध्याकी काँकी' पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेपर प्रायः सब चित्रोंका ऐतिहासिक परिचय पाठकोंको मिल सकेगा। पुस्तक तैयार हो रही है।

श्रीजानकपुरधाम, चित्र-६

श्रीजानकीजीका मौलखा मन्दिर-यह मन्दिर महाराजा टीकमगढ़का बनवाया हुआ है। कहा जाता है, महाराजने सत्रह लाख रुपये खर्च किये थे, जिसमें केवल इस मन्दिरके निर्माणमें नव लाख रुपये खर्च हुए।

पृष्ठ ३२८

श्रीजानकीजीका सिंहासन-(श्रीजानकी-मन्दिरके अन्दर यह चाँदी-सोनेका सिंहासन है, यह भी राजा टीकम-गढ़ने लगभग ४० हजार रुपये लगाकर बनवाया था। इसपर श्रीराम-जानकी सुन्दर मूर्तियाँ बिराजमान हैं।) पृष्ठ ३२८

श्रीजानकी मन्दिरके भीतर श्रीजगमोहनमन्दिरका पूर्वी दरवाजा पृष्ठ ३२८

श्रीराममन्दिरके सामनेका धनुषछेत्रसे पूर्वी दरवाजा पृष्ठ ३२६

श्रीराममन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ—पृष्ठ ३२६

श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी दरवाजा सेठ रामदासजीकी  
विश्वेश्वरीसे—पृष्ठ ३२६

श्रीलक्ष्मणका मन्दिर जानकी मन्दिरसे उत्तर—पृष्ठ ३२६

ये सातों चित्र श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजीकी प्रेरणासे  
जनकपुरवासी सेठ श्रीरामदासजीकी कृपासे प्राप्त हुए हैं।  
सेठजीने फोटो उतारनेतकका खर्च अपने पाससे दिया है।  
इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

शृंगधेरपुरके चित्र ४।

शान्तादेवीका मन्दिर—शान्ताजी भगवान् श्रीराम-  
की बड़ी बहिन श्रद्धाश्रद्धाको स्थापना की थी। पृष्ठ ३४१

श्रीश्रीलक्ष्मणकी समाधि—शान्ताजीके मन्दिरके  
पश्चिम एक मन्दिर बना हुआ है, इसीको लक्ष्मणकी समाधि  
बतलाते हैं। पृष्ठ-३४१

श्रीरामके सोनेका स्थान—कहा जाता है कि वन  
जाते समय वहाँ भगवान् सोये थे।

श्रीगौरीशङ्कर-पाठशाळा—यह पाठशाळा श्रीमती  
बबुआइन योचार्कुंछरिजी आनापुर स्टेटने अपने पतिकी  
पुण्यस्मृतिमें स्थापित की थी। पृष्ठ ३४१

यही स्थान निषादराजकी राजधानी और श्रद्धाश्रद्धाका  
निवासस्थान बनजाया जाता है। आजकल इसका नाम  
सिंगरौर है। कहते हैं वहाँसे श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीने  
सायतन वेप धर गंगा-पार किया था। ये चित्र और विवरण  
श्रीरघुन महेशप्रसादजी आखिलभाजिने कृपापूर्वक भेजा है,  
इसके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

चित्रकूटके चित्र—२२

ये चित्र भी श्रद्धाश्रद्धाका राजाजी और बाबू कौसलकिशोरजी-  
की कृपासे ही मिले हैं। इनका परिचय राजाजी लिखित  
'चित्रकूटकी भाँकी' नामक पुस्तकमें शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

भरद्वाज आश्रम (प्रयाग)—रा० ब० राजाजी मीता-  
रामजी द्वारा प्राप्त। पृष्ठ-३५३

नासिक पञ्चवटी, चित्र—८

नासिक गोदावरी दरवाजा १, नासिक  
गोदावरी दरवाजा २, नासिक-नाका, पञ्चवटीमें  
श्रीराममन्दिर (यहाँ प्रधान मन्दिर है)

४०६

गोदावरीपर नारोशङ्करका मन्दिर,  
श्रद्धाश्रद्धा मन्दिर (बाहरी दरवाजा) यह  
प्रसिद्ध पीठ गोदावरीसे १२ मील दूर है।

गोदावरीका पुत्र  
रामकुण्ड और गंगामन्दिर—इसी कुण्डमें स्नान  
किया जाता है।

४०७

इन छठे चित्रोंमें तीन बाबू कौसलकिशोरजीकी  
कृपासे और शेष 'मुमुक्षु'-सम्पादक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र  
यांगारकर बी० ए० की कृपासे मिले हैं। एतदर्थ धन्यवाद!

सेतुबन्ध रामेश्वरम्—चित्र—६

इन छः चित्रोंमें तीन बाबू धर्मचन्द्र खेमका रंगून  
प्रवासीसे और शेष बाबू कौसलकिशोरजीसे मिले हैं। इस  
कृपाके लिये धन्यवाद।

श्रीकाशीके चित्र—८।

प्रह्लादघाट. पं० गंगारामजी जोशीका घर। } पृष्ठ ४०६  
पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी दरवाजा। }

गोस्वामीजी पहलेपहल काशीमें प्रह्लादघाटपर  
मारवाणी पुष्करणा ब्राह्मण पं० गंगारामजी जोशीके घर  
रहते थे, जोशीजीसे प्राप्त का बड़ा प्रेम था। जोशीजीके  
पाम जहाँगीर बादशाहका बनवाया हुआ गोस्वामीजीका  
एक चित्र था जो अब उनके उत्तराधिकारी पं० रघुनाथदास-  
जी व्यासके पाम हैं। व्यासजीने प्रयत्न करके गोस्वामीजीकी  
एक मूर्ति बनवाकर स्थापन कर दी है।

विनयपत्रिका लिखनेका स्थान।

मुक्तसीघाट।

श्रीहनुमान्जीका मन्दिर।

गोस्वामीजीका चित्र।

संकटमोचनका भीमरी दरवाजा।

संकटमोचनका बाहरी दरवाजा।

पृष्ठ ४०७

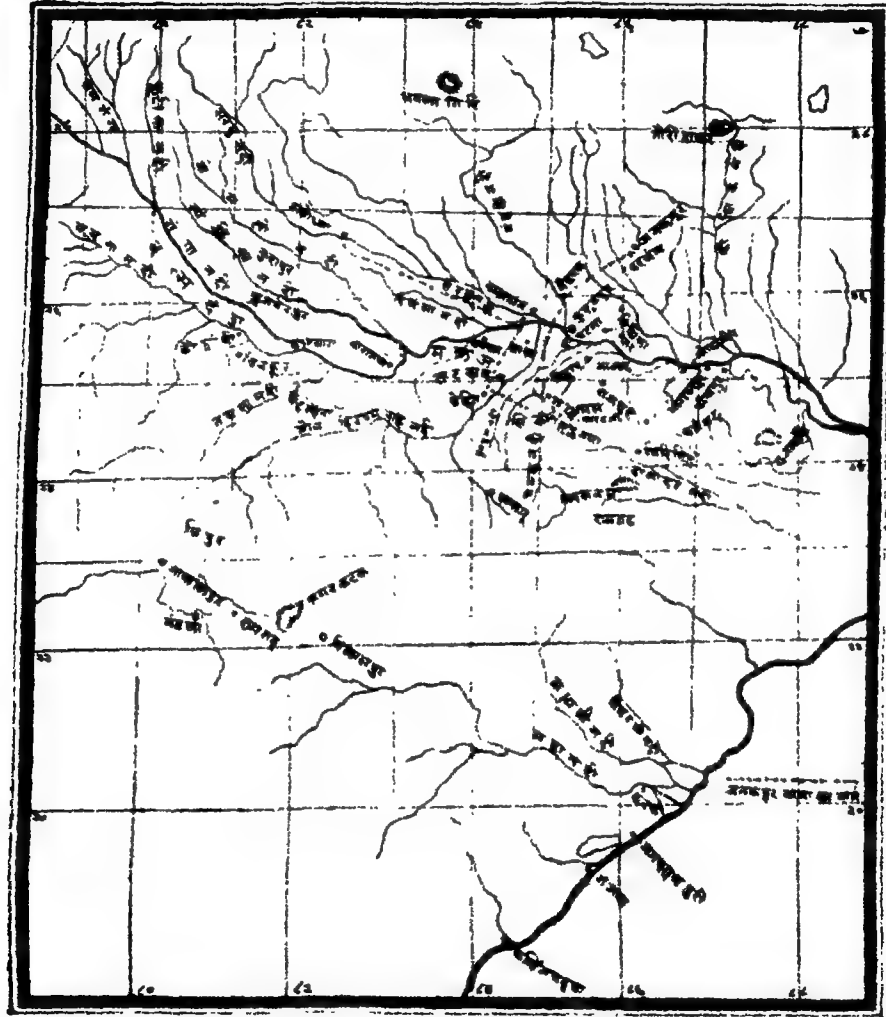
संकटमोचन हनुमान्जीकी स्थापना गुसाईंजीने की थी।

ये चित्र हिन्दू मूलके इंटरमास्टर पं० रामनारायणजी  
मिश्र बी० ए० की प्रेरणासे उनके विद्यार्थी श्रीदेवबारायणजीने  
बड़े परिश्रमसे उतारवाकर दिये हैं, एतदर्थ दोनों सज्जनोंको  
अनेक धन्यवाद!





रामायणकालीन भारतवर्ष नं० ५



श्रीगामकी जनकपुर यात्रा (मानचित्रकार श्री वी०एच०बहरे)

## ज्ञान-याचना



भगवान् श्रीरामका चरित्र लोक-परलोकमें मिल्य परम कल्याणकारी है। इससे इहलौकिक मनवान्छित सुख और परम आनन्दस्वरूप श्रेयकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। साधान् सच्चिदानन्दधन परमात्माके धराधाममें मानवादि रूपोंमें अवतारार्थ होकर विविध लीलाएँ करनेका एक प्रधान कारण यह भी है कि मनुष्य उन लीलाओंको गानकर, उन्हें पढ़-सुनकर, उनका अनुकरणकर अधिकांकी अनादि प्रस्थियोंसे मुक्त हो जाय और विश्वमय केवल एक भगवान्के ही दर्शनकर तद्रूपताको प्राप्त हो जाय। कलियुगी जीवोंके लिये तो दुःखोंसे छूटनेका प्रधान साधन भगवान्के गुणोंका गान करना ही है। गोस्वामीजीके अनुभवके वचन हैं—

वर्णित्रुन-सम जुग आन नहि जो नर कर विस्वास ।

गाए राम-गुन-गन त्रिमय भव तग त्रिमुहि प्रयास ॥

भारतवर्षमें लाखों वर्षोंसे हम काव्यरूपमें प्रकाशित सच्चे इतिहास रामायणका इतना प्रचार और आदर हमी पारमाधिक्य दृष्टिसे है। इतिहास और काव्य तो बहुत-से हैं, पर उनके कथन-श्रवणके प्रभावसे जन्म-मृत्युका चक्र नहीं छूटता, अधिकांकी फाँसी नहीं टूटती; किन्तु श्रीराम और श्रीकृष्णके चरित्रोंसे पूर्ण पुण्य-प्रत्य रामायण, महाभारत और भागवत आदिमें यह विशेषता है। इनके कथन-श्रवणसे पुण्य-लाभ होता है, लौकिक कामनाएँ मिट्ट होती हैं, मदाचारकी वृद्धि होती है, दैवी-सम्पत्तिके गुणोंका विकास होता है और केवल मोक्ष तथा परमात्माके अनन्य और विशुद्ध प्रेमतककी प्राप्ति हो जाती है। इसी विश्वासके कारण हिन्दुजाति इन ग्रन्थोंको पूजती है और इसी विश्वाससे कल्याण-सञ्चालकोंका भी यह जुद्ध प्रयास है।

हम सबके भावोंका आदर करते हुए तथा सर्वव्यापी, सर्वात्मा, विश्वरूप परमात्माके एवं यथायोग्य बुद्धिकी विशालताके माते सबको पूज्य और वन्दनीय मानते हुए नम्रतापूर्वक वह निवेदन करना चाहते हैं कि हम श्रीराम और श्रीकृष्णको साक्षात् पूर्णमन्त्र परमात्मा मानते हैं और अज्ञानमयिपूर्वक उनके अलौकिक गुण-कर्मोंको

गाने और सुननेमें ही अपना परम सौभाग्य समझते हैं। अपनी लौकिक और विषय-विमोहित अनिश्चयात्मिक गुण बुद्धिके द्वारा भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके लीला-चरित्रोंकी समालोचना करने और उनके उचितानुचितकी भीमांसा करनेका हम अपना अधिकार नहीं समझते।

किन्ती भी वहाने भगवान्की लीलाओंका स्मरण और उनका गुण-गान होना हमलोगोंके लिये परम कल्याणप्रद है, इसी निश्चयसे रामायणाङ्क प्रकाशित करनेका प्रयास किया गया है। हम इस बातको खूब समझते हैं कि रामायणोंके सम्पादनकी योग्यता हममें नहीं है। न तो आन्ध्रान्तरिक रहस्य समझनेके लिये हृदयमें श्रीरामकी भक्ति ही है और न बाह्य परीक्षणके लिये विद्या ही है, इसीसे मनमें कई बार स्फुरणा होनेपर भी पूरा साहस नहीं होता था। इसके अतिरिक्त विज्ञ भी अनेक आये। इस कार्यमें प्रधान सहायक बाबा राघवदासजीको सरकारने मेहमास बना लिया, एक दूसरे सहायक भी सत्याग्रह-संभाममें चले गये, एक निपुण चित्रकार ठीक समयपर बीमार पड़ गये, ग्लाक बनानेवाले और चित्र छापनेवाले कारीगर भी बीमार हो गये, एक बड़ी मशीन टूट गयी और मनमें भी अनेक प्रकारकी तरंगें उठीं, परन्तु 'तेरे मन कछु और है करताके कछु भार।' श्रीरामको यह कार्य कराना अभीष्ट था, इसीसे हो गया। हम जब अपनी ओर देखते हैं तो हमें निस्संकोच यह सत्य मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना पड़ता है कि हमारी शक्ति, हमारी योग्यता, हमारी इच्छा और हमारी लगनके बलपर रामायणोंक नहीं निकला है। श्रीरामने प्रेरणा की, कृपालु और प्रेमी मित्रोंने कृपाकर बारंबार उत्साह दिलाया, लेखक महोदयोंने कृपापूर्वक लेख भेजे, सुयोग्य चित्रकार मिल गये, तीर्थोंके चित्र-संग्रहमें सम्मान्य रायबहादुर लाला सीतारामजी बी० ए० तथा आपके सुपुत्र लाला कौसलकिशोरजी बी० ए० एल० टी०, मुमुक्षु-सम्पादक श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पाण्डारकर बी० ए०, चौधरी श्रीधुमन्धनप्रसादसिंहजी, अयुक्त महेशप्रसादजी प्रो० हि० वि० विद्यालय, पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० सैन्ट्रल हिन्दू स्कूल काशी, सेठ रामदासजी, श्रीधर्मचन्द्रजी खेमका, पं० भगवदासजी अयोध्या आदिले सहायता प्राप्त हुई, ग्लाक बनवाने और चित्रादि छपवाकर भेजनेमें श्रीबजरंगलालजीने

हम लोगों के उलाहने सहते हुए भी वहीं मदद की। इस प्रकार सारा सामान जुट गया। यद्यपि यह साग कार्य श्रीराम की प्रेरणा से ही हुआ तथापि हमें तो इन कृपालु सज्जनों का कृतज्ञ होना ही चाहिये। चित्र-संग्रह में लाजा सीतारामजी और बाबू कौसलकिशोरजी ने जिस परिश्रम के साथ सहायता की है उसके लिये तो हम उनके बड़े ही कृतज्ञ हैं। अयोध्या, विप्रकट, प्रयाग और काशी रामायण के सभी चित्र आपसे ही प्राप्त हुए हैं।

इसके सिवा लेखादिके संग्रह में तथा अन्योन्य प्रकार से अनेक सज्जनों ने सहायता दी है, जिनमें निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं अतएव हम उन सभी सज्जनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने हैं—

पं० जीवनशङ्करजी याज्ञिक एम० ए०, श्रीरामनाथ रामचन्द्र दिवाकर एम० ए० एल० एल० बी०, श्री बी० एच० खेरे एम० ए०, एल० एल० बा०, रायसाहेब बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए०, श्रीशङ्करनाथयण ऐयर बी० ए० बी० एल०, श्रीजनकमुनाशरण शांतलामहायजी बी० ए० एल० बी० सम्पादक 'मानसपर्याय' साहित्यरत्न पं० बिजयानन्दजी त्रिपाठी, श्रीमहलदेवजी शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी०, स्वामी अखण्डानन्दजी, श्रीयुत रामचन्द्रकृष्ण कामट, सद्गतिप्रचारक मण्डली-अनंसी, श्री टी० बा० कृष्णस्वामीराम सम्पादक 'मधुसूनिदान', श्रीबनारसीरामजी चतुर्वेदी सम्पादक 'विगत-भारत', श्रीगौरीशङ्करजी गोयनका, पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, पं० लक्ष्मणनारायणजी गढ़े सम्पादक 'श्रीकृष्ण-वन्दन', महाराज बाळकृष्णजी विनायक कलकभवन अयोध्या आदि आदि।

रामायणों के लिये हिन्दी के आन्तरिक मराठा, गुजराती, बंगाली और अंग्रेजी में भी बहुत-से लेख आये थे जो अनुवाद करके प्रकाशित किये गये हैं। लेखकों में युक्तप्रान्त, यमुना, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, मद्रास, पंजाब, राजपूताना आदि विभिन्न प्रान्तीय विद्वानों के सिवा इंग्लैण्ड के भी कुछ विद्वान हैं। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि सभी हैं। इसमें रामायण की लोक प्रियता का भी पता लगता है।

हम अपने कृपालु लेखकों और कवियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने हुए कृतियों के लिये उनसे साथ जोड़कर समा-याचना करते हैं। कई लेखों में स्थानाभाव और अन्योन्य कारणों से काट-छाँट की गयी है, कई अधूरे छंद

हैं, कुछ का केवल अंशमात्र ही छपा है और कुछ लेख देर से आने के कारण तथा स्थानाभाव से इच्छा रहने पर भी विलकुल नहीं छप सके हैं। गत बार 'गीतांक' बहुत बढ़ा हो गया था जिसके कारण घाटा भी रहा और कुछ विशिष्ट मित्रों ने इस बार आकार कुछ छोटा करने के लिये अनुरोध भी किया था, इससे रामायणों के लगभग ४०० पृष्ठ का निकालने का विचार किया गया था परन्तु लेख इतने अधिक आ गये कि विवश होकर आकार बढ़ाना पड़ा—तिसपर भी सैकड़ों लेख रह गये। लेख न छाप सकने के अपराध के लिये लेखक महोदय क्षमा करें, स्वीकृत लेख आगामी वर्षों में छापने का विचार है।

रामायणों की सूचना छापकर विभिन्न भाषाओं के देशी एवं विदेशी सहयोगियों ने जो कृपा की है उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

इस आंक के लिये जितने विषय सोचे गये थे उनमें से बहुत-से रह गये हैं। ऐसे-ऐसे कई आंक हों तो रामायण के सब विषयों पर कुछ कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। यह आंक तो श्रीराम की कृपा से जैसा कुछ बन सका है आप लोगों की सेवा में उपस्थित किया जाता है, कैसा हुआ है, इसका निर्णय आप ही करें। हम-मराठे विद्या और कलाहीन ग्रन्थ-पूजि व्यक्तियों का सम्पादक के धायन पर पड़ना पाँच सप्ताहों में सम्पन्न होने के समान हास्यास्पद होई और मानव में बड़े सकोलका विषय है किन्तु यहाँ की पाशा और मित्रों के प्रेम से यह निरालता स्वीकार करनी पड़ी है। गरुजन, महात्मा, ज्ञानी, भगवत्पत्नी, रामायण के मार्मिक विद्वान और विद्वान सम्पादक इस पृष्ठनार के लिये क्षमा करें।

है राम! अन्त में तेरे पतिनपावन चरणों में यह विनीत प्रार्थना है कि इस आंक में अनेक जगह प्रमादवश तेरी अवज्ञा हुई होगी, तू दयालु है अपनी ओर देखकर क्षमा कर। तेरी कृपा से इसी बहाने तेरे कुछ नाम आ गये हैं और तेरी आज्ञा के पढ़ने-समझने का किञ्चित् मौभाग्य मिला है। यह सब तेरी ही कृपा, इच्छा और प्रेरणा से हुआ है। यह तेरी आज्ञा तेरे ही चार चरणों में अर्पण है। हमें तो दया कर तू ऐसा बना ले कि जिसमें हमारे मन सदा तेरे ही चरण कमलों के अमर घने रहे और तन-मन की भारी क्रियाएँ केवल तेरी ही प्रेरणा से तेरे ही अर्थ हों।

ज्वालामुखी का नाँव डया  
हनुमानप्रसाद पांडेय } संयुक्त सम्पादक

श्रीपरमात्मने नमः

# गीताप्रेस गोरखपुरकी पुस्तकें

## ग्राहकोंके लिये नियम

(१) 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जाते इसमें 'गीता-प्रेस' को अलग लिखकर सब पुस्तकें चित्र आदि अलग भेजवाना चाहिये।

(२) पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें।

(३) अगर १५ दिनमें पत्रका उत्तर या माल न पहुँचे तो दूसरा पत्र साफ साफ लिखें। इस स्मृति पत्रमें अपनी माँग आदिका उल्लेख फिरसे करना चाहिये।

(४) श्रीमद्भगवद्गीता किस किसकी, कितने दामकी, और उसकी कितनी कारियाँ चाहिये यह व्योरेवार लिखना चाहिये।

(५) अगर किताबें मालगाड़ी या रेल पार्सलमें भेजवाना हों तो रेलवे स्टेशनका नाम जरूर लिखें।

(६) बी० पी० में कुछ भूल मालूम हों तो पार्सल लीटावें नहीं; छुड़ा लें। लिखनेपर यादको भूल दुरुस्त कर दी जाती है। माल दस दिनतक पोस्ट आफिसमें भी रक्खा सकते हैं।

(७) जो सज्जन आर्डरके मुनाबिक माल मंगवाकर बिना कारण लीटा देंगे, उनमें लीटानेका कुल खर्चा लिया जा सकता है।

(८) एक कार्डमें कमकी बी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाना, इससे कमकी किताबोंके लिये डाक-महसूल और रजिस्ट्री खर्चासहित टिकट भेजें। चर्क न मिलनेसे पुस्तक नहीं भेजी जाती। रजिस्ट्रीके दाम न मिलनेसे खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

(९) कमीशन-दर हमप्रकार है:—(५) से १०) तक १२½) सैकड़ा, फिर २५) तक १८½) इसमें ऊपर २५) सैकड़ा। इसमें ज्यादा कमीशनके लिये लिखापट्टी न करें। (५) से नीचे कमीशन नहीं है।

(१०) पुस्तकें रवाना कर देनेके पहले हा न भेजनेका सूचना मिलनेसे माल न भेजा जायगा पर माल भेज देनेके बाद यदि ऐसा सूचना मिलेगी तो दोनों तरफका किराया आदि खर्च ग्राहकके जिम्मे रहेगा।

(११) डाकमें या रेलगाड़ीमें सगव हुई या खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

बड़ा सूचीपत्र भेगाइये !

## (१) श्रीमद्भगवद्गीता [सचित्र]

### पाँचवाँ संस्करण

इसकी टीका इतनी सरल है कि साधारण पढ़े लिखे मनुष्य भी बिना अधिक परिश्रमके इसे समझ सकते हैं। श्लोकोंके ठीक ठीक अनुवाद, पदच्छेद और अन्वयके कारण विद्यार्थियोंके लिये भी यह बड़े लाभकी चीज है। इसकी सबसे अधिक विशेषता यह है कि अर्थमें कहीं भी खींचतानी नहीं की गयी है। प्रत्येक संस्कृत शब्दके सामने उसका अर्थ दे दिया गया है, जिसमें कुछ दिनोंके अभ्याससे केवल श्लोक-पाठमें ही अर्थका बोध हो सकता है। त्यागमें भगवत्प्राप्ति-विषयक अनुभव-पूर्ण निबन्ध भी इसके अन्तमें जोड़ दिया गया है। प्रारम्भमें गीताके प्रधान और सूक्ष्म विषय भी दे दिये गये हैं। इसकी छपाईमें शुद्धताका बहुत अधिक खयाल रखा गया है। ऐसी शुद्ध छपा और सस्ती गीता बहुत कम मिलती है। पाठ्य बहुत बड़े और छपाई साफ है, कागज अच्छा लगाया गया है, हाथ-कयोंके बुने पूरे कपड़ेका अच्छी मजबूत जिल्द लगायी गयी है। ५७० पृष्ठ हैं। किताबका आकार डिमाई ८ पेजी है। चार तिरोंके चित्र हैं। दाम सिर्फ १५) है। इतनी सस्ती ऐसी गीता शायद और न मिल सके। थोड़े ही दिनोंमें इस पुस्तकका

(२)

४१ हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। १) वाली १ प्रति गीता बी० पी० से मँगानेवालेको ॥ डाकभर्ष, पैकिंग -) और मनिआर्डर फीस =) कुल १॥=) पड़ेगा। इसलिये ख्याल करके आर्डर दें ताकि लीटाना न पड़े।

## (२) छोटे टाइपकी २२ × ३० साइजकी सोलह पेजी मञ्जोली गीता (सचित्र)

इसमें यह विशेषता है कि प्रत्येक श्लोकके साथ किलारेपर ही सूक्ष्म विषय दे दिया गया है। यह एक प्रकारसे श्लोकका सारांश है। प्रधान विषय हर अध्यायके आरम्भमें रक्खा गया है। इन विशेषताओंके सिवा शेष बातें गीता सं० १ के अनुसार ही हैं। पृष्ठ-संख्या ४६८; मूल्य बिना जिल्द ॥=) मजिल्द ॥=)। डाक महसूल एक प्रतिका १-), दोका ॥) और तीनका ॥=)

## (३) छोटे साइजकी गीता (सचित्र)

[ गीता संस्करण ]

इसमें श्लोकोंके साथ भाषाटीका भी है। नियमित रूपसे अर्थसहित पाठ करनेवाले मज्जनोंके लिये यह गीता बड़ी उपयोगी है। छपाई, सफाई सुन्दर और कागज बढ़िया है। कवरपर भगवान् श्रीकृष्णका रंगीन चित्र दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ३५२, फिर भी मूल्य केवल ४)॥ मजिल्द =)॥ अबतक इसकी दो लाख तीसहजार प्रतियाँ छप चुकी हैं।

## (४) केवल भाषा-गीता (सचित्र)

संस्कृत श्लोक न पढ़ सकनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी है। छोटे अक्षरोंसे जिनकी जाँसोंमें पाँड़ा होने लगता है वे इससे अधिक लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि इसके अक्षर बड़े और गहरे हैं। शिष्टोंके लिये इसे विशेषरूपसे मँगवानेकी सिफारिश है। एक तिरंगा चित्र देनेपर भी इसका मूल्य केवल १) रक्खवा गया है। मजिल्द =)

## (५) केवल मूल गीता (सचित्र)

इसका टाइट खुब मोटा रक्खा गया है। नीसिमिये बानकों और शिष्टोंके लिये यह अत्यन्त मँगवानी चाहिये। जिनके नेत्रोंकी दृष्टि कुछ कम है, जो छोटे अक्षर नहीं पढ़ सकते हैं उनको यह मूल गीता पाठके लिये अपने पास रखनी चाहिये। श्रीभगवानका एक सुन्दर तिरंगा चित्र भी दिया गया है। मूल्य १-०) मजिल्द ॥=)

## (६) गीता तार्वीजी साइज

देखनेमें बड़ी मनोहर है। पाकेटके एक कोनेमें रक्खी जा सकती है। अक्षर सुन्दर और साफ हैं। आकार २ × २ १/२ इञ्ची, पृ० २६६, मजिल्द मूल्य केवल =) इतने कम दाममें ऐसी सुन्दर गीता दूसरी कौन नहीं है। पन्ट्ट हज़ार पुस्तकें छप चुकी हैं। आरम्भमें एक साइ चित्र भी है।

## (७) मूल गीता और विष्णुमहत्तनाम (सचित्र)

[ ७३१ संस्करण ]

मूल श्लोकोंके अनिवारिक विष्णुमहत्तनाम भी इसमें छाप दिया है। चार सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित १३२ पृष्ठोंकी मजिल्द पुस्तकका मूल्य केवल =)। केवल पाठ करनेवालोंके कामकी चीज है।

## (८) गीता डायरी

यह प्रत्येक गृहस्थ, प्रत्येक विद्यार्थी और प्रायः हर विभागके मनुष्यके पास रहने योग्य है। स्वतन्त्र महात्माओंके अमूल्य वजन, सरकारी विभागोंके प्रतिदिन व्यवहारमें आनेवाले मुख्य-मुख्य नियम, साधारण

( ३ )

योगारिषोंके अनुसन्धानों सीधे सादे-सुस्के आदि इसके आरम्भमें दे दिये गये हैं। हिन्दी पद्य, व्यवहारिक गणितके कुछ चुने हुए हिमाव और १ जनवरीसे हिन्दी, अंगरेजी और बंगला निर्धारियोंके मित्रा मन्त्रसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपको सम्पूर्ण गीता भी इसीमें मिलेगी। एक पन्ना दो काज। इससे अधिक और लाभ क्या हो सकता है ? इसपर भी मूल्य केवल १) सजिल्द १-

बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वानों और पत्र-सम्पादकोंने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है।

### (६) प्रेम-योग

लेखक-श्रीविद्योगीहरिजी, विशेष विवरण पृष्ठ ६ में देखिये। मूल्य १) सजिल्द १॥

### (१०) तत्त्वचिन्तामणि

लेखक-श्रीजयदयालजी गायनन्दका, विशेष विवरण पृष्ठ ७.८ में देखिये। मूल्य ॥१- सजिल्द १)

### (११) भक्त-बालक

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य १-

### (१२) भक्त-नारी

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य १-

### (१३) पत्र पुष्प (मन्त्रि)

कल्याण-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके हृदयसे निकले हुए, प्रेममूर्ति प्रभुके चरणोंमें समर्पित सुन्दर पत्र-पुष्पोंका संग्रह है। इसके अन्तमें प्रत्येक मनुष्यके द्वारा त्यागने और ग्रहण करने योग्य बातोंका भी विस्तृत उल्लेख कर दिया गया है। पृष्ठ ६६ मूल्य ३)॥ सजिल्द १)॥

### (१४) मानव-धर्म

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य ३)

### १५ साधन-पथ

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य ३)॥

### (१६) भजन-संग्रह (प्रथम भाग)

दूसरा भाग

भक्तगाज नुलसीदासजी, मुरदासजी, कबीरजी और मीराबाईके सरस, भावपूर्ण और प्रेमभरे चुने हुए भजनोंका अच्छा संग्रह है। पहला संस्करण बहुत जल्दी बिक गया। पाकेटे साइज, मूल्य केवल ३)

### (१७) स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी

इसके लेखक हैं 'कल्याण'के सुयोग्य सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। कई पाठशालाओंमें यह पाठ्यपुस्तकके रूपमें पढ़ाई जा रही है। वर्तमान समाजके डावाँडोल और दूषित वायुमण्डलके दृष्टि-कोणमें रखते हुए यह पुस्तक प्रेमी सज्जनोंके विशेष आग्रहसे लिखवायी गयी थी। कन्याओंके कोमल हृदयोंमें इसके निरन्तर पाठसे बहुत अच्छा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना है। सधवा स्त्रियोंके धर्मका बड़ी रोचक शैलीसे विशद वर्णन किया गया है। पति-सेवाके दिव्य-व्रतका पालन करती हुई यह-देवियाँ किस प्रकार मनुष्य-जन्मके चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गमें तत्पर, अग्रसर और सफल हो सकती हैं इसका सम्पूर्ण

( ४ )

उल्लेख करके लेखकने सागरमें सागर भर दिया है । विधवा-धर्मका निरूपण भी उत्तमतापूर्वक किया गया है । प्रश्नोत्तरके रूपमें होनेसे यह पुस्तक बड़ा रोचक बन गयी है । दाम्पत्य-प्रेम और गृहस्थाश्रमके हिन्दूधर्ममें देनेनेके दृष्टिकोणोंका इसका प्रचार विशेषरूपसे करना चाहिये । पृष्ठ ५६ मूल्य ४)

## (१८) मन्त्रा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय

साधकोंको इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये ।

साकार और निराकारके ध्यानादिका रहस्यपूर्ण भेद और सरल विधि जाननेके दृष्टिकोणोंको इसे पढ़नेके लिये हमारा विशेष अनुरोध है । मूल्य -)॥

## (१९) गीताके सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग

इसमें गीताके उक्त दो विषयोंपर बड़ी चिन्तापूर्ण व्याख्या की गयी है । प्रायः प्रत्येक मनुष्य इसे समझकर लाभ उठा सकता है । मूल्य केवल -)॥

## (२०) मनुस्मृति द्वितीय अध्याय मटीक

इसमें मनुस्मृतिके दूसरे अध्यायके मूल श्लोक और सरल हिन्दीमें उनका अनुवाद है । बड़े कामकी पुस्तक है । मूल्य -)॥

## (२१) श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय

इसके लेखक हैं—श्रीजयदयालजी गोयन्दका । विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये । मूल्य -)॥

## (२२) मनको वशमें करनेके उपाय (मन्त्र)

लेखक श्रीहनुमानप्रसादजी गोड़ार—मनका स्वरूप क्या है, साधकोंको इसके आक्रमणोंका किस प्रकार सामना करना पड़ता है तथा भगवत् ईश्वरके किस प्रकार विषय प्राप्ति की जा सकती है—इत्यादि जानने योग्य बातोंका उत्तम बड़ा रोचक शैलीमें किया गया है । मूल्य -)॥

श्रीजयदयालजी गोयन्दका-रचित अन्य उक्त पुस्तकें

## (२३) गीताका मूढ विषय

इसमें गीताके प्रत्येक श्लोकका सरल हिन्दीमें सारांश दिया गया है । १० केट सार्जित मूल्य -)॥

## (२४) श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश

मनको उसकी कष्टपूर्ण प्रार्थनाओंके लिये आवाप्तिके द्वारा भर्त्सना, भगवान्के प्रभावका प्रार्थना के द्वारा कथन तथा साकार ईश्वरको मार्मिक पूजा आदिका बड़ा रोचक शैलीमें वर्णन किया है । श्रीविष्णु भगवान्के दो रंगीत चित्र देनेपर भी मूल्य केवल -) हो रहा गया है ।

## (२५) त्यागमें भगवत्प्राप्ति

गृहस्थमें रहता हुआ भी मनुष्य जिन स्वरूप प्रकारके त्यागोंके फलस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है उनका प्रतिपादन इसमें किया गया है । मूल्य -)

## (२६) ब्रह्मचर्य

लेखक श्रीकल्याण-सहायक श्रीहनुमानप्रसादजी गोड़ार । ब्रह्मचर्यके महत्त्व और उसके सर्वप्रकारोंपर बड़ा मार्मिक विवेचन किया गया है । मूल्य -)

(५)

### (२७) भगवान क्या हैं ?

भगवान्‌के विषयमें मनुष्योंको अधिकतर जो शङ्काएँ होती हैं उनका समाधान गीतादि शास्त्रों और अपने अनुभवके आधारपर किया गया है। भगवद्‌व्यानकी विधियाँ भी लिखी गयी हैं। भाषा सरल है। मूल्य -)

### (२८) समाज-सुधार

समाजके जटिल प्रश्नोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। सुधारके प्रधान साधनोंका उल्लेख भी कर दिया गया है। मूल्य -)

### (२९) एक सन्तका अनुभव

साधकों और सन्तके सुखके अभिलाषियोंके लिये बहुत ही कामकी चीज है। मूल्य -)

### (३०) स्वामी भगवानन्दकी जीवनी

ये अच्छे संन्यासी हो गये हैं इनकी जीवनी बहुत ही उपदेशप्रद है। मूल्य -)

### (३१) हरगामभजन

इस पुस्तकमें उपदेश और १६ नामोंके मन्त्रकी ही मालाएँ हैं। मूल्य ॥

### (३२) श्रीविष्णुमहस्वनाम

मूल विष्णुमहस्वनाम, गुरुका साहज, माटे धक्षर, भगवान्‌के चित्रसादत पाठ करनेवालोंके लिये बहुत सुखानेकी चीज है। मूल्य ॥

### (३३) श्रीमतीतारामभजन

आरम्भमें गुप्तार्थोंके दंगोंका सुन्दर संग्रह है, फिर श्रीमतीतारामकी दस मालाओंके मन्त्र छपे हैं। मूल्य ॥

### (३४) श्रीशंकराचार्यजीकृत प्रश्नोत्तरी सटीक

स्वामी शंकराचार्यजीकी प्रश्नोत्तरी संग्रह है। इसमें उन्नीसके मूल श्लोक और अनुवाद हैं। मूल्य ॥

### (३५) सन्त्या

इसमें सन्त्याके मन्त्र और सरल हिन्दीमें उसकी विधि छपी गयी है। मूल्य ॥

### (३६) यतिवैश्वदेवविधि

गुरुओंके लिये अग्रज्य कर्त्तव्य यतिवैश्वदेवके मन्त्र और करनेकी विधि माटे कागजपर छपी हैं। मूल्य ॥

### (३७) पातञ्जलयोगदर्शन (मूल)

इसमें चारों पादोंके सभी सूत्र शुद्धनायक छापे गये हैं। मूल्य ॥

### (३८) धर्म क्या है ?

नामसे ही पुस्तकके विषयका पता लग जाता है। प्रश्नोत्तरके ढंगपर होनेसे यह पुस्तिका बड़ी रोचक बन गयी है। मूल्य ॥

### (३९) दिव्यसन्देश

वर्तमान समयके दार्भिक युगमें किस उपायसे शीघ्र भगवत्‌प्राप्ति हो सकती है, इस पुस्तिकामें इस बातके सरल उपाय बतलाये गये हैं। मूल्य ॥ यह पुस्तक गुजराती, मराठी, बंगला और अंग्रेजीमें भी मिल सकती है।



(६)

### (४०) श्रीहरिसंकीर्तनकी धुन

इसमें श्रीहरिसंकीर्तनकी ४१ तरहकी धुनि छापी गयी है, कीर्तनके प्रेमियोंके लिये बड़े कामकी चीज है। मूल्य ॥

### (४१) गीता दूसरा अध्याय सटीक

श्रीमद्भगवद्गीताका दूसरा अध्याय मूल श्लोक और सरल हिन्दी अनुवाद प्रचारार्थ छापा गया है। मूल्य ॥

### (४२) लोभमें पाप रहता है

महाभारतके एक अध्यायका अनुवाद है। बहुत सुन्दर उपदेशकी चीज है। मूल्य आधा पैसा।

### (४३) गजल गीता

लड़कोंके गाने लायक सरल हिन्दीमें गजलके ढंगपर गीताके बारहवें अध्यायके कुछ उपदेशोंका अनुवाद है। लड़के इसे बहुत पसन्द करते हैं। मूल्य आधा पैसा।

### (४४) भगवन्नामांक

यह कल्याणका एक विशेषांक है। इसमें रंग-विरंगे ४३ चित्र हैं। पृष्ठ संख्या ३२०। मूल्य ॥२॥

### (४५) बंगला गीता

मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारणभाषा और टिप्पणियोंसहित। मूल्य १) सज्जिन्द २॥ (यह १॥) वाली गीताका उल्था है।) पृष्ठ ५४०, चित्र ४, छपाई मकान सुन्दर है।

### (४६) भक्तांक

यह भी कल्याणका विशेषांक है। इसमें रंग-विरंगे ५५ चित्र और २५० पृष्ठ, मूल्य १॥२॥ सज्जिन्द २॥ इसमें भी कमीशन नहीं है।

### (४७) गीतांक

पृष्ठ संख्या ५०२, चित्र संख्या १७०, मूल्य २॥२॥ सज्जिन्द ३॥ इसमें भी कमीशन नहीं है।

### (४८) रामायणांक

इसी वर्षका कल्याणका विशेषांक पृष्ठ ५३२, चित्र १७०, केन्दुगमन मूल्य २॥२॥ इसमें भी कमीशन नहीं है।

### विशेष सुभीता

एक साथ भिराज मगानेवाले प्राइकोंकी डाकमहसूल और पेकिंग वहाँ देना पड़ेगा।

भिराज नं० १ पुस्तक नं० १ सज्जिन्द और पुस्तक नं० २ से नं० ४४ तक, सज्जिन्द कुल ४४ पुस्तकें रु० ८५/-) में।

भिराज नं० २ पुस्तक नं० २ तथा ८ से १० तक सज्जिन्द कुल ४ पुस्तकें रु० ३) में।

भिराज नं० ३ पुस्तक नं० ३ और ८ तथा नं० ११ से ४३ तक कुल ३५ पुस्तकें रु० ३२) में

भिराज नं० ४ पुस्तक नं० ३ और नं० १० सज्जिन्द तथा नं० ११-१२-१४-१५-१६ सज्जिन्द कुल ७ पुस्तकें रु० २५/-) में।

**तत्त्व-चिन्तामणि**

इस महान् ग्रन्थके लेखक हैं—श्रीजयदयालजी गोयन्दका,

पृष्ठ ३९३ मोटा एण्टिक कागज मूल्य ॥१॥ सजिल्द १) दो सुन्दर रंगीन चित्र

कल्याणके पाठक और पाठिकाएँ आपके नामसे विरपरिचित हैं। ऐसे मज्जनके ग्रन्थपर हमारी ओरसे विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं दीवनी। हिन्दी, मराठी, बंगाली, अंग्रेजीके विद्वान् पत्र-सम्पादकोंकी इस तात्त्विक ग्रन्थपर क्या सम्मति है इसका यथा भिन्नलिखित कुछ अवतरणोंसे ज्ञय सकेगा:—

**अपूर्व शान्ति**

‘इन लेखोंके पढ़नेसे पाठकके हृदयमें अपूर्व शान्ति और चिरन्ति तथा ईश्वरके प्रति आस्थाकी भावना वर्धनी है। लेखके स्वयं साधक होनेसे लेखोंकी महत्ता और भी बढ़ जाती है।’—कर्मवीर

**जीवन-क्षेत्रमें सफलता**

‘यह पुस्तक प्रधानतः गीताके आधारपर जीवन-तत्त्वकी व्याख्या करती है। इसमें क्रियात्मक जीवनके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन है और जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें सफलता प्राप्त करनेके लिये आवश्यक भक्ति-भारतिके धर्मोंका निर्देश किया गया है। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि किन प्रकार गीताके आदर्श धर्मका वाणिज्य—व्यापारमें भी उपयोग हो सकता है और किनप्रकार इन व्यवहारोंके द्वारा भी परमार्थ प्राप्त किया जा सकता है। यह पुस्तक वस्तुतः अपने पाठिकाकी हृदयमें ज्ञानकी कसौटीके समान है।’—अंग्रेजी मराठा, पुना।

**अच्छा लाभ**

गोयन्दकाजीसे ‘कल्याण’ नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता है। उसमें जयदयालजी गोयन्दकाके समय-समयपर लिखे २६ निबन्धोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया गया है। ज्ञानीकी अनिर्वचनीय स्थिति, भगवान् क्या हैं, अनन्य प्रेम का भक्ति है, उपासनाका तत्त्व, धर्म क्या है, कर्मका रहस्य आदि निबन्धोंके नामोंसे ही पुस्तकका प्रतिपाद्य विषय ज्ञानमें आने योग्य है। मासिक ग्रन्थ पढ़नेका जिनकी कृति हो उनको इस ग्रन्थके वाचनसे अच्छा लाभ हो सकता है। विशेषतः हिन्दी भाषामें परिचित प्राप्त करनेके लिये प्रसृत पुस्तक बहुतांश उपर्युक्त मार्गप्रदर्शक है।—ज्ञानप्रकाश मराठी, पुना।

**तत्त्व-चिन्तामणि ज्योतिस्तम्भ है**

‘गोयन्दकाजीकी ‘तत्त्वचिन्तामणि’ मिली। मेरे लिये बहुत कामकी भाविन हुई है। गोयन्दकाजीकी पुस्तकका मेरेपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, इसप्रकारकी कृतियाँ उन लोगोंके लिये ज्योतिस्मभस्वरूप हैं जिनको वांछनीय जीवन-सागरमें उचित मार्ग बतानेवाला कोई रहस्य न हो।’—ताराचन्द्रगुप्त एम० ए०, प्रोफेसर बर्गलिन युनिवर्सिटी।

**चिन्ताकों दूर करनेवाला तत्त्वचिन्तामणि**

‘तत्त्व-चिन्तामणि’ परमार्थ ग्रन्थमालाका प्रथम पुष्प खिली है। इसके २६ सुशोभित दलोंके ऊपर देखनेवाले तत्त्व जिज्ञासुको प्रत्यक्ष भगवान् ही लहे होकर अपने प्रखरलित नेत्रमें तत्त्वकी चिन्ताको दूर करनेवाला ‘चिन्तामणि’ स्वयं ही पाठक-पाठिकाओंके गलेमें बाँध देते हैं। अभूतपूर्व दृश्य नजर आता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं।

(भिन्न-भिन्न अस्तीके लगभग नवीन और प्राचीन विषयोंपर प्रामाणिक पुस्तकें लिखनेवाले महाराष्ट्रके महान् विद्वान्)  
—पं० आनन्दधन रामजी, तासगांव।

(८)

## यह गीताकी ही सुन्दर व्याख्या है

'तत्त्वचिन्तामणि' पढ़कर बहुत मुग्धि हुई। इसमें सरल हिन्दीमें साधनपथ वगैरह प्रदर्शित किया गया है। वास्तवमें यह श्रीमद्भगवद्गीताकी ही सुन्दर व्याख्या है।.....साधनपथ, ध्यानपथ, अर्चनपथ आदि अति सुन्दर भावसे प्रतिपादित हुए हैं।.....साधनमार्गमें चित्तवृत्ति प्रशुतिके बिना कर्मकी जो आवश्यकता है, वह सुन्दर भावसे विलकायी गयी है। वृषाई और कागज उत्कृष्ट है। मूल्य नाममात्र ३५-)...धर्मविज्ञान हिन्दूमात्रके बिना इस पुस्तकका पठन करना कर्तव्य है।—बंगला हितवादी, कलकत्ता,

## मानव-धर्म

पृष्ठ-सं० १०७ मूल्य केवल ३)

### महत्त्वपूर्ण पुस्तक

“...इसमें धर्मकी आवश्यकता, धृति, क्षमा आदि विषयोंपर प्राचीन गाथाओंको लेकर अच्छा विवेचन किया गया है।...पाठकोंका ध्यान धर्म एवं आचरणकी ओर कराया गया है।...धर्मका साहित्यसे उचित सामञ्जस्य कराया है।...भाषा बहुत ही सरल है। ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका प्रचार इस समय खूब होना चाहिये। अन्तमें भी मनोरञ्जक कहानियों द्वारा ही धर्मका उपदेश दिया गया है। आशा है कि ऐसी पुस्तकोंको हिन्दी-प्रेमी अपनानेमें देर न करेंगे।”

—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी मुखपत्रिका 'सम्मेलनपत्रिका'

### धार्मिक जीवन

यह पुस्तक मनुस्मृतिमें बताये हुए धर्मके दश लक्षणोंकी व्याख्या है। इन दस गुणोंको माली भाँति समझनेसे इनके अनुसार चलनेमें धार्मिक जीवन होना निश्चित है। यदि इस पुस्तकका पाठशालाओंमें प्रत्येक हिन्दू-बालकको पाठ पढ़ा दिया जाय तो उसे अपने धर्मका बहुत कुछ ज्ञान हो जाय और नरिञ्ज भी सुधर जाय।

—श्रीहरिरामजी वाबडेव—धर्मोपदेशक—हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी।

## साधन-पथ

पृष्ठ-सं० ७२, भगवान्का एक अत्यन्त मनोमोहक सुन्दर बहुरंगी चित्र, मूल्य केवल २)॥

स्वामी विज्ञानरहसजी लिखते हैं—

साधन-पथ पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ। आपका परिश्रम और विचार बहुत ही सराहनीय है। साधकोंके लिये सच्चा पथ-प्रदर्शक है।...अवश्य ही अपने पास रखकर सदा अध्ययन करने चाहिये।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशीके धर्म-शिक्षक लिखते हैं—

“साधनमें बड़ी सहायता देनेवाली है। लेखक बड़े अनुभवी पुरुष जान पड़ते हैं।...पढ़कर यही विचार मेरे मनमें उठा कि लेखक महाशयने उन सब ही बानोंकी ज्ञाना दिया जिसकी साधन-पथके पथिकको ध्यानमें रखना चाहिये।”

पुस्तक इतनी सुन्दर है कि एक सगरीके मालिक घरमें भी हाथों हाथ छप गयी है।



पवित्र प्रेमकी अपूर्व शौकी  
हृदयकी कलियाँ खिला देनेवाला

## प्रेमयोग

लेखक-हिन्दी-संसारके सुपरिचित श्रीविद्योगी हरिजी

दो खण्ड, पृष्ठ ४६८, बहुत मोटे परिटिक कागज, मनोहर रंगीन चित्रसहित, मूल्य १) सजिल्द १॥)

हिन्दी-साहित्य जगत श्रीविद्योगी हरिजीके नामसे अपरिचित नहीं है। आपहीकी भावुकतापूर्ण लेखनीसे लिखा हुआ यह ग्रन्थ अपने ढंगका एक ही है। सभीज भाषा और दिव्य भाषोंसे बना हुआ यह प्रेमयोग प्रेम-साहित्यका एक पूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि प्रायः सभी धर्मसम्बन्धियोंके प्रेम-विषयक आदर्श अनुभवों और मनोहर सूक्तियोंका विविध संग्रह है। सन्तों, महात्माओं, सत्तों और अनुभवी कवियोंके प्रेमपर निकले हुए हृदयकारी उद्गारोंका अमूल्य देसा आजीवनार्थक विरह संग्रह निस्सन्देह पठनीय है।

## आचार्यश्रीकी सम्मति

“आपकी मेजी हुई तीनों पुस्तकें भिन्नी हैं—प्रेमयोग, मानवधर्म और साधनपथ। परमार्थविषयक इतनी आपकी पुस्तकें हिन्दीमें मैंने यही देखीं। इस तरहकी पुस्तकोंका प्रकाशन करके आप सर्वसाधारणका बड़ा ही उपकार कर रहे हैं। जो तथ्य और ज्ञान संस्कृतके बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें निहित है उसे आपने सभीके लिये कौहीमोख सुलभ कर दिया। अज्ञान और सदाचारविषयक इतनी सुन्दर पुस्तकें निकालकर आप अल्प पुण्यकी प्राप्ति कर रहे हैं और साथ ही थोड़ी सी हिन्दी जाननेवालोंको कल्याणमार्गकी ओर भी ले जा रहे हैं। आप धन्य हैं। आपकी ये पुस्तकें अमूल्य हैं।” —महावीरप्रसाद द्विवेदी

हिन्दीके पुराने महारथी पं० लज्जारामजी मेहताकी लम्बी सम्मतिका कुछ अंश पढ़िये—

“...प्रेम-जैसे गहन गर्मीर और पवित्र विषयके प्रत्येक संगका मित्र-मित्र शीर्षकसे प्रतिपादन करनेमें श्रीविद्योगी-हरिजीने सफल प्रयत्नकर कामाज कर डाला है..... और तो सब ठीक ही है, किन्तु महात्मा सूरदासजी और गोस्वामी तुलसीदासजीके वात्सल्य-रसके दिग्दर्शनवाने पैंतीस पृष्ठ पढ़नेमें मेरी जो दशा हुई है उसे मेरा हृदय ही जानता है। प्रत्येक दो-दो बार-बार पंक्तिपढ़ते समय मेरी आँखोंसे धाराप्रवाह आँसू बहते थे, बार-बार ऐनक टटा-टटाकर मैं उन्हें पोंछता था और फिर आगे बढ़नेका प्रयत्न करता था। कई बार हुआ हुई कि किसी दूसरी बार कलेजेको कड़ करके इतने पृष्ठोंका अखलोकन करूँगा, परन्तु थोड़ी खोदना भी नहीं बन सका।”

लोकमान्य निलकण्ठाना प्रतिष्ठित और श्रीकलकत्ताजीद्वारा सम्पादित प्रसिद्ध महापद्म पत्र ‘केन्द्री’ के उद्गार सुनिये—

“प्रेमका अर्थ कामकीदा नहीं। प्रेमका स्वरूप तो इसमें कितना ही उच्च है। वह कैसा है ? इस पुस्तकमें श्रीविद्योगी हरिजीने उत्तम और विशद प्रकारसे दिखाया है। ‘जो प्रेम शरीरके साथ कीटा करता है वह प्रेम नहीं, मोह है।’ इस तथ्यकी लेखकने भली प्रकार दिखाया है।.....प्रेमके विविध स्वरूपोंका मार्मिक विवेचन किया गया है। दूसरे अंगमें ‘विश्वप्रेम क्या है’ यह दिखाकर सूरदास, तुलसीदासके कान्योंमें वात्सल्य रस कैसा ओत-प्रोत है यह दिखा आदर्श और स्वदेशप्रेमके स्वरूपका वर्णन किया गया है। पुस्तक पठनीय है।”

वैदिक-अन्वेषणकारी श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके ‘वैदिकधर्म’की सम्मति—

“यदि इस जगत्में कुछ दिव्य वस्तु है तो केवल प्रेम ही है। यदि इस स्थूल जगत्में रहते हुए चैतन्य जगत्का अनुभव लेना है तो अपने अन्तर प्रेमकी हृदि करनी चाहिये। सच्चा उच्च और दैवी प्रेम कौनसा है, और घातक मोह कैसा है, यह साधारण अनुभव नहीं जान सकता।.....जो वह ‘प्रेमयोग’ पुस्तक पढ़ेंगे वे उच्च प्रेम और हीन प्रेमका अन्तर जान सकते हैं। पुस्तक गीताप्रेम गौरवपुरसे प्रकाशित हुई है, इतना कहनेमात्रसे इसकी उत्तमताका विषय हो सकता है।”

नयी पुस्तकें !

❀ बीहरी : ❀

नयी पुस्तकें !

## दो बहुत ही सुन्दर सचित्र पुस्तकें

### (१) भक्त-बालक

पृष्ठ ८०, मोटा कागज, पुष्ट टाइप, ४ रंगीन और १ सादा चित्र, पुस्तक सबके पढ़ने योग्य मोटे टाइपमें छपी है, दाम केवल १/-।

इसमें भक्त चन्द्रहास, सुधन्वा, मोहन, गोविन्द और धन्नाकी सरस एवं भक्तिरससे भरी हुई कथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते रोमाञ्च और अभ्रुपात होने लगता है। बार-बार भगवान् और उनके प्रभावका स्मरण होता है।

भगवान् के प्यारे भक्तोंके जीवनकी मीठी-मीठी बातोंको पढ़ने-सुननेसे आनन्द तो होना ही है, साथ ही हृदयके मल नष्ट होकर उसमें भगवान् की प्रेमा-भक्तिका संकर भी दृढ़तासे जम जाता है। दोनों पुस्तकोंमें ऐसी ही जीवनिवाँ हैं। सर्वनाशरूपसे इनके मधुर और पवित्र पठनसे अपने तन-मन-बचनको प्रफुल्लित करनेकी प्रार्थना है।

—> अन्य नयी पुस्तकें

अन्य नयी पुस्तकें <—

### (३) श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जाननेयोग्य विषय

लेखक—'कल्याण'—पाठकोंके सुपरिचित श्रेष्ठ श्रीजयदयालजी गोयन्दका

सुन्दर मोटे टाइपमें छपी हुई, पृष्ठ-संख्या ४३, मूल्य—)।। डाकखर्च अलग।

पुस्तकका विषय नामसे ही जान पड़ता है। इसमें सरल सुबोध भाषामें गीताके कुछ विषय समझानेकी चेष्टा की गयी है। जैसे जीवनमुक्तका स्वरूप, जीव, ईश्वर और ब्रह्मका भेद, कर्म, विकर्म और अकर्मका स्वरूप, क्षण, अक्षर और पुरुषोत्तम, गीता सायावाद मानती है या परिणामवाद, ज्ञानयोग आदि शब्दोंका पृथक् पृथक् अर्थमें प्रयोग। पुस्तक सबके मनन करने योग्य है। इसकी अनेक विडामोंने भूरी-भूरी प्रशंसा की है। यह पुस्तक 'गीता-परीक्षा समिति'की परीक्षामें रखी गयी है।

### (४) एक सन्तका अनुभव

श्रुतिकेशनिवासी त्यागी सन्त श्रीनारायणस्वामीने कृपाकर अपने जीवनमें जो साधन किये हैं, उन्हींको अपनी ही टैबलीसे लिख दिया है। साधकों और सच्चे सुखके अभिलाषियोंके लिये बहुत ही कामकी चीज़ है। पुस्तककी उपयोगिताको देखकर महाराष्ट्रके प्रसिद्ध विद्वान् श्री आर०के० कामदनेमगठाई अनुवाद करनेकी अनुमति माँगी है। पुस्तक मित्य मनन करने योग्य है। स्वीदकर स्नाधुओंमें पाँटनेसे बहुत लाभ हो सकता है। मूल्य—)। डाकखर्च अलग।

गुजराती गीता, प्रह्लादचरित्र, वैशाल्यक्यावली, आचार्यके लघुपदेश चित्रकटकी भाँकी आदि पुस्तकें श्रीमद्वी निकलनेवाली हैं।

# मोहिनी बहुत बड़े सस्ते चित्र

भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीशिवजीके दिव्य दर्शन

जिस्को देखकर हमें भगवान् याद आवें, वह वस्तु हमारे लिये संग्रहणीय है। किसी भी उपायमें हमें भगवान् सदा स्मरण होते रहें तो हमारा धन्य भाग हो। भक्तों और भगवान् के स्वरूप एवं उनकी मधुर मोहिनी लीलाओंके सुन्दर दृश्य-चित्र हमारे सामने रहें तो उन्हें देखकर थोड़ी देर के लिये हमारा मन भगवत्-स्मरणमें लग जाता है, और हम सांसारिक पाप-नापोंको भूल जाते हैं।

निम्नलिखित सुन्दर चित्र किसी धर्ममें इस उद्देश्यको पूर्ण कर सकते हैं। इनका संग्रहकर प्रेममें जहाँ आपकी दृष्टि नित्य पड़ती हो वहाँ घरमें, बैठकमें और बैचालियोंमें लगाइये एवं चित्रोंके बहाने भगवान् की यादकर अपने मन-प्राणको प्रफुल्लित कीजिये। भगवान् की मोहन-मूर्तिका ध्यान कीजिये।

## चित्र-सूची

मात्र १० इञ्च चौड़ा १५ इञ्च लम्बा (साधारणमें दृगुना)

प्रत्येक चित्रपर प्रार्थना या परिचय भी छपा है

१. ध्रुवनागायण	(बहुरंगा) -)	११ श्रीराम-जटायु	(दो रंगा) )
२. श्रीशंभुशायी भगवान् विष्णु	(.. ) -)	१२ देवदेव भगवान् महादेवजी	(बहुरंगा) -)
३. मुरलीमोहर	(.. ) -)	१३ काशी-मुक्ति	(दो रंगा) )
४. वृन्दावन-विहारी	(.. ) -)	१४ मुग्धा पद्मावन गणिका तारी	(बहुरंगा) -)
५. भक्त-मन-चोर	(.. ) -)	१५ धृतिचैतन्य महाप्रभु	(.. ) -)
६. गोपाल-कृष्ण	(.. ) -)	१६ हरिनाम-संकीर्तन	(.. ) -)
७. श्रीकृष्णार्जुन	(.. ) -)	१७ हरिनाम-वितरण	(दो रंगा) )
८. प्रेमोन्मादिनी विदुर-पत्नी	(.. ) -)	१८ गोस्वामी तुलसीदासजी	(बहुरंगा) -)
९. कौशल्या-नारायण	(.. ) -)	१९ मीराबाई	(दो रंगा) )
१०. ब्रह्मयोद्धा	(.. ) -)		

## विशेष सुभीता

पूरी सेट एक साथ लेनेवालोंको उन्नीसों चित्र १) में मिलेंगे। पैकिंग २) डाकवर्ग ३-) अलग।  
डाकवर्ग हर हालतमें भ्रातृका लगेगा।

विक्रीके लिये एक साथ अधिक संख्यामें लेनेवालोंको २५) सीकड़ा कमीशन दिया जायगा।

पुस्तकें और चित्र मिलनेका पता— \*

गीताप्रेस, गोरखपुर

● चित्र और पुस्तकोंके लिये 'कल्याण' कार्यालयको न पत्र लिखें और न उनके चन्देके साथ पैसे या स्टाम्प भेजें।

## गीता प्रेसके अन्य चित्र

बहुतसे चित्र साइज १० × ७½ दाम प्रत्येकके )॥

(१) सुरजी मनोहर नं० १	(४) भक्त-मनधोर	(१७) भक्तमोहन, गोपाळभाई	(२४) दीन सुदामा
(२) श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु	(१०) कौशलया नारायण	(१८) सुभा पदावत	(२५) गोपाळभाई
(३) सुरजी मनोहर नं० २	(११) कृष्णकी बाल-लीला	गणिका तारी	(२६) श्रीकृष्णलामह
(४) भिलनीके वेश	(१२) श्रीकृष्णान्तर्गण	(१९) कृष्ण बन-भोज	(२७) दानवीर कर्ण
(५) सुरजीधर	(१३) गोपाळकृष्ण	(२०) रामकी बाल-लीला	(२८) भक्तभावन श्रीकृष्ण
(६) गो० स्वा० श्रीगुलसी-दासजी ।	(१४) भक्त-प्रतिष्ठा-रक्षण	(२१) ज्ञान बैरान्य भक्ति	(२९) बालरूप श्रीरामचन्द्रजी
(७) अजामिल	(१५) ज्ञानेश्वरीके कर्ता भक्त ज्ञानदेवजी	(२२) माधन-मेरी कृष्ण	(३०) चन्द्रवर्शन
(८) श्रीमीराबाई	(१६) विदुर-पक्षी	(२३) भक्तसागरसे उद्धार करनेवाले श्रीकृष्ण	(३१) हुन्दावनबिहारी कृष्ण

सादे चित्र साइज १० × ७½ दाम प्रत्येकके )॥

(१) माखी और सन्त	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	(२५) देवी रविदा, कैथेरिन	(३२) परमहंस अन्नकायजी
(२) काशी-मुक्ति	(१४) चक्रिककी भगवद्दर्शन	(२६) अनन्तप्रभुजी,	स्वा० उत्तमनाथजी
(३) वंछन-मुक्ति	(१५) भक्त सुकन्धा	रामचन्द्रजी	(३३) देशबन्धु दास
(४) महन-दहन	(१६) बलि और बामन	(२७) श्रीपादचञ्चली, पं० बिप्लव-	लोकमान्य तिलक
(५) चरख-पकारन	(१७) महात्मा सूरदासजी	दियाचरकी रामनामके	(३४) महात्मा गांधीजी
भक्त-गुह-मिलाय	(१८) श्रीरामानुजाचार्यजी	आकलिया बालजी	पं० मालवीयजी
(६) भक्त विभीषण	(१९) रामदास और शिवाजी	महाराज, रामराज	(३५) श्रीउदिया बाबाजी
(७) श्रीकृष्ण-कृष्ण	(२०) भक्तिके चार प्रकारक शंकराचार्य, रामानुजाचार्य,	मोहनजी ।	(३६) श्रीराधारमण देव
(८) युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण	बल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य,	(२८) श्रीअनन्ताचार्यजी	(३७) भक्त सेठजयनारायणजी
(९) नारद और व्याध	(२१) भक्तिके बारह आचार्य	श्रीगोकुलनाथजी	लक्ष्मीनारायणजी
व्याधसे बालमीकि	(२२) मालिकका दाम	(२९) श्रीशंकराचार्यजी	रामदासजी
(१०) महाराज हस्तिदेव	(२३) स्वा० श्रीउत्तमनाथजी	श्रीराजराजेश्वरराजजी	भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
(११) ब्राह्मण और राजा चोल	(२४) परमहंस रामकृष्णजी,	गौदेवरार्य—	७½ × ५ सादे चित्र
ब्राह्मण और चारहाल	स्वा० विवेकानन्द	समुद्रद्वीपजी	दाम प्रत्येकके )॥
(१२) भक्तदत्तपति रांकाबांका	विजयकृष्ण, कवीर ।	(३०) सन्त तुकारामजी	(३८) गोपाळ कृष्ण चंद
(१३) ब्राह्मणको भगवद्दर्शन		(३१) स्वामी भान्करानन्दजी	(३९) गोपाळ कृष्ण मदे

प्र. चैतक, मन्दिर, देवालय सजाने, धर्मार्थ बाँटनेवालोंके लिये और चित्र-विक्रीताओंके लिये सुधीता ।

एक दर्जन एक साथ लेनेपर कमीशन १२½) सैकड़ा । २० चित्र एक साथ लेनेपर २५) सैकड़ा ।

१०० चित्र ,, ,, ३३½) सैकड़ा । ५०० ,, ,, ,, ४०) सैकड़ा ।

१००० ,, ,, ,, ५०) सैकड़ा ।

जल्दी कीजिये म्हाक समाप्त हो जानेपर मिलना कठिन है ।

### स्वास् रियायत

रंगीन चित्रोंकी सम्पूर्ण सेट लेनेसे १०½) के बदले २५) कमीशन काटी जायगी ।

सादे चित्रोंकी सम्पूर्ण सेट लेनेसे १२½) के बदले ३३½) कमीशन काटी जायगी ।

नोट:—(१) सब चित्र न लेनेवालों अर्थात् चुनकर लेनेवालोंके साथ यह रियायत न होगी ।

(२) पैकिंग, मर्चेंट, डाकखर्च आदि कुछ खर्च ग्राहकोंके जिम्मे है ।

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर





## श्रीरामायणकी आरती

आरति श्रीरामायणजीकी ।

कीरति कलित ललित सियणीकी ॥ टेक ॥

गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद ,  
वाल्मीकि विज्ञान विसारद ।  
मुक सनकादि सेष अरु सारद ,  
वरनि पवनसुत कीरति नीकी ॥१॥

संतत गावत संभु भवानी ,  
औघट संभव मुनि विज्ञानी ।  
व्यास आदि कविपुंग वखानी ,  
काकभुमुंडि गरुड़के द्वियकी ॥२॥

चारउँ वेद पुराण अष्टदम ,  
बहौं मास्त्र सब ग्रन्थनको रम ।  
तन मन धन संतनकी सर्वम ,  
मार अंम मम्मत सबहीकी ॥३॥

कलिमल-हरनि विषय-रमणीकी ,  
सुभग सिंगार मुक्ति युवतीकी ।  
हरनि रोग भव मृरि अर्माकी ,  
तान मात सबविधि 'तुलसी'की ॥४॥



ॐ

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

जयति शिवा-शिव जानकि-राम ! जय गृहनन्दन राधेश्याम ॥

रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥

जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय. मनु चिन् आनन्द भूमा जय जय ।

जय जय विश्वरूप हरि जय, जय अग्नितान्मनु जगमय जय ।

जय विराट् जय जगन्पते, गौरीपति जय रमापते ॥

वार्षिक मूल्य—भारतमें ४=) विदेशमें ५=) एकप्रतिका मूल्य (=) इस पद्धति मूल्य ॥)

Edited by Hanuman Prasad Poddar, Printed and Published by  
Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur.

श्रीहरिः

## विषय-सूची

१- एक रामते मोर भल [ कविता ] । ( गोसाईंजी महाराज ) ... ५१३	१७- वैदेही-विलाप [ कविता ] । ( पं० श्रीमारांकरजी मिश्र 'श्रीपति' ) ... ५६२
२- श्रीरामका राजधर्मोपदेश । ( रामायण-प्रेमी ) ... ५१४	१८- ज्ञानदीपक-स्पष्टीकरण । ( साहित्यरत्न पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी ) ... ५६३
३- श्रीरामायणकी अनुष्ठान-विधि । ( पं० गौरीशंकरजी द्विवेदी ) ... ५१८	१९- महर्षि वशिष्ठकी महत्ता । ( श्रीकालीप्रसन्नजी चक्रवर्ती बी० ए० ) ... ५६६
४- दीजे सुमति [ कविता ] । ( श्री सुखराम चौबे 'गुणाकर' ) ... ५१९	२०- भक्त-भावना [ कविता ] ( श्रीमदनलालजी माथुर ) ५७०
५- आदर्श राज्य-व्यवस्था । ( श्री मी० एम० त्रिवेदीजी महोदय ) ... ५२०	२१- श्रीरामचरितमानस-विनोद । ( श्रीमन्त वादव- शंकरजी जामदार, रिटायर्ड सबजज ) ... ५७१
६- श्रीरामायणद्वारा जगत्का कल्याण । ( स्वामीजी श्रीचिदात्मनन्दजी ) ... ५२४	२२- शान्ति । [ कविता ] गोसाईंजी महाराज ... ५७७
७- भवनरक्षापाप । ( स्वामीजी श्रीभोजेबाबाजी ) ... ५२६	२३- माध्मदायिक शंका । ( श्री म० बालकरामजी विनायक, अयोध्या ) ... ५७७
८- मानसके दो रत्न । ( श्रीभैरवसिंहजी राठौर ) ... ५३६	२४- श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता । ( श्री श्रीवैष्णव पं० श्रीरामटहलदासजी ) ... ५७९
९- श्रीबाल्मीकीयका राम वन-नामन । ( पं० श्रीप्रभुदत्तजी प्रह्लादचारी ) ... ५३७	२५- श्रीरामायण-संख्या । ... ५८२
१०- मर्यादा-पुरुषोत्तम राम । ( कविराज पं० श्रीगयाप्रसादजी शास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति 'श्रीहरि' ) ... ५४४	२६- रामायणकालीन कला और उद्योगकी सूची । ( आयुत बी० एच० बडेर, एम० ए०, एल० एल० बी० ) ५८३
११- रामायण [ कविता ] । ( श्रीगंगाविष्णुजी पाण्डेय ) ५४७	२७- रामावतारका कारण । ( श्रीबनारसीदासजी 'प्रेम' ) ... ५८४
१२- रामचरितमानसकी विशेषता । ( श्रीदामोदरमहायसिंहजी, 'कविकिंकर' ) ... ५४८	२८- वाल्मीकीय रामायणका आधार और काल । ( श्रीगोविन्दनारायणजी आमोपा दाधीच बी० ए०, एम० आर० ए० एम० ) ... ५८५
१३- श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व । ( श्रीविन्दुमहाचारीजी ) ... ५५३	२९- सीताजीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त । ( शुद्धाद्वैतभूषण पं० श्रीज्येष्ठारामजी हरिजीवन शास्त्री ) ... ५८६
१४- रामायण और तुलसी । [ कविता ] ( श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी 'शङ्कर' ) ... ५५५	३०- रामायणमें शिवानुशासन । ... ५८७
१५- श्रीसुतीष्णजीकी प्रेमा-भक्ति । ( पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी ) ... ५५६	३१- रामचरितमानस और अप्पामरामायण । ( श्रीव्योहार राजेन्द्रसिंहजी ) ... ५८८
१६- हनुमान्जी [ हनुमन्त ] । ( रायबहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० ) ... ५६०	३२- चित्र-परिचय । ... ५८२

## चित्र-सूची

१- सीतान्वेषण ( रंगान ) ... ५९३
२- सुतीष्णका प्रेमोन्माद ... ५९६
३- जव-कुशका धनुर्वेद शिक्षण ... ५९५

## कल्याणके नियम

### उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

### प्रबन्ध सम्बन्धी नियम

(१) यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषांक सहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४= और भारतवर्षसे बाहरके लिये ५= नियत है। एक संख्याका मूल्य १= है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना १= मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते। ग्राहक प्रथम संकल्प १२ वें अंकनकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके बीचके किसी अंकसे दूसरी सालके उस अंक तक नहीं बनाये जाते। 'कल्याण'का वर्ष आरम्भमें शुरू होता है।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयमें 'कल्याण' दो तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी सामक 'कल्याण' ठीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरमें निम्नापदेश करना चाहिये। वहाँमें जो उत्तर मिले, वह भगता अंक निकलनेके कम-से-कम यान दिन पहले तक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। देर होनेसे या डाकघरका जवाब मिलानेपर पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें बर्बाद अवश्यन होगी।

(६) पता बदलनेकी सूचना (दि०दि०) महानेकी कृपण प्रतिपदाके पहले पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम पता साफ साफ लिखना चाहिये। महाने दो महानोंके लिये उद्भवाना हो तो अपने पोस्टमान्दको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

### लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेप रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकोंके है। अमुद्रित लेख बिना माँग जौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।

### आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको अपना नाम पता स्पष्ट लिखनेके साथ साथ ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबों कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(३) ग्राहकोंको चन्दा मनिआर्डर द्वारा भेजना चाहिये क्योंकि बी० पी० क० रुपये प्रायः देशमें पहुँचते हैं। कभी कभी तो प्रेस या मर्यादात्मक नहीं मिलते। इससे निश्चय नहीं होता कि बी० पी० लुटती या नहीं। रुपये न मिलने तक ग्राहकोंमें नाम नष्ट लिखा जाना, मिलनेपर ही आगेके अंक भेजे जाते हैं। यहाँ दोनोंमें एक ही है परन्तु पुराना ग्रन्थन सुविधाजनक और दूसरा अनुबिधा है। जिनका रुपया आना है उनको कल्याण पत्रमें भेजा जाना है।

(४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग सम्भारकर अलग अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तको या चित्रोंका मूल्य या और अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) माद्री चिट्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजनी चाहिये।

(६) मनिआर्डरके कृपणपर, रुपयोंका ताद्वान, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक नम्बर, पुरा पता आदि सब बानें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनिआर्डर आदि 'उद्यवस्थापक' 'कल्याण' 'गोमयपुर' के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि 'सम्पादक' 'कल्याण' 'गोमयपुर' के नामसे भेजने चाहिये।

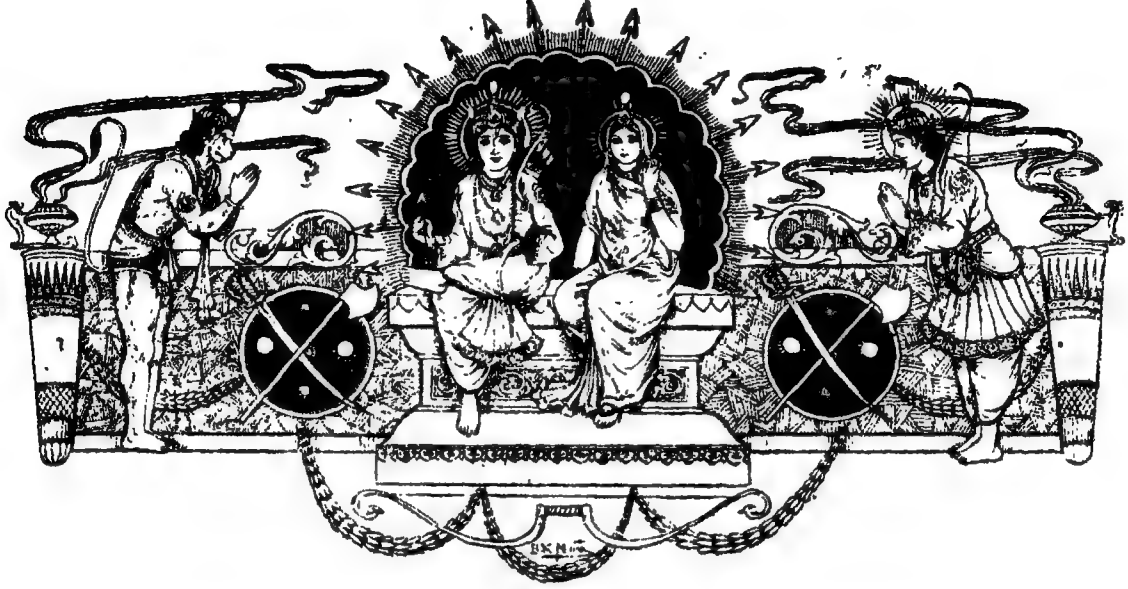


कल्याण



सीता-अन्वेषण ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमावाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



मायातीतं माधवमाद्यं अगदादिं, मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।  
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥

वर्ष ५  
खण्ड १

भाद्रपद कृष्ण ११ संवत् १९८७ अगस्त १९३०

संख्या २  
पूर्ण सं० ५०

## एक रामते मोर भल

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित ।  
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥  
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरानि गति ।  
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति ॥  
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ रामते सकल फल ।  
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक रामते मोर भल ॥

—गोमार्दजी महाराज



## श्रीरामका राजधर्मोपदेश



गमूर्ति धर्मात्मा भरतजी चित्रकूट-  
में श्रीरामजीके चरणोंपर पड़े हैं,  
औसुओंसे उनके चरण घोर रहे हैं,  
भरतका वेष तपस्वियोंका-सा है,  
अत्यन्त शोकके कारण थोड़े ही  
दिनोंमें उनका शरीर सूखकर काँटा  
होगया है। श्रीरामने प्रेमसे उठाकर

भरतको हृदयसे लगा उनका मस्तक सूँघा और  
गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे उनकी इस दशाका  
कारण पूछा। पहले तो पिताजीके सम्बन्धमें प्रश्न  
किये फिर वे राजधर्मके विषयमें पूछने लगे। श्रीराम-  
जीके प्रश्नोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय  
राजधर्म कैसा था? श्रीरामजीने भरतको विषादमय  
देखकर कहा—

‘हे सौम्य! तुम अभी बालकके समान हो,  
तुम्हारे हाथसे कहीं राज्य तो नष्ट नहीं हो गया? हे  
सत्यपराक्रम! तुम पिताजीकी सेवा तो करते हो?  
भाई! अपने इक्ष्वाकु-कुलके आचार्य धर्मप्रेमी,  
विद्वान् महातेजस्वी महर्षि वशिष्ठजीकी पूजा तो  
करते हो? माता कौसल्या, सुपुत्र उत्पन्न करने-  
वाली सुमित्रा और आर्या देवी कैकेयी तो तुमसे  
प्रसन्न हैं? विनयी, सर्वशास्त्रज्ञ, कर्मकाण्ड-निपुण,  
असूयारहित, कुलगुरु वशिष्ठजीके पुत्र, जो तुम्हारे  
पुरोहित हैं, उनका भलीभाँति सत्कार तो करते  
हो? बड़े बुद्धिमान्, वेदविधिके ज्ञाता, अत्यन्त  
विनयी गुरुपुत्र सुयज्ञ, जिनका तुमने अग्निकार्यके  
लिये नियुक्ति की है, हवनके पर्व और हवनके पश्चान्  
तुम्हें उसकी सूचना तो देने हैं? तुम देवता,  
गुरुजन, पितर, पिताके समान पूज्य बड़े बूढ़े लोग,  
वैद्य, ब्राह्मण और नौकरोंका यथायोग्य सत्कार  
तो करते हो? इसी प्रकार शास्त्रात्मके प्रयोग  
जाननेवाले, अर्थ-शास्त्रके विद्वान्, राजनीतिविशारद  
धनुर्वेदके ज्ञाता सुधन्वा पण्डित आदि सत्पुरुष

तुम्हारे द्वारा आदर तो पाते हैं? तुमने अपने समान  
विश्वासी शूर, विद्वान्, जितेन्द्रिय, कुलीन और  
ऊपरकी चेष्टासे ही मनके भावको समझ जानेवाले  
लोगोंको तो अपना मन्त्री बनाया है? क्योंकि  
शास्त्रज्ञ और मन्त्रकी रक्षा कर सकनेवाले मन्त्रियोंके  
द्वारा सुरक्षित मन्त्र ही राजाओंकी विजयका मूल  
कारण है।’

‘तुम जागनेके समय सोते तो नहीं हो?  
रातके पिछले पहर उठकर अपने कार्योंकी सिद्धिका  
उपाय तो सोचते हो? अकेले हो तो किसी बातका  
मनमाना निश्चय नहीं कर लेते? अथवा बहुत-से  
अयोग्य आदमियोंके साथ मिलकर तो निश्चय नहीं  
करना चाहते? तुम्हारे स्थिर किये हुए विचारका  
काम पूरा होनेके पहले ही लोगोंको पता तो नहीं  
लग जाता? थोड़े प्रयत्नसे बड़ा फल उत्पन्न  
करनेवाला उपाय निश्चय कर लेनेपर फिर उसके  
अनुसार कार्य करनेमें चिन्तन तो नहीं करते?  
तुम्हारे सामन्त राजा तुम्हारे किसी विचारका  
कार्यके सिद्ध होने या सिद्धिके समीप पहुँचनेके  
पहले ही जान तो नहीं लेते? तुम्हारे निश्चित  
विषयोंको तुम्हारे द्वारा या मन्त्रियोंद्वारा कहे जानेसे  
पूर्वही अनुमान, तर्क, युक्ति आदिके द्वारा कोई जान तो  
नहीं लेते? परन्तु तुम और तुम्हारे मन्त्रीगण दूसरोंके  
निश्चय किये हुए विषयोंको अनुमान, युक्ति और तर्कके  
द्वारा जान तो लेते हो? हजारों मूर्खोंकी अपेक्षा  
एक पण्डितको तुम अपने पास रखना अच्छा  
समझते हो न? क्योंकि संकटके समय पण्डित ही  
उत्तमोत्तम उपाय सोचकर राजाका महान् कल्याण  
करता है। राजा चाहे हजारों लाखों मूर्खोंको अपने  
पास रखे, उनसे समयपर कोई सहायता नहीं  
मिलती, पश्चान्तरमें एक ही बुद्धिमान्, शून्धीर,  
दक्ष, विचक्षण मन्त्री राजा या राजपुत्रको विशाल  
समृद्धिकी प्राप्ति करवा सकता है। तुम उत्तम

सेवकोंको उसम कार्यपर, मध्यमको मध्यम कार्यपर और छोटे सेवकोंको छोटे कामपर यानी जिसके लायक जो काम हो, उसको उसी कामपर नियुक्त करके सबकी ठीक व्यवस्था तो रखते हो ? बड़े-बड़े कामोंपर भलीभाँति परीक्षा किये हुए, बाप-दादोंके समयके मन्त्रियोंके वंशज, निष्ठाप, ऊँचे विचारवाले लोगोंको ही नियुक्त करते हो न ? तुम किसीको ऐसा उग्रदण्ड तो नहीं देते, जिससे दुखी होकर प्रजा या मन्त्री तुम्हारा तिरस्कार करते हों ? हे भाई ! जैसे कुलीन स्त्री पर-स्त्रीमें आसक्त पुरुषका तिरस्कार करती है वैसे ही यह करानेवाले ब्राह्मण तुमपर कोई अपराध लगाकर तुम्हें यज्ञके योग्य नहीं समझकर तुम्हारा अपमान तो नहीं करते ? धनके लोभसे राजाकी बीमारी बढ़ानेवाले वैद्यको, राजाके ऐश्वर्यको भ्रष्ट करनेके लिये विश्वासी सेवकोंको फाड़नेवाले सेवकोंको जो राजा प्राण-दण्ड नहीं देता वह स्वयं ही मारा जाता है। हे भरत ! तुम्हारा सेनापति तुमसे सदा प्रेम करनेवाला शूर-वीर, धीर, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन और चतुर तो है न ? युद्धकलामें निपुण, बलवान्, वीरतामें परीक्षा किये हुए प्रधान योद्धाओंको तुम सदा सम्मान-दानसे प्रसन्न तो रखते हो न ? सेनाको अन्न और वेतन प्रतिमास ठीक समयपर मिल जाता है न ? इस कार्यमें कुछ भी देर तो नहीं होती ? क्योंकि सैनिकोंको अन्न और वेतन समय-पर न मिलनेसे वे विद्रोही हो उठते हैं जिससे बड़ा अनर्थ हो जाता है। तुम्हारे कुलके प्रधान लोग तुमपर प्रेम तो रखते हैं न ? वे तुम्हारे हितके लिये समयपर स्वेच्छासे सदा प्राण देनेको तैयार तो रहते हैं न ? हे भाई ! अपने ही देशके विद्वान्, चतुर, प्रतिभाशाली, जैसा कहा हो वैसा ही कहनेवाले पण्डितोंको ही तुमने दूत बनाया है न ?

हे भरत ! एक दूसरेको न पहचाननेवाले तीन-तीन गुप्तदूतोंद्वारा तुम अपने राज्यके पन्द्रह और दूसरेके राज्यके अठारह तीर्थोंका परा पता तो रखते हो न ?

१ मन्त्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति ५ द्वारपाल, ६ रनिवासकारक्षक, ७ कारागृह-मध्यक्ष (जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट), ८ खजाञ्ची, ९ राज्यकी आक्षा सुनानेवाला, १० चकील, ११ न्यायकर्त्ता (जज), १२ व्यवहार-निर्णायक (पञ्च या जूरी), १३ सेनाको वेतन चुकानेवाला, १४ कर-संग्रहकर्त्ता (तहसीलदार) १५ नगराध्यक्ष, (म्युनिसिपलिटिका चेयरमैन) १६ राष्ट्रान्तःपाल (सीमारक्षक), १७ दुष्टोंको दण्ड देनेवाला, और १८ जल, पर्वत और वनोंके किलोंकी रक्षा करनेवाला, ये अठारह तीर्थ हैं, इनमें मन्त्री, पुरोहित और युवराजको अलग कर देनेपर पन्द्रह बचते हैं। इन सबके कार्योंपर राजाको जकर निगरानी रखनी चाहिये। हे शत्रुदमन ! देशका अहित करनेवाले जिन लोगोंको तुमने देशमें निकाल दिया है, वे यदि देशमें फिर आ बसते हैं तो तुम उनको दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करने ? तुम नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते ? परलोक-ज्ञानसे शून्य अनर्थपरायण, पाण्डित्याभिमानि लोगोंसे बहुत बुराई होती है। ऐसे दुर्बुद्धि लोग प्रामाणिक धर्म-शास्त्रोंके विद्यमान रहनेपर भी शुष्क तर्क-बुद्धिसे अर्थहीन उपदेश किया करते हैं। भाई ! हमलोगोंके धर्म पूर्वजोंके द्वारा सेवित यथार्थ अयोध्या (जहाँ युद्धार्थ कोई भी शत्रु नहीं आता) नामवाली और मजबूत दृग्वाजोंवाली, हाथी, रथ और घोड़ोंसे भरी हुई, अपने-अपने कर्ममें लगे हुए जितेन्द्रिय उत्साही और उत्तम हजारों ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंसे युक्त, अनेक प्रकार बड़े-बड़े सुन्दर महलोंवाली, अनेक प्रकारके विद्वान् और धन-ऐश्वर्यसे परिपूर्ण विशाल नगरीकी भलीभाँति रक्षा तो करते हो न ? हे भाई ! जिसमें अनेक देव-मन्दिर हैं, अश्वमेधादि यज्ञ करने योग्य अनेक स्थल हैं, जो बुद्धिमान् मनुष्योंसे पूर्ण है, नदी, तालाब आदि जलाशयोंसे युक्त है, जिसमें सभी स्त्री-पुरुष सुप्रसन्न हैं, जहाँ अनेक सभाएँ और उत्सव हुआ करते हैं, अच्छी खेती होती है, पर जो

बादलोंपर निर्भर नहीं है, जो गौ आदि पशुओंसे भरा है, जहाँ पशुहिंसा बिल्कुल नहीं होती जहाँ हिंस्र पशु नहीं हैं अर्थात् हिंस्र पशुओंने हिंसा छोड़रक्की है, किसीको किसी प्रकारका भय नहीं है, अनेक धातुओंकी खानें हैं, जहाँ पापा मनुष्य नहीं रहते, ऐसा अपने पूर्वजोंद्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली देश तुम्हारे शासनमें सुखी तो है ! हे भाई ! अपने देशमें रहनेवाल खेती और गोरक्षापर आजीविका चलानेवाले वैश्योंपर तुम प्रेम तो करते हो न ? खेती और व्यापारमें लगे हुए वश्योंकी सारी इच्छाओंको पूर्ण करके तुम उनका भलीभाँति संरक्षण तो करते हो न ? देशमें बसनेवाली प्रजाका पालन करना राजाका धर्म है। तुम स्त्रियोंका किसी प्रकार अपमान तो नहीं होने देते हो ? स्त्रियोंका भली-भाँति सन्तोष तो कराते हो ? वे तुमसे सुरक्षित तो रहती हैं ? तुम उनके वचनोंपर अतिविश्वास तो नहीं करते ? और उन्होंको इष्ट मानकर अपनी गुप्त बात तो नहीं कह देते हो ?

हे भारत ! जहाँ बहुत-से हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसा अपना हाथीवन तो सुरक्षित है ! तुम अच्छे हाथी, हथिनी और घोड़ोंके संग्रहमें तृप्त तो नहीं होते ! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल राजमार्गोंपर जाकर प्रजाको अपने सुसज्जित शरीरसे दर्शन तो देते हो ! तुम्हारे कर्मचारी, निशङ्क होकर तुम्हारे सामने बेअदबीसे तो नहीं आते ! अथवा तुमसे डरकर या तुम्हें अभिमानी समझकर तुम्हारे सामने आनेमें सङ्कोच तो नहीं करते ? कर्मचारियोंको न तो बहुत पास रखना चाहिये और न बहुत दूर ही। बीचका मार्ग ही अच्छा है। हे भाई, तुम्हारे सब किले धन-धान्य, हथियार, जल, अनेक प्रकारके यन्त्र-शिल्ली और धनुर्धारी वीरोंसे तो भरे हैं ! तुम्हारी आमदनी खर्चसे ज्यादा तो है ! तुम्हारा धन नाचने गाने और अशुशामद करनेवाले अपात्रोंमें तो खर्च नहीं होता ! राजाको आमदनीसे खर्च कम करना चाहिये और वह भी प्रजाको अन्न,

जल, वायु आदि दैवी वस्तुओंसे यथायोग्य सुख पहुँचानेवाले देवों, प्रजाके सुखाकांक्षी पूज्य पितृ-गणों, विद्यादान देनेवाले ब्राह्मणों, पूज्य अतिथियों, राज्यरक्षक योद्धाओं, सम्बन्धी और मित्र मित्रोंके पोषण करनेमें और प्रजाके सुखके कार्योंमें करना चाहिये।

हे भाई ! तुम्हारे राज्यके न्यायाधीश, किसी सदाचारी साधुर कोई भूठा अपराध लगनेपर धर्मके ज्ञाता पुरुषोंके द्वारा निर्णय कराये बिना ही धनके लोभसे उसे दण्ड तो नहीं दे देते ! अथवा घरके मालिक या तुम्हारे सिपाही द्वारा पकड़े हुए चोरको, उसके चोर सिद्ध हो जानेपर एवं चोरीका माल पकड़ा जानेपर भी लोभसे छोड़ तो नहीं देते ! सारांश कि राजाको यह खयाल रखना चाहिये कि जिसमें उसके राज्यमें निरपराधी प्रजा दण्डित न हो और अपराधी छूट न जाय ! हे भाई ! तुम्हारे शास्त्रज्ञ मन्त्रीगण धर्मा और गरीबके मामलेमें लोभ छोड़कर निष्पक्ष यथार्थ न्याय तो करते हैं ? क्योंकि राजाके अन्यायके कारण बिना अपराध दण्डित हुए मनुष्योंकी आँसूमें जो आँसू गिरने हैं वे भोग-विलासके लिये राज्य करनेवाले राजाके पुत्र और पशुधनको नष्ट कर डालते हैं। हे प्रिय ! तुम वृद्धों, बालकों और प्रधान वर्गोंका दान, स्नेह और मधुर वचनोंमें सन्कार तो करते हो ? इसी प्रकार देवनाओं, गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, अतिथियों, देवमन्दिरों और तपस्या आदि द्वारा पवित्र हुए ब्राह्मण आदिको प्रणाम तो करते हो ?

भाई ! प्रातःकालका समय धर्मोपासनाका है, उस समय अर्थोपासनाके कार्यमें लगकर धर्मका बाध तो नहीं करने ? ऐसे ही मध्याह्नकाल राज-काज देखनेका यानी अर्थ-संग्रह करनेका है, उस समय धर्मकार्यमें लगकर अर्थका बाध तो नहीं करते ? अथवा इन्द्रिय-मोहार्थ, कामके वश हो धर्म अर्थ दोनोंको बाधित तो नहीं करते हो ! समयका उचित विभाग करके ही धर्म, अर्थ और कामका यथा-

योग्य आचरण करते हो न ? भाई ! देशके विद्वान् ब्राह्मण और समस्त प्रजाजन तुम्हारा कल्याण तो चाहते हैं ?

नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता ज्ञानियोंका संग न करना, आलस्य, इन्द्रियोंके वश होना, महत्त्वपूर्ण कार्यका अकेले ही विचार करना, विपरीत दृष्टिवाले अयोग्य पुरुषोंकी सलाह लेना, निश्चित किये हुए कार्यका आरम्भ न करना, गुप्त मन्त्रणाओंका भेद खोल देना, प्रतिदिन प्रातःकाल नित्यकर्म न करना, सब ओरके शत्रुओंपर एक ही साथ चढ़ाई कर देना, और महापुरुषोंको आने देना

सिंहासनसे उठकर उसे प्रणाम न करना ये चौदह राजदोष समझे जाते हैं, तुममें इनमेंसे एक भी दोष तो नहीं है न ?

हे बुद्धिमान् भरत ! दशवर्ग<sup>१</sup>, पञ्चवर्ग<sup>२</sup>, सप्तवर्ग<sup>३</sup>, चतुर्वर्ग<sup>४</sup>, अष्टवर्ग<sup>५</sup>, और त्रिवर्ग<sup>६</sup>, को तो तुम तत्त्वसे जानते हो ? त्रिविध विद्या<sup>७</sup>, की ओर तो तुम्हारा ध्यान है न ? बुद्धिसे इन्द्रियोंको जीतनेका उपाय<sup>८</sup>, पद्मगुण<sup>९</sup>, दैवी आपत्ति<sup>१०</sup>, मानुषी आपत्ति<sup>११</sup>, राज-कर्तव्य<sup>१२</sup>, बीसवर्ग<sup>१३</sup>, पाँच प्रकृति<sup>१४</sup>, राजमण्डल<sup>१५</sup>, पञ्चयात्रा<sup>१६</sup>, दण्डविधान, एवं सन्धि और विग्रह, ये सब नीतिशास्त्रके तत्त्व हैं । इनमें

१-सिंहास, जूआ, दिनमें सोना, व्यर्थ बकवाद, अति खा-संग, माँदरा आदि नशेली चीजोंका सेवन, नाचना, गाना, बाजे बजाना और बेमनस्य भटकना । यह कामसे उत्पन्न होनेवाला 'दशवर्ग' है ।

२-पाँच प्रकारके किले बनाना—समुद्र, नदी, तालाब आदि जलम्बानमें, पर्वतपर या पर्वतोंके बीचमें, वृक्षोंपर या वृक्षोंसे भरे जंगलमें, ऊपर जमीनमें (रणक्षेत्रमें) और हृषियारोंके बीचमें । यह पञ्चवर्ग है ।

३-राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, राजाना, सेना और महायुद्ध बन्धु, यह सप्तवर्ग है, इनकी परस्पर सहायतासे राज्य सुदृढ़ होता है ।

४-साम, दान, भेद और दण्ड यह चतुर्वर्ग है ।

५-चिड़ना, दुःसाहस, श्रेह, ईर्ष्या, अमुषा, अर्धदोष बचनकी कठोरता और कठोर दण्ड, यह अष्टवर्ग है । यह क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका समूह है ।

६-धन, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग है । उस्ताह, प्रभु और मन्त्रको भी त्रिवर्ग कहते हैं ।

७-वैदिक धर्मज्ञान, वेदा-व्यापार आदि वृत्तिका ज्ञान और राजनीतिका ज्ञान ।

८-यय, नियम, अमन प्रणायाम और विचार विवेक आदि योग और ज्ञानके साधन ।

९-सन्धि, विग्रह, दान, आमन, ईर्ष्याभाव और आश्रय ।

१०-अग्नि, बाढ़, अकाल, भूकम्प, वज्रपात, अनावृष्टि, महामारी आदि ।

११-चोर, डाकू, शत्रु, राजद्रोही, अधिकारी, और राज्यलुभी आदि मनुष्योंके द्वारा प्राप्त होनेवाली विपत्तिया ।

१२-शत्रुपक्षके लोभी, अधिमान्नी, क्राधी और दरपोक मनुष्योंको धन मान देकर, प्रियकार्य कर और भय दिलाकर वशमें करना ।

१३-बालक, वृद्ध, दीर्घकालका रोगी जातिबहिष्कृत, दरपोक, दरपोक साधियोंवाला, लोभी, लोभी साधियोंवाला बैरागी, अशुद्ध विषयासक्त, चञ्चल, देव और ब्राह्मणोंका निन्दक, अभागी, प्रारब्धवादी, अकालपंडित, सेनाहीन, अयोग्य स्वामिने निवास करनेवाला, बहुत शत्रुओंवाला, कालपीडित, और सत्यधर्ममें प्रीति न रखनेवाला । यह बीसवर्ग है । ऐसे शत्रुओंमें सन्धि करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इनपर विजय प्राप्त करना महज है ।

१४-मन्त्री, देश, किला, खजाना और दण्ड, यह पाँच प्रकृति हैं ।

१५-विजिगीषु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पाणिग्रह, आक्रमण, पाणिग्रहासार, आक्रमणसार, मध्यस्थ और उदात्तान, ये द्वादश राजमण्डल हैं ।

१६-विशृङ्खलान (बन्दी सेना साथ लेकर जाना) संधायवान (जिस राज्यपर आक्रमण किया था, उससे सन्धि करनेके बाद दूसरे राज्यपर हमला करने जाना) संभूषवान (शत्रुओंको साथ लेकर जाना), प्रसंगतोवान (जिसपर हमला करने जा रहे थे, उसको छोड़कर बीचमेंही दूसरे राज्यपर हमला करना) और व्येक्षयान (जिसपर चढ़ाई की थी, उसे बलवान समझकर उसके मित्रपर चढ़ाई करना)

कुछ ग्रहण करने योग्य, कुछ त्याग करने योग्य और कुछ प्रतीकार करने योग्य हैं। तुम इन सबके भेदोंको समझते हुए यथायोग्य ग्रहण, त्याग और प्रतीकार तो करते हो न ?

हे बुद्धिमान ! तुम शास्त्रानुसार तीन चार निपुण मन्त्रियोंसे एक साथ या उनके मनकी बात जाननेके लिये अलग अलग राय लेकर तो सारे कार्य करते हो न ? वेदोंक क्रियाओंको करके तुम वेदको सफल तो करते हो ? तुम्हारे सारे राज्यकार्य सफल तो होते हैं ? उत्तम आचरण करके तुम ध्रुवण किये शास्त्रोंको तो सफल कर रहे हो ? धर्मपरायणा और सन्तानवती होकर स्त्रियाँ तो सफल हैं ? भाई भरत !

मेरे कथनानुसार ही तुमने आयु, यश, धर्म, अर्थ और कामको प्रदान करनेवाली सद्बुद्धिका आश्रय ले रक्खा है न ? तुम अपने पिता-पितामहादिके व्यवहारके अनुकूल ही व्यवहार करते हो न ? क्योंकि वही शुभ और सत्पथा वृत्ति है। तुम खादिष्ट भोजन अकेले तो नहीं खाते ? अधिक प्रेम होनेके कारण भोजन चाहनेवाले मित्रोंको यथेच्छ भोजन तो दैते हो न ? इसप्रकार धर्मानुसार शासन करनेवाला राजा अपनी प्रजाका पालन करके समस्त पृथ्वीपर अपना आधिपत्य स्थापित करता है और मृत्युके अनन्तर स्वर्ग या परमधामको जाता है। यह वर्णन वाल्मीकिरामायणके आधारपर लिखा गया है।

— रामायण-प्रेमी

## श्रीरामायणकी अनुष्ठान-विधि

( लेखक : पं० गीतराजकर्मज : डिबेरी )



स्वामीजीने रामचरितमानसमें जो भक्ति-मुखा-सरिता प्रवाहित की है उसका क्षेत्र अवतारबाध और भक्ति है, यह सर्वसम्मत है। शुद्ध परमात्म-ज्ञानभानुके आबोकसे उसके चमकृत होनेके साथ ही उसका उद्गम और अवसान उम्र मनातन-तत्त्व तन्त्रमें होना है जिसके बिना यह सारी रचना अपूर्ण रह जाती है। यह है राम-नाम-जपकी महिमा। मन्त्र-जप तन्त्र-शास्त्रका मूल है। तान्त्रिकोंकी सारी शक्तिका केन्द्र मन्त्र-जपमें ही होता है। तन्त्रमें हमारी श्रद्धा आदिकालसे है। वेदसे लेकर आधुनिक कालके नानापुराणनिगमागमसम्मत रामचरितमानसतक जितने ग्रन्थ मनातनधर्मपर लिखे गये हैं सबमें तन्त्रका प्रभाव है। इसकी शक्तिके विषयमें गोस्वामीजीने स्वयं कहा है—

मंत्र परम लघु जामु वस विधि हरि हर भव सर्व ।

महामन्त्र गजराजकई वस कम अंकुश सर्व ॥

मंत्र महामणि विषय व्यालके । मेटत कठिन कुअंक मानके ॥

इसप्रकार मन्त्र-माहात्म्यके द्वारा तन्त्रशास्त्र (आगम)का

सार रामनाम श्रीरामचरितमानसका प्राण है। इस प्राणकी प्रतिष्ठा कथाके द्वारा हुई है। ज्ञान और भक्ति दो पारस्व-सहकारी हैं।

इसप्रकार प्राण-प्रतिष्ठा हो जानेके अनन्तर मन्त्रका यजन-पूजन मनातन कृत्य है, जो 'मन्त्रा वे देवाः' के अनुसार वैदिक युगके यज्ञ-विधानके उपरान्त पौराणिक कालके नवधाभक्तिके एकीकरणमें व्यक्त होना है। इसीका प्रत्यक्ष स्वरूप पौराणिक कथाओंके माहात्म्यमें प्राप्त होता है। इन कथाओंका अनुष्ठान, इनकी पूजा-पाठ-विधि भारतके प्रत्येक प्रान्तोंमें पायी जाती है। इन कथाओंके द्वारा तन्त्रशास्त्र-विहित मन्त्र-देवकी प्राण-प्रतिष्ठा, यजन-पूजनादि विधियाँ समारोहके साथ की जाती हैं, इनमें मुख्यरूपसे भक्ति और गौरवरूपसे ज्ञान-वर्षा होती है। समाजकी नैतिक और आध्यात्मिक दशाका सौम्य और समुन्नत बनानेमें इन अनुष्ठानोंका बड़ा हाथ रहा है और इनके द्वारा संस्कृतिकी रक्षा भी हो सकी है। यहाँ रामायणकी अनुष्ठान-विधिपर कुछ लिखा जाता है। परम भागवत नारदमुनिने भीसप्तकुमारसे ध्यानपूर्वक जो रामायणपाठकी

विधि बतलायी थी उसीका वहाँ संछेपमें दिग्दर्शन कराया जाता है।

परम पुनीत चैत्र, कार्तिक या माघमासमें श्रीरामायणकी कथा नौ दिनतक निम्न अष्टापूर्वक कहलावे। शुक्ल-पक्षमें पञ्चमीसे कथारम्भ करे। प्रतिदिन अपामार्गकी शाखा ले दन्त-संशुद्धि कर स्नानादि करे और शुद्ध शुक्लवस्त्र धारणकर, नारायणका नाम-स्मरण करता हुआ आचमन करके अपने बन्धु-बान्धवोंको बुलाकर रामभक्तिपरायण हो स्वमिवाचन करे। पश्चात् सङ्कल्प करके भक्तिभावसे पञ्चदेवताओंकी अर्चनाकर श्रीमद्रामायणके पुस्तककी अर्चना करे। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताकी मूर्ति स्थापित करे और हनुमान्की भी प्रतिमा रखे। आवाहन करके आसनादि प्रदान करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जैवेद्यसे भक्तिपूर्वक श्रीनारायणकी पूजा करे और प्रत्यह एक बार, दो बार या तीन बार जितना हो सके अपनी शक्तिके अनुसार होम करे। तदनन्तर कर्मनिष्ठ उत्तम ब्राह्मणसे श्रीरामायणकी कथा अवश्य करे। इसीप्रकार नव दिनतक निम्न कथा सुने। नव दिन कथा समाप्त होनेके पश्चात् कथावाचक ब्राह्मणको गो, बछ, इत्यादि यथाशक्ति प्रमत्ततापूर्वक भक्तिभावसे दान करे और श्रीमद्रामायणकी पुस्तक अपनी शक्तिके अनुसार विद्वान् ब्राह्मणोंमें बाँटे।

श्रीरामचरितमानसके नवार्द्धिक पाठका क्रम इसप्रकार है-

प्रथम दिवस बालकाण्डके 'जो सुमति मिलि देह' इस सोरटेसे लेकर 'दिगम्बर कामारि' इस दोहेतक।

द्वितीय दिवस 'सुनु शुन कथा भवानि' इस सोरटेसे 'मत्ताननः पद नन्दि प्रभु' इस दोहेतक।

तृतीय दिवस—'सीय स्वयंवर देखिब जाई' इस चौपाईसे 'कान्ह शौच सब सहज शुचि' इस दोहेतक।

चतुर्थ दिवस—'भूप बिलोकि लिए उरलाई' इस बालकाण्डकी चौपाईसे 'दयामल गौ किशोरवर' इस अयोध्याकाण्डके दोहेतक।

पञ्चम दिवस—'केटि मनोज लगवानि हारे' इस चौपाईसे 'राम गैल शोभा निगलि' इस दोहेतक।

षष्ठ दिवस—'नव केवट ऊँच चदि पारि' इस अयोध्याकाण्डकी चौपाईसे 'हारि परा खन बहुत बिधि' इस दोहेतक।

सप्तम दिवस—'जेहि विधि कपट कुरंगमंग' इस आरण्यकाण्डके दोहेसे लंकाकाण्डके 'कह भाग्यसुन सुनहु प्रभु' इस दोहेतक।

अष्टम दिवस—'पवनननयक वचन सुनि' इस लङ्काकाण्डके दोहेसे उत्तरकाण्डके 'जहै नह धावन पठइ पुनि' इस दोहेतक।

नवम दिवस 'भवधपुनी अनि अगिर बसई' इस चौपाईसे उत्तरकाण्डके अन्ततक।

इसप्रकार श्रीरामायणका पाठ समाप्त होनेपर प्रतिदिन भारती करे और मङ्गलगान करे तथापश्चात् सुमन बर्पाकर श्रीनारायण-गुण-गानकर कथा समाप्त करे। जबतक कथा होती रहे तबतक भगवान् श्रीराम और शिवजीका नाम-जप करता रहे। इसप्रकार रामायणकथाका वाचन करवानेसे ऋद्धि-सिद्धि, सुख-सम्पत्ति और परमधाम तक, अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मनचाही सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

## दीजे सुमति

'दशरथजी' के 'लाल', 'जनकजी' के 'जामाता'।

'मीनाजी' के 'देव', 'भरतजी' के वर 'भ्राता'।

'शंकरजी' के 'पूज्य', 'माहतीजी' के 'स्वामी'।

'रावण' के 'अरि' प्रबल, 'सुरों' के 'बल' निष्कामी।

'तुलसी' के सर्वस्व 'प्रभु', विप्र 'गुणाकर' की विनति।

चरण—कमलमें होय रति, यही राम दीजे सुमति।

सुखराम जीवे 'गुणाकर'

## आदर्श राज्य-व्यवस्था

अर्थात्

रामराज्य और प्रजासन्तोष

( लेखक—जी० सी० एस० त्रिवेदी महोदय )



त्येक देशकी, देशवासियोंकी, समाजकी और समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी आर्थिक, शारीरिक, औद्योगिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति प्रधानतः उनकी राज्यव्यवस्थापर अवलम्बित है। चारों दिशाओंके प्रायः सभी देशोंने इस सर्वमान्य सिद्धान्तका अनुसरण किया है और इसीजिये वे अपने अपने वहाँ आदर्श राज्य-व्यवस्थाकी प्रतिष्ठाके लिये प्रायःप्रायः प्रयत्न कर रहे हैं।

एक या अनेक कारणोंसे बढ़ते हुए दुःख, दारिद्र्य, बेकारी और असन्तोषके कारण साधारण प्रजाको जीवन-निर्वाहके आवश्यक साधनोंकी प्राप्तिमें भी उत्तरोत्तर कठिनाता बढ़ती जा रही है। आत्मसम्मानकी सम्मान्य भावनाका भी सहजमें पोषण नहीं होता। इसप्रकारके अनेक कारणोंसे प्रत्येक देशकी अधिकांश प्रजाका जीवन क्रमशः मधुरिमा-शून्य बनता जा रहा है। उनमें तीव्रता और कटुता बढ़ रही है। इस प्रवृत्तिसे कई जगह तो राजा-प्रजामें कटुता उत्पन्न कर दी है। प्रजामें बढ़ती हुई इस असन्तोषकी भावनासे अनेक सत्ताओं और राजाओंका निर्वासित करा दिया है और अनेक साम्राज्योंके सिंहासन ढूँढ़ा दिये हैं।

कैसी राज्य-व्यवस्थासे प्रजा सुखी, सन्तोषी, संपन्न और आत्मवशयुक्त हो सकती है, इस प्रश्नसे जगत्के महापुरुषोंको भी चक्करमें डाल रक्खा है। इसीजिये यूरोपके पृथक् पृथक् देशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी राज्य-व्यवस्था (Forms of Government) का प्रयोग हो रहा है। कबो-कबो मनुष्योंके सुख, सन्तोष और जीवनकी आहुतिसे गली जानेवाली इन राज्य-व्यवस्थाओंमें कौन-सी उपादेय है, इस बातको अभी पाश्चिमात्य प्रजा एकस्वरसे निश्चयरूपसे नहीं बतला सकी है। उसने अभागतः अपनी राज्य-व्यवस्थाका आदर्श अर्थात् आदर्श राज्यव्यवस्था (Ideal form of Government) प्रतिष्ठित नहीं की है।

समुचित स्पष्ट आदर्शके अभावसे पाश्चात्य देशोंकी स्थिति—उन राष्ट्रोंकी स्थिति भुवहीन जहाजके सदृश है।

ध्येय वा आदर्शके अभावके कारण, ध्येयप्राप्तिके साधनोंपर भी आवश्यक विचार नहीं किया जा सकता। साधनका समुचित निर्देश किये बिना राज्य-व्यवस्थाके सिद्धान्तका निश्चय न होना स्वाभाविक ही है।

सौभाग्य-वश इस विषयमें भारतकी स्थिति पाश्चिमात्य देशोंकी अपेक्षा अच्छी है। स्वराज (Home Rule) स्वतन्त्रता (Independence) और औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) आदि पारिभाषिक शब्दोंको एक ओर रखकर भारतके जनसाधारणसे राज्य-व्यवस्थाका आदर्श पूछा जाय तो वे तुरन्त 'रामराज्य' का नाम लेंगे।

जगभग समस्त भारतद्वारा स्वीकृत और समस्त जगत् द्वारा सहज ही आदर्शरूपमें आवर्तित रामराज्यकी इतनी बशोर्गाथा क्यों गायी जानी है? इस प्रश्नका उत्तर पानेके लिये सम्पूर्ण रामायणको भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओंसे पढ़ जानेकी आवश्यकता है। विभिन्न धर्मावलम्बियोंकी दृष्टिमें भी रामायण धर्मग्रन्थकी हैसियतसे एक सर्वमान्य ग्रन्थ है। किसी भी दूसरे धर्मग्रन्थकी अपेक्षा इसका पठन-पाठन सब भी अधिक होता है। परन्तु राजनीतिक (Political Standpoint) दृष्टिसे इसका अभ्यास करनेवाले नहीं के बराबर हैं। यदि इस ग्रन्थका राजनीतिक दृष्टिसे चारोंकीके साथ अध्ययन किया जाय और वह जगत्के सामने रक्खा जाय तो आज जैसे रामराज्यके लिये भारत तलमला रहा है, रामायण-वर्णित राज्य-व्यवस्थाके लिये वैसी ही तलमलाहट सारे जगत्में हो जाय, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

प्रत्येक राज्यमें राजा (Ruling Power-Sovereign authority) और प्रजा (Ruled Subject) वे दो मुख्य वर्ग होते हैं। राजाका प्रजापर और प्रजाका राजापर असर (Interaction) होता है। राजाका भला बुरा होना उसकी शिक्षा (Education) और आसपासके वातावरण (Surroundings) पर अवलम्बित है। श्रीरामको एक राजकुमार (Prince) की हैसियतसे जैसी शिक्षा मिली थी और उनके आसपास जैसा वायुमण्डल उपस्थित



किया गया था, वैसी शिक्षा और वैसा वातावरण हो तो आज भी श्रीराम-सरीखे राजा हो सकते हैं और रामराज्यकी स्थापना हो जा सकती है। रामराज्यकी प्रजामें उस समय वैसा सम्मोह, सुख और आवादी थी वैसी ही स्थिति आज भी उपलब्ध की जा सकती है। इस दृष्टिसे देखनेपर पता चलेगा कि यह रामायण राजा और प्रजा दोनोंके लिये एक बड़ा ही उपयोगी राजनीतिक-शास्त्र है।

जैसे समष्टि (Society) का मुख्य आधार व्यक्ति (Individual) है, वैसे ही राज्यका मुख्य आधार एक कुटुम्ब है। आदर्श कुटुम्ब (Ideal family) आदर्श राज्यका प्रथम सोपान है। यह आदर्श कुटुम्ब यदि राज-कुटुम्ब होता है तो उसका प्रभाव सारे समाजपर बहुत ही गहन पड़ता है। रामायणका अर्थ है एक आदर्श राज्य-कुटुम्बका इतिहास। दशरथ, बरिष्ठ, विश्वामित्र, राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि इस आदर्श राज्य-कुटुम्बके व्यक्ति हैं। हनुमान्, अंगद प्रसिद्ध राज्य-सेवक हैं। आदर्श राजाके प्रति आदर्श राज-भक्तिके मूर्तिमान् सिद्धान्त रामायणके पद्य-पद्यमें भरे हैं।

रामायण जनताके सामने केवल राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, विश्वामित्र, हनुमान् आदिके आदर्श (Ideals) चरित्र ही उपस्थित नहीं करती, वह इस उच्च आदर्शके साथही दैनिक जीवन-व्यवहारमें Actual every day life) आनेवाले कितने ही साधारण और सांसारिक भोगदृष्टिवाले पात्रोंको भी उपस्थित करती है। कैकेयी, मन्थरा, शूर्पणखा, बालि, रावण आदि इसी श्रेणीके पात्र हैं।

‘पहलेका समय अच्छा था। उस समय लोग भी भले थे। अब इस ओर कलिकालमें तो चरित्रका माहात्म्य ही नहीं रहा।’ इसप्रकार कहनेवालोंको रामायण खूब झुँहलोक जवाब देती है। कलियुगमें नहीं, त्रेतायुगमें भी—किसी विदेशी राज्यमें नहीं, साष्टान् रामराज्य और सास भगवान् रामचन्द्रजीके महलोंमें भी भले और बुरे दोनों ही तरहके मनुष्य थे, नेकी-बदी, अच्छे-बुरे और पुण्य-पापकी आवना सृष्टिके प्रारम्भसे ही चली आती है और सृष्टि विनाशके पूर्व उसका सर्वथा विनष्ट होना भी कठिन ही है। यह सत्य सभीको जान रखना चाहिये। पापका—दुष्टात्माओंका सर्वथा अभाव तो असम्भव है। हाँ, राम जैसे पुण्यशील चरित्रसे पापात्मा मनुष्य भी अपना चरित्र निर्मल और

अमर कर सकता है। दुष्टकी—पापकी—केवल विनष्ट करनेमें नहीं, अपने चरित्र-विकाससे ही उसका पराजय करनेमें मनुष्यकी महत्ता निहित है, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे यही शिक्षा मिलती है।

भगवान् रामचन्द्रजी किसप्रकारकी शिक्षा और किस-प्रकारके संयोगोंसे एक आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श शिष्य और आदर्श स्वामी हो सके थे, इसका सत्य जाननेके लिये तो रामायणका बहुत ही सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करना आवश्यक है, परन्तु भगवान् रामचन्द्रजीके जीवनके कतिपय मुख्य-मुख्य प्रसंगोंका सहज विहंगावलोकन (Birds-eye-view) करनेसे भी चरित्रके विकासमें—राज्य-व्यवस्थामें—आदर्श राज्यके संगठनमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

महाराज दशरथके वृद्धावस्थामें चार पुत्र हुए। इन चारों पुत्रोंमें उनकी रामचन्द्रजीपर अधिक प्रीति थी। राजकुमारके पन्द्रह-सोलह वर्षकी किशोरावस्थाको पूरी करनेके पहले ही महर्षि विश्वामित्र-राज्यके एक प्रजाजन—ने अपने यशकी रक्षाके लिये राजासे उनको माँगा।

तपस्वी मुनियोंका—सत्पुरुषोंका—राज्यकी सदाचारी प्रजाका यथायोग्य संरक्षण करना राज्यका सर्वप्रथम कर्तव्य है, महाराज दशरथ इस बातको भलीभाँति जानते थे। अतः उन्होंने राम-लक्ष्मणको विश्वामित्रके साथ भेज दिया। रामराज्यकी राज्य-व्यवस्थाका—प्रजाके प्रति प्रेमका—राजाके उत्तरदायित्वके ज्ञानका—प्रजाके दुःख सुनकर उसे निर्भय रखनेके लिये राजाकी तत्परताका यह एक अमूल्य उदाहरण है। दशरथजीके दरबारमें शूरवीर सेनापति भी थे, परन्तु प्रजाका संरक्षण करनेके लिये राजा अपने लाड़ले पुत्रोंको राजसोंके साथ लड़ने भेज देते हैं, यह रामराज्यकी महत्ता है। जो राजा अपनी प्रजाके संरक्षणकी बेदुआपर अपने प्यारे और कोमल अंगके बच्चोंको होस देनेमें जरा भी नहीं हिचकता, उस राजाके प्रति प्रजाकी कितनी और कैसी भक्ति होगी? इसका अनुमान सभी कर सकते हैं।

विश्वामित्रके आश्रममें रामचन्द्रजीने क्या किया? उन्होंने ऋषि-मुनियोंको यज्ञ करनेके लिये कहा और स्वयं उनकी पर्वकुटियोंके पहरेदार बने। जन्मसे ही राज्यवैभवमें पड़े हुए इन दोनों बालकोंको ऋषियोंका संरक्षण करते देख प्रजा कैसे हर्षोन्मत्त न हो जायगी? राम-लक्ष्मणकी



स्वधर्मपरायणवृत्ति, सुख-स्वार्थके त्यागकी शक्ति और मुनि-शुभ्रवादी उत्सुकता महान् तपस्वीके तपसे भी विशेष उग्र थी ।

राज्यकी ओरसे विश्वामित्रजीको जो संरक्षण (Protection) मिला था, वे भी उसका बदला चुकाये बिना रहनेवाले व्यक्ति नहीं थे । प्रजाके प्रति वास्तव्यभाव दिखानेवाले राजा दशरथके प्रति महर्षि विश्वामित्र भी राजभक्ति दिखलानेमें पीछे नहीं हटे । राज्यके कलुषित वातावरणमें जिन सद्गुणोंका विकास नहीं हो सकता, ऐसे सद्गुणोंका विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीमें विकास कर दिया । श्रीराममें महान् शारीरिक शक्ति आ गयी। संयम (Control) रहित शक्ति बिना जगामवाले घोड़े जैसी है । इस बातको महर्षि भली-भाँति जानते थे । अतएव भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रमें उन्होंने संयमकी शक्तिका भी विकास कर दिया ।

श्रीरामकी सीता-स्वयंवरमें ले जानेवाले भी विश्वामित्र ही थे । हजारों योद्धाओंसे जो शिवजीका धनुष नहीं टूट सकता, रामचन्द्रजीने उसीको तोड़ डाला और परिणाम-स्वरूप सीता-रामके शुभ विवाहका शुभ सुयोग उपस्थित हुआ । इन सयका भेय विश्वामित्र-जैसे महर्षिको ही है । बाल्यमें यह प्रजा-रजनका ही पुत्र्य प्रभाव था ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा सर्वा मीनाजीके आन्धमें अभी राज्य-वैभवका सुख नहीं था । अभी उन्हें महान् संकटोंके पहाड़ लाँघने थे । रामचन्द्रजीको युवराज पद देनेकी तैयारी होने लगी थी। एक दुष्ट दासीकी बुरी सलाहसे सीतेजी माता कैकेयी उभड़ पड़ी और उसने रामचन्द्रजीको बन और अपने पुत्र भरतको युवराज-पद देनेके लिये महाराज दशरथसे प्रार्थना की । राजा वचनबद्ध थे । कैकेयीको दिये हुए वचनका पिलाजी पालन कर सकें और कुटुम्बका क्लेश दूर हो, इस विचारसे श्रीरामचन्द्रजीने स्वेच्छासे ही यह निर्वासन-वनवास स्वीकार किया । राजसिंहदामनके लिये किये जानेवाले काले कारनामोंके नो सैकड़ों दृष्टान्त इतिहासमें हैं परन्तु ऐसे महान् स्वार्थ-त्यागका उदाहरण तो कोई बिरला ही होना है ।

रामके इस स्वार्थ-त्यागसे-संयमसे-राजा दशरथ बहुत दुखी हुए । कैकेयीके अन्याचारसे प्रजा तिलमिला उठी, तो भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें कैकेयीके प्रति वैर या द्वेषके विचारकी एक लहर तक नहीं उठी ।

भगवान् रामचन्द्रजी और सती सीताके लिये तो यह प्रसङ्ग बहुत ही दुःखका था; परन्तु यह दुःखद घटना न हुई होती—रामचन्द्रजी बनमें न आते तो रामकी रामायण भी शायद नहीं लिखी जाती । सत्यके लिये-परमायुषके लिये—राजा दशरथकी शान्तिके लिये किये गये स्वार्थ-त्यागने उस स्वार्थ-त्यागीको तपस्वी बना दिया और उसके इस तपमेंसे एक ऐसा तेज प्रकट हुआ जिसने अखिल विश्वको प्रकाशित कर दिया ! यह सिद्धान्त भगवान् रामचन्द्रजीके लिये जितना सागू होता है उतना ही सृष्टिके प्रत्येक प्राणीके लिये भी होता है ।

श्रीरामचन्द्रजीके वनवाससे समस्त प्रजा दुखी हुई, परन्तु उन सबमें सबसे अधिक दुखी भरतजी थे । जिस राज्य-वैभवके लिये कैकेयीने यह दावानल सुलगया था उस राज्य-वैभवको भरतजीने टुकरा दिया । अन्ध्यायसे प्राप्त राज्यके राजा या शासकके प्रति प्रजाका भक्तिभाव या प्रेम कभी नहीं हो सकता । भरतजी इस बातको भलीभाँति जानते थे । प्रजाका प्रेम धर्मोत्तम रामचन्द्रजीके प्रति था । प्रजाके आन्तरिक प्रेमको भरतजीने वाद्य स्वरूप दिया । वे राज्य-वैभवका त्यागकर स्वयं भगवान् रामचन्द्रजीके पास चित्रकूट गये ।

वाक्यीकि रामायणके अष्टाध्यायकाव्यके १००-१०१ सर्गमें भगवान् रामचन्द्रजीके साथ भरतके मिलापका बड़ा ही सुन्दर शिष्टाप्रद वर्णन किया गया है । उस समय श्रीरामजीने अपने दुःखके सम्बन्धमें या कैकेयीके प्रति द्वेषभावको लेकर एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया ।

बनमें रहनेपर भी प्रजाके प्रति रामचन्द्रजीका कितना प्रेम था, इस बातका पता उन प्रश्नोंसे लग जाता है जो (इन सर्गोंमें) श्रीरामने भरतजीसे किये थे ?

शामकपर कैसा और कितना भारी विशाल उत्तर-दायित्व है, इस बातका पता श्रीरामकी उक्त प्रभावशील भलीभाँति लग जाता है । राजाका अर्थ प्रजापर भारी कर लगाकर उसका जन व्यूँकर मौज-शौकके लिये विदेशोंमें रहनेवाला मनुष्य नहीं । राजा वह मर-रख है जो प्रजासंरक्षणके लिये अपने राज्य-सुख और वैभवको त्यागकर, आवश्यकता पड़नेपर अपने को मजाल बाजकोंकी भी—प्रजाके सुख और सम्मोषके लिये—बलि देनेको तैयार रहने है । राजाका यह आदर्श (Ideal) जगत्की किम प्रजाको आज भी मान्य न होगा ?

राज्य-व्यवस्थामें कौन-कौन से मुख्य दोष हैं, यह बात भी भगवान् रामचन्द्रजी भरतको समझाते हैं। भगवान् रामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे बुद्धिमान् भरत ! नास्तिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, विद्वानोंका अपमान, निष्प करने योग्य कर्ममें आलस्य, अशु आदि पाँचों इन्द्रियों के बरा हो जाना, राज्य-सम्बन्धी बातोंका अकेले मनमाना विचार करना, जिसकी सम्प्रति बेना उचित न हो, उस विपरीत दृष्टिवालेके साथ मिलकर विचार करना, मन्त्रीके साथ निश्चित किये हुए कार्यका आरम्भ करनेमें विलम्ब करना, निश्चय किये हुए कार्यको गुप्त रखनेमें असावधानी करना, प्रातःकालके निष्पकर्ममें आलस्य, चारों ओरके शत्रुओंको दण्ड देना और महापुरुषोंको आते देख लड़े न होना, यह राजाओंके दोष हैं। इन दोषोंसे प्रत्येक राजाको दूर रहना चाहिये।

संयमका बल ही यथार्थ बल है, यह भगवान् रामचन्द्रजी के जीवनसे सिद्ध है। सुख-भोगकी लोलुपतासे नहीं, दुःख-भोगकी तत्परतासे ही भगवान् रामचन्द्रजी देव-कोटिमें गिने जाते हैं। स्वार्थ-सिद्धिसे नहीं, परमार्थकी पूरी लगनसे ही वे परमात्म-पदको प्राप्त हैं।

मनुष्यकी उन्नति पशु-बलसे नहीं, आत्मबलसे होती है, यह सिद्धान्त राम-रावणके युद्धसे स्पष्ट है। भगवान् रामचन्द्रजीसे रावण (जोकरहिले) शारीरिक बलमें अथवा बुद्धिबलमें किसी प्रकार भी कम नहीं था। वह भगवान् महादेवजीका परम भक्त था। सर्व शास्त्रोंका अखण्ड अभ्यासी था। बेवपर भी उसने भाग्य खिले थे और युद्ध-कलामें तो पूर्ण निपुण था ही। परन्तु वह नैतिक बल—आत्मबल रावणमें नहीं था, जो श्रीरामचन्द्रजीमें अखण्ड था। भगवान् रामचन्द्रजी एकपत्नीव्रतधारी थे और रावण जम्पट था; रामचन्द्रजी प्रजापालनको परम धर्म मानते थे, तो रावण प्रजाको पीडा पहुँचानेमें ही आनन्द मानता था। गुरु, आचार्य, विद्वान् एवं वृद्धोंके प्रति रामका पूज्यभाव था, परन्तु रावण विभीषण और सती मन्दोदरी-जैसे हितैषियोंकी भी अधिकांश सम्प्रतियोंका तिरस्कार करता

था। अज्ञान, अधर्म, विषयलस्यता, इन्द्रियलोलुपता, उत्कर्षलता और अभिमान यह रामचन्द्रजीको छू भी नहीं सकते थे, पर रावणके अन्दर तो इन अवगुणोंने घर ही कर रक्खा था। ऐसे राजाका—ऐसी राज्य-व्यवस्थाका विनाश होना स्वाभाविक ही था और हुआ भी बैसा ही।

पितृभक्ति, गुरुभक्ति, मातृभक्ति, स्वार्थन्याग, संयम, एक-पत्नीव्रत, महान् संकटोंको सहन करनेकी तत्परता, कैकेयी-सी दुःसह माताके प्रति भी वैरभावका अभाव और स्नेह-भावका सद्भाव, राज्यवैभवका तिरस्कार, प्रजापालनका प्रेम, दूसरोंके दुःख देखकर उनमें भाग लेनेकी उत्सुकता, दुष्टोंको दण्ड देनेकी शक्ति और तत्परता एवं अपने ऊपर आनेवाले अनेक दुःखोंकी लापरवाही आदि सद्गुण श्रीरामचन्द्रजीमें रामायणके पक्षे-पन्नेमें देखे जाते हैं।

श्रीराम गये, रावण गया, हजारों वर्ष बीत गये, परन्तु आर्य प्रजाके मुखमेंसे राम शब्द नहीं गया और न कालान्तरमें कभी जायगा। जहाँतक आर्य-प्रजाके हृदयमें राम हैं, राम-भक्ति है जहाँतक पतिनपावनी रामायण श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करती है, वहाँतक राम और रामराज्यके स्थापनकी इच्छा आर्यावर्तसे कभी दूर नहीं की जा सकती !

जैसे एक दीपकसे हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं वैसे ही रामायणके रामचरित्रकी एक दिव्य उद्योतिमेंसे हजारों राम-नरवीर-धर्मवीर-वैदा करनेकी शक्ति आर्यावर्तमें है। प्रभो ! आर्य-प्रजा (Civilised world) को हजारों राम वैदा करनेका सामर्थ्य दीजिये। उसे राम-राज्य-स्थापन करनेकी शक्ति दीजिये। उसकी इस शक्तिको आवश्यक सुयोग और सावकाश दीजिये। आर्यावर्तकी प्रजाकी—अखिल विश्वकी प्रजाकी जगन्त्रियन्तासे बड़ी प्रार्थना है। सती-सीता-सारी दुनियाँ—समस्त विश्व-जनता आज वरमाज हाथमें किये खड़ी है और शिवजीका धनुष तोड़कर अपने शारीरिक और मानसिक संयम शक्तिका निश्चय करानेवालेकी—भगवान् रामचन्द्रजीके अवतारकी, धर्मराज्यके स्थापनकी उत्सुकतासे बाढ़ देख रही है।



## श्रीरामायणद्वारा जगत्का कल्याण

( लेखक—स्वामीजी श्रीचिदात्मानन्दजी )



सी भी ग्रन्थकी परीक्षा बहिरंग और अन्तरंग दो ही प्रकारसे हुआ करती है, ग्रन्थकी रचना किस समय हुई, ग्रन्थका विषय ऐतिहासिक घटनापर निर्भर है या केवल कल्पना है, साहित्यकी दृष्टिसे उसमें क्या-क्या त्रुटियाँ और क्या-क्या महत्त्व हैं, कवितामें कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं और कौन-कौन-सी न्यूनताएँ हैं, इन सब विषयोंका परीक्षण 'बहिरंग-परीक्षा' कहलाती है। अन्तरंग परीक्षामें इन बातोंका विचार न कर समालोचकका ध्येय केवल यही रहता है कि ग्रन्थका मन, बुद्धि तथा आत्मापर कैसा प्रभाव पड़ता है, ग्रन्थके विचारसे जीवन समुन्नत होता है, या अधोगतिकी ओर खिंचता है। उसके नायक-नायिकाओंके चरित्रोंसे चित्तमें शान्ति, उदारता तथा आत्मबलकी वृद्धि होती है अथवा पाशविक वृत्तियाँ जागृत होती हैं, ग्रन्थकसाने किस ध्येयको सामने रखकर उसकी रचना की है और उसका वह उद्देश्य सफल हुआ है या नहीं? इत्यादि। रामायणकी समालोचनामें हम बहिरंग-परीक्षाको बुद्धिमान् तार्किक महानुभावोंके ऊपर छोड़कर केवल अन्तरंग-परीक्षाकी ओर ही अग्रसर होते हैं। क्योंकि हमें तो बगीचेके सुमधुर पीछिक फलोंको खाना और खिलाना ही रुचिकर है। जिन विद्वानोंको केवल पेड़गिननेमें रुचि हो वह भले ही ऐसा किया करें।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि रामायणके पाठ करने और मनन करनेसे अद्भुत शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। मानसिक स्थिति दैवीसम्पत्तिसे परिपूर्ण हो जाती है, श्रद्धा-भक्तिकी वृद्धि होती है, तथा आत्मबल और आत्मज्ञानका उदय होने लगता है। रामायणसे हजारों जीवोंका उद्धार हुआ है

और आज भी इस अपूर्व ग्रन्थके भक्तगण भक्ति और ज्ञानका आस्वादन कर जीवन सफल कर रहे हैं। वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीता और रामायणादि ग्रन्थोंने ही भारतमें आध्यात्मिक विचारोंका सञ्चार कर इस देशको धार्मिक बना रखा है। ये ग्रन्थ न होते तो सम्भवतः धर्मका नितान्त लोप हो जाता, पाशविक वृत्तियाँ बढ़ जातीं और अधर्म-परायणताके कारण इस पवित्र भारतकी सन्तान भी विषयवासनाओंमें लम्पट होकर अज्ञानके गहरे अन्धकारमें डोकरे खाती फिरतीं। इन्हींके प्रतापसे भारत इस गिरीदशामें भी आज धर्मके कुछ अंगोंको पकड़े हुए है।

यद्यपि आज देशकी परिस्थिति बड़ी शोचनीय है परन्तु जबतक रामायण-जैसे ग्रन्थोंमें हमलोगोंकी रुचि है, हम उन्हें प्रेमसे पढ़ते हैं और उनके विचारोंपर गम्भीरतासे मननकर जीवनको धर्मके साँचेमें ढालनेका प्रयास करते रहते हैं तब तक निराशाका कुछ भी कारण नहीं है। खेद इस बातका है कि आजकल बहुत से लेखक और पत्र प्रमादवश ऐसे साहित्यकी रचना कर रहे हैं, जिससे हमारे प्राचीन साहित्यके आध्यात्मिक और धार्मिक प्रभावोंको बहुत बड़ी हानि पहुँच रही है। क्या बुराईयोंका तथा गन्दगीका नंगा चित्र खींचनेसे समाजकी किसी प्रकारकी भी गंदगी कमी धुल सकती है? कीचड़को कीचड़से धोना जैसे निष्फल और व्यर्थ है वैसे ही जाति-देशके अनुचित आचार-विचारों और व्यवहारोंका शोधन उन्हींको सामने रखनेसे नितान्त असम्भव है। मन स्वभावसे ही चञ्चल और विषयोंमें रुचि रखनेवाला है, उसकी दुष्ट वासनाओंको नष्ट करनेके लिये उसके सामने उच्च विचार और धार्मिक भाव रखने चाहिये, तभी वह धर्मपरायण हो सकता है। हमें

प्रसन्नता है कि 'कल्याण' की यह धार्मिक सेवा देशमें सराही जा रही है और इसके प्रेमियोंकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इससे सूचित होता है कि जनतामें धर्म-प्रेम अभी मौजूद है, इसलिये नैराश्याका कुछ भी भय नहीं है। निःस्वार्थ देशसेवा कभी निष्फल नहीं हुआ करती।

संस्कृतके आदिकवि महर्षि वाल्मीकि और देश-भाषाके सुविख्यात कवि भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायण रचकर जगत्का जो महान् कल्याण किया है, उनसे मनुष्य-जाति कभी उद्धरण नहीं हो सकती। ऐसे महात्माओंके बलसे ही धर्म-स्तम्भ खड़ा रहता है, इन्हीं जैसे विभोपकारक महानुभावोंके कारण भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी प्रभा जगत्में प्रकाश फैलाये रहती है। वह मनुष्य धन्य है जो इस प्रभाके सहारे अपना मार्ग ढूँढ़ लेते हैं और निर्दिष्ट स्थानपर जा पहुँचने हैं। रामायण वास्तवमें एक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ है, जिससे मानव-जीवनकी यथार्थ समुन्नति होती है, इसमें बहती हुई भक्ति और ज्ञानकी निर्मल और कल्मषनाशिनी धारा मानसिक कूड़े-ककटको बहा ले जाकर आत्माको उज्ज्वल बना अन्तमें मुक्त कर देती है। इसमें तार्किक गोरक्षधन्ये नहीं, दार्शनिक युक्तियोंके गहन जालमें बुद्धिका फँसानेकी कोशिश नहीं। इसमें तो केवल मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके उन आदर्श चरित्रोंका वर्णन है, जिससे साधारण बुद्धिका मनुष्य भी अपने जीवनको विशाल बना सकता है, शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है एवं प्रेमार्णवमें अवगाहन कर जन्म-जन्मान्तरके मलोंको निःशेषरूपसे धो सकता है।

भगवान् श्रीरामने दार्शनिक युक्तियोंद्वारा जगत्को उपदेश न देकर मनुष्यमात्रके सम्मुख केवल अपना सच्चरित्र रक्खा है। इससे मनुष्य जीवनपर जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा सैकड़ों दर्शन-ग्रन्थों और हजारों युक्तियोंसे भी असम्भव है। महापुरुषोंका यही महसूस है कि वे जगत्का उपकार अपने जीवनका आदर्श सामने रखकर ही किया करते हैं। उनमें

अगाध प्रेम होता है, वे परम त्यागकी मूर्ति होते हैं, धैर्य, पुरुषार्थ और आत्मबलसे पापियोंका भी उन्हें उद्धारकर परमधामके अधिकारी बना देते हैं, अपने भक्तोंको परमानन्द प्रदान करते हैं। समता ही उनका स्वभाव है; शत्रु-मित्र, पापी-पुण्यात्मा, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, सभीके लिये कर्णधार बन उन्हें संसार-सागरसे पार कर देते हैं। संसारमें सर्वदेखा जाता है कि मनुष्योंको सन्मार्गपर ले जाना उन्हीं सत्पुरुषोंका काम है जो बहुत वाक्-पटुता न दिखा अपने सदुपदेशोंको केवल अपने जीवनमें ही चरितार्थ कर जनताको जीता-जागता आदर्श दिखा जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि अनेक लोग धुरन्धर व्याख्यानों और सुन्दर रसीले लेखोंद्वारा अत्यन्त ख्याति प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनके परिश्रमका कोई स्थायी प्रभाव देशवासियोंपर नहीं पड़ सकता। वास्तविक चिरस्थायी प्रभाव उन्हीं महापुरुषोंने देशमें फैलाया है और सत्य धर्मकी विद्युत् उन्हीं इने-गिने महात्माओंद्वारा सञ्चरित हुई है, जो स्वयं परमत्यागी थे, निश्चयात्मिका बुद्धिवाले और आत्मनिष्ठ थे, जिन्हें अपनी ख्याति और स्वार्थ-साधनासे अत्यन्त घृणा थी और जो समस्त जीवोंसे आत्मवत् प्रेम करते थे। ऐसे महात्माओंका केवल जीवन ही जगत्-कल्याणके लिये काफी है। ऐसे सत्पुरुषोंके उपदेशों और चरित्रोंमें कोई अन्तर नहीं हुआ करता।

महान् उत्कृष्ट जीवनका रहस्य त्याग ही है। जिसमें त्यागकी जितनी अधिकता है, उसके आत्माका उतना ही अधिक विकास होता है। मोह और विषयासक्ति ही बन्धनके कारण हैं, यही अज्ञान है। आत्मा वास्तवमें नित्यमुक्त, ज्ञानस्वरूप है। अज्ञानके आवरणके कारण मेघाच्छादित रवि-मण्डलकी भाँति परिच्छिन्न-सा दीख पड़ता है, वह आवरण वैराग्यद्वारा जितना क्षीण होता है उतना ही आत्माका प्रकाश विकसित होता जाता है। अज्ञानान्धकारके नाश होते ही आत्माकी अग्रमेय शक्ति तथा ज्ञानका प्रकाश पर्णतया

प्रस्फुटित हो जाता है, फिर आत्मा और परमात्माका भेद भी नष्ट हो जाता है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम नित्यमुक्त परात्पर ब्रह्म निज महिमामें स्मित जगत्के हितार्थ अपनी अचिन्त्य मायाशक्तिके द्वारा भूमण्डलपर अवतीर्ण हुए। निजानन्दमें स्मित भगवान्में ग्रहण और त्यागका आभासमात्र भी नहीं हो सकता। जो स्वयं मायाधीश हैं वह किसका ग्रहण करें और किसका त्याग करें। सब कुछ उन्हींकी विभूति है। वे निर्विकार, शुद्ध, पूर्ण और आनन्दस्वरूप हैं। माया वा प्रकृति उन्हींकी अचिन्त्य शक्ति है। वे स्वयं ही अपने नाना कल्पित रूपोंमें लीला कर रहे हैं। जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, समयानुकूल भौतिक देह धारण कर अपने भक्तोंको आनन्द और प्रेममें मग्न कर उद्धार करते हैं तथा मायाबद्ध दुष्टबुद्धि-वाले विषयासक्त पाप-निरत प्राणियोंको भी अपनी अप्रमेय दयाके कारण दण्ड देकर पापमुक्त कर परम धामके अधिकारी बना देते हैं। यह सब उनकी लीलामात्र है। श्रीरामावतारमें जगत्में धर्ममर्यादा स्थापन करना उनका उद्देश्य था। परम त्याग क्या वस्तु है। इससे आत्मिक बल किनना विकसित होता है। सब अवस्थाओंमें रहते हुए भी किस प्रकार निजानन्दमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं हो सकती, समस्त जगत्के जीवोंमें प्रेम और शत्रु-मित्रोंमें समभाव कैसे रहा करता है, निर्भयता, सहनशीलता तथा धैर्य देहधारियोंमें कैसे हाने चाहिये, मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम तथा दाम्पत्य-जीवनका आदर्श क्या है, प्रजा-रक्षक राजाका धर्म क्या है, राजाको किस तरह आसक्तिरहित बुद्धिसे साम्राज्य-वर्धन भोग करते हुए भी केवल प्रजाके हितार्थ अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तुको भी त्याग करनेमें किञ्चिन्मात्र भी संकोच नहीं करना चाहिये, इत्यादि सद्भावोंको स्वकर्मासे चरितार्थकर दिखाना भगवान् श्रीरघुनाथजीका उद्देश्य था।

निर्वर्लोपर बलवानोंका अत्याचार होते देखना और दुष्टोंका जुलम सहना महान् कायरता है और एक प्रकार नपुंसकता है। ऐसा तभी होता है जब

मनुष्य इन्द्रियोंका दास और विषय-विलास-विमूढ़ होता है, विषयासक्तमें निर्भयता और मानसिक तथा शारीरिक बलका अभाव हो जाता है। ऐसा कायर मनुष्य अपने ही आत्माका नाश नहीं करता बरं अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले प्राणीके आत्माके पतन होनेमें मुख्य सहायक बनता है। इसप्रकार कायर मनुष्य दो पापोंका भागी हो जाता है। श्रुति भी कहती है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।' जिसमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल नहीं वह मनुष्य नितान्त निकम्मा पृथ्वीपर भाररूप ही है, अपने ही इन्द्रिय-सुखोप-भोगमें लम्पट रहकर ऐसा प्राणी मनुष्यत्वका अधिकारी नहीं बन सकता। भगवद्भक्तका लक्षण यही है कि वह सर्वथा निर्भय और विषयासक्ति-रहित रहे। दुष्ट कर्मोंकी प्रवृत्तिके सिवा उसे और किसीसे भी भय नहीं होता क्योंकि वह समस्त जगत्को भगवान्का रूप ही देखता है। फिर भयका कोई कारण ही नहीं रह जाता। एक मनुष्य रात-दिन चाहे भगवान्के चित्रके सामने गण्टी बजा-बजाकर मुँहसे दिवाऊ स्तोत्र-पाठ करता रहे परन्तु यदि उसमें पाप रहते हैं और उसके हृदयमें निर्भयता और दुष्ट बलवानोंके अत्याचारोंसे लोक-हितार्थ असाहिष्णुता नहीं है तो उसका पूजा-पाठ केवल दोंगमात्र है। ऐसे ही अद्वैत ज्ञानका अधिकारी पुरुष भी कायर नहीं हो सकता। श्रीरघुनाथजीके चरित्रसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि दुष्टोंके अन्याययुक्त पाशविक अत्याचारोंका प्रतीकार न करना आत्मनिष्ठ धीर पुरुषके लिये असम्भव हो जाता है। भगवान्ने पापात्मा दुष्ट राक्षसोंके घोर जुलमोंसे प्रजाकी रक्षा कर न्याय-राज्यकी स्थापना की थी। नानाप्रकारके परिश्रम और कष्ट सहकर भी केवल धर्म स्थापन करनेके अमिप्रायसे ही भगवान्का वह उद्योग था। राक्षसोंकी धन-सम्पत्ति तथा राज्य जीतकर भी उन्हींको वापस सौंप देना 'रघुपति राजा राम' का ही काम था। महापुरुषोंके सत् कर्मोंका यही स्वरूप है, वे कोई भी कर्म स्वार्थके उद्देश्यसे नहीं किया करते। इतना ही नहीं, बरं

श्रीभगवान्ने रणमें प्राण दे देनेपर रावणादि प्रति-पक्षियोंकी सङ्गति भी प्रदान की। उदारचरित् व्यापिधि प्रभुका यह कर्म उन्हींके योग्य था। सूरदासजीने एक पदमें गाया है कि 'एक लोहा पूजामें राखी एक घर अधिक परो। पारस गुन अबगुन नहि चितवै कंचन करत खरो ॥' पतितपावन भगवान्के स्पर्श-मात्रसे राक्षसोंके उद्धार होनेमें कुछ आश्चर्य नहीं।

समस्त जगत् विशेषतः पाश्चात्य गौरांग-देशोंके लिये भगवान् श्रीरामकी महान् उदारताका अनुकरण करना ही हितकी बात है। जबतक वर्तमान स्वार्थपरायणता और अभिमान हमारे हृदयको जकड़े हुए हैं तबतक किसी प्रकारके पैकट कानफरेंस फलीभूत नहीं होंगे। नीच भावोंके रहते संसारमें सच्ची शान्ति नहीं फैलेगी। मायाकी प्रबल महिमा है जो मनुष्य अपने आपको सभ्य मानते हैं, वे ही घोर स्वार्थ-वश केवल अपना ही नाश नहीं कर रहे हैं, वरं जगत्को भी अशान्तिकी अग्निके भूत रहे हैं। प्राणिमात्रसे निःस्वार्थ प्रेम बढ़ाये बिना और सबके हितमें अपना हित माने बिना न अपना ही कल्याण है और न जगत्का ही। श्रीरघुनाथजीके विशाल प्रेमके प्रभावने वानर, भालु आदि पशु-प्राणियोंकी भी सहायक और मित्र बना लिया, फिर मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है? मनुष्यमात्र आजतक भगवान्के गुणोंका स्मरण करके आनन्दमें विभोर हो जाने हैं। भारतवासी तो उनके चरित्रोंकी कथा सुन सुनकर अपना जीवन सफल मानते हैं और श्रीरामकी जन्म-भूमि भारत-देशमें जन्म लेनेको अपने पूर्व-जन्मोंकी सुकृतिका फल मानकर अपने जीवनको धन्य समझते हैं।

जिस महापुरुषमें अहिंसा और त्याग परिपक्व अवस्थामें वर्तमान है, वह सदैव निर्मय तो होता ही है, उसके हृदयमें प्राणि-मात्रके प्रति अगाध प्रेम भी होता है, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' उसका अटल स्वभाव बन जाता है, वह अपने समस्त जीवनको जगतके हितार्थ न्योछावर कर देता है। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' ऐसे महात्मा जिस कामको आरम्भ करते हैं, तन-मन-धन सब कुछ उसीमें लगा देते हैं, एक लक्ष्य होकर

अविचलित-भावसे निष्काम कर्म करना ही उनका ध्येय होता है।

चित्तवृत्तियोंका समुचित निरोधकर एकाग्रतासे कर्म करना योगीका लक्षण है। हमलोगोंके कार्य इसीलिये अधूरे रह जाते हैं कि विविध कामनाओंमें हमारी वृत्तियाँ बिखरी रहती हैं, निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती, संशय घेरे रहते हैं, धैर्यका अभाव रहता है और इसी कारण एकाग्रता नष्ट होनेसे किसी कार्यमें सफलता नहीं होती। श्रीरघुनाथजीने जगत्के मनुष्योंको अपने चरित्रोंद्वारा शिक्षा देनेके अभिप्रायसे परम-त्यागका आदर्श दिखलाया है, त्यागसे ही महान् आत्मबल प्राप्त होता है, जिस आत्मबलके प्रभावसे महा कठिन कर्म भी सुगम हो जाने हैं। इसी परम त्यागसे अनासक्त-बुद्धि प्राप्त होती है, फिर अपनी प्रियसे प्रिय वस्तु भी त्याग करना उसके लिये अत्यन्त सुलभ हो जाता है।

रघुपति श्रीरामचन्द्रका शासनकाल एक अद्भुत आदर्श है। 'रामराज्य' एक विख्यात कहावत बन गयी है। ऐसे धर्मयुक्त प्रजा-पालनका उदाहरण संसारमें शायद कहीं भी आजतक नहीं मिलता, भगवान्के शासनमें स्वार्थका लेशमात्र भी नहीं पाया जाता। उन्होंने अपना समस्त जीवन केवल प्रजाके हितार्थ ही समर्पण कर दिया था। श्रीराम-राज्यका वर्णन करते हुए श्रीवाल्मीकि मुनिने रामायणमें लिखा है कि 'रामराज्यमें सब लोग सत्य-धर्मपर आरुढ़ थे, सभी सुखी थे, राजा रामकी भाँति कोई किसीको सताता नहीं था। सारी प्रजा अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको प्रसन्नतासे निभाहती थी, किसीकी अधर्ममें रुचि नहीं थी, सभी सद्गुणोंसे सुशोभित थे।'।

अध्यात्मरामायणका कथन है कि 'यद्यपि भगवान् राम साक्षात् शुद्ध-ब्रह्म ही थे, आत्माराम और नित्य मुक्तस्वभाव थे तथापि लोक-संग्रहार्थ असंख्य धन खर्च करके उन्होंने अश्वमेधादि अनेक यज्ञयाग किये। उनके राज्यमें कोई विधवा नहीं होती थी, किसीकी सर्पादि हिंस्र जीवोंका भय नहीं था कोई भी रोगादि-से पीड़ित नहीं था। चोरी आदिसे किसीकी हानि

नहीं पहुँचती थी, पाप-कर्ममें कोई भी रुचि नहीं रखता था। रामके राज्यमें पिताके जीते सन्तानकी मृत्यु नहीं होती थी। आबालवृद्ध श्रीरघुवीरको इष्टदेव मानकर उनकी पूजा करते थे। समयपर वर्षा होती थी। समस्त राज्य धन-धान्यसे भरपूर था। सबलोग स्वधर्ममें निरत और सद्गुणसम्पन्न थे। राघव भी अपनी प्रजापर पुत्रवत् प्रेम करते थे। क्या वर्तमान समयके राज्याधीश श्रीरामके शासनका अनुकरणकर संसारकी दिनों-दिन बढ़ती हुई अशान्ति और अधर्मपरायणता नष्टकर स्वयं सुखी होंगे और प्रजाको सन्तुष्ट करेंगे ?

रघुपति राजा रामके अनेक अपूर्व चरित्रोंमें श्रीजानकी महाराणीके परित्यागपर बहुत-से लोग आक्षेप करते हैं, वह लोग उनके और सारे चरित्रोंको बड़े आदर-भावसे सराहते हैं परन्तु उनकी समझमें उनका यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय और कठोर है। पर गम्भीर विचार करनेसे सीता-परित्याग ही उनका सर्वोत्कृष्ट महान् चरित्र है। सौतेली माताकी इच्छापर पिताके वचनको सत्य करके निष्कण्टक राज्य परित्याग कर वनवास स्वीकार करना इतना महत्त्वका नहीं, जितना अपनी परम प्रिया वैदेहीका परित्याग करना है। प्रजाके सन्तोषके हेतु, राज्यमें शान्ति बनाये रखनेके अभिप्रायसे भगवान् ने एक ऐसे महान् त्यागका उदाहरण विषयासक्त जीवोंके सम्मुख उपस्थित किया है जो उन जैसे महाप्रभु आत्मारामसे ही बन सकता था। प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी मानसिक स्थिति और बुद्धिके अनुकूल ही विचार किया करता है। विषयासक्त मनुष्योंके द्वारा भगवान् का यह कर्म भयङ्कर और निन्दनीय माना जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि ऐसा परम त्याग उनकी बुद्धिकी सीमासे परे है। पर उन लोगोंको यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान् रामचन्द्र और जगज्जननी श्रीसीता महाराणी साधारण विषयासक्त मनुष्य तो थे ही नहीं, जिन्हें छोटी-से-छोटी वस्तु भी त्यागना महा कठिन होता

है। ऐसे महान् त्यागके तारतम्यको परखनेके लिये कसौटी भी वैसी ही पवित्र होनी चाहिये जैसा कि वह अपूर्व कर्म था। दोनों पति-पत्नी सांसारिक प्रलोभनोंसे विरक्त और अपनी निजी महिमा एवं निजानन्दमें परिपूर्ण थे। जिन्हें राज्य-वैभव और वनस्थ जीवन समान था। स्थितधी मनुष्यके यही तो लक्षण हैं। गीतामें कहा है—

दुःखेषु दुःखिन्मनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागमयकोषः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

ऐसे स्थितधी महात्मा शारीरिक वियोगको वियोग नहीं समझते। प्रजारक्षक महिपालका धर्म ही यह है कि वह अपने राज्यको निजी सम्पत्ति न मान प्रजाके हितार्थ और उसके सन्तोषके निमित्त अपना सर्वस्व समर्पण करनेसे भी न झिझके। ऐसे त्यागका प्रभाव प्रजाके हृदयपर खूब ही पड़ता है। यही कारण था कि अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके ऊपर तन मन धन भ्योछावर करते थे। राज्यमें सब भाँति शान्ति और आनन्द विद्यमान था। 'यथा राजा तथा प्रजा' यह स्लोकों आने सत्य उक्ति है। परित्यक्ता श्रीजानकीजीका रघुनाथके प्रति सन्देश भी बड़े गौरवका है। वह कहती हैं— 'हे लक्ष्मण ! महाराजसे कहना कि 'आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप भलीभाँति जानते हैं कि मैं निष्पापा हूँ'। सर्वत्र आपकी अनुगामिनी और भक्ता हूँ'। मैं जानती हूँ कि आप लोकापवाद और प्रजाके हितार्थ ही मेरा परित्याग कर रहे हैं। राजाका धर्म सब प्रकारसे प्रजाको सन्तुष्ट करना है। मैं अपने शरीर-सुखकी इतनी परवा नहीं करती, जितनी आपके सुख्याति और यशकी। स्त्रीके लिये भर्ता ही परम देवता है, वही उसका मित्र और वही उसका गुरु है, इसलिये सर्वत्र स्त्रीके लिये पतिका कार्य पूरा करनेमें सहायक बनना परम धर्म है।'।

धन्य माता ! यह भाव तुम-जैसी नारी-रत्नके ही हो सकते हैं। तभी तो भारतवासी स्त्री-पुरुष तुम्हारे पवित्र नामका नित्य स्मरण कर अपना जीवन सफल करते हैं !



## भवतरणोपाय

### अवधूत और रामदासका संवाद

( लखक-स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी )

राममन्त्रोपदिष्टां राममन्त्रैकजापकम् ।

रामस्य सेवकं सेव्यं सखिनं च नमः शिवम् ॥



हीमें रामदासने सुना कि यमुना-किनारे एक अवधूत जाये हुए हैं, वह कुछ फल लेकर उनके दर्शनको गया तो देखा कि लंगोटी लगाये एक बाबला-सा मनुष्य हाथमें ईंट लिये बहुत-से लोगोंके पीछे लाज-लाज आँखें किये चौक रहा है और वे सब डरके मारे भागे चले जा रहे हैं। जब लोग बहुत दूर निकल गये तो पगला भी यमुनाजीकी तरफ चला गया। रामदासको उसके पास जानेकी हिम्मत नहीं पड़ी, वह घर लौट आया। दूसरे दिन फिर गया, अवधूत रेतीमें बैठा हुआ कुछ गा रहा था। रामदासको गाना सुननेमें तो रस आया परन्तु स्वप्नका कुछ भी नहीं। उसने पास जाकर अवधूतके सामने फल रख दिये। अवधूतने पाँच-चार भोज आप खा लिये और शेष रामदासको दे दिये, पश्चात् वह रेतीमें ही बैठ गया और शामतक पड़ा रहा—कुछ भी नहीं बोला, रामदास दिनभर बैठा रहा, जब शाम हो गयी, तो घर लौट आया। तीसरे दिन फिर उसी समय गया और फल सामने रखकर बैठ गया, अवधूतने कुछ फल आप खा लिये और कुछ रामदासको देकर खानेके लिये कहा। जब रामदास का चुका तो अवधूत कहने लगा—

बच्चा ! क्या चाहता है ? रोज क्यों आता है ? मेरे पास धन-वैजत तो थरी है नहीं, खुद ही लंगोटी लगाये बैठा हूँ। दुनिया आती है, कोई धन माँगता है, कोई सन्तान माँगता है, कोई बच्चा पूछता है, दम नाकमें आ गया है, तुम्हें भी यदि किसी संसारी वस्तुकी इच्छा हो, तो गुरस्त भाग जा और फिर कभी आना नहीं।

रामदास— ( हाथ जोड़कर ) महाराज ! मैं संसारका कोई वस्तु आपसे नहीं माँगता, मैं तो अबसागरसे तरनेका उपाय आपसे पूछना चाहता हूँ, यदि आप जानते हों और मैं उस उपायको कर सकूँ, तो कृपया बताइये !

अवधूत एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ा और रामदासकी परीक्षा लेनेके लिये कहने लगा—

बच्चा ! अबसागरसे तरना चाहता है ? सागरसे आमतक तो कोई तरा नहीं, बिहानोंने बड़े बड़े जहाज और स्टीमर आदि सागरके पार जानेको बनाये हैं, परन्तु पार तो कहीं है ही नहीं, फिर कोई कैसे जा सकता है ? हाँ, एक टापूसे दूसरे टापूको चले जाते हैं, पार तो कोई अबतक जाने पाया ही नहीं है। तू सागरके साथ 'भव' विशेषण लगाकर कहता है कि अबसागरसे तरना चाहता हूँ, तो बता अबसागरका स्वरूप क्या है और तू क्यों तरना चाहता है ? तुम्हें क्या दुःख है ? बड़े-बड़े लोग जिनके मुखमें दाँत नहीं, पेटमें आँत नहीं—मेरे पास आते हैं और अब-सागरमें फँसनेका ही उपाय पूछते हैं, तरनेका उपाय तो कोई नहीं पूछता ! तू तो अभी बच्चा है, बीस वर्षसे अधिक उम्रका नहीं जैँचता, तुम्हपर अभीसे कौन-सा संकट आ पड़ा, जो अबसागरसे तरनेका उपाय पूछता है ?

### भवसागर

अवधूतका प्रश्न सुनकर रामदास अबसागरका वर्णन करने लगा—

महाराज ! मैंने संस्कृत नहीं पढ़ी है, थोड़ी-सी हिन्दी जानता हूँ, मैंने एक पुस्तकमें अबसागरका वर्णन इसप्रकार पढ़ा है और ऐसा ही मेरा अनुभव भी है कि यह अबसागर ब्रह्माजीका बनाया हुआ है। जैसे सागर अगाध होता है, वैसे ही इस अबसागरमें आशारूपी अगाधता है। वह आशा इतनी गहरी है कि उसकी गहराईका पता ही नहीं चलता। तीनों लोकोंके प्राण होनेपर भी आशा पूर्ण नहीं होती। इन्द्र तीनों लोकोंका राजा है, वह भी जब किसीको तपस्या करते सुनता है तो उसका तप भंग करनेके लिये अप्सराएँ भेजता है या खबराकर स्वयं ही चौकता है। इससे सिद्ध होता है कि अबसागरमें आशा अगाध है। समुद्रमें जल होता है, वह अबसागर मनोरथ-रूप जलसे पूर्ण है, जिसे देखो, किसी-न-किसी मनोरथमें डूब रहा है, एक मनोरथ पूर्ण हो गया तो दूसरा तैयार है,



मनोरथोंका कभी अन्त ही नहीं आता, इसलिये मनोरथोंकी जलसे ही उपमा देना ठीक है। जैसे सागरमें तरंग हैं, वैसे भवसागरमें तृष्णा तरंग है। कमर मुक जाती है, हाथ-पैर काम नहीं देते, लड़के-बाले निराश्र कर देते हैं, काटपरसे उतार लिया जाता है—मर जाता है, तिसपर तृष्णा नहीं जाती, वह तो मरे हुएके साथ सती हो जाती है। काम, क्रोध, लोभादि इस भवसागरके जलजन्तु हैं, जो इस जीवको अनेक प्रकारके कष्ट देते रहते हैं और अन्तमें मौका पाकर खा डालते हैं। शत्रुादि विषयोंका ग्रहण करना, भवसागरमें डूब जाना है। इसप्रकार मैं सबको भवसागरमें डूबता ही देखता हूँ, कोई आप-सरीखे धीर, विरक्त, विद्वान् भले ही न डूबते हों, नहीं तो सब डूब ही जाते हैं।

जैसे समुद्रमेंसे चौदह रत्न निकले थे, वैसे इस भवसागरमें भी चौदह रत्न हैं। सन्त महात्मा उत्तम रत्न हैं, उपासक अमृत है, कर्मी चन्द्रमा है और ज्ञानी कामधेनु है, पुष्टजन नष्ट रत्न हैं। विमुक्त जीव विप है और विपयी जीव बाक्यी बानी मदिरा है। बाकी रत्नोंमें सब हैं, धर्मी ऐरावत है, पवित्रत उपचैत्रवा है, सुकवि अप्सरा है, दानी कल्पवृक्ष है, दयावान् धन्वन्तरि है, भुवादि शंख हैं, अनेक देशके राजा मणि हैं, मत्तपक्षी आचार्य अनुप है और पतिव्रता लक्ष्मी है। महाराज ! इस भयङ्कर भवसागरको देखकर भय लगता है, इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि भवसागरमे निकाजकर मुझे सुख-शान्तिका स्थान दिखाइये। इसमें मैं किसीको सुखी नहीं देखता, कोई कामके बरा हुआ स्त्रीका मर्कट बनकर नाचता है, कोई क्रोधके बरा आप जलता है और दूसरोंको भी जलाता है, कोई लोभमें ऐसा अन्धा हो रहा है कि उसको हिताहित सूझता ही नहीं। कवि, पवित्रत कहलानेवाले भी धोरे-से धनके लोभसे कुत्तोंके समान लड़ते और अपनी ईर्ष्या कराते हुए देखनेमें आते हैं। अधिक क्या कहूँ, आप सब जानते ही हैं, इसलिये भवसागरसे पार होनेका उपाय पूछता फिरता हूँ। बहुत-से स्थानोंपर टकरें खा चुका हूँ, यदि आप संसारसे तरनेका उपाय जानते हों और मुझे अधिकारी समझते हों तो बताइये !

रामदासकी कहानी सुनकर अबधूत फिर झिजझिझाकर खूब हँसा और कहने लगा—वाह ! भाई वाह ! तूने तो भवसागरका अक्का रूप बाँचा ! गोस्वामीजीकी रामायण-में एक सोरठा है—

बंदों विधि-पद-रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ ।

संत सुधा ससि धेनु, प्रकट सरु निष बाहनी ॥

इस सोरठेका भाव तूने बड़ी उत्तम रीतिसे दिखाया है। सबसुख वह भवसागर तेरे कथनानुसार ही भयङ्कर है, जो इस अर्थकर भवसागरसे पार जानेका उपाय खोजते हैं, और इससे पार हो जाते हैं, उन्हींका जन्म सार्थक है, शेष तो सब माताके भबमात्र हैं और माताको दुःख देनेके लिये ही उन्होंने जन्म लिया है ! तेरे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने तुझसे सुपात्र सुशुद्ध पुत्रको जन्म दिया। भाई ! रामायणका पाठ किया कर, प्रेमपूर्वक रघुनाथजीके विषय गुणोंका गान किया कर और रघुनाथजीके 'राम' नामका जाप किया कर, बस, निश्चय जान, तेरा बेड़ा पार है !

रामदास—( प्रसन्न होकर ) महाराज ! कृपया राम-नामका प्रभाव सुनाइये !

### राम-नामका प्रभाव

अबधूत—भाई ! राम-नामका प्रभाव तो बेद, शास्त्र, मुनि, देवता आदि कोई भी नहीं जानते, केवल एक राम ही जानते हैं। महारामायणमें शिवजीके वचन हैं—

वेदासर्वे तथा शास्त्रा मुनयो निर्गर्षभाः ।

नामः प्रभावमरुध्रं ते न जानन्ति मुत्रंते ॥

राम पद्मभिज्ञानाति कृत्स्नं नामार्थमद्भुतम् ।

ईश्वरदामि नामार्थं देवि तस्यानुकम्पया ॥

इससे सिद्ध है कि नामका प्रभाव सम्पूर्णरूपसे कोई नहीं जानता। जब जानता ही नहीं तो कोई कह किसप्रकार सकता है ? रघुनाथजी राम-नामका प्रभाव जानते हैं किन्तु वे कह नहीं सकने क्योंकि शिष्टपुरुष तो अपनी बर्दाई सुनकर ही सकुच जाते हैं। जो सुनकर ही सकुच जायें, वह अपनी बर्दाई अपने सुखसे किसप्रकार करें, इसलिये राम-नामका प्रभाव रघुनाथजी भी कह नहीं सकने ! यदि कोई रामनामका किञ्चित् प्रभाव कह सकता है तो वह भी श्रीरामकी भक्ति और कृपासे ही ! गोस्वामीजीने राम-नामका प्रभाव बहुत कुछ कहा है, उसीमेंसे विम्वान् सुनाता हूँ। गोस्वामीजी कहते हैं—

बंदों रामनाम रघुवरको । हेनु कृमानु भानु हिमकरको ॥

रघुवरका राम-नाम जगतका पोषण करता है क्योंकि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा जगतके पोषण करनेवाले हैं, जैसे अग्नि प्रथमतः भोजनको पचाता है, फिर भोजनको पचाकर देहका पोषण करता है, गीतमें सब अग्निसे तापते हैं, आहुति आदि देनेसे अग्नि सब प्रकारका कष्ट देता है, रातके समय

यह प्रकाश करता है, इत्यादि अनेक प्रकारसे अग्नि पोषण करता है। सूर्य अँधेरेको नष्ट करता है, उष्यता देकर भूमिको रोषता है, जब बरसा कर अन्नादि अनेक पोषधि उत्पन्न करता है, पाले और जलकी सर्दीको दूर करता है, इत्यादि अनेक प्रकारसे आनु पोषण करता है। चन्द्रमासे अमृत सरता है, उससे पोषधियाँ पुष्ट होती हैं। चन्द्रमा शीतलता देकर ताप दूर करता है, प्रकाशसे आनन्द देता है। इनप्रकार अग्नि, आनु और चन्द्रमा जगत्के पोषण करनेवाले हैं। इन तीनोंका कारण राम-नाम है अर्थात् रकार अग्निका बीज है वही कुराणुके रेक है, इसीसे अग्निमें तेज है। आकार आनुका बीज है, यह आनुके अन्दर मकारमें अकार है, इसलिये आनुमें प्रकाश-तापादि प्रताप हैं। मकार चन्द्रमाका बीज है, वही हिमकरके अन्दर मकार है, इसीसे चन्द्रमामें शीतलतादि गुण हैं। यह स्थूलरूप है। सूक्ष्मरूपसे इन तीनोंका रामनामके अन्दर वास है, जब कोई रामनाम स्मरण करता है, तो उसके चित्तमें तीनोंका प्रभाव प्रकट हो जाता है। अर्थात् अग्निके बीज 'र'कारके प्रभावसे मनके मोह आदि मैल और शुभाशुभ कर्म जन्म जाने हैं, आनुके बीज 'अ'कारके प्रभावसे अविद्यारूप अँधेरा दूर हो जाता है और वेद-शास्त्रादिके अर्थका प्रकाश होता है एवं चन्द्रका बीज 'म'कार तीनों तापोंको हरकर हृदयमें शीतलता कर देता है। दिव्यरूपसे 'र'कार वैराग्यका हेतु है क्योंकि शब्द, स्पर्श-रूप, रस, गन्धादि इन्द्रियोंके विषयोंकी चाहसे काम-क्रोधादि विकारों सहित संसारके सुखके हेतु मन रागद्वेषादि व्यापारमें फँसा है, 'र'कार इस व्यापारको कुदाकर मनको शुद्ध करके स्वतन्त्र कर देता है। 'अ'कार ज्ञानका हेतु है, क्योंकि अकार जड़-वैतन्यकी प्रस्थिको भेदन करता है अर्थात् ईश्वरका अंश जीव है और प्रकृतिका अंश मन है। जीव मनके अधीन होकर अपने स्वरूपको भूलकर संसारमें फँस गया है इससे देहको ही सत्ता मानने लगा है, 'अ'कार इस अमको मिटाकर आत्मदृष्टिका प्रकाश करता है, तब जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान होता है, जोकि सदा स्वतन्त्र और आनन्दराशि है। 'म'कार भक्तिका हेतु है, समस्त भाषा-भरोसा छोड़कर प्रभुकी शुद्ध शरणागतिका नाम भक्ति है, इस भक्तिको 'म'कार प्राप्त कराना है। कहा है—

'र'कारहेतुवैराग्यं परमं यच्च कथ्यते।

'अ'कारो ज्ञानहेतुश्च 'म'कारो भक्तिहेतुकम् ॥

'र'कार वैराग्यद्वारा परलोकमें और अग्निद्वारा लोकमें पोषण करता है, 'अ'कार ज्ञानद्वारा परलोकमें और आनुद्वारा लोकमें पोषण करता है और 'म'कार भक्तिकद्वारा परलोकमें और चन्द्रमाद्वारा लोकमें सुख देता है, इस प्रकार श्री राम-नाम जीवोंका लोक और परलोक दोनोंमें साजन, पालन और पोषण करता है, यह राम-नामका प्रथम अर्थ है।

फिर गोस्वामीजी कहते हैं—

विधि-हरि-हरमय वेद प्रानसे। अगुन अनूपम गुननिधानसे।

श्रीराम-नामसे प्रणव सिद्ध होता है, जैसा कि महा-रामायणमें कहा है—

'र'कार गुरु शकारस्तथा वर्णविपर्ययः।

'म'कार व्यञ्जनश्चैव प्रणवं चाभिधीयते ॥

प्रणवमें अकार, उकार और मकार तीन वर्ण हैं, ये तीनों वर्ण विधि-हरि-हरमय हैं, इनमें अकार सतोगुण-रूप है, इससे विप्लु उत्पन्न होकर सब ब्रह्माण्डोंका पालन करते हैं; उकार रजोगुणरूप है, इससे ब्रह्मा उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करने हैं और मकार तमोगुणरूप है, इससे रुद्र उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डोंका नाश करते हैं। यही बात महारामायणमें कही है—

अकारः प्रणवं सत्त्वमुकारश्च रजोगुणः।

तमोहृत् प्रमथारः स्यान् त्रयंहिकारमुद्भवे ॥

प्रियं मगवतो रूपं त्रिविधो जायतेऽपि च।

विष्णुर्विधिरहं चैव त्रयोगुणविधारिणः ॥

प्रणवके दो रूप हैं, एक अगुण और दूसरा सगुण। इनमें अगुण अनुपम यानी उपमारहित है और सगुण गुण-निधान है यानी अनेक दिव्य गुणसम्पन्न है, अगुण प्रणवका रूप ॐ है और सगुण प्रणवका रूप 'ओं' है, इस 'ओं'में जैसे बीजमें वृक्ष होता है, इसी प्रकार सर्व जगत् विद्यमान है। यह राम-नामका संक्षेपसे दूसरा अर्थ है।

फिर गोस्वामीजी कहते हैं—

महामंत्र जेहि जपत महेस्। कासी-मुक्ति-हेतु उपदेस् ॥

राम-नाम महामन्त्ररूप है। इस महामन्त्रको देवोंमें श्रेष्ठ, योगी, शक्ती और अर्क्षोंमें अप्रणीय, नाव-वेदके आचार्य और प्रलयकर्ता महेश जपते हैं, इसलिये राम-नाम सर्वोपरि श्रेष्ठ है। इस प्रभावसे ही शिवजी अजर अमर हैं,

इसीलिये वे काकूटको पान करके पचा गये थे, वह बात गोप्य है। इसी मन्त्रका कानमें उपवेश करके शिवजी काशीमें पशु-पक्षी आदिको मुक्त कर देते हैं। वह बात रामतापिनी उपनिषद्में प्रसिद्ध है, इसप्रकार राम-नामके अपने मुक्ति प्राप्त होती है, वह तीसरा अर्थ है।

राम-नामका पूजन कर गणेशजी सबसे प्रथम पूज्य हुए, यानी राम-नामके अन्तर सब ब्रह्मावृद्ध है, वह चौथा अर्थ है। बाल्मीकि उलटा नाम जपकर सब पापोंसे मुक्त हो गये, इसलिये राम-नाम उलटा-सीधा किसी प्रकार भी अपनेसे वह अनेक जन्मोंके पापोंको नष्टकर अगवृत्ते निकट पहुँचाता है, वह पाँचवाँ अर्थ है। राम-नाम सहज नामोंके समान है, वह छठा अर्थ है। इसप्रकार हे भावुक ! गोस्वामीजीने राम-नामका बहुत कुछ प्रभाव वर्णन किया है, उसका पूरा वर्णन करने और समझानेको बहुत समय चाहिये, सारांश यह कि राम-नामके अपने सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

सिद्धियोंकी प्राप्ति—हे भावुक ! जिनको सिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा है, वे साधक अवश्य, नेत्रादि इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर और मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकारकी वृत्ति खींचकर एकाग्र होकर राम-नाम अपने हैं, और अग्निमादि सिद्धियोंको प्राप्त करके सिद्ध हो जाने हैं। जैसे (१) राम-रूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे थोड़े कालमें त्रिकालशक्त सिद्धि प्राप्त होती है यानी तीनों कालका ज्ञान हो जाता है (२) फिर कुछ समय पीछे अहम् सिद्धि प्राप्त होती है यानी शरीरोंसे नहीं व्यापता। (३) तदनन्तर कुछ काल बीतनेपर चित्ताधिमिश्रता-सिद्धि मिलती है अर्थात् दूसरेके चित्तकी जान जानी जा सकती है। (४) फिर थोड़े दिनोंमें 'अग्न्यहोम् विषादीनां प्रतिष्ठम्' सिद्धि मिलती है अर्थात् अग्नि आदिसे बाधा नहीं होती (५) फिर कुछ कालमें अपराजिता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी किसीसे भी पराजय नहीं होती इत्यादि कुछ सिद्धियाँ राम-नामके अपने स्वाभाविक प्राप्त हो जाती हैं।

(१) श्रीरामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे थोड़े ही दिनोंमें बुधा-पिपासा, शोक-मोह, जन्म-मरणादि पहूँची ही नाश हो जाती हैं। (२) ब्रह्मावृद्धतामें अवश्य देख, रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे दूरत्वस्थ-सिद्धि प्राप्त होती है यानी दूरकी बात सुनी जा सकती है (३) सूर्योदयमें रामरूप स्थित करके, उसमें मनवृत्ति लगाकर नाम अपनेसे दूरदर्शनसिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् दूरकी वस्तु दीखने लगती है (४) पवनमें रामरूप स्थित करके

उसमें मन लगाकर नाम अपनेसे मनोजव-सिद्धि मिलती है, यानी मनके समान देहकी गति हो जाती है (५) अनन्तर मनोरथमें रामरूप स्थित करके उसमें मन लगाकर नाम अपनेसे मनोरथ-सिद्धि प्राप्त होती है यानी मनचाही वस्तु प्राप्त हो जाती है (६) सब देहोंमें स्थित आत्मामें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम अपनेसे परकाय-प्रवेश-सिद्धि प्राप्त हो जाती है यानी वह दूसरी देहमें प्रवेश करनेको समर्थ हो सकता है (७) प्राणायामकी विधिसे ब्रह्मरन्ध्रमें प्राण चढ़ाकर, वहाँ रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे स्वच्छन्द-मृत्यु-सिद्धि प्राप्त होती है। (८) देवसत्त्वसहित रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे देवांगना-कीर्ति-सिद्धि प्राप्त होती है (९) सत्य संकल्पमय रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे यथासंकल्प-सिद्धि प्राप्त होती है। (१०) अर्धग आशामय प्रभुमें मन लगाकर नाम अपनेसे आशा-अप्रतिष्ठा-सिद्धि प्राप्त हो जाती है यानी उसकी आशाका कभी भंग नहीं हो सकता। ये दश सिद्धियाँ सामान्य गुण-सम्बन्धी हैं।

(१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध नन्मात्राओंमें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम अपनेसे अग्निमा-सिद्धि प्राप्त होती है यानी शरीर अणुमात्र हो सकता है। (२) ज्ञानमय महतरवमें रामरूप स्थित करके उसमें मन लगाकर नाम अपनेसे महिमा-सिद्धि प्राप्त होती है देह स्थूल हो सकता है। (३) आकाशादि पञ्चभूतोंमें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम अपनेसे खगिता-सिद्धि प्राप्त होती है, देह जघु हो सकता है। (४) सार्विक अहंकारमय रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे प्राप्ति-सिद्धि प्राप्त होती है यानी इन्द्रिय और देहसहित पगवे देहमें प्रवेश किया जा सकता है। (५) क्रिया-महत्त्वमय रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे प्रकार्य-सिद्धि प्राप्त होती है यानी भूमि आदिके गुण पदार्थ विस्वाधी देने लगने हैं। (६) त्रिगुण-माया-मेरक काष्ठमय रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे ईशता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी ईश्वरी-शक्ति प्रेरणादि प्राप्त हो सकती हैं। (७) तुरीय अवस्थामय रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे, वसिता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी मन विषयोंसे विलग हो जाता है। (८) अणुत्वमय रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे अवरवृत्ति-सिद्धि प्राप्त होती है, यानी इच्छामात्रसे सर्वाङ्ग सुख प्राप्त रहते हैं। इत्यादि आठों सिद्धियाँ अगवृत्त-प्रधान हैं, सबसे श्रेष्ठ ईश-सिद्धि

है, परिचित रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं परन्तु आजकल तो विषय-सुख-सिद्धि ही परम सिद्धि मानी जाती है। इसी सिद्धिमें सब जीव स्वाभाविक लग रहे हैं, तब अन्य सिद्धियोंको कौन पूछे ?

भगवत्के चार प्रकारके भक्त हैं—आर्त, अर्थी, जिज्ञासु और शानी, इन चारोंके नाम आधार है, इनमें ज्ञानी भक्त भगवान्को विशेष प्यारा है। वसति चारों युगोंमें राम-नामका प्रभाव समान ही है, फिर भी कलियुगमें राम-नामका प्रभाव विशेष है, क्योंकि कलियुगमें राम-नामके सिवा अन्य उपाय नहीं है। कलियुगमें राम-नाम कल्पवृक्ष है, यानी कल्पवृक्षके समान अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। पापीसे पापी भी रामनामके प्रभावसे शुद्ध होकर भगवत्-सम्बन्धी हो जाता है। इसलिये हे आबुक्त ! मेरा यही कहना है कि तनसे, मनसे, बचनसे राम-नामकी शरण लेनेपर अबसागरसे पार होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

रामदास—भगवन् ! आपने अभी कहा कि रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कृपया रामरूपका भी किञ्चित् परिचय दीजिये, क्योंकि परिचय बिना प्रीति नहीं होती, यह अटक नियम है।

भगवन् (प्रसन्न होकर) भाई ! राम-रूपका गोस्वामीजी-ने इत्यप्रकार वर्णन किया है, ध्यान देकर सुन—

### रामका रूप

गन्मागादशवर्त विश्वमसिन् त्रिधादिदेवाः सुराः ।

यसस्त्वादभूत्तुव मति सकलं रज्ज्वा यथाहर्भ्रमः ।

यन्पादप्रतमेकनेव हि भवान्मोक्षस्तिनीर्वाततां

वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामस्त्वमीशं हरिम् ॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि 'जो रूप श्रीराम करके धारण यानी प्रसिद्ध है, उस रूपकी मैं कल्पना करता हूँ, वह श्रीरामरूप कैसा है कि अशेष कारणसे परे है। जोकोई उत्पत्तिका आदि हेतु प्रकृति है, उस प्रकृतिको कारण कहते हैं। कारणरूप प्रकृतिके संगसे आत्मा ब्रह्मकी आत्मदृष्टि मूलकर जीव हो गया। जब जीव आशामें बद्ध हुआ, तब बुद्धि हुई, जब असत् बुद्धि हुई, तब जीव असत् वासनामें बँध गया, जब जीव असत् वासनामें बँधा, तब अहंकार हुआ, अहंकार होनेसे जीवमें विषमता आयी। सात्त्विक, राजस

और तामस अहंसे अहंकार तीन प्रकारका है। सात्त्विक अहंकारसे दया इन्द्रियाँ और मन हुआ, राजस अहंकारसे इन्द्रियोंके देवता हुए और तामस अहंकारसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सूक्ष्मभूत हुए। सूक्ष्मभूतोंसे, क्रमसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी पाँच स्थूलभूत हुए। इसप्रकार स्थूलशरीर हुआ। विषय-संगसे काम हुआ, कामनाका नाश होनेसे क्रोध हुआ, क्रोधसे मोह हुआ, मोहान्ध होनेसे बुद्धि नष्ट हुई, तब जीव विषयी हो गया। इस प्रकार अशेष कारण जो आदि प्रकृति है, उससे श्रीरामरूप परे हैं अर्थात् श्रीरामरूप, आनन्दरूप स्वतन्त्र, सदा अचल, एकरस है, प्रकृतिकेगुण श्रीरामरूपको कूते तक नहीं है। कहा है—

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानु शोच-

न्याकांक्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।

आनन्दमूर्तिश्चकः परिणामहीनो ।

मायागुणाननुगतां हि तथा विभाति ॥

अर्थात् श्रीरामरूप न चलता है, न बैठता है, न किसीके लिये शोककरता है, न आकांक्षा करता है, न तजता है और न कुछ करता है, वह आनन्दमूर्ति है, अचल है, परिणामहीन है और मायाके गुणोंमें अनुगत हुआ-सा प्रतीत होता है। सब रूपोंसे परे होनेसे श्रीरामरूप स्वतन्त्र है, क्योंकि श्रीरामकी इच्छासे अनेक भगवत् रूप जोकोंका कार्य कर रहे हैं। जैसा कि कहा है—

सम् निरेचि विष्णु भगवान् । उपजहिं जामु अंसते नाना ॥

सदाशिवसंहितामें भी इसी प्रकार कहा है—

महाशम्भुर्महामाया महाविष्णुश्च शक्तयः ।

कालेन समनुप्राप्ता राघवं परिचिन्तयन् ॥

कर्मपुराणमें कहा है—

मन्त्रयः भूमौ बराहो नगरिरनुलो वामनो जामदग्निः

सभ्राता कंसरात्रु कृष्णमदवपुर्मोक्षिबिध्वंसनश्च ।

एते चान्येपि सर्वे तरणिकुरुभवो यस्य जाताः कुराशैः

तं न्यासे ब्रह्मतेजं विमलगुणमयं रानचन्द्रं नमामि ॥

अन्तिमें कहा है— 'यस्यांशेनैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा अपि जाता

महाविष्णुस्य त्रिविधगुणान्ध स एव कार्यकारणयोः परः परम-पुरुषो रामो दाशरथी बभूवः ॥' श्रीरघुनाथजीकी मायाके बरामें अखिल विरव यानी सम्पूर्ण संसार है। भाव यह है कि जितने विषयी जीव हैं और ब्रह्मादि जितने देवता यानी

मुक्त जीव है और जितने असुर बानी विमुक्त जीव हैं वे सब श्रीरामकी भाषाके बरामें हैं। श्रीरामकी आज्ञासे श्री, भू-खीका आदि तैत्तिरीय शक्तियाँ जोकोंका सब कार्य करती हैं, जैसे कि महारामायणमें कहा है—

‘स्वे स्वे कार्ये रताः सर्वाः शक्यः त्रीणित्रिशतीः ।

यस्मिन्कले भवेद्यासां सीतारामानुशासनम् ।

तस्मिन्कालेषु कुर्वन्तः सर्वकार्यमशेषतः ॥’

इन रघुनाथजीकी सत्यतासे मृषा जगत् भी मोहकी सहायतासे निरपेक्ष करके सत्य हो भासता है। जैसे रज्जुमें तमकी सहायतासे सर्प भासता है इसी प्रकार कारयारूप भाषाके अन्तर्भूत भगवत्की सत्यतासे संसार सत्य भासता है। वह संसार ऐसा अथाह है कि ब्रह्मादि भी इसमें पड़े हुए दूब रहे हैं; जो कोई संसारसे पार होना चाहे, उसके जिचे श्रीरघुनाथजीके पादारविन्द जहाजरूप है। बानी श्रीरघुनाथजीके चरचारविन्दोंकी शरणागति बिना जीवका कल्याण नहीं होता। जैसे कि कहा है—

हिमते अनल प्रकट नरु होरां। राम-विमुक्त सुख पाव न कोई ॥

यही बात सन्तोषाख्यानमें कही है—

बिना नकि न मुक्तिश्च नुजमुत्थाय चोच्यते ।

सूयं कन्या महामाणा येषां प्रीतिश्च राखवे ॥

मैं ऐसे श्रीरघुनाथजीको नमस्कार करता हूँ ।

हे भावुक ! उपर्युक्त कथनका सारांश यह है कि श्रीराम शुद्ध, शुद्ध, नित्यमुक्त, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, वे ही जोकोडारके जिचे नर-रूप धारण करके अनेक प्रकारके अद्भुत चरित्र करते हैं, जिनका गान और अवयव करनेमें पापीसे पापी जीव भी शुद्ध होकर भगवत्को प्राप्त हो जाते हैं।

रामदास—महाराज ! रामायणका महत्त्व भी कृपया सुनाइये !

### रामायणका महत्त्व

अवधूत—भाई ! जब परास्पर श्रीरामने रघुनन्दनरूपसे अवतार लिखा तभी वेदोंने भी शस्त्रोक्तिद्वारा रामायणरूपसे अवतार लिया, इसीसे रामायणका महत्त्व प्रकट है। रामायणके बक्ता-ओता दोनों शिव-शार्ङ्गती, काकभुशुन्दि-गरुड, बाह्यवल्क्य-भरद्वाज, गोस्वामीजीके गुरु, गोस्वामीजी और उनके गिण्य सभी ज्ञाननिधि और ज्ञातज्ञेय हैं, तब रामायणका कितना महत्त्व है, यह स्पष्ट ही है। इस

रामायणके प्रभावसे लाखों-करोड़ों जीवोंका कल्याण हो चुका है, हो रहा है और चाहे भी होता रहेगा ! अधिक क्या कहूँ, भाई ! मैं तो रामायणको भाषाका वेद मानता हूँ। वेदमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड हैं, इन्हीं तीनोंका रामायणमें विस्तारसे वर्णन है। वेद प्राचीन संस्कृत-बाणीमें होनेसे सबको सुलभ नहीं हैं और रामायण तो भाषा होनेसे सबको सुलभ है, यह रामायणकी विशेषता है। इसके सिवा ब्रह्म, ब्रह्मावत, ब्राम्ह, ब्रह्म-वैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य राजसीपुराण; नारदीय, विष्णु, वाराह, गरुड, पद्म, भागवत सात्विकी पुराण और भीम, कूर्म, क्षिया, शिव, स्कन्द, अग्नि तामसी पुराण एवं सनत्कुमार, नरसिंह, स्कन्द, दुर्वासा, आश्वप, नारद, कपिल, मानव, ब्रह्मावत, भार्गव, गरुड, महेश्वर, काशिका, साम्ब, सूर्य, विष्णु, पाराशरी और देवी भागवत उपपुराण तथा अन्य सब शास्त्रोंका सम्मत रामायणमें वर्णन है। इत्यजिचे इसकी जितनी महिमा वर्णन की जाय, उतनी थोड़ी है। इसके पदनेसे अन्तःकरण निर्मल होकर भगवतके सम्मुख होकर सुखी हो जाता है। भाव यह है कि अन्तःकरण पार हैं। वस्तुमें संशय होना कि यह है अथवा नहीं इसका नाम मन है, वस्तुमें निश्चय होना बुद्धि है, वस्तुका स्मरण करना चित्त है और जब वस्तुमें ऐसा आग्रह हो कि यह ऐसा ही है, दूसरी नहीं है, इसको अभिमान कहते हैं। विषयोंकी चाहसे अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प रूप जो दुःख है, वह पुराणोंमें मन जगानेसे, निगमागममें चित्त जगानेसे, अन्य सम्मतमें बुद्धि जगानेसे और कथा-वर्णनमें अहंकार जगानेसे अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। अंतःकरण निर्मल होने ही जीव भगवत्के सम्मुख होता है और भगवत्के सम्मुख होते ही जीवके करोड़ों जन्मके उपार्जन किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंसे सर्व प्रकारका दुःख है, पाप नष्ट होने ही जीव सुखी हो जाता है। इतनेहीमें रामायणका महत्त्व समझ ले।

अवधूतका इतना उपदेश सुनकर रामदास अवधूतको प्रणाम करके घरको चला आया, क्योंकि सन्ध्या हो गयी थी फिर रातके दश ग्यारह बजेतक अवधूतके कथन किये हुए वाक्योंका विचार करता रहा। तदनन्तर सो गया। दूसरे दिन उसी समय फिर अवधूतके पास गया, तो वहाँ उसे न पाया। इधर-उधर हँवनेसे कहीं पता न लगा, रमते राम थे, कहीं रम गये। रामदासको बहुत शोक हुआ,

परन्तु उसका समाधान तो हो ही चुका था, इसलिये उसने नियमपूर्वक रामायणके पाठ करनेका, राम-नाम अपनेका और सच्चिदानन्द राम-रूपके चिन्तन करनेका इद निश्चय कर लिया !

राम-नामके निरन्तर अभ्याससे कुछ कालमें रामदासको राम-नाम स्वाभाविक हो गया और स्वप्नमें भी उसके चित्तमें राम-नामकी धारा बहने लगी। रक्तमें, प्राण-वायुमें स्थिररूप राम-नाम नृत्य करने लगा और उसके देहस्थ-परमाणु राम-नाममय हो गये ! सागर और सागर-गामिनी नवियौ राम-नाम गाने लगीं, कल-हंस मधुर-ज्वनिसे राम-नामका कीर्तन करने लगे ! आकाशचारी पक्षी राम-नाम कूजने लगे और जगत्का प्राक्करूपवायु राम-नामका घोष करने लगा ! विश्वकी माता प्रकृति राम-नामका कीर्तन करने लगी, जगत् राम-नाममय हो गया और राम-नाम जगन्मय हो गया ! इसप्रकार रामनामके प्रभावसे रामदास-का रामप्रेमकी प्राप्ति हुई और वह राममें लीन होकर सर्वमय राम ही हो गया ! वह यमराजके भयको निवारण करनेवाले श्रीरामरूपका ध्यान करने लगा और बाहर-भीतर परम शुद्धिका देनेवाले श्रीरामके गुणोंका मनन करने लगा। प्रत्येक प्राणीमें स्थित श्रीरामको नमन करने लगा और सर्वत्र, सब वस्तुओंमें श्रीरामका ही दर्शन करने लगा !

इसप्रकार बहुभागी रामदास चराचरविरवमें सच्चिदानन्द-धन कौसल्या-नन्दनका ही दर्शन करने लगा ! वह चन्द्रमण्डल-में ध्यानन्द-सागर, नटनागर, मुनि-वृक्ष-रक्त श्रीरामको हँसते हुए देखता था। गङ्गा-नदीके जलमें लीलाभय, सौम्यस्वरूप अहल्योद्धारक श्रीरामको नृत्य करते देखता था ! मारुतमें जन-रजन अनु-भजन श्रीरामको दीक्षते देखता था ! पर्वतके जलके फरनोंमें माषावर, सीता-वरको गान करते देखता था ! बालकोंकी लीला में निषादके सखा श्रीरामको खेलते देखता था ! मार्गमें चलते हुए पथिकोंमें चित्रकूट-बिहारी श्रीरामको गमन करते देखता था ! सूर्यमें क्षरवृषण-नाशक श्रीरामको प्रकाश करते देखता था ! रोगोंके रोगमें रोगके नाश करनेवाले जटायुके आदकारी श्रीरामको शान्ति देते हुए देखता था ! सब जातोंके आसमें सबके जीवन सुधीके मित्रको जीवन देते हुए देखता था ! सब प्राणियोंके शरीरोंके रक्तमें लोक-स्वामी बाळिके मुक्तिदाता श्रीरामको बहते हुए देखता था ! जिस देवका छौ मूर्धा है, जिसके चन्द्रादित्य ओचन हैं, जिसके चरण धरती हैं, ऐसे सर्वके ओचन रावधारि

श्रीरामको ब्रह्माचर्यमें परिपूर्ण देखता था ! जिस देवके जठरमें ब्रह्माण्ड हैं, उस परमात्मा, परब्रह्म, अयोध्यापति, सर्वान्तर्यामी विभुको सर्वमें देखता था ! अनन्त, अपराजित, अन्तर्बोद्धपूर्ण, अन्तर्बोद्धशून्य, चिन्मय ध्यानन्दरूपको ही सर्वदा सर्वत्र देखता था ! सब इन्द्रियोंसे, ध्यानन्दायतन श्रीरामको देखता था, सब इन्द्रियोंसे रसनायक रसाजको नित्य पीता था ! पीता हुआ ही जगत्के आह्लादकारक श्रीरामको देखता था और देखता हुआ ही, श्रीराम-ध्यानन्दरूप अमृतको सदा पीता था ! सर्व अंगोंसे निरन्तर परमेश्वर श्रीरामका सेवन करता था, प्रत्येक प्राणीमें विश्वरूप श्रीरामका दर्शन करता था ! सर्व मंगलोंके मंगल, सर्व पावनोत्सव पावन, ध्यानन्दसागरमें मग्न होकर अतिशोभन श्रीरामको निहारता था ! इसप्रकार संदर्शन करनेसे अवश्य, सच्चिदानन्द, परिपूर्ण, शान्त, परमात्मा श्रीराममें चराचर विश्व लीन हो गया और बहुभागी रामदास समाधिमें श्रीरामके अनुग्रहसे परब्रह्म श्रीरामको जानकर आंगमका अनुसन्धान करता हुआ, पृथिवीका पवित्र करता हुआ विचरने लगा !

रे भोला ! यदि रामदासके चरित्रको पढ़कर भी तू भूला ही रहा, चेतमें न आया, तो कब आयेगा ? आई ! चेत जा ! प्रत्यक्षपूर्वक श्रीरामके ध्यानयोगका आश्रय कर, ध्यानयोगके प्रसादसे अनुग्रह दुस्तर मायाको तर जाता है। जब ध्येयमें लगा हुआ मन केवल ध्येयको ही देखता है, अन्य किसीको नहीं जानता, तब ध्यान कहलाता है। जैसे ध्यानके प्रभावसे कीट भी अमर हो जाता है, उसीप्रकार ध्यानके सामर्थ्यमें जीव भी केवल हो जाता है। चेष्टासहित योगका अभ्यास करनेसे पुरुष चेष्टाहीन, सदा भावरूप स्थिरब्रह्मको प्राप्त होता है। धारणका आश्रय करनेसे, नासाग्र अवलोकन करनेसे, बहुत अवयव करनेसे अथवा बाह्य उपाय करनेसे योग सिद्ध नहीं होता, योग तो परब्रह्मके चिन्तन करनेसे सिद्ध होता है। दानव, मानव, देव, पशु, वृक्ष, प्राह, सागर, शैल, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, भूत, सर्वकर्म, भाव सब हरिके रूप हैं, सबमें सर्वत्र एक हरि ही वर्तमान है। जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ निरञ्जन, निष्कल, पर-ब्रह्म, सच्चिदानन्द जगत् श्रीरामको ही देख ! सदा ध्यानन्दरूप, महा उज्ज्वल, अचिन्त्यशक्ति श्रीरामका एकाग्र मन होकर ध्यान कर ! नर-देह-रूप तरयीको और कर्णधाररूप गुरुको प्राप्त होकर अभी अभी घोर संसार-सागरसे तरनेका उपाय कर ! परात्पर

श्रीराममें भक्तिसे विचरता हुआ सदा प्रह्वचर्यका पावन कर !  
जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ श्रीराम ही हैं, सर्वत्र व्यापक  
विभु श्रीरामको जोषकर मन कहाँ जायगा ? कहीं नहीं !  
श्रीराम धर्म हैं, श्रीराम व्रत हैं, श्रीराम कर्म हैं, श्रीराम  
सनातन हैं, शास और अज्ञात श्रीराम ही हैं, निश्चय-निश्चय  
सब श्रीराममय ही है । इसलिये—

मत कर कोई काम, राम ही केवल भज रे ।  
कर भगवतकी आज्ञा, आज्ञा सबकी हीतज रे ॥  
दिन दोका संसार, सार इसमें कछु नहीं ।  
भगवत केवल सार, प्रेमकर भगवत माहीं ।  
राम नामका जाप कर, रघुवर गुण कर गान रे ।  
भोला ! जा सब भूल रे, रामरूप धर ध्यान रे ॥

## मानसके दो रत्न

( लेखक—श्रीमैरवसिंहजी राठौर )

सेवक कर पद नयनसे, मुखसो साहिब होय ।  
तुलसी प्रीतिकी रीतिमणि, मुकाबे सराहैं सोय ॥  
मुखिया मुखसो चाहिये, खान पान कई एक ।  
पलै पोषै सकल अंग, तुलसी सहित निवेक ॥



स, यह दोहे रामचरितमानसमें दो रत्न हैं ।  
प्रथम दोहेमें राजा और प्रजा अथवा कुटुम्ब  
और कुटुम्बके प्रधानका सम्बन्ध बतलाया  
है । दूसरेमें प्रधानका कर्तव्य बतलाया है ।  
इन दोहोंमें ऊपरी तौरसे देखनेसे ज्ञान होता  
है कि प्रधान अथवा राजाका तो कर्तव्य  
बतला दिया पर प्रजाका या कुटुम्बके अन्य  
व्यक्तियोंका कर्तव्य नहीं बतलाया । पर नहीं, ध्यानसे  
देखनेपर पता चलता है कि प्रजाका कर्तव्य प्रथम दोहेमें  
ही आ गया है । सेवक कैसे हों ? कर-पद-नयनसे अर्थात्  
केवल काम करनेवाले, पर उसका फल चाहनेवाले नहीं ।  
इधर-उधरसे जो कुछ प्राप्त करें वह स्वयं अपने पास न  
रखकर मुखिया मुझको दे दें । पर मुखिया भी मुझके समान  
होना चाहिये । मुझका काम है कि जो कुछ कर-पद-नयन-  
से प्राप्त हो सब भक्षण कर ले । यदि दूसरे दोहेद्वारा  
उसका अगला कर्तव्य न बतलाया जाता तो भ्रमर्थ हो  
जाता । इसलिये दूसरे दोहेकी आवश्यकता हुई और मुख-  
मुखियाका कर्तव्य बतला दिया कि वह 'खान-पान कई  
एक' अवश्य है पर उसका कर्तव्य है कि विवेकयुक्त  
कर-पद-नयन आदि सभी अंगोंका पावन करे ।

बस, यही नियम जहाँ भी वर्ता जायगा वहाँ सुख  
और शान्ति रहेंगी । प्रकृतिमें देखिये, नदी-नाले सभी  
जगह जगह से जल लाकर समुद्र मुखियाको दे देते हैं वह  
उन्हें फिर वर्षाद्वारा जल देकर उनका पावन करता है ।  
इसप्रकार नदी-नाले तथा समुद्र सभी जलसे पूर्ण रहते हैं ।

और यज्ञ-चक्र जारी रहता है । कुछ मूढ़ तालाब इस  
नियमका भंग करके पानीको अपनेमें रोक लेते हैं, परिणाम  
यह होता है कि पानी सूख जाता है और कुछ दिनमें सूख  
जाता है । ताल कंगाल हो जाता है । यही राजा-प्रजामें है ।  
प्रजा जबतक अपनी कमाई राजाको देती है और  
राजा उस कमाईको प्रजाके ही कल्याणमें व्यवस्था करता है  
तबतक राज्यमें सुख चैनकी बंशी बजती है । राजा-प्रजा  
सभीका पोषण होता है । इस नियमका भंग होनेसे  
आजकल जो हालत है वह प्रकट है । कुटुम्बमें भी आज  
सभी अपनी कमाई अपने पास रखना चाहते हैं । फल  
होता है—विग्रह और निर्धनता । यदि सभी अपनी-अपनी  
कमाई कुटुम्बके मुखियाको दे दें और वह भी विवेकके साथ  
सभीका पावन करे तो आनन्द रहे । समाजमें भी सभी वर्ण  
अपनी कमाईको स्वयं खाना चाहते हैं । फल होता है—  
समाजकी विघ्न-भिन्नता । गीताका यज्ञ-चक्र यही है कि सभी  
घोटोंका कर्तव्य है कि निष्काम कर्म करें और उससे जो धन  
प्राप्त हो वह मुखियाको दे दें, अपने पास न रखें तथा मुखिया-  
को चाहिये कि विवेकसे उस धनद्वारा सभीका पोषण करे ।

देवान्भावयतानि ते देवा भावयन्तु वः ।

परम्परां भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

हमोंका महाराम तुलसीदासजीने उपर्युक्त दो दोहोंमें  
बतलाया है । इसीको कायम रखनेके लिये भगवान्ने  
कहा है । इसप्रकार बतलाये हुए यज्ञ-चक्रको जो इस  
जगत्में आगे नहीं चलाता, उसकी आयु पापकर्म है, उस  
इन्द्रिय-व्यपटका जीवन व्यर्थ है ।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।

अध्यायुर्मिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

अतएव हम सभीका कर्तव्य है कि अपना-अपना  
धर्म पावन करते हुए इसको कायम रखें ।



## श्रीवाल्मीकीयका राम-वनगमन

( लेखक—पं० श्रीप्रमोदराजी महाचारी )



योग और वियोग दोनों इस संसाररूपी रथके पहिये हैं। मनीषियोंने, प्रिय वस्तुके संयोगसे मनकी जो वृत्ति होती है उसे सुख और उसके वियोगका नाम दुःख बताया है। सभी प्रकारके इच्छाओंका मूल कारण संयोग और वियोग ही है। कौन मनुष्य इस बातको चाहेगा कि जो संसारमें सबसे अधिक प्यारा सम्बन्ध जाता है, जिसके दर्शनसे रोम-रोम खिल जाते हैं, वह हमारा प्यारा पात्र हमसे विलुप्त जाय ! किन्तु, मनुष्यके चाहनेसे ही सब काम नहीं हुआ करते ! हम जाल प्रयत्न करें कि हमारा अपनेप्रेमीसे वियोग न हो, किन्तु एक दिन वह अवश्य ही होता है। संसारमें जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग होना निश्चित ही है। इस प्राकृतिक नियमको कोई भी अन्वया नहीं कर सकता। जो संयोग-सुखसे सुखी होकर हँसा है, उसे वियोग वेदनासे म्याकुड़ होकर रोना भी पड़ेगा ही ! हँसना-रोना, सुख-दुःख ये सभी जीवनके भाषाएँ हैं। ऐसा कौन संसारी पुरुष होगा, जिसे कभी किसीके भी जिये चाँसू न बहाने पड़े हों ?

संसारमें थोड़ा बहुत वियोगजन्य दुःख सभीको भोगना पड़ता है। जिसे संयोगमें जितना ही अधिक सुख मिला होगा, उसे वियोगमें उतने ही दुःखका भी अनुभव होगा। वियोगका सम्बन्ध उसके पूर्वके संयोगके साथ है। इसलिये जो अधिक सहृदय है, जिसका हृदय बहुत ही कोमल है, जिसका स्वभाव अत्यधिक मिलनसार है उसे वियोगका दुःख भी उतना ही अधिक सहन करना पड़ता है।

क्या वियोग सबसुख निरानन्ददायक है ? यदि यह बात सत्य होती तो संसारसे आजतक नल, युधिष्ठिर, मोरपक्ष और हरिश्चन्द्रकी कबार्हें कभीकी जोष हो गयी होती। इन कल्य-कथाओंके अन्तसे लोग अपने जीवनको अधीतक आनन्दरहित क्यों बनाते रहते ? इससे जान पड़ता है, कि वियोगमें भी आनन्द है, किन्तु उस आनन्दका अनुभव सभी नहीं कर सकते। जिसने अशु परमायुमें उस एक ही अत्यन्त सत्ताका साक्षात्कार कर लिया है, जो संयोग और वियोगके उद्गम स्थानसे ऊँचा उठ गया है

वही वियोगजन्य सुखका आस्वादन कर सकता है। वही संयोग और वियोगकी दो तारवाली बीणाके साथ एक ही स्वरमें गायन कर सकता है। वही इस अव्युक्त आनन्दका अनुभव कर सकता है। अनुभव करके दूसरोंको उसका स्वाद बखाने वाले सन्त इस संसारमें बिरले ही पैदा होते हैं। उन्हें चाहे कवि कहिये, विधाता कहिये, देवज्ञ भयवा मनोविज्ञान-शास्त्री जो कुछ भी कह जीजिये, उनमें सभी प्रकारकी सामर्थ्य होती है। वे हमें तनिक-सी बातपर रुका सकते हैं और जरा-सी बातपर हँसा सकते हैं।

रोनेमें कितना आनन्द है, इसे वही जान सकता है, जो किसीकी यादमें रोता है। अपने दुःखसे रोनेवाले तो बहुत मिलेंगे किन्तु उनके रोनेका कोई स्थायी महत्त्व नहीं। जो दूसरोंके दुःखसे दुखी हो उठे, जिसका हृदय कल्याणके जिये अपने-परायेका भेद-भाव न रखता हो, असन्तर्पण, वही महापुरुष है। उसकी कल्याण ही सबसुखमें कल्याण कही जा सकती है। उसकी वेदना ही सुखकर वेदना है और उसकी वियोगजन्य पीड़ा ही सुखकरी—अधुमयी पीड़ा है। उसके अनुभवमें आनन्द है, उसके अवयवमें सौन्दर्य है और उसकी स्मृतिमें मीठा-मीठा सुख है। इसलिये तो कवियोंने कल्याण रसको सर्व रसोंमें श्रेष्ठ माना है।

आदिकवि भगवान् वाल्मीकिजीने अपने जीवनमें कल्याणको प्रत्यक्ष किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन उसी जीवनाधारके पादपत्रोंमें समर्पित था। उन्होंने कल्याण-कण्ठसे कल्याणनिधानका अहर्निश आवाहन किया था। इसी जिये उनके प्रत्येक कार्वमें कल्याण थी। कल्याण क्या थी उनका सम्पूर्ण शरीर ही एक प्रकारसे कल्याणका विग्रह बन गया था। जिसप्रकार बापुरहित स्थानमें स्थित मुँहतक जवालग भरा असूतका प्याला तनिक-सी ठेस लगनेसे ही फूटकरने लग जाता है, उसी प्रकार उस कल्याणमूर्ति अधिक कोमल हृदयमें भी कौंच पक्षीकी कातर बायी सुनकर एक गहरी-सी गर्म ठेस लगी। वस, उस गर्म ठेसके लगते ही उनका नवनीतके समान सिग्ध-हृदय प्रवीभूत होकर वह निकला। उस हृदयकी धारासे जो खोकपावनी मुनि मन-हारिणी सुरसरि बही, उसने इस त्रैलोक्यको पावन कर दिया। महासुनिकी वह अमर कृति संसारके सभी जीवोंको सुख-



—यायिनी हुई। श्रीवाल्मीकीय रामायणने संसारको एक दिव्यालोक प्रदान किया, जिसके प्रकाशकी किरणोंसे सभी दिशाएँ अनन्त कालके लिये आलोकित हो उठीं।

वाल्मीकीय रामायणका जन्म करुणाके द्वारा ही हुआ है। इसलिये उसके आदि, मध्य और अन्तमें करुणा ही करुणा भरी है। हम यह भी कह सकते हैं कि उसमें करुणाके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अन्य रसोंका जो बर्णन हुआ है वह केवल करुणाकी पूर्तिके लियेही है। जैसे 'राजा आरहा है' कहनेसे केवल राजाका बोध नहीं होता। उसके साथ नौकर-चाकर, पुरोहित, मन्त्री, सचारी, वाहन आदि सभीका बोध होता है किन्तु वे सभी 'राजा' के ही अन्तर्गत आजाते हैं, क्योंकि राजा भरी है और सेवक आदि उसके भ्रम हैं। इसी प्रकार रामायणमें करुणारस भरी है और शेष सभी रस उसके सहायक भ्रम हैं।

वाल्मीकीय रामायणमें तीन स्थल इतने करुणापूर्ण हैं कि उनके अवश्यसे वज्रहृदय पुरुष भी बिना रोये नहीं रह सकता। आदिमें राम-वनगमन, मध्यमें लक्ष्मणकी मूर्छा और अन्तमें सीता और लक्ष्मणका परित्याग। इन तीनों स्थलोंके बर्णनमें आदिकविने करुणाका ऐसा प्रचुर प्रवाह बहाया है कि उसमें प्रवेश करनेपर अश्रु-अश्रु नैराशोंके पैर उससे बिना नहीं रह सकते। इन सबमें मुझे राम-वन-गमन सबसे श्रेष्ठ जैचना है। उस खोहकी जेलनीसे जिससे हुए प्रसंगको मैंने जब-जब पढ़ा है, तब-तब मैं स्व ही रोया हूँ। अब भी कोई मुझे उस प्रकरणको सुनाने लगे तो अश्रुओंके बेगको रोकना मेरे लिये कठिन हो जायगा। महाकविने उन पीछे श्लोकोंके भीतर, कभी न चूकनेवाला ऐसा जादूका रस भर दिया है, जो सीता हृदयपर ही बार करता है और बेचारी आँखोंपर आक्रांत आ जाती है। अन्य हैं आदिकवि, जिन्होंने इस करुण-कथाका कथन किया है; और अन्य हैं वे वाचकवृन्द, जिन्होंने उसके अवश्यसे अपने ओशोंको सफल बनाया है!

भगवान् वाल्मीकि के 'राम' छत्रशेखरी राम नहीं हैं। वे संसारसे परेके, राग-द्वेष-शून्य तथा दुःख-सुखको समान समझनेवाले, मायापति महेश नहीं हैं। यद्यपि वाल्मीकि के राम विष्णुके अवतार साक्षात् श्रीमन्नारायण हैं, किन्तु जब उन्होंने नर-तन धारण ही कर लिया, तब तो फिर उन्होंने अपना सभी पुराना ऐश्वर्य मानों भुजा दिया है। वे नरवेपमें आकर पुरुष नहीं, पुरुषोत्तम बन गये। मायिक विकारोंसे

उन्होंने अपनेको घृण्य नहीं दिखलाया, किन्तु वे दुःखमें दुःख और सुखमें सुखकी लीला करने लगे। हाँ, यह बात जरूर थी कि वे साधारण अश्रु पुरुषोंकी भाँति दुःखमें एक-दम कातर होकर अधीर नहीं हो उठते थे और न सुखमें आपसे बाहर होकर अपने विवेकको ही खो बैठते थे। यही तो उनकी श्रेष्ठता थी, इसीलिये तो वे पुरुषोत्तम कहलाये। आदिकविने भी हमें कहीं बीचमें इस बातको फिर समझानेका कष्ट नहीं किया है, कि श्रीराम दुःख-सुखसे परे हैं, इन्हें हर्ष-शोकके भाव नहीं व्याप सकते। यही नहीं, किन्तु वे रामपर त्रिपति पवनपर स्वर्ध रोये हैं और माथ ही उन्होंने पाठकोंको भी खूब रूखाया है। यही तो उस महान् कविकी महत्ता है।

राम-वन-गमनके बर्णनमें कविने जो अपनी अद्भुत प्रतिभा-शक्ति दिखलायी है उसका विद्वान् हम इस संकुचित स्थलमें कैसे करा सकते हैं? क्या कभी गागरमें भी सागर भरा जा सकता है? उसका पूरा आनन्द तो उस अव्योधाकायदेवके अद्भुत स्थलको आदिसे अन्ततक पढ़नेमें ही आ सकता है, किन्तु पाठकोंकी प्रयत्नताके निमित्त हम उसका पक्षिखित विद्वान् कराने हैं।

यकायक राजाका बुलावा सुनकर श्रीराम अपने पिता दशरथजीके समीप जाते हैं। कैकेयीके द्वारा अपने वनगमनकी बात सुनकर वे पिता दशरथ और सौतेली माता कैकेयीको प्रणाम करके अपनी जननी कौसल्यासे वनगमनकी आज्ञा लेने उनके महलोंमें जाते हैं।

जीवनकी सभी मनोहर आशाओंका पुत्रके अभ्युदयमें ही सुख-स्वप्न देखनेवाली माता उस समय पुत्रकी मङ्गल-कामनाके निमित्त देव पूजनमें व्यस्त थी। न जाने उन्होंने कितने देवताओंकी मनौती मान रखी थी। जैसे जैसे करके वह सुहावना समय अब सन्निकट आ पहुँचा। सभी देवताओंको पूजाके द्वारा प्रसन्न करना चाहिये। विष्णु-वाक्पाके भयसे महारानी कौसल्या पूर्ण विधानसे असंख्य माहात्म्योंको मनमानी दक्षिणा देकर विधिपूर्वक अग्निमें हवन करा रही थीं। वे पूजागृहमें ही थीं, उसी समय पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्र उनसे बन जानेकी आज्ञा लेने आ पहुँचे। माताको अभी इन बातोंका कुछ भी पता नहीं था, वे अभी तक पुराने मनसूचे ही बाँध रही थीं।

प्रिय पुत्र रामचन्द्रको आया देख माता प्रेम्के कारण अधीर हो उठीं। उन्होंने पुत्रका आलिंगन किया, उनका

माया पूर्वा और बड़े-बड़े आशीर्वाद देकर अन्तमें वात्सल्य-प्रेमके अधीन हो रामचन्द्रको जल्दी ही कुछ खा खेनेके लिये कहा।

भोजनके लिये जो राजसी आसन बिछा जा, उसे स्पर्श कर रामचन्द्रजी हाथ जोड़ बिनीत वचनोंसे बोले—‘माता ! आपको पता नहीं है, मेरे सभी प्रिय जनोंके लिये इस समय बड़ा ही भय आया है, किन्तु आप सबको इससे दुखी न होना चाहिये। मैं दण्डकारण्यको जा रहा हूँ। अब मुझे राजसी आसनसे क्या काम ? अब तो मेरे लिये कुशासन ही पर्याप्त होगा। मैं चौदह वर्ष वनमें रहूँगा, जंगली वन्य पशुओं का भक्षण करूँगा और कन्द-मूल-फल खाकर ही अपना निर्वाह करूँगा।’

ओह, इन वेदनापूर्ण वचनोंको सुनकर देवी कौसल्याको कितना अपार दुःख हुआ होगा, इसकी पूर्ण कल्पना क्या कोई कर सकता है ? महाकविने निम्नलिखित तीन श्लोकोंमें उसके दुःखका चित्र खींचा है—

सा निकृतेव सामस्य यष्टिः परशुना वने ।  
पपात महसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥  
तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदापिमिव ।  
रामस्त्वप्यपमामास मातरं गतचेतसम् ॥  
उपावृत्त्येत्यिनां दीनां वडवामिव वाहिताम् ।  
पांशुगुण्डिनमबाह्वा विममर्श च पाणिना ॥

( बा० रा० २।२०।३२-३४ )

‘इम ( भयङ्कर ) संघातके सुननेसे देवी कौसल्या कुहाड़ीसे काटी हुई मालकी शाखाके समान सहसा भूमिपर गिर पड़ी, मानों स्वर्गसे कोई देवाङ्गना गिरी हो। दुःखके अयोग्य, बेहोश कौमल्या कटे केलके समान गिर पड़ी। श्रीरामचन्द्रने अपनी माताको उठाया। फरबट बदलकर दुःखिनी कौसल्या उठीं, जिस प्रकार बोकले लड़ी घोंघी उठती है, उनके सम्पूर्ण शरीरमें भूल लग गयी थी, श्रीरामचन्द्रने उसे अपने हाथसे आबा।’

उस समय माताके वैर्यका बाँध सचमुच टूट गया होगा। जिन बातोंको अबतक वे अपने पुत्रसे छिपाये रखती थीं, भारी दुःख पड़नेपर वे बातें आपसे आप ही बाहर निकली पड़ीं ! वे बड़े ही दुःखके साथ कहने लगीं—‘पुत्र ! यदि तुम उत्पन्न न हुए होते तो मुझे दुःख होता अवरण, किन्तु तब यह पुत्र-वियोगरूपी असह्य दुःख न होता। बन्ध्याको पुत्रहीन होनेके अतिरिक्त और कोई दूसरा दुःख नहीं होता। मैंने पतिके प्रेमसे होनेवाले सुख

और कल्याण कभी नहीं देखे। हे राम ! मैंने सोचा था कि पुत्रके समयमें मैं सुख भोगूँगी, पर अब हृदय छेदनेवाली अपनेसे छोटी सौतेली बहुत-सी अधिकार बातें, उनसे बड़ी होनेपर भी सहनी पड़ेंगी। हे पुत्र ! जब तुम्हारे रहने-पर ही यहाँ मेरा इतना अधिक तिरस्कार था, तब तुम्हारे चले जानेके बाद मेरा क्या हाल होगा ? उस समय तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी। राम ! तुम्हें उत्पन्न हुए अट्ठाईस वर्ष हो गये और ये वर्ष अपने दुःखोंकी समाप्तिकी कामनासे मैंने जैसे-तैसे करके बिताये। सौतेलोंके द्वारा अपमानको सहते-सहते मैं बूढ़ी हो गयी, अब मुझसे ये दुःख नहीं सहे जायेंगे। तुम्हारा पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख न देखनेसे दुःखिनी मैं किस प्रकार अपना जीवन बिताऊँगी ? राम ! मेरा हृदय बड़ा ही कठोर है इसी कारण वह फटता नहीं। अवरण ही मेरी मृत्यु नहीं है। मृत्युके घरमें शायद मेरे लिये जगह ही नहीं रही ! इसीसे तो यमराज आज मुझे उठा नहीं ले जाते। मेरा हृदय जोहेका बना हुआ है, तभी तो यह ऐसे भयंकर दुःखके आनेपर न तो टूटता ही है और न फटता ही है। यह बात बिल्कुल ठीक है कि निश्चित समयके पहले किसी प्रकार भी मृत्यु नहीं हो सकती। पुत्र-कल्याणकी कामनासे मैंने जो जल, दान, संवस किया, वह सब अनर्थक हुआ। मैंने जो तपस्या की वह भी व्यर्थ गयी।’ इसप्रकार अनेक विलाप करती हुई माता अधीर होकर कहने लगी—

अथापि किं जीवितमद्य मे वृथा  
त्वया बिना चन्द्रनिमानसप्रभ ।  
अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः  
सुदुर्बला वत्समिवाभिकाक्षया ॥

( बा० रा० २।२०।५४ )

‘चन्द्रमुख राम ! तुम्हारे बिना मेरा यह गर्हित जीवन व्यर्थ है। इसलिये जिसप्रकार बछड़ेके पीछे दुर्बली गौ चलती है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे वन चलूँगी।’

वन जानेवाले रामसे माताने हृदयको पिघला देनेवाली बातें कहीं, किन्तु सत्यप्रतिज्ञ राम उनसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। पास ही खड़े हुए लक्ष्मण इन सभी बातोंको सुन रहे थे। रामके कल्याणमें ही सदा तत्पर रहनेवाले लक्ष्मण इसको सहन नहीं कर सके। उन्होंने राजाको खूब ही खरी-खोटी सुनायी, कैकेयीको भी बुरा-भला कहा और रामको उनका अधिकार

सुझाया। उन्होंने आवेशके साथ कहा—“पुरुषोत्तम, राजा किस बल-भरोसेपर और किस कारखसे मुझारा यह प्राप्त राज्याधिकार कैकेयीको देना चाहते हैं? हे शत्रुविजयिन्! आपसे और मुझसे बैर करके राजा भरतको राज्य देनेकी कौन-सी शक्ति रखते हैं? इसलिये आप अभी राज्यपर जबरदस्ती अधिकार कर लें। बभराजके समान धनुष-बाण लेकर आपकी सहायता करनेको मैं तैयार हूँ।’ माता रामके स्वभावको जानती थी, इसलिये उन्होंने न तो जबरनकी इन बातोंका समर्थन ही किया और न विरोध ही। उन्होंने केवल इतना ही कहा ‘राम! अपने भाई जबरनकी सब बातें तुम सुनो, इसके अनन्तर जो कुछ तुम उत्तम समझो वह करो।’ रामको और करना ही क्या था? प्रेममें—आज्ञा-पालनमें अधिकारका ध्यान कैसा? इन कार्योंका पूर्ण निर्वाह तो एक त्यागके ही द्वारा हो सकता है। इसलिये उन्होंने जबरनकी वधाई करते हुए उन्हें उनका कर्तव्य सुझाया। माताको सान्त्वना दी और उन्हें समझाने हुए विवेकी राम बड़ी ही सरलताके साथ बोले—‘माता! तुम सोचो तो सही, हम सबके गुरु धर्मात्मा महाराज दशरथ अभी जीवित हैं, उनके रहते तुम विधवा स्त्रियोंकी भाँति मेरे साथ वनमें कैसे चल सकोगी? पिताकी आज्ञाका पालन करना मेरा और मुझारा सभीका परम धर्म है। माता! मैं राज्यलोभके कारण पिताकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता।’ माताने जब देखा कि राम किसी भी प्रकार अपने निश्चयसे हिलनेवाले नहीं हैं तो उन्होंने रोते-रोते रामकी बातें स्वीकार कीं। दुःखिनी माताने कड़ी छाती करके रामकी मंगल-कामनाके लिये उनका स्वस्थयन किया। निरन्तर अश्रुओंके प्रवाहसे जिसकी छाती भीग रही है, ऐसी माताने विलाप करते हुए अपने हृदयसे पुत्रको छातीसे चिपटा लिया। रोते हुए रामके माथेको सूँघकर अपनेको अभागिनी समझने वाली माताने पुत्रको अनेक आशीर्वाद दिये। बार-बार पुचकारकर और उनके मुखमाये हुए मुखकमलको निहारकर माताने उन्हें बिदा किया। वहाँसे रामचन्द्रजी सीताजीके महलोंमें गये।

मनुष्य चाहे कितना भी साहसी क्यों न हो, कैसा भी पण्डित अथवा विवेकी हो, किन्तु हर्ष और शोकके भाव उसके चेहरेपर प्रकट हो ही जाते हैं। रामचन्द्र अपने परिजनोंसे प्रयुक्त होनेवाले थे अतः उनके चेहरेपर वियोग-जन्य भावके लक्षण प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन्हें

ऐसी दशामें देखते ही सीताने उसका कारण पूछा तथा आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—

अथ बार्हस्पतः श्रीमान् युक्तः पुष्पेण राघव ।

प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः ॥

( वा० रा० १।२६।९ )

‘हे राघव! यह क्या? विद्वान् ब्राह्मण तो कह रहे हैं कि आप पुष्प नक्षत्र हैं, जिसके देवता बृहस्पतिजी हैं, इसलिये इसमें आरम्भ किया हुआ कार्य सफल होता है। यह समय अभिवेकके योग्य है, अतएव आपको प्रसन्न होना चाहिये था। मैं देखती हूँ कि बात इसके विपरीत है। कहिये तो सही, आप उदास क्यों हैं?’

सीताके पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीने आदिसे अन्ततक सभी वृत्तान्त सुनाया और उन्हें अपने पीछे उनका कर्तव्य सुझाकर अयोध्यामें ही रहनेका उपदेश दिया। रामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुनकर पतिप्राणा सीताने न तो कैकेयीको ही बुरा-भला कहा, न अपने रबसुर धर्मात्मा महाराज दशरथजीकी निन्दा की, और न श्रीरामचन्द्रजीसे ही पुरमें रहनेका आग्रह किया। किन्तु वे इस बातसे दुखी हुई कि श्रीराम मुझे अयोध्यामें रहनेके लिये क्यों कह रहे हैं। इसीलिये स्नेहसे कुपित होकर हृदयके साथ बोलीं—‘राघव! यदि आप आज ही वन जा रहे हैं, तो मैं आपके रास्तेके कुत्त-कबूटकोंको रौंदती हुई आगे-आगे चलींगी। मैं आपके साथ वन जाऊँगी, इसमें कुछ भी सम्बेह न कीजिये। महाभाग! मैं वन जानेके लिये तैयार हूँ। अब मैं किसी प्रकार रुक नहीं सकती।’ सीताके इन हृदय वचनोंको सुनकर भी राम उन्हें साथ ले चलनेको राजी न हुए। वे उन्हें जंगलोंके भयङ्कर दुःखोंको सुनाकर डरानेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने स्त्रव विलारके साथ बीहड़ वनोंमें होनेवाले भयङ्कर दुःखोंका वर्णन किया।

ये बातें सुनकर सीता न तो डरी ही और न अपने निश्चयसे तनिक विचलित हो हुईं। वे रो रोकर पतिले कहने लगीं—‘मैं आपकी सेविका हूँ, पतिव्रता हूँ, दीना हूँ और सुख-दुःखको समान समझनेवाली हूँ। हे राघव! आप मुझे साथ ले चलें, क्योंकि मैं आपके सुखदुःखकी संगिनी हूँ। यदि आप इसप्रकारकी दुःखिनी मुझको अपने साथ वन ले जाना नहीं चाहते, तो मैं अपनी मृत्युके लिये निश्च, आग या जलका उपयोग करनेका विचार करूँगी।’ इतनेपर भी जब सीताने देखा कि पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र मुझे वन ले

चलनेको राजी नहीं हैं, तब तो वे बहुत ही अधीर हो उठीं। उनका क्रोध आवश्यकतासे अधिक बढ़ गया था, किन्तु वह क्रोध स्नेहसे भीगा हुआ और ममत्वसे भरा हुआ था। वे श्रीरामचन्द्रको स्नेहके साथ तीव्रता से मारती हुई प्रेम और अभिमानके साथ बोलीं—

किं त्वा मन्वत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः।

राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषमिग्रहम्॥

(वा० रा० २।३०।३)

‘मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनकने आपको पुरुष-शरीरधारी की नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया।’

इसप्रकार सीताने जब भाँति-भाँतिले श्रीरामचन्द्रको मजबूर किया और किसी प्रकार भी अयोध्यामें रहनेको राजी न हुई तो रामने उन्हें साथ चलनेकी अनुमति दे दी। लक्ष्मण कब चूकनेवाले थे? उन्होंने कौमल्याके घरसे ही रामचन्द्रका पत्ता पकड़ लिया था। उन्हें विशेष समझाना प्यर्थ था, इनलिये सहजमें ही साथ जानेकी अनुमति मिल गयी।

अब रामचन्द्रजीने वन-गमनकी तैयारियाँ शुरू कर दीं। लक्ष्मण उसी तत्परताके साथ वन-गमनकी तैयारी करने जुट गये जिस तत्परतासे अयसे थोड़ी देर पहले राज्याभिषेककी तैयारीमें जुटे हुए थे। अब वन जाना ही है—यह सोचकर राम साहसी पुरुषकी भाँति सभी सामान ठीक करने लगे। उन्होंने कोषाम्बसे अपना निजी धन मँगवाया और उसे क्रमसे सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बाँट दिया। अपने तथा लक्ष्मणके घरोंकी रक्षाके निमित्त बहुत-सा धन देकर विशेष-विशेष नौकर नियुक्त कर दिये। सभी ब्राह्मण अपनी इच्छानुसार वन-सम्पत्ति पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए और रामचन्द्रको भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देने लगे।

ऐसे समयमें भी रामचन्द्रका विनोदी स्वभाव कुछ कम नहीं हुआ। अयोध्यामें उस समय गर्गगोत्री त्रिजट नामका एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसके सन्तान तो बहुत थी। किन्तु घरमें खानेका पूरा ठिकाना नहीं था। बेचारा ब्राह्मण होकर भी कुशाख और हल लेकर दिनभर कड़ी धूपमें खेतपर काम किया करता था। दुःखके कारण वह दुर्बल ब्राह्मण पीछा पड़ गया था। उसकी स्त्रीने उससे कहा—‘आप मेरी बात सुनिये, राजकुमार राम आज सभी

ब्राह्मणोंको मनमानी दखिया बाँट रहे हैं। आप भी चले जायें। आपके मान्यमें होगा तो कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा।’ स्त्रीके वचन सुनकर उस दुर्बल ब्राह्मणने एक फटा-सा चिथड़ा अपने शरीरपर लपेट लिया और राजकुमार रामके महलोंकी ओर चला पड़ा। राजकुमार साधारण मनुष्योंकी तरह बाहर खुले मैदानमें तो घूमते ही नहीं थे उनसे मिलना कोई हँसी खेल नहीं थी। रामचन्द्र पाँच पहरोँके भीतर रहते थे। किन्तु अब तो वनवासी बन चुके हैं, इसलिये आज उनके पास जानेके लिये किसीको भी मनाई नहीं है। इसीलिये वह त्रिजट ब्राह्मण पाँचों खबडोंको पारकर सीधा रामचन्द्रके पास पहुँच गया। किसी भी खबडमें पहरेवाले सिपाहियोंने उसे नहीं रोका। वह तेजस्वी ब्राह्मण रामचन्द्रके समीप जाकर बोला—‘महाबली राजपुत्र! मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं, मैं वनमें रहता हूँ, मेरी कोई निश्चित वृत्ति नहीं है, आप मेरी ओर देखें।’ श्रीरामचन्द्रने उस ब्राह्मणकी ओर देखकर मुसकराते हुए कहा—‘विप्रवर, अभी मैंने अपनी हजार गौओंमें से एक भी गौ किसीको नहीं दी। इसलिये आप एक काम कीजिये। वट डण्डा कीजिये—इसको आप जोरसे केंके। यह जहः जाकर गिरेगा, वहाँ तककी सभी गौएँ आपकी होंगी।’ यह सुनकर उस दुर्बल ब्राह्मणमें न जाने कहाँसे बल आ गया। उसने जल्दीसे अपनी कटी भोलीको खूब जोरोंसे कसकर बाँध लिया और अपने सारे बलको हाथमें एकत्रित करके जोरसे डण्डा केंका। कई हजार गौओंके कुचड़को पार करता हुआ डण्डा सरयूके उस पार जा गिरा। रामचन्द्र उस दुर्बल ब्राह्मणके इस कृत्यको देखकर हैस पड़े और प्रसन्न होकर बोले—‘विप्रवर! आप कुछ और न समझें वह तो मैंने आपके साथ विनोद किया था। मैं इन सूखी हड्डियोंको देखना चाहता था, कि इनमें कितना बल है? वे गायें सब आपकी हुई और भी जो आपको आवश्यकता हो, सो वहाँसे ले जायें, क्योंकि मैं ब्राह्मणोंका दास हूँ। मेरा सारा धन ब्राह्मणोंके लिये ही है।’ रामचन्द्रने उस ब्राह्मणको इसप्रकार सन्तुष्टकर विदा किया।

सारा वन बाँटकर राम अपनी पत्नी और भाईके साथ पैदल ही राजासे विदा होनेके लिये राजमवनमें चले। पुरवासियोंके उस समयके दुःखको कौन कह सकता है? महाकविने उसका बड़ा ही सजीव और इव्यग्राही वर्णन किया है। स्थानाभावके कारण वहाँ उसका तनिक भी उल्लेख नहीं हो सकता।

सुमन्तने जाकर दुखी और बेहोश राजाको समाचार दिया कि अपना सभी धन आह्वानोंको बाँटकर राम बन जा रहे हैं और वे आपके दर्शन करनेके लिये द्वारपर खड़े हैं।

‘हा ! क्या वह भयङ्कर समय सचमुचमें सन्निकट आ पहुँचा जब मैं अपने निर्दोष प्यारे पुत्रको इन्हीं आँखोंसे बनवासीके वेषमें देखूँगा।’ कही जाती करके राजाने सुमन्तसे कहा—‘सूत ! मेरी सब कियोंको बुझा जाओ, मैं एक बार इन सबके सहित रामचन्द्रको देखना चाहता हूँ।’ महाराजकी आज्ञा यह भरमें ही पूरी की गयी। देखते-ही-देखते साढ़े तीन सौ रानियाँ दुःखसे जम्बी-जम्बी लाँसें छोड़ती हुई वहाँ आ उपस्थित हुईं। उनके बच्चे आँखोंसे भीगे हुए थे। रानियोंके आ जानेपर राजाने भाई और सीतासहित रामको भीतर बुला भेजा। रामको देखते ही राजा दौड़कर बड़े वेगसे उनकी ओर चले, किन्तु बीचमें ही मूर्छा आ जानेके कारण बेहोश होकर गिर पड़े। जल्दीसे दौड़कर श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणने उन्हें सँभाला, सुकुमार सीताने भी इस काममें सहायता की। राजाके दोनों नेत्रोंसे साबन-भाँवोंकी वर्षाके समान आँखोंकी कड़ी जग रही थी। वे बेहोश हुए पलंगपर पड़े थे। शोक-समुद्रमें डूबे हुए राजाको यह भरमें होश हुआ। तब विनीत भावसे श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़कर पितासे बोले—

आपृच्छं त्वां महाराज सर्वव्यापीऽसि नः ।  
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥

( बा० रा० २।३।४।२२ )

हे महाराज ! मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि आप इस सब जोगोंके स्वामी हैं, हम दण्डकारण्यको जानेके लिये नैवार हैं। आप प्रसन्न होकर हमारी ओर देखें और हमें जानेकी आज्ञा दें।

धर्मपाशमें बँधे हुए राजाकी उस बेहोशका अनुभव तो उनके निःशुक्तिचित्त शब्दोंसे लगता है। वे दुखी होकर रामचन्द्रसे बोले—

अहं राघव कैकेया वरदानेन मोहितः ।  
अयोध्यायां त्वमेवाद्य मम राजा निगृह्य माम् ॥

( बा० रा० २।३।४।२६ )

‘हे राघव ! कैकेयीने वरदानके द्वारा मुझे मोहित कर लिया है, मैं राज्यके अयोग्य हूँ, क्योंकि मैं अब अपने अधीन नहीं हूँ, इसीलिये हे पुत्र ! मुझे कैदकर तुम अयोध्याके राजा बनो।’

राजाके इन वचनोंको सुनकर रामचन्द्र बोले—  
‘महाराज ! हजारों वर्षोंतक आप पृथ्वीका राज्य भोगें।

राज्य करनेकी मेरी इच्छा ही नहीं है, मैं तो वनमें जाकर रहूँगा और चौदह वर्ष पूरे होनेपर फिर आपके भीतरियोंके दर्शन करूँगा।’ पिताने देखा राम बन जानेसे रोके नहीं जा सकते। बेहोशके सागरमें डुबकियाँ लगाते हुए बड़े बाप अपने सिंह-सदृश पराक्रमी पुत्रको इसप्रकार विस्कुल हीतैयार देखकर वीरता और कदकाके साथ बोले—

अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा ।  
एकादशदिननापि साधु तावच्छ्राम्यहम् ॥  
मातरं मां च संपश्यन् वसेमापद्य शर्वरीम् ।  
तपितः सर्वकामैस्त्वं यः काल्य साधमिष्यसि ॥

( बा० रा० २।३।४।३३-३४ )

‘बेटा ! तुम वन जाये बिना मानांगे नहीं, किन्तु मेरी एक अभिलाषा है, तुम आज मत जाओ, जिससे एक दिन और एक रात्रिका समय मैं तुम्हें देखकर सुखसे बिता सकूँ। राम ! इस ( दुःखिनी ) अपनी माताकी ओर एवं मेरी ओर देखकर, बस, आज एक ही रात्रिके लिये यहाँ मेरे पाम और रह जाओ। आज रहकर और मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करके कल प्रातःकाल भले ही सुराीके साथ चले जाना।’ २८ वर्षतक दिन-रात्रि पास रहनेपर जिन महाराजके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए, वे एक दिनमें ही अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण होनेका सुख-स्वप्न देख रहे हैं। सब है, ‘डूबतेको तिनकेका सहारा भी बहुत होता है।’ एक रातके रहनेकी अनुनयमें कितनी करुणा भरी पड़ी है ! सचमुच यदि राम उस रात्रि रहकर बड़े बापके पाम बैठकर उसकी थाजीमें साथ ही भोजन कर लेते, तो महाराज दशरथ अवश्य ही कृतकृत्य हो जाते। किन्तु विधिका विधान विधि है, जो पुत्र सदा अपने पिताके मुखकी ओर हृत्पण्डित देखता रहता था कि देखें पिता किम समय क्या आज्ञा करते हैं। ऐसा न हो कि उसके पालन करनेमें तनिक भी विलम्ब हो जाय, वही पुत्र आज धर्म-पाशमें बँधनेके कारण ऐसा कठोर हो गया है कि इतनी चिन्तारो करनेपर जो एक रात्रि रहनेको राजी नहीं होता, इसीका नाम मवितम्बता है !

कैकेयी जानेके लिये जल्दी कर रही थी, उस समय यह धर्मराजकी सहोदरा तथा विधिवर सपिंखी बनी हुई थी। उसे वहाँ श्रीरामका खूबभर भी रुकना अच्छा नहीं लगता था। महाराजने रामको रोकनेके सैकड़ों प्रयत्न किये, किन्तु सभी निष्फल हुए। तब उन्होंने अपने बड़े मन्त्री सुमन्तकी ओर इशारा किया। सुमन्त ओरसे सिर घुमा, कई बार

जम्बी जम्बी साँसें जोष, हाथसे हाथ मल, दाँत कटकटाकर, क्रोधसे जाब आँखें बना—अधिक क्रोधके कारण भयङ्कर दुःख भोगते हुए, महाराजके अभिप्रायको समझ अपने तीक्ष्ण बचनरूपी बाणोंसे कैकेयीके हृदयको कँपाते हुए तथा उसके अन्तस्तलको अपने अनुपम वाक्य-बाणोंसे बेधते हुए, बड़े ही क्रोधके साथ बहुत-सी उल्टी-सीधी बातें कहने लगे। कैकेयीकी मानाकी क्रूरताका कथन करके क्रोधित सुमन्तने उसे कुजवातिनी बताया और कहा, 'उसीकी क्रूर कर्म करनेवाली कलकिनी कन्या है। तुमसे ऐसी ही आशा की जा सकती है। सच है, बेटी माँके ही समान गुण वाली होती है। किन्तु उसपर सुमन्तकी इन बातोंका कुछ भी असर नहीं हुआ। वशिष्ठ, वामदेव, सिद्धार्थ आदि सभी समकक्ष व्यक्तियोंका समझाना व्यर्थ हुआ। वह अपने विचारको किसी प्रकार भी न बदल सकी। तब दुखी होकर महाराजने कहा—'अच्छा, मेना धन, कोष, वस्त्र, आभूषण और सभी राजसी सामग्रियाँ रामचन्द्रके साथ वनमें जायें और इस शून्य राज्यको भरत भोगें।' तब डरी हुई कैकेयी बोली—'जब सभी वस्तुएँ चली जायँगी तो इस सारहीन राज्यको लेकर भरत क्या करेगा। उसको ऐसा राज्य नहीं चाहिये।'।

जब दुर्गा राजाने इस बातपर कैकेयीको बहुत बुरा-भला कहा और स्वयं रामचन्द्रके साथ वन जाने तकको उद्यत हो गये, तब रामचन्द्र बड़े ही विवेकपूर्ण बचनोंसे बोले—

त्यक्तभोगस्य मे राजन् वनं वन्येन जीवतः ।

किं कायमनुयात्रेण त्यक्तसंगस्य सर्वतः ॥

यो हि दत्त्वा द्विपश्रंष्टं कश्यायां कुरुत मनः ।

गुप्तुर्गृहेन किं तस्य त्यजतः कुञ्जरात्तमम् ॥

(वा० रा० २।३७.२-३)

पिताजी ! मैंने तो सभी प्रकारके भोगोंका त्याग कर दिया है। मेरा निर्वाह जंगली वस्तुओंसे ही हो जायगा, जब मैंने सभी प्रकारकी आकांक्षाओंका त्याग कर दिया है, तब मेरे साथ सेनाकी क्या आवश्यकता है ? जिसने थपना मयसे बढ़िया हाथी दे डाला उसे हाथी बाँधनेकी रस्सीसे भला मोह कैसा ? वह क्या रस्सीके लिये आग्रह कर सकता है ? अतएव सज्जनश्रेष्ठ राजन् ! मुझे इस सेनाकी आवश्यकता नहीं। ये सब सेना आदि वस्तुएँ मैंने भरतको दे दी हैं। मेरे लिये तो आपलोग बल्कल-बल ले आवें।

मेरा काम एक खनती और खाँचीसे ही चल जायगा। यही चीजें मुझे मिलनी चाहिये।

निर्लज्जा कैकेयी इतने आश्चर्योंके बीचमेंसे उठकर स्वयं बल्कल-बल ले आयी। उस वज्रहृदयको हस्तमें तनिक भी लज्जा न लगी। रामचन्द्र और लक्ष्मणने सब आश्चर्योंके देखते-ही-देखते अपने महीन वस्त्र उतारकर रख दिये और मुनियोंके पहनने योग्य बल्कल-बल पहन लिये।

ओ ! उस समयका दृश्य कैसा हृदयविदारक होगा, जब सुकुमारी सीताके सामने चीर-बस्त्र आये होंगे। जिसने कभी दुःख नहीं देखा था, जो सदा लाव-चाव और प्यारसे पली थी, वही राजकुमारी विदेहकन्या और चक्रवर्ती महाराज दशरथकी पतोड़ आज दशरथके सामने मुनि-पत्नियोंकी तरह बल्कल-बल धारण करेगी ! सचमुच उस समय वहाँके सभी उपस्थित स्त्री तथा पुरुषोंका हृदय फटकर चकनाचूर हो गया। बिचकविकी भ्रमर जेकनीने सीताके मनोभावोंका कैसा सजीव चित्र खींचा है—

अथात्मपरिवानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।

संप्रेक्ष्य चौरं संग्रस्ता पृथ्वी वागुरमिव ॥

साव्यपत्रपमाणेन प्रगृह्य च सुदुर्मनाः ।

कैकेय्याः कुशचौरं ते जानकी शुभलक्षणा ॥

(वा० रा० २।३७।९-१०)

सदा पीताम्बरोंको पहननेवाली सीता अपने बल्कल-बलोंको देखकर घेने भयभीत हो गयी जैसे बिशावाची हरिणी जालको देखकर डर जाती है। शुभलक्षणा जानकी कैकेयीसे वे बल पाकर लजित और दुःखित हुई, जानकीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह लजित हो गन्धर्वराजके समान अपने पतिसे बोली—

कथं नु चौरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः ।

'वनवासी मुनि किसप्रकार चीर पहना करते हैं ?' बेचारी-ने काहेको किसीको चीर बाँधते देखा था, इसलिये अपने चीर पहिनेके अज्ञानको खरबकर बड़ लजित हुई और वहाँ ठिठुक गयी, एक चीरको तो उसने कन्धेपर रख लिया और दूसरेको हाथमें लिये हुए वह सरलताके साथ रामचन्द्रजीके मुखकी ओर देखने लगी। सीता चीर पहनना नहीं जानती है, यह सोचकर धर्मात्मा राम सीताके समीप गये और अपने हाथसे पीताम्बरके उपर चीर फस दिया। जानकीको यति-बेचमें चीर पहने देखकर समूचा राजभवन

स्वयंके भीषण रवसे गूँज उठा ! उस हृदय हिजा देनेवाले दरपसे सभी दुखी हुए ! गम्भीरताके सागर भगवान् बगिह भी अपने आवेशको नहीं रोक सके और उन्होंने अनेक प्रकारकी जली-कटी बातें कैकेयीको सुनायी ।

बेहोश और दुखी राजाको प्रणामकर रामचन्द्रजी भाई और पत्नीसहित वन जानेके लिये रथपर बैठे । उनके बिद्योगसे व्याकुल अपार भीड़ आँखोंसे आँसु बहाती हुई और कजंकिनी कैकेयीको जली-कटी सुनाती हुई रथके पीछे-पीछे चली । रोकना और समझाना सभी बेकार हुआ । उस बिद्योगकी बाढ़में कोई किसीकी नहीं सुनता था । सभी एक अद्भुत आकर्षणसे स्वयं ही खिंचे जा रहे थे ।

श्रीरामचन्द्रके चले जानेपर दुखी राजा पागलोंकी तरह यह कहते हुए घरसे पैदल ही दौड़े कि 'मैं अपने प्यारे पुत्रको देखूँगा ।' उनके पीछे-पीछे साढ़े तीनसौ रानियाँ भी चलीं । सम्पूर्ण नगर समानरूपसे दुखी था । इतनी अपार भीड़ होनेपर भी कहीं धूलिका नामतक नहीं था । कारण, वहाँकी धूलि सबके आँसुओंसे कीच हो गयी थी । रामचन्द्रने अपनी माता और पिताको रथके पीछे-पीछे आते देखा । सदा सवारिपौर चलनेवाली माताको अनाथिनीकी तरह रथके पीछे-पीछे दौड़ते देखकर मातृभक्त श्रीराम दुःखसे तिलमिला उठे । वे धर्मपाशमें बँधे थे, इन्हींसे सामने देखते हुए भी मातासे आँखें न मिला सके । पुरवासी हाहाकार कर रहे थे । माता कीसल्या रामके रथके पीछे बिना बन्धु-बाजी गौकी तरह करण्य स्वरमें 'हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सीते ! कहती हुई जोर-जोरसे रुदन कर रही थी । राम-लक्ष्मण और सीताके लिये उनकी आँखोंसे निरन्तर आँसु बह रहे थे । रामचन्द्रने कई बार अपने रथके चारों ओर चकर लगाती हुई अपनी दुःखिनी माताको देखा । वह पगलीकी भाँति इधरसे उधर किसी छोई हुई चीजको ढूँढ़ रही थी । रामचन्द्र सारथीने बार-बार कहते हैं, 'जल्दी रथ बढ़ाओ ! जल्दी करो !' किन्तु चारों ओरकी उमकी हुई भीड़ रथको आगे बढ़ने दे तब तो ! इतनेमें ही महाराज दशरथने भी जोरसे चिल्लाकर सुमन्तसे रथ रोकनेके लिये कहा । सुमन्त दुविधामें पड़ गया । राम चलनेके लिये कहते हैं और प्रजाजन तथा महाराज चिल्ला-चिल्लाकर ठहरनेका आग्रह कर रहे हैं । शोक-सन्तप्त राम उस समय सुनते बोले—

'जैवा सुत ! यह भीषण दुःख अब अधिक समय तक नहीं देखा जाता । तुम रथको जल्दी हँको !

बेचारा सारथी क्या करता ? उसे बचावके लिये रास्ता मिला गया । सूतने छाती कपीकर दोनोंके पात्रुका मारी । बोढ़े तिलमिलाकर चलने लगे । जनसमूह एक स्वरमें ऊँचे स्वरसे पुकार उठा 'हा राम !'

रथ जब राजमहलको पारकर राजपथपर चलने लगा तब भीड़ने चारों तरफसे आकर फिर बेर खिपा । वे लोग रामचन्द्रके साथ वन जानेका निश्चयकर इतनासे रथके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । रामने सबको यथाविधि समझा-बुझाकर खीटानेका प्रयत्न किया । उन्होंने देखा—भीड़के साथ बड़े-बड़े ओगिच और वेदज्ञ ब्राह्मण पैदल चल रहे हैं । उन्होंने रामके साथ वनमें रहनेका पूर्ण निश्चय कर लिया है । बृहस्पति और अंगिराके समान तेजस्वी महाराजाओंके भी पूजनीय और अद्वेय ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल होकर रामचन्द्रके रथके साथ दौड़ रहे हैं । उन बृह ब्राह्मणोंको वे किसी प्रकार भी न रोक सके । यद्यपि रामने हृदय कठोर कर लिया था, किन्तु अभी आँखोंकी जिहाजको न ब्रोक सके थे । बृह ब्राह्मणोंको पीछे-पीछे आते देख वे रथसे उतर पड़े और भाँति-भाँतिते अनुनय-विनय करने लगे । राम किसी भी प्रकारसे खीटनेको राजी नहीं हैं, यह तोचकर बृह ब्राह्मण दुःखके साथ कातरस्वरमें अपने सकेद बाजोंको दिलाकर कहने लगे—

त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु किं स्यात् धर्मपथे स्थितम् ॥

याचिता ना निवर्तस्व हंसयुक्तशिरोऽङ्घ्रिः ।

शिरोर्मिर्मृताचार महीपतनपांसुर्लुः ॥

( बा० रा० २।४६।२६-२७ )

धर्मात्मा रामचन्द्र ! यदि आप-जैसे अद्भे धर्मात्मा पुरुष भी धर्मका तिरस्कार करेंगे—ब्राह्मण-वचनरूपी धर्मकी ओरसे विमुख होंगे—तब अन्य साधारणलोग धर्मका पालन किसप्रकार करेंगे ? हम प्रार्थना करते हैं, आप जौट चले । आप धर्मानुष्ठानमें अच्छे हैं । हम जमीनपर खीटनेके कारण धूँड़से अरे हंसके समाज के त केशोंसे युक्त मिरों-वाले ब्राह्मण आपसे प्रार्थना करते हैं, आप जौट चले ।

ब्राह्मणोंने दीनताके साथ दुःखपूर्ण शब्दोंमें अपनी परिस्थिति बताया, वे बोले—'बहुत ब्राह्मणोंका यज्ञ कैदा हुआ है, वे सभी यज्ञ कर सकेंगे जब आप खीटकर जयोन्माको चलेँगे । आप स्थावर और जंगम सभी प्राणियोंके मित्र हैं ।' इसप्रकार ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिते प्रार्थनाएँ



की, किन्तु रामचन्द्रजी अपने विषयसे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

एवं विमोक्षतां तेषां द्विजतीनां निवर्तने।

दृष्टो तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम्॥

(वा० रा० २।४५।३२)

इसप्रकार चौटनेके लिये श्रीरामचन्द्रसे माझखोने प्रार्थना की, उसी समय रामचन्द्रको आगे जानेसे रोकती हुई तमसा नामकी नदी बोल पड़ी।

इसप्रकार श्रीरामचन्द्रकी राहको तमसाने रोक लिया और हमारी खेजनीको स्थल-संकोच बार-बार रोक रहा है, इस-लिये इस खेजको हम यहीं समाप्त करते हैं। अन्तमें पाठकोंसे इतना ही निवेदन करना है कि यदि राम-वन-गमनके

अनुगत आनन्दका पूर्णरीत्या रसास्वाद करनेकी इच्छा हो तो श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणके इस प्रकरणको आधुनिक अवरण ही पढ़ जाइये। कविने एक-एक श्लोकमें कथ्यरसके वे भाव भर दिये हैं जिन्हें हजार बार पढ़नेपर भी वही अनिर्वचनीय आनन्द आता है। निरर्थक पढ़ते रहिये, आपकी वे श्लोक रोज नये ही मालूम पवेंगे!

हे राम! तुम वनमें रहकर भाँति-भाँतिके छेशोंको सहते रहे, दुःख उठाकर भी हमारे लिये आनन्द ही जोड़ गये। यही तो तुम्हारी रमणीयता है। तुम्हारे सभी कर्म अनुगत हैं। संसारी मनुष्य तुम्हारी बीजाण्डोंके रहस्य कैसे समझ सकते हैं? प्रभो! तुम्हारे सभी प्रकारके चरित्र तुमनेमें प्रीति हो, यही इस वामर प्राणीकी अन्तिम प्रार्थना है!

## मर्यादा-पुरुषोत्तम राम

(लेखक—कविराज पं० श्रीगयाप्रसादजी शास्त्री साहिबाचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति 'श्रीहरि')



मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामके पवित्र चरित्रकी विशेषता तथा लोकप्रियताका इसमें अधिक और प्रमाण ही क्या हो सकता है कि आज धर्मप्राण समस्त हिन्दू-जाति भगवान् रामको अवतार पुरुष या महापुरुषके रूपमें ही नहीं किन्तु साक्षात् परमेश परमेश्वरके रूपमें भक्तिभरित हृदयसे स्मरण करती है। जन्मसे लेकर मृत्यु पर्यन्त लौकिक अमृत्युय तथा पारलौकिक निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिये असंख्य शताब्दियोंके अनन्तर आज भी हिन्दूजातिका प्रत्येक व्यक्ति भगवान् रामको ही स्मरण करता है। सुल-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति एवं जीवन-मरणके समयमें भी जिन महापुरुषका नाम स्मरण करके असंख्य प्राणी आज भी असीम सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं, उनके पवित्र चरित्रकी महतीयताके सम्बन्धमें किसीको सन्देह ही क्या हो सकता है? धार्मिक और साम्प्रदायिक मतभेदोंके होते हुए भी आज समस्त हिन्दू-जाति मर्यादा-पुरुषोत्तम रामको अपना आदर्श महापुरुष मानती है। संसारका इतिहास देखनेसे पता चलता है कि जो गौरव भगवान् रामको प्राप्त है, वह गौरव संसारके किसी भी महापुरुष या नेताको अबतक नहीं प्राप्त हो सका है। धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक तीनों जगत्में ही भगवान् रामका चरित्र अनुजनीय

है। यही कारण है, धार्मिक जगत्में भगवान् रामको उनके भक्तगण परमेश परमेश्वरके रूपमें, सामाजिक जगत्में मर्यादा-पुरुषोत्तमके रूपमें एवं राजनैतिक जगत्में आदर्श नेता या राजाके रूपमें लोग उन्हें स्मरण करते हैं। भगवान् रामके राज्यशासनकी सर्वोत्कृष्टताका पता तो इसी बातसे चल जाता है कि इस बीसवीं शताब्दी या वैज्ञानिक युगमें भी किसी सुख-शान्ति-पूर्ण सभ्य राज्यके लिये 'रामराज्य' का उपमा दी जाती है। उत्तर भारतके ग्रामोंमें 'रामदुहाई' की प्रथा अबतक भी प्रचलित है। जिस समय कोई भी दृष्टनीय अपराधी 'रामदुहाई' कहकर अपने अपराधकी क्षमा माँगता है, तो उसे तुरन्त छोड़ दिया जाता है। कई युग बीत जानेपर भी भगवान् रामके नामका व्यापक प्रभाव अबतक भी वैसा ही बना हुआ है। भगवान् रामके चरित्रका चिन्तन तथा अध्ययन वह आत्मिक शान्ति प्रदान करता है, जो अतुलनीय शान्ति संसारके किसी भी महापुरुष या अवतारपुरुषके चरित्र-चिन्तनके द्वारा प्राप्त करना सर्वथा कठिन है। यही कारण है, भारतके विभिन्न प्रान्तवासी, भगवान् रामके भावुक भक्तोंने अपने-अपने प्रान्तकी भाषाओंमें अपनी-अपनी सुरिचिके अनुसार भगवान् रामके पवित्र चरित्रका गान किया है।



### रामकी पितृभक्ति

जिन लोगोंने रामायण आदि ग्रन्थोंमें भगवान् रामके चरितका भली प्रकार मनन तथा अध्ययन किया है, उन्हें यह भली भाँति चिहित है कि संसारके इतिहासमें मर्बादा-पुरुषोत्तम रामकी पितृभक्ति अतुलनीय है। किसी कविने बहुत ही ठीक कहा है—

आदृतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोप्याकारविभ्रमः ॥

राज्याभिषेकके लिये बुलाये जाकर और जंगलके लिये भेज दिये जानेवाले भगवान् रामकी सुस्वाकृतिके ऊपर तनिक भी हर्ष-विषाद-जनित विकार नहीं दिखलायी पड़े। कितना अपूर्व त्याग है, कितना अभुत चरित-वत्त है। पुत्रराज राम अपने मूर्च्छित पूज्य पिताजीके समीपमें लड़े हैं। समीपमें ही विमाला कैकेयी बैठी हुई हैं। पूज्य पिताजीकी इस दयनीय दीन-दशाको देखकर कल्याणमय राम माता कैकेयीसे अत्यन्त बिनम्र शब्दोंमें पूछते हैं कि 'मातः ! मेरे पूज्य पिताजी आज इतने दुखी क्यों हैं ?' कैकेयी उत्तर देती है—'राम ! पिताके दुःखके कारण तुम हो। मैंने तुम्हारे पिताजीसे दो वरदान माँगे हैं। एक वरदानके द्वारा भरतके लिये अयोध्याका राज्य और दूसरे वरदानके द्वारा चौदह वर्षका तुम्हारे लिये बनवास।' माताके इन वचनोंको सुनकर भगवान् राम गोस्वामी-मुखसीदासजीके शब्दोंमें क्या कहने हैं—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥

तनय मातु-पितु-तोषनि-द्वारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। निधि सब निधि मोहिं सनमुख आजू ॥

जौ न जाउँ बन पैसेहु काज। प्रथम गनिअ मोहि मूढसमाज ॥

पूज्य पिताजीके वचनोंकी रक्षा या आज्ञापात्रनके लिये अपने आवर्श चरितके कारण गुरुजनोंकी आज्ञाओंके तारे, अयोध्याकी समस्त प्रजाके प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भगवान् राम, 'जिनका आज राज्याभिषेक होनेवाला था' बनवासी मुनियोंके वेषमें अनुज जन्मस्थ तथा मिथिलेश-राजकुमारी भगवती सीता देशीके सहित अयोध्याका समस्त राज्य-वैभव छोड़कर जंगलको जा रहे हैं। जनरयाम रामकी यह अपूर्व पितृभक्ति तथा आवर्श त्याग अनन्त शताब्दियोंके अनन्तर आज भी हम भारतीयोंके चरित्र-निर्माणमें विशेषरूपसे सहायक हो रहा है। जिय समय

हमारा मन अनेक प्रकारकी भोग-मुष्ठाओंसे मग्न होकर कर्तव्य-भ्रष्ट होने लगता है, उस समय भगवान् रामका पवित्र-चरित्र ही हमारे पथप्रदर्शकका काम करता है।

### रामका भ्रातृप्रेम

इतिहास-ग्रन्थोंमें भ्रातृप्रेमके अनेक सुन्दर-सुन्दर उदाहरण हमें देखने और सुननेको मिल सकते हैं किन्तु भगवान् रामका भ्रातृप्रेम जो एक अमूल्य शिक्षासे हम भारतीयोंको कृतकृत्य कर रहा है, वह सर्वथा वर्णनातीत है। छोटी-छोटी-सी बातोंके ऊपर आज संसारके विभिन्न देशोंमें कितने ही भाई अपने प्यारे भाइयोंके प्राणोंके ग्राहक बन जाते हैं किन्तु इस पुण्यदेश भारतमें हमें जहाँ कहीं भी भ्रातृप्रेमके कुछ दृश्यमाही उदाहरण मिलते हैं उनका साक्षात् सम्बन्ध एकमात्र भगवान् रामके आवर्श चरितकी शिक्षासे है। आधीरातका समय है। मेघनादकी शक्तिसे आहत, म्रिय अनुज जन्मस्थका अचैतन्य शरीर अपनी पवित्र गोदमें लिये हुए भगवान् राम सजीवनी बूटी लेनेके लिये गये हुए इन्सान्के आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन्सान्जी अभी तक नहीं आये हैं, प्रातःकाल होते ही जन्मस्थके जीवनकी आशा जाती रहेगी, इस काव्यनिक विभोग-वेदनासे पीड़ित होकर भगवान् राम अपने आँसुओंकी वर्षासे समस्त चराचरको शोकसागरमें डुबोते हुए कहते हैं—

सुत नित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग मारहिं बारा ॥

अस बिचारि जिय जागहु ताता। निगदि न जगत सहोदर भ्राता ॥

कैसी करुणामयी उक्ति है और कैसा अकृत्रिम विचित्र भ्रातृप्रेम है। यदि आज भगवान् रामका दिव्य चरित 'रामायण' आदि पुण्य ग्रन्थ हमारे समक्षमें न होते तो साधारण जनसमाजको भ्रातृप्रेमकी ऐसी सुन्दर शिक्षा कहाँसे मिलती ?

### रामका प्रजारञ्जन और भगवती सीतादेवी

जिन आवर्श सती भगवती सीतादेवीने अपने पिता तथा रत्नसुरके राजमन्दिरोंके समस्त विषय-विकास तथा सुखोपभोगोंको छोड़कर आज अपने प्यारे पतिदेव भगवान् जनरयाम रामके साथ कष्टकाकीर्ण दयदकारण्यकी कर्कश भूमिको ही फूलोंके पौधे मान रक्ता है, वही कल रावणके द्वारा हरी जाकर लज्जा पहुँचायी जा रही है। लज्जा-बिजब होनेपर भी अयोध्याकी राजराजेरवरी बिना किसी सवारीके पैदल ही भगवान् रामके सामने जायी जाती हैं

और उनकी अग्नि-परीक्षा होती है। अभी रामको राक्षस-भिषेक हुए थोड़े भी दिन नहीं हुए हैं और न अयोध्या राज्यकी राजलक्ष्मी जनककिशोरीको एक दिनके लिये भी अयनाभिराम रामकी सुखमयी सुखचञ्चु विखनेका अवसर ही मिला है कि अकस्मात् पुनः बज्रपात होता है। एक साधारण राजके द्वारा जगाये हुए अपवादके कारण जन्मदुःखिनी जानकी आज फिर भी पतिदेवसे परिस्थिता होकर अपने देवर लक्ष्मणके साथ जंगलको जा रही हैं। भाईकी आज्ञाको शिरोधार्य मानकर आनुभक्त लक्ष्मण अचेतनावस्थामें ही शेर और भालुओं-जैसे हिंसक पशुओंसे भरे हुए उस भीषण जंगलमें राजराजेरवरी, अवधकी राजलक्ष्मी जनक-नन्दिनीको छोड़कर अयोध्या वापिस जा रहे हैं। चैतन्यलाम होनेपर रोती और कलपती हुई भगवती सीतादेवी भगवान्से प्रार्थना करती हैं कि हे सर्वान्तर्धामिन् ! भक्तबान्धवा-कल्पतरु !! भगवन् !!! यदि मैं अपने दुर्भाग्यके कारण इस जीवनमें चक्रवर्तमान रामकी सेवाका पुण्य-फल नहीं पा सकी हूँ तो भी जन्म-जन्मान्तरमें मुझे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ही पति रूपमें प्राप्त हों, हे अनर्थोंके नाश ! जगन्नाथ !! यही मुझ अनाथिनीकी आपसे प्रार्थना है। हे करुणामय ! प्रभो !! मेरे प्यारे देवर लक्ष्मण मुझ अभागिनीको जङ्गलमें छोड़कर अकेले अयोध्या जा रहे हैं, उन्हें मार्गमें किसी प्रकारका कष्ट न हो, वे निरापद् अपनी आज्ञाको समाप्त करके मेरे पतिदेवकी राजधानी अयोध्या नगरीतक पहुँच जायें और उन्हें सब प्रकारसे राज्यकार्यमें सहायता पहुँचावें, यही मेरी आपसे अन्तिम विनती है। सतीत्वका यह अपूर्व आदर्श, भारतीयोंका यह उज्ज्वल चरित्र आज हम भारतीयोंको कहाँ मिलता यदि भगवान् रामके आवुक भक्तोंके द्वारा संसारमें रामचरितका प्रचार न होता। परस्पर विरोधिनी इन घटनाओंके सम्मिश्रणसे किस प्रकारके सुन्दर और सुमधुर भावोंकी सृष्टि हुई है, इन बातोंके रहस्यका पता लगाना केवल उन आवुक रामभक्तोंके लिये ही सुखम है, जिन्होंने पूर्ण भक्ति तथा भद्राके साथ मनोयोगपूर्वक रामायण आदि ग्रन्थोंमें भगवान् रामके चरितका अध्ययन तथा भजन किया है। जिन भगवान् रामने पञ्चवटीमें रावणके द्वारा सीतादेवीके हरी जानेपर अपनी पर्वकुटीके चारों ओर—

सीतेति हा जनकवंशजवैजयन्ति ।  
हा मद्विलोचन-चकोर-नवेन्दुलेखे ।  
इत्थं स्पृष्टं बहु विलम्ब विलम्ब राम-  
स्तामेव पर्णवसति परितश्चचार ॥

—हा सीते ! हा मिथिलेशानन्दिनि ! हा रामके लोचन-चकोरके लिये अभिनव चन्द्रलेखे ! तुम कहाँ हो ? इस-प्रकारके प्रकट करण विज्ञाप-कलापके साथ जनककिशोरीको खोजते हुए श्रीरामने दण्डकारण्यके साधारण प्राणियोंको कौन कहे तरु-जलाशयों तकको रुजा दिया था। वेही भक्तवत्सल, दीनबन्धु दयामय राम अपनी जीवनसहचरी, प्राणाधिक-मिश्रतमा, आदर्श सती भगवती सीतादेवीको एक साधारण प्रजापवादके कारण पूर्णगर्भा होनेपर भी पुनः वनवासको भेज रहे हैं, यह कैसी हृदयद्रावक घटना है ? राग-विराग, कोमलता-कठोरता एवं दया-निर्दयताका एक ही स्थानपर कैसा अपूर्व सम्मिश्रण है ? अविचारक लोग इस घटनाको लेकर चाहे भगवान् रामके चरितके ऊपर किसी प्रकारका आरोप क्यों न करें किन्तु सन्पूर्व रामचरितके अन्तर यही एक ऐसी घटना है जिसने भगवान् रामको 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' एवं भगवती सीतादेवीको 'आदर्श सती' के सर्वोच्च स्वरूप आसीन किया है। अन्तमें मैं इस माह्निक श्लोकके साथ-साथ सब साधारणसे भगवान् रामके चरितका चिन्तन करनेकी प्रार्थना करता हूँ।

कत्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम्,  
प्रायेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदं प्राप्तेयं प्रस्थितस्य ।  
त्रिश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्,  
नीजं धर्मदुमरस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥

## रामायण

चित्रमें ललाम है चरित्रमें ललाम शुभ,  
नाममें ललाम पद्यपाठमें ललाम है ।  
पाठसे कुवासना भी नष्ट होती चित्तकी है,  
बुद्धिहीन नर होता रामका गुलाम है ॥  
चौपाई ललाम, छंद-सोरठा ललाम 'विष्णु'  
दास तुलसीका खूब कामिल कलाम है ।  
वर्ण हैं ललाम और काण्ड हैं ललाम सब,  
शास्त्रमें पुराणमें रामायण ललाम है ॥

—गंगाविष्णु पाण्डेय

## राम-चरित-मानसकी विशेषता

( लेखक—मोदामोदरस हायसिंहजी, कविकिर )



म-चरित-मानस अर्थात् गोसाईं तुलसीदासकी विरच-वन्दित परम प्रसिद्ध चौपाई-रामायण साहित्य-संसारका अनुपम कान्धरक है, जिसकी मधुर प्रखर ज्योतिसे भारतवर्ष ही नहीं, सारा संसार चकित और मुग्ध हो रहा है और जिसकी तुलनाका दूसरा ग्रन्थ हिन्दी भाषामें तो क्या, अन्य भाषाओंमें भी शायद ही मिले। हिन्दी भाषासे इसे इटा कीजिये, बस, हिन्दी साहित्यकी शोभा ही नहीं, महिमा भी प्राप्ती ही रह जाती है। निःसन्देह वह ग्रन्थ-शिरोमणि भूत-भावन भवानी-पति भगवान् शिवजीकी कृपाका प्रत्यक्ष फल है, जैसा कि स्वयं कविने स्वीकार किया है—

संभु-प्रसाद सुमति हिय दुरुसी। राम-चरित-मानस कवि तुलसी॥

सचमुच ऐसी सर्वोच्चसुन्दर काव्य-निर्माण-प्रतिभाकी प्राप्ति बिना विशेष देवबलके सम्भव नहीं। यदि वह ग्रन्थ आध्यात्मिक गगनका अज्ञान-तिमिर-नाशक देदीप्यमान मार्गदर्शक है तो साहित्यिक आकाशका भी कमकता रस बरसाता हुआ पूर्ण शरच्चन्द्र है। यदि इसमें बाह्य जगत्का प्रकाशक प्रदर्शन है तो अन्तर्जगत्की भी अमिट सत्यता है। यदि इसमें बाहरी घोर युद्ध—देवासुर-संग्राम—का वर्णन है तो भीतरी भीषण मानसिक समरकी भी भरपूर चर्चा है जो मानव-मानसमें सदासे होता आ रहा है।

राम-चरित-मानस स्वयं और मर्त्यका अपूर्व सम्मेलन है। अनुराग और विरागका अनुपम गोंड-बन्धन है। दिव्य और विनाशका जासानी जुटाव है। भक्ति, ज्ञान और कर्म-काव्यकी अलौकिक पवित्रतासम्पन्न त्रिवेणी है। ईश, अर्दत्त और विशिष्टाईतकी एक विचित्र श्रृंखला है। वेद-शास्त्रोंका सार और उपनिषदोंका निचोड़ है। इसकी बहुत-सी चौपाइयाँ मन्त्र-रूपिणी हैं। कविने बड़े ही कौशलसे तत्कालीन विरोधी सम्प्रदायोंमें मेल करा दिया है। वैष्णव होनेपर भी मानसकार शिव, शक्ति और विष्णुमें भेद नहीं मानते थे। उन्होंने बड़ी चतुराईसे शिवजीको 'मेवक स्वामि मखा सिम पांके' लिखकर बहुत-सा सन्देह और बहुत-सी मतिभ्रम मिटा दी है। 'भवभवन विभव पराभव-कारिनि' लिख कर शक्तोंको भी अपना लिया है। सचमुच मत-मतान्तरोंके

सम्बन्धमें कविने बड़ी ही उदारतासे काम किया है। मानसमें साम्प्रदायिकता नहीं है—पक्षपात नहीं है। यह कहावतों और नीति-वाक्योंका भण्डार है। यथा—

टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चन्द्रमहि असइ न राहू॥

लोकप्रियता इसमें फूट-फूटकर भरी है। इस गुणमें वह ग्रन्थ अद्वितीय है, यदि ऐसा कहा जाय तो भी मैं समझता हूँ, अत्युक्ति नहीं होगी। जालों अनुभवोंने इसे पाठ करनेके लिये नागरी सीखी है। इसप्रकारसे साधरताके प्रचारमें इसने कम सहायता नहीं पहुँचाई है। सहज तो ऐसा कि निपट गँवार भी इसका अर्थ कर लेते हैं और कठिन ऐसा कि महामहिम पण्डितोंकी बुद्धि भी कुण्ठित होकर चकर काटने लगती है।

वह ग्रन्थ कभी पुराना नहीं होता। आज तीन सौ वर्षोंके बाद भी वैसा ही नया है। बहिन यों कहना चाहिये कि प्रतिदिन नवीन होता जाता है। सैकड़ों बार पढ़नेके बाद फिर पढ़ना शुरू कीजिये आपको नित्य नयी नवीनताएँ मिलती ही जायँगी। इसे स्त्री-पुरुष, गृहस्थ-संन्यासी, ब्राह्मण-शूद्र, बालक-नवयुवक, जवान-बूढ़े सभी प्रकारके लोग दिव्यचक्षुसे पढ़ते हैं। मैं इसे वालीस-पैताजीस वर्षोंसे बराबर नित्य पढ़ रहा हूँ पर कभी भी नहीं ऊबता, प्रत्युत बार-बार पढ़नेकी इच्छा बनी ही रहती है। कभी तो पाठ करनेमें हर्षातिरेक और रोमाञ्च, और कभी-कभी कल्यातिरेक और अनुपात अनायास हो जाते हैं। जीवजन्म भर अध्ययन और मननकी सामग्रीयों इसमें प्रस्तुत हैं। इसका ही नहीं, इसका विषय कई जन्मोंमें इस किये जानेकी चीज है। इसमें क्या नहीं है? सच्चे सोचनेवालोंके लिये सब कुछ है। भुक्ति-मुक्ति दोनों ही अपने-अपने स्थानपर सुशोभित हैं। प्रयत्न करनेसे इसके द्वारा भोग और मोक्ष दोनों मिल सकते हैं। निर्मल आध्यात्मिकता और नीतिपूर्ण लौकिकताका इसमें मखि-काष्ठान-योग है। गूढ़-से-गूढ़ वेदान्त और सांख्यके सिद्धान्त सरल-से-सरल भाषामें भरे पड़े हैं। साथ ही नीतिमत्तापूर्ण व्यवहारोंका प्रचुर मिश्रण है। राजनीति इसमें आदर्श-स्वरूप है। देखिये, नीचे लिखे दोहेमें सम्पूर्ण राजनीति-सागरको गोसाईंजीने मानो घड़ेमें भरकर कमाक किया है—

अखिया मुखो चहिमे खान पानको एक ।

पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विनेक ॥

इसके पात्र सर्वदा आवर्त हैं। इसके नायक-नायिका राम-सीता मन्त्र-भावाके स्वरूप अथवा परमेश्वर और परमेश्वरीके रूप हैं। राजा और प्रजा, पिता और पुत्र, भाई और भाईका उत्तमोत्तम नमूना जैसा मानसमें है वैसा ग्रन्थत्र देखनेको नहीं मिलता। भले पात्रोंकी तो बात ही क्या, भुरे पात्र भी संसारमें अपने सानी नहीं रखते। रावण-सा शक्तिशाली और विद्वान् दूसरा कौन है? मानस मनोयोग-पूर्वक पढ़नेपर मालूम होता है कि इसके पात्र मानो आँखोंके सामने नाच रहे हैं अथवा मानसिक जगत्में एक बड़ी विशद रामलीला हो रही है।

प्रकृति-वर्णन तो कविने मनोहर और इष्टव्याही किया ही है, मनोभाव-विरलेषणमें भी बड़ी दुर्लभ दक्षता दिखायी है, जो किसी-किसी सुकविके लिखे बड़े गर्वकी वस्तु है। वर्णना-बौली बड़ी रुचिकर है। विषय-विशेषका विस्तृत वर्णन अथवा संक्षिप्त वर्णन कविके बाँप हाथका खेल है। 'अर्थ भ्रमिन अति आस्य धीरे' का सिद्धान्त खूब निबाहा गया है। मानसकी भाषामें अवधी और ब्रजभाषा मिली हुई है। कहीं-कहीं पुन्देलखणकी और भोजपुरीकी भी पुट है। भाषाकी प्रामाण्यता, प्रसाद और भाषुर्य-गुणोंमें स्वाभाविकरूपसे परिणत हो गयी है। यह भी मानसकी एक विशेषता है। इसमें शब्दविन्यास, अर्थसौष्टव, काव्य-रीति, घटनाक्रम, और व्यंग्य-व्योक्तिपोंकी कृता देखते ही बनती है। घटना क्रमबद्ध अर्थात् सिद्धसिलेवार कथाभाग लफलतापूर्वक लिखनेकी योग्यता गोसाईजीमें निखलपा पायी जाती है। यदि यह योग्यता महात्मा सूरदासमें होती तो सम्भवतः वह तुलसीदाससे भी बढ़ जाते। इस ग्रन्थमें नवरासोंकी भाराई अनवरत बहती रहती है। शृंगार-रसका इसमें बाहुल्य है परन्तु प्रशंसाकी बात तो यह है कि अरलीखलाका कहीं नामोनिशान नहीं! रूपक, उपमा, उपेक्षा आदि अलंकार ऐसे सहज स्वाभाविक ढंगसे पाये जाते हैं मानो कविको इनके लिखे कोई प्रयत्न ही नहीं करना पड़ा था। साहित्यशास्त्रके अधिकांश अलंकारोंसे वह ग्रन्थ पग-पगपर सुसोभित है। और तो क्या, सम्पूर्ण राम-चरित-मानस ही एक बड़ा-सा मानसरोवरका रूपक है, जैसा कि इसके नामसे प्रकट है। वह पुस्तक मुगल-राजत्वकाजमें लिखी गयी थी तो भी यह सर्वथा चर्ममयी बन गयी और

सम्बन्धका जाड़ इसपर न चल सका। वह आश्रय, सौभाग्य और विशेषताका विषय है। एक बात और है। गोसाईजीने बहुत-से ग्रन्थ लिखे पर सभीका विषय रामचरित ही रहा। हाँ, कृष्ण-गीतावलीमें कृष्णचरित अवश्य है पर कविके लिखे राम और कृष्णमें भेद नहीं था। वह भी कम विशेषताकी बात नहीं। इस भाँति इस ग्रन्थशिरोमणिकी बहुत-सी विशेषताएँ हैं, जिनमेंसे कुछ मैंने ऊपर गिनानेकी चेष्टा की है।

जिस भाँति छोटे और खरे सोनेकी जाँच कसौटीपर कसनेसे होती है उसी भाँति काव्य कसनेकी भी कसौटी होती है। इसकी जाँचके छः प्रकार होते हैं—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।

सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

अर्थात् काव्य कीर्ति बढ़ाता है, धनोपार्जन कराता है, व्यावहारिक ज्ञान देता है, अमंगल का दुःखको दूर करता है, परमानन्दकी तत्काज प्राप्ति कराता है और भाषाके समान मनोहर एवं हितकर उपदेश देता है। ये काव्य-निर्माणके प्रयोजन हैं। यदि इन गुणोंमेंसे दो एक भी मलीभाँति प्रभूतरूपसे किसी काव्यमें पाये जायें तो भी उस काव्यकी सार्थकता हो जाती है, पर राम-चरित-मानसमें तो सभी गुण जागू होते हैं। मानसकारकी सुकीर्तिका तो कहना ही क्या? वह संसारमें वायुकी तरह विगन्त-व्यापिनी हो रही है। भारतवर्षमें कौन ऐसा की, पुरुष या बालक है जो गोसाईजीको उनके रामायणके कारण नहीं जानता? भारतवर्ष तो स्वदेश ही है, विदेशोंमें—यूरोप-अमेरिकामें—भी उनका बशोगान निरन्तर हो रहा है। उनके ग्रन्थका बहुत-सी विदेशी भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है और वहाँके लोग उसे बड़ी अद्भुत देखते हैं तथा गोसाईजीको संसारके इने-गिने महाकवियोंमें मानते हैं। जो कवि राजाओंके आश्रित रहते थे वे पारितोषिक इत्यादिले बहुत-सा धन उपार्जन करते थे। परन्तु सबे चिरक गोसाईजी तो धनकी चरबा नहीं करते थे। उन्होंने अपना सब धन एक बार चोरोंको दे दिया था। इसलिये वह किसी राजाके आश्रित रहकर अन्य कवियोंकी तरह उसकी झूठी-सच्ची प्रशंसा नहीं करते थे। उनका तो सिद्धान्त था—

कीन्ह जो प्राकृत नर गुन गाना। सिर धुनि मिरा ठागि पछताना ॥

वह अपने 'राजा-राम'के प्रागे किसी सत्रादकी क्या चरबा करते थे? उनके सामने बादशाह जहाँगीरकी मुँहकी

जानी पड़ी थी। इसलिये उनके जनोपाजनकी बात ही क्या रही ? हाँ, यह अवश्य है कि उनके बाद बहुत-से प्रकाशकोंने राम-चरित-मानसको प्रकाशित करके और बेच करके बहुत-सा धन प्राप्त किया है। मेरा तो अनुमान है कि यदि इस ग्रन्थका प्रकाशन किसी व्यक्तिविशेषकी सम्पत्ति होता तो वह अवश्य इससे प्रचुर लाभ उठाकर संसारके बड़े धनियों और पूँजीपतियोंमें गिना जाता। व्यवहार-कौशल इस ग्रन्थमें आदर्शस्वरूप है। स्वामी-सेवकके, शत्रु-मित्रके, राजा-प्रजाके, भाई-भाईके बतोंव जो इसमें मिलते हैं उन्हें ध्यानमें रखनेसे कौन ऐसा मनुष्य है जो लाभ नहीं उठाता ? इस ग्रन्थ-रत्नमें अमङ्गलके नाश करनेकी, दुःख दूर करनेकी अमोघ शक्ति है। हनुमानबाहुकी रचना करके गोसाईंजीने अपनी बाहुका कया दर्द दूर किया था। मानसकी बहुत-सी चौपाइयाँ मन्त्रोंका-सा चमत्कार दिखाती हैं—

कठिन दुर्भाग्य दूर करनेके लिये—

मंत्र महामनि विषय ब्यालके। मेटत कठिन कुम्भक भालके ॥

विषयवासना दूर करनेके लिये—

मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जो पहि सर परई ॥

भारी संकट हटानेके लिये—

दीनदयाल विरद संमारी। हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

काव्यनिर्माणमें सहायता-प्राप्तिके लिये—

जेहिपर कृपा करहि जन जानी। कबि उर अजिर नचावहि बानी ॥

समयविशेषपर परमेश्वरकी सहायता-प्राप्तिके लिये—

मेरे हित हरि सम नहि कोऊ। पहि अवसर सहाय सो होऊ ॥

सब भाँति अपना सुचार करनेके लिये—

मेरि सुचारहि सो सन भौंती। जासु कृपा नहि कृपा अघाती ॥

अधिक कहाँ तक कहा जाय, इसके द्वारा जासों मनुष्योंकी लौकिक और पारलौकिक कठिनाइयाँ दूर होकर भारी भलाई हुई है और हो रही है। इसका पाठ करते समय चरित्रचित्रण, भावोंकी समीपता, और अद्भुत रचना देखकर मनुष्योंका मन तत्काज ही प्रफुल्लित हो आनन्द-सागरमें गोते खाने लगता है। मनोहर और उच्च उपदेशरत्न तो इस ज्ञान समुद्रमें अनगिनत अरे पड़े हैं। गोसाईंजी बंकेकी चोट कहते हैं—

देह धरेकर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई ॥

क्यों, क्या इससे बढ़कर भी कोई अनुपदेश हो सकता है ?

ध्वन्यके अभाव वा न्यूनाधिक्यसे काव्य क्रमशः साधारण, मध्यम और उत्तम श्रेणीके होते हैं। ध्वन्यप्रधान काव्य उत्तम कोटिका होता है। मानस उत्तम कोटिका काव्य है, क्योंकि इसमें जहाँ-तहाँ ध्वन्योंका प्राधान्य है। विशेषकर लक्ष्मण-परशुराम-संवाद और शंख-रावण-संवादमें तो ध्वनियोंकी भरमार ही है। फिर इसमें काव्यके प्रधान गुण भोज, माधुर्य और प्रसाद प्रचुरतासे पाये जाते हैं। प्रसाद-गुणके लिये तो यह ग्रन्थ परम प्रसिद्ध ही है, जिस हेतु निपट गैवार भी पढ़कर कुछ अर्थ समझ ही लेते हैं। मानस पढ़नेपर माधुर्यका प्रभाव पाठकोंके हृदयपर पड़े बिना नहीं रहता। भोजकी अपेक्षा प्रसाद और माधुर्यसे मानसका अधिकार व्याप्त है। उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं—मानसके पाठक अपने हृदयसे पूछ लेंगे। उत्तम काव्यका लक्षण तो गोसाईंजी स्वयं बतलाते हैं—

सरल कवित कीरति निमल सोइ आदरहि सुजान ।

सहज बैर बिसराइ रिपु जे सुनि करहि बसान ॥

कविताको सरल करनेके ही अभिप्रायसे ग्रन्थकारने मानसकी भाषा प्राग्व्य रखी है। सचमुच इसके गुणोंपर मोहित होकर विरोधी भी मानसकी प्रशंसा करते देखे गये हैं।

महाकाव्य तो अनेक हैं, पर राम-चरित-मानस अपने ढंगका एक अद्वितीय महाकाव्य है। इसलिये यदि इसे महामहाकाव्य कहें तो भी आशुक्ति न होगी। इसमें नव रसोंका समावेश बचास्थान बड़े ही मनोहर ढंगसे किया गया है। विभाव, अनुभाव, सञ्जारी और स्वाधी-भावका अपूर्व प्रदर्शन है। महाकवि भवभूतिके उत्तर-राम-चरितकी तरह इसमें एक ही रस ( करुणा ) व्याप्त नहीं है। राम-सीताके सम्बन्धमें बड़े सुन्दर संयोग और निवोग-शृंगारका वर्णन किया है। सीताजीकी अनुपम शोभा यों वर्णित है—

सोमा रजु मंदर सिंगार। मयै पानि-पंकज निज मार ॥

पहि निधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल ।

तदपि सँकोच समेत कवि कहहि सीय समतूल ॥

क्या कोई भी उत्तम-से-उत्तम सुजा शृंगार उपर्युक्त वर्णनका सामना कर सकता है ? क्या उन वर्णनोंमें अधिक

कविकला है ? मनु सतकपाने जिस राम-सीतारूपका दर्शन किया था उसका वर्णन-संयोग-शृंगारका एक उत्कृष्ट नमूना है—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरवर स्याम ।

लाजहि तनु सोभा निरखि कोटि-कोटि-सत काम ॥ इत्यादि ।

जनकपुरकी फुलवारीमें शृंगार-रसका विशद वर्णन है । पूर्वाश्रुताग वही ही मार्मिक रीतिसे वहाँ दिखाया गया है । सम्पूर्ण ग्रन्थमें वस्त्र-तन्त्र रामके रूप और शोभाका वर्णन वही सुन्दरतासे किया गया है । सीताहरणके बाद रामका विज्ञाप और उन्माद, तथा हनुमान्जीद्वारा जाये गये राम-सन्देश और सीता-सन्देश वियोग-शृंगारके उत्तम उदाहरण हैं । शिवजी और रामजीके विवाहमें जहाँ-तहाँ हास्यरसकी छटा बिराजती है । कस्यारससे तो समूचा अयोध्याकाण्ड परिप्रावित है । इस काण्डमें प्रायः सभी नर-नारियोंका प्रसंग तथा चित्रकूटमें भरत-राम-संवाद गोसावईजीकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ प्रतीत होती हैं । मेरी कुछ बुद्धिमें तो भरतका चरित्र रामायणके सब पात्रोंसे उत्तम और निष्कलंक है । राजकुमार भरतमें अलौकिक वैराग्य और अनुराग, सदाचार और सेवाका अनुपम सामञ्जस्य है, उनका चरित्र शेष और शारदाको भी अगम है

प्रेम अमिय मंदर निरह भरत पयोधि गौमीर ।

मयि प्रगटे मुग्धाबुद्धित कृपासिन्धु रघुबीर ॥

× × ×

भरत रहनि समुज्जनि करतूती । भगति बिरति मुन बिमल विभूती ॥

यगनत सकल सुकवि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गम नाहीं ॥

युद्ध-प्रकरणमें जहाँ-जहाँ क्रोधका स्थायी भाव परिपुष्ट हुआ है तहाँ-तहाँ रौद्र रस देखनेको मिलता है । जोग कहते हैं कि व्रजभाषा वा प्राकृतमें, भूषण कविकी कविताओंको छोड़कर, वीर-रसकी रचनाएँ नहींके बराबर हैं, किन्तु मानसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता । युद्धके प्रसंगमें तथा अनेक संवादोंमें वीर-रसकी कविताएँ प्रचुरतासे पायी जाती हैं । एक राम-वीरका उदाहरण नीचे—

जो संपति सिव रावनहि दीन्ह दिये दस माय ।

सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥

अयोध्याकाण्डमें भरतका आगमन सुनकर मन्त्राहोंने जो उग्रवाद और वीरत्व दिखाया था वह वही विलक्षण है—

मलेहि नाथ सब कहहि सहरषा । एकहि एक बढ़ावहि हरषा ॥

× × ×

जीवत पाठ न पाछे धरहीं । रंड-मुंडमय मेदिनि करहीं ॥

जङ्गादहनमें भवानक-रसका समावेश है किन्तु मानससे अधिक कवितावलीमें विस्तृत और विशद वर्णन है । मैं उसे पाठकोंसे पढ़नेका अनुरोध करता हूँ । कानरी-सेनाकी जहाँ गीच सम्पातिसे भेट हुई है वहाँ भी भवानक-रस है । युद्धमें सैनिकोंके मारे-काटे जानेपर बीमत्स-रसकी धार बह चली है—

बीर परहि जनु तीर तरु मजा बह जनु फैल ।

कादर देखत डरहि तेहि मुमटनके मन जैन ॥

× × ×

काक कंक लेइ मुजा उड़ाहीं । एकंत छीनि एक लेइ खाहीं ॥

एक कहहि घेसिट सौंघाई । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई ॥

× × ×

भट कपाल करताल बजावहि । चामुंडा नाना बिधि गावहि ॥

× × ×

कंठिन्ह रंड मुंड निनु डोलहि । सीसपरे महि जय जय बोलहि ॥

अमृत-रस मानसके बहुत स्थानोंमें प्रदर्शित हुआ है । ईश्वरके गुण-वर्णनमें, राम-विवाहमें, हनुमत्-यात्रामें, जङ्गादहनमें, विराटरूपोंके वर्णनमें जहाँ देखिये वहाँ अमृत-रसका साम्राज्य है । कैलास, तीर्थ, मुनि-कुटीर स्तुति-गान और राम-राज्यके वर्णनोंमें शान्त-रस बहुतायतसे पाया जाता है—

बैठे सोइ काम-रिपु कैसे । चरं सरीर सान्त रस जैसे ॥

कहा जाता है कि व्रजभाषा वा प्राकृतमें प्रकृति-वर्णन की कमी है, पर मानस-रामायणमें सो बात नहीं है । इसमें अनेक स्थानोंमें प्रकृतिके जीते-जागते चित्र हैं । चित्रकूटके उपवन, पम्पासरोवर, और जङ्गा-नगरीके वर्णन पढ़िये । राजा प्रतापभानुके शिकारमें एक सुन्दरका वर्णन बड़ा विचित्र है—

फिरत बिपिन नृप दीख बराहू । जनु बन दुरेउ ससिहि प्रसि राहू ॥

बड़ बिधु नहि सम्रात मुखमाहीं । मनहु क्रांथ बस उगिलत नाहीं ॥

चित्रकूटके एक बट वृक्षके फल-पत्तोंका वर्णन दम्पत्य-द्वारा किया गया है । देखिये—

नील सघन पल्लव फल काटा । अनिचल छौह सुखद सब काटा ॥  
मानहु अरुन तिमिरमय रासी । बिरची बिधि सकेलि सुखमा-सी ॥

किष्किन्धाकावडमें वर्षा और शरद-वर्षा में बिसालसे किया गया है, जिसकी प्रायः प्रत्येक चौपाईमें अनोखी उपमा है । केवल छः पंक्तियोंमें संक्षिप्त पदच्छतुका वर्णन अरव्यकावडके अन्तमें नारी-निन्दाके व्याजसे नारदके प्रति रामने किया है । बालकावडके प्रारम्भहीमें मानसकी मुख्य घटनाओंका विभाग छः ऋतुओंके अनुसार केवल पाँच पंक्तियोंमें किया गया है, यथा—

हिम हिमसैल-सुता-सिन्धु-वाहू । सिस्तिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू ॥  
बरनव राम-विवाह-समाजू । सो मुदमंगलमय रितुराजू ॥  
प्रीयम दुसह राम-वन-गवनू । पंथकया खर आतप पवनू ॥  
बरषा घोर निसाचर शरी । सुरकुल साति सुमंगलकारी ॥  
राम-रामसुक विनय बड़ाई । निसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥

मानस अलंकारोंकी खान है । कुछ बोध-से नगण्य अलंकारोंको जोड़कर प्रायः सभी अलंकार इसमें पाये जाते हैं । मैं पहले कह चुका हूँ कि सम्पूर्ण ग्रन्थ ही एक बड़े रूपकमें दिखाया गया है । बालकावडके प्रारम्भमें इस रूपकको कविने स्वयं समझाया है—

पुराणि सघन चारु चौपाई । जुगुति मंजु मनि सीप सोहराई ॥  
छन्द सौरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुगंय कमल कुल सोहा ॥  
इत्यादि ।

ऐसे ताँ एक-से-एक अन्तरे अलंकार मानसमें अरे पड़े हैं, पर मुझे सबसे बढ़कर गोसाईजीके रूपक पसन्द आते हैं, जो जहाँ-तहाँ सम्पूर्ण ग्रन्थमें बहुतायतसे बिखरे पड़े हैं । भरद्वाज मुनिके आश्रममें राजकुमार भरतकी कैसी पहुनाई हुई सो सुनिये—

संपति चरई भरत चरु मुनि आश्रमु खेतनार ।  
तेहि निसि आसम पोंजरा राखे मा भिनुसार ॥

जनकपुरके और ससैन्य अयोध्याके निवासियोंको रामजी चित्रकूटमें अपने आश्रमको लिये जा रहे हैं । इस प्रसंगके रूपककी छटा देखिये—

आस्रम सागर सान्त रस पूरन पावन पाथ ।  
सेन मनहु करुना सगति लिखे जात रघुनाथ ॥

नोरसि ग्यान विराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ॥  
सोच उसोस सरीर तरंगा । वीरज तट तन्वर कर भंगा ॥

विषम विवाद तोरानसि घारा । भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा ॥  
केवट नुष विषा बड़ि नावा । सकइ न लेइ एक नहि आवा ॥  
वनचर कोल किरात बिचारे । यके बिलोकि पयिक हिय हारे ॥  
आसम उदधि मिली अब जाई । मनहु उठेठ अनुधि अकुलाई ॥

कैसा सुन्दर उच्चेष्टान्तर्गत सांगरूपक है, कहते नहीं बनता ।

राम-चरित-मानस अष्टात्म-तत्त्वका खजाना है, जिसमें अगणित रस जहाँ-तहाँ अरे पड़े हैं । ईश्वर ( राम ) के नाममें अक्षरद्वय अक्षर और विश्वास उपजानेका प्रकाशक प्रबल सैकड़ों स्थानोंमें आवस्यकारने किया है, जो उनके मतसे ईश्वर-प्राप्तिका सर्वोत्तम और सर्वसुगम साधन है । मानसमें बहुत-सी ईश-सुतिर्याँ हैं जो आध्यात्मिक विचारोंसे परिपूर्ण हैं । प्रसिद्ध हिन्दी-श्रेणी काव्यर अिबर्लनका कथन है कि यह ग्रन्थ भारतवर्षके लिखे वेदोंसे भी बढ़कर है, बहुत ठीक है । साहित्यिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंका इसमें बड़ा मनोहर सम्मेलन है । कौन अधिक बिराद है, कहते नहीं बनता । कहीं पहला बाजी मार ले जाता है और कहीं दूसरा । मानो समग्र मङ्गलोंकी भिन्नता है । बात तो यह है कि कविकर्मकुशल और अष्टात्मशिरोमणि मानसकारने गुरु अष्टात्मज्ञानका बड़े विशद साहित्यिक शैलीमें उद्घाटन किया है । मानसमें सात गीतार्थें, यथास्थान गुणित हैं । गीतासे मेरा अभिप्राय उस ज्ञान-वर्णनसे है जो 'माया जग जीव जगदीश' के सम्बन्धमें किया जाता है । अयोध्याकावडमें लक्ष्मणगीता, अरव्यकावडमें रामगीता, और लंकाकावडमें रघु-गीता कही गयी है । उत्तरकावडमें चार गीतार्थें हैं— यथा—पुरजनगीता, सिद्धान्तगीता वा भुवुचिदगीता, ज्ञानगीता वा ज्ञानदीपक, और भक्तिगीता वा भक्तिमणि । स्थान-संकोचके कारण मैं इन गीताओंको उद्धृत नहीं कर सकता । पाठक मूलग्रन्थमें इसका अध्ययन करें । मानसका आध्यात्मिक तर्क इतना बलवान और इष्टप्रवाही है कि उसने अकेले लाखों हिन्दू-नर-नारियोंको विद्यार्थी सुसज्जमान-क्रिस्तान होनेसे रोककर सनातन वैदिक धर्मको सुरक्षित रखा है । ज्ञान और योगका प्रसंग जेवते हुए मानसकारने अधिकतर बड़ी विशद व्याख्या की है और इसे ही कविकर्ममें सुगम मार्ग बतलाया है । उनका सिद्धान्त है कि भक्ति सुगम होनेपर भी स्वतन्त्र



अन्तिम आध्यात्मिक तत्त्व है, जिसके अजीब ज्ञान और विज्ञान है। देखिये वे अपने चरितनायकके मुँहसे अवच-  
वासियोंके प्रति क्या कहलवाते हैं—

कहहु भगति पय कवन प्रयासा । जोगन जप तप मख उपवासा ॥  
सरल सुमाउ न मन कुटिलाई । जयालाम सन्तोष सदाई ॥  
मोर दास कहाइ नर आसा । करहु तो कहहु कहाँ बिसवासा ॥  
बहुत कहों का कथा बढाई । यहि आचरन बस्य मैं भाई ॥

रामको वश करनेका सुगम स्वाभाविक ढंग सुना आपने?

मनके कुरोगोंको दूर करनेके लिये गोसाईंजीका सिद्धान्त—  
रामबाण-श्रीपथ सुनने ही योग्य है। वह यह भी कहते हैं  
कि इसकी दूसरी दवा नहीं है—

सदगुरु बेद-बचन बिसवासा । संयम यह न बिषयकी आसा ॥  
रघुपति भगति सजीवन मूरी । अनुपान सदा अति रूरी ॥  
पहि बिधि भले भुरांग नसाहीं । नाहिं तो कोटि जतन नहिं जाहीं ॥

लेख यह गया। सम्पादकजीकी आज्ञा है कि संक्षिप्त  
लिखो। पर क्या करें—कितना संक्षिप्त करें? इस ग्रन्थकी  
विशेषताओंका भला भाँति उल्लेख करनेके लिये एक बड़ीसी  
पंथी चाहिये। मेरी इच्छा है कि राम-चरित-मानसकी  
साहित्यिक विशेषता, आध्यात्मिक विशेषता, साम्प्रदायिक  
विशेषता, व्यावहारिक विशेषता और विलक्षण लोकप्रियतापर  
कुछ विस्तृत आलोचनाएँ लिखकर कल्याणको समर्पित  
करूँ।

इसमें सन्देह नहीं कि सब मिला-जुलाकर गोसाईं  
तुलसीदास-सरदश दूसरा कवि हिन्दीमें देखनेमें नहीं आया।  
मेरे मित्र परिचित रामनरेश त्रिपाठीजीका कथन है कि  
हिन्दीभाषामें केवल तुलसीदास ही कवि कहलाने योग्य हैं।  
दूसरे कवि जैसे बिहारी केशव आदि तो अलंकारोंके कृत्रिम  
बलपर कवि कहलाते हैं। इस कथनमें अत्युक्ति हो सकती  
है, पर श्रीहरिऔधजीका यह कथन नितान्त सत्य है—

कविता करेके तुलसी न लसे  
कविता लसी पा तुलसीकी कला ।

धन्य कविकुलचूषामणि भक्तप्रवर तुलसीदास ! और  
धन्य उनकी काव्यनिर्माणकारिणी कला !!

## श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

( लेखक—श्रीविन्दु त्रिपाठीजी )

( पृष्ठ ४६३ से आगे )



नसका अङ्गीरस—शृङ्गार, वीर और शान्त  
इन तीन रसोंमेंसे एक रस महाकाव्यमें  
अङ्गी भावसे रक्खा जाता है और सब  
अङ्गरूपसे आते हैं। अब यह देखना है  
कि मानसका अङ्गीरस कौन है? उसका  
साधारणतः अध्ययन करनेसे यह प्रतीत होता है कि उसका  
अङ्गीरस वीर है। रामायणमें तीन युद्ध प्रधानरूपसे हुए  
हैं। पहला कौशिकभ्रमपर मारीच-सुबाहुसे, दूसरा  
पञ्चवटीपर खर-दूषणसे और तीसरा लङ्कामें रावणसे।  
अस्तु, वे तीनों संग्राम बाल, भरथ्य और लङ्काकाण्डमें  
क्रमशः वर्णित हैं। बालकाण्डके सीता-स्वयंवरमें, किष्किन्धाके  
वालिबध-प्रसङ्गमें और सुन्दरकाण्डके भरत-चरितमें भी  
वीररस आया है। अयोध्याकाण्डमें भरतकुमारपर निषाद-  
राजके सन्देह और लक्ष्मणकुमारके रोषसे तो बहुत ही  
विशदरूपसे वीररस जुना है। रहा उत्तर, तो उसमें चरित-  
भाग बहुत थोड़ा है। उसके आदिमें 'गंधे जहाँ सीतक  
भमराई' पर वह समाप्त हो गया है। बालका पूर्व और  
उत्तरका उत्तरांश चरितभागसे रहित हैं। वे क्रमशः ग्रन्थकी  
भूमिका और उपसंहारमात्र हैं। कथासूत्रसे वे अलग  
हैं। इस हेतु रामायणमें वीररसका ही प्रधान्य है और  
वही उसका अङ्गीरस सिद्ध है।

कुछ लोग रामायणमें कर्णरसको प्रधान मानते हैं।  
उनका कहना है कि सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड कारुणिक  
प्रसङ्गोंहीसे भरा हुआ है—श्रीराम-वन-गमन, दशरथ-मरणकी  
कथाएँ कर्णरससे सराबोर हैं। फिर भरथ्य और लङ्का-  
काण्डोंमें श्रीजानकी-हरण और लक्ष्मण-शक्ति-वेध भी  
कर्णरसके मार्मिक स्थल हैं। अतः कर्णरस ही रामायणमें  
प्रधान मानने योग्य है।

परन्तु ऐसा नहीं। कर्णकी मात्रा वीररससे स्वरूप ही  
है। इससे उसे प्रधानता नहीं दी जा सकती। वीररम ही  
रामायणका अङ्गीरस सिद्ध है।

विशेष अध्ययनसे उद्युक्त उभयपक्ष यथार्थ नहीं जान  
पड़ते। न तो वीर ही और न कर्ण ही मानसका अङ्गीरस



है। चाहे उनमेंसे कोई श्रीमद्रामायण (वाल्मीकीय) का अङ्गीरस हो, परन्तु श्रीरामचरितमानसका अङ्गीरस तो नहीं है। उसका तो अङ्गीरस उन दोनोंसे भिन्न कोई तीसरा ही है। वह है भक्तिरस अथवा शान्तरस। चरित-निर्माणके सङ्कल्पके समय कविके हृदयमें जिस रसका सञ्चार रहता है वही उसकी रचनामें अवतरित होता है और जोकमें निसर्गतः उसीका प्रभाव व्याप्त होता है। विचार करनेसे यह उद्बोधित होता है कि मानस रचनेके समय कविकी वृत्ति स्वान्तःमुख अथवा आत्मानन्दमें ही लीन थी। उसीकी प्राप्ति प्रत्य-निर्माणका प्रयोजन और उद्देश्य था। उन्होंने अपनी आत्मा में सनातन शब्द-ब्रह्मकी अर्चना की है। सरयूजीके रूपकमें कविकी दशा न्यक्त हो गयी है, यथा—

भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रवाहू॥

चली मुभग कविता-सरितासी। राम बिमल जस जल भरितासी॥

मानसका आदि-मध्य-अन्त राम-महिमा और रामभक्तिसं भरपूर है—परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीरामके पादारविन्दोंको, महाकवि महाराज, मानसके पुण्य नीरसे, निरतिशयानुरक्ति-पूर्वक काजित कर रहे हैं। जैसे हृन्त्रके हर एक पोरमें रस होता है वैसे ही मानसके प्रत्येक शब्दमें रामभक्ति भरी हुई है। उसीका सहज प्रभाव उसके पाठकोंपर पड़ता है। अतएव उसीको उसका अङ्गीरस कहना युक्तियुक्त होगा।

वृत्तकी ऐतिहासिकता—चरित अत्यन्त प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है; इसमें कुछ कहना ही नहीं। कविने प्रधान-रूपसे श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका आधार लिया है। इसको उन्होंने स्वीकार किया है, यथा—‘यद्रामायणे निगदितं’।

काव्य-फल—चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) मेंसे मानसमें कौन फलित है?

रामायणमें सामान्यतः धर्मका निरूपण है। उसमें उसका संस्कार और विकार अथवा व्यवहार, दोनों दिखलाये गये हैं, अर्थात् विधि और अनुष्ठान, धर्मके इन उभय रूपोंका उसमें निदर्शन एवं सङ्कटन हुआ है। श्रीरामचरित-मानसमें धृति, क्षमा आदि सद्गुणरूप सामान्य धर्म तथा विशेष (व्यक्तिगत) धर्मका सुचारुरूपसे उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। निगमागमके तत्त्व और उपदेश उसमें मूर्तिमान् होकर, अत्यन्त मनोहर रूप धारणकर हमको अपनी ओर सहज ही आकर्षित करते हैं। उसके नायक हमारे पूज्य

और दृष्ट हो जाते हैं, वे हमसे मिलते हैं और हम उनके संग संग डोखते फिरते हैं। वे हमारे दुःख पृच्छते हैं और हमारे हृदयको सान्त्वना देते हैं। इसप्रकार हमारी श्रद्धा उनमें टिक जाती है। उनके सखा-सहायक हमारे सखा-सहायक और उनके शत्रु हमारे शत्रु बन जाते हैं। उनके प्रिय पात्रोंसे हमारी पूरी घनिष्टता हो जाती है—इतनी कि हमको अनुभव होने लगता है कि हम भी व्रतामें प्राप्त हैं और उनके समाजमें सम्मिलित हैं।

रामायणका यह धार्मिक समाज प्रवृत्तिपथसे निवृत्तिकी ओर गया हुआ है, उसके सामाजिक धर्ममें प्रवृत्ति और निवृत्तिका भेद मिटा हुआ है, उसके सभी सत्पात्र छद्म निवृत्ति-सुखका उपभोग करते हैं, सबकी अन्तर्दृष्टि पुरुषोत्तम श्रीरामके चरणोंमें लगी हुई है। इसप्रकार सभी परमात्म-परायण और जीवन्मुक्त हो रहे हैं, कवि स्वयम् निर्वेश करते हैं—

कांसल-पुरवासी नर नारि वृद्ध अरु बाल।

प्राणहुतें प्रिय लागहीं सबकहैं राम कृपाए॥

उमा अबधबासी नर नारि कृतार्थ ३५।

ब्रह्मसन्निदानन्दधन रघुनाथक जहैं भूप॥

कविने यह दिखाया है कि सम्पूर्ण चराचर-जगत्का नियन्ता—नायक सर्वेश्वर ही राजराजेश्वर होकर इस धरातलकी शोभा बढ़ा रहा है, वह समस्त जीवलोकका पिता और पति ही अपने स्वाभाविक प्रजापतिरूपसे प्रकट होकर प्रजावर्गकों कृतार्थ कर रहा है। अतएव तत्परायण होना और उसके चरणोंमें भक्ति करना जीवकुलका परम धर्म है। उन्होंने कल्याणारूपद पदपद्मोंकी ओर उन्होंने दयापूर्वक हमको आकर्षित किया है, इस भयङ्कर भवार्णवसे पारकर शाश्वत आनन्दके दिव्य देशमें हमें ले जानेका उन्होंने पुण्य प्रयत्न किया है। इस हेतु परमार्थ वा मोक्ष ही श्रीरामचरित-मानसका पुरुषार्थ-फल है। कविने उसकी फल-स्तुतिमें यह प्रकट भी कर दिया है। यथा—

‘श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं मन्त्रयावगाहन्ति ये,

ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दहन्ति नो मानवाः॥’

‘राम-चरन-रति जो चहैं अथवा पद निरबान।

भाव-साहित सो यह कथा करैं श्रवण-पुट पान॥’

‘मनसागर चह पार जो पावा। रामकथा ताकैं दृढ नावा॥’

‘भवसागर’से तरने और ‘भवबन्धन’ से छूटनेके सुगम उपायका उपदेश अवसर पाते ही मनीषी कविने जगह-जगह दे डाला है। वे कवि-कसौंम्यका पालन करते हुए चर्माचार्य और तत्वाचार्यका भी कार्य करते चलते हैं। परमार्थकी ओर पूर्णरूपसे उनका लक्ष्य है। भगवान् रामके सर्वेश्वरत्व एवं परब्रह्मत्वका अखण्ड ज्ञान उन्हें बना रहता है। गोस्वामीजीने अपूर्व चमत्कार यह दिखाया है कि उन्होंने भूतलके अवताररूप रामजीको अवतारी वेदोदित ‘.....सांख्यशान्दा-देतैकरमात्मा’ ॥ परमात्मा रामसे बिल्कुल मिला दिया है। वह अपनी उदार ब्रह्म-बुद्धिसे ही सब कुछ देखते हैं और उसीसे उन्होंने अपने रामचरितमानसका निर्माण किया है। अस्तु, यह माननेमें कुछ भी अनुपपत्ति नहीं दिखायी देती कि मानस भक्तिरससे ही भरा है और भवसिन्धुसे जीवोंके उद्धारहीकी ओर उसका लक्ष्य है।

यद्यपि श्रीमद्गोस्वामिपादकी उपदिष्ट रामभक्ति अपवर्ग-फलसे उत्कृष्ट है तथापि यहाँ उसे स्थूल-भावसे मोक्षका ही भेद मानकर आलोचना की गयी है। सूक्ष्म आलोचना करने समय उसे बन्ध-मोक्षसे अतीत सहजा ब्राह्मी स्थिति ही कहना उचित होगा। कविने धर्मरूप वृत्तको मोक्षका फल माना है और भक्तिको उसका मधुर रस, यथा—

‘सब कर फल हरिभक्ति सोहाई ।’

‘सब साधन कर फल यह सुन्दर । तब पद-पङ्कज प्रांति निरन्तर ॥  
‘सबतैं सो दुर्लभ खग राधा । राम-भगतिरत गत मद माया ॥  
‘राम-भगति सोई मुकुति गोसाई । अनङ्गित आँख बरियाई ॥  
‘जिमि अल बिनु जल गहि न सकाई । कांठि भौंति कांठ करै उपाई ॥  
‘तथा मोक्ष-मुख मुनू खगसाई । रहि न सकै हरिभगति बिहाई ॥  
‘अस बिचारि हरि-भगत सयान । मुकुति निरादरि भगति लोभाने ॥  
‘भगति करत बिनु जतन-प्रयास । संसृति मूल अविद्या नास ॥  
‘भोजन करिय तिसिंहित लागी । जिमि सो असन पचै जठरागी ॥  
‘असि हरिभगति सुगम-सुखदाई । को अस मूढ न जाहि सोहाई ॥

अर्थ न धर्म न काम शक्ति गति न चहौ निरवान ।

जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ॥

मानसकारने जिस भक्तिकी ऐसी महिमा कही है और जो उनके मानसकी फल-स्वरूपा है वह प्रेमलक्षणा और

॥ श्रीरामतापिनी उपनिषद् ॥

परा भक्ति ही है, जिसका महर्षि शाबिडल्य तथा देवर्षि नारदने अपने सूत्रोंमें वर्णन किया है, यथा—

‘सा परानुरक्तिरीदरे’ ‘फलरूपत्वात्’, स्वयं फलरूपेति ( ब्रह्मकुमाराः ) सा कस्मै परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च, बलुब्धा पुमान् सिद्धो भवति, तृप्तो भवति ‘.....आत्मारामो भवति ।’

निर्वाणगति इस भक्तिमें सहज ही सिद्ध है ‘अनशब्दित आवै बरियाई’ तथा ‘रहि न सकै हरिभगति बिहाई ।’ परन्तु कविविशक्तिकी तरह यह भी ईश्वरदत्त दिव्य गुण है। भक्तिमें बड़ी विशेषता तथा सौलभ्य यह है कि उसमें अहम्मति और इच्छाका अत्यन्त अभाव होता है और अहङ्कार ही जीवेश्वरभेद तथा इच्छा ही बन्धनका मुख्य कारण है। भक्तकी मति-गति सर्वतोभावसे एक-मात्र भगवत्हीमें लीन रहती है, इसके अतिरिक्त न उसे और कुछ दीखता, न भाता है। गोस्वामीजीने इसी भक्तिकी उत्कृष्टता वर्णन की है, जो ज्ञानलब्ध ब्राह्मी गतिसे अमिश्र है। पर सौलभ्य और अबाधताके कारण उन्होंने उसे (भक्तिको) अधिक कहा है। ( कमशः )

## रामायण और तुलसी

विश्व सकलकी पूज्य, पुण्य-प्रद-प्रभा प्रकासिनि,  
भक्ति-भाव भरि मय्य, विज्ञता विमल विकासिनि,  
मंतुल, मृदुल, मनोह, निखिल नित नीति सुहाविनि,  
देती सुख-प्रद सतत, सबहि रामायण पावनि,  
भुवि विदित सकल कल्याणमय, नित कलिकुल नसावनी ।  
हैं मुद मङ्गलमय सदा-श्रीगामचरित विस्तारिणी ॥  
मधि पुराण, श्रुति, वेद, निर्मयी स्वर्ग-नैसर्ग,  
भक्ति-प्रेम-साहित्यमयी, बन गयी त्रिवेनी,  
यहि जल जो जन न्हात, सुखद सद्गति सो पावत,  
‘तुलसी’ के उपकार मान, गुण गरिमा गावत,  
नित इसंक आश्रयसे उन्हें,  
मिलती कीर्ति अगम्य है ।  
‘शङ्कर’ व्यापी विश्वमें,  
‘श्रीतुलसी-स्मृति’ रम्य है ॥  
गौरीशङ्कर दिवेदी ‘शङ्कर’

## श्रीसुतीक्ष्णजीकी प्रेमा-भक्ति

( लेखक-पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामावणी )



राम-चरित-मानसके अरण्य-कावचान्तर्गत श्रीसुतीक्ष्ण मुनिके प्रसङ्गकी आलोचना करनेपर आपमें नवधा, प्रेमा, परा आदि सर्व प्रकारकी भक्तियोंका आवर्ण तथा सगुणोपासनाके अनेक रहस्य स्पष्टतया परिलक्षित होते हैं। नवधासे यह तात्पर्य है

कि भक्ति नौ प्रकारकी मानी गयी है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

( भागवत )

श्रीसुतीक्ष्णजीमें यह इसप्रकार पायी जाती है—

(१) श्रवण-प्रभु आगमन सुन पावा ।

(२) कीर्तन-कबहुँ नृत्य करइ गुन गाई ।

(३) स्मरण-हे निधि ! दीनबन्धु रघुराया ।

मोसे सठपर करिहँहि दाया ॥

(४) पाद-सेवन-परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी ।

(५) अर्चन-निज आत्म प्रभु आनिकै, पूजा निविध प्रकार ।

(६) वन्दन-कह मुनि प्रभु मुनु बिनती मोरी ।

अस्तुति करउँ कवनि बिधि तोरी ॥

(७) दास्य-मन-क्रम-वचन राम-पद-सेवक ।

(८) सख्य-मुनिहि मिलत अम सोह कपाला ।

(९) आत्मनिवेदन-को मैं चलेउँ कहाँ नहि भृङ्गः ।

प्रेमा-अविरक्त प्रेम भगति मुनि पाई ।

परा-मुनि मगु मौझ अचग होइ बेमा ।

पुलक सरार पनमकत जैसा ॥

मानसमें नवधा भक्ति दो प्रकारकी कही गयी है ।

एक तो उपर्युक्त भागवत-कथित है जो श्रीलक्ष्मणगीताके प्रसङ्गमें आयी है। जब उन्होंने ईश्वर, जीवादिका भेद पक्षते समय भगवान् श्रीरामसे पूछा था कि 'कहहु सो भगति करहु अहि दाया' तब उसके उत्तरमें कहा गया था कि—

भगति तप्त अनुपम सुखमूला । मिले जो संत होहि अनूकला ॥

पुनः—

—भक्तिक साधन कहाँ बखानी ।

प्रथमहि विप्र-चरन अति प्रीती । निज निज धरम निरत सुति रीती ॥

तेहिकर फल पुनि निषय विरागा । तब मम चरन उपज अनुरागा ॥

सवणादिक नव भक्ति दढ़ाहीं—

यहाँ इसी नवधा भक्तिका लक्षण है। यह उस भक्तके लिये है जो सन्त-शरण नहीं प्राप्त कर सकता हो, अर्थात् गृहस्थाश्रम त्यागकर अपनेको सन्त-सेवामें लगा उनकी कृपाका मार्ग न हो सकता हो। ऐसा भक्त वर्णाश्रम-धर्मका पालन करता हुआ विप्र-चरणोंमें निष्ठा कर उसके कल-स्वरूप विषयोंसे वैरागी बन उपर्युक्त श्रवण आदि भक्तियोंके द्वारा क्रमशः प्रेम और परा भक्तिको प्राप्त होकर कृतार्थ होता है।

दूसरी नवधा भक्ति श्रीमुख द्वारा ही श्रीशङ्करजीके प्रति बाँ कही गयी है—

नवधा भगति कहीं तोहि पाहीं । साधवान मुनु भक्त मनमाहीं ॥

प्रथम भगति संतन कर संग । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥

गुरु-पद-पंकज सेवा, तीसरि भगति भ्रमान ।

चौथि भगति मम गुन-गन, करै कष्ट तजि गान ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा । पंचम भजन सो बेट प्रकामा ॥

छठ दम मील विरति बहु कर्मा । निरत निरंतर सजन-धर्मा ॥

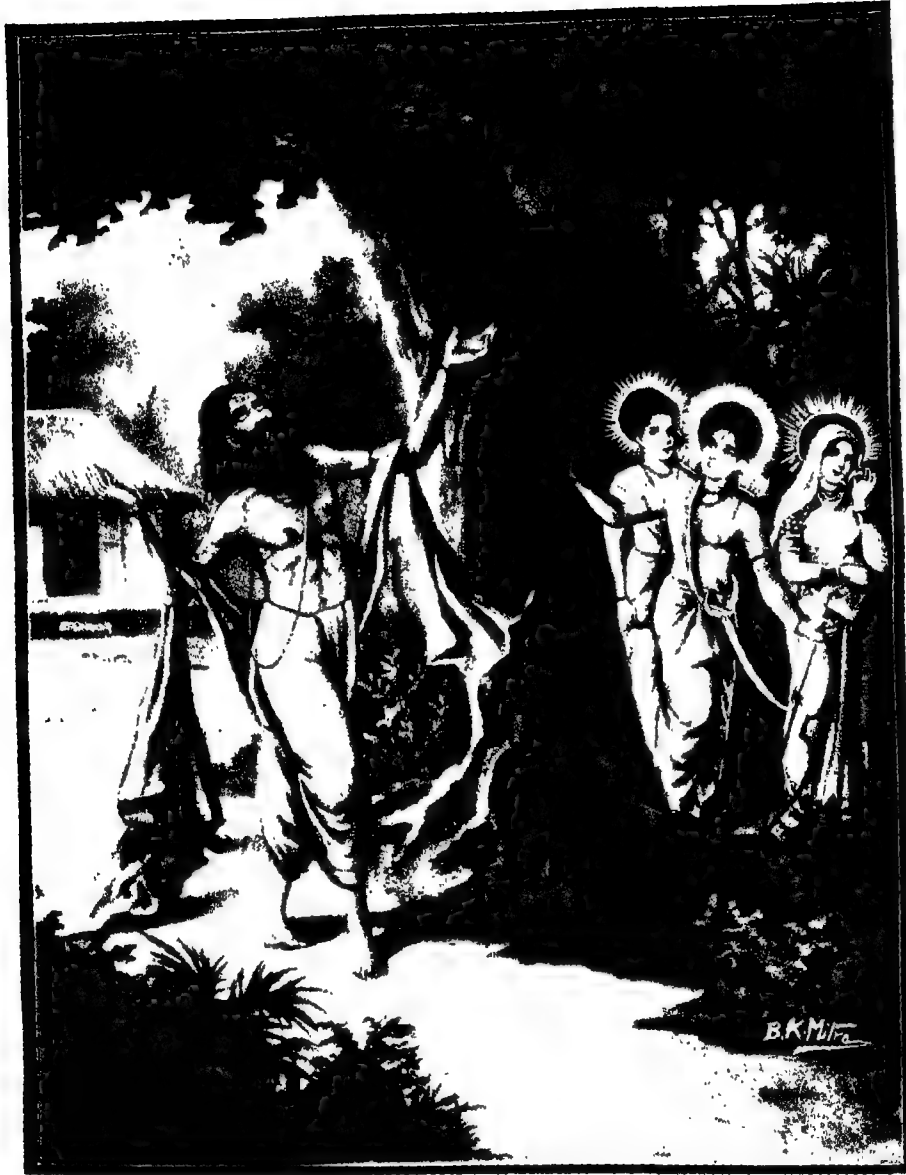
सप्तम सम मोहिमय जग देखा । मोहित संत अधिक कम लेखा ॥

आठवें जथा लाभ संतोषा । मर्पनहु नहि देखे पर दाया ॥

नवम सरल सब सन छुटहीना । मम भरोस दिव्य हर्ष न दीना ॥

यह नवधा-भक्ति जब साधक सन्तके सर्वथा अनुकूल हो जाता है, (अथानो भवति उपासा) उसमें जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, (तत्र विज्ञानार्थं मन्त्रुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं प्रयतिनष्टं) तब सद्गुरुका संयोग होनेसे उत्पन्न होती है। अर्थात् गृहस्थाश्रमसे उपराम-चित्त और निवृत्ति-मार्गकी दृढ़ उत्कण्ठासहित सर्वतोभावेन बिरक्त सन्तकी शरण होकर उसके साक्षिण्यमें उपस्थित रह सेवामें रत रहना, सन्तके संगरूप प्रथम भक्ति है। जब उस सन्त गुरुदेवसे भगवत्-कथा सुन-सुनकर उसमें रति होती है तो

कल्याण



सुतौदणका प्रेमोन्माद ।

अचिरल प्रेम-अगति मुनि पार्इ । प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई ॥

Lakshminilas Press Ltd., Cal.



वह दूसरी भक्ति कहलाती है। तीसरी भक्ति कथा आदिके अवस्थाका सुख मिलते-मिलते गुरुमें अधिक प्रेम होकर उनके पद-कमलकी सेवा होना है। चौथी भक्ति अवस्था करते-करते गुण-गान करनेकी उत्कण्ठा होनेपर निष्कपट-रूपसे स्वयं गुण-गान करने लगना है। पाँचवीं भक्ति श्रीगुरु-देवसे प्राप्त राम-मन्त्रके जापमें दृढ़ विश्वास-पूर्वक आरुढ़ होना है। सत्संगके प्रभावसे इन्द्रियोंका दमन और नानाविध कर्मोंकी प्रवृत्तिले वैराग्य होकर सन्धर्ममें मन लगना छठी भक्ति है। सातवीं राग-द्वेषकी निवृत्ति होकर सम-बुद्धि होना और जगत्का भगवद्रूप ही देखना है। इस समय सन्तोमें अधिक निष्ठा हो जाती है। आठवीं यथा-ज्ञाभमें ही सन्तुष्ट होकर दोषदृष्टिका आत्यन्तिक त्याग होना है। नवमी भक्ति मरल चित्त, सबसे निरद्वय व्यवहार, केवल भगवान्‌का भरोसा करना और हृदयके दुर्ष-विषाद, तथा दीनता-रहित हो जाना है।

विरक्त भक्त शक्तीके प्रति कही गयीं इस भक्तिके द्वारा और अनुरक्त भक्त लक्ष्मण-गानांक्त भक्तिके द्वारा प्रेमा और परा भक्तिको प्राप्त कर सकते हैं, रामायणमें दोनोंके वर्णन करनेका यही अर्थ है।

अब श्रीसुतीक्ष्णजीकी योग्यता, नम्रता, दीनता विचारने योग्य है—

ते बिधि दीनबन्धु रघुराया । मोसे सठपर करिहँहि दाय ।।  
मेरे त्रिय मरोस दड़ नाहीं । भगति बिरति न ग्यान मनमाही ।।  
नहि सतसंग जोग जप जागा । नहि दड़ चरन कमल अनुरागा ।।  
एक बानि करनानिधानकी । सो प्रिय जाके गति न आनकी ।।

भक्तिकी परकाछाके यही लक्षण हैं, सब भक्त अपनेमें कोई योग्यता होना कब मान सकते हैं ?

'नहि सनसंग' कहनेमें एक रहस्य है, श्रीसुतीक्ष्णजी किसी कारण-वश अपने गुरुदेव महर्षि अगस्त्यजीसे विद्या पद चुकनेके बादसे ही अलग रहनेके लिये विवश हो गये थे। वह कारण आगे मालूम हो जायगा। सन्त-समागमका सुयोग न पानेके कारण ही आपमें अवस्थादि नवधा भक्तिकी ही तारतम्यता पायी जाती है।

श्रीसुतीक्ष्णजी जब प्रभु-आगमन सुनकर प्रेमानन्दमें मग्न हो गये तब श्रीरघुनाथजी आपकी प्रतिशय प्रीति देख-कर—पैदल चलकर पास पहुँचनेमें देर होना जान ऐसी परम प्रेमा-दशामें तत्काज प्राप्त न होनेसे अपना विरद झूठा होता

समझकर त्वराके कारण हृदयमें ही प्रकट हो ध्यानद्वारा साक्षात् हो गये। फिर क्या था—

मुनि मगु मौझ अचल होइ बैसा । पुलक सरौर पनस फलजैसा ।।

श्रीसुतीक्ष्णजी हृदयमें ही सरकारको पाकर रोमाञ्चित हो मार्गमें ही अचल होकर बैठ गये। जब श्रीरघुनाथजी निकट आ गये और बहुत प्रकारसे जगाने लगे तो ध्यान-जनित सुखकी समाधिके कारण मुनि नहीं जागे। तब विरद संभारन पुनीत-प्रेमानुगामी प्रभु श्रीराम, जिन्होंने पैदल चलकर आनेमें कुछ विलम्ब होता देख प्रेमविवश हो प्रेमीके हृदयमें ही प्रकट होकर अपना विरद संभाला था, भला उसके हृदयमेंसे उसका प्रेमज्यों-का-र्यों रहते सर्वथा कैसे निकल सकते थे ? अतः—

भूप रूप नव राम दुराग । हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा ।।

भगवान् अपने जीला-अवतार-विग्रह राजपुत्र-रूपको छिपाकर अपने ही नित्य अवतारी विग्रह चतुर्भुजरूपसे हृदयमें दर्शन देते हैं, जिनसे अवताररूप दाशरथी रामके द्विभुज रूपके उपासक सुतीक्ष्णजी घबड़ाकर जग भी जायें और भगवान् अपने दूसरे नित्यरूपसे हृदयमें बने भी रहें। वैसा ही हुआ भी—

मुनि अरुलाइ उठा तब कैसे । बिकल दीन मन फनिबर जैसे ।।

जैसे मणिधर सर्प मणिहीन हो जानेपर विकल हो जाता है वैसे ही राम-रूप छिप जानेसे सुतीक्ष्णजी अकुला उठे। यहाँ मुनिको चतुर्भुज-रूपका द्वेषी बताना अपनी अल्पज्ञताको ही सूचित करना है। कारण, यह उपमा ही इस प्रसङ्गको स्पष्ट कर रही है कि साँप मणिके जानेसे विकल होता है न कि किसी चीजको देखनेसे। सुतीक्ष्णजी 'भूप-रूपके दुरागे' से विकल हुए हैं न कि चतुर्भुज-रूपको देखनेसे। भला, जो नित्य विग्रहके अवतारका प्रेमी होगा वह अवतारी स्वरूपसे द्वेष क्यों करेगा ? कहीं अवतारी और अवतारमें भी कोई भक्त द्वैत-बुद्धि कर सकता है ? कदापि नहीं। देखिये श्रीसुतीक्ष्णजीका ही बचन यहाँ ऐक्यका प्रमाण दे रहा है—

जदपि बिरज व्यापक अजिनासी । सबके हृदय निरंतर बासी ।।

तदपि अनुज श्रीसहित खरारी । बसहु मनसि मम कानन चारी ।।

इन्होंने जिनसे सब कुछ सीखा था, उन गुरुदेव अगस्त्यजीके भी ऐसे ही अमेदके बचन हैं—

जहापि ब्रह्म अखंड अनन्ता। अनुभवगम्य भजहि जेहि संता ॥

अस तब रूप बखानों जानी। पुनि पुनि सगुन ब्रह्म रति मानी ॥

ऐसे ऐक्यके बोधमें द्वेष कैसे सम्भव है ?

जैसे ही श्रीसुतीषणजी अकुलाकर जगे वैसे ही सामने श्रीसीता और लपणलाजजी सहित श्रीरघुनाथजीको देखकर—

परे लकुट इन चरननिह लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़ भागी ॥

जैसे हाथसे छोड़ देनेपर छड़ी बेलाग—शीघ्रतासे पृथ्वीपर गिर पड़ती है वैसे ही वे बेसुध होकर चरणोंपर गिर पड़े। 'दुख दुख' न कहकर 'लकुट दुख' कहनेसे उनकी कृश गात होना सूचित किया गया है। श्रीस्वाधभुवमनुके प्रसङ्गमें—

‘परे दंड इव गहि पद पानी’ कहकर—

‘हृष्टतन भये सोहायि। मानो अबहि भवनेत आये ॥

—सूचित किया गया था।

कृपालु भगवान् ने उन्हें अपनी विशाल भुजाओंसे उठाकर हृदयमें लगा लिया, उम्र समय ऐसी शोभा हुई मानो तमाल-तरुसे कनक-लता भेंट रही हो। यहाँ श्रीमुनिजीके गौर शरीर तथा श्रीसरकारके श्याम तनुकी तारतम्यता की गयी है। मुनि भगवान् को आश्रमपर लाकर विविध प्रकारसे उनकी पूजाकर बोले, ‘हे प्रभो! सरकारकी महिमा अमित है और मेरी बुद्धि तुच्छ है, मैं किस प्रकार स्तुति करूँ?’ मुनिने चौदह चौपाइयोंमें ऐसी दीनतासे स्तुति समाप्त की है कि प्रत्येक दो-दो चौपाइयोंके अन्तिम चरणमें एक बार ‘नौमि’ तो दूसरी बार ‘त्रातु’ शब्द क्रमपूर्वक आते गये हैं। जिन पद्योंमें स्वरूपके सौन्दर्यका कथन है उनके अन्तमें नमस्कारात्मक ‘नौमि’ तथा जिन पद्योंमें विरद कथित है उनके अन्तमें रक्षात्मक ‘त्रातु’ शब्द बराबर चला आया है। इस अपूर्व भावके अतिरिक्त एक विशेष बान यह भी है कि ‘नौमि’ के अहं-कर्त्ताके आरोपको भी ‘त्रातु’ से संभाला जा रहा है। अर्थात् ‘मैं किसी योग्य नहीं हूँ’ रूपा अपने निश्चयकी पुष्टि ‘त्रातु’ से करते जा रहे हैं कि कहीं भूलकर भी यह भाव न आ जाय कि मैं स्तुतिका कर्त्ता हूँ। चम्प है ऐसी दीनता!

अब आपकी अर्माष्ट याचनाका रहस्य देखिये—

आप सगुण-ध्यानके बड़े प्रेमी हैं, अतः यही वर माँगने हैं कि हे भगवन्! यद्यपि आप एक अन्तर्दामी व्यापकरूपसे तो सबके हृदयमें बसते ही हैं, तथापि मेरे

मानसमें तो इसी वनमें विचरनेवाले रूपसे श्रीसीता-लपण-लाजजीसहित निवास कीजिये। परन्तु प्राप्तिसमें विघ्नकी शंकासे डरनेवाले आर्त याचककी तरह श्रीसुतीषणजीने सोचा कि ‘काननचारी’ सङ्केत देकर श्रीअवतार-विग्रहको तो मैंने निश्चित कर लिया, पर काननमें विचरना तो केवल चौदह वर्षोंके लिये ही है, कहीं ऐसा न हो कि सरकारके काननसे छौटकर राज्यासीन होनेपर जटाजूट उतारकर किरीट, मुकुट आदि धारण करनेसे प्रभुका ‘काननचारी’ रूप न रहनेके कारण मेरे हृदयसे भी ध्यानका तिरोभाव हो जाय। अतः पुनः संभाल लेते हैं—

जो कोसल-पति राजिवनयना। करी सो राम हृदय मम अयना ॥

अस अभिमान जाय जनि मेरे। मैं सेवक रघुपति पति मेरे ॥

यहाँ ‘कोसलपति’ और ‘रघुपति’ शब्दोंसे वह कसर पूरी कर दी गयी है!

श्रीजीलाधाम प्रभुजीने देखा कि मुनिजी थोड़ी देर पहले तो ध्यानमें इतने मग्न थे कि मेरे जगानेपर भी नहीं जागते थे, परन्तु इस समय उनकी याचनामें कितनी दूरकी सोच-संभाल प्रकट होती है! अतः इन्हें और मंचलकर अबसर दे अनि आर्तताके रहस्यका ध्यानन्द लेना चाहिये। भगवान् भी भक्तोंके साथ विनोद करनेमें वैसे ही सुखी होते हैं जैसे भक्त भगवान् की लीला में। भगवान् श्रीमुखसे बोले—

परम प्रसन्न जानु मुनि मोहि। जो बर माँगूँ तेँ सो तेही ॥

‘हे मुने! और भी जो कुछ इच्छा हो सो माँगनेमें कसर न करो, मैं सब कुछ देनेको तैयार हूँ।’

सुतीषणजीने विचारा, मालूम होता है माँगनेमें अब भी कोई-न-कोई कसर रह गयी है, तभी तो प्रभुजी ऐसे कह रहे हैं। अहा! मैं अल्पज्ञ जीव कदाँ तक सोच विचार कर सकता हूँ। उचित और उत्तम तो यही है कि प्रभुके ही उपर छोड़कर अपने अभीष्टको सर्वज्ञ पुष्ट कर लूँ। अतः मुनि बोले—

कह मुनि मैं बर कछुँ न जीचा। समुझन पर मुँठ का सोँचा ॥

तुमहि नीक नाम रनुगई। सो मोहि देव दाम मुखदाई ॥

तब श्रीसरकारने यह कौतुक किया कि और तो सब प्रकारके उत्तम वर दे दिये, पर ध्यानका प्रसङ्ग यह देखनेके लिये नहीं आने दिया कि मुनिजीको वास्तवमें तो ध्यानकी ही आतुरता है, देखें उसके अभावमें यह क्या सोचते हैं? प्रभु बोले—

अविरल भगति विरति निग्याना । होहु सकल गुनग्यान निवाना ॥

यह सुन सुतीक्ष्णजी व्याकुल-चित्त हो सोचने लगे कि और सब कुछ तो सरकार दे रहे हैं परन्तु मैंने जो सतत ध्यानका मुख्य वर माँगा था उसकी तो चर्चा भी नहीं की ! उसी कमीकी तो पूरी करनेकी बात थी । फिर सोचने लगे कि प्रभुने जिस ऋटिको सुधारनेके लिये अवसर दिया था वह तो यही है कि कोसलपति या रघुपतिस्वरूप तो अवधिबद्ध ही है—

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।

रामो राज्यमुपसित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

( बा० रा० )

प्रभु ग्यारह हजार वर्षोंतक ही तो कोसलपतिरूपते रहेंगे । पीछे परधाम पधारनेके बाद ऐसा न हो कि श्रीराजशासनरूपका ध्यान भी इक्यसे तिरोहित हो जाय । इनलिये मुनिने पुनः याचना की—

प्रभु जो दीन्ह सो वर मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

ऋजु-जानकी सहित प्रभु चाप-बान-धर राम ।

मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा यह काम ॥

हे श्रीभनुप-बाण-धारी रामजी ! आप श्रीलपणलालजी और श्रीसीताजीसहित मेरे हृदयमें आकाशचन्द्रवत् सदैव निवास करें । यही मेरी कामना है । तब श्रीसरकार-

ऋषभस्तः कति राम-निवासः । हर्षि चक्रे कुंभज ऋषि पासा ॥

हर्षित हो एवमस्तु कह अगस्त्यजीके पास चले ।

अब सुतीक्ष्णजीका अपने गुरुवर्य श्रीअगस्त्यजीसे पृथक् रहनेका कारण मुनिये । आप पहले जय विद्याध्ययन करते थे, तब मय कुछ पढ़ चुकनेपर आपने गुरुजीकी गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये बहुत मजदूर किया । गुरुजीने बार-बार कहा कि हम यों ही उच्छ्रय कर देते हैं, तुम गुरुदक्षिणाका हठ न करो । परन्तु जब आपने किसी प्रकार आग्रह करना नहीं छोड़ा तो अगस्त्यजी मरौप होकर बोले कि 'नहीं मानते हो तो जाओ दक्षिणामें श्रीरामजीको लाकर मुझमें मिलाओ ।'

तभीसे सुतीक्ष्णजी वहाँसे चले आये और श्रीसरकारकी प्राप्तिके लिये श्रमबन्धमें भजन करने लगे । उक्त बातके कारण लौटकर गुरुदेवके पास नहीं गये । इसीलिये श्रीरघुनाथजीका वन-यागमन सुनकर आप और भी अधिक प्रेम-भक्त हो नाचने लगे थे ।

जब प्रभु चलने लगे तो सुतीक्ष्णजी बोले—

बहुत दिवस गुरु दरसन पाए । मण मोहि यहि आश्रम आए ॥

अब प्रभु संग जाउँ गुरुपाहीं । तुम्ह कहैं नाथ निहोरा नाहीं ॥

हे नाथ ! मुझे इस आश्रममें आये बहुत दिन हो गये । मैंने बहुत दिनोंसे गुरुजीके दर्शन नहीं पाये । प्रभुके संग मैं भी चल्ँ ? इसमें सरकारके लिये कोई संकोचकी बात नहीं है; मैं तो अपने प्रयोजनसे चलना चाहता हूँ ।

देखि कृपानिधि मुनि चतुरार्ह । लिये संग निहँसे दोठ भार्ह ॥

कृपानिधान श्रीरामजी मर्मको जान गये । दोनों भार्हें पड़े एवं मुनिको साथ ले लिया और—

पंथ कहत निज भगति अनूपा । मुनि आश्रम पहुँचे गुरुभाषा ॥

अगस्त्यजीके आश्रमके निकट पहुँचे तो—

तुरत सुतीक्ष्ण गुरुपहँ गयऊ । करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥

नाथ कौसलाधीस कुमारा । आप मिलन बगत आधारा ॥

राम अनुज समेत बँदेही । निसदिन देव जपत रहु जेही ॥

श्रीसुतीक्ष्णजीने तुरन्त आगे बढ़कर गुरुदक्षिणासे उच्छ्रय होनेके लिये अपने गुरुदेवके पाय जा दण्डवत् की और 'हे देव ! आप जिन तीन मूर्तियोंका रात-दिन जाप करते हैं वे श्रीजानकीजी और लपणलालसहित भगवान् रामचन्द्रजी आपसे मिलने आ पहुँचे हैं' कहकर आपने अश्रुको सू-हर-सूद चुका दिया ।

मुनत अगस्त तुरत उठि पाए । हरि विलोकि लोचन जल-छाए ॥

श्रीअगस्त्यजी सुनते ही दौड़े और दर्शन पाकर प्रेममग्न हो गये । इसप्रकार मुनि सुतीक्ष्णजी गुरुदक्षिणाके बन्धनसे मुक्त हो गये ।

उसकी प्रेमाभक्ति अनुपम और परम सराहनीय है जिसने अपने प्रभुको प्रेमके बलसे सचमुच प्राप्तकर दक्षिणाका धन बना दिया ।

इस प्रसङ्गसे माता-भक्तिके सर्वाङ्ग तथा उपासनाके गूढ़ प्रभाव और चार्त प्रेमके रहस्यके सिवा एक और भी भारी उपदेश मिलता है, अर्थात् गुरु और शिष्यके बीच यदि दक्षिणाका व्यवहार हो तो ऐसी ही सेवाकी भेंट माँगी जाय ।

वह शिष्य धन्य है जो ऐसे सत्य कर्मका सौभाग्य प्राप्तकर स्वयं भी कृतार्थ होता है और अपने गुरुदेवको भी कृतकार्य कर सन्तुष्ट कर देता है ।



## हनुमान्जी (हनुमन्त)

( लेखक—राय बहादुर अवधवासी लाला श्रीसीतारामजी बी० ए० )

हनुमान्जी श्रीरघुनाथजीके परमभक्त, बड़े वीर और बड़े ज्ञानी थे। इनके जन्मकी कथा बाल्मीकीय रामायण-किष्किन्धाकाण्डमें यों लिखी है कि जब सीताजीकी खोज करते-करते वानर सेना समुद्र-तटपर पहुँची तो अभाह बल देखकर सब घबरा गये। अङ्गदने धीरज धरके उनसे कहा कि यह समय विक्रमका है विवादका नहीं। विवादसे पुरुषका तेज नष्ट हो जाता है और तेज-हीन पुरुषका कोई काम सिद्ध नहीं होता। तुम लोग हमें यह बताओ कि तुममेंसे कौन वीर समुद्र फाँद सकता है? इसपर अनेक वानर बोल उठे, किसीने कहा कि हम तीस योजन फाँद सकते हैं, किसीने बालीस कहा; जाम्बवन्तने नब्बे योजन फाँदनेका बल बताया। इसपर अङ्गदने कहा कि समुद्रकी चौड़ाई सौ योजन है सो हम फाँदनेको तो फाँद जायेंगे किन्तु यह निश्चय नहीं है कि जूट भी सकेंगे। जाम्बवान् बोला कि आप सबके स्वामी हैं, आपको न जाना चाहिये। इसपर अङ्गदने उत्तर दिया कि न हम जावें, न और कोई जाय तो हम लोगोंको यहीं मर जाना चाहिये, क्योंकि सुग्रीवकी आज्ञा है कि बिना सीताका पता लगाये हमको सुई न दिखाना। जब यह बातें हो रही थीं तो हनुमान्जी एकान्तमें बैठे थे। जाम्बवान्ने कहा कि तुम चुपचाप क्यों बैठे हो, तुम्हारी मुजाबमें इतना बल है जितना कि गरुड़के पंखोंमें। तुम्हारी माता अञ्जना, पहले पञ्चिकस्थला नामकी अप्सरा थीं। अग्निमुनिके शापके कारण बानरी हो गई। और कुञ्जर नाम बानरश्रेष्ठके घरमें जनमीं, उनका विवाह केशरीके साथ हुआ था। वर्षाऋतुमें वह एक बार पहाड़पर घूम रही थीं कि पवनने उनका अङ्गल उड़ा दिया। अञ्जनाने कहा कि हमारा पातित्त-धर्म कौन नष्ट करवा चाहता है? इसपर पवनदेवने उत्तर दिया कि तुम्हारा पातित्त-धर्म भंग न होगा। हमारे संसर्गमें तुम महासख, महानेज्ज्मी और महापराक्रमी पुत्र जनोगी। वही पुत्र तुम हो। जब तुम बालक ही थे, बनमें सूर्यको उदय होते देख उसे फल मगमगकर, उसके खानेको दौड़े थे। इसपर इन्द्रने तुम्हारे ऊपर बज्र प्रहार

किया और तुम्हारी बाईं हड्डी ( दाढ़ ) टूट गयी। तबसे तुम्हारा नाम हनुमान् पड़ा। ७

महापुराणमें यह कथा विशेष विस्तारके साथ दी हुई है।

गोदावरी और फेना ( पेनगङ्गा ) के संगमपर एक बड़ा तीर्थ है, जिसमें स्नान-दान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। इस तीर्थके अनेक नाम हैं, वृषाकपि, हनुमत, माजार और अञ्जक। यह तीर्थ गोदावरीके दक्षिण तटपर है और इसकी कथा यह है—

‘केशरीके दो किर्याँ थीं, अञ्जना और अद्रिका। दोनों पहले अप्सराएँ थीं। शापके बश अञ्जनाका मुँह बानरका-सा हो गया था, और अद्रिकाका बिल्लीका-सा। दोनों अञ्जन पर्वतपर रहती थीं। एक बार अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँचे। दोनोंने उनकी पूजा की और मुनिने प्रसन्न होकर दोनोंको एक एक पुत्रका वर दिया। दोनों उन्नी पर्वतपर नाचती-गाती रहीं। वही वायुदेव और निरृतिदेव पहुँच गये। वायुके संसर्गसे अञ्जनाके हनुमान् पुत्र हुए और निरृतिदेवके संयोगसे अद्रिकाके अद्रि नाम पिशाचराज पुत्र हुआ। पीछे गोदावरीमें स्नान करनेपर दोनोंकी शाप-निवृत्ति हुई। जहाँ अद्रिने अञ्जनाको नहलाया उस तीर्थका नाम अञ्जन और वैशाख पड़ा। और जहाँ हनुमान्जीने अद्रिकाको स्नान कराया था वह माजार, हनुमन् और वृषाकपिके नामोंसे प्रसिद्ध हुआ।†

वृषाकपिका अर्थ है जियका सम्बन्ध वृषकपिसे हो और वृषकपिकी कथा अध्याय १२३ में दी हुई है।

दैत्योंका पूर्वज बड़ा बलवान् हिरण्य तपस्याके फलसे देवनाथोंका अजेय हो गया था। उसका बेटा महार्शनि भी बड़ा बली था। उसने एक युद्धमें इन्द्रको हाथीमे बाँधकर अपने पिताको भेंट कर दिया। पिताने इन्द्रको बन्द रखवा। पीछे महाशनिने वरुणपर चढ़ाई कर दी। परन्तु वरुणदेवने उसे अपनी बेटी देकर सन्धि कर ली। इन्द्रके बँध जानेसे देवता बहुत दुखी हुए और उन्होंने विष्णुसे सहायता

\* बाल्मीकीय रामायण-किष्किन्धाकाण्ड ६३

† यह संगम अर्कोटके दक्षिण निजामराज्यमें है।

माँगी। विष्णुने उत्तर दिया कि वरुणदेवकी सहायताके बिना हम कुछ नहीं कर सकते। तब देवता वरुणके पास गये।

वरुणके कहनेसे महाशनिने इन्द्रको जोर तो दिया परन्तु उनको बहुत फटकारा और उनसे कहा कि तुम वरुणको आजसे गुरु मानो। इन्द्र मुँह बटकाये अपने घर आये और इन्द्राणीसे अपनी दुर्दशा कही। इन्द्राणीने कहा कि 'हिरण्य मेरा चचा था तो भी मैं अपने चचेरे भाईकी वृथ्वाका उपाय बताती हूँ। तपस्या और यज्ञसे सब कुछ हो सकता है। तुम द्वादश-वनमें शिव और विष्णुकी आराधना करो।' इन्द्रने शिवकी पूजा की। शिवने कहा कि 'हम अकेले कुछ नहीं कर सकते। तुम विष्णुकी पूजा करो।' तब इन्द्र और इन्द्राणीने आपस्तम्बके साथ गोदावरीके तटपर—गोदावरी और फेनाके संगमपर विष्णु भगवान्की आराधना की। शिव और विष्णुके प्रसादसे जलमेंसे शिव विष्णु दोनोंका स्वरूप धारण किये हुए (अर्थात् चक्रपाणि और शूलधर) एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने रसातलमें जाकर महाशनिको मारा, यह इन्द्रका प्यारा मित्र अजक वृषाकपि कहलाया।

वृषाकपि हरिन्दनका नाम अध्याय ७० में उन लोगोंके साथ भी आया है जिन्होंने गोदावरी तटपर तीर्थ-स्थापन किये थे।

विचारनेसे यह ध्वनित होता है कि वृषाकपि † और हनुमन्त एक ही थे। वृषाकपिका अर्थ है पुष्टिग बन्दर। क्या हनुमान्जी ऐसे ही बन्दर थे जैसे आजकल अयोध्या आदि नगरोंमें उपद्रव करते हैं। जो ऐसे ही थे तो क्या कारण है जो आजकल कोई बन्दर शान्ति नहीं निकलता? हम तो यह समझते हैं कि हनुमान्जी और उनके सैनिक दक्षिण देशके निवासी थे। आजकलके विज्ञानसे यह सिद्ध होता है कि हजारों वर्ष पहले भारतका दक्षिण प्रान्त अफ्रीका Africa से मिला हुआ था, पीछे धरती रूँठ जानेसे भरत सागर बन गया। अफ्रीकाके दक्षिणोंका मुँह बन्दरोंसे बहुत मिलता जुलता है। दोनोंकी चिपटी नाक, दूधे मध्ये और धूँधनकी भाँति आगे निकले हुए मुँह अब भी देखे जाते हैं। क्या इस बातके माननेसे कोई आपत्ति हो सकती

है कि ये वावर उन्हीं दक्षिणोंके भाई हों जो अफ्रीकामें अबतक बसे हैं और भारतमें नष्ट हो गये या वर्षासंकर होकर वहाँके निवासियोंसे मिल गये। इसमें एक शंका हो सकती है कि रामायणके बन्दर विंगल वर्षा थे और अफ्रीकाके दक्षिणी काले होते हैं परन्तु यह आवहवाका असर है।

अब रहा हनुमन्त नाम। जो हम मान लें कि हनुमान् और उनके सैनिक प्राचीन द्रविड़ थे तो सम्भव है कि रावणकी ‡ भाँति हनुमन्त भी किसी तामिल-शब्दका संस्कृत रूप हो और जब हनुमन्त शब्द बना तो उसकी उत्पत्ति दिखानेको इन्द्रके वज्रसे दाढ़ टूटनेकी कथा रची गयी हो। इस कथासे भी यह ध्वनित होता है कि हनुमान्जी पहले ऐसे कुरूप न थे। मुँह टूट जानेसे बन्दरका-सा हो गया। ऐसे ही वृषाकपि भी किसी द्रविड़ शब्दका संस्कृत अनुवाद हो सकता है। क्योंकि यह तो सिद्ध ही है कि वावर गोदावरीके दक्षिणके रहनेवाले थे, जहाँ आजकल कनाड़ी या तामिल भाषा बोली जाती है। हम इस विषयमें १९१३ के जर्नल रावल एशियाटिक सोसाइटीसे प्रसिद्ध विद्वान् मिष्टर पार्जिटरका मत उद्धृत करते हैं।

वृषा पुष्टिगके लिये द्रविड़ शब्द आया है। और यह शब्द कनाड़ी, तामील और मलयालम तीनों भाषाओंमें बोला जाता है। तेज़गूमें इसके बदले मन और पोडु बोल्ते हैं। कपि बन्दरके लिये इन चारों भाषाओंमें दो शब्द हैं—एक कुरंगु, दूसरा मंडी। वावरवाची कुरंगु तामिल भाषाका है। शेष तीनोंमें कुरंगु हरिनको कहते हैं। मलयालममें इस शब्दके दो रूप हैं। कुरंग हरिन और कुरन्नु बन्दर। तामिल भाषामें मंडी विशेषकर बँदरियाको कहते हैं। मलयालममें मंडी काले मुँहके बन्दरोंके अर्थमें बोला जाता है। कनाड़ी और तेज़गूमें मंडी संयुक्त शब्दोंमें हिन्दी 'लोग'के अर्थमें आता है। यह अर्थ विचारनेके योग्य है। कनाड़ीमें बन्दरके लिये दो शब्द हैं कोटि और तिम्मा। और दोनों नये हैं। यह बात सर्व-सम्मत है कि तामिलमें प्राचीन शब्द बहुत हैं। अब आया और मंडीके मिलानेसे एक द्रविड़ शब्द बन जाता है। और उसका संस्कृतानुवाद वृषाकपि होता है।

\* महापुराण अध्याय ८४

† क्योंकि हनुमान्के संसर्गसे यह वृषाकपि तीर्थ कहलाया।

‡ इस शब्दपर विचार आगे किसी लेखमें किया जायगा।

§ बन्दरके लिये संस्कृतमें शाकामृग-शब्दका प्रयोग इसका उदाहरण है।

आद्य-मंडीका संस्कृतरूप हुआ हनुमन्त । प्रविष्ट शब्दके संस्कृत शब्द बनानेके लिये बहुधा एक 'ह' पहले जोड़ दिया जाता है । इसके कई उदाहरण मिस्टर पार्जिटरने दिये हैं । जैसे तामिल-भाषामें इडुम्बीका अर्थ है 'गरबीली खो ।' यही नाम उस खोका था जो हिडिम्बा कहलायी ।

आजकल हनुमान्को तामिलमें अनुमचदन कहते हैं जिससे प्रकट है कि तामिलमें संस्कृतका 'ह' गिर जाता है । इसीसे यह सिद्ध होता है कि ओहनुमान्का दक्षिणदेशके

प्राचीन निवासी थे और उनका असली नाम आद्य-मंडी था । जिसका अक्षरार्थ लेकर संस्कृतमें वृषाकपि ७ बनाया गया और संस्कृतरूप हनुमन्त हुआ ।

हम यहाँ इतना और कहना चाहते हैं कि प्राचीन यूरोपमें एक असम्भ जड़की जाति बंडल Vandal थी । उनके आक्रमणोंसे रोम-साम्राज्य क्षिप्त भिन्न हो गया था । बंदर और बंडल शब्द बहुत मिलते-जुलते हैं, वरन् बहुधा बन्दरको बचडल ही कहते हैं ।

## वैदेही-विलाप

( पृष्ठ २०१ से आगे )

(१०)

तटिपीता-गात्रा, रुचिर-नयनी अम्बुज-युता,  
जगन्मता, धात्री, रघुकुलबधू, मैथिलि-मुता,  
अयोध्या-सी रम्या, ललित नगरी हाय ! तजके,  
बिहा ब्रह्माभूषा, बर विपिनके साज सजके,

(११)

बनालीमें आई, सुख बस यही क्या निरखने,  
अनाथा दीना-सी, अहह प्रभु ! योही बिलखने,  
भला मां भी कोई, निज प्रियतमा नाथ ! तजते,  
तुम्हें भी क्या ऐसे, अयशकर है साज सजते :

(१२)

मनोबाञ्छा मेरी, विमल नव आशा सुनहरी,  
जलाने आई हैं, बरबस बिषादानल मरी,  
प्रणाली प्यारी ने, प्रिय-प्रणयकी हैं अब कहीं !  
निराशाका कैसा, यह मच रहा कन्दन यहाँ !

(१३)

उपेक्षा ऐसी तो, अबतक न की नाथ ! तुमने,  
सुनी देखी ऐसी, कब निष्ठुरता हाय हमने,  
रंगी रागोंमें जो, अविकच अभी मञ्जु नवला,  
बनी जाती देखो, नव-कमलिनी काल-कवला !

(१४)

मुझे जन्मा तो क्या, अबनि कितनी निष्ठुर बनी .  
कभी होती है क्या, जननि शिशुसं भी अनमनी !  
समा जाती मैं तो, अब अबनिमें हाय ! मुझसे ।  
सदाका पा जाती, बस सहज ही त्राण दुखसे ॥

—रमाराक्षर मिश्र 'जीपाति'

(१४)

सह कैसे कोह, यह विरह दावानल कहां ?  
जली जली बाञ्छा-रहित-रसिका कोमल अहो !  
दयाशाली भी क्या, अहह विधि ! पाषाण बनते !  
भला कैसे कोई, प्रणय-प्रणमे दोष गिनते !

(१५)

कहां क्या पाया है, विपिन-मगमें कंकण भला ?  
लता-गुल्मोंमें क्या, प्रभुवर तुम्हें नृपुत्र मिला !  
कहीं पाजाते जो, सुरति तब क्या हा ! न करते !  
बिनाही दोषोंके, निज प्रियतमा क्या बिसरते !

(१६)

बचानी आशा ही, दुःखिन-निहिता-काम-कर्मिका,  
बिहाती है नते, निरख निज तारा-अवगिका,  
बढ़ाता है चिता, दुःखद बन चिता-मणि महा,  
गिराती अंगार, नितप्रति अशाकावलि यहां !

(१७)

कभी क्या आयेंगी, रुचिर भुलकारी मुधड़ियों !  
मुठायेंगी आँखें, जब न अपनी शुभ्र लड़ियों !  
प्रतीक्षामें हाँ, प्रिय-विरह-जोर अब दूँ,  
तुम्हें चार प्यार, यह नयन-तार तिर रहे !

## ज्ञानदीपक-स्पष्टीकरण

(लेखक-साहित्यरत्न पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी)

(पृष्ठ २७३ से आगे)

९—सात्त्विक भद्रा घेनु सोहाई ।

जो हरि कृपा हृदय बसि आई ॥

अर्थ—सात्त्विकी भद्रा त्रियाई हुई अच्छी गौ है, यदि वह हरि-कृपासे हृदयमें आकर बसे ।

सात्त्विक भद्रा—भद्रा तीन प्रकारकी होती है—(१) तामसी (२) राजसी और (३) सात्त्विकी । यहाँ तामसी एवं राजसी भद्राका उपयोग नहीं है । यहाँ तो सात्त्विकी भद्राकी ही आवश्यकता है, क्योंकि यह पुरुष भद्रामय है । जिसकी जैसी भद्रा है वैसा ही वह है, अतएव सात्त्विकी भद्रावाला पुरुष भी सात्त्विक होगा ।

घेनु सोहाई—सोहाई व्याहं गौ है । भाव यह कि राजसिक-तामसिक भद्रा भोगी है, पर वे सोहाई नहीं हैं, दूध न देंगी, यथा—

तामस धर्म करहि नर. तप मग्न व्रत जप दान ।

देव न बरसहि धरनिपर बेधन जामहि धान ॥

बहु रज स्वरूप सत्त्व कटु तामस । द्वापर दुर्ध शोक भय मानस ॥

हरिकृपा—हरि सत्त्वगुणके अधिष्ठाता हैं, अतएव सात्त्विकी भद्राकी प्राप्तिके लिये हरिकृपाकी आवश्यकता है । हर तमोगुणके अधिष्ठाता हैं, सुषुप्तिके बिनु हैं, उनकी कृपासे हरिकृपा होती है, सुषुप्तिकी कृपासे जागृति होती है और जागृति ही तुरीयका द्वार है । जब तत्काल कृपा करके तमको दबावेगे, तब सत्त्वका उदय होगा ।

जो हृदय बसि आई - अर्थात् जो हरिकृपासे हृदयमें आकर बसे, क्योंकि 'जीव हृदय तम मोह विलेपी, हृदयमें अन्धकार भरा हुआ है । बबुहंवाली गौ तमोमय

अँधेरी जगहमें जाना वहीं चाहेगी । (इस चौपाईमें भद्रा' सम्पत्तिका वर्णन किया है ।)

१०—जप तप व्रत जम नियम अपारा ।

जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा ॥

अर्थ—जप, तप, व्रत, यम, नियम और वेदविहित धर्माचार, ये सब अपारा हैं । जप, तप, व्रत, शुभ धर्माचार ये सब उपरामताके अङ्ग हैं, यम-नियम दोनों समाधानके अङ्ग हैं ।

जप तप व्रत—यहाँ जपसे बाचा, तपसे मनसा और व्रतसे कर्मणा धर्माचरण बतलाया है, नहीं तो नियममें तीनोंका समावेश हो जानेसे पुनरुक्ति दोष आ जायगा, और गौस्वामीजीने यही अर्थ लिया भी है ।

जप, यथा—

तुम पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहु अनङ्ग अराती ॥

तप, यथा—विमरी देव तपाई मन लागा । (इससे नितिलाका वर्णन किया)

व्रत, यथा—हरि तोषण व्रत द्विज सेवकाई ।

यम पाँच हैं—ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहात्

(१) ब्रह्मचर्य—स्मरणादि अष्टविध मैथुनके अभावको कहते हैं । यथा—

ब्रह्मचर्य व्रतरत मति धीरा । तुमहि कि करइ मनोमव पीरा ॥

(२) अहिंसा—सदा सर्वदा किसी भी प्राणीसे क्रोध न रखनेको कहते हैं, यह सब यम नियमोंकी जड़ है, यथा—

'परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा'

'धर्म कि दया सरिस हरियाना ॥'

१ यह षट् सम्पत्तियोंमेंसे पाँचवी है ।

● शीतोष्ण सुख-दुःखादि सहनेको नितिक्षा कहते हैं, यह षट् सम्पत्तियोंमेंसे चौथी है ।

† स्मरण कीर्तन केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । सकल्योऽध्यवसायश्च क्रियानिर्गृतिरेव च ॥

एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं सुमुखिभिः ॥

स्त्रीके रूप, लावण्य हावभाव आदिका स्मरण करना, दूसरेके प्रति कहना, स्त्रीके साथ क्रीडा करना, स्त्रीका दर्शन करना, एकान्तमें सम्भाषण करना, स्त्रीके सङ्गके लिये दृढ़ निश्चय करना, उसकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना तथा अभीष्ट निश्चयकी पूर्ति करना, इन आठ प्रकारके आचरणोंसे बचनेको ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

इसीकी सिद्धि के लिये शेष यम-नियमोंका उपयोग है। अहिंसाकी प्रतिष्ठा होनेसे उसके सन्निकट प्राणिमात्र बर त्याग देते हैं, यथा—

बरहि एक सँग गज धंचानन। बर विगत बिचरहि सब कानन ॥

(३) सत्य-इन्द्रिय और मन के द्वारा जैसा निश्चय किया गया, वैसी ही वाणी और वैसे ही मन के होनेको सत्य कहते हैं। वह वाणी वञ्चिता, ७ आन्ता,† और प्रति-पत्तिवन्वा ‡ न होनी चाहिये। प्राणियोंके उपकार के लिये होनी चाहिये, उपप्रात के लिये नहीं। यथा—‘कहहि सत्य शिव बात विचारी।’ इससे क्रियाके फलको आश्रय मिलता है, यथा—‘सत्य मूल सब सुकृत मुहाये।’

४-अस्तेय-शास्त्र-विधिके प्रतिकूल दूसरेके इन्धको लेना स्तेय कहलाता है, और उस स्तेयके निषेधको अस्तेय कहते हैं। स्पृहा न रखना भी अस्तेय कहलाता है। यथा—‘धन पराव निषते विष भारी।’ इससे सब रत्न उपस्थित होते हैं, यथा—‘ढारहि रत्न तयहि नर लहहीं।’

५-अपरिग्रह-विषयोंके अर्जन, रक्षण, चय और संगसे हिसाबि दोष होते हैं, अतएव उनके अस्वीकारको अपरिग्रह कहते हैं, यथा—

बहापि अर्थ अनर्थ मूल तम कूप परब एहि लागे।

तदपि न तजत मूढ़ भमता बस जागतहू नहि जागे ॥

(विनय०)

इससे जन्मकर्मताका बोध होता है, यथा—‘निज निज मुखन कही निज होनी।’

नियम भी पाँच हैं—‘शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय-श्रमप्रणिधानानि नियमाः।’

१-शौच-देह और मनके मलको दूर करना शौच है।

यथा—‘सकल शौच करि जाइ अन्धाय।’ शौचकी स्थिरतासे बुद्धिकी शुद्धि, उससे मनकी प्रसन्नता, उससे एकाग्रता,

उससे इन्द्रियजय, और उससे आत्म-दर्शनकी योग्यता होती है। अपने शरीरसे धृष्टा और दूसरेके संसर्गसे धृष्टा होती है। यथा—‘रहहि न अंतहु अधम सरोरु।’

२-सन्तोष-प्राप्त साधनसे अधिक पैदा करनेकी अनिच्छाको सन्तोष कहते हैं, यथा—‘आठवें यथा काम सन्तोष।’ इसके द्वारा सबसे बढ़कर सुखकी प्राप्ति होती है, यथा—‘मन सन्तोष सुनत कपि बानी।’

३-तप-जाड़ा-गमी, भूख-प्यास आदि इन्द्रके सहनेको कहते हैं। यथा—

कलु दिन भोजन बरि बतासा। किये कठिन कलु दिन उपवासा ॥

इससे देह-इन्द्रियकी सिद्धि और अष्टादिका चय होता है, यथा—

बरष सहस दस त्यागठ सांज। ठाढ़े रह एकपग दोज ॥

मगंहु बर बहु मौति लोभाये। परम धीर नहि चलाहि चलाये ॥

४ स्वाध्याय मोक्षशास्त्रका पढ़ना चयवा प्रवचका जय करना। इससे देवता-ऋषियोंके दर्शन होते हैं। यथा—

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भक्त-सिरोमनि भे प्रह्लादू ॥

५-ईश्वरप्रणिधान-सब कर्मोंका ईश्वरार्पण कर देना, यथा—‘प्रभुहि समर्पि कर्म सब तर्ही।’ इससे समाधिकी सिद्धि होती है। यथा—‘सहज विमल मन लागि समाधी।’

अपारा-कहनेका भाव यह है कि इन दशों यम-नियमोंमेंसे एक-एक असाध्य है। इनका पार नहीं पाया जा सकता। वह रोगी जीव क्या पार पावेगा ?

जो धृतिकह-अर्थात् जिसके लिये वेदमें विधि है। वेदकी आज्ञा ही धर्म है। वेदकी आज्ञा दो प्रकारकी होती है (१) विधि और (२) निषेध। जिनमें निषेध सबैथा त्पाज्य है, इसलिये ‘शुभ धर्म अचारा’ कहा।

शुभ धर्म अचारा-इसमें संपूर्ण कर्मकाण्ड आ गया। यज्ञ-दानादि शेष धर्म सब इसीके अन्तर्गत हैं। यथा—

\*-वचनः पूर्ण, जैसे अपने पुत्र अश्वत्थामाका मरण सुनकर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरसे पूछा—‘हे आयुधमन्!’ हे सत्यवादी! सबसुख अश्वत्थामा मारा गया?’ इसके उत्तरमें, युधिष्ठिरका अश्वत्थामा नामक हाथीको अभिलक्ष्यकर, ‘हां, सच अश्वत्थामा मारा गया’ ऐसा कथन वचनः पूर्ण है, यहाँ बाणी वञ्चिता कही जाती है। वक्तका अभिप्राय अन्य हो और श्रोता अन्य समझ जाय। जैसे यहाँपर युधिष्ठिरने हाथीको लक्ष्यकर कहा, और द्रोणाचार्यने अपना पुत्र समझ लिया। पर इसको कहनेमें युधिष्ठिरने छलसे काम किया, इसलिये यह वाक्य सत्य नहीं है।

† आन्तिप्रयुक्त। वक्ताकी स्वयं भ्रम हो और दूसरेको समझाना चाहे।

‡ अप्रसिद्ध पदोंके रहनेसे यथार्थ बोध करनेमें अक्षम। जैसे आर्य लोगोंके प्रति ग्लेच्छभाषा बोध करानेमें असमर्थ हैं।

अहं लमि कल्लो पुरान भुति एक एक सब बाग ।

बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग ॥

इस चौपाईसे उपरम ॥ कहा ।

११—तेइ तृण हरित चरइ जब गाई ।

भावबच्छ शिशु पाइ पेन्हार्ह ॥

अर्थ—उस हरे तृणको जब गाय चरे और भाव-रूपी बछड़ा पाकर उसके थनमें दूध आ जाय ।

तेइ तृण हरित—वे ही हरे तृण अर्थात् जप, तप, व्रत, वस, नियम और शुभ धर्माचार वे झुहों प्रकारके सरस तृण उस अद्वारूपिणी गौके लिये चारारूप हैं । बौद्धिक गौका चारा तृण, श्रौतधि और वनस्पति-भेदसे तीन प्रकारका होता है, और उनके भी बीजरूह तथा कायडरूह-भेदसे दो प्रकार होते हैं । कुल छः प्रकार हुए । इसी भाँति अद्वारूपिणी गौके चाराके भी जप, तपादि भेदसे छः प्रकार कहे हैं ।

हरा तृण कहनेका भाव यह कि तृण सूखा न हो, वरन् सरस हो; नहीं तो गाँ चावसे न खायगी, फलतः यथार्थ तृप्ति न होगी, दूध भी कम होगा, जिससे बछड़ेकी तृप्ति भी कठिन हो पड़ेगी, फिर और कामोंके लिये दूधका मिलना तो दूरकी बात है । अतः जप-तपादि आनन्दरहित न हों, यथा—

अस्थिमात्र है रह्यो सरीरा । तदपि मनाक मनहि नहि पीग ॥

चरै जब—भाव यह कि जैसे गौ गोठ छोड़कर बाहर जाय और गोचरभूमिमें चरे, इसी भाँति अद्वार भी हृदयसे बाहर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरूपी गोचरमें, जिस रुचिसे भूखी गाय हरी घास चरती है, उसी रुचिसे शुभ धर्माचरण करे और तृप्त हो, यथा—

नित नवराम प्रेमपन पीना । बढ़इ धर्म दल मन न मलीना ॥

गाई—गाय कहा, धेनु नहीं कहा, क्योंकि बछा चर जोर आयी है । आकेली घास चर रही है, पर चित्त बछेकी ओर लगा है, यथा—

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गई ।

यह गाय जब अघाकर तृण चरे, तभी इतना दूध दे सकेगी कि जिसमें बछेका भी काम चले और अपने

काम भी जावे, सरस रखना चाहिये कि चरा हुआ चारा गौके पेटमें है । वह सामर्थ्य गौमें ही है कि उस चारेका सात्त्विक परिणाम दूधके रूपमें जगत्के कल्याणके लिये देवे, राजसिक परिणाम अपने शरीरके पोषणके लिये अलग करवे, और तामसिक परिणाम गोबर आदि पृथक् दे । किसी भी शिल्पीकी सामर्थ्य नहीं है कि इस भाँति सात्त्विक, राजस और तामस परिणाम किसी उपायसे पृथक् कर सके । इसी भाँति अद्वारसे आचरित शुभधर्म अद्वारके उदरमें जाकर परिणामको प्राप्त होता है, और उसके सात्त्विक परिणाम—परम धर्म—से जगत्का हित होता है, नहीं तो जिस भाँति तुषादि मनुष्यके ग्रहण योग्य नहीं रहते, उसी भाँति अद्वारहीन शुभ धर्म भी मनुष्यके कामके नहीं होते, यथा—अद्वार विना धर्म नहि होई । विनु महि गन्ध न पावे कोई ॥

गौने जितने प्रकारका तृण खाया है, उन सबके सात्त्विक परिणामका स्वारस्य दूध है, इसी प्रकार अद्वारसे जो धर्म-नियमादि आचरित हुए हैं उनके सात्त्विक परिणामका स्वारस्य परम धर्ममें है ।

भावबच्छ शिशु—अद्वारूपिणी धेनुका सात्त्विक भाव अबोध बछा है, वह कुल-कपट नहीं जानता, अतएव बहुत प्यारा है । चरनेके समय भी उसीकी ओर ध्यान लगा रहता है । इसी भाँति अद्वारसे धर्माचरण हो और वह भाव इत न होने पावे, यथा—

किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।

संग नस किय शुभ, सुनाये सकल लोक निहोरि ॥

करौं जो कटु घरौं संधि पथि मुकुत सिला बटोरि ।

पैठि उर बरबस कृपानिधि दम्भ लेत अँजोरि ॥

पाइ पन्हार्ह—जब गौ हरी हरी घास चरके तृप्त होकर सम्पत्ताके समय घर जाँटती है, तो बालक-नन्धको पाकर डूबीभूत हो जाती है । उसके यनोंमें दूध आ जाता है । इसी भाँति अद्वार धर्माचरण करके कृतकृत्य होकर भाव-पुष्टिके लिये अन्तर्मुख होती है । उस समय वह परम धर्म प्राप्त करने समर्थ होती है, यथा—

दिन अन्त पुर कल सवत थन हुंकार करि वावत मई ।

( क्रमशः )

● उपरम स्वधर्मानुष्ठानको कहते हैं, वह षट् सम्पत्तिधर्मोंसे तीसरा है ।

## महर्षि वशिष्ठकी महत्ता

( लेखक—श्रीकालीप्रसन्नजी चक्रवर्ती वी० ए० )

रामत्वं रामचन्द्रो दशरथतनयः कौशिको ब्राह्मणत्वम्,  
संख्यातीतास्तथान्ये मुनि समधिगता मत्प्रसादान्महत्त्वम् ।  
जेतारं षड्रिपूणां तरणिकुलगुरुं ज्ञानविज्ञाननिष्ठम्,  
भूदेवाददर्शमेवे विधितनुजनुषं तं यतीन्द्रं वशिष्ठम् ॥



रामचन्द्रके पवित्र चरित्र वर्णन करते हुए देवर्षि नारदने महर्षि वाल्मीकिसे कहा था—‘इस समय समस्त भूमण्डलमें श्रीरामचन्द्र ही सब शाकोंके तत्त्वको जाननेवाले आदर्श राजा हैं। धनुर्वेदके, विषय अस्त्र-शाकोंके पारदर्शी पविष्ठ होते हुए भी व्यासागार हैं। उनके अन्तःकरणमें कदापि अनुचित हिंसाभाव पैदा नहीं होता। वे बिनयी और नितान्त नम्र हैं, परन्तु दोनताको अपने पास भी फटकने नहीं देते। अजस्विता, तेजस्विता, सहिष्णुता, संयमशीलता, अहङ्कारशून्यता और राजनीति-मत्ता आदि अनन्त गुणोंके आजकल वे ही एकमात्र निवास-स्थान हो रहे हैं। धर्मविमुख अत्याचार-प्रचारक, दुष्ट दुर्विनीत दुर्दान्त वैष्यदलका दमन करना तो उन्होंने अपना ज्येष्ठ ही बना लिया है। अपने शत्रुघोंको तो वे कराल कालके विकराल गालमें भेज देते हैं, किन्तु शरणागतोंको देखकर उनके हृदयमें जमा और करुणाका समुद्र उमड़ पड़ता है। प्रजापालन उनके अवतारका एकमात्र उद्देश्य हो रहा है। उनकी सत्यपरायणता ऐसी बढ़ी-बढ़ी हुई है कि ‘रामो द्विर्नामिमापते’ इसप्रकारकी जोकोकि विख्यात हो गयी है। श्रीरामचन्द्रजी सत्यवादी होते हुए भी प्रियवादी तथा प्रियदर्शन हैं। एकाचार मनुष्यका आकार इतने संख्यातीत अगणित गुणोंका आगार हो, वह कम आश्चर्यकी बात नहीं है।’

इस समय भारतमें और अन्धान्ध पाश्चात्य देशोंमें यह बड़ा भारी आन्दोलन उपस्थित हुआ है कि जब प्रत्येक देशकी उन्नति उसके निवासियोंकी शिक्षापर ही निर्भर है तो किसप्रकारकी शिक्षाका प्रचार होना चाहिये, जिससे मनुष्य सुशिक्षित हों और अपने देशकी उन्नति कर सकें। सुशिक्षा प्रदान करनेके लिये आदर्श शिक्षककी आवश्यकता

होती है। इस विचारसे इन दिनों सर्वत्र ‘गुरु दूनिक्, विद्यालयों’ की स्थापना की जा रही है।

ऐसी परिस्थितिमें आदर्श शिक्षाप्राप्त अध्यापक वशिष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके गुरु कौन थे, और उनको कैसी शिक्षा दी गयी थी, इन बातोंपर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक और सामयिक प्रतीत हो रहा है। वद्यपि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी भगवान् विष्णुके ही अवतार थे, उनके लिये वास्तवमें किसी भी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं थी, तथापि मानव-शरीर कैसा और कितना पूर्ण हो सकता है इस बातको दिखानेके लिये ही परमात्मा नरदेह धारण करते हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था कि ‘हे अर्जुन! सब मनुष्य मेरे ही पथके पथिक हैं। यदि मैं बर्णाश्रमोचित कर्म न करूँ तो सारा मानव-समाज कर्तव्यविमुक्त और नष्ट-अष्ट हो जायगा।’ सभी अवतार अपने लीला-शरीरके अनुरूप काम करते हैं। इसीलिये महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र आदर्श मनुष्यके रूपमें चित्रित किया है। देवर्षि नारदने श्रीरामको मनुष्य समझकर ही प्रशंसा की है। श्रीराम भी अपनेको मनुष्य ही समझते थे। इसी विचारसे वशिष्ठजीने उनको आदर्श शिक्षा दी थी।

रघुवंशियोंके कुलगुरु आदर्श ब्राह्मण महर्षि वशिष्ठ अयोध्यामें ही निवास करते थे। एक दिन महाराज दशरथने उनसे प्रार्थना की कि आप मेरे कुलगुरु हैं इसलिये श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—इनकी शिक्षा-दीक्षाका उचित सुप्रबन्ध कीजिये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सूर्य-वंशियोंको आदर्श शिक्षा देना ही महर्षि वशिष्ठके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। महाराज दशरथकी प्रार्थनाको महर्षिने साधन स्वीकार किया। उन्होंने राजकुमारोंको पन्द्रह वर्ष तक सब प्रकारकी आध्यात्मोचित शिक्षा दी। श्रीरामचन्द्र

\* यदि ग्रह न वर्तयं जातु कर्मण्यतन्मित्रतः ।

मम कर्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वथाः ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।

संकरस्य च कर्त्ता स्वामुपहन्त्यामिमाः प्रजाः ॥

† वहनो दुर्लभाश्चैव वे त्वया कीर्तिता गुणाः ।

मुने वक्ष्याम्यहं पुद्गला तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥

पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही शस्त्र और शास्त्रके पूर्ण पारदर्शी हो गये ।

गुरु-गृहकी शिक्षा समाप्त होनेपर जनपद-चारित्र्य (नागरिकता) की शिक्षाके लिये वशिष्ठद्वारा बुने गये अपने विद्वानोंकी देख-रेकमें समानवयस्क कतिपय अन्य राजकुमारोंके सहित श्रीरामचन्द्रजी तीर्थ-यात्राके लिये भेजे गये। प्रायः सातभरमें भारतके सब तीर्थोंमें, हिमालयसे समुद्रतट कुमारिका पर्वन्त और हारकासे गंगा-सागर तक श्रीरामने पर्यटन किया। इस भ्रमणमें उन्होंने काशी, उज्जयिनी आदि विद्यापीठों, बहुविध वास्तव्य व्यापारकेन्द्रों, सैनिकोंके विविध भ्यूहों, अनेक राजाओंकी शासन-पद्धतियों और सर्वभूत-हित-रत अनेक ऋषि-महर्षियोंके प्रशान्त गम्भीर आश्रमोंका सशिष्य निरीक्षण किया। इस समय श्रीरामके कोमल हृदयपर वनौकस विरक्त महर्षियोंके पवित्र चरित्रका अधिक प्रभाव पड़ा। तीर्थटनसे लौटते ही भाराभि-राम श्रीरामके मनमें तत्कालसुलभ वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे दुःखमय संसारकी अनित्यताका अनुभव कर दिन-प्रति-दिन मग्न होने लगे। रामकी यह अवस्था वशिष्ठजीको विदित हुई। अन्य गुरुओंकी तरह गुरु वशिष्ठने समावर्तनके साथ-ही-साथ अपनी शिक्षा समाप्त न की थी। रामके हृदयमें जो उद्देगप्रद अशान्तिकारक असामयिक वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसको दूर करनेके लिये आदर्श अध्यापक महर्षि वशिष्ठने जो समर्पणित उपदेश दिया, वही एक अपूर्व महान् ग्रन्थ योगवाशिष्ठके नामसे विख्यात है। अर्जुनके वैराग्यजनित व्यामोहको हटाकर निष्काम कर्मयोगमें प्रवृत्त करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने आत्मज्ञगवज्ञाताका उपदेश किया था। किन्तु उसके बहुत दिनों पहले ही महात्मा वशिष्ठने श्रीरामको वैसा ही उपदेश किया था। उन्होंने योगवाशिष्ठमें सिद्ध किया है कि यह पृथ्वी-कर्म-भूमि है। यहाँ कर्म करना अत्यावश्यक है। ममतारहित होकर अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे मनुष्य निष्प सुखी जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

शिक्षाका उद्देश्य है जीवनको सुखमय बनाना। यह वाश्वाय पवित्रत भी मानते हैं। किन्तु उनके सुलका

ॐ विद्यागृहाद् विनिष्कम्य रामो राजाबलाचनः ।

वशिष्ठप्रहितैर्विभैः शास्त्रशैथ्य समन्वितः ॥

सिन्धुः कतिपयेरेव राजपुत्र वरैः सह ।

निरगात् स्वगृहात् तस्मात्तार्थयात्रार्थमुद्यतः ॥

( योगवाशिष्ठ, वै० प्र० )

मूल है भोग। इधर वशिष्ठप्रवर्तित शिक्षापद्धतिका मूल है कामना-परित्याग। वही स्थायी सुख देनेवाली है। शास्त्राय जगत्की शिक्षामें इस जगत्के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये जिस देशमें आर्थिक उन्नति अधिक है वही सर्वाधिक समझा जाता है। अमेरिकामें प्रत्येक विद्यार्थीका करोड़पति होना ही एकमात्र सर्वोच्च अभिलाष है। इसीलिये वहाँके गुरु अपने छात्रोंको अर्थकारी विद्या सिखलाकर निश्चिन्त हो जाते हैं। परन्तु वशिष्ठप्रमुख भारतीय गुरु अर्थकारी विद्या प्रारम्भमें सिखलाकर अन्तमें स्थायी सुख देनेवाले ज्ञानका उपदेश करते थे। आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति अर्थात् दुःखका अत्यन्त अभाव ही सच्चा सुख है। इस संसारमें दुःखके कारण सर्वत्र वर्तमान हैं। दुःखका मिश्रकूल न होना असुलभ अवस्था है, किन्तु दुःखके सहन करनेका अभ्यास करनेसे वह सुलभ हो जाता है। चौबीस बघटेमें एक समय आधपेट भोजन न पानेवाले गरीब जमीनपर ही सुखपूर्वक निद्रा खेते हैं। लेकिन कितने ही लोग मक्खन, मिश्री, मलाई, मोदक, माखण्डोंका हृक्कानुसार संहार करके भी शशिकान्त-कोमल दुग्धचमकशय्यातल-पर करबटें बदलते रहते हैं। शास्त्रमें दुःख-सहन-शक्ति ज्ञान और अभ्यासपर ही निर्भर है। श्रीरामचन्द्रजी भी अभ्यासके लिये मल्लार्थका और ज्ञानके लिये योगवाशिष्ठका उपदेश मिला था। उपदेश देनेके बाद वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीको विद्वान् समझकर निश्चिन्त नहीं हो गये, बल्कि इस ज्ञानका कार्यक्षेत्रमें ढाँक-ढीक उपयोग होता है या नहीं, इसका भी निरीक्षण करते रहे।

श्रीरामका विवाह किस कुलमें और कैसी कन्यासे होना चाहिये, इसका परामर्श भी वशिष्ठसे लिया गया था। रावण-वधके अनन्तर जब श्रीराम अयोध्या लौटे, तो उन्होंने उनका राज्याभिषेक भी किया। शासन-सूत्र हाथमें आनेपर भी श्रीरामको महर्षि वशिष्ठजी सदा उपदेश देते रहते थे। मुनि ऋष्यशृङ्गके बारह वर्षमें समाप्त होनेवाले यज्ञमें निमग्नित होकर जब वशिष्ठजी चले गये थे, तो वहाँसे भी उन्होंने अपने प्रिय शिष्य रामको राजनैतिक उपदेश मिला था कि राजाका प्रधान धर्म प्रजारजन है। इससे जो बरा प्राप्त होता है, उसीको तुम अपनी असुल सम्पत्ति

† जामात्यकेन वयं निरुद्धा-

स्वं बाळ पयासि नवं च राज्यम् ।

युक्तः प्रजानामनुरजने स्या-

तस्माद् वशो यद् परमं धनं वः ॥



समझना । जैसा गुरु बैसा ही शिष्य, श्रीरामचन्द्रजीने भी इस सन्देशको पाकर प्रतिज्ञा की कि ॐ 'स्नेह, दया, सुख और तो क्या, प्राणप्रिया जानकीको भी यदि त्यागना पड़े तो मैं सहर्ष त्याग कर सकता हूँ, किन्तु प्रजानुराजनसे कदापि जुँह न मोड़ूँगा ।' इस प्रतिज्ञाको उन्होंने कार्यरूपमें परिणतकर संसारको दिखाया भी दिया । वस्तुतः स्नेह, दया, मित्रता और प्राणप्रिया—इनमें किसी एकके फन्देमें फँसकर ही मनुष्य कर्षण्य-पावनसे विचलित हो जाते हैं । महाराज शास्त्रसिंह—बिनका नाम अन्तमें बुद्ध हुआ—इसी चक्रमें फँस गये थे । श्रीराम और अर्जुनकी तरह इन्हें भी संसारकी असरता ज्ञात हुई थी । पहले दिन रोगी, दूसरे दिन बुद्ध, तीसरे दिन मृत शरीर और चौथे दिन एक संन्यासीको देख महाराज शास्त्रसिंह अपना राज्य-कार्य छोड़कर विरक्त हो गये थे । यदि महर्षि वशिष्ठ अथवा श्रीकृष्णकी तरह शास्त्रसिंहको गुरु मिले होते, तो वे कभी भी एकाग्रमोक्षित एकदेशीय बौद्ध-धर्मका प्रचार संसारमें न करते ।

श्रीरामचन्द्रजीकी शङ्काओंको दूर करनेके तत्त्वदर्शी वशिष्ठ जिनके गुरु वशिष्ठजीने, 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' कैसे है ? ब्रह्म और जगत्में क्या सम्बन्ध है ? किसप्रकार सूक्ष्मसे स्थूलकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं ? इन तथ्योंका उपदेश विशदरूपसे सरल मधुर और प्राञ्जल-भाषामें किया है । आजकल पश्चात्प जगत्के नवनवविभूत विद्वानको देखकर लोग मुग्ध और अस्मकृत हो रहे हैं । परन्तु योगवाशिष्ठको ध्यानपूर्वक पढ़नेवाले इस बातको मखीमाँति जानते हैं कि इन सब विषयोंका पूर्ण ज्ञान भगवान् वशिष्ठको था । वर्तमान युगमें जार्ज केल्विन्का 'आवर्तवाद' (Vorten Theory) एक महान् आविष्कार समझा जाता है । परन्तु उत्पत्ति-प्रकारमें वशिष्ठजीने बताया है कि † जैसे जलाशयका जल आकर्षाकारमें स्फुरित होता है, वैसे ही एकमात्र जागतिक शक्तिसम्पन्न मन ही हरथ जगत् रूपमें प्रकाशित होता है । राइफोर्ड महोदयका 'स्पन्दनवाद' (Electron Theory) भी योगवाशिष्ठमें पाया जाता है । इन 'वादों'

को बतानेके बाद वशिष्ठकी विमल बुद्धि उस सूक्ष्मतम बादमें भी पहुँची है जिसकी कल्पनाका गन्धवेश भी वाश्यात्य अन्तःकरणमें नहीं है । आधुनिक पश्चात्प पण्डित-मण्डली स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेकी चेष्टा कर रही है । इसमें उसे सफलता मिलेगी या नहीं, भगवान् जानें । परन्तु वशिष्ठप्रमुख प्राचीन ऋषिगण योगबलसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म आदि कारणमें पहुँचकर 'ऊच्यो मन्दरदारः' के अनुसार मन्त्रको प्रत्यक्ष करते थे । अतः उनके उपदेशानुसार ब्रह्मसे चिदाकाश और चिदाकाशसे चित्ताकाश तथा भूताकाशकी कल्पना होकर उसमें स्पन्दन होता है और उसीसे इस जगत्की सृष्टि होती है । वशिष्ठजीने कहा भी है कि 'हे राम' जब तक तुम्हें पूर्ण ज्ञान नहीं होता, तब तक मैं आकाशत्रयकी कल्पनाके अनुसार सृष्टिप्रकरण समझाऊँगा । †† कुछ दिन हुए पश्चात्प लोग 'परमाणुवाद' (Atomic Theory) पर्यन्त पहुँचे थे । अब स्पन्दनवाद (Electron Theory) तक पहुँचकर अपनेको कृतार्थ समझते हैं, जिसकी वशिष्ठजीने मरुभूमि की मरीचिकासे तुलना की है ।

सर जगदीशचन्द्र बसु महोदयने बृह्मादि उद्भिदोंमें भी मन है, इस बातका आविष्कार कर वैज्ञानिक जगत्को स्तम्भित कर दिया है । किन्तु जालों बंध पहले वशिष्ठ महाराजने कह दिया है कि आकाशमें, वायुमें, अग्निमें, वृक्षोंमें, पृथ्वी और पर्वतोंमें भी शुद्ध चैतन्य है । ‡ स्थूल जगत्के मिथ्यात्वका परिज्ञान अनादिकाखसे मानव-हृदयमें बद्धमूल है । सर्वविध वस्तुसमन्वित सुरासुरकिन्नराधिष्ठित स्थावर जङ्गमात्मक यह हरथ जगत् महामलयके समथ बिलकुल नष्ट हो जायगा । तब तेज या अन्धकार कुछ भी नहीं रहेगा । केवल बही एक अखण्ड सत्ता रह जायगी जो दर्शन-हरथसे

† यावद् रामाप्रबुद्धस्वमाकाशत्रयकल्पना ।  
तावदेवावबोधार्थं मया त्वमुपदिश्यसे ॥  
आकाशचित्ताकाशाणां चिदाकाशकलंकिताम् ।  
प्रसृतादावद्दहनान् यथामरुमरीचयः ॥  
चिनेति अस्मिन् रूपं चित्ततां समुपागतम् ।  
त्रिजगन्तीन्द्रनालानि रचयत्याकुलामकम् ॥  
‡ शुद्धं हि चैतनं निर्यं नोदेति न च शाम्यति ।  
स्थावरे जङ्गमे व्योम्नि शैलेऽग्नौ पवने स्थितम् ॥  
परमार्थघनं शैलाः परमार्थघनं द्रुमाः ।  
परमार्थघनं पृथ्वी परमार्थघने नमः ॥

ॐ केहं दशां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

† सर्वं हि मन एवेदमित्यं स्फुरति भूतिमतः ।

जलं जलाग्रसरफारेर्विचित्रैश्चक्रकैरिव ॥

( यो०वा० उ० प्र० )

पृथक् प्रादिमत्त्वान्हीन चित्तविरहित अद्वैत विज्ञानस्वरूप है, जिसमें जगत्का परिफुरण होता है। रूपहीन आकाशमें जिस-प्रकार नील पीतादि रूपका भान होता है, उसी प्रकार चिन्मय ब्रह्ममें मिथ्या जगत् दृष्टिगोचर होता है। जैसे समुद्रका जल कहीं तरङ्गरूपमें और कहीं आवर्तरूपमें दिखायी पड़ता है, जैसे एक ही सुवर्ण कटक, अङ्गूर और केपूर प्रभृति नानारूपमें परिणत होकर दिखायी देता है, उसी प्रकार एक ही चिदात्माके अममय अनन्त रूप साधारण जोगोंको दृष्टिगोचर होते हैं। वशिष्ठने रामसे कहा है कि 'हे राम, यही ब्रह्म अज, अनादि, अजर, अमर, शाश्वत और असूत है, सबका कारण है। उसको जाननेसे आत्मज्ञान-ज्ञानमकर जीवन्मुक्त बन सकोगे। बहिर्जगत्के व्यावहारिक लोकाचारको वासना-विहीन होकर करते रहो। सुख और दुःखमें निस्पृह और राग-द्वेषरूप्य होकर अपने कर्तव्योंका पालन करनेसे ही तुम जीवन्मुक्त हो सकते हो।'

निर्विकार पाठक यह न समझें कि वशिष्ठजी केवल सत्यव्रत वशिष्ठ परोपदेशकुशल ही थे। उन्होंने अपने जीवनमें उसे करके भी दिखा दिया है। विश्वामित्रजी महर्षि कैसे हुए—इसका सविस्तर वर्णन वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारतमें पाया जाता है। इन पुस्तकोंको पढ़नेवालोंको यह भी ज्ञात होगा कि उनमें वशिष्ठजीका चरित्र कैसा उन्नत, उदार, रागद्वेषरहित, जमा-परायण, सत्यसम्पन्न, त्यागयुक्त और ब्रह्मबल-परिपूर्ण है। जब कान्यकुब्जके राजा विश्वामित्र ऋगया-व्यापारसे तृषार्त्त होकर सेनासहित महर्षि वशिष्ठके आश्रममें आये, तब महर्षिने उनका राजोचित स्वागत किया और ससैन्य उनको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये सविनय आमन्त्रण किया। पहले तो वशिष्ठाश्रमकी प्राकृतिक सम्पत्ति देखकर ही विश्वामित्र चकित और अस्मकृत हो गये। सर्वसुखसुलभ सुन्दर-सुन्दर फल-पुष्पोंसे सुरोमित वृक्षोंके आशान्त शीतल तलमें फलभूषणकाहारी महर्षि, देवर्षि, सिद्ध, चारण प्रभृति तपस्या-परायण तपस्विधियोंकी मण्डली देखकर विश्वामित्रजी मन्त्रमुग्ध हो गये। जब उन्होंने यह देखा कि एक ही शबला नाम्नी कामधेनुसे वशिष्ठजीने अगणित सेनासहित उनका सर्वविध आतिथ्यसत्कार सम्पन्न कर दिया; तब तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। विश्वामित्रजी इस अभूत-पूर्व आतिथ्यसे सम्पुष्ट तो खूब हुए; परन्तु शबलाको ले लेनेका प्रयत्न जो भी उनके मनमें उत्पन्न हुआ और उन्होंने

उस कामधेनुको दे देनेका प्रस्ताव किया। वशिष्ठजीने पहले बहुत समझाया कि इस गायकी सेवा राजा-महाराजाओंसे नहीं हो सकती। यह आपके यहाँ जा भी नहीं सकती। यह इस आश्रमका जीवन है। इसीके द्वारा सब ऋषि महर्षियोंके सर्वविध देवर्षि-पितृकार्य सम्पन्न होते हैं। आप कृपाकर इसे न ले जाइये। परन्तु विश्वामित्र कब मानने लगे। उन्होंने वशिष्ठजीको तरह तरहके जोश दिखाये। अन्तमें उस कामधेनुके बदले राज्य दे देनेको भी तैयार हो गये। किन्तु वशिष्ठजी तो आश्चर्य ब्राह्मण थे। उनके निकट जोश कैसा? जब विश्वामित्र सब उपार्थोंसे थक गये तब उन्होंने कहा कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावतके अनुसार संसारकी सब वस्तुएँ राजाकी ही हैं, यह कहकर शबलाको बलपूर्वक ले चलनेको उन्होंने अपने सैनिकोंको हुक्म दिया। आज्ञा पाते ही वे उसको एकद्वार ले चलने लगे। शबलामें यह शक्ति थी कि विश्वामित्रकी सारी सेनाका कचूमर मिनटोंमें ही निकाल दे। किन्तु आज विश्वामित्र महर्षि वशिष्ठके प्रतिथि हैं। इसलिये वह विना वशिष्ठकी आज्ञाके कोई काम करना उचित नहीं समझती थी। इतना होनेपर भी वशिष्ठजीके चेहरेपर केशमात्र भी क्रोधका भाव नहीं था और असाधारण शान्ति विराजमान थी। किन्तु शबलाने जब अत्याचारियोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर सजल नेत्रसे वशिष्ठजीकी ओर देखा और उनसे आत्मरक्षाके लिये आज्ञा माँगी, तो उन्होंने आज्ञा दे दी। फिर क्या था, कपिजा तो सब चीजोंको पैदा करनेवाली कामधेनु थी। वशिष्ठजीकी आज्ञा पाते ही अपने रोमकूपोंसे कई सहस्र सैनिकोंको प्रकटकर उसने विश्वामित्र और उनकी सारी सेनाका चेहरा बिगाड़ दिया। यह देखकर विश्वामित्र अत्यन्त खजित हुए और वशिष्ठजीके ऊपर क्रुद्ध होकर शिवजीकी तपस्या करनेके लिये चले गये। अपनी घोर तपस्यासे आशुतोषको पुष्टकर और उनसे सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्राप्तकर बदला लेनेकी नीयतसे फिर वशिष्ठके आश्रमपर पहुँचे और किसी प्रकारकी सूचना न देकर ही उधम मचाने लगे। विश्वामित्रके तीव्र अस्त्र-शस्त्रोंके प्रबल आघातसे आश्रमके जीव विकल हो गये और ऋषि तथा ऋषिकुमार त्राहि-त्राहि करने लगे। अब वशिष्ठसे न रहा गया। वे अपना ब्रह्मदण्ड लेकर विश्वामित्रके सामने खड़े हो गये। उन ब्रह्मदण्डसे ठोकर खाकर विश्वामित्रके सब अस्त्र बेकाम हो गये। ब्रह्मास्त्र-पर्यन्त भी विकल हो गया। यह देखकर विश्वामित्रने समझा कि

महाबलके सामने कोई बल चल नहीं सकता। अतः वे ब्राह्मण बगनेकी इच्छासे दक्षिणावर्तकी ओर तपस्या करने चले गये। तपस्वी होनेपर भी बशिष्ठके ऊपर वे सदा आगबबूला रहा करते थे और बशिष्ठकी अपवा उनके कुलकी हानिके लिये सर्वदा चेष्टा करते रहते थे। एक दिन बशिष्ठजीके ज्येष्ठपुत्र शक्ति के द्वारा अभिशप्त राजा कल्माषपादको देखकर विचामित्रने सोचा कि इसीसे बशिष्ठ-कुलका नाश हो सकता है। ऐसा सोचकर राजसरूपधारी कल्माषपादके द्वारा उन्होंने बशिष्ठजीके एक सौ पुत्रोंको मरवा डाला। इससे बशिष्ठजी दुःखित अवसर हुए, किन्तु विचामित्रके प्रति किञ्चिन्मात्र भी क्रोध नहीं किया। जब विचामित्रने अपनी उम्र तपस्यासे ब्रह्मादि देवताओंको अग्रणीत कर दिया तब देवताओंने विरचामित्रको राजर्षि, महर्षि और अन्तमें ब्रह्मर्षि होनेका वर दिया। किन्तु विरचामित्र ब्रह्मादि देवताओंके ब्रह्मर्षि कहनेसे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने कहा कि जबतक बशिष्ठ ब्रह्मर्षि नहीं कहेंगे तबतक मैं अपनी तपस्या पूर्ण न समझूँगा। जब बशिष्ठजीने देखा कि विरचामित्रमें अब क्रोध वा द्वेषकी मात्रा थोड़ी भी न रही तब उन्होंने आकर विरचामित्रको इवसे जगा किया और उनको ब्रह्मर्षिका पद प्रदान किया। निर्वैर विरचामित्रने भी महात्मा बशिष्ठजीको अतिपूर्वक प्रणाम किया।

व्यवहारकुशल  
ऋत्विक् बशिष्ठ

महर्षि-पदसे प्रायः लोग संन्यासी समझते हैं किन्तु यह भूल है। बशिष्ठजी गृहस्थ थे। कर्दम ऋषिकी कन्या, स्वायम्भुव मुनिकी दौहित्री अरुणवतीसे उनका विवाह हुआ था। उनके सौ पुत्र थे। सब ही पितृपुत्र्य विद्वान् और तपस्वी थे। बशिष्ठके ज्येष्ठपुत्र शक्ति के पुत्र पराशरजी थे जिनकी संहिता प्रसिद्ध है। पराशरजीके पुत्र महामहिमशाली वेदव्यासको कौन नहीं जानता? इतने विद्याल परिवार-युक्त गृहस्थ होनेपर भी बशिष्ठजी भोग-विद्याससे बिल्कुल विरक्त थे। यदि वे चाहते तो दशरथ प्रभृति सूर्यवंशी राजाओंसे अतुल सम्पत्तिका संग्रह कर सकते थे। परन्तु उनको धनकी क्या जरूरत? वे कर्मबीर इतने थे कि महाराज दशरथने अपने अश्वमेध-यज्ञका सम्पूर्ण प्रबन्ध उन्हींके करकमलोंमें अर्पित कर दिया था। सरयू-नदीके उत्तरीय तटपर बङ्ग-भूमि बनानेके लिये कारीगर और मजदूरोंका प्रबन्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको निमन्त्रण देना, उनके मर््यादारुरूप विवास तथा भोजनका प्रबन्ध, ऋषि-महर्षियोंका

आह्वान और उनके कर्त्तव्यका विभाग तथा कर्त्तव्य एवं मर््यादाके अनुसार उनको ससत्कार दक्षिणा देना—इत्यादि कार्य बशिष्ठजीने उत्तम रीतिसे सम्पन्न किये। किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं रही। आगन्तुक ऋत्विक्से लेकर साधारण मजदूर तक सब लोग अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गये। अश्वमेध सविधि सम्पन्न हुआ। बशिष्ठजी स्वयं भी इतने बड़े ऋत्विक् थे कि इन्होंने अपने यज्ञका होता बशिष्ठजीको ही बनाया था। सूर्यवंशी राजाओंके कुलपुरोहित तो वह थे ही; परन्तु उनकी कार्यकुशलता, निष्पक्षता, विद्वत्ता और तन मनसे वज्रमानका सर्वविध कल्याण साधन करना—इत्यादि गुणवर्तिसे मुग्ध होकर चन्द्रवंशीय महाराज संवरथने भी अपने कुलका पुरोहित बशिष्ठजीको ही बनाया था।

आजकलके अध्यापक यदि महर्षि बशिष्ठजीके आदर्शको अपने सामने रखें तो बड़ा उपकार होगा। शिक्षक यदि सदाचारी और सुशील हों तो शिष्य अवश्यमेव सदाचारी और सुशील होंगे। भारतीय शिक्षकसमुदाय महर्षि बशिष्ठके समान विद्वान्, तपस्वी, निर्दोषी, निरहङ्कारी, सत्यवादी, त्यागी, समाशाली और कर्त्तव्यपरायण बन जाय तो कभी भी किसीको भी ऐसा कहनेका अवसर न मिलेगा कि आजकलके विद्यार्थी उच्छृङ्खल होते हैं और अपने अध्यापकोंका कहना नहीं मानते।

## भक्त-भावना

विषय विदास आस छोड़ि विष-रास जैसै  
पक बिसबास करि प्रेम-पथ पावैंगे ।  
और परपंचकी कथानको गिराय दूर  
मधुर गिरासो गुन गोविंदके गावैंगे ॥  
काम-रसहूँ पं द्विये आनरस आनि पुरो  
राम-रस पीवनमें जीवन बितावैंगे ।  
होवैंगे अनाथके सनाथ हम बाही दिन  
और नाथ छोड़ि रघुनाथके कहवैंगे ?  
जन्मतकाल माधुर ।

## श्रीरामचरितमानस-विनोद

( लेखक—श्रीमन्त वादवशंकरजी आमदार, रिटायर्ड सबजन )



नकी जो अनेकानेक वृत्तियाँ हैं उनमें विनोद भी एक वृत्ति है। जीवन-संश्रामके क्षिप्ते, अवान्तर वृत्तियाँ जितनी आवश्यक होती हैं, उतनी ही आवश्यकता इस विनोदी-वृत्तिकी भी है। विनोदी-वृत्तिके अभावमें अनुप्य-जीवन क्लिष्ट तथा भारभूत-सा मालूम होने लगता है। इस वृत्तिमें दुःख अजानेकी एक अनुभूति है। इस विचारसे देखनेवाला पुरुष यही कहेगा, कि इस वृत्तिका निर्माण कर परमेश्वरने मानव-जाति-पर बड़ा भारी उपकार किया है।

यहाँ विनोदी-वृत्तिका शास्त्रीय दृष्टिसे विशद विचार करनेका अवसर नहीं। अतः यहाँ विनोदके गुणानुसार तीन स्थूल भेद विलम्बकर ही विषयका विवेचन किया जाता है। गुणानुसार भेद करनेका प्रधान कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यमें सरवादि तीन गुण अवश्यमेव रहते हैं।

### विनोदके तीन भेद

१. सार्विक-विनोद—( प्रेम-पर्यवसायी विनोद ) जिस विनोदकी अन्तिम परिपक्वता स्थायी प्रेम और आनन्दमें हो।

२. राजस-विनोद—(मध्यम विनोद) जिसका परिणाम चक्षिक सुख अर्थात् तात्कालिक मनोरञ्जन हो।

३. तामस-विनोद—(औपहासिक विनोद) जिसका परिणाम दिवंगती, मजाक, मुण्डता इत्यादिके द्वारा स्वाभाविक ही अनर्थमेव होता है।

अब उपर्युक्त भेदोंको उदाहरणोंद्वारा समझिये!—

(१) सार्विक ( प्रेम-पर्यवसायी ) विनोदका उदाहरण स्वयं श्रीगोस्वामी गुलसीदासजीका ही है। गुसाईंजीकी धर्मपत्नीने उनसे प्रेमभरा विनोद किया, परिणाम यह हुआ कि वे महान् राम-प्रेमी बन गये और हम दीन संसारियोंको रामचरितमानसकी उपलब्धि करा दी। जिन्हें इसके सत्यकी ध्वनि देखनी हो वे इन औपहासिकोंमें देखें—

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥

गंदे कर्मबस परिहरि नाहू।.....॥

(२) राजस ( मध्यम ) विनोदके उदाहरण उपलब्ध करनेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसका समीको अनुभव है। इस मनोरञ्जक विनोदके विना किसी भी सांसारिक मनुष्यकी दिनचर्या प्रायः सुखकर नहीं होती।

(३) तामस ( औपहासिक ) विनोदके प्रमाण उदाहरण रामायण और महाभारतमें ही हैं।

कैकेयी देवीके विषयमें स्वयं गुसाईंजी ही कहते हैं—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।

तिय विसेव पुनि बेरि कहि भरतु मातु मुसकानि॥

भरत-माता 'काने.....चेरी' आदि कहकर यदि सुसकुराती नहीं तो उसका मन्थराके प्रति कदा रुख नहीं बदलता जिससे मन्थराको कुछ भी बोलनेका साहस न होता। कैकेयीका यह हँसना ही—यह विनोद ही राम वनवासका कारण हुआ यह निश्चित है। इसीप्रकार महाभारतका कारण भी हँसी ही है। कहावत है कि 'भीमके कारण भारत' हुआ। इस कथनकी सत्यता निम्नलिखित वचनमें स्पष्ट है—

राजा दुर्योधन जब धर्मराजकी मयनिर्मित-सभामें पहुँचे, तो उन्हें मायावी मयासुरकी मायामयी रचनाके कारण ऐसा मोह हो गया कि उन्होंने स्थलको तो जल समझकर अपने वस्त्र समेट लिये और जलको स्थल समझकर चलते समय उसमें गिर पड़े। दुर्योधनकी यह दशा देखकर भीम हँसे, तदनन्तर समस्त स्त्रियाँ और अन्योन्य राजागण भी जोरसे हँसने लगे। धर्मराजने यथासाध्य हँसीका निषेध किया, परन्तु श्रीकृष्ण भगवान्के प्रोत्साहनके कारण हँसी रुक न सकी। दुर्योधन जज्जाले आँखें नीची कर, क्रोधसे तमतमाते हुए सिर कुकाकर उसी समय सभासे एकदम निकल पड़े और सीधे हस्तिनापुर जा पहुँचे। उनके इस प्रकार चले जानेसे सब सज्जन हाहाकार करते हुए कहने लगे कि यह एक बड़े अनर्थका कारण हो गया है। धर्मराज श्रीदुर्बिहिरजी भी उदास हो गये। परन्तु केवल दृष्टिमात्रसे ही संसार-चक्रको घुमानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भूमिका भार उतारना चाहते हैं, ऐसा सोचकर वे कुछ भी नहीं बोले।

(भीमद्वागवत १०।७५।३८-४०)

‘यह कहा जा सकता है कि हँसीके द्वारा उत्पन्न होने-पर भी रामायण और महाभारतसे तो संसारकी अर्थसिद्धि ही हो रही है, अन्यर्थ तो नहीं हो रहा है।’ यह सत्य है, हम भी इसमें सम्मत हैं। परन्तु हँसनेवालोंका उद्देश्य हँसीसे रामायण और भारतकी उत्पत्ति करना नहीं था। उनकी हँसीसे प्रत्यक्षमें तो अनर्थापात ही हुआ, उस अनर्थके अग्रवचरूपसे अर्थावह हो जानेमें तो केवल ईश्वरकी अगाध कृपा ही कारण है। उपर्युक्त उपोद्घातसे यही स्पष्ट दिखलाना है कि तीन प्रकारके विनोदोंमेंसे सात्त्विक (प्रेम-पर्यवसायी) विनोद ही सर्वोत्कृष्ट है।

अब मूल विषयपर ही आइये—

‘मानस-विनोद’ शब्दसे दो भाग सूचित होते हैं—

(१) मानसका विनोद और (२) मानसमें विनोद। ‘मानसका विनोद’ कहनेसे तुलसी-रामायणके विनोदी अर्थ ऐसा भाग सूचित होता है, और ‘मानसमें विनोद’ कहनेसे तुलसी-रामायणमें विनोदी भाग ऐसा भाग सूचित होता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन दोनों अर्थोंमें अमीन-आसमानका अन्तर है।

मानसके जो विनोदी-अर्थ किये जाते हैं, वे प्रायः औपहासिक तामस वा मध्यम (राजस) ही होते हैं। दुर्भाग्यवश उन विनोदोंका एक भी प्रेम-पर्यवसायी अर्थ आमतक मैंने नहीं सुना। मैंने जैसे विनोदी-अर्थ सुने हैं, उनमेंसे उदाहरणार्थ एक-दो यहाँ लिखे जाते हैं—

सब मुत मोहिं प्रानकी नाई। राम देत नहि बने गुसाई॥

यह वचन महाराज दशरथजीके श्रीविश्वामित्रजीके प्रति है। इनका अर्थ स्पष्ट है, यहाँ दुबारा अर्थ करनेकी आवश्यकता नहीं। अतः केवल विनोदी-अर्थ ही लिखा जाना है।

विनोद इस प्रकार किया गया था कि ‘राम देत नहि’ ‘बने गुसाई’ दशरथजी राम-वचनवालीको देनेमें स्थाव्र इन्कार कर गये, केवल इतना ही नहीं, किन्तु वे घटताये विश्वामित्रजीको कहने लगे कि ‘बाहवा ! बने गुसाई बगले जाये हो !’

अब पाठक ही विचार करें कि यह विनोद है वा काव्यकी हल्का है अथवा अर्थका अनर्थ है। इस विनोदसे— ‘मंगन लहि न जिनके नाहीं’ ऐसे दानवीर शुकुलकी महत्ता कहाँ रह जाती है ?

अग्रतश्चतुरावेदाः पृष्ठतः सशरं वनु।

इदं ब्राह्मिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥

ऐसे महाप्रतापशाली विश्वामित्रजीकी क्या कदर होती है, तथा कवि और उनके काव्यकी भी कौनसी प्रतिष्ठा रह जाती है ?

× × ×

कोटि कोटि मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आबत नाहीं॥

यह रामजीके प्रति बालिकी अन्तसमयकी उक्ति है। विनोदी, इस चौपाईका पवरफेद इस प्रकार करते हैं—

को टिको। टिमुनि। जतन कराहीं। अन्तराम कहि। आबत नाहीं।

—और उसे मालिक नौकरके संवादके रूपमें इस तरह प्रकट करते हैं—

मालिक—को टिको (कौन बैठा है ?)

नौकर—‘टिमुनि’ (टिमुनि नौकरका नाम है।)

(मालिक—वहाँ पर तेरा काम क्या था ?)

नौकर—‘जतन कराहीं’ (मालपुत्रकी कड़ाईकी रस्मशाली कर रहा है।)

(मालिक—अन्तरामको रस्मशाली करनेके लिये कहाँ गया था, फिर तू वहाँ कैसे ?)

नौकर—‘अन्तराम कहि’ (अन्तरामको हमने भी कहा, पर उसने साफ कह दिया कि) ‘आबत नाहीं’ (हम नहीं आते।)

हम मानते हैं कि उपर्युक्त विनोद निर्दोष है। परन्तु इनकी मायापत्नी करके शब्दोंका तोड़-मरोड़ करनेसे लाभ ही क्या है ?

ऐसे विनोदके अधिक उदाहरण देकर भावुक पाठकोंका और स्वयं अपना समय नष्ट करनेकी हमारी इच्छा नहीं। अब ऐसे कुतूहलपूर्ण परिश्रमका पारितोषिक देनेका कार्य पाठकोंपर छोड़कर हम अपने वक्तव्य विषयपर आते हैं।

मानस-विनोद बानी मानसगत विनोद देनेका हमारा प्राकृत कार्य है। परन्तु मानस-गत सभी विनोदी-प्रसंगोंको यहाँ उद्धृत करना दुष्कर है। हमनेके लिये कुछ ही प्रसंगोंका उद्धरण किया जाता है।

## सात्त्विक विनोद

प्रथम सात्त्विक यानी प्रेमपोषक-विनोदके दो प्रसङ्ग बिलाने जाते हैं—

(१) चित्रकूटपर भरतजीका तीसरा भाषण हो चुकनेके बाद देवता नितान्त अकुला गये। भरतजीकी भक्तिके प्रभावको देख इन्द्रदेवको यह चिन्ता हुई कि कदाचित् रामजी भरतजीको सम्नुष्ट करनेके लिये वनसे घर न लौट जायें। इस चबराइटमें इन्द्रदेवने 'किंकरतन्वयिमुद' हो सारी मन्त्रद्वीपर अपनी माया फैलानेकी कुचेष्टा की। इस मूर्खताको देखकर कवि कहते हैं—

लसि हिय हँसि कह कृपानिधान। सरिस स्वान मधवान जुवान् ॥

अर्थ—इन्द्रकी कुचाइको देख कृपानिधान श्रीरामजीने मनमें सोचा कि कुत्ता, इन्द्र और नौजवान ये तीनों एक ही वृत्तिके हैं और मनमें यह विचार आते ही वे हँस पड़ें। अब इस हँसीके कारणकी जिज्ञासा होती है।

हमारे मतसे श्रीरामजीकी इस हँसीका कारण विनोद है, और उस विनोदका कारण यह पाणिनीय सूत्र 'इवयुवमर्थानामतः कृते' है। सूत्रका अर्थ है तद्विहित प्रक्रिया छोड़कर 'अन्' 'मन्' और 'युवन्' शब्दोंके रूप सब विभक्तियोंमें एकते होते हैं। जैसे—

‘श्या, श्यानी, श्यानः’

‘मधवा, मधवानी, मधवानः’

‘युवा, युवानी, युवानः’

कवि सूचित करते हैं कि इन्द्रकी कंपट-क्रिया देख रामजीको उक्त सूत्र याद आ गया। उनके मनमें विचार उठा कि क्या पाणिनीजीको पहले ही स्वप्न हुआ था कि कुत्ता, इन्द्र और जवान ये तीनों एक ही मायाकी मयिर्बा हैं। इस आशयसे महाराजजीको हँसी आयी, परन्तु देवराजको उदास करना अच्छा नहीं, इस द्वापर्व विचारसे उन्होंने अपनी हँसीको प्रकट नहीं होने दिया। कविके मतसे श्रीरामजीके द्वाका कारण यही प्रतीत होता है कि 'अतद्विहत ( अ + तत् (मन्, ईश्वर) + हित = ईश्वर-विमुक्त )' पुरुष ऐसे ही हुआ करते हैं, परन्तु उन्हें द्वाकाके योग्य मानना ठीक नहीं क्योंकि उनकी प्रकृति ही वैसी होती है। शास्त्र कहता है कि 'पर-स्वभाव कर्माणि न प्रशंसते-गर्हयेत्' इस शास्त्राज्ञाके अनुसार श्रीरामजीके इन्द्रदेवके सारे

बुद्ध हँसीपर छोड़ दिये। 'एतदेवेहि विज्ञानं पराधानामदर्शनम्' इसके अनुसार भी श्रीरामजीका औचित्य उनकी द्वामें ही था।

× × ×

(२) उपर्युक्त प्रसङ्गसे भी बढ़कर सात्त्विक-विनोदके लक्षण केवटके सत्त्वाग्रहमें प्रतीत होते हैं। यह सत्त्वाग्रह सभी रामायणोंमें अंकित है। प्रसङ्ग यों है—

'रामजी गंगाजीसे पार होना चाहते थे, इसके लिये उन्हें नावकी आवश्यकता थी। परन्तु नाव थी केवटके अधिकारमें, अतः उन्हें केवटको मनाना पड़ा। केवटने देखा कि अपना कार्य सफल करनेके लिये यही अत्यन्त सुधवसर है, क्योंकि व्यवहारकी परिपाटी ही ऐसी है। एकको जो दुविधा होती है, वही दूसरेके लिये सुविधा हुआ करती है (One's difficulty is another's opportunity) इसी विचारसे केवट सत्त्वाग्रहके लिये तैयार हो गया।

गुसाईजीने अपनी रामायणमें केवटकी दलीलें अन्य रामायणोंके समान तो दिखलाई ही हैं, परन्तु उतनी-सी दलीलें उनके मन पर्याप्त नहीं जैसी, अतः उन्होंने ये दलीलें केवटके द्वारा विशेष उपस्थित कीं—

( पद-पद्म घोड़ चढ़ाई नाव ) न नाथ उतराई चहाँ।

मोहि राम राउरी आनि दसरथ सपथ सब साँची कहों ॥

बरु तीर मारहि लखनु ( ये जब लगिन पाय पसारिहों।

तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पार उतारिहों ) ॥

सुनि केवटके बचन प्रेम लोपटे अटपटे।

निहँसे करुना-अयन चितै जानकी-रूपन-वन ॥

अब विचारिये, इस प्रपूरकके जोड़नेमें गुसाईजीका क्या हेतु था? यह पहले ही कह दिया जाता है कि प्रपूरकके अत्यन्त गम्भीर भाव-ग्राही होनेके कारण तथा पाठकोंकी प्रकृति-भिन्नताके कारण भावोंकी एकवाक्यताका प्राप्त होना सहज नहीं है। तथापि हमारी रुचिके साथ यदि पाठकोंका सामाज्यत्व हुआ तो एकवाक्यताका होना भी दुष्कर नहीं।

प्रपूरकके कारणोंमें हमें मुख्यरूपसे तीन बातें दिख-जायी देती हैं—(१) कविका मार्मिक पात्र परिचय—यानी पात्रकी शिक्षा, संस्कार, संगति, व्यवसाय इत्यादिका निरीक्षण। (२) कविकी भावग्रहण-शीलता और (३) लोक शिक्षाका कविका उद्देश्य। इन तीनों बातोंपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि 'न नाथ उतराई चहाँ' से 'सपथ सब

सीधी कहें। एक प्रपूरक भाग केवटकी पात्रताके संबंधा अनुकूल है। 'बहु तीर मारहि जखनु' यह भाग जखमखजी-की पात्रताका चोतक है, और 'बिहँसे कलना-अपन चितै जानकी-अपन-तन' यह भाग श्रीरामजीके नामका पूर्वतया शायक है।

उपर्युक्त बातोंके सम्बन्धमें पाठक यदि हमसे सहमत हैं तो अब उनके ध्यानमें यह भी आताया होगा कि गुसाईजीने अपने प्रपूरकद्वारा परम संकीर्ण भावोंका एक वितान्त रमणीय शब्द-चित्र सींचा है। अपनी परम प्रेमभूत विनोदी अवस्थामें केवट ऐसा मस्त हो उठा कि एक रामजी ही क्या, उनके परमपूज्य पिताजीतकसे भिन्नमें भी उसने कसर नहीं रखी। उसका यह आमीन्-जबबहार उचित नहीं—यह बात उसे जखमखजीके चेहरेसे मालूम हो चुकी थी, तिसपर भी उसने एक कदम और आगे बढ़कर एकदम ललकार कर कह दिया कि 'बहु तीर मारहि जखनु'—चाहे जखमखजी बाणसे बीच डालें ! उसके इस निःसीम तथा निःस्वार्थ प्रेमको देखकर रामजी भी प्रेमसे विह्वल हो गये। परिक्राममें उनके मनमें भी विनोद जहरा उठा, जिसके कारण वे यकायक हँसते हुए जानकीजी तथा जखमखजीकी ओर देखने लगे !

गुसाईजी, 'रामजी हँसते हुए देखने लगे' इतना ही कहकर चुप हो गये हैं। इससे स्पष्ट है कि रामजीकी उस अवस्थाका निश्चय करना उन्होंने अपने पाठकोंपर ही छोड़ दिया है। अतः रामजीकी वह स्थिति पागलपनकी थी, मुक्त-दशाकी थी या आबुक्तताकी थी, इसकी मीमांसा करनेका अनिवार्य भार पाठकोंपर ही आ पड़ा है !

यह तो सहज ही कहा जा सकता है कि रामजीकी स्थिति न तो पागलकी-सी थी और न मुक्त (अर्थात् विदेह-मुक्त) की-सी थी, क्योंकि गुसाईजी ही आगे चलकर कहते हैं—

रूपसिंधु बोलै मुमुकाई। सोइ करहु जेहि नाव न जाई ॥  
बेगि आनि जेन पॉन पक्षाक। होत बिन्धु उतारहु पार ॥

क्या पागल था विदेह-मुक्तको ये कृपायुक्त विचार सूझ सकते हैं ? अतः रामजीका हँसना भावयुक्त था बही सिद्ध होता है !

अब केवल रामजीके भावनिष्पन्न कार्य जाकी रहा। इस विषयमें यह तो स्वयंसिद्ध है कि केवटका निःसीम

और निःस्वार्थ प्रेम देखकर ही रामजी अपने परम प्रिय भाई और भावोंकी ओर देखने लगे थे अर्थात् इस स्थितिपर उनकी दृष्टि तुलनात्मक थी, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु तुलनाके बिने सिवा केवट, जानकीजी और जखमखजी इन तीनोंके प्रेमके रामजीके सामने और कुछ था ही नहीं, अतः प्रमाणित हुआ कि रामजीका कटाव (चितै) तीनोंके प्रेमपर ही था। साथ ही भूख प्रबन्ध भी कह रहा है कि श्रीरामजी सीताजी और जखमखजीकी ओर देखकर ही हँसे। इससे यही निश्चित होता है कि उन्हींके प्रेममें श्रीरामजीके हँसीका कारण केन्द्रित था, और उस केन्द्रस्थानका स्वरूप प्रेमगत तुलनात्मक भावके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। इस विचार-प्रवाहीसे हमारे मतसे सीताजी और जखमखजी-की ओर हँसते हुए देखनेसे रामजीने उन्हें यह सूचित किया कि 'भाई और भावों होनेसे मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम होना अत्यन्त स्वाभाविक है परन्तु इस जंगली केवटका प्रेम देखकर यदि मैं पूछूँ कि मेरे सम्मुख प्रेमके जो वे दो (एक केवटके प्रेमका और दूसरा सीता-जखमखजीके प्रेमका) इतक उपस्थित हैं, इनमेंसे अधिक उत्कट, निःसीम और निःस्वार्थ अतः अधिक सुहावना और प्रिय इतक तुम्हें कौन-सा अच्छता है, तो तुम क्या उत्तर दोगे ?'

हमारी बुद्धिसे तुलसीरामायणमें भी इस कोटिके विनोदी सात्त्विक प्रेमका अमृत उत्कट उदाहरण दूसरा कोई नहीं है। यदि इस कथनमें हमारी भूख हुई हो तो ऐसा सूक्ष्म भावभरित अन्य प्रसंग दिखाकर कोई महाशय हमारी भूख सुधारेंगे तो हम उनके बहुत ऋणी होंगे।

× × ×

चलते-चलते सात्त्विक विनोदी प्रेमका एक और नमूना पाठकोंकी सेवामें सादर उपस्थित किया जाता है, जिसके सम्बन्धमें विशेष विवरणकी आवश्यकता नहीं क्योंकि स्वयं तुलसीदासजी सारी बातें कह चुके हैं। विश पाठक इसपर आन दें—

चाहि बिमान सुनु सखा निमीषन। भगन जाइ बरसहु पट-भूषन ॥  
नमपर जाइ निमीषन तबही। बरसि दिए पट भूषन सबही ॥  
जो जेहि मन भावै सोनेही। मनि मुक्त मति डारि कपि देही ॥  
हँसत राम सिय अनुब समेता। परम कीर्तकी कृपानिकेता ॥

● 'रमणाद्राम इत्यपि' (न० रा०) 'अधिक लोकदायक विद्याया'—(गु० रा०)



ध्यान न पावहि जासु मुनि नेति नेति कह वेद ।  
कृपासिन्धु सोह कपिनसो करत अनेक विनोद ॥  
उमा जोग जप दान तप नाना व्रत मख नेम ।  
राम-कृपा नहि करहि तस जस निश्चिन्त प्रेम ॥

हमारी इच्छा लेख बढ़ानेकी नहीं है, परन्तु करें क्या ? प्रसङ्ग ही ऐसे निकल आये कि हमारे बरखी बात न रह गयी । पाठक क्षमा करें । अब लेखके संकोचपर विशेष ध्यान रखनेका प्रयत्न किया जायगा ।

### राजस-विनोद

राजस-विनोदके दो एक झोटे-झोटे नमूने दिखलाये जाते हैं ।

( १ ) विभीषणका राज्याभिषेक हो जानेके पश्चात् अशोकवाटिकासे सीतामाताको जानेके लिये हनूमान्जी भेजे गये । विभीषण भी उनके साथ थे । उन्होंने माताजीको रथमें बैठाया और बड़ी ही भूषणामसे राज-वैभवं उनका सवारी बखी, इसपर श्रीरामजी कहने लगे—

कह रघुबीर कहा मम मानहु । सीतहि सखा पयांदहि आनहु ॥  
देखहि कपि जननीकी नाई । बिहँसि कहा रघुबीर गुसाई ॥

वास्तवमें देखा जाय तो अन्तिम चरण अनावश्यक है । प्रथम 'कह रघुबीर' कहकर फिर 'कहा रघुबीर' कहनेसे द्विलिङ्ग-वापकी आपत्ति उठती है । और 'देखहि कपि जननीकी नाई' इस उच्च और प्रगल्भ शिवाजनक वाक्यकी 'बिहँसि' से हँसी उठाना बहुत ही विज्ञाप्य और अनुचित प्रतीत होता है । यह स्पष्ट है कि इन शब्दाओंकी जड़ चौपाइयोंके चारों चरण सङ्कलित और सम्बन्धित होनेमें ही है । हमारे मतसे पहले तीन चरण ही परस्परापेक्षित हैं । चतुर्थ चरण स्वतन्त्र है । पहले तीन चरण आशार्थक हैं, और विभीषणको सम्बोधन करके कहे गये हैं । चौथा चरण किसीको भी सम्बोधित करके नहीं कहा । वह आज्ञा देते समय रामजीकी मनोवृत्तिका सूचक है । [ अर्थात् काव्यदृष्ट्या वह कविका (गुसाईजीका) प्रतिबिम्ब है ] ।

अब श्रीरामजीकी मनोवृत्तिका प्रश्न आता है । यदि ऐसा कहा जाय कि चिरकालतक विना अल-अलके एक जगह बैठी रहनेके कारण सीताजीको अलक, पंगु और इलाकी-सी दशामें देखनेकी अविष्य कल्पनासे रामजी हँसे, तो इसे हम कहापि नहीं मानेंगे । क्या सीताजीकी विपत्तिमें भी रामजी आनन्द मना सकते हैं ? हम तो ऐसे

समाधानको पूर्वोक्त 'बने गुसाई'की श्रेणीमें ही रखना चाहेंगे ।

वास्तवमें गुसाईजीको कथाभागके सम्बन्धमें जो कुछ कहना आवश्यक था, वह उन्होंने पहले तीन चरणोंमें कह दिया । इससे कहा जा सकता है कि चौथा चरण ('बिहँसि' इ०) उन्होंने हेतुपूर्वक जोड़ा है । अतः उसमें अपूर्वता या विचित्रता होनी ही चाहिये । परन्तु सीताजीके जुलूसके समय जो परिस्थिति थी, उसकी आलोचना कथा-प्रबन्धद्वारा करनेपर बही दीखता है कि सिवा एक बातके दूसरी कोई भी बात ऐसी नहीं थी कि जिसमें अपूर्वता वा विचित्रता समावी हुई हो । यदि ऐसी कोई दूसरी बात होती तो कथा-प्रबन्धमें वह अवश्यमेव अङ्कित की जाती । परन्तु प्रबन्धमें गुसाईजी अपनी बर्तान-शैलीके अनुसार 'बिहँसि कहा' इ०के पश्चात् और उसीके जगभग केवल एक ही बात अङ्कित करते हैं और वह यह है—

सीतहि प्रथम अग्रिमहँ राखी । (प्रगट कीन्ह वह अन्तर साखी) ॥

अतः सिद्ध हुआ कि सीताजीका अभिवेचनमें सज्जिवेश ही वह अपूर्वताकी बात है ।

इस रीतिसे अपूर्वता प्रकट होनेपर 'बिहँसि' का भाव प्रकट होनेमें कुछ भी छिष्टता नहीं दीखती । आज तो सभी जानते हैं कि जो सीताजी बड़े भारी जुलूससे लाम्बी जा रही थीं वह केवल नकली सीताजी थीं । परन्तु उस समय जुलूसके अवसरपर एक रामजी और दूसरी अमली सीताजी इन दो के सिवा शेष सभी लोग नकलीको ही असली समझते थे । इस दृश्यपर ध्यानजानेसे स्वभावतः ही श्रीरामजीके मनमें यह कल्पना हुई कि, 'वाह ! किस भूम धामसे यह रस्सीके साँपका खेल खेला जा रहा है ! वह सीताजीका जुलूस है, वा उनकी छायाका ?' यही कल्पना-गर्भित विनोद श्रीमान् महाराजजीके चेहरेपर हँसीके रूपमें प्रकट हो गया !

( २ ) रामजी पुष्पक विमानपर चढ़कर जङ्गलसे आते समय राहमें सीताजीको दृश्य दिखाने लगे । दण्डकारण्य पहुँचनेपर वे अगस्त्य मुनिजीके आश्रमपर पधारे । वहाँसे आगे बढ़ने-पर जब उनका विमान उत्तरकी ओर चला तब उन्हें गङ्गा-जमुनाजीके दर्शन हुए । कवि कहते हैं—

बहुरि राम जानकी दिखई । जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई ॥  
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रणाम कर सीता ॥



अर्थ स्पष्ट ही है। भागे जो कुछ कहना है वह बोधमें सुविधासे समझमें आनेके लिये पूर्वोक्त-पक्षद्वारा इस प्रकार है—

पूर्वपक्ष—उक्त चौपाइयोंमें बसुवाजीका तो केवल दर्शनमात्र, और गङ्गाजीके दर्शन और उनके प्रति बन्धन दोनों ही करनेको कहा गया है। ऐसा क्यों? क्या रामजीके कहे बिना सीताजी प्रणाम नहीं करती?

उत्तरपक्ष—बन्धन करनेको कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि सीताजी स्वयमेव प्रणामशीला थीं। अतः हमें विश्वास है कि सीताजी प्रणाम किये बिना रहती ही नहीं।

पूर्वपक्ष—सीताजीके प्रणामशीलताका क्या प्रमाण है?  
उत्तरपक्ष—

सुन्दरि सेतु देलु मह थापेउं शिव सुखवाम ।

सीता सहित कृपायतन संभुदि कीन्ह प्रणाम ॥

पूर्वपक्ष—माना जाय कि उत्तरपक्ष ठीक है, फिर गङ्गाजीको प्रणामके लिये कहनेकी क्यों आवश्यकता हुई?

उत्तरपक्ष—इसका कारण पूर्वकथामें है। वह पूर्वकथा इसप्रकार है—

सिय सुरसिंहि कहा करमेरी । मानु मनोरथ पुरबहु मोरी ॥

पति देवर सँग कुशल बहोरी । आइ करौं जेहि पूजा तारी ॥

पूर्वपक्ष—इससे और हमारे प्रश्नसे क्या सम्बन्ध?

उत्तरपक्ष—उनका सम्बन्ध विनोदमें है और वह इसप्रकार है।

यह स्पष्ट ही है कि रामजी और सीताजीके बीच आई कथमय और साथ ही अन्य मन्त्रवती बैठी थी, वहाँ सबके सामने पति-पत्नीका विनोद उचित नहीं था। परन्तु सत्य और शुद्ध प्रेमकी जहर सदा ही अनिवार्य होती है। इसलिये उसकी चेष्टा विनोदद्वारा-अर्थात् बन्धनमें भी निकल पड़ी।

विनोदका सार यह है कि रावणको हम बोध ही मार सकते थे? वह जो हमारे हाथसे मरा सो केवल तुम्हारे द्वारा की हुई गङ्गाजीकी मंगीतीके कारण ही! अतः उनको नमस्कार करनेमें देर न करो!

उपर्युक्त दो उदाहरण राजस-विनोदके लिये गये हैं। ध्यान रहे कि विनोदके इस प्रकारमें प्रात्यक्षतया दिव्यगी ही दिखायी देगी। साथ ही अप्रत्यक्षरूपसे शिक्षाका प्रतिबिम्बित होना भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि राजस-विनोदके आनन्दका स्थायीभाव नहीं होता!

### तामस विनोद

अब तामस विनोदके दो नमूने दिसाकर इस विषय-को समाप्त करनेकी इच्छा है।

(१) अथम निसाचरि कुटिल असि चली करन उपहास ।

सुनु लगेस भावी प्रबल भा चह निसिचर नास ॥

शूर्यपाला राजसीने रामजीसे हँसी की। यह प्रसङ्ग उपर्युक्त दोहेमें है। इससे प्रत्यक्ष ही जाता है कि तामस-विनोदमें मर्यादाका बन्धन कुछ भी नहीं रहता, और इसी कारण वह प्रायः दुःख-पर्यवसायी ही होता है।

(२) अङ्गद-शिष्टार्हसे किया हुआ यह उदाहरण इसप्रकार है—

कपिल देखि सकल हिय हारि। उठा आप कपिक परचारि ॥

गहत चरन कह बालि कुमार। मम पद गहत न तोर उबार ॥

गहसि न राम-चरन शठ जार्ह। सुनत फिरा मन अति सकुचार्ह ॥

मये तेजहत श्री सब गर्ह। मध्य दिवस त्रिमि ससि सोहार्ह ॥

ध्यानसे देखिये कि इस दिव्यगीका भी कल दुःखमें हुआ है।

यहाँ एक विचित्रता यह है कि किसी भी दूसरे रामायणमें यह प्रसङ्ग प्राप्त नहीं होता। अतः यह गोस्वामीजीकी कल्पना ही प्रतीत होती है।

ज्ञात होता है कि इस चर्यनकी कल्पना छोटे बच्चोंके कहोखसे की गयी है। एक बालक दूसरेसे झूठे ही पूछता है कि तेरे मल्लकपर दाग कैसा लगा है? बसुतः उसके मल्लकपर कोई दाग है ही नहीं। दूसरा चकित होकर मल्लकको हाथ लगाता है। इसपर पहला बच्चा एकदम कह उठता है कि 'ओहो! तुने हमें सज्जाम किया।' इसी प्रकारकी दिव्यगी इस प्रसङ्गमें है।

### समालोचना

केवल बहुत बड़ बानेके कारण समालोचनाका स्वरूप छोटा रक्खा ही हमें युक्तिसंगत मान्य होता है—

संख्या	प्रसङ्ग	विनोदका वर्ग (लक्षण)
१	लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू । सरिस श्वान मधवान युवानू ॥	विद्वद्-विनोद ।
२	मोहि राम राखरि आनि दसरथ शपथ सब सौँची कहों । बर तीर मारहि लुपण	ग्रामीण-विनोद ।
३	चितैं जानकी लुपण तन ।	प्रगल्भ-विनोद ।
४	बढ़ि विमान बरसहु पट भूषण	सुहृद्-विनोद ।
५	बिहँसि कहा रघुबीर गुसाई ।	स्वगत-विनोद ।
६	राम कहा प्रणाम कर सीता ।	गृह-विनोद ।
७	अन्नदका पाँव ठठानेके लिये रावणका आह्वान ।	बाल-विनोद ।

यूँपकाके विनोदके पृथक् वर्गीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं । स्वयं गोस्वामीजी हो उसे कुटिल और औपहासिक विनोद कह चुके हैं ।

### निष्कर्ष

उल्लिखित समालोचनाका हमारे विचारसे यही तात्पर्य निकल सकता है कि श्रीतुलसीदास महाराजजीका स्वभाव सभी जगह-एकान्तमें और लोकान्तमें-सभी समाजोंमें आबाजवृद्धोंको बहलानेवाला होनेके कारण वे सदा ही आनन्दमें रहनेवाले बड़े ही कारुणिक पुरुष थे, इसमें सन्देह नहीं ।

### शान्ति

अहंकारकी अगिनिमें, दहत सकल संसार ।  
तुलसी बाँचें संतजन, केवल सांति-अधार ॥  
महा सांति जल परसिकै, सांत भए जन जोड़ ।  
अहं-अगिनितेनहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ ॥  
नेज होत तन तरनिको, अवरज मानत लोइ ।  
तुलसी जो पाना भया, बहुदि न पावक होइ ॥

## साम्प्रदायिक शंका

( लेखक—म० श्रीबालकृष्णजी विनायक, अयोध्या )



शरको स्वसम्प्रदायाङ्गीकृत रीति-रहस्य एवम् मतवादविशेषकी सीमा-के बाहर न माननेवाले हमारे कतिपय वैष्णव बन्धु यह शङ्का किया करते हैं कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज अनन्य वैष्णव कैसे थे ? क्योंकि उन्होंने शिव-गणेशादि देवान्तरकी बन्धुनायँ और स्तुतिवाँ की हैं । इसके अतिरिक्त अद्वैत-वादका प्रतिपादन किया है । कोई साम्प्रदायिक वैष्णव ऐसा नहीं कर सकता । यदि वे वैष्णव ( उनके मतानुसार ) होते तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे शिवजीकी तथा श्रीजानकीजीसे पार्वतीजीकी पूजा क्यों कराते ? अतः यदि उन्हें किसी प्रकार वैष्णव मान भी लिया जाय तथापि साम्प्रदायिक रीति-रहस्यसे अभिन्न अनन्य वैष्णव तो उन्हें कदापि नहीं कहा जा सकता ।

### समाधान

हमें दुःख है कि ऐसी कल्पना करनेवाले बन्धुओंने वैष्णवता और अनन्यताका रहस्य समझा ही नहीं । हम नहीं जानते कि दूसरेसे द्वेष करना, सो भी सगुरुओंसे, वैष्णवताका कौन-सा लक्षण है ? ऐसे लोगोंने मानो वैष्णवता देवीको अपनी कल्पना विशेषके कारागारमें बन्दकर रक्खा है । अतः यह विशेष प्रकारकी उनकी अपनी मानी हुई वैष्णवता केवल उन्हींकी वैष्णवता है । यह भगवद्भक्तिका अर्थ रखनेवाली व्यापक वैष्णवता कदापि नहीं हो सकती ।

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म ही है अथवा ब्रह्मका ही रूप है । यह 'एकमेवाद्वितीय' ब्रह्म ही सृष्टि-विस्तारमें अनेक हो गया है, यही वैदिक सिद्धान्त है और समस्त आर्यशास्त्रोंका अभिप्राय है और यही विशुद्ध तथा उदार वैष्णव सिद्धान्त है । 'इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य पौमुके ॥' 'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्यो अजायत । सुधादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥' 'यस्य पृथिवी शरीरम् ।' 'इशावास्यमिदं सर्वं' तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि श्रुतियोंका यही अभिप्राय है कि एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही जगदाकार हुआ है । वैष्णव-पुराणोंमें भी यही लिखा है । यथा—

एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् ।

परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ॥

—विष्णुपुराण

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येव भागवतोत्तमः ॥

—श्रीमद्भगवत्

अपरञ्च—

‘भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु,

भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु ।

पश्यन्ति शुद्धमनसा स्तुतु रामरूपं,

रामस्य वै भुवितले समुपासकाश्च ॥’

भगवान् गीताचार्यका भी श्रीमुखबचन है—‘वासुदेवः सर्वमिति’ । गोस्वामी श्रीमुखसीदासजी महाराजने ‘नानापुराणनिगमागमसम्मतं’ सत्पुरुष-परिगृहीत वैदिक वैष्णवताका बड़ी शुद्धस्वरूप और दिव्य भावार्थ प्रदक्ष्य किया है जो एक सत्य और सदैव्यत्वके लिये स्वाभाविक है । ‘निर्वैः सर्वभूतेषु’ होकर उस विराट् पुरुष जगद्भक्तकी भावना ही बालविक अनन्यता और वैष्णवता है । बड़ी श्रीरामचरित-मानसमें और गोस्वामीजी-जैसे वैष्णवशिरोमणिके जीवनमें चरितार्थ है—

‘सो अनन्य जाकी अस मति न टोरे हनुमन्त ।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त ॥’

‘उमा, जे रामचरण-रत विगत काम-मद-क्रोध ।

निज प्रभुमय देखहि अगत का सन करहि विरोध ॥’

‘विश्वरूप रघुवंशमणि करहु वचन त्रिदशामु ।

लोक-कल्पना वेदकर अङ्ग-अङ्ग प्रति जासु ॥’

‘सीयराममय सब जग जानी । करौ प्रणम जेरि गुणपानी ।’

श्रीरामचरितमानस ही वैदिकधर्मका और वैष्णवताका शुद्ध स्वरूप प्रकट करता है और गोस्वामी श्रीमुखसीदासजी ही महर्षि व्यासके बाद ऐसे महाकवि हुए हैं जिन्होंने समास-रूपसे वैदिक काव्य-निर्माण किया है और उसमें श्रुति-स्मृति-पुराणोंके सिद्धान्तोंका सारांश अत्यन्त सुक्ष्म-वदुतापूर्वक सुचारुरूपसे सज्जित किया है । उन्होंने रामायणकी की आरंभीमें इसे स्पष्ट कह दिया है, यथा—

‘चारिहु वेद, पुराण अष्टदस, छहँशास्त्र, सदग्रन्थनको रस ।  
तन-मन-धन सन्तनको सरबस, सार अंश समेत सबहीकी ॥  
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद, वासुकीकि विज्ञान-विशारद ।  
शुक-सनकादि शेष अरु शारद, बरनि पवनसुत कीरति नीकी ।

मानसकारने उन वासुकीकि-व्यासादि महर्षियोंका ही अनुसरण किया है—

मुनिन प्रथम हरिकीरति गार्ह । तेहि मग चलत सुगम मोहि गार्ह ॥

गोस्वामीजी श्रीरामानन्दीय वैदिक श्रीसम्प्रदायके श्रीवैष्णव थे । जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानन्द स्वामीकी शिष्य-परम्परामें वे चौथे थे—जगद्गुरु भगवत्पादाचार्यके, इन्द्र महाराजभागवतावतारोंमें अग्रणी शिष्य स्वामी श्रीअनन्ता-नन्दजीके स्वामी श्रीनरहर्यानन्दजी और उनके शिष्य गोस्वामी श्रीमुखसीदासजी महाराज थे, जिन्होंने सर्वहित-कारक निर्विरोध और समुदार वैदिक वैष्णव सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए, अपने श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायका स्वरूप प्रदर्शित किया है । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वे सम्प्रदायी वैष्णव नहीं थे । वे अपने सत्सम्प्रदायके उदार संस्कार, सनातनधर्माधिकार सिद्धान्त एवम् रीति-रहस्यके अनुसार आदर्श वैष्णव साधु थे ।

श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायके व्यास-शुक्रादि परम्परानुगत पूर्वाचार्य हैं । यह सभी जानते हैं कि विष्णु-शिवादि अनेक नामरूपोंमें समान भावसे उसी ‘एकमेवाद्वितीय ब्रह्म’ का उन्होंने निरूपण किया है । वेधोंमें वर्णित देववादका उन्होंने पुराणोंमें विस्तारसहित ऐतिहासिक रूपसे वर्णन किया है और हैताद्वैतादि ब्रह्मवादकी श्रुतियोंकी ब्रह्मसूत्रोंमें सङ्गति लगायी है । गोस्वामीजीने भी यही काम किया है । जगद्भगवाद्के सिद्धान्तपर अङ्गरूपसे देवान्तरोंको मानते हुए परब्रह्म पुत्रोत्तम श्रीरामका माहात्म्य और चरित वर्णन किया है तथा ब्रह्मवादविषयक अद्वैत-विशिष्टाद्वैतादि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंका बयास्थान प्रतिपादन किया है । ईश्वरके निर्गुण-सगुण दोनों रूपोंका वर्णन किया है ।

अस्तु, गोस्वामीजी अपने पूर्वाचार्योंका अनुसरण करनेवाले, उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायके उदार तथा निर्विरोध संस्कारोंसे परिपूर्ण वैदिक वैष्णव थे । वे ऐसे सत्सम्प्रदायके वैष्णव थे, जिसके सनातन धर्मकी वैदिकी वैदिकापर प्रबल प्रमाण माने जानेवाले संपूर्ण भागवतधर्मके ग्रन्थ (प्रस्थानब्रह्म और पुराणादि), साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं । अतः गोस्वामीजी अपने वैदिक श्रीसम्प्रदायके पूर्ववर्ती ऋषियोंकी शैलीके, प्रकृतिते उत्पन्न किये गये हुए वैष्णव थे, सदैव्यवाचार्य थे । वे सम्प्रदायके पूर्ववर्ती आचार्य थे, अतः उनके वर्तमान अनुयायियोंको उन्होंने अनुसार चलना और अपना स्वरूप संभालना होगा और उन्हींको प्रामाण्य मानना होगा । उन्हींकी वैष्णवता सही वैष्णवता और उन्हींकी अनन्यता सही

अनन्यता है। उस अनन्यतामें एक इष्टके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। कहा भी है—

उत्तमके अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।  
नरक-स्वर्ग-अपवर्ग समाना। जहँतहँ-दीक्ष घरे घनु-नाना ॥

वेदोंके दो एक वाक्य तो स्वदेशी विदेशी अनेक मत-मतान्तरों और सम्प्रदायोंमें माने जाते हैं। अहिंसावाले ग्रंथको बौद्ध भी मानते हैं। परन्तु वे वैदिक नहीं कहलाते। वैदिक वही है जो वेदोंके सम्पूर्ण ग्रंथोंको पूर्वाचार्योंकी भावनाके अनुसार मानता है। गोस्वामीजी जैसे ही वैदिक वैष्णव महारामा थे और उनका श्रीरामानन्दीय श्रीसम्प्रदाय बैला ही सम्प्रदाय भी है।

'गोस्वामीजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे श्रीमहादेवजी-की और श्रीजनकनन्दिनीसे श्रीपार्वतीजीकी पूजा और स्तुति क्यों करायी?' यद्यपि इस आक्षेपका उत्तर वैष्णवताके समाधानमें यथेष्ट रूपसे हो चुका है तथापि इसके सम्बन्धमें दो एक शब्द विशेषरूपसे कह देना आवश्यक जान पड़ता है। यह बात सर्वविदित है कि गोस्वामीजी व्याससि महर्षिबोकी शैलीके महात्मा थे और महर्षि व्यासने भागवतनि पुराणोंमें इसका वर्णन किया है कि श्रीरुक्मिणीजी देवीकी पूजा करने जाती थीं और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरकी स्थापना की। तब गोस्वामीजी बैसा क्यों न करेंगे? वे उन्हींके सम्प्रदायके तो वैष्णव और उनके सब अनुयायी हैं। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम थे, वे लोकशिक्षार्थ आदर्श नर-नाट्य करते थे। तब उस समय प्रचलित वैदिक धर्मकी मर्यादाकी वे क्यों न रक्षा करेंगे? और भगवान् शङ्कर तो उनके परम भक्त और भागवतोत्तम हैं। वे ऐसे महाभागवत हैं जो श्रीनाभा स्वामीके 'भक्ति-भक्त-भगवन्त-युक्त चतुर नाम वयं एक' वाक्ये सिद्धान्तानुसार भगवत्से अभिन्न हो गये हैं, वे रामभक्ति-भागीरथी और राममन्त्रके आचार्य हैं। श्रीमद्भागवतमें भक्तजीने भगवान्से स्तुतिमें कहा है—

त्वमेवान्ये शिवोकेन मार्गेण शिवरूपिणम्।  
ब्रह्माचार्ये निवेदेन भगवन् समुपासते ॥

वही एक और अद्वितीय भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ही अनेक रूपोंमें रम रहे हैं और अनेक प्रकारसे रुचिमेवके अनुसार उन्हींकी पूजा हो रही है—'सर्वदेवनमस्कारं केरावं प्रतिगच्छति।'।

†'स्वतो वा जगणो वापि मे लभन्ते षडक्षरम्'—श्रीराम-तापिनी उपनिषद्।

## श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—श्री श्रीवैष्णव पं० श्रीरामट्टहलदासजी)



टिके आदिसे सनातन-धर्मका मूल वेद है, वेद-सिद्धान्तसे ही सब धर्मोंका आविष्कार हुआ है। अतएव वेद-वर्णित सभी धर्म वैदिक धर्म कहे जाते हैं। वेदमें जिन-जिन देवताओंकी उपासना वर्णित है, वे सभी प्राचीन हैं। हमें यहाँ श्रीरामोपासनाकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विचार करना है। वेदमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता बतायी गयी है, ऋग्वेद मण्डल ७ अनुवाक ८६में 'मन्त्ररामायण' नामक एक प्रख्यात प्रकरण है, इसके १४१ वें मन्त्रमें श्रीराममन्त्रोद्धारका वर्णन आया है, इसपर श्रीनीलकण्ठ-सूरिने 'मन्त्र-रहस्य-प्रकाशिका' नामक व्याख्या भी की है। उक्त प्रकरणसे सिद्ध है कि सृष्टिके प्राचीनकालसे श्रीरामोपासना अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है। सत्ययुगमें अनेक ऋषि-मुनि एवं भक्तगण श्रीरामके उपासक थे, इसके उदाहरणस्वरूप जामरा, अगस्त्य प्रभृतिकी कथा प्रसिद्ध है। वेदके पश्चात् श्रीरामोपासनाका सबसे बड़ा ग्रन्थ श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण है, इसके अतिरिक्त ब्रह्म-रामायण, प्रमोदरामायण, भुसुखिरामायण, महारामायण, आचन्द्ररामायण, प्रेमरामायण, अष्टाश्रमरामायण आदि अनेक रामायण हैं, श्रीरामचरित्रका वर्णन शतकोटि-विस्तार चौदह लोकोंमें व्याप्त है।

श्रीरामतापिनी-उपनिषद्की चतुर्थ कण्डिकामें श्रीराम-मन्त्रका वर्णन आया है—'श्रीरामस्य मनुं वाश्यां जजाप वृषमध्वजः'। काशीमें श्रीराममन्त्रको शिवजीने जपा, तब श्रीरामचन्द्र भगवान् प्रकट होकर बोले, 'स्वतो वा जगणो वापि मे लभन्ते षडक्षरम्।' हे शिवजी! आपसे या ब्रह्मासे जो कोई श्रीरामषडक्षर मन्त्रको लेंगे, वे मेरे धामको प्राप्त होंगे। ब्रह्मासे वशिष्ठ-अगस्त्यादि ऋषियोंने मन्त्र जिथा था और भी जिन-जिन ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके जिस-जिस पदको प्राप्त किया, उसका प्रमाण वृद्धहारीत-स्मृतिके षष्ठ अध्यायमें आया है—

पतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्नुयात्।

ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् ॥

कार्तिकेयो मनुत्वं च इन्द्राकीर्णिर नारदौ ।  
बालखिल्यादि मुनयो देवतात्वं प्रपदिरे ॥'

'अर्थात् इस श्रीरामोपासना करके अगस्त्यजी रुद्रशक्तिसम्पन्न हुए, कश्यपजीने श्रीराम-मन्त्रको जपकर ब्रह्मत्व प्राप्त किया, कौशिक मुनि अमरत्वको प्राप्त हुए, कार्तिकेय मनु-पदपर नियुक्त हुए, और इन्द्र, सूर्य, नारद, बालखिल्यादि ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके दिव्य दैवत्व पदको प्राप्त किया।' इस प्रमाणसे सिद्ध है कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापरदि तीनों युगोंमें समस्त ऋषिगण श्रीरामोपासक ही थे। यों तो अठारहों पुराण, महाभारत, पाञ्चरात्र आदि सभी ग्रन्थोंमें श्रीरामोपासनाका सविस्तर वर्णन है, किन्तु अगस्त्यसंहिताके १३ वें तथा २४ वें अध्याय और पञ्चरात्र बृहद्ब्रह्मसंहिता द्वितीय पाद ७ अध्याय एवं पञ्चपुराण उत्तरखण्ड २३४ अ० तथा बृहद्भारतीय पुराण पूर्वभाग ३७ अ० इत्यादि ग्रन्थोंके स्पष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामोपासना तीनों युगोंमें होती आयी है। यह तो हुई, सत्ययुग त्रेता और द्वापरतककी श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता। परन्तु कलिकावतमें श्रीरामोपासना किनके द्वारा और कैसे आयी ? इसका इतिहास इसप्रकार है—सदाशिवसंहिताके नवम अध्यायमें लिखा है—

कलिकालेऽबानाञ्च जीवानामनुकम्पया ।  
देव्यानुबोधितः साक्षाद्विष्णुः सर्वजनेश्वरः ॥ १ ॥  
कृतकृत्या तदा लक्ष्मीर्लब्ध्वा मन्त्रं षडक्षरम् ।  
ददौ प्रीत्या तदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम् ॥ २ ॥  
वेङ्कटाद्रौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराङ्मुखाः ।  
विष्वक्सेनं समाराध्य लभिष्यति षडक्षरम् ॥ ३ ॥  
तत्समीपे महार्पणे वेङ्कटे रङ्गमण्डपे ।  
जपिष्यन्ति चिरं मन्त्रं तारकं तिमिरापहम् ॥ ४ ॥  
इति ते कथितं मुने मुक्त्युपायं तु मार्गम् ॥ ५ ॥

अर्थात् कलिकालके जीवोंका भवसागरसे तारनेकी इच्छासे भगवान् विष्णुजीने लक्ष्मीजीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश दिया। तारक-मन्त्रको प्राप्तकर लक्ष्मीजी कृतकृत्य हुई और प्रीतिपूर्वक लक्ष्मीजीने श्रीविष्वक्सेनजीको तारक-मन्त्र दिया। तत्पश्चात् द्वापरके अन्तमें श्रीपराङ्मुखा (श्रीशठकोपस्वामीजी) वेङ्कटाचल पर्वतपर सबसे प्रथम विष्वक्सेनजीका आराधन करके उनसे वेदाध्ययन पुरःसर पश्चर तारक-मन्त्र लेंगे। वेङ्कटाद्रिके समीप रंगमण्डप सिद्धपीठपर बैठकर सर्वपाप-

नाशक श्रीरामतारक-मन्त्रको उक्त आचार्य शिष्योंके सहित बहुत कालपर्यन्त जपेंगे। शिवजी कहते हैं, हे भार्गवसुने ! हमने कलिकालके जीवोंके लिये तुमसे मुक्तिका उपाय कहा है। उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट सिद्ध है कि, कलिकी आदिमें विष्वक्सेनद्वारा श्रीशठकोपदेशिकजीको ही सर्व प्रथम श्रीरामोपासना मिली। ऐसेही उदाहरण बृहद्ब्रह्मसंहिताके द्वितीय पाद सातवें अध्यायमें भी आये हैं—

'विष्वक्सेनादिभिर्महः शठारिप्रमुखैर्द्विजैः ।  
रामानुजेन मुनिना कलौ संस्थामुपैष्यति ॥  
द्वापरान्तं कलेरादौ पाण्डुप्रचुरे जने ।  
रामानुजंति मविता विष्णुधर्मप्रवर्तकः ॥

अर्थात् श्रीमन्नारायणने श्रीलक्ष्मीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश अर्थ-ध्यान-सहित देकर कहा है कि, 'हे प्रिये ! द्वापरके अन्तमें कलियुगके आदिमें पाण्डवजी मनुष्योंके अधिक हो जानेपर सद्धर्मकी रक्षाके लिये श्रीविष्वक्सेन तथा श्रीशठकोपादि द्विजवरों एवं श्रीरामानुजप्रभृतिद्वारा कलमें श्रीरामोपासनाकी पूर्ण अभिवृद्धि होगी।' इस प्रमाणसे भी सिद्ध है कि सर्वप्रथम कलिके आदिमें श्रीशठकोप-प्रभृतिद्वारा ही श्रीरामोपासनाका प्रचार हुआ।

श्रीरामोपासनाकी वृद्धिके लिये श्रीशठकोपस्वामीजीने वेङ्कटाद्रिके निकट तिरुपतिमें सर्वप्रथम श्रीसीतारामजीकी दिव्य मूर्ति स्थापन की थी। यह दिव्य स्थल श्रीशठकोप-स्वामीजीका मङ्गलानुरासित है। पाँच हजार वर्षोंसे यह स्थल प्रस्तुत है जो आज भी श्रीवैष्णवोंके हस्तगत है और तिरुपतिके श्रीमहन्त प्रयागदासजीके प्रबन्धमें सुरक्षित है। इसी दिव्य मन्दिरमें बैठकर श्रीशठकोपस्वामीजीने बहुत काल-पर्यन्त श्रीराममन्त्रका जप किया था। इसीलिये सदाशिवसंहितामें लिखा है कि, 'तन्मार्गं गतार्पणे व्यङ्कटे रंगमण्डपे।' कहा जाता है कि, हिन्दुस्थानमें सबसे प्रथम श्रीराम-मूर्तिकी पूजाका समारम्भ इस युगमें यहींसे हुआ और यह भी किंवदन्ती है कि, यह त्रेतायुगकी मूर्ति श्रीशठकोपस्वामीजीको अत्यन्त उत्कट तपस्यासे प्राप्त हुई थी। श्रीशठकोप-स्वामीजीने अपने दिव्य प्रबन्ध सहस्रगीताके १ शतक ६ दशक ८ वीं गाथामें लिखा है—

'दशरथस्य सुतं तं विना नान्यशरणवानस्मि ।

अर्थात् श्रीमहशरथ-राजकुमारके अतिरिक्त दूसरेका शरणागत नहीं हूँ। ऐसे ही श्रीराम सर्वेश्वरके महत्त्व-

परक एक सहस्र गाथा आपने लिखी है। श्रीशठ-कोपदेशिकजीने श्रीरामोपासनाका समस्त आभार शिष्योंमें सर्वप्रधान शिष्य श्रीनाथमुनिजीको सौंपा। श्रीनाथमुनिजीने भी श्रीरामोपासनाका प्रचार सर्वजगत्प्रापी किया, जिसका स्पष्ट उदाहरण आपने अपने संग्रहीत ग्रन्थोंमेंसे 'नाथमुनियोगपटल' नामक ग्रन्थमें दिया है। यह संहिता लगभग १० हजार है; इसमें श्रीरामजीके नित्योत्सव गजस्थ-सुरंग-पालकी नित्यविहारलीला एवं पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षण्मासिक-वार्षिक मंगलोल्लेखोंका वर्णन है। आपकी एक 'मानसिक-ध्यानरामायण' अति विचित्र है आप मानसिक ध्यानसे एक महीनेमें उसको समाप्त किया करते थे, जिस रामायणका वृत्तान्त कभीफिर सविस्तृत लिखेंगे।

श्रीनाथमुनिजीके शिष्योंमेंसे प्रधान श्रीपुण्डरीकाक्षजी हुए, आपने श्रीरामोपासना-विषयक 'श्रीरामार्था' तथा 'श्रीराममंगलमनोहर' इत्यादि ग्रन्थ रचे हैं, जो कि दक्षिण दिव्य देशोंमें उपलब्ध हैं।

श्रीपुण्डरीकाक्षजीके शिष्य श्रीरामोपासक श्रीराममिश्र-स्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके कई ग्रन्थ लिखे थे, जिनमेंसे 'श्रीरामपञ्चरत्नप्रसिद्धोत्र' जो कि, श्रीराममन्त्रके छः अक्षरोंपर छः श्लोक तथा 'श्रीसाकेतसोपान' में विद्यमान है, जिनको हम 'नित्यस्तुतिसंग्रह' नामक पुस्तकमें मुद्रित करा चुके हैं। श्रीमद्रामायणपर आपकी बनायी, हुई 'भाष्यप्रकाश' नामक टीका भी सुनी जाती है।

श्रीराममिश्रजीके शिष्य श्रीयामुनमुनिजी हुए, आपने श्रीमद्रामायणका अर्थ २१ बार गुरु-मुखसे अध्ययन किया। आपका बनाया 'श्रीमद्रामायण रहस्यप्रकाश' बड़ा विलक्षण ग्रन्थ है। 'श्रीरामभावनाष्टक' नामक स्तोत्र भी आपका निर्मित है, जिसको हम अभी-अभी 'श्रीसुदामाजीकी वाराणसी' नामक संग्रहीत ग्रन्थमें मुद्रित करा चुके हैं। और स्तोत्ररत्न 'आलवन्दार' के अन्तमें आपने श्रीरामोपासनाका जोकोत्तर दृश्य दिखाया है। इसके लिये श्रीवेदान्तदेशिक-कृत 'आलवन्दारभाष्य' का अवलोकन कर लेना चाहिये। 'आगमप्रामाण्यसिद्धिप्रयी' आदि आपके और भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

श्रीयामुनाचारीस्वामीजीके श्रीमहापूर्णाचार्यादि पाँच शिष्य हुए, श्रीमहापूर्णाचारी स्वामीजीके ही शिष्य श्री-भाष्यकार लक्ष्मणावतार 'श्रीरामानुजस्वामीजी' महाराज

हुए। भूषणटीकाकार श्रीगोविन्दराजस्वामीजीने श्री-मद्रामायणके आरम्भमें लिखा है कि, श्रीरामानुजस्वामी-जीने श्रीमद्रामायणका रहस्यार्थ १८ बार अध्ययन किया था। आपने श्रीरंग-मन्दिरके गोरपुरपर चढ़कर श्रीराम-मन्त्रोच्चारण-द्वारा जगत्को उपदेश देकर श्रीरामोपासनाका अपूर्व प्रचार किया। आपने श्रीरामचन्द्रचरमन्त्रार्थपरक छः अक्षरों-पर छः श्लोक लिखे हैं, उनमेंसे दो श्लोक अष्टावधि मिलते हैं, जिनको हम 'श्रीरामसारसंग्रह' नामक ग्रन्थके राम-रहस्यत्रयार्थ, प्रकरणमें मुद्रित करा चुके हैं। और 'गणत्रय' में भी आपने 'सकृन्नेव प्रपन्नाय तवार्मानि च याचते। जमयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्भूतं मम ॥' इस श्रीराम-चरम मन्त्रको श्रीरामशरणागतपरक दिया है; जिसपर श्रीवेदान्तदेशिकस्वामीजीने 'अभयप्रदानसार' नामक ग्रन्थमें १२ हजार व्याख्या की है। आपके द्वारा स्थापित यादवाद्रिमें श्रीयतिराज मठ है, वहाँपर भी श्रीरामचन्द्र-की १२ हजार व्याख्या उपलब्ध है। यह व्याख्या आपके पश्चात् शिष्य-प्रशिष्योंने लिखी है। श्रीमद्रामायणपर भी श्रीभाष्यकारकी टीका विस्तृतरूपमें है; दिव्य देशोंमें भगवद्विषयके नामसे जिसका कालक्षेप हुआ करता है। आपने कन्याकुमारीसे हिमालयपर्यन्त श्रीरामोपासनाका अटल प्रचारकर चराचर चेतनोंको परमपद जानेका मार्ग सुलभ कर दिया। श्रीभाष्यादि आपके और भी कई ग्रन्थ हैं।

श्रीरामानुजस्वामीजीके शिष्योंमेंसे श्रीकृशस्वामी-जी अनन्य श्रीरामोपासक हुए, इसका पता आपके विरचित ग्रन्थोंमेंसे 'पञ्चस्तवी' ग्रन्थसे स्पष्ट लगता है कि आप एक बड़े ही उच्चकोटिके उपासक थे। आपने कृमिकण्ठ राजाकी राजसभामें श्रीराममन्त्रका महत्त्व प्रकट करके श्रीरामोपासनाकी विजय पायी—यह आपके 'कृशविजय' नामक ग्रन्थसे प्रमाणित होता है।

श्रीरामानुजस्वामीजीके श्रीगोविन्दाचार्य शिष्य हुए, उनके श्रीभट्टारकस्वामी बड़े ही प्रसिद्ध पुरन्धर विद्वान् हुए हैं। जिन्होंने 'भगवद्गुण-दर्पण-सहस्रनामभाष्य' में श्रीरामोपासनाका वर्णन विलक्षणरूपसे किया है। आपके और भी श्रीरामोपासनाके दिव्य प्रबन्ध हैं। श्रीभट्टारक-स्वामीजीके श्रीवेदान्ती स्वामी, उनके कल्लिजित स्वामी, उनके श्रीकृष्णाचारी, उनके श्रीलोकाचारी स्वामी हुए। आपने उपासनारहस्यमय १८ ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें

'श्रीवचनभूषण' श्रीरामोपासनाका अपूर्व ग्रन्थ है। आपके श्रीशेखराजी, उनके श्रीवरवरमुनिस्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके परस्पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। भगवद्विषय-भाष्य श्रीरामपरस्पर आपका लिखा हुआ भाव बड़ा ही विलक्षण है। श्रीरामोपासकोंको इसे अवश्य देख लेना चाहिये। आपने 'श्रीरामसंगताशासनस्तोत्र' में श्रीरामायणके सातों काव्योंका सारांश ऐसा खींच लिखा है मानो गागरमें सागर आ गया हो, जिसको हम 'श्रीरामदिव्यस्तवराज' में मुद्रित करा चुके हैं। आपके शिष्य-प्रशिष्योंमें श्रीविजयरामाचार्यजी हुए हैं, जिन्होंने 'श्रीराममहिम्नस्तोत्र' लिखकर श्रीराम-मन्त्रका महत्त्व प्रकट किया है। श्रीवरवरमुनिस्वामीजीके शिष्य श्रीदेवाचार्यजी हुए, उनके ओहरियाचार्यजी हुए, जिन्होंने 'श्रीरामस्तवराज' भाष्यादि अनेक ग्रन्थ श्रीरामोपासनाके लिखे हैं। आपके शिष्य श्रीराघवाचार्यस्वामीजी बड़े ही उन्नत विद्वान् हुए हैं। आपके श्रीरामानन्दस्वामीजी महाराज समस्त शिष्योंमें शिरोमणि हुए हैं, आपने श्रीरामोपासनाकी रक्षाके लिये 'श्रीवैष्णवमताम्भ-भास्कर' तथा 'श्रीरामार्चनपद्धति' ये दो ग्रन्थ लिखे हैं, जिनको हम मूलमात्र मुद्रित करा चुके हैं। आपके प्रतापसे भारतके कोने-कोनेमें आपके शिष्यप्रशिष्योंद्वारा श्रीरामोपासनाका खूब ही प्रचार हुआ। आपकी कृपासे भारतमें श्रीरामोपासना अच्छल हो गयी। कबीर आदि आपके शिष्य श्रीरामोपासनासे ही सर्वलोकप्रसिद्ध हो गये। श्रीरामानन्दस्वामीजीके शिष्य श्रीनरहरियानन्दजी हुए; आपके ही शिष्य कविसार्वभौम, श्रीरामोपासक-चूषामणि श्रीमद्गोस्वामी गुलसीदासजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके श्रीरामायणादि १२ ग्रन्थ लिखकर श्रीरामोपासनाको अच्छल कर दिया। श्रीगोस्वामीजीकी कृपासे हिन्दुस्थानमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी श्रीरामोपासनाकी पनाका फहरा रही है। इसप्रकार चारों युगोंमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीन गुरु-परम्परा चली आ रही है। परम्परया प्राचीनकालकी प्राचीन श्रीरामोपासनाका मूल-भाग यही है। श्रीरामोपासनाके ग्रन्थ पूर्वाचार्योंकृत असंख्य भरे पड़े हैं। विस्मय-भयसे दिग्दर्शनमात्र करा दिया गया है।

● उपर्युक्त लेखमें जिन-जिन पुस्तकोंके नाम आये हैं, जिन्हें हम मुद्रित करा चुके हैं, वे बिना मूल्य, 'दारागज बहास्थान—प्रयाग' के पनेसे (२) के टिकट भेजबैबाबाओंको मिल सकेंगी।

## रामायण-संख्या

पाठकोंकी जानकारीके लिये बास्मीकिरामायण और अध्यात्मरामायणकी श्लोक-संख्या तथा गुलार्जुनीकृत रामायणके दोहे-चौपाई आदिकी संख्या दी जाती है।

### श्रीमद्वाल्मीकिरामायणके सर्ग और श्लोक

काण्ड	सर्ग	श्लोक
बालकाण्ड	७७	२२६७
अयोध्याकाण्ड	११६	४२८६
अरण्यकाण्ड	७५	२४४४
किष्किन्धाकाण्ड	६७	२४५५
सुन्दरकाण्ड	६८	२८२६
युद्धकाण्ड	१२८	५७१०
उत्तरकाण्ड	१११	३३७६
	६४५	२३३७०

### श्रीमदध्यात्मरामायणके सर्ग और श्लोक

काण्ड	सर्ग	श्लोक
बालकाण्ड	७	३६१
अयोध्याकाण्ड	६	७२८
अरण्यकाण्ड	१०	५१६
किष्किन्धाकाण्ड	३	५६०
सुन्दरकाण्ड	५	३७७
युद्धकाण्ड	१६	१११५
उत्तरकाण्ड	६	६११
	६५	४२४८

### श्रीरामचरितमानसकी छन्द-संख्या

काण्ड	चौपाई	दोहा	रौरटा	अन्यछन्द	कुल-सं०
बाल	१४६४	३५६	३५	६८	१६५६
अयोध्या	१३०६	३१४	१३	१६	१६४९
अरण्य	२६३	५०	८	४५	३६६
किष्किन्धा	१५४	३१	३	५	१९३
सुन्दर	२७१	६२	१	५	३४३
लंका	५७४	१५०	६	७४	८०७
उत्तर	५६६	२०७	१६	५४	८०३
	४६५८	११७३	८५	२७१	६१८७

## रामायणकालीन कला और उद्योगकी सूची

( लेखक—प्रीयुत बी० एच० वंदर एम० ए० एल० एल० बी० )

कर्मांगिक = सबदूर		क्राकचिक = लकड़ी चीरनेवाले	
शिल्पकार = कारीगर		वेत्रक = मोती और मणिआदिमें छेद करनेवाले	
वर्चकि = बर्ह		रोचक = काँचकी शीशियाँ बनानेवाले	२-८३-१३
सनक = बेलदार (मिट्टी खोदनेवाले)	बा० रा० १-१३-७	दस्तकार = हाथी-दाँतकी दस्तकारी करनेवाले	
गणक = गणोत्तिथी		गन्धोपजीविन् = अंतर सुगन्धवाले	
नट = सूत्रधार		सुवर्णकार = सोनार	२-८३-१४
शैलूप = अभिनेता		कम्बलकारक = कम्बल बनानेवाले	
नर्तक = नाचनेवाले		वैद्य = वैद्य	"
गायक = गानेवाले	१-६५-२	धूपक = धूपका व्यापार करनेवाले	
सूत = रथ हाँकनेवाले	२-४-३	रजक = धोबी	२-८३-१५
सूत = पौराणिक	२-६२-२	तन्मुवाय = जुलाहे	"
सूत = बर्ह	"	कैवर्तक = केवट	"
दैवज्ञ		रमभुवर्द्धन = नाई	४-१२८-१३
दैव-चिन्तक } गणोत्तिथी, अभिव्यक्तता	२-४-२१	इनमेंसे कुछ उद्योग तो राज्यकी सहायतापर निर्भर	
मागध = वंशावली-गुणगान करनेवाले ।	२-६-६	थे और कुछ राज्यसे पूर्ण स्वतन्त्र रहते थे । इनमें कुछ	
वन्दिन् = हनुति पाठ करनेवाले ।	"	वंशागत थे जिनके कारण आधुनिक वर्णव्यवस्था उत्पन्न हुई ।	
वादित्र = बाजा बजानेवाले ।	२-१६-३५	श्रीरामके समयमें इन उद्योग-धन्धोंमें अत्यन्त हीन उद्योगों-	
स्नानशिक्षाज्ञः = स्नान करानेमें पटुलोग ।	२-६५-८	के अतिरिक्त शेष सब शूद्रोंके हाथ सञ्चालित होते थे और	
स्नापक =	२-८३-१४	हीनतम उद्योग अनार्य लोगोंके थे ।	
पाणिवाक्क = तालके साथ गानके समय		कला और उद्योगधन्धे	
ताली बजानेवाले	२-६५-४	व्यापार शिल्प नाटक गान गणोत्तिथि मागध स्नापक सूत	
भूमिप्रदेशज्ञ = पृथ्वीके स्थलोंको जाननेवाले	२-८०-१	नट शैलूप वन्दिन् मार्गरक्षक	
व्यवहारिन् = व्यापार करनेवाले	२-७६-१६	गायक वादित्र नर्तक पाणिवाक्क	
बन्त्रक = छोटी छोटी मशीन बनानेवाले	२-८०-१	(क) बर्ह	
बन्त्रकोविद = बड़ी मशीन बनानेवाले	२-८०-२	(ख) रथकार	
सूत्रकर्मविशारद = तम्बू छावनी आदि बनानेवाले	२-८०-१	(ग) बन्त्रनिर्माण करनेवाले	
मार्गिन् = पथ-रक्षक	१-८०-२	(घ) वृक्ष काटनेवाले	
वृक्षतक्षक = वृक्ष काटनेवाले	१-८०-३	(ङ) वृना बनानेवाले	
सूपकार } रसोई बनाने और परोसनेवाले	२-१२-६६	(च) बौसका काम करनेवाले	
सूप		(छ) हाथीदाँतकी दस्तकारी करनेवाले	
सुजाकार = चूना बनानेवाले	"	(ज) काँचकी कारीगरी करनेवाले आदि आदि	
वंशकृत् = बौसका काम करनेवाले	२-८०-३	रामायणमें जो कलाकौशल तथा उद्योग-धन्धेका विस्तृत	
चर्मकृत = चमार	२-८७-३	उल्लेख है, उनमेंसे कुछके नाम ऊपर दिये गये हैं । यह	
कुम्भकार = कुम्हार	२-८३-१२	विशुद्ध स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज एक समुचित सभ्यता-	
गन्धोपजीविन् = शाक बनानेवाले	२-८३-१२	की अवस्थामें था और अधिकतर मनुष्योंको ईमानदारीके	
मणिकार = जौहरी	"	साथ अपनी जीविका चलानेका पर्याप्त अवसर प्राप्त था ।	
मयूरक = मोर-पंखकी वस्तु बनानेवाले	२-८३-१३		



## रामावतारका कारण



सार परिवर्तनशील है। चक्रकी तरह सदा गतिशील रहता है। यदि चक्रके किसी अंगको घुमा दिया जाय तो सारा चक्र ही घूम जाता है। इसीप्रकार संसारकी प्रत्येक वस्तु एक अदृश्य डोरीमें इसप्रकार बँधी हुई है कि जिसका सम्बन्ध अनादि और अटल है एवं उसका घुमानेवाला परमात्मा परदेकी ओटमें बैठा उसे सतत घुमा रहा है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसारकी वस्तुओंमें गर्मी प्रदान करता है और जलके अंशको ऊपर खींच लेता है। काठको जलानेसे जो ज्वाला प्रकट होती है वह सूर्य-देवकी दी हुई पूँजी है, जिसे उस वृक्ष या काष्ठने दिन प्रतिदिन लेकर अपनी गाँठमें जमा कर रक्खा था। अब अपने अन्त समयका विचारकर वृक्ष अपने अस्तित्वको नष्ट करने समय एक उदारचित्त दानी-की तरह उस ज्वालाको वापस सूर्यदेवकी भेंट कर रहा है। जल, जिसे सूर्यने वाष्प-रूपमें ऊपर खींच लिया था, पृथ्वीको उष्णताकी नीत्र तिरछी और नुकीली छुरियोंद्वारा व्यथित होने देखकर काँप उठता है और अपने वाष्परूपी शरीरको त्याग कर पृथ्वीके तप्त हृदयको अपने शीतल अंगसे आलिङ्गन कर उसके धावोंको अपनी नम्रता, शीतलता, आर्द्रता और उदारताके कोमल स्पर्शसे भर देता है।

एक वस्तुका प्रकट होना किसी दूसरी अवस्था या वस्तुके आगमनकी सूचना देता है। किसी वस्तुका जन्म उसकी मृत्युकी सूचना है। और मृत्यु उसके जन्मकी पताका है जो फहराकर आनन्द और हर्षकी सूचना देती रहती है।

‘मेरा होना या फकत मेरे न होनेके लिये।

मेरा मरना या फकत मेरे जीनेके लिये॥’

बड़ी तीव्र गर्मी इस बातकी सूचना देती है कि

वर्षा या आँधीका आगमन समीप है। जब कोई मनुष्य दुःखसे खूब तड़फड़ा रहा हो तो यह जानरखना चाहिये कि उसके लिये एक दूसरी अवस्था ‘बेहोशी’ या ऐसी ही कुछ और दशा समीप ही लगी हुई है, जिसके प्राप्त होनेपर उसे पीड़ाका ज्ञान ही न रहेगा। पतझड़का मौसिम जहाँ वृक्षोंकी पत्तियाँ नोचनेमें ही लगा रहता है, वहाँ उसके बाद ही वसन्त भी पुष्पोंका तरकस लिये दौड़ा चला आता है।

जिस समय रावणके शासनसे प्रजा दुखी थी, ऋषि-मुनि जंगलोंमें बैठे हुए भी कष्ट और दुःखकी सीमासं अलग नहीं थे। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था, मानो यह सब इस बातकी सूचना दे रहे थे कि सूर्यकुलमें बहुत शीघ्र एक अनुपम सूर्य प्रकट होगा जो अन्धकारको नष्ट करके पृथ्वीको पुनः स्वच्छ, पवित्र और उज्ज्वल चादर पहनाकर पहलेसे कहीं अधिक सुन्दर बना देगा। मिलनीका प्रेम, निपादकी मुहब्बत उमड़-उमड़कर हृदय-देशकी दीवारोंको दहाकर किसीसे भेंट करनेके लिये चारों ओर फैल रही थीं। क्या उमड़ती हुई धाराके प्रबल वेगको रोकनेके लिये कोई सामान न होगा? क्या बुलबुलकी चहक, फूलकी महक, कायलकी कूक और पपीहेकी हुकमें कोई असर न होगा? क्या मधुरस्वर सुनसान वायुमण्डलमें मिलकर नष्ट हो जायगा, क्या पहाड़ी चट्टानोंसे टकराकर ध्वनि प्रतिध्वनिके वस्त्र पहनकर प्रकट न होगी? क्या पुष्पके पूरे खिलनेपर भी सुगन्ध न आयगी? क्या प्रेमसे भरे हृदयके लिये प्रेम-प्रतिमा प्रकट न हागी? क्या प्रेमीके लिये वह मनमोहनी मूर्ति ‘राम-नाम’ से प्रसिद्ध होकर प्रेमकी कोमल डोरियोंमें बँधकर न खिचेगी, अवश्य, अवश्य खिचेगी! ‘हाँ हाँ बता रही है तेरी नहीं नहीं’ रामावतारका मुख्य भेद और कारण संक्षिप्तमें यही है! — बनारसीदास ‘प्रेम’



## कल्याण



पुत्र लव-कुशको जनकजा धनुर्वेद सिखा रही ।

स. सा. मुद्रालय-अमरावाट.

## वाल्मीकीय रामायणका आधार और काल

(लेखक—मीगोविन्दनारायणजी आभोपा दाधीच वी० ए०, एम० आर० ए० एस०)

जाते जगति वाल्मीकौ कविरत्यमवदुध्वनिः ।

कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्विति दण्डिनि ॥



हर्षि आदिकवि वाल्मीकिके नामसे सभी साक्षर मन्त्रीमूर्ति परिचित हैं। संस्कृतमें वेदोंको छोड़कर सबसे प्राचीन ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण है। यह एक चम्पकारिक ग्रन्थ है। इसके पाठद्वारा कई प्रकारके अनुष्ठानोंकी सिद्धि इस कालिकालमें अब भी होती है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित और अनुभूत है। इसके कुछ चौबीस सहस्र श्लोक हैं, जिनमेंसे प्रायः प्रतिसहस्र पद्यके आधाचरोंसे गायत्रीमन्त्र निकलता है। जिसको गायत्रीमन्त्र रामायण कहते हैं। पाठकोंके परिश्रमाथ हम यह नीचे दिखे देते हैं—  
ओं तत् स्यात् स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विशं वरम् ।

नारदं परिपश्यन्त वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञान् रघुनन्दनः ।

ऋषिभिः पूजितस्तत्र ययेन्द्रो विजये पुरा ॥ २ ॥

वि विश्वामित्रः स धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।

वत्स ! राम ! वनः पश्य इति गद्यवमब्रवीत् ॥ ३ ॥

तुर् तुष्टावाप्त तदा वंशं सुमन्त्रः स विशांपतेः ।

शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठतः ॥ ४ ॥

घ वनवासं हि सङ्ख्याय वासास्याभरणानि च ।

मर्तारमनुगच्छन्त्ये सीतायै शशुरो ददौ ॥ ५ ॥

रे राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतं कुलम् ।

राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ६ ॥

णि निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो मुनिम् ।

उद्रे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥

यं यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगम्यं तं महाबलम् ।

अथैव गमने बुद्धिं रोचयन्व महायशः ॥ ८ ॥

शर् भरतस्यार्यपुत्रस्य श्रुत्वा मम च प्रभो ।

भृगुरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ९ ॥

गा गच्छ शीघ्रमितो वीर ! भुग्रीवं तं महाबलम् ।

वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ! ॥ १० ॥

दे दशकांक्षा भजस्वाद्य श्रममाणः प्रियाप्रिये ।

मुखदुःखसदः काले भुग्रीववशगो भव ॥ ११ ॥

व वन्द्यास्ते च तपःसिद्धास्तपसा वीतकल्मषा ।

प्रष्टव्या चैव सीतामाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ १२ ॥

स्य स निर्जित्य पुरी लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।

विक्रमेण महतेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥ १३ ॥

धी कन्या देवाः सगन्धर्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ।

मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥ १४ ॥

म मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।

उपस्थ विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥ १५ ॥

हि हितं महार्थं मुदुहेतुसंहितं व्रतीतकालायति संप्रतिक्षमम् ।

निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥

धि धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोऽयं विमोक्षणः ।

लङ्कैश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्तोऽयं संशयम् ॥ १७ ॥

यो यो वज्रपाताशनिसेनिपातान् जुहुमे नापि च चाल राजा ।

स रामनाणाभिहतो भुवार्तक्षाला चापं च मुमाच वारः ॥

यो यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निवनं गताः ।

तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ १९ ॥

नः न ते ददृशिरं रामं दहन्तमरिबाहिनीम् ।

मोहिता परमाख्येण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २० ॥

प्र प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।

बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचप्रिसमीपतः ॥ २१ ॥

व्यो बालनात्पर्वतेन्द्रस्य गणा देवस्य कम्पिताः ।

च चाल पावती चापं तदाक्षिष्टा महेश्वरम् ॥ २२ ॥

द दाराः पुत्राः प्रियं राष्ट्रं भोगच्छादनमाजनम् ।

सर्वमेवाऽविभक्तं नौ भविष्यति हरिश्चरः ॥ २३ ॥

यात् यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समविशत् ।

तमेव रात्रिं सीताऽपि प्रभूता दारकद्वयम् ॥ २४ ॥

(यादवर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।

तादस्वमिह लोकस्य स्वामित्वमवधारय ॥)

इदं रामायणं काव्यं गायत्रीबीजसंयुतम् ।

त्रिसन्ध्यं यः पठन्नित्यं ब्रह्मलोकं महीयते ॥

इतिहास-ग्रन्थोंमें रामायणका सर्वोच्च और सर्वप्रथम स्थान है। प्रामाणिक इतिहासमें केवल रामायण और महाभारतकी गणना है, जिनमें भी रामायण प्रथम है। यह ग्रन्थ श्रीरामचन्द्रजीके समयमें ही बना था-जैसा कि इसके आन्तरिक प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है। मूल रामायणमें १ से लेकर १० श्लोकोंतक तो मूलकाल लिखा गया है और ११-१७ तक भविष्यत्काल लिखा है जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि जब रामचन्द्रजीने रावणको मार, विभीषणको लङ्काका राज्य दे, नन्दिग्राममें आ, जटा उतार, अयोध्याका राज्य पुनः प्राप्त कर लिया, उसके अनन्तर रामायणकी रचना हुई और तदनन्तर जो कृत्य किये उनका

भविष्यत्कालमें 'ऐसा करेंगे' इसप्रकार बर्णन है, जिससे उन कृत्योंके पूर्व रामायणकी रचना की गयी ऐसा सिद्ध होता है। यथा—

अभिविष्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।

कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥ ८५ ॥

देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च बानरान् ।

अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्ब्रतः ॥ ८६ ॥

भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।

मरुतस्यान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत् ॥ ८७ ॥

पुनरास्त्रायिकां जल्पन् सुग्रीवसहितस्तदा ।

पुष्पकं तत्समाकृष्ट नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ८८ ॥

नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।

रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनर्गवासवान् ॥ ८९ ॥

वर्हातक सब भूतकालघोतक क्रियाओंका प्रयोग हुआ

है, इसके अनन्तर भविष्यत् क्रियाएँ लिखी गयी हैं। यथा—

न पुत्रमरणं केचिद्ब्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित् ।

नार्यश्चाविचनानिभं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥ ९१ ॥

... ..

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा बहुवस्त्रसुवर्णकैः ॥ ९४ ॥

गवां कोटियुतं दत्त्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ।

असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायज्ञाः ॥ ९५ ॥

राजवंशाच्छतगुणान् स्थापयिष्यति राष्ट्रवः ।

चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियाक्ष्यति ॥ ९६ ॥

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।

रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥ ९७ ॥

अतः यह बात निर्विवादतया स्पष्ट है कि रामचन्द्रजीके राज्यप्राप्तिके अनन्तर और अश्वमेध-यज्ञ करनेके पूर्वके समयमें इस महाकाव्यकी रचना हुई थी।

## सीताजीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

( लेखक—शुद्धार्दनभूषण प० श्रीजिष्ठारामजी हरिजनन शास्त्री )

जनकपुर आते समय श्रीरामने विधामित्रसे पूछा कि महाराज ! आप जिसके स्वयंवरमें जा रहे हैं वह सीता कौन है ? विधामित्रने कहा—हे श्रीराम ! पूर्वकालमें एक पद्माक्ष नामक राजा था, उसने तपश्चर्यासे जम्भीजीको प्रसन्न करके वह वरदान माँगा कि आप मेरे यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट हों। यह सुनकर जम्भीजीने कहा कि 'मैं तो श्रीविष्णुके अधीन हूँ, वह जहाँ आज्ञा देते हैं वहाँ प्रकट होती हूँ' यह सुनकर उस राजाने विष्णुकी तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया तब विष्णुने एक फल देकर उसे भक्षण करानेको कहा। उस फलसे नव मासके पश्चात् एक कन्या उत्पन्न हुई। जब यह कन्या बड़ी हुई तो उसका सौन्दर्य देखकर बड़े बड़े राजा मोहित हो गये और उन्होंने पद्माक्ष राजापर चढ़ाई कर ली, पद्माक्ष मारा गया। पद्माक्ष एक समय अश्विकुचदसे बाहर खड़ी थी, रावण उसे देखकर मोहित हो गया और उसे ग्रहण करनेको आगे बढ़ा, परन्तु पद्माक्ष अश्विकुचदमें लुप्त हो गयी। तदनन्तर रावणने कुचदमें शोधकर पद्माक्ष प्राप्त किये और उन्हें एक सन्तुष्ट करने के लिये अपने घर लाकर मन्दोदरीको दिया और कहा कि यह रत्न मैं तुम्हारे लिये लाया हूँ। मन्दोदरीने जब सन्तुष्ट होकर देखा तो भीतर एक दिव्य कन्या दिखायी पड़ी। उसे देखकर मन्दोदरीने रावणसे कहा कि यह कन्या तुम्हारे कुलका नाश करेगी। सन्तुष्टमें भी

ऐसी ही आवाज आयी। तब रावण उस कन्याको मारनेको तैयार हुआ किन्तु मन्दोदरीके समझानेपर वह कन्याको सन्तुष्टमें डुब करके वहीं दूर उत्तरमें जनकपुरके पास नौकर-द्वारा एक खेतमें गड़वा दिया। पद्माक्षराजाने सृष्टिके अनन्तर इसी जनकपुरमें एक ब्राह्मणके घर जन्म लिया था। उसीके खेतमें वह सन्तुष्ट गाती गयी थी, वह ब्राह्मण हलने जब खेतको जोतने लगा तब वह सन्तुष्ट प्राप्त हुई। उस सन्तुष्टको द्रव्य होनेकी आशंकासे उसने राजा जनकको जाकर दिया, राजाने उसे खोला तो भीतर कन्या देखी। तब उसने ब्राह्मणको द्रव्यमें मन्तुष्ट करके विदा किया और कन्याको अपनी पुत्री करके अपने घरमें रखवा, क्योंकि उनको मन्तुष्टि नहीं थी। उसका नाम मीता रखवा गया और जनककी पुत्री होनेसे वह जानकी भी कही जाने लगी। इस जनक राजाके यहाँ एक समय परशुरामजी आये और अपना शिव-धनुष बाहर रखकर महलके भीतर भोजनको गये, तब सीताजी इस प्रचण्ड धनुषको उठाकर उसे श्वश्रु बना उसके ऊपर बैठकर खेलने लगी। भोजनके बाद परशुरामजीने देखा कि सीताजी धनुषका घोंडा बनाकर खेल रही है, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने राजा जनकसे कहा कि यह धनुष जो चढ़ाने, उसीके साथ तुम अपनी पुत्रीका विवाह करना। अतएव यह स्वयंवर हो रहा है, इस स्वयंवरमें जो धनुष चढ़ावेगा उसीको यह कन्या प्राप्त होगी, ऐसा कहते-कहते वे जनकपुर आ पहुँचे।

## रामायणमें शिवानुशासन

मुनहु उमा ते लोग अमायी । हरि तजि होहि बिषय अनुरागी ॥  
 उमा कहौ मैं अनुभव अपना । हरिको भजन सत्य जग सपना ॥  
 उमा दास योगितकी नाई । सबहि नचावन राम गुसाई ॥  
 उमा राम सम हिनू जग माहा । मुन पियु मानु बंधु कोउ नाहीं ॥  
 ऐसे प्रभुकहैं जो परिहरहीं । कोह न बिपति जाल नर परहीं ॥  
 उमा राम नवभाव जिन जाना । तहि भजन तजि भावन आना ॥  
 उमा संतकी यह बड़ाई । मन्द करत जो कर्म भलाई ॥  
 उमा रामकर नृकुटि बिलासा । होइ बिस्व पुनि पावहि नासा ॥  
 उमा राम भूचित करुणाकर । बेर भाव सोहि सुमिगत निसिचर ॥  
 यहि परमगति मो जिय जानी । अम कृपा को कहहु भवानी ? ॥  
 उमा अवष्ट राम रगुष्ट । नरगति भाव कृपालु दिखाई ॥  
 उमा करत रघुपति नर सीता खेल गरुट जिम अहिगण सीता ॥  
 जनपावन कीरति धिरनहीं । गाइ गाइ नर भवनिधि नरहीं ॥

उमा जे रामचरणस्त भिगत काम मद कोष ।  
 निज प्रभुनय देखहि जगत कासन कहि विगोष ॥  
 सो कुरु धन्य उमा मुनु जनन पूज्य सुपुनीत ।  
 श्रीगुरुद्वार परायण जेहि नर उपज निर्नीत ॥

गिरिजा मुनहु रामकी लीला । मुगहन दनुज बिमोहन सीता ॥  
 रामकथा कोन बिदय हुगरी । सादर मुनु गिरिजा-गुमारी ॥  
 वसु कृपा यम अनागत जाई । गारजा सोइ कृपा रगुगई ॥  
 गिरिजा रघुपतिकी यह गीता । संत करहि प्रननपर प्रीति ॥  
 मुनु गिरिजा कानानक जामू । जहै गुवन चारिदस आगू ॥  
 जे अस प्रभु न मजहि भन त्यागी । ते प्रतिमंद सो परम अमायी ॥  
 रामकथा गिरिजा मै बरनी । करिगम-समन मनोमल हरनी ॥

गिरिजा संतसमागम सम न लाम कहु आन ।  
 बिन हरि-कृपा होइ नहि गावहि वेद-पुरान ॥  
 गिरिजा जकर नाम जपि नर काटहि भव फाँस ।  
 सो प्रभु आव कि बंधन व्यापक बिदव निवास ॥

निसिचर अचम मलायतन तहि दीन्ह निजवाम ।  
 गिरिजा ते नर मंदमति जे न मजहि श्रीराम ॥

× × ×

राम सो परमात्मा भवानी । तहें भ्रम अति अबिहित तब बानी ॥  
 जेहि जागे जग जाइ हेराई । जागे जथा स्वप्न भ्रम जाई ॥  
 बंदी बालरूप सोइ रामू । सब विधि सुलभ जपत अस नामू ॥  
 मंगलभवन अमंगलहारी । द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥  
 जिन हरि-भक्ति दृढय नहि आनी । जीवत शत्रु समान ते प्रानी ॥  
 जे नहि करहि रामगुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥  
 सगुणहि अगुणहि नहि कहु भेदा । गावहि मुनि पुराण बुध बेदा ॥  
 अगुन अरूप अलस अत्र जाई । मत्-प्रेमबस सगुन सो होई ॥  
 जासु नाम भ्रम तिमिर पतझा । तेहि किमि कहिय बिमोह प्रसंगा ॥  
 राम सच्चिदानन्द दिनेसा । नहि तहें मोह-निसा लबलेसा ॥  
 राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परस पुराना ॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।  
 रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिब नृपति माथ ॥

× × ×

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू । मायाधीस ज्ञान गुन चामू ॥  
 बिबसहु जामु नाम नर कहहीं । जनम अनेक संचित अघ दहहीं ॥  
 सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुबर सब ठर अन्तरजामी ॥  
 सादर सुमिरन जो नर करहीं । भवबारीष गोपद इतरहीं ॥  
 हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहि मैं जाना ॥  
 देम काल दिसि भिदिसिहुँ माही । कहहु सो कहौ जहाँ प्रभु नाहीं ॥  
 अगजनमय सब रहित बिरामी । प्रेमते प्रभु प्रकटहि जिमि आगी ॥  
 रघुपति-बिमुख जतनकर कोरी । कवन सके भव-बन्धन छोरी ॥  
 जिनकर नाम लेत जगमाही । सकल अमंगल मूक नसाहीं ॥  
 राम अतक्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस मुनहु भवानी ॥  
 अस बिचारि जो परम बिरामी । रामहि मजहि तर्क सब त्यागी ॥

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहि बिरति ।  
 पावहि मोह बिमूढ़, जे हरि-बिमुख न धर्मरति ॥



## रामचरितमानस और अध्यात्मरामायण

( लेखक—श्रीबोधार श्रीराजेन्द्रसिंहजी )



अध्यात्मरामायणका रचनाकार वाल्मीकि-रामायणके पीछे और तुलसीकृत रामायणके पूर्व माना जाता है। अध्यात्मरामायण वाल्मीकीय रामायणके बहुत पीछे तब बनी, जब कि श्रीरामजी आदर्श राजपुत्रके पदसे ऊपर उठकर साक्षात् परमात्माके पूर्ण अवतार माने जाने लगे थे। महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामका अवतारस्वरूप स्वीकार करते हुए भी उन्हें अवतार-रूपसे चित्रित नहीं किया है। अध्यात्मरामायणकी कथा वाल्मीकि-रामायणके ही आधारपर लिखी गयी है, पर रामचन्द्रजीको अवतार मानकर उसका रूप बिल्कुल बदल दिया गया है।

इन बातोंसे ऐसा मालूम होता है कि अध्यात्मरामायणकी रचना सिर्फ इसी उद्देश्यसे हुई है कि श्रीरामका ईश्वरत्व सिद्ध किया जाय।

रामचरितमानसकी रचना किसी एक खास ग्रन्थके आधारपर नहीं की गयी। उसके भाव 'नानापुराणनिगमागम' से लिये गये हैं। इसका कथाभाग अधिकतर वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण और भुशुबिडरामायण आदिसे लिया गया है। बा० रा० की अपेक्षा अध्यात्मरामायणका आधार ही इसमें अधिक है। आगे चलकर ज्ञात हो जायगा कि गोसाईजीने किसीकी अन्धी नकल नहीं की है। मानस-अध्यात्मरामायणकी अन्धी नकल नहीं है वरन् इन दोनों ग्रन्थोंमें बहुत अन्तर है। मानसके पूर्ववर्ती होनेके कारण अध्यात्मरामायणका उसपर प्रभाव अवश्य पड़ा है। इस प्रभावके कारण दोनोंमें कहीं-कहीं भावसाम्य बहुत अधिक दिख पड़ता है। यही कारण है कि बहुतसे पंडितोंको यह भ्रम हो गया है कि मानस-रामायण, अध्यात्मरामायणकी नकल है। पर दोनों ग्रन्थोंके ध्यानपूर्वक पढ़नेसे साफ मालूम हो जायगा कि इन दोनोंमें बहुत अन्तर है। दोनों रामायणों उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें हैं। इससे भी कुछ लोग समझ बैठे हैं कि मानस अध्यात्मरामायणका अनुवाद है। अपने समर्थनमें लोग तीन बातें उपस्थित करते हैं—

(१) दोनों रामायणोंके कथाभाग और भावोंमें बहुत कुछ साम्य है।

(२) मानस अध्यात्मरामायणके पीछे बनी।

(३) दोनों, उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें हैं। गोसाईजीने स्वयं कहा है कि—

‘यत्पूर्वं प्रमुष्ण कृतं मुक्तिना श्रीशम्भुना दुर्गमम्’

उत्तर इसप्रकार है—

(१) केवल कुछ भावों और कथाओंमें साम्य होनेके कारण कोई किसीकी नकल नहीं कही जा सकती। आगे यह भी बतलाया जायगा कि कुछ बातोंमें दोनोंमें साम्य रहते हुए भी कुछ ऐसे अन्तर हैं जो भुलाये नहीं जा सकने और जिनके कारण तुलसीदासजीकी मौलिकता प्रकट होती है।

(२) अध्यात्मरामायणके पीछे रचे जानेके कारण मानस-पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ा। जिस प्रकार गोसाईजीने अध्यात्मरामायणसे अच्छी-अच्छी बातें लेकर अपने ग्रन्थमें सम्मिश्रित की है उसी प्रकार अन्य अनेक ग्रन्थोंसे भी सूक्तियाँ ली गयी हैं। अतः इसके कारण भी कोई ग्रन्थ नकल नहीं कहा जा सकता।

(३) अध्यात्मरामायणकी सारी कथा केवल उमा महेश्वरके संवादरूपमें है। पर मानसमें जो तीन संवाद प्रधान हैं—शंकर-पार्वतीसंवाद उनमेंसे एक है। एक महाशय कहते हैं कि एक श्लोकमें अन्य नामोंको छोड़कर केवल शम्भुके उल्लेख किये जानेके कारण उनकी प्रधानता है। यह बात ठीक मालूम होती है।

रामायण आरम्भ करते समय गोसाईजीने उसके आधार-के विषयमें जो परम्परा लिखी है, वह यह है—

‘शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुदि कृपा करि उमहि सुनावा।।’

संनद सिव कागमुसुंदिहि दीन्ह। ... ..

तेहिसन जागबलिक मुनि पावा। तिन पनि भरद्वाज प्रति गावा।।

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी। ... ..

आपानद करन मैं सार्ह। ... ..

इससे प्रकट होता है कि जो कथा शिवने काकमुष्टयिद्धसे कही, वही परम्परासे गुवाहूजीने पायी और उसीके आधारपर उन्होंने रामायण लिखी।

गुवाहूजीने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने 'नाना पुराणों' का आधार लिया। अध्यात्मरामायण ब्रह्मावह-पुराणके अन्तर्गत है। इसलिये उसका भी आधार लेना सिद्ध ही है। अब हम यह बतलावेंगे कि गुवाहूजीने कहाँ-कहाँ अध्यात्मरामायणका आधार लिया। पहले काव्योंके अनुसार कथाकी समता देखिये।

बालकाण्डमें देवताओंकी प्रार्थनापर ईश्वरका अवतार लेनेकी प्रतिज्ञा करना, दशरथका पुत्रेष्टि-यज्ञ, रामजन्म, बाल-लीलासे लेकर विरवामित्र-भागमन, तादकावध, यज्ञरक्ष, अहज्योद्धार, धनुषभंग और विवाह ये कथार्थ मानस और अध्यात्मरामायणमें प्रायः एक-ही हैं। अयोध्याकाण्डमें राम-वनगमन, गुहमिलाप, लक्ष्मणका गुहको उपदेश और भरतसंवाद दोनोंमें बिल्कुल एक-से हैं। आरण्यकाण्डके विगन्धर्व, शरभंग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यसंवाद, लक्ष्मणको ज्ञानदान, मूर्ध्निष्ठा-नालाकर्णहरण, सीताहरण, जटायुसंवाद, कबन्ध-वध, खरयुद्ध, शवरीदर्शन, दोनों रामायणोंमें एक-से हैं। किष्किन्धाकी सुग्रीव-मिताह और सीताकांज, सग्यानी और योगिनीभेंट, एक-से हैं। सुन्दरकाण्डकी कथा दोनोंकी मिलती है। लंकाकाण्डमें मन्दोदरीका उपदेश, शुकसंवाद, प्रह्लादवाद और युद्ध आदि एक-से हैं।

उपर्युक्त कथाओंके साम्यसे यह प्रकट होता है कि मूल कथामें कुछ अधिक भेद नहीं है।

अब ये कथाभाग विवेचने हैं, जिनमें दोनों रामायणोंमें अन्तर है।

अध्यात्मरामायणमें रामचरितमानसमें

(१) आरम्भमें हनुमान् (१) नहीं है।

सीता और रामका संवाद।

(२) देवताओंका शीर-सागरपर जाकर स्तुति करना व प्रणम्य वरदाय पाना।

(२) देवोंका हरिको-सर्वत्र समाना' जानकर शिवलोकमें स्तुति करना और आकाश-वाणीसे आवाहन मिलना।

(३) काश्यपको मोहित करके अयोध्यामें जाना।

(४) नहीं है।

(५) अकेलेमें धनुष-भंग करना।

(६) अयोध्याके रास्तेमें परशुरामका आगमन और संवाद।

(७) अ० का०के आरम्भमें नारदका आना।

(८) अ० का० के अन्तमें अग्नि-मिलाप।

(९) नहीं है।

(१०) जयन्तकी कथा लङ्का-काण्डमें है।

(११) नहीं है।

(१२) नहीं है।

(१३) नहीं हुआ।

(१४) रावण-अज्ञ-संवाद नहीं हुआ।

(१५) हनुमान्जीके जानेपर रावणको स्वप्न हुआ।

(१६) बानरोंके लिलानेके लिये हनुमान्जी सजीवनी लेने गये, और रास्तेमें भरत और मुलाकात की।

(१७) शक्ति लगनेपर रामने विज्ञाप नहीं किया।

(३) नहीं है।

(४) पुष्पवाटिकामें राम-जानकी-भेंट।

(५) सर्वदेशीय राजाओंकी सभामें रामका धनुष भंग करना।

(६) धनुष-भंगके बाद जनककी सभामें ही परशुराम-आगमन।

(७) नहीं है।

(८) आ०के आरम्भमें अग्नि मिलाप।

(९) अनसूयाका सीताको क्षी-धर्मोपदेश।

(१०) आरण्यकाण्डमें है।

(११) आ०अन्तमें नारदका आगमन।

(१२) खरका दूत भेजना।

(१३) सुन्दरकाण्डमें हनुमान्जीका विभीषणसे मिलाप।

(१४) रावण-अज्ञ-संवाद हुआ।

(१५) त्रिजटाको हुआ।

(१६) लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर गये। रास्तेमें किसीसे मिलाप नहीं हुआ।

(१७) विज्ञाप किया।



- (१८) रावणने सुग्रीवके पास शुकको सन्धि करनेके लिये भेजा। (१८) नहीं।
- (१९) रावणका सीताको मारनेकी इच्छा करना व सुपारवका बचाना। (१९) सीताको मारने दौड़ना व मन्दोदरीका बीच-बचाव।
- (२०) रावणका होम करना। (२०) मेघनादका होम करना।
- (२१) अयोध्या लौटते समय रामका भरहाससे मिलाप। (२१) नहीं हुआ।
- (२२) लङ्काकाण्डहीमें रामका अयोध्या लौटना और राजगद्दी। (२२) उत्तरकाण्डमें लौटना व राजगद्दी।
- (२३) उत्तरकाण्डमें शम्भूक-बधकी कथा। (२३) नहीं है।
- (२४) सीता-त्याग। (२४) नहीं है।
- (२५) लवणवध। (२५) ,,
- (२६) दुर्वासा आगमन। (२६) ,,
- (२७) अन्तमें लक्ष्मणव्याग और स्वर्गारोहण। (२७) ,,
- (२८) नहीं है। (२८) बालकाण्डमें प्रतापभानुकी कथा।
- (२९) ,, (२९) नारदमोह।
- (३०) ,, (३०) मत्सीमोह।
- (३१) ,, (३१) शंकरकृत मवलद्वहन पार्वतीविवाह इत्यादि।
- (३२) ये सब नहीं हैं। (३२) उत्तरके अन्तमें राम-राज्य वर्णन, कलि-वर्णन, कागभुशुयिड-गरुड संवाद आदि हैं।

\* इन बातोंके अलावा बहुत-सी छोटी-छोटी बातोंमें अन्तर पड़ा जाता है, जैसे अगस्त्यका रामको अग्र देना, भग्नका हनुमान्को गाथ देना। रामका भग्नका विमानपर बिठा लेना आदि अ० रामायणकी बातें १०७० सा० में नहीं हैं। गुप्ताईजीने लिखा है कि शंकरका धनुष 'भूप महामद' भी न उठा सके पर उसी धनुषको अ० १०० में ५ हजार जंकर लभाने ले आये। इसके सिवा धर्मेश्वरीपर और भी छोटे छोटे अन्तर हैं। जैसे-

#### अ० रामायणमें

- (१) राजाका वशिष्ठको अपने घर बुलवाना।  
 (२) सीताको वन-गमनकी खबर रामने सुनाई।  
 (३) केवटके चरण धोनेकी कथा मिथिला प्रति समय।  
 (४) रावणकी युद्ध-समयें कुम्भकर्ण था।

#### रा० च० सा० में

- (१) रामको, अभियन्तके दिये भयं गुरुगृह जाना।  
 (२) सीता खबर सुनकर खुद रामके सामने रामके पास आयी।  
 (३) वन जाने समय।  
 (४) वह युद्धके बाद जगाया गया, इत्यादि।

अध्यात्मरामायणकी कथा लङ्काकाण्डहीमें समाप्त कर दी गयी है। क्योंकि इससे अन्तमें ग्रन्थसमाप्तिसुचक पद्य हैं। इससे मालूम पड़ता है कि अन्तसर्गमें ही ग्रन्थकारने कथा समाप्त कर दी थी। पर किसीने पीछेसे उत्तरकाण्ड जोड़ दिया। इसीप्रकार तुलसीकृत रामायणके अन्तमें लवकुशकाण्ड जोड़ दिया गया है। इस लवकुशकाण्डकी कथा और अध्यात्मरामायणके उत्तरकी कथा एक-सी ही है। जितनी कथा इसमें लङ्काके अन्ततक है उतनी ही रामकथा मानसके उत्तरकाण्डतक गयी है।

अध्यात्मरामायणके उत्तरकाण्डको प्रसिद्ध माननेका सिर्फ यह प्रमाण उपस्थित किया गया है कि लङ्काकाण्डके अन्तमें कुछ ऐसे श्लोक आ गये हैं जिनसे मालूम होता है कि ग्रन्थ यहीं समाप्त हो गया। पर उत्तरकाण्डमें फिर कथा आरम्भ हो जाती है और यदि लङ्काकाण्डके अन्तके कुछ श्लोक निकाल लिये जायें तो कुछ अन्तर नहीं मालूम होता और कथाका सिलामिला बराबर चला जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि ये श्लोक उत्तरकाण्डके अन्तमें न रखे जाकर भूलसे इस स्थानपर रख दिये गये हों।

अ० रा० के लङ्का और उत्तरकाण्डोंकी भाषा आदिमें ऐसा भेद नहीं है जिसमें दोनों काण्ड दो भिन्न कवियोंकी रचनाएँ समझ पड़ें। पर तुलसीकी रामायणके पीछे जोड़ा गया लवकुशकाण्ड, रेशममें टाटके समान तुरन्त ही खटकने लगता है।

कथाभाग इतना अधिक रहने हुए भी गुप्ताईजी और अध्यात्मरामायणके भाव बहुत जगह एक-मे दूसरे पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो गुप्ताईजीने अपने ग्रन्थमें अ० रा० के श्लोकोंके बिल्कुल अनुवाद करके रख दिये हैं, कई स्थलोंपर अ० रा० के छंदोंसे भावको गुप्ताईजीने अपनी प्रतिभासे

परिवर्धित व परिमार्जित करके अपना लिया है । कुछ उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जायगा ।

१-गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं  
वदन्ति मेकेषु महानुभावाः ।  
( अ० ग० )

गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहि । भारत अधिकारी जहँ पावहि ॥  
( रा० च० मा० )

२-‘भरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्ष्मणान्वितम् ।  
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत ॥  
यस्मिन्नमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे ।  
तं गुरुः ब्राह्मणमेति रमणाद्राम इत्यपि ॥  
( अ० रा० )

विश्व भरण पाषाणकर जोहँ । ताकर नाम भरत अस होहँ ॥  
नाके मुनिमन्त भि० नासा । नाम शत्रुहन बेद प्रकासा ॥

लक्ष्मण वाम राम प्रिय, सकल जगत आधार ।  
गुरु ब्रमिष्ठ तेहि गमि०, लक्ष्मण नाम उदार ॥  
जो भानुसिन्धु सुख रामी । माकमे क्रोको मुपासी ॥  
सो सुखधाम राम अस नाम । अक्षिज लोक दायक विश्रामा ॥  
केवट कहता है कि—

३-श्रामयामि नव पादपकजम्,  
नाथ दारुहृषदाः किमन्तरम् ॥  
मान्थीकण्ठशरणागमि ते,  
पादयोगिनि कथा प्रथयसी ॥  
( अ० रा० )

अमर-कमल-गज कहँ सब कहई । मानुष-करनि मूगि कहँ अहई ॥  
( मानस )

४-पौं गृहीत्यमहं जने विगर्हं दूष्य जीवनम् ।  
( अ० रा० )

उपरोहतां कर्म अति मंदा । बेद पुगन करहि सब निन्दा ॥  
( रा० च० मा० )

कैकेयी कहती है—

५-ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः परामवः ।  
( अ० रा० )

नेहर जन्म मरब बरु जाई । जियत न करब सबनि सेवकाई ॥  
( रा० च० मा० )

भयरा कहती है—

६-लक्ष्मणो राममन्वेति राज्यं सोऽनुभविष्यति ॥  
भरतो राघवस्याग्रे किं करो वा भविष्यति ॥  
त्वं तु दासीव कौशल्या नित्यं परिचरिष्यति ॥  
( अ० रा० )

भरत बेदिग्रह सेहहहि, लखन रामके नेव ।  
जो सुत सहित करहु सेवकाई । तो घर रहहु न आन उपाई ॥  
( रा० च० मा० )

वसन्धजीने कहा है—

७-ब्रूहि कं धनिकं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियंकरम् ।  
धनिनं क्षणमात्रेण निधनं च तवाहितम् ॥  
( अ० रा० )

कहु केहि रकहि कर्ग नरेसु । कहु केहि नृपति निकारीं देसु ॥  
( रा० च० मा० )

कैकेयी कहती है—

८-तमाह कैकेयी राजा राज्ञी निद्रां न लब्धवान् ।  
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ॥  
( अ० रा० )

परी न राजहि नींद निशि । हेतु जानु जगदीस ।  
राम रामरति भोग किय, कहैउ न मरमु महीस ॥  
( रा० च० मा० )

९-स्वर्गे यथा देवपतिः सशय्या ॥ ( अ० रा० )  
सोहन मुरपुर इन्द्र जनु, शची जयंत समेत ।  
( रा० च० मा० )

१०-असमर्थैव रामाय राजे मां क गतोसि भो ॥  
( अ० रा० )

—मरते न रामहि सौपेठ मोही ॥  
( रा० च० मा० )

भरत-प्रतिज्ञा—

११-पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतेन्द्रवम् ॥  
हृत्वा वशिष्ठं खड्गेन अरुन्धत्या समन्वितम् ।  
भूयान्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम् ॥

मानसमें भी भरतने इसी प्रकारकी प्रतिज्ञाएँ की हैं  
यथा—

‘त्र अघ मातु पिता गुरु मारे ।’ इत्यादि

१२-अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः ।  
राममेव सदान्वेति बलस्थमपि दृष्टवीः ॥  
( अ० रा० )

अहह धन्यलक्ष्मण बड़ भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ॥

( रा० च० मा० )

१.३-शिक्षणार्थं मवाहशाम् ॥

( अ० रा० )

तुमसे शठन सिखावन दाता ॥

( रा० च० मा० )

१.४ आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः ।

मां को वर्षयितुं शक्तो हरेभार्या शशो यथा ॥

( अ० रा० )

कह सीता धरि धीरज गाढ़ा । आय गए प्रभुशठ रहु ठाढ़ा ॥

जिमि हरिबुद्धिं क्षुद्र शश चाहा ॥

( रा० च० मा० )

१.५-अवतीर्णाविहपरौचरन्तौ क्षत्रियाङ्गती ।

जगत्स्थितिलयोत्सर्गलीलया कर्तुमुद्यतौ ॥

स्वतन्त्रौ प्रेरकौ सर्वहृदयस्थविहेश्वरौ ॥

नरनारायणौ लोकं चरन्ताविति मे मतिः ॥

( अ० रा० )

की तुम तल देवमहँ कोई । नर नारायण की तुम दोई ॥

अग कारन तारन भव मंजन धरणी मार ।

की तुम अखिल भुवनपति, लीन्द मनुज अवतार ॥

( रा० च० मा० )

१.६-बाजी यथा हता मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा मेवम् ।

( अ० रा० )

जहि सायक मारा मैं बाली । तेहि शर हतौ मूढकहँ काली ॥

( रा० च० मा० )

१.७ उवाचाधोमुखी भुवः विषम नृणमन्त्रे ।

( अ० रा० )

नृण धरि आट कहति बैदेही ।

( रा० च० मा० )

बिचारों और मिद्वान्तोंमें भी इन दोनों ग्रन्थोंमें बहुत साम्य है, दोनोंमें यह सिद्धान्त माना गया है कि श्रीराम साक्षात् परब्रह्म थे और वे लोकोद्धारके लिये अवतार लेकर मनुष्य-लीला करते थे । वे अपनी लीलामें लिस नहीं थे । वद्यपि वे ऐसे कभी-कभी दीख पड़ते हैं—

पथ रामः परा विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।

पथा सा जानकी लक्ष्मीयाममायेति विश्रुता ॥

( अ० रा० )

×

×

×

इन दोनों ग्रन्थोंमें हर जगह यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है । अगर कहीं रामने विलाप किया तो तुरन्त ग्रन्थकार कहते हैं—

पूरन काम राम सुखरासी । मनुज चरित कर अज अविनासी ॥

जिसमें किसीको यह सन्देह न होने पावे कि श्रीराम साधारण मनुष्य हैं, वे दोनों ग्रन्थ उनके ईश्वरत्वका हर जगह पाठकोंको ध्यान दिखाने हैं । यहाँतक कि राम और सीता कहीं-कहीं, स्वयं ही अपना ईश्वरत्व सिद्ध करनेके लिये प्रमाणा देते हैं । सीताजी हनुमान्जीसे कहती हैं—

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।

तस्य सन्निविमात्रेण मृजामीदमतन्द्रिता ॥

गुसाईजीने भी हर जगह सीतारामको प्रकृति और पुरुष सिद्ध किया है पर सीताजीके मुखसे अपनेको कभी 'परमशक्ति' मूल प्रकृति आदि नहीं कहलवाया ।

(क्रमशः)

## चित्र-परिचय

सीता-अन्वेषण—(रंगीन) पृष्ठ २१३ सीता-हरबन्धके बाद भगवान् श्रीराम व्याकुल हुए जहाँ तहाँ सीताको खोज रहे हैं, जहाँ कोई मिलता है, उसीसे गद्गद् होकर सीताका पता पूछने हैं । इस चित्रमें दिखाया गया है कि श्रीराम मुनि-बालकोंसे सीताके सम्बन्धमें पूछ रहे हैं । चित्रकी सुन्दरता देखने योग्य है ।

सुतीक्ष्णका प्रेमोन्माद—पृष्ठ २२६ श्रीरामका आगमन सुनकर सुतीक्ष्णजी प्रेममें मतवाले हुए रामदर्शनार्थ जा रहे हैं । श्रीराम वृक्षकी ओटमें खड़े हैं और बाहरकी ओर झुककर मत्तकी प्रेमलीला देख रहे हैं । सीता और लक्ष्मणजी भी सुख हैं ।

लव-कुशको धनुर्वेद-शिक्षा—पृष्ठ २८२ लव-कुश बाबा चलाना सीख रहे हैं, सीताजी पास बैठी हैं ।

## कल्याणकी पुरानी फाइलें और विशेषांक फाइलें

- (१) प्रथम वर्षके १० अंक बिना जिल्द—मूल्य २॥=) (तीसरा और बारहवाँ अंक नहीं है)
- (२) प्रथम वर्षके छठे अंकसे बारहवें अंकतक छः महीनेकी फाइल—सजिल्द मूल्य २)
- (३) द्वितीय वर्षकी फाइल सजिल्द, इसमें प्रसिद्ध भगवन्नामांक भी शामिल है मूल्य ३॥=)

### (४) तीसरे वर्षकी फाइल

इसमें कुल मिलाकर ११२८ पृष्ठ हैं, जिनमें भिन्न भिन्न परम उपयोगी विषयोंपर प्रसिद्ध सन्त महात्माओं और विद्वानोंके लगभग ४०० से ऊपर लेख तथा ७२ मनोहर चित्र हैं, जिनमें ३७ तो बहुरंगे हैं, बिना जिल्द ४=) सजिल्द ४॥॥=) इसमें भक्ताङ्क भी शामिल है।

### (५) चतुर्थ वर्षकी फाइल

इसमें कुल मिलाकर १३८६ पृष्ठ हैं जिनमें लगभग ३०० से ऊपर लेख तथा १८१ हृदयहागी चित्र हैं, जिनमें २७ तो बहुरंगे हैं। 'गीतांक' इसमें शामिल है। ऐसा सुन्दर संग्रह और नहीं मिल सकता मूल्य बिना जिल्द ४=)

## विशेषांक

- (१) भगवन्नामांक—पृष्ठ ११०, रंगचित्रों ४१ चित्र, मूल्य ॥)
- (२) भक्तांक (थोड़ेसे पड़े हुए मिल गये हैं) पृष्ठ २४६ चित्र ५५ मूल्य बिना जिल्द १॥=) सजिल्द २=)
- (३) गीतांक पृष्ठ ५०० से अधिक, चित्रों इकट्ठे १७० चित्र, बिना जिल्द मूल्य २॥=)
- (४) रामायणांक तो आप देख ही रहे हैं—मूल्य २॥=) बिना जिल्द।

जिनको सन् साहित्य अपने घरमें रखना हो, लोक परलोकमें कल्याणका मार्ग जानना हो, सद्ब्यस्तु उपहारमें देना हो, साधु-सन्तोंको उत्तम दान देना हो, परम श्रेयके मार्गपर चलना हो, वे उपयुक्त ग्रन्थोंको तुरन्त मँगवा लें।

‘कल्याण’ कार्यालय—गोरखपुर



Registered No. A. 1724.

## गीताप्रेस गोरखपुरकी पुस्तकें

- १-श्रीमद्भगवद्गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा टीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्मविषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति सहित, मोटाटाइप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्द, ५७० पृष्ठ ४ बहुरंगे चित्र १।)
- २-श्रीमद्भगवद्गीता-प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे पृष्ठ ४६८ मूल्य ॥३॥ सजिल्द ॥३॥)
- ३-गीता-साधारणभाषाटीका त्यागसे भगवत्प्राप्ति सहित, सचित्र ३५२ पृष्ठ मूल्य ॥३॥ सजिल्द ... ॥३॥)
- ४-गीता-केवलभाषा, मोटा टाइप, सचित्र मूल्य १।) सजिल्द ... ॥३॥)
- ५-गीता-मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र मूल्य १-५) सजिल्द ... ॥३॥)
- ६-गीता मूल, ताबीजी साइज, सजिल्द ... ॥३॥)
- ७-गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र और सजिल्द ... ॥३॥)
- ८-गीताशायरी सन १९३० बिना जिल्द १।) सजिल्द ... ॥३॥)
- ९-प्रेम-योग, सचित्र लेखक श्रीवियोगी हरिजी पृष्ठ ४६८ बहुत मोटा एण्टिक कागज, अजिल्द १।) सजिल्द १।)
- १०-तत्त्वचिन्तामणि, सचित्र लेखक श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३६३ मोटा एण्टिक कागज ॥३॥ सजिल्द १।)
- ११-भक्त बाबूक सम्पा० श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मूल्य १-५) ३० स्वामी मगनानन्दकी जीवनी मूल्य -)
- १२-भक्त-नारी सम्पा० श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मूल्य १-५) ३१-हरेशम्भजन ... ॥३॥)
- १३-पञ्चपुष्प-भावमय सचित्र भजनोंकी पुस्तक ॥३॥ ३२-विष्णुसहस्रनाम मूल, मोटा टाइप ... ॥३॥)
- १४-मानवधर्म-ले० श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार ॥३॥ ३३-सीतारामभजन ... ॥३॥)
- १५-साधनपथ " ॥३॥ ३४-प्रभोत्तरी श्रीशङ्कराचार्यजीकृत भाषा सहित ॥३॥)
- १६-भजन-संग्रह प्रथम भाग ... ॥३॥ ३५-मन्त्रा ( हिन्दी विधि सहित ) ... ॥३॥)
- १७-शोधर्मप्रभोत्तरी (नये संस्करणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) ॥३॥ ३६-वज्रवैश्वदेव-विधि ... ॥३॥)
- १८-सच्चासुख और उम्मीद प्राप्तिके उपाय ... ॥३॥ ३७-पातञ्जलयोगदर्शन मूल ... ॥३॥)
- १९-गीताके मातृयोग और निकाम कर्मयोग ॥३॥ ३८-धर्म क्या है ? ... ॥३॥)
- २०-मनुस्मृति द्वितीय अध्याय अर्थ सहित ... ॥३॥ ३९-दिव्यमन्त्र ... ॥३॥)
- २१-श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय ॥३॥ ४०-श्रीहरि-संकीर्तन-पुन ... ॥३॥)
- २२-मनको बरमे करनेके उपाय, सचित्र ... ॥३॥ ४१-गीता द्वितीय अध्याय अर्थसहित ... ॥३॥)
- २३-गीताका सूक्ष्म विषय पाकेट साइज ॥३॥ ४२-लोभमें हा पाप है आधापैसा
- २४-प्रेमभक्तिप्रकाश, दो रंगीन चित्र ... ॥३॥ ४३-गजलगीता आधापैसा
- २५-त्यागसे भगवत्प्राप्ति सचित्र ... ॥३॥ ४४-भगवत्सामाङ्ग चित्र ४१ पृष्ठ ११० ॥३॥)
- २६-ब्रह्मचर्य-ले० श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार ... ॥३॥ ४५-बंगला गीता नं० २ की तरह मूल्य १।) सजिल्द १।)
- २७-भगवान् क्या हैं ? ... ॥३॥ ४६-भक्तोंक चित्र ५५, पृष्ठ २५० मूल्य १।) सजिल्द २।)
- २८-भमाज-सुधार-ले० श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार ॥३॥ ४७-गीताके चित्र १७० पृष्ठ ५०६ मूल्य २।) सजिल्द ३।)
- २९-एक मन्त्रका अनुभव मूल्य ... ॥३॥ ४८-रामायणांक चित्र १६० पृष्ठ ५१२ मूल्य २।) सजिल्द २।)

## विशेष सुर्भीता

एक साथ सिरीज में गानेवाले ग्राहकोंको डाकमहमूल और पेकिंग नहीं देना पड़ेगा—

सिरीज नं० १ पुस्तक नं० १ सजिल्द और पुस्तक नं० २ से ४४ तक अजिल्द कुल ४४ पुस्तकें रु० ८॥१॥) में

सिरीज नं० २ पुस्तक नं० २ तथा ८ से १० तक अजिल्द कुल ४ पुस्तकें रु० ३।) में

सिरीज नं० ३ पुस्तक नं० ३ और ८ तथा नं० ११ से ४३ तक कुल ३२ पुस्तकें रु० ३।) में

सिरीज नं० ४ पुस्तक नं० ३ और नं० १० सजिल्द तथा नं० ११-१२-१४-१५ अजिल्द ७ पुस्तकें रु० ०।१॥) में

